Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

R
टी०
प्रैक्टिस
भा० ११

विषय संख्या
पुस्तक संख्या
आगत पंजिका संख्या

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें। 3271D

11291

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

(विज्ञान विभाग)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित १५वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५ पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

12 NOV 1974

22 MAR 1976

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

स्टाक प्रमाणीकरण १९८४-१९८५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112911

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ११

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं० ...
आगत सं० ११(१-१२)
तिथि० ...
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगड़ी.

CHECKED 1973

सम्पादक

देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए०

112911

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद

१९१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूचीपत्र ।

१९१०

☞ जिन लेखों के पहले * ऐसा चिह्न है वे सचित्र हैं ।

१—कवितायें ।

नम्बर	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ
१	नये सन् का स्वागत	(पूर्ण) रायदेवीप्रसाद बी० ए० बी० एल० एम० आर० ए० एस० ...	७
२	प्राचीन भारत...	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	१७
३	असि और लेखनी	पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी	२८
४	शिशिर वर्णन...	"पूर्ण", "मुकुन्द", "नवीन" ...	४४
५	संध्यावर्णन	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	५७
६	अन्योक्तिविलास	(पूर्ण), रायदेवीप्रसाद बी० ए० बी० एल० एम० आर० ए० एस० ...	८३
७	*प्रार्थना	श्रीयुत जनार्दन झा	९३
८	मेरा महत्त्व	पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्मा ...	१३०
९	*लीलासंवरण	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	१३३
१०	वसन्तवर्णन	केषांचित् कवीनाम्	१३९
११	नवीन संवत्सर का स्वागत	(पूर्ण) रायदेवीप्रसाद बी० ए० बी० एल० एम० आर० ए० एस० ...	१४७
१२	*विदुरवाणी	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	१६६
१३	होली का हर्ष	"	१८९
१४	ब्राह्मणों से विनय	"	२०५
१५	*मुनि का मोह	"	२१८
१६	कृषक	पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय ...	२३१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ
१७	बन्धुविरोध	... बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	... २५७
१८	*गोवर्धन-धारण ...	... ,, ...	... २८९
१९	वसन्त-वियोग ...	... (पूर्ण) रायदेवीप्रसाद बी० ए० बी० एल० एम० आर० ए० एस० ३१२, ३६१, ४१८, ४७२,	५६३
२०	ग्रीष्मवर्णन	... (गोविन्द) पण्डित बालगोविन्द	... ३३३
२१	*कुरुक्षेत्र के संग्राम का परिणाम	... बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	... ३७४
२२	निन्नानवे का फेर ...	... ,, ...	... ३९७
२३	*उत्तर और बृहन्नला ...	... ,, ...	... ४२६
२४	प्रेम-सरोवर	... श्रीयुत कन्हैयालाल पोद्दार ...	... ४४५
२५	धृतराष्ट्र का द्रौपदी को वरदान	... बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	... ४६५
२६	भगवान् श्रीकृष्ण ...	... पण्डित मन्नन द्विवेदी बी० ए०	... ४७६
२७	*वीररत्न बाजीप्रभु देशपांडे ...	... बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	... ४८१
२८	*धृतराष्ट्र और सञ्जय ...	... ,, ...	... ५१९
२९	सम्बोधन	... ,, ...	... ५२९
३०	मृत्यु	... ,, ...	... ५५१

२—साहित्य-विषय।

१	सतसई-संहार ...	... पण्डित पद्मसिंह शर्मा २९, ७८, १२७, २२१, २८०, ३२७, ३७७, ४२०, ४६६, ५६० ...	
२	रामचरितमानस में भगवद्गीता	... पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी ...	... ३३
३	हिन्दी और देश-भाषा ...	... पं० शिवाधार पांडे एम० ए० एल० एल० बी०	७५
४	सावित्री का पातिव्रत ...	... श्रीयुत एम० आर० वीजावार्गी बी० ए० ...	८६
५	महाकवि सेनापति ...	... पं० गणेशविहारी मिश्र, पं० श्यामविहारी मिश्र, एम० ए०, पं० शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए०	१२२
६	भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ...	... ,, ...	... १६८
७	स्वामी दादूदयाल और उनका वृत्तान्त	... राय साहब चन्द्रिकाप्रसाद ...	... १८४
८	महात्मा सूरदास ...	... पं० गणेशविहारी मिश्र, पं० श्यामविहारी मिश्र एम० ए०, पं० शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए०	१९३
९	महाकवि केशवदासजी ...	... ,, ...	... २४१
१०	पद्माकर भट्ट ...	... ,, ...	... ३०१
११	हिन्दूकाव्य और कविकौशल	... श्रीयुत ललीप्रसाद पाण्डेय ...	... ३०७
१२	रहीम	... पं० गणेशविहारी मिश्र, पं० श्यामविहारी मिश्र एम० ए०, पं० शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए०	३३७
१३	'स्वाधीनता' की समालोचना	... पण्डित वेङ्कटेशनारायण त्रिपाठी एम० ए० ...	३६६

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Ha

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ
१४	सूदन	पं० गणेशविहारी मिश्र, पं० श्यामविहारी मिश्र, एम० ए०, पं० शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए०	३९३
१५	जयसिंहप्रकाश काव्य	पण्डित चन्द्रधरशर्म्मा गुलेरी बी० ए० ...	४११
१६	लालकवि	पं० गणेशविहारी मिश्र, पं० श्यामविहारी मिश्र, एम० ए०, पं० शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए०	४३३
१७	श्रीसमर्थ रामदासस्वामिकृत दासबोध ...	"त्रिमूर्ति" ...	४६६, ४८९
१८	मलिकमोहम्मद जायसी	पं० गणेशविहारी मिश्र, पं० श्यामविहारी मिश्र, एम० ए०, पं० शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए०	५०३

३—वैज्ञानिक विषय।

१	जलरूपी वायु	पण्डित सरयूनारायण त्रिपाठी एम० ए० एस० सी०	३७
२	मानव-रहस्य	श्रीयुक्त महेन्दुलालगर्ग ...	४५, १३८, ३१०
३	पुच्छलतारा	पण्डित सरयूनारायण त्रिपाठी एम० ए० एस० सी०	१३४
४	एटम्	,, ...	१९१
५	पक्षी और कृषि	पण्डित भोलादत्त पांडे अमेरिका ...	२०६
६	भोजन की रसायन	श्रीयुक्त महेशचरणसिंह बी० ए०, एम० एस० सी० ए० जी० आर० कारवैलिस (अमेरिका) टेक्नोकेमिस्ट (टोकियो) एम० ए० एल० एस० (लंडन) ...	२१०
७	खाद और उसका उचित व्यवहार ...	श्रीयुक्त मोहब्बतसिंह दोनवार बी० ए० ...	३१५
८	बिजली	श्रीयुक्त महेशचरणसिंह बी० ए० एम० एस० सी० ए० जी० आर० (कारवैलिस) अमेरिका टेक्नोकेमिस्ट (टोकियो) एम० ए० ...	३५१
९	आक्सिजन	पण्डित सरयूनारायण त्रिपाठी एम० ए० एस० सी०	३९९
१०	दूध से बीमारियाँ	पण्डित रामनारायण शर्म्मा एल० एम० एस० (लंडन)	४८४
११	जीवधारियों की बनावट	पण्डित काशीदत्त पांडे बी० एस० सी० ...	५१६

४—आध्यात्मिक विषय।

१	गीता का मर्म	पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० तथा पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० ...	८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ
२	धर्म	पण्डित बदरीदत्तशर्म्मा ...	... २९१
३	मुक्ति की प्राप्ति और आर्थिक स्वतंत्रता ...	श्रीयुक्त सत्यदेव (अमेरिका)	... ३२२
४	कर्म्मयोग	पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री	... ३५४

५—जीवन-चरित।

१	*मोहनदासकरमचन्द गाँधी	पण्डित प्यारेलालमिश्र एम० आर० ए० एस० वैरिस्टर एट—ला (लंडन)	... ५३
२	*माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय ...	सम्पादक	... ५५
३	*महाराजा श्रीयशवंतसिंह	लेफ्टनन्ट कर्नल अमरसिंह ए० डी० सी०	... ७१
४	*श्रीसमर्थ स्वामी रामदास	"त्रिमूर्ति"	१०२, २३२, ४४९
५	*श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त	सम्पादक	... २३२
६	श्रीविद्यारण्य स्वामी	श्रीयुत युगलकिशोर अखौरी बी० ए० बी० एल० ...	... २५९
७	*महामहोपाध्याय डाक्टर गङ्गानाथ झा ...	पण्डित रामभद्र ओझा बी० ए०, एल० एल० बी ...	... २७३
८	*श्रीयुत भोलादत्तपांडे	श्रीयुत सत्यदेव (अमेरिका)	... ४५६

६—स्थान, नगरादिकों का वर्णन।

१	*एलास्का की प्रदर्शिनी	श्रीयुत सत्यदेव (अमेरिका)	... १९
२	*नील	श्री मङ्गलानन्दपुरी अफ़्रीक़ा ...	... ११७
३	लंका	,, ...	... ३००
४	महाराज एडवर्ड की अन्तिम यात्रा ...	"एस", "एस" (मेञ्चस्टर) ...	... ३१९
५	*पर्वत-यात्रा	"यात्री"	... ३२४
६	*महाराज सप्तम एडवर्ड का स्वर्गवास ...	पण्डित प्यारेलाल मिश्र, एम० आर० एस० एस० (लंदन) ...	... ३४०
७	*लन्दन से स्काटलैंड	,, ...	... ३८५
८	*हिन्दू-विधवाश्रम	"दर्शक"	... ४३८
९	*केम्ब्रिज विश्वविद्यालय	पण्डित प्यारेलाल मिश्र एम० आर० ए० एस० बैरिस्टर एट—ला (लंदन) ...	... ४४२
१०	श्रीरामेश्वरधाम	श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल बी० ए० (आक्सफ़र्ड) एम० आर० ए० एस० बैरिस्टर एट—ला ...	... ५३५
११	*प्रयाग की प्रदर्शिनी	पण्डित रामजीलाल शर्म्मा ...	... ५६९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७—ऐतिहासिक विषय।

नम्बर	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ
१	भगवान् बुद्धदेव	पण्डित वेङ्कटेशनारायण त्रिपाठी एम० ए०	४०, ६९, २१२
२	महाराष्ट्रीय उपदेशक	त्रिमूर्त्ति	५९
३	नैपाल	श्रीमती कल्याणेश्वरी जुत्शी ...	२२८
४	गुहिलोत	श्रीयुत देवदत्त रामकृष्ण भाण्डारकर एम० ए०	२६७, २९५
५	राजा टोडरमल	पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी	४०१
६	गुहिलोत	श्रीयुत मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या एम० बी० एस० सी० ...	४०९
७	सिद्धराज जयसिंह का एक अपूर्व न्याय ...	मुंशी देवीप्रसाद	४६४
८	आबू और मारवाड़ के परमार ...	पण्डित रामकर्ण ...	५०७, ५४३

८—शिक्षा-विषय।

१	समाज की उन्नति	महामहोपाध्याय प्रोफ़ेसर गङ्गानाथ झा एम० ए० डाक्टर आफ़ लिटरेचर ...	१०१
२	संस्कृत के ग्रन्थ	पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री ...	१४०
३	*अमेरिका में कृषिविद्या की उन्नति ...	पण्डित भोलादत्त पांडे (अमेरिका) ...	१६१
४	सेवा	श्रीयुत नारायणप्रसाद अरोड़ा बी० ए० ...	२७७
५	स्त्रियों की स्वतन्त्रता	श्रीमती सावित्री देवी	२७९
६	योरप के और हमारे विचार ...	श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल बी० ए० (आक्सफ़र्ड), एम० आर० ए० एस० बैरिस्टर-एट-ला	४८३
७	विद्या-विवाद	पं० श्यामविहारी मिश्र एम० ए०, पं० शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए० ...	५३२

९—औद्योगिक विषय।

१	देश का व्यवसाय	पं० रामनारायण शर्म्मा, एल० एम० एस० (लंदन)	५३७
२	धन और उसका उपयोग	श्रीयुत पुरुषोत्तदास टण्डन, एम०ए०एल०एल०बी०	५५४

१०—फुटकर विषय।

१	परमावश्यक प्रार्थना	श्रीमान् पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ...	१
२	प्रकाशक का निवेदन	प्रकाशक, सरस्वती	३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ
३	विविध विषय	सम्पादक ४, ४९, ९७, १४५, २३७, २८५, ३३३, ३८०, ४२८, ४७७, ५२६, ५७३	
४	मंगलग्रह के निवासियों से बात-चीत की सम्भावना,	श्रीयुक्त गंगोत्तरीप्रसादसिंह बी० ए० ...	३२
५	*चित्रदर्शन	सम्पादक ... ४७, ९६, १४४, २३४, ५७५	
६	साहित्य-सम्बन्धीय डाँका	राजा कमलानन्दसिंह	९३
७	पुस्तक-परीक्षा	सम्पादक ... ८४, १४४, १९२, ५७४	
८	अन्योक्तियों की कुंजी	सम्पादक	९५
९	उपहार मिलेगा	श्रीयुत सत्यदेव अमेरिका	१३२
१०	भूल-सुधार	पण्डित त्रिलोचन झा	१४३
११	निवेदन	श्रीयुत सत्यदेव (अमेरिका) ...	२४०
१२	श्वेताश्वतरहस्य	श्रीमान् राजा पृथ्वीपालसिंह, एफ़० टी० एस०, एम० ए० एस० बी० ...	२६७
१३	प्राचीन और अर्वाचीन संगीत	प्रोफ़ेसर नानकप्रसाद बी० ए० ...	३६२
१४	मनोरञ्जक श्लोक	पाण्डेय भगवतीप्रसाद ...	३८४, ५७४
१५	अमेरिका-भ्रमण	श्रीयुत सत्यदेव (अमेरीका) ...	४२४
१६	श्रीमद्भागवत और रामचरितमानस ...	पण्डित श्रीकृष्ण शास्त्री तैलङ्ग ...	४७५
१७	मनोरञ्जक श्लोक	पण्डित भगवतीप्रसाद पाण्डेय ...	४७७
१८	अमेरिका-सम्बन्धी सूचनायें	श्रीयुत सत्यदेव (अमेरिका) ...	४९७
१९	मनोरञ्जक श्लोक	पण्डित चन्द्रधरशर्म्मा गुलेरी बी० ए० ...	५२५
२०	तातार और एक वीर राजपूत ...	श्रीयुत वृन्दावनलाल वर्म्मा ...	४५९
२१	राष्ट्रों का पारस्परिक व्यवहार ...	पण्डित आनन्दीप्रसाद दुबे बी० ए० बी० सी० एल० (आक्सफ़ोर्ड) बैरिस्टर एट—ला	५६७
२२	साबुन	प्रोफ़ेसर हरनारायण एम० ए० ...	५५३
२३	निवेदन	सम्पादक	५७६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-संख्या।

नम्बर	विषय	संख्या
१	कवितायें	३०
२	साहित्य-विषय	१८
३	वैज्ञानिक विषय	११
४	आध्यात्मिक विषय	४
५	जीवन-चरित	८
६	स्थान-नगरादिकों का वर्णन	११
७	ऐतिहासिक विषय	८
८	शिक्षा-विषय	७
९	औद्योगिक विषय	२
१०	फुटकर विषय	२३
	कुल लेख-संख्या	१२२

चित्र-संख्या।

महीना	हाफ़टोन	रंगीन
जनवरी ...	११	१
फ़रवरी ...	६	१
मार्च	९	१
एप्रिल	५	१
मई	६	१
जून	६	१
जुलाई	१२	१
अगस्त	८	१
सेप्टेम्बर ...	८	१
अक्टूबर ...	१०	०
नवम्बर ...	९	१
दिसम्बर ...	१६	१
	कुल १०६	११

—:०:—

Printed and Published by Panch Kory Mittra at the "Indian Press," Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

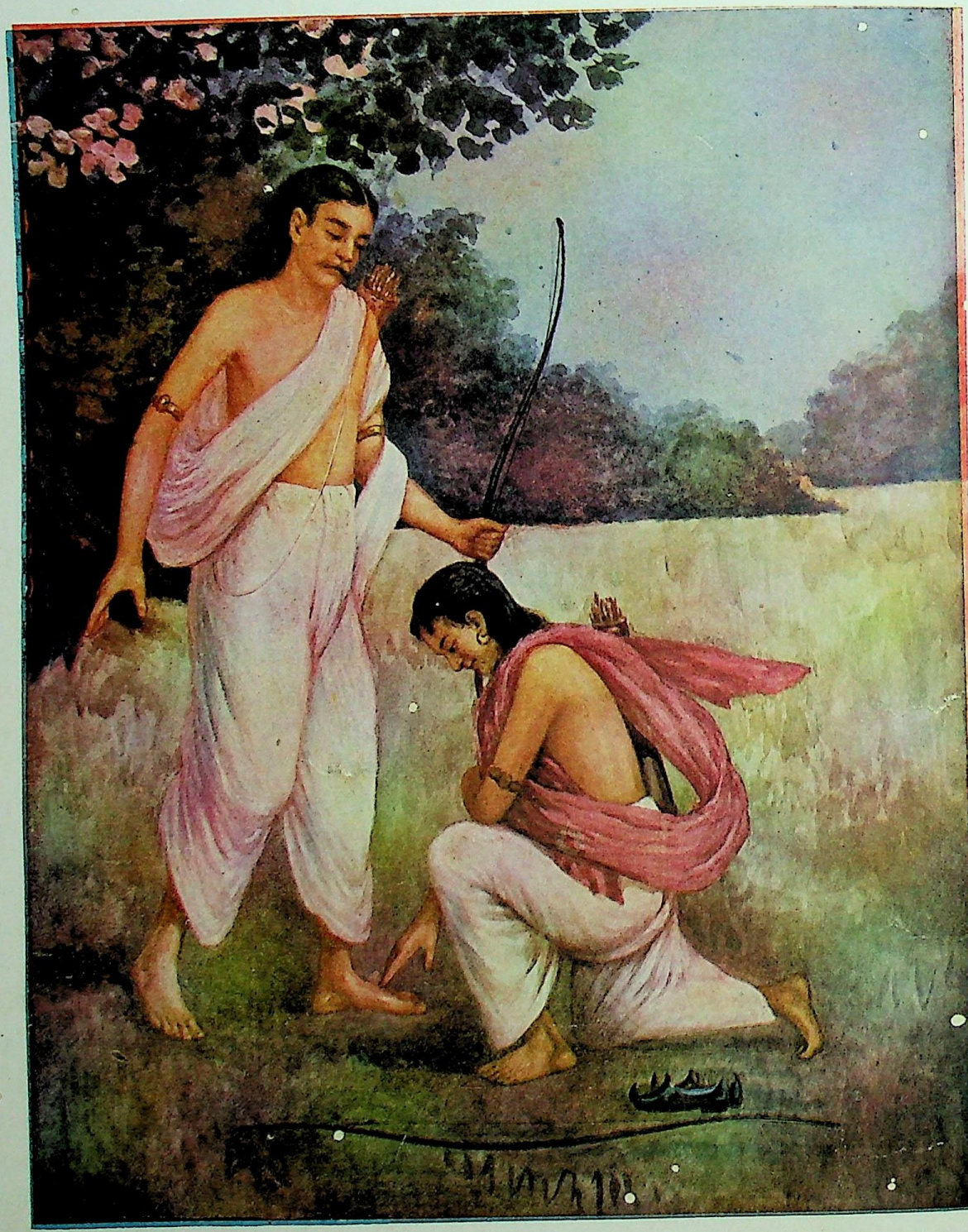

द्रोणाचार्य और एकलव्य।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्कण्ठिता।

श्रीनगर, गढ़वाल निवासी मोलाराम कृत

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

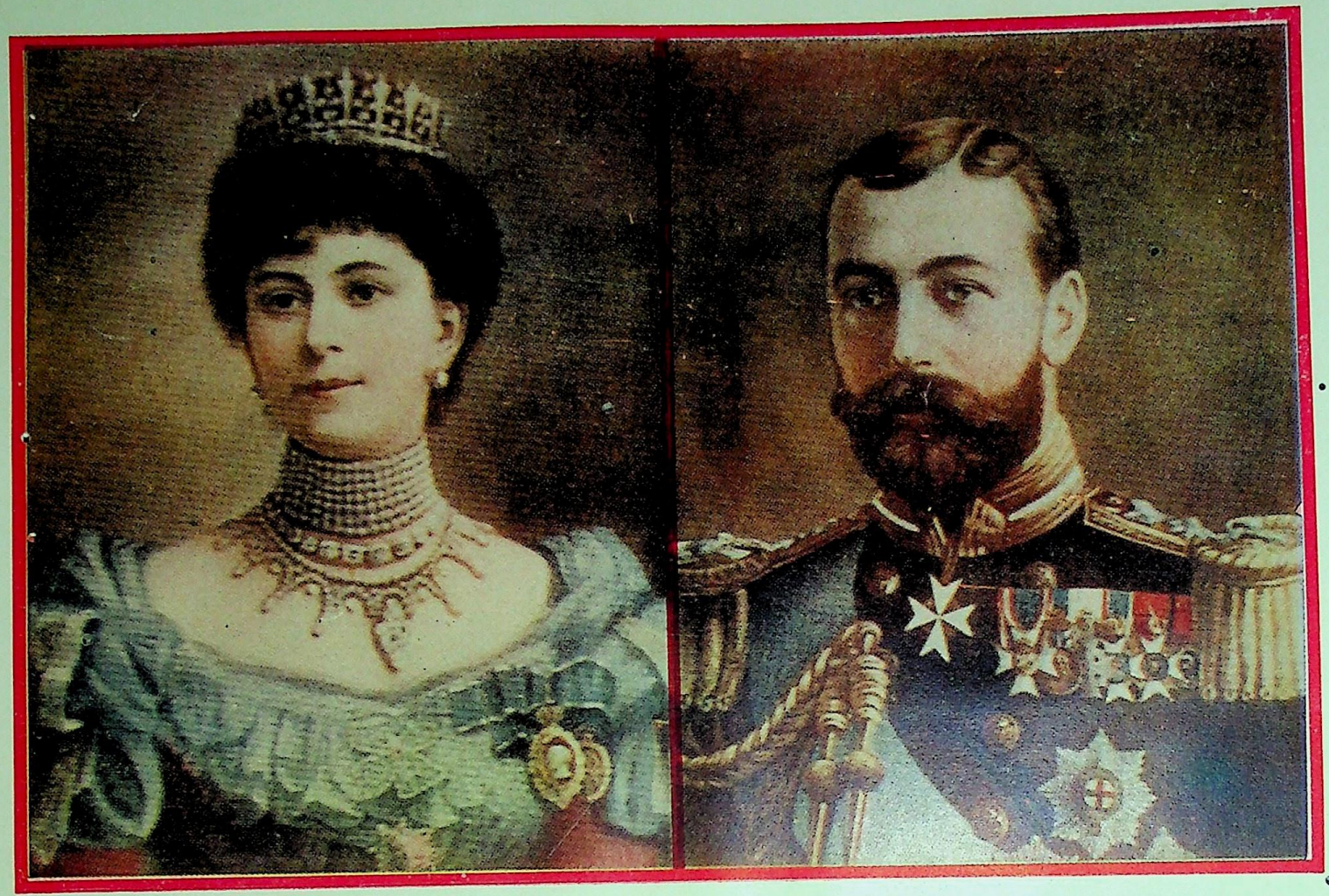

महारानी मेरी और महाराज पंचम जार्ज ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

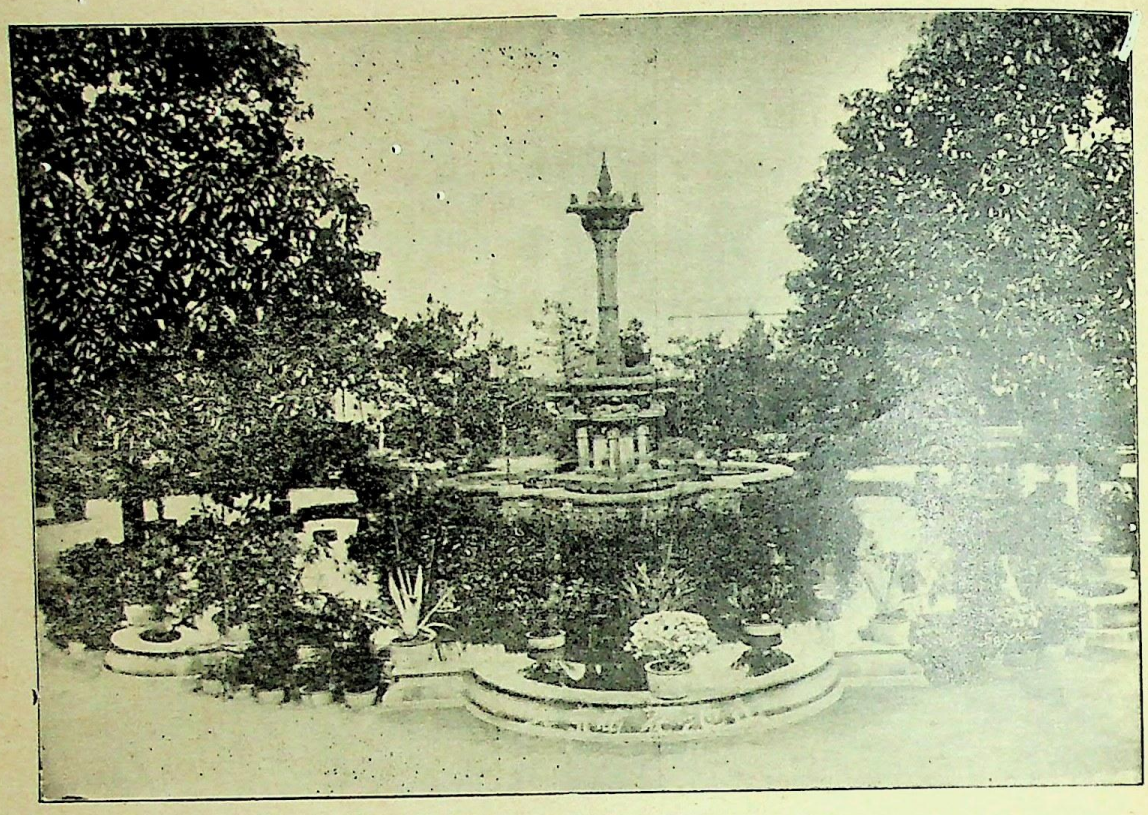

चीफ़ महल का बाग़ ।

चीन की पुलिस ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

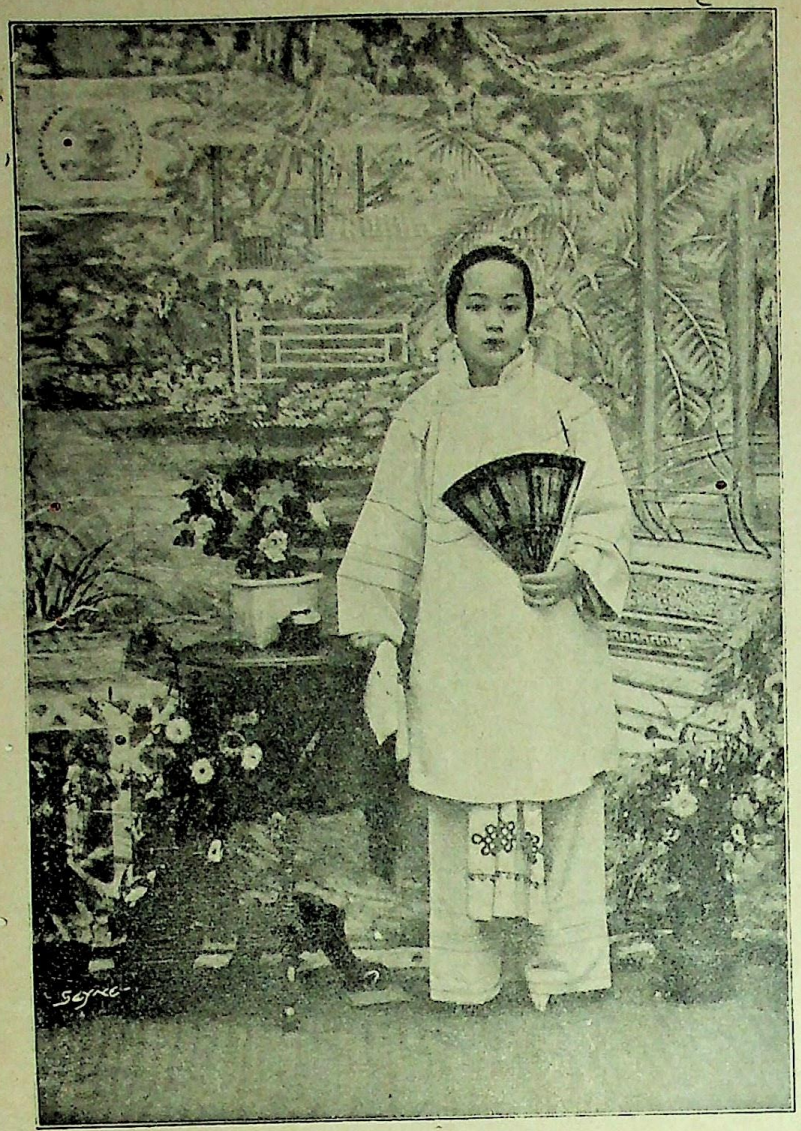

उत्तरीय चीन की एक लड़की।

पर्दानशीन।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर्मियों का मेला।

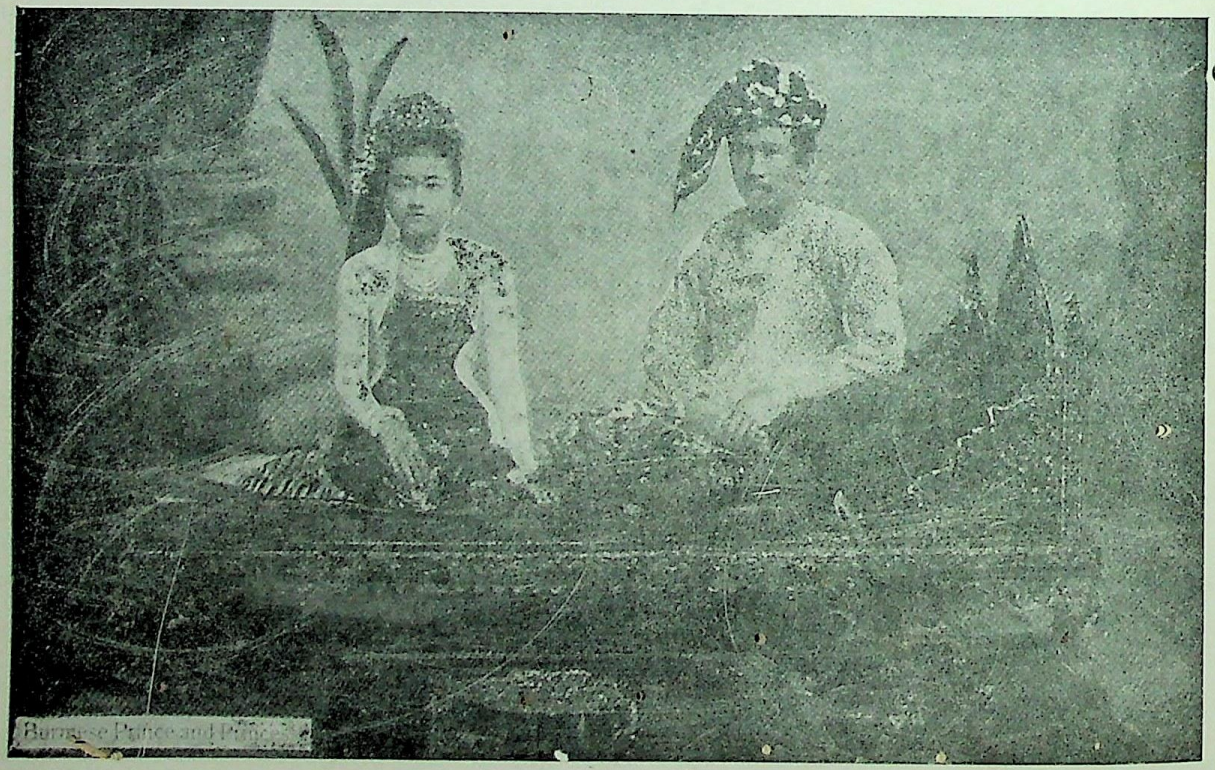

बर्मा का राजा और रानी।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

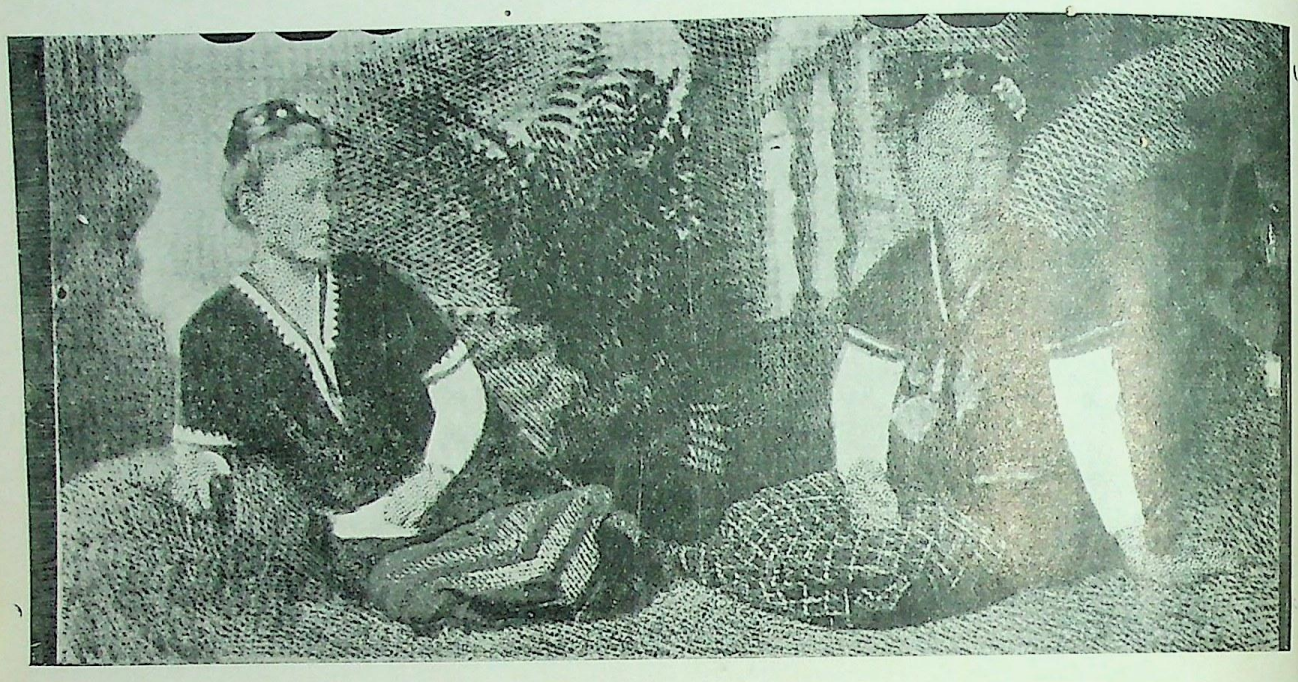

केरननिवासिनी कन्यायें ।

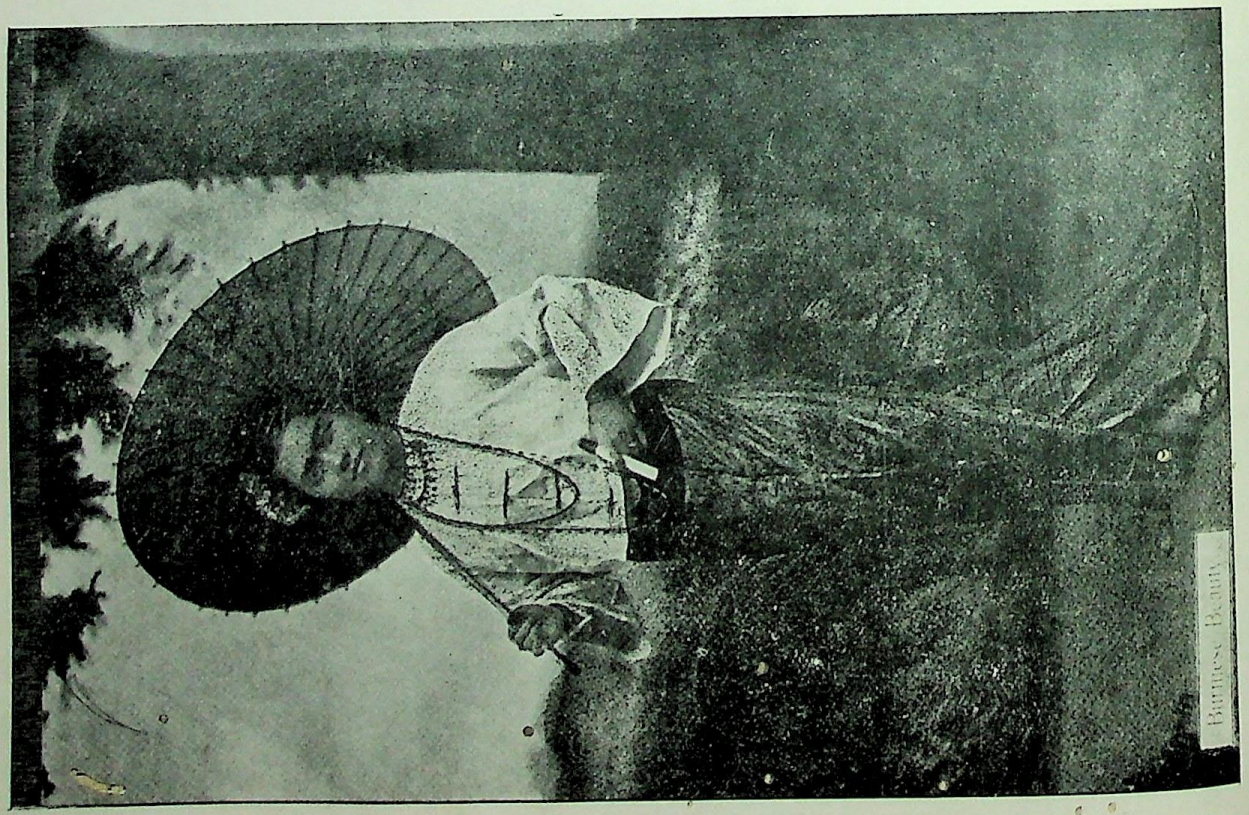

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गवासी महाराज सप्तम एडवर्ड ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिज़ हाइनेस महाराजाधिराज जनरल सर प्रतापसिंह,
जी० सी० एस० आई०, सी० वी०, ईडर-नरेश ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गवासी खेतड़ी-नरेश ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय राजा कमलानन्दसिंह ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं० सर०
आगत सं० ११(१)
तिथि०
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगड़ी.

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग ११] १ जनवरी, १९१० । पौष कृष्ण ६, १९६६ । [संख्या १

परमावश्यक प्रार्थना ।

कुछ समय के लिए सरस्वती से छुट्टी ।

जो लोग औरों की नौकरी करते हैं उन्हें कभी कभी, आवश्यकता के अनुसार, थोड़ी बहुत छुट्टी भी लेनी पड़ती है । इसके सिवा तिथि-त्योहार और रविवार आदि की भी उन्हें छुट्टी मिलती है । जो लोग सरकारी दफ़्तरों में काम करते हैं उन्हें तो साल में दो तीन दफ़े आठ आठ दस दस दिन की छुट्टी एकही साथ बिना माँगे मिल जाती है । सरकारी कचहरियाँ तो कभी कभी महीने महीने भर के लिए बन्द हो जाती हैं । तिस पर भी—इतनी छुट्टियाँ देने पर भी—सरकार अपने मुलाज़िमों को साल में एक महीने की आरियतन छुट्टी देती है । इतनाहीं नहीं, ज़रूरत पड़ने पर, वह दस दिन की और भी छुट्टी देती है ।

हमें सरस्वती का सम्पादन करते आज पूरे सात साल हो गये । पर हमने एक दिन की भी छुट्टी सरस्वती से नहीं ली । हिन्दी के साप्ताहिक पत्र तो साल में दिवाली-दशहरे पर हफ़्ते दो हफ़्ते की छुट्टी ले भी लेते हैं; पर सरस्वती का काम बराबर एक सा जारी रहता है । जो लोग दूसरों का काम करते हैं वे कभी कभी, अनिवार्य्य कारणों से, अपने काम पर देरी से भी पहुँचते हैं । परन्तु सरस्वती ने निवार्य्य अथवा अनिवार्य्य, किसी भी कारण से, गत सात वर्षों में, एक दफ़े के सिवा कभी अपने पाठकों के पास पहुँचने में देरी नहीं की । इससे हमारा यह मतलब नहीं कि सरस्वती ने किसी पर कुछ एहसान किया । नहीं, जिस बात को उसने अपना कर्तव्य समझ रक्खा है—जिस बात को वह अपना धर्म्म समझती है—उसे करने में हीं उसने अपनी कृतार्थता मानी है । मासिक पुस्तकों का कर्तव्य है कि वे यथा-समय निकलें । इस कर्तव्य को सदा सामने रखकर जिस महीने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती होती है उसी महीने—कुछ समय से महीने के आरम्भही में—वह निकल जाया करती है। इस तरह सरस्वती को नियमपूर्वक पाठकों के पास यथासमय पहुँचाते हमें, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, सात वर्ष हुए। अब हमें सरस्वती से कुछ समय के लिए छुट्टी लेने की ज़रूरत हुई है;

हर महीने सरस्वती के चालीस पचास पृष्ठों के लिए हमें जूही के मैदान में रहकर मज़मून लिखना और एकत्र करना पड़ता है। चित्र भी उसके लिए ढूँढ ढूँढकर मँगाने पड़ते हैं। जो विद्वान् हैं, जो प्रभावशाली हैं, जिनके मित्र और परिचित जन दूर दूर तक बड़े बड़े शहरों में पाये जाते हैं, जिनके एक दफ़े कहने मात्र से अच्छे अच्छे लेखक बड़ी ख़ुशी से लेख भेजते हैं उनके लिए किसी मासिक पुस्तक का निकालना एक सहज सा काम हो सकता है। परन्तु अभाग्यवश इनमें से एक भी बात हममें नहीं। अतएव हर महीने सरस्वती को समय पर निकालना हमारे लिए बड़े परिश्रम और बड़ी जाँफिशानी का काम है! यह बात वही लोग अच्छी तरह समझ सकेंगे जिन्होंने हिन्दी के सदृश अनुन्नत भाषा में पचास साठ पृष्ठ की मासिक पुस्तक निकालने का श्रम, अथवा यों कहिए कि साहस, कभी किया होगा। फिर एक बात और भी है। सरस्वती-सम्पादन के सिवा गत कई वर्षों में हमें चार पाँच बड़ी बड़ी पुस्तकें भी लिखनी पड़ीं। उनके नाम और विषय आदि का उल्लेख सरस्वती में यथासमय हो चुका है। ये पुस्तकें भली हैं या बुरी, इस विचार की यहाँ पर ज़रूरत नहीं। कहने का मतलब सिर्फ़ इतनाही है कि इन पुस्तकों के लिखने में भी हमें बहुत परिश्रम पड़ा। हमने अनजान में अपनी शारीरिक शक्ति से बाहर काम किया। प्रकृति बड़ीही कठोर न्यायाधीश है। उसके नियम का उल्लंघन हुआ कि दण्ड मिला। रहम करना—दया दिखाना—वह जानती ही नहीं। उसने जान अनजानपने की ज़रा भी परवा न करके हमें उचित दण्ड दे दिया। हमें आज दो वर्ष से उन्निद्र रोग हो गया है। कभी कुछ कम हो जाता है, कभी बढ़ जाता है। किसी दिन घंटे दो घंटे नींद आजाती है, किसी दिन बिलकुलही नहीं आती। इस दशा में साहित्य-सम्बन्धी सारा काम छोड़कर हमारे लिए विश्राम की बड़ी ज़रूरत है। अतएव हमने कुछ समय के लिए सरस्वती से छुट्टी ले ली है।

हमारी अनुपस्थिति में सरस्वती का सम्पादन-कार्य्य एक ऐसे विद्वान् ने करना स्वीकार किया है जो अँगरेज़ी भाषा के आचार्य्य होकर संस्कृत भी अच्छी जानते हैं। उर्दू में भी आपकी यथेष्ट गति है। हिन्दी के विषय में तो कुछ कहने की ज़रूरतही नहीं। जिन्होंने आपके सम्पादन-समय में "कान्य-कुब्ज" मासिक पत्र को पढ़ा होगा वे जानते होंगे कि उस समय किस योग्यता से वह सम्पादित होता था। आपके कई एक महत्त्व-पूर्ण लेख सरस्वती में भी निकल चुके हैं। दो लेख अभी पिछली दो संख्याओं में प्रकाशित हुए हैं। आप यहाँ कानपूर के स्थानीय कालेज में प्रोफ़ेसर हैं। ऐसे योग्य और विद्वान् सम्पादक के हाथ में जाकर सरस्वती के बहुत कुछ उन्नत हो जाने की आशा है। अतएव सरस्वती के प्रेमी पाठकों को विश्वास रखना चाहिए कि, अगले साल, उनके मनोरञ्जन की विशेष वृद्धि करने और उन्हें नये नये तथा उपकारी लेखों से अधिक लाभ पहुँचाने का पूरा पूरा प्रबन्ध किया गया है। यह बात सरस्वती की कुछही आगामिनी संख्यायें देखने से प्रमाणित हो जायगी। आशा है, अगले साल चित्र भी विशेष अच्छे निकलेंगे। रंगीन चित्रों की संख्या बढ़ाने की भी चेष्टा की जायगी।

अब से सरस्वती में प्रकाशित होने के लिए लेख, सम्पादकीय कार्य्य से सम्बन्ध रखनेवाली चिट्ठियाँ, समालोचना के लिए पुस्तकें और बदले के समाचारपत्र आदि—

पण्डित देवीप्रसाद जी शुक्ल, बी ए०,
कुर्सवाँ, कानपुर

को भेजे जाने चाहिए। आपही कुछ समय के लिए सरस्वती का सम्पादन करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो महाशय आज तक सरस्वती में लिखते रहे हैं वे, आशा है, अब भी उसे अपनी कृपा का पात्र बनाये रक्खेंगे और अपने लेखों द्वारा उसके कलेवर को पुष्ट करते रहेंगे।

जिनसे हमारा पत्रव्यवहार है उनके और अन्य सज्जनों के भी किसी पत्र का यदि हम भविष्यत् में उत्तर न दे सकें तो उसका कारण हमारी असमर्थता समझी जाय, और कुछ नहीं।

अन्त में हम अपने कृपालु पाठकों, ग्राहकों और सहायकों से प्रार्थना करते हैं कि गत सात वर्षों में यदि हमसे ज्ञानतः अथवा अज्ञानतः कोई भूल हो गई हो, किंवा यदि हमने अपने किसी कार्य्य से उन्हें खेद पहुँचाया या अप्रसन्न किया हो, तो वे उदारतापूर्वक हमें तदर्थ क्षमा करें। शरीर का कुछ ठिकाना नहीं। सम्भव है, हमारा यह लेख आख़िरी हो और फिर कभी उनसे इस तरह लेख-द्वारा मिलने का मौक़ा न मिले :—

उद्घाटितनवद्वारे पञ्जरे विहगोऽनिलः।
यत्तिष्ठति तदाश्चर्य्यं प्रयाणे विस्मयः कुतः॥

झुही, कानपुर,
३१ दिसम्बर १९०९ } महावीरप्रसाद द्विवेदी।

प्रकाशक का निवेदन।

इसी महीने से "अदीब" नाम का एक मासिक पत्र इस प्रेस से उर्दू में निकलनेवाला है। इसका विज्ञापन सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है। उसे पढ़ कर कुछ सज्जनों ने अप्रसन्नता प्रकट की है। उनका ख़याल है कि इस नये पत्र के कारण सरस्वती की उन्नति में बाधा आवेगी। परन्तु हम विश्वास दिलाते हैं कि उनका यह भय सर्वथा निर्मूल और भ्रमात्मक है।

कुछ महामहिम महाशयों ने "अदीब" निकालने के हमारे विचार का घोर विरोध किया है। उन्होंने जो विरोधात्मक लेख लिखे हैं उनको हमने अच्छी तरह पढ़ा और उन पर विचार भी किया। पर लेखक महोदयों ने जिन दलीलों से काम लिया है वे प्रायः निःसार हैं। आशा है, पाठक हमारे इस किञ्चित् कठोर वाक्य के लिए हमें क्षमा करेंगे। हम पूछते हैं कि जो लोग सिर्फ़ उर्दू जानते हैं—जो लोग सिर्फ़ फ़ारसी अक्षरों से परिचित हैं—उनको यदि कोई उस भाषा और उन अक्षरों में अच्छे अच्छे लेख सुलभ करा देने की चेष्टा करे और तद् द्वारा उनकी ज्ञान-वृद्धि में सहायता पहुँचावे तो वैसा करने से उसे रोकना किस शास्त्र, किस स्मृति, किस नीति-ग्रन्थ के अनुसार पुण्य का कार्य्य समझा जा सकता है? संस्कृत में अनन्त ज्ञान-रत्नों का भाण्डार भरा पड़ा है। उसे कितनेहीं विद्वान् अँगरेज़ी जाननेवालों के लिए उस भाषा में परिवर्तित कर रहे हैं। "अदीब" का विरोध करनेवालों की दृष्टि में क्या ये सब पापात्मा, मन्दबुद्धि और देश के दुश्मन हैं? इन प्रान्तों में कितनेहीं पुरुष ऐसे हैं जो संस्कृत और हिन्दी को बड़ी ही पूज्य दृष्टि से देखते हैं। इतनाही नहीं वे अपनी अँगरेज़ी-वक्तृताओं तक में हिन्दी और संस्कृत के शास्त्रीय वचनों को उद्धृत करके अपने हिन्दी और संस्कृत के प्रेम को प्रकट भी करते हैं। परन्तु लाट मेकडानल की आज्ञा से न्यायालयों में हिन्दी का प्रवेश हो जाने पर भी पूर्वोक्त सज्जनों में से जो वकील हैं वे अब तक भी उर्दूदाँ मुहर्रिर रखने से बाज़ नहीं आते। उनका न्यायालय-सम्बन्धी काम अब तक भी बराबर उर्दूही में हो रहा है। "अदीब" के प्रकाशकों पर परुष-वाक्य-रूपी पत्थर बरसानेवाले क्यों नहीं इन लोगों को अपने अभिमत पथ पर लाने का यत्न करते? इन्होंने तो देशोद्धार और मातृभाषोद्धार दोनों के लिए खुल्लम खुल्ला बीड़ा उठाया है। बात यह है कि अपनी सुविधा या असुविधा और अपना हानि-लाभ अपनेही को अच्छी तरह समझ पड़ता है, तटस्थ समालोचकों और लेखकों को नहीं। ख़ैर, हम इस विषय में और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं समझते। अदीब के जारी होने से सरस्वती के सम्बन्ध में किसी प्रकार की बाधा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने या उसके उन्नति-मार्ग में अवरोध उपस्थित होने के बदले उलटा उसकी भविष्यमाण उत्तरोत्तर उन्नति में वृद्धि ही होने की संभावना, नहीं पूर्ण आशा, है। हम क्यों ऐसा कहते हैं, इसके बतलाने की यहाँ पर आवश्यकता नहीं।

हम अपने कथन की सत्यता ग्राहकों को शीघ्र ही कार्य्य-द्वारा प्रमाणित करके दिखलाने का यथा-शक्ति प्रयत्न करेंगे। हाँ, इतना हम अवश्य निवेदन किये रखते हैं कि इस साल सरस्वती में कितने ही नये नये और बड़े ही महत्त्व-पूर्ण चित्र निकलेंगे। प्रबन्ध ऐसा किया गया है कि जहाँ तक हो सके, हर संख्या में एक रंगीन चित्र प्रकाशित किया जाय और उस पर सरस्वती के सिद्ध कवि बाबू मैथिली-शरणजी गुप्त की रसवती, मनोहारिणी और ओज-स्विनी कविता पाठकों को भेंट की जाय। यह ऐसी बात होगी जो एक आध बँगला मासिक पुस्तक को छोड़ कर इस देश की अन्य किसी भाषा की किसी मासिक पुस्तक में आज तक नहीं देखी गई। इसके सिवा कई एक ऐसे विद्वान्, लब्ध-प्रतिष्ठ और सुलेखक महाशयों के बहुत ही उपयोगी और मननयोग्य लेख प्रकाशित करने की भी चेष्टा की जायगी जिनके लेख अन्य किसी मासिक पुस्तक में पाठकों ने शायदही कभी पढ़ा हो। आशा है, इस समय हमारी इतनीहीं कैफ़ियत इस विषय में काफ़ी समझी जायगी।

प्रकाशक, सरस्वती, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

विविध विषय।

१—व्योम-यान।

छः या सात बरस पहले व्योमयानों का ज़िक्र तक करना अपनी हँसी कराना था। व्योम-विहरण की कथायें लोगों को असम्भव सी मालूम होती थीं। थोड़ेही अरसे में देखिए पाश्चात्य देशों ने क्या से क्या कर दिखाया। अब जिधर देखिए, व्योमयानों ही का यश गाया जा रहा है। अख़बारों के पढ़नेवाले टकटकी लगाये बैठे रहते हैं कि देखें आगमि अङ्क में व्योमयानों के सम्बन्ध में क्या नई बात सुनने में आती है। यूरपवाले भी जिस काम को ले बैठे उसे बिना अन्त तक पहुँचाये छोड़ते ही नहीं—हताश होना जानते ही नहीं। व्योमयानों ही को लीजिए। उड़ते उड़ते कितने ही लोग नीचे टपक पड़े और चल बसे। व्योमयान ही आकाश में टूट गया। हवा के झकोरों से स्थल के ऊपर से जल के ऊपर जा पहुँचे। पर इन निडर वीरों ने मैदान न छोड़ा। उस दिन का ज़िक्र है कि 'रिपब्लिक' नामक व्योमयान के टूटने से कई प्रसिद्ध फ़्रेंच व्योमयानों में उड़नेवाले मर गये। पर, दूसरे उड़नेवालों के चित्त में ज़रा घबराहट न आई। जिस भूल से एक के प्राण गये दूसरा उससे सम्हल गया। इँगलैंड में लंडन से मंचैस्टर क़रीब १९७ मील है। कर्नल काडी जो ६६ मिनट में ४० मील की रफ़्तार से उड़ चुके हैं लंडन से मंचैस्टर ख़ास ख़ास स्थानों के ऊपर होते हुए आकाश-मार्ग से व्योम-यान-द्वारा पहुँचेंगे। १०००० पाउंड यानी १५०००० रुपये इनाम रक्खे गये हैं। इसी तरह के साहस अन्यान्य देशों में भी हो रहे हैं। व्योम-यानों की दौड़ होती है। बाजी लगती है कि कौन कितनी दूर आसमान में चढ़ता है और कितना तेज़ भागता है। सौ सौ मील तक की तो दौड़ हो चुकी। लोग हज़ार हज़ार फ़ीट ऊँचे और घंटे में ६० मील के हिसाब से उड़ चुके। लेकिन अभी संतोष कहाँ? ऐसे जुटे हैं कि मानों अपने अपने व्योमयान को पुष्पक-विमान बनाये बिना न छोड़ेंगे।

व्योम-यानों के कारख़ाने।

व्योमयानों के कारख़ाने भी खुल गये। होड़ लगी है कि कौन कितना सस्ता और बढ़िया व्योमयान तैयार करे। थोड़े ही दिनों में व्योमयान मोटर-गाड़ियों से सस्ते बिकने लगेंगे। फ़्राँस का एक कारख़ाना ब्लीरियो नामक व्योमयान को केवल ४०० पाउंड यानी ६००० छः हज़ार रुपयों में ही बनाने को तैयार है। लैथम अन्टोनाइट के १५००० रु०, वाइसन के ७२० रु० और राइट के १८००० रु० दाम माँगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभागों में भी परिवर्तन हो जाय। जो स्थान पहले सुरक्षित और दुर्गम थे कालान्तर में वेही जलयानों के कारण अरक्षित और सुगम हो गये। इसी तरह जिन स्थानों को जलयानों ने सुरक्षित कर रक्खा है क्या आश्चर्य्य यदि व्योमयान उन्हें निर्बल और अरक्षित कर दें।

२—दूध दुहने की नई तर्कीब।

सङ्गीत मनुष्यों ही को नहीं किन्तु पशुओं को भी मुग्ध कर लेता है। यह बात हम लोग सदैव से सुनते और देखते चले आ रहे हैं। मिसेज़ हावी नाम की एक गौराङ्ग रमणी ने पशुओं के सङ्गीत-प्रेम से भी एक मतलब निकाल लिया। जिस समय मिसेज़ हावी की गायें दुही जाती हैं उस समय आप बड़े मधुर स्वर से बाजा बजाती हैं। उनका अनुभव है कि इस तरह गायें दूध ज़्यादा और अच्छा देती हैं। अमेरिका के एक दूसरे डेरीफ़ार्म में दूध दुहने की एक और तर्कीब निकाली गई है। रबर का एक ऐसा यंत्र तैयार किया गया है जिसके पम्प एक ओर थनों में लगा दिये जाते हैं और दूसरी ओर बर्तन में। दूध बहुत स्वच्छ और नाप में ज़्यादा बर्तन में आपसे आप पहुँच जाता है। पशु को भी कोई तकलीफ़ नहीं होती।

३—*श्रीराधा और कृष्ण के चित्र के बनने का समय।

"श्रीराधा और कृष्ण का चित्र जो सरस्वती के भाग १० सं० ४ में छपा है वह टाड राजस्थान में भी छपा है। इस विषय में मुंशी देवीप्रसादजी ने चित्र-चिन्तवन नाम का एक लेख सरस्वती के भाग १० संख्या ११ में छपवाया है। इस पर मुझे भी कुछ निवेदन करना है, यह चित्र टाड्स राजस्थान के प्राचीन एडीशन में, जिसका मूल्य १५०) रुपया है, छपा था। यह तो हमें मालूम नहीं कि करनेल टाड को यह चित्र किस प्रकार प्राप्त हुआ, पर प्रसिद्ध चित्रकार राजा रविवर्मा का उदयपुर आगमन, सन् १९०१ में, हुआ था और क़रीब ६ मास के वे यहाँ रहे भी थे। यहाँ पर राज्य में उन्होंने ५ चित्र श्रीमान् उदयपुराधीश की आज्ञा से महाराणा प्रतापसिंह, अमरसिंह, राजसिंह, जयसिंह और म० फ़तहसिंह के बनाये, जो अब तक राज-भवन की दीवारों पर लगे हुए हैं और राजा रविवर्मा की कुशलता का परिचय दे रहे हैं। राजा रविवर्मा से मेरी मैत्री हो गई क्योंकि वे यहाँ मेरे ही द्वारा बुलाये गये थे। संयोगवश यह चित्र उन्होंने टाड राज-स्थान में देखा। उनको चित्र पसंद आया और उन्होंने उस चित्र की तसवीर तेल के रंग में रंगीन बनाई और बतौर यादगार के मुझको दी जो मेरे मकान में लगी हुई है। चित्र अत्यन्त उत्तम है। इस चित्र के विषय में राजा रविवर्मा ने १ श्लोक स्वयं बनाया था जिसे मैं नीचे लिखता हूँ। उससे यह भी प्रकट हो जायगा कि राजा रविवर्मा केवल चित्रकारही न थे किन्तु संस्कृत-श्लोकों की रचना भी कर सकते थे।

लीलातामरसं त्वयार्पितमहं गृह्णामि राधे कथं
प्रीत्या यत् स्मरशायकः खलु बलादद्यैव मां बाधते।
को वा वाञ्छति भीषणं विषधरं धृत्वा करे क्रीडितुं
तस्मात् प्रेयसि देहि तावकमुखाम्भोजं मया काङ्क्षितम्॥

इसी श्लोक पर यहाँ के कविवर फ़तहकरनजी ने जो एक सवैया बनाया है वह यह है:—

खेलन को मुहि अंबुज देत
गहों किन राधे कहों चितलैनी।
मनमथ-सायक ये दुखदायक
बाधत हैं अबही सुखदैनी।
क्रीड़न को कर में करभोरु
भुजंगम चाहत की पिकबैनी
प्रेयसि ताहिते माँगत हों
तव देहु मुखांबुज अंबुजनैनी॥१॥

* श्रीयुक्त फतहलाल महता, उदयपुर (राजपुताना) से लिखते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—सतसई-संहार।

सरस्वती से बाज़ बाज़ लोग नाराज़ हो जाते हैं और उलहना देते हैं कि वह पुस्तकों की कड़ी समालोचनायें क्यों करती है। उनका कथन है कि समालोचना ही करनी है तो मीठे मीठे वाक्यों में 'किन्तु' 'परन्तु' लगाकर इस ढंग से बात कही जाय कि लेखक को ज़रा भी बुरा न मालूम हो। ऐसे सज्जनों को पण्डित पद्मसिंह शर्म्मा कृत "सतसई-संहार", जो सरस्वती के कई अङ्कों में प्रकाशित होगा, ज़रा खटकेगा। परन्तु हमें उन मित्रों से केवल यही विनय करनी है कि सरस्वती को हिन्दी-साहित्य से प्रेम है। उसे किसी से ईर्ष्याद्वेष नहीं। साहित्य-सम्बन्धिनी युक्तियुक्त वार्ता जो कुछ कही जायगी सरस्वती प्रसन्नतापूर्वक उसे निष्पक्षपात अङ्गीकार करेगी। जिन ग्रंथकारों के ग्रंथों की कड़ी समालोचनायें की जाती हैं उन्हें भी बुरा न मानना चाहिए। क्योंकि—

नो शक्य एव परिहृत्य दृढां परीक्षां
ज्ञातुं मितस्य महतश्च कवेर्विशेषः।
को नाम तीव्रपवनागममन्तरेण
भेदेन वेत्ति शिखिदीपमणिप्रदीपौ॥

५—मानव-रहस्य।

इँगलैंड के प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता डारविन के परिणामवाद (Evolution theory) पर सरस्वती में पहले भी एक लेख निकल चुका है। यद्यपि इस परिणामवाद को बहुतेरे पाश्चात्य विद्वान् नहीं भी मानते तथापि हक्सले, टिन्डल, स्पेन्सर आदि कई तत्त्ववेत्ताओं का विचार इस विषय में बहुत ही दृढ़ था। श्रीयुत महेन्दुलालजी गर्ग लिखित मानव-रहस्य शीर्षक लेख जो सरस्वती के इस अङ्क में प्रकाशित किया जाता है उसे भी परिणामवादी पाश्चात्य तत्त्ववेत्ताओं की विचार-शृङ्खला की एक कड़ी समझिए। परिणामवाद के न माननेवालों का इस विषय में क्या कहना है वह हम किसी आगामि अङ्क में अपने पाठकों की भेंट करने का उद्योग करेंगे।

६—मस्तिष्कों की नाप-जोख।

यूरप के बहुतेरे विद्वानों को मस्तिष्कों की नाप-जोख करने का बड़ा ख़ब्त है। वे खोपड़ियों के मोल लेने और तौलने तौलाने ही की फ़िक्र में रहते हैं। यह सब बखेड़ा वे इस ख़याल से करते हैं कि मस्तिष्क के तौल से और बुद्धि से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिसका जितना भारी भेजा उतनाही वह ज़हीन। परन्तु अध्यापक टामस अमरीकन मेगज़ीन में लिखते हैं कि यह इन लोगों का निरा ख़ब्त है। मस्तिष्क की तौल से बुद्धिमत्ता का पता लगाना ऐसाही असम्भव है जैसे किसी घड़ी की तौल से पता लगाना कि घड़ी कैसी है। बुद्धिमानों के मस्तिष्क भारी भी होते हैं और हलके भी। गेम्बीटा, टर्गनिफ़ से कहीं ज़्यादा बुद्धिमान् समझा जाता था परन्तु उसका मस्तिष्क तौल में क़रीब क़रीब आधा ही था। न यही बात किसी तरह सिद्ध हो सकती है कि हृष्ट-पुष्ट, दीर्घकाय लोग ही बुद्धिमान् हुआ करते हैं। क्योंकि इसके विपरीत भी लोग बुद्धिमान् हुए हैं। पास्टर बड़ा ही बुद्धिमान् था, पर उसके बुद्धि का विकास हुआ जब उसे लकवा लगा। इसी तरह हर्बर्ट स्पेन्सर, डारविन, वान हर्टमन पोप, नेपोलियन इत्यादि बड़े बड़े बुद्धिमान् शरीर से कुछ ज़्यादा पुष्ट न थे।

सम्भव है कि इन लोगों की तन्दुरुस्ती बहुत परिश्रम करने से बिगड़ गई हो। जो हो, टामस साहब का यह भी मत न समझिएगा कि शरीर के निर्बल हो जाने से बुद्धि बढ़ जाती है।

७—मीरअली के लेख का नमूना।

आप जानते हैं कि जिस लिपि में फ़ारसी या उर्दू अब लिखी जाती है उसे नस्तालीक़ कहते हैं। इस लिपि के पहले सुलस, तौक़ीमुहक़्क़िक़, नस्ख़, रेहाँ, रक़ा, तालीक़, कूफ़ी आदि लिपियाँ प्रचलित थीं जिनमें कि फ़ारसी और अरबी ज़बान लिखी जाती थी। कहते हैं कि नस्तालीक़ के प्रवर्तक ख़्वाजा मीर-अली तबरेज़ी थे। यद्यपि यह मत सर्वथा सिद्ध नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीरअली के लेख का नमूना।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है क्योंकि मीरअली के पहले भी नस्तालीक़ में लिखी हुई पुस्तकें मिलती हैं, तथापि इसमें संदेह नहीं कि मीरअली एक बड़े ख़ुशख़त लिखनेवाले थे और उन्होंने नस्तालीक़ लिपि का बड़ा प्रचार किया। जो हो, क़रीब चार सौ बरस हुए जो शेरें उन्होंने बाबर बादशाह के समय में लिखी थीं उस लेख का चित्र आज आपकी भेंट है। असली चित्र जिसकी प्रतिकृति आप देखते हैं बहुत ही मनोहर है। मौलाना लोग तो इसके लाम् के दायरों पर लट्टू हो जाते हैं और वाह वाह की झड़ियाँ बाँध देते हैं। शेरें और उनका मतलब यह है :—

दरख़्त ग़ुञ्चः बर आवर्दो बुलबुलाँ मस्तन्द
जहाँ जवाँ शुदो याराँ ब ऐश बिनशस्तन्द।
हरीफ़ मजलिस माँ ख़ुद हमेशा दिल मी बुर्द
अलल ख़सूस कि पैरायये बरोबस्तन्द ॥

अर्थात् दरख़्त ने कली निकालीं और बुलबुलें मस्त हैं, जहान जवान हुआ और यार ऐश के लिए बैठे। हमारी मजलिस का यार हमेशा दिल लुभाता है, ख़ास कर इस वक़्त जब कि उसे ज़ेवर पहनाया गया है।

नये सन् का स्वागत।

भारतवर्ष की ओर से सन् १९१० ईसवी का स्वागत।

(१)

स्वागत नूतन वर्ष ! समयद्रुम की नव शाखा !
स्वागत वर्ष नवीन ! जगत जन की अभिलाषा ! ।
स्वागत दर्शन-योग्य मान्य नूतन अभ्यागत
स्वागत प्यारे व्यक्ति ! अनोखे स्वागत ! स्वागत !! ॥

(२)

स्वागत शतत्रय साठपञ्च*-दिन-गौरव गर्वित !
†पञ्चाशत्-युत-युग्म-भव्य-सप्ताह-सुगर्भित ! ।
स्वागत द्वादश-मास छटा से भानेवाले !
स्वागत षटऋतु-मयी महाछवि लानेवाले ! ॥

(३)

स्वागत उत्तर-कालसिन्धु* के विन्दु अदर्शित !
स्वागत अलख विशाल-गणित के अङ्क अनङ्कित ! ।
स्वागत परम भविष्य-चन्द्र की कला शोभना !
स्वागत अश्रुत महाराग की एक मूर्च्छना ! ॥

(४)

कहता भारतवर्ष, देश उत्कर्ष, वर्षवर !
चले आइये तात ! रुचिर अनुकूल रूपधर।
ईसाई सन् राज ! साधु का करके बाना
ईसा यश के हेतु शान्ति दीजै विधिनाना ॥

(५)

है यह शिशिर-प्रवेश, चाहिए कृपा विशाला
बरसाना दुर्भिक्ष-अनी पर पूरा पाला।
किञ्चित ही है जगी देश-सेवा की गर्मी
तद्रक्षा-हित उचित आपको पूरी नर्मी ॥

(६)

भो सन-सन्त ! वसन्त देश में ऐसा आवै,
संपत-वन में सदा कोकिला सुख की गावै।
उद्यमद्रुम-समुदाय मोद † मय कुसुमित होवैं
दिव्य सफलतासुमन देवपद अर्पित होवैं ‡

(७)

मिलै ग्रीष्म में शीत सम्मिलन-मलय रास की
लसै परस्पर प्रीति पीतिमा अमलतास की।
ईश-भानु-कर-निकर भाव-हिमगिरि पर छावे
द्रवित मनोरथ-बरफ देश-सिञ्चन को धावै §

---

* ३६५ दिन † ५२ हफ्ते

* आनेवाला समय स्वरूपी सिन्धु।

† सुगन्ध, आनन्द ‡ कर्मयोग की सूक्ष्म सूचना।

§ ऊंचे भावरूपी हिमालय पर (ईश) भानु के कर (किरण) छाने से जमा हुआ मनोरथ रूपी बर्फ़ द्रवित होकर सब देश को (उसद्रव से) सिक्त कर दे (कर का अर्थ हाथ ईश रक्षा का सूचक है)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८)

पावस में उत्साह-मेघ बरसात मचावैं
हरी भरी व्यापार-भूमि की कृषी बनावैं।
देश-राग-हिन्दोल* बैठ सज्जन सुख पावैं
शुभ शिक्षा के मोर पपीहे शब्द सुनावैं॥

(९)

शरत चन्द्रिका भरतखण्ड की† कीर्ति सुहावै
परम-हंस-गन-राज हंस-वन विचरन भावै।
अमल-समय-सर हृदय-कमल-दल रहैं प्रफुल्लित
सोखै उग्र अगस्त‡ पंक जो विघ्न उपस्थित॥

(१०)

मोदवन्त! हेमन्त देश में ऐसा लाना
थर थर काँपै देश-द्रोह का दल दीवाना।
देश-हितैषी धीर प्रथा के गर्म मसाले
सेवैं, ओढ़ैं, नर्म स्वदेशी-प्रेम-दोशाले॥

(११, १२)

§नव-कौन्सिल-संवृद्धि-सिद्धि हो पूर्ण रूप से,
राजा-प्रजानुराग वृद्धि हो पूर्ण रूप से।
विविध-जाति-समुदाय-प्रीति हो पूर्ण रूप से
शासन-विधि में नीति-रीति हो पूर्ण रूप से॥
हैं ऐसे ही विविध मनोरथ विपुल हमारे
है उनका साफल्य पूर्ण विधि हाथ तुम्हारे।
स्वागत में है विनय बिदा जब होय तुम्हारी
कहैं लोग सब "था उनीस सो दस हितकारी"॥

पूर्ण।

---

* देश के प्रेम का हिंडोला।

† कीर्ति का रङ्ग उज्वल है।

‡ अगस्त्य का उदय शरत् में होता है। लोक-हित करने में जो उग्र है वही अगस्त्य यहाँ अभीष्ट है। (अगस्त्य के उदय से जल शोषण होता है)

§ नवीन कौंसिलों के बढ़ाये जाने की सफलता।

गीता का मर्म।

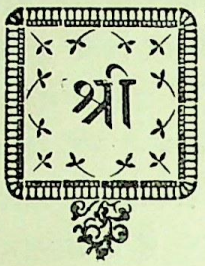

मद्भगवद्गीता के अमूल्य नाम से कौन नहीं परिचित है? इसके अद्वितीय ज्ञान को भगवान् कृष्ण चन्द्र ने अर्जुन का बोध करके उन्हें युद्ध के हेतु सन्नद्ध करने के लिए कहा है। जब कौरवीय और पाण्डवीय सेनायें युद्धार्थ एक दूसरी के सम्मुख उपस्थित हो चुकी थीं उसी समय यह कहा गया है। समालोचक लोगों का कथन है कि उस अवसर पर इतना अवकाश नहीं मिल सकता था कि इतना बड़ा उपदेश दिया जा सकता। इस कारण उनका मत है कि गीता के मुख्य सिद्धान्तों को भगवान् ने उसी समय कहा होगा। परन्तु उसका विस्तारपूर्वक वर्णन पीछे से भगवान् वेदव्यास ने गीता के वर्त्तमान रूप में किया होगा। यह मत कहाँ तक समर्थनीय अथवा अन्यथा है सो सहृदय पाठक स्वयं विचार सकते हैं। हमें इस विषय में अपना मत प्रकाश करने की आवश्यकता नहीं। हम इस महापुत्तक की समालोचना लिखने नहीं बैठे हैं, वरन् इसके महान् सिद्धान्तों और विचारों का यथाशक्ति दिग्दर्शन मात्र कराना अपने कर्त्तव्य की अतःपर सीमा समझते हैं। इसकी समालोचन के लिए जिस योग्यता की आवश्यकता है वह हमने स्वप्न में भी नहीं देखी। इस परमोपयोगी ग्रन्थ में हिन्दू-धर्म्म और विज्ञान-शास्त्र को एकही में मिला कर वर्णन किया गया है और इसमें हिन्दू-धर्म्म का महत्त्व और उसका असली स्वरूप साफ़ देख पड़ता है। इसके पढ़ने से यह भी विदित होता है कि हिन्दू-धर्म्म और उसके औरस सन्तान बौद्ध धर्म्म में कितना कम अन्तर है। इस महान् धर्म और विज्ञान-ग्रन्थ में एक यह भी अनहोनी का सा आश्चर्य्य देख पड़ता है कि इसमें धर्म्म और विज्ञान के साथ साहित्य भी कूट कूट कर भरा गया है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि विज्ञान के ग्रन्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-शून्य और नीरस होते हैं परन्तु इस ग्रन्थ-रत्न में सरसता भी ऐसी कुछ भरी है कि सौ बार भी पढ़ कर इसे फिर भी पढ़ने को जी चाहता है। इन स्वाभाविक प्रतिकूल गुणों को भी अपने काव्य में एक साथही सन्निविष्ट करना भगवान् वेदव्यास ही ऐसे कवि का काम था। योग, संन्यास, सांख्य आदि के गूढ़तम सिद्धान्तों को किस सुगम रीति से इस कविरत्न ने साफ़ करके रोचक स्वरूप में दिखा दिया है कि कहते नहीं बनता। इतने गूढ़ विषयों के वर्णनों का भंडार होते हुए भी समझने में यह ग्रन्थ इतना सुगम है कि बहुत स्थानों पर इसके टीका-ग्रन्थ जो अन्य विद्वानों और आचार्य्यों ने लिखे हैं, मूल से अधिक दुर्ज्ञेय हैं। इन्हीं गुणों से रीझ कर किसी कवि ने कहा है:—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

अर्थात् सब उपनिषत् गाय हैं जिन्हें दुह कर दुग्ध स्वरूप यह गीता गोपाल-नन्दन ने निकाली है। सचमुच यह कथन बहुत ही यथार्थ है। उपनिषत् पढ़ते पढ़ते उनके सिद्धान्त अथवा अत्यन्त चमत्कारिक भाव जो दृष्टिगोचर होते हैं वे सब गीता में जैसे के तैसे मिल जाते हैं। इस ग्रन्थरत्न में यह भी एक गुण है कि यदि कोई मनुष्य बड़े भारी दुःख में भी हो और इसे पढ़ने लगे तो उसका दुःख कम पड़ जाता है। इसका सीधा सादा कारण यही है कि गीता सांसारिक पदार्थों और सुख-दुःखों को इतनी नीच दृष्टि से देखती है कि उसके पढ़ते समय मनुष्य के विचार संसार के ऊपर बहुत ऊँचे उठ जाते हैं। दुःख तो किसी सांसारिक कारण से ही होता है, सो वह कारण इतना पोच समझ पड़ने लगता है कि गीता पढ़ने से आप से आप दुःख घट जाता है। यह केवल डींग नहीं है वरन् अनुभव-सिद्ध है और किसी दुःख के समय प्रत्येक पाठक इस कथन की परीक्षा ले सकता है। हमारा यह कथन बहुत करके दूसरे, पाँचवें, छठे, नवें, दसवें, ग्यारहवें, पन्द्रहवें और अट्ठारहवें अध्यायों से विशेषतया सिद्ध होगा। हमारा यह भी विचार था कि यदि सत्यनारायण व्रत के साथ सत्यनारायण की कथा न कहला कर गीता के दूसरे, पाँचवें, छठवें, नवें और ग्यारहवें अध्याय कहलाये जावें तो श्रोताओं का मनोरंजन भी अधिक हो और उन्हें उपदेश भी अधिक मिले। सत्यनारायण की कथा में जो व्रत का विधान है वह तो करने के लिए है न कि सुनने को। और उसका जो माहात्म्य वर्णित है वह व्रत करने से होता है, न कि माहात्म्य सुनने से। अतः यदि माहात्म्य-कथन के स्थान पर गीता के उपर्युक्त अध्यायों का पाठ हो तो श्रोताओं पर भलीभाँति हिन्दू-धर्म्म और व्रतों का महत्त्व प्रकट हो। हम उस महाव्रत को परमोत्तम मानते हैं और उस कथा की भी निन्दा करना नहीं चाहते परन्तु केवल माहात्म्य-श्रवण के स्थान पर गीता-श्रवण श्रेष्ठतर समझते हैं। गीता के विषय में एक यह भी बात जानने योग्य है कि ईश्वर के अस्तित्त्व का इसमें कोई प्रमाण नहीं दिया गया है वरन् यह बात मान ली गई है। कवि ने इस विषय को इतना स्वयं सिद्ध माना है कि ईश्वर के अस्तित्त्व का कोई प्रमाण देना अनावश्यक समझा। इस विषय में महात्मा फ्लिंट कृत थीज़्म (ईश्वरवाद) दर्शनीय है। इतना लिख देना भी यहाँ उचित होगा कि हम संस्कृत के विद्वान् नहीं हैं और यह नहीं कह सकते कि इस विषय में संस्कृत के कौन से उपयोगी ग्रन्थ दर्शनीय हैं।

अब हम इस ग्रन्थ-रत्न का यथासाध्य दिग्दर्शन कराते हैं। इसमें १८ अध्याय और ७०० श्लोक हैं। इन अध्यायों में क्रम से (१) अर्जुन का विषाद, (२) साँख्य, (३) कर्म्म, (४) ब्रह्मार्पण, (५) संन्यास, (६) आत्म-संयम, (७) ज्ञान, (८) अक्षर परब्रह्म, (९) राज-विद्या राज-गुह्य, (१०) विभूति, (११) विश्वरूप-दर्शन, (१२) भक्ति, (१३) क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-विभाग, (१४) गुणत्रय-विभाग, (१५) पुरुषोत्तम, (१६) देवासुर-संपद्विभाग, (१७) श्रद्धात्रय-विभाग,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (१८) संन्यास का वर्णन किया गया है। अन्तिम अध्याय का नाम वही है जो पंचम का। इनके प्रारम्भिक विषय भी मिलते हैं, परन्तु अन्तिम अध्याय में थोड़ा सा संन्यास कहकर कवि ने गुण-त्रय-विभाग और जातिकर्म का वर्णन किया है और फिर ग्रन्थ समाप्त करने के योग्य कुछ बातें परिशिष्ट की भाँति लिखी हैं। स्थूलरूप से इन अट्ठारह अध्यायों के प्रथम षटक में योग, द्वितीय में ईश्वर और तृतीय में गुणत्रय का वर्णन है। प्रथम अध्याय सम्पूर्ण और द्वितीय के दशम श्लोक तक एक प्रकार की भूमिका सी कही गई है। शंकर स्वामी ने समग्र ग्रन्थ पर टीका लिखते हुए भी इतने भाग पर कुछ नहीं लिखा। इसमें कौरवों और पाण्डवों की सेना का कुछ वर्णन हुआ है और फिर अर्जुन ने शोक प्रकट करके कहा कि वह कुल-घात करने को कदापि तैयार नहीं है, क्योंकि इससे कुल-धर्म्मों का अभाव हो जावेगा, कुल-स्त्री व्यभिचारिणी हो जावेंगी, वर्ण-संकर उत्पन्न होंगे, और हम लोगों के साथ साथ पिंडोदक क्रियाओं के लुप्त हो जाने से पितर तक नरक में गिरेंगे (प्रथम अध्याय)। भगवान् कृष्णचन्द्र ने अर्जुन को इस क्लीबता के त्याग करने को कहा परन्तु उसने इस कथन की उपेक्षा करके कहा कि वह पूजास्पद भीष्म-द्रोणादि से कैसे युद्ध कर सकता था?

इसी स्थान से वास्तविक गीता का प्रारम्भ होता है। जब भगवान् ने देखा कि अर्जुन का मोह प्रगाढ़ है और साधारणतः नहीं जा सकता तो उन्होंने अकाट्य युक्तियों से उसको समझाना उचित समझ कर कहा कि मृत्यु के विषय में उसे शोक न करना चाहिए क्योंकि पंडित लोग जीने और मरनेवालों का शोक नहीं करते। जो उत्पन्न हुआ है वह अवश्यही मरेगा और जो मरा है वह अवश्यही फिर उत्पन्न होगा। यह स्वाभाविक घटनायें किसी के रोके नहीं रुक सकतीं और प्रकृति के अनुसार होती ही रहती हैं। जीवात्मा नित्य है। वह न कभी उत्पन्न हुआ है और न मरता है। इसका प्रमाण यह है कि जिस वस्तु का कुछ भी अस्तित्व नहीं है उससे कोई वस्तु नहीं उत्पन्न हो सकती। जो वस्तु किसी रूप में है उसका स्वरूप भले ही बदला करे परन्तु उसका पूर्ण अभाव कभी नहीं हो सकता। यह बात तत्त्वदर्शी लोग जानते हैं। अतः यदि जीव कोई वस्तु है तो उसका विनाश नहीं हो सकता और वह पुराने कपड़ों की भाँति पुराने शरीर बदल कर केवल नये शरीर धारण करता है। इसी सिद्धान्त को अँगरेज़ी में (Indestructibility of matter and force) शक्ति एवं वस्तु की अनाशकता कहते हैं। यह सिद्धान्त वहाँ थोड़े ही दिनों से ज्ञात हुआ है परन्तु हमारे यहाँ के तत्त्वदर्शी इसे उस समय से ही जानते थे। इस देह की जैसे कुमार, यौवन, और जरा अवस्थायें होती हैं वैसे ही देहान्तर-प्राप्ति (मौत) की भी अवस्था होती है। सो यदि प्रथम तीन अवस्थायें शोचनीय नहीं हैं तो चौथी भी नहीं है क्योंकि शोच करे या न करे वह तो होहीगी।

यदि कहा जाय कि जीवात्मा देख नहीं पड़ता है अतः उसके अमर होने के विषय में शंका बनी ही रहेगी तो इसका उत्तर यह है कि जिस पदार्थ का आदि एवं अन्त नहीं ज्ञात है और केवल मध्य ज्ञात है, जैसे कि मनुष्य का (क्योंकि यह नहीं मालूम कि पैदा होने के प्रथम उसकी क्या दशा थी और मरने के पीछे क्या होगी) तो उसके विषय में शोक करना भी वृथा है। क्योंकि वह पूरे तौर से एक अनजानी वस्तु है। ऐसी दशा में यह कहना युक्तियुक्त नहीं हो सकता कि मरने के पीछे मनुष्य की दशा ख़राब ही होगी। इस हालत में प्रत्येक मनुष्य को अपने धर्म्म और कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। प्रत्येक क्षत्रिय का यह कर्त्तव्य है कि यह अन्याय मिटाने के युद्ध करे। प्रत्येक राजा पर उसकी प्रजा का सुपालित होने का स्वत्व है। अतः यदि युधिष्ठिर की प्रजा का पालन भली भाँति नहीं होता हो तो अर्जुन का धर्म्म है कि वह लड़ कर उनकी दशा को सुधारे और अपना कर्त्तव्य-पालन करे। फिर क्षत्रियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे युद्ध सेही पराजित होने पर भी कीर्ति और स्वर्ग का लाभ होता है। मनुष्यों को कर्म्म करने का अधिकार है परन्तु उन कर्म्मों के फलों पर उनका अधिकार नहीं है। ईमानदारी और सचाई से यदि पूरी दृढ़ता का कार्य्य कोई करे तो उसके सफल न होने पर भी उसका कर्त्तव्य पूर्णतया पालित होता है और इस हेतु कर्त्तव्य-परायण मनुष्य को सिद्धि और असिद्धि से किंचिन्मात्र हर्ष विस्मय न करना चाहिए और पूर्ण दृढ़ता से स्थित-प्रज्ञ होकर स्वार्थ से भरी विजय की लालसा एवं पराजय के खेद को छोड़ कर अपने धर्म्म में प्रवृत्त होना चाहिए। इसी से ब्राह्मी स्थिति को पाकर मनुष्य पूर्ण आनन्द को प्राप्त होता है क्योंकि उसे किसी भी दशा में दुःख नहीं होता। इसी अपूर्व आनन्द को प्रसाद कहते हैं (द्वितीय अध्याय)।

इसी अलौकिक आनन्द को ऐसा आत्यन्तिक सुख कहा है जो अतीन्द्रिय है (अर्थात् इन्द्रियों द्वारा अनुभूत नहीं हो सकता) और केवल बुद्धि से ग्रहण किया जा सकता है। इस लाभ को पाकर मनुष्य इससे अधिकतर किसी भी लाभ को नहीं समझता और बड़े भारी दुःख से भी विचलित नहीं होता। परन्तु इस दशा के पाने के प्रथम उसमें निम्न योग्यता होनी चाहिए :—

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥
योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥
संकल्पप्रभवान् कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समं ततः ॥
शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥
यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

इसका थोड़े में तात्पर्य्य यह है कि यह मनुष्य संसार के सब कार्य्यों को न केवल छोड़ ही दे वरन् उसमें सब कुछ छोड़ने की योग्यता भी आ जाय; और वह केवल ईश्वर ही में अपना मन लगाकर प्रसन्न हो सके। इस मनुष्य को ऐसा होना चाहिए कि किसी सांसारिक पदार्थ की ओर इसका मन चलायमान ही न हो। यह मित्र, शत्रु, घातक, पालक, मिट्टी, ढेले और पत्थर को एक ही दृष्टि से बराबर देखे, और संसार भर के सब पदार्थ इसे ईश्वरमय देख पड़ें। इसका चित्त किसी समय भी ईश्वर के विचार से न हटे और इसे प्रति क्षण ईश्वर का ही ध्यान रहे। ऐसे मनुष्य को उपर्युक्त प्रसादरूपी आनन्द प्राप्त होता है। ईश्वर इसके ध्यान से कभी नहीं हटता और यह ईश्वर के ध्यान से कभी नहीं हटता। ऐसे मनुष्य को फिर इस संसार में कुछ भी कर्त्तव्य नहीं रह जाता, चाहे वह अपना उपकार हो या पराया। विचार-सिद्ध भी यही मालूम होता है कि जिसका चित्त बिलकुल शान्त होकर ईश्वर में लग गया है वह इस संसार को नितान्त तुच्छ समझेगा और अपने लिए, क्या पराये लिए भी कुछ करना उसे बेभा ही जँचेगा। ऐसे ही मनुष्य को गीता में स्थित-प्रज्ञ, ब्राह्मी स्थितिवाला, साँख्य-योगी, ज्ञान-योगी, ज्ञानी आदि शब्दों से प्रकट किया है (छठवाँ अध्याय)। इसी को ध्यान-योगी भी कह सकते हैं क्योंकि यह ईश्वर ही का ध्यान सदैव रखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु यह सर्वोच्च दशा एकाएकी नहीं प्राप्त हो सकती। इसमें तो मन के भी जीतने की आवश्यकता है और मन ऐसा प्रमाथी—चंचल, तथा बलवान् है कि उसका रोकना बड़ाही कठिन है। इसके लिए अभ्यास और संयम की आवश्यकता है (छठा अध्याय)

इस उपर्युक्त दशा को पहुँच कर मनुष्य कोई भी कर्म्म नहीं करता। इस दशा में भी पहुँचना कठिन है क्योंकि न चाहते हुए भी और इन्द्रियों से कर्म्म न करते हुए भी मनुष्य का मन दौड़ा करता है और कम से कम देह में रक्त-संचालन हृदय आदि के कार्य्य एवं भोजन किये हुए पदार्थों के पाचन आदि तो हुआ ही करते हैं। अतः कर्म्म और अकर्म्म को जान कर मनुष्य विकर्म्म (विहित, उचित) को जान सकता है। जो कर्म्म मनुष्य अपने अर्थ अर्थात् स्वार्थवश अपनी कामनाओं के सिद्ध करने को करता है वही कर्म्म हैं। इसमें विचार भी शामिल हैं। चाहे विचार करते समय अथवा कभी भी मनुष्य उसके अनुसार कोई भी कार्य्य न करे। अतः सूक्ष्मतया स्वार्थी कार्य्य एवं विचार-कर्म्म कहलाते हैं। श्वास आदि का चलना, देह में रक्त-प्रवाहादि ऐसे सब कर्म्म जो मनुष्य को प्रकृति के गुणों के अधीन होकर अपने न चाहते हुए भी करने पड़ते हैं वे सब अकर्म्म हैं। इसी भाँति परोपकारार्थ अथवा स्वार्थ को छोड़ कर और अपनी कामनाओं के सफल करने के विचार को छोड़ कर जितने काम मनुष्य करता है वे भी सब अकर्म्म हैं (चौथा अध्याय)।

अब यह प्रश्न उठता है कि इन दोनों में विकर्म्म कौन है और कौन ग्राह्य है। कर्म्म में फल की आशा सदैव रहती है। मनुष्य का प्रत्येक कार्य्य सदैव सिद्ध होना असम्भव है। अतः कार्य्य की असिद्धि में उसके बाधक शत्रु समझ पड़ते हैं और इससे उन पर क्रोध लगता है। क्रोध से मोह की उत्पत्ति होती है जिससे स्मृति-विभ्रम हो कर बुद्धि का नाश हो जाता है। ऐसी दशा में मनुष्य को उचितानुचित का पूरा ज्ञान नहीं रहता। (तीसरा अध्याय), और तभी वह सोचने लगता है कि आज यह धन मिला, कल यह मिलेगा। यह मनोरथ सिद्ध हुआ, मैंने इस शत्रु को मार डाला अब उसका नष्ट करना शेष है, मैं ही सुखी धनाढ्य, और कुलीन हूँ, मेरे समान दूसरा नहीं है। मैं यज्ञ करूँगा, दान करूँगा, आनन्द पाऊँगा, इत्यादि। और इन्हीं विचारों की पुष्टि में जन्म-पर्य्यन्त यत्नशील रह कर आसुरी प्रकृति को प्राप्त होता है। परन्तु काम और लोभ इतने प्रबल खानेवाले हैं कि कितनाही खिलाया जावे इनकी तृप्ति नहीं होती, वरन इनकी प्राप्ति होने से अग्नि में घृत पड़ने की भाँति इनकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली जाती है। उस वृद्धि की अप्राप्ति में क्रोध की अधिकाधिक बढ़ती होती जाती है, जिससे बुद्धि-नाश दिनों दिन प्रचंड पड़ता जाता है और अन्त में शान्ति न देकर मनुष्य का सर्वनाश करता है। (सोलहवाँ तथा तीसरा अध्याय)।

इस आसुरी प्रकृति की अपेक्षा दैवी प्रकृति को प्राप्ति सदैव उत्तमतर समझनी चाहिए। इसी को सात्त्विकी प्रकृति भी कहते हैं जो निम्न लिखित २६ गुणों से प्राप्त होती है:—अभय, चित्तशुद्धि, ज्ञानयोग में स्थिति, दान, इन्द्रियों का दमन, यज्ञ, तप, स्वाध्याय, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, परोक्ष में निन्दा न करना, सब प्राणियों पर समान दया, अलोलुपता, कोमलता, लज्जा, अचापल्य, तेज, क्षमा, धैर्य्य, शौच, अद्रोह और निरभिमान। (१६ वाँ अध्याय)। इस प्रकृति का प्राप्त करना उत्तम अवश्य है, परन्तु यह हो कैसे? इसके करने में कर्म्म का छोड़ना और अकर्म्म का ग्रहण आवश्यक है। कर्म्म स्वार्थ से निकलता है जिसके स्थान इन्द्रिय, मन और बुद्धि हैं। ये तीनों उत्तरोत्तर एक दूसरे से उत्तमतर हैं। परन्तु वह ईश्वर बुद्धि से भी उत्तमतर है अतः उसे पाने का प्रयत्न करना उचित है। (तीसरा अध्याय)। इसी प्रयत्न करनेवाले को पंडित कहना चाहिए। गीता में पंडित का लक्षण यह लिखा है:—

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्म्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः॥
(चौथा अध्याय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतः प्रकट हुआ कि कर्म से अकर्म श्रेष्ठ है और इसकी प्राप्ति के लिए यत्नशील होना चाहिए। इसी यज्ञ का नाम कर्म्म-योग है और इसी की वृद्धि से उपर्युक्त ज्ञान-योग प्राप्त होता है। ये दोनों वास्तव में एक ही हैं और योग की प्रारम्भिक दशा में मनुष्य कर्म्मयोगी होता है और पक्का योगी हो जाने पर वही ज्ञान-योगी हो जाता है। परन्तु बिना प्रथम कर्म्म-योगी हुए कोई ज्ञान-योगी नहीं हो सकता जैसे कि बिना प्रारम्भिक शिक्षा पाये कोई पूरा विद्वान् नहीं हो सकता। (तीसरा अध्याय)।

जैसा कि ऊपर कह आये हैं कि बिना अकर्म्म ग्रहण किये कोई मनुष्य कर्म्म-योगी भी नहीं हो सकता क्योंकि कर्म्म से तो उसे केवल आसुरी (तामसी) प्रकृति मिलती है और योगी के लिए दैवी प्रकृति का होना आवश्यक है। संन्यास इस अकर्म्म का केवल एक और प्रारम्भिक गुण है। संन्यासी उसे कहते हैं "यो न द्वेष्टि न कांक्षति" (जो न किसी से शत्रुता करता है और न कुछ अपने लिए चाहता है)। परन्तु अभी इस मनुष्य में संन्यासी होने पर भी इतनी योग्यता नहीं आई है कि ज्ञान-योगी की भाँति वह सब कर्म्म छोड़ दे। उसकी प्रकृति अवश भी उसके मन से प्रेरित होकर उससे कुछ कार्य्य करा-वेगी। इसीलिए कहा गया है कि "संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः" (बिना योग के संन्यास दुख से प्राप्त होता है) क्योंकि बिना कुछ किये भी वह सिद्ध नहीं हो सकता। (पाँचवा अध्याय)। इसी प्रकार योग भी बिना संन्यास के पूरा नहीं हो सकता क्योंकि जो संन्यासी न होकर कुछ कार्य्य करेगा वह स्वार्थ-परता से भी कार्य्य कर सकता है। इसी से कहा है कि "न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन" (बिना संकल्प छोड़े कोई कभी योगी नहीं हो सकता)। (छठवाँ अध्याय)। अतः प्रकट हुआ कि संन्यास और योग को मिलाकर यत्न करना उचित है। अब इस मनुष्य को किसी से शत्रुता न करनी चाहिए, स्वार्थ-परता न करनी चाहिए परन्तु तो भी कुछ करना अवश्य चाहिए। यही तीन बातें संन्यास और योग के मिलाने से निकलती हैं। ऐसे मनुष्य के लिए तीन कार्य्य कहे गये हैं अर्थात् यज्ञ, दान और तप। यदि मनुष्य फल की आशा छोड़ कर ये कार्य्य करे तो उपर्युक्त तीनों बातों की पूर्ति होती है। इनमें यज्ञ और दान परोपकारार्थ कहे गये हैं और तप आत्म-संयम (इन्द्रिय-दमनादि) के लिए। यज्ञ दो प्रकार के हैं अर्थात् द्रव्य-यज्ञ और ज्ञान-यज्ञ। द्रव्य-यज्ञ से परोपकार और ज्ञान-यज्ञ से स्वाध्याय आदि द्वारा बुद्धि विस्तीर्ण होकर क्षेत्रज्ञान होता है। जिससे समय आने पर ब्रह्मज्ञान भी प्राप्त हो जाता है। इस क्षेत्र-ज्ञान का वर्णन आगे आवेगा। इसी ब्रह्मज्ञान के मिलने से मनुष्य ज्ञान-योगी होता है। परन्तु इसके पाने के लिए पहले बहुत काल पर्य्यन्त द्रव्य-यज्ञ और दान करने की आवश्यकता है। दान से केवल द्रव्य-दान ही का प्रयोजन नहीं है बरन् इसमें द्रव्य, समय, बल, सहायता आदि सभी बातों का दान आ जाता है। द्रव्य-यज्ञ द्वारा वायु मलहीन होती है जिससे सर्वसाधारण को लाभ पहुँचता है और दान-द्वारा सभी प्रकार के परोपकार करने होते हैं। (१८ वाँ अध्याय)। इस दान के निमित्त मनुष्य को दान-पात्र में गीतानुसार कुछ भी जाति आदि का विभेद न करके ऐसे मनुष्य बरन् जीवधारी मात्र की सहा-यता करनी चाहिए जिसे उसकी वास्तविक आव-श्यकता हो।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः॥

पंडित लोग विद्या-विनय-सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चांडाल को समदृष्टि से देखते हैं अर्थात् आवश्यकता पड़ने पर सहायता करने में किसी को भी न्यूनाधिक्य दान-पात्र नहीं समझते। (पाँचवाँ अध्याय)। दान के उचित अर्थ लगाने से मिल, बेन्थम और स्पेंसर आदि के सिद्धान्तों के अनिन्दनीय और उचित भाग यहाँ पर आ जाते हैं। मिल ने यूटिलिटेरियन (Utilitarian) सिद्धान्त निकाला था जिसके अनुसार केवल वही कार्य्य धर्म्म-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य्य कहा जा सकता था जिससे किसी दूसरे को कुछ लाभ हो। इसमें यह भेद पड़ा कि किसका लाभ हो? अतः बेन्थम ने कहा कि "अधिकतम लोगों का अधिकतम लाभ" (greatest good to the greatest number) होना चाहिए। इस पर प्रश्न उठा कि कैसा लाभ। जिस पर स्पेंसर ने कहा कि ऐसा लाभ जिससे संसार के वासी उन्नत-शील हों। पीछे से यह सिद्ध हुआ कि धर्म्म की अतः पर सीमा यही नहीं हो सकती परन्तु यह धर्म्म अवश्य है। यह सब सिद्धान्त यहाँ पर परोपकार द्वारा गीता में आते हैं। परन्तु गीता के अनुसार यह धर्म्म का द्वितीय सोपान मात्र है। इसीलिए इन सब बातों के साथ ही साथ स्वाध्याय आदि ज्ञान-यज्ञ और तप-द्वारा आत्म-संयमादि योगी को तृतीय सर्वोच्च ज्ञान के सोपान में पहुँचाने को लगा दिये गये हैं। अतः इस दूसरी दशा में योगी की परोपकार द्वारा कार्य्य करने की बात का उत्तम ढँग द्वारा परिपोषण हुआ है और ज्ञान-प्राप्त्यर्थ ज्ञान-यज्ञ, और संयमों की भी शिक्षा दी गई है। योगी को प्रायः समस्त आयु इसी दशा में रहना है और तृतीय सोपान पर यदि वह मरण-काल भी पहुँच जाय तो उसे अपने को धन्य मानना चाहिए। क्योंकि "स्थित्वा ऽस्यामन्तकालेपि ब्रह्म निर्वाणमृच्छति" अर्थात् मरण समय तक इस दशा को प्राप्त होकर योगी निर्वाण को प्राप्त होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है। बौद्ध मत इसी द्वितीय सोपान से मिलता जुलता है। महर्षि गौतम बुद्ध का सिद्धान्त था कि ईश्वर हो वा न हो मनुष्य को अपनी कामनाओं को जीत कर अपने चित्त को सफ़ेद काग़ज़ की भाँति साफ़ कर लेना चाहिए। जब ऐसा हो जावेगा तभी उसका निर्वाण हो जावेगा अर्थात् संसार के पुनर्जन्म-रूपी बन्धन से वह छूट जावेगा। गीता के अनुसार कर्म्म-योग से निर्वाण तक पहुँचने में मनुष्य ज्ञान-योगी अवश्य हो लेता है और बिना ज्ञान-योग के निर्वाण नहीं हो सकता। यही हिन्दू और बौद्ध-मतों में भेद है। परन्तु कर्म्म-योग से ज्ञान-योग तक पहुँचना प्रायः एकही जन्म में नहीं होता। मनुष्य प्रायः लोभवश होकर किसी कामना को कर बैठता है और तभी वह योग-भ्रष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में वह स्वर्ग में अपने सुकर्म्मों का फल भोग कर या तो शुचि और श्रीमान् मनुष्यों के यहाँ जन्म लेता है। अथवा योगियों ही के घर उत्पन्न होकर फिर उसी यत्न में लगता है। इसी प्रकार कई जन्मों के संचित कर्म्मों से वह ज्ञान-योग की ऊँची सीढ़ी को पहुँच कर निर्वाण को प्राप्त होता है। एक बार ज्ञान-योगी होने से मनुष्य का पतन नहीं हो सकता और उसको अवश्य ही निर्वाण मिलता है। अतः गीता के अनुसार सुधर्म्म की तीन श्रेणियाँ हैं अर्थात्—

प्रथम—कर्म्मी मनुष्य की जो अपनी कामनाओं की सिद्धि के लिए स्वार्थ-परता तो करता है परन्तु उस स्वार्थ-परता में किसी को हानि न पहुँचा कर यथा-साध्य परोपकार भी करता है। यही साधारण उत्तम गृहस्थों की श्रेणी है। ऐसे मनुष्यों को भी यथा-साध्य आसुरी प्रकृति से बचना चाहिए।

द्वितीय—कर्म्मयोगी की जो कर्म्मयोग को संन्यास से मिलाकर परोपकार, स्वाध्याय और आत्म-संयम में प्रवृत्त रहता है।

तृतीय—ज्ञान-योगी की जो पूर्ण ब्रह्म-ज्ञानी होता है और प्रकृतिज गुणोंवाले कर्म्मों को छोड़ शेष कोई कर्म्म स्वार्थ अथवा परोपकार के नहीं करता और सदैव ईश्वर के ध्यान में मग्न रहता है। इसी को पूर्ण शान्ति से उत्पन्न प्रसाद सुख मिलता है जो अतीन्द्रिय और केवल बुद्धि ग्राह्य है।

योग का वर्णन इसी स्थान पर समाप्त होता है और अब यह प्रश्न उठता है कि वह ईश्वर, जिसका ज्ञान-योगी सदैव चिन्तन करता है, कैसा है? ईश्वर के रूप-वर्णन में कवि असमर्थ है क्योंकि उसका कोई रूप नहीं है। यह समस्त संसार एक वृक्ष रूप है जिसके "उद्ध्वमूलमधः शाखा" हैं। इस सब का मूल अर्थात् प्रधान हेतु ईश्वर है। क्षर सकल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूतों को कहते हैं और अक्षर माया को। ईश्वर क्षर से पर और अक्षर से परमोत्तम है। इसी से उसे 'पुरुषोत्तम' कहते हैं। (१५ वाँ अध्याय)। उसका रूप जानना असम्भव है क्योंकि उस विस्तार का कोई अन्त नहीं है। तथापि स्थूलतया समस्त संसार का चैतन्य रूप वही है और समस्त संसार उसी के तेजांश से हुआ है। उसकी समस्त विभूति का जानना असम्भव है। यह समस्त संसार उसी की विभूति का एक अंश मात्र है। इस संसार में भी जितनी बातों में विशेष बल और तेज देख पड़ते हैं वे सब उसकी विशेष विभूतियाँ हैं (दसवाँ अध्याय)। जब इन साधारण विभूतियों से काम नहीं चलता और धर्म्म की विशेष ग्लानि और अधर्म्म का अभ्युत्थान होता है तब उसके तेज से एक विशेष विभूति-स्वरूप व्यक्ति साधुओं की रक्षा करने, दुष्टों को नष्ट करने और धर्म्म को संस्थापित करने को होता है जिसे लोग अवतार कहते हैं।

यदा यदा हि धर्म्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्म्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
(चौथा अध्याय)।

इस व्यक्ति में अन्य व्यक्तियों से इतना अधिक ईश्वरांश होता है कि उसके ईश्वरांश और विभूति से अन्य व्यक्तियों की विभूति की किसी अंश में भी तुलना नहीं की जा सकती। इसीलिए साधारण व्यक्ति इस अपूर्व व्यक्ति को इतना बड़ा मानते हैं और उनके सामने उसमें ईश्वरांश इतना विशेष होता है कि उनके सम्मुख वह ईश्वर का ही अवतार कहा जा सकता है। यद्यपि, वास्तव में ईश्वर और उस व्यक्ति की भी विभूतियों में किसी भी अंश में तुलना नहीं की जा सकती। इसी मोटे विचार से भगवान् कृष्णचन्द्र गीता में ईश्वर करके माने गये हैं। यद्यपि इस विभूतिवाले अध्याय में उन्होंने प्रत्यक्ष कह दिया है कि ईश्वर की असंख्य विभूतियों में वे भी एक ही विभूति मात्र हैं। यथा—

वृष्णीनां वासुदेवोस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः।
(दशम अध्याय)।

इस ईश्वरीय अमोघ रूप का दर्शन मनुष्य इन साधारण नेत्रों से नहीं कर सकता और इसके किसी अंश को भी वह केवल दिव्य दृष्टि से देख सकता है। एकादश अध्याय में इस विश्वरूप का दर्शन कराया गया है। युद्ध-वर्णन के सम्बन्ध में यह रूप दिखाया गया है। अतः इसमें करालता का कुछ विशेष वर्णन आ गया है। यद्यपि उसकी सौम्यता का भी दिग्दर्शन है। इसमें कवि ने सान्त और अनन्त रूपों को खूबही निबाहा है। जिस पदार्थ का कोई रूप होगा वह सान्त अवश्य होगा क्योंकि उसका रूप कहीं से प्रारम्भ होगा और कहीं उसका अन्त भी अवश्य होगा। इस सान्त रूप को कवि ने अनन्त ईश्वर से ऐसा मिलाया है कि उसके चातुर्य्य का वार पार नहीं मिलता।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप॥
अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य्यमनन्तबाहुं शशिसूर्य्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्॥
द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमिदं तवोग्रं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्॥

अर्थात् बहुत से बाहु, उदर, और मुँह, नेत्र देखता हूँ परन्तु वे सब ओर से अनन्त हैं। हे विश्वरूप विश्वेश्वर! तेरा न तो अन्त देखता हूँ, न मध्य, न आदि। आदि, मध्य और अन्त से रहित, अनन्त बलवाले, अनन्त बाहुवाले। सूर्य्य और चन्द्रमा के नेत्रवाले, जलती हुई अग्नि के समान मुखवाले, अपने तेज से इस संसार को तपाते हुए तुझे मैं देखता हूँ। आसमान, पृथ्वी और यह अन्तरिक्ष सब दिशायें एक तुझी से भरे हैं। तेरे इस अद्भुत और उग्र (घोर) रूपको देखकर हे महात्मन्! तीनों लोक बहुत भयभीत हो रहे हैं। इस वर्णन से एवं शेष अध्याय से विदित होता है कि अर्जुन इस विश्वरूप का केवल एक छोटा सा भाग देख सका परन्तु उतनेही के देखने से वह बिलकुल घबरा गया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्ण भगवान् के साधारण रूप के दर्शन का प्रार्थी हुआ। (११ वाँ अध्याय)।

ईश्वर में समस्त जगत् आकाश में वायु की भाँति स्थित है, परन्तु ईश्वर का समग्रांश जगत् भर में नहीं समा सकता। समस्त संसार उसी से निकल कर उसी में लीन हो जाता है। (नवाँ अध्याय)। संसार के शरीरों एवं चित्त के विकारों को क्षेत्र कहते हैं और इसके ज्ञान को क्षेत्र-ज्ञान कहते हैं। इसका पूर्ण ज्ञान सिवा ईश्वर के और किसी को नहीं हो सकता। इसी से ईश्वर ही क्षेत्रज्ञ कहलाता है। संसार में प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं। यही प्रकृति गुण-विकारादि की जननी है। (१३ वाँ अध्याय)। प्रकृति दो प्रकार की होती है एक अपरा और दूसरी परा। पृथ्वी, जल, अनल, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार यह आठ प्रकार की अपरा प्रकृति होती है। संसार में जो जीवरूप प्रकृति है उसी को परा कहते हैं। इस परा प्रकृति का कारण स्वरूप ईश्वर है, और ईश्वर द्वारा अपरा प्रकृति से जगदुत्पत्ति होती है। मनुष्य माया से मोहित रहने के कारण ईश्वर को नहीं जानता। (सातवाँ अध्याय)। ब्रह्म जगत् का मूल कारण है, अध्यात्म स्वभाव, अधिभूत नश्वर पदार्थ, अधिदैव पुरुष, और अधियज्ञ ईश्वर का वह सूक्ष्म शरीर है जो मनुष्य के शरीर में वर्त्तमान है। ब्रह्म का दिन एक सहस्र युगों का और रात एक सहस्र युगों की होती है। प्रति दिन संसार रचा जाता है और प्रति-रात्रि को वह ईश्वर में लीन हो जाता है। (आठवाँ अध्याय)। इसीलिए वेद में 'तत्त्वमसि' (वह ईश्वर तुम्ही हो) का पुनीत वाक्य* आया है। संसार में वास्तविक पूजा का पात्र एक ईश्वर ही है। जो लोग अन्य देवताओं की पूजा करते हैं, वे भी अविधिपूर्वक ईश्वरही की पूजा करते हैं। क्योंकि वास्तव में ईश्वरही एक मात्र देवता है। किसी भी देवता के नाम से पूजा की जाय फिर भी वह देवपूजा होने के कारण ईश्वरही को पहुँचती है, परन्तु ये पूजक ईश्वर की वास्तविक ईश्वरता जाने बिनाही पूजा करते हैं, अतः उन्हें ब्रह्म-ज्ञान नहीं होता और इस कारण वे मुक्त नहीं हो सकते। मोक्ष (निर्वाण) पद तो केवल ब्रह्म-ज्ञानी अर्थात् ज्ञान-योगी को प्राप्त हो सकता है सो वह अमूल्य पद न पाकर वे स्वर्ग में अपने पुण्यों का फल भोगकर फिर भी जन्म ग्रहण करते हैं। यही दशा फल की इच्छा से यज्ञ करनेवालों एवं ईश्वर तक के पूजकों की होती है।

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥
अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥

इस वर्णन से स्पष्टतया विदित होता है कि गीता ने एक ईश्वर में ही दैवीभाव माना है और अन्य देवताओं को वही पदवी दी है जो अन्य मतों में एँजिलों तथा फ़रिश्तों को मिली है। अतः यह समझना कि हिन्दू-मत कई ईश्वरों को मानता है नितान्त भ्रम-मूलक है। (९ वाँ अध्याय)। इस ईश्वर को कोई कारण स्वरूप और अविनाशी मान कर भजते हैं, कोई अनन्य भाव से, कोई स्वामी-सेवक भाव से, और कोई ज्ञान-यज्ञ से। परन्तु वास्तव में संसार की सभी वस्तु ईश्वर है और अग्निष्टोमादि यज्ञ, पञ्च महा-यज्ञ, स्वधा, अन्न, मंत्र, यज्ञ-द्रव्य, अग्नि, होम, जगत्पिता, माता विधाता, पितामह, पवित्र करनेवाला, ओंकार, ऋक्, यजुः सामवेद, जगत् की गति, पालक, नियन्ता, साक्षी, आश्रय, रक्षक, हितकारी, उत्पत्ति करनेवाला, प्रलय करनेवाला, आधार, निधान कारण, अविनाशी, सूर्य के ताप देनेवाला, जल बरसानेवाला, जीवन, मृत्यु, स्थूल, सूक्ष्म सब कुछ ईश्वर ही है। (९ वाँ अध्याय) इस ईश्वर को चार प्रकार के लोग भजते हैं, अर्थात् आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, और ज्ञानी। इन सबों

* इस ऋचा पर मंडन मिश्र और शंकर स्वामी का लोमहर्षण शास्त्रार्थ और तत्सम्बन्धी अकाट्य युक्तियाँ दर्शनीय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानी की भक्ति दृढ़तम और स्वार्थ-हीन होने के कारण सर्व-श्रेष्ठ है। (७ वाँ अध्याय)। जीवन पर्य्यन्त भी शुद्ध रह कर यदि मरण समय किसी की इच्छा डोल जाय और फल-प्राप्ति की कामना जागृत हो उठे तो उस व्यक्ति को मुक्ति नहीं हो सकती (८ वाँ अध्याय)। इस कारण योगी को अपने ज्ञान-योग को किसी दृढ़ आधार पर रखना चाहिए। यह दृढ़ आधार अनन्य भक्ति द्वारा ईश्वर के शरण जाना है। सब प्रकार से ज्ञान होने पर भी और सब कुछ जानने पर भी मन इन्द्रियों को मथन कर के उन्हें अपनी ओर खींच सकता है। मन स्ववश करने का दृढ़ बन्धन अनन्य भक्ति ही है। यह भी दो प्रकार की होती है। अर्थात् निर्गुण और सगुण उपासना-सम्बन्धीय। निर्गुणोपासना अत्यन्त शुद्ध होने पर भी दुःसाध्य है और सगुणोपासना सुसाध्य होने के कारण ज्ञानी को मन वश करने में अधिक सहायक है। अतः सब आशाओं और कामनाओं को छोड़ कर अनन्य भक्ति द्वारा मनुष्य को ईश्वर के शरण जाना चाहिए। (१२ वाँ अध्याय)।

यहाँ तक गीता एक प्रकार का सायंस अर्थात् तत्त्व-ज्ञान रहा और ग्राह्य सिद्धान्तों को स्थिर करता रहा। इन सिद्धान्तों को स्थिर कर के अब वह आर्ट अर्थात् साधारण विद्या का रूप धारण करता है और इन सिद्धान्तों के सहारे जगत् की प्रचलित रवाजों एवं ढगों पर अनुमति प्रकट करने में लगता है।

संसार में सत्त्व, रज, तम नामक तीन गुण होते हैं। सत्त्व गुण ज्ञान-द्वारा सुख की वृद्धि करता है, रज इच्छाओं द्वारा कर्म्मों को कराता है, और तम अज्ञान-द्वारा मोह एवं प्रमाद का प्रवर्त्तक है। यही तीनों गुण आत्मा को शरीर में बाँधते हैं। जो मनुष्य किसी दशा में भी किसी से द्वेष न करे वही गुणातीत कहा जायगा। इस संसार की माता माया और पिता ईश्वर है। इसी जगत्पिता की कृपा से मनुष्य गुणातीत हो सकता है। (१५ वाँ अध्याय। इन्हीं तीनों गुणों के सम्बन्ध से पूजा, तपस्या, आहार, यज्ञ, दान, ज्ञान, (१७ वाँ अध्याय), कर्म्म, कर्त्ता, बुद्धि, धृति, और सुख, (१८ वाँ अध्याय) के जो जो रूप होते हैं वे गीता के अन्तिम दो अध्यायों में दिखाये गये हैं।

अन्त में यह वर्णन आया है कि गुण कर्म्म स्वभाव से चार वर्ण संसार में रचे गये हैं सो क्षत्रिय का कर्त्तव्य युद्ध है। इसी हेतु भगवान् कहते हैं कि यदि अर्जुन राज्य-सुख-लोभ से युद्ध करे तो अनुचित है, परन्तु यदि राजा और क्षत्रिय होने के कारण वह प्रजा के उपकारार्थ युद्ध करे तो युद्ध भी बहुत ही प्रशंसनीय है, क्योंकि वह भी एक प्रकार का परोपकार ठहरा, जिसका करना कर्म्मयोगी के लिए अत्यन्त उचित है। इस कर्त्तव्य-पालन में फल की आशा त्याग कर यदि वह स्वजनों और गुरुओं तक का वध करे तो कर्त्तव्य-पालनार्थ वह अत्यन्त श्लाघ्य है। इस तर्क को सुन कर अर्जुन का मोह भंग हुआ।

पंडित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए०।
पंडित शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए०।

प्राचीन भारत।

(१)

सुख सभी जिसको तुमने दिये,
विविध रूप धरे जिसके लिए।
न कुछ वस्तु अलभ्य रही जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(२)

न जिसमें जन एक दुखी रहा,
सतत जो सब भाँति सुखी रहा।
कुशल-मङ्गल का गृह था जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(३)

सुन पड़ा न अकाल जहाँ कभी
मुदित निर्भय थे रहते सभी।
विपुल था धन-धान्य भरा जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४)

ऋतु-विपर्यय था न हुआ कभी
अखिल आयु प्रसन्न रहे सभी।
विवश थे सब रोग सदा जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(५)

समय पै घन नीर दिया किये,
स्वजन के सम काम किया किये!
कृषि यथेष्ट सदैव हुई जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(६)

सब मनुष्य जहाँ मतिमान थे,
सब निरोग तथा बलवान थे।
सब जितेन्द्रिय सज्जन थे जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(७)

यदपि वर्ण-विभेद-विचार था,
पर परस्पर ऐक्य अपार था।
कलह-कारक द्वेष न था जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(८)

सदुपदेशक थे द्विज सत्क्रिय
सुजन-रक्षक क्षत्रिय थे प्रिय।
विभव-वर्द्धक वैश्य रहे जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(९)

सुकवि, शिल्पि, गुणी, नट, गायक
कुशल कोविद, चित्रविधायक।
अति असंख्यक थे मिलते जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(१०)

विपुल वाणिज वृत्ति जहाँ बढ़ी
समय के सिर उन्नति थी चढ़ी।
त्रुटि रही न किसी गुण की जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(११)

सब प्रकार परस्पर प्रीति थी,
अति यथोचित उत्तम नीति थी।
लख पड़ी न कुरीति कहीं जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(१२)

सुन पड़ी न कहीं छलछिद्रता
तनिक दीख पड़ी न दरिद्रता।
डर किसी अरि का न रहा जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(१३)

विदित है जिसकी वर वीरता
निरुपमेय रही ध्रुव धीरता।
सब समृद्ध स्वतन्त्र रहे जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(१४)

रति रही सबकी निज धर्म्म में
मति रही सब काल सुकर्म्म में।
गति रही श्रुति-पद्धति में जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(१५)

ऋषि तथा मुनि मङ्गल-धाम थे,
तप जहाँ करते अविराम थे।
प्रचुर पुण्यतपोवन थे जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(१६)

हवन-धूम्र जहाँ न रुका कभी
श्रुति-पुराण-सुधा न चुका कभी।
सुकृत का अति सञ्चय था जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१७)

सुगुण शीलवती कुल-कामिनी
निपुण थीं सब सत्पथगामिनी।
तनिक भी कुविचार न था जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(१८)

रुदन नीर जहाँ न कभी बहा,
श्रवण-गोचर गान सदा रहा।
सतत उत्सव थे रहते जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(१९)

जगत ने जिस के पद थे छुए,
सकल देश ऋणी जिस के हुए।
ललित लाभ कला सब थी जहाँ
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

(२०)

गुण कहाँ तक यों उसके कहें!
उचित है अब तो चुप ही रहें।
सुख कथा दुख-दायक है यहाँ?
अब हरे! वह भारत है कहाँ?

मैथिलीशरण गुप्त।

एलास्का-यूकन-पेसेफिक प्रदर्शिनी।

"लो उदयराम जी, मैं तो कल रात को स्टीमर से सियेटल जाऊँगा।"

"क्यों इतनी जल्दी क्या है?"

"चलेंगे। चलके सियेटल की प्रदर्शिनी देखेंगे।"

"मुझे भी तो प्रदर्शिनी देखनी है?"

आप न जाने कब जावें। पहली जून से प्रदर्शिनी खुली और आप तब से 'आज चलते हैं, कल चलते हैं' कह रहे हैं। पूरे तीन महीने तो आपने इस तरह गुज़ार दिये, बाक़ी डेढ़ महीना और रह गया है, वह भी इसी प्रकार गुज़ार देंगे। न आपको अपने गोरखधन्धे से फ़ुरसत मिले और न प्रदर्शिनी देखनी नसीब हो।

मेरी यह बात सुन कर उदयराम जी हँस पड़े और बोले—"भाई, बात तो सच कहते हो। क्या करें, यह संसार का धन्धा ही ऐसा है। पर यह तो बात निश्चय है कि यदि आपके साथ हमारा जाना न हुआ तो प्रदर्शिनी न देख सकेंगे। अच्छा, आप तीन दिन और ठहरें। पाँच सेप्टेम्बर की शाम को यहाँ से चलेंगे और छः सेप्टेम्बर को सियेटल पहुँचेंगे। छः को प्रदर्शिनी में बड़ा भारी मेला भी है; कहते हैं, सियेटल डे (Seattle Day) है और बहुत लोग उस दिन आवेंगे'।

"अच्छा, तीन दिन और ठहर जाता हूँ; पर इसके बाद न ठहरूँगा।"

"बस इसको पक्की समझिए। पाँच को हम लोग सियेटल चलेंगे।"

❋ ❋ ❋ ❋

बेचारे उदयराम काम-काज की भीड़ में पाँच को भी तैयार न हो सके। मैंने पाँच की सुबह को अपने मित्र विहारीलाल को तारद्वारा सूचना दे दी कि मैं रात के स्टीमर से सियेटल आता हूँ।

(२)

उदयराम जी लुधिआना (पंजाब) के रहनेवाले हैं। जन्म के आप ब्राह्मण हैं। केनेडा आये हुए आपको चार वर्ष हो गये। आपका कारोबार बहुत अच्छा चलता है। एक दूकान है, कुछ ठेका है, ज़मीन ख़रीदी हुई है। 'सर्वे गुणा काञ्चनमाश्रयन्ति, यह इनका परम सिद्धान्त है। यदि सोचें तो इस ज़माने में है भी ठीक। ईश्वर की दया से आपने अच्छा रुपया पैदा किया है; और दिन प्रति दिन कर रहे हैं। सब काम अकेले ही देखना पड़ता है, इसलिए फ़ुरसत कम रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने एक दूसरे मित्र मुंशीरामजी को साथ ले मैंने सियेटल की तैयारी की। मुंशीराम भी पंजाबी हैं और इधर वेंकोवर में ही मेरी इनसे भेंट हुई है। आदमी साधु और शान्त-स्वभाव होने से सर्व-प्रिय हैं। आपसे मेरा घना सम्बन्ध हो गया है।

रात के साढ़े नौ बजे के क़रीब हम लोग केनेडियन पेसेफ़िक कम्पनी के Wharf पर पहुँचे। यूनाइटेड स्टेट्ज़ अमरीका का परदेश-गमन संबन्धीय जो दफ़्तर वेंकोवर में है वहाँ से हमने ज़रूरी काग़ज़ ले लिये थे, इसलिए स्टीमर पर चढ़ने में कोई दिक़्त न हुई। पन्द्रह रुपये जाने आने के फ़ी आदमी लगे। क्योंकि हम लोगों ने वापिसी टिकट लेने में किफ़ायत देखी थी।

स्टीमर में जहाँ हम बैठे थे वहाँ एक केनेडियन अपने एक छोटे लड़के के साथ बैठा था। बातचीत करने से मालूम हुआ कि वह भी प्रदर्शिनी देखने सियेटल ही जा रहा है। वह लड़का कोई आठ वर्ष का होगा, मगर बड़ा समझदार। प्रदर्शिनी की बाबत तरह तरह के सवाल अपने बाप से पूछता था।

लड़का—"पिता, एलास्का-यूकन-पेसेफ़िक प्रदर्शिनी इतना बड़ा नाम क्यों इस मेले का रक्खा गया है।

बाप—"बेटा, तुम अब सो जाओ। कल हम तुमको यह सब बतलावेंगे।"

लड़का—"मुझे तो अभी नींद नहीं आई। जब तक नींद नहीं आती तब तक आप मुझे ज़रूर बतलावें।

बाप—"अच्छा, सुनो। वेंकोवर के उत्तर पश्चिमी ओर एलास्का एक शीत-प्रधान देश है"—

लड़का—(बात काट कर) एलास्का तो मैं जानता हूँ—वही, जहाँ बहुत सी सोने की खाने हैं।

बाप—'हाँ वही! तुम अब जो कुछ मैं कहता हूँ ध्यान से सुनते जाओ। एलास्का यूनाइटेड स्ट्रेट्ज़ गवर्नमेंट के अधीन है। वहाँ आबादी बहुत थोड़ी है; मुल्क बहुत बड़ा है। अच्छा मुल्क है। बहुत सी खाने हैं। अमरीकन गवर्नमेंट चाहती है कि वहाँ जाकर लोग बसें। जिन्होंने वहाँ अपना रुपया व्यापार व ज़मीनों में लगा रक्खा है वह भी चाहते हैं कि लोग आकर बसें। मगर लोग तभी आवें जब उनको एलास्का की बाबत मालूम हो। मालूम कैसे हो? जब तक कोई उनके गुण-गान न करे। यह प्रदर्शिनी एलास्का की चर्चा सभ्य दुनिया में करने के लिए खोली गई है। एलास्का की चीज़ें वहाँ रक्खी गई हैं ताकि लोग देखें और वाक़फ़ियत हासिल करें। इसी लिए इस मेले के पहले एलास्का का नाम आया है।

लड़का—"एलास्का हो गया, अब यूकन के विषय में बतलाइए।'

बाप—"ब्रिटिश कोलम्बिया के दक्षिण में यूकन एक प्रान्त है। यह भी अमरीकावालों के अधीन है और कोई २,००,००० वर्ग मील क्षेत्र-फल में है। योरप तथा दक्षिणी अमरीका के लोग इसके विषय में बहुत कम जानते हैं। एलास्का की तरह वहाँ भी आबादी बहुत कम है, मगर खानें सोने की बहुत हैं। इस यूकन प्रान्त का विज्ञापन सभ्य दुनियाँ में देना यह इस प्रदर्शिनी के उद्देश्यों में से है।

वह लड़का तो ऊँघने लग गया था, इसलिए उसके पिता ने उसको सुला दिया; मगर हम लोग चूँकि उसकी बात ध्यान से सुन रहे थे इसलिए हम लोगों को संबोधन कर कहने लगा:—

"आप लोगों को यह बातचीत दिलचस्प मालूम हुई?"

मैं—"ज़रूर। आप बतलाइए कि यह पेसेफ़िक का नाम इस प्रदर्शिनी के साथ क्यों जोड़ा गया है?

केनेडियन—"पेसेफ़िक, जोड़ने से बहुत कुछ मतलब है। पहले तो यह कि पेसेफ़िक महासागर संबंधीय जो देश व द्वीप हैं उनकी आपस में तिजारत बढ़ाने का उपाय करना; दूसरे पेसेफ़िक तटस्थ जो अमरीकन रियासतें हैं जैसे—वाशिंगटन, केलेफ़ोर्निया, ओरेगन—उनकी उपज और धन-धान्य का ब्यौरा पूर्वीय अमरीकन रियासतों को बतलाना ताकि वहाँ से भद्र लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर आकर बसें; तीसरे पेसेफ़िक महासागर संबन्धीय जो जातियाँ हैं उनका आपस में मेल मिलाप बढ़ाना इस प्रकार लंबी चौड़ी व्याख्या इस 'पेसेफ़िक, शब्द की है।

मैं—"तो क्या यह सब काम इस प्रदर्शिनी से निकल आवेंगे?"

केनेडियन—"ज़रूर। प्रदर्शिनी में दूर दूर से लोग आवेंगे। वे आकर ख़ुद सब चीज़ें इन प्रान्तों की अपनी आँखों से देखेंगे। जाँच-पड़ताल करेंगे। एक दूसरे से मिल कर अपनी तसल्ली करेंगे। आप जानते हैं कि बहुत सी ग़लतियाँ इस प्रकार दूर हो जावेंगी। एक प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्तवालों से मिल कर बहुत सी बातों का यहीं फैसला कर लेंगे। चीन जापान से लोग आवेंगे। अमरीका वालों से जो थोड़ी बहुत उनकी अनबन है वह दूर हो जावेगी, क्योंकि प्रदर्शिनी द्वारा वे समझ जावेंगे कि एक को दूसरे की मित्रता से कितना लाभ है। कितनी तिजारत आपस के प्रेम-द्वारा बढ़ सकती है। यहीं आप वेंकोवर में ही देखिए अभी तीन ही महीने से किस क़दर ज़मीन की क़ीमत बढ़ने लगी है। क्यों? कारण यह है कि प्रदर्शिनी से लोग इधर घूमने आते हैं, ज़मीनें देखते हैं; और अच्छी समझ कर ख़रीदते भी हैं। इस प्रदर्शिनी से अमरीकावालों को तो फ़ायदा होगा ही, केनेडा को बड़ा भारी लाभ पहुँचेगा। अमरीका के बराबर का मुल्क केनेडा है। अमरीका में आठ करोड़ आबादी है। केनेडा में अभी साठ लाख भी नहीं। हम लोग चाहते हैं कि केनेडा की आबादी बढ़े और लोग यहाँ आकर बसें। इस प्रदर्शिनी से बहुत लोग इधर भी आवेंगे। केनेडा की आबादी बढ़ेगी। जंगल कट कर शहर बसेंगे, मुल्क की तिजारत बढ़ेगी और हम लोगों के वारे न्यारे होंगे।

मुंशीराम ने मुझसे कहा, कि एक बात मैं भी पूछ लूँ। मैंने कहा, पूछिए। उस केनेडियन से उन्होंने कहा:—

"क्यों जनाब, आप लोग इतनी जल्दी इस मुल्क को बसाने की फ़िक्र में क्यों है? इतनी जल्दी क्या पड़ी है जो बाहर से लोगों को बुला बुला कर देश आबाद करने की फ़िक्र हो रही है?

यह प्रश्न सुन कर केनेडियन मुसकराया और बोला:—

"आप लोग हिन्दुस्तान से आते हैं न, इसी लिए ऐसा सवाल है। वह भूखा मुल्क है। आबादी ज़ियादा है। मुल्क छोटा है। तिसपर खेती के साइन्टिफ़िक तरीक़े लोग नहीं जानते। इल्म हुनर की तरक्क़ी उस देश में नहीं है। पूरे वैज्ञानिक तरीक़ों से लोग वाक़िफ़ हैं। खाने को बहुत है। बहुत ही उपजाऊ भूमि है, आबादी थोड़ी है। आप सोचें कि देश की सम्पत्ति बिना मेहनत के नहीं बढ़ सकती। करोड़ों एकड़ ज़मीन जो ख़ाली पड़ी है वह कुछ भी देश को फ़ायदा नहीं पहुँचाती। यदि लोग बसेंगे तो उनके द्वारा आमदनी की सूरतें निकलेंगी। हम लोग बड़े बड़े कारख़ाने खोल सकेंगे; हमारी चीज़ें सब दुनिया में बिकने जावेंगी; रुपया आवेगा; देश मालदार होगा, यह बड़ी जाति हो जावेगी। आज यदि हमारा संबंध इँग्लिस्तान से टूट जावे तो यूनाइटेड स्टेट्ज़ केनेडा को अपने साथ मिलाले। हम लोग अमरीकनों का मुक़ाबिला नहीं कर सकते। एक तो हमारे पास धनाभाव से जहाज़ (जंगी) नहीं, दूसरे हमारी आबादी थोड़ी है, इतने सिपाही कहाँ से आवेंगे। इसलिए हम लोगों को अपने देश की आबादी बढ़ाकर धनी और सम्पन्न होना चाहिए ताकि संसार में हमारी भी एक महती जाति बसे और दूसरी जातियों का हमें डर न रहे।"

इस वार्तालाप से हम लोगों को बहुत सी बातें मालूम हुईं। दिल तो चाहता था कि कुछ और भी पूछ पाछ करें, मगर रात अधिक हो गई थी, उस भले आदमी को सोना था; इसलिए हमने उसको धन्यवाद देकर सोने की तैयारी की, और अपने शयनागार में जाकर सो रहे।

112411
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

अग्निबोट बहुत अठखेलियाँ लेता हुआ जा रहा था। प्रातःकाल का शीतल स्वच्छ पवन शरीर को पुलकित करता था। भगवान् सूर्य्यदेव की स्वर्णमयी किरणें डेक पर खड़े यात्रियों को सियेटल नगर की ओर आह्वान करता था। पेसेफ़िक महासागर भी अग्निबोट के साथ खेलता हुआ मन्द मन्द मुसकराता था और उस मुसकराहट में रंग बिरंग इन्द्र धनुष की आभा यात्रियों का मन मोह लेती थी।

हम लोग भी इस सुन्दर दृश्य का आनन्द लेते तथा प्राणायामीय श्वासों से नीरोग पवन का सेवन करते करते सियेटल पहुँच गये। डाक के ऊपर बहुत से लोग अपने इष्ट मित्रों की इन्तिज़ारी में खड़े अग्निबोट की ओर प्रेम भरी दृष्टि से ताक रहे थे। हमारे मित्र विहारीलाल भी खड़े थे। सीढ़ी लगतेही लोग नीचे उतरने शुरू हुए। हम लोग भी उतर आये। विहारीलाल हमें देखतेही दौड़कर आया और हँसता हुआ बोला :—

"आहा कृष्ण! आप आ गये! मैं घंटे भर से खड़ा इन्तिज़ार करता था।"

मैं—(मुसकराकर)—"रही न हिन्दुस्तानियों वाली बातें। भला घंटा भर पहले हैरान होने की क्या ज़रूरत थी। स्टीमर का समय तुमको मालूम थाही नहीं तो टेलीफोन करके पूछ लेते और ठीक समय पर आते।"

मुंशी०—(हँसकर) "विहारीलाल का प्रेम कैसे ज़ाहिर होता।"

विहारी०—"हाँ बेशक, मेरा प्रेम कैसे ज़ाहिर होता"

मैं—"अच्छा चलो प्रेमी, अब प्रदर्शिनी दिखलाओ"

हँसी ठट्ठा करते हम तीनों जने थर्ड एवन्यू पर आये। यहीं से प्रदर्शिनी को गाड़ी मिलती थी। रास्ते में जगह जगह पर हमने ये इश्तिहार मोटे अक्षरों में लिखे देखे!

SEATTLE DAY

Sep. 6

I will be there
200,000 Strong

मैंने विहारीलाल से पूछा कि इससे क्या मतलब है। विहारीलाल ने बतलाना शुरू किया:—

"जबसे प्रदर्शिनी खुली है तबसे तरह तरह के दिन प्रदर्शिनीवाले रखते हैं। आप जानते हैं कि पहली जून से सोलह आक्टोबर तक साढ़े चार महीने प्रदर्शिनी रहना है। साढ़े चार महीने कैसे गुज़रें? उनको गुज़ारने का ऐसा ढँग होना चाहिए कि सब प्रकार के लोग आकर्षित हों और उनका मन न ऊबे। इसीलिए ऐसे ऐसे दिन नियत किये गये हैं जैसे Grocers, Day बनियों का दिन। उस रोज़ सारे शहर के बनिये आवेंगे। Japans Day जापानियों का दिन। उस रोज़ पेसेफ़िक के किनारे जो रियासतें हैं वहाँ बसने वाले सभी जापानी आवेंगे। Farmers, Day किसानों का दिन; सारे किसान उस रोज़ इकट्ठे होंगे और प्रदर्शिनी का आनन्द लेंगे। आज सियेटलवालों का दिन है। यह विज्ञापन प्रत्येक सियेटल निवासी को कहता है कि मेले में आज दो लाख से कम आदमी किसी सूरत में भी न हों। सभी को जाना चाहिए इसी में सियेटल की नाक रहती है। इसीलिए देखो, पाँच पाँच मिनट बाद बिजली की गाड़ियाँ खचाखच भरी हुई प्रदर्शिनी को भाग रही हैं।"

मैं—(खिले चेहरे से) "शाबाश! अब तो तुम होशियार होते जाते हो विहारीलाल!"

विहारी०—(हँसकर) "यूनीवर्सिटी में पढ़कर भी होशियार न हूँगा तो कैसे हूँगा।"

मुंशी०—(विहारीलाल की पीठ ठोककर) "खूब पर सावधान रहना, अभी बहुत से सवाल जवाब होने हैं, प्रदर्शिनी आ लेने दो।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विहारी०—"मैं तैयार हूँ"

इस प्रकार बातें करते हुए गाड़ी में चढ़ गये।

(४)

'प्रदर्शिनी, प्रदर्शिनी' आख़िर हम प्रदर्शिनी के सामने पहुँच गये। दो बड़े बड़े स्तूपों के दरम्यान रंग बिरंगी झंडियाँ सबसे पहले देखने में आईं। यह अमरीका, जापान, इँग्लिस्तान आदि स्वतंत्र देशों के क़ौमी झंडे थे। उन झंडों के नीचे मोटे अक्षरों में 'Seattle Day सियेटल का दिन' लहरा रहा था।

अर्द्धचंद्राकार तीन दरवाज़ों द्वारा स्त्री-पुरुष और बाल-बच्चे अन्दर जा रहे थे। हम लोगों ने भी पहले दरवाज़ों के बाहर जो तीन कोठियाँ थीं, वहाँ से पचास पचास सेन्ट* का एक एक सिक्का ले लिया और अन्दर घुस गये।

घुसतेही मेरी दृष्टि एक विशाल मूर्ति पर पड़ी। यह जार्ज वाशिंगटन का दीर्घकाय bronze statue था। 'Father of the Country देश का पिता' यह शब्द मेरे कान में पड़े जो एक माता अपने बच्चे को वह मूर्ति दिखलाकर कह रही थी। 'Father of the Country' यह शब्द मैंने बार बार दोहराये। पूज्य भरी दृष्टि से मैं उस महान आत्मा की ओर देखता रहा। "सच मुच इसी वीर की हिम्मत से अमरीका स्वतन्त्र हो गया। इसी देश-भक्त ने अपना सर्वस्व अपने देश के अर्पण कर इसको ग़ुलामी से आज़ाद किया था। कैसे कैसे कष्ट इसने सहन किये थे। देश के लिए किस किस की गालियाँ इसने नहीं सहीं। किस हिम्मत और धैर्य्य से इसने अपने देश भाइयों को अति दुख के समय में ढाढ़स दिया था और उनको निराश होने से बचाया था। निस्सन्देह, ऐ जार्ज वाशिंगटन! तुम इस देश के पिता हो और अमरीकन बच्चों के आदर्श हो। नहीं, नहीं, सभी दुःखित देशों के बच्चों के आदर्श हो।

मैं भी निष्काम सेवा की शिक्षा आपसे ग्रहण कर अपनी जननी का दुख दूर करूँ" यह कह मैंने मन ही मन में उस वीर को नमस्कार किया और आगे बढ़ा।

सबसे पहले हम लोग पेस्ट्रीक* की ओर गये क्योंकि बहुत बड़े हुल्लड़ में इमारतों के देखने का मज़ा नहीं आता। वहाँ सब चीज़ आराम से देखने वाली होती है। दर्शक लोग पहले पहल इमारतों पर ही टूटेंगे, इसलिए हम लोग पेस्ट्रीक की ओर चलें।

कैसा मनोहर दृश्य था? छोटी छोटी क्यारियों में बिजली की रोशनी वाले bulbs बड़ी तरतीब से लगाये गये थे। यद्यपि इस समय दिन था, बिजली की रोशनी नहीं थी, पर उनकी सजावट लोभायमान थी। छोटे छोटे वृक्षों में फलों की भाँति बिजली के दीपक लटक रहे थे। 'रात को यह दीप क्याही ग़ज़ब ढायेंगे' यह मैंने मुंशीराम से कहा। मुंशीराम बेचारे हैरान थे। उन्होंने कभी कोई प्रदर्शिनी नहीं देखी थी।

ख़ैर, हम लोग पेस्ट्रीक में पहुँचे। लोगों का धन हरने को यहाँ भाँति भाँति के तमाशे रचे हुए थे। एक बहुत बड़ा चक्र जिसमें पंगूडे लटकते थे, दर्शकों को बहुत ऊँचा ले जाता और कुल प्रदर्शिनी का नज़ारा दिखलाता था। इसके दस आने देने पड़ते थे। जापानियों और चीनियों का बाज़ार देखने में आया। जहाँ चीन जापान से भाँति भाँति की कारीगरी की चीज़ें बिक्री के लिए मौजूद थीं। अन्दरही अपनी अपनी रंग-शालायें भी बनाई हुई थीं जहाँ खेल होते थे।

अमरीकन लोगों ने धन कमाने के हेतु तरह तरह के स्वाँग रचे हुए थे। एक जगह Scenic Alaska

---

* हर एक दर्शक अपना अपना सिक्का लेकर द्वार पर जाता और वहाँ शीशे के बक्स में सिक्का फेंक देता था। तब द्वारपाल चक्र घुमा उसे अन्दर जाने की आज्ञा करता था। लेखक

* Pay Streak पेस्ट्रीक उस गली का नाम था जहाँ हर तरह के खेल तमाशे थे। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एलास्का के दृश्य नामी इमारत के अन्दर पाँच चार घेरेदार नहरें थीं, जिनका पानी एक चक्र के ज़ोर से बह रहा था। एक छोटी सी नौका में पाँच चार दर्शक बैठ जाते थे। किश्ती उन घेरों में से गुज़रती थी। नहर के इर्द गिर्द दीवारों पर मिट्टी से एलास्का के हिम-पर्वती दृश्य बनाये हुए थे। बस इसी के पाँच आने ले लेते थे। एक जगह रूस, एलास्का, न्यूज़ीलेंड आदि के असकीमो इकट्ठे किये हुए थे उनकी झोंपड़ियाँ रहन-सहन का ढँग दिखलाती थीं। दूसरी जगह फिलिपाइन द्वीप से इग्रोटो लाकर रक्खे हुए थे। इग्रोटो उन द्वीपों की जंगली जाति का नाम है जो नंगे रहते हैं और कुत्ते का मांस खाते हैं। इस प्रकार यह सब तमाशे के तौर पर वहाँ थे। निस्सन्देह यहाँ के लोगों को यह बहुत अजीब मालूम होते थे, पर हम लोगों को इन सब जंगली जातियों का नाचना-कूदना अच्छा न लगा।

पेस्ट्रीक में यों तो बहुत सी जगह लोग अपना पैसा ख़र्च कर हँसते खेलते थे, पर हम लोगों ने डेढ़ रुपया देकर एक जगह से ही सारा आनन्द लूट लिया। वह मानीटर और मेरीमेक का जल-युद्ध था। इस जल-युद्ध का ब्योरा इस प्रकार है :—

१८६० में जब यूनाइटेड् स्टेट्ज़ की उत्तरीय और दक्षिणीय रियासतों में हब्शियों की ग़ुलामी के झगड़े के कारण घोर संग्राम प्रारम्भ हुआ तब उत्तरीय रियासतों ने दक्षिणीय रियासतों का जल-मार्ग बन्द कर दिया ताकि उनको योरप से कोई सहायता न पहुँच सके। उस युद्ध में दक्षिणीय रियासतों की गवर्नमेंट की तरफ़ से मेरीमेक नाम का एक लोहे का जंगी जहाज़ बनाया गया था। उस जहाज़ ने एक ही दिन के युद्ध में शत्रुओं के अच्छे अच्छे जहाज़ नष्ट कर दिये। करने ही थे। क्योंकि मेरीमेक अपने ढंग का पहला जहाज़ था। अब तक लकड़ियों के ही जहाज़ों से युद्ध होता था। इस मेरीमेक के बनने की ख़बर उत्तरवालों को भी लग गई थी। उन्होंने मानीटर बनाना आरम्भ कर दिया था। पर वह ठीक समय पर न पहुँच सका। दूसरे दिन जब मेरीमेक फिर युद्ध करने आया तब अपने मुकाबिले में एक छोटे से जंगी जहाज़ को डटा देखा। यह मानीटर था। अब ख़ूब घमासान युद्ध हुआ जिसमें छोटे मानीटर ने अपने शत्रु के ख़ूब दाँत खट्टे किये।

बस, इसी युद्ध की नक़ल दिखलाई गई थी। नक़ल क्यों थी, असल थी। वैसा ही समुद्र, उसमें वैसे ही चलते हुए जहाज़, फिर वैसी ही तोपों का चलना, जहाज़ों में आग लगनी, उनका डूब जाना, मेरीमेक का पहले दिन के युद्ध से विजयी लौटना। रात को वैसे ही अन्धेरी, दिन चढ़ना, मानीटर का आना, उसकी मेरीमेक से मुटभेड़, दनादन तोपों का छूटना, मानीटर की विजय। यह सब इसी तरह दिखलाया गया। न जाने कैसे किया? यह मेरी समझ में नहीं आया। Moving Pictures के ढँग पर ही इसकी रचना थी।

हम तीनों जने इस जल-युद्ध को देख अवाक रह गये। यह दृश्य सारी उम्र नहीं भूलेगा। डेढ़ रुपया देकर दिल को तसल्ली हो गई और जाना कि हमने आशा से बहुत अधिक पाया।

(५)

सात सेप्टेम्बर को प्रातःकाल के कार्य्यों से निश्चिन्त हो खा-पी कर दस बजे के क़रीब मैं और मुंशीराम दोनों प्रदर्शिनी देखने चले। विहारीलाल किसी दूसरे काम के सबब हमारे साथ न आ सके थे और हम लोगों को उनकी कुछ ऐसी आवश्यकता भी न थी।

आज सब बड़ी बड़ी इमारतों के देखने का विचार था। निश्चय किया कि आरम्भ से एक एक इमारत देखें, और आज का सारा दिन तथा दस बजे रात तक प्रदर्शिनी का मज़ा लूटें। जब चित्त भर जावे तब बाहर निकलें।

मुख्य द्वार पर घुसते ही दाहिनी ओर को जो रास्ता जाता था वह तो 'पेस्ट्रीक' की गली थी। ज़रा आगे दाहिने और बायें दो विशाल भवन थे—एक आडिटोरियम, दूसरा फ़ाइन आर्ट्ज़ बिल्डिंग। इन दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

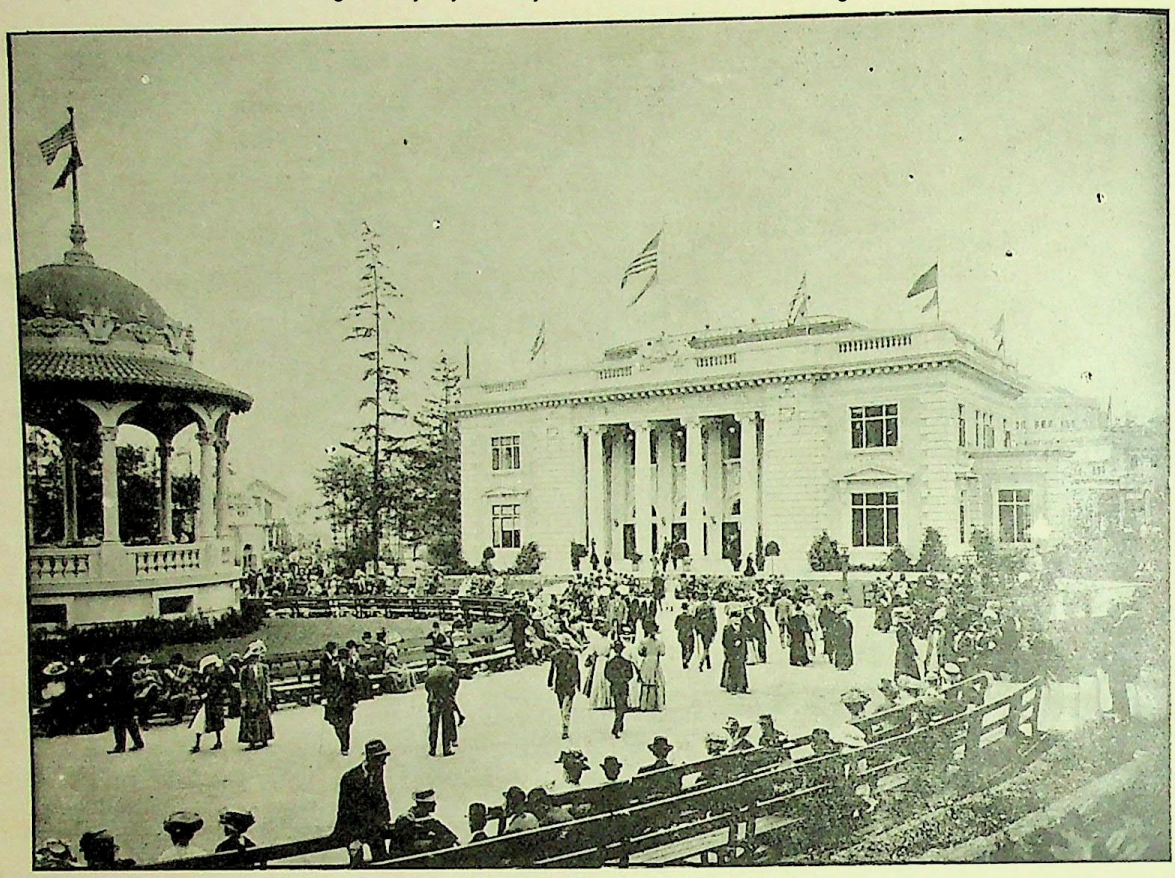

वाशिङ्गटन-स्टेट-भवन ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

फाइन आर्टस बिल्डिङ्ग ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवनों के बीच 'युगेतप्लाज़ा, नाम का एक रम्य स्थान था जहाँ हरी हरी घास की दूब आँखों को आनन्दित करती थी। इसी के बीच में महात्मा वाशिंगटन का दीर्घकाय बुत खड़ा था। हम लोग पहले 'फाइन आर्ट्ज़' भवन के अन्दर गये।

यह भवन उन सात भवनों में से एक है जो प्रदर्शिनी के बाद वाशिंगटन स्टेट यूनिवर्सिटी को मिल जावेगा और जहाँ यूनिवर्सिटी अपना केमिस्टरी हाल सजावेगी। इस इमारत पर स्टेट गवर्नमेंट का छः लाख रुपया ख़र्च हुआ है।

इस भवन के अन्दर फ्राँस, इटली, जरमनी, इँगलैंड आदि देशों के निपुण चित्रकारों के तैल चित्र रक्खे हुए थे। यह वह स्थान था जहाँ महीनों ख़र्च करने से कुछ आनन्द मिल सकता था। हम लोग एक ही घंटे में क्या देख सकते थे। एकसे एक बढ़ कर चित्र—पर्वतों और वनों के नज़ारे, नदी और समुद्रों के किनारे, भेड़ें और गायों के चरवाहे—सब जीते जागते दर्शकों का मन हरते थे। कहीं सुन्दर रमणियाँ अपनी अलौकिक प्राकृतिक छटा में चित्रकार के गुणों को उज्वल करती थीं। कहीं शूर-वीर रण-भट वीरों को वीर-रस पान कराते थे; कहीं प्रीतम अपनी प्रियादत्त प्रेम-रस चख रहे थे। सभी प्रकार के भाव, सभी प्रकार के जीवन वहाँ विद्यमान थे। जो जिसका अधिक प्यारा था, जिसको जो दृश्य अधिक भाता था वह उसीके सामने टकटकी लगाये बुत बना हुआ खड़ा था और दिल में कहता था "काश कि यह चित्र मुझको मिल जाय।"

फाइन आर्ट्ज़ भवन से निकल हम लोग 'आडिटोरियम' में गये। यह भवन भी पक्का ईंटों का बनाया गया है। और इस पर नौ लाख रुपया लागत आई है। यह भी प्रदर्शिनी के बाद वाशिंगटन यूनीवर्सिटी की मिलकियत हो जावेगी। इसमें ढाई हज़ार मनुष्यों के बैठने का स्थान है। दूसरी पक्की इमारतों की तरह यह भी 'अग्नि-संरक्षित' बनाई गई है।

आडिटोरियम से निकल कर हमने मुख्य फाटक वाली सड़क को फिर पकड़ा। 'युगेट प्लाज़ा' के आगे उसी सड़क में 'ओलिम्पिक प्लेस' की क्यारी थी जिसके दहिनी ओर 'एलास्का भवन' और बाईं ओर 'यूनाइटेड स्टेट्ज़ गवर्नमेंट भवन' थे। गवर्नमेंट भवन की चर्चा दर्शकों में बहुत थी इसलिए हम पहले इसी के अन्दर घुसे।

यह भवन गुम्बद की शकल का था जिसमें गेलरी के ढँग की छतें थीं। पहली छत पर दो भाग थे। एक ओर अमरीकन लोगों की शिक्षा के लिए गवर्नमेंट ने 'लाइट हौस' का घूमना तथा जल-भाग में शत्रुओं से रक्षा के उपाय दिखाये थे। उधर ही अमरीका के बड़े बड़े विख्यात देश-भक्तों के चित्र लटकते दिखाई दिये। दूसरी ओर सिक्के बनते थे और छपते थे। इधर अमरीका-देश के जंगलों की बहुत बड़ी बड़ी तसवीरें थी और गवर्नमेंट के जंगल-विभाग की कारगुज़ारी अच्छी तरह दिखलाई गई थी। एक तरफ़ पुराने ढर्रे के जहाज़ बनाकर रक्खे हुए थे और उनका मुकाबिला आधुनिक जहाज़ों से किया गया था।

दूसरी छत पर 'युद्ध-विभाग' का सामान था। १७८५ से लेकर आज तक अमरीकन गवर्नमेंट के इस महकमे में जो कुछ देखने योग्य है वह सब सामग्री यहाँ मौजूद थी। पिछली शताब्दी की तोपें, सिपाहियों की पोशाकें, लड़ाई के जहाज़ यह सब दर्शकों के शिक्षार्थ बनाकर रक्खे गये थे और उनके पास पास आधुनिक तरक्की के नमूने पूर्ण रूप से दिखलाये हुए थे। भयङ्कर ड्रेडनाट भी यहाँ देखने में आया, जो जल पर तैर रहा था। यह सब कुछ अमरीकन गवर्नमेंट ने अपनी प्रजा की आँखे खोलने के लिए किया था। छोटे छोटे बच्च अपनी माताओं से भाँति भाँति के प्रश्न इन दुर्दमनीय जलयानों को देख कर करते थे, वे भी हँसती हुई अपनी सन्तान को अपनी जाति का गौरव विदित कराती थीं। पर मेरे मुँह से यही निकलता था। "इन रुद्ररूप मशीनों का अन्त कहाँ होगा?"

तीसरी छत पर अमरीकन गवर्नमेंट का पोस्ट आफ़िस विभाग, न्यायालय-सम्बन्धी सामान तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा-विभाग की सामग्री थी। इनके अतिरिक्त मन को लुभानेवाला एक और विभाग था उसको 'मत्स्य-विभाग' कहना अनुचित नहीं। यहाँ हर प्रकार की मछलियाँ देखने में आईं। दीवार से लगे हुए स्वच्छ जलों के छोटे छोटे कुंड थे जिन पर मोटा शीशा लगा हुआ था। मशीनों के द्वारा कुंडों में पानी धीरे धीरे आता जाता था। इन्हीं कुंडों में रंग बिरंगी मछलियाँ तैर रही थीं। ऐसी कारीगरी से यह कुंड बनाये गये थे कि ठीक समुद्र या दरिया की तह का बोध हो। ऊपर से रोशनी पड़ती थी और दर्शक लोग मछलियों का एक एक अंग अच्छी तरह देख सकते थे। मैं तो यह सब देख कर बड़ा ही ख़ुश हुआ। जो जन्तु हम किसी सूरत से भी अच्छी तरह न देख सकते थे वे आज वा आसानी से भले प्रकार देखने में आये और फिर इस उत्तम तरीक़े में।

यहाँ से निकल हम लोग 'एलास्का भवन' में पहुँचे। एलास्का की स्वर्ण की खानें प्रसिद्ध हैं। वहाँ की बड़ी बड़ी सुवर्ण की ईंटें देखीं; खानों से निकले हुए अन्य धातु-मिश्रित सोने के बड़े बड़े टुकड़े रक्खे हुए दिखाई दिये। पास ही एक मशीन से मिश्रित सोने को अलग किया जाता था। दूसरी तरफ़ एलास्का के जानवरों की क़ीमती पोस्तीनें लटक रही थीं जिनको पहनना बीसवीं शताब्दी के सभ्य मनुष्य गौरव का कारण समझते हैं। एक ओर 'एलास्का दृश्य' नाम की कोठरी थी। हम लोग उसके अन्दर गये।

देखते क्या हैं कि चाँद चढ़ा हुआ है। हिमालय पर्वत-श्रेणी उस चाँदनी में अवर्णनीय शोभा दे रही है। सामने घाटियाँ हैं, जंगल हैं; अरे यह क्या! धीरे धीरे चन्द्र अस्ताचल पर्वत पर पहुँच रहे हैं। यह लो, वे अस्त हो गये! पौ फटने लगी। धीरे धीरे प्रकाश होता जाता है और घाटियों में श्वेत हिम चमकने लगी है। 'क्या यह जादू है या तिलिस्म?' मैं यह विचार ही रहा था कि एक द्वारपाल ने हम लोगों को दूसरे द्वार से बाहर कर दिया।

घड़ी में देखा कि तीन बज गये हैं। 'मुंशीराम, आओ भाई ज़रा सुस्ता लें' यह कह मैं मुंशीराम के साथ एक बेञ्च पर बैठ गया। जहाँ हम बैठे थे हमारे पीछे 'कारिन्थियन स्तूप' ठीक गवर्नमेंट भवन के सामने विराजमान था। इसी की सीध में 'Cascades जलपतन' और Arctic Circle उत्तरीय वृत्त थे। तीन स्थानों पर थोड़ी थोड़ी उँचाई से पानी एक दूसरे जलकुण्ड में गिरता हुआ उत्तरीय वृत्त में जाता था और वहाँ मध्य से एक बड़ा फव्वारा बहुत ऊँचा उठ कर जल की वर्षा करता था। आध घंटा हम लोग यह मनोहर दृश्य देखते रहे। फिर 'यूरपियन बिल्डिंग' देखने चले।

'जल-पतन' और 'उत्तरीवृत्त' के दोनों ओर चार वृहत् भवन थे। दहिनी ओर 'यूरपीन' और एग्रीकलचरल बिल्डिंगज़, और बाईं ओर 'ओरियंटल' और 'मेन्युफ़ेक्चरिंग बिल्डिंग थीं।

यूरोपियन भवन में जर्मनी, फ़्राँस, आस्ट्रिया, इटली, टर्की आदि देशों की कारीगरी के नमूने मौजूद थे। ख़रीद और फ़रोख़्त का काम भी होता था। जर्मनी के बने हुए खिलौने बहुत चाह से लड़के लोग ख़रीदते थे। बहुत सरसरी तौर से इस भवन में हम घूम गये, फिर 'एग्रीकलचरल' भवन में दाख़िल हुए।

यहाँ पर हर प्रकार के फल देखने में आये। सेब, नाशपाती, अंगूर, संतरा, नारंगी, आड़ू, ख़रबूज़े, तरबूज़ आदि जो जो फल इधर होते हैं सभी जिस प्रान्त में जैसा फल होता है वैसा उस प्रान्त का प्रतिनिधि मौजूद था। इससे दर्शकों को यह पता लगता था कि कहाँ कैसा फल उत्पन्न होता है भूमि के फलदा होने, न होने का बोध होता था। इसी प्रकार अनाजों की संस्था थी। वैज्ञानिक ढँग से अनाज में कैसी तरक़्क़ी हो सकती है इसके उदाहरण मौजूद थे।

"कितनी शिक्षा इन सब चीज़ों को देखकर होती है?" आश्चर्य्य से मुंशीराम ने मुझसे कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलस्रोत-दृश्य ।

कारखानेवालों का भवन (जिसमें अमरीका की बड़ी बड़ी मशीनों तथा यंत्रों के नमूने रक्खे गये थे)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Hari

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

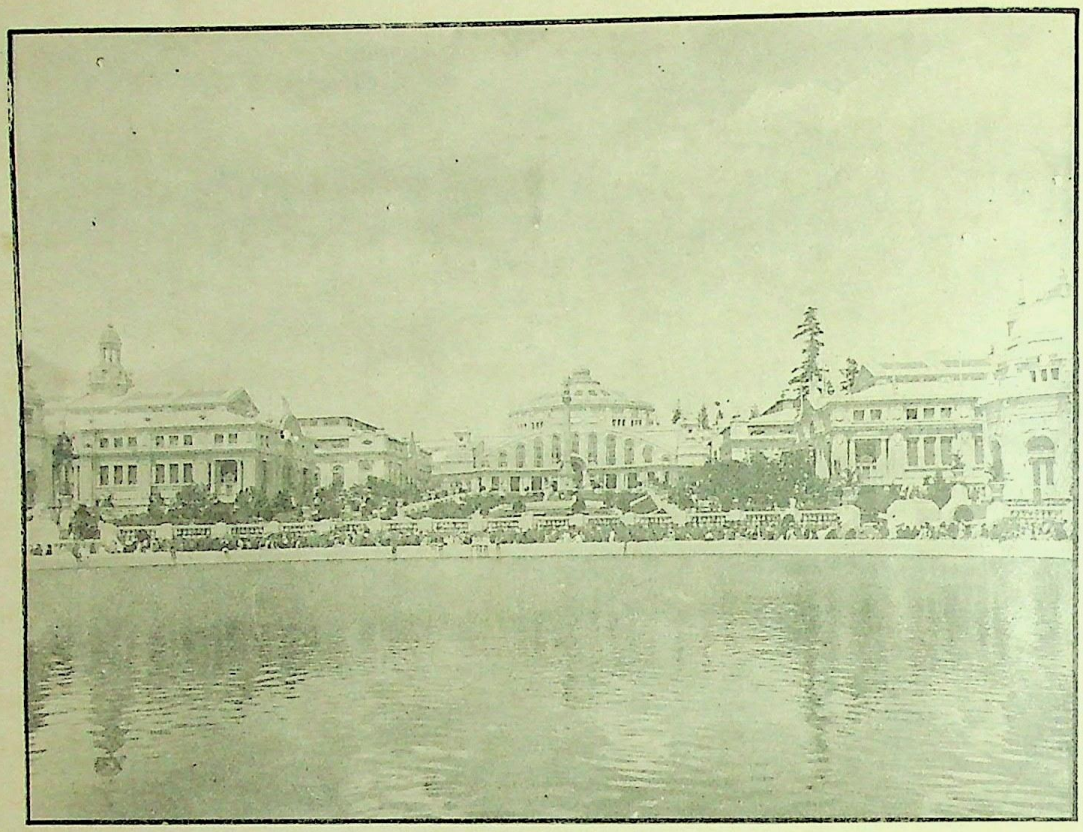

यूनाइटेड स्टेटज़ गवर्नमेन्ट का सुन्दर भवन।

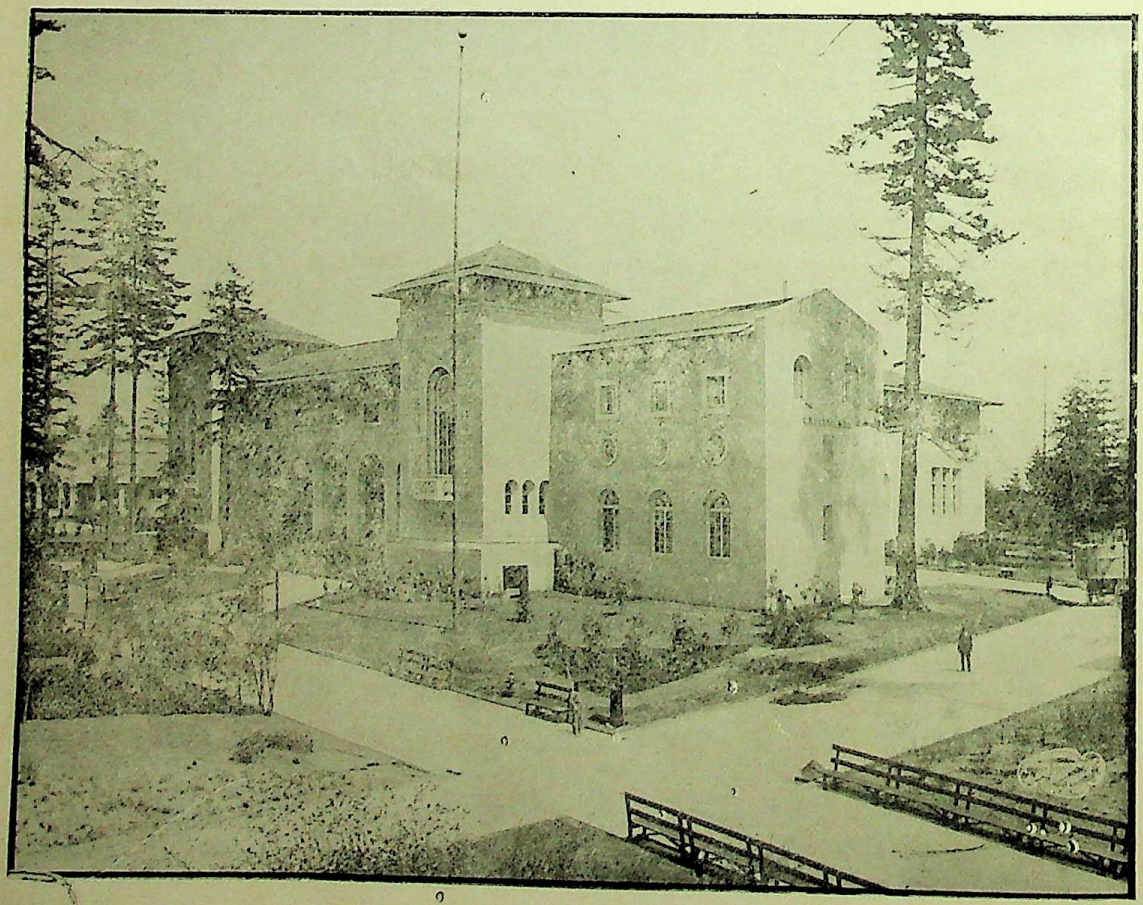

कैलीफोर्निया भवन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बेशक, क्यों नहीं। यह सब बातें किसानों के लिए कितनी मुफ़ीद हैं। यहाँ के किसानों ने इस बिल्डिंग में आकर कितना लाभ उठाया होगा।"

"हा! एक हमारा भी देश है जहाँ अन्धकार में पड़े हुए लोग ज़िन्दगी गुज़ार रहे हैं। वही पुराने हल बैल। उसी से जो कुछ थोड़ा बहुत पैदा हो उसी पर सन्तोष कर भूखे रहते हुए दिन काट रहे हैं। बिचारे समझते हैं कि उनके भाग्य में ही ऐसा बदा है; भूमि कम उपज देती है। पर यह ख़बर नहीं कि अविद्या के गढ़े में पड़ने से यह दुर्गति है। वही भूमि सौगुना अधिक उपजाऊ हो सकती है यदि उसको वैज्ञानिक ढँग से काम में लाया जावे।"

"पर सिखावे कौन?"

"जैसे यहाँ गवर्नमेंट करोड़ों रुपये ख़र्चकर देश के किसानों को सिखाती है इसी तरह हमारी भी गवर्नमेंट को करना चाहिए।"

मैं मुसकरा दिया। मुंशीराम समझ गये कि इस मुसकराहट का अभिप्राय क्या है। ठंडी साँस भरते हुए मेरे साथ साथ भवन से बाहर आ गये।

ओरियन्टल भवन में हमको बहुत देर नहीं लगी। वहाँ अधिकतर इटली की बनी हुई मूर्तियाँ थीं। यूनानी हुनर अभी तक इटली में ही प्रधान है; वहीं के कारीगर संगतराश योरप और अमरीका की ऐसी माँग पूरी करते हैं। बेशक उनका काम बहुत ही उच्च कोटि का है। दर्शक देखकर उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहता।

पर हम तो 'ओरियन्टल' नाम देखकर चौंके थे और समझे थे कि शायद हम अपनी पुण्य भूमि की कोई वस्तु स्पर्श कर अपने आपको धन्य मानेंगे, पर निराशा देवी ने विकट हास्य कर निरादर से हमको बाहर निकाल दिया।

अब मेन्युफेक्चरिंग भवन की बारी आई। यूनाइटेड स्टेटज़ के अन्दर जो जो वस्तु कलों कारख़ानों द्वारा बनती हैं उनकी कम्पनियों ने अपनी अपनी ओर से प्रतिनिधि यहाँ भेजे हुए थे, जो अपनी मेशीनें चलाकर पबलिक को दिखलाते थे कि इस प्रकार उनके यहाँ चीज़ तैयार होती हैं। यह एक प्रकार उन कोठीवालों का इश्तिहार था। लाखों आदमी जो प्रदर्शिनी देखने आये उनको उन कोठीवालों का पता मालूम हो गया। एक जगह कलें रेशम बुन रही थीं वहाँ यदि दर्शक रेशमी रूमाल या और कुछ रेशमी कपड़ा ख़रीदना चाहता उस पर प्रदर्शिनी तथा ग्राहक का नाम बुन दिया जाता था। बड़े बड़े आरे तथा लकड़ी काटने के और अस्त्र, हल, गेहूँ काटने की मशीनें इत्यादि बहुत कुछ धरा था। एक दुकान पर भाँति भाँति के मुरब्बे, अचार रक्खे थे और बेचनेवाली कम्पनी अपने विज्ञापन बाँटती थी। न्यूयार्क, न्यू इँगलड की कपड़ा बेचनेवाली कम्पनियों की बड़ी बड़ी दूकानों के चित्र दर्शकों को दिखलाये जाते थे और उनसे यह आशा की जाती थी कि वे उक्त कम्पनियों का माल ख़रीद।

(७)

संध्या हो गई। बिजली की रोशनी से प्रदर्शिनी के भवन जगमग जगमग करने लगे। गवर्नमेंट भवन का गुम्बज़ कैसा प्रकाशमान था! इधर उधर ऊपर-नीचे सुन्दर क़तारों में बिजली देदीप्यमान थी। इन वृक्षों को देखो विद्युद्दीप कैसी शोभा दे रहे हैं। वह देखो, जलपतन के नीचे विद्युत्-प्रकाश कैसी छटा दिखाता है। सचमुच, प्रदर्शिनी की महिमा रात को ही देखने योग्य है। सड़कों के किनारे छोटे वृक्ष कुंजों में दिन को जो विद्युद्दीप मुक्ताफल सम बोध होते थे, अब तनिक उनकी छवि निहारो!

विद्युद्देवी का अकथनीय प्रभाव देखते हुए हम लोग 'रेनीयर विस्टा' की ओर बढ़े चले गये। अभी बहुत सी इमारतें देखनी बाक़ी थीं। केलेफोरनिया, वाशिंगटन, ओरेगन भवन सब पीछे छोड़ आये थे और बहुत छोटी मोटी इमारतें देखने को थीं, पर दिल में विचार किया कि इतना बहुत है, हमने भर पाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'रेनियर विस्टा' की ओर घूमते घूमते हम लोग वहाँ पहुँचे जहाँ 'Captive Balloon क़दी बैलून' उड़ रहा था। बहुत लोग यहाँ पर खड़े थे, हम भी खड़े हो गये। एक एक डालर इस ग़ुब्बारे पर चढ़ने का देना पड़ता था और दो पुरुष एक बार बैठ सकते थे। ग़ुब्बारा पृथ्वी से सात सौ गज़ के क़रीब ऊँचा जाता था और बहुत थोड़ी देर ठहर कर नीचे उतर आता था। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि यह ग़ुब्बारा मज़बूत तार से बँधा हुआ था।

एक एक डालर देकर हम दोनों जने भी उसी ग़ुब्बारे के पंगूरे में बैठ गये। झट से ग़ुब्बारा ऊपर उठा। मैंने मज़बूती से पंगूरे का रस्सा पकड़ लिया। मुंशीराम ने तो आँखे बन्द कर अपना मुँह पंगूरे में छिपाया और कहने लगे "मैं मरा, मैं मरा"। मैंने कहा "डरो मत मुंशीराम! गिरते नहीं"। देखते देखते हम लोग आसमान में टँग गये। मैं कभी आँखे बन्द करता, कभी खोलता। नीचे देखने का साहस न होता था। यह तो देखा, क्या देखा? कुछ नहीं। मन का भ्रम रहा। हाँ, रोशनी, इधर उधर प्रकाश। चला, नीचे, नीचे, नीचे। मैंने भी कलेजा थामा और मुंशीराम को ज़ोर से चिपट गया।

हाथ पकड़ कर ग़ुब्बारेवाले ने हम लोगों को पंगूरे से निकाला। और एक ओर बिठला दिया। मैं अभी तक मानों स्वप्नावस्था में था। मुंशीराम पहले चैतन्य हुए और मुझे पकड़ कर बोले :—

"चलो राधाकृष्ण, अब घर चलें।"

सत्यदेव—अमरीका।

असि और लेखनी

(१)

करके अरि-शिर-छेद रक्त पीकर मतवाली,
बोली यों तलवार लेखनी से वचनाली।
मम सम्मुख से कालमुखे! क्या तू न टलेगी!
मारूँ मैं यदि आज तुझे तो क्या कर लेगी!

(२)

कुत्सित भोजन तुझे मिले है तू अति दुर्बल,
तोभी तेरा नहीं मिटे आलाप अनर्गल।
है सबको यह ज्ञात अधिक क्या कहूँ आज मैं!
परनिन्दा कर कभी नहीं करती अकाज मैं!

(३)

मम आश्रय जो धरें प्राण सम मुझ को मानें,
वेही सद्यश पाय सदा रहते सुखसाने।
विजयश्री मेलती कंठ में उनके माला,
राजाओं से भी है उनका रंग निराला॥

(४)

दुख पाकर नर दीन नहीं जब धीर धरें हैं,
दुष्टों का कर नाश वीर तब पीर हरे हैं।
घोर अनीति निहार शूर क्रोधित होते हैं,
क्रोध-अग्नि में क्रूर प्राण-आहुति देते हैं॥

(५)

पीतो हूँ नवरक्त शूर का मैं बलवाली,
मैं काली-अवतार जिसे माने हैं कपाली।
बड़े बड़े सम्राट् पूजते मुझको दिन प्रति,
मेरे ही बल से रक्षित है उनकी सम्पति॥

(६)

रहती हूँ रमणीय सदन में मैं सुखशीला,
तू रहतो कठघर में पानी पीकर नीला।
इसी भाँति कटु बैन बहुत बोली असि देवी,
प्रत्युत्तर अब सुनो सरस्वती, के सुठि सेवी

(७)

कहती है लेखनी "अरी! निष्ठुर उतावली!
पीकर तू नर-रक्त हुई है महा बावली!
मैं अपने गुण स्वयं कहूँ क्या! जाने सज्जन,
सद्गुण-सुधा-सरोवर में मैं करती मज्जन"

(८)

शान्ति-लाभ के लिए स्वयं जड़ करली काया,
मिली नहीं है कभी शान्ति की तुझको छाया।
नरहत्या का महा पाप तेरे शिर लगता,
मुझसे तो शत कोश पाप है आगे भगता॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहत् व्याख्यान-शाला ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओरेगन स्टेट-भवन ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(९)

व्यास आदि कवि कालिदास सौनक ऋषि ज्ञानी,
लेखक सत्कवि हुए यहाँ हैं जितने मानी।
मेरी महिमा जान सभी करते थे आदर,
अब भी मेरा मान नहीं कम है जगती पर॥

(१०)

करती है जो महा पराक्रम तू रिपुरन में,
उसको यदि मैं लिखूँ न पुस्तक औ पत्रन में।
तो फिर तेरी कीर्ति कौन जानेगा जग में!
मेरे बिना आपदा आती है पग पग में॥

(११)

वीर भटों से कार्य नहीं जो तू कर पाती,
अनायास मैं उसे लेखकों से करवाती।
लिख लिख कर हो लेख क्रान्ति मैं कर देती हूँ,
भूला भटका देख भ्रान्ति मैं हर लेती हूँ॥

(१२)

राम-कृष्ण ने महावीरता जो दिखलाई,
राना और शिवाजी ने जो कीरति पाई।
उसमें है तेरा सहाय यह बात सत्य है,
मेरे बिना किन्तु वह सारा यश अनित्य है॥

(१३)

लेकर तू असि जन्म पान कर के नर-शोणित,
महागर्व से मत्त हुई करती है अनहित।
मेरा शुभ अवतार जगत् कल्याण-हेतु है,
दीन जनों को दुख-सागर के लिए सेतु है॥

(१४)

होकर तू मदमत्त मुझे अपशब्द न कहना,
पर-निन्दा को छोड़ उचित है जग में रहना।
इतना कह विश्राम यहीं अब मैं लेती हूँ,
'सरस्वती' को यह संवाद दिये देती हूँ॥

लक्ष्मीधर वाजपेयी।

सतसई-संहार।

सहृदय पाठकगण! यह बात अति प्रसिद्ध है कि व्रज-भाषा के साहित्य में "विहारी सतसई" का दर्जा बहुत ऊँचा है, अनूठे भाव और उत्कृष्ट काव्य-गुणों की वह खान है, व्यङ्ग और ध्वनि का आकर है। संस्कृत कवियों में कवि-कुल-गुरु भगवान् कालिदास जिस प्रकार शृंगार-रस-वर्णन, प्रसाद-गुण, उपमालङ्कार आदि के कारण सर्व-श्रेष्ठ माने जाते हैं, उसी प्रकार हिन्दी-कवियों में श्रीयुत महाकवि विहारीलालजी का आसन सबसे ऊँचा है। शृंगार-रस-वर्णन, पद-विन्यास-चातुर्य, माधुर्य, अर्थ-गाम्भीर्य, स्वभावोक्ति, और स्वाभाविक बोल चाल आदि ख़ास गुणों में वह अपना जोड़ नहीं रखते। व्रजभाषा की मधुरता तो जगत्-प्रसिद्ध ही है फिर उसमें विहारी की कविता! "हेम्नः परमामोदः" सोना और सुगन्ध का योग है, अथवा रत्न-जटित स्वर्ण के कटोरे में मिसरी का शर्बत, नहीं नहीं अमृतरस भरा हुआ है, जिसका पान करते ही मन तन्मय हो जाता है। आलङ्कारिकों ने जो काव्यरस को ब्रह्मानन्द-सहोदर माना है, उस की सत्यता का साक्षी अन्तःकरण बन जाता है।

परन्तु बड़े खेद और दुर्भाग्य का विषय है कि कुछ अनधिकारी महापुरुषों ने उस कटोरे में धूल और कीचड़ मिला कर उसे दूषित और भ्रष्ट करने का काम प्रारम्भ कर दिया है। इस सभ्यता की सदी में प्राचीन महा-कवियों को न जाने कौन से दुष्कर्मों का फल उन्हें मिल रहा है, जो इस प्रकार उनकी कविता-कामिनी पर बलात्कार किया जा रहा है। उनकी कीर्त्ति-चन्द्रिका में कालिमा पोतने के नित नये नये ढँग निकल रहे हैं! मानो आज कल के इसी करुणोत्पादक दृश्य को दिव्य दृष्टि द्वारा देख कर कवि-तार्किक-शिरोमणि श्रीवाचस्पति मिश्र ऐसे महापुरुषों से यह हृदय-द्रावक प्रार्थना कर गये हैं। वाचक वृन्द! ज़रा हृदय थामकर सुनिए :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रूराः ! कृतोञ्जलिरयं वलिरेष दत्तः
कायो मया प्रहरतात्र यथाभिलाषम् ।
अभ्यर्थये वितथवाङ्मयपांशुवर्षैः—
मा माविलीकुरुत कीर्तिनदीः परेषाम् ॥

हे क्रूर पुरुषो ! हाथ जोड़ कर तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि अपने निरर्थक—असत्य वचनों की धूल बरसा बरसा कर दूसरों की कीर्त्ति रूप नदियों को गदली मत करो। इसके बदले में अपना यह शरीर तुम्हारी भेट करता हूँ। जैसे चाहो इस पर प्रहार करो, काटो, छाँटो। इस प्रकार तुम्हारी बुरी वृत्ति भी चरितार्थ हो जायगी और दूसरों की कीर्ति भी बच जायगी।

धन्य थे ऐसे उदार-हृदय महानुभाव जो अपना शरीर देकर भी औरों की कीर्ति बचाने का प्रयत्न करते थे।

इस समय इस प्रकार के प्रयत्न की और भी अधिक आवश्यकता है, क्योंकि पूर्वकाल में किसी की कीर्ति को कलङ्कित करने के इतने सुलभ साधन कहाँ थे जितने कि अब हैं! इन साधनों में प्रेस को सबसे मुख्य समझना चाहिए। दूसरे देशों में योग्य मनुष्यों के हाथ में प्रेस का प्रबन्ध होने से उन देशों को प्रेस से चाहे लाभ ही लाभ पहुँचा हो परन्तु हतभाग्य हमारे देश को इससे जहाँ थोड़ा बहुत लाभ पहुँचा है, वहाँ प्रायः हानि अधिक पहुँची है। इसी के द्वारा तो भ्रष्ट और अशुद्ध पुस्तकों का प्रचार दिन दिन बढ़ रहा है इसी के प्रसाद से तो प्राचीन महाकवियों के काव्यों की कलङ्क स्वरूप महा अशुद्ध टीकायें प्रचार पा रही हैं। यन्त्रालयाध्यक्ष या तो अनभिज्ञता से या लोभान्धकार होकर साहित्य को भ्रष्ट करनेवाले इस अनर्थ की ओर ध्यान नहीं देते।

सर्वसाधारण के धन तथा समय की रक्षा करनेवाले सत्समालोचकों के अभाव अथवा मौन से यह व्यापार सांक्रामिक रोग की तरह और भी तेज़ी से बढ़ रहा है। इसके रोकने के लिए एक अच्छे समालोचक पत्र की आवश्यकता है जिसमें प्राचीन काव्यों पर निकलनेवाली दुष्ट टीकाओं की अच्छे प्रकार समालोचना की जाया करे। पर यह हो कैसे! इस ओर लोगों का ध्यान ही नहीं, यदि कोई किसी ऐसे पुस्तक की समुचित समालोचना करने का साहस कर भी बैठे तो समालोच्य विषय पर पक्षपात-रहित होकर ध्यान देना तो एक ओर रहा उलटा बेचारे समालोचक के ही पीछे हाथ धोकर पड़ जाते हैं। हिन्दी-साहित्य-जगत् में इसका उदाहरण हमारे द्विवेदी जी हैं। जिन्होंने सबसे प्रथम निर्भय होकर हिन्दी में समालोचना का मार्ग निकाला है। परन्तु आप जानते हैं उनके साथ क्या सलूक हुआ। उनकी उन अपूर्व समालोचनाओं का कितना प्रचार और आदर हुआ! अस्तु। तथापि हमें यथाशक्ति प्राचीन कवियों की कीर्ति-रक्षा का उपाय करना चाहिए, उनकी प्राण-प्रिया कविता को अनधिकारियों के बलात्कार से बचाने का प्रयत्न करना चाहिए, फल ईश्वराधीन है। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"।

पाठक महोदय! पण्डित-राज की यह उक्ति :—

नैर्गुण्यमेव साधीयो धिगस्तु गुणगौरवम् ।
शाखिनोऽन्ये विराजन्ते छिद्यन्ते चन्दनद्रुमाः ॥

आज कल, कालिदास और विहारीलाल की दशा पर भली भाँति चरितार्थ हो रही है। अन्य कवियों को छोड़ कर, कुछ लोग इन्हीं दो के पीछे पड़े हैं। कालिदास की कविता की जो दुर्दशा एक महापुरुष ने की है, उसको यदि कोई सज्जन देखना चाहें तो द्विवेदी जी कृत 'हिन्दी कालिदास की समालोचना' पढ़ें, और हमारा अनुरोध है कि जिन पाठकों ने उसे अब तक न पढ़ा हो वे ज़रूर पढ़ें। हिन्दी-साहित्य में इस विषय का वह एक ही ग्रन्थ है।

बहुत लोगों की राय है कि किसी की कृति में दोषोद्घाटन करना बुरी बात है। मनुष्य का कोई काम सर्वथा निर्दोष हो ही नहीं सकता। इसलिए जिस प्रकार हंस पानी में से दूध ग्रहण कर लेता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, वैसे ही मनुष्य को भी सारग्राही होना चाहिए। अथवा—

धावतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति साधवः॥

अर्थात् दौड़ते हुए आदमी का कहीं गिरजाना सम्भव है, वहाँ बुरे आदमी तो गिरनेवाले को हँसने लगते हैं, और अच्छे आदमी उसे सँभालते हैं।

यह मत बहुत ठीक है, ऐसाही होना चाहिए। परन्तु जहाँ पानी में दूध बिलकुलही न हो, या दूध के स्थान में सेलखड़ी या खड़िया मिट्टी घुली हुई हो (जिससे दूध का भ्रम होता हो) वहाँ से हंस क्या ग्रहण करे? और जो आदमी साफ़ सुथरी सड़क पर चलता हुआ भी बार बार क़दम क़दम पर ठोकर खाकर मुँह के बल गिरता है उसे कोई कहाँ तक सँभाले!! उसे तो यही कहना पड़ेगा कि "भाई! पहले तुम अपना इलाज कराओ, टाँगों में बल आने दो, फिर, चलने की कोशिश करना। तुममें चलने फिरने तक की ताक़त तो है नहीं, और तुम आँख मीचकर दौड़ना चाहते हो। यह अच्छा नहीं करते।

और यदि वह चलने फिरने में असमर्थ आदमी किसी दूसरे पुरुष के ऐसे पात्र को जिसमें कि उस पात्र के स्वामी का सर्वस्वभूत और सर्वोपयोगी कोई रसमय पदार्थ भरा हो, इस दौड़ धूप में लेकर गिर पड़े, तो इस दशा में वह स्वयं तो चोट खायगा ही, पर उस पदार्थ को भी नष्ट भ्रष्ट कर देगा।

अर्थात् कोई मनुष्य यदि अपनी स्वतन्त्र रचना में किसी विशेष प्रकार की त्रुटि रहने देता है, या भारी भारी अशुद्धियाँ करता है, तो इससे वह अधिकतर अपनी ही हानि करता है—अपनेही ग्रन्थ को अनुपादेय बनाता है, और अपनी ही अनभिज्ञता प्रकट करता है।

परन्तु यही बात यदि किसी प्राचीन ग्रन्थ की टीका या अनुवाद में की जावे तो अनुवादक या टीकाकार अपनी अज्ञता का प्रकाश करने के साथ साथ ग्रन्थकर्त्ता के नाम को भी कलङ्क लगाता है; उसे ऐसी पबलिक में जो उससे अच्छी तरह वाक़िफ़ नहीं है, बदनाम करता है, और उस पर से सर्वसाधारण की श्रद्धा को कम करता है।

क्या ऐसी अवस्था में भी चुपही रहना ठीक है?

मनागनभ्या-वृत्या वा कामं क्षाम्यतु यः क्षमी।
क्रियासमभिहारेण विराध्यन्तं क्षमेत कः॥

जो क्षमाशील पुरुष है वह कई वार थोड़ा थोड़ा अपराध करनेवाले को या एक बार बहुत सा अपराध करनेवाले को भलेही क्षमा कर दे, पर बार बार और एकसे एक बढ़कर अपराध करनेवाले आदमी को कोई कैसे क्षमा करे!

किसी पुस्तक की दसबीस साधारण अशुद्धियाँ क्षन्तव्य हो सकती हैं, पर जो पुस्तक सब प्रकार के दोषों से 'सर्वाङ्गभूषित' हो, और "सर्वसाधारण की बुद्धि में कविवर का आशय प्रकट हो जाय" इस निमित्त सर्वसाधारण के उपयोगार्थ बनी हो, उसके गुण दोष सर्वसाधारण पर अवश्य प्रकट होने चाहिएँ।

'सतसई' की वह टीका जिसपर हम इस समय कुछ लिखना चाहते हैं, खेद है कि इसी प्रकार की है। उसमें दोहों के अर्थों का अनर्थ और भावों का अभाव है। यद्यपि टीकाकार महाशय अलंकारों का नाम नक़ल करते गये हैं, जिससे यह तो पता चल जाता है कि यहाँ अमुक अलंकार था, पर उन्हें इस प्रकार तोड़ा मोड़ा गया है कि उनकी सूरत नहीं पहचानी जाती। कौन किससे कह रहा है, अथवा किसका वर्णन है, इस अत्यन्त आवश्यक बात को जिसे सब प्राचीन टीकाकारों ने लिखा है, और जिसके निर्देश की 'सतसई' जैसे कोषात्मक काव्य की टीका में बड़ी ज़रूरत है, बिलकुलही छोड़ दिया है। मूल पाठ को भी शुद्ध नहीं रहने दिया। उसे भी यत्र तत्र भ्रष्ट करके सन्निवेशित किया है। यह दशा दस पाँच जगह नहीं किन्तु प्रायः सब ग्रन्थ में समान रूप से वर्त्तमान है।

उसमें यदि कोई ख़ूबी है तो यही है कि वह एक सुप्रसिद्ध यन्त्रालय में मोटे काग़ज़ पर सुपाठ्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षरों में छपी है। अकारादिक्रम से दोहों का सूची पत्र भी उसमें है, और बस, हाँ, कहीं कहीं कोई कोई दोहा जो दुर्दशा से बच गया है, इसे भी "अपदोषतैव विगुणस्य गुणः" के अनुसार गुण मान सकते हैं। समालोच्य पुस्तक का पूरा पता देने के लिए हम उसके टाइटिल पेज को ही यहाँ नक़ल किये देते हैं, ज़रा ध्यान से पढ़िए:—

बिहारी-सतसई।

भावार्थ प्रकाशिका टीका सहित

—:०:—

जिसको

विद्वद्वृन्द शिरोमणि-विद्यावारिधि श्रीमत् पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने अति ललित मधुर मुग्ध टीका से सर्वाङ्गभूषित किया है।

—:०:—

वही

नायका भेद-अलंकार वर्णन समेत,

(प्रथमवार)

खेमराज श्रीकृष्णदास ने

बंबई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाख़ाना में

मुद्रित कर प्रगट किया।

कार्त्तिक संवत् १९६०, शके १८२५

पाठक वृन्द! अघटन-घटना-पटीयसी भगवती भवितव्यता बड़ी प्रबल है! आदमी सोचता कुछ है और हो कुछ जाता है! नारद को बनाने बैठता है, पर बन्दर बन जाता है! वह एक सुन्दरी को अति ललित मधुर मुग्ध, अलंकारों से अलङ्कृत करना चाहता है पर उलटा उसका सिर मूँडकर उसे अति विकृताकार बना डालता है!

जिस प्रकार समुद्र में पड़कर वाडव ज्वाला से भागीरथी का सुधा से भी मधुर जल खारी हो जाता है। वही दशा विद्यावारिधि जी की ज्वाला के प्रसाद से बिहारी की अमृत-प्रवाहिणी कविता-तरङ्गिणी की हो गई है। कोई ऐसा आदमी जो बिहारी की कविता को मूल पर नहीं समझ सकता, या जिसने उसकी अन्यान्य टीकायें नहीं पढ़ी हैं, वह यदि विद्यावारिधिजी की टीका को पढ़कर अपनी राय क़ायम करना चाहे तो यही कहेगा कि:—

(असमाप्त)

पद्मसिंह शर्म्मा

मंगल-ग्रह के निवासियों से बातचीत की सम्भावना।

आजकल युरोप में इस बात पर वाद विवाद छिड़ा हुआ है कि मंगल ग्रह पर मनुष्य रहते हैं या नहीं। पश्चिमी ज्योतिषियों ने अभी तक जो बातें मंगल-ग्रह के विषय में ठीक की हैं उनका सविस्तर वर्णन सरस्वती के पाठक पढ़ही चुके हैं।

मंगल-ग्रह में पानी के अभाव के कारण प्रलय प्रारम्भ हो गया है। मंगल पृथ्वी से बहुतही पुराना है। वह ऐसी अवस्था को पहुँच गया है कि अब उसकी जल-राशि सूख रही है। हमारी पृथ्वी की भी अंत में ऐसी ही अवस्था हो जायगी। जीवन को क़ायम रखनेवाली सभी चीज़ें मंगल पर पृथ्वी ही की तरह हैं। वहाँ के दिन-रात यहाँ से कुछ बड़े होते हैं। पर ऋतु सब यहीं की तरह होती हैं। हमारे साल से वहाँ का साल दुगुना बड़ा होता है। मंगल-निवासियों के बारे में भिन्न भिन्न प्रकार के अनुमान किये गये हैं। पर एक बात पक्की है। वह यह कि मंगल में आकर्षणशक्ति पृथ्वी की आकर्षणशक्ति की एक तिहाई से अधिक नहीं है। अतएव जिस मनुष्य की तौल यहाँ ग्यारह सेर होगी उसकी तौल वहाँ चार सेर से अधिक न होगी। यहाँ बीस मील चलने से जितनी थकावट होगी वहाँ उतनी थकावट पचास मील चलने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी। पर सबसे कौतूहल-वर्द्धक अनुमानों की जड़ मंगल में दिखाई देनेवाली वे रेखायें हैं जिन्हें लोग नहर कहते हैं। इनको लोग केवल तीस वर्ष से जानने लगे हैं। यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि वे क्या हैं। पर सबसे अधिक विश्वसनीय बात यह मालूम होती है कि जिस तरह मिश्रदेशवाले नील नदी से नहरें निकालकर अपने खेत सींचते हैं उसी तरह मंगलवाले भी नहरें निकालकर ध्रुव से गले हुए बर्फ़ के पानी को अपने देश में चारों ओर ले जाते हैं। वहाँ जल का इतना अभाव है कि यदि मंगलवाले इन बड़ी बड़ी नहरों द्वारा ध्रुव-प्रदेश से जल न लाते तो जलाभाव के कारण कभी मर गये होते। यदि यह बात सत्य है तो मंगल-निवासी अवश्यही इंजीनियरी विद्या में बड़े निपुण हैं, क्योंकि ये नहरें अवश्य ही बहुत बड़ी बड़ी होंगी।

इन नहरों की चौड़ाई और रंग बदलता रहता है। कभी वे ख़ूब साफ़ दिखाई पड़ती हैं और कभी धुँधुली सी। इसका कारण लोग यह बताते हैं कि जब ध्रुवों से इन नहरों में पानी अधिक आता है तब इनके किनारे घास पात अधिक उग जाते हैं। इससे नहरें विशेष रूप से साफ़ साफ़ दीख पड़ती हैं। यदि यह बात सत्य है तो यह भी मानना पड़ेगा कि मंगल-निवासी अपनी इंजीनियरिंग के कला-कौशल से अपने को केवल इन नहरों के किनारे जीवित रक्खे हुए हैं और उस ग्रह के और अंश जलाभाव के कारण अब मनुष्य-निवास के योग्य नहीं है। जो मंगल-निवासी ख़ूब बलिष्ठ और कलाकौशल में सबसे निपुण हैं, वही इस समय इन नहरों के किनारों को आबाद किये हुए हैं। क्योंकि जब उस ग्रह में पानी का अभाव प्रारम्भ हुआ होगा उस समय जलयुक्त स्थानों पर अधिकार जमाने के लिए लोगों में अवश्यही घोर युद्ध हुआ होगा। और, जो लोग सबसे अधिक योग्य रहे होंगे उन्हीं को जय-लाभ हुआ होगा। दूसरी बात यह है कि इन नहरों को क़ायम रखने और समय समय पर साफ़ करने के लिए कलाकौशलसम्पन्न होना अत्यावश्यक है। अन्यथा नहरें कुछ काल में भर गई होतीं और फिर उनके द्वारा पानी न आने के कारण सर्वनाश होगया होता।

इस समय मंगल पृथ्वी के अतिही निकट है। उसके विषय में अनेक बातों की खोज बहुत आसानी से की जा सकती है। पर दूरबीनों की और अधिक उन्नति किये बिना इन नहरों के विषय में और अधिक बातों का जानना अभी सम्भव नहीं है। सम्भव है कि नई नई बातें हमें मंगल के विषय में अचानक मालूम होजायँ; क्योंकि इस समय बहुत से बड़े बड़े पंडित उस ग्रह की ध्यान-पूर्वक देख भाल कर रहे हैं। इनमें सबसे मुख्य अध्यापक नौबेल है। यह भी सम्भव है कि एक न एक दिन हम लोग मंगल-निवासियों के साथ विशेष चिह्नों द्वारा बातचीत करने में समर्थ हों। सम्भव है कि पहले पहल वे केवल हमारे चिह्नों का बिना समझे बूझे उत्तर दें। पर जब कभी हो, हम अगस्त ही के महीने में ऐसा करने में समर्थ होंगे; क्योंकि अगस्त में मंगल पृथ्वी के बहुत निकट रहता है। यदि कमसे कम हमें यह भी मालूम होजाय कि मंगल में ऐसे बुद्धिमान् लोग रहते हैं जो हमारे चिह्नों के अभिप्राय को समझ सकते हैं तो यह बात हमारे बड़े काम की होगी। क्या अजब है कि इस समय भी मंगलवासी हमारी ओर देख रहे हों और हमारे ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा भी कर रहे हों।

गंगोत्तरीप्रसादसिंह।

रामचरितमानस में भगवद्गीता।

महात्मा तुलसीदास के रामचरित-मानस का महत्त्व आज समस्त हिन्दू-धर्मावलम्बियों को मालूम है। इतनाहीं नहीं किन्तु विलायती विद्वानों ने भी उसे मान्य ठहराया है और अपनी मातृभाषा में उसका अनुवाद किया है। आज हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह दिखाते हैं कि हमारे ज्ञान-भाण्डार भगवद्गीता के कितने सिद्धान्त हमारे रामचरितमानस में पाये जाते हैं। महात्मा तुलसीदासजी बहुश्रुत और बहुज्ञ थे। उन्होंने ग्रन्थ-परिशीलन बहुत किया था। "नानापुराणनिगमागम" के सिद्धान्त उन्हें ज्ञात थे। इन सिद्धान्तों को अनेक प्रकार से उन्होंने रामचरित-मानस में व्यक्त किया है। इसी कारण भगवद्गीता के श्लोकों का भाव, रामचरितमानस में कहीं कहीं ज्यों का त्यों आगया है, कहीं कहीं उसका रूपान्तर हो गया है, और कहीं कहीं कुछ न्यूनाधिक भी हो गया है।

(१)

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन !।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१६॥
तेषां ज्ञानी नित्यमुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥१७॥
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥१८॥

—भ० गी०, अ० ७।

नाम जीह जपि जागहिं जोगी।
बिरति बिरंचि-प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा।
अकथ अनामय नाम न रूपा॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ।
नाम जाहि जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिँ लव लाये।
होहिँ सिद्ध अनिमादिक पाये॥
जपहिँ नाम जन आरत भारी।
मिटहिं सुसंकट होहिं सुखारी॥
राम-भगत जग चारि प्रकारा।
सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥
चहूँ चतुर कहँ नाम अधारा।
ज्ञानी प्रभुहिँ बिसेषि पियारा॥

—प्र० सो० (नाम-माहात्म्य)।

(२)

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥१५॥

—भ० गी०, अ० ७

(अ) हरि-माया-बस जगत भ्रमाहीं।
तिन्हहिँ कहत कछु अघटित नाहीं॥
+ + +
निज भ्रम नहिँ समुझहिँ अज्ञानी।
प्रभु पर मोह धरहिँ जड़ प्रानी॥

—प्र० सो० (उमा-शिव-संवाद

(आ) माया-बस मतिमंद अभागी।
हृदय जवनिका बहु बिधि लागी॥
ते सठ हठ-बस संसय करहीं।
निज अज्ञान राम पर धरहीं॥

—प्र० सो० (उमा-शिव-संवाद

(३)

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥१४॥

—भ० गी०, अ० १३

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन-रहित सकल-रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन-बिनु परस नयन-बिनु देखा।
ग्रहइ घ्रान-बिनु बास असेखा॥

—प्र० सो० (उमा-शिव-संवाद

(४)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ ८ ॥

—भ० गी०, अ० ४

जब जब होइ धरम कै ग्लानी।
बाढ़हिँ असुर अधम अभिमानी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब तब प्रभु धरि बिबिधि सरीरा।
हरहिँ कृपानिधि सज्जन-पीरा॥
असुर मारि थापहिँ सुरन्ह राखहिँ निज श्रुति-सेतु।
जग बिस्तारहिँ बिसद जस राम-जनम कर हेतु॥
—प्र० सो० (उमा-शिव-संवाद)

(५)

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
संभावितस्य चाऽकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते॥ ३४॥
—भ० गी०, अ० २।

मैं सोइ धरम सुलभ करि पावा।
तजे तिहूँ पुर अपजसु छावा॥
संभावित कहुँ अपजस लाहू।
मरन-कोटि-सम दारुन दाहू॥
—द्वि० सो० (राम-सुमंत-संवाद)

(६)

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
* विकारांश्च †गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान्॥ १९॥
—भ० गी०, अ० १३।

माया ईस न आपु कहँ जान कहिय सो जीव।
बंध मोच्छप्रद सर्वपर माया- प्रेरक सीव‡॥१८॥
—तृ० सो० (राम-लक्ष्मण-संवाद)

(७)

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि॥ ३०॥
—भ० गी०, अ० २।

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा।
जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥
—च० सो० (बालि-वध)

(८)

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥ १३॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ १४॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥ १५॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥ १९॥
—भ० गी०, अ० १२।

विषय अलम्पट सील गुनाकर।
पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी।
लोभामरष हरष भयत्यागी॥
कोमलचित दीनन्ह पर दाया।
मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
सबहिँ मानप्रद आपु अमानी।
भरत प्रान-सम मम ते प्रानी॥
बिगत काम मम नाम-परायन।
सांति बिरति बिनती मुदितायन॥
सीतलता सरलता मइत्री।
द्विज-पद-प्रीति धरमजनयित्री॥
सम दम नियम नीति नहिँ डोलहिँ।
परुष बचन कबहूँ नहिँ बोलहिँ॥

निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पदकंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुन-मंदिर सुख-पुंज॥३८॥
—स० सो० (भरतरामसंवाद)

(९)

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥ १७॥
—भ० गी०, अ० १२।

इस श्लोक की दूसरी पंक्ति का भाव इस पंक्ति में जान पड़ता है:—

त्यागहिँ कर्म सुभा-सुभ-दायक।
भजहिँ मोहिँ सुरनर मुनि-नायक॥
—स० सो० (भरतराम-संवाद)

---

* इच्छा, द्वेष, सुख-दुख आदि बंधनकारक विकार।
† अमानित्व, अदंभित्व आदि मोक्षकारक गुण।
‡ शिव।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१०)

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥
—भ० गी०, अ० ७।

ज्ञानवंत कोटिक महँ कोऊ।
जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ।
तिन्ह सहस्र महँ अब सुख-खानी।
दुर्लभ ब्रह्म-लीन विज्ञानी ॥
—स० सो० (उमाशिव-संवाद)

(११)

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास॥४५॥
—भ० गी०, अ० ११।

इस श्लोक के प्रथम दो चरणों का भाव नीचे लिखे हुए दोहे की प्रथम पंक्ति से मिलता है:—
जो नहिँ देखा नहिँ सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवन बिधि जाइ॥८०॥
—स० सो० (उमाशिव-संवाद)

(१२)

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ २ ॥
—भ० गी०, अ० १४।

मम माया-सम्भव परिवारा।
जीव चराचर बिबिध प्रकारा ॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाये।
सब तें अधिक मनुज मोहिँ भाये ॥
—स० सो० (उमाशिव-संवाद)

(१३)

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥२९॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥३०॥
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥३२॥
—भ० गी०, अ० ९।

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा।
जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ॥
भगति-हीन बिरंचि किन होई।
सब जीवहु सम प्रिय मोहिं सोई ॥
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी।
मोहि प्रान प्रिय अस मम बानी ॥

\+ \+ \+ \+

अखिल बिस्व यह मम उपजाया।
सब पर मोहि बराबरि दाया ॥
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया।
भजइ मोहि मन बच अरु काया ॥

पुरुष नपुंसक नारि नर जीव चराचर कोइ।
भगति भाव भजि कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥८५॥
—स० सो० (उमा-शिव-संवाद

रामचरितमानस के इस अवतरण की तीसरी पंक्ति में "अस मम बानी" कहकर महात्मा तुलसीदास जी पाठकों को यह सूचित करते हैं कि श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण परमात्मा ने ऐसा कहा है।

(१४)

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥२
—भ० गी०, अ० २

जेइ तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान।
जिमि नूतन पट पहिरई नर परिहरइ पुरान ॥१०१॥
—स० सो० (उमा-शिव-संवाद

(१५)

(अ) ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥७॥
—भ० गी०, अ० १५

(आ) सत्व-रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥
—भ० गी०, अ० १४

ईश्वर-अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेा माया बस भयउ गोसाईं।
बँधेउ कीर मरकट की नाईं॥
—स० सो० (उमा-शिव-संवाद)

(१६)

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥५३॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्यं अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥५४॥
—भ० गी०, अ० ११।

इन श्लोकों का भाव, रूपान्तर से, नीचे के दो अवतरणों में जान पड़ता है:—

(अ) नाना कर्म धर्म व्रत दाना।
संजय दम जप तप मख नाना॥
\+ + + +
जहँ लगि साधन वेद बखानी।
सब कर फल हरि-भगति भवानी॥
—स० सो० (उमाशिव-संवाद)*

(आ) तब मैं हृदय बिचारा जोग जज्ञ व्रत दान।
जाकहँ करियसेा पइहउँ धर्म न एहिसम आन४८
—स० सो० (राम-प्रति वसिष्ठ-कथन)

* सप्तम सोपान में उमा-शिव-संवाद बहुत बड़ा है। इस संवाद के गर्भ में कागभुसुंडि-गरुड़-संवाद और राम-कागभुसुंडि-संवाद ये दो और हैं। पर हमने इस लेख में ऊपर "उमा-शिव-संवाद" का ही हवाला सब जगह दिया है; क्योंकि महात्मा तुलसीदासजी ने यही रक्खा है। वे इस संवाद के अन्त में और रामचरितमानस के अन्त में कहते हैं:—

यह सुभ संभु-उमा-संवादा।
सुख-संपादन समन विषादा॥
भव भंजन गंजन संदेहा।
जनरंजन सज्जन प्रिय एहा॥
राम उपासक जे जग माहीं।
एहि सम प्रिय तिन्ह के कछु नाहीं॥

श्रीमद्भागवत का भी एक उदाहरण, सहज ही, मिल गया है उसे भी हम यहाँ देते हैं:—

(१७)

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं,
प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं,
पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा॥

नरतनु भवबारिधि कहुँ बेरो।
सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुरु दृढ़नावा।
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
जो न तरइ भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निन्दक मंदमति आतम-हन-गति जाइ॥४४॥
—स०सो० (राम का पुरवासियों के प्रति उपदेश)

लक्ष्मीधर वाजपेयी।

जलरूपी वायु।

जिस तरह उत्तरीय ध्रुव तक पहुँचने के लिए बड़े बड़े खोज करनेवाले वर्षों से उद्योग कर रहे हैं, उसी तरह उत्साही, धीर, वैज्ञानिक पदार्थ-विद्या के उत्तरीय ध्रुव तक पहुँचने की चिंता में वर्षों से डूबे हुए हैं। पदार्थ-विद्या के उत्तरीय ध्रुव से मेरा अभिप्राय पदार्थों की उस अवस्था से है जब उनमें उष्णता बिलकुल ही नहीं रहती (Absolute cold or Zero)। भूगोल-सम्बन्धीय देशों के खोज लगानेवाले उत्तरीय ध्रुव तक पहुँच गये—डाक्टर कुक और पीरी की कहानी कहने से यहाँ कुछ प्रयोजन नहीं, क्योंकि पाठक इस विषय में बहुत कुछ जान चुके हैं—परन्तु वैज्ञानिकों के लक्ष्य का अभी कहीं पता नहीं।

कई बातों के देखने से मालूम होता है कि पदार्थों की उष्णता बिलकुल निकाली जा सकती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और इस तरह वे नितान्त शीतावस्था में पाये जा सकते हैं (Absolute cold)। थर्मामिटर, जो मनुष्य के लिए इतना उपयोगी है और जिसे आप सब अच्छी तरह जानते हैं, उसमें जब रूमर (Reumer) और फ़ेहरन हैट (Fahrenheit) ने डिगरियाँ लगाईं तब वे यह मानते थे कि नमक और बर्फ़ पारे की कुल गर्मी खींच लेते हैं और इसी लिए उस नुक्ते या स्थान पर जहाँ वे समझते थे कि पारे की कुल गर्मी खिंच गई ०° लगाई। पर यह बात अब सबको विदित है कि गर्मी आईस लेंड (Iceland) स्विटज़ बर्जन (Spitzbergen) और कनाडा (Canada) में इस नुक्ते अर्थात् ०° से ९०° कम है और पारा स्वयं ०° से ४०° कम पर जमता है अर्थात् अपनी कुल गर्मी दे देता है। इससे प्रतीत होता है कि वैज्ञानिक भी धीरे धीरे मंज़िलेमक़सूद को आ रहे हैं, अपने लक्ष्य तक पहुँचने ही वाले हैं। वैज्ञानिकों के मत में गर्मी वह शक्ति है जो वस्तुओं या पदार्थों के परमाणुओं में (Molecules of matter) हर्कत या संचलन-शक्ति (Vibrations) पैदा करती है। इस विचार से जितनी जिसमें उष्णता होगी उतनी ही उसमें संचलन-शक्ति होगी। यदि उष्णता कुछ भी न हो तो संचलन-शक्ति भी कुछ न होगी। वस्तुओं या पदार्थों का प्रत्येक कण जब तक उसमें उष्णता है हर्कत में है। इसलिए यदि पदार्थ-विद्या का उत्तरीय ध्रुव पाना हो तो किसी पदार्थ की कुल उष्णता निकाल डालो और ऊष्मा की शक्ति को ०° पर ले आओ।

अनुमान से कहा जा सकता है कि पृथ्वी के वायु-मण्डल (Earth's atmosphere) के बाहर बस यही दशा गर्मी की रहती है अर्थात् हम लोगों के हिसाब से वहाँ उष्णता लेश मात्र नहीं। यह सबको विदित है कि हर एक वस्तु तीन हालतों में रह सकती है, पार्थिव या पृथ्वी-रूप (solid) जल-रूप (liquid) और वायु-रूप (gaseous)। पृथ्वी की उष्णता धीरे धीरे घटती जाती है। बहुत सी वर्तमान पृथ्वी और जलरूप वाली चीज़ें किसी समय में वायु-रूप में थीं और बहुतेरी वायु-रूप और जल-रूपवाली चीज़ें स्थल या पृथ्वी रूप में हो जायँगी। इसी तरह एक समय ऐसा आवेगा जब सारी वस्तुएँ उष्णता-शून्य हो जायँगी अर्थात् म जायँगी और इस भूगोल की भी वही दशा होगी जो चन्द्रमा की अब है यानी जीवन-रहित हो जायगा।

वैज्ञानिक अपनी रससंस्कार-शालाओं (Laboratories) में जो यत्न इस उष्णता की शून्य डिगरी प्राप्त करने का करते हैं वह इस प्रकार है वायु को जल-रूप वायु में परिणत करते हैं, फिर जल-रूप वायु को पृथ्वी-रूप वायु में। ठीक इसी तरह जैसे जल जब भाप की सूरत में होता है तब उसमें बहुत गर्मी होती है, जब अपने रूप में होता है तब कम, और जब बरफ़ की शकल में होता है तब कुछ भी नहीं। यह यत्न आज से नहीं किन्तु बहुत दिनों से हो रहा है। सन् १८२३ ई० में फ़राडे (Faraday) ने (Chlorine) क्लोरीन (एक तरहकी वायु को) वायु रूप में परिणत किया। सन् १८९८ में फ़राडे के शिष्य प्रोफ़ेसर देवार (Dewar) ने हाइड्रोजन और हेलियम (Hydrogen and helium) को जल रूप बनाया। इससे मालूम हुआ कि कोई वायु सदा एक हालत में नहीं रह सकती।

इस उपाय के बतलाने से पहले कि हर तरह की वायु किस तरह जल-रूप (liquid) में परिणत की जाती है यह कहना आवश्यक है कि वायु (gas) क्या वस्तु है। और वायु, जल और पृथ्वी रूपों में मुख्य भेद क्या है। मुख्य भेद उस शक्ति का है जिसे संयोजक शक्ति (cohesion) कहते हैं। यह संयोजक शक्ति पदार्थों के परमाणुओं को बलात् एकही जगह रखती है। जिस हिसाब से पदार्थों में यह शक्ति कम या ज़्यादा होती है उसी हिसाब से वे पदार्थ एक या दूसरे रूप में हुआ करते हैं। वायु (gas) में यह संयोजक अर्थात् मिलाने वाली शक्ति बिलकुल नहीं होती। उसके परमाणु जहाँ तक हो सके एक दूसरे से दूर रहना पसन्द करते हैं। इसीलिए जब तक परमाणु एक जगह रहने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगें तब तक वायु (gas) जलरूप में (liquid) नहीं बदल सकती।

मैं अपने अभिप्राय को एक उदाहरण देकर प्रकट करता हूँ। ज़रा एक कमरे का ध्यान कीजिए जिसमें कुछ रबर के गेंद हैं। सब गेंद एकही तरह के हैं और एक दूसरे को अपना जानी दुश्मन समझता है। हर एक की यही इच्छा है कि दूसरे से जितनी दूर हो सके भाग जाय। नतीजा यह होगा कि गेंद एक दूसरे से हर तरफ़ बराबर की दूरी पर जा डटेंगे। बाहर की तरफ़ वाले गेंद अपनी शक्ति भर कमरे की दीवार को दबावेंगे। अब अगर और गेंद कमरे में डाल दिये जायँ, तो कुल गेंद फिर हिसाब से स्थान पा जायँगे। पर अब दीवारों पर ज़ोर अधिक पड़ेगा और गेंदों में एक दूसरे से भागने की इच्छा अधिक हो जायगी। बस वायु (gas) का भी यही हाल है। गेंद की जगह पाठक वायु (gas) के परमाणु समझलें। गेस (gas) अर्थात् वायु जिस बर्तन में रक्खा जाता है उसकी दीवारों पर ज़ोर करता है क्योंकि उसके परमाणु एक दूसरे को ज़ोर के साथ भगाते हैं। एक पात्र में जितना वायु हो उससे अधिक भरना मानों वियोजक-शक्ति और उष्णता का बढ़ाना है। और अगर उष्णता निकाल ली जाय तो वियोजक-शक्ति कम हो जाती है और परमाणु एक दूसरे से अलग रहना पसन्द नहीं करते। बस, पाठक, आपको ज्ञात हो गया होगा कि किसी वायु को जल-रूप में लाने के लिए उसके परमाणुओं को जहाँ तक हो सके एक दूसरे के नज़दीक लाना चाहिए और उनकी उष्णता-शक्ति को निकाल लेना चाहिए। इसलिए वायु पर ख़ूब दबाव डाल कर उसे ठंडा करते हैं।

वायु को जल-रूप में लाने के लिए बड़ी बड़ी क़ीमती कलों की ज़रूरत है। इसलिए साधारण मनुष्य के सामर्थ्य से यह विषय बाहर है।

इस कार्य में सफलता प्राप्त करने का सौभाग्य सबसे पहले दो रूसी वैज्ञानिकों को हुआ। परन्तु अध्यापक देवार को जो सफलता प्राप्त हुई वह अब तक किसी को नसीब नहीं। अध्यापक देवार ने जो पहला पाइंट (pint) बनाया था उसमें ८०० पौंड अर्थात् १२००० रुपये के लग भग ख़र्च हुए थे। अब २ पाइंट से ज़्यादा बनाया जा सकता है।

कलें चाहे जितनी कठिन जान पड़ती हों परन्तु यह समझना कि वायु को किस तरह जल-रूप में लाते हैं कुछ मुश्किल नहीं। मामूली वायु सुखाकर और साफ़ करके एक पात्र में रक्खी जाती है। उस पर फ़ी इञ्च १२५० सेर का दबाव डाला जाता है और ठंडे पानी से वह बराबर ठंडी रक्खी जाती है। थोड़ी वायु कभी कभी उसमें से निकाल दी जाती है और वह ठंडी होकर पात्रवाली वायु के चारों तरफ़ घूमा करती है। उसूल यह है कि वायु फैलने में अपनी उष्णता त्याग देती है। इसी तरह बराबर उस पात्रवाली वायु को ठंडा करते जाते हैं; यहाँ तक कि वह बूँद बूँद करके जल-रूप में परिणत हो जाती है। यह जल-रूप वायु फिर यत्न से वायु-रहित पात्रों में रक्खा जाती है।

अब जल-रूपी वायु के कुछ गुण भी सुन लीजिए।

१—अगर जल-रूपी वायु को बरफ़ पर डालें तो वही तमाशा देखने में आता है जो जल को ख़ूब गरम लोहे पर डालने से देखने में आता है। जल-रूपी वायु बरफ़ पर गिरतेही सिसकती हुई भागती है। कारण यह कि बरफ़ में जल-रूपी वायु (liquid air) से ३४४° अधिक उष्णता है।

२—अगर भाप में जल-रूपी वायु छोड़ दें तो भाप तुरन्त बरफ़ बन जाता है। कारण यह कि भाप जल-रूपी वायु (liquid air) को भाप बनाने (evaporate) की कोशिश में अपनी ही उष्णता खो बैठता है और बरफ़ बन जाता है।

३—जल-रूपी वायु कलों और इंजिनों के चलाने के काम में आसकती है परन्तु कसर यह है कि वह बाहर निकलने पर (जो कलों के चलने के लिए ज़रूरी है) इतनी सर्दी फैलाती है कि कलें जम जाती हैं और इंजनही नहीं काम कर सकता। परन्तु सब धातु की कलों का यह हाल नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—अगर हम जल-रूपी वायु में हाथ डालें तो जलानेवाली सर्दी जैसी होनी चाहिए न मालूम होगी। कारण यह है कि हाथ की गर्मी से उसके आस पास की जल-रूपी वायु, वायुरूप होती रहती है और इस तरह हाथ जल-रूपी वायु के स्पर्श से जिससे हाथ में ज़ख़्म होना सम्भव है बचा रहता है।

५—जल-रूपी वायु का बीज-रूपी जीवन (embryonic life) पर अद्भुत असर होता है। एक वैज्ञानिक का कथन है कि उन्होंने क़रीब १०० अंडों के जल-रूपी वायु में उबाले। परन्तु वह किसी अंडे से फिर बच्चे न निकाल सके। लेकिन जौ, मटर इत्यादि कुछ दाने जो जल-रूपी वायु में डाले गये और ५ दिन के बाद तक निकाल कर बोये गये तो बराबर जमे।

६—बहुत से हानिकारक बीज, जल-रूपी वायु से मारे जा सकते हैं और शरीर के किसी भाग को स्पर्शशून्य (local anæsthetic) करने के काम में भी वह आ सकती है। पारा लोहे की तरह कड़ा हो जाता है, शराब (alcohol) और क्लोरोफ़ार्म (chloroform) बहुत जल्द जम जाते हैं।

७—जल-रूपी वायु कितनेही गेसेज़ (gases) को जैसे कोल गेस (coal gas), कार्बानिक एसिड गेस (carbonic acid gas) वग़ैरः को जल-रूप कर देती है। पानी जो जल-रूपी वायु में डाला जाता है वह फ़ौरन जम जाता है।

८—धातुओं की तनने की ताक़त (tensile) जल-रूपी वायु में डालने से बहुत कुछ बढ़ जाती है। रबर शीशे की तरह कड़ा हो जाता है। सीसा (lead) ईस्पात हो जाता है। चमड़े पर कुछ असर नहीं होता। हाथी-दाँत को जल-रूपी वायु में डाल कर थोड़ी देर तक तेज़ रोशनी के सामने रखने से उसमें यह ताक़त आ जाती है कि अँधेरे में वह थोड़ी देर तक रोशनी दे सकता है।

९—जल-रूपी वायु स्फोटकों (explosives) का भी काम दे सकती है। आपसे आप जल-रूपी वायु स्फुटित नहीं कर सकती क्योंकि आक्सीजन जो उसका एक भाग है दूसरी चीज़ को जला सकता है, ख़ुद नहीं जल सकता और नाइट्रोजन जो दूसरा भाग है वह किसी तरह जलाया ही नहीं जा सकता। उसकी स्फोटक शक्ति उसके फैलने की शक्ति पर निर्भर है। एक क्यूबिक इञ्च जल-रूपी वायु के बनाने के लिए एक क्यूबिक-फ़ुट वायु की ज़रूरत होती है तो २ क्यूबिक इञ्च जल-रूपी वायु को १ क्यूबिक इञ्च जगह फैलने को चाहिए। हवा से भरे हुए बर्तन में जल-रूपी वायु भरने से स्फोट (explosion) होगा। अगर थोड़ी सी रुई पर कोयले के ज़र्रे डाल कर उसको जल-रूपी आक्सीजन में डुबावें और जलावें तो डाइनामाइट से बढ़ कर स्फोट होगा। जर्मनी में इससे पहाड़ वग़ैरः उड़ाने का काम लेते हैं।

१०—जल-रूपी वायु से कला-कौशल, तिजारत वग़ैरः को भी लाभ पहुँच सकता है। इसकी मदद से मांसादि चीज़ें मुद्दत तक ताज़ी रह सकती हैं और दुनिया के हर हिस्से में भेजी जा सकती हैं। इससे गरम मुल्कों में बर्फ़ बनाई जा सकती है। जल-रूपी आक्सीजन और जल-रूपी नाइट्रोजन बहुत सस्ते तरीक़े से प्राप्त किया जा सकता है। खानें उड़ाई जा सकती हैं। गेस जल-रूप किये जा सकते हैं। कल व इंजिन चल सकते हैं। वैद्यक को तो बड़ी ही मदद मिल सकती है। जीवन के लिए यह कब तक उपयोगी है इसका उत्तर भविष्य देगा।

सरयूनारायण त्रिपाठी।

भगवान् बुद्ध-देव

(अ) प्रस्तावना

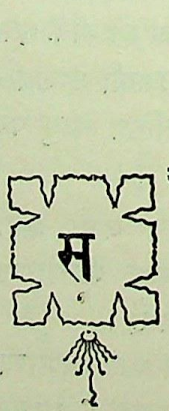

सरस्वती के पाठकों को याद होगा कि कुछ महीने हुए पेशावर के पास भगवान् बुद्ध-देव की चार भस्मावशेष अस्थियाँ ज़मीन के नीचे खोद कर से प्राप्त हुई थीं। दुःख की बात है कि बुद्ध-देव के विषय में सारे देश में बड़ी प्रचण्ड अनभिज्ञता फैली हुई है। पुराणों के पढ़ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सुननेवालों को तो भगवान् विष्णुदेव ने संसार को बहकाने के लिए बुद्ध-देव का अवतार लेकर नास्तिकता का प्रचार किया। और शंकर स्वामी ने अपनी प्रबल युक्तियों से बौद्ध-मत के चिथड़े चिथड़े कर बौद्ध भारत को वेद की शरण में ला सनातन हिन्दू-धर्म का पुनरुज्जीवन किया। अँग्रेज़ी पढ़े हुए पुरुषों को भी बुद्ध-देव और उनके सात्विक धर्म्म के विषय में कुछ ऐसी ही ऊटपटाँग बातें स्कूल और कालिजों में पढ़ा दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त हम इन परम पूज्य देवता के जीवन और दुःखमोचन, पापहरण उपदेशों से बिलकुल ही अनभिज्ञ हैं। जिस परम पुरुष को तिहाई दुनियाँ पूजती है, जिसके उपदेश में करोड़ों स्त्री-पुरुषों को शान्ति और आनन्द प्राप्त होता है, जिसका जीवन सर्वोत्कृष्ट और परम पवित्र है, जिसकी शिक्षा का आदर ईसाई-धर्म से असंतुष्ट यूरोप अहर्निश अधिक कर रहा है, जिसके धर्म को कई बातों में, अब सभ्य संसार अपूर्व और सर्वोच्च स्वीकार करता है, बड़े शोक की बात है कि उसके देश-वासी ही उससे और उसके धर्म से विमुख हों। जो सारे संसार में पूजा जाता है, वही अपने देश में अनजान और असम्मानित पड़ा रहे। जो कुछ अत्याचार हम लोगों ने बुद्ध-देव और बौद्ध-धर्म पर किये हैं, वे अनेक और क्रूर हैं। हमारी कृतघ्नता की कथा बड़ी लम्बी और दारुण है। पर अब हमको इस कलंक के मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए, इस अपयश को दूर करने पर कटिबद्ध होना चाहिए। इस मूर्खता और कृतघ्नता के कारण भारत को असह्य दुःख भोगने पड़े हैं। इस ही पाप के कारण भारत सभ्यता के शिखर से लात खाकर ज़मीन पर गिर गया, और नाना प्रकार के दुख भोगने पड़े। क्योंकि संसार का यह अटल नियम है कि जो जाति अपने महापुरुषों को भूल जाती है, वह अवश्य नाश को प्राप्त होगी। महापुरुषों की पूजा ही जाति-जीवन का एकमात्र आधार है, जाति के प्राण-रक्षा का बीज-मंत्र है, सर्वोन्नति का गूढ़ रहस्य है। महापुरुष ही जाति के महान् आदर्शों को अपने जीवन में निरूपण (represent) करते हैं; उन्हीं के जीवन की कथा को स्मरण कर के जाति उन आदर्शों को भूल नहीं जाती, वरन् उनको अपने में अनुभव करने का सदैव प्रयत्न किया करती है। पर जब कोई जाति अन्धकार में पड़ अपने इतिहास को भूल जाती है, जब अपने महात्माओं को विस्मरण कर देती है, तब साथ ही साथ उन उच्च आदर्शों को भी भूल जाती है, और तुच्छ सांसारिक वासनाओं की पूर्त्ति में लग कर अधःपतन के मार्ग का अनुसरण करती है। फिर तो उस जाति का नाश होना केवल समय की बात रह जाती है। पर पतित जाति का उद्धार भी जनमेजय महाराज की तरह पूर्व-पुरुषों की कथा के सुनने और विचारने ही से होता है। ठीक यही बात आज कल भारत-वर्ष में दृष्टि-गोचर हो रही है। देश भर में एक कोने से दूसरे कोने तक जातीयता की लहरों की उमंगें फैल गई हैं। और साथ ही साथ भारत-वासियों को अपने इतिहास में भक्ति उत्पन्न हुई है, वे अपने पूर्वपुरुषों को श्रद्धा और प्रेम से पूजने लगे हैं, और उनकी पावन कथाओं को सुनने की प्रबल अभिलाषा उन के हृदय में पैदा हुई है। इन सब महात्माओं में श्रेष्ठ अग्रगण्य श्रीभगवान् बुद्ध-देव हैं। इसी से मैं उनके पावन चरित्र को पाठकों की भेंट करने का साहस करता हूँ।

(इ) बुद्ध-देव का समय

बुद्ध-देव का जन्म कब हुआ, ठीक ठीक हमको नहीं मालूम। उनके समय का कोई इतिहास नहीं है। और न कोई उनकी जीवनी, जो उनके किसी शिष्य ने लिखी हो, मौजूद है। सबसे पुरानी पुस्तक जिसमें बुद्ध भगवान् का ज़िक्र आता है उनकी मृत्यु से लगभग १०० वर्ष बाद की लिखी हुई अनुमान की जाती है। और उनकी जो जीवनी मिलती भी हैं वह बिलकुल ही आधुनिक हैं, और जनश्रुति और कथा-कहानियों से भरी होने के कारण अविश्वसनीय हैं। जो कुछ ज्ञान हमको महात्मा बुद्ध-देव के बारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में है वह बौद्ध-धर्म की पुरानी पुरानी पुस्तकों से चुन कर निकाला गया है, जिनके विषय में फिर किसी समय मैं एक स्वतंत्र लेख लिखूँगा।

ऐसी अवस्था में कोई भी आश्चर्य नहीं यदि बुद्ध के जन्म-समय के विषय में विद्वानों में बड़ा मत-भेद हो। इसका पता पाठकों को तब लगेगा जब उनको यह मालूम होगा कि तिब्बत की बौद्ध-धर्म-पुस्तकों के अनुसार बुद्ध-देव ने लगभग ८०० वर्ष विक्रमीय संवत् के प्रारम्भ के पूर्व जन्म लिया था; और एक विद्वान् के अनुसार आज से कोई २३०० वर्ष बीते बुद्धावतार इस संसार में अवतरित हुआ। पर Vincent Smith और Rhys David से सहमत होकर मेरी राय में भगवान् का जन्म लगभग ४८९ वर्ष विक्रमादित्य से पूर्व हुआ था। महामहोपाध्याय मन्मथनाथ शास्त्री, एम०, ए०, एम० आर० ए० एस०, अपनी पुस्तक 'Buddha' में इसी मत का प्रतिपादन करते हैं। और मद्रास के 'Indian Review' में एक भारतवासी विद्वान् ने इस मत के समर्थन में अनेक उत्कट प्रमाण और युक्तियाँ दी थीं, जिससे शंकाओं का समाधान पूर्ण रूप से हो जाता है।

विक्रमादित्य के पूर्व की छठवीं शताब्दी मानव-इतिहास में चिरस्मरणीय है। इसी शताब्दी में भारत में भगवान् बुद्ध का, चीन में कनफूशियस का और फ़ारस देश में ज़रदस्त का जन्म हुआ था। इस शताब्दी में संसार में नये नये विचार पैदा हुए जिन्होंने मानव-इतिहास को बदल दिया। यह शताब्दी धार्मिक संसार के लिए बड़े महत्त्व की है। प्रचलित धर्म में असंतोष, पुराने देवताओं में अविश्वास, पशु-हत्या और पशु-यज्ञ से घृणा, कर्म-काण्ड का आधिक्य और उसकी उपयोगिता में लोगों की अश्रद्धा, चारो ओर फैली हुई थी। नये नये भाव लोगों के हृदय में अंकुरित होने लगे थे, नई नई अभिलाषाओं का संचार होने लगा था, जिनको पूरा करने में प्रचलित धर्म असमर्थ था। चारो तरफ़ भूतकाल का प्रभाव आदमियों के दिल से उठ गया था। उनमें वर्त्तमान से अश्रद्धा और असंतोष हो गया था, और भविष्य अन्धकाराच्छादित था। सब लोग एक ऐसे पुरुष की प्रतीक्षा कर रहे थे जो उनकी शंकाओं को निवारण करे, जो उनकी जलती हुई आत्माओं को सदुपदेश और सद् ज्ञान से परितृप्त करे। उस समय में असंतोष और प्रतीक्षा (Longing), अविश्वास और निराशा, अशान्ति और विचारों की अराजकता घर घर में व्याप रही थी। समय बड़ा नाज़ुक था और महान् विचारों के फैलाने और उनकी वृद्धि के लिए क्षेत्र तैयार था। विचार रूपी बीज के बोने की देरी थी; उसके अंकुरित होने और पल्लवित होकर पुष्प लगने की देरी न थी। ऐसा समय संसार के इतिहास में सैकड़ों वर्षों बाद आया करता है, पर समय आने पर मानव-समाज एक भारी पलटा खा जाता है जिसका प्रभाव सदैव के लिए उस पर बना रहता है। ऐसा ही समय १४ वीं—१५ वीं ईसवी शताब्दी में था। जब इटालियन रिनेसन्स Italian Renaissance और Reformation ने सारे यूरोप की नींव कंपा डाली, और पोप का तख़्त उलट दिया। जब राजाओं की शक्ति के ह्रास रूपी शंखनाद ने यूरोपी आकाश को गुंजा दिया, तबसे अंधकार की जगह प्रकाश, अन्धविश्वास की जगह बुद्धि और ज्ञान, फलित ज्योतिष की जगह गणित ज्योतिष, झूठे तर्क की जगह वैज्ञानिक (Scientific) अन्वेषण, मनुष्य समाज में आदर और सत्कार पाने लगे हैं। इसी समय भारत में तुलसीदास, नानक, कबीर, सूरदास, चैतन्य, तुकारामादि संत और धर्म-गुरु पैदा हुए क्योंकि योरप और एशिया दोनों में धार्मिक हलचल मची हुई थी।

ऐसा ही समय आजकल इस बीसवीं विक्रम शताब्दी में फिर आया है। पर इस समय धार्मिक तूफ़ान अपनी प्रचण्डता से सारे संसार को नहीं हिला रहा है; इस समय जातीयता की लहरों ने सारा एशिया आस्फालित कर दिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तंत्रता की जय चारों तरफ़ हो रही है; लोकमत की विजय इँगलैंड में; अब्दुल हमीद की पराजय और नव-टर्की की जीत, फ़ारस में प्रजा-सत्तात्मक राज्य का स्थापन, चीन में जागृति, जापान की आश्चर्यजनक उन्नति, और भारत का सचेत होना इस नूतन शक्ति के प्रदर्शक हैं। विचार करने से मालूम होता है कि मनुष्य-समाज के नियम बड़े ही जटिल और गूढ़ हैं। समाज बराबर लगातार उन्नति के मार्ग पर नहीं चली जाती। देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि आगे की तरफ़ एक लम्बी छलाँग भर कर, समाज या तो वहीं पर ठहर जाती है, या कुछ फिर पीछे हट जाती है, और फिर थोड़े समय के अनन्तर आगे को छलाँग मारती है। समाज के जीवन-काल की गणना सौ पचास वर्षों से नहीं, सहस्रों वर्षों से की जाती है। थोड़े से नये विचार कुछ थोड़े से आदमियों के हृदय में उत्पन्न होते हैं। धीरे धीरे वही विचार समाज में फैलने लगते हैं। रेल, तार और छापेख़ाने के अभाव से विचारों के फैलने में बहुत समय लग जाता है। समाज धीरे धीरे उन विचारों के धारण करने के लिए परिपक्व होता जाता है। और परिपक्वता को प्राप्त होने पर वेही विचार, जिनका प्रादुर्भाव कुछ पुरुषों के हृदय में हुआ था, सर्व-मान्य हो जाते हैं। बहुत काल तक समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए यही विचार काफ़ी होते हैं। पर समय एक सा नहीं रहता, स्थिति में सदैव अन्तर पड़ता रहता है, नई नई घटनायें हुआ करती हैं। समाज की आवश्यकतायें घटती बढ़ती रहती हैं, पुराने सिद्धान्त परिवर्तित अवस्था में काम के नहीं रहते। नई नई ज़रूरतें पैदा होती हैं, नये प्रश्न उठते हैं, जिनका कोई भी उत्तर नहीं मिलता। अशान्ति और असंतोष फैल जाता है, जिनको हमारे बाप-दादा पूजते और मानते चले आये हैं उनसे विश्वास उठ जाता है, उनमें अश्रद्धा पैदा हो जाती है। नये प्रश्नों को हल करने के लिए नये सिद्धान्तों की ज़रूरत होती है। परिवर्तित अवस्था में समाज को खन्दक और खाइयों से बचाकर सुगम मार्ग पर ले चलनेवाले पथ-प्रदर्शकों की आवश्यकता होती है। ऐसे समय में समाज, संकट और दुःख से व्याकुल होकर, अज्ञान के अन्धकार में फँसा हुआ चिल्ला उठता है "तमसो ज्योतिर्गमय"! श्रीकृष्ण महाराज ऐसे ही समय की तरफ़ इशारा करके कहते हैं।

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

भगवान् श्रीकृष्ण का कथन अक्षरशः सत्य है। जब समाज की यह दशा होती है तब महापुरुष का जन्म या अवतार अवश्य होता है। वह अपने जीवन का आदर्श समाज के सामने रखता है, वह घबड़ाये हुए मनुष्यों को बताता है कि सत्य मार्ग कौन सा है, किस मार्ग से चलना चाहिए, क्या अमंगलकारी है, किसके करने में उनको शान्ति और आनन्द प्राप्त होगा और क्या क्या उनके कर्त्तव्य हैं? जीवन रूपी भवसागर को पार करने के लिए उपदेश रूपी नौका का आश्रय समाज लेता है। उसकी शिक्षा सब शंकाओं को नाश कर देती है। अशान्ति और असंतोष को भस्म कर डालती है। ऐसे जगद्गुरु महापुरुष जो उपकार संसार का अपने उपदेश से करते हैं वे महान् हैं, और उस ऋण की पूर्ति कृतज्ञ संसार तभी कर सकता है जब उनके जीवन को मनन करते हुए उनकी शिक्षा को सच्चे हृदय से अपने जीवन में बर्तने पर कटिबद्ध हो जाय।

मैंने इस विषय के इस अंग पर इतने विस्तार से इसलिए लिखा है जिसमें पाठक के हृदय में यह बात अच्छी तरह बैठ जावे कि महापुरुष और उसके समय में बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। महापुरुषों का जन्म योंही अकस्मात् नहीं हो जाता। महापुरुष अपने समय की प्रवृत्तियों का फल होता है।

उसमें ही समय की आशा और अभिलाषा, समय के उच्च भाव मूर्तिमान् होकर अवतरित होते हैं, और उसकेही द्वारा फलित होते हैं। वह अपने समय की मुख्य और सबसे प्रबल विचार-प्रवृत्ति को अपने जीवन में प्रतिबिम्बित करता है। अर्थात् महापुरुष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने समय का विधेय होता है (A hero is the creature of his times) इसलिए किसी महापुरुष का जीवन ठीक ठीक समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसके समय से अच्छी तरह परिचित होलें। किसी महापुरुष को उसके समय से अलग करके देखिए, तो उसका जीवन अर्थ-रहित मालूम पड़ेगा, उसके कार्यों के भावों को ठीक ठीक हम नहीं समझ सकेंगे और उसके उपदेश वे मानी प्रतीत होंगे। समय का आत्मा (Soul) उसका महापुरुष है; उसका सार तत्त्व वही महात्मा है। पर महापुरुष के जीवन को दो तरह से देखना चाहिए। एक तो वह अपने समय का विधेय (Creature) होता है, दूसरे वह अपने समय का विधाता भी होता है। नये नये विचारों को फैलाकर अपने समय में रूपान्तर पैदा कर देता है, समाज की काया को संशोधन से पलट देता और समय के विचार-प्रवाह को परिवर्तित, कर देता है या किसी नवीन विचार-शैली का प्रचार करता है। महापुरुष को उतना ही ज़्यादा महान् समझना चाहिए जितने ही ज़्यादा उसके भाव और विचार दूर से दूर भविष्य में होनेवाली घटनाओं को ज़ाहिर करें। ऐसी अवस्था में यदि भगवान् बुद्धदेव के जीवन को ठीक ठीक हमें समझना है, तो उनके समय में भारत की क्या अवस्था थी, वह भी अच्छी तरह जान लेना चाहिए। अतः उस समय के आर्य्यावर्त की धार्मिक और सामाजिक दशा पर विशेष रूप से अब हम विचार करेंगे।

(असमाप्त)

वेङ्कटेशनारायण।

शिशिर-वर्णन।

दसन कटाकट सो गति की खटाखट है,
अङ्गन को कम्प वेग पूरन जतायो है।
स्वास संग भाफ जो कढ़त धूम धार सोई,
इन्धन है अन्न आग पेटी पेट भायो है॥
रैन को अराम बिसराम कलधाम को है,
चाक चिकनैबो तन तेल जो लगायो है।
कारज किराचिन लै धावत धरातल पै,
शिशिर शरीर देखो अङ्गन बनायो है॥
(पूर्ण

कोहिरा को अङ्ग रङ्ग कज्जल सो सोहत है,
ओसकन झाला मद झरना झिरत है।
प्रबल प्रचण्ड पौन सुंडादण्ड सी उदण्ड,
ताके फटकार चण्ड करहू डिरत है।
कमल दलन हिमदन्तन दलन कीन्हो,
ह्वै कै मदमत्त तरु तरु सों भिरत है।
भनत मुकुन्द लोक लोकन को त्रास देत,
सिसिर मतङ्ग मतवारो सो फिरत है॥
(मुकुन्द

तेजवन्त तरनि तुषार सों ससेटो देखो,
ओर अगनेय भोर ही ते सकलित है।
सुकवि नवीनजू मयङ्कहू ससङ्क भयो,
कोकीहू ससोकी कोकनद न खिलत है।
बूँद सो दिवस भारी रजनी पहार भई,
घाम चाँदनी सो बात बज्र सी पिलत
झाला सी झरत ओस भवन हिमाला भये,
अवनि अकास अम्बु पाला उगिलत है
(नवीं

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव-रहस्य ।

(१)

दूध पीने वाले अन्य जीव जिस तरह के ढाँचे पर बने हैं उसी पर मनुष्य बना है । बन्दर, चमगादड़ और सील मछली के शरीर में हड्डियों का क्रम एक साही पाया जाता है। नस और रग-पट्ठे भी एक ही से हैं। मनुष्य के मस्तिष्क में जैसी दरारें और पर्त्त हैं आरेंग नाम के बन्दर के भेजे में भी उनका चिह्न देखा जाता है ।

शरीर की बनावट एक सी ही होने के कारण पशुओं के बहुत से रोग मनुष्य को लग जाते हैं । पागल कुत्ते के काटने से आदमी भी पागल हो जाता है। प्लेग से जहाँ मनुष्य मरते हैं वहाँ बन्दर भी लुढ़कते हैं। मनुष्य की भाँति बन्दरों को भी मोतियाबिन्द और दस्तों की बीमारी होती है। दूध के दाँत निकलने में कष्ट होता है । ओषधियों का गुण भी एक सा होता है । आदत डालने पर बन्दरों को चाय और काफ़ी का चसका लग जाता है । शराब अच्छी मालूम होती है । चुरट भी पीने लगते हैं । एक डाक्टर ने बन्दरों के पकड़ने का यह उपाय लिखा है। कि उत्तर पूर्वीय अफ़्रीका-निवासी रात को शराब भरे बर्तन खुले छोड़ रखते हैं। बन्दर आकर इतनी शराब पीते हैं कि बेहोश होकर पड़ जाते हैं। होश में आने पर उनकी वही दशा होती है जैसी शराबियों की। दोनों हाथों पर सिर रख कर सिर में दर्द की अधिकता प्रकाश करते हैं। मनुष्यों पर जिन कीड़ों से चर्म-रोग होता है बन्दरों पर भी उनका वही प्रभाव होता है। फोड़ा फुँसी भी एक ही तरह निकलते और अच्छे होते हैं। डील डौल का जो अन्तर स्त्री-पुरुष में देखा जाता है वही पशुओं में मिलता है ।

मनुष्य की गर्भाधानविधि तथा गर्भ की बढ़वारी भी अन्य पशुओं के समान है । और बन्दर के साथ तो उसका बड़ा ही मेल है ।

शरीर की बनावट में अब अनेक बातें परिवर्तित हो गई हैं । परन्तु कभी कभी पशुओं की सी बातें मनुष्यों में भी देखी जाती हैं । हम अपने चमड़े को फैला या सिकोड़ नहीं सकते, परन्तु फ़्राँस में एक ऐसा परिवार है जिससे लोग अपने सिर पर रक्खी हुई चीज़ बिना हिले डुले या हाथ लगाये सरका कर नीचे गिरा सकते हैं ।

प्रारम्भ में हमारे दाँत भी पशुओं के समान ही थे परन्तु सभ्यता के प्रताप से अब दाँतों को पहले की भाँति कठिन काम नहीं करना पड़ता । अब दाँत छोटे होते जाते हैं, और जल्दी ही उनको कीड़ा खा जाता है । वह समय निकट है कि अब तीन के बदले दो ही डाढ़ें रह जायँगी । अक्कल डाढ़ अब बहुत देर में निकलती है और उसका आकार दिन पर दिन छोटा होता जाता है । और दाँतों की अपेक्षा यह ठहरती भी कम है इसको अक्सर कीड़ा खा जाता है । कोई समय था कि आदमी भी दुमदार होते थे । अब तक वह हड्डी मौजूद है जिसमें की हड्डियाँ बढ़ कर दुम बनती थीं। गर्भ में यह पुच्छ-चिह्न खूब नज़र आता है ।

जिन लोगों का मस्तिष्क पूरी बढ़वारी को प्राप्त नहीं होता उनकी दशा पशुओं के समान ही देखी जाती है । न उनको बातचीत करना आता है, और न किसी विचार पर उनका ध्यान बैठता है। हाँ बन्दर की तरह नक़ल करना उनको अवश्य आ जाता है । चार पैरों पर चलने और पेड़ों पर चढ़ने का उन्हें शौक़ होता है । खाने से पहले वे चीज़ों को सूँघ लेते हैं । पागलख़ाने में एक पागल दूसरे की जूएँ पकड़ कर खाता हुआ भी देखा गया था। उन्हें किसी का लिहाज़ या शरम नहीं होती। उनके शरीर पर बालों की अधिकता होती है ।

गर्भ में जब बच्चा ५ महीने का होता है तब उसके शरीर पर वैसे ही बाल होते हैं जैसे बन्दर के। केवल हथेली और तलुये ख़ाली होते हैं ।

यह बात स्थिर हो चुकी है कि आरम्भ में हम लोगों के शरीर पर बड़े बड़े बाल होते थे । परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल उखाड़ डाले जाते थे। क्योंकि बालों के निकल जानें पर खाल अच्छी लगती थी। ख़ूबसूरती के लिए यह काम बहुत दिन तक होता रहा और फिर ऐसा हुआ कि बाल अपने आप कम उगने लगे। इस काम में स्त्रियों का चाव पुरुषों से अधिक था, वे बाल्य काल से ही बाल नोंचना आरम्भ करती थीं। युवा होने पर मर्दों की डाढ़ी मूँछ छोड़ दी जाती थी।

गर्भ की दशा में बन्दर के बच्चे का पैर और मनुष्य का एक ही सा होता है। अंगूठा उँगलियों के सीध में नहीं होता बरन हाथों का बनाव बन्दर के हाथों की तरह होता है। रस्सी पर बन्दर उसी तरह चढ़ता है जैसे मनुष्य। पैर पर चढ़ने में हाथ का अँगूठा एक ओर शेष उँगलियाँ एक ओर रहती हैं। इसी तरह वह पेड़ों की डालियाँ पकड़ता है। ज़मीन पर पड़ी चीज़ों को भी वह मनुष्य की तरह उठाता है। उसी की भाँति ज़मीन खोदता है, कीड़े पकड़ता है और फल तोड़ता है। नारंगी और सिंघाड़े के तोड़ने में मनुष्य के हाथ बन्दर की तरह काम करते हैं। काँटा निकालने और जूएँ पकड़ने में भी एक सी क्रिया की जाती है।

मनुष्य ने जब हाथों से काम करना बहुत सीख लिया तो पैर केवल चलने के काम में रह गये। यदि हाथों से भी केवल चलने का काम ही लिया जाता तो मनुष्य कभी उन्नत नहीं होता। वह इन हाथों से न कोई हथियार बना सकता। न निशाने पर कोई पदार्थ फेंक सकता, न भाला चला सकता। हाथों में जो इतनी अधिक स्पर्श शक्ति है वह तीव्र नहीं रह सकती। हाथों से अनेक काम लेकर चलने का काम केवल पैरों पर छोड़ा। शरीर का सब बोझ जब पैरों पर पड़ने लगा तो उनमें मुटापा आ गया। और पंजे चपटे हो गये। पैर का अँगूठा इस योग्य न रहा कि उसको हाथ के अँगूठे की तरह काम में लाया जा सके। जब हाथों ने चलने से छुट्टी पाई तब वे शिकार पकड़ने का काम देने लगे। पत्थर फेंक अथवा लाठी चला कर वे मनुष्य के वैरियों को हटाने लगे तथा खान-पान प्राप्त करने लगे।

केवल पैरों के बल चलने से मनुष्य के शरीर में बहुत से परिवर्तन आरम्भ हुए।

आदमी के मुँह में काटनेवाले दाँतों और डाढ़ों के बीच में एक नुकीला दाँत है। उन दिनों मनुष्य अपने शिकार को इन्हीं से फाड़ता था। दाँत तो अभी तक मौजूद हैं परन्तु फाड़ने का काम न करने के कारण अब वे उतने तेज़ नहीं रहे। उनका सिर अब चपटा होता जाता है।

जब मनुष्य बुद्धि से अधिक काम लेने लगा तब उसका मस्तिष्क बढ़ने लगा। जितने मनुष्य सोच-विचार का काम करते हैं उनके सिर बड़े होते हैं। पुरानी खोपड़ियों को आजकल की खोपड़ियों से मिलान करने पर उनमें बहुत अन्तर पाया जाता है। मनुष्य में समझ का स्थान सामने की ओर है इसीलिए चौड़े माथेवाले अधिक समझदार निकलते हैं।

परमात्मा ने सब जीवों को प्राण-रक्षा के लिए कुछ न कुछ अद्भुत शक्तियाँ दी हैं। मनुष्य को शारीरिक बल तो इतना नहीं दिया कि वह शत्रुओं को परास्त करके अपनी रक्षा कर सके। केवल उसके पास मस्तिष्क-शक्ति है, उसी से वह "अशरफ़ुल मख़लूक़ात" कहलाता है। सृष्टि में जितने बलवान् जीव हैं सब अकेले रहना ही पसन्द करते हैं, यदि मनुष्य भी ऐसा ही होता तो आज ये गाँव क़स्बे और शहर बसते हुए न मिलते। दो जीवों का एक साथ निवास परस्पर की सहानुभूति और प्रेम के बिना नहीं होता। मनुष्य दुर्बल होने पर भी सर्वोपरि है। अफ़रीका के समान कहीं भयानक जन्तु नहीं हैं और शीत कटिबन्ध के समान कोई भी कठिनता-पूर्ण देश नहीं है; परन्तु वहाँ पर भी मनुष्य आनन्द पूर्वक बसते हैं।

शारीरिक बनावट की एकता के सिवा मानसिक वृत्तियों में भी मनुष्य का बन्दर से बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

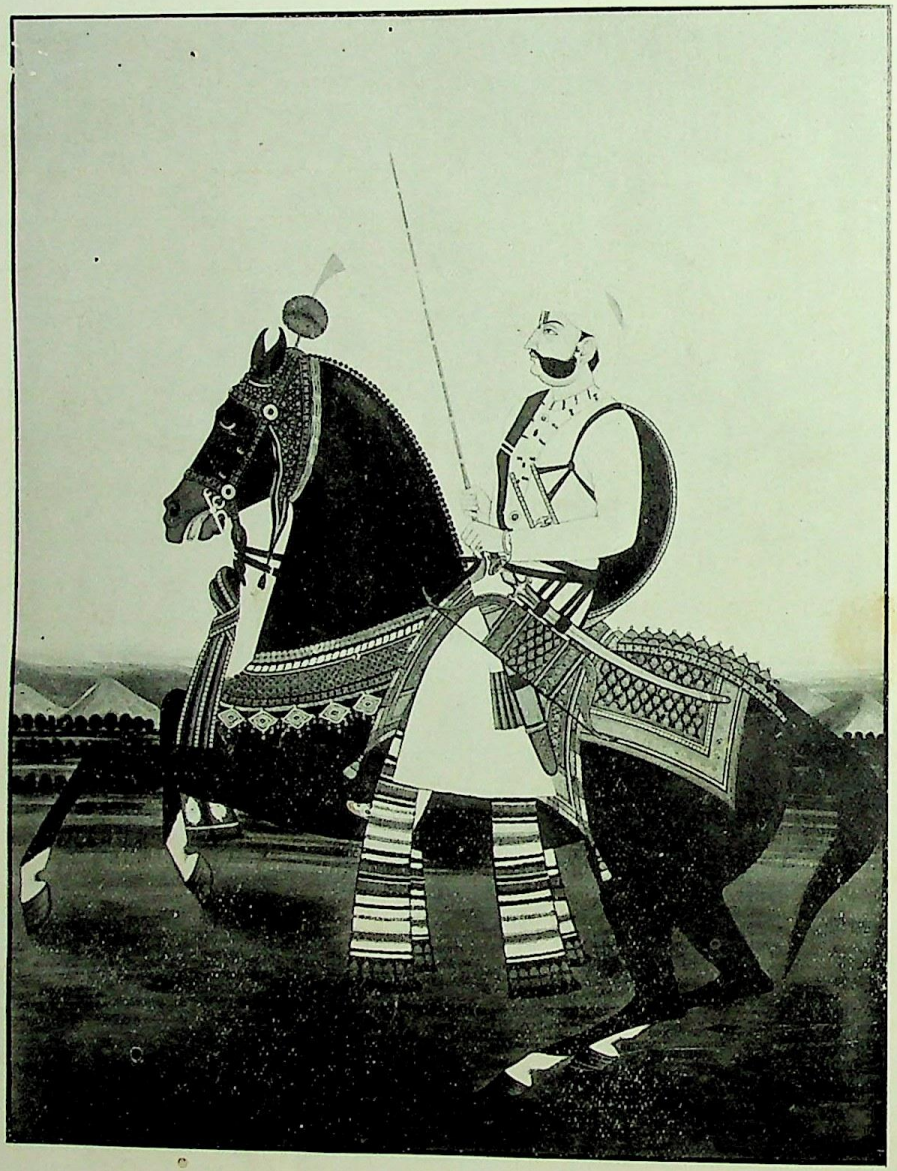

श्रीमान् महारावजी श्री प्रतापसिंहजी, अलवर ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध है। आत्म-रक्षा, मैथुन, सन्तान से माता का स्नेह, बच्चों का स्तन-पानादि बातें मिलती जुलती हैं। अफ़्रीका के भी बन्दरों में इतनी समझ है कि वे विषैले फलों को नहीं खाते। साँपों से बहुत डरते हैं तथा हिंसक जन्तुओं से भय मानते हैं।

बन्दरिया भी अपने बच्चे को बड़ा प्यार करती है। एक सज्जन ने देखा है कि एक बंदरिया अपने बच्चे पर से मक्खी हटाने के लिए पत्तों से पंखे का काम निकालती थी; नदी के पानी से बच्चे का मुँह धोती थी। यह तो बहुत देखा गया है कि ममता की मारी बंदरिया बच्चे के मर जाने पर भी उसे छाती से अलग करना नहीं चाहती। जिस बच्चे की मा मर जाती है उसको दूसरी बन्दरिया बड़े स्नेह से पालती है।

नक़ल करने में बन्दर बड़े चतुर होते हैं। उनके इस गुण को पहचान कर मदारी लोग उनसे कितने ही तमाशे के काम कराते हैं। मनुष्य ने भी इसी गुण से अपनी तरक़्क़ी की है। अच्छे बुरे आचरणों की नक़ल ही मनुष्य को अच्छा बुरा बनाती है। मूर्ख और चतुर बन्दरों में भी होते हैं। बाज़े तो मदारी की इच्छा को तत्काल समझ कर उसके अनुसार करने लगते हैं और बाज़े बाज़े पिटते पिटते मर जाते हैं परन्तु मदारी का आशय नहीं समझते। मदारियों को इस बात का ज्ञान शीघ्रही हो जाता है कि यह बन्दर समझदार है अथवा निरा भोंदू है। बन्दरों में स्मरण-शक्ति का अभाव नहीं है। मदारी से उन्हें प्रेम हो जाता है। मदारी को कोई चोट करे तो ये उसके लिए लड़ने और बचाने को तयार हो जाते हैं। एक सज्जन का पालतू बन्दर उसे ९ वर्ष के बाद मिला। बन्दर ने अपने स्वामी को झट पहचान लिया और बड़ा हर्ष प्रकाश किया।

सन्देह किया जा सकता है कि बन्दर में मनुष्य के समान सोचने की शक्ति नहीं है। यह सुन कर आश्चर्य होता है कि बन्दर बड़ी समझ से काम करते हैं। एक तालाब में सिंघाड़े की बेल थी एक बन्दर ने किनारे पर बैठ कर बहुत सी गाढ़ी कीच सिर पर थोपली और पानी में तैर गया तथा बेलों में से सिंघाड़े तोड़ कर सिर पर की मिट्टी में लगा दिया करता इस तरह से बहुत से सिंघाड़े किनारे पर ले आया और लुका कर खाने लगा।

बाज़ार में जो कुँजड़ी साग तरकारी बेचती हैं उनकी नज़र बचा कर चट बन्दर मनमानी चीज़ उठा ले जाते हैं। कोई कोई बन्दर ऐसा भी करते हैं कि ऊपर से दूकानदार के सिर पर कूदते हैं। दूकानदार घबरा उठता है और जब तक वह संभले तब तक बन्दर अपना काम कर के भाग जाता है।

मथुरा में बड़े बन्दर हैं। लेखक एक बार एक दुकान पर खड़ा कुछ माल ख़रीद रहा था। बन्दर एक ओर से आया और पिंडली छुई। मैंने अचरज से पैर उठाया, उसने पंजे में से जूता (हिन्दोस्थानी) खेंच लिया और चल दिया। जब उसको खाने के लिए चने दिये गये तब जूता गिराया।

(क्रमशः)

महेन्दुलाल गर्ग

चित्र-दर्शन।

इस अङ्क में प्रकाशित चित्रों की चर्चा प्रायः लेखों में ही हो चुकी है। अश्वारूढ़ महाराज अलवर राज्य के संस्थापक हैं। रंगीन चित्र में चित्रकार ने वह दृश्य दिखलाने का प्रयत्न किया है जिसकी कथा महाभारत के सभी पढ़नेवाले जानते हैं। एकलव्य द्रोणाचार्य्य से प्रार्थना कर रहा है कि मुझे अपना शिष्य बनाकर धनुर्वेद की शिक्षा दीजिए।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि आपको श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी और लक्ष्मणजी में सच्ची भक्ति हो तो "सीता-वनवास" को मँगाकर अवश्य पढ़िए।

हिन्दी में नवीन पुस्तक

सीतावनवास

यदि आपको यह जानना हो कि धार्मिक राजा अपना सर्वस्व गँवाकर किस प्रकार प्रजारञ्जन करता है तो "सीतावनवास" पढ़िए।

जिन मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी और सती सीताजी का नाम भारतवासी हिन्दू ही नहीं विदेशी विद्वान् भी आदर के साथ लेते हैं; जिनके अनुपम, पवित्र और अनुकरणीय चरित को वर्णन करके संस्कृत के आदिकवि श्रीवाल्मीकि, हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्रीतुलसीदास आदि ने अपनी वाणी को पवित्र और सफल किया है; जिस पावन-चरित और अपूर्व त्याग की कारुणिक कथा सुप्रसिद्ध पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने वंगभाषा में "सीतारवनवास" नामक पुस्तक में लिखकर अपनी लेखनी को कृतार्थ किया है; जिस करुणारसभरी पुस्तक के बँगला में पचासों संस्करण छपे हैं और लाखों कापियाँ बिक चुकी हैं, उसी शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद "सीतावनवास" छप कर तैयार है।

इस पुस्तक में श्रीरामचन्द्रजी-कृत गर्भवती सीताजी के परित्याग की विस्तार-पूर्वक कथा बड़ी ही रोचक और करुणारसभरी भाषा में लिखी गई है। इसे पढ़-सुन कर आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है और पाषाण-हृदय भी मोम की तरह द्रवीभूत हो जाता है। इसे 'नेत्रविरेचन' अर्थात् 'आँखों का जुलाब' कहना चाहिए।

ऐसी उत्तम और उपयोगी पुस्तक के लिए क्या हिन्दीवाले ॥) आठ आने के पैसों के लिए भी अपनी मुट्ठी न खोलेंगे ?

यदि आपको पतिव्रता स्त्री और एकपत्नीव्रत पुरुष का उत्कृष्ट नमूना देखना हो तो "सीतावनवास" पढ़िए।

मिलने का पता—

मैनेजर, इंडियन प्रेस,

प्रयाग।

यदि आपको अपनी मातृ-भाषा हिन्दी से कुछ भी अनुराग है तो आठ आने के पैसे ख़र्च करके "सीतावनवास" अवश्य मँगाइए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ११] १ फ़रवरी, १९१०। माघ कृष्ण ७, १९६६। [संख्या २

विविध विषय।

१—महाभारत का संशोधन।

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि भारतवर्ष के प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थों में पाश्चात्य विद्वानों की श्रद्धा दिनोंदिन बढ़ती जाती है। अध्यापक मेक्समूलर, मोनियर विलियम्स इत्यादि विद्वानों के परिश्रम से बहुतेरे संस्कृत-ग्रन्थों का अनुवाद योरोपियन भाषाओं में हो चुका है। योरोपियन और अमरीकन विश्वविद्यालयों के संस्कृतज्ञ विद्वान् अब भी संस्कृत-ग्रन्थों के संस्करण और अनुवाद करने में प्रायः लगे रहते हैं। चाहिए भी ऐसाही। अभी हाल ही में, कुछ वर्ष हुए, लंदन में इंटर्नेशनल एसोसियेशन आफ़ एकाडमीज़ का बृहदधिवेशन हुआ था। उसमें निश्चय किया गया कि महाभारत की एक नवीन संशुद्ध आवृत्ति निकलनी चाहिए, क्योंकि यह ग्रन्थ बड़े महत्त्व का है। इससे प्राचीन भारत की सभ्यता, साहित्य, धर्म्म-कर्म्मादिकों का बहुत कुछ पता लगता है। महाभारत की इस संशुद्ध आवृत्ति निकालने का भार, एम्सटर्डम, बर्लिन, गाटिनगन, लिप्ज़िग, लंदन, म्यूनिच, पेरिस, सेन्टपीटर्सबर्ग, रोम और वायना के एकाडमीज़ ने लिया है। इन योरप की प्रसिद्ध प्रसिद्ध एकाडमीज़ (विद्वत्परिषदें) की ओर से एक महाभारत-कमेटी स्थापित की गई है जिसके निम्न लिखित विद्वान् मेम्बर चुने गये हैं :—

अध्यापक एफ़, कीलहार्न	...	(गाटिनन्गन)
अध्यापक ई० क्यून	... ...	(म्यूनिच)
अध्यापक ए. मेकडानल्ड(आक्सफ़र्ड,बृटिशएकाडमी		
डाक्टर एस० डी० ओल्डनबर्ग	...	(सेंटपीटर्सबर्ग)
अध्यापक आर० पिश्चल	...	(बर्लिन)
अध्यापक एल० वानसोडर	...	(वायना)
डाक्टर ई० सेनार्ट	... ...	(पेरिस)
अध्यापक जे० एस० स्पीजर	...	(एम्सटर्डम)
अध्यापक ई० विंडिश...	...	(लीप्ज़िग)

कमेटी के स्थापित होने के बाद अध्यापक कीलहार्न और पिश्चल का देहान्त हो गया। एक सबकमेटी भी बनाई गई है जिसके निम्नलिखित विद्वान् मेम्बर हैं :—

अध्यापक ई० हापकिन्स	...	(न्यूहेविन)
अध्यापक एच० जकोबी	...	(बान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यापक एच० लडर्स.....(बर्लिन)
अध्यापक एम० विंटर्निट्ज़.....(प्रेग)

यह महाभारत-कमेटी छपी और हस्तलिखित जितनी आवृत्तियाँ महाभारत की भारतवर्ष या अन्यत्र मिल सकेंगी, एकत्र करेगी और सभों का मिलान और विचार कर एक संशुद्ध आवृत्ति निकालेगी। इस कार्य्य के लिए पूर्वोक्त एकाडमीज़ ने मिलकर क़रीब ८२,५०० रुपये अपने पास से दिये हैं। परन्तु ख़र्च इससे कहीं ज़्यादा अन्दाज़ा जा रहा है। बाक़ी ख़र्च के लिए वायना के मि० ओडर, बर्लिन के मि० लडर्स और आक्सफ़र्ड के मिस्टर मेकडानल ने भारतवर्ष के राजा-महाराजाओं, सेठ-साहूकारों से अपील की है। इस कार्य्य के लिए भारतवर्ष से रुपया तहसील कर पूर्वोक्त महाभारत-कमेटी के पास भेजने के लिए निम्नलिखित सज्जन नियुक्त हुए हैं:—

माननीय सर चन्द्रावर्कर, ... बम्बई,
सर प्रतुलचन्द्र चटर्जी.....लाहौर,
माननीय बाबू गङ्गाप्रसाद वर्म्मा,.....लखनऊ,
माननीय मिस्टर जस्टिस सन्कारन नायर, मद्रास
माननीय मिस्टर जस्टिस कृष्णस्वामीआयर, मद्रास
मि० एडवोकेट जनरल पी० एस, शिवस्वामी, मद्रास

राजा महाराजाओं से हमें कुछ नहीं कहना; जैसा उचित समझें करें। जिनका जी चाहे जितना रुपया भेजें। हमारी विनय है पूर्वोक्त भारतवर्ष के माननीय सज्जनों से, जिन्होंने रुपया एकत्र करने का भार लिया है। भारतवर्ष की उदारता प्रसिद्ध ही है। यहाँ से जो चाहे ले जाय। पाठक, महाभारत के संशुद्ध करनेवालों के नाम ज़रा फिर से ध्यान-पूर्वक पढ़ जाइए। कहीं इस लिस्ट में किसी भारतवासी का भी नाम है? क्या भारतवर्ष में कोई भी ऐसा संस्कृतज्ञ पण्डित न था कि इस महाभारत-कमेटी में सम्मिलित होकर संशोधन में परामर्श देता? क्या ख़ूब! जिनके पूर्वपुरुषों और महात्माओं की कथा महाभारत में कही गई है; वे तो महाभारत का आशय न समझें, समझें गोरे पण्डित, जिन्होंने भारतवर्ष के कभी दर्शन भी नहीं किये! माना कि विवेचनापूर्वक पढ़ने की आदत पाश्चात्य पण्डितों में विशेष है, पर फिर भी भारतवर्ष की बातें भारतवासी ही अच्छी तरह समझ सकते हैं। क्या ही अच्छा होता, यदि पूर्वोक्त महाभारत-कमेटी रुपये के साथ साथ इस बात की भी अपील करती कि यहाँ के राजा महाराजा किसी भारतवासी संस्कृतज्ञ विद्वान् को भी भेजें ताकि वह महाभारत के संशोधन करने में योग दे। उन सज्जनों को भी उचित है जिन्होंने रुपया तहसील करके महाभारत कमेटी को सहायता पहुँचाने का भार लिया है कि कमेटी से सानुरोध कहें कि उसमें भारतवासी पण्डित भी सम्मिलित होने चाहिएँ। भारतवर्ष में अब भी ऐसे पण्डितों की कमी नहीं है जो बड़ी योग्यता से महाभारत-कमेटी को परामर्श दे सकते हैं।

२—रामकहानी।

महामहोपाध्याय श्रीमान् पण्डित सुधाकर द्विवेदी कृत 'रामकहानी' की समालोचना, पाठक, सरस्वती के एक पिछले अङ्क में पढ़ चुके हैं। सरस्वती ही में नहीं किन्तु एडवोकेट और भारतमित्र आदि पत्रों में भी महामहोपाध्यायजी की 'रामकहानी' की ख़बर ली गई है। तिस पर भी सुनते हैं कि यह भ्रष्ट पुस्तक मेट्रीक्यूलेशन में कोर्स होही गई। राजा लक्ष्मणसिंह की शकुन्तला निकाल बाहर की गई। कहा जाता है कि वर्नाक्युलर बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ में मिस्टर बर्न, महामहोपाध्याय श्रीमान् पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्य और स्वयं पण्डित सुधाकर जी विचारपति थे। द्वितीय को छोड़ कर शायद प्रथम और तृतीय ने बहुमत के आधार पर उसे जारी कर दिया। यदि ऐसा है तो इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के इस कार्य्य की जितनी निन्दा की जाय थोड़ी है। शायद यूनीवर्सिटी के फ़ेलोज़ और पबलिक को यह आन्दोलन बहुत जल्द करना पड़ेगा कि वही सज्जन टेक्स्ट बुक कमेटीज़ में विचारपति न नियुक्त किये जाया करें जिनकी रची पुस्तकों को कोर्स बनाने पर विचार करना हो। नहीं तो प्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"घर की परसनहर अंधेरी रात" वाली ग्रामीण कहावत ही चरितार्थ होती है।

३—भारतवर्षीय न्यायशास्त्र।

संस्कृत के साधारण पण्डित, गौतम, कणाद, वात्स्यायन, वाचस्पति मिश्र, गंगेश, रघुनाथ शिरोमणि और जगदीश आदि मुख्य मुख्य नैयायिकों को छोड़ कर औरों के नाम तक न जानते होंगे, उनके ग्रन्थ देखना तो दूर रहा। परन्तु ईसवी सन् के ६०० वर्ष पहले से लेकर आज तक इस देश में सैकड़ों नैयायिक हो गये हैं। उनमें से अधिकाँश ने तर्कशास्त्र पर अच्छे अच्छे ग्रन्थ भी लिखे हैं। पर काल की कराल गति के प्रभाव से अनन्त ग्रन्थ भारत में जन्म पाकर भी यहाँ लुप्तप्राय हो गये हैं।

महामहोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र विद्या-भूषण एम० ए० पी० एच० डी०, के नाम से हमारे पाठक अवश्य ही परिचित होंगे। आपकी विद्वत्ता की जहाँ तक प्रशंसा की जाय कम है। आपने बड़े परिश्रम और बड़े खोज से न्यायशास्त्र पर एक पुस्तक अभी हाल में अँगरेज़ी में लिखी है। उसका नाम है—"Indian Logic: Medieval School" इस पुस्तक को कलकत्ते के विश्वविद्यालय ने प्रकाशित किया है और पी० एच० डी० की डिगरी की परीक्षा में भी रक्खा है। इसमें डाक्टर विद्याभूषण ने उन सब नैयायिकों और उनके न्याय-ग्रन्थों का वर्णन किया है जो ४०० से १२०० ईसवी के बीच में हुए हैं। ये सब जैन और बौद्ध थे। जैनों के ग्रन्थ तो उन्होंने दक्षिणी और पश्चिमी भारत के प्रसिद्ध प्रसिद्ध जैन-ग्रन्थ-भाण्डारों से प्राप्त किये। पर बौद्ध ग्रन्थों का यहाँ कहीं पता न चला। उनके लिए उन्हें सिकम के भिन्न भिन्न बौद्ध-विहारों में घूमना पड़ा। वहाँ उन्हें उन ग्रन्थों के अनुवाद तिब्बती भाषा में मिले। इसके सिवा लन्दन के इंडिया आफ़िस से भी कितनेही ग्रन्थों के तिब्बती अनुवाद मँगाकर उन्होंने पढ़े। तब कहीं डाक्टर महोदय को इस ग्रन्थ के लिए यथेष्ट सामग्री मिली।

यह पुस्तक दो भागों में विभक्त है। पहले में जैन-न्याय-शास्त्र का और दूसरे में बौद्ध-न्याय-शास्त्र का वर्णन है। साथ ही प्रत्येक प्रसिद्ध नैयायिक और उसकी तर्क-पद्धति का भी वर्णन है। अन्त में नालंदा और विक्रमशिला के प्राचीन विश्वविद्यालयों पर भी एक लेख है। बंगाल के पाल-वंशीय राजाओं के विषय में भी डाक्टर साहब ने एक लेख दिया है। यह पुस्तक बड़ेही महत्त्व की है। इसके प्रकाशन से मानों जैन और बौद्ध लोगों के तर्कशास्त्र का पुनरुज्जीवन हो गया। अतएव डाक्टर विद्याभूषण महोदय भारतवासी मात्र के धन्यवाद-पात्र हैं।

४—कालिदास की चिताभूमि।

लङ्का में परम्परा से यह कथा चली आती है कि कविशिरोमणि कालिदास अन्त समय वहाँ गये थे और उन्होंने मतारा नामक स्थान में, जो समुद्र तट पर सीलोन कोस्ट लाइन रेलवे पर है, अपना शरीर त्यागा। इस कथा की पुष्टि सिंहाली पुस्तकों से भी होती है। कहते हैं कि राजा कुमारदास ने, जिन्हें कुमारधातुसेन भी कहते हैं, उन्हें वहाँ बुलवाया था। जिस समय कालिदास का शव चितापर जलने लगा, राजा कुमारदास भी शोकातुर होके चिता पर गिर पड़े और भस्म हो गये। यह घटना ५२४ ई० की कही जाती है। जो हो, महामहोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण यह स्थान देखने गये थे। जहाँ किरिनदी (कालिन्दी) समुद्र में मिलती है वहाँ से थोड़ीही दूर तिश्यरामविहार नामक एक बड़ा मठ है। वहीं नारियल के वृक्ष लगे हुए हैं। उसी स्थान को लोग कालिदास की चिता-भूमि बतलाते हैं।

५—*युकलिप्टस (Eucalyptus)

१—जिन्होंने आस्ट्रेलिया के जंगल देखे हैं वे जानते हैं कि युकलिप्टस वृक्ष सब वृक्षों से ऊँचा होता है। इसकी ऊँचाई ४८० फ़ुट तक होती है। क्या इतना ऊँचा और कोई वृक्ष होता है? इस वृक्ष को हम

* कुमार गंगानन्दसिंह-प्रेषित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग बहुत तरह से अपने काम में ला सकते हैं। The National Geographic Magazine में Edgerton R. Young साहब ने इसके विषय में जो लिखा है उसका मर्म यह है—

२—युकलिप्टस सबसे बड़ा और सबसे लम्बा वृक्ष होता है। ४०० फ़ुट तक इसकी साधारण ऊँचाई है। कोई कोई ४८० फ़ुट तक ऊचा होता है। इस वृक्ष की परिधि १२० फ़ुट से २०० फ़ुट तक होती है। इसकी लकड़ी बहुत कामों में लाई जाती है। क्योंकि सूखने पर यह टेढ़ा तिरछी नहीं होती। बढ़ई लोग इससे बहुत आसानी के साथ काम कर सकते हैं। इसकी लकड़ी से टेबुल, कुरसी, बेञ्च, आलमारी इत्यादि बहुत काम की चीज़ें बनाई जाती हैं।

३—इस वृक्ष को काटना सहल नहीं है। इसके काटने में बहुत तरह के कौशल अवलम्बन करने पड़ते हैं। इस वृक्ष का धड़ बेडौल होता है, जिससे इसको जड़ भिड़ाकर कोई काट नहीं सकता। ज़मीन से १०-१२ फ़ुट ऊँचे पर मचान बाँधा जाता है, उस पर खड़े होकर १०-१२ फ़ुट छोड़ कर काटना पड़ता है।

४—युकलिप्टस कई प्रकार का होता है। अस्ट्रेलिया में इसकी चार-पाँच क़िस्में पाई जाती हैं। उस देश में बहुत जंगल ऐसे हैं जहाँ कि केवल युकलिप्टस के ही वृक्ष होते हैं।

५—और वृक्षों की तरह इस वृक्ष के पत्ते हर साल नहीं बदलते, इसकी छाल बदलती है। साल में एक दफ़े इस वृक्ष की डाल से ख़ूब लम्बी चौड़ी छाल गिर पड़ती है और इसके पत्ते पतले चमड़े की तरह नरम होते हैं। पत्ते से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है जो दवा के काम में आता है। यह तेल पाचन-शक्ति को बढ़ाता है और रोग के बीजों को नाश करता है। क्षय रोग, फेफड़े की बीमारी इत्यादि में यह तेल लाभदायक है।

६—इस वृक्ष का रंग नीला सब्ज़ा होता है। परीक्षा करके देखा गया है कि यह वृक्ष इस देश में भी लग सकता है। यह पाला या बरफ़ नहीं सम्हाल सकता। नेटाल, मिसिर, एलजीरिया देशों में भी यह वृक्ष लगाया गया है। केलिफ़ोरनियां (California) में भी यह वृक्ष लगाया गया और इससे वहाँ के लोगों ने बहुत नफ़ा उठाया। उस देश के निवासी वृक्ष से तार का खम्भा, रेल का सिलपट, टेबल, कुरसी इत्यादि बहुत सी तरह तरह की चीज़ें बनाते हैं।

७—एक प्रकार का युकलिप्टस का वृक्ष होता है जिसकी लकड़ी बहुत कड़ी होती है। इसमें विशेष गुण यह है कि इसमें समुद्री कीड़े नहीं लगते। आज कल इसकी लकड़ी जहाज़ बनाने के काम में लाई जाती है। इसमें एक तरह का गोंद रहता है जो दवाई बनाने के काम में लाया जाता है। यह गोन्द पेट की बीमारी, बवासीर में दिया जाता है।

८—यह वृक्ष मलेरिया का बड़ा भारी शत्रु है। मलेरिया-पीड़ित देशों में इसके लगाने से बहुत लाभ हुआ है और यदि मलेरिया-पीड़ित देशों में ये वृक्ष लगाये जायँ तो कितना भारी लाभ हो। कितने आदमी अकाल में काल के कौर बनने से बच सकते हैं और गाँव बसती की आबादी भी बढ़ सकती है।

६—रजिस्ट्री करनेवाली कल।

कुछ दिन हुए टिकट बाटनेवाली कलों के विषय में सरस्वती में एक नोट निकला था। उन कलों से तो यहाँ भी अब काम लिया जाने लगा। कानपुर, इलाहाबाद, देहली आदि स्टेशनों पर ये कलें आप से आप २ पैसे भेंट किये जाने पर प्लटफ़ार्म टिकट दे दिया करती हैं। पेरिस के डाकख़ाने में ऐसी ही एक रजिस्ट्री करनेवाली कल रक्खी गई है। चिट्ठी और रजिस्ट्रेशन फ़ी आप उसमें छोड़ दीजिए, सिर्फ़ ५ सेकण्ड के भीतर, चिट्ठी की रजिस्ट्री हो जायगी और आपको रसीद मिल जायगी। देखें ये कलें यहाँ के डाकख़ानों में कब तक पहुँचती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमोहनदास करमचन्द गाँधी।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७—फ़ौवारेदार टोपी ।

आग बुझानेवालों को आग की लपट से बड़ी तक्लीफ़ होती थी। आग बुझाते बुझाते आँच से विकल होकर उन्हें थोड़ी देर के लिए काम बन्द कर देना पड़ता था। उनकी तक्लीफ़ हटाने के लिए एक फ़ौवारेदार टोपी निकाली गई है। इस टोपी का सम्बन्ध पम्पिङ्ग एन्जिन से रहता है। आग बुझाने वालों के चारों ओर महीन महीन जल के कणों की वृष्टि हुआ करती है और वे आराम से लपट के निकट जाकर भी अपने काम में लगे रहते हैं।

८—इंडियन प्रेस के रंगीन चित्र ।

पाठकों को एक ख़ुश ख़बरी सुनाते हैं। इंडियन प्रेस, प्रयाग के मालिकों ने रंगीन चित्र (Oil-painting) बनाने का एक कारख़ाना अभी हाल में खोला है। प्रेस में हाफ़टोन ब्लाक बनाने और उससे चित्र छापने आदि के जैसे और काम होते हैं वैसे ही अब रंगीन चित्रों का भी काम हुआ करेगा। इसके लिए हज़ारों रुपये ख़र्च करके बहुमूल्य सामान मँगाया गया है और बड़ी बड़ी तनख़्वाहों पर दो कर्म्मचारी ऐसे रक्खे गये हैं जो इस काम में बड़ेही प्रवीण है। उनके सिवा और भी कई एक चित्र तैयार करने और छापनेवाले रक्खे गये हैं। दक्षिण में जैसे इस तरह के चित्र प्रकाशित करने के लिए राजा रविवर्म्मा का कारख़ाना है वैसे ही इन प्रान्तों में इंडियन प्रेस का कारख़ाना समझना चाहिए। इस कारख़ाने में अभी तीन चित्र बन कर तैयार हुए हैं। पहला चित्र कलकत्ते के प्रसिद्ध चित्रकार बाबू अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का अङ्कित किया हुआ "भारत-माता" नामक है। यह चित्र बहुत ही समयानुकूल है। इसके सौन्दर्य्य को देखकर नेत्रों को जैसे अलौकिक आनन्द होता है वैसेही इसके भाव का विचार करके हृदय में एक अपूर्व रस का सञ्चार होता है। दूसरा चित्र श्रीचैतन्यदेव का है। भक्ति के उन्मेष में विह्वल हुए चैतन्यदेव को इस चित्र में देखकर भक्तों को जो आनन्द होगा वह सर्वथा अवर्णनीय है। चित्रकार बाबू नन्दलाल वसु की चित्र-कला का यह एक अद्भुत नमूना है। तीसरा चित्र पूर्वोक्त बाबू अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का अङ्कित किया हुआ है। उसका नाम है "शाहेजहाँ का प्राण-विसर्जन" यह चित्र और से बड़ा है और ऐतिहासिक है। चित्र-कला-कौशल में यह और से बढ़ कर नहीं तो कम भी नहीं है। इन तीनों तैल-चित्रों का आकार और मूल्य नीचे दिया जाता है :—

	आकार इंचों में	मूल्य
१—भारत-माता ...	८½ + १३	१)
२—श्रीचैतन्यदेव ...	८½ + १३	१)
३—शाहजहाँ का प्राण-विसर्जन	१० + १४	१।)

जिन्हें इन चित्रों से अपने कमरों की शोभा बढ़ाना हो वे इंडियन प्रेस, प्रयाग, से इन्हें मँगा सकते हैं।

मोहनदास करमचन्द गाँधी ।

धीजी के गुण भारत क्या भूमंडल में गूंज रहे हैं। तारीख़ १३ नवम्बर को आप अफ़्रिका लौट गये। यद्यपि इनके कुल कामों की कथा कहने को समय और स्थान नहीं है तथापि थोड़ा बहुत अवश्य कहेंगे।

जन्मभूमि ।

गाँधी जी का जन्म काठियावाड़ राज्य के पोर बन्दर स्थान में तारीख़ २ अक्टूबर सन् १८६९ ई० में हुआ था। पोर बन्दर एक पवित्र स्थान है। सुदामा जी यहीं पैदा हुए थे अतएव इसका यथार्थ नाम सुदामापुरी है। गाँधी जी के कहने से मालूम हुआ कि सुदामा का जन्म स्थान अभी तक टूटी फूटी दशा में पड़ा है। द्वारिकापुरी यहाँ से ३० कोस है। इनके पिता का नाम करमचन्द था। आप राज कोट और पोर बन्दर के दीवान थे। इनके पितामह भी इसी पद पर थे इसलिए गाँधी जी एक ऊँचे घराने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पैदा हुए थे। जाति के आप मेार वैश्य हैं। इस जाति के लेाग बहुधा मसाला तथा जड़ी बूटी बेचने का काम करते हैं; इसी से यह जाति गाँधी कहलाती है। गाँधी जी जब १४ वर्ष के थे तभी आपके पिता का देहान्त हेा गया था। पीछे से माता भी चल बसीं। गाँधी जी तीन भाई हैं, जिनमें आप सबसे छेाटे हैं। एक बहिन हैं जेा अभाग्य वश हालही में विधवा हुई हैं। गाँधी जी का विवाह १२ साल की उम्र में हुआ था इसलिए आप बाल्यविवाह के बड़े विरेाधी हैं। आपके चार पुत्र हैं जिनमें से बड़ा २० और छेाटा ९ साल का है। बड़ा पुत्र आपही के साथ काम करता है और हाल में जेल भेजा गया है। आप सकुटुम्ब अफ़्रिका के फीनिक्स नगर में रहते हैं।

शिक्षा इत्यादि।

गाँधी जी केाई डिग्री धारी नहीं हैं पर येाग्यता डिग्रीवालेां से कहीं बढ़ कर है। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा ७ वें वर्ष से शुरू हुई और आपने १७ वें साल में अहमदाबाद से बम्बई विश्वविद्यालय की मैट्रीक्यूलेशन (Matriculation) परीक्षा पास की। सन् १८८८ में बैरिस्टरी पास करने केा लन्दन आये। यहाँ आने के पूर्व विरादरीवाले और घर के लेागेां ने बड़ा विरेाध किया। माता से क़सम खाई कि मैं मद्य, मांस इत्यादि से परहेज़ रक्खूँगा। क़सम खाने की इस वास्ते ज़रूरत पड़ी कि छेाटेपन में मुसलमान छात्रों की संगत में पड़ कर आप छिप कर मांस खाने लगे थे। यहाँ आकर आपने लन्दन विश्वविद्यालय की मेट्रीक्यूलेशन परीक्षा पास की, जेा एक बड़े गौरव की बात है। पर लन्दन की माया में आप भी फँस गये। नाचना गाना सीखने लगे। पूरे जेन्टलमैन बनने की केाशिश की। पीछे से आपही आँखें खुलीं और एक दम सब त्याग कर सच्चे विद्यार्थी बन गये। अपने हाथ से भेाजन पकाने लगे। माहवारी ख़र्च ६०) रुपये से अधिक न था। मांस इत्यादि केा विषवत् समझने लगे और तबसे आज तक पक्क फलाहारी हैं। दिन में केवल देा बा भेाजन करते हैं। देापहर और संध्या केा। सबे नाश्ता बिलकुल नहीं करते। भेाजन आपका सा और फलादि है। एक दिन हमने भी आप साथ भेाजन किया। हम समझे बड़े ठाठ बाट भेाजन करते हेांगे। पर इनकी सादगी देख हैरा हुए। जिस टेबिल पर काग़ज़ पुस्तकादि पड़े थे उस पर एक अख़बार फैलाकर केले अंगूर, सेब, नारंगी बिसकिट, मूँगफली इत्यादि रख कर सब भेाज करने लगे। हम चार थे जिनमें से दो अँगरेज़, जे हम लेागेां की भाँति पक्के फलाहारी हैं। ऐसी सादग हमने पहले किसी में कभी नहीं देखी। इतना सा भेाजन, उस पर भी आपका सिर तक दर्द नह करता। हाँ बड़े मेाटे ताज़े या ऊँचे नहीं हैं पर फुरत इत्यादि में आप मांसाहारियेां के कान काटते हैं सन् १८९१ में आपने बैरिस्टरी पास की। आ (Inner Temple) इनर टेम्पिल के मेम्बर हैं। स १८९४ में ट्रांसवाल गये, जहाँ डेढ़ वर्ष के पहले त बैरिस्टरी अच्छी तरह करते रहे। जेा कुछ आ तक कमाया सब परेापकार में लगा दिया। (India Opinion) इंडियन ओपीनियन नाम के साप्ताहि समाचर पत्र के आप मालिक और सहकारी सम्पा दक हैं। यह पत्र प्रायः सात साल से चल रहा है ग्राहक-संख्या ख़ासी है। अँगरेज़ी और गुजराती भाषाओं में प्रकाशित होता है। प्रधान सम्पाद मि० पालक हैं, जेा आज कल भारत में भ्रमण कर रहे हैं। अँगरेज़ होने पर भी आप हिन्दुस्तानियेां की यथाशक्ति सहायता करते हैं। गाँधी जी की मात भाषा गुजराती है, पर अँगरेज़ी के सिवा आप लैटि फ़्रेंच, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और तामिल भाषायें भ साधारणतः जानते हैं।

गाँधी जी के कार्य।

अपने देश-भाइयेां के लिए गाँधी जी तीन बा जेल हेा आये और जाते समय स्टेशन पर हम कहने लगे कि चौथी बार की तैयारी कर रहा हूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेल में उनको जो तकलीफ़ें हुईं वे सबको मालूम हैं। गाँधी जी क़ातिल, चोर, या डाकू न थे पर जेलवालों ने इन पापियों से भी उन्हें बुरा समझा। सड़क पर गिट्टी उन्हें फोड़नी पड़ी। मलमूत्र उन्हें उठाना पड़ा। भूखों उन्हें मरना पड़ा। समाचार पत्र उन्हें पढ़ने को नहीं दिये जाते थे। पत्र महीने में केवल एक बार लिख पाते थे। निदान इक्के के घोड़े की भाँति सवेरे से संध्या तक बराबर जुते रहते थे। पर ये सब आफ़तें बड़ी ख़ुशी से झेलीं और झेलने को तैयार हैं। हम लोगों की जैसी बुरी दशा ट्रांसवाल में है वह दो एक बातों से मालूम होगी। हमारे भाई वहाँ ट्राम में नहीं बैठने पाते। औरों का चाहे कुत्ता तक ट्राम में सवार हो सके पर हम लोग इससे भी गये बीते समझे जाते हैं। हिन्दुस्तान का कोई नया आदमी ट्रांसवाल में क़दम नहीं रख सकता, यदि रक्खेगा तुरन्त लौटा दिया जाता है, हठ करे तो जेल में ठेला जाता है। बिना लैसन के कोई वस्तु नहीं बेच सकता। जब हम लोगों की यह दशा है तब अधिकारों की बात करनी हमारी नादानी है।

कुछ फुटकर बातें।

गाँधी जी किसी नैतिक विभाग से सम्बन्ध नहीं रखते अर्थात् न आप गरम दल के पक्षपाती हैं न नरम दल के विरोधी। उनका मिशन ही निराला है, इन्हें चाहे जो नाम दो। हिन्दू, मुसलमान, पारसी इत्यादि उन्हें अपना सच्चा मित्र समझते हैं और सदैव सहायता करने को तैयार हैं। किसी विशेष धर्म के आप पाबन्द नहीं हैं। अच्छी बातें सब धर्मों की पसन्द करते हैं। तीर्थयात्रा, जाति इत्यादि में आपका विश्वास नहीं है। विधवा-विवाह के पक्षपाती नहीं तो विरोधी भी नहीं हैं। रेल का चलना आपकी राय में भारत की क्षति की निशानी है। अभी कुछ समय तक भारत लौटने का विचार नहीं है। कदाचित् बिलकुल न जावें। आपके आन्दोलन में मद्रास के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड एम्टहिल ने अच्छी मदद दी है और दे रहे हैं। इस कारण उन पर यहाँ के सब अख़बार और दूसरे लोग रुष्ट हैं। बस इतना ही इस लेख के लिए काफ़ी है। तुरन्त ही भारतवासियों के लिए हम गाँधी जी की पुस्तकाकार जीवनी भेंट करेंगे जिसमें बहुत सी नई बातें मिलेंगी।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय।

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय मालवा के एक सुप्रसिद्ध और सम्मानित ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न हुए हैं। इनके पूर्वज वहाँ से क़रीब चार सौ बरस हुए प्रयाग आये थे। इस वंश में सदैव बड़े बड़े पण्डित और विद्वान् होते आये हैं। पण्डित मदनमोहन मालवीय जी के पूज्यपाद पिता श्रीमान् पण्डित व्रजनाथ मालवीय जी भी, जिनका देहान्त परही साल हुआ है, एक प्रसिद्ध संस्कृत के विद्वान् थे। आपकी श्रीमद्भागवत और अन्यान्य पुराणों की कथा बड़ी ही मनोहारिणी हुआ करती थी। स्वर्गवासी महाराजा दरभंगा और काशी-नरेश आपका बड़ा ही आदर करते थे। आपने कई एक संस्कृत के ग्रंथ रचे हैं जो उनके लोकमान्य चिरजीवी सुपुत्र माननीय पण्डित मदनमोहन जी ने प्रकाशित कराये हैं और प्रकाशित करा रहे हैं।

पण्डित मदनमोहनजी श्रीमान् पण्डित व्रजनाथ जी के तीसरे पुत्र हैं। आपका जन्म प्रयाग में २५ दिसंबर सन् १८६१ में हुआ था। आपका निवास तबसे अब तक उसी मकान में है।

पण्डित मदनमोहनजी ने पहले पहल धर्म्मज्ञानोपदेश पाठशाला और विद्याधर्म्मप्रवर्द्धिनी सभा में शिक्षा पाई। तदनन्तर वे प्रयाग के ज़िला स्कूल में भरती हुए। वहाँ से उन्होंने इन्ट्रेन्स की परीक्षा सन् १८७९ में पास की। फिर वे म्योर सेन्ट्रल कालज में आये। वहाँ से सन् १८८१ में आपने एफ़० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास किया और १८८४ में बी० ए० की परीक्षा में आप उत्तीर्ण हुए। कालेज में आप डाक्टर थीबो और महामहोपाध्याय पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्य के शिष्य थे। पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य्य की ओर अब भी आपका पूज्यभाव रहता है और भट्टाचार्य्य जी भी मालवीय जी की ओर वात्सल्यदृष्टि सदैव रखते हैं। कुछ दिन एम० ए० क्लास में पढ़ने के अनन्तर आपको कालेज छोड़ना पड़ा और प्रयाग ही के ज़िला स्कूल में आपको ५०) मासिक पर सन् १८८४ में अध्यापकता शुरू करनी पड़ी। सन् १८८७ तक आप अध्यापक रहे। इस समय सुप्रसिद्ध डाक्टर सतीशचन्द्र बनर्जी आपके कुछ समय तक शिष्य रहे। मालवीय जी को स्वदेश-सेवा का प्रेम बाल्यावस्था ही से है। छात्रावस्था में ही आपने व्याख्यान देना, सभा-सोसाइटियों में सम्मिलित होना आरम्भ कर दिया था। इलाहाबाद लिटरेरी इन्स्टीट्यूट और हिन्दू-समाज आपने तभी स्थापित कर डाली थी। सरकारी स्कूल में नौकरी करते हुए भी आप कांग्रेस में सम्मिलित होते थे और व्याख्यान भी देते थे। परन्तु उस समय और इस समय में अब ज़मीन आस्मान का फ़र्क़ है। कांग्रेस का काम करते हुए आपका कालाकाङ्कर के स्वर्गवासी राजा रामपाल-सिंह से परिचय हो गया। राजा साहब हिन्दुस्थान नामक पत्र निकालते थे। आपने मालवीयजी को २००) माहवार पर उस पत्र का सम्पादक नियुक्त किया। मालवीयजी ने बड़ी योग्यता के साथ हिन्दुस्थान का सम्पादन २½ वर्ष किया; यहाँ तक कि गवर्नमेंट को भी अपनी रिपोर्ट में इस पत्र की प्रशंसा करनी पड़ी। पत्र-सम्पादन से आपको बड़ा ही प्रेम है। सम्पादक का कर्तव्य आप बड़ी ही ज़िम्मेदारी का समझते हैं। अध्यापक अपने शिष्यों ही को शिक्षा देता है परन्तु सम्पादक बड़े बूढ़े के भी विचारों को शुद्ध कर सकता है। सम्पादकता छोड़ने पर भी आप अँगरेज़ी के पत्र "इंडियन यूनिगन" में, जो अब लखनऊ के एडवोकेट से मिला दिया गया है, लिखते रहे। कई एक हिन्दी और अँगरेज़ी पत्रों का जन्म मालवीय जी के उत्साह दिलाने पर ही हुआ है। जब आप हिन्दुस्थान का सम्पादन कर रहे थे तब आपके कई एक मित्र और बुज़ुर्ग, जैसे कि राय बहादुर पण्डित सुन्दरलाल, पण्डित अयोध्यानाथ, ए० ओ० ह्यूम इत्यादिकों ने इस बात का आग्रह किया कि आप क़ानून की परीक्षा पास करें और वकालत करें। यद्यपि आपकी प्रवृत्ति इस ओर न थी परन्तु बड़ों की आज्ञा आपको शिरोधार्य्य थी। आपने क़ानून की परीक्षा १८९१ में पास हो कर डाली और १८९२ से हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। हम पहले कह आये हैं कि पण्डित मदनमोहनजी को स्वदेशसेवा का बाल्यावस्था ही से प्रेम है। हिन्दूसमाज तो आप स्थापित करही चुके थे, परन्तु सन् १८८४ में आपने प्रयाग में मध्य-हिन्दू-सामज स्थापित की और दश हरे में इसका बड़ा उत्सव किया जिसमें दूर दूर के विद्वान् पधारे थे। मध्य समाज के उत्सव सन् १८९१ तक होते रहे। मालवीय जी सन् १८८६ में कलकत्ते की कांग्रेस में सम्मिलित हुए। मिस्टर दादाभाई नौरोजी सभापति थे। वहाँ वक्तृतायें सुनते सुनते मालवीय जी से रहा न गया। आप उठ खड़े हुए और एक व्याख्यान देही दिया। फिर क्या था! श्रोतागण उस व्याख्यान को सुन कर मुग्ध होगये। मिस्टर दादाभाई नौरोजी, सर टी० माधवराव, दीवान बहादुर रघुनाथराव, मिस्टर ह्यूम, इत्यादि कांग्रस के संस्थापक नेतागण कहने लगे कि मालवीय जी बड़े होनहार हैं और कांग्रस को उनसे बहुत कुछ लाभ पहुँचेगा। हुआ भी ऐसाही। कांग्रेस में आप सदैव जातेही नहीं किन्तु बड़े बड़े राज-नैतिक गम्भीर विषयों पर मनोहर वक्तृतायें भी देते हैं। आपकी निर्भय, मधुर और ओजस्विनी वक्तृता और सुशीलता की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। भारतवर्ष के नेतागण आपको silver-tongued orator (मधुरभाषी) कहा करते हैं। आपका लाहौर की २४ वीं कांग्रेस का सभापति निर्वाचित किया जाना सर्वथा उचित ही था।

मालवीयजी इलाहाबाद म्यूनिस्पल बोर्ड के मेम्बर बहुत दिनों से हैं। कभी कभी आपको बो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वाइसचेअरमैन भी होना पड़ा है। आप सन् १९०२ से स्वर्गवासी माननीय पण्डित विश्वम्भरनाथ जी के बाद प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के भी मेम्बर हैं और इस साल से वाइसराय की कौंसिल के भी मेम्बर चुने गये हैं। म्यूनिस्पल और लेजिसलेटिव कौंसिलें में आपने बड़ा काम किया है और करते हैं, विशेष कर प्लेग और अकाल के दिनों में।

यहाँ की अदालतों में देवनागरी लिपि का प्रवेश मालवीयजी के ही उद्योग से हुआ है। विद्यार्थियों के तो आप बड़ेही सहायक हैं। प्रयाग-विश्वविद्यालय के फ़ेलो हैं और सेनट में सदैव विद्यार्थियों के हितके प्रस्ताव किया करते हैं। प्रयागस्थ मेकडानल्ड हिन्दू-बोर्डिङ्ग हौस, जो आप ही के उद्योग का फल है, जब तब क़ायम है तब तक आपकी कीर्ति-कौमुदी छात्रमण्डल को उज्ज्वल और पवित्र करती रहेगी।

मालवीयजी पक्के सनातन-धर्म्मावलम्बी हैं। आपका सदाचार देख कर अश्रद्धालुओं के भी हृदय में श्रद्धा उमड़ पड़ती है। स्कूलें, कालजें और पाठशालाओं में धर्म्मशिक्षा देने के आप बड़े पक्षपाती हैं। सन् १९०६ में आपने सनातन-धर्म्म-महासभा का बृहदधिवेशन किया था, जिसमें ब्राह्मण और अतिथियों की सेवा तन, मन, धन से की थी। उसी महासभा में भारतीय विश्वविद्यालय का विचार प्रविष्ट किया था। इस भारतीय विश्वविद्यालय के स्थापित करने के लिए अब आप वकालत वग़ैरः छोड़ कर शीघ्रही उद्योग करनेवाले हैं।

मालवीयजी को स्वदेशी-अन्दोलन से बड़ा प्रेम है। आज तीस वर्ष से आप इसके आन्दोलन में प्रवृत्त हैं। सच तो यह है कि भाषा, भेष और भाव यदि तीनों में ही किसी को स्वदेश-प्रेमी देखना हो तो वह मालवीय जी के दर्शन करे।

आपने सन् १८८१ में देशी-तिजारती-कम्पनी प्रयाग में खुलवाई थी। तबसे प्रयाग-शूगर-कम्पनी इत्यादि बहुतेरे स्वदेशी कारख़ानों के खुलवाने में आपने उद्योग किया है।

दीन दुखी दरिद्री लोगों की आर्थिक सहायता करने के लिए आप सदैव उद्यत रहते हैं। आपका हृदय बड़ा ही कोमल, उदार और दयार्द्र है। उत्साह से आप सदैव परिपूर्ण रहते हैं। हताश होना तो जानतेही नहीं। आप धर्म्म-कर्म्म-रत, निष्ठावान्, मातृ-पितृ-भक्त, वृद्धसेवी, सहिष्णु, परोपकार-परायण, क्षमाशील, शान्त, सीधे सच्चे ब्राह्मण हैं। राजनैतिक आन्दोलन द्वारा शासन-सुधार करना, जिससे लाखों मनुष्यों का भला होता है, आप धर्म्म का एक अङ्ग मानते हैं। इसीसे आप राजनैतिक मामलों में सदैव से योग देते रहे हैं। परमेश्वर करे कि आप शतायु क्या सहस्रायु हों और अपने पवित्र और शिक्षाप्रद जीवन से संसार का भला करते रहें।

सन्ध्या-वर्णन।

(सानुवाद)

१—उपसन्ध्यमास्ततनुसानुमतः
शिखरेषु तत्क्षणमशीतरुचः।
करजालमस्तसमयेऽपि सता-
मुचितं खलूच्चतरमेव पदम्॥

❋

सन्ध्या-समीप रवि-रश्मि-निकर
स्थित हुआ शैल के शिखरों पर।
सुजनों को अस्त-समय भीनित
है निश्चय उच्च स्थान उचित॥

२—प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ
विफलत्वमेति बहुसाधनता
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभू-
न्न पतिष्यतः करसहस्रमपि॥

❋

प्रतिकूल दैव होता है जब
होते निष्फल सब साधन तब।
निपतित रवि के सहस्र कर भी
हो सके सहारे को न कभी!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—रुचिधाम्नि भर्तरि भृशं विमलाः
परलोकमभ्युपगते विविशुः।
ज्वलनं खिषः कथमिवेतरथा
सुलभोऽन्यजन्मनि स एव पतिः॥

❋

परलोक प्रभाकर गया उधर
गत हुई अनल में प्रभा इधर।
जन्मान्तर में अन्यथा रुचिर
है सुलभ वही पति क्यों कर फिर?

४—निलयः श्रियः सततमेतदिति
प्रथितं यदेव जलजन्म तया।
दिवसात्ययात्तदपि मुक्तमहो
चपला जनं प्रति न चोद्यमदः॥

❋

श्री-गृह न सरोज सुना किसने
तज दिया उसे भी अब उसने।
अथवा चपला जन के ऊपर
आक्षेप वृथा यह है भू पर॥

५—ददृशेऽपि भास्कररुचाऽहि न यः
न तमीन्तमोभिरभिगम्य ततम्।
द्युतिमग्रहीद् ग्रहगणो लघवः
प्रकटीभवन्ति मलिनाश्रयतः॥

❋

दिन में जिनके दर्शन न मिले
अब निशि में वे नक्षत्र खिले।
मलिनाश्रय से ही मलिन-निकट
देखो, होते लघु लोग प्रकट॥

६—प्रथमं कलाऽभवदथार्द्धमथो
हिमदीधितिर्महदभूदुदितः।
दधति ध्रुवं क्रमश एव न तु
द्युतिशालिनोऽपि सहसोपचयम्॥

❋

विधु प्रथम कला-सम दीख पड़ा
फिर आधा हो कर हुआ बड़ा।
तेजस्वी भी क्रम से बढ़ते
सहसा न कभी ऊँचे चढ़ते॥

७—रजनीमवाप्य रुचिमाप शशी
सपदि व्यभूषयदसावपि ताम्।
अविलम्बितक्रममहो महता-
मितरेतरोपकृतिमच्चरितम्॥

❋

निशि से शशि शोभा हुई घनी
शशि ने भी शोभित की रजनी।
क्रमयुक्त बड़ों का चरित अहो!
उपकारक क्यों न परस्पर हो?

८—इति निश्चितप्रियतमागतयः
सितदीधितावुदयवत्यबलाः।
प्रतिकर्म्म कर्तुमुपचक्रमिरे
समये हि सर्वमुपकारिकृतम्॥

❋

यों उदित चन्द्र के होने पर
प्रिय के आने का निश्चय कर।
आभूषित होने लगीं प्रिया
होती समयोचित सफल क्रिया॥

९—दयितायमानपरयापरया
त्वरितं ययावगदितापि सखी।
किमु चोदिताः प्रियहितार्थकृतः
कृतिनो भवन्ति सुहृदः सुहृदाम्॥

❋

थी मौन यदपि मानिनी नई
प्रिय के लेने को सखी गई।
हित सुहृज्जनों का सज्जन वर
करते हैं क्या प्रेरित होकर?

१०—उदितं प्रियां प्रति सहार्दमिति
श्रदधीयत प्रियतमेन वचः।
विदितेङ्गिते हि पुर एव जने
समुदीरिताः खलु लगन्ति गिरः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❋

सुन गिरा प्रिया-प्रति प्रेम भरी
समझी प्रिय ने यार्थार्थ खरी।
है विदित प्रथम ही भेद जिन्हें
पड़ता न बताना अधिक उन्हें॥

[शिशुपाल-वध से
मैथिलीशरण गुप्त।

महाराष्ट्रीय उपदेशक❋।

भारतवासियों का यह प्राचीन और दृढ़ विश्वास है कि जब धर्म का लोप होने लगता है, साधु जनों को पीड़ा होने लगती है और समाज की दशा बिगड़ जाती है तब भगवान् किसी न किसी रूप में प्रकट होकर सद्धर्म की स्थापना, साधु-संतों की रक्षा, और मानवी समाज का सुधार अथवा उद्धार करता है। आजकल अँगरेज़ी पुस्तकों द्वारा पश्चिमी नीति और तर्क-विद्या की शिक्षा पाये हुए हमारे कुछ विद्वान भाई उक्त सिद्धान्त पर विश्वास रखना बुद्धि-मंदता का लक्षण समझते हैं। परन्तु यह बात निर्विवाद और अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है कि, जब जब किसी देश की सामाजिक दशा इतनी बिगड़ी हुई देख पड़ी कि उससे पारमार्थिक उन्नति का मार्ग रुक जाता था, तब तब प्रभावशाली और महानुभाव उपदेशक उस देश में जन्म लेकर अलौकिक देशसेवा कर गये हैं। इस बात के उदाहरण हमारेही देश में नहीं किन्तु अन्य देशों में भी पाये जाते हैं। आज हम, महाराष्ट्र-प्रदेश के उन महानुभाव उपदेशकों के विषय में कुछ लिखना चाहते हैं, जिन्होंने मुसलमानी ज़माने में, और उसके बाद भी, नष्टप्राय हिन्दू-धर्म की रक्षा की और बिगड़े हुए महाराष्ट्र-समाज को सुधार कर स्वतंत्र-सत्ता स्थापित करने की शक्ति दी। इतिहासकारों का मत है कि महाराष्ट्रीय सत्ता के अभ्युदय के अनेक कारणों में से संत-साधु और कवियों (अर्थात् उपदेशकों) की शिक्षा भी एक प्रधान कारण है। इसलिए यह लेख प्रकाशित करने में हमारा मुख्य उद्देश यही है कि हिन्दी के विचारशील पाठकों के अंतःकरण में महाराष्ट्र (तथा भारत के अन्यान्य प्रान्तों) के इस ऐतिहासिक विषय में जिज्ञासा उत्पन्न हो। हमारी यह आन्तरिक अभिलाषा है कि जिस प्रकार कुछ महाराष्ट्रीय लेखकों ने अपने प्रान्त के उपदेशकों की ऐतिहासिक दृष्टि से चर्चा की है उसी प्रकार युक्तप्रदेश के प्रख्यात उपदेशकों के विषय में भी लेख और पुस्तकें लिखी जायँ और उन पर ख़ूब चर्चा की जाय।

प्रस्तुत लेख के विषय में यह प्रश्न किया जा सकता है कि कुछ उपदेशकों की इधर उधर की बातें, संक्षेप में, जान लेने से क्या लाभ होगा? इसका उत्तर यही है कि, विद्वान् और अनुभवी लोगों के मतानुसार, जिस जाति का इतिहास जानना हो उस जाति के आचार-विचार, धर्म-सम्बन्धी कल्पनाएं, सामाजिक अवस्था, व्यापार, नीति, विद्या, भाषा और संस्थाओं का परिचय अत्यन्त आवश्यक है। इस दृष्टि से देखा जाय तो यह मानना पड़ेगा कि महाराष्ट्रीय उपदेशकों के विषय में कुछ थोड़ासाही परिचय पा जाने से मननशील पाठकों की जिज्ञासा निस्सन्देह जागृत होगी और बहुत सम्भव है कि कुछ अन्वेषणशील विद्वान् अपने अपने प्रान्त के साधु-संतों के विषय में महत्त्व-पूर्ण ऐतिहासिक चर्चा करें। इस चर्चा से एक बहुत बड़ा लाभ यह होगा कि वर्तमान समय में जो साधु-संत कहलानेवाले कुछ पुरुष अपने

❋ यह लेख सरदेसाईकृत 'हिन्दुस्थान का अर्वाचीन इतिहास', रानडेकृत 'महाराष्ट्रीय सत्ता का अभ्युदय', ग्रन्थ-माला में प्रकाशित राज-वाड़े आदि इतिहासज्ञों के कुछ लेख और प्राचीन साधु सन्त तथा कवियों की जीवनी के आधार पर लिखा गया है। "त्रिमूर्ति"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्तव्य को भूले हुए हैं उन्हें अपने पवित्र और उच्चतम कर्तव्य का ज्ञान भी होगा।

हम जानते हैं कि यह लेख अति संक्षिप्त और अपूर्ण है। यह लेख, उपर्युक्त उद्देश-पूर्ण होने के लिए, एक अल्प साधन है। यदि पाठकगण इस लेख को पसन्द करें और यदि उन्हें ऐसे लेखों से वास्तव में कुछ लाभ मालूम होता हो तो दूसरे लेखों में महाराष्ट्र के प्रख्यात उपदेशकों के चरित और उनके ग्रन्थों की आलोचना प्रकाशित करने का यत्न किया जायगा।

तेरहवीं सदी में महाराष्ट्र की स्वतंत्र राजसत्ता का नाश हुआ। सन् १२९४ ई० में अलाउद्दीन ख़िलजी ने महाराष्ट्र में प्रवेश करके यादव-वंश के अंतिम हिन्दू राजा रामदेवराव का पराभव किया। इसी समय से वहाँ मुसलमानों की सत्ता प्रस्थापित हुई। उस परकीय सत्ता की अनेक शाखाओं ने महाराष्ट्र देश को लग भग ३०० वर्ष तक, अर्थात् सत्रहवीं सदी के प्रथमार्ध तक, अपने मन चाहे अधिकार के अधीन रक्खा। इस परधर्मी सत्ता का नाश करके स्वतंत्र स्वराज्य स्थापित करने का महत्कार्य शिवाजी के जन्मकाल से, अर्थात् सन् १६२७ ई० से, आरम्भ हुआ, जिससे महाराष्ट्र देश ने लग भग २०० वर्ष तक स्वतंत्रता की शीतल छाया में रह कर स्वधर्म का अनुपम सुख प्राप्त किया। मुसलमानी ज़माने में हिन्दुओं पर अनेक अत्याचार किये गये। अकबर बादशाह के समय में हिन्दुओं को जो धर्माचरण की स्वतंत्रता और न्याय की समता प्राप्त थी उसका अब लोप हो गया। हिन्दुओं के मन्दिर फोड़े गये, गोहत्या की गई और प्रतिष्ठित देवमूर्तियों का नाश किया गया। इस अत्याचार से समाज की रचना अव्यवस्थित होने लगी। लोग मुसलमानों के भय से, और उनके वैभव के लालच से, अपने धर्म, आचार, विचार, शास्त्र, सिद्धान्त, रीति-रवाज, भाषा आदि का त्याग करने लगे। कोई "दावलमलक" (दाऊद-उल-मुल्क) नामक पीर की पूजा करने लगे और कोई खुल्लम-खुल्ला मुसलमान हो गये। ब्राह्मणों की बुद्धि का प्रका घट गया और शूद्रों को ऊँचे दरजे का अधिक प्राप्त हुआ। उस समय की समाजनीति और धा दुर्दशा का वर्णन तत्कालीन उपदेशकों ने अप अपने ग्रन्थों में किया है। श्रीसमर्थ रामदास स्वा अपने "दासबोध" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—

मूल मराठी—ब्राह्मण बुद्धीपासून चेवले। आच रापासून भ्रष्टले। गुरुत्व सांडून भाले। शि शिष्यांचे ॥ ३१ ॥

हिन्दी भाषान्तर—ब्राह्मण बुद्धिच्युत और आच भ्रष्ट हो गये हैं तथा गुरुत्व छोड़कर शिष्यों शिष्य बनें हैं ॥ ३१ ॥

मू० म०—कित्येक दावलमलंकास जाती। कित्ये पीरास भजती। कित्येक तुरक होती। आप इछेनें ॥ ३२ ॥

हि० भा०—कितनेही लोग "दावलमलक" नाम पंथ को स्वीकार करते हैं, कितने ही "पीर को भजते हैं और कितने ही स्वइच्छा से तु हो जाते हैं ॥ ३२ ॥

मू० म०—राज्य नेलें म्लेंछ क्षेत्रीं। गुरुत्व नी कुपात्रीं। आपण अरत्रीं ना परत्रीं। कांहीं नाहीं ॥ ३६ ॥

हि० भा०—राज्य म्लेच्छों के हाथ में चला गय गुरुत्व नीचों ने ले लिया। हम न इस लोक रहे न उस लोक में। कुछ भी नहीं रहा ॥ ३ —दशक १४ समास ७।

मू० म०—कित्येक म्लेंच हो ऊन जेले। कित्ये फिरंगणांत आटले। देशभाषानें रुधिले किती येक ॥ ३ ॥

हि० भा०—कितनेही हिन्दू मुसलमान हो गये कितनेही फिरंगियों में मिल गये और कितने देशभाषा से रुके पड़े हैं ॥ ३ ॥

मू० म०—शडदर्शनें नानामतें। पाषांडें वाढ पहुतें। पृथ्वी मधें जेथ तेथें। उपदेसिती ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हि० भा०—षडदर्शन (सौर, शाक्त, गाणपत्य, शैव, वैष्णव, देवउपासक) और नानामतों के पाखंड बहुत बढ़े हैं और पृथ्वी में, (देश भर में), जहाँ देखो तहाँ, (उन्हीं का) उपदेश हो रहा है ॥७॥

मू० म०—कित्येक कामनेचे भक्त। ठाईं ठाईं जाले आसक्ता युक्त अथवा अयुक्त। पाहातो कोण ॥९॥

हि० भा०—कितने ही लोग कामना के भक्त बनकर ठौर ठौर में आसक्त हो रहे हैं। युक्तायुक्त कौन देखता है? (अर्थात् उचित अनुचित कोई नहीं जानता) ॥ ९ ॥—द० १५ स० २।

श्रीरामदास स्वामी शिवाजी महाराज को, एक पत्र में, लिखते हैं:—

मू० म०—तीर्थक्षेत्रें मोडिलीं। ब्राह्मण स्थानें भ्रष्ट जालीं। सकल पृथ्वी आंदोकली। धर्म गेला॥ म्लेंछ दुर्जन उदंड। बहुतां दिवसांचें माजलें बंड। या कारणें अखंड। सावधान असावें॥

हि० भा०—तीर्थक्षेत्र और ब्राह्मणस्थान भ्रष्ट हो गये। सारी पृथ्वी (सारा देश) अकुला उठी है। धर्म चला गया है। दुर्जन म्लेच्छों का हंगामा बहुत दिनों से मचा हुआ है। इस कारण अखंड सावधान रहना चाहिए!

श्रीसमर्थ एक जगह और भी कहते हैं:—

मू० म०—विप्रीं सांडिला आचार। क्षत्रीं सांडिला विचार॥ १॥ जनीं दोष जाले फार। तेणें होत से संहार॥ २॥

हि० भा०—विप्रों ने आचार और क्षत्रियों ने विचार छोड़ दिया। लोगों में बहुत दोष हो गये हैं—इससे संहार (विनाश) हो रहा है॥ १॥ २॥

एकनाथ स्वामी अपनी भागवत में कहते हैं:—

मू० म०—गाई ब्राह्मणासी जाण। पीड़ा करिती दारुण। क्षेत्र-वित्त-दारा हरण। स्वार्थें प्राण घेताती॥

हि० भा०—गौ ब्राह्मणों को दारुण पीड़ा दे रहे हैं। स्वार्थवश होकर क्षेत्र, वित्त, और दारांहरण करते हैं और प्राण ले लेते हैं॥

भूषण कवि ने, शिवाजी की प्रशंसा करते हुए उस समय की सामाजिक और धार्मिक दुर्दशा का वर्णन इस प्रकार किया है:—

देवल गिरावते किरावते निसान अली
ऐसे डूबे राव राने सबी गये लब की।
गौरा गनपति आप औरन को देत ताप
आपके मकान सब मारि गये दब की।
पीरा पयगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत
सिद्ध की सिधाई गई रही बात रब की।
कासिहु ते कला जाती मथुरा मसीद होती
सिवाजी न होत तौ सुनति होत सब की॥२०॥
कुम्भकर्न असुर-औतारी अवरंगज़ेब
कीन्ही कत्ल मथुरा दोहाई फेरी रब की।
खेदि डारे देवी देव शहर मुहल्ला बाँके
लाखन तुरुक कीन्हे छूटि गई तब की।
भूखन भनत भाग्यो कासीपति विस्वनाथ
और कौन गिनती मैं भूली गति भब की।
चारौं वर्ण धर्म छोड़ि कलमा नेवाज पढ़ि
सिवाजी न होत तौ सुनति होत सब की॥२२॥

—श्रीशिवाबावनी।

जिस समय हिन्दू धर्म और समाज की इस प्रकार दुर्दशा हो रही थी और उसके सुधार की अत्यन्त आवश्यकता थी उसी समय, परमात्मा की कृपा से, महाराष्ट्र प्रान्त में (और हिन्दुस्थान के अन्य प्रान्तों में भी) अनेक *साधुओं, संतों और कवियों

* इन अनेक साधु संतों और कवियों में से कुछ के नाम ये हैं:—चोंभदेव, मुकुन्दराज, बहिरंभट्ट, निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव, मुक्ताबाई, नामदेव, गोराकुम्हार, उद्धव चिद्घन, चोखामेला, रोहिदास, एकनाथ, तुकाराम, नरहरि सुनार, सावता माली, संतोबा पवार, शेख महम्मद, शेख सुलतान, शेख फरीद, रामदास, आकाबाई, वेणूबाई, देवीदास, कूर्मदास, दामाजीपंत, उद्धव, बोधलेवा, केशव स्वामी, आनन्द मूर्ति, रंगनाथ स्वामी, जयराम स्वामी, नृसिंह सरस्वती, मुक्तेश्वर, विठ्ठलपंत, वामन पंडित, अनंतकवि, आनन्दतनय, रघुनाथ पंडित, श्रीधर, अमृतराय, मध्वमुनीश्वर, मोरोपंत, महीपति, रामजोशी, अनन्दफंदी, देवनाथ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने जन्म लेकर अपने प्रभावशाली उपदेश द्वारा स्व-धर्म-जागृति का महत्कार्य आरम्भ किया। उनके उपदेश से लोगों के मन अपने धर्म की ओर फिर झुकने लगे; धर्म विषयक उनकी भ्रष्ट कल्पनाएं सम्मार्जित होने लगीं; ऐहिक और पारलौकिक सुख प्राप्ति के मार्ग में भटके हुए धर्म की जो कृत्रिम रुकावट थी उसका धीरे धीरे नाश होने लगा और अंत में साधारण जन से लेकर श्रीमान् तक, सब लोग, अपने धर्म की रक्षा करने के लिए प्राण त्याग करने को भी तत्पर हुए। विल्कस साहब ने अपने मैसूर के इतिहास में मिकन्जी साहब के एकत्र किये हुए कुछ हस्तलेखों का उल्लेख किया है। आपका कथन है कि सन् १६४६ ईसवी में लिखे हुए एक हस्तलेख में इस बात का वर्णन पाया गया है कि मुसल्मानों के ज़माने में धर्म और नीति की किस तरह अवनति हो रही थी और साधुजनों को किस तरह कष्ट सहने पड़ते थे। इसी लेख के अंत में यह भविष्य कहा गया है कि "परमात्मा की कृपा से यह दुखदायक समय भी चला जायगा और अपना देश पराधीनता से मुक्त होगा। उस समय सर्वत्र आनन्दही आनन्द छा जायगा, कुमारिका गीत गावेंगी और आकाश से पुष्पवृष्टि होगी।" तात्पर्य यह है कि उस समय के धर्मोपदेशकों के प्रभाव से लोगों की धार्मिक श्रद्धा पुनरुज्जीवित हो गई थी और वे लोग अपने समाज की उन्नति करने के योग्य हो गये थे।

जिन उपदेशकों ने महाराष्ट्र प्रदेश को सद्धर्म की शिक्षा दी और समाजोन्नति का मार्ग दिखला कर मनुष्य-जाति के सच्चे कर्तव्य में दत्तचित्त किया उनमें कोई योगी, कोई महात्मा, कोई साधु, कोई संत और कोई कवि थे। ये सब महान् भगवद्भक्त और भिन्न भिन्न जाति, वर्ण और व्यवसाय के थे। इन महात्माओं में कई स्त्रियाँ भी थीं और कई मुसल्मान थे। महाराष्ट्रीय साधु संत और महात्माओं के चरित महीपति कवि ने अपने भक्त-विजय, संतविजय और भक्तलीलामृत आदि ग्रन्थों में लिखे हैं। इन पद्यात्मक चरित्रों के पढ़ने से मालूम होता है कि महाराष्ट्रीय साधु और संत समय समय पर, ऐसे अद्भुत, आश्चर्यजनक और अलौकिक कार्य (Miracles) किये हैं जिन पर भाविक और श्रद्धालु लोगों के सिवा वर्तमान समय की शिक्षा पाये हुए बहुत से लोग विश्वास न कर सकते। नैतिक दृष्टि से विचार किया जाय तो साधुचरित्र का महत्त्व अलौकिक कार्यों पर अवलम्बित नहीं रहता; किन्तु वह उनकी शिक्षा और आचार के शुद्ध तत्त्वों पर अवलम्बित रहता है। इस लेख में हम इन महात्माओं के अलौकिक कार्यों का वर्णन न करके केवल उनके उपदेशतत्त्व का ही उल्लेख करेंगे।

इन उपदेशकों के जीवनकाल और इनकी विचार पद्धति की ओर देखने से इनके तीन भाग किये जा सकते हैं। प्रथम भाग को ज्ञानेश्वरवर्ग, दूसरे को एकनाथ-वर्ग और तीसरे को मोरोपंत-वर्ग कहेंगे। यहाँ 'वर्ग' शब्द अँगरेज़ी के 'स्कूल' शब्द के अर्थ में लिखा गया है। ज्ञानेश्वर, एकनाथ और मोरोपन्त यही तीन नाम इसलिए चुने गये कि अपने समकालीन उपदेशकों में विशेष प्रमुख और उन्हीं के उपदेशतत्त्वों की छाया अन्य उपदेशकों में देख पड़ती है।

प्रथमवर्ग में, अर्थात् ज्ञानेश्वरवर्ग में, ज्ञानेश्वर, मुकुन्दराज, बहिरं भट्ट, निवृत्तिनाथ, सोपानदेव, मुक्ताबाई, नामदेव और उनका परिवार, चोखामेला, गोरा कुम्हार, उद्धवचिद्घन आदि साधु जनों का समावेश किया जाता है। प्रायः ये सब तेरहवें शताब्दी में हुए। उस समय महाराष्ट्र में यादव कुल के राजा राज करते थे। तथापि स्वधर्म की अवनति का आरम्भ हो चुका था। इसलिए धर्म-सुधार की कल्पना का बीज इसी वर्ग के उपदेशकों ने बोया। यद्यपि इस वर्ग के उपदेशक बहुत बड़े विद्वान और पंडित न थे तथापि उनके निर्मल अन्तःकरण से प्रेमपूरित उपदेश और आदर्शरूप सदाचार का जनसमुदाय पर अच्छा परिणाम हुआ। महाराष्ट्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकांश उपदेशकों में मुख्य दो गुण पाये जाते हैं—पहला साधुत्व और दूसरा कवित्व। यहाँ 'साधुत्व' और 'कवित्व' शब्द साधारण व्यावहारिक अर्थ में लिखे नहीं गये हैं। यह बात आगे चलकर स्पष्ट हो जायगी। ज्ञानेश्वरवर्ग के उपदेशकों में कवित्व की अपेक्षा साधुत्वही अधिक देख पड़ता है। धार्मिक उन्नति और परमार्थ-प्राप्ति के मार्ग में, वर्ण-भेद के दृढ़ बन्धनों से जो उच्च-नीच-भाव प्रबल हो गया था, उसको हानिकारक समझ कर दूर करने के लिए जितने प्रत्यक्ष यत्न इस वर्ग के उपदेशकों ने किये उतने कदाचित् और किसी ने न किये होंगे। भगवत्प्राप्ति के लिए मनुष्य मात्र को समान अधिकार है; उसमें छोटे बड़े का भेद न होना चाहिए; इसी तत्त्व का आचरण-सहित उपदेश किया गया। यही इस वर्ग के 'साधुत्व' का मुख्य लक्षण है।

ज्ञानेश्वर का "ज्ञानेश्वरी" (अथवा भावार्थ-दीपिका) ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इसमें भगवद्गीता पर विस्तृत टीका है। यही मराठी कविता का आद्य ग्रन्थ माना जाता है। इसको यदि महाराष्ट्र के धर्मसुधार (या अभ्युदय) का "प्रभाततारा" (Morning Star) कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। मुकुन्दराज के "विवेक-सिन्धु" और "परमामृत" नामक दो वेदान्त-ग्रन्थ उपलब्ध हैं। बहिरं भट्ट ने भागवत के दशमस्कंध पर मराठी के ओवी छन्द में लग भग पौन लाख पद्य-रचना की है। नामदेव छीपी था। यह भी प्रख्यात भगवद्भक्त हो गया। उसने शतकोटि "अभंग" (मराठी छंद) बनाने का संकल्प किया था। इसके मा बाप, इसकी स्त्री, इसके चार पुत्र, चार पतोहू और जनी (जनाबाई) नाम की सुप्रसिद्ध दासी—ये सब उसके परिवार के लोग, भगवद्भक्तिपरायण थे और 'अभंग' रचना करते थे। चोखामेला अतिशूद्र था। कर्मठ ब्राह्मणों ने उसे बहुत सताया। परन्तु भगवद्भक्ति के बल पर निन्दकों को जीतकर संतमालिका में उसने अपना नाम पिरो लिया है। उद्धवचिद्घन ने भक्तचरित्र, गोरा कुम्हार का चरित्र आदि छोटे छोटे काव्य बनाये हैं।

चौदहवीं सदी में मुसलमानों की अमलदारी ज़ोर शोर से शुरू हुई। चौदहवीं और पन्द्रहवीं सदी में कोई प्रसिद्ध उपदेशक उत्पन्न नहीं हुए। दो सौ वर्ष में जब मुसलमानी सत्ता का क्षय होने लगा और मरहठों में स्वाभिमान जागृत होने लगा तब फिर साधु-संत देख पड़ने लगे। क्या इसमें कोई कार्य-कारण-सम्बन्ध है? मार्मिक इतिहासज्ञों को इस विषय में खोज करना चाहिए।

दूसरे वर्ग का समय सोलहवीं सदी से लेकर, सत्रहवीं सदी के प्रथम पाद तक माना जा सकता है। इस काल का आरम्भ एकनाथही से होता है। इस वर्ग में एकनाथ, तुकाराम, नरहरि सुनार सावता माली, शेख महम्मद, रामदास (और आका बाई, वेणू बाई, देवीदास, उद्धव गोस्वामी, कल्याण स्वामी आदि उनके शिष्य), केशव स्वामी, आनन्द-मूर्ति, रंगनाथ स्वामी, जयराम स्वामी, मुक्तेश्वर, वामन पंडित, आनन्दतनय आदि थे। प्रायः ये सब शिवाजी के समकालीन थे। इस वर्ग के उपदेशकों का कार्यक्रम प्रथमवर्ग से भिन्न देख पड़ता है। स्वराज्य का नाश हो जाने से, और मुसलमानों की अमलदारी में अंधाधुंध अनाचार होने से, धर्मोन्नति का मार्ग रुककर ईश्वरभजन और परमार्थप्राप्ति में विघ्न आने लगे थे। इस बात का अनुभव दूसरे वर्ग के उपदेशकों ने खूब लिया। यह अनुभव पहले वर्ग को न था। उपदेशकों के दोनों गुण साधुत्व और कवित्व—इनमें सम समान देख पड़ते हैं। मराठी भाषा में ग्रन्थ लिखकर जनसमुदाय की ज्ञानवृद्धि करने का विचार, विशेषरूप से, इसी वर्ग ने प्रकट किया; और उसके अनुसार यत्न भी किया। ज्ञानदेव के समय की मराठी भाषा का रूप अब बदल गया। संस्कृत-ग्रन्थों के भाषान्तर, टीका या उनके आधार पर स्वतंत्र रचना होने लगी। स्वधर्म की अवनति देखकर उसको हर प्रकार से पुनरुज्जीवित करने और लोगों को अपने उपदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा आचरण-द्वारा सन्मार्ग में लगाने का विशेष यत्न इसी वर्ग के उपदेशकों ने किया।

एकनाथ स्वामी ने भागवत के एकादश स्कंध पर "एकनाथी भागवत" नाम का एक स्वतन्त्र और विस्तृत टीकात्मक ग्रन्थ लिखा है। इसके अतिरिक्त "भावार्थरामायण", "रुक्मिणीस्वयंवर", "स्वात्मसुख" नामक ग्रन्थ और विविध विषयों पर "अभंग" महाराष्ट्र में बहुत प्रसिद्ध हैं। रामदास स्वामी का "दासबोध" नामक ग्रन्थ अद्वितीय है। इसके सिवा उन्होंने और भी अनेक विषयों पर कविता लिखी है। रंगनाथ स्वामी ने "चित्सदानंदलहरी" (भगवद्गीता पर टीका) और "रंगनाथी योगवाशिष्ठ" नाम के दो ग्रन्थ बनाये हैं। वामन पंडित संस्कृत के बड़े भारी विद्वान् थे। उन्होंने "यथार्थदीपिका" (भगवद्गीता पर टीका) और भारत, भागवत तथा रामायण के विविध प्रसंगों पर संस्कृत के मनोहर वृत्तों में मराठी में कविता की है।

रामदास स्वामी का नाम समकालीनता के कारण, यद्यपि एकनाथवर्ग में शामिल किया गया है तथापि उनकी विचारपद्धति और कार्यक्रम अन्य उपदेशकों से बिलकुल भिन्न थे। उन्होंने धर्मस्थापना और लोकहित का जो अनुपम काम किया है वह इतिहास में रामदासी पंथ या रामदासी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। उनके 'साधुत्व' की सब से बड़ी पहचान यही है कि उन्होंने स्वयं अपना पारमार्थिक हित करके अपने समय के महाराष्ट्रीय समाज को स्वधर्म के विषय में जागृत किया और ऐहिक अर्थात् सामाजिक, कर्तव्य के अत्युच्च मार्ग में प्रवृत्त भी करा दिया। इतिहास-प्रेमी पाठक यह बात जानते होंगे कि रामदास स्वामी शिवाजी महाराज के पूज्य गुरु थे। कहते हैं कि महाराज शिवाजी रामदास स्वामी की सम्मति के बिना कोई भी काम न करते थे। शिवाजी की मृत्यु के बाद संभाजी को, अपने पिता का अनुकरण करने के लिए, श्रीसमर्थ रामदास स्वामी ने जो उपदेश किया, उसका सार इस वाक्य में है:—

मराठा तितुका मेळवावा। महाराष्ट्र धर्म वाढ़वावा।

अर्थात् जितने मराठे हों उन सबको एक करना चाहिए और महाराष्ट्र-धर्म को बढ़ाना चाहिए। "महाराष्ट्र-धर्म" शब्द में बहुत सा अर्थ भरा है। मराठी-लेखकों ने इस विषय पर बहुत बड़े बड़े लेख लिखे हैं। उनका संक्षेप में सारांश देना भी यहाँ असम्भव है। तथापि इतना कहा जा सकता है कि पूर्व समय के साधु जनों ने जिस वैदिक, पौराणिक या सनातन हिन्दू धर्म की शिक्षा दी थी उसका समावेश तो उक्त शब्द में होता ही है; परन्तु उसके सिवा और भी कुछ विशेष अर्थ व्यक्त होता है। यदि ऐसा न होता तो "महाराष्ट्र" शब्द का उपयोग न किया जाता। पूर्व समय के अन्य साधुओं के उपदेश में और रामदास स्वामी के उपदेश में मुख्य अन्तर यह है कि दूसरे साधुओं ने केवल भक्ति, ज्ञान और वैराग्य ही का उपदेश किया है। उनके उपदेश के अनुसार मनुष्य का यही कर्तव्य है कि वह शुद्ध अन्तःकरण से परमेश्वर की भक्ति करे, आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करे और सर्व-संग का त्याग करके वैराग्यशील बने। इससे समाज में ऐहिक-सुख-पराङ्मुखता उत्पन्न होती है। परन्तु रामदास स्वामी के उपदेश में विशेषता यह है कि मनुष्य को परमार्थ-प्राप्ति के लिए भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की तो आवश्यकता है ही; पर उसके लिए ऐहिक, सांसारिक और सामाजिक कर्तव्यों से पराङ्मुख होने (अथवा इन कर्तव्यों का त्याग करने) की कोई आवश्यकता नहीं है। रामदास स्वामी के उपदेश का मुख्य तत्त्व इस वाक्य में आ जाता है:—

प्रपंच साधून परमार्थ करावा।

अर्थात् प्रपंच या संसार के सब कर्तव्यों का पालन करते हुए परमार्थ करना चाहिए। मनुष्य को प्रपंच (संसार) में रहकर, फल की अपेक्षा न करते हुए, अपने सब कर्तव्य पूरी तरह करते रहना चाहिए। संसार-त्याग करके अरण्यवासी होने या विरागी बन बैठने में स्वहित होगा; परन्तु परहित या परोपकार न होगा। जनसमाज को लाभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। जो परोपकार नहीं कर सका वह साधु किस काम का ? "परोपकाराय सतां विभूतयः" इस तत्त्व के अनुसार लोगों को ऐहिक कर्तव्यों की शिक्षा देना भी रामदास स्वामी ने उचित और आवश्यक समझा; और इसके लिए उन्होंने यत्न भी खूब किया। श्रीकृष्ण भगवान ने धर्मराज और अर्जुन को उपदेश किया था—"शत्रुंजय, प्रजाः परिपालय, धर्मं रक्ष"। इसी तत्त्व का उपदेश श्रीसमर्थ रामदास ने शिवाजी तथा उनके पुत्र संभाजी को और सब महाराष्ट्रियों को किया है।

तीसरे, अर्थात् मोरोपन्तवर्ग में मोरोपन्त, अमृतराय, मध्वमुनीश्वर, अनन्तकवि, रघुनाथ पंडित, श्रीधर, महीपति, रामजोशी और देवनाथ आदि (उन्नीसवीं सदी के आरम्भ के) संत साधु और कवि शामिल हैं। ये सब सत्रहवीं और अठारहवीं सदी (और कुछ उन्नीसवीं) में हो गये। मराठों की स्वतंत्रता की दृष्टि से देखा जाय तो इस समय के उपदेशकों के तीन विभाग किये जा सकते हैं। अर्थात् (१) सत्रहवीं और अठारहवीं सदी में, स्वतंत्र स्वराज्य के समय का (२) उन्नीसवीं सदी में, स्वतंत्र सत्ता के विनाशकाल का और (३) स्वराज्य नाश हो जाने के अनन्तर अँगरेज़ी अमलदारी का। विजातीय सत्ता का नाश होकर स्वतंत्र स्वराज्य की स्थापना से जो धर्मक्रान्ति और विचारक्रान्ति हुई, और डेढ़ दो सौ वर्ष में महाराष्ट्राय समाज ने स्वाधीनता का जो सुख प्राप्त किया, उसका पूर्ण प्रभाव मोरोपन्तवर्ग के प्रथम विभाग के उपदेशकों ने अपनी आखों से देखा। वस्तुतः इस समय के उपदेशकों के मन में परधर्मी और विजातीय सत्ता के जुल्म की कल्पना तक नहीं देख पड़ती।

तेरहवीं सदी में प्रथम वर्ग के उपदेशकों ने धर्मक्रान्ति का बीज बोया था, चौदहवीं और पन्द्रहवीं सदी में सारा महाराष्ट्र देश पीड़ित हुआ था, उस समय नाम लेने योग्य, ऐतिहासिक महत्त्व के, कोई बड़े उपदेशक उत्पन्न नहीं हुए, सोलहवीं सदी में दूसरे वर्ग के उपदेशकों ने अत्यन्त परिश्रम करके नाना प्रकार के कार्यक्षम उपायों से स्वधर्म स्थापित किया और उसका कुछ फल अपनी आँखों देखा; सत्रहवीं और अठारहवीं सदी में तीसरे वर्ग के उपदेशकों ने, स्वधर्म के शुद्ध और परोपकारी तत्त्वों की स्थापना से प्राप्त हुए स्वराज्य सुख का फल पाया। धर्मजागृति का जो विशेष प्रवाह दूसरे वर्ग के उपदेशकों ने जारी किया था वह उन्नीसवीं सदी में घटने लगा। अन्त में महाराष्ट्र अपने महाराष्ट्रपन को भी भूल गया। इसलिए तीसरे वर्ग के बहुत से उपदेशकों में 'साधुत्व' का वह अंश नहीं देख पड़ता जो दूसरे वर्ग के उपदेशकों में विशेष रूप से प्रकट हुआ था। उसके बदले 'कवित्व' गुण की वृद्धि बहुत देख पड़ती है। इस समय मराठी भाषा का रूप रंग बदलने लगा। वह सुन्दर रूपवती, प्रगल्भ, राज-दर्बार में शोभा पाने योग्य और चित्ताकर्षक बन गई। इस समय के बहुत से उपदेशकों का ध्यान भाषा को सुसंस्कृत तथा सुपुष्ट करने ही की ओर लगा हुआ देख पड़ता है। जहाँ देखो वहाँ नूतन पद्य-रचना, नूतन आख्यान, नूतन संगीत कीर्तन देख पड़ने लगे। ताल-स्वर-बद्ध पद, कर्णमधुर कटाव (मराठी छन्द), चित्ताकर्षक लावनी और मनोवेधक फटकों (मराठी छन्द) की रचना होने लगी। निस्सन्देह इन बातों से मराठी-काव्य-भांडार की बहुत वृद्धि हुई।

इस समय के बहुतेरे उपदेशकों का प्रधानगुण 'साधुत्व' न होने के कारण धर्मजागृति का विचार कुछ पीछे पड़ गया। उसके लिए कोई ऐसे प्रत्यक्ष कार्यक्षम यत्न नहीं किये गये जैसे दूसरे वर्ग के समय में श्रीसमर्थ रामदास ने किये थे। सम्भव है कि स्वराज्यछत्र की शीतल छाया में ऐहिक सुख का उपभोग करते समय उन लोगों को प्रथम और दूसरे वर्ग के उपदेशकों की तरह, विशेषकर रामदास स्वामी के तत्त्वानुसार, यत्न करने की आवश्यकता प्रतीत न हुई हो। पहले और दूसरे वर्ग के समय में समाज की सब प्रकार से जो हीन-दीन और दरिद्र दशा थी उसका विस्मरण हो गया होगा। ज्ञानदेव,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामदेव के समय में परमार्थ-प्राप्ति और समाज-सुधार की जो आवश्यकता प्रतीत होती थी वह अब न रही हो। परन्तु, चाहे उक्त कारण से हो (अर्थात् उपदेशकों की कार्यप्रणाली और धर्मोन्नति के तत्त्वों में कुछ परिवर्तन हो जाने के कारण) या अन्य कारणों से हो, महाराष्ट्रीय समाज पर, राष्ट्रीयता की दृष्टि से, बुरा असर होने लगा। तुकाराम के समय में जो भोली भाली भगवद्भक्ति देख पड़ती थी उसके बदले पूजा-पाठ का बाह्याडम्बर बढ़ने लगा! रामदास के समय में स्वधर्म, स्वाभिमान और स्वराज्य की जो बातें तथा आत्मोन्नति के विषय में प्रखर वैराग्य, अध्यात्म-निरूपण और सगुण-भक्ति की जो चर्चा सुन पड़ती थी वह धीरे धीरे बन्द होने लगी! धर्म के विषय में जातिभेद के कृत्रिम और कठिन बन्धन, मूर्तिपूजा का दुराग्रह और अज्ञान, मोक्षप्राप्ति के लिए यज्ञ-यागादि कर्म-मार्ग का अवलम्बन इत्यादि बातों का पूर्व समय के उपदेशकों ने निषेध किया था और अपने अनुभव तथा आचरण से परमार्थ-प्राप्ति का सच्चा और इस युग के अनुकूल सरल मार्ग दिखा दिया था। परन्तु अब उन्हीं निषिद्ध बातों का मनमाना स्वीकार और उपदिष्ट मार्ग का त्याग होने लगा! प्रपंच के अन्य विषयों में भी पूर्व समय के उपदेशकों ने मनुष्यत्व की जो अत्युत्तम कल्पनाएं जागृत की थीं उनका प्रभाव अब दिनों दिन घटने लगा! सारांश, "क्रिया के साथही प्रति क्रिया भी लगी रहती है" इस प्राकृतिक नियम के अनुसार, तीसरे वर्ग के उपदेशकों के समय में, पूर्व समय के उपदेशकों की क्रिया के बदले, सब बातों में प्रतिक्रिया आरम्भ हुई। उस प्रतिक्रिया से (सिर्फ़ भाषा का विषय छोड़कर और सब विषयों में) अवनति का जो प्रवाह बहने लगा वह अब तक जारी है। उस प्रवाह के रोकने की शक्ति अब तक महाराष्ट्र-समाज में देख नहीं पड़ती।

मोरोपन्तवर्ग के उपदेशकों ने प्रायः रामायण, महाभारत और भागवत आदि धर्मग्रन्थों के विविध आख्यानों का नाना प्रकार से मराठी में अनुवा किया। स्वयं मोरोपन्त ने समस्त महाभारत आर्याबद्ध अनुवाद किया। रामायण की कथा चित्तवेधक रीति से, कई अनुवाद किये। कहा हैं कि ये १०८ मोरोपंती रामायण हैं। इनमें से अनुपलब्ध हैं। उन्होंने भागवत के दशम स्कंध पूर्ण अनुवाद और कई स्कंधों की अच्छी अच्छ कथाओं का अनुवाद किया। कृष्णविजय और केकावली नाम के दो काव्यग्रन्थ उन्होंने और लि हैं। 'केकावली' अनुपम ग्रन्थ है। इसमें ईश्वर दयाघन मेघ मानकर 'मयूर' (मोरोपंत) कवि अपनी केका-करुणा दर्शाई है। उन्होंने और ब से पद और फुटकर कविता लिखी है। अमृतरा ने रामायण, महाभारत और भागवत के चरि और आख्यानों के आधार पर २६ काव्य ग्रन्थ लि हैं। श्रीधर कवि ने रामविजय, हरिविजय, पांड प्रताप, शिवलीलामृत नाम के चार भक्तिरसपू काव्यग्रन्थ लिखे हैं। महीपति ने भक्तविजय, भ लीलामृत, संतविजय, संतलीलामृत, कथासार मृत और अनेक फुटकर आख्यान लिखे हैं। इ अतिरिक्त इस वर्ग के दूसरे कवियों ने भी भक्ति भाव-पूर्ण बहुत सी कविता लिखी है। अमृतरा मध्वमुनीश्वर और देवनाथ के पदों में बहुत लालि पाया जाता है। उपर्युक्त कवियों के पद और रा जोशी की लावनियाँ सुनकर, हरि-कीर्तन में हुए श्रोताओं के हृदय में, भक्तिरस का श्रोत उम आता है। मराठी साहित्य की पद्य-रचना द्वा सेवा करने में इस वर्ग के उपदेशकों की बराबर कोई नहीं कर सकता। महाराष्ट्रियों की स्वध विषयक श्रद्धा स्थिर रखने में इन ग्रंथों ने बहु सहायता की है। श्रीधर और महीपति के भक्ति पूर्ण ग्रंथ महाराष्ट्र स्त्री-पुरुषों में अब तक बहुत और श्रद्धा के साथ पढ़े जाते हैं।

महाराष्ट्रीय उपदेशकों ने जनसमुदाय को शिक्षा दी उसके प्रधान तत्त्वों का संक्षेप में अब उल्ले करते हैं। जिन्होंने यूरोप की धर्म-जागृति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हास देखा होगा उन्हें यह मालूम हो जायगा कि इन दो भिन्न भिन्न स्थानों में जो धर्मसुधार का काम प्रायः एक ही समय हो रहा था उसमें कितनी समता या भिन्नता है। पश्चिमी देशों में, तेरहवीं सदी से लेकर सोलहवीं सदी तक, कई बार, धर्म-सुधार के अनेक प्रयत्न किये गये। कभी कभी तो धर्मसुधार के नाम पर वहाँ बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ हुई और खून की नदियाँ बहाई गई हैं। यह आसुरी लीला इस देश में देख नहीं पड़ती। इन दो देशों के धार्मिक आन्दोलन का तुलनात्मक इतिहास यदि लिखा जाय तो अत्यंत मनोहर और शिक्षादायक होगा।

(१) पूर्वपरम्परा के अनुसार महाराष्ट्र प्रान्त में भी प्रायः धर्मशिक्षा और धर्मरक्षा का काम ब्राह्मण ही करते आये हैं। ये ब्राह्मण बहुत करके कर्ममार्ग-परायण थे। अर्थात् वे पूजा-पाठ, यज्ञयाग, व्रत-नियमादि वेदोक्त, शास्त्रोक्त तथा पुराणोक्त कर्माचरणही में लिप्त रहते थे। इसी कर्माचरण के कारण ब्राह्मण जाति अन्य जातियों से श्रेष्ठ समझी जाती थी। पर जब ब्राह्मण यह दावा करने लगे कि हम जन्मतः ऊँचे दरजे के हैं और हमारे बताये हुए कर्ममार्ग के सिवा अन्य किसी भी मार्ग से मनुष्य को मुक्ति, सद्गति अथवा ईश्वरप्राप्ति हो नहीं सकती; तब धार्मिक और आत्मोन्नति के विषय में ब्राह्मणों की अनियंत्रित सत्ता पर तत्कालीन साधुसंत और कवि—अर्थात् उपदेशक—आक्रमण करने लगे। इन उपदेशकों ने अपनी मधुर वाणी और निष्कलंक बर्ताव से लोगों को यह शिक्षा दी कि मनुष्य का ऊँचनीचपन उसके जन्म या जाति पर अवलम्बित नहीं है; (ईश्वर की दृष्टि में सब प्राणी बराबर हैं) प्रत्येक मनुष्य अपनी अपनी इच्छा के अनुसार शुद्ध अन्तःकरण और प्रेम भाव से ईश्वर की उपासना करके सद्गति, मोक्ष अथवा भगवत्प्राप्ति कर सकता है। इस कार्य के लिए यह दुराग्रह कदापि न होना चाहिए कि अमुक एक विशिष्ट मार्ग (साधन) ही का स्वीकार किया जाय।

(२) महाराष्ट्रीय उपदेशकों की शिक्षा में अनिष्ट-जाति-बन्धनों का त्याग स्मरण रखने योग्य है। स्वयं उपदेशकवर्ग में सब जाति के लोग थे। यहाँ तक कि उनमें कई मुसलमान भी थे। वे सब अब तक महाराष्ट्र-निवासियों के अन्तःकरण में अत्यन्त पूजनीय और वन्दनीय समझे जाते हैं। भगवद्भक्ति के लिए श्रीमान् और दरिद्री, बड़ा और छोटा, ब्राह्मण और अब्राह्मण इत्यादि भेद किसी काम के नहीं। धर्म की रक्षा ज्ञान और नीति के योग से होती है। ईश्वर भक्तिभाव से प्रसन्न होता है। किसी भी जाति, वर्ण या व्यवसाय का मनुष्य यदि शुद्ध अन्तःकरण से स्वधर्माचरण करेगा तो उसको निस्सन्देह भगवत्प्राप्ति होगी। इस तत्त्व की शिक्षा उपदेशकों ने स्वयं अपने शुद्ध बर्ताव और अप्रतिम निष्ठा के बल से लोगों के मन में प्रतिबिंबित कर दी।

(३) पहले पहल यज्ञयागादि कर्म, योगसाधन, संन्यासग्रहण, मठवास इत्यादि मार्ग ईश्वरप्राप्ति के लिए प्रचलित थे। उस समय लोग इन्हीं का अवलम्बन करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि धर्म के नाम पर गुप्तरीति से अनेक अनाचार और दुर्गुणों का प्रचार होने लगा। यह देखकर उपदेशकों ने इस बात का उपदेश किया कि घर-गृहस्थी में रह कर, सामाजिक कर्तव्यों का पालन करते हुए, ईश्वर-प्राप्ति का यत्न किया जा सकता है। दुर्घट साधनों की आवश्यकता नहीं है। सब प्रकार के लोगों के लिए भक्तिमार्ग अत्यन्त सुलभ है। इसका अवलम्बन करने से शीघ्रही ईश्वर की प्रसन्नता का अनुभव मिलता है। निष्कपट भक्ति से ही अन्तःकरण में ईश्वर का सत्य ज्ञान आपही आप प्रकट होने लगता है। भक्ति और ज्ञान के योग से मनुष्य प्राणिमात्र की भलाई करने का अधिकारी हो जाता है।

(४) संस्कृत-ग्रन्थों का अनुवाद करके उपदेशकों ने महाराष्ट्र देश तथा मराठी भाषा पर बहुत उपकार किया है। संस्कृत-ग्रन्थों का छिपा हुआ ज्ञान पहले केवल पण्डितों ही को सुलभ था; साधारण लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उससे कुछ भी लाभ न था। ऐसे पण्डितों का गर्व साधुसंतों ने, अपने अनेक अलौकिक चमत्कार दिखाकर, हरण किया; और उनको मराठी भाषा का सेवक बनाया। सुगम भाषा में, बड़े बड़े महानुभाव उपदेशकों के प्रसादपूर्ण ग्रन्थों का प्रचार होते ही ज्ञान की वृद्धि होने लगी और साधारण लोगों में भी स्वतः विचारने की शक्ति आ गई। इस प्रकार मराठी भाषा की सेवा करके मोरोपन्त-वर्ग के कुछ उपदेशकों ने समाज को धर्माचरण में लगाये रखने का बहुत प्रशंसनीय और चिरस्मरणीय उद्योग किया है। मातृभाषा की सेवा करते हुए उपदेशकों को समाज द्वारा बहुत कष्ट सहना पड़ा। कितनों ही के ग्रंथ नदी में डुबा दिये गये जो अब किसी प्रकार प्रकट नहीं हो सकते!

(५) ईश्वर-सम्बन्धी अनेक मिथ्या और भ्रामक कल्पनाएं जो समाज में रूढ़ थीं उनके सत्य स्वरूप का ज्ञान उपदेशकों ने अपनी शिक्षा द्वारा प्रकट किया। उन्होंने यह उपदेश तत्त्व लोगों को सिखाया कि ईश्वर अपराधियों को दंड देने वाला और न्याय अन्याय का विचार करने वाला केवल न्यायाधीश ही नहीं है; किन्तु वह प्राणिमात्र का मित्र है—न्याय और दंड देते समय भी वह माता पिता के समान प्यार करता है। ईश्वर दयालु है, प्रेमी है और संकट-समय में भक्तों का रक्षक है। कर्ममार्गावलम्बी ब्राह्मणों के मत में ईश्वर का स्वरूप इतना मनोहर और स्नेहालु देख नहीं पड़ता। उसका सच्चा रूप महाराष्ट्रीय साधु संतों ने, परमात्मा के अखंड सहवासानुभव से सन्तुष्ट होकर, आंतरिक स्फूर्ति की अपनी स्वाभाविक कविता-द्वारा व्यक्त किया है।

(६) मूर्तिपूजा के विषय में जो भ्रम और अज्ञान छा गये थे उन्हें उपदेशकों ने अपने सत्यनिरूपण और शुद्ध आचरण से दूर करने का यत्न किया। यद्यपि प्रत्येक साधु अपने इष्ट और उपास्य देव की ही मूर्ति की पूजा-अर्चा करता था, और उसी भक्ति में निमग्न रहकर उसी को सम्बोधन करके पद्य-रचना करता था; तथापि वह अन्य साधु या उसके उपास्य देव की निन्दा कदापि नहीं करता था। भक्तिमार्ग का अवलम्बन और उपदेश करनेवाले महाराष्ट्रीय साधुओं में अपने अपने उपास्य देव, पंथ या सम्प्रदाय के विषय में वह विरोध कभी नहीं हुआ जो किसी समय, हिन्दुस्थान में, शैव और वैष्णव आदि अनेक मतवादियों में हुआ था। महाराष्ट्रीय साधु पूर्ण भगवद्भक्त थे। इस लिए वे सर्वत्र भगवद्भावही देखा करते थे और परस्पर सहानुभूति रखते थे। वे कहते थे कि घट घट में एक परमात्मा अनेक रूपों से व्याप्त है; उस सच्चिदानन्द की व्याप्ति के लिए किसी एक सगुण मूर्ति में दृढ़ भाव, सत्यनिष्ठा और असीम प्रेम रखना चाहिए। कलियुग में यही एक सुलभ और अनुभवसिद्ध मार्ग है; इस मार्ग का अवलम्ब करके जो पत्थर को ही देव मानते हैं और हठपूर्वक अपनेही पंथ या सम्प्रदाय का दुराग्रह करके अन्य उपासकों की निन्दा करते हैं वे सच्चे भक्त नहीं हैं—उन्हें मूर्ख और अज्ञानी समझना चाहिए। यही कारण है कि ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास आदि साधुओं के इष्ट देव भिन्न भिन्न होने पर भी उनमें किसी प्रकार की निन्दा, कलह, भेद, दुराग्रह विरोध आदि दोष देख नहीं पड़ते। मूर्तिपूजा के विषय में समान-भाव की इस शिक्षा से महाराष्ट्र समाज का बहुत हित हुआ है।

सारांश यह है कि, महाराष्ट्रीय उपदेशकों ने महाराष्ट्र के अभ्युदय के लिए एक बहुत बड़ा काम किया जिसकी प्रशंसा अनेक इतिहासकारों ने मुक्त कंठ से की है। उन्होंने धार्म्मिक तथा सामाजिक जो शिक्षा दी उससे बहुत लाभ हुआ। महाराष्ट्र की भिन्न भिन्न जातियों का परस्पर द्वेष-भाव मिट गया। अत्यन्त शूद्र से भी शूद्र जाति के लोगों के अपनी धार्म्मिक और सामाजिक उन्नति करने का मार्ग सुलभ हो गया। स्त्रियों की योग्यता बढ़ी और गृहस्थी के पवित्र सुख की वृद्धि होने लगी। समाज के अधिकांश लोग परोपकारी, सहनशील और सच्चे धार्म्मिक हो गये। उनमें एकता से काम करने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति आने लगी। धार्मिक आचार और विचार में भेद का नाश होते चला। लोग इस प्रकार सोचने लगे कि संसार मिथ्या नहीं है; सांसारिक कर्तव्यों का त्याग करना पुरुषार्थ का लक्षण नहीं है; संसार के सब काम करते हुए आत्महित और परहित करनाही मनुष्य के जीवन का उत्तम उद्देश है। इस प्रकार अपने जीवन की सार्थकता करने के लिए, स्वधर्माभिमान से प्रेरित होकर, ब्राह्मण और शूद्र, दोनों जाति के लोग, हाथ में हाथ मिलाकर प्रेम और सहानुभूतिपूर्वक यत्न करने लगे। इतिहासकारों का यह मत है कि यदि पहले धर्मोपदेशकों की शिक्षा से महाराष्ट्र-समाज का सुधार हुआ न होता तो उस जाति (राष्ट्र) का अभ्युदय भी कदापि न होता। इस पर सोचना चाहिए कि राष्ट्र की उन्नति या अवनति धर्मोपदेशकों की शिक्षा पर कितनी अवलम्बित है!

त्रिमूर्ति।

भगवान् बुद्ध-देव

[गतांक से आगे]

६ वीं शताब्दी में भारतवर्ष की दशा।

संसार के इतिहास में जब समाज में ऐसे परिवर्तन हुए हैं जिनका प्रभाव मनुष्यों की उन्नति पर चिरअंकित है, तब देखने में आया है कि या तो समाज की आर्थिक अवस्था बिगड़ी हुई थी या उसका धार्मिक जीवन रोगग्रस्त था। दुनिया को हिला देनेवाले परिवर्तनों के कारण दोही होते हैं, एक आर्थिक दूसरा धार्मिक। इन दोनों में धार्मिक परिवर्तन अधिक प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण होता है, यद्यपि आर्थिक परिवर्तन ही सब सुधारों की जड़ है। क्योंकि सभ्यता-प्रासाद की नींव आर्थिक समृद्धि पर होती है। यदि नींव दूषित और कमज़ोर है, तो जल्दी या देर में प्रासाद गिर कर टुकड़े टुकड़े हो जायगा। इसी कारण इँगलैंड के एक महापुरुष Richard Cobden रिचर्ड काबडन ने अपने एक लेख में, जिसको उन्होंने बहुत ही तरुणावस्था में लिखा था कहा है कि Material prosperity precedes intellectual or moral advancement "यानी मानसिक अथवा धार्मिक उन्नति के पहले आर्थिक समृद्धि होती है"। जब जब मनुष्य ने उन्नति के मार्ग पर आगे को पैर बढ़ाया है तब तब प्रायः समाजों की आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन हुआ है।

परन्तु बुद्धदेव और बौद्धमत आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तन के फल कदापि न थे। उस समय में भारत की आर्थिक दशा बहुत अच्छी थी। आज कल की सी दरिद्रता उस समय भारत में स्वप्न में भी न देखी जाती थी। भूख से लाखों मनुष्यों की मृत्यु उस समय कदापि न होती थी। मनुष्यों को खाने पीने की कमी न थी। उस समय दास और दासी को छोड़ कर अन्य मनुष्य का रोटी के लिए मज़दूरी करना बड़ा ही दुर्भाग्य समझा जाता था। उस समय में ज़िमींदार न होते थे। गाँवों में या तो कृषक या कारीगर रहते थे और गाँव का मुखिया गाँव में प्रबन्ध रखता था और झगड़ों का फ़ैसला भी वही करता था। प्रधान उद्यम लोगों का उस समय बोना और जोतना था। हल की कृपा और सहायता से लोग अमन चैन उड़ाते थे। आज कल के से धुआँ उगलते हुए बड़े बड़े कारख़ाने तो न थे, पर खेती बारी के सिवा नाना प्रकार के उच्च सभ्यता-सूचक व्यवसाय अवश्य प्रचलित थे। तरह तरह की विद्याएं और कलाएं अच्छी अवस्था में थीं। शिल्पविद्या और चित्रकारी ने उस समय विशेष रूप से उन्नति की थी। कम से कम १८ तरह के व्यवसायों का पता हमको लगता है। प्रत्येक व्यवसाय के लोग अपनी अपनी समाजें बनाये थे। (organised in gilds) और इन समाजों (gilds) के मुख्याधिष्ठाता श्रेणीप्रमुख होते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोज़गार दूर दूर देशों से होता था; चीन, फ़ारस, लंका तथा बैबिलोनिया यहाँ के सौदागर जाते थे और वहाँ के सौदागर इस देश में व्यापार करने के लिए आते थे। उस समय रेलगाड़ी तो थी ही नहीं; नाव और बैलगाड़ी के द्वारा माल देश के एक कोने से दूसरे कोने को पहुँचाया जाता था, यद्यपि बैल या घोड़े की पीठ पर माल लाद कर सौदागर लोग दूर दूर की बाज़ारें किया करते थे। दूर देशों को यहाँ से व्यापार के वास्ते बहुमूल्य पदार्थ ही भेजे जाते थे; आज कल की तरह गेहूँ, रूई आदिक कच्चा माल (raw materials) विदेश नहीं जाता था। रेशमी और महीन सूती कपड़ा (जैसे मलमल इत्यादि), लोहे के कवच, लोहे के हथियार और छुरी वग़ैरह, सोने, चाँदी के कामदार कपड़े, सुगन्ध-दायक पदार्थ, औषध, हाथी-दाँत और हाथी दाँत की बनी हुई चीज़ें, जवाहिरात और सोने का व्यापार होता था, काम-काज अदली-बदली (barter) से नहीं होता था। सोने चाँदी के सिक्कों का प्रादुर्भाव उस समय तक भारतवर्ष में न हुआ था। जहाँ तक पता लगता है, तहाँ तक निश्चित रूप से इतना ही कहा जा सकता है कि उस समय में ताँबे के सिक्कों का प्रचार था। हाँ, आज कल की तरह उस समय में भी काग़ज़ी घोड़ों का ख़ूब दौड़दौड़ा था। हुंडियों द्वारा करोड़ों रुपए का व्यवहार होता रहता था। देश में नगरों की संख्या थोड़ी थी। प्रायः मनुष्य गाँवों में ही रहा करते थे। पर नगरों में नाना प्रकार के, सुन्दर, सुखद और सुहावने, उद्यान, बापी, और तड़ाग नागरिकों के विहार को बढ़ाते थे। स्नानागार, हम्माम (Baths) उस समय में बहुत से बनाए जाते थे। आज कल स्नानागार (Baths) भारत में कहीं दिखाई तक नहीं पड़ते। हाँ उस समय के भारत में और आज के भारत में एक और बड़ा भारी अन्तर यह था कि उस समय जुर्म बहुत ही कम होते थे। परन्तु आज कल धार्मिक शिक्षा के अभाव और अन्यान्य कारणों की वजह से चोरी इत्यादि दुराचारों की दिनों-दिन वृद्धि होती जाती है! उससमय के गाँवों में चोरी चकारी का नाम तक न था। ग्रामीणों का जीवन बिलकुल ही सीधा सादा था।

छठवीं शताब्दी में भारत की ऐसी समृद्धि-सम्पन्न अवस्था थी। अब कुछ दो चार शब्दों में उस समय के समाज की दशा का चित्र खींच कर मैं बुद्ध के पूर्व के भारत के धर्म और मतमतान्तरों का कुछ विस्तार के साथ वर्णन करूँगा।

छठवीं शताब्दी में आर्य्यों में जाति-भेद मौजूद थे। आज कल जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हमारी समाज में होते हैं, वैसेही चार वर्ण उस समय भी होते थे। समाज के पैरों में जाति-भेद की बेड़ी पड़ी हुई थी, पर अभी तक हथकड़ियों से हाथ नहीं जकड़ दिये गए थे, कि वह अन्यान्य वर्ण की थाली में परोसा हुआ भोजन हाथ से उठाकर न खा सके। पाणिग्रहण करने के लिए अब की अपेक्षा तब बड़ी स्वतन्त्रता थी। यह बातें तो बाद को वर्जित की गई हैं। इन चार वर्णों में राइस डेविड्स (Rhys Davids) के अनुसार क्षत्रिय लोगों का सबसे अधिक मान था। उसके बाद ब्राह्मणों का और ब्राह्मणों के बाद वैश्य और उनके बाद शूद्रों का। क्षत्रियों की मर्यादा समाज में सबसे चढ़ी बढ़ी थी। इस मत की पुष्टि में राइस डेविड्स बौद्ध और जैन पुस्तकों का प्रमाण देते हैं। वह ब्राह्मणों की लिखी हुई पुस्तकों का प्रमाण नहीं मानते, क्योंकि उनका विश्वास है कि ब्राह्मणों ने स्वार्थहित में और आत्म-प्रशंसा के लिए अपने ही गुण गाये हैं और अपने को चारों वर्णों में सबसे बड़ा बतलाया है, अपने को सबका पूज्य लिखा है। इसलिए इनके अनुसार जाति-व्यवस्था के विषय में जो कुछ ब्राह्मणों की पुस्तकों में लिखा है वह सर्वथा अनादरणीय है और कदापि मान्य नहीं हो सकता। इस विषय में राजपूतों और बौद्ध-जैनों की लिखी हुई पुस्तकों को ठीक समझना चाहिए। बौद्ध पुस्तकों में ब्राह्मणों को क्षत्रियों से नीचे बताया है, ब्राह्मणों का ज़िक्र अपमान और नीचतासूचक शब्दों में किया गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

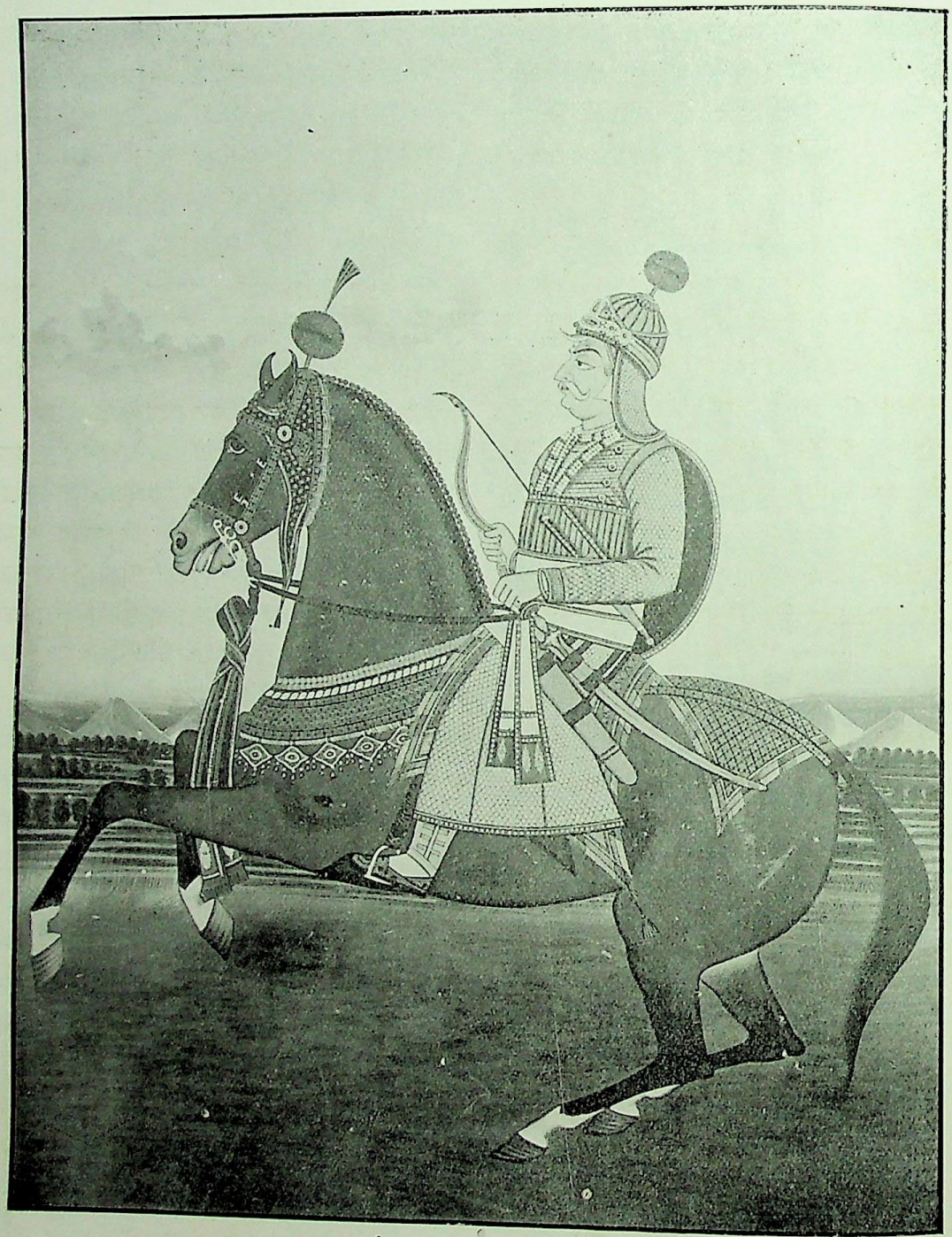

महाराजा यशवन्तसिंह ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ब्राह्मणों के नाम के साथ "तुच्छ ब्राह्मण" "नीच ब्राह्मण" (low born Brahmin) आदिक शब्द इन लेखकों ने प्रयोग किए हैं। परन्तु लेखक की राय में राइसडेविडस Rhys Davids साहब की बात ठीक नहीं जचती। ब्राह्मणों और बौद्धों तथा क्षत्रियों में सातवीं और छठवीं शताब्दी में बहुत द्वेष पैदा हो गया था। इन लड़ाई के कारणों का सविस्तर वर्णन करने का न तो इस लेख का उद्देश है और न मुझे इतना अवकाश ही है। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस समय इन दोनों में बड़ी ऐंचातानी थी। बौद्ध तो ब्राह्मणों का जन्म-शत्रु था और क्षत्रिय लोग भी इस समय विद्या, ज्ञान और तप में ब्राह्मणों से मुक़ाबिला करने लगे थे। ऐसी अवस्था में बौद्धों की पुस्तकों को वेद-वाक्य मान लेना मुनासिब नहीं मालूम देता पर इस मत के विरोध में और बहुत से प्रमाण दिए जा सकते हैं और सिवा Rhys Davids के अन्य किसी विद्वान् ने इस मत को स्वीकार नहीं किया। इन चारों जातियों को छोड़ कर और बहुत सी जातियों का पता लगता है जो शूद्रों से पतित समझी जाती थीं। दास और दासी भी होते थे। दास वे लोग होते थे जो या तो स्वेच्छा से दासत्व ग्रहण करते थे, या जो लड़ाई में पकड़ कर "दास" बनाये जाते थे, या जिनको न्यायालय से दासत्व की सज़ा दी जाती थी। दासों के बच्चे भी दास ही रहते थे। पहले कहा जा चुका है कि जाति-बन्धन आज कल की तरह कठोर और कड़े कदापि न थे। ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं जो इस मत का समर्थन करते हैं। खाने पीने की कोई मुमानियत न थी। जहाँ जी चाहे, वहाँ लोग खा पी सकते थे। छुआ-छूत, आचार-विचार का ढकोसला उस समय ऐसा न था जैसा अब देखने में आता है। विवाह भी एक जाति का मनुष्य दूसरी जाति की कन्या से कर सकता था। आठ प्रकार के विवाह होते थे। ब्राह्म, प्राजापत्य, दैव, आर्ष, गान्धर्व, राक्षस (अथवा क्षात्र) और आसुर। सह-गोत्रियों में विवाह का निषेध था। बाल-विवाह की कुप्रथा हर्गिज़ न थी। विधवा-विवाह का भी चलन था मनुष्य-जीवन चार आश्रमों में विभाजित था। सोलहों संस्कार करने का रवाज फैला हुआ था। यह तसवीर उस समय के समाज की है। अब और तबमें कितना अन्तर है, पाठक स्वयं विचार लें।

असमाप्त।

वेङ्कटेश नारायण त्रिपाठी।

महाराजा श्रीयशवंतसिंह जी।

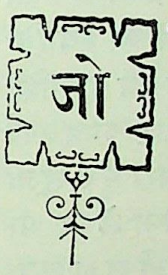

धपुर के राजा गजसिंह जी के दो पुत्र थे। अमरसिंह जी और यशवंत सिंह जी। इनमें से ज्येष्ठ अमरसिंह जी का स्वभाव बहुत तेज़ था। इनको राज्य के योग्य न समझ कर पिता ने बादशाह शाहजहाँ और अपने भाई बेटों की सम्मति से देश निकाला दे दिया। ये बादशाह की सेवा में दिल्ली जा रहे थे और किसी कारण से क्रोधित होकर स्वयं बादशाह के दरबार में सलाबतख़ाँ को मार कर वहाँ आप भी बड़ी वीरता से युद्ध करके काम आये।

संवत् १६९५ में गजसिंह जी के परलोक सिधारने पर यशवंतसिंह जी मारवाड़ की गद्दी पर बैठे। तब इनकी आयु आठ-दस वर्ष की होगी। शाहजहाँ बादशाह की इन पर बहुत कृपा थी, क्योंकि इनके पिता ने उसकी बहुत अच्छी सेवा की थी। बादशाह ने इनके मंत्री और शिक्षक पद पर राजसिंह जी राठौड़ को नियत किया और जब इनका परलोकवास हो गया तब रतलाम का राज्य स्थापित करनेवाले रत्नसिंह जी के पुत्र और जोधपुर के राजा उदयसिंह जी के पड़पोते महेशदास जी को नियत किया। ये बड़ेही बुद्धिमान् थे।

गद्दी पर बैठने के थोड़ेही समय पश्चात् शाहजहाँ यशवंतसिंह जी को अपने साथ काबुल ले गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वहाँ से आने के कुछ वर्ष पीछे उनको दक्षिण में गोंडवाड़ा विजय करने को साहबज़ादे औरंगज़ेब के साथ भेजा। यहाँ उन्होंने बहुत नाम पाया। राठोड़ों ने वहाँ पर जो जो काम किये वे विस्तार के भय से यहाँ पर नहीं लिखे हैं। संवत् १७०२ में वहाँ से पीछे आने पर वे आगरे गये तो बादशाह ने इनका बहुत आदर-सत्कार किया और मनसब भी बढ़ाया। संवत् १७१० में इनको महाराजा की पदवी अर्पण की जो उस समय तक और किसी को नहीं मिली थी।

संवत् १७१४ में शाहजहाँ के बहुत बीमार होने पर उसके सभी पुत्रों को दिल्ली का राज्य लेने की अभिलाषा हुई। यह अवसर राजपूतों का स्वामि-धर्म देखने का था। बादशाह का ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह उसके पास आगरे ही में था और शाहजहाँ उसी को राज्य देना चाहता था। दूसरा पुत्र सूजा बंगाले का सूबेदार था और वहाँ से सेना लेकर आ रहा था। इसके सामने जयपुर के मिर्ज़ा राजा जयसिंह जी भेजे गये थे। दक्षिण का सूबेदार औरंगज़ेब और गुजरात का मुराद था। इनमें से पहला बड़ा कपटी और धूर्त था। उसने मुराद को लिखा कि मुझे राज्य से कुछ प्रयोजन नहीं। मैं तो केवल इतनाही चाहता हूँ कि दाराशिकोह को राज्य न मिले। क्योंकि ऐसा होने से दीन इसलाम को बहुत हानि पहुँचेगी। मेरी इच्छा यह है कि तुमको गद्दी पर बिठा कर मैं मक्के चला जाऊँ। बेचारा मुराद इस धूर्त के जाल में फँस गया। इन दोनों के सामने यशवंतसिंह जी भेजे गये और इनके साथ पच्चीस हज़ार बादशाही सेना और तीस हज़ार राजपूत थे, जिनमें राजपुताने के सब राजाओं की सेना थी। यशवंतसिंह जी को विजय में कुछ भी शंका न थी और इसी कारण से उन्होंने धोखा खाया। उन्होंने दो बड़ी भूलें कीं। प्रथम तो यह कि उन्होंने जान बूझकर औरंगज़ेब और मुराद को शामिल होने का अवसर इस विचार से दे दिया कि मैं दोनोंही साहबज़ादों को साथही हराऊँ या पकड़ूँगा। औरंगज़ेब पहले आ गया था और मु के आने तक उसने यशवंतसिंहजी के साथ सब बादशाही सेना को अपने में मिला लिया। महाराजा को इसकी कुछ भी ख़बर न हुई। उ से पंद्रह मील दक्षिण बिल्लोचपुर गाँव के नि भारी संग्राम हुआ। उसी स्थान पर और ज़ेब ने दिल्ली के तख़्त पर बैठ कर फ़तेहाबाद ना का नगर, अपनी विजय की यादगारी में, बसाया युद्ध के आरम्भ होतेही बादशाही सेना तो पलट साहबज़ादे में जा मिली और यशवंतसिंहजी के अपने राजपूतों के साथही रह गये, परन्तु इन स को यह विश्वास था कि चाहे कितनेही शत्रु क्यों हों, हमको कौन पराजय कर सकता है। यशवंत सिंह जी अपने प्रिय अश्व पर विराजमान हुए और भाला लेकर अपने राजपूतों के साथ शत्रु पर पड़े। घोर संग्राम हुआ। इसमें दस सहस्र मुसल मान मारे गये और गहलोत, हाड़ा, गौड़ और राजपूतों के हर जाति के राजपूतों के सिवा सत्त्र सौ राठौड़ काम आये। मुसलमानी सेना गणना भी बहुत अधिक थी। उनके साथ में फ़रासी सियों से सजी हुई तोपें भी बहुत थीं। परन्तु रा पूतों की वीरता के सामने विरोधी सेना की अधि गणना और तोपें कुछ न कर सकीं। सूर्य अस्त हो परही युद्ध समाप्त हुआ। इसमें राजपूतों की वीरत की प्रशंसा जो उनके कवियों ने की है उसक मुसलमानी इतिहास और बरनीयर साहब अप पुस्तक में पूरे तौर पर साक्षी देते हैं। दोनों सेना युद्धभूमि में पड़ी रहीं और दूसरे दिन जब महा राजा ने अपने देश का मार्ग लिया तब औरंगज़ेब उनकी छेड़ छाड़ करना ठीक न समझकर उन जाने दिया। मुसलमानी इतिहास लिखते हैं इस युद्ध में पंद्रह हज़ार राजपूत रण-खेत रहे मुसलमानी सेना ने तो उदय होते हुए सूर्य पक्ष किया, परन्तु राजपूत अपने बुड्ढे स्वामी भक्त रहे, जिसमें विशेष करके कोटा और बूँदी हाड़े। ऐसी कौन सी जाति है जिसके इतिहास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी स्वामि-भक्ति का दृष्टान्त मिलेगा जैसा कोटे के महाराव और उनके पाँच भाइयों का, जो सब के सब युद्धभूमि में गिरे और उनमें केवल एक जीवित रहा।

सब लोगों की सम्मति है कि इस युद्ध में रतलाम के राजा रत्नसिंहजी की वीरता सबसे विख्यात थी। इन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि मालवे की धरती में आ बसने से राठौड़ों का जाति-स्वभाव कुछ बदल नहीं गया था। करनल टाड साहब अपने राजपुताने के इतिहास में लिखते हैं कि इस युद्ध में जो कदाचित् वीरता में कुछ कमी भी रही थी तो उसको महाराजा यशवंतसिंहजी की रानी हाडी जी ने पूर्ण की। उनको जब ज्ञात हुआ कि महाराजा युद्ध से भागकर आ रहे हैं तो उन्होंने क़िले के दरवाज़े बंद करवा दिये और कहा कि भागकर आनेवाले पति को मैं नहीं देखना चाहती। इस युद्ध में यशवंतसिंह जी और उनके घोड़े के भी बहुत घाव लगे थे।

ऐसे अवसर पर शीघ्रता से काम करना बड़ा फलदायक होता है। औरंगज़ेब यह ख़ूब जानता था। आगरे से तीस मील दक्षिण को झाझवो नामक गाँव के निकट वह शीघ्रता से पहुँचा और वहाँ स्वयं दाराशिकोह बूँदी के राव राजा शत्रुशाल जी और कृष्णगढ़ के महाराजा रूपसिंहजी के साथ युद्ध करने आया। मुसलमानी सेना के औरंगज़ेब से मिलावट रखने के कारण इनकी पराजय हुई। पर, दोनों राजपूत राजाओं ने बड़ी वीरता से युद्ध किया। दाराशिकोह को सकुटुंब भागना पड़ा और औरंगज़ेब ने आगरे पहुँच कर अपने वृद्ध पिता को कारागार में रक्खा और स्वयं बादशाह बन गया।

औरंगज़ेब ने दिल्ली के तख़्त पर बैठकर जयपुर के मिरज़ा राजा जयसिंह जी के द्वारा यशवन्तसिंह जी के सब अपराध क्षमा करके उनको अपने पास आगरे बुलवाया और पूर्व में अपने भाई सूजा पर चढ़ाई की तो इनको अपने साथ लिया। यशवन्तसिंहजी गुप्त तौर से सूजा से मिल गये। इलाहाबाद से तीस मील उत्तर को खजवा नाम के ग्राम के निकट युद्ध हुआ तो यशवंतसिंहजी ने अपनी सेना को पीछे मोड़कर औरंगज़ेब की सेना के पिछले भाग पर, जो साहबज़ादे मुहम्मद की तहत में था, धावा मारकर उसका नाश कर दिया। फिर उन दोनों भाइयों को आपस में लड़तेही इस आशा में छोड़कर कि दोनों का नाश हो जाय, स्वयं आपने बादशाही डेरों को लूटकर सब बेश क़ीमती चीज़ें ऊँटों पर लदवाकर अपने देश को रवाना कीं और उसके साथ साथ आगरे को गये। इनके आने पर औरंगज़ेब की पराजय की अफ़वा से आगरे के अंदर की सेना का साहस इतना टूट गया था कि इसमें कुछ संदेह नहीं कि इनके कहलाने पर नगर और दुर्ग के दरवाज़े खुल जाते और ये शाहजहाँ को कारागार से छुटाकर पीछे सिंहासन पर बिठला कर उसके नाम से औरंगज़ेब का सामना करने का यत्न कर सकते थे। हम इसमें कुछ शंका नहीं करते कि उनको यह बात न सूझी हो परन्तु उन्होंने अपनी सेना को आगरे में बंद करना ठीक नहीं समझा। इसके सिवा उनकी सब चाल दाराशिकोह से मिली हुई थी और उसको इन्होंने संकेत भी कर दिया था परन्तु जब यशवंतसिंह जी उसकी राह देखते हुए औरंगज़ेब की सेना के पीछे ठहरे रहे तो यह मारवाड़ की दक्षिणी सीमा पर घूमता रहा और अंत में मेड़ते में आकर इनसे मिला; परन्तु अवसर चला गया था; और उसने सदैव के लिए दिल्ली का राज्य गवाँ दिया। उधर औरंगज़ेब ने सूजा को परास्त करके पकड़ कर सकुटुम्ब मरवा डाला। यशवंतसिंह जी ने अपनी लूट को, जिसमें स्वयं बादशाह के डेरे भी थे, लाकर जोधपुर के दुर्ग में जमा कर दिया।

औरंगज़ेब अब दाराशिकोह की ओर चला। वह बड़ा धूर्त था और जहाँ तक हिकमत से काम चल सकता था वह ज़ोर कभी नहीं लगाता था। उसने फिर जयपुर के मिरज़ा राजा जयसिंह जी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा यशवंतसिंह जी को क्षमा दी और गुजरात की सूबेदारी भी इस प्रण पर अर्पण की कि वह दाराशिकोह का पक्ष छोड़ दे। महाराजा ने यह बात स्वीकार की। दाराशिकोह की युद्ध में पराजय हुई और वह दक्षिण की ओर भाग गया; परन्तु पश्चात् पकड़ा जाकर औरंगज़ेब की आज्ञा से बड़ी निष्ठुरता से मारा गया।

इस समय में शिवाजी ने अपने महाराष्ट्रीय योद्धाओं के साथ देश की स्वाधीनता स्थापित करने का उद्योग किया तो इसको तोड़ने को यशवंतसिंह जी साहबज़ादे मुअज़्ज़म के साथ भेजे गये। उन्होंने वहाँ पहुँचतेही शिवाजी से मेल कर लिया और इनके ही संकेत से वे रात को मुसलमानी सेना पर अचानक टूट पड़े और फौज़ के मुसाहिब शाइस्ताख़ाँ को मार डाला। इस पर सब सेना का कार्य इनकेही हाथ में आगया। औरंगज़ेब को इस सब वृत्तान्त की पूरी पूरी ख़बर लग गई, परन्तु उसने यशवंतसिंह जी से बिगाड़ करना ठीक न समझा। बरन् उनको सेनापति होने की मुबारकबादी दी। इसके थोड़ेही समय पश्चात् इनके स्थान पर जयपुर के महाराजा को भेज दिया। इन्होंने अपना वचन देकर शिवाजी को बादशाह के पास हाज़िर किया; परन्तु जब इनको ज्ञात हुआ कि वह दुष्ट इनको मरवा डालेगा तब इन्होंने उनको वहाँ से भगा दिया। इस पर इनके स्थान पर फिर यशवंतसिंह जी भेजे गये परन्तु इन्होंने साहबज़ादे मुअज़्ज़म को बहकाना आरंभ किया कि तुम स्वयं बादशाह बन जाओ। इस पर औरंगज़ेब को इनके स्थान पर दिलेर-ख़ाँ को भेजना पड़ा। औरंगज़ेब यशवंतसिंह जी से बहुत अप्रसन्न था, परन्तु वे ऐसे प्रबल थे कि वह इनसे भयभीत था और इसी कारण से वह इनको कभी गुजरात, कभी दक्षिण और कभी मालवे में भेजता था; परन्तु जहाँ कहीं वे जाते थे वहीं उपद्रव मचाते थे। संवत् १७२६ में ये जोधपुर आये।

औरंगज़ेब ने इनको मरवाने के कई उपाय किये, परन्तु यशवंतसिंह जी के सरदार इनकी पूरी पूरी रक्षा रखते थे। अंत में बादशाह ने यह देखा कि इनको ऐसे स्थान में भेजना चाहिए जहाँ ये अधिक हानि न पहुँचा सकें। इसी समय काबुल में उपद्रव हो गया तो औरंगज़ेब ने यह अवसर देख कर इनको वहाँ जाने की आज्ञा दी। वे अपने मुख्य मुख्य वीर सरदारों, रानियों और पुत्रों सहित वहाँ गये और अफ़गानों को मार-पीट कर सीधा बनाया। ये आठ वर्ष तक वहाँ रहे। उस समय में अफ़गान कुछ भी उपद्रव न कर सके।

यशवंतसिंह जी के काबुल जाने के पश्चात् औरंगज़ेब ने मारवाड़ पर ख़ालसा भेज दिया तो महाराज-कुमार पृथ्वीसिंह जी, जिनको महाराजा ने अफ़गानिस्तान जाते समय सब काम सौंप दिया था, बादशाह के पास दिल्ली गये और ख़ालसा भेजने का कारण पूछा। जब ये बादशाह के दरबार में दोनों हाथ जोड़े खड़े थे तब औरंगज़ेब ने इनको अपने दोनों हाथों में पकड़कर कहा कि "राठोर अब क्या करेगा" पृथ्वीसिंहजी ने निर्भयता से उत्तर दिया कि जब मनुष्यों का बादशाह अपने दीन से दीन मनुष्य पर रक्षा का हाथ रखता है तब उसकी सब आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं। परन्तु जब आप मेरे दोनों हाथ पकड़ते हैं तब मैं जानता हूँ कि मैं सारे संसार को विजय कर सकता हूँ"। इस उत्तर को सुनतेही बादशाह के मुख से यकायक निकल गया ओह—यह दूसरा खुत्तन है" (औरंगज़ेब यशवंतसिंह जी को खुत्तन के नाम से कहा करता था) यह बादशाह बड़ा धूर्त था। प्रत्यक्ष में तो बहुत प्रसन्न हुआ और महाराजकुमार को ख़िलअत इनायत की। परन्तु वास्तव में विष मिला हुआ था जिससे थोड़े ही काल पश्चात् बहुत पीड़ित होकर वैकुंठ को सिधार गये।

काबुल की आबोहवा से दोनों महाराज-कुमार वहीं देवलोक हो गये थे। तीनों पुत्रों के मरने और मारवाड़ पर ख़ालसा पहुँचने से महाराजा को बहुत शोक हुआ, देश तक जाना संभव नहीं था; क्योंकि जमरूद में बादशाही सेना इनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डेरा लगाये बैठी थी। इसी शोक से जलकर महाराजा संवत् १७३६ में परमधाम को सिधार गये। इन्होंने मारवाड़ पर ४२ वर्ष तक राज्य किया।

राजपुताना के राजाओं में यशवंतसिंह जी एक बहुत योग्य हुए हैं। उनके समय में बहुत बड़े बड़े काम हुए हैं। दूसरे साहबज़ादों की अपेक्षा ये दाराशिकोह पर ज़्यादा प्रसन्न थे, परन्तु उनकी अभिलाषा यह थी कि यह सब आपस में लड़भिड़कर नाश को प्राप्त हो जायँ। औरंगज़ेब से ये अत्यन्त अप्रसन्न थे, जिसका कारण यह है कि वह बड़ा दुष्ट था और हिन्दुओं को बहुत सताता था। वह इनसे दिल में तो बहुत नाराज़ था परन्तु बाहर से बहुत प्रीति जतलाता था। उसकी अप्रसन्नता का अनुमान तो उस निर्दयता से हो सकता है जिसके साथ उसने महाराजा के स्वर्गवासी होने पर उनके घर और देश पर बर्ताव किया। इसका वृत्तान्त फिर कभी सरस्वती में आवेगा।

यशवंतसिंहजी विद्या के अत्यन्त प्रेमी थे। उनके दरबार में बड़े बड़े पण्डित सदैव रहा करते थे और संस्कृत और भाषा के ग्रंथ लिखा करते थे। स्वयं उन्होंने भाषा-भूषण नाम का हिन्दी भाषा में एक बहुत उत्तम अलंकारों का ग्रंथ बनाया है। इसका राजपुताने में बहुत प्रचार है। महाराजा कविता भी अच्छी करते थे, जिसके नमूने के कुछ दोहे आगे लिखे हैं:—

यशवंत शीशी काच की, जैसे नर की देह।
जतन करन्ताँ जावसी, हरभजि लाहा लेह॥१॥
यशवँत वास सराय का, क्या सोवै भरि नैन॥
श्वास नगारे कूँच के, बाजत हैं दिन रैन॥२॥
दस दुवार को पींजरो, ता में पंछी पौन॥
रहन अचंभो है जसा, जात अचंभो कौन॥३॥
खाया पीया खरचया, दिया लिया सो सत्त॥
यशवंत धर पौढ़ाविया, माल बिराणै हत्त॥४॥

महाराजा अपने सरदारों को बहुत प्रसन्न रखते थे और वे उनकी रक्षा के लिए सदैव उपस्थित रहते थे। उदाहरण में हम यहाँ पर एक वृत्तान्त कहते हैं। संवत् १७२७ में महाराजा को चित्तभ्रम का रोग हो गया था। लोगों ने यह प्रसिद्ध किया कि इनको भूत लग गया है और यह तभी निकलेगा जब कोई बड़ा सरदार अपना मस्तक उसको चढ़ावेगा। इस पर आसोप के ठाकुर मुकुंदसिंहजी ने प्रसन्नतापूर्वक अपना मस्तक अपने हाथ से काट डाला। इससे अधिक स्वामि भक्ति की परीक्षा और क्या हो सकती है।

अमरसिंह।

हिन्दी और देशभाषा।

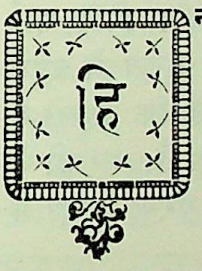

न्दी ही देशभाषा है या हो सकती है—नये भाषा-व्याकरण का पहला सूत्र ऐसा ही कुछ होना चाहिए। सौ बरस पढ़ाने के बाद अँगरेज़ी को सौ में एक ही समझ सकते हैं। संस्कृत को सौ में एक भी नहीं। उर्दू को यदि उर्दू की लिपि छोड़ दें तो वह हिन्दी ही होजाय। उर्दू की लिपि भारत में निराली ही है। प्राकृत भाषाओं को समेट कर संस्कृत के सहारे हिन्दी ही अन्य भाषाओं को एक कर सकती है। अपने भ्रातृ-भाव वा "बिरादरी" के बल से हिन्दी ही उर्दू को मना सकती है। हिन्दी ही देशभाषा बन सकती है।

हिन्दी ही देशभाषा है। इसका प्रमाण हिन्दी-भाषियों का परिमाण ही है या और भी कुछ? इसका उत्तर लोग आज कल भारतवर्ष के प्रान्त प्रान्त से कण्ठ कण्ठ से पा रहे हैं। बंगाल की एक-लिपि विस्तारिणी समिति, महाराष्ट्र की साहित्य-परिषद और पंजाब की हिन्दू-सभा, सभी हिन्दी के गुणगान कर रही हैं, इसकी महिमा बखान कर सबको समझा रही हैं। हिन्दी भाषा की सरलता और सुगमता, उसके मनोहर अक्षर और उनका बोल चाल से ठीक ठीक मिलान, उसके स्वर और व्यंजनों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक विभाग इत्यादिकों का भारत भर में कीर्तन हो रहा है। बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब आदि में देवनागरी के प्रचार से उसके देशभाषा होने की बहुत आशा है। हम चाहते हैं कि इन प्रान्तों में देवनागरी, प्रान्तीय भाषा के साथ, ग्राम ग्राम में आरम्भ में पढ़ाई जाय और विश्वविद्यालयों में भी दूसरी भाषाओं के समान स्थान पावे तथा वहाँ के लोगों की रुचि इसकी ओर दिन दिन अधिक बढ़ती जाय, जिसमें यह भारती का अवतार भारत के पूर्व पश्चिम और दक्षिण ओर भी कोने कोने में फैल जाय।

परन्तु यहाँ पर हमारा सम्बन्ध इसी प्रान्त से है। इससे हिन्दी के बाहरी गुणों की तरफ़ न देख कर हम हिन्दी ही को देखेंगे और यह कहेंगे कि हिन्दी भाषा की भारतीयता उसके साहित्य ही में पाई जाती है। हिन्दी-साहित्य का नाम सुनते ही बहुत लोग चिढ़ उठते हैं। वह कहते हैं कि हिन्दी में साहित्य ही नहीं। बँगला में साहित्य है, मराठी में हो चला है, गुजराती में हो रहा है, परन्तु हिन्दी में कहाँ है?

हिन्दी-भाषा के भारतीय साहित्य होने में तभी सन्देह हो सकता है यदि कोई भारतीय जीवन की तरंग भारत-मात्र को उमंग से भरती हुई हिन्दी-साहित्य में नाम तक को न उठ पाती, यदि हिन्दी प्रान्तीय भावों ही से भरी होती और प्रान्तीय प्रभावों ही के अधीन रहती। परन्तु हिन्दी में क्या नहीं है? हिन्दी सदाही से भारतीय भाषा चली आई है और प्रान्तीयता की बू से दूर रही है। जब भगवान् रामचन्द्र ने लंकाविजय करके रामराज्य करना आरम्भ किया जब पृथ्वीराज ने राजस्थान के राजपूत रुधिर से भारतभक्ति की भभकती हुई अग्नि में आहुति दी थी, जब महाराष्ट्र जाति ने महाराज शिवाजी के वीरगर्जन से उत्साहित हो भारत पर हिन्दू-पताका उड़ाते हुए "पूरब पछांह देस उत्तर ते दक्षिण लौं जहां बादशाही तहाँ दावा शिवराज को", कर दिया था; अथवा जब घोरवंश के ख़ूनी सुलतान अलाउद्दीन ने पद्मिनी के पीछे चित्तौड़ को तोड़ कर साका शोणित से अपने को कलंकित किया था, तब हिन्दी क्या नाक भौं मरोड़े, मुँह सिकोड़े बैठी हुई थी? गोसांई जी ने अपने मनमानस को भक्ति से भर दिया और सारा भारत उसमें ग़ोते लगाने लगा, चारणवर चन्द ने सदा के लिये चौकन्ना करते हुए राजस्थान का हृदय हिला दिया। भूषण की कड़-कड़ाती हुई ध्वनि से शिवाजी का मन दूना हो उठा, उनकी तलवार—'भवानी' महाराष्ट्र में घर घर पुजने लगी; यवन की क्रूरता ने यवन का भी हृदय करुणा से भर दिया और जायसी की पद्मावत आज भी "है चितौर हिन्दुन की माता। गाढ़ परे तजि जाय न नाता" कह रही है।

भारत का यवनराज्य ही लीजिए। भाषा में नखशिख भरा हुआ है। यवन दरबार के आश्रित कवि उसमें सने पड़े हुए हैं। सुन्दर, गंग, चिन्तामणि, वीरबल, आदि बड़े बड़े कवीश्वर उन्हीं दिनों के भावों में लिप्त हैं। इस ढंग की कविता में शृंगार रस प्रधान है, परन्तु सामयिक असर यहाँ तक प्रबल है कि ब्रह्म कवि (राजा वीरबल) के पदों में वेदान्तस्थित अकबर के दीन इलाही मत के भाव भी वर्तमान हैं। उन दिनों के दिल्लीदास, रसिक रजवाड़ों में प्रधान जयपुर की प्रकृति, बिहारी की मधुर सतसई की पंक्ति पंक्ति से टपक रही है। कबीर, दादू आदि की धार्मिक साखियाँ, रहीम, रसखान आदि यवनों की भगवद्भक्ति हिन्दी भाषा में भरी पड़ी है। नाभाजी की भक्तमाल भक्तों से गुँथी हुई है। टोडरमल, मानसिंह, अमरसिंह आदि बड़े बड़े महाराजे भाषा में अपने चिह्न छोड़ गये हैं। स्वयं महाराज जयचन्द ही को सेनावरदय कहलाने का गौरव था। अकबर को भी कविता करने का अभिमान था। हिन्दी भाषा साहित्य की भारतीयता प्रत्यक्ष है। परन्तु चैतन्य, नानक, तुकाराम आदि प्रान्तीय भक्त उसमें नहीं हैं। न प्रान्तीय नायक गणों के चरित्र ही उसमें अधिक पाये जाते हैं। परन्तु यदि उसमें अधिक नहीं पाये जाते हैं तो और भाषाओं में तो वे बिलकुल ही नहीं हैं। इस त्रुटि का दूर करना हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा का कर्तव्य है, परन्तु इस विषय में विशेष कर सहायता उसको प्रान्तीय भारतवासियों ही से मिल सकती है, क्योंकि वही उन प्रान्तीय भावों से अधिक पूर्ण हो सकते हैं।

हिन्दी भाषा में दो बातों का बड़ा अभाव है। न तो कुछ गद्य ही है और न आधुनिक भावों की बहुतायत ही। गद्य जो कुछ है वह साहित्य कहलाने के योग्य नहीं; बंगला में बंकिमचन्द्र तथा रमेशचन्द्र आदि ने गद्य के लिए बहुत कुछ किया है। हिन्दी भाषा में भी अब आज कल कुछ हो चला है। अनुवादों तथा उपन्यासों की भर मार हो रही है। परन्तु यह जितना ही व्यर्थ आडम्बर बाधेंगे उतने ही हानिकारक होंगे और जितना ही समाज को सिखाने, सुधारने और उठाने का यत्न करेंगे उतना ही उपयोगी होंगे। गद्य का अभाव कुछ हिन्दी ही के पाले नहीं पड़ा है। वह संस्कृत में भी है और शायद उसी की प्रकृति से भाषा में भी रहा हो। संस्कृत में श्लोकों की सरलता और उत्तमता से गद्य का काम निकल जाता था। हिन्दी भाषा में भी दोहे और चौपाई वैसे ही सरल और उत्तम हैं और उनसे भाँति भाँति के प्रयोजन निकल चुके हैं। परन्तु गद्य की उत्तमता भाषा की प्रधान शक्ति होती है और विज्ञान, इतिहास आदि सैकड़ों विषयों की उन्नति करती है। आधुनिक भाव भी भाषा में हरिश्चन्द्र प्रताप-नारायण मिश्र आदि में पाये जाते हैं परन्तु अभी तक नील दर्पण की भाँति भाषा में किसी पुस्तक ने अत्याचारों का आविष्कार नहीं किया। न नवीन राजनैतिक विचार ही हिन्दी में परिणत हुए हैं। न देशभक्ति ही किसी हिन्दी भाषा कवि के हृदय में भारतीय भाव से जाग उठी है। देश भाषा को सदा सामयिक बनाना होता है और सदा उसके पुरातन और प्रसिद्ध प्रकृति के गुणों द्वारा समय को अलंकृत करना होता है। इधर के शिक्षित समाज ने अभी इसमें से एक बात पर भी हाथ नहीं लगाया है। एक तो देशी आलस्य और दूसरे विलायती बोली, दोनों ही का अधिकार धीरे धीरे हट रहा है। उधर नये साहित्य की नवीनता कठिन मालूम होती है और भाषा की उच्चता स्थिर रखना अपनी भक्ति ही का चिह्न है परन्तु तब भी हिन्दी अब आगे बढ़ रही है और देश भाषा होने के साहस को शीघ्र ही सफल करेगी। हर्ष का विषय है कि देशभक्ति के इस क्षेत्र में इस प्रान्त के वासियों का विशेष अधिकार है तथा यह भार उन्हीं के सिर पर है। यह देश भर का काम अभी उन्हीं के मत्थे है परन्तु यदि वह उसे टाल देंगे तो अन्य लोग उसे करेंगे वा कोई अन्य भाषा ही देशभाषा बन बैठेगी और भारती को हिन्दी के लिए आँसू गिराना होगा।

यहां पर एक छोटी सी बात कहना और उचित मालूम होता है। भारत में हिन्दी भाषा का देशभाषा होना कुछ आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि हिन्दी के सहायक स्वयं भगवान हैं। हर साल सारे भारतवर्ष के यात्री इस प्रान्त में आते हैं, काशी, अयोध्या, मथुरा आदि तीर्थों में अनेक रूपों में भगवान उन्हें दर्शन देते हैं और हिन्दी के मधुर स्वर उनके कर्ण-कुहरों को पवित्र करते हैं। त्रिवेणी में जब कुम्भ पड़ता है तब लाखों मनुष्यों की भीड़ लग जाती है। हरद्वार में भी वही हाल होता है। बदरिकाश्रम में भगवान बादरायण की कृपा से अनेक मनुष्य दूर दूर से जमा होते हैं। बहुतेरे दिल्ली, आगरा, लखनऊ आदि देखने यों ही आया करते हैं। यदि इस प्रान्त के तीर्थों में, उत्सवों के समय ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि प्रति वर्ष शिवरात्रि को काशी में, हिण्डोल-काल में मथुरा में, अथवा प्रति कुम्भ ही में उस भारतीय यात्रि-दल के सम्मुख कोई हिन्दी में अभिनय किया जाय अथवा कोई काव्य पढ़ा जाय और कवियों की परीक्षा ली जाय, जैसी यूनान के पुराने उत्सवों में होती थी, तो हिन्दी-साहित्य को भी लाभ हो; हिन्दी का प्रचार भी हो, धर्म की भी उन्नति और हिन्दी-हितैषियों को भी उत्साह हो। यहीं क्यों जगन्नाथ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही में रथयात्रा के समय ही यह हो सकता है; अथवा प्रति कांग्रेस ही अपने अधिवेशन काल में इसको रख सकती है। केवल यूनान ही में उत्सवों और दृश्य तथा काव्य शास्त्रों का सम्बन्ध नहीं पाया जाता, परन्तु हमारे संस्कृत-साहित्य में भी पश्चिमीय संस्कृतज्ञ लोग यही पाते हैं। रत्नावली में श्रीहर्ष ने वसन्तोत्सव तथा अपने तीनों नाटकों में भवभूति ने उज्जयिनी के महाकालेश्वर ही की यात्रा में भी अभिनय होना वर्णन किया है। यूरोप में भी पहले 'रहस्यों' (Mysteries) का बहुत प्रचार था। वह इँगलिस्तान आदि सब देशों में पाया गया है और सब यूरोपीय साहित्य पर उसका असर रहा है। भारत के पिछले समय में भी वह रह चुका है। और हमारी रहस इत्यादि लीलाओं और कथाओं में विद्यमान है। इस समय में देशभाषा की सहायता करना इसके लिए कोई बड़ा कार्य नहीं है। देवनागरी के लिए देवताओं की क्या कमी है।

पश्चिमीय विद्याओं को हिन्दी में प्रकट करने से भारत की आर्थिक उन्नति होगी। और पूर्वीय भारती के हिन्दी में नवीन दर्शन कराने से आध्यात्मिक उन्नति होगी। भाषा में कुछ भी नवीनता न हो परन्तु तब भी शिक्षित समाज को 'उभय हाथ मुद मोदक मोरे' कहने का अनूठा सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

शिवाधार पाण्डे।

सतसई-संहार।

[गताङ्क से आगे]

"बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का,
जो चीरा तो एक क़तरए ख़ून निकला!"

"जिस सतसई की इतनी प्रशंसा सुनते आते हैं, जिसपर इतने कवि विद्वानों ने टीकाय लिखी हैं क्या वह यही सतसई है जिसकी अति ललित मधुर मुग्ध टीका हम विद्यावारिधिजी से सुन रहे हैं!"

उस पुरुष की यह धारणा ठीक उसी प्रकार की होगी जैसे कि कोई पुरुष पण्डित-राज की गङ्गा-लहरी में

"सुधातः स्वादीयः सलिलभरमातृप्तिपवितां
जनानामानन्दः परिहसति निर्वाणपदवीम्।

इत्यादि वचन पढ़कर गंगोत्तरी, हृषीकेश आदि स्थानों में गङ्गा का दर्शन और जलपान न करके गङ्गासागर सङ्गम पर पहुँच कर गङ्गोदक के बारे में अपनी राय क़ायम करे।

अन्य प्राचीन टीकाओं की मौजूदगी में इस अपूर्व टीका की क्या आवश्यकता थी? इसका कारण स्वयं विद्यावारिधिजी से सुनिए, कहते हैं :—

"परन्तु इन टीकों में पद्य रचना विशेष और गद्य रचना न्यून होने से कठिन पर कठिनाई पड़ने से वे सर्वसाधारण के उपयोगी नहीं हुए हैं और इसी कारण अति रसीली होने से भी सतसई घर घर नहीं विराजती है, सर्वसाधारण की बुद्धि में कविवर का आशय प्रगट हो जाय इसी निमित्त सर्वसाधारण के उपयोगी भावार्थ प्रकाशिका टीका निर्माण कर साथ में कठिन शब्दों के अर्थ अलंकारादि लक्षण पर और स्वनिर्मित दोहों में लिखकर पुनरुक्ति से उसका विस्तार नहीं किया है, और विभाव अनुभावादि का उल्लेख मात्र करके उसके समझने के निमित्त 'साहित्य परिचय' नाम का एक पृथक् प्रबन्ध लिखा है, भावार्थ और अक्षरार्थ बहुत सरल हो इस पर विशेष दृष्टि रक्खी है'.....
"साहित्य परिचय से काव्य लक्षण रसनिरूपण नायिका भेद अलंकारादि का ज्ञान पाठकों को सहज में हो जायगा".....'"परन्तु भावार्थ अक्षरार्थ जानने के लिये पाठकों को यह अति उपयोगी होगा ऐसी मुझे दृढ़ आशा है..... (भूमिका)

यह तो आगे चलकर मालूम होगा कि आपके टीके से कविवर का आशय सर्वसाधारण की बुद्धि में किस प्रकार प्रकट हुआ है, अथवा और गुम हुआ है पर एक आपने बड़ी ही दया की जो "स्वनिर्मित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

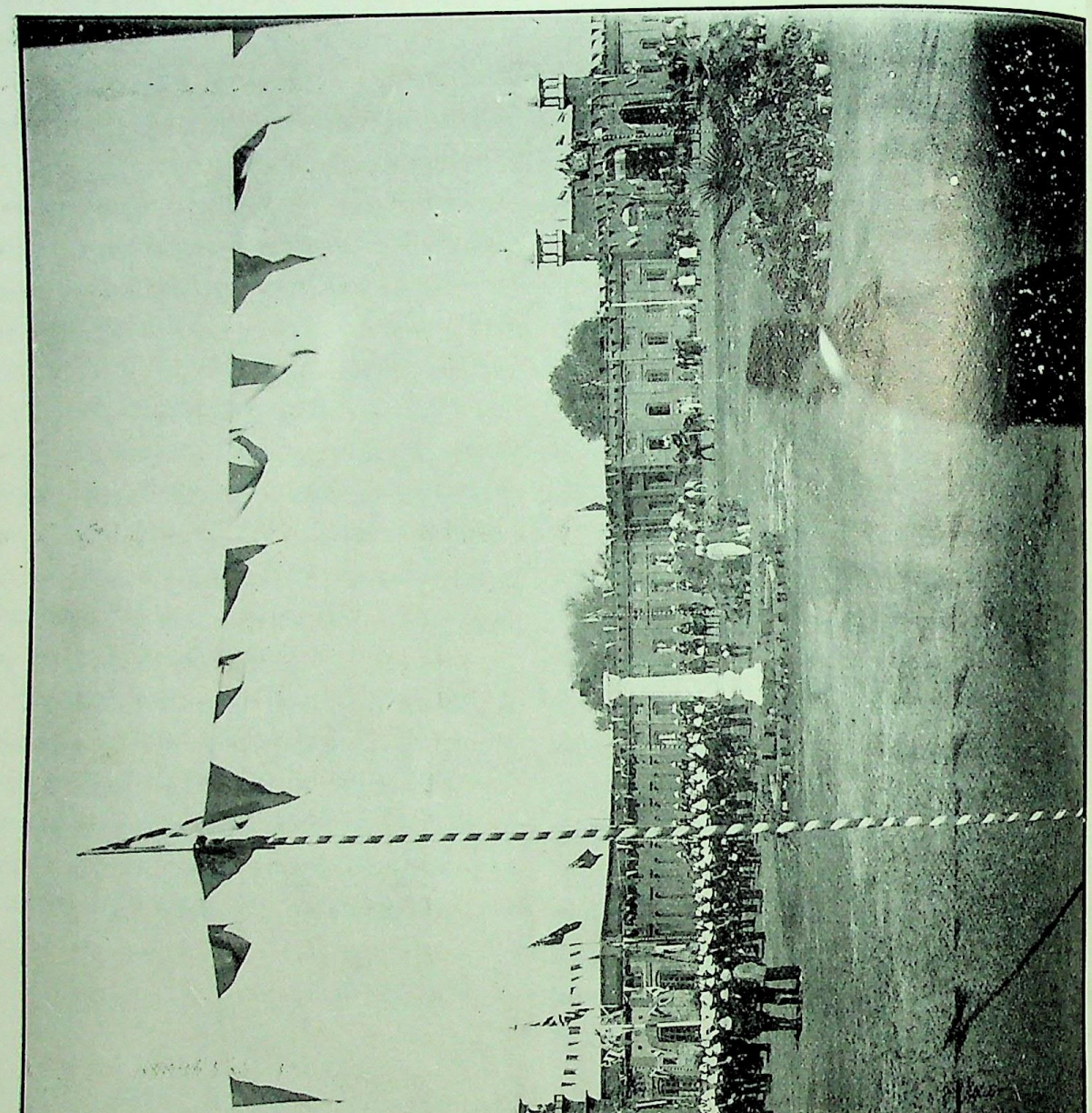

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोहे लिखकर पुनरुक्ति से उसका विस्तार नहीं किया। महाराज! आपकी तो गद्य हिन्दी ही नहीं समझी जाती, फिर आपके निर्मित दोहे कौन समझता? न मालूम उनके लिए कितने टीकों की ज़रूरत होती, अब भी आप अच्छे समझे जो 'कठिन-पर कठिनाई नहीं डाली', यह वाक्य लिखकर आपने लोगों के एक बड़े भारी भ्रम को दूर कर दिया। सम्भव था कि कोई यह समझ बैठता कि आप पद्य में टीका नहीं लिख सकते इसीलिए गद्य में लिखी है, सो अब लोग जान गये कि यह बात नहीं, कि आप पद्य नहीं लिख सकते किन्तु सर्वसाधारण पर दया करके ऐसा नहीं किया। इसके लिए आपको बहुत बहुत धन्यवाद है।

अच्छा अब ज़रा सावधान होकर विद्यावारिधि जी का "साहित्य-परिचय" सुन लीजिए। कहते हैं:—

'सतसई में साहित्य विषयक जो वर्णन आया है उसको संक्षेप से वर्णन करते हैं साहित्य दर्पण में 'वाक्यरसात्मककाव्यम्' और काव्य प्रकाश में तद-दोषौ शब्दार्थौ सगुणवनलंकृतिः पुनः क्वापीति' और रसरहस्य के कवि कहते हैं।

जगते अद्भुत मुखसदन, शब्दरु अर्थ कवित्त।

इसमें जगत् से अद्भुत सुख लोकोत्तर चमत्कार काही नाम काव्य कथन हुआ है इत्यादि।"

ज़रा ठहरिए, इतनी जल्दी एक साँस पाठ कर जाने से सर्व साधारण न समझ सकेंगे। पहले बताइए श्रीमान् ने यह दो संस्कृत-वाक्य क्यों उद्धृत किये थे? इनसे क्या अपराध हुआ जो आपने इनकी बात तक न पूछी? सर्वसाधारण इसका कुछ अर्थ न समझे। कहीं यह बात प्रकट करने के लिए ही तो इन्हें तकलीफ़ नहीं दी गई कि जिससे सर्वसाधारण जान जायँ कि आपकी पहुँच साहित्यदर्पण और काव्यप्रकाश तक है। अस्तु, महाराज जी! 'वाक्य-रसात्मककाव्यम्' यह वाक्य कौन से साहित्यदर्पण में है? विश्वनाथवाले साहित्यदर्पण में तो 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" यह पाठ है! सम्भव है, आपके पुस्तक में वैसा ही पाठ रहा हो, तब "वाक्य रसात्मककाव्यम्' इस समस्त पद का अर्थ क्या होगा? और "तददोषौ शब्दार्थौ सगुण वलंकृतिः पुनः क्वापीति॥ इसमें "तददोषौ?, का सम्बन्ध किस के साथ है? तथा "सगुण वलंकृतिः" क्या चीज़ है? कृपा कर के बतलाइए तो, "जिस कविता में रस सुख लोकोत्तर चमत्कार है वही काव्य कहाता है" आपके इस लोकोत्तर वाक्य से जाना जाता है कि कविता और काव्य में कुछ भेद ज़रूर है, सो आपही जानते होंगे। पाठकगण! 'साहित्यपरिचय' में आगे चल कर जो दोहे लिखे हैं, वे टीकाकार के अपने तो हैं नहीं, क्योंकि वह स्वयं अपने दोहे न लिखने का कारण बतला चुके हैं, पर आपने यह भी नहीं लिखा कि वे कहाँ से लिये गये हैं। इसके अतिरिक्त जो कुछ है वह प्रायः साहित्यदर्पण के कुछ श्लोकों का अति दूषित अनुवाद है। कहीं कहीं आपने अपनी ओर से भी कुछ कुछ बढ़ाया है, 'साहित्यदर्पण' का नाम लेने की आपने ज़रूरत नहीं समझी। ऐसी दशा में यह अच्छा ही हुआ। नाम ले देने से साहित्यदर्पण की कौन सी इज़्ज़त बढ़ जाती। उसे और लज्जित ही होना पड़ता। 'वाक्य रसात्मक काव्य' की दुर्दशा पर ही उसे अफ़सोस है कि ऐसी दशा में उसे क्यों बदनाम किया गया, अस्तु, रसों का कुछ हाल लिख कर आप फ़र्माते हैं—

"इसके आगे काव्य की ध्वनि व्यञ्जना लक्षण (?) का विस्तार होता है परन्तु हम सतसई मात्र का विषय संक्षेप से दिखाते हैं" (सा० प० पृ० २४) फिर इससे आगे चल कर ३० वें पृष्ठ पर लिखते हैं—"इस के आगे ध्वनि अर्थ लक्ष्य व्यंजना आदि के अनेक विषय चलते हैं परन्तु यहाँ अब प्रयोजनीय अलंकार विषय कहते हैं"

चलने होंगे, आपके राम को इससे क्या प्रयोजन! उधर न देखिए अँगूर खट्टे हैं। आप सतसई मात्र का विषय संक्षेप से दिखाइए। आपने तो ध्वनि आदि का नाम लेकर उनकी याद भी व्यर्थ दिलाई। अब जब कि आप ज़िक्र छेड़ ही बैठे तो बात पर बात याद आ गई, क्यों महाराज! 'सतसई मात्र में'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वनिव्यञ्जना या लक्षण का पता नहीं। अर्थात् अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना, ये शब्द की तीनों शक्तियाँ और वाच्य, लक्ष्य, तथा व्यङ्ग्य ये तीन प्रकार के अर्थ, सतसई में नहीं है! इसीलिए आपने अपने 'साहित्य-परिचय' में (जो 'सतसई मात्र का' विषय समझाने के लिए लिखा गया है) इनको स्थान नहीं दिया! फिर उसमें और है क्या ? व्रजभाषा के जानने वाले बड़े बड़े विद्वान् तो कहते हैं कि 'सतसई' अत्युत्कृष्ट काव्य है, और काव्य के दो ही उत्तम भेद हैं जैसा कि साहित्य-दर्पणकार लिखते हैं "काव्यं ध्वनिर्गुणीभूत-व्यङ्ग्यञ्चेति द्विधामतम्। आप 'ध्वनि' आदि को 'सतसई मात्र' का विषय ही नहीं बतलाते, इस से उसकी काव्यता भी गई! आपने अपनी इस प्रतिज्ञा को टीका में खूब निबाहा है। चाहिए भी ऐसा ही, आदमी जो बात कहे उसे साङ्गोपाङ्ग पूरी उतार दे। टीका पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि सतसई में ध्वनि आदि कुछ नहीं। इस दशा में यदि कोई आप से कुछ कहने लगे तो आप कह सकते हैं कि "भाई तुम पहिले मेरी टीका आद्योपान्त पढ़ जावो। उसमें यदि कहीं भी ध्वनि आदि का गन्ध तुम्हें मिल जाय तब मुझ से कहना। सतसई को मैं जैसा समझता हूँ वैसा ही उसका टीका किया है, लोगों की राय का मैं ज़िम्मेदार नहीं, वह उसे कैसा ही समझा करें" ठीक है, बस हम भी चुप हैं।

अच्छा, अब 'साहित्य-परिचय' सुनिए। २६ पृष्ठ पर नायिकाओं का भेद बतलाते हुए विद्यावारिधि जी आज्ञा करते हैं:—"और अधीरा कठोर वचन कहती है यह सब में लगा लेना" बहुत अच्छा, जो आज्ञा, सब में लगा लेंगे, अर्थात् धीरा कठोर वचन कहती है, अधीरा कठोर वचन कहती है, धीराधीरा कठोर वचन कहती है, कहाँ तक गिनावें नायिका मात्र कठोर वचन कहती है, कठोरवादिता उनका स्वाभाविक गुण है, वह उनसे किसी प्रकार किसी अवस्था में दूर नहीं हो सकता। क्यों महाराज! इसी प्रकार लगा लें न ?

"प्रगल्भा यदि धीरा होती है तो क्रोध छिपा कर बहुत आदर दिखाती है" आपके इस वाक्य में वह लगा लें? तब तो यों कहना होगा :—यदिप्रगल्भा धीरा होती है तो क्रोध छिपाकर बहुत आदर दिखाती है। कठोर वचन कहती है"! पर यदि कोई इसका अर्थ पूछने लगे तो क्या कहा जाय ? कठोर वचन कह कर आदर कैसे दिखाया जाता है? खैर कुछ चिन्ता नहीं, कह देंगे कि विद्यावारिधि जी की ऐसी ही आज्ञा है—

"अविद्यावारिधीयन्तु भवति यथान्यासमेवास्तु" स्वाधीनभर्तृका का विलक्षण लक्षण सुनिए—"जो अपने स्वामी के सदा प्रेम में आधीन रहै यह स्वाधीन भर्तृका," (सा० प० २७)

यह लक्षण किस साहित्य में लिखा है ? ज़रा इस शब्द की व्युत्पत्ति पर तो ध्यान दीजिए विश्वनाथ जी से तो पूछिए वह क्या कहते हैं :—

"कान्तो रतिगुणाकृष्टो न जहाति यदन्तिकम्।
विचित्रविभ्रमासक्ता सा स्यात्स्वाधीनभर्तृका" ॥

अर्थात् रतिगुणाकृष्ट कान्त जिसके पास से न टले वह स्वाधीनभर्तृका। आपकी बोली में "जिस के प्रेम के आधीन सदा स्वामी रहे, वह। (स्वाधीनो भर्त्तायस्याः सा, 'नद्युतश्चेति कप्)॥ प्रोषितभर्तृका का लक्षण भी सुनने लायक़ है। "जिसका पति कार्यवश परदेश गया हो उसकी कामार्त्त स्त्री प्रोषितभर्तृका कहाती है"। उसकी किस की ? जिस (पुरुष), का पति कार्यवश परदेश गया हो— (वह स्वयं घर पर ही मौजूद हो!) उस पुरुष की स्त्री प्रोषित भर्तृका अथवा जिस (स्त्री) का पति परदेश गया हो, उस (स्त्री) की (वह स्वयं नहीं किन्तु उसकी स्त्री!!) कामार्त्त स्त्री प्रोषितभर्तृका कहाती है। तीसरी तरह 'उसकी' की खपत हो नहीं सकती।

विद्यावारिधि जी! यह आप किस लोक की रीति का वर्णन कर रहे हैं? इस लोक में तो पति का पति या स्त्री की स्त्री होते नहीं!!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठक वृन्द! "जिस का पति कार्य वश परदेश गया हो वह कामार्त्त स्त्री प्रोषितभर्तृका कहाती है" इस सीधी सी बात को अपनी अपूर्व शब्द-स्थापना द्वारा विद्यावारिधि जी ने कैसा जटिल बना दिया! आपको आशा है कि यह बिहारी के काव्य का ठीक अर्थ करेंगे!

अच्छा, अब भाव आदि का भी कुछ कुछ भाव विद्या-वारिधिजी से सुन लीजिए।

"भाव—निर्विकारात्मक चित्त में पहला विकार (विभाव?) भ्रूनेत्रादि के विकार से सम्भोग की इच्छा प्रकट करनी थोड़ा संलक्ष्य विकार हाव है। खेलादि के अत्यन्त प्रगट विकार का नाम हेला है"

वाचक महोदय! इन लक्षणों का भाव आप समझे? विकार और भ्रूनेत्र के बीचों बीच ब्रैकिट के अन्दर जो यह 'विभाव' देव विराजमान हैं, यह बेचारे किसके महमान हैं? और यह "खेलादि का अत्यन्त प्रगट विकार" क्या बला है? साहित्यदर्पण में तो "हेलात्यन्तसमालक्ष्य विकारः स्यात् सएव च॥ अर्थात् जिसमें विकार के चिह्न अतिस्पष्ट प्रतीत होने लगें, ऐसा भाव ही हेला कहलाता है। इसमें खेल कूद का नाम भी नहीं। लीला का लक्षण सुनिएः—"अङ्गवेश अलङ्कार धारण पूर्वक प्रीतियुक्त प्रेम भरे वचन कहकर प्रिय की अनुकृति का नाम लीला है।" क्या बात हुई? 'अङ्गवेश अलङ्कार धारण पूर्वक' इसका क्या अर्थ हुआ? अङ्गधारण पूर्वक, वेश-धारण पूर्वक इत्यादि, यही अर्थ होगा न? पर 'वेश-धारण अलंकारधारण का तो कुछ अर्थ हो भी जायगा, इस 'अंगधारण' का क्या होगा? और 'प्रीतियुक्त प्रेम भरे वचन कहकर' यहाँ प्रीति और प्रेम में क्या भेद है? पाठक! यह अपूर्व लीलामयी व्याख्या साहित्यदर्पण के जिस श्लोक की है, वह यह है—

"अङ्गैर्वेशैरलङ्कारैः प्रेमभिर्वचनैरपि।
प्रीतिप्रयोजितैर्लीला प्रियस्यानुकृतिं विदुः॥

अब विलास की बारी आईः—

"इष्ट के देखने से यान, स्थान, आसनादि तथा मुखनेत्रादि की विशेष विचित्रता का नाम विलास है। कैसा अच्छा लक्षण है? इष्ट, यान, आसन, स्थान, इन पदों का अर्थ लिखने की आपने ज़रूरत नहीं समझी। इष्ट वस्तु अनेक प्रकार की होती है, यथा, धन, विद्या, स्त्री, पुत्र आदि, इसी प्रकार यान भी, व्योमयान, धूमयान आदि भेद से अनेक प्रकार का होता है। स्थान के भी कई अर्थ हैं, यथा, कण्ठतालवादि, गृह आदि। रहा आसन सो वह भी कुशासन, ऊर्णासन, पीठासन, तथा वीरासन, उष्ट्रासन, और सिंहासन आदि अनेक भेदों में विभक्त है। साहित्यदर्पण के जिस श्लोक का यह सरस अनुवाद विद्यावारिधि जी ने किया है, वह इस प्रकार हैः—

यानस्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम्।
विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टसन्दर्शनादिना॥

अर्थात् प्रिय के देखने आदि से, चलने, खड़े होने, और बैठने में, तथा मुखनेत्रादि की क्रिया में कुछ विशेषता—तबदीली आजानी, इसका नाम विलास है।

मोट्टायित का लक्षण सुनिएः—

"प्रीतम की कथा आदि में भाव रखकर कान आदि के खुजाते जाने का नाम मोट्टायित है"

अर्थात् विद्यावारिधिजी के मत से इस भाव (मोट्टायित) में 'कान आदि का खुजाते जाना' लाज़मी शर्त्त है, प्रधान लक्षण है। परन्तु सतसई के २५१ दोहे की चोटी पर विद्यावारिधिजी ने स्वयं "मोट्टायित हाव वर्णन" लिखा है, उसमें इस 'कान खुजाते जाना' का पता नहीं, देखिएः—

"सकुचि सरकि पिय निकटत, मुलकि कछुक तन तोरि।
कर आंचर की आट कर जमुहानी मुख मोरि"॥

इसके अतिरिक्त शिवराम त्रिपाठि कृत 'रस-रत्नहार' में मोट्टायित के उदाहरण में यह श्लोक दिया हैः—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रवर्तिन्यपिनृपे तत्वावेशे न चेतसि।
व्रीडार्धवलितं चक्रे मुखेन्दुमवशैव सा॥

इसमें भी 'कान आदि खुजाते जाना' नहीं आया। विश्वनाथ ने भी "कर्णकण्डूयनादिकम्" लिखा है, अर्थात् कान खुजाना आदि।

'कुट्टमित' का सिर किस प्रकार कूटा गया है, सो देखिए :—

"प्रीतम के केश, स्तन, अधरादि के स्पर्श करने से जो सम्भ्रम से हाथ पैर का विधूनन है, उसको कुट्टमित कहते हैं।"

'प्रीतम के केशस्तन.....यह आप क्या कह गये? खूब, "पुंस्वेव योषिद्भ्रमः। आपकी पद-विन्यास-चातुरी की बलिहारी!

"शिरःकरविधूननम्" 'सिर और हाथ का हिलाना' की जगह आप लिखते हैं "हाथ पैर का विधूनन" 'शिरः' का अर्थ आपने 'पैर' कर दिया! और विधूनन को ज्यों का त्यों ही रहने दिया। परन्तु यह न सोचा कि हाथ पैर हिलाना, हिन्दी में, उद्योग करने को कहते हैं, और केवल हाथ हिलाना या सिर हिलाना, अनिच्छाद्योतक क्रिया है। अच्छा आगे सुनिए:—

"मुग्धा कन्या केवल देखती है, बहुत पूछने से कुछ कहती है।

केवल देखती है? और कुछ नहीं करती? सुनती भी नहीं? और कान भी नहीं खुजाती क्या? यह 'मुग्धा कन्या' क्या बात? देखती है, कहती है, इन एकवचनात्मक क्रियाओं से मालूम होता है कि, 'मुग्धा' को आपने कन्या का विशेषण ही माना है, तब तो श्रीमान् के मत में प्रौढ़ा कन्या भी होती होगी? इसीलिए तो कन्या के साथ 'मुग्धा' विशेषण लगाने की ज़रूरत हुई। पर साहित्यदर्पण की १५४ कारिका की उत्थानिका में "अथ मुग्धाकन्ययोरनुरागेङ्गितानि" यह है, जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है 'मुग्धा और कन्या भिन्न हैं। क्योंकि मुग्धात्व नवोढ़ा में भी होता है सिर्फ़ कन्या में ही नहीं।

दूती का लक्षण सुनिए:—

.....भक्तिमान् (?) तत्वज्ञाता (?) स्मृतिवान् (?) मधुरभाषी (?).....दूती होनी चाहिए॥

सो तो ठीक है पर स्त्रीलिङ्ग दूती शब्द के विशेषणात्मक ये शब्द भी इस प्रकार होने चाहिए—भक्तिमती, तत्त्वज्ञा, या 'तत्त्वज्ञात्री' स्मृतिमती, मधुरभाषिणी इत्यादि। आगे जैसी आपकी आज्ञा।

अच्छा, अब सिर्फ़ विदग्धा (?) अनुप्रास और वृत्त्यनुप्रास का लक्षण और सुन लीजिए।

"जहाँ बहुत से वर्ण एक बार फिर आवें वह विदग्धा अनुप्रास है।" "अनेक व्यञ्जन का एकधा स्वरूप से वा वारं वार अनेक प्रकार क्रम से एक व्यंजन का वार वार समभाव से जो वर्त्तना है उसको वृत्त्यनुप्रास कहते हैं"

ज़रूर कहते होंगे, पर आपकी स्पेशल ट्रेन की धड़धड़ाहट में कुछ समझ नहीं पड़ता कि आप क्या कह रहे हैं!!

विद्यावारिधि जी भूमिका में लिखते हैं कि "टीका करते समय हमने कई सतसई सन्मुख रक्खीं। परन्तु आपके टीका को पढ़कर मालूम होता है कि आपका यह वाक्य या तो उस परिपाटी को देखकर लिखा गया है, जो प्रायः आजकल के टीकाकार या संशोधकों में पड़ गई है कि किसी पुस्तक की टीका के या संशोधन के समय चाहे उन्होंने एक ही प्रति उस ग्रन्थ की देखी हो, पर अपनी बहुदर्शिता दिखलाने को "यह पुस्तक लिखते समय हमने अनेक पुस्तकें सामने रखी थीं" इत्यादि लिख देते हैं, और यदि बहुत सी पुस्तकें वास्तव में आपने सम्मुख रक्खीं तो वह सब रस्म अदा करने के तौर पर सामने रखी ही रहीं, उनसे लाभ उठाने या उन्हें समझने की आपने कोशिश नहीं की, या समझ ही नहीं सके, अन्यथा सतसई की यह दुर्दशा न होती। यह पिछली बात (न समझ सकने की) ही कुछ ठीक प्रतीत है, क्योंकि सतसई की अन्य बहुत सी टीकाएं, चाहे आपने सामने न भी रक्खी हों पर इसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो ज़रा सन्देह नहीं कि 'लालचन्द्रिका' आपने ज़रूर सामने रखी और उसी को देख देखकर अपनी टीका रची। इस बात का प्रमाण आपकी टीका में स्थान स्थान पर मिलता है। प्रति दोहा की टीका में अलङ्कारों के नाम और कहीं कहीं जो दोहे लिखे गये हैं, यह सब "लालचन्द्रिका" से ही लिया गया है, कहीं कहीं पर उसकी इबारत तक ज्यों की त्यों नक़ल कर दी है। पर इस बात को आपने कहीं स्वीकार नहीं किया।

"अन्यवर्णपरावृत्या बन्धचिह्ननिगूहनैः।
अनाख्यातः सतां मध्ये कविश्चौरो विभाव्यते॥"

पद्मसिंह शर्म्मा।

अन्योक्ति-विलास*।

१—चकोर का नैराश्य।

कारी जामिनी है अँधियारी चहुँ ओर छाई
दामिनी छटा है घन घटा को प्रभास है।
तारापति पेखन की "पूरन" चलाई कहा
करत न तारा जहाँ एकहू प्रकास है।
शीतल अमन्दचन्द लोभी इन नैनन को
देत क्यों कलेस दूर सुखको सुपास है।
पावस की ऋतु है अमावस की रात तापै
दुखिया चकोर काहे ताकत अकास है।

२—अमङ्गल उलूक।

आँधरो सदा को अधिकारी अन्धकार ही को
कीन्हो श्रम भारी तैं उड़त रैन सारी में।
घूमिकै जो थिर ह्वै रह्यो तो भूमि खोदी वृथा
घोर धुनि भीम कीन्ही बैठि द्रुम डारी में।
भाजुरे तू अधम अमङ्गल निकम्मे न तो
फोड़ैंगे तिहारे नैन काक उजियारी में।
होत है सबेरो अरे चूकत है उलू कत?
लूकत न काहे कहूं खोह अँधियारी में।

---

* इस कविता की कुंजी इसी अङ्क में अन्यत्र छापी गई है। स०सं०

३—कोसनेवाले।

कुमुद चकोर कञ्ज कोक वृन्द चाहैं तऊ
हानि ह्वैसकै ना दिन रजनी विधान की।
अरक जवासे घने जरि जरि चाहै मरैं
होयगी सदाई जग बरषा प्रमान की।
काक के मनाये कहूं ढोर ना मरत देखे
इच्छा है प्रबल हरि पूरन सुजान की।
कोसे चक मूंदर छछूंदर उलूकन के
घटति न एकौ अंश आभा जग भान की।

३(अ)—पात्रदोष।

चातक पातकी प्यासे रहैं तो
अहै नहीं लाग घने घुरवान की।
चाँदनी में कुम्हिलाहिं जो कञ्ज तौ
हानि का चन्द निशा छवि दान की।
आपने दाम न क्यों परखै
परखैयन भाषत बात क्यों ग्लान की।
सूझ परै दिन में न उलूकहि
तौ कहा खोरि उजागर भान की?

४—कपास।

केवड़ा कुमद कुन्द केतकी कमल आदि
अवनी पै जे तो जाल फूलन को भायो है।
रङ्गबास तिनके निहारे दिन द्वैक ही के
कारज न कोऊ तिन जगको बनायो है।
सादे सहजादे! धन्य तूही तूल तरुवर
तेरे सरवर को न दूजो दृष्टि आयो है।
सेत बिन बास बन बासीहू भयो तो यार
झेलि दुख तैंही परछिद्र को छिपायो है।

५—मृगतृष्णा।

उलटे निहारि के अनारी बहु रूख जाल
जानि प्रतिबिंब अनुमान कीन्हों सर है।
प्यास सों विकल ह्वैकै धायो जात वाही ओर
भूरख कुरंग तोहि प्रान को न डर है।
योजन अनेकन लौ जलको न बूंद पै है
खोज कहुं साँचो जल बारो जौनथर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोखे भरी टाटी वह ताती पौन रेनुका में
मृग तृषना है नहीं पानी की लहर है।

६—सुआ और सेमल।

तरूतुंग निहारि छक्यो प्रथमैं
पुनि लायेा सुरंग फलै मन में।
ऋतुराज के ग्रैसर में शुक मूढ़
रह्यो सेाइ खान की घातन में।
दिन पूरे भये फल पाके जबै
खुलि पेाल गई सगरी छन में।
कढ़ि आयेा घुवा पछितायेा सुवा
मुवा सेय कै सेमर कानन में।

७—स्यार।

डरपेाक पने की तजी नही बान*
मँजे छल छिद्र विधानन में।
बदली नहि बेाली ग्रै बानी कछू
रहे पूरे भयानक तानन में।
सुचि भेाजन में रुचि कीन्हीं नही
शव खाइबेा सीखेा मसानन में।
करतूत भला कहेा कौन करी
जो बसे तुम स्यार जू कानन में।

८—निःशंक मृग।

कत फैल कै गैल गुफा की चले
नहीं सूझत चारहु नैनन में।
वह गाज सी भीम गराज महा
नउनात सुनात न श्रौनन में।
बलधाम मतंगहू शंकित है
बल अंकित तासु किये मन में।
मृगजू मत ऐसे निशंक फिरेा
मृगराज को राज है कानन में।

९—रागी मृग।

लघुसी इक नीरस है लकरी
छल छिद्र अनेक अहैं तन में।
मुख व्याध के लागि कै लाग भरी
करै शेार अथेार घने बन में।
तुव बंस की घातक बैरिन है
टुक सार बिचारु कछू मन में!
कत मेाहत रे मत मंद मृगा!
जु परी बँसुरी धुनि कानन में।

१०—प्यासा पपीहा।

बरखन वारे साँचे हेात मेघ कारे केाऊ
सींचि जे जगत के करत काज खासे है।
केाऊ केाऊ बापुरे बलाहक पै नाहकही
छाय बीच अम्बर अडम्बर प्रकासे हैं।
एहेा मीत चातक नही है यह बान नीकी
दारिद में दीनता के भाव जौन भासे है।
ऐरे गैरे धुरवन देखि धुनि आरत सेां
काहे केा पुकारत पियासे हैं पियासे हैं!

११—आपत्ति में हंस।

करत न बक बक धरत न बक ध्यान
चाल सेां चलत जैसी चलत सदा से हैं।
भूलत न बान नीर छीर बिलगावन की
निज कुल कीरति के रहत उपासे हैं।
मानसर ताल वारे मेाती के चुगन हारे
पूरन जहान जस जिनके प्रकासे हैं।
झीलन में झाँकि झख मारत न जाय भूलि
यदपि मरत हंस भूखे ग्रै पियासे हैं।

१२—व्याकुल मृग।

नदी खेाजौ कुंड खेाजौ सर खेाजौ सिंधु खेाजौ
प्यास केा बुझावौ सुख पावौ तहाँ जाय जाय।
नाहीं परछाहीं ये लखात तरु औंधे जौन
मति केा गँवावौ मत धेाखो इत खाय खाय।
मरि मरि रेत में परेत ह्वै परौगे हाल
सीख निज हेत मानौ चेत उर लाय लाय।
चारु चख वारे तृषा पीड़ित कुरंग अंध
मृग जल ओर क्यों सिधारे वृथा धाय धाय।

१३—धनप्रेमिका सारङ्ग (सारङ्गी वा स्त्री)।

आवते जो पन्नग तेा लावते मगीन जाल
सुघर मराल देते मेातीमाल लाय लाय।

* आदत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीझते मयूर तौ सुपास हो तो कलगी को
रीझते बलाक तो सिहाती पंख पाय पाय।
सींग खुर चामवारे कारे दृगवारे मृग
ठाढ़े हैं निकाम तृणभोजी मुख बाय बाय।
सारँग कहत अनखाय दुख पाय हाय
हरिन हरामी मोहिं घेरैं कत धाय धाय!

१४—दर्शनशील चकोर।

सरद निसा में सेत पच्छ के सुध्रौसर में
रह्यो है प्रकास चन्द पूरन को छाय छाय।
बरत अंगार के अहार को बिसार मीत
नैनन जुड़ाव शीत आभा चित लाय लाय।
मुख सों न बोल पंख भूलिमत खोल एरे
राजी रहु दूरहीते दरसन पाय पाय।
पास जाइबे को नहि तनिकौ सुपास ताके
केतिक चकोर तोसे हारे उड़ि धाय धाय।

१५—तेली का बैल।

कोल्हू को कठिन भार काठ औ कबार तापै
काँधे पै संभार धावै भूसा तिन खाय खाय।
चल तो जो सूधो, होतौं मंजिलै बिपुल पार
नन्दीपुर जाय हरखातो सुख पाय पाय॥
होनहार नाहीं इन तिलन में तेल नेक,
पूरन भनत, चेतु हित चित लाय लाय।
निरख न लेत काहे अजहूं चखन खोल
काटी गैल केती बैल रातौ दिन धाय धाय?

१६—मृग और सारंगी।

गई चौकड़ी भूलि तौ पागुर छाँडि
खड़े तृण दाबि क्यों दाँतन में।
भये मोहित क्यों कहा सार लख्यो
लकड़ी कच खाल औ तांतन में॥
सर मारिहै व्याध अदेख घने
सर साइ है घोर विथा तन में।
कत रंग में भंग करौ हो कुरंग न
सारँग की लगो बातन में।

१७—सजल मेघ।

ठहरान न दै है सदा नभ में
तुम्हैं देहै उड़ाय हवा खन में।
जल डारिकै सूखते धानन में
जस लीजिये तातें उदारन में॥
पलटी जो बयार तो दैहै झराय
सबै कनरेत पहारन में।
गुनग्राहक यार बलाहक जू
लगे नाहक पौन की बातन में।

१८—अविवेकी मेघ।

धान के खेतन पै न परैं
जलके कन रेतन पै बगरावैं।
बाग बगीचन सींचन छाँड़ि के
सिन्धु पै नीर उलीचन धावैं।
संपत पूरे अधूरे बिबेक के
दान के रूरे विधान भुलावैं।
मूसरचन्द ये मूसर धार
धराधर ऊसर पै बरसावैं॥

१९—सयाना मृग।

लकरी इक बाँस की पोली सोई
तू परी इक ब्याध के हाथन में।
तोहि फूँकि सुनावत रागिनी सो
छल छिद्र भरो छिपि कानन में॥
हम जानत हैं तुव भेद सबै
कहै चेत भरो हरिना बन में।
नहि रीझन हार सयाने मृगा
असुरी बँसुरी तुव बातन में

२०—खटमल (सतानेवाले)।

मारे ते बढ़त नेक काढ़े तें कढ़त नाँहि
हारे हम डारि धार ताते जल जाला की।
दैत्य रक्तबीज-बंशी रक्त के पियासे पापी!
चुभनि अथोर झेली तेरी जीह आला की।
जे तो होय मनमें सतावन सताय ले तू
औध रही थोरी अब सकल कसाला की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एरे दुखदाई खटकीरन के वृन्द बैरी
आवन दे सीरी सुखदाई ऋतु पाला की।

२१—अनादर का रीझना।

देह दुति-दीपक पै धाय प्रानवारैं कोऊ
आनन-सरोज-प्रेमी कोऊ रस प्रेरे हैं।
दसन छटाकी दामिनी पै मोहि नाचैं नाच
कोऊ मंजु बानी ही सुनन हेतु चेरे है॥
कोऊ काममाते मदमाती गति देखि मेरी
सुवरन बिना, रूप लीन्हे देत फेरे हैं।
पुरके पतंग भृंग बरही कुरंग और
बापुरे मतंग सखी पीछे परे मेरे हैं।

२२—इञ्जन की शिकायत।

"बलना करत, काठ दल है कतार सारी
गिनती गिननही को साथी ये घनेरे हैं।*
देखि कै चढ़ाई आगे, पीछे को करत खींच
जानि के उतार वृथा ठेलत करेरे हैं॥
इञ्जन सबल वी धूम सों कहत बात
एक तौ बिघन मग माँहि बहुतेरे हैं।
तापै ये अलाल, बिन सूझ बिन बूझवारे
डब्बे मुरदार यार पीछे परे मेरे हैं॥

"पूर्ण"

सावित्री का पातिव्रत†।

सतीत्व, पतिप्रेम, और पातिव्रत ये सब आर्यपत्नी के सद्गुण हैं। इन तीन शब्दों के अर्थों में कुछ सूक्ष्म भेद है। जिस स्त्री के मन में अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से पापभावना नहीं होती उसे सती कहते हैं। पति पर एकनिष्ठा से प्रेम करने वाली को पतिप्रेमवती कहते हैं। पति पर जिसका विशुद्ध प्रेम होता है वह स्त्री सती तो होती है परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि सती का पति पर प्रेम होना ही चाहिए। कारण, अपने पति पर प्रेम न करने पर भी परपुरुष से पापभावना नहीं रखने वाली को भी सती कह सकते हैं। अर्थात् पतिप्रेम में सतीत्व अन्तर्भूत है, परन्तु उसमें सतीत्व भी होना चाहिए यह कुछ आवश्यक नहीं। जिस प्रकार पतिप्रेम में सतीत्व सन्निविष्ट होता है उसी प्रकार पातिव्रत में सतीत्व और पतिप्रेम भी रह कर एक और तीसरा गुण भी रहता है, जिसका हम आगे वर्णन करेंगे।

पातिव्रत शब्द का अर्थ है "पतिव्रता का धर्म"। जो स्त्री पातिव्रत स्वीकार करती है, अर्थात् पति की सेवा करने में वह पति के ऐहिक और पारलौकिक मंगल के निमित्त रात और दिन अपना जीवन विसर्जन करती है और शास्त्र में प्रतिपादन किये हुए किसी पुण्य व्रत के समान इस पातिव्रत का एक निष्ठा से आचरण करती है वही पतिव्रता कहलाती है। पत्नी का पति पर प्रेम होना स्वाभाविक है। प्रेम अन्तःकरण का एक विकार है परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि इस विकार वा इस भाव के रहने ही से स्त्री पति पर प्रेम करने लगती है। परन्तु पातिव्रत मात्र इस कार्य को करवाता है अर्थात् पतिप्रेम की कृति करवाने वाला पातिव्रत होता है। यदि यह कार्य न हुआ तो यद्यपि स्त्री सती हुई वा पतिप्रेमिका भी हुई तथापि उसे पतिव्रता नहीं कह सकते। पातिव्रत में सतीत्व होता है और पतिप्रेम भी होता है, परन्तु जहाँ सतीत्व और पतिप्रेम हुए वहाँ पातिव्रत होना ही चाहिए, यह कुछ आवश्यक नहीं। पातिव्रत में पतिप्रेम तो होना ही चाहिए परन्तु इसके अतिरिक्त एक दूसरे गुण की भी आवश्यकता है जिसका ज़िक्र पहले कर चुके हैं, यानी स्त्री में ऐसी बुद्धि का होना कि पति ही उसका पारलौकिक कल्याण और मोक्ष का उपाय है।

---

* यथासंख्यालंकार।

† मराठी के एक प्राचीन लेख के आधार पर लिखित। [लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

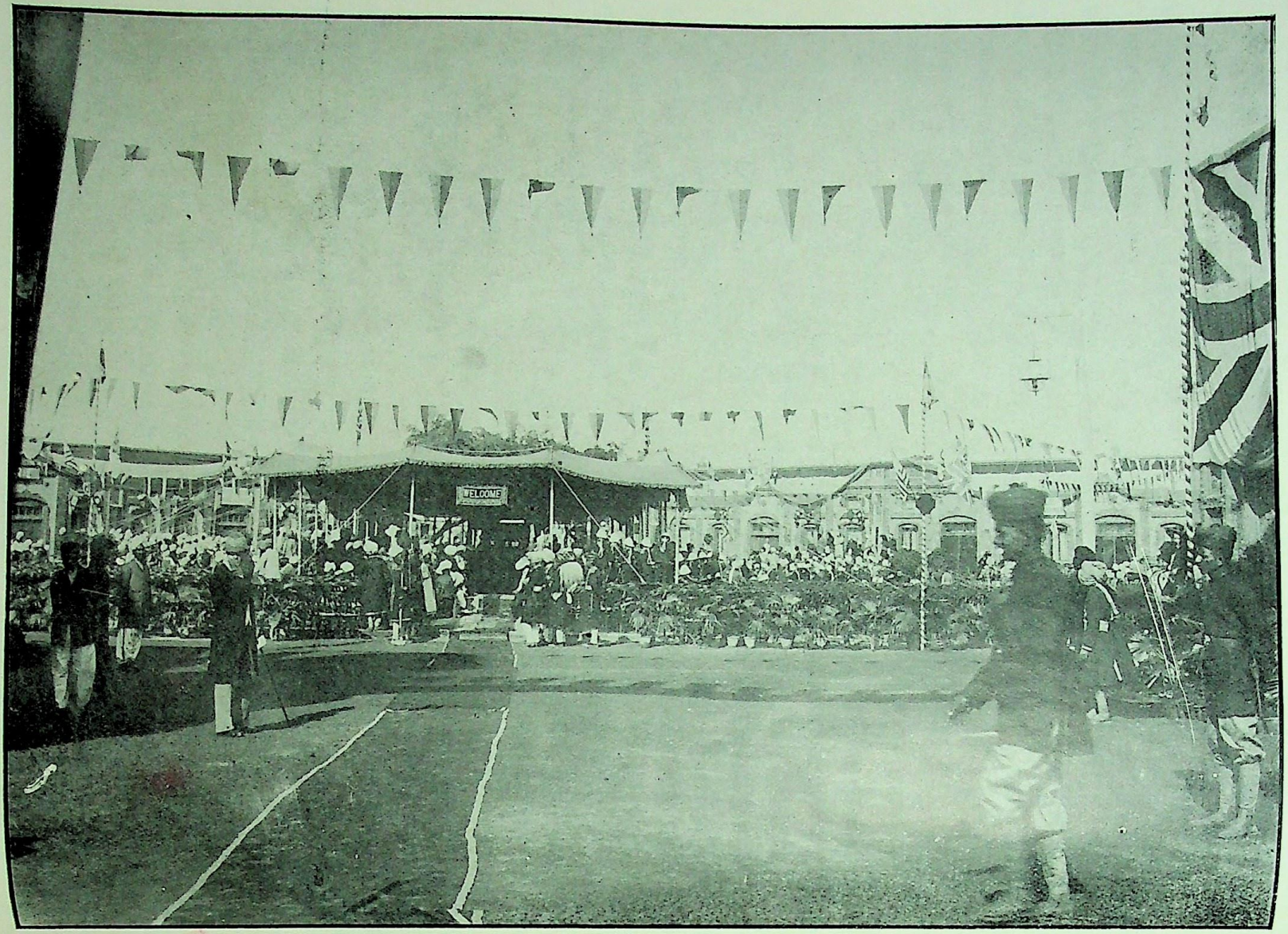

सन् १९०९ की लाहौर की प्रदर्शिनी के दर्बार का दृश्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नास्ति स्त्रीणां पृथक् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥

अर्थात् स्त्रियों को पति बिना यज्ञ नहीं, पति के अनुमति बिना व्रत नहीं, केवल पति की सेवा के प्रताप से ही स्त्री स्वर्गलोक को जाती है। "पति ही एक पत्नी का मोक्षद्वार है" यह कल्पना हमारे आर्यधर्म में प्रधानता से पाई जाती है और इसी से ही हमारे शास्त्रकारों ने पतिव्रता के कर्त्तव्य में ऐहिक और पारलौकिक बातें संयुक्त की हैं। सतीत्व को आर्यपत्नी का श्रेष्ठ सद्गुण बतलाया है। पतिप्रेम को उससे भी श्रेष्ठतर सद्गुण गिना है और पातिव्रत को सर्वोत्तम सद्गुण प्रतिपादन किया है। सतीत्व और पतिप्रेम के कारण से स्त्री का ऐहिक कर्त्तव्य सिद्ध होकर पातिव्रत में इन ऐहिक कर्त्तव्यों का ही नहीं वरन् पारलौकिक कर्त्तव्यों का भी अन्तर्भाव होता है। सती, पतिप्रेमवती, और पतिव्रता के लक्षणों पर विचार करने से सावित्री एक उत्कृष्ट उदाहरण पाई जाती है।

सतीत्व में पति को छोड़ कर अन्य पुरुष में आसक्ति, अनुराग वा इच्छा का वास नहीं होता, यह ऊपर कहा ही है, परन्तु सावित्री का सतीत्व इससे भी श्रेष्ठ था। सावित्री का जब कि विवाह नहीं हुआ था, अर्थात् वह विवाह-विधिपूर्वक किसी की पत्नी नहीं बनी थी उस समय भी उसने अपना अलौकिक सतीत्व प्रकट किया था। उसने अपने मनही मन में अपने तईं सत्यवान् को अर्पण किया था। सावित्री के पिता को उसका यह विचार ज्ञात होते ही उसने सत्यवान् के विषय में विवेचन किया तब उसे यह विदित हुआ कि सत्यवान् अल्पायु है, अर्थात् अपनी कन्या को शीघ्र ही विधवा देखना उसे दुःसह लगकर उसने सावित्री का युक्ति प्रयुक्ति से किसी अन्य वर से विवाह करने का आग्रह किया। उस समय सावित्री ने दृढ़ संकल्प से अपने पिता को जो उत्तर दिया था उसी से उसका लोकोत्तर सतीत्व प्रकट हुआ है।

दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा।
सकृद् वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम्॥
मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाभिधीयते।
क्रियते कर्मणा पश्चात् प्रमाणं मे मनस्ततः॥

उसने कहा, "मैंने जिसको एक वेर पति कहकर वर लिया है वह दीर्घायु हो वा अल्पायु, गुणवान् हो वा निर्गुण उसके अतिरिक्त मैं किसी अन्य पुरुष से विवाह न करूँगी। कोई भी बात पहले मन में निश्चय होती है, पश्चात् वह शब्दों में व्यक्त होती है और उसके पश्चात् वह कार्यरूप में प्रकट होती है। इसी कारण मेरा मनही इस बात का प्रमाण है" और वास्तव में है भी ऐसा ही। ऐसा नहीं कि दूसरे का धन उसकी आज्ञा के बिना लेने से ही चोरी होती हो, मन में वैसी इच्छा उत्पन्न होने को भी एक प्रकार की चोरी ही कहना चाहिए। पाप का उदय मनही में होता है। मन में पापी विकारों के उद्भव होने से ही पाप होता है। प्रत्यक्ष कृति होने तक पाप नहीं होता, यह मानना बड़ी भूल है। जिस विवाहिता स्त्री ने कभी किसी परपुरुष से प्रेम नहीं किया परन्तु उसके मन में भी यदि ऐसे विचार कभी उत्पन्न हुए हों तो उसे भी पापिनी कहना चाहिए। कारण कि वह जिस पुरुष की विवाहिता पत्नी हो चुकी उसको छोड़कर किसी अन्य पुरुष के निमित्त उसके हृदय में ऐसे विचारों का उत्पन्न होना ही पाप है। यह पाप मन के विचारों पर अवलम्बित रहता है। उसके पूर्ण होने के लिए कुछ कृति भी होनी चाहिए इसकी कुछ आवश्यकता नहीं।

ऐसे पवित्र विचार केवल आर्यधर्म ही में पाये जाते हैं ऐसा नहीं, किन्तु अन्य धर्मों के वचन भी ऐसे ही हैं। जैसे क्रिस्तान धर्म में कहा है :—

"Whosoever looketh on a woman to lust after her hath committed adultery with her already in his heart."

अर्थात् जो कोई परस्त्री पर कुदृष्टि से देखता है वह व्यभिचार कर चुका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस समय सावित्री ने अपने पिता का दूसरा वर ढूँढ़ने का आग्रह अमान्य किया था उस समय उसका विवाह न हुआ था। विवाह-सूत्र से वह बंधी नहीं थी तथापि सत्यवान् के अतिरिक्त दूसरे पुरुष के बारे में विचार करना उसने पाप समझा था। इसी से सावित्री का यह सतीत्व असाधारण, अद्वितीय और अलौकिक समझना चाहिए।

पतिप्रेम के बिना पातिव्रत असंभव है, यह हम लिख चुके हैं। परन्तु महाभारत में तो सावित्री के पतिप्रेम के विषय में कुछ भी विशेष वर्णन नहीं पाया जाता, यह कैसे? ऐसी शंका उत्पन्न होना सहज है। सावित्री सत्यवान् से प्रेम-कथा कह रही है, अपनी प्रेम लहरों से उसको बावला बना रही है, दीर्घ निश्वासों से उसे दग्ध कर रही है, इत्यादि वा इससे भी आगे की प्रेम-चेष्टायें सावित्री के चरित्र में कहीं भी देखने में नहीं आतीं—यह बात सत्य है, परन्तु इस शंका का समाधान हम यों करते हैं कि महाभारतादि रचनेवाले कवियों को इस प्रकार की प्रेम-चेष्टाओं का वर्णन करना पसंद न था।

जब मनुष्य वाल्मीकीय रामायण पढ़ता है उस समय पढ़ते पढ़ते श्रीसीता जी का पतिप्रेम देख कर वह अपना देहाभिमान भूल जाता है, और विस्मित होता है, परन्तु उस ऐसे विशाल ग्रंथ में भी श्रीरामचन्द्र और सीता जी की प्रेमविह्वलता का संवाद, प्रेमाश्रुओं की धाराओं से श्रीरामचन्द्रजी के वक्षःस्थल का भीगना आदिक अन्य भाव कहीं भी दिखलाई नहीं पड़ते। कदाचित् यहाँ पर कोई यह कहेगा कि रामायण कुछ प्रेमकाव्य तो है ही नहीं, जिससे कि उसमें ऐसे प्रेमभाव पाये जायँ परन्तु उसका उत्तर हम यूं देते हैं कि कविशिरोमणि कालिदास-रचित अभिज्ञान शाकुन्तल तो प्रेम-काव्य है और उसे जगत् के प्रेम-काव्यों में श्रेष्ठ माना है तथापि इस प्रेमकाव्य में भी ऐसी चेष्टायें नहीं पाई जातीं। इसका कारण यह है कि गंभीर प्रेम जहाँ रहता है वहाँ चंचलता नहीं होती, वाचालता नहीं होती, अधैर्य नहीं होता, और अस्थिरता भी नहीं होती। गंभीर प्रेम की लहरें सहजमें नहीं उमड़तीं। किन्तु वह अथाह समुद्र के जल के सदृश गंभीर रहता है। यह प्रेम उग्र, उत्कट, वा उत्तप्त न होकर स्निग्ध, प्रशांत और शीतल है। प्राचीन काल के आर्य-कवियों में इस प्रकार के गंभीर प्रेम का वर्णन अधिकतर पाया जाता है। उस समय के दम्पती का प्रेम इस प्रकार का था इसी से उनमें हास्यविनोद रसरंग नहीं होते थे ऐसा नहीं, यह तो होते ही थे परन्तु महाकवि ऐसी चेष्टाओं को प्रेम का मुख्य लक्षण नहीं समझते थे। अर्थात् ऐसी चेष्टाओं को वे अपने पाठकगणों से गुप्त रखते थे। प्रणयि-जनों की प्रेम-चेष्टायें लोगों की दृष्टि की ओट में होती थीं। उनको वे सर्वदा शिष्यसंप्रदायानुसार उनकी दृष्टि से बाहर ही रखने का प्रयत्न करते थे। शकुन्तला से विवाह करने के बाद राजा दुष्यन्त कुछ दिन कण्वाश्रम में रहे थे और पश्चात् अपनी राजधानी को लौटे थे। जब शकुन्तला कुछ वर्षों के बाद उनके पास गई तब उन्होंने उसे नहीं पहचाना और न उसे अपनी पत्नी ही स्वीकार किया। इससे शकुन्तला बड़े कष्ट में पड़ी।

राजा दुष्यन्त को पहले की बातों का स्मरण होने से उसने आश्रमवास में की हुई बातों में से उन्हें एक बात का स्मरण दिलाया। वह बोली—"एक दिन हम दोनों नवमल्लिका के मंडप में बैठे थे। आपके हाथ में जल से भरा हुआ कमलपत्र का एक दोना था। मेरा माना हुआ पुत्र हरिण बालक उस समय वहाँ आया—'प्रथम इसे जलपान करा दे' ऐसा कहकर आपने उसे प्रेम से अपने समीप बुलाया। परन्तु परिचय न होने से वह आपके निकट नहीं आया। पश्चात् उस दोने को मैंने हाथ में लिया और लेतेही उसने समीप आकर जलपान किया। यह देखकर आपने विनोद से कहा 'सब लोग स्वजनों पर विश्वास करते हैं। तुम दोनोंही जंगली हो कि नहीं"। तथापि महाकवि ने इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसंग को भी नहीं दिखलाया। पहले की बातों का स्मरण कराना पड़ा। इसीसे शकुन्तला ने यह बात कही है। ऐसी आवश्यकता न होती तो कदाचित् इसका एक अक्षर भी हमें नहीं ज्ञात होता और सावित्री के पतिप्रेम के विषय में तो महाभारतकारों ने इतना ही कहा है कि—

प्रियवादेन नैपुण्यैः शमेन नियमेन च।
रहश्चैवोपचारेण भर्तारं पर्यतोषयत् ॥

अर्थात् सावित्री अपने प्रियसंभाषण, निपुणता, शांति और एकांतसेवा—इनसे ही पति को संतुष्ट करने लगी—

बस इतना ही। महाभारतकारों की दौड़ इससे आगे नहीं पहुंची और गंभीर प्रेम की बात भी ऐसी ही है। गंभीर प्रेम में प्रेम-चेष्टा स्वाभाविकता से अल्प रहती है और जो कुछ रहती है वह भी गुप्त ही होती है। प्रेम के गम्भीरता आदि गुण प्रतिपादन करने के अर्थ, प्रेमचेष्टाओं के वर्णन करने की आवश्यकता महाकवियों को नहीं मालूम पड़ी थी। अश्लील, अस्वाभाविक और शिष्टता के विरुद्ध वे कभी कोई विवेचन नहीं करते थे। सावित्री के पतिप्रेम का अपूर्व चित्र महाभारत में निम्नलिखित प्रकार से खिंचा है।

अपने पति की विधि-लिखित मृत्यु टालने का संकल्प करके सावित्री ने उग्रव्रताचरण आरंभ किया और तीन दिन निर्जल उपोषण करके वह अपने पति के साथ बन में गई। वहाँ उसकी गोद में सत्यवान् मृतवत् होकर गिर पड़ा। यमराज स्वतः सत्यवान् का प्राणहरण करने के लिए आये। अमानुषिक प्रयत्नों से सावित्री ने अपने पति को यम के हाथ से बचाया। तीन दिन और तीन रात जल की एक बूँद भी पेट में न जाने से उस साध्वी को इस समय अत्यन्त ग्लानि होने लगी। 'कुछ भी हुआ तो भी घबराने की नहीं!' यह उसकी घोर प्रतिज्ञा हट कर वह उस भयानक अरण्य के डरावने स्परूप को देख कर भयभीत हो गई। भयभीत होकर अपने पति से कहने लगी—

अस्मिन्नद्य वने दग्धे शुष्कवृक्षस्थितो ज्वलन्।
वायुना धुन्यमानोऽत्र दृश्यतेऽग्निः क्वचित् क्वचित् ॥
ततोऽग्निमानयित्वेह ज्वालयिष्यामि सर्वतः।
काष्ठानीमानि संतीह जहि संतापमात्मनः ॥
यदि नोत्सहसे गन्तुं सरुजं त्वां हि लक्षये।
न च जानामि पन्थानं तमसा संवृते वने ॥
श्वः प्रभाते वने दृश्ये यास्यावोऽनुमते तव।
वसावेह क्षपामेकां रुचितं यदितेऽनघ ॥

हे अनघ! आप किञ्चित् व्यथित दीखते हैं। विशेष करके अन्धकार से यह बन छाया होने से अपना मार्ग नहीं देख सकते। इस कारण यदि आप से चला न जाता हो तो आपकी आज्ञानुसार प्रातः काल मार्ग दिखाई देने पर घर जायँगे। आपकी इच्छा हो तो आज की रात यहीं विश्राम लें। अभी इस बनके जल जाने से एक सूखा हुआ वृक्ष सुलग रहा है। कहीं कहीं वायु के बहने से अग्नि ज्वाला भड़कती हुई दिखाई दे रही है। उस वृक्ष से अग्नि लाकर मैं यहाँ पर उजेला करूँगी। यहाँ पर लकड़ियाँ पड़ी हैं। आप चिन्ता न करें"।

परंतु सत्यवान् का प्राण इस समय अपने माता पिता के लिए बहुत व्याकुल हो गया था। वह बोला, "सायंकाल के बाद मेरी माता मुझे घरके बाहर कभी भी निकलने नहीं देती। दिन में भी उनकी दृष्टि की आड़ से मेरे चले जाने पर उन्हें बहुत दुःख होता है। हे सावित्री! मेरे माता पिता दोनों वृद्ध हैं। उनका आधारस्तंभ केवल मैंही हूँ। यदि रात्रि के समय उनके समीप मैं न रहा तो उनको क्या दशा होगी"। ऐसा कह कर सत्यवान् दोनों हाथ उठाकर बड़े ज़ोर से रुदन करने लगा। धर्मरूपिणी पतिव्रता सावित्री पति के आँसू पोंछती हुई कहने लगी—

यदि मेऽस्ति तपस्तप्तं यदि दत्तं हुतं यदि।
श्वश्रूश्वशुरभर्तॄणां मम पुण्यास्तु शर्वरी ॥
न स्मरामि कुतश्चापि स्वैरेष्वप्यनृतां गिराम्।
तेन सत्येन तावद्यध्रियेतां श्वशुरौ मम ॥

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK
यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने जो कभी तप, दान, हवनादिक किये हों तो मेरे सास, ससुर और पति को आज की रात कल्याणकारक हो। ऐसा मुझे स्मरण नहीं है कि हँसी विनोद में भी मैंने कभी मिथ्याभाषण किया हो। उसी सत्य से आज मेरे सास ससुर जीते रहें"।

धर्मरूपिणी पतिव्रता का धर्मबल पर इतना विश्वास था। इसके अतिरिक्त यमराज से भी जो उसने वरदान माँग लिया था उससे उसको पूर्ण विश्वास था कि उस रात को उसका पति यद्यपि अपने माता पिता के समीप न जाय, तथापि उनका कोई अनिष्ट वा अमंगल होने वाला नहीं। परंतु सत्यवान् फिर बोला—

कामये दर्शनं पित्रोर्याहि सावित्रि माचिरम्।
पुरा मातुः पितुर्वापि यदि पश्यामि विप्रियम्॥
न जीविष्ये वरारोहे सत्येनात्मानमालभे।
यदि धर्मे च ते बुद्धिर्मां चेज्जीवन्तमिच्छसि॥
मम प्रियं वा कर्तव्यं गच्छाव आश्रमान्तिकात्।

सावित्री! माता पिता से मिलने की मेरी उत्कण्ठा लग रही है। इस कारण अब विलंब न कर। चल, अपने घर चलें। हे वरारोहे! मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि यदि माता पिता को कोई अमंगल हुआ तो मैं क्षणमात्र भी जीता न रहूँगा। इस कारण यदि धर्म में तेरी मति हो और ऐसी तेरी इच्छा हो कि मैं जीता रहूँ अथवा मेरा हित करना तेरा कर्तव्य हो तो अभी चल, विलंब न कर।

अपने जीवन की शंका निवेदन करके और पत्नी-धर्म का स्मरण दिला कर सत्यवान् ने जब सावित्री को पतिप्रेम और पातिव्रत के विषय में किञ्चित् कठोर शब्द कहे तब सारे वर्ष भर की चिंता से जर्जर और तीन दिन के अखण्ड उपवास से क्लांत उस साध्वी ने अपने बिखरे हुए बालों को बाँध कर, अपने पति को दोनों हाथों से उठा, डर और क्लांति को भूल, उस घनघोर अंधकार से छाये हुए और अनेक हिंसक पशुओं से भरे हुए अरण्य में से उसे उसके माता पिता के निकट ले गई। इस संसार में इस प्रकार का पतिप्रेम वा पातिव्रत बहुत दुर्लभ है।

हमारे प्राचीन महाकवियों ने इस प्रकार का प्रेमचित्र खींचा है। आज कल के कविनाम धारण करनेवाले लेखकों का प्रेमचित्र खींचने का प्रकार बहुत भिन्न है। उनके चित्र में प्रणयियों के प्रेम का फूलना, आडम्बर वक्तृता विह्वलता, दीर्घ निश्वास, मूर्च्छा, इत्यादि के अतिरिक्त अधिक कुछ भी नहीं दिखाई देता। हृदयों के पूर्णतया मिलने से ही पूर्ण और सच्चा प्रेम होता है। जिस स्थान में पति का हृदय छिदा हो उसी स्थल की ओर यदि पत्नी का भी हृदय खिंचे तभी उस पत्नी का पतिप्रेम अविकृत वा विशुद्ध हो सकता है। सत्यवान् को अपने माता पिता के सिवा कुछ भी नहीं सूझता था। जिन पर अपने पति की इतनी भक्ति, इतना प्रेम था उन पर सावित्री की भी उतनी ही भक्ति और वैसाही प्रेम था। पति के माता पिताओं की सेवा सावित्री अत्यन्त भक्तिपूर्वक अन्तःकरण से करती थी।

पति का जिस पर प्रेम हो वह व्यक्ति पत्नी को भी अन्तःकरण से प्रिय हो तभी उसे पतिप्रेमवती कहना चाहिए और जो ऐसे व्यक्ति की सच्ची सेवा करे वही सच्ची सेविका हो सकती है। ऐसी पतिप्रेमवती और सेविका स्त्री को ही सच्ची पतिव्रता कहना चाहिए। जो स्त्री अपने पति के माता पितादि अन्य जनों की अवज्ञा, अनादर वा अश्रद्धा करती है उसका अपने पति पर कितना ही प्रेम क्यों न हो वह न पतिव्रता ही है और न पतिप्रेमवती ही। अपने पति और अपने बाल-बच्चों की चिन्ता करने वाली और सास ससुरादि वृद्ध जनों का तिरस्कार करनेवाली आज-कल की प्रायः कुशिक्षिता स्त्रियाँ पतिप्रेमवती नहीं हैं और पतिव्रता तो वे कदापि हो ही नहीं सकतीं।

सत्यवान् को मनसे ब्याह लेने के बाद "विवाह के ठीक एक वर्ष पश्चात् सत्यवान् की मृत्यु हो" यह अत्यन्त अनिष्ट व भयंकर भविष्यवृत्त देवर्षि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारद से सावित्री को विदित हो चुका था, तथापि वह सती किंचिन्मात्र भी न घबराई, किंतु प्रारब्ध-लिखित बात को भोगना उसने स्वीकार किया। इसके पश्चात् उसके पिता ने अपने पुत्री का मनोरथ द्युमत्सेन से जाकर कहा। तब वह सावित्री से कहने लगा, "हे सावित्री! तू राज-महल के सुखोपभोग करनेवाली है। तुझसे इस हमारे अरण्य की पर्णशाला में रहकर अपना संसार कैसे निभेगा" परंतु "जहाँ पति रहता है वह स्थल राज-महल से भी सुखकर होकर पति की स्थिति के अनुसार अपने गृहकर्मों के करने में मुझे यत् किंचित् भी क्लेश नहीं होगा" ऐसा स्पष्ट उत्तर देकर वह सत्यवान् की पत्नी बन गई। ससुराल में जाने के बाद उसको नारद मुनि की भविष्यवाणी रात दिन याद आती थी। उस अशुभ समय के दिन वह गिनती रही और अहर्निश चिंता करते हुए वह दिन भी निकट आ पहुँचा। सत्यवान् की मृत्यु होने में केवल तीनही दिन शेष रह गये। सावित्री ने उसी समय घोर व्रत लेकर अन्न जल का परित्याग किया। 'पति को परलोक जाने देने की ही नहीं' इस दृढ़ प्रतिज्ञा से ही उस साध्वी ने यह व्रत लिया था। तीन दिन और तीन रात उसने जल का एक बूंद भी प्राशन नहीं किया। सावित्री का यह उग्र व्रत देखकर उसका ससुर उससे कहने लगा, "बेटी! तूने इस उग्र व्रत का अवलंबन तो किया है परंतु तीन दिन और तीन रात जल न लेने से तू जीती भी बचेगी? अपने ससुर को चिंतातुर देखकर सावित्री कहने लगी—"आप चिन्ता न कीजिए। मैं इस व्रत का उद्यापन कर सकूंगी"। दृढ़ उत्साह के विना व्रत पूर्ण होने का नहीं, यह समझ करही मैंने पूर्ण और किसी प्रकार से भंग न होनेवाले उत्साह से ही इस व्रत का अवलंबन किया है"। तीन रात और दिन निर्जल उपोषण करने से सावित्री काष्ठवत् होगई थी। उसकी वह क्लांत स्थिति देखकर उसके सास ससुर अधिक चिंतातुर होकर कहने लगे, "बेटी! तूने विधिपूर्वक व्रत का पालन किया। अब आहार कर"। परंतु सावित्री ने मन में जिस कठिन संकल्प से इस व्रत का अवलंबन किया था उसका वह उद्देश अभी सिद्ध नहीं हुआ था। इससे वह कहने लगी, "सूर्य अस्त होने के बाद ही अन्न जल का प्राशन करूँगी। ऐसा ही संकल्प मैंने किया है"।

कुछ देर के पश्चात् सत्यवान् हाथ में कुल्हाड़ा लेकर लकड़ी काटने के निमित्त अरण्य की ओर चला। सावित्री युक्ति से सास ससुर की आज्ञा लेकर अपने पति के साथ मार्ग में जाते हुए पति के साथ होली। मार्ग में जाते हुए सत्यवान् उसे वन-शोभा दिखाने लगा। परंतु उस बेचारी की उस समय क्या अवस्था थी, उसे वही जानती थी। सारे वर्ष भर अपने पति के मृत्यु की घोर चिंता अब उस अनिष्ट समय के समीप आजाने से अधिक उग्र हो गई थी। उस घोर प्रसंग के सिवा उसे दूसरा तीसरा कुछ भी नहीं दिखाई देता था परन्तु उस पतिव्रता ने अपनी चिंता अपने पति को यत्किंचित् भी न जताकर दृढ़ चित्त से उससे बातें करना आरम्भ किया और पति की इच्छानुसार बन-शोभा देखने लगी, परन्तु जो उसके हृदय में वेदना होती थी उसका वर्णन करना अशक्य है।

लकड़ी तोड़ते हुए सत्यवान् के मस्तक में अकस्मात् पीड़ा उत्पन्न होकर वह मूर्च्छित हुआ। सावित्री उसका मस्तक अपनी जंघा पर रख कर बैठ गई। तत्पश्चात् उसने देखा कि लाल वस्त्र पहने, सिर पर मुकुट रक्खे हुए एक तेजस्वी पुरुष विशाल और भयंकर रूप से हाथ में फाँसी लेकर सत्यवान् के समीप खड़ा है। उसे देखते ही भयभीत हुई। तथापि पतिव्रता होने के कारण धैर्य धर कर अपने पति का मस्तक भूमि पर रख दिया और खड़ी हो हाथ जोड़ कर पूछने लगी, "आप कौन हैं और किस हेतु से आपका यहाँ आगमन हुआ है?"

यमराज ने उस समय सावित्री को जो उत्तर दिया था वह अत्यन्त भयंकर था। उसने उसी क्षण सत्यवान् का सूक्ष्म देह निकाल कर पाशबद्ध किया और जाने लगा। सावित्री भी उसके पीछे पीछे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलने लगी। उसे बहुत दूर साथ आई देख कर यमराज बोले, "सावित्री! मनुष्य जहाँ तक आ सकता है उससे भी तू आगे आगई। इससे आगे अब तेरा आना नहीं होगा। पीछे लौट जा और अपने पति की अन्तिम सेवा कर। तू अपने पति के ऋण से मुक्त हो गई।"

परन्तु पति के ऋण से मुक्त हो चुकी हूं, ऐसा सावित्री को विश्वास नहीं हुआ और इसी से उसने यमराज से कहा—"तपश्चरण, गुरुजनों की सेवा, व्रत और आपके कृपाप्रसाद से मेरी गति अप्रतिबन्ध होवेगी। आप मुझे पीछे नहीं लौटा सकेंगे" ऐसा कह कर सावित्री ने यमराज से पातिव्रत धर्म की महिमा वर्णन की। पतिव्रता के उस भाषण से यमराज सन्तुष्ट होकर सत्यवान् के प्राणों को छोड़ कर वे उसे अन्य वर देने को तत्पर हुए। इस पर सावित्री ने एक वर माँगा। परन्तु उसने यम का पीछा नहीं छोड़ा। वर्ष भर की चिंता से वह जर्जर होगई थी। तीन दिन के उपवास ने उसको शक्तिहीन बना दिया था और इसके पश्चात् इतने चलने से वह अत्यन्त व्याकुल होगई थी। उसकी यह अवस्था देख कर यमराज के अन्तःकरण में करुणा उत्पन्न हुई। उसे पीछे लौटाने का बारंबार प्रयत्न करने लगे। सावित्री ने कहा—"जब तक पति मेरे निकट है, मुझे कुछ भी क्लेश नहीं है। पति की जो गति होगी वही मेरी भी। जहाँ पति जायेंगे वहाँ मैं भी जाऊँगी। आप जहाँ मेरे पति को ले जायेंगे वहाँ मैं भी आऊँगी। यह मेरा दृढ़ निश्चय है। आप मुझे प्रतिबन्ध करने में असमर्थ हैं।"

इस प्रकार यमराज से धर्मसम्बन्धी उदारतापूर्ण भाषण करके सावित्री ने उन्हें संतुष्ट किया। यमराज ने उसे एक वरदान और भी देकर लौटने को कहा, परन्तु वह न लौटी। उस ज्ञान-रूपिणी पतिव्रता के धर्म पर मोहित होकर उसको एक और तीसरा वर भी दिया और आग्रह से कहने लगे, "वत्से! अब तो तू बहुतही दूर आगई है, पीछे जा" परन्तु "न दूरमेतन्मम भर्तृसन्निधौ मनो हि मे दूरतरं प्रधावति" अर्थात् पति के समीप होने से यद्यपि मैं कितनी भी दूर आई तथापि मुझे दूर आना नहीं जान पड़ता, किन्तु मेरा मन और भी दूर जाने की उत्तेजना करता है"। इत्यादि भाषणों से उस पतिव्रता ने यमराज को अत्यन्त मुग्ध कर डाला। यमराज कहने लगे, "सावित्री! तेरे सिवा मैंने ऐसे भाषण किसी से भी नहीं सुने"। ऐसा कहकर वे आनन्द में आकर अपना देहभान भूल गये और "तुझे बलवीर्यशाली सौ पुत्र हों। अब तू घर जा" ऐसा कहकर सत्यवान् का सूक्ष्म शरीर लेकर आगे चलने लगे। उस समय तेजोमयी पतिव्रता बोली:-

"मेरा पुण्य देखकर जिस प्रकार आपने मुझे अन्य वर दिये हैं उसी प्रकार एक वर यह भी दीजिए। पति की मृत्यु से मैं मृतवत् हो गई हूँ। मेरे पति को जीवित कीजिए। पति को भूलकर मैं सुखवैभव की इच्छा नहीं करती। पतिविहीन होकर मैं स्वर्ग की इच्छा भी नहीं रखती। पतिवियोग से मेरा जीता रहना सर्वथैव असम्भव है। आपने इसी समय मुझे वर दिया है कि मेरे सौ पुत्र होंगे और फिर आपही मेरे पति को लिये जाते हैं। आपका वचन सत्य हो और मेरा पति जीवित हो"

सती, पतिप्रेमवती, और पतिव्रता सावित्री को इस लोक की यात्रा पूरी किये हुए सहस्रों वर्ष हो चुके हैं। सावित्री की नाशवान् देह सहस्रों वर्ष पहले नष्ट हो गई परन्तु उसकी स्मृति, उसकी कीर्ति अमर हो रही है। अगणित वर्षों से सावित्री के मंगल नाम का घोष घर घर होता है और ऐसाही होता रहेगा। यदि ऊपर लिखे हुए चरित्र से हमारी आजकल की आर्यस्त्रियाँ और बालिकाएं अपना कर्तव्य समझ कर अपना आचरण उसी के अनुसार करने का प्रयत्न करें तो हमें पूर्ण आशा है कि हमारे पतित देश की स्थिति शीघ्रही अपनी प्राचीन दशा को पहुँच जाय।

मोतीलाल बीजावार्गी, बी० ए०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ां मिल, मन में भरे उमंग बड़े ,
... भाव खड़े ।

...वृत होने के कोई दो मास पूर्व ही, प्रकाशित
...हो चुका था। मुझे खेद उस वक्त बहुत ही कम
...होता जब कि उक्त पत्रों तथा पत्रिका के योग्य
...सम्पादक महाशय मिथिलामिहिर में प्रकाशित
...होने के समय इस तरह की आलोचना करने की
...कष्ट उठाते। मैं मुक्तकण्ठ से स्वीकार करता
...ण्डविधान अवश्य बंकिम बाबू
...अंग्रेज़ी और वंग भाषा में है।
...अनुवाद मैंने मिथिलामिहिर
...मझे इस बात का बहुत
...बंकिम बाबू का नाम
...या हुआ।
...और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलने लगी। उसे बहुत दूर सा
यमराज बोले, "सावित्री! मनुष्य जहाँ त
सकता है उससे भी तू आगे आगई। इससे आगे
अब तेरा आना नहीं होगा। पीछे लौट जा और अपने
पति की अन्तिम सेवा कर। तू अपने पति के ऋण
से मुक्त हो गई।"

परन्तु पति के ऋण से मुक्त
सावित्री को विश्वास नहीं हुआ
यमराज से कहा—"तपश्चर्
व्रत और आपके कृपाप्रसाद
बन्ध होवेगी। आप
ऐसा कह
की

जा
उत्तेजना करता है"। इत्यादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना।

(१)

छोटे भाई बहन दोनों मिल, मन में भरे उमंग बड़े,
ईश्वर की पूजा करते हैं होकर निश्चल भाव खड़े।
क्या ही युगल चित्र में चित को शान्तमूर्त्ति से हरते हैं,
हाथ जोड़ कर, ध्यान लगा कर प्रभु की बिनती करते हैं॥

(२)

हे प्रभुवर! करुणामय! तुम निज भक्तों को सुखदेते हो,
जीवमयी यह सृष्टिसिरज कर नित सबकी सुधिलेते हो।
हम अबोध कुछ नहीं जानते कैसे तेरा ध्यान धरें,
किस प्रकार तेरी पूजा कर इस जीवन को सफल करें॥

(३)

जब योगी अरु यती तपस्वी अन्त नहीं पा सकते हैं,
कहो, अज्ञ बालक तब तेरा क्या प्रभाव गा सकते हैं।
तुम अन्तर्यामी हो करके सबका भाव समझते हो,
जिसके मन में नहीं विमलता उसमें नहीं उलझते हो॥

(४)

दौड़ धूप खेलों हीं में हम रह कर समय बिताते हैं,
अपनी भूलों से कितनों का कोमल हृदय दुखाते हैं।
तुम अपने उदार भावों से दया दीन पर रखते हो,
तब क्यों कड़ी दृष्टि से बच्चों के अपराध परखते हो॥

(५)

ऐसा ज्ञान हमें दो, जिससे तुमको हम पहचान सकें,
क्या करना होगा दुनियाँ में इसको कुछ कुछ जान सकें।
मा-बापों का कहना करके उनका सब सन्ताप हरें,
हरे! जनार्दन! जब तक जीवें तुम्हें निरन्तर याद करें॥

जनार्दन झा।

साहित्य-सम्बन्धी डाँका।

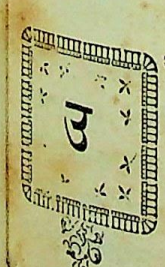

उक्त शीर्षक का एक नोट नवम्बर १९०९ की लक्ष्मी में (भाग ७ अंक ५ पृष्ठ १६४ में) देखकर मुझे बड़ा खेद हुआ। इसी भाव के एक एक नोट भारत मित्र और अभ्युदय में भी निकले हैं। दाम्पत्यदण्डविधान "मिथिलामिहिर" में, सरस्वती में उद्धृत होने के कोई दो मास पूर्व ही, प्रकाशित हो चुका था। मुझे खेद उस वक्त बहुत ही कम होता जब कि उक्त पत्रों तथा पत्रिका के योग्य सम्पादक महाशय मिथिलामिहिर में प्रकाशित होने के समय इस तरह की आलोचना करने की तकलीफ़ उठाते। मैं मुक्तकण्ठ से स्वीकार करता हूँ कि उक्त दाम्पत्यदण्डविधान अवश्य बंकिम बाबू का लेख है जो कि अँग्रेज़ी और बंग भाषा में है। उसी अँग्रेज़ी भाषा का अनुवाद मैंने मिथिलामिहिर में प्रकाशित कराया है। मुझे इस बात का बहुत खेद है कि मिथिलामिहिर में बंकिम बाबू का नाम नहीं दिया, जो मेरे लेखक के प्रमाद-वश हुआ। मैंने अपने लेखक को लेख देकर टाइप करने, और बंकिम बाबू का नाम भी देने को कहा, परन्तु लेखक की भूल से नाम छूट गया और लेख वैसा ही मिथिलामिहिर में प्रकाशित हुआ। मैंने भी इस पर विशेष ध्यान इस लिए नहीं दिया कि चिर-विख्यातनामा बंकिम बाबू के लेख को किसने नहीं पढ़ा होगा। बंग भाषा के पढ़ने वाले पहले पहल बंकिम बाबू ही के लेखों को शौक से पढ़ते हैं। अस्तु, यदि यह सामान्य भूल हुई है तो इसका उत्तर-दायी मैं हूँ। क्योंकि लेख मैंने ही प्रकाशित कराया है। इसके लिए पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी को डाकेज़नी का दोषी ठहराना, और सरस्वती जैसी सर्वमान्य पत्रिका को कलुषित बनाना उचित नहीं है। और विशेष वक्तव्य यही है कि सरस्वती किस योग्यता से प्रकाशित होती है और वह कितने लेखों को उड़ा लिया करती है तथा उसके कितने लेख उड़ाये जाते हैं, यह हिन्दी-साहित्य-सेवियों के हृदय पर भली भांति से अंकित है। हिन्दी-हितेच्छुओं को सरस्वती ऐसी पत्रिकाओं से द्वेष करना कदापि उचित नहीं। हिन्दी-साहित्य-संसार में वैसी वैसी या उससे भी बढ़कर बहुत सी पत्रिकाओं की भारी आवश्यकता है। अन्त में मुझे कहना है कि मैं भी मूल लेखक का लेख लेकर अपना बताना बुरा समझता हूँ और न मुझे ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने की ज़रूरत ही है। परन्तु खेद है कि मेरा दोष सरस्वती के सुयोग्य सम्पादक के मत्थे क्यों मढ़ा गया। इस लेख की आलोचना ठीक समय पर होती तो यह कलंक उन तक पहुँचने न पाता और इसके लिए मैं उक्त समालोचक सम्पादक महाशयों को भी उचित कर्त्तव्य से पराङ्मुख समझता हूँ।

श्रीकमलानन्दसिंह।

पुस्तक-परीक्षा।

१—श्रीजगद्गुरुकाव्यम्। बनारस से जो जैनयशोविजय ग्रन्थमाला निकलती है उसका यह चौदहवाँ रत्न है। पृष्ठ ४०। पद्य-संख्या २३३। मूल्य ४ आने। इसके कर्त्ता श्रीपद्मसागरमणि हैं। इसमें उन्होंने श्रीहीरविजयसूरि का चरित वर्णन किया है। विक्रम संवत् की सत्रहवीं शताब्दी के आदि में ये महात्मा विद्यमान थे। ये महाविद्वान्, महाकवि और महाधर्म्मिष्ठ जैन साधु थे। अकबर बादशाह तक ने इन्हें फ़तेहपुर सिकरी में सादर बुलाकर इनसे धर्म्मोपदेश सुना था और इनकी आज्ञा के अनुसार बहुत से क़ैदी छोड़ दिये थे। और भी कई प्रकार से इनकी आज्ञा का पालन बादशाह ने किया था। इस छोटे से खण्ड-काव्य के पढ़ने से श्रीहीरविजयसूरि के चरित के सिवा उनके समय का और भी बहुत कुछ हाल मालूम हो सकता है। पुस्तक-प्राप्ति-स्थान "श्रीजैनयशोविजय पाठशाला, काशी।"

❀

२—रसायन-शास्त्र अथवा हिन्दी-केमिस्ट्री। यह पुस्तक श्रीयुत महेशचरणसिंह, बी० ए०, एम० एस० सी०. ए० जी० आर०, कारवैलिस, अमरीका, टेकनोकेमिस्ट, टोकियो, एम० ए० एल० एस० लंडन, प्रिन्सिपल, प्रेममहाविद्यालय, वृन्दावन की बनाई हुई है। ग्रन्थकर्ता ने यह पुस्तक लिखकर वास्तव में हिन्दी-साहित्य और अपने देश का बड़ा उपकार किया है। जब तक साइन्स और अँग्रेज़ी के विद्वान् ऐसी उपयोगी पुस्तकें अपनी मातृभाषा में न लिखेंगे भारतवर्ष की उन्नति होना कठिन है। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि श्रीयुत महेशचरणसिंह जी का अमरीका, इँगलेन्ड, जापान इत्यादि देशों में भ्रमण करने पर भी अपनी मातृभाषा से प्रेम है। हिन्दी-केमिस्ट्री की तरह अन्यान्य साइन्स की पुस्तकों को हिन्दी में लिखने और लिखवाने के लिए श्रीयुत महेशचरणसिंह जी एक कम्पनी खड़ी करना चाहते हैं। ईश्वर करे आपका मनोरथ सफल हो और साइन्स के बहुतेरे ग्रन्थ हिन्दी में निकलें। परन्तु तब तक जिन सज्जनों को रसायन-शास्त्र से प्रेम है वे महेशचरणजी की हिन्दी-केमिस्ट्री की पुस्तक "दफ़्तर हिन्दी केमिस्ट्री—इलाहाबाद" से मँगालें। इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित हुई है। मूल्य ३॥)

❀

३—मुगलवंश। यह छोटी सी पुस्तक जोधपुर के मुन्शी देवीप्रसाद मुंसिफ़ ने फ़ारसी तवारीख़ों का आशय लेकर बनाई है। इस पुस्तक में तो मुगल-वंश की उत्पत्ति बतलाई गई है, परन्तु इसी सिलसिले में मुन्शी जी का और ऐतिहासिक पुस्तकों के लिखने का विचार है। यद्यपि पुस्तक छोटी है तथापि मुन्शीजी ने इसे बड़ी खोज से लिखा है। इसमें बहुत सी बातें ऐसी मिलती हैं कि हिन्दी क्या साधारण अङ्गरेज़ी इतिहासों में भी उनका पता नहीं। मिलने का पता ग्रन्थकर्ता। मूल्य भी उन्हीं से पूछ लीजिए।

❀

४—यवनराजवंशावली। अर्थात् लाहौर, दिल्ली, गुजरात, मालवा और बंगाल देशों के मुसलमान बादशाहों की साल संवत् सहित वंशावली। यह पुस्तक भी मुन्शी देवीप्रसाद कायस्थ, मुंसिफ़ जोधपुर ने बनाई है, और इन्डियन प्रेस प्रयाग ने प्रकाशित की है और इसी प्रेस से मिलती है। मूल्य ≡)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९०० की लाहौर की प्रदर्शिनी के दर्बार का दूसरा दृश्य।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—उपदेशामृतवटी। अर्थात् श्रीभगवद्गीता का गानरूप भाषानुवाद। जयपुरराजकीय संस्कृत पाठशालाव्यापक पं० गोपीनाथ जी दाधीच ने बनाई और पं० लक्ष्मीनाथ शास्त्री दाधीच जयपुर ने प्रकाशित की है। मूल्य ॥) पुस्तक मिलने का पता—प्रकाशक।

६—विधवा-विवाह। रायबहादुर नानकचन्द, सी० आई० ई० कारभारी इन्दोर स्टेट कृत। पुस्तक मुफ़्त बटती है। इसमें विधवा-विवाह का प्रतिपादन किया गया है। विधवा-विवाह के पक्षपाती रायबहादुर साहब के पास से मँगवालें।

अन्योक्तियों की कुंजी।

अन्योक्तियाँ अनेक प्रसंगों पर घटित हो सकती हैं; फिर चाहे कवि ने वह उक्ति किसी एकही प्रसंग पर की हो। जैसे पहली अन्योक्ति उस चकोर को लक्ष्य करके रची गई है जो अंधेरे पक्ष की रात में, जब बरसात के ठाट उपस्थित हैं, चन्द्रमा के दर्शन के लिए उत्कंठित हो आकाश को ताक रहा है। यह अन्योक्ति चरितार्थ हो सकती है उस विरहिणी स्त्री पर जो प्रिय-दर्शन के असम्भव होते हुए भी उपस्थित बाधाओं को भूल कर राह तक रही है, अथवा किसी भी मनोरथ रखने वाले पर, जो अभीष्ट की प्राप्ति की प्रतीक्षा प्रत्येक क्षण कर रहा है, यद्यपि सब सामान उसके विपरीत इकट्ठे हो रहे हैं। इस अन्योक्ति में करुण रस है और उक्ति करनेवाले की सहानुभूति दुःखित व्यक्ति के साथ व्यक्त होती है। इसी प्रकार प्रत्येक अन्योक्ति में न्यारा न्यारा रस और भाव है जो शब्दों की ध्वनिही से सुगमता से जान लिया जाता है।

पाठकों को इन अन्योक्तियों में विलास करने से काव्य के आनन्द के साथ उपदेश भी मिलेगा। ये सब कवित्त व्रजभाषा में हैं। सरस्वती ने प्रायः खड़ी बोली की कविता को आदर दिया है और देगी, परंतु इससे हिन्दी-साहित्य के रसिक यह न समझलें कि हम किसी अंश में व्रजभाषा की कविता से अरुचि रखते हैं। सूर, केशव, पद्माकर प्रभृति श्रेष्ठ कवियों ने जिस भाषा में कविता की है उस भाषा से रुचि न रखना मानो निज को मातृ-भाषा-साहित्य-सम्बन्धी रस के अधिकांश से विमुख रखना है। इन सब अन्योक्तियों में प्रसाद गुण है। इसलिए ये संक्षिप्त टिप्पणियाँ, जो नीचे दीजाती हैं, अलम् होनी चाहिएँ।

२—यह अन्योक्ति जिज्ञासु के तमोगुण पर अथवा किसी भी तिरस्करणीय और अमंगल वस्तु वा व्यक्ति पर चरितार्थ हो सकती है।

४—लोकहितसाधन के लिए रंग और भड़क दरकार नहीं है, किन्तु स्वाभाविक योग्यता और परिश्रम दरकार है।

६—सेमल असार संसार और सुवा विषयासक्त प्राणी है।

७—जातिदोष अच्छे स्थान में रहने से भी नहीं जाते।

८—यह उन पर चरितार्थ हो सकती है जो अपने सामर्थ्य से बाहर अत्यन्त बली व्यक्ति का सामना करने का साहस करते हैं।

९—विषयानुरागी को चेतावनी है।

१०—"रे रे चातक सावधानमनसा०" का भावानुवाद है। ऐरों गैरों से दीन होकर माँगना बुरा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११—ऊँचे कुलवाले आपत्ति में भी नीचवृत्ति नहीं स्वीकार करते।

१२—इसमें सांसारिक संतापों से व्यथित जन को उपदेश दिया गया है कि सच्चे सुख की खोज करें; भ्रमात्मक सुख के पीछे नष्ट न हों।

१३—इसमें "रूपगर्विता" और "सामान्या" (वेश्या) का वर्णन है और उपदेश यह है कि वेश्या को रूपवानों की प्रीति नहीं होती, यदि उनके पास धन नहीं है; चाहे वह कैसे ही चाहनेवाले हों। दूसरे यह उपदेश है कि वह धनवानों का आना केवल धन-लोभ से पसंद करती है चाहे वे काले सर्प हों वा श्वेत हंस; प्रिय ध्वनिकारी मोर हों वा पाखंडी बगले।

१४—जब प्रिय वस्तु की समीपता संभव नहीं होती और केवल उसका दर्शन मिल सकता है तब समीप जाने का उद्योग करना व्यर्थ परिश्रम करना है। ऐसी विचित्र और करुणोत्पादक अवस्था में स्थित व्यक्ति पर यह अन्योक्ति चरितार्थ होती है। उदाहरण के लिए पाठक अपने अनुभव अथवा अनुमान से काम लें।

१५—परिश्रम भरपूर, परिणाम कुछ नहीं! दुनिया के गोरखधंधों में जीवन बिताने वालों पर घटित कीजिए।

१६—विषयासक्त को चेतावनी।

१७—धनवान् से उपदेशक कहता है कि जब तक हाथ में धन है, इससे लोक-हित कर लो, न जाने यह कब तुमसे निकल जाय या तुम ही इसे, भागे बिना मर जाओ ("पवन" बहकाती है कि यहाँ न बरसो!)

१८—पात्रापात्र का विचार न करके जो दान देते हैं उनपर यह निन्दा की उक्ति है। जो व्यक्ति या सभा या कार्य्य सहायता के योग्य है उसे छोड़कर धन ऐसे को देना जो धन-संपन्न है अथवा ऐसे को देना जो उससे लाभ ही नहीं उठा सकता "मूसरचन्द" काही काम है।

२०—हँसी भी है और आनेवाले सुख के गर्व में वर्तमान दुःख को धमकी भी है। जिज्ञासु की उक्ति "विषय" से हो सकती है।

२१—यह भी वेश्या की उक्ति है जो "रूप" (सूरत) की पर्वा नहीं रखती और "सुबरन" (सोने) की कामना रखती है।

२२—यह उस रिफ़ार्मर पर चरितार्थ होती है जो किसी सुस्त और बे समझ सभा का नेता है और जो लोग उसका साथ न देकर विरोध करते हैं (इत्यादि)। (इञ्जन=नेता। डब्बे=काहिल, साथ न देनेवाले। चढ़ाई=कठिन परिश्रम का कार्य्य। उतार=सँभलने का अवसर)

चित्र-दर्शन।

उन चित्रों के सिवा, जिनकी चर्चा लेखों में आ चुकी है, इस अङ्क में कुछ और भी चित्र प्रकाशित हैं।

एक फाटक पर जो आप गोरों का समारोह देखते हैं वह दिसम्बर सन् १९०९ की लाहौर वाली प्रदर्शिनी का उस समय का दृश्य है जिस दिन पञ्जाब के लाट साहब ने उसे खोला था। और उसी तरह के दूसरे चित्र प्रदर्शिनी खुलने के दर्बार के समय के हैं।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ११] १ मार्च, १९१०। फाल्गुन कृष्ण ५, १९६६। [संख्या ३

विविध विषय।

१—संयुक्तप्रदेश की गवर्नमेंट के शासन की रिपोर्ट।

संयुक्तप्रदेश की गवर्नमेंट ने कृपाकर अपने शासन की रिपोर्ट की एक कापी (सन् १९०८—१९०९) सरस्वती के लिए भी भेजी है। उस रिपोर्ट के प्रत्येक विषय पर विचार करना सरस्वती के उद्देश के प्रतिकूल है। इसलिए हम शिक्षा, साहित्य, प्राचीन स्थानों और मन्दिरों की खोज और संरक्षण के सम्बन्ध में ही कही हुई बातों की सूचना अपने पाठकों की भेंट करते हैं।

शिक्षा।

संयुक्त प्रदेश में कुल जन-संख्या ४७,६९१,७८२ है। इसमें २४,६१६,९४२ पुरुष और २३,०७४,८४० स्त्रियां हैं। कालेज, स्कूल, मिडिल, प्रारम्भिक मिलाकर ६०८८७० लड़कों और ४९४७८ लड़कियों को शिक्षा दी जाती है। शिक्षणीय आयु के लड़कों में भी सिर्फ़ १६.४९ फ़ी सदी लड़कों को शिक्षा मिलती है। लड़कियों का हाल तो कुछ पूंछिए ही नहीं। जिस आयु तक लड़कियाँ स्कूल जा सकती हैं उस आयुवाली लड़कियों में भी सिर्फ़ १.४३ फ़ी सदी लड़कियों को शिक्षा मिलती है। भला इस तमसाच्छन्न देश की योरप के उन देशों से क्या तुलना जहाँ कोई भी पुत्र या पुत्री बिना शिक्षा के नहीं रहने पाते! संयुक्तप्रदेश में कुल ४५५ क़स्बे हैं और १,०५,५२८ गाँव हैं। इनमें कुल २४ कालेज लड़कों के लिये और ४ लड़कियों के लिए हैं। जिन कालेजों में किसी प्रकार का उद्यम या पेशा सिखलाया जाता है वे केवल ८ हैं सो भी लड़कों के लिए, लड़कियों के लिए कोई भी नहीं। जिन स्कूलों में प्रायः इन्ट्रेन्स या मिडिल तक शिक्षा दी जाती है वे लड़कों के लिए कुल ५४६ हैं और लड़कियों के लिए ५२। प्रारम्भिक शिक्षा के लिए लड़कों के मदरसे ९५९८ हैं और लड़कियों के लिए ९३८। अब ज़रा ख़र्च का भी हाल सुन लीजिए। गवर्नमेंट ने अपना, म्यूनिसिपल बोर्डों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों का कुल मिलाकर ८४,५२,४३६ रुपया शिक्षा के लिए ख़र्च किया। जन-संख्या के हिसाब से प्रत्येक जन पर लगभग ३ आने ख़र्च हुए। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्यूनिसिपल बोर्ड के ख़र्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को यदि निकाल दें तो गवर्नमेंट ने इस साल २३½ लाख रुपये शिक्षा के लिए ख़र्च किये हैं।

साहित्य।

सब मिलाकर १४३३ पुस्तकें प्रकाशित की गईं। इनमें अधिकतर कविता और धार्मिक विषयों पर लिखी हुई पुस्तकें हैं। अर्बी, फ़ार्सी और उर्दू में पुस्तकें संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेज़ी की अपेक्षा बहुत निकलीं। धार्मिक विषयों में भी साम्प्रदायिक झगड़ों की किताबें विशेष थीं। नाम मात्र के लिए ९ पुस्तकें इतिहास पर लिखी गईं, सो भी ६ मुसलमानों ने लिखीं। जीवन-चरितों में लाला लाजपत राय के लिखे हुए इटली देश को स्वाधीन करनेवाले मेज़िनी के जीवन-चरित का अनुवाद हिन्दी में हुआ। संगीत में रागमाला और नागमतनियमाः नामक पुस्तकें निकलीं। नाटक बहुत ही कम बने और वे भी कुछ अच्छे नहीं। उपन्यासों में अश्लीलता रही परन्तु बाज़ बाज़ पुस्तकों में बहुविवाह, बाल्यविवाह, पर्दे इत्यादि सामाजिक बुराइयों के अच्छे और मनोरञ्जक चित्र खींचे गये हैं। यद्यपि राजनैतिक विषयों पर साफ़ और खुले तौर पर सिर्फ़ ९ ही पुस्तकें लिखी गई हैं परन्तु लेखकों का रुजहान गत वर्ष राजनैतिक विषयों ही की ओर अधिकतर रहा। दशनों की ओर लोगों की रुचि बढ़ी तो सही पर इधर से भी राजनैतिक ध्वनि कुछ न कुछ आती ही रही।

समाचार-पत्र और सामयिक पुस्तकें।

गत वर्ष हिन्दुस्तानी समाचारपत्र और सामयिक पुस्तकों का नम्बर सिर्फ़ ११४ रहा। पिछले साल से ७ कम निकले। समाचार-पत्रादि ज़्यादातर उर्दू और हिन्दी ही में निकले; ६५ उर्दू में और ३१ हिन्दी में, १२ अंग्रेज़ी में और बाक़ी अर्बी-उर्दू-मिश्रित, अंग्रज़ी-हिन्दी मिश्रित और रोमन में। पिछले साल के पत्रों में २६ पत्रों का प्रकाशित होना बन्द हो गया।

प्राचीन स्थानों और वस्तुओं की खोज और रक्षा।

साहेत माहेत, जो प्राचीन श्रावस्ती का स्थान समझा जाता है, खोदा जाता रहा। भीतरगाँव ज़िला कानपुर में, जिसके विषय में हम फिर कभी लिखेंगे, कुछ प्राचीन मन्दिरों की मरम्मत हुई। ज़िला फ़ैज़ाबाद में राजा कुमार गुप्त द्वितीय (सन् ४३६) के समय का शिवलिङ्ग मिला। और भी विविध भाँति के ५०८७ सिक्के गड़े हुए मिले। गढ़वा ज़िला इलाहाबाद में एक पत्थर निकला है जिस पर क़रीब १८०० बरस की ब्राह्मी-प्राकृत में तीन पङ्क्तियाँ खुदी हुई हैं। झाँसी और बनारस ज़िलों में क़रीब ८०० बरस के पुराने ताम्रपत्र निकले हैं। मथुरा के निकट ज्ञानेश्वर और सितोहा के तालाबों में भी तलाशी कराई गई पर कोई विशेष मतलब की चीज़ न निकली। मुसलमानी प्राचीन स्थानों की रक्षा और मरम्मत करने में १०५,८४९ रुपये लगे। लखनऊ के म्यूज़ियम के ख़र्च में ११,५७८ रुपये लगे।

२—हिन्दी में सरकारी गज़ट।

कुछ दिन हुए सरस्वती द्वारा गवर्नमेंट को यह सम्मति दी गई थी कि सरकारी गज़ट हिन्दी में भी निकला करे। अभी सरकारी गज़ट उर्दू और अँगरेज़ी में निकलता है। जब संयुक्त-प्रदेश की कचहरियों में सम्मन वग़ैरः नागरी अक्षरों में भी सर्व साधारण के लिए छापे जाते हैं तब गवर्नमेंट गज़ट भी नागरी अक्षरों में क्यों न निकला करे। सरकार को इसमें कुछ विशेष प्रयास नहीं और हिन्दी पढ़ने वाली प्रजा का बड़ा लाभ है। बहुतेरी सूचनायें जो सरकार प्रजाहित के लिए प्रकाशित किया करती है अभी प्रजा तक देर में पहुँचती हैं। कारण यही कि समाचार-पत्र अँगरेज़ी से हिन्दी में छापते हैं, तब कहीं प्रजा को उन सूचनाओं के पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त होता है। फिर, साधारण समाचारपत्र कुछ गवर्नमेंट गज़ट तो हैं नहीं, उन्हें और भी बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखनी पड़ती हैं। यदि उनके जी में आया और उन्हें अवकाश मिला तो उन्होंने सरकारी सूचनाओं का सारांश प्रकाशित कर दिया। कभी कभी तो बात कुछ और होती है और सरकारी सूचनायें घूमती घुमाती प्रजा के कानों तक पहुँचते पहुँचते और का और ही रूप धारण कर लेती हैं। देशकाल अवस्था का विचार करके सरकार जो उचित समझे करे। गवर्नमेंट को सरस्वती में कही हुई एक पुरानी बात का स्मरण कराते हुए, आज हम एक दूसरे ही विषय पर गवर्नमेंट से विनय करना चाहते हैं। वह विषय है:—

३—कृषिविभाग और हिन्दी-पत्र।

यह सभी जानते हैं कि भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश है। इसलिए यदि सरकार कृषि-विद्या की उन्नति करने के लिए कानपुर, पूसा इत्यादि स्थानों में बड़े बड़े विद्यालय स्थापित कर रही है तो यह सरकार का कार्य्य सर्वथा सराहने योग्य है। गत ७ फ़रवरी को जो संयुक्त-प्रदेश की लेजिस्लेटिव काउंसिल की बैठक हुई थी उसमें माननीय ठाकुर कुशलपालसिंह ने कृषि-सम्बन्धी कई प्रस्ताव किये थे। इन प्रस्तावों में एक प्रस्ताव यह भी था कि सरकार कानपुर में एक ऐसा स्कूल क़ायम करे जिसमें कृषि-सम्बन्धीय शिक्षा देश-भाषा में भी दी जाया करे। मिस्टर हेार ने सरकार की ओर से उत्तर दिया कि यदि यह निश्चय हो जाय कि ऐसे स्कूल में विद्यार्थी काफ़ी तायदाद में पढ़ने आयंगे तो सरकार निस्संदेह ऐसे स्कूल भी क़ायम कर देगी। यदि किसान, जिनके लड़के अंगरेज़ी नहीं पढ़े, केवल देश-भाषा ही जानते हैं उन्हें कृषि-विद्या में शिक्षा दिलाना चाहते हैं तो वे आपही सरकार से विनय करेंगे। पर तब तक हमें सरकार से यह प्रार्थना करनी है कि कृषि-कालिज और कृषि-विभाग की ओर से नवीन आविष्कारों की जो सूचनायें निकला करती हैं वे हिन्दी में अनुवाद कराकर वितरण की जाया करें। तभी किसानों को कुछ शिक्षा मिलेगी और कृषि-विभाग के कार्य्यों से भी उनकी सहानुभूति होगी। जहाँ तक हमें मालूम है, अभी संयुक्त-प्रदेश के कृषिविभाग से मुफ़ीदुलमज़ारईन नामक एक उर्दू का मासिक पत्र निकलता है। अत्युत्तम। परन्तु जब तक मुफ़ीदुल-मज़ारईन की तरह के सरकारी पत्र सचित्र, मनोरञ्जक सरल हिन्दी और नागरी अक्षरों में छपे हुए न निकलेंगे तब तक किसानों की रुचि इस ओर कठिनता से होगी। क्योंकि उर्दू अक्षर पढ़नेवाले किसान कितने हैं? फिर भी नागरी के पढ़नेवाले तो कुछ थोड़े बहुत प्रत्येक गाँव में मिलही जायंगे। भारतवर्ष के सरकारी कृषिविद्या-लयों के अध्यापक जो जो कृषि-सम्बन्धीय खोज करते हैं तथा योरप और अमरीका में कृषिविद्या में क्या क्या उन्नति की गई है, कौन कौन से उपयोगी यंत्र निकले हैं और निकल रहे हैं, यदि ये सब बातें सरकारी कृषि-विभाग की ओर से किसी सचित्र मासिक पत्रिका में हिन्दी में निकला करें और ऐसी पत्रिकायें देहातों की पाठशालाओं और तहसीलों में जाया करें तो हमें निश्चय है कि सरकार का परिश्रम भी सफल होगा और किसानों की भी दशा बहुत कुछ सुधर जायगी। हमें स्मरण है कि कुछ दिन हुए जब एडवोकेट में इसी विषय पर बात छेड़ी गई थी तब मिस्टर मोर्लैन्ड ने ऐसी पत्रिका निकालने का विचार किया था। फिर न जानें क्यों यह उपयोगी प्रस्ताव कार्य्यरूप में परिणत न हो सका।

४—मकान की नई सजावट।

बिजली से रोशनी होती, पंखे चलते, ख़बरें मिलती और गाड़ियाँ चलती ही थीं, पर अब लोगों ने उससे और भी आराम के काम लेना शुरू किये हैं। पेरिस में किसी शौक़ीन साहब ने अपना मकान सजाने में बात बात और जगह जगह पर बिजली का उपयोग किया है। साहब बहादुर के मकान पर आप तशरीफ़ ले जाइए और बटन दबाने शुरू कीजिये। बटन दबाने ही से दर्वाज़ा खुल जाता है। फिर बटन दबाइए ख़बर दीजिए और अपना नाम-धाम बता-लाइए। एक कमरे में पहुँच कर कुर्सी पर बैठिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आपसे आप ख़ातिर होने लगेगी। तरह तरह की डिशों में खाना बावर्चीख़ाने से आवेगा, नौकर की कोई ज़रूरत नहीं। अगर आपके साथ कई लोग खाना खाने बैठे हैं तो आपके हिलने-डुलने की ज़रूरत नहीं। बस बटन दबाइए और जो डिश जिस शख़्स के पास पहुँचानी है वह वहीं पहुँच जायगी। डिशें आपको खिलाकर फिर बावर्चीख़ाने आप ही आप लौट जायँगी। बावर्चीख़ाने में भी इसी तरह बिजली की कलों की भरमार है। यही हाल सोने के कमरे का है। सुबह उठिए, चारपाई पर पड़े पड़े चाय पी लीजिए। बटन दबाना न भूलिए। समाचारपत्र भी वहीं आ जायगा। नौकर-चाकरों को आपके पास आने की कोई ज़रूरत नहीं। हाँ, वहीं लेटे लेटे आपको यह भी मालूम हो जायगा कि कौन शख़्स उस मकान में क्या बातें कर रहा है। इस ऐश का कुछ ठिकाना है!

५—मांस-भक्षी पौदे।

वनस्पति-शास्त्र-वेत्ताओं का मत है कि बहुतेरे पौदों की मांस खाने की आदत बढ़ती जाती है और यदि यही हाल रहा तो कालान्तर में ये पौदे बड़े बड़े वृक्ष बन जायंगे और जानवरों का शिकार करने लगेंगे। बेचारे कीड़े मकोड़ों की कौन कहे बड़ी बड़ी बकरियाँ भी उन वृक्षों के सुगन्ध से लुब्ध हो उनके पास चरने जायँगी। उन विचित्र वृक्षों को छूतेही उनके जाल में ऐसी फँसेंगी की बस निकलना असम्भव हो जायगा। इस प्रकार पकड़े हुए जानवरों के मृत शरीर के अंश को चूस कर ये वृक्ष-पिशाच अपनी बुभुक्षा शान्त करेंगे और पुष्ट होंगे। और तो और बाज़ बाज़ इनमें मनुष्यों ही पर हाथ साफ़ करने में न चूकेंगे। जिस देश में इन वृक्षों की बहुतायत हुई वहाँ इन्हीं का अकंटक राज्य समझिए। बेचारे जानवरों का वहाँ कितने दिन गुज़र चलेगी!

६—प्लेग और मिट्टी का तेल।

डाक्टरों का मत दृढ़ होता जाता है कि चूहे मिट्टी के तेल से बहुत ही घबराते हैं। डाक्टर मंडल ने इस विषय में कई एक तजरिबे भी किये हैं। मिट्टी के तेल के गोदामों में प्रायः चूहे नहीं देखे जाते। उन जहाज़ों पर भी चूहे नहीं मिलते जिन पर मिट्टी का तेल आया-जाया करता है। प्लेग के जर्म्स जो चूहों पर लिपटे रहते हैं उनके नाश करने के लिए भी मिट्टी का तेल बड़ा अक्सीर समझा जाता है। कहा जाता है कि एक दफ़ा जब योरप में मरी फैली थी तब बाकू में, जहाँ मिट्टी का तेल निकलता है, कोई नहीं मरा और न वहाँ बीमारी ही हुई, यद्यपि बाकू के इर्द गिर्द थोड़ी ही दूर पर फ़ी सदी पचास आदमी मरे। लर्च साहब जो बाकू सन् १७३५ में गये थे लिखते हैं कि ऐसा जान पड़ता है कि बाकू में बीमारी न होने का कारण मिट्टी के तेल की खानें ही हैं।

७—विचित्र हथिनी।

सर्वशक्तिमान् परमात्मा तो अनन्त है ही, पर उसकी सृष्टि, उसका ज्ञान और उसके कर्म भी अनन्त हैं। वह स्वयं निराकार होकर भी साकार पदार्थों की रचना करके उनके साथ ख़ूब खेल खेलता है। वह बड़ा खिलाड़ी है। वह निर्गुण होने पर भी गुणी और गुणी होने पर भी निर्गुण है। वह निरीह होकर भी अद्भुत विश्वकर्मा है। अतएव उसकी सृष्टि भी बड़ी विचित्र है। उस अनन्त भगवान् की अनन्त सृष्टि में से एक आध रचना-वैचित्र्य का उदाहरण देना ऐसा ही है जैसे अनन्त महासागरों में से एक जलकण निकाल कर दिखलाना। पर तो भी क्रिया के दर्शन से उसके कर्ता के ज्ञान की ओर मनोवृत्ति का झुकाव होना स्वाभाविक ही है। अतएव ईश्वर की रचना की चर्चा करना अथवा उसके वैचित्र्य का दर्शन करना एक प्रकार से ईश्वर का ही स्मरण करना है। इसी लिए आज हम अपने पाठकों को उस परमात्मा की—उस लीलामय भगवान् की—एक असाधारण रचना का उल्लेख करते हैं। उल्लेख ही नहीं किन्तु उसका साक्षात् दर्शन कराते हैं। देखिए, सामने एक हथिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

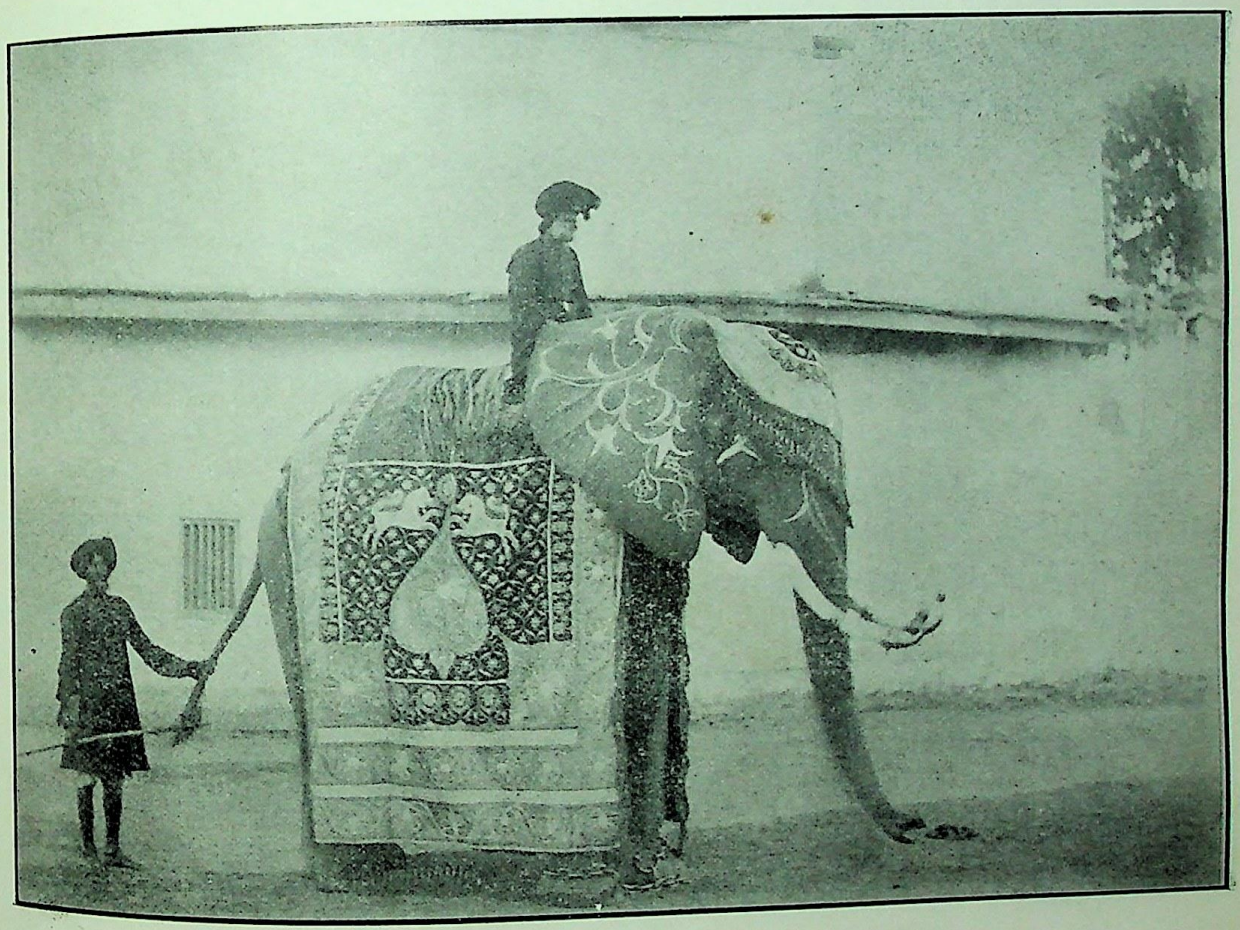

विचित्र हथिनी ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का चित्र है। अब इसकी विचित्रता को देखिए। इसके कान असाधारण लंबे हैं। जब यह अपने कानों को पूरे तौर से फैलाती है तब इसके ऊपर बैठा हुआ महावत और अंबारी के सवार सब उनकी ओट में छिप जाते हैं। यही नहीं, एक अच्छी ऊँची इमारत तक इसके कानों की ओट में छिप जाती है! अंबारी में बैठनेवालों के लिए ये कान ढाल का काम देते हैं। यह तो हुई कान की बात। अब दाँतों को देखिए। इसके दाँत कोई तीन हाथ लंबे हैं। देखनेवाले कहते हैं कि साधारण तौर पर इतने लंबे दाँत हथिनियों के नहीं देखे जाते। अच्छा अब इसकी सूँड़ को देखिए। साधारण हाथी अपनी सूँड़ के अगले भाग को कुछ टेढ़ा करके उससे कुछ चीज़ थामते हैं; पर इस हथिनी को ऐसा करने की उतनी आवश्यकता नहीं। इसके होंठ इतने बड़े बड़े हैं कि छोटी मोटी चीज़ों को तो यह उन्हीं के बीच में दबा कर उठा लेती है। यह हथिनी बाँसी (बस्ती) के राजा रामसिंह के पुत्र लाल रामरत्नसिंह के यहाँ मौजूद है। सुनते हैं, यह हथिनी आगामि वर्ष प्रयाग की प्रदर्शिनी में भी आवेगी। यह चित्र हमें प्रयाग की एम० एल० विश्वकर्मा ऐंड० कम्पनी के मैनेजर महाशय से प्राप्त हुआ है। अतः हम उक्त मैनेजर महाशय के कृतज्ञ हैं।

समाज की उन्नति।

आजकल सभी ओर से समाजोन्नति की धुन आ रही है। सभी लोग छोटे-बड़े, पढ़े-अनपढ़े, हिन्दू मुसलमान समाज की उन्नति करने की चेष्टा में लग रहे हैं। यह एक बड़ा शुभ चिह्न है। 'हम में दोष हैं'—यह ज्ञान होना एक बड़ी बात है। इस ज्ञान के बाद ही 'दोष को कैसे दूर करें' यह विचार उपस्थित होता है। फिर दोष दूर करने का उपाय भी किसी प्रकार का मिल जाता है। और दोष दूर भी हो जाता है।

आजकल यहाँ के सब लोग दोष के दूर करने के उपाय सोचने में दत्तचित्त हो रहे हैं। नाना प्रकार के उपाय बतलाये जाते हैं। कोई कहता है 'विधवाओं को विवाह करने से मत रोको—इसी से देश का कल्याण होगा'। कोई विचारता है—'स्त्री-शिक्षा ही से देश का उद्धार होगा'। कोई बतलाता है—'फलित ज्योतिष को न मानो बस यही देश की अवस्था को उत्कृष्ट कर देगा'। कोई लेक्चर देता है—'साइन्स पढ़ने ही से देश की दशा सुधरेगी'। कोई उपदेश करता है—'यह सब पढ़ना लिखना छोड़ो—वाणिज्य ही से देश उन्नत हो सकता है'। इत्यादि इत्यादि।

मेरी क्षुद्र बुद्धि में ये सब उपाय अपने अपने तौर पर ठीक हो सकते हैं। पर इन उपायों पर ही भरोसा करने से काम नहीं चल सकता। समाज की हीन दशा एक महा कण्टकी वृक्ष की सी हो गई है। ऊपर कहे हुए उपायों से केवल उस वृक्ष के एक एक पत्तों की चोथाई हो सकती है। वृक्ष ज्यों का त्यों खड़ा रहेगा। जब तक उसकी जड़ स्थिर रहेगी वृक्ष में हानि नहीं होगी; और जब तक वृक्ष खड़ा रहेगा उसके पत्तों के चोथने से कुछ फल नहीं। कुछ काल बाद फिर नये पत्ते पहले से भी प्रबल निकल आवेंगे, और नये नये काँटे भी दिन दिन निकलते ही जायँगे। वृक्ष को जड़ से काटने ही से उससे त्राण मिल सकता है।

अब यह विचार करना है कि इस वृक्ष की जड़ क्या है। फिर उसके काटने का उपाय सोचा जायगा। प्राचीन दार्शनिकों का सिद्धान्त है कि अविद्या—अज्ञान—सब अनर्थों का मूल है। जब तक अविद्या है तब तक अनिष्ट आपत्तियों से त्राण नहीं। त्राण हो भी कैसे? 'यह मेरा अनिष्ट है' यह समझने के लिये भी तो ज्ञान की आवश्यकता है। हमारे देश में जितनी कुरीतियाँ हैं—यदि उनके ऊपर विचार किया जाय तो यह साफ़ मालूम हो जायगा कि यदि विद्या की वृद्धि होगी—कोई ख़ास तरह की विद्या नहीं—पर अच्छी शिक्षा, उदार शिक्षा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Liberal Education—जैसे जैसे देश में फैलेगी तैसे तैसे देश की दशा सुधरती जायगी। जब तक यह शिक्षा खूब नहीं फैलती तब तक सब लोग अपने हित-अहित का विचार नहीं कर सकते और न दूसरों के समझाये समझ सकते हैं। जब तक सामान्यतः सब आदमी अपना इष्ट अनिष्ट नहीं समझेंगे तब तक समस्त समाज की उन्नति कैसे होगी। एक बड़े विद्वान् ने एक दिन मुझ से कहा—बातें यूनिवर्सिटी के प्रसंग में हो रही थीं—आजकल यहाँ के लोग समझते हैं कि साइन्स के पढ़ने ही से देश की दशा सुधरेगी—पर ये भूल जाते हैं कि जब कभी किसी देश की दशा सुधरी है किसी ख़ास विद्या ही के बल से नहीं किन्तु जैसे जैसे सामान्य शिक्षा से देश के आदमियों के चित्त में उदार भाव फैलता गया वैसे वैसे देश की उन्नति भी होती गई'—'The regeneration of a country has never been due to the fact of its inhabitants having studied this or that special branch of study; it has been due to the increase among them of trulycultured men.'

मेरी समझ में हम लोगों को अभी और सब विचार छोड़कर इस उदार शिक्षा ही के फैलाने में एकचित्त होकर बद्धपरिकर होना अत्यावश्यक है। यह 'उदारशिक्षा' क्या है—किस प्रकार की होनी चाहिए—इस प्रसंग में ख़ास ख़ास बातों के ऊपर झगड़ने का अवसर नहीं है। सामान्यतः सभी लोग जानते हैं 'उदार शिक्षा' Liberal Education क्या है। इतनाही काफ़ी है। सब विरोध झगड़ा, मतभेद छोड़कर सब लोगों को इसी शिक्षा के फैलाने का प्रयत्न करना चाहिए। शिक्षित समाज में कभी किसी प्रकार की दुर्बुद्धि नहीं उत्पन्न हो सकती। दुर्बुद्धि जब उत्पन्न होती है तब अर्ध-शिक्षित ही समाज के बीच। आजकल जितनी दुर्बुद्धियाँ देश में फैल रही हैं सब अविद्या ही के प्रभाव से। अविद्या दूर होने ही से समाज की जितनी दुर्दशा है सब दूर हो जायगी।

उदारशिक्षा के फैलाने में प्रयत्न आजकल बहुत सुगम हो गया है। बृटिश गवर्नमेण्ट बहुत उदार भाव से इसमें सहमत है और बहुत सहायता कर रही है। यदि हम लोग, इधर उधर की व्यर्थ बातों के विचार को छोड़कर, केवल शिक्षा की ओर ध्यान देंगे तो गवर्नमेंट की सहायता से अवश्य इस काम में सफलता प्राप्त कर सकेंगे। इसमें कुछ सन्देह नहीं।

मेरी सविनय प्रार्थना अपने देश-भाइयों से यही है कि जिन जिन बातों से किसी प्रकार का परस्पर मनुष्यों के बीच विरोध, वैरभाव, उत्पन्न होने की किञ्चित् भी सम्भावना हो उन बातों को हृदय से दूर कर एक मात्र शिक्षा के ऊपर ध्यान दें। वैर भाव अज्ञान और मूर्खता का चिह्न है। जब तक मनुष्य के हृदय में वैरभाव का अन्धकार छाया है तब तक शिक्षा का पुष्पोद्गम होना कठिन है। इससे हृदयान्धकार दूर करिए—जिससे शिक्षा को फूलने का अवकाश मिले।

गङ्गानाथ झा

श्रीसमर्थ रामदास स्वामी।

प्रस्तावना

गत संख्या में "महाराष्ट्र उपदेशक" नाम के लेख में द्वितीय वर्ग अर्थात् एकनाथवर्ग, के उपदेशकों की शिक्षा की आलोचना करते हुए श्रीसमर्थ रामदास स्वामी के विचारों की विशेषता का कुछ उल्लेख किया गया था; और यह सूचना दी गई थी कि श्रीरामदास स्वामी का चरित शीघ्रही प्रकाशित किया जायगा। इधर मुझे मालूम हुआ कि मेरे और 'सरस्वती' के एक पुराने मित्र यह चरित पुस्तकाकार लिख रहे हैं। उनसे मिलने के लिए मैं उनके निवास स्थान पर गया। वहाँ जाकर उनके लिखे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

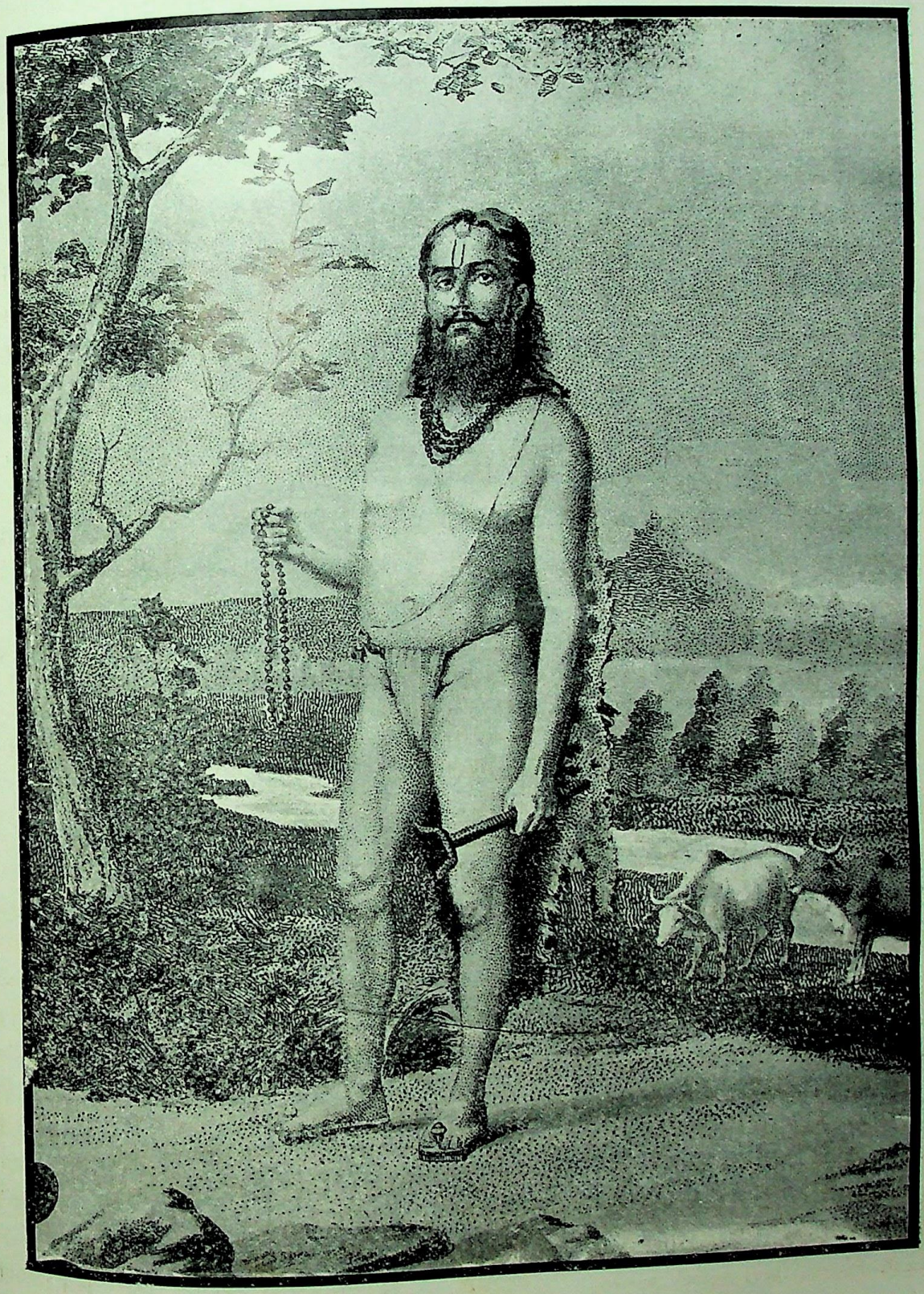

श्रीस्वामी समर्थ रामदासजी ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए रामदास-चरित की कापी देखी। पढ़ने से बहुत हर्ष हुआ। मुझे यह विश्वास हो गया कि मैं जो चरित-लेख लिखने वाला हूँ उससे यह बहुत उत्तम है। परन्तु अभी इसके प्रकाशित होने में कुछ समय लगेगा। ऐसा जानकर, अर्थात् अपने मित्र का ग्रन्थ प्रकाशित होने तक सरस्वती के पाठकों को बाट जोहने देना उचित न समझ कर, मैंने उनकी अनुमति से उनके चरित-ग्रन्थ का सारूप, यह छोटा सा निबन्ध लिखा है। आशा है कि सरस्वती के प्रेमी इस अल्प चरित-लेख से प्रसन्न होंगे।

भारत के सनातन-धर्मावलम्बियों का इस सिद्धान्त पर पूर्ण विश्वास है कि जब जब धर्म की ग्लानि होती है तब तब साधुजनों की रक्षा और दुर्जनों का नाश करके, धर्म की स्थापना करने के लिए, ईश्वर का अवतार होता है। इसी विश्वास के अनुसार हमारे धर्म में रामकृष्णादि विष्णु के मुख्य दस अवतार माने गये हैं। महाराष्ट्र प्रान्त में श्रीरामदास स्वामी को हनुमानजी का अवतार मानते हैं। इसके लिए भविष्यपुराण में प्रमाणभूत एक श्लोक भी कहा जाता है:—

कृते तु मारुताख्याश्च त्रेतायां पवनात्मजः।
द्वापरे भीमसंज्ञश्च रामदासः कलौ युगे॥

इस श्लोक में यह बताया गया है कि हनुमान्‌जी के कौन कौन अवतार किस किस युग में होंगे। कृतयुग या सतयुग में हनुमान् का जो अवतार होगा उसको "मारुत" कहेंगे, त्रेतायुग में "पवनात्मज", द्वापर में "भीम" और कलियुग में "रामदास" कहेंगे। श्रीरामदास स्वामी ने भी अपने विषय में जो थोड़ा बहुत लिखा है उससे भी कुछ ऐसी ही ध्वनि निकलती है। अस्तु। इसमें तो सन्देह ही नहीं कि श्रीरामदास स्वामी महान् भगवद्भक्त, साधु, कवि और राजनीतिज्ञ थे। उनका चरित और उनकी लीला अनुपम है। जिन्होंने यवन-पद-दलित महाराष्ट्रभूमि में, अपनी अप्रतिम निस्पृहता और पारमार्थिक शिक्षा से, स्वधर्म और स्वराज्य की स्थापना में सहायता करके "समर्थ" पदवी प्राप्त की। उनका पूरा परिचय, इस अल्प सारांशरूप लेख में देना असम्भव है। तथापि यथाशक्ति इस चरित के विशद करने का प्रयत्न किया जायगा।

वंशपरंपरा और जन्म।

दक्षिण देश में जिस समय हिन्दू राजाओं ने अपना राज्य स्थापित किया उस समय वे अन्य प्रान्त के लोगों को, अपने राज्य में बसने के लिए, ज़मीन और द्रव्य देकर लाते थे। वे हर प्रान्त (निज़ामशाही) से बहुत लोग गोदावरी नदी के किनारे जाकर बसे। उन लोगों में कृष्णाजी पन्त ठोसर नामक एक देशस्थ (महाराष्ट्र ब्राह्मणों की एक श्रेणी) ब्राह्मण थे। वे शाके ८८४ (सन् ९६२ ई०) में उत्तर गोदावरी के तीर, बीड़ प्रान्त में, हिंवरा नामक ग्राम में, आकर कुटुम्ब-सहित रहने लगे। उन्होंने बीड़ प्रान्त में बहुत से गाँव बसाये। उनके चार पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र का नाम दशरथ पन्त था। उन्होंने अपनी पिता की कमाई हुई जायदाद का हिस्सा लेना उचित नहीं समझा, इसलिए वे हिंवरा से कुछ दूर बड़-गाँव को चले गये। उस गाँव की बस्ती उजाड़ हो गई थी और वहाँ ग्वाल जाति के कुछ लोग गायें चराने के लिए जंगल में रहते थे। उन ग्वालों के मुखिया लखमाजी को ज़मीदार बना कर दशरथ पन्त वहाँ पटवारी और पुरोहित का काम करने लगे। उस गाँव का नाम उन्होंने जाँब रक्खा। यह गाँव इस समय श्रीरामदास स्वामी की जन्म भूमि होने के कारण अत्यन्त पवित्र क्षेत्र माना जाता है। कुछ दिनों के बाद जाँब के आस पास कई गाँव बस गये। और उस इलाक़े के पटवारी और पुरोहित का काम दशरथ पंत ही को मिला। वे बड़े भगवद्भक्त थे। उनके मुख्य उपास्य देव श्रीरामचन्द्र ही थे। उनके छः पुत्र हुए। ज्येष्ठ पुत्र का नाम रामाजी पन्त था। पिता के मरने के बाद रामाजी पन्त को जाँब इलाके की वृत्ति मिली। उपर्युक्त कृष्णाजी पंत, दशरथ पंत और रामाजी पंत श्रीसमर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामदास स्वामी के वंश की पहली, दूसरी और तीसरी पीढ़ी के मूल पुरुष थे। रामाजी पन्त के बाद उन्नीसवीं पीढ़ी में सूर्याजी पन्त नाम के प्रसिद्ध भगवद्भक्त और ब्रह्मज्ञानी पुरुष हो गये। इनकी स्त्री का नाम राणूबाई था। यही सूर्याजी पन्त और राणूबाई रामदास स्वामी के माता-पिता हैं।

अपने यहाँ भगवद्भक्तों के वंश में एक विशेष प्रकार का चमत्कार पाया जाता है। ऐसे वंशों में, चारही पाँच वर्ष के बालकों में, विरक्ति और भक्ति के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इस लोक के चार पाँच वर्षों के संस्कार से ही इतना परिणाम बालक पर होना असम्भव है। जान पड़ता है कि यह संस्कार पूर्वजन्मों का होता है। अस्तु। सूर्याजी पन्त का भी यही हाल था। बालपन ही से उनमें भगवद्भक्ति और विरक्ति तथा सद्गुणों के चिह्न प्रकट होने लगे थे। बारह वर्ष की उम्र से उनकी भक्ति सूर्यनारायण पर जम गई थी। वे पटवारी का सरकारी काम तो करते ही थे; पर उनका शेष सारा समय सूर्यनारायण की उपासना में ही व्यतीत होता था। इस प्रकार ३६ वर्ष की अवस्था तक उन्होंने सूर्यदेव का अनुष्ठान किया। कहते हैं कि अन्त में सूर्यनारायण ने, प्रसन्न होकर, स्वयं अपनी इच्छा से, उन्हें दो पुत्र होने का वरदान दिया। शाके १५२७ (सन् १६०५) में सूर्याजी पन्त के प्रथम पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम गंगाधर रक्खा गया। यही आगे चलकर "श्रेष्ठ" और "रामीरामदास" के नामों से प्रसिद्ध हुए। उनके जन्म के दो ढाई वर्ष बाद, शाके १५३० (सन् १६०८ ई० के अप्रेल में) कील नामक संवत्सर में, चैत्र शुक्ल ९ के दिन, दोपहर के समय, अर्थात् ठीक रामजन्म के समय, साध्वी राणूबाई और सूर्याजी पंत के दूसरे पुत्र का अवतार हुआ। उसका नाम नारायण रक्खा गया। यही नारायण श्रीसमर्थ रामदास स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हैं और यही आज हमारे प्रस्तुत लेख के चरितनायक हैं। जबसे सूर्याजी पन्त के यहाँ उनका जन्म हुआ तबसे उनके घर में सुख, समृद्धि और शान्ति की बढ़ती होने लगी। उस समय महाराष्ट्र प्रान्त में एकनाथ महाराज बड़े प्रसिद्ध और ब्रह्मज्ञानी साधु थे। सूर्याजी पंत अपनी स्त्री राणूबाई सहित प्रति वर्ष उनके दर्शनों के लिए जाते थे। सूर्याजी पन्त जब उनके यहाँ से दर्शन करके बिदा होने लगते तब एकनाथ स्वामी राणूबाई को यही आशीर्वाद देते कि तुम्हारी कुक्षि से दो महात्मा पुत्र उत्पन्न होंगे। इस वर्ष, समर्थ रामदास स्वामी का जन्म होने पर, सूर्याजी पन्त कुटुम्ब सहित फिर उनके दर्शन को गये। एकनाथ महाराज ने अपने यहाँ कई दिन तक रखकर उनका अतिथि-सत्कार किया और उनके बिदा होते समय वे यह भविष्यद्वाणी, सूर्याजी पन्त और राणूबाई को सम्बोधन करके, बोले, "तुम धन्य हो; तुम्हारी कुक्षि धन्य है; और तुम्हारा वंश भी धन्य है। तुम्हारी उपासना और भक्ति अनुपम है, इसी लिए हनुमान्‌जी के अंश से यह बालक तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुआ है। शिव के अंश से एक प्रसिद्ध छत्रपति राजा महाराष्ट्र में अवतीर्ण होने वाला है। उसके द्वारा तुम्हारा यह पुत्र भूभार हरण करेगा और जनोद्धार करेगा। हमारे प्रारम्भ किये हुए धर्मकार्य की सम्पूर्णता इसी के हाथ में है। अब हम अपना अवतार समाप्त करने वाले हैं।" यह भविष्यद्वाणी कहने के कुछही दिन बाद एक नाथ महाराज का निर्वाण हुआ।

बाल्यावस्था, विद्याभ्यास और मंत्रोपदेश।

समर्थ बालपन में सदा प्रसन्नचित्त और हास्यवदन रहते थे। रोना तो वे कभी जानते ही न थे। वे बहुत शीघ्र बोलने और चलने लगे थे। शरीर सुदृढ़ और तेजस्वी था। वे बड़े नटखट और उपद्रवी थे। सदा खेलकूद में निमग्न रहते और क्षण भर भी एक स्थान में न रहते थे। चपलता उनके रोम रोम में भरी हुई थी। बानर की तरह यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ फिरते रहना और अपने साथ के लड़कों को मुँह चिगाड़ कर बिराना और चिढ़ाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी उनका एक खेल था। उनके माता पिता ने जब देखा कि ये बहुत उपद्रव करते हैं तब उन्होंने बाल समर्थ को भैयाजू के यहाँ पढ़ने को बैठा दिया; पर भैयाजू के यहाँ उस समय जितनी शिक्षा दी जाती थी उतनी शिक्षा का ज्ञान उन्होंने थोड़े ही दिनों में कर लिया और फिर इधर उधर खेलने कूदने लगे। गाँव के लड़कों को साथ लेकर गोदावरी के किनारे जाते और वहाँ वृक्षों पर, बन्दर की तरह, चढ़ जाते। एक डाल से दूसरी डाल पर आना तो उन्हें बहुत सहज था। कभी कभी वे किसी बड़े वृक्ष की चोटी पर चढ़ कर उसे हिलाते थे। वृक्षों के फल स्वयं तोड़ कर खाते और अपने साथियों को खिलाते थे। कभी कभी वे वृक्ष के ऊपर ही से, नीचेवाले लड़कों को फलों की गुठलियाँ फेंक फेंक कर मारते थे। वृक्ष पर चढ़ने का उनका साहस देख कर सब लोग आश्चर्य करते। उनके साथी तो, उनको, वृक्ष पर चढ़ कर डाल हिलाते हुए देख कर, बहुधा चिल्लाया करते कि "अरे! अब यह गिरा-गिरा-गिरा!" पानी में ऊँचे पर से कूदना और तैरना भी उन्हें बहुत पसन्द था। इस प्रकार वे गाँव के बाहर खेला करते थे। इसके सिवा, जितनी देर वे गाँव में रहते उतनी देर भी उनका यही हाल रहता था। कभी इस छप्पर पर से उस दीवार पर कूदते और कभी किसी वृक्ष पर से किसी के घर में कूद पड़ते! सारांश, उनकी बाललीला देख कर यदि लोग उन्हें हनुमान्‌जी का अवतार समझते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं। बहुत लोग समझते हैं कि जो लड़के बहुत खिलाड़ी और चपल होते हैं वे आगे, अवस्था के कुछ प्रौढ़ होने पर, बड़े प्रतिभाशाली निकलते हैं। समर्थ के विषय में भी यह अनुमान बहुत मिलता है। पाँचवें वर्ष में सूर्याजी पन्त ने उनका यज्ञोपवीत बड़ी धूमधाम के साथ किया।

यज्ञोपवीत के बाद उनके पिता ने उनकी शिक्षा के लिए एक वैदिक ब्राह्मण नियत किया। समर्थ ने उसी ब्राह्मण के पास, अपने घर में रह कर, उत्तम अक्षर लिखना, नित्य नैमित्तिक कर्म और कुछ संस्कृत का अभ्यास किया। उन्हीं दिनों में उनके पिता सूर्याजी पन्त का स्वर्गवास हो गया। दोनों भाइयों ने पिता का उत्तरकार्य किया। उस समय से समर्थ के ज्येष्ठ बन्धु गंगाधर उपनाम "श्रेष्ठ" उनके विद्याभ्यास में दृष्टि रखते थे। समर्थ के ग्रन्थों को देख कर यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि वे संस्कृत के पूर्ण पंडित थे; तथापि "उपनिषद् और भागवत" के समान कठिन ग्रन्थों से वे अच्छी तरह परिचित थे। इस बात का उल्लेख उन्होंने अपने "दासबोध" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में, पहले दशक के पहले ही समास में, किया है। उनके अध्ययन के सम्बन्ध में इतनाही कहा जा सकता है कि उन्हें संस्कृत का अर्थ अच्छी तरह समझने भर का ज्ञान अवश्य था। इसके सिवा, उनका बहुश्रुत अगाध था।

समर्थ रामदास स्वामी यों तो बालपन ही से भगवद्भक्त थे; पर पिता के देहान्त होने पर उनमें और भी अधिक विरक्ति आ गई। समर्थ के ज्येष्ठ बन्धु श्रेष्ठ का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। महाराष्ट्र के लोग जिस प्रकार समर्थ को हनुमान् का अवतार मानते हैं उसी प्रकार उनके ज्येष्ठ बन्धु को वे सूर्य का अवतार समझते हैं। श्रेष्ठ भी, अपनी वंश परम्परा के अनुसार, श्रीराम के भक्त और उपासक थे। वे भी अनेक लोगों को मंत्रोपदेश देकर भक्तिमार्ग में प्रवृत्त करते थे। एक बार एक मनुष्य उनके पास मंत्र लेने के लिए आया। श्रेष्ठ ने अनुग्रह पूर्वक उसे मंत्रदीक्षा देकर भक्तिमार्ग का उपदेश दिया। यह देख कर समर्थ अपने बन्धु से कहने लगे कि हमें भी आप मंत्र दीजिए। उनके बन्धु ने उत्तर दिया कि आपका वय अभी छोटा है। मंत्रोपदेश के लिए जो पात्रता चाहिए वह अभी आप में नहीं है। इस प्रकार का उत्तर सुन कर समर्थ अपने ग्राम के बाहर, गोदावरी के किनारे, हनुमान् के मन्दिर में जाकर उनकी प्रार्थना करने लगे। कहते हैं कि उनकी भक्ति और निष्ठा देख कर हनुमानजी ने, उनके ऊपर कृपा करके, दर्शन दिये और कहा कि आप अभी मंत्र पाने के लिए इतनी शीघ्रता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों करते हैं। परन्तु जब समर्थ ने उपदेश देने के लिए बहुत आग्रह किया तब हनुमान्‌जी ने उन्हें वहीं रामचन्द्रजी का दर्शन कराया। रामचन्द्रजी ने उन्हें "श्रीराम जय राम जय जय राम" इस त्रयोदशाक्षरी मंत्र का उपदेश दिया और आज्ञा दी कि, "सारी पृथ्वी में यवन छाये हुए हैं। अनीति का राज्य है, दुष्ट लोग अधिकारमद से मतवाले होकर साधुओं को सता रहे हैं। धर्म का ह्रास हो रहा है, इस लिए आप वैराग्य-वृत्ति से कृष्णा तीर रह कर उपासना और ज्ञान की वृद्धि करके, लोकोद्धार करें।" इस प्रकार श्रीराम से मंत्रोपदेश और आज्ञा पाकर बाल समर्थ को परम सन्तोष हुआ। उनकी माता और बन्धु को जब यह हाल मालूम हुआ तब वे अत्यन्त हर्षित हुए।

विवाह-प्रसंग।

जिस प्रकार माता अपने पुत्र के लिए अनेक उत्साह की इच्छायें रखती है उसी प्रकार वह एक यह भी प्रबल इच्छा रखती है कि लड़के का विवाह शीघ्र होजाना चाहिए। इसी नियम के अनुसार समर्थ की माता राणूबाई भी अपने पुत्र नारायण (बाल समर्थ) के विवाह की चिन्ता करने लगीं। विवाह की बातें सुन कर नारायणजी बहुत चिढ़ते और नाना प्रकार से विरक्ति व्यक्त करते थे। एक बार विवाह की चर्चा छिड़ने पर वे घर से भाग कर जंगल में चले गये। उनके ज्येष्ठ बन्धु श्रेष्ठ बहुत समझा बुझाकर उन्हें घर ले आये। उनकी यह चाल देख कर माता राणूबाई को बड़ी चिन्ता हुई। श्रेष्ठ अपने कनिष्ठ बन्धु नारायण की विरक्ति देख कर पहले ही समझ गये थे कि यह विवाह नहीं करना चाहता। उन्होंने अपनी माता को बहुत प्रकार से समझाया; पर वे बार बार यही कहतीं कि नारायण का विवाह अवश्य होना चाहिए। अवसर पाकर एक दिन माता राणूबाई अपने नारायण को एकान्त स्थान में ले गईं और मुख पर हाथ फेर कर, बड़े लाड़-प्यार से बोलीं, "बेटा! तू मेरा कहना मानता है या नहीं?" बालक समर्थ ने उत्तर दिया, "मातु श्री, इसके लिए क्या पूछना है? आपका कहना न मानेंगे तो मानेंगे किसका? कहा भी है "न मातुः परं दैवतम्," यह सुन कर माता राणूबाई बोलीं, "अच्छा तो विवाह की बात चलने पर ऐसा पागलपन क्यों करता है? तुझे मेरी शपथ है "अन्तर पट" पकड़ने तक तू विवाह के लिए इन्कार न करना।" माता की यह बात सुन कर समर्थ बड़े विचार में पड़े। कुछ देर तक सोच विचार कर उन्होंने उत्तर दिया, "अच्छा, अन्तरपट पकड़ने तक मैं इन्कार न करूँगा।" भोली भाली बिचारी माता! समर्थ के दाँव-पेंच उसे कैसे मालूम होते? राणूबाई ने समझ लिया कि लड़का विवाह करने के लिए तैयार होगया। उन्होंने जब यह बात अपने बड़े पुत्र श्रेष्ठ से बतलाई तब वे कुछ हँसे और प्रकट में सिर्फ़ इतनाही कहा, "क्यों न हो!"

जब देखा गया कि लड़का विवाह करने के लिए राज़ी है तब सबकी सम्मति से एक कुलीन और प्राचीन सम्बन्धी कुल की कन्या से विवाह निश्चित किया गया। लग्नतिथि के दिन श्रेष्ठ सारी बारात लेकर, बड़ी धूम धाम के साथ कन्या के पिता के यहाँ पहुँचे। सबके साथ समर्थ भी आनन्दपूर्वक गये। सीमन्तपूजन, पुण्याहवाचन आदि लग्नविधि होते समय श्रेष्ठ और समर्थ, दोनों भाई, आपस में एक दूसरे की ओर देख कर, मन्द मन्द हँसते जाते थे। कुछ समय के बाद अन्तरपट पकड़ने का अवसर आया। ब्राह्मणों ने मंगलाष्टक पढ़ना प्रारम्भ किया। सब ब्राह्मण एक साथ ही "सावधान" बोले। समर्थ ने सोचा कि मैं सदा सर्वदा सावधान रहता हूँ; फिर ये लोग "सावधान, सावधान" कहते ही हैं; इसलिए इस शब्द में अवश्य कुछ कुछ भेद होना चाहिए। मातुश्री की आज्ञा अन्तरपट पकड़ने तक की ही थी। वह भी पूर्ण हो गई। मैं अपना वचन पूरा कर चुका। अब मैं यहाँ क्यों बैठा हूँ? मुझे सचमुच सावधान होना चाहिए। इस प्रकार मन में विचार कर के समर्थ एकदम खड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मण्डप से उठ कर भगे! कई लोग उनके पीछे दौड़े; पर वे हाथ नहीं आये। इधर लग्नमण्डप में बड़ा शोर गुल मचा। कुछ शान्त होने पर, ब्राह्मणों ने लड़की का दूसरा विवाह कर देने के लिए शास्त्राधार दिखला कर सम्मति दी। समर्थ के भगने का हाल जब उनकी माता को मालूम हुआ तब वे बहुत दुःखित हुईं। श्रेष्ठ ने उनका समाधान किया और कहा कि आप कोई चिन्ता न करें। नारायण कहीं न कहीं आनन्द से रहेगा।। मैं पहले ही कहता था कि उसके विवाह के प्रयत्न में न पड़ो। अस्तु; जो हुआ सो हुआ!"

टाकली में तपश्चर्या।

विवाह-समय से सावधान होकर समर्थ पहले दो चार दिन अपने गाँव जाँब की पंचवटी में छिपे रहे; वहाँ से वे नासिक पंचवटी को चले गये। आज कल रेलगाड़ी से यात्रा करनेवालों को उस समय के प्रवास-संकटों का अनुमान नहीं हो सकता। सोचना चाहिए कि बारह वर्ष के बालक को, शाके १५४२ में (सन् १६२० में), जाँब से नासिक-पंचवटी तक, सैकड़ों मील की यात्रा करने में, कौन कौन और किस किस प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ा होगा। भर्तृहरिजी ने ठीक कहा है:—

मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम्।

कार्य करनेवाला पुरुषार्थी और साहसी महात्मा सुख-दुःख की परवा नहीं करता। इस प्रकार के महात्माओं के सुलक्षण बालकपन से ही झलकने लगते हैं। नासिक पहुँच कर पंचवटी में श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन कर के समर्थ वहाँ से पूर्व की ओर दो तीन मील पर टाकली नामक गाँव में गये। वहाँ गाँव के बाहर एक पुराने और विस्तृत वृक्ष की घनी छाया में कुटी बनाकर रहने लगे।

टाकली में रह कर समर्थ ने तप करना प्रारम्भ किया। प्रातःकाल उठ कर गोदावरी स्नान करने जाते और वहाँ दोपहर तक कटिपर्यन्त जल में खड़े होकर जप करते थे। दोपहर के बाद पंचवटी में मधुकरी-भिक्षा माँगने जाते और श्रीरामचन्द्र जी का नैवेद्य लगाकर भोजन करते थे। इसके बाद कुछ समय तक भजन करते और फिर सायंकाल होते ही जप और ध्यान में निमग्न हो जाते थे। उनका सब समय मंत्र, पुरश्चरण और भजन, अर्थात् ईश्वराराधना, में व्यतीत होता था। वे किसी से बात भी न करते थे और न किसी के घर जाते थे। पानी में खड़े रहने के कारण, कमर के नीचे सब देह गल कर सफ़ेद होगई थी। पैरों और घुटनों की खाल और मांस मछलियाँ नोच नोच कर खा जाया करती थीं। समर्थ का मन उस समय जप और ध्यान में इतना एकाग्र हो जाता था कि मछलियों के नोचने पर उन्हें कुछ मालूम ही न होता था। सच है; महात्मा लोग यदि देह के सुख-दुःख की ओर ध्यान देने लगें तो उन्हें ईश्वर-प्राप्ति कैसे हो? और वे जनोद्धार कैसे कर सकें?

इस प्रकार समर्थ ने बारह वर्ष तक नाना प्रकार की कठिन तपस्या की। अन्तःकरण की शुद्धि कठिन तपश्चर्या ही से हो सकती है। 'मन ही बन्ध और मोक्ष का कारण है'। इस चंचल मन को, बिना तप किये, कोई अपने अधीन नहीं कर सकता। जो मन को जीत लेता है उसमें अद्भुत सामर्थ्य अवश्य आ जाता है। काम, क्रोध, मोह, लोभ, आदि मन के प्रमुख विकारों के अधीन होकर मनुष्य नाना प्रकार के दुष्कर्म करते हैं। तपश्चर्या कर के शरीर को बलात् क्लेशित करने से ही मन ढीला पड़ता है और अन्त में मनोजय प्राप्त होता है। जब तक मनुष्य मन का जय नहीं कर पाता तब तक, ईश्वर-प्राप्ति करने के मार्ग में, अनेक संकट आकर विघ्न डालते हैं। अतएव सिद्ध है कि बिना तप किये—बिना कष्ट उठाये—परमात्म-स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता, मोक्ष नहीं मिल सकता, अथवा स्वतंत्रता के दर्शन नहीं हो सकते। समर्थ स्वयं अपने अनुभव से 'दासबोध' में इसी कष्ट या तप की महिमा गाते हैं:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कष्टेंविण फल नाहीं। कष्टेंविण राज्य नाहीं।
आधीं कष्टाचें दुःख सोसिती। ते पुढें सुखाचें फल भोगिती।

कष्ट किये बिना फल नहीं मिलता, कष्ट किये बिना राज्य नहीं मिलता, जो पहले कष्ट (तप) के दुःख सहते हैं वे आगे सुख के फल भोगते हैं, अस्तु।

श्रीसमर्थ ने बारह वर्ष तक, बड़ी दृढ़ता के साथ, तप किया। इतने समय में उन्हें पुराने ऋषि-मुनियों की तरह, अनेक बार बड़े बड़े मायावी संकटों से सामना करना पड़ा; पर उन्होंने विघ्नों की कुछ भी परवा न की। तप करते समय श्रीराम ने, कई बार दर्शन देकर, उन्हें यह आज्ञा दी कि, तुम अब तपश्चर्या मत करो, कृष्णा-तीर जाकर जनोद्धार का काम प्रारम्भ करो।" परन्तु समर्थ ने यही दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक पूर्ण रीति से मनोजय प्राप्त न हो जायगा—जब तक शरीर में जनोद्धार करने के लिए सामर्थ्य न आ जायगा—तब तक मैं उस कार्य में हाथ न डालूँगा, अन्त में जब उन्होंने देखा कि अब मनोविकारों के लिए हमारे शरीर में स्थान नहीं है तब उन्होंने तपस्या बन्द कर दी। और टाकली में जिस कुटी में रह कर वे तपस्या करते थे उसमें हनुमान्‌जी की मूर्ति स्थापित कर के उसकी पूजा करने के लिए, उद्धव गोस्वामी को नियत कर दिया। इसके बाद वे पैरों में पादुका, हाथ में माल, काँख में कूबड़ी और तुम्बा, मस्तक में टोपी और शरीर में कफनी पहन कर, तीर्थयात्रा तथा देशपर्यटन करने के लिए निकले।

तीर्थयात्रा और देशपर्यटन।

जिस प्रकार तीव्र तपस्या कर के मनोजय प्राप्त करने की आवश्यकता है उसी प्रकार लोकोद्धार या धर्मस्थापना करने के लिए, देशपर्यटन कर के स्वदेश-स्थिति, और तीर्थयात्रा कर के धर्म की दशा, जानने की भी ज़रूरत है। सारा देश घूम कर उद्धारकों को यह जानना पड़ता है कि जनसमाज की क्या दशा है और तीर्थों में जाकर इस बात की जाँच करनी पड़ती है कि स्वधर्म का ह्रास करनेवाले कौन कौन कारण धर्मप्रचार में विघ्न डालते हैं। समर्थ ने सारे भरतखण्ड का प्रवास, उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक, पैदल ही किया। उनके पास एक फूटी कौड़ी भी न थी। उदरनिर्वाह के हेतु उन्होंने भिक्षावृत्ति स्वीकार की। स्मरण रखना चाहिए कि भिक्षावृत्ति स्वीकार करने में केवल उदरनिर्वाह ही करना उनका मुख्य हेतु न था। भिक्षा की महिमा गाते हुए वे अपने "दासबोध" में कहते हैं :—

भिक्षा ह्मणजे निर्भयास्थिती। भिक्षेनें प्रगटे महंती।
स्वतंत्रता ईश्वरप्राप्ती। भिक्षागुणे।

भिक्षा निर्भय स्थिति है, भिक्षा से महंती प्रकट होती है और भिक्षा ही से ईश्वर मिलता है। इतना ही नहीं; उससे 'स्वतंत्रता' भी मिल सकती है। भिक्षा माँगने का हेतु यदि केवल पेट भरना ही न हो; उसका यदि यह हेतु हो कि स्वदेशदशा का ज्ञान प्राप्त किया जाय तो इसके लिए निस्सन्देह भिक्षावृत्ति से बढ़ कर अन्य कोई अच्छा साधन नहीं है। रामदास स्वामी, अपने अनुभव से, इस विषय पर, दासबोध में एक जगह और कहते हैं। इस पद्य में वे भिक्षा माँगने का उद्देश बिलकुल स्पष्ट किये देते हैं :—

कुग्रामें अथवा नगरें। पाहावीं घरांचीं घरें।
भिक्षामिसें लाहान थोरें। परीक्षन सोडावीं॥

कुग्राम हों चाहे नगर (शहर) हों; घर घर देख डालना चाहिए और भिक्षा के 'मिस' से छोटे बड़े, सब प्रकार के लोगों की, परीक्षा कर डालना चाहिए। ऐसा करने से लोगों के सुख-दुख मालूम होते हैं। उनके ज्ञान का लाभ अपने को मिलता है और अपने विचार उन पर प्रकट करने का मौक़ा मिलता है। आज कल हमारे देश में भिखारियों की कुछ कमी नहीं है; पर खेद है कि, समर्थ के मत के अनुसार, एक भी भिखारी देश में निकलना कठिन है। अस्तु।

नाना प्रकार के ग्रामों, नगरों, वनों और पर्वतों में घूमते हुए श्रीरामदास स्वामी पहले काशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पहुँचे। वहाँ गंगास्नान करके, विश्वनाथजी के दर्शन करने के लिए वे मन्दिर में गये। वहाँ कुछ ब्राह्मण रुद्राभिषेक कर रहे थे। समर्थ का वेष, गेरुए रंग की कफनी और सिर पर जटा आदि, देखकर उन ब्राह्मणों ने समझा कि यह कोई ब्राह्मणेतरजाति का वैरागी है। उन्होंने समर्थ को लिंग के पास जाने नहीं दिया। समर्थ ने कहा, "अच्छा है, श्रीरामचन्द्र जी की इच्छा!" इतना कहकर वे, जहाँ खड़े थे वहीं से, श्रीविश्वेश्वर जी को, और सब ब्राह्मणों को, साष्टांग प्रणाम कर वहाँ से लौट पड़े। उनके लौटते ही रुद्राभिषेक करनेवाले ब्राह्मणों को, जिन्होंने मन्दिर में जाने नहीं दिया था, विश्वनाथ जी का लिंग न देख पड़ने लगा! इस कारण सब ब्राह्मण बहुत घबराये। परन्तु अन्त में वे समझ गये कि हो न हो; यह उसी वैरागी का चमत्कार है जिसका हमने अपमान किया है। उनमें से कुछ ब्राह्मण दौड़ते हुए बाहर गये और समर्थ से प्रार्थना करके उन्हें मन्दिर में ले आये। सब ब्राह्मणों ने पश्चात्ताप युक्त श्रीविश्वनाथ की प्रार्थना की और रामदास स्वामी से क्षमा माँगी। थोड़ी देर के बाद फिर उन्हें लिंग यथावत् देख पड़ने लगा। समर्थ ने कुछ दिन तक काशी में निवास करके नाना प्रकार का अनुभव प्राप्त किया। वहीं से उन्होंने प्रयाग और गया की भी यात्रा की। काशीजी में एक घाट का नाम हनुमान्घाट होने पर भी उसमें हनुमान्जी की मूर्ति न थी; इसलिए उन्होंने वहाँ हनुमान्जी की मूर्ति स्थापित की।

काशी से चलकर समर्थ अपने परम प्रिय इष्ट देव श्रीराम की जन्मभूमि अयोध्याजी में गये। वहाँ सरयू नदी में स्नान करके श्रीराम और हनुमान् आदि देवताओं के दर्शन किये। कुछ दिन वहाँ रह कर अयोध्या-माहात्म्य का श्रवण किया। इसके बाद मथुरा, वृन्दावन, गोकुल आदि तीर्थक्षत्रों में स्नान, देवदर्शन, और कुछ दिन रह कर संतसमागम, आदि करते हुए वे द्वारकाजी की ओर पधारे। द्वारका में पहुँच कर श्रीनाथजी के दर्शन किये, तीर्थ का विधि-विधान किया। पिंडार्क, प्रभास आदि क्षेत्रों में गये और वहाँ भी तीर्थ-विधि की। समर्थ ने अपने दासबोध में लिखा है कि चाहे जैसा महंत हो, उसे आचार की रक्षा अवश्य करनी चाहिए। यदि वह स्वयं आचार-भ्रष्ट है और दूसरों को आचार की शिक्षा देता है तो वह महन्त कैसा? वे कहते हैं कि तीर्थों में जाकर मुख्य देव को पहचानना चाहिए। जो लोग तीर्थ करते हैं; पर अन्तरात्मा को नहीं पहचानते—उसमें श्रद्धा नहीं रखते—उनके लिए तीर्थों में क्या रक्खा है? वही पानी और पत्थर की भेट है! ऐसे लोग व्यर्थ के लिए तीर्थ करके कष्ट उठाते हैं! द्वारका जी में समर्थ ने श्रीराम की मूर्ति स्थापित की और प्रभास क्षेत्र में, रामदासी सम्प्रदाय का मठ स्थापन करके, अनेक लोगों को भक्तिमार्ग में प्रवृत्त किया।

प्रभास क्षेत्र से चलकर, पंजाब के ग्राम-नगरों में घूमते हुए, श्रीरामदास स्वामी श्रीनगर पहुँचे। वहाँ नानकपंथी साधुओं से भेट हुई। वे साधु अध्यात्मज्ञान में परम निपुण थे। जब कोई साधु उनके यहाँ आता तब वे वेदान्त विषयक प्रश्न उससे अवश्य पूछते थे। परन्तु जो साधु उनकी शंकाओं का समाधान न कर पाता था उसका वे उपहास कभी न करते थे। समर्थ का आगमन सुनकर वे उनके दर्शन के लिए गये और भक्तिपूर्वक कुछ अध्यात्म प्रश्न उनसे पूछे। जिन शंकाओं का उत्तर बड़े बड़े अनुभवी साधु न दे सकते थे उनको श्रीसमर्थ ने, बात की बात में, हल कर दिया। नानकपंथी साधुओं को उनका अध्यात्मनिरूपण सुनकर बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने रामदास स्वामी को, बड़े आदर के साथ, एक मास तक अपने यहाँ रख लिया। जब समर्थ वहाँ से बिदा होने लगे तब उन सिक्ख गुरुओं ने समर्थ से मन्त्रदान के लिए प्रार्थना की। समर्थ ने कहा, "आप लोगों के गुरु वही नानकजी हैं जिन्होंने मुसल्मानों से भी राम राम कहलाया है! वह उपदेश क्या तुम्हारे लिए कम है? नानकपंथ की सार्थकता करो!" इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहकर समर्थ हिमालय की ओर चले। हिमालय में उन्होंने बदरीनाथ, केदारनाथ और उत्तरमानस की यात्रा की। हिमालय के एक अति उच्च शिखर पर 'श्वेतमारुती' का स्थान है। वहाँ, शीत या हिम की अधिकता के कारण, कोई पुरुष नहीं जा सकता। श्रीयुत शंकराचार्यजी वहाँ तक गये थे। श्रीसमर्थ भी वहाँ तक गये और हनुमान्‌जी के दर्शन करके, कुछ दिन में, लौट आये। इस प्रकार उत्तर और पश्चिम की यात्रा पूर्ण करके, अनेक मनोरम तथा विकट स्थानों में घूमते हुए, वे एकदम पूर्व की ओर जगन्नाथजी को चले।

जगन्नाथपुरी में पहुँचने पर पद्मनाभ नामक एक ब्राह्मण समर्थ के शरण में आया। उसे मंत्र देकर समर्थ ने रामदासी सम्प्रदाय का उपदेश दिया और पुरी में श्रीराम की मूर्ति स्थापित करके, मठ की व्यवस्था उसी ब्राह्मण को सौंप दी। जगन्नाथ जी के दर्शन करके, पूर्वी समुद्र के किनारे प्रवास करते हुए, वे दक्षिण में रामेश्वर को गये। वहाँ देव-दर्शन और पूजन-अर्चन करके समर्थ जी लंका तक गये। लंका में पहुँचकर उन्हें रामायणकालीन विभीषण और हनुमान् आदि रामसेवकों का स्मरण आया। वहाँ कई दिन रह कर उन्होंने विभीषण आदि की प्रार्थना विषयक कुछ कविता रची। लंका से लौट कर वे आदि रंग, मध्यरंग, अंतरंग, श्रीजनार्दन और दर्शसेन आदि क्षेत्रों में जाकर देवदर्शन करते हुए, गोकर्ण-महाबलेश्वर में पहुँचे। वहाँ कुछ दिन रहकर शेषाद्रि पर्वत पर गये; और फिर श्रीवेंकटेश, श्रीशैल्यमल्लिकार्जुन, बाल नरसिंह, पालक नरसिंह, शचोटी, वीरभद्र और पुराण-प्रसिद्ध पञ्चलिंगों के दर्शन करके किष्किन्धा नगरी में आये। वहाँ पम्पासर, ऋष्यमूक पर्वत आदि रामायण-प्रसिद्ध स्थान देखकर, श्रीकार्तिक स्वामी के दर्शन को देवगिरि पर गये। वहाँ से दक्षिण काशी (करवीर क्षेत्र) को लौट आये। इसके बाद कोंकण के रास्ते से, पश्चिमी समुद्र के किनारे होते हुए, महाबलेश्वर में आकर उन्होंने श्रीपंढरीनाथ भीमाशंकर के दर्शन किये और श्रीत्र्यम्बकेश्वर को जाकर वे नासिक-पंचवटी में लौट आये।

इस प्रकार बारह वर्ष पैदल प्रवास करके श्रीसमर्थ ने विविध प्रकार के आधिभौतिक तापों का अनुभव प्राप्त किया, अनेक प्रकार के लोगों से मिले, भिन्न भिन्न जनस्वभावों की परीक्षा की, भाँति भाँति के सामाजिक, धार्मिक और राजकीय आचार-व्यवहार देखे, भिन्न भिन्न प्रान्तों के राज्य-प्रबन्ध का अवलोकन किया, नाना प्रकार से सन्तसमागम करके अध्यात्मज्ञान का रहस्य जाना और प्रकृति के अनेक चमत्कारिक और रमणीय दृश्यों का निरीक्षण किया। सारांश, स्वदेश-सम्बन्धी सारी आवश्यक बातों का ज्ञान, देश-पर्यटन और तीर्थयात्रा करके, उन्होंने प्राप्त किया। इस सम्पूर्ण ज्ञान का परिपाक उनके ग्रन्थों में हुआ है। विशेष कर उनका "दासबोध" तो इसी प्रकार के अनुभव जन्य ज्ञान का समुद्र है। ऐसी कोई भी बात नहीं है जो उसमें न हो। स्थान स्थान पर प्रकृति के मनोहर और अनूठे दृश्यों का प्रतिबिम्ब इस ग्रन्थ में मिलता है। उन दृश्यों के उदाहरण देने के लिए यहाँ स्थान नहीं है।

पंचवटी में आकर समर्थ ने पंचगंगा का स्नान किया और श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन करके प्रार्थना की कि, "बारह वर्ष की तीर्थयात्रा करके मैंने आपकी कृपा से अनेक स्थानों में देवताओं के दर्शन किये, तीर्थ-सलिल से स्नान किये और नाना प्रकार के विधि-विधान किये—इन कर्मों का फलस्वरूप पुण्य मैं आज आपके चरणों में अर्पण करता हूँ।" विचार करने की बात है कि समर्थ कितने निस्पृह महन्त थे, वे कैसे कर्मयोगी थे। निष्काम कर्म करने का इससे अच्छा और कौन उदाहरण मिल सकता है? समर्थ अपने लिए कुछ भी नहीं चाहते थे। वे जानते थे कि हम जो कुछ बुरा या भला काम करते हैं वह सब अपने लिए नहीं—उस ईश्वर के लिए करते हैं—उस आत्माराम के लिए करते हैं; और इसीलिए उन्होंने अपने सम्पूर्ण धर्म-कर्मों का पुण्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज राम के पवित्र चरणों में अर्पण कर दिया। श्रीकृष्ण परमात्मा अर्जुन से कहते हैं :—

यत्करोसि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७ ॥
भ० गी० अ० ९,

हे कौंतेय! तुम जो भोजन करो, जो हवन करो, जो दान करो, जो तप करो; (कहाँ तक कहें) जो कुछ करो, सब मुझे अर्पण करो। ठीक यही बात समर्थ के आचरण में पाई जाती है।

पंचवटी से निकल कर समर्थ, पैठण गाँव में एकनाथ महाराज की समाधि के दर्शन करते हुए, गोदावरीप्रदक्षिणा के लिए चले। मार्ग में जब वे गोदावरी नदी के किनारे अपनी जन्मभूमि जाँब के निकट पहुचे तब उन्हें अपनी माता और श्रेष्ठ बन्धु का स्मरण आया। इधर उनकी माता अपने प्रिय पुत्र नारायण के वियोग से बिलकुल व्याकुल हो गई थीं। शोक के कारण रोते रोते उनके नेत्र भी चल बसे थे। ऐसी दशा में उन्हें अपने नारायण का निजध्यास सा लग गया था। चौबीस वर्षों के बाद, समर्थ, भ्रमण करते हुए, अपने गाँव में पहुँचे और हनुमान् जी के दर्शन करके, अपने घर के प्रथम बड़े दरवाज़े से आगे बढ़ कर, उन्होंने "जय जय श्रीरघुवीर समर्थ" कह कर भिक्षा माँगी। उनकी माता ने, जो सामने दालान में बैठी हुई थीं, अपनी बहू (श्रेष्ठ की पत्नी) को आज्ञा दी कि वैरागी को भिक्षा दे जाओ। यह सुन कर समर्थ, आगे बढ़ कर, अपनी माता से बोले, "अन्य वैरागियों की तरह भिक्षा लेकर लौट जानेवाला आज का वैरागी नहीं है।" दूसरी बार समर्थ के बोलने पर माता ने उनका शब्द पहचान लिया और शीघ्र ही उठ कर कहने लगीं, "क्या नारायण आया है?" इतना सुनते ही रामदास स्वामी माता के चरणों में लिपट गये। माता और पुत्र दोनों के नेत्रों में प्रेमाश्रु की धारा उमड़ आई। माता राणूबाई जब अपने पुत्र के मस्तक और मुख पर प्यार का हाथ फेरने लगीं तब उनके हाथ में बढ़े हुए जटाजूट और दाढ़ी का स्पर्श हुआ और वे बड़े आश्चर्य से बोलीं, "अरे नारायण! तू कितना बड़ा होगया! मेरी आँखों से तो कुछ सूझ नहीं पड़ता; अपने नारायण को कैसे देखूँ?" अपनी मा के ये दीन वचन सुन कर समर्थ का हृदय भर आया। उन्होंने ज्योंही अपना पवित्र हाथ माता के नेत्रों पर फिराया त्योंही उन्हें फिर पूर्ववत् सब कुछ देख पड़ने लगा। उस समय राणूबाई के सामने आनन्द की लहरें उठने लगीं। उन्होंने आश्चर्यित होकर पूछा, "बेटा! यह भूत-विद्या तूने कहाँ से सीखी?" समर्थ ने तत्काल एक पद बनाकर इस प्रश्न का उत्तर दिया। उस पद का सारांश इस प्रकार है:—

"जो भूत अयोध्या के महलों में संचार करता था, जो भूत कौशल्या के स्तनों में लगा था, जिस भूत के चरण का स्पर्श होने से पत्थर की स्त्री हो गई और जिस भूत ने और भी इसी प्रकार के अनेक चमत्कारपूर्ण कार्य किये वही सर्व महाभूतों का प्राणभूत मुझ में संचार करता है। यह विद्या उसी की कृपा का फल है।" माता और पुत्र में इसी प्रकार का वार्तालाप हो रहा था; इतने ही में समर्थ के ज्येष्ठ बन्धु श्रेष्ठ भी बाहर से आ गये। समर्थ उन्हें देखते ही चरणों पर गिर पड़े। दोनों भाइयों ने आपस में प्रेम-पूर्वक आलिंगन किया। श्रीरामदास स्वामी कई दिन तक अपने घर में आनन्द-पूर्वक रहे। प्रति दिन भोजन करके दोनों भाई एक साथ बैठते और अध्यात्मज्ञान विषयक वार्तालाप किया करते थे। समर्थ की बुद्धि का चमत्कार देख कर श्रेष्ठ को परम हर्ष हुआ। समर्थ जब अपनी माता से बिदा होने लगे तब माता ने बहुत शोक प्रकट किया। यह देख कर उन्होंने अपनी माता को वही आत्मबोध बतलाया जो भागवत में कपिल मुनि ने अपनी माता को दिया है। उस बोध से माता राणूबाई को बहुत शान्ति मिली। इसके बाद रामदास स्वामी, अपने बन्धु से आज्ञा लेकर, गोदावरी प्रदक्षिणा के लिए आगे बढ़े। समुद्रसंगम पर गोदावरी के सात प्रवाह हो गये हैं। प्रत्येक प्रवाह की दाहिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर से परिक्रमा करते हुए वे दक्षिण किनारे पर गये। वहाँ से त्र्यम्बकेश्वर में गोदावरी के उद्गमस्थान पर जाकर, पंचवटी के दक्षिण ओर पहुँचे और वहाँ श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन करके गोदावरी-प्रदक्षिणा पूर्ण की। इस प्रकार बारह वर्ष तप और बारह वर्ष तीर्थयात्रा तथा देश-पर्यटन करके उन्होंने जनोद्धार करने का सामर्थ्य प्राप्त किया। इस समय उनका वय छत्तीस वर्ष का था।

धर्मप्रचार और जनोद्धार का कार्य।

श्रीसमर्थ पहले पंचवटी से अपने तपस्थान राकली को आये और वहाँ उद्धव स्वामी से भेट करके, श्रीरामचन्द्रजी के आदेशानुसार, कृष्णा के तीर धर्मप्रचार और लोकोद्धार का कार्य प्रारम्भ करने के लिए, वे दक्षिण देश को चले। पहले पहल वे महाबलेश्वर को गये। और वर्षा ऋतु के चार महीनों में वे वहीं रहे। वहाँ उन्होंने हनुमान्‌जी का मठ स्थापन करके अपना सम्प्रदाय बढ़ाया और अनेक लोगों को भजनमार्ग में लगाया। अनन्त भट्ट, दिवाकर भट्ट आदि कई विद्वान् वहाँ उनके शिष्य बने। महाबलेश्वर से चल कर, सितारा ज़िले में रामदासी सम्प्रदाय का प्रचार करते हुए, वे वाई क्षेत्र में पहुँचे और वहाँ कृष्णा नदी के तट पर, एक अश्वत्थ-वृक्ष के नीचे रहने लगे। वाई क्षेत्र के पण्डित और शास्त्री उनका अध्यात्मज्ञान देख कर उनके शरण में गये और दीक्षा लेकर भजनमार्ग में लगे। वहाँ भी समर्थ ने हनुमान्‌जी की मूर्ति स्थापित की और मठ का प्रबन्ध एक शिष्य के अधिकार में कर दिया। वाई क्षेत्र से चल कर वे माहुली में पहुँचे। वहाँ गाँव के बाहर, एक पहाड़ी के ऊपर, हनुमान्‌जी के मन्दिर में रहने लगे। प्रातःकाल उठ कर वे कृष्णा नदी में स्नान करके संध्या आदि नित्यकर्म करते और दोपहर होने पर बस्ती में मधुकरी माँग कर भोजन करते थे। इसके बाद, फिर उसी पर्वत पर आकर भजन, जप और ध्यान में मग्न रहते थे। वहाँ कभी कभी उनके समकालीन संतजन एकत्र होकर धर्म चर्चा किया करते थे। प्रत्येक साधु अपने अपने अनुभव की बातें बतलाते और सब मिल कर हरिभजन और कीर्तन करते थे। श्रीरामदास स्वामी का अनुपम सामर्थ्य देख कर उसी समय संत लोग उन्हें "समर्थ" कहने लगे। कुछ दिन माहुली में रह कर वे कहाड़ को चले गये। कहाड़ प्रान्त में उनके अलौकिक चमत्कारों को देख कर अनेक लोग उनके शरण में आये। उस प्रान्त के शाहपुर नामक ग्राम में उन्होंने हनुमान्‌ का मन्दिर बनवाया और उसमें "प्रताप मारुति" की स्थापना करके उसका प्रबन्ध बाजीपन्त नामक एक मुखिया को सौंप दिया। बाजीपन्त* ने सकुटुम्ब मंत्रोपदेश लिया। उनकी स्त्री सतीबाई समर्थ पर बहुत भक्ति रखती थीं। समर्थ ने कई प्रकार से भयानक चमत्कार दिखला कर सती बाई की परीक्षा ली; पर वे बराबर अपनी भक्ति पर दृढ़ रहीं। यह देख कर समर्थ बहुत प्रसन्न हुए और कहते हैं कि उन्हें साक्षात् हनुमान् का दर्शन कराया।

इस प्रकार धर्म का प्रचार करते हुए समर्थ चाफल नामक ग्राम के समीप पहुँचे। वहाँ वे पहले कई वर्षों तक वन-पर्वतों की दरी, खोरी और कन्दराओं में घूमते रहे। उस समय बस्ती में वे बहुत कम आते जाते थे। जब कभी वे लोगों के सामने निकलते तब अवधूत दशा में रहने के कारण लोग उन्हें पागल समझते थे। परन्तु वास्तव में वे पागल नहीं थे; उनका चित्त अखंडरूप से भगवान् में लगा हुआ था। श्रीसमर्थ के दासबोध में उनके आत्म-चरित का आभास कई स्थानों में पाया जाता है। एक समास में उन्होंने निस्पृह महन्त लोगों के बर्ताव का वर्णन किया है। उसी समास में वे कहते

*इनके पुत्र भिकाजी गोस्वामी समर्थ के एक मुख्य महंत थे। वे तंजौर के मठ में रहते थे। समर्थ के निर्याण के बाद शाके १६०४ में उन्होंने समर्थ का मूलचरित्र ग्रन्थ ओवी छन्द में लिखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि मैंने यह सब पहले किया है; फिर लोगों को बतलाया है। यह समास बड़े महत्त्व का है। चाफल में रह कर, पहले वे बहुत दिनों तक किस प्रकार धर्मप्रचार और लोकोद्धार का कार्य करते रहे—यह बात उक्त समास के पढ़ने से प्रकट होती है। इस समास के दो पद्य हम यहाँ पर उद्धृत करते हैं। उनसे पाठक गण यह अनुमान कर सकेंगे कि लोकोद्धार का प्रयत्न वे किस चतुराई के साथ करते थे।

उत्तम गुण तितुके ध्यावे। घेऊन जनास शिकवावे।
उदंड समुदाय करावे। परी गुप्तरूपें॥ १८॥
अखंड कामाची लगबग। उपासनेस लावावें जग।
लोक समजोन मग। आज्ञा इछिती॥ १९॥
दा० बो० द० ११ स० १०।

"उत्तम उत्तम गुण पहले स्वयं सीख कर फिर लोगों को सिखलाना चाहिए। प्रचण्ड समुदाय इकट्ठा करना चाहिए; पर गुप्त रूप से। काम कभी बन्द न करना चाहिए। सारे जगत् को, सारे देश को उपासना में—आत्माराम के भजन में—लगाना चाहिए। लोगों को अपने कर्तृत्व का परिचय देना चाहिए; क्योंकि लोग जब जान लेते हैं कि यह सच्चा महंत है तभी आज्ञा पाने की इच्छा करते हैं।" इस प्रकार चाफल में रह कर समर्थ ने हज़ारों शिष्य और सैकड़ों महन्त या निस्पृह तैयार किये और महाराष्ट्र के अनेक स्थानों में स्थापित किये हुए मठों में उन्हें नियत किया—इस प्रकार भजन और उपासनामार्ग की खूब वृद्धि करके समर्थ ने लोगों को स्वधर्म में प्रवृत्त किया। स्वधर्म की जागृति होते ही लोगों में स्वाभिमान और ऐक्य का अंकुर उठा। यवन या म्लेच्छ लोगों से, जिनका उस समय महाराष्ट्र में (या भारत भर में) अधिकार था, अपनी स्वतंत्रता और अपना धर्म बचाने की प्रचण्ड या तीव्र इच्छा लोगों के मन में जागृत हुई। इस प्रकार समर्थ रामदास स्वामी ने धर्म और स्वतंत्रता के विषय में उस समय लोगों में विचारक्रान्ति पैदा कर दी। यह सब हाल जिस दिन छत्रपति शिवाजी महाराज के कानों तक पहुँचा उसी दिन उनके मन में, समर्थ के समान महात्मा का दर्शन करने के लिए, तीव्र उत्कंठा उत्पन्न हुई। पर वह दर्शन हो कैसे? समर्थ स्वयं पहले पहल उनके यहाँ जानेवाले न थे; और न वे एक स्थान में रहते ही थे जो छत्रपति महाराज सहज में दर्शन कर सकते। अन्त में जब शिवाजी को समर्थ-दर्शनलालसा अनिवार्य होगई तब वे स्वयं एक दिन अपने महल से निकल कर, जंगल पहाड़ों में समर्थ का खोज करते हुए, निकले। बड़ी कठिनाई से कवन में एक उदुम्बर वृक्ष के नीचे शिवाजी को समर्थ के दर्शन हुए। वहीं शिवाजी महाराज ने मंत्रोपदेश लिया। उसी दिन से सद्गुरु और मुमुक्षु—शुद्ध स्वातंत्र्येच्छुक—शिष्य, दोनों मिलकर धर्मप्रचार और लोकोद्धार का कार्य करने लगे। समर्थ और शिवाजी का सम्बन्ध नैसर्गिक, बड़ा गहन, विस्तृत और विचार करने योग्य है। इस विषय का भली भाँति विचार करने के लिए एक स्वतंत्र ग्रन्थ या अनेक निबन्धों की आवश्यकता है। इसका कुछ विवेचन हम आगे चल कर करेंगे।

इस प्रकार चाफल स्थान में रहकर समर्थ ने प्रचण्ड शिष्य-समुदाय इकट्ठा किया और वहाँ शाके १५७० (सन् १६४८) में उन्होंने शिवाजी की सहायता से एक मन्दिर बनवाकर, श्रीरामचन्द्रजी की स्थापना की। समर्थ के अनेक शिष्य और महन्त उसी मठ में रहते थे। वे नाना प्रकार से श्रीराम का उत्सव करके धर्म की धूम मचाये रहते थे। समर्थ, अपनी इच्छा के अनुसार, कभी मठ में रहते, कभी वनपर्वतों की गुफाओं में रहते और कभी मुख्य मुख्य शिष्यों को साथ लेकर महाराष्ट्र प्रान्त में धर्म-प्रचार करते फिरते थे। सारे काम करते हुए भी उनका मन अखंडरूप से आत्माराम में लगा रहता था। एक जगह वे स्वयं कहते हैं:—

दास डोंगरीं राहातो। यात्रा देवाची पाहातो।
देवभक्तासवें जातो। ध्यानरूपें॥

"दास (रामदास स्वामी) पर्वतों में रहता है; और वहीं से बैठे बैठे, श्रीराम का बस्ती में निकला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ जुलूस देखा करता है। इतना ही नहीं, वह ध्यानरूप से देवभक्तों के साथ उस जुलूस में शामिल भी होता है!" एक बार समर्थ कुछ शिष्यों को साथ लेकर करवीर प्रान्त में धर्मप्रचार करने को गये। वहाँ अनेक स्थानों में उनके भजन कीर्तन को सुनकर लोग शरण आये। उस प्रान्त के मुखिया और शिवाजी के सूबेदार पाराजी पन्त ने दीक्षा ली। उनकी बहन समर्थ के भक्तिभाव को देखकर, अपने दो लड़कों के साथ, समर्थ की सेवा में रहने लगी। उसके ज्येष्ठ पुत्र का नाम अम्बादास था। वह लिखने पढ़ने में बहुत तीव्र था, इसलिए समर्थ ने उसे अपना लेखक बनाया। यही अम्बादास समर्थ के मुख्य शिष्य और महन्त बनकर, कल्याण स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए। समर्थ ने जितने ग्रन्थ रचे वे सब कल्याण स्वामी ही के लिखे हुए हैं। समर्थ पद्य बोलते जाते थे और कल्याण स्वामी लिखते जाते थे। चाफल के आस पास वन पर्वतों में बैठ कर वे ग्रन्थ-रचना किया करते थे।

चाफल के लोगों ने जब एक बार बहुत आग्रह किया तब वे पंढरपुर की यात्रा को गये। वहाँ विट्ठलजी (श्रीकृष्ण) के दर्शन किये। समर्थ के उपास्य देव श्रीराम थे, इसलिए पंढरपुर में उन्हें अयोध्या की भावना होने लगी और विट्ठलजी की मूर्ति उन्हें राममूर्ति सी देख पड़ने लगी। यात्रा से लौटने पर कुछ दिनों के बाद, श्रीशिवाजी के बहुत आग्रह करने पर समर्थ सितारे के समीप सज्जनगढ़ पर रहने लगे। वहाँ शिवाजी महाराज नित्य उनके दर्शन को आते थे। एक दिन समर्थ की माता और बन्धु का यह पत्र आया कि बहुत दिन से भेंट नहीं हुई, इसलिए एक बार फिर मिल जाओ। शाके १५७४ (सन् १६५२) में रामनवमी के उत्सव पर वे फिर अपनी जन्मभूमि को गये और अपनी माता तथा बन्धु के साथ कुछ दिन रह कर फिर सज्जन-गढ़ को लौट आये।

शाके १५७५ (सन् १६५३) में वे सज्जनगढ़ से कुछ शिष्यमण्डली साथ लेकर तैलंग प्रान्त में भ्रमण करते हुए रामेश्वर तक गये। तैलंग प्रान्त में, [illegible] मास रह कर, उन्होंने अपने सम्प्रदाय की बहु वृद्धि की। तैलंगी भाषा सीख कर उन्होंने उ भाषा में भी अनेक कवितायें रचीं और उनका व प्रचार किया। अनेक प्रकार के अनोखे चमत्का दिखला कर बड़े बड़े मानी पंडितों को गर्वगलि किया। अनेक पण्डित उनके शरण में आये और भजनमार्ग में लग गये। तंजौर में राजा व्यंकोज (शिवाजी के भाई) ने समर्थ को अपने यहाँ पर मास तक बड़े आदर से रक्खा और मंत्रदीक्षा ली। वहाँ भी समर्थ ने एक मठ स्थापित किया और उस सतीबाई के पुत्र भिकाजी बाबा को नियत किया। तंजौर से आगे चलकर वे रामेश्वर को गये। मंचर क्षेत्र में राघवेन्द्र स्वामी से मिले। इस प्रकार तीर्थ यात्रा और भ्रमण करते हुए, मठ स्थापन करके अप अपूर्व चमत्कारों से लोगों को स्वधर्म की ओ लगाते हुए, समर्थ कुछ दिनों के बाद, अपने पूर्वआ चाफल में लौट आये। उनका आगमन सुनते ह शिवाजी महाराज वहाँ उनसे मिलने आये और अप साथ सज्जनगढ़ पर ले गये।

फुटकर बातें।

कुछ दिन के बाद उनकी माता का अन्तकाल आया। यह बात समर्थ ने अपने अन्तर्ज्ञान से पन्द्र दिन पहले ही समझ ली। जिस समय उनकी माता ने अपने ज्येष्ठपुत्र से कहा, "मेरा नारायण अन्तकाल में यहाँ नहीं है।" उसी समय वहाँ पहुँच कर समर्थ ने अपनी माता के चरणों पर सिर रक्खा। उन्हों कहा कि मैं अब आपके समीप आ गया; आप सु और शान्ति से प्राणत्याग कीजिए। शाके १५७ (सन् १६५५) में उनकी माता का स्वर्गवास हुआ उनका उत्तर-कार्य हो जाने पर समर्थ फिर सज्ज गढ़ को लौट आये।

शाके १५८० (सन् १६५८) में श्रीसमर्थ निजा नन्द स्वामी के उत्सव में कहाड़ को गये। उत्सव समाप्त होने पर वे लौट कर सज्जनगढ़ को आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। उनके साथ पच्चीस तीस शिष्य भी थे। दोपहर के समय में भूख लगने पर समर्थ की आज्ञा लेकर शिष्यों ने कुछ जुआर के भुट्टे तोड़े और भून कर खाने लगे। समर्थ भी शिष्यों के पास ही एक आसन पर बैठे थे। इतनेही में खेतों का मालिक दौड़ता हुआ आया और समर्थ को, सबका प्रधान समझ कर, जुआर के डंठल से पीटने लगा। यह देख कर सब शिष्यों ने मिल कर उसे पकड़ा और मारने लगे। समर्थ ने कहा, उसे मारना उचित नहीं है। छोड़ दो। इसके बाद वह मालगुज़ार अपने घर चला गया और समर्थ, सब शिष्यों के साथ सितारे में शिवाजी के यहाँ चले आये। दूसरे दिन शिवाजी महाराज जब समर्थ को मंगल स्नान करा रहे थे तब उनकी पीठ पर मार की बड़तें शिवाजी को देख पड़ीं। उन्होंने समर्थ से इस विषय में पूछा; पर कुछ उत्तर नहीं मिला। भोजन के बाद जब श्रीसमर्थ शयनागार में विश्राम कर रहे थे तब, बहुत प्रयत्न करने पर, एक शिष्य से शिवाजी महाराज को मार्ग का सब समाचार मिला। उस मालगुज़ार की मूर्खता पर शिवाजी महाराज को बहुत क्रोध आया। उन्होंने अपने नौकरों को आज्ञा दी कि उस मालगुज़ार को, मुसकें बाँध कर, अभी ले आओ। समर्थ शयनागार में पड़े हुए ये सब बातें सुन रहे थे। उन्होंने शिवाजी महाराज को अपने पास बुला कर कहा कि उस मालगुज़ार को बँधवा कर मत बुलाओ और मार-पीट मत करो। इसके अतिरिक्त जो दण्ड हम कहें वही उसे दो। शिवाजी ने समर्थ की आज्ञा शिरोधार्य की। दरबार लगने पर वह मालगुज़ार उपस्थित किया गया। वहाँ आने के पहले ही उसे मालूम हो गया था कि जिसे उसने साधारण वैरागी समझ कर पीटा था वे छत्रपति शिवाजी महाराज के मान्य गुरु समर्थ श्रीरामदास स्वामी हैं। दरबार में आतेही उसने समर्थ को दिव्य और उच्च सिंहासन पर बैठे देखा। वह बिचारा भय के कारण काँपने लगा और समर्थ के चरणों पर गिर कर रोने लगा। समर्थ ने आशीर्वाद दिया कि तेरा खेत तेरे लिए अच्छा फलेगा। इसके बाद वह उठ कर शिवाजी के पैरों में लिपट गया और क्षमा माँगने लगा। समर्थ के आज्ञानुसार उन्होंने उसके अपराध को क्षमा किया और वह खेत, उस मालगुज़ार को वंश परम्परा के लिए दे दिया। यह देख कर दरबारी लोग आश्चर्य करने लगे। सच है; क्यों न आश्चर्य करें? उपकार का बदला, उपकार के द्वारा देनेवाले बहुत लोग हैं; पर अपकार करनेवाले पर भी उपकार करनेवाले केवल संत हैं। महात्मा तुलसीदासजी कहते हैं:—

तुलसी संत सुअम्बतरु, फूल फलहिं परहेत।
इततें जन पाहन हनें, उततें वे फल देत॥

वह समर्थ के नाम पर पाया हुआ खेत, उस मालगुज़ार के वंश में अब भी कायम है। धन्य है यह क्षमा और उदारवृत्ति।

समर्थ रामदास स्वामी के बन्धु श्रेष्ठ ने भी, गृहस्थाश्रम में रह कर, भक्तिमार्ग का बहुत प्रचार किया। उन्होंने "भक्ति रहस्य," "सुगम उपाय" और कुछ फुटकर कवितायें लिखीं। जब उन्हें मालूम हुआ कि अब उनका अन्त समय समीप है तब उन्होंने एक पत्र लिख कर समर्थ के पास भेजा और अपनी अन्तिम भेट के लिए बुलाया। रामनवमी के उत्सव के कुछ दिन पहले ही इस बार समर्थ अपनी जन्म-भूमि जाँब को गये और एक मास तक अपने बन्धु के निकट रह कर लौट आये। उनके लौट आने पर कुछ दिनों के बाद शाके १५९९ (सन् १६७७ ई०) में श्रेष्ठ का स्वर्गवास हो गया और उनकी पत्नी अपने पति को गोद में लेकर सती हो गई। यह समाचार सुन कर समर्थ ने, एक शिष्य को भेज कर, श्रेष्ठ के दोनों पुत्रों को अपने पास बुला लिया। यह हाल जब शिवाजी महाराज ने सुना तब वे समर्थ के समीप आये और इच्छा प्रकट की कि जाँब रियासत में और बहुत से गाँव में लगाकर उसका स्थायी प्रबन्ध कर देना चाहिए। समर्थ ने कहा कि अभी कोई ज़रूरत नहीं है; फिर देखा जायगा। इस पर शिवाजी बहुत दुःखित होकर बोले, जान पड़ता है, श्रीराम की सेवा करना मेरे भाग्य में नहीं लिखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सुन कर समर्थ ने कहा, अच्छा, अभी कुछ थोड़ा प्रबन्ध कर दो जिससे सम्प्रदाय का ख़र्च और श्रीराम के उत्सव प्रति वर्ष उचित रीति से होते रहें। आज्ञा पाने पर शिवाजी ने ३३ गाँव और प्रति वर्ष के लिए १२१ खंडी गल्ला लगा दिया। यह रियासत अभी तक श्रेष्ठ के वंशजों के अधिकार में है। हर साल कई उत्सव और सदा सर्वदा सन्त-समागम उसी रियासत के ख़र्च से होता है। धन्य है श्रीशिवाजी महाराज के समान राजाओं की उदारता! अस्तु। एक साल तक श्रेष्ठ के पुत्रों को अपने पास रख कर समर्थ ने उन्हें अनेक प्रकार की शिक्षा दी और फिर घर भेज दिया।

शाके १६०२ (सन् १६८०) चै० शु० १५ रविवार को शिवाजी महाराज स्वर्ग को पधारे। यह समाचार सुनकर समर्थ को अत्यन्त शोक हुआ। शोक क्यों न हो? शिवाजी ही के लिए रामदास स्वामी का अवतार हुआ। शिवाजी स्वयं रुद्र या शिव के अवतार माने जाते हैं। शिवाजी और समर्थ का सम्बन्ध नैसर्गिक था। परस्पर एक दूसरे की सहायता से, धर्मप्रचार और लोकोद्धार का कार्य पूर्ण करके राज्यस्थापना की। शिवाजी के वियोग के कारण समर्थ ने बाहर निकलना बिलकुल छोड़ दिया। वे अपने कमरे में ही रह कर भगवत्चिन्तन में मग्न रहते थे। सम्भाजी के राज्याभिषेक-उत्सव में श्रीसमर्थ ने स्वयं न जाकर अपने एक महन्त को भेज दिया। कुछ दिनों के बाद सम्भाजी के घोर साहसिक कर्मों का हाल सुन कर उन्होंने एक उपदेशपूर्ण पत्र लिखा, यह पत्र बड़े महत्त्व का है। उसे देखने से समर्थ के राजनीति-सम्बन्धी ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। परन्तु सम्भाजी महाराज उस समय कुसंगति में इस प्रकार फँस गये थे कि उन्होंने समर्थ के उपदेश से कोई लाभ नहीं उठाया।

समर्थ का निर्याण।

शाके १६०३ (सन् १६८१) के रामनवमी-उत्सव पर समर्थ चाफले को गये और वहाँ मन्दिर में अपने प्रिय उपास्य देव श्रीराम के दर्शन किये और हनुमान्‌जी की आज्ञा लेकर, शिविकारूढ होकर, सज्जनगढ़ को लौट आये। अन्तकाल समीप जान कर कई दिन पहले से उन्होंने अन्न का त्याग कर दिया, केवल दूध पीकर रहने लगे। उस समय यद्यपि उनका तेज बढ़ता जाता था; तथापि शरीर-क्षीणता बढ़ती ही जाती थी। इस प्रकार कुछ दिनों के बाद माघ कृष्ण अष्टमी का दिन आ पहुँचा। उस दिन समर्थ की इच्छा हुई कि अब इस बात की परीक्षा करना चाहिए कि हमारे शिष्यों में से किसी को हमारा अन्तिम दिन मालूम है या नहीं। इसी विचार से उन्होंने अपने सब शिष्यों के सामने यह अर्ध श्लोक पढ़ा :—

रघुकुलतिलकाचा येष्ट सन्निध आला।
तदुपरि भजनानें पाहिजे सांग केला॥

रघुकुल-तिलक का समय निकट आ गया है, इस लिए अब साङ्गोपांग भजन करना चाहिए। यह सुन कर उद्धव स्वामी ने तुरंत ही उस श्लोक की पूर्ति इस प्रकार की :—

अनुदिन नवमी हे मानसीं आठवावीं।
बहुत लगवगीनें कार्य सिद्धो करावीं॥

अन्तिम दिन नवमी का स्मरण रखना चाहिए और बड़ी शीघ्रता से कार्य-सिद्धि करनी चाहिए। यह श्लोकार्ध सुन कर समर्थ बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सब भजन (भक्ति-पद-गान) करने की आज्ञा दी। अष्टमी के दिन रात भर भजन की धूम मची रही। सब शिष्य जमा हुए। नवमी का दिन आया। उस दिन समर्थ स्वयं पलँग से नीचे उतर कर बैठ गये। उस समय उन्होंने, शिष्यों के बहुत आग्रह करने पर, कुछ मिश्री और दाख खा कर, थोड़ा सा निर्मल जल पान किया। थोड़ी देर के बाद शिष्यों ने पलँग पर बैठने के लिए उनसे प्रार्थना की। समर्थ ने कहा, "मुझे, पलँग पर उठा कर, रक्खो।" यह आज्ञा पाकर उद्धव स्वामी उन्हें उठाने लगे; पर वे उनसे नहीं उठ सके। यह देख कर आकाबाई नामक समर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शिष्या भी उद्धवस्वामी के साथ उन्हें उठाने लगीं; पर तब भी वे नहीं उठे। अन्त में क़रीब दस मनुष्य मिल कर उन्हें उठाने का प्रयत्न करने लगे पर विकल हुए। इसके बाद समर्थ ने सबके अलग होने की आज्ञा दी। लोगों के हटने पर जब वे वायु आकर्षण करने लगे तब सब शिष्य चिल्ला चिल्ला कर रोने लगे। समर्थ ने उन सबसे कहा "आज तक हमारे पास रह कर क्या रोनाही सीखे हो?" शिष्यों ने कहा, "सगुण मूर्ति जाती है, अब भजन किसके साथ करेंगे और बोलने की इच्छा होने पर; किससे बोलेंगे?" समर्थ ने अन्तिम उत्तर दिया, "जो मेरे पीछे मुझसे बोलना चाहे वह "दासबोध" आदि हमारे ग्रन्थ पढ़े। उन्हें पढ़ना मानो प्रत्यक्ष मुझसे बात चीत करना है।" इतना कह कर ग्यारह बार "हर हर" शब्द का उच्चारण किया और अन्त में "राम" शब्द के उच्चारण करते ही, समर्थ के मुख से तेज निकल कर, समीप स्थापित की हुई राममूर्ति के मुख में, प्रविष्ट हो गया! भजन बराबर हो रहा था। उस समय भजन की ध्वनि और बढ़ गई। इस प्रकार शाके १६०३ (सन् १६८२ ई० के फ़रवरी में) माघ कृष्ण ९ के दिन (संवत् १७३८ फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की नवमी को) महाराष्ट्र प्रान्त का एकमात्र सिद्धरत्न, साधुराज, चातुर्य्यसागर, राजनीतिज्ञ-शिरोमणि, भक्ति-ज्ञान वैराग्य का प्रत्यक्ष स्वरूप और निस्पृह महात्मा 'राम' में लीन हो गया! और 'दासबोध' में अनेक स्थानों में कहे हुए अपने इस वाक्य को अक्षरशः सत्य कर गया कि:—

..... । हरिभक्तीस सादर ह्यावें ।
मरोन कीर्तीस उरवावें । ..... ॥ १३ ॥

द० १२ स० २० ।

"सदा हरिभक्ति में तत्पर रहना चाहिए और मरने के बाद कीर्तिरूप से सदा जगत् में जीवित रहना चाहिए।" हे सद्गुरु समर्थ! आप अपने इसी वचन के अनुसार कीर्तिरूप से—और आत्मस्वरूप से भी—अमर हैं। केवल आपही अमर नहीं हैं; किन्तु असंख्य लोगों को आप अपने आदर्श से अमर कर चुके हैं, अमर कर रहे हैं, और अमर करेंगे। जब तक इस आर्यावर्त में धर्म का नाम है—जब तक हिन्दुओं को ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास है; और जब तक इस पवित्र-भूमि में "महाराष्ट्र" के नाम पर भारत-वासियों को अभिमान है तब तक आप और आपका उपदेश, इस पृथ्वी पर, अटल, अचल और अमर है।

(असमाप्त)
"त्रिमूर्ति"

नील।

ल नदी अपनी महत्त्व में ऐसी सुविख्यात है कि कोई पढ़ा लिखा भारतवासी ऐसा न होगा जो इसके नाम से परिचित न हो। हम भी बचपन से ही संसार की बड़ी बड़ी नदियों में से इसे एक जानते थे और यह सुन रक्खा था कि दो के सिवा और कोई नदी इससे बड़ी नहीं है। परन्तु इसे देखने का सौभाग्य हमें आज ही प्राप्त हुआ है। जंज़बार मुम्बासा इत्यादि अफ़्रिका के स्थानों में घूमते हुए हम इस उगंडा देश में आये तो सुना कि निकट ही नील का सोता विक्टोरिया नियञ्ज़ा नामक महान् सरोवर में से फूटता है। अतः हमने इसे देखना उचित समझा। और इस स्थान "जींजा" नामक को, जहाँ उक्त प्राकृतिक दृश्य विद्यमान है, ८ दिसम्बर १९०९ ईसवी को आये। और उसी दिन श्रीनील नदी का दर्शन किया। इस समय हम यह लेख नील नदी के किनारे बैठ कर लिख रहे हैं।

संसार की सारी ही वस्तुएँ देख देख कर हमें परमात्मा की महिमा प्रतीत होती है, परन्तु सूर्योदय होना इत्यादि प्रत्येक दिन की घटनायें या फलों फूलों की उत्पत्ति इत्यादि समय समय पर हम लोग देखते रहते हैं। इस कारण वह सब हमारे लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारण बातें हो जाती हैं। अतः असाधारण प्राकृतिक शोभायें हमारे हृदय में सहसा ईश्वर-भक्ति उत्पन्न करती हैं।

नील को अङ्गरेज़ी में Nile लिखा जाता है। अतः प्रायः वे लोग इसका उच्चारण नाइल करते हैं लेकिन वस्तुतः यह संस्कृत शब्द नीर का अपभ्रंश है। केवल र का ल हो गया है और नीर का शब्दार्थ भी जल ही है। इससे सिद्ध होता है कि अफ़्रिकान्तर्गत इस पवित्र नदी को हमारे पुरखे जानते थे और शायद उनका शासन तथा व्यापार इत्यादि भी यहाँ तक रहा हो। अतः हम यहाँ इसे नीर नाम से ही उल्लेख करेंगे।

यह नीर नद विकटोरिया नियञ्ज़ा से निकल कर उगंडा, फशोडा इत्यादि होते हुए मिश्र देश को पार करके भूमध्य सागर (मेडिटरेनियन सी) में गिरता है। इसका विस्तार चार से पाँच सहस्र मील तक हो जाता है। पाट भी बड़ी से बड़ी नदियों की तरह है।

जो विचित्रता वर्णन योग्य है वह यह है कि यहाँ जींजा में जिस स्थान पर विक्टोरिया नियंज़ा सरोवर से पानी नीर के लिए गिरता है वह स्थान देखने योग्य है। इसका नाम रिपन फ़ाल (Ripon fall) है अर्थात् किसी रिपन नामी यूरोपियन महाशय ने इसकी सूचना सबसे प्रथम यूरोपवालों को दी है। इसीलिए वे लोग इसे रिपन फ़ाल कहने लग गये। नहीं तो वस्तुतः रिपन क्या इनके सहस्रों पीढ़ी पूर्वकाल में भी यह फ़ाल (जल प्रवाह का गिराव) ऐसे का ऐसा ही मौजूद था।

यह फ़ाल इस प्रकार है कि दश पन्द्रह फ़ीट ऊँचाई से पानी नीचे गिरता है। ठीक ऐसे ही कि जैसे हम ऊपर की छत से नीचे धारा बहाते रहें। यह बात नहीं है कि ऊँची जगह से ढालू होता हुआ नीचे को शनैः शनैः पानी जावे, बरन् ऐसा ज्ञात होता है कि मानो पानी की एक दीवार सीधी खड़ी है। और इसी कारण ऐसे वेग से पानी की धार नीचे को गिरती रहती है कि हमने किसी बड़ी से बड़ी मैशीन या इन्जिन को भी इस शीघ्रता से सञ्चालन (मोशन Motion) करते नहीं देखा। फिर पानी भी इतनी अधिकता में गिरता है कि देखनेवाले को सहसा यही ख़याल होने लगता है कि दो चार मास में सारा सरोवर ख़ाली हो जाना सम्भव है। ऐसे ऐसे चार फ़ाल (Fall) हैं वे इस प्रकार हैं कि प्रथम फ़ाल के पश्चात् कुछ पृथ्वी पथरीली वृक्षों सहित आती है। उसके आगे दूसरा फ़ाल है। फिर पृथ्वी वृक्षों सहित है। पश्चात् तीसरा नाम मात्र का छोटा फ़ाल है। फिर पृथ्वी वृक्षसहित आती है और इससे आगे चौथा अन्तिम फ़ाल है। यदि हम इसका नक़्शा खींचें तो यों होगा :—

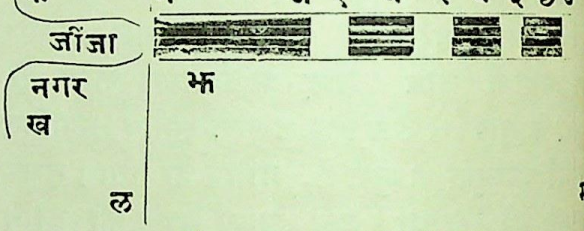

इस नकशे में क ख वे सड़कें हैं जिन के द्वारा हम इस नीर नदी के सोते तक पहुँचते हैं। ग से ४ अङ्क तक की रेखा ही नीर का सोता या रिपन फ़ाल समझो और ल से म तक इस नीर नदी का यहाँ पर पाट समझो। यही ल म इस स्थान से मिश्र तक के भूभाग को दो भागों में विभक्त कर देता है।

ग से ज तक की काली लकीर नदी के बीच में ऊँचा रास्ता है। रास्ता क्या पहाड़ी है। अब सड़क के सदृश बना दिया गया है। इस पर चलते समय हमारे दाहिने ओर झ पर नीर नदी और बाईं ओर ठ पर सरोवर विक्टोरिया नियंज़ा का पानी बहता है। अस्तु। ग से चलकर ज तक चले जाते हैं तो वहाँ खड़े होकर या बैठकर हम नं० १ प्रथम फ़ाल को देखते हैं। ऊपर हमने जो जो जगह काली कर दी हैं वे घ च छ पृथिवी या पहाड़ी हैं जिन पर वृक्ष मौजूद हैं और जो ख़ाली जगहें नं० १, २, ३, ४ हैं वे ही पानी के गिराव या सोता हैं। प्रथम फ़ाल के तो हम ज स्थान पर अत्यन्त निकट बैठ सकते हैं परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे फ़ालों के निकट हम न जा सकते हैं और न कदाचित् कभी कोई मनुष्य गया ही होगा। हाँ यदि सरोवर विक्टोरिया नियंज़ा के दूसरे ओर से स्टीमर ले जा कर कोई स्थान त पर उतर पड़े तो अन्तिम चौथे फ़ाल के निकट बैठ सकता है। अतः दूसरे तीसरे फ़ाल को तो हम केवल दूर ही से देख सकते हैं।

ज स्थान पर बैठते ही जल-प्रवाह का घनघोर नाद कानों को बहिरा किये डालता था और उस पानी के अत्यन्त तीव्र वेग को देख देख कर बार बार मन में यही भाव उठता था कि मनुष्य तो क्या बड़े से बड़े पशु—हाथी इत्यादि तथा बड़े बड़े जहाज़ या संसार के कोई भी पदार्थ—यहाँ डाले जायँ तो टुकड़े टुकड़े उड़ जाने के सिवा उनका कहीं नामोनिशान भी न मिले। मैं उस स्थान पर अधिक समय न ठहर सका। परन्तु झ स्थान पर पानी के तट पर बड़े बड़े पत्थर पड़े हैं जहाँ जा कर देर तक बैठ कर इस प्राकृतिक दृश्य का आनन्द लूटता रहा।

यहाँ से चारों फ़ाल दिखाई देते हैं, क्योंकि तिरछी नज़र पड़ती हैं और मैं बैठा बैठा यह विचार कर रहा था कि यहाँ पर इस प्रकार पानी का तीव्र गिराव लाखों वर्षों से ऐसाही रात दिन अपने काम में प्रवृत्त होगा। मानुषी कल या पेंच तो कभी कभी विश्राम भी पाते हैं, परन्तु यह प्राकृतिक मैशीन कभी एक क्षण भर भी बन्द नहीं होती। फिर मैं सोचने लगा कि श्रीत्रिलोक-पावनी गङ्गा जी का सोता गङ्गोत्री क्या ऐसाही होगा या और कुछ। यद्यपि मैंने उसे नहीं देखा तथापि एक देखनेवाले से सुना है कि पर्वत के ऊपर से एक धारा गिरती है। ऊपर तो कोई जा नहीं सकता। परन्तु नीचे जहाँ पर वह धारा गिरती है उसी स्थान का नाम गोमुखी या गङ्गोत्री है और वहाँ पर ही गङ्गा जी की पूजा होती है। निदान हमारे इस सिद्धान्तानुसार कि "मन चंगा तो कठौती में गङ्गा" हमने इस नीर सोते को ही गङ्गोत्री मान कर तीन आचमन करके वेद पाठ कर लिया और समझ लिया कि हमने अफ़्रीका में बैठे हुए भी गङ्गा-जल पान कर लिया।

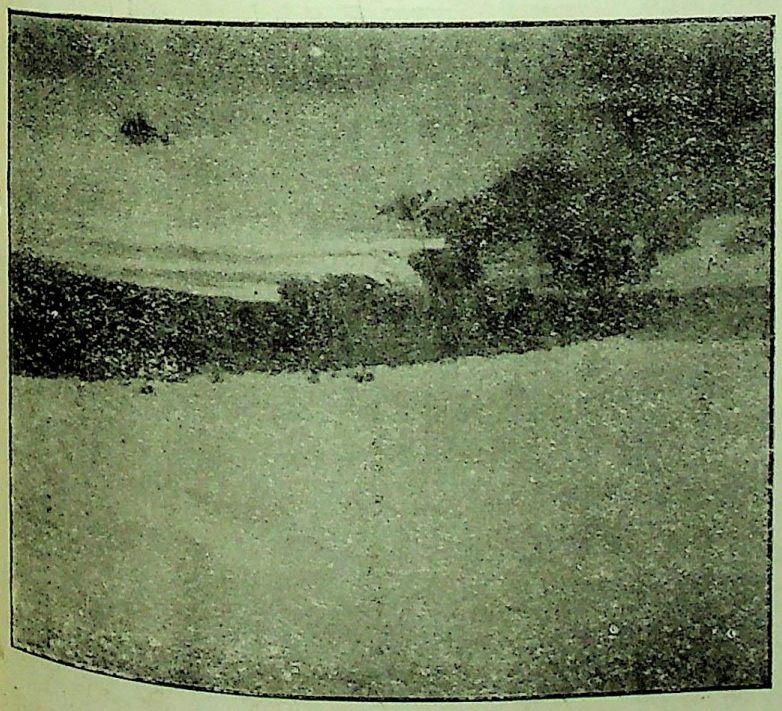

रिपन फ़ाल।

हम समझते हैं कि गङ्गा-माहात्म्य बनाने वाला यदि इस देश में आकर इस स्थान के प्राकृतिक महत्त्व को देखता तो इसका माहात्म्य उससे अधिक न सही तो बराबर अवश्य लिख देता।

लोग यहाँ यों कहते हैं कि यूरोप वालों की जाँच से यह ज्ञात हुआ है कि प्रथम (१) फ़ाल में प्रवाह की तीव्रता चार सहस्र ४००० घोड़ों की शक्ति की है। दूसरे (२) में साढ़े सात सहस्र ७५००, तीसरे (३) में १५०० डेढ़ सहस्र और चौथे (४) में ३५०० साढ़े तीन सहस्र है। और इन फ़ालों से दिन प्रति दिन उस स्थान पर पानी की अत्यन्त तीव्रता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण जो गड्ढा पड़ गया है उसका गहराव सौ फ़ीट आँका जाता है। यद्यपि वहाँ कोई जा नहीं सकता परन्तु लहरों की उछाल इत्यादि से ये सब बातें अनुमान की जाती हैं। पाट यहाँ पर नीर नद का ल से म तक आधे मील से अवश्य अधिक होगा (पौन मील समझो)। इससे पाठक जान सकते हैं कि भारत की बड़ी बड़ी नदियों का अपनी प्रौढ़ावस्था में जितना पाट है उतना इस नीर नद को आरम्भ या बाल्यावस्था ही में प्राप्त है। फिर वह आगे आगे जाकर एक बड़े पाटवाला सागरतुल्य नद क्यों न बन जाता। इस स्थान से सुनते हैं कि २० मील आगे जाकर एक और फ़ाल इस नीर नद में मौजूद है जो हमारे उक्त रिपन फ़ाल से बड़ा कहा जाता है। परन्तु वहाँ पर जङ्गल और सिंह इत्यादि की बहुतायत होने से हमारे भारतवासी उसे देखने का साहस नहीं कर सके। अलबत्ता एक हिन्दी ने बतलाया कि आगे चलकर यहाँ से १८० मील दूरी पर जो फ़ाल है उसे उन्होंने देखा है और उनके कथनानुसार वहाँ पर तो कम से कम ५० पचास फ़ीट की ऊँचाई से पानी गिरता है और बहुत अधिक पाट है। सो नीर में नौकागमन में ये फ़ाल ही बड़े बाधक हैं। यहाँ से ५० मील तक तो यह ऐसी तेज़ और पथरीली है कि नौकागमन सर्वथा असम्भव है। आगे नाव चलती है। परन्तु उक्त बड़े फ़ाल से दस पन्द्रह मील इधर ही रुकना पड़ता है अर्थात् सौ मील से कुछ अधिक मार्ग नौका द्वारा तै कर सकते हैं, पश्चात् शायद एक सौ मील के आगे फिर नौका और स्टीमर चलते हैं। सुना जाता है कि अँगरेज़ लोग इस फ़िकर में हैं कि सरोवर विक्टोरिया नियंज़ा से एक नहर काट दें जिसके द्वारा स्टीमर वहाँ तक जा सके कि जहाँ से फिर इस नीर नद में नौकागमन सहज हो जाता है। परन्तु ऐसा करना यदि असम्भव नहीं तो महा कठिन अवश्य है। पाठकों को ज्ञात हो कि यहाँ से छः सौ मील आगे नीर के किनारे गन्डोकोरो तथा अन्य अन्य स्थान ऐसे हैं जहाँ हमारे हिन्दी व्यापारी मौजूद हैं। यद्यपि संख्या न्यून ही सही, परन्तु हैं अवश्य। कहीं कहीं एक ही दो हिन्दी दूकान डाले पड़े हैं।

इस रिपन फ़ाल के ऊपर नक़्शे में घ च छ स्थान पथरीले चट्टान हैं और उन प्रत्येक पर झाड़ियाँ विद्यमान हैं। ये या तो कोई लतायें हैं या छोटे छोटे वृक्ष होंगे। अब प्रश्न होता है कि ये झाड़ियाँ कितने दिनों की पुरानी होंगी। क्या जिस प्रकार फ़ाल लाखों वर्षों का पुराना होगा उसी प्रकार ये झाड़ियाँ भी हो सकती हैं? ऐसा तो सम्भव नहीं। इस पर एक महाशय ने उत्तर दिया कि जब यह वृक्ष मर जाता होगा तो इसके बीज वहीं गिरते होंगे, अतः फिर दूसरा उपज उठता होगा। इस प्रकार जन्मजन्मान्तर के चक्कर से वह झाड़ी वहाँ पर यदि लाखों वर्षों से विद्यमान भी हो तो आश्चर्य नहीं।

लोग कहते हैं कि अनेक स्टीमर और नौकायें इस फ़ाल के भँवर में पड़कर नष्ट हो चुकी हैं। इस फ़ाल से ठ की ओर केवल आधे मील ही पर इस जींजा का बन्दरगाह बना है, जहाँ स्टीमर खड़ा होता है। बहुत सम्भव है कि वह कभी भूल से कुछ और आगे बढ़ जाय तो बस फिर लाख यत्न उलटा फिराने का करने पर भी आशा नहीं कि वह मौत के मुँह से निकल कर बच सके; क्योंकि यहाँ चारों ओर से पानी खिच खिँच कर उक्त १, २, ३, ४, फ़ालों में बड़ी तीव्रता से गिरता है। इस कारण जो कुछ यहाँ आ जायगा वह बहाव में आकर्षित होता चला जायगा।

जींजा बन्दर से ही सीधी सड़क लगी है और एक लकड़ी गड़ी है जिस पर अँगरेज़ी में "रिपन फ़ाल रोड" लिखा है। जो लोग यहाँ केवल इसे ही देखने आवें वे एक घण्टे में इस कार्य से निवृत्त हो कर उसी स्टीमर से वापस जा सकते हैं।

यहाँ आने का मार्ग इस प्रकार है कि बम्बई से स्टीमर पर बैठकर मुम्बासा जाय, जिसका तीसरे दरजे का भाड़ा २५) रुपये से भी इन दिनों बहुत घट गया है। कारण कि दो स्टीमर कम्पनियों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा डाट है। यह ३००० मील का समुद्री सफ़र १२ से १५ दिनों तक में समाप्त होगा। मुम्बासा से तीसरे दरजे रेलवे का टिकट कसूमो या पोर्ट फ्लारेस्स थान तक का १८) में मिलता है। यह लग भग ६०० मील का सफ़र हुआ और दो रात एक दिन में यह तै होगा। मुम्बासा से शुक्रवार वाली ट्रेन में आना चाहिए। कसूमो सरोवर, विक्टोरिया नियञ्ज़ा का बन्दरगाह और उगंडा रेलवे (जो मुम्बासा से चलती है) का अन्तिम स्थान (टर्मिनस प्वायन्ट) है। यहाँ प्रति रविवार दश बजे दिन को स्टीमर तैयार रहती है। रेल से ८ बजे उतर कर झट स्टीमर पर बैठ सकते हैं। फिर वह सोमवार को इन्टबे, मङ्गल को कम्माला पोर्ट (लुजीरो स्थान, जहाँ से ७ मील पर कम्माला नामी इस देश की पुरानी राजधानी है) और बुध को इस जींजा स्थान को आ जावेगा। यहाँ प्रायः ११ बजे स्टीमर आता है और दूसरे दिन वृहस्पति को प्रातः काल ५ बजे जाता है। अतः मुसाफ़िर ११ बजे दिन से शाम तक खूब अच्छे प्रकार रिपनफ़ाल इत्यादि की यहाँ सैर करके रात को स्टीमर में जाकर सो सकते हैं और ऐसा करनेवालों को माल असबाब स्टीमर से बाहर ले जाने की कुछ आवश्यकता नहीं है। इस स्टीमर का भाड़ा तीसरे दरजे के आने का ५) रुपया है। वृहस्पति को यहाँ से चल कर स्टीमर शुक्र को कसूमो वापस पहुँच जाता है और यात्री उसी दिन ट्रेन पर सवार होकर रविवार को फिर मुम्बासा वापस पहुँच सकते हैं। इस प्रकार मुम्बासा समुद्री तट से यहाँ तक हम केवल दश दिनों (शुक्र से अगले रविवार तक) में घूम सकते हैं। यद्यपि आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व कई मास में आ सकना सम्भव था क्योंकि सन् १८९७ के पूर्व रेल न थी और १९०१ से पूर्व स्टीमर न थी। मुम्बासा से यहाँ तक में उक्त पाँच के सिवा दो तीन स्थान (नैरोबी, वोई, नकूरो) देखने योग्य हैं। अतः इस सारे एक सहस्र मील लम्बे भूभाग में केवल आठ नगर आबाद हैं जो यूरोपियनों और इण्डियनों से बसे हैं। हिन्दू सब मिला कर इस प्रान्त भर में बीस सहस्र से अधिक नहीं हैं (पहले अधिक थे), परन्तु यह थोड़ी संख्या भी यहाँ वह काम कर रही है जो शरीर में मन किया करता है। इनका सविस्तर हाल फिर कभी सुनाऊँगा।

इस नीर नद ने अपने उत्पादक या माता विक्टोरिया नियञ्ज़ा सरोवर पर कितना प्रभाव डाला है, यह बात इसी से स्पष्ट हो जायगी कि यदि यह नीर न निकलता तो इस सरोवर का पानी मीठे के स्थान में खारी होना सम्भव था। अफ़्रीक़ा की दूसरी छोटी छोटी झीलें भी खारी पानी से ही भरी पड़ी हैं। ऐसी अवस्था में इतनी भारी झील को जैसी कि यह विक्टोरिया नियंज़ा है, मीठे पानीवाली देखकर हमने आश्चर्य-सहित एक विज्ञानवित् मित्र से प्रश्न किया। उत्तर यह मिला कि समुद्र का पानी अत्यन्त खारा क्यों हो गया। इसका कारण यह है कि सारे संसार की नदियाँ पृथिवी के अनेक विकार ला लाकर उसमें गिराती रहती हैं, और पानी तो भाफ़ होकर ऊपर उठता रहता है परन्तु वे पार्थिव पदार्थ समुद्र ही में पड़े रहा करते हैं। यदि समुद्र में से नदियाँ या नहरें पृथिवी में जाती होतीं तो उनके द्वारा वह खारीपन चला जाता, परन्तु समुद्र गहरा होने के कारण ऐसा नहीं हो सकता। यही कारण समुद्र के खारी होने का है। अब सरोवर विक्टोरिया नियंज़ा पर यही बात लगा देखो कि इसके इर्दगिर्द की सहस्रों मील भूमि का सारा पानी पार्थिव विकारों-सहित इसमें आता है, परन्तु नीर नद के सोतों (रिपनफ़ाल) द्वारा वह इसमें से बाहर चला भी जाता है। अतः जो विकार आता है वह निकलता रहता है। इसी कारण वह खारा नहीं वरन् मीठा हो रहा है। वाह नीर! तुझे धन्य है कि तू संसार में सपूत लड़का सिद्ध हो रहा है अर्थात् अपनी माता के खारेपन दोष को दूर करके प्रत्युपकार चुकाता हुआ संसार के मनुष्यों को यह शिक्षा दे रहा है कि तुम अपने माता-पिताओं की यदि और कुछ सेवा न भी कर सको तो कम से कम पितृऋण से तो अवश्य ही उऋण हो जाया करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सायन्स जाननेवाले का यह भी कथन है कि यदि यह नीर नद का सोता विकटोरिया नियंज़ा से न फूटता तो या तो वह सरोवर इस भूभाग को ही डुबा देता या किसी न किसी ओर इसकी प्राकृतिक नहरें निकल ही जातीं। क्योंकि यदि इस जल-कोष से ख़र्च होने का कोई मार्ग न होता और आमदनी होती ही रहती, तो जब इसका कोष बढ़ते बढ़ते इसे जल से बिलकुल पूरा कर देता तो सम्भव था कि जल और बढ़ कर सारे सरोवर के चारों तरफ़ (तीन सौ मील लम्बाई और डेढ़ सौ चौड़ाई के इर्द गिर्द) जल-मयी कर देता। फिर न जाने यह सरोवर बढ़ता बढ़ता कितने भूभाग को अपनालेता और शायद मुम्बासा में जाकर समुद्र ही से मुलाक़ात करने की ठान लेता। इन दोषों से बचाने के लिए प्रकृति देवी ने यह रिपनफ़ालरूपी एक ऐसी मैशीन बना दी है कि जिसके कारण वह महान् सरोवर कदापि अपनी मर्यादा उल्लङ्घन नहीं करने पाता। अतः उस महान् खिलाड़ी की इस अपरम्पार महिमा को सहस्रों वार दण्डवत् है।

मङ्गलानन्द पुरी।

महाकवि सेनापति।

सेनापति दीक्षित परशुराम के पौत्र और गंगाधर के पुत्र थे। ये महाशय कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके गुरु का नाम हीरामणि था। सेनापति जी गंगा-तट के वासी थे। इनका जन्म लग भग सन् १५९० ई० के हुआ होगा। इन्होंने अपना कवित्त-रत्नाकर नामक ग्रंथ सन् १६५० ई० में सम्पूर्ण किया। इस ग्रन्थ में इन्होंने लिखा है कि मेरे केश श्वेत हो गये हैं, मैं बुड्ढा हो गया हूँ, और अब चाहता हूँ कि इस असार संसार को छोड़ कर कृष्णानन्द में मग्न रहूँ और व्रज के बाहर न निकलूँ। इससे विदित होता है कि ये उस समय साठ वर्ष से कम न होंगे। इसी के पीछे ये महाशय सचमुच क्षेत्र संन्यास ले वृन्दावन में रहने लगे। क्षेत्र संन्यास के यही अर्थ हैं कि संन्यासी अपने वासस्थान से बाहर न जावे। अतः विदित होता है कि यह महाकवि अपनी इच्छा को पूर्णरूप से प्राप्त करने में समर्थ हुए थे। इनकी मरणावस्था के संवत् का हमें कोई पता नहीं लगा। ये महाकवि पूर्ण कवि होने के अतिरिक्त पूरे भक्त भी थे। इनके निर्मल चरित और ऊँचे एवं विशुद्ध विचार औरों को उदाहरणस्वरूप हैं। सूरदास और तुलसीदासजी की भाँति महाराज सेनापति भी पूरे ऋषि थे।

शिवसिंहजी ने लिखा है कि इनका काव्यकल्पद्रुम नामक एक ग्रन्थ है और हज़ारा में इनके बहुत से छन्द मिलते हैं। हमारे पास काव्यकलपद्रुम एवं हज़ारा नहीं है. परन्तु, पण्डित युगलकिशोर मिश्र के पुस्तकालय में इनका कवित्तरत्नाकर नामक ग्रन्थ वर्त्तमान है जो इस समय हमारे पास उपस्थित है। पण्डित नकछेदी तिवारी ने सेनापति के एक तृतीय ग्रन्थ षट् ऋतु का नाम लिखा है, परन्तु यह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, वरन् कवित्तरत्नाकर का एक तरंग मात्र है।

कवित्तरत्नाकर का संवत् सेनापति ने यों लिखा है :—

सम्बत सत्रह सै छ में सेइ सिया पति पाय।
सेनापति कविता सजी सज्जन सजौ सहाय॥

इस ग्रन्थ में पाँच तरंग हैं। प्रथम तरंग में ९४ छन्दों द्वारा श्लेष कविता तथा रूपकों का वर्णन है। द्वितीय तरंग में ७४ छन्द हैं और उसमें शृंगार का विषय है। तृतीय तरंग में ५६ छन्दों द्वारा षट ऋतु का वर्णन किया गया है और चतुर्थ तरंग में ७६ छन्दों में रामायण वर्णित है। पंचम तरंग में ५७ छन्द भक्ति और २७ चित्र काव्य के हैं। केशवदास के वर्णन में हमने संस्कृत और भाषा-साहित्य की कथा-सम्बन्धिनी प्रणालियों का वर्णन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है। सेनापति की रामायण काव्य-सम्बन्धी प्रथा की है, न कि कथा-सम्बन्धी प्रथा की। सेनापति ने निम्न छन्दों द्वारा अपना और अपनी कविता का परिचय दिया है :—

दीक्षित परशुराम दादो है विदित नाम
जेहि कीन्हें जज्ञ जाकी जग में बड़ाई है।
गंगाधर पिता गंगाधर के समान जाको
गंगा तीर बसति अनूप जिन पाई है॥
महा जान मनि विद्यादान हू ते चिन्तामनि
हीरामनि दीक्षित ते पाई कविताई है।
सेनापति सोई सीतापति के प्रसाद जाकी
सब कवि कान दै सुनत कविताई है॥

मूढ़न को अगम सुगम एक ताको जाकी
तीखन विमल विधि बुधि है अथाह की।
कोई है अभंग कोई पद है सभंग सोधि
देखे सब अंग सम सुधा परबाह की॥
ज्ञान के निधान छन्द कोष सावधान जाकी
रसिक सुजान सब करत हैं गाहकी।
सेवक सियापति को सेनापति कवि सोई
जाकी द्वै अरथ कविताई निरबाह की॥

दोष सों मलीन गुनहीन कविताई है
तौ कीने अरबीन परबीन कोई सुनि है।
बिनुही सिखाये सब सीखि हैं सुमति जो पै
सरस अनूप रसरूप यामें धुनि है॥
दूषन को करि को कवित्त बिनु भूषन को
जो करै प्रसिद्ध ऐसो कौन सुर मुनि है।
राम अरचत सेनापति चरचत दोऊ
कवित रचत याते पद चुनि चुनि है॥

राखति न दोषै पोषै पिंगल के लच्छन को
बुध कवि के जो उपकंठहि बसति है।
जो पै पदमन को हरष उपजावत हैं
तजै को कुनर जौन छन्द सरसति है॥
प्रच्छर हैं विसद करत ऊखै आपुस में
जाते जगती की जड़ताऊ बिनसति है।
मानो छविता की उदयति सविता की
सेनापति कविता की कविताई बिलसति है॥

तुकनि सहित भले फैल को धरत सूधे
दूरि के चलत जेहैं धीर जिय ज्यारी के।
लागत विविध पच्छ सोहत हैं गनसंग
श्रवन मिलत मूठि कीरति उज्यारी के॥
सोई सीस धुनै जाके उर में चुभत नीके
बेगि विधि जात मन मोहैं नर नारी के।
सेनापति कवि के कवित्त विलसत अति
मेरे जान बान हैं अचूक चापधारी के॥
बानी सों सहित सुबरन मुँह रहै जहाँ
धरत बहुत भाँति अरथ समाज को।
संख्या करि लीजै अलंकार हैं अधिक या में
राखौ मति ऊपर सरस ऐसे साज को॥
सुनौ महाजन चोरी होति चारि चरन की
ताते सेनापति कहै तजि डर लाज को।
लीजियो बचाय ज्यों चुरावै नहिँ कोई सोंपी
वित्त कीसी थाती मैं कवित्तन के व्याज को॥
सेनापति बरनी है बरषा सिसिर ऋतु
मूढ़न को अगम सुगम परबीन को।

शिवसिंह जी निम्न शब्दों द्वारा सेनापति जी की प्रशंसा करते हैं :—

"काव्य में इनकी प्रशंसा हम कहाँ तक करें, ये अपने समय के भानु थे।" प्रकट में तो जान पड़ता है कि इन्होंने अपनी कविता की बहुत बड़ी प्रशंसा कर डाली है, परन्तु हमारा मत है कि इनकी कुल दर्पोक्तियों से भी इनकी उचित प्रशंसा नहीं हो सकी है। इनको कविजन केवल इसी कारण से बहुत कम जानते हैं कि इन्होंने चोरी हो जाने के डर से अपनी कविता को छिपा डाला और इनका कोई भी ग्रन्थ अब तक मुद्रित नहीं हुआ।

सेनापति की भाषा शुद्ध व्रजभाषा है परन्तु दो एक छन्दों में इन्होंने प्राकृत मिश्रित भाषा भी कही है। इनकी कविता में मिलित वर्ण बहुत ही कम आने पाये हैं और उसमें अनुप्रास एवं यमक का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहुल्य है। ऐसी उत्तम भाषा सिवा बड़े बड़े कवियों के और कोई भी लिखने में समर्थ नहीं हुआ है। इनकी भाषा का उदाहरण-स्वरूप एक छन्द नीचे लिखा जाता है।

दामिनी दमक सुरचाप की चमक स्याम
घटा की घमक अति घोर घनघोर ते।
कोकिला कलापी कल कूजत हैं जित तित
सीतल है हीतल समीर झक झोर ते॥
सेनापति आवन कह्यो है मन भावन
लग्यो है तरसावन बिरह जुर जोर ते।
आयो सखि सावन बिरह सरसावन
सु लागो बरसावन सलिल चहुँ ओर ते॥

सेनापतिजी को रूपकों से विशेष प्रेम था और ये कविता में रूपकों की भरमार रखते थे। ये महाशय उपमायें भी अच्छी खोज खोज कर कहते थे। इनको श्लेष कविता बहुत प्रिय थी और इसके उदाहरण ग्रन्थ में हर जगह प्रस्तुत हैं। उत्तम उपमाओं के उदाहरण-स्वरूप तृतीय तरंग के छन्द नम्बर २८ एवं ३५, तथा चतुर्थ तरंग का छन्द नम्बर २९ देखना चाहिए।

इनका षट् ऋतु बहुत ही उत्तम बना है। इसको इन्होंने केवल उद्दीपन का मसाला न बना कर इसमें प्राकृतिक शोभा का बड़ा विलक्षण वर्णन किया है और एक अध्याय भर में इसी का वर्णन है। भाषा के काव्यों में प्राकृतिक वर्णनों का अभाव सा देख पड़ता है परन्तु इस कविरत्न ने इस अभाव के पूर्ण करने का बड़ा प्रयत्न किया है। इनके प्राकृतिक वर्णन बहुत ही सुघर और अनूठे होते हैं। हमारी समझ में इन महाकवि को भाषा का घटखपर कहना चाहिए; क्योंकि भाषा के किसी कवि ने षट् ऋतु का ऐसा उत्तम वर्णन नहीं किया है। देव और केशव ने भी षट ऋतु उत्तम कहा है, परन्तु षट् ऋतु में यही कवि सेनापति है। उदाहरणार्थ केवल दो छन्द ग्रीष्म तथा वर्षा के यहाँ लिखे जाते हैं।

वृष को तरनि तेज सहसौ करनि तपै
ज्वालनि के जाल बिकराल बरसत है।
तचति धरनि जगु झुरत झरनि सीरी
छाँह को पकरि पंथी पंछी बिरमत है॥
सेनापति नेक दुपहरी ढरकत होत
धमका विषम जो न पात खरकत है।
मेरे जान पौन सीरे ठौर को पकरि कौनौ
घरी एक बैठि कहूँ छाँह बितवत है॥
सेनापति उनये नये जलद सावन कै
चारिहू दिसान घुमरत भरे तोय कै।
सोभा सरसाने न बखाने जात केहूँ भाँति
आने हैं पहार मानौ काजर के ढोय कै॥
घन सों गगन छिप्यो तिमिर सघन भयो
देखि न परत मानो गयो रवि खोय कै।
चारि मास भरि स्याम निसा को भरम मानि
मेरे जान याही ते रहत हरि सोय कै॥

बिना षट ऋतु का पूर्ण वर्णन पढ़े उसका ठीक अनुभव नहीं हो सकता। इनकी कविता में उद्दंडता का भी एक बहुतही प्रधान गुण है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक स्थान पर कविता भर में इनकी आत्मीयता झलकती है। इन्होंने कहीं किसी जगह किसी दूसरे का भाव नहीं लिया और न किसी संस्कृत श्लोक का ही उल्था किया या भाव लिया है। इनकी कविता इन्हीं की कविता है और सब इन्हीं के मस्तिष्क से निकली है। इसी छन्द को देखिए कैसा अनूठा है।

बालि को सपूत कपि कुल पुरहूत
रघुबीर जू को दूत धरि रूप बिकराल को।
जूझ मद गाढ़ो पाउँ रोपि भयो ठाढ़ो
सेनापति बल बाढ़ो रामचन्द्र भुवपाल को।
कच्छप कहलि रह्यो कुंडली टहलि रह्यो
दिग्गज दहलि त्रास परो चक चाल को
पावँ के धरत अति भार के परत भयो
एकही परत मिलि सपत पताल को॥

उद्दंडता के साथही साथ सेनापति ने अपनी कविता में कठिनता की भी मात्रा बढ़ा रक्खी है। उनको इस बात का शौक़ था कि मूर्ख उनकी कविता को न समझ सकें जैसा उन्होंने कह भी दिया है कि :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

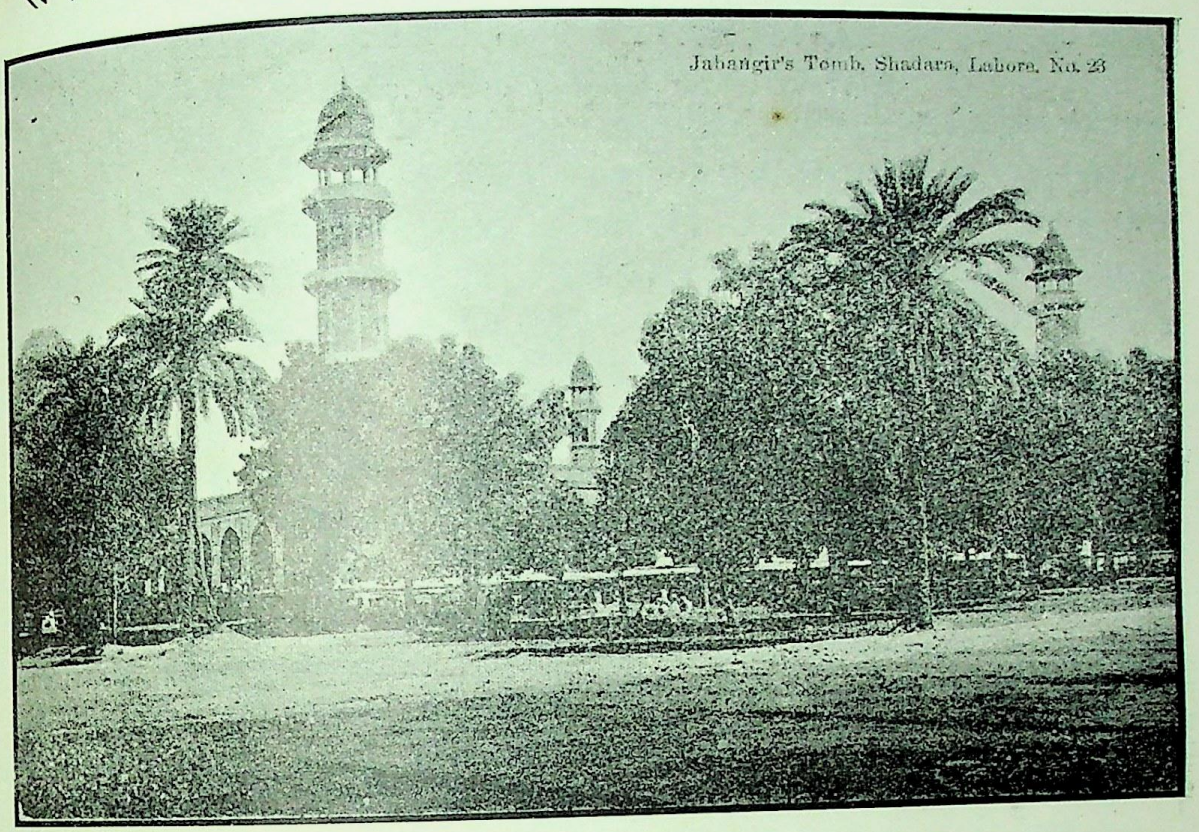

जहाँगीर की क़ब्र, लाहौर।

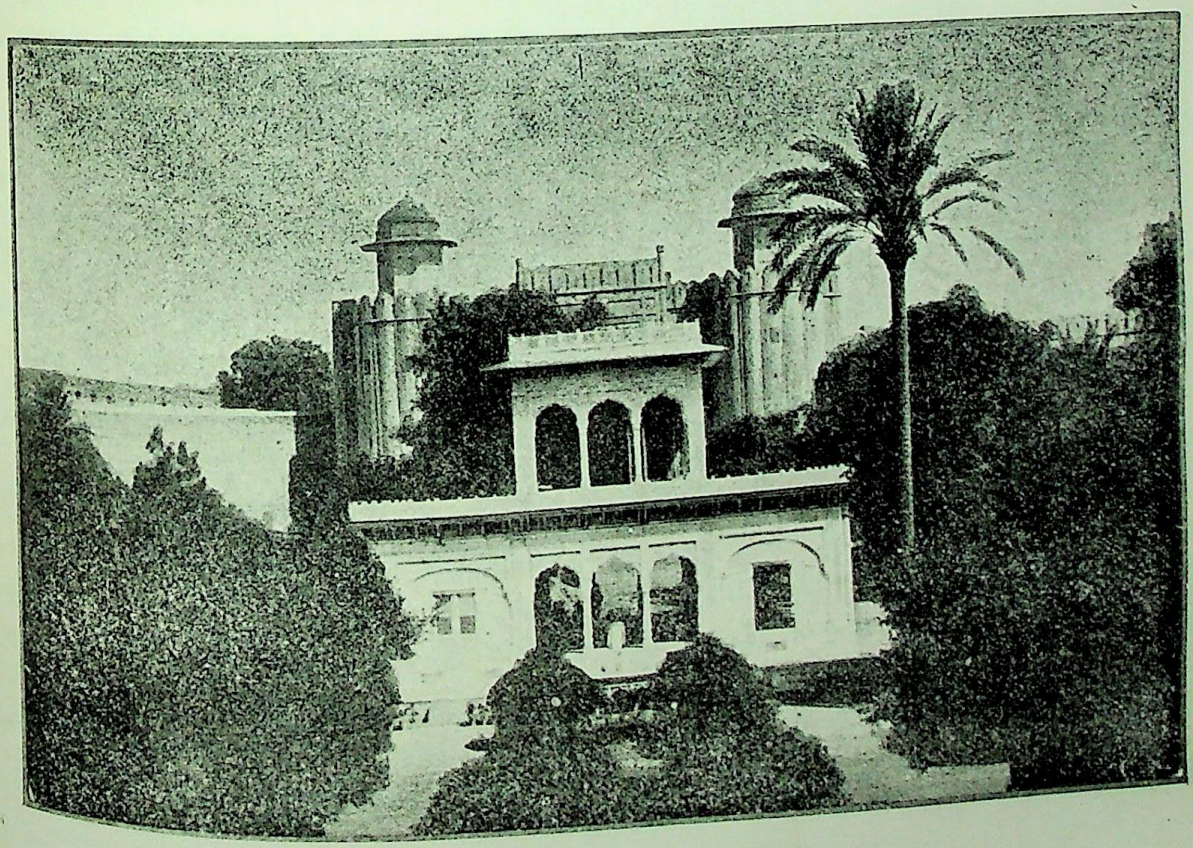

हज़ारी बाग़, लाहौर।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सेनापति बरनी है बरषा सरद ऋतु मूढ़न को अगम सुगम परबीन को।" सेनापति ने स्वय लिखा है कि उन्होंने अपनी कविता के पद चुन चुन कर रक्खे हैं और यह कथन पूर्णतया यथार्थ भी है। अतः यदि कोई इनकी कविता में कोई बुरा अथवा शिथिल छन्द ढूँढना चाहे तो उसको व्यर्थ का श्रम उठाना पड़ेगा। इनके सभी छन्द उत्तम हैं। यहाँ पर उत्तम छन्दों के उदाहरणार्थ केवल एक छन्द लिखा जाता है।

दूरि जदुराई सेनापति सुखदाई देखौ
आई ऋतु पावस न पाई प्रेम पतियाँ।
धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी
सुदर की सोहागिनि की छोह भरी छतियाँ॥
आई सुधि बर की हिये में आनि खरकी
सुमिरि प्राणप्यारी वह प्रीतम की बतियाँ।
बीती औधि आवन की लाल मन भावन की
डग भईं बावन की सावन की रतियाँ॥

इनकी कविता में प्रत्येक स्थान पर इनकी तल्लीनता देख पड़ती है। इस कविरत्न की समग्र कविता सच्ची है। इन्होंने न कभी किसी दूसरे का भाव लिखा है और न अपने चित्त के प्रतिकूल कोई बात लिखी है। इनकी तल्लीनता निम्न चार पदों से भी प्रकट होगी :—

दीनबन्धु दीन के न वचन करत कान
मौन ह्वै रहे हौ कछू भाँति मन माखे हौ।
याते राजाराम जगदीश जिय जानी जाति
मेरे क्रर करम कृपाल कीलि राखे हौ॥
क्योंरे कलिकाल मोहिँ कालौ ना निदरि सकै
तैं तौ मतिमूढ़ अति कायर गँवार को।
सेनापति निरधार पायँ पोस बरदार
हौं तौ राजा रामचन्द्र जू के दरबार को॥

सेनापतिजी अपनी धुनि के इतने पक्के थे कि इन्होंने अपनी कविता में एक भी सवैया इस कारण न रक्खा कि इन्हें यह छन्द पसन्द न था। चोरी होने के डर से इनको अपने प्रत्येक छन्द में नाम रखना बहुत ज़रूरी समझ पड़ता था और सवैया में इनका नाम नहीं आ सकता था। शायद इस कारण से भी इन्होंने सवैया छन्द न लिखा हो।

इनकी प्रगाढ़ भक्ति भी इनके जीवन की एक प्रधान बात है। सेनापतिजी की कुल कविता में उनके विचार भी भरे पड़े हैं। अपने विषय में इतनी बातें भाषा के किसी कवि ने न कही होंगी। इनकी भक्ति पंचम तरंग के छन्द नम्बर ९, १३, १६, और ३१ से विदित होती है, वरन् यों कहें कि चतुर्थ और पंचम तरंग भर से इनकी भक्ति टपकी पड़ती है। इनकी भक्ति सूरदास और तुलसीदास से कम नहीं है। उदाहरणार्थ केवल एक छन्द नीचे उद्धृत करते हैं।

ताही भाँति धाऊँ सेनापति जैसे पाऊँ
तन कंथा पहिराऊँ करौं साधन जतीन के।
भसम चढ़ाऊँ जटा सीस में बढ़ाऊँ नाम
वाही को पढ़ाऊँ दुख हरन दुखीन के॥
सबै बिसराऊँ उर तासों उरझाऊँ कुंज
बन बन धाऊँ तीर भूधर नदीन के।
मन बहिराऊँ मन मनहि रिझाऊँ
बीन लैकै कर गाऊँ गुन वाही परबीन के॥

इनके निर्मल विचारों और पुनीत जीवन का कुछ कुछ परिचय पंचम तरंग के छन्द नम्बर १०, ११, और १४ से भी मिलता है। इनसे यह भी जान पड़ता है कि इनके बाल सफ़ेद हो गये थे और अवस्था आधी से अधिक बीत गई थी। कोई मनुष्य पचास वर्ष से ऊपर हुए बिना साधारणतः यह नहीं कह सकता कि मेरी आयु आधी से अधिक बीत गई है। इसीसे हमारा विचार है कि जिस समय इन्होंने यह ग्रन्थ समाप्त किया उस समय इनकी अवस्था क़रीब साठ वर्ष के होगी। छन्द नम्बर ४० से भी जान पड़ता है कि ये महाशय बादशाही नौकर थे और उस छन्द के बनाते समय इनको नौकरी से अश्रद्धा हो चुकी थी, सो ये कहते हैं :—

केतो करौ कोय पै ये करम लिखोय ताते
दूसरी न होय मन सोय ठहराइए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधी ते सरस बीति गई है बरस अब
दुज्जन दरस बोच रस न बढ़ाइए ॥
चिन्ता अनुचित धरु धीरज उचित
सेनापति ह्वै सुचित रघुपति गुन गाइए।
चरिबर दानि तजि पाय कमलेच्छन के
पायक मलेच्छन के काहे को कहाइए ॥

इनके चित्त का पूर्ण वैराग्य निम्न लिखित छन्द से प्रकट होता है और यह भी जान पड़ता है कि ये कंगाल न थे :—

महामोह कन्दनि मैं जगत जकन्दनि मैं
दिन दुख दन्दनि मैं जात है बिहाय कै।
सुख को न लेस है कलेस सब भाँतिन को
सेनापति याही ते कहत अकुलाय कै ॥
आवै मन ऐसी घर बार परिवार तजौं
डारौं लोक-लाज के समाज बिसराय कै।
हरिजन पुंजनि मैं वृन्दाबन कुंजनि मैं
रहौं बैठि कहूँ तरवर तर जाय कै ॥

ठाकुर शिवसिंहजी ने लिखा है कि इन्होंने क्षेत्र संन्यास ले लिया था। इस कथन की पुष्टि इनकी कविता से भी होती है क्योंकि ये कहते हैं कि ये वृन्दावन की सीमा के बाहर नहीं निकलना चाहते और संसार के फन्द छोड़ना चाहते हैं।

पान चरनामृत को गान गुन गानन को
हरि कथा सुने सदा हिय को हुलसिबो।
प्रभु के उतीरन की गूदरी औ चीरन की
भाल भुज कंठ उर छापन को लसिबो ॥
सेनापति चाहत है सकल जनम भरि
वृन्दावन सीमा के न बाहर निकसिबो।
राधा मनरंजन की शोभा नैन कंजन की
माल गरे गुंजन की कुंजन को बसिबो ॥
बारानसी जाय मन करनी अन्हाय मेरो
संकर सों रामनाम पढ़िबे को मन है ॥

इतने बड़े भक्त और कड़े विचारों के मनुष्य होने पर भी सेनापति कोमल भावों के वर्णन में भी पूर्णतया समर्थ हुए हैं। महादेवजी की आज्ञा पाकर बहुत से गण कुम्भकर्ण के कटे हुए सिर को उठाने गये, जिसके वर्णन में सेनापति ने हास्य रस ख़तम कर दिया है।

जोर के उठायो जुरि मिलि कै सबन त्योंहीं
गिरिहू ते गरुवो गिरो है डगुलाय कै।
हाली भुव गगन को चाली चपि चूर भयो
काली भाजी हँस्यो है कपाली हहराय कै ॥

इतने बड़े भक्त होने पर भी सेनापति धार्मिक विषयों तक में स्वतन्त्र विचार रखते थे। इन्होंने प्रथम तरंग में कलि के गोसाइयों को पूरे भिखमंगे बताया है। पंचम तरंग में कई धार्म्मिक विषयों पर इस महात्मा की स्वतन्त्र अनुमतियाँ द्रष्टव्य हैं जिनमें से कुछ यहाँ लिखी जाती हैं।

'आपने करम करि हौंहीं निबहौं गो
तौब हौंहीं करतार करतार तुम काहे को ॥
'धातु सिला दारु निरधारु प्रतिमा को सारु
सो न करतारु है बिचारु बैठि गेह रे।
करुन सदेह रे कहे में चित देहरे
कही है बीच देहरे कहा है बीच देहरे ॥"
'तोरि मरौ पाउ करौ कोरिक उपाउ सब
होत है अपाउ भाउ चित को फलत है।
हिये न भगति जाते होय नभ गति जब
तीरथ चलत मन तीरथ चलत है ॥'

सेनापति के गुण-दोष हम यथाशक्ति ऊपर दिखा चुके। बड़े शोक का विषय है कि इस महात्मा के केवल ३८४ छन्दों का एक ग्रन्थ मात्र हमें देखने को मिला। इतनी सजीव कविता हमने बहुत ही थोड़े कवियों की देखी है। प्रत्येक छन्द में सेनापति का रूप देख पड़ता है। इतने कम छन्दों में इतने विचार भर देने में बहुत कम लोग समर्थ हुए होंगे। अपने ग्रन्थ में सेनापति ने कोई क्रम नहीं रक्खा है। जान पड़ता है कि पहले ये महाशय स्फुट कविता बनाते गये हैं और फिर सन् १६५० ई० में उसे एकत्र करके ग्रन्थ-स्वरूप में परिणत कर दिया। इनका काव्य-कलपद्रुम भी बहुत ही उत्तम होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमान से जान पड़ता है कि "कालिदास हज़ारा" में लिखे हुए इनके स्फुट छन्द 'कवित्तरत्नाकर' के ही होंगे क्योंकि इस ग्रन्थ में सब स्फुट कविताही भरी है। दुर्भाग्य-वश अभी इनका एक भी ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है। यदि भाषा का कोई भी अप्रकाशित ग्रन्थ प्रकाशित होने की योग्यता रखता है तो सेनापति के ग्रन्थ सबसे पहले नम्बर पर हैं। इनका न प्रकाशित रहना भाषा के प्रकाशकों का कलंक है।

गणेशविहारी मिश्र,
श्यामविहारी मिश्र, तथा,
शुकदेवविहारी मिश्र।

सतसई-संहार।

[गताङ्क से आगे]

यद्यपि विद्यावारिधिजी ने प्रायः प्रति दोहा की टीका में कुछ न कुछ कारस्तानी दिखलाई है, तथापि प्रबन्ध बढ़ जाने के भय से हम कुछ ही दोहों की टीका पर लिखेंगे। हम अपने इस लेख में सतसई का मूल पाठ वही रक्खेंगे जो विद्यावारिधिजी ने अपनी टीका में रक्खा है। विद्यावारिधिजी ने मूल पाठ पर भी ख़ूब हाथ साफ़ किये हैं, जहाँ तहाँ उसके सौष्ठव का मूलोच्छेद कर डाला है, इसलिए सहृदय पाठकों को यह बात खटकेगी कि ऐसा अशुद्ध पाठ क्यों रक्खा गया, पर हमें यत्र तत्र उस पर भी कुछ कहना है, अतः यही उचित समझा गया। अच्छा, अब ज़रा टीका सुनिए :—

१—"मोर मुकुटकी चंद्रिका (?) यों राजत नँदनंद।
मनुशशिशेखर को(?)अकस, किय शेखर शतचंद॥३"

"मोरपंख के मुकुट धारण किये उस मोर पंख की चन्द्राकार रेखा से 'नंद सुवन' इस प्रकार शोभायमान होते हैं मानों (शशिशेखर) शिवजी के 'मन' (?) की अकस 'वैमनस्यता' (?) विचार कर कृष्ण ने अपने शिर पर सौ चन्द्रमा धारण किये हैं, इत्यादि। (पृ० ३)

'नँदनन्द' का अर्थ आपने 'नन्द सुवन' किया है, इससे तो 'नँदनंद' ही बहुत सुगम है। यदि 'नन्द को ढोटा' लिख देते तो आपकी व्रजभाषा-प्रवीणता और भी प्रकट हो जाती! 'सुवन' शब्द पुत्र के अर्थ में आज कल की हिन्दी में नहीं आता, व्रजभाषा में भी यह शब्द प्रायः पद्य में ही आता है। इसी का नाम है "मघवामूल विडौजा टीका"!

मूल में जो उत्प्रेक्षाव्यञ्जक "मनु" शब्द आया है, उसे आपने दो जगह घसीटा है। एक जगह उसका अर्थ 'शिवजी का मन' कर डाला है। जो एकदम व्यर्थ है। 'शिवजी के मन की वैमनस्यता' (?)* विचारने की क्या आवश्यकता थी? यदि उसे "वैमनस्यता" कह सकें तो वह मुद्दत पहले कार्य्य में परिणत हो चुकी थी, जब कि उन्होंने काम को भस्म कर दिया था, 'वैमनस्यता' मन में थोड़ेही छिपी रह गई थी, और फिर शिवजी तो योगिराज थे, वह किसी से मन में 'वैमनस्यता' क्यों रखते? आपने 'मन' 'विचार कर' मूल के किन शब्दों का अर्थ किया है? 'मनु जनु' 'मनो' 'मानो' ये तो उत्प्रेक्षा-व्यञ्जक शब्द हैं! यदि 'मनु' पद 'शशिशेखर को' के आगे धरा होता तब भी आपकी कल्पना या भ्रान्ति के लिए कुछ अवलम्ब हो सकता। मूल पाठ में भी आपने दो जगह कतर ब्यौंत की है। 'ससिसेखर की अकस' के स्थान में '.....को अकस' बना डाला। 'अकस' को यदि आप पुंल्लिङ्ग ही मानें तो भी '.....के अकस' ऐसा होना चाहिए था '.....को अकस' तो नितान्त अशुद्ध है। 'चन्द्रिकन' की जगह 'चन्द्रिका' कर दिया, दोनों

विद्यावारिधि जी के पाठ में चिन्तनीय पदों पर " " (?) इत्यादि चिह्न सर्वत्र समालोचक की ओर से समझे जायँ।

* यहाँ भाववाचक एक प्रत्यय की कसर रह गई, 'त्व' और जोड़ कर "वैमनस्यतात्व" रखते तो और अधिक सुन्दर हो जाता!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जो भेद है उसे सहृदय काव्यरसज्ञ आसानी से समझ सकते हैं। आपके ये पाठान्तर सब प्राचीन टीकाओं के विरुद्ध हैं। आप टीका करने बैठे हैं या मूल को भी बिगाड़ने? बाज़ आये ऐसी टीका से!!

२—मकराकृत गोपाल के, कुंडल सोहत कान।
धस्यो मनो हिय घर समर, ड्योढी लसत निशान ४

"मकर के आकार के कुंडल श्रीकृष्ण के कान में इस प्रकार शोभित होते हैं, मानो इनके हृदयरूपी भवन में काम (स्मर) प्रवेश कर गया है "निशान-रूपी द्वारपाल बाहर ड्योढी पर शोभा देते हैं"। इत्यादि। (पृ० ३)

देखा आपने! कैसा 'निशानरूपी द्वारपाल' ड्योढ़ी पर बिठलाया है? धन्य महात्मन्! इस अपूर्व अर्थ को सुन कर विहारीलाल की आत्मा भी स्वर्ग में फड़क उठी होगी! जो ख़ास बात इस दोहे में थी उसी को आपने धूल में मिला दिया!

मकर की आकृतिवाले कुण्डलों पर उत्प्रेक्षा है कि मानो स्मरदेव हृदयरूप अपने मन्दिर में प्रविष्ट हो गये हैं और अपनी ध्वजा 'निशान' बाहर= हृदयमन्दिर की ड्योढ़ी पर छोड़ गये हैं। काम का नाम 'मनसिज' और 'मकरध्वज' भी है, काम के ये नाम, और कुण्डलों की 'मकराकृति' यही इस अपूर्व उत्प्रेक्षा की जड़ हैं।

३—छुटी न शिशुता की झलक, झलक्यो यौवन अंग।
दीपति देह दुहूँन मिलि, दिपति ताफता रंग॥१७॥

इस पर 'अतिललित' 'मधुर, मुग्ध' टीका करते हुए अन्त में विद्यावारिधिजी फ़रमाते हैं—"यह जयपुरी दृश्य है" (पृ० ९) इस बात को आप पहले भी कवि का जीवन-चरित्र लिखते हुए पृष्ठ १२ में कह आये हैं, यथा :—

"..... इनके काव्य में जयपुर के दृश्य के अनेक दोहे पाये जाते हैं, यथा—(फीको परै न वर फटै रंगो लोह रंग चीर (?) (मनहु ताफता कीन?), इत्याद अनेक वार्ता मूल ग्रन्थ में देखने से मिलेंगी"

अब तक जयपुर के द्रष्टव्य पदार्थों की सूची में, 'रामनिवास-बाग़' 'अजायब-घर' 'चिड़िया-घर' 'पुस्तकालय' आदि चीज़ें ही प्रसिद्ध थीं, [illegible] विद्यावारिधिजी ने एक और 'जयपुरी दृश्य' [illegible] पता दिया है, जिसका वर्णन आज तक किसी य[illegible] ने अपनी यात्रा के वर्णन में या वहाँ के किसी निवा[illegible] ने नहीं किया था। 'जयपुरविहार' के कर्त्ता ने [illegible] इसका उल्लेख अपने पुस्तक में नहीं किया। कि[illegible] भारी भूल की है? आशा है कि द्वितीयावृत्ति में [illegible] इस कमी को पूरा कर देंगे और जयपुर की यात्रा क[illegible] वाले अन्य महाशय भी आगे से इस बात का ध्या[illegible] रक्खेंगे, उनमें से यदि कोई सज्जन अपनी यात्रा[illegible] वर्णन किसी पत्र में प्रकाशित करें तो इस 'जयपुरी दृश्य' को देख कर उसके विषय में सविस्तर लि[illegible] जिससे अन्य यात्रियों को सुगमता हो।

यह सुन कर हमारे पास बैठे हुए एक मित्र ने [illegible] कि "इस दृश्य को देखने के लिए जयपुर जाने [illegible] क्या ज़रूरत है? यह दृश्य तो मुरादाबाद में [illegible] मिल सकता है! इसमें ऐसी कोई चीज़ नहीं जि[illegible] पर made in Jaypore की मोहर हो और [illegible] मिलती हो, इस दोहे के 'उपमेय' और 'उपमा' [illegible] प्रायः उन सब स्थानों में मिल सकते हैं जहाँ कि मानव सृष्टि बसती है और बज़ाज़ों की दुकानें हैं।"

इस पर हमने अपने मित्र से प्रार्थना की कि [illegible] चाहे आपका ही कहना सत्य हो पर "विप्रतिषेधे परं कार्य्यम्" के अनुसार हम विद्यावारिधिजी ही [illegible] की बात को तरजीह देंगे, क्योंकि वह हम से परे= दू[illegible] हैं और आप हमारे पास बैठे हैं। पाठकों को अ[illegible] कार है कि वे इन दोनों बातों में से चाहे कि[illegible] को मानें।

४—करे चाह सों चुटकिकै, खरे उडौहैं मैन।
लाज नवाये तरफरत, करत खूंदसी नैन॥२[illegible]

"मैंने (?) अर्थात् कामदेव ने चाह से चुटकी [illegible] उड़ते वा उठते हुये से खडे किये, लज्जा के नवाये [illegible] खुरीसी करते हुए नेत्र तडफडाते हैं। इसमें नेत्रों [illegible] घोडे के समान निरूपित किया है उन्हें 'काम [illegible] चाबुक की चाह से चाबुक मार उठो है' 'परन्तु [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

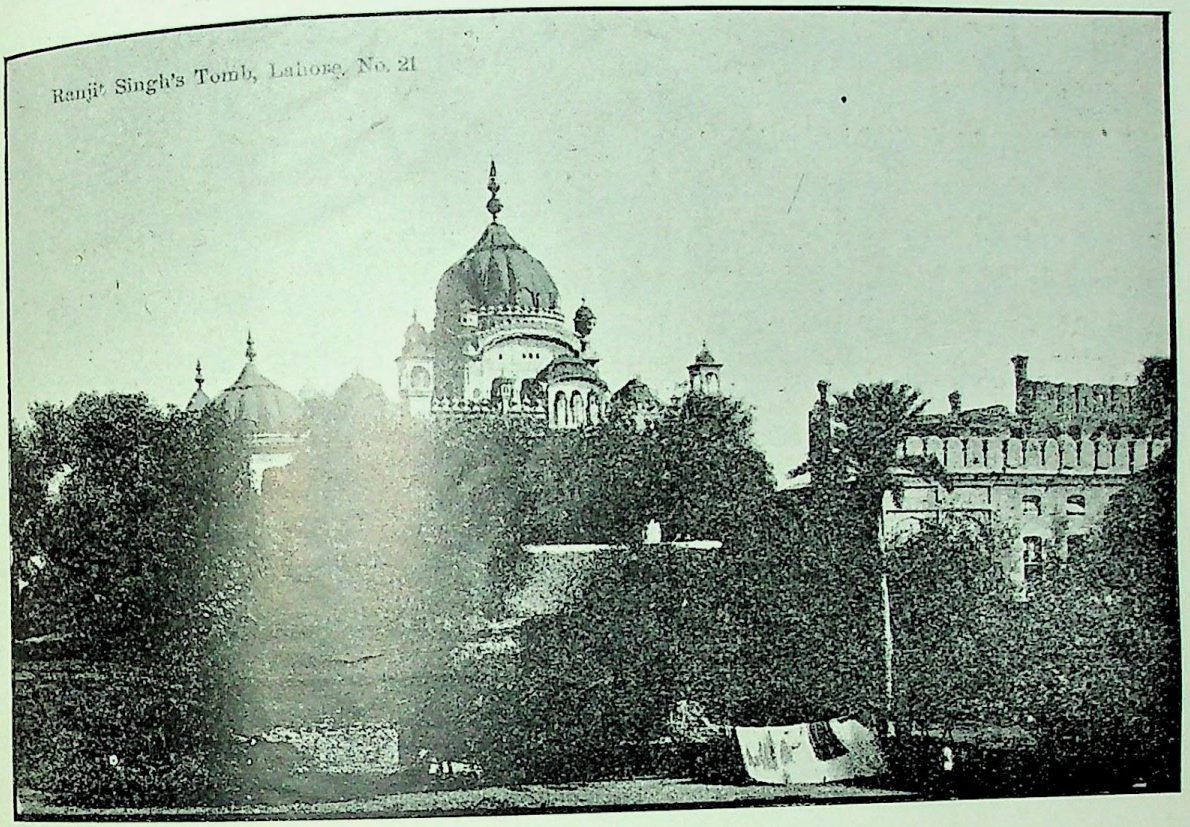

रणजीतसिंह की समाधि, लाहौर।

शालेमार बाग, लाहौर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झुका देती है चुटकी के चाबुक का चटाका करके' खुदी खूँदती हुई चाल अथवा पैर में नख बढ जाने की चाल.....इत्यादि। (पृ० १५)

सतसई के अन्य टीकाकारों को तो क्या स्वयं कवि विहारीलाल को भी अपने इस दोहे के यह 'अतिललित' 'मधुर' 'मुग्ध' अर्थ न सूझे होंगे! उन्होंने भला यह पैर में नख (?) (घोड़े के खुर या शफ को भाषा में 'सुम' कहते हैं या नख ?) बढ़ जाने की चाल काहे को देखी होगी? "मैंने अर्थात् कामदेव ने" बहुत ठीक, तो क्या इस दोहे के 'देवना' आपही हैं? चाह से चुटका कर' का क्या अर्थ? "उडते या उठते हुये से खडे किये" का क्या मतलब? क्या कोई पदार्थ बैठता या लेटता हुआ सा भी खड़ा किया जाया करता है?

"कामरूपी चाबुक की चाह से चाबुक मार उठो है" का कुछ अर्थ भी है? और "चुटकी के चाबुक का चटाका" कैसा होता है? यह आप टीका कर रहे हैं, या स्वप्न की दशा में बड़ बड़ा रहे हैं! इतने पर भी इस प्रलाप का नाम रक्खा है 'अति ललित मधुर मुग्ध' टीका!

हा व्रजभाषे! क्या तू अपनी ऐसी ही दुर्दशा देखने को अब तक बची हुई थी? तेरे वह सुदिन कहाँ गये जब सूरदास, विहारीलाल, हरिश्चन्द्र और व्यास जैसे सुकवि अपनी अपनी सुन्दर और नवीन रचनाओं से तुझे अलङ्कृत करते थे! एक आज का समय है कि नवीन रचनाओं से तुझे भूषित करना तो दूर रहा, तेरे पूर्व कवियों द्वारा प्रदत्त आभूषण भी किस निर्दयता से तोड़ मरोड़ कर धूल में मिलाये जा रहे हैं! तेरे जगत्प्रसिद्ध माधुर्य में इन्द्रायन और नीम का तेल मिलाया जा रहा है!

यदि यह दुर्दशा किसी ऐसे वैसे मामूली आदमी की ओर से की जाती तो अधिक अफ़सोस की बात न होती, परन्तु जब हम देखते हैं कि यह कृपा 'विद्वद्वृन्दशिरोमणि' 'विद्यावारिधि' 'व्याख्यानवाचस्पति' जैसी प्रतिष्ठित उपाधियों से 'सर्वाङ्ग विभूषित' व्यक्ति की तरफ़ से की जा रही है तो और भी दुःख होता है। यह हमारे लिए कैसे खेद और लज्जा की बात है कि भारत से हज़ारों मील दूर सात समुद्र पार रहनेवाले डाक्टर ग्रियर्सन जैसे महानुभाव तो व्रजभाषा और सतसई के अपूर्व गुणों पर मोहित होकर, उसमें पारदर्शिता प्राप्त करके 'सतसई' के शुद्धसंस्करण के लिए घोर परिश्रम करते हुए (जैसा कि विहारीविहार की भूमिका में स्वर्गीय व्यास जी ने लिखा है) अपने नेत्रों की ज्योति तक क्षीण कर बैठें, और एक हम हैं कि अपने देश की मातृभाषाओं को अलङ्कृत और परिष्कृत करना तो दूर रहा उल्टा उनकी मिट्टी पलीद कर रहे हैं! हमारी अपनी भाषायें ही हमारे लिए चीनी और हिब्रू भाषा बन रही हैं। अफ़सोस! हमारी दशा पर किसी उर्दू-कवि की यह उक्ति कैसी चरितार्थ हो रही है:—

"एक हम हैं कि लिया अपनी भी सूरत को बिगाड़। एक वो हैं जिन्हें तसवीर बना आती है"

पाठकवृन्द! ऊपर के दोहे का साफ़ और सीधा मतलब यह है कि :—

काम ने (कामरूपी चाबुक सवार ने) प्रेम की चाबुक मार कर ऊँचे उठा दिये और लज्जा ने (लज्जारूपी बाग ने) नीचे को झुका दिये, इस प्रकार तड़फड़ाते हुए नेत्ररूपी घोड़े मानो खूँद सी कर रहे हैं।

'चुटकिकै'—कोड़ामार कर, 'खरे'—बहुत या खूब, 'खूँद करना'—लघुद्रुत गति से ज़मीन को काटते हुए चलना, जहाँ से पैर उठाया है वहीं रखना इत्यादि 'खूँद करने' का अर्थ है, जिसे इधर की ग्रामीण भाषा में "खैरू खोदना" भी कहते हैं।

जब बछेरे को 'बाँधी' में फेरते वक्त चाबुकसवार उसके चाबुक या कोड़ा मारता है तो वह ऊपर को उठ जाता है और भागना चाहता है परन्तु बागें खिंची रहने के कारण भाग नहीं सकता, झुककर वहीं आ रहता है। घोड़े की इस दशा की उपमा कवि ने, 'चाह का चाबुक' खाये हुए, और 'लाज' की बाग से खिंचे हुए' नेत्रों से दी है।

(असमाप्त)

पद्मसिंहशर्म्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा महत्त्व।

मङ्गल-मूल महेश, मुक्तिदाता शङ्कर है।
शङ्कर का उपदेश, महाविद्या का घर है॥
शङ्कर जगदाधार, तुझे मैं जान चुका हूँ।
उन्नति का अवतार, वेद को मान चुका हूँ॥१॥

मेरा विशद विचार, भारती का मन्दिर है।
जिसमें बन्ध विकार, कल्पना सा अस्थिर है॥
प्रतिभा का परिवार, उसी में खेल रहा है।
अवनति को संसार, कूप में ठेल रहा है॥२॥

रहै निरन्तर साथ, धर्म दश लक्षणधारी।
पकड़ रहा है हाथ, सुकर्मोदय हितकारी॥
प्रति दिन पाँचों याग, यथाविधि करता हूँ मैं।
सकल कामना त्याग, स्वतन्त्र विचरता हूँ मैं॥३॥

सारहीन हठवाद, छोड़ आचरण सुधारे।
छल पाखण्ड प्रमाद, विरोध विलास विसारे॥
मन में पाप-कलाप, कुमति का वास नहीं है।
मदन मोह संताप, कुलक्षण पास नहीं है॥४॥

मुझमें ज्ञान विराग, बुद्ध से भी बढ़ कर है।
अविनाशी अनुराग, असीम अहिंसा पर है॥
निरख न्याय की रीति, मुझे सब राम कहेंगे।
परख अनूठी नीति, सुधी घनश्याम कहेंगे॥५॥

रोगहीन बलवान, मनोहर मेरा तन है।
निश्चल प्रेम प्रधान, सत्य सम्पादक मन है॥
निर्मल कर्म विचार, वचन में दोष कहाँ है।
मुझसा अन्य उदार, धन्य मृदु घोष कहाँ है॥६॥

वीतराग बिनरोष, एक मुनि नायक पाया।
निगुरापन का दोष, उसे गुरु मान मिटाया।
यद्यपि सिद्ध स्वतन्त्र, जगद्गुरु कहलाता हूँ।
तो भी गुरुमुख मन्त्र, मान मन बहलाता हूँ॥७॥

दुःख रूप सब अङ्ग, अविद्या के पहचाने।
सुखसम्पन्न प्रसङ्ग, अर्थ अपरा के जाने॥
दोनों पर अधिकार, परा विद्या करती है।
अखिलानन्द अपार, एकता में भरती है॥८॥

जिसकी उलटी चाल, न सीधा सुमग दिखावे।
जिसका कोप कराल, न मेल मिलाप सिखावे।
जो खल दल को घोर, नरक में ठेल रही है।
वह माया चहुँ ओर, खेल खुल खेल रही है॥९॥

जो सबके गुण कर्म, स्वभाव समस्त बतावे।
जो ध्रुव धर्म अधर्म, शुभाशुभ को समझावे॥
जिसमें जगदाकार, भद्र सुख भाव भरा है।
वही विविध व्यापार, बलित विद्या अपरा है॥१०॥

जीव जिसे अपनाय, फूल सा खिल जाता है।
योग-समाधि लगाय, ब्रह्म से मिल जाता है॥
जिसमें एक अनेक, भावना से रहता है।
उसको सत्य विवेक, परा विद्या कहता है॥११॥

जिसमें जड़ चैतन्य, सर्व संघात समावे।
जिस अनन्य में अन्य, वस्तु का बोध न पावे।
जिस जी में रस उक्त, योग का भर जावेगा।
हाँ, वह जीवन-मुक्त, मृत्यु से तर जावेगा॥१२॥

बालकपन में राँड़, अविद्या की जड़ काटी।
तरुण हुआ तो खाँड़, खीर अपरा की चाटी॥
अब तो उत्तम लेख, परा के बाँच रहा हूँ।
बुढ़वा मङ्गल देख, जरा को जाँच रहा हूँ॥१३॥

पढ़ता था दिन रात, महाश्रम का फल पाया।
निखिल-तन्त्र-निष्णात, राज-पण्डित कहलाया॥
लालच का बल पाय, लण्ठगढ़ तोड़ लिया था।
केवल गाल बजाय, घना धन जोड़ लिया था॥१४॥

रहे प्रतारक सङ्ग, कपट की बेलि बढ़ाई।
मन भाये रस रङ्ग, मदन की रही चढ़ाई॥
भोजन पान बहार, यथारुचि करता था मैं।
विधि-निषेध का भार, न सिर पै धरता था मैं॥१५॥

बालविवाह विशाल, जाल रच पाप कमाया।
ब्रह्मचर्य व्रत काल, वृथा विपरीत गमाया॥
अबला ने चुप चाप, उठाय पछाड़ा मुझको।
बेटा जन कर बाप, बनाय बिगाड़ा मुझको॥१६॥

प्यारे गुरु लघु लोग, मरे घरबार विसारे।
करनी के फल भोग, भोग सुरधाम सिधारे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनिता ने जब हाथ, हटा कर छोड़ा मुझको ।
तब सुधार के साथ, सुमति ने जोड़ा मुझको ॥१७॥

पहला पुत्र अकाल, मृत्यु के मुख में डाला ।
पाय मनोहरलाल, दूसरा सुख से पाला ॥
उसने धन-भण्डार, भरा घर पाया मेरा ।
अब शिव ने संसार, कुटुम्ब बनाया मेरा ॥१८॥

जिस जीवन की चाल, बुरा करती थी मेरा ।
बीत गया वह काल, मिटा अंधेर अन्धेरा ॥
पिछले कर्म-कलाप, बताना ठीक नहीं है ।
अपने मन को आप, सताना ठीक नहीं है ॥१९॥

हिमगिरि ज्ञानागार, धवल मेधा ध्रुवनन्दा ।
उसमें डुबकी मार, मार मन रहा न गन्दा ॥
पातक-पुञ्ज पजार, पुण्य भरपूर किया है ।
ज्ञान-प्रकाश पसार, मोहतम दूर किया है ॥२०॥

जान लिया हठ योग, अखण्ड समाधि लगाना ।
कर्मयोग फलभोग, अमङ्गल भूत भगाना ॥
क्या मुझसा व्रत सिद्ध, सुधारक और न होगा ?
होगा पर सुप्रसिद्ध, सर्व-सिर मौर न होगा ॥२१॥

क्या करते प्रतिवाद, वचन सुन मेरे तीखे ।
गोतम कृष्ण, कणाद, पतञ्जलि, व्यास, सरीखे ॥
युक्ति-हीन नर ग्रन्थ, न जी में भर सकते हैं ।
तर्कशस्त्र मत पन्थ, भला क्या कर सकते हैं ॥२३॥

बन कर मेरा जोड़, न ऊत अजान अड़ेगा ।
पण्डित भी भय छोड़, न टेक टिकाय लड़ेगा ॥
भिड़ा न भारतधर्म, मुखर मण्डल में कोई ।
दिखला सका सुकर्म, न वैदिक दल में कोई ॥२३॥

मैंने असुर अजान, प्रमादी पिशुन पछाड़े ।
हार गये अभिमान, भरे अवधूत अखाड़े ॥
जिसकी चपला चाल, देश को दल सकती है ।
क्या उस दल की दाल, यहाँ भी गल सकती है ॥२४॥

हेकड़ हेाड़ दबाय, उलझने को आते हैं ।
पर वे मुझे नवाय, न ऊँचा पद पाते हैं ॥
जिसका घोर घमण्ड, घरेलू घट जाता है ।
वह प्रचण्ड उद्दण्ड, हठीला हट जाता है ॥२५॥

ठग मेरे विपरीत, बुरी बातें कहते हैं ।
घरही में रणजीत, बने बैठे रहते हैं ॥
मैं कलिकाल-विरुद्ध, प्रतापी आप हुआ हूँ ।
पाकर जीवन शुद्ध, निरा निष्पाप हुआ हूँ ॥२६॥

जो जड़मति का कोष, न पूजेगा पग मेरे ।
उस अजान के दोष, दिखा दूँगा बहुतेरे ॥
जो मुझको गुरु मान, प्रेम के साथ रहेगा ।
उस पर मेरे मान, दान का हाथ रहेगा ॥२७॥

मैं असीम अभिमान, महामहिमा के बल से ।
डरता नहीं निदान, किसी प्रतियोगी दल से ॥
निगमागम का मर्म, विचार लिया करता हूँ ।
तदनुसार सद्धर्म, प्रचार किया करता हूँ ॥२८॥

तन में रही न व्याधि, न मन में आधि रही है ।
रही न अन्य उपाधि, अनन्य समाधि गही है ॥
अनघ शिष्य को सर्व, सुधार सिखा सकता हूँ ।
अपना गौरव गर्व, अदम्य दिखा सकता हूँ ॥२९॥

मुझको साधुसमाज, शुद्ध जीवन जानेगा ।
सर्वोपरि मुनिराज सिद्ध मण्डल मानेगा ॥
अपना नाम पवित्र, प्रसिद्ध किया है मैंने ।
शुभ चरित्र का चित्र, दिखाय दिया है मैंने ॥३०॥

यद्यपि लालच दूर, कर चुका हूँ मैं मन से ।
तो भी मठ भरपूर, भरा रहता है धन से ॥
छोड़ दिये सुख-भोग, विषय रस रूखा हूँ मैं ।
दान करें सब लोग, सुयश-मधु-भूखा हूँ मैं ॥३१॥

वेद और उपवेद, पढ़ा सकता हूँ पूरे ।
अङ्ग-विधायक भेद, रहेंगे नहीं अधूरे ॥
तर्क-प्रवाह-तरङ्ग, विचित्र दिखादूँ सारे ।
पौराणिक रस रङ्ग, प्रसङ्ग सिखादूँ सारे ॥३२॥

ग्रन्थ बिना अनुवाद, किसी भाषा का रखलेा ।
उसके रस का स्वाद, खड़ी बेाली में चखलेा ॥
जो अनुचर अल्पज्ञ, न ज्यों का त्यों समझेगा ।
वह मुझको सर्वज्ञ, कहेा तो क्यों समझेगा ॥३३॥

यदि मैं व्यर्थ न जान, काम कविता से लेता ।
तो तुकड़ कुलमान, दान क्या मुझे न देता ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक लेख निहार, लेखनी तोड़ चुके हैं।
सम्पादक हिय हार, हेकड़ा छोड़ चुके हैं ॥३४॥

शिल्प रसायन सार, कहो जिसको सिखलादूँ।
अभिनव आविष्कार, अनूठे कर दिखलादूँ ॥
भूमियान जलयान, विमान बना सकताहूँ।
यन्त्र सजीव समान, अजीव जना सकताहूँ ॥४५॥

गोल भूमि पर डोल, डोल सब देश निहारे।
खोल गगन की पोल, बेध कर परखे तारे ॥
लोक मिले चहुँ ओर, कहीं अवलम्ब न पाया।
विधि ने जिसका छोर, छुआ वह लम्ब न पाया ॥३६॥

दे दे कर उपदेश, पुजा देशी मण्डल में।
किया न चञ्चु प्रवेश, राज-विद्रोही दल में ॥
अब सरिता के तीर, कुटी में वास करूँगा।
त्याग अनित्य शरीर, काल का ग्रास करूँगा ॥३७॥

मेरा अनुचर चक्र, चुटीली चाल चलेगा।
रोंद रोंद कर बक्र, कुचालों को कुचलेगा ॥
मानव दल की दूर, दुर्दशा कर देवेगा।
भारत में भरपूर, भलाई भर देवेगा ॥३८॥

सुन कर मेरी आज, अनूठी रामकहानी।
धन्य धन्य मुनिराज, कहेंगे आदरदानी ॥
पण्डित परमोदार, प्रवीण प्रणाम करेंगे।
लम्पट लंठ लबार, वृथा बदनाम करेंगे ॥३९॥

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा।

उपहार मिलेगा।

पाठको! आपको स्मरण होगा कि पिछले साल मैंने सियेटल हिन्दी-साहित्य-समिति की ओर से एक विज्ञापन-रूप पत्र छपवाया था जिसमें भारतीय छात्रों के हिन्दी-प्रेम की परीक्षा की थी। परीक्षा भी कोई कठिन न थी, केवल यह कि एक पाँच छः हज़ार शब्दों की छोटी कहानी लिखकर भेजें। विषय भी बतला दिया था—ऐसा विषय जिसके साथ हमारा दिन रात सम्बन्ध पड़ता है। क्या? सामाजिक अत्याचार। भला कहिए, यह कोई कठिन विषय है। नित्य समाचार-पत्रों में कोई न कोई ख़बर 'सामाजिक अन्याय' की छपती है, उसी ख़बर को कथा का रूप देकर लिख देना, बस यही काम था।

फिर और मज़ा देखिए। यह नहीं कि योंही मेहनत करवाते थे, या ख़ाली क़लम घसौआ मुराद थी, बल्कि पचास रुपये का स्वर्ण-पदक उपहार में देने का विज्ञापन था। इतना सब होने पर भी एक कथा नाम लेने को भी न पहुँची। केवल एक प्रेमी युवक ने सामाजिक अन्याय पर निबन्ध लिखकर भेज दिया, कथा उन्होंने भी न भेजी।

यह क्यों? मेरे प्यारे भाइयों की ऐसी उदासीनता क्यों? मुझे केवल एक डर है। क्या 'मेरी डायरी के कुछ पृष्ठ' वाले मेरे लेख से तो इस उदासीनता का कोई संबंध नहीं है? यदि है तो हिन्दी-प्रेमी युवक अपना भ्रम दूर करें। मैंने साठ रुपये का मनी आर्डर सरस्वती सम्पादक को सेप्टेम्बर १९०९ में ही भेज दिया था, ताकि स्वर्ण-पदक बनकर तैयार हो जावे।

इस साल फिर मैं समिति की ओर से उसी संबंध में लिखता हूँ। पर इस बार कोई शर्त छात्र होने की नहीं है। जिस किसी का हृदय भारत में सामाजिक अन्याय देखकर द्रवीभूत हुआ हो वही लेखनी उठावे, और एक मर्मभेदी कथा लिख डाले। कथा छः हज़ार शब्दों से कम और आठ हज़ार से अधिक न हो, और वाक्य आम बोल चाल के हों।

'छोटी कथा' के संबंध में इतना बतला देना ज़रूरी है कि जैसी 'माडर्न रिव्यू' में कथायें प्रत्येक अंक में छपा करती हैं वैसी हों। कथा में केवल एक ख़ास बात पर ज़ोर होता है। किसी व्यक्ति के स्वभाव का कोई पहलू दिखला देना, या किसी घटना को एक ख़ास आशय से वर्णन करना, और वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्ण और व्याध।

सगुण होकर निर्गुण रूप से, सुजन-त्राण किया भव-कूप से।
सगुण से फिर निर्गुण हो गये, नियम हैं नटनागर के नये!

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशय या भाव पाठक के हृदय पर खचित हो जावे। जैसे चित्रकार 'दुख', या 'निरपराध' का चित्र उस भाव को दर्शाने के लिए खींचता है और किसी सामाजिक दृश्य को अपना लक्ष्य बनाता है, ऐसेही समाज की किसी घटना को लेकर, जिसका परिणाम 'अन्याय' में जान पड़े, कथा लिखी जानी चाहिए। लेखक को अपने मुँह से अन्याय न कहना पड़े, बल्कि कथा ऐसी हो, वर्णन ऐसा हो कि पाठक को वह घटना चुभ जावे; और वह प्रण कर उठे कि मैं इस अन्याय को दूर करने का यत्न करूँगा।

इस बार विचार यह किया है कि दो उपहार दिये जावें, एक जो सबसे अच्छी कथा लिखे उसको पैंतीस रुपये का इनाम; दूसरे दरजे के लेखक को पच्चीस रुपये का उपहार। विचार अच्छी और उपयोगी पुस्तकें देने का है, पर इसका फ़ैसला लेखकों के साथ किया जावेगा। जैसी पुस्तकें वे पसन्द करेंगे, उनको भेंट की जावेंगी।

मैं १५ फ़रवरी १९१० से वेंकोवर चला जाऊँगा और वहीं ठहर कर साल भर काम करूँगा इसलिए प्रेमी सज्जन मेरा पता नोट करलें ताकि उनकी चिट्ठी पत्री मुझे मिल सके :—

S. Deva,
General Delivery
Post Office,
Vancouver B. C.
Canada.

लेखक महाशय इसी नये पते पर कथायें भेजें और सब कथायें २५ मई १९१० तक मेरे पास पहुँच जानी चाहिएँ।

यदि दूसरे समाचार-पत्र तथा पत्रिकायें भी इस सूचना को छाप देंगी तो यह समिति उनको बहुत धन्यवाद देगी।

सत्यदेव (अमरीका)

लीला-संवरण।

(स्रग्धरा)

(१)

दुष्टात्मा क्रूरकर्म्मा निहत जब हुए युद्ध में धार्तराष्ट्र,
पाके त्यों पाण्डवों को मुदित जबहुआ दीन दुःखार्तराष्ट्र।
तो भी दोनों कुलों में उससमय हुआ व्यक्त जो शोक घोर,
वार्ता कैसे लिखेगी उस नव युग की लेखनी! तू कठोर?

(२)

स्वेच्छाचारी कुमार्गी यदपि विदित थे दुष्ट दुर्योधनादि,
तोभी प्यारे न होते निजसुत किसको हाँ भलेहीप्रमादी?
गान्धारी का व्यथासेहृदय फिर भला क्योंनहोताविदीर्ण?
देखा मा का कभीहै सुत-विषयक क्याप्रेमवात्सल्यजीर्ण?

(३)

आँखों केयुक्त अन्धी विचलित हृदयाशोक संदग्धदीना,
रो रोके धैर्य्यहीना फिर वह सहसा होगई क्रोध-लीना।
ले के त्यों अञ्जली में दृगजल उसने हो हतज्ञान आप,
विश्वात्मा वासुदेव प्रभुवर हरि को यों दिया घोर शाप॥

(४)

"हैऐसाकार्य्यक्या जोतुम कर सकते सर्वकर्म्मा! न सिद्ध?
तो भी मेरे सुतों की अहह! कर रहे गृध्र सेवा प्रसिद्ध!
हो ऐसा ही तुम्हारा अब जब जग में नाश वंश-प्रयुक्त,
होंगे ये प्राण मेरे बस कुछ तब ही शोक-सन्ताप-मुक्त॥"

(५)

"होतेभी ज्यों तुम्हारे इस कुहकुल का हो गया सर्वनाश,
होगा त्योंही तुम्हारा कुलसहित हरे! सर्वनाश प्रकाश।
होऊँगी जो सती मैं पतिरतिनिरता धर्म्मशीला यथार्थ,
होगा तो सिद्ध मेरा कथन यह सभी शीघ्र मेरे सुखार्थ॥"

(६)

गान्धारीकी गिरायें श्रवणकर हँसे आत्म भूचक्रपाणि,
बोले सन्तुष्ट होके हरि फिर उससे पुण्यतापूर्ण वाणी।
कैसे यों शाप होता यदि वह हरि को आप होता न इष्ट?
वाणी के रूप में थे स्वयमपि उसके कण्ठ में वे प्रविष्ट॥

(७)

"होगा आर्य्ये! मही में समय पर सभी शाप पूरा तुम्हारा,
सोचोतो किन्तुजीमें अब तुम इसमें दोष क्या है हमारा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यायी कौरवों ने भुजबल-मद से पाप जैसा किया है,
धर्म्म-द्वारा उन्होंने फल यह उसका योग्यही पा लिया है॥

(८)

"दुर्वृत्तों को मिले जो सतत न उनके पापका पूर्णदण्ड,
मर्य्यादा धर्म्म की तो किस तरह रहे मेदिनी में अखण्ड?
दुर्वृत्तात्मा कुमार्गी मनुज न अपने पाप का दण्ड पावें,
होके सन्मार्गगामी सुजन भुवन में कष्ट तो क्यों उठावें?

(९)

"चाहै जो हो परन्तु त्वरित वचन ये पूर्ण होंगे तुम्हारे,
होते सङ्कल्प सारे सफल सहजही धार्मिकों के विचारे।
होवे तो हो भले ही नियम जगत में भङ्ग मेरा सदैव,
भक्तोंकी भारती को स्वयमपि करता सत्य मैं सर्वथैव॥'

(१०)

गान्धारी के कहे वे कठिन वचन यों मान सन्तोष मान,
लक्ष्मीनाथ स्वभू ने समय पर किया पूर्णता का विधान।
ऐसे भक्तार्थकारी त्रिभुवनपति के त्याग के पाद-पद्म,
हा! हा! अज्ञानतासे जड़जन करतेस्वार्थसिद्ध्यर्थछद्म!।

(११)

आये थे द्वारका में बहु मुनि हरि की भेंट को एक वार,
उत्पाती यादवों ने कुपित कर उन्हें दण्ड पाया अपार।
हो मद्योन्मत्त सारे लड़कर तब वे शाप से निष्प्रताप,
कल्लोलों के समान त्वरित हत हुए एक से एक आप!

(१२)

ऐसी संहार-वार्ता सुन जब समझे कृष्ण-कांक्षा नवीन,
योग-द्वारा हली* भी तबतज तनुको हो गये आत्मलीन।
होता है सूर्य्य जैसे प्रकटित नभ में चन्द्र-तारा छिपा के,
वैसेही व्यक्त भू में उस समय हुए विष्णु भी दीप्ति पाके॥

(१३)

पृथ्वी में मौन बैठे मुकुलित दृग से वे गुणातीत-गीत,
देते थे यों दिखाई पवन-रहित ज्यों मेघ होता प्रतीत।
था एक व्याध कोई उस समय वहाँ घूमता चाप धार,
लीला से बाण छोड़ा हरि पर उसने जान के कृष्णसार॥

(१४)

धन्वा से छूटते ही वह शर पद में शीघ्र ही आ समाया,
मानो उत्फुल्ल पद्म प्रखर किरण से विद्ध होके सुहाया।
उत्कण्ठायुक्तज्योंहीवधिकफिर वहाँ दौड़के शीघ्र आया,
देखा ऐसा अनर्थ स्वकृत इसलिए दुःख अत्यन्त पाया॥

(१५)

जीमें सन्ताप पाके हृदय पर तथा धार के एक हाथ,
ज्योंही रोने लगा सो कर बहु करुणा 'हा हरे! विश्वनाथ!
बोले गोविन्द त्योंही हँसकर उससे नित्यही निर्विकार,
"पूरा निर्दोषहै तू विचलित मत हो ईश्वरेच्छा विचार।

(१६)

"दुःखीहोना वृथाहै यह सब कुछतो था इसी भाँतिहोना,
जीसे सन्तुष्ट हूँ मैं तुझ पर अब तू छोड़ यों व्यर्थ रोना।
पावेगा अन्त में तू अविचल पद से लोक मेरा ललाम,
हूँ मैं ही सर्वकर्ता नर कर सकता आप कोई न काम॥"

(१७)

ऐसी वाणी सुना के उस छवि-घन ने बन्द की दृष्टि ज्योंही
दीखे इन्द्रादि सारे सुरगण नभ में एक ही साथ त्योंही।
फैला दिव्य प्रकाश प्रचुरतर अहो! छा गई पुष्प-वृष्टि,
आकाशी वाद्य-नाद श्रवण कर हुई शङ्किता सर्व सृष्टि।

(१८)

स्वेच्छा से लोक-लीला करतब अपनी लुप्त वे विश्व-भूप,
भारी भू-भार-हारी सगुण सुतनु से हो गये आत्मरूप।
सारी स्वच्छन्द लीला परम पुरुष की है बड़ीही विचित्र,
आता है ध्यान में भी उस नटवर का भेद कोई न मित्र!

(१९)

विश्वात्मा विष्णु के यों सकल चरित हैं तत्त्व से पूर्ण गूढ़,
जानेंगे भेद कैसे हम सब उनके मोह-माया-विमूढ़?
वेदोंका 'नेति नेति' स्फुट कथन यहाँ ज्ञात होतासही है,
होतास्वीकार है जो उस विभुवरको नित्य होता वही है॥

मैथिलीशरण गुप्त।

* बलरामजी।

पुच्छल-तारा।

आकाश-मंडल, आज कल, विविध तारात्रों, ग्रहों, और पुच्छल-तारात्रों से आच्छादित एक अद्भुत दृश्य हो रहा है। आकाश आज कल एक शौक़ीन अमीर आदमी के बैठक के कमरे की छटा दिखा रहा है। तारागण क्या हैं, मानो कमरे में इतने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोशन झाड़ फ़ानूस लगे हुए हैं। साधारण मनुष्य को यह आकाशरूपी कमरा सदा शांतिमय प्रतीत होता है। परन्तु इसमें समय समय पर ऐसी अद्भुत घटनाओं का प्रादुर्भाव हुआ करता है कि जिनको देख कर संसार मात्र चकित हो जाता है।

शुक्र, जो जनवरी महीने के शुरू में, पूर्णरूप से तेजोमय था, अब भी शाम को आकाश में सबसे अधिक प्रकाश करता है। उसके ऊपर शनि जो जनवरी के पहले हफ़्ते में वृत्तपाद में था, दिखाई देता है। उसके ऊपर लाल नेत्रवाले मंगल हैं। वारुणी (Uranus) सूर्य के साथ ही अस्त हो जाता है और दृष्टि के परे हो जाता है। वरुण तारा (Neptune) सूर्यास्त पर निकलता है। बृहस्पति ११ बजे रात को दिखाई देता है। बुध, जो कभी कभी दर्शन देते हैं और जो दर्शन देते हैं तो साधारण मनुष्य उनको पहचान नहीं सकता, जनवरी के दूसरे हफ़्ते में सूर्यास्त के आध घंटे पहले साफ़ दिखाई देते थे।

नया पुच्छल-तारा।

इस समय जाड़े की लम्बी लम्बी रातों में, प्रकाशमान् तारों का सुन्दर झुरमट एक आकाशीय सभा का अनुभव कराता है। इन समस्त आकाशीय पिण्डों में सबसे अधिक अद्भुत एक पुच्छल-तारा है जो एकाएक हमारे दृष्टि-गोचर हुआ है। यह केतु, जो सबसे पहले अफ़्रीक़ा और केम्ब्रिज में दिखाई दिया था, सामान्य आकार का है और ७ बजे शाम को पश्चिम में क्षितिज के पास दिखाई पड़ता है। यह हेली साहब का पुच्छल-तारा नहीं है। यह दूसरा केतु है जो हमारी निगाहों को चुरा कर सूर्य के पास पहुँच गया है और अब अपने निज स्थान को वापस जा रहा है। यदि यह सत्य है तो प्रति दिवस वह देर को अस्त होगा परन्तु उसकी ज्योति और आकार घटते जायँगे यहाँ तक कि एक दिन वह सदा के लिए अस्त हो जायगा। यही केतु है जिसकी ओर आज कल सूर्यास्त के बाद ही सैकड़ों दृष्टि उठी होती हैं।

हेली का केतु।

हेली साहब का केतु, जिसके दर्शनों के लिए सैकड़ों मनुष्य उत्सुक हो रहे हैं, इस समय मीन राशि (constellation) में है जो सूर्यास्त के समय ठीक हमारे सिर पर शनि के पास होता है। यह पुच्छल-तारा प्रति ७४ या ७५ वर्ष में दिखाई देता है। पिछली बार यह सन् १८३५ ई० में दिखाई दिया था। पिछले १२ महीनों से संसार की तमाम आब्ज़र्वेटरी इसकी खोज में लग रही हैं और फ़ोटो के प्लेट भी (constellation Gemini) मिथन की तरफ़ जहाँ वह दिखाई देनेवाला था लगाये गये थे। १२ सितम्बर १९०९ की सुबह को एक धीमा दाग़ (plates) प्लेटों पर दिखाई दिया था जिससे हेली साहब के पुच्छल-तारा की आमद की ख़बर मिली थी। ज्योतिषिक-दूरदर्शक-यंत्र से अक्टूबर १९०९ में यह तारा दिखाई दिया। साधारण मनुष्य नेत्रों द्वारा, उसको फ़रवरी या मार्च में इसी साल सुबह को और अप्रैल और मई में शाम को देख सकेंगे। यह केतु २००० वर्ष से बराबर समय समय पर दिखाई दिया है और जब जब दिखाई दिया है तब तब कोई अद्भुत घटना भी दिखाई दी है।

सन् ६६ ई० में जेरूसलम का नाश हुआ।
,, ३७५ ई० में हन्स (Huns) लोगों ने रूमा पर हमला किया और गाथ्स (Goths) को निकाल बाहर किया।
,, ४५२ ई० में इतालिया और गाल (जहाँ अब फ़्राँस है) के मुल्क दुश्मनों से हमला किये गये।
,, ५३१ ई० में फ़ारस में महामारी का बड़ा ज़ोर हुआ।
,, ६१० ई० में मुहम्मद साहब को इलहाम हुआ और उन्होंने मक्का में व्याख्यान देना प्रारम्भ किया।
,, १०६६ ई० में विलियम ने इँगलिस्तान पर चढ़ाई की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् ११४६ ई० में जेरूसलम को तुर्कों से लेने के लिए दूसरी लड़ाई छिड़ी।

,, १२२३ ई० में खुरासान और फ़ारस को चंगेज़-ख़ाँ ने फ़तह किया।

,, १४५६ ई० में कान्स्टेन्टीनोपल को तुर्क लोगों ने ले लिया।

,, १५३१ ई० में हालेंड में भयंकर बहिया आई जिससे ४,००,००० आदमियों की जानें गईं। लिस्बन में बड़े ज़ोर का भूचाल आया जिससे ३०,००० मनुष्य मरे और कितने ही स्थान उलट पलट गये।

,, १६०७ ई० में डच लोगों ने स्पेनवालों के जंगी बेड़े को नेस्तोनाबूद कर दिया।

,, १७५८ ई० में अँग्रेज़ों ने फ़्रांसीसियों के जंगी बेड़े का नाश किया और रूसी और आस्ट्रियन ने बर्लिन पर हमला किया।

,, १८३५ ई० में एक भयंकर भूचाल से चिली का नाश हुआ।

उसका आकार।

अब यह केतु बुड्ढा होता जाता है। परन्तु सन् १८३५ ई० में जब पिछली बार यह दिखाई दिया था तो इसका आकार इतना बड़ा था कि उसका विचार में आना असम्भव है। अगर अपनी जैसी ४४ पृथ्वी एक रेखा में रक्खी जायँ, फिर ४८० चन्द्रमाओं की रेखा उस रेखा के सम कोण (rt. angles) पर रक्खी जाय तो पहली रेखा इस केतु के सिर की चौड़ाई होगी और दूसरी रेखा उसके पुच्छ की लम्बाई होगी। अर्थात् सं० १८३५ ई० में उसके सिर की चौड़ाई ३५,७०,००० मील थी और उसके दुम की लम्बाई ९६,००० मील थी। इस अद्भुत आकार को देखते हुए हमारी दुनिया एक छोटे से टापू की तरह समझ पड़ती है।

उसकी गति।

उसकी गति के भी समझने में मनुष्य की बु काम नहीं देती। यह तारा जब हमको दिखाई दे तब १,००,००० मील फ़ी, घंटा के वेग से चलता हु दिखाई देगा। यह गति उतनी ही अधिक तेज़ हो जायगी जितना वह सूर्य के अधिक निकट हो जायगा। इस प्रकाण्ड वेग का अनुमान क विचार से बाहर ही समझना चाहिए। एक रे गाड़ी ऐसी गति रखती हुई पृथ्वी की १३ मिनट परिक्रमा कर आवेगी परन्तु लौटने पर उसके इं और गाड़ियों में आग ज़रूर लगी होगी। ज़रा उ गर्मी का अनुमान कीजिए जो इतनी तेज़ चलनेवा चीज़ पैदा करेगी। अगर लोहे का एक दंड स में इस वेग से चले तो पानी में होने पर भी लाल अँगारा हो जायगा।

उससे डर।

यह हिसाब लगाया गया है कि एक बड़े में सूर्य के निकट लोहे के लाल अंगारा से २,००० गु अधिक गर्मी होती है। अब विचार कीजिए कि ऐ चीज़ अगर पृथ्वी के काफ़ी निकट आजाय तो क हो? पृथ्वी तिनके की नाईं भस्मीभूत हो जाय जो लोग कहते हैं कि पुच्छल-तारा का दिखाई दे सदा अशुभ-सूचक है उनका कथन केवल अनुमा पर स्थित है। वैज्ञानिक इसके डर को केवल मनुष्य का भ्रम व अविद्या बतलाते हैं। इस भ्रम को दू करने का उद्योग सन् १६८० में ही शुरू हो गया थ जब प्रसिद्ध ज्योतिषी हेली साहब ने यह सि करना प्रारम्भ किया था कि यह ख़ास पुच्छल-ता (जो अब उन्हीं साहब के नाम से जाना जाता है नियत-कालिक कक्षा (Periodical Orbit) घूमता है और हमारी ओर बार बार साधारण री से आता रहा है और यह सिद्ध कर दिया था कि ये पुच्छल-तारे चाहे कुछ उत्केन्द्र क्यों न हों पर साधारण आकाशीय पिण्ड हैं। जो वैज्ञानिकों के इन तारों से डर है वह मिथ्या विश्वास पर न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज टिक्का साहब नाभा।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु सत्यता पर निर्भर है। आप इस ख़ास पुच्छल-तारा के आकार, गति और उष्णता का वृत्तान्त पढ़ ही चुके हैं। अगर ऐसा तारा हमारे सूर्य-सम्प्रदाय में (Solar system) पृथ्वी की कक्षा के किनारे ऐसे समय में आजाय जब पृथ्वी उसके रास्ते को काटती हो तो क्या पृथ्वी का नाश होना सम्भव नहीं है? सच पूछिए तो साधारण मनुष्य के डर से वैज्ञानिकों का डर कहीं ज़्यादा भयंकर है।

यहाँ यह सवाल स्वभावतः उठता है कि पुच्छल तारे क्या चीज़ हैं, कैसे पैदा होते हैं, सूर्य के पास क्यों आते हैं और फिर कहाँ चले जाते हैं?

उसकी शकल।

पुच्छल-तारा एक बड़ी चमकती हुई झाड़ू की शकल का होता है। उसका सिर कड़ा और प्रकाशमान् होता है जिसको 'केतु-नाभी' कहते हैं। यह 'केतु-नाभी' बहुत प्रज्वलित कोहरा से घिरा रहता है जो वेग से एक स्त्री के लम्बे बालों की तरह लहराया करता है। इसको 'केतु-नाभी-आवरण' कहते हैं। बालों की नाईं होने के कारण इसको अँग्रेज़ी में 'कोमा' कहते हैं। 'कोमा' ग्रीक ज़बान का शब्द है जिसके अर्थ 'बाल' हैं। केतु-नाभी के पीछे दहकते हुए बाष्प और पाषाणों की एक धारा होती है, जिसको 'केतु-पुच्छ' कहते हैं। केतु की पूरी शकल इस तरह से एक बड़े भारी छूटते हुए अनार की सी होती है। अगर पृथ्वी एकाएक (white-hot) बेहद गरम हो जाय तो सारे समुद्र उबल उबल कर बाष्प होकर आकाश में उड़ने लगें, और सारे महाद्वीप गल जायँ। अगर यह गली हुई पृथ्वी दहकते हुए पाषाण और भाप चन्द्रमा की तरफ़ फेकती रहे; तो पृथ्वी इस भयंकर हालत में एक सूर्य के निकटवर्ती पुच्छल-तारा का नमूना होगी, गली हुई पृथ्वी केतुनाभी होगी। भापरूपी समुद्र केतु-नाभी-आवरण होंगे और दूर फेंके हुए पाषाण इत्यादि केतु-पुच्छ होंगे।

क़िस्में।

केतु कई तरह के होते हैं। कोई बहुत बड़े और कोई छोटे। बहुत से केतु तो ऐसे हुबाब होते हैं कि २८ मन से अधिक वज़न में नहीं होते। पृथ्वी को नुक़सान पहुँचाना क्या वे एक बादल के टुकड़े तक को तो हटा ही नहीं सकते। और बाज़ बहुत ही बड़े होते हैं। एक केतु की पुच्छ जो १८४३ में निकला था २० करोड़ मील लम्बी थी। अभी सन् १९०७ ई० में कहा जाता है कि एक केतु बहुत दूरी पर दिखाई दिया था जिसके ७ पुच्छें थीं, हर एक ७० लाख मील लम्बी। ऐसे बड़े केतु का सिर (केतुनाभी) ही इतना बड़ा होता है कि पृथ्वी और चन्द्रमा के अन्दर होकर उसका निकलना बहुत कठिन है।

गति।

इनकी गति का हेली साहब के केतु की गति से, जिसका उल्लेख हो चुका है, कुछ अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। उसी को घटा-बढ़ा कर समझ लीजिए।

उत्पत्ति।

प्रकाशमान् तारागणों के मध्य में उल्का तारागणों (meteors) के झुंड के झुंड हैं। ये उल्का तारागण बड़े वेग से तारागणों के भीतर होकर सूर्य की ओर गतिमान् होते हैं। कभी कभी दो झुंड इधर उधर से आकर टकरा जाते हैं। टक्कर की रगड़ और दाब से इतनी गर्मी पैदा होती है कि दोनों उल्का-तारागण-समूह धधकती हुई वायु की शकल में तबदील हो जाते हैं। यही नव-उत्पन्न केतु होता है। पहले तो यह केतु का बच्चा बहुत गर्म होता है। केतु-नाभी इस समय बाष्परूपी आवरण से घिरा रहता है। गले हुए लोहे की धारायें उससे निकला करती हैं और उसकी पुच्छ बनाती हैं। यह नवीन केतु इस हालत में तारागणों के बीच में बिना किसी लक्ष्य के घूमने लगता है। आकर्षण शक्ति के क़ानून के अनुसार हर एक तारा इस केतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अपनी ओर खींचता है और सबसे नज़दीक या सबसे ज़बरदस्त तारा उसको अपनी ओर खींच लेता है। सूर्य सबसे बड़ा और ज़बरदस्त तारा होने के कारण उसको अपनी तरफ़ खींचने लगता है। इसीलिए करोड़ों मील की मंज़िल तै करके और अपनी उष्णता से रहित होकर वह चीरता फाड़ता सीधा सूर्य की तरफ़ आता है। जब वह सूर्य के पास पहुँचता है तब वह हमको दिखाई देने लगता है। परन्तु सीधा सूर्य की तरफ़ आने पर भी वह उससे टकरा नहीं जाता। सूर्य से सदा प्रकाश का प्रकाण्ड झकोरा बाहर की तरफ़ चला करता है। यह केतु को सीधा सूर्य की ओर नहीं आने देता बल्कि उसके रास्ते को घुमा देता है। इसीलिए केतु सूर्य की परिक्रमा करके फिर अन्तर्द्धान होजाता है। जब केतु लौटने लगता है तो इसी झकोरे के कारण उसकी पुच्छ उसके सिर पर आ जाती है और बिच्छू के दुम की शकल बन जाती है।

सरयूनारायण त्रिपाठी।

मानव-रहस्य।

[गताङ्क से आगे]

(२)

एक साहब ने बन्दरों का भेद जानने में बहुत समय लगाया है। उन्होंने लिखा है कि अमरीका के बन्दर यद्यपि चतुराई में सबसे पीछे हैं तो भी कुछ न कुछ समझ रखते हैं। एक दिन उनको अंडे खाने को दिये वे जब उन्होंने फोड़े तो बहुत सा रस बह गया फिर जब दूसरी बार उनको अंडे मिले तो उन्होंने ऐसी सावधानी से तोड़ा कि तनक रस भी वृथा न जाने पाया। साहब उनको काग़ज़ की पुड़िया में चीनी खाने को दिया करता था। एक दिन एक पुड़िया में ततैया बन्द कर रख दी। पुड़िया खुलते ही ततैया ने बन्दर को काट खाया। उस दिन से सब बन्दर ऐसे चौकन्ने हो गये कि खोलने से पहले पुड़िया को कान पर रख सुनते थे। यदि उसमें कुछ शब्द सुन देता था तो उसे अलग रख देते थे। अ रोट तोड़ने के लिए बन्दर पत्थर से काम लेते गये हैं। सिखाने से बन्दर संदूक़ खोलते और करते हैं। दर्वाज़ों की साँकल खोल कर भीतर चीज़ निकाल ले जाते हैं।

बन्दरों में बड़ी सहानुभूति देखी गई है। किसी बन्दर के बच्चे को धोखे से पकड़ लिया जा तो उसकी माँ एक ऐसी अद्भुत भाँति से शो करती है कि उसकी सहायता के लिए अनेक बन्द इकट्ठे हो जाते हैं।

एबीसीनिया में बन्दर गोल बाँध कर बगी में फल खाने जाते हैं उनमें यदि कोई चीख़ता है चपत मार कर चुप कर दिया जाता है।

मनुष्य अपने जिन गुणों का अभिमान करता बन्दर में भी उनका अस्तित्व है। अन्तर केवल इत है कि मनुष्य उन्नति करके सर्व-शिरोमणि होगा है और बन्दर अभी तक उसी दशा में बना है।

भेड़िया, गीदड़ और कुत्ता ये तीनों जीव एक प्रकार के हैं। परन्तु कुत्ते ने मनुष्य के सत्संग आश्चर्यजनक उन्नति की है। अभी तक पृथ्वी-तल ऐसे मनुष्य वर्तमान हैं जिनसे पशुओं में बहुत थोड़ा अन्तर है। इन मनुष्यों को यदि शिक्षा मिले तो वे भी अन्य सभ्यजनों के सदृश शिक्षित बन सकते हैं।

यह कहा जाता है कि मनुष्य और पशु में बड़ा अन्तर यह है कि पशुओं को मनुष्य की भाँति ईश्वर का ज्ञान नहीं है और न वे पुण्य-पाप समझते हैं क्या मनुष्यों में ऐसे लोग नहीं हैं? अनेक जाति ऐसी हैं कि वे यह नहीं जानतीं कि परमेश्वर क्या चीज़ है तथा पाप-पुण्य किसे कहते हैं। मनुष्य जो कुछ भले काम करता है वह अपनी भलाई के लिए करता है जिस तरह गधे एक दूसरे को खुजाते हैं।

एक ही प्रकार के जीवों में कार्य-कारण के संबंध से बड़ा अन्तर देखा जाता है। यही तुच्छ चींटी अचरज में डालनेवाली है। इसकी एक बिरा दरी तो ऐसी है कि वह पेड़ के पत्ते से लगी रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है उसी का रस पीती, वहीं अंडे देती और मर जाती है। अपने स्थान से एक तिल इधर उधर नहीं जाती। दूसरी जाति की चींटी के विवरण में बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे गये हैं। वे आपस में समाचार लेती देती हैं, मिल कर काम करती और खेलती हैं। महीनों का वियोग होने पर भी एक दूसरी को पहचान लेती हैं। बिल के भीतर बड़े बड़े कमरे बना कर उन्हें खूब साफ़ रखती हैं। शाम को दरवाज़ा बन्द करके पहरेदार बिठाती हैं। सड़कें तैयार करती हैं। खान-पान के भंडार भरती हैं। जब वे कोई ऐसा पदार्थ घर में लाती हैं कि बड़ा आकार होने के कारण भीतर नहीं ले जा सकतीं तो दरवाज़ा तोड़ कर चौड़ा करती हैं उसे भीतर ले जाती हैं और बिल के दरवाज़े को फिर ज्यों का त्यों छोटा कर देती हैं। अन्न के दानों से कोठे भरती हैं। यदि वे भीग जाते हैं तो उन्हें बाहर लाकर सुखाती हैं। जब युद्ध होता है तो उनकी सेना सज कर निकलती है। लड़ाई में ग़ुलाम पकड़ कर लाती हैं। वे एक प्रकार के कीड़ों को गाय की भाँति पालती हैं और उनका दूध पीती हैं। अपने और गाय के अंडों को गरम कोठरी में पकने के लिए रखती हैं। ऐसे ही अनेक काम चतुराई के करती हैं। यह सब होने पर भी वे उस चींटी ही के घरानेवाली गिनी जाती हैं जो जहाँ पैदा होती वहीं मर रहती है।

मनुष्य के सिवा यदि किसी और के हाथ में जीव-भेद करना होता तो वह मनुष्य और बन्दर को एकही श्रेणी में रखता। शारीरिक बनावट के जानने-वाले प्रोफ़ेसर हक्सली ने लिखा है "बनावट में मनुष्य उच्च जाति के बन्दरों से ख़ूब मिलता है इसलिए इन दोनों को एक ही श्रेणी में रखना चाहिए"।

बन्दरों से हमारा गहरा सम्बन्ध है इस बात के सिद्ध करने के लिए और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। यथा हमारा और बन्दर का चेहरा एकसा है। हँसने और रोने में चेहरे की हरकत एकही सी होती है, हमारे और उसके कान एक से बने हैं। यद्यपि साधारण बन्दरों की नाक छोटी होती है परन्तु एक प्रकार के बन्दर मनुष्य के ही सदृश नाक रखते हैं।

इस प्रकार के बन्दर भी मिले हैं जिनके दाढ़ी और मूँछ होती है। यह सच है कि बन्दर का माथा इतना चौड़ा नहीं होता परन्तु हमारे भी बच्चे कोई कोई ऐसे जनमते हैं जिनके सिर के बाल भौंओं से ही शुरू हो जाते हैं। हमारे शरीर के बालों का जैसा रुख़ है बन्दर के बाल भी वैसे ही हैं। एक प्रकार के बन्दर ऐसे हैं जिनके पूँछ नहीं होती तथा आकार में मनुष्य से बहुत मिलते हैं। इनको देख कर डार्विन ने यह कहा है कि मनुष्य के आदि-पुरुष इसी भाँति के बन्दर रहे होंगे। मस्तिष्क की बढ़वारी और खड़े होकर चलने के कारण बनावट में इतना अन्तर देख पड़ने लगा है।

बन्दर शब्द से हमारा मतलब इन बन्दरों से नहीं है जो मथुरा, वृन्दावन में झुंड के झुंड विचरते हैं। देश-भेद और ऋतु के अनुसार पूर्व पुरुषों से जैसे हम अन्य रूप के हो गये हैं ये भी कुछ का कुछ बन गये हैं।

बहुत खोज करने से ऐसा जान पड़ता है कि जिस प्रान्त में आज कल गोरिल्ला और चिंपांजी नामक बन्दर वर्त्तमान हैं अफ़्रीक़ा के उसी प्रान्त में मनुष्य-जाति के आदि-पुरुष रहे होंगे। मनुष्य के शरीर पर घने बाल न होना यह प्रकाश करता है कि वह किसी उष्ण देश का जीव है और फलाहारी है।

(क्रमशः)

महेन्दुलाल गर्ग।

वसन्त-वर्णन।

रे पान्थाः स्वगृहाणि गच्छत सुखं सेवाक्षणो मुच्यताम्
मानं मानिनि मुञ्च वल्लभजने कोपानुबन्धेन किम्।
आयातः कुसुमाकरः क्षपयति प्राणान्वियोगातुरे-
त्येवं परपुष्टनादपटहो वक्तीव कामाज्ञया॥

(कस्यचित् कवेः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हे बटोहिया! अपने घर जाओ, सेवा करना छोड़ दो। हे मानिनि! अपने प्रियजनों से मान करना त्यागो, अब कोप करने से क्या फ़ायदा। वियोगियों के प्राण लेनेवाली वसन्त ऋतु आ पहुँची" यह कह कहकर मानो काम की आज्ञा से कोकिलायें ढिंढोरा पीट रही हैं।

वसन्तप्रारम्भे चिरविरहखिन्ना सहचरी
यदि प्राणान्मुञ्चेत्तदिह वधभागी भवति कः।
वयो वा स्नेहो वा कुसुमविशिखो वेति विमृशं
स्तुहीति प्रव्यक्तं पिकनिकरझाङ्कारमशृणोत्।

(कस्यचित् कवेः)

"वसन्त के आरम्भ में यदि विरहखिन्न सहचरी अपने प्राण त्याग दे तो इसमें कौन पाप-भागी होगा? वय, स्नेह या पुष्पबाण?" यह मन ही मन विचारता हुआ कोई बटोही जा रहा था कि उसे कोयलों के शब्द की "तूही तूही" की झङ्कार सुनाई पड़ी।

जगौ विवाहावसरे वनस्थलीवसन्तयोः कामहुताशसाक्षिणि।
पिकद्विजः प्रीतमना मनोरमं मुहुर्मुहुर्मङ्गलमंत्रमादरात्।

(कस्यचित् कवेः)

वसन्त का वनस्थली से विवाह हो रहा है जिसमें कामहुताशही साक्षी है। पिकरूपी द्विज मनोहर मङ्गलाचार के मंत्र पढ़ रहे हैं।

लताकुञ्जं गुञ्जन्मदवदलिपुञ्जं चपलयन्
समालिङ्गन्नङ्गं द्रुततरमनङ्गं प्रबलयन्।
मरुन्मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्
रजो वृन्दं विन्दन्किरति मकरन्दं दिशि दिशि।

(कस्यापि)

वसन्त ऋतु की पवन मतवाले भ्रमरों के झुंड से गूञ्जते हुए लताकुञ्जों को हिलाती हुई, अङ्ग में लग कर अनङ्ग को बढ़ाती हुई, कमलों को स्पर्श कर मकरन्द को चारो तरफ़ फैलाती हुई आहिस्ता आहिस्ता चल रही है।

वसन्त ऋतु में पवन की इस मन्दगति को देख कर कोई कवि कल्पना करता है।

मलयाशिखरादाकैलासं मनोभवशासना-
द्भुवनबलयं जेतुं वाञ्छन्वसन्तसमीरणः।
विहितवसतिं कैलासाग्रे भुजङ्गधरं हरं
मनसि विमृशन्भीतः शङ्के प्रयाति शनैः शनैः॥

मलयागिरि से कैलास तक विजय करने की आज्ञा वसन्त ऋतु की पवन को मिली है। परन्तु कैलास में बैठे हुए महादेवजी के भुजङ्गों के डर से उत्तर की ओर जाती हुई बेचारी धीरे धीरे चल रही है।

संस्कृत के ग्रन्थ।

स समय उन्नत देशों में जिन जिन विषयों पर ग्रंथ लिखे जा रहे हैं या लिखे जा चुके हैं, उनमें से प्रायः ऐसे बहुत से विषय होंगे जिन पर भारत के ऋषि महर्षि भी अपने समय में उत्तमोत्तम ग्रंथ लिख गये हैं। हमारे वर्तमान प्रभु अँगरेज़ों के अनिवार्य्य विद्या-प्रेम तथा सारग्रहण-पटुता के प्रताप से आजकल संस्कृत के नाना विषयक जो ग्रंथ हम लोगों को देखने भालने और पढ़ने विचारने के लिए प्राप्त हो रहे हैं, उन्हें मनोनिवेश और गवेषणा-पूर्वक पढ़ने तथा उन पर बार बार विचार करने से यह बात भलीभाँति समझ में आ सकती है कि हमारे जिन ऋषि-महर्षियों ने उन ग्रंथों को प्रणीत किया है उन लोगों ने उन ग्रंथों में बहुधा ऐसीही ऐसी कथाओं तथा घटनाओं का वर्णन किया है जिन्हें पढ़कर वाचकगण उनसे अपनी भलाई की बहुत सी बातें सीख सकते हैं। साथही इस बात का भी पता लग सकता है कि वे लोग इस संसार की परिवर्तनशीलता और मानवस्वभाव की चंचलता से भी भलीभाँति परिचित थे। श्रीमद्भागवत तथा महाभारत आदि पुराण-ग्रंथों में जिन जिन पुरुषों तथा घटनाओं का वर्णन उन ग्रंथों के लेखकों ने लिखा है उन पर सूक्ष्मतया विचार करने से यह बात तत्क्षण ही ज्ञात हो जाती है कि किसी देश वा राष्ट्र की उन्नति के कारण अथवा सिद्धान्त किंचित् हेर फेर के साथ प्रायः एक से ही हुआ करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी थोड़े दिनों की बात है कि हिन्दी के अग्रगण्य साप्ताहिक समाचार-पत्र अभ्युदय के विद्वान् संपादक महाशय ने अपने पत्र में जर्मनी के महाराज की उस परमोदार तथा प्रजाहितकारिणी कृति का वर्णन प्रकाशित किया था जिसका आपने शर्करा की उन्नति के लिए अवलंबन किया था। जर्मनी के नरनाथ की उक्त कृति की जो सज्जन भागवत में वर्णित राजा पृथु की उन कृतियों के साथ तुलना करेंगे जो उस ग्रंथ में "धरणी दोहन के" नाम से प्रसिद्ध हैं, उन्हें हमारी उक्त बात में तनिक भी संदेह नहीं रहेगा कि देश वा राष्ट्र की उन्नति के कारण सब देशों में और सब जातियों में प्रायः एक से ही पाये जाते हैं। वेदव्यास महात्मा ने भागवत के चौथे स्कन्ध के अठारहवें अध्याय में लिखा है कि राजा पृथु से पृथ्वी ने कहा कि—

"पुरा सृष्टा ह्योषधयो ब्रह्मणा या विशांपते।
भुज्यमाना मया दृष्टा असद्भिरधृतव्रतैः॥
अपालिताऽनादृता च भवद्भिर्लोकपालकैः।
चोरीभूतेऽथ लोकेऽहं यज्ञार्थेऽग्रसमोषधीः॥

अर्थात् हे राजन्! प्रथम ब्रह्मा ने जो अन्न उत्पन्न किया था उसको जब मैंने व्रतहीन राजा वेन इत्यादि के भोग में आते देखा, साथ ही जब मैंने देखा कि आप जैसे लोकपाल मेरा अनादर करने लगे और चारों ओर सब लोग प्रायः चोर हो गये, तब यज्ञ के हेतु मैंने ओषधियों को ग्रस लिया"।

पाठक गण! आप विचार करें कि पृथ्वी के मुँह से राजा पृथु को जो बातें व्यास जी ने कहलाई हैं उनका अभिप्राय क्या है? किंचित् विचार करने से आपको यह बात तुरन्तही मालूम हो सकती है कि राजा वेन के कृषि-विभाग की ओर असावधान होने के कारण लोगों ने कृषि-कार्य्य की यहाँ तक उपेक्षा की कि अन्न की उपज उतनी भी नहीं हो सकती थी कि जितना धरती में बीज बोया जाता था। यही बात उक्त पद्यों से ध्वनित होती है।

राजा पृथु से पृथ्वी आगे चलकर और जो कुछ कहती है वह भी विचारणीय है।

"वत्सं कल्पय मे वीर येनाहं वत्सला तव।
धोक्ष्ये क्षीरमयान् कामाननुरूपं च दोहनम्॥
दोग्धारं च महाबाहो भूतानां भूतभावन।
अन्नमीप्सितमूर्जस्विद्भगवान् वांछते यदि॥
समां च कुरु मां राजन् देववृष्टं यथा पयः।
अपर्त्तावपि भद्रं ते उपावर्त्तेत मे विभो॥"

इसका भावार्थ यह है कि :—

हे वीर, तुम एक वत्स और दूसरा वैसा ही उचित पात्र नियुक्त करो जिससे मैं तुम पर प्रसन्न होकर तुम्हारी क्षीरमय सब इच्छाओं को पूर्ण कर दूँ। हे महाबाहो, हे भूतभावन, यदि तुम प्राणियों के मनोवांछित बलदायक अन्न को चाहते हो तो एक दुहनेवाले को नियुक्त करो। हे राजन्, हे प्रभो, तुम मुझे बराबर समतल कर दो जिससे वर्षाऋतु के बीत जाने पर भी इन्द्र का वर्षाया हुआ जल मेरे प्रत्येक स्थान पर सदा भरा रहे!

विज्ञ वाचक वृंद! उक्त पद्यों में पृथ्वी ने राजा से जो कुछ कहा है उससे यह बात स्पष्टतया ध्वनित होती है कि जब तक धरती की सेवा भली भाँति नहीं की जाती, जब तक उसकी उत्पादक शक्ति को बढ़ाते रहने वाले खाद आदि द्रव्य उसको नहीं दिये जाते, जब तक फ़सल को यथासमय अप्राकृतिक रूप से अर्थात् तालाब, कुंआ, नहर आदि से जल पहुँचाने का प्रबंध नहीं किया जाता, तब तक वह यथेष्ट अन्न नहीं दे सकती। इन सब कृषिविघातक दूषणों को दूर करने के लिए ही व्यास जी ने पृथ्वी के मुख से राजा को उक्त परामर्श दिलाया है।

पृथ्वी के परामर्श को सुनकर राजा पृथु ने जो कुछ किया सो भी विद्वज्जनों के विचार करने योग्य है। उसका उल्लेख यों पाया जाता है :—

"इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः।
वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत् सकलौषधीः॥
तथाऽपरे च सर्वत्र सारमाददते बुधाः।
ततोऽन्ये च यथाकामं दुदुहुः पृथुभाविताम्॥"
कृत्वा वत्सं सुरगणा इंद्रं सोममदूदुहन्।
हिरण्मयेन पात्रेण वीर्य्यमोजो बलं पयः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका छायार्थ यह है कि पृथ्वी के प्रिय तथा हितकर वाक्यों को सुनकर राजा पृथु ने मनु को वत्स कल्पितकर हाथ में दोहनी को ले सब ओषधियों को दुह लिया। इसके सिवा और भी अनेक विवेकी सज्जनों ने पृथु की प्रेरणा से पृथ्वी का दोहन किया। उदाहरण स्वरूप में यह कहा जाता है कि समस्त देवताओं ने इंद्र को वत्सकल्पित कर सोने के पात्र में अमृत, वीर्य्य और बलरूप दूध को दुह लिया।

विज्ञ एवं विवेकी पाठक गण! राजा पृथु के उक्त अनुष्ठान से यह बात स्पष्टतया बोध होती है कि राजा पृथु ने मनुनामक आचार्य्य को नाना प्रकार की ओषधियों के गुण-धर्म्म के विषय में अनुसंधान तथा प्रत्यय करने के लिए नियुक्त किया और उनसे इस विषय के अनेक ग्रंथ लिखवाये, साथही उनके रहस्यों को स्वयं जानकर तदनुसार बर्ताव कर प्रजा-वर्ग का हित सिद्ध किया। अकेले पृथु राजाही इस सर्व्वसाधारण के हितकारक काम को नहीं करते रहे। किन्तु आपकी प्रेरणा से आपके यहाँ के धनाढ्य तथा धराढ्य लोगों ने भी अपनी अपनी ओर से आचार्य्यों को सहायता देकर उन्नतिकारक कार्य्यों की जाँच परताल और आविष्कार कराये। जैसे कई सुर-समाज के अग्रेसर लोगों ने इंद्र नामक आचार्य्य को आश्रय देकर उनसे बल-वीर्य को पुष्ट करनेवाले अनेकानेक रसों का आविष्कार कराया। इत्यादि।

वर्तमान वर्ष के अभ्युदय के अंक २९ में प्रजा के बल-वीर्य्य की वृद्धि के हितार्थ शर्करा की उपज बढ़ाने के हेतु जर्मनी-नरेश के किये हुए जिन उपायों का उल्लेख पाया जाता है उनके साथ राजा पृथु की उक्त कृति का जो सज्जन मिलान करके देखेंगे उन्हें इस बात में अणुमात्र भी संदेह नहीं रहेगा कि हमारे यहाँ के संस्कृत के पुराणादि ग्रंथों में जिन जिन कथाओं का, जिन जिन घटनाओं का, जिन जिन चरितों का वर्णन पाया जाता है वह बहुत ही सार्थक हैं। जिन विद्वज्जनों ने उन ग्रंथों में उन बातों को लिखा है उन लोगों ने उन्हें यों ही नहीं लिखा है उनके लिखने का अभिप्राय यही है कि उन कथा, वार्ता और घटनाओं को पढ़कर उनके पाठक गण उनसे लाभ उठावें और अपनी भावी संतति के हितार्थ अपने अनुभव से प्राप्त की हुई बातें लिखकर उत्तमोत्तम ग्रंथों की संख्या बढ़ाते जायँ।

इन ग्रंथों के पठन-पाठन के विषय में महात्मा व्यासजी ने एक स्थान पर लिखा है :—

वेदस्याध्ययनं सर्वं धर्म्मशास्त्रस्य चैव यत्।
अजानतोऽर्थं तत्सर्वं तुषाणां कंडनं यथा॥

इसका मतलब यह है कि वेद तथा धर्म्मशास्त्रादि ग्रंथों का विना उनके अर्थ को जाने पढ़ना वैसाही व्यर्थ है जैसे कोई भूसी को कूटता रहे। तात्पर्य्य जैसे भूसी को कूटने से कूटनेवाले को कोई सारवस्तु प्राप्त नहीं हो सकती ठीक वैसे ही उन ग्रंथों को बिना उनके अभिप्रेतार्थ को समझे बूझे पढ़ने से पाठक को कोई लाभ नहीं हो सकता। भगवान् व्यासजी ने उक्त पद्य में अपनी जो सम्मति लिखी है उस पर टुक विचार करने से यह बात सहजही ध्यान में आ सकती है कि भारत की वर्तमान अवनति का सूत्रपात तभी से हुआ है जब से हमारे यहाँ के संस्कृत के धर्म्म तथा पुराणादिक ग्रंथों का पठन-पाठन सुग्गारटंत के अनुसार होने लगा। इस समय तो यह प्रथा अवनति की चरम सीमा को पहुँच गई है। "श्लोकपादेन पंडितः" बनकर जो पंडित लोग भागवत् को पीठ पर लादकर सप्ताह बाचने के लिए यत्र तत्र भ्रमण किया करते हैं उन्हें जिस अपमान और कठिनता का सामना करना पड़ता है उसका विस्तृत वर्णन करके हम अपने पाठकों के जी को दुखी नहीं करना चाहते। महात्माओं ने जिन ग्रंथों को पाठकों तथा श्रोताओं के ध्यानपूर्वक पठन, श्रवण, मनन और तदनुसार अनुष्ठान करने के अभिप्राय से लिखा है उन ग्रंथों को आजकल हमारे उक्त प्रकार के पंडित गण मंदिरों में बैठकर परमात्मा श्रीकृष्ण, श्रीराम की मूर्त्तियों को सुनाकर पुण्य बेचने की घोषणा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते फिरते हैं। हा हंत! खेद! सहस्र बार खेद! बस बहुत हो चुका। पीयूषमय उपदेशों से भरे हुए उक्त ग्रंथों की जिस प्रकार हमने अवहेलना और दुर्दशा की, उसका तीता फल भी हम लोग खूब पा चुके। अब हमें सचेत होकर उक्त ग्रंथों का आदर करना सीखना चाहिए। उनमें लिखे हुए उपदेशरत्नों को वर्तमान समयानुकूल करके उनसे लाभ उठाना चाहिए। वर्तमान समय के विद्वज्जनों को ऋषिप्रणीत प्राचीन ग्रंथों का पठन-पाठन यथा विधि कर उनके अभिप्राय को जानना चाहिए और उनका सदुपदेश सर्वसाधारण के समीप रखना चाहिए। इस समय के देशहितैषी सज्जनों को अब इस ओर सविशेष दत्तचित्त होना उचित है। सर्वसाधारण के चित्त से इस निर्मूल भावना को खोदकर बहा देना चाहिए कि भारत, भागवत, रामायण, धर्म्मशास्त्र आदि ग्रंथों के पाठ को बिना उसका अर्थ समझे, बिना उसमें लिखे हुए उपदेशों का आचरण किये, केवल उसके एक, दश, शत, सहस्र और लक्ष पाठ करने वा कराने से कभी किसी को कुछ लाभ हुआ है, होता है, या होगा।

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री।

भूल सुधार।

अक्टूबर की सरस्वती में मेरे मित्र पं० श्रीजनार्दन झा का एक लेख "मैथिलों की विवाह परिपाटी" शीर्षक छपा है जोकि लेखक ने अन्य देशियों के आक्षेप निवारण के लिए लिखा है। अतः आप मैथिल मात्र के धन्यवादार्ह हैं। किन्तु खेद है कि उक्त लेख में आपने कतिपय भूलें की हैं। उन सबों का उल्लेख मैं शुद्ध मन से करता हूँ, और आशा है, कि पण्डित जी इससे रुष्ट न होंगे। इनमें अधिकतर भूलों का कारण मैथिल कुलीनों की रीति से पण्डितजी की अनभिज्ञता ही जान पड़ती है।

जो हो, अपने अल्प ज्ञानानुसार त्रुटियों को क्रमागत दिखलाता हूँ—

(१)—पटने का प्राचीन नाम पाटलीपुत्र है। पट्टनपुरी भी इसका नाम कभी था, ऐसा प्रमाण नहीं मिलता।

(२)—मूलग्राम का विभाग राजा हीरसिंहदेव के समय से पूर्व भी था; इन्होंने पाँजि का निर्णय किया; ग्राम के ही नाम पर नहीं। व्यक्ति विशेष के नाम से भी कितनी पाँजियाँ हुईं।

(३) मुख्य श्रेणी सात नहीं केवल पाँच हैं, अर्थात् (१) श्रोत्रिय (२) योग्य (३) पञ्जीबद्ध (४) वंशज (५) जेवार वा गृहस्थ; शेष ६ और ७ इन्हीं ५ में व्याप्त हैं अर्थात् अक्रिय और व्यापक योग्य श्रोत्रिय में भी अथवा सब व्यक्ति में प्रयोग होता है। जिसकी क्रिया अच्छी है वह व्यापक कहलाता है और निकृष्ट वा घृणित क्रियाकलापवाला अक्रिय कहलाता है।

(४)—योग्य से श्रोत्रिय क्या, कोई भी व्यक्ति अपने से उच्च श्रेणी में नहीं जा सकता।

(५)—कोई श्रोत्रिय अपनी कन्या पछिवारीपार के वर को नहीं दे सकता, यदि देवे तो उसकी सन्तान श्रोत्रियों में परिगणित न होगी।

(६)—पछिवारी पार के लोग यदि श्रोत्रिय में कन्या दें और अच्छे आचार से रहें तो वह महाराज मिथिलेश की कृपा से श्रोत्रिय हो सकते हैं। श्रोत्रिय होना मुख्यतया महाराज की कृपा पर निर्भर है।

(७)—कहीं कहीं कुटुमैती में भी द्रव्य लेने देने की रीति है, इसे कन्याविक्रय नहीं, और वंशविक्रय भी नहीं कह सकते, क्योंकि वंश की श्रेणी पूर्ववत् बनी रहती है।

(८)—वंशज होने से कोई अपने वंश को पाँजि से अलङ्कृत नहीं कर सकता। हाँ तीखा कार्य्य करते रहने से उसकी मर्य्यादा बढ़ती जायगी जैसा की जावार ब्राह्मण की भी हो सकती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मर्य्यादा की अतीव वृद्धि से चिरकाल में दोनों की कोई पाँजि बन जा सकती है।

(९)—कुलीन मैथिलों में किसी वंश का कोई नियत पजियार नहीं होता, किसी भी कुलीन पजियार से सब कोई सिद्धान्त करा ले सकता है। पञ्जिकार किंवा पजियार के वंशज सभी पजियार हों इसका भी नियम नहीं हैं। कितने ही पजियारों के पुत्र पजियार नहीं है और कितनेही सज्जन अपने घर में आपही प्रथम पजियार हैं।

त्रिलोचन झा।

पुस्तक-परीक्षा।

१—वेणीसंहारम्। संस्कृत-चन्द्रिका और सूनृत-वादिनी के सम्पादक श्रीयुत अप्पाशास्त्री राशि बड़ेकर संस्कृत के बड़े भारी विद्वान् और काव्यशास्त्र के परमोत्कृष्ट ज्ञाता हैं। कविता आपकी बड़ी ही रसवती होती है। संस्कृत-गद्य लिखने में तो आप अद्वितीय हैं। देव-वाणी आपके लिए मातृ-भाषा हो रही है। आपकी ऐसी ललित, अर्थ-गौरव-पूर्ण और बा मुहाविरा संस्कृत बहुत कम देखी गई है। आपने 'वेणी-संहार नाटक' की एक संस्कृत-टीका लिखी है। टीका सब प्रकार उत्तम है। मूल ग्रन्थ का मतलब बहुत अच्छी तरह समझाने के सिवा टीकाकार ने अलङ्कारों, काव्यों, ऐतिहासिक और पौराणिक बातों और व्याकरण के प्रयोगों आदि का भी स्थल स्थल पर स्पष्टीकरण किया है। शुरू में आपने जो उपोद्घात लिखा है वह बड़े ही महत्त्व का है। उसमें नाटक के सम्बन्ध की अनेक बातें लिख कर वेणीसंहार के कर्ता भट्टनारायण के समय आदि का विद्वत्ता-पूर्ण निरूपण किया गया है। पुस्तक के अन्त में पूना के फर्गुसन कालेज के संस्कृताध्यापक के० एन० द्रविड़ एम० ए० ने अँगरेज़ी में नोट्स लिख कर पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ा दी है। वेणीसंहार नाटक बंबई-विश्वविद्यालय की पी० ई० कक्षा में पढ़ाया जाता है। उसके विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। परन्तु और लोगों के भी संग्रह करने और पढ़ने लायक़ है। छपाई आदि बहुत उत्तम और प्रायः शुद्ध है। अभी इसका प्रथम भाग प्रकाशित हुआ है। इसमें पहले के तीन अंक हैं। शेष तीन दूसरे भाग में रहेंगे। मूल्य इसका २ है। टीकाकार को लिखने से कोल्हापुर से पुस्तक मिल सकती है।

चित्र-दर्शन।

न चित्रों के अतिरिक्त जिनकी चर्चा लेखों हीं में आ चुकी है, इस अं में हम महाराज टिक्का साहब नाभ का चित्र प्रकाशित करते हैं। आ ही इस वर्ष की लाहार सोशल कान्फ़रन्स के सभापति थे। शाल मार बाग़ और जहाँगीर की क़ब्र लाहौर के प्रसि प्राचीन स्थानों में हैं। बाग़ को जहाँगीर ने बनवा था और क़ब्र को उसके लड़के शाहजहाँ ने। ब हज़ारीबाग़ भी एक प्रतिष्ठित स्थान है। पञ्जा केसरी रणजीतसिंह के नाम से सभी परिचित हैं उनके भी समाधि के दर्शन आज हम अपने पाठ को कराते हैं। हेनरी पोलक साहब अभी भारतव में भ्रमण कर रहे हैं। दक्षिण अफ़्रीका में जो भारत वासियों की दुर्दशा हो रही है उसीका वृत्तान्त सुनने आप अफ़्रीका से पधारे हैं। गाँधीजी के दर्शन आप पिछली सरस्वती में करही चुके हैं। पोलक साहब भी गाँधीजी के सहायकों और सहचरों हैं। यद्यपि पोलक साहब यहूदी हैं परन्तु आपक जन्म इँगलैंड में हुआ है और आपने शिक्षा भी व पाई है। अभी आपकी उम्र सिर्फ़ २७ वर्ष की है आप बड़े प्रसन्नचित्त और कोमल-हृदय हैं। मां मदिरा तो छूते ही नहीं। आपके कोमल हृदय हो का यही क्या कम सबूत है कि गये थे आप अफ़्रीक जलवायु बदलने, पर भारतवासियों की दयनीय दश को देख कर आपसे न रहा गया। तन-मन-धन उनकी सहायता करने को आप कटिबद्ध हो गये।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिस्टर हेनरी पोलक ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ११] १ अप्रैल, १९१०। चैत्र कृष्ण ६, १९६६। [संख्या ४

विविध विषय।

१—मज़हबी मर्दुमशुमारी।

डाक्टर ज़ेलर ने मज़हबी मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट प्रकाशित की है। दुनिया भर में क़रीब १५४४,५१०,००० मनुष्य हैं। इनमें ५३४,९४०००० ईसाई, १७५,२९०,००० मुसलमान १०,८६०,००० यहूदी और ८२३४२०,००० मूर्तिपूजक हैं। इनमें से ३०००,०००,००० कन्फ़्यूशियसमतावलम्बी हैं। २१४००००० ब्राह्मणमतावलम्बी, १२१०००,००० बौद्ध हैं। इस दुनियाँ में रहनेवाले फ़ी १००० मनुष्यों में से ३४८ ईसाई, ११४ मुसलमान, ७ यहूदी और ५३३ अन्य मतावलम्बी हैं। सन् १८८५ में जब ऐसी ही मर्दुमशुमारी हुई थी तब सारी दुनिया में १,४६१,२८५,५०० मनुष्यों की गणना अन्दाज़ी गई थी। इसमें से ४३०,२८४,५०० ईसाइयों, ७०००००० यहूदियों और २३०००००० मुसलमानों और ७९४,०००००० मूर्तिपूजकों की गणना थी।

२—एक मनुष्य की सारी ज़िन्दगी का काम।

लंडन के क्लार्क साहब ने बैठे बिठाये यह हिसाब लगा डाला कि आम तौर से एक मनुष्य सारी ज़िन्दगी में क्या क्या करता है। आप फ़र्माते हैं कि आम तौर से वह क़रीब १४६००० मील सारी ज़िन्दगी में चलता है अर्थात् यदि उसके सब क़दम पृथ्वी की परिक्रमा करने में पड़ें तो पृथ्वी की छः बार परिक्रमा हो जाय। सारी ज़िन्दगी में वह क़रीब ४४८ मन रोटी खा जाता है। मांसाहारी क़रीब २२८ मन मांस डकार जाते हैं। क़रीब ९१२५ गैलन पानी वग़ैरः पी जाता है अर्थात् यदि यह सब जल एकत्र कर दिया जाय तो एक ऐसा हौज़ बन सकता है जिसमें पीनेवाला बड़े मज़े में तैर सके। क़रीब दो हज़ार रुपये की तो वह सिर्फ़ तम्बाकू ही पी जाता है। नाई क़रीब २५ फ़ीट लम्बे सिर के बाल काट डालता है।

३—जेबी घड़ी।

क्लाक से जेबी घड़ी बनने में क़रीब ७१ वर्ष लगे। जेबी घड़ी सबसे पहले सन् १३८० में बनी। क़रीब ५० वर्ष बाद घड़ियों में एलार्म, घंटी बजानेवाली कल लगाई गई। इस घंटी बजानेवाली घड़ी के रखने का सौभाग्य सबसे पहले मिलन नगर के पन्डी एलशियारो नामक पुरुष को प्राप्त हुआ। जेबी घड़ियों में सेकन्ड बतलानेवाली सुइयाँ सन् १७४० में लगाई गईं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४—बिल्लियों का स्थान-परिचय।

६ महीने का बिल्ली का बच्चा उस स्थान से जहाँ वह पैदा हुआ था कई मील के फ़ासिले पर उठा ले जाया गया और वहाँ एक कमरे में बहुत अच्छी तरह रक्खा गया। एक हफ़्ता वहीं बन्द रहने के बाद जब छोड़ा गया तब अपने जन्मस्थान ही पर जा पहुँचा। एक बड़े बिलाव की भी यही हालत हुई। उसे लोग बोरे में बन्द करके १० कोस के फ़ासिले पर छोड़ आये। वह भी घूमता घामता अपनी पुरानी जगह वापस आ गया।

५—स्वदेशी शकर।

लाला सीताराम ज़ुही, कानपुर लिखित—"स्वदेशी शकर" शीर्षक अनेक लाभदायक लेख हिन्दी-समाचार-पत्रों में गत वर्ष प्रकाशित हो चुके हैं। उन्हीं लाला सीतारामजी की प्रेरणा से केरूगंज, शाहजहांपुर के विख्यात खंडसारी लाला बलदेवदास हरदयाल ने हमारे पास स्वदेशी शकर का नमूना समालोचनार्थ भेजा है। यह शकर बेल के तरीक़े से तैयार की हुई राब से टामस ब्राडबेंट ऐंड सन्स, हडर्सफ़ील्ड, इँगलैंड की बनाई हुई कल से साफ़ की गई है। इस शकर की सफ़ाई में केवल दूध बरता गया है। यह इतनी साफ़ है कि इसे चाय या दूध में ऐसे ही डाल कर पी सकते हैं। लाला सीतारामजी ने कल द्वारा स्वदेशी शकर बनाने के जो गुण और लाभ बताये हैं वे वास्तव में सर्वथा यथार्थ मालूम होते हैं। हमें आशा है कि स्वदेशी शकर के प्रचारक और देश के खंडसारी जो पुरानी चाल से शकर तैयार करते हैं, लाला सीताराम से इस विषय में पत्रव्यवहार करके और कल से शकर बना कर अपना और देश का भला करेंगे। खंडसारियों को इस विषय में सावधान न होने से भय है कि शायद उनका यह बचा बचाया रोज़गार कहीं पूरे तौर से उनके हाथ से न निकल जाय।

६—*हेली-केतु, पृथ्वी और सूर्य की पारस्परिक स्थिति।

निम्नाङ्कित आकार में उत्तर की ओर सिरे पर हेली-केतु (पुच्छल तारा) की स्थिति १ जनवरी सन् १९१० में दी गई है। उसी तारीख़ में बाँई तरफ़ पृथ्वी की भी स्थिति दिखलाई गई है। पृथ्वी पहली जनवरी १९१० से अपनी कक्षा (पथ) में सूर्य के चारों तरफ़ घूमने के लिए दक्षिण की ओर जा रही है। हेली-केतु (पुच्छल तारा) भी, जो १ जनवरी १९१० को मङ्गल की कक्षा के भी बाहर था, क्रमशः अपनी कक्षा में सूर्य की ओर के पेराबोला की सी शकल खेंचता हुआ आ रहा है। १ जनवरी को पृथ्वी और हेलीकेतु के बीच ११५,०००,००० मील का अन्तर था। २४ मार्च को पृथ्वी और हेली-केतु एक दूसरे के सामने (एरीज़) मेषवाली लकीर पर आ गये थे। तब इन दोनों के बीच १६५००००० मील का अन्तर था। १ तारीख़ जनवरी से २४ मार्च तक हेली-केतु दूर-दर्शक यन्त्र (टेलिस कोप) के ज़रिये से शाम को पश्चिम की तरफ़ दिखलाई पड़ता था। २४ मार्च के बाद कुछ दिनों के लिए हेली-केतु नज़र से ग़ायब हो गया है। अब वह प्रातःकाल बिना किसी यंत्र की सहायता लिये ही दिखलाई पड़ने वाला है। पृथ्वी और हेली-केतु अब एक दूसरे की ओर जल्दी जल्दी चलेंगे और हेली-केतु का प्रकाश दिनों दिन बढ़ता हुआ नज़र आवेगा। १८ मई १९१० को हेली-केतु और पृथ्वी एक दूसरे के पास से गुज़रेंगे। शायद पृथ्वी हेली-केतु की दुम से होकर निकले। इसका ज़िक्र सरस्वती के गतांक में हो चुका है। इस समय इन दोनों के बीच सिर्फ़ १२०००,००० मील का फ़ासिला रह जायगा। १८ मई के बाद हेली-केतु का शाम के वक्त बड़ा प्रकाश होगा। क्रमशः फिर वह अन्तर्धान हो जायगा। निम्नाङ्कित आकार में बाण (→) कक्षाओं के

* साइन्टिफ़िक अमरीकन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् पृथ्वी, केतु इत्यादिकों की गति या पथ दिखलाते हैं और (●) पृथ्वी के लिए और (⊃○) पूंछ दार शकल, हेली-केतु की स्थिति दिखलाने-वाले चिह्न हैं।

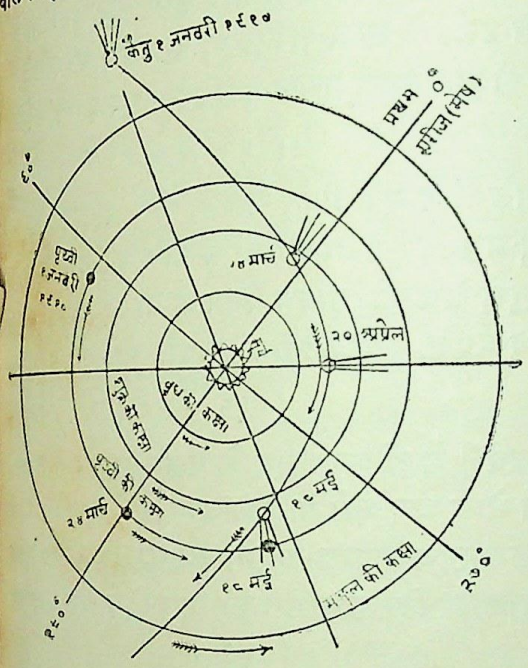

७—द्विवेदीजी का स्वास्थ्य ।

श्रीमान् पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीजी के स्वास्थ्य जानने के विषय में पण्डितजी के बहुतेरे मित्र और सरस्वती के प्रेमी हमारे पास पत्र भेजने की कृपा किया करते हैं। इन मित्रों तथा पण्डितजी के अन्यान्य प्रेमियों को हम सहर्ष सूचना देते हैं कि डाक्टरों की सम्मति के अनुसार जबसे पण्डितजी ने लिखना पढ़ना बन्द कर दिया है तबसे श्रीमान् की तबीयत बहुत कुछ अच्छी हो चली है। हमें पूर्ण आशा है कि यदि ऐसा ही क्रम चलता रहा तो परमेश्वर की कृपा से आप बहुत जल्द नीरोग होकर सरस्वती के पाठकों को अपने प्रौढ़, शिक्षाप्रद और मनोहर लेखों से परितृप्त करेंगे।

नवीन संवत्सर का स्वागत ।

(१)

स्वस्ति महज्जन ! स्वागत सज्जन ! आशा-भाजन प्यारे !
नव संवत्सर ! समय राज के वत्स रसाल दुलारे !
स्वागत आगामिनी भामिनी के प्रिय बालक बारे !
स्वागत, स्वागत ! स्वस्ति नवागत ! आदर-योग्य हमारे !

(२)

स्वागत काल-विशाल-कोश के रत्नजाल चमकीले !
भूप विक्रमादित्य सुयश के नित्य-रूप दरसीले !
प्रकृति-विकृति के अचिर-चित्र-गत अविदित रंग रँगीले !
लुप्त-सार-संसार-काव्य के गुप्त-प्रसङ्ग रसीले !

(३)

स्वस्ति अनन्त-समय-कुसुमाकर* अंतर्गत नव क्यारी !
स्वागत † सर्ग-महा-सागर की नव तरंग सुखकारी !
स्वागत मञ्जु भविष्य-महल के द्वार मनुज मन भावन !
अघटित-घटना-मय अभिनय के स्वागत दृश्य सुहावन !

(४)

माया ने जो कालदेश का "ताना बाना" ताना,
बुना जगत् पट, अमित बने फिर बूटे-नाना-बाना।
नाम-स्वरूप-क्रियात्मक वह सब पूर्ण-प्रियात्मक जाना,
तुमको भी इक वर्ष उसी में है उत्कर्ष दिखाना !

(५)

बन्धु तुम्हारे "दुर्मति" जी ने मृगवाहन पै चढ़ के‡,
सार्थक नाम किया, दुर्मति में ली छलाँग चढ़ बढ़ के।
बम की बमचख़ रही मचीही, "शासन" कोप बढ़ाया,
न्याय-धाम में भी हत्या का अत्याचार दिखाया ॥

(६)

अन्नहानि, ताऊन, कालरा, मलेरिया की पीड़ा,
करतेही सब रहे अभागी, भरतखंड में क्रीड़ा।
जो उदार सरकार सुलक्षण रक्षण-शील न होती,
भारत धरनी सिर धुन धुन कर आरत धुन से रोती ॥

---

* बाग़। † सृष्टि। ‡ जानेवाले संवत् का नाम "दुर्मति" है और वाहन उसका मृग है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७)

"दुर्मति" ने प्राचीन चीन में रंग जमाया ख़ासा,
चीनी चाट लगी, तिब्बत में अजब लगाया "लासा"।
लामा गुरु पै वार कराया, हिन्द-शरण में लाया,
है सन्देह समाया, देखें, होनहार क्या आया!

(८)

चलते चलते "पुच्छलतारा" "दुर्मति" ने दिखलाया,
झाड़ लिये पड़ा है पीछे गुल ये नया खिलाया!
गत संवत् का कूड़ा सब ये बढ़नी झाड़ बहावै,
तब तू अपनी अमल* दुन्दुभी, विमल, बजाता आवै,

(९)

मृग-वाहन‡ ने मृगवाहन§ की कुछ सौम्यता दिखाई,
मार्ली-मिन्टो-कृत रिफ़ार्म की सुखद चाँदनी छाई।
गत चुनाव में दयाभाव से किया बड़ा आश्वासन,
जो अनाथ भारत का रक्खा उसी हाथ में शासन॥

(१०)

प्रजा-प्रमोद-प्रयत्न-पताका निर्बाधा फहरानी,
पुर प्रयाग में श्री¶ हीवट ने शुभ प्रदर्शनी ठानी।
"शासन"॥ की सुन रोग-विनाशन-अनुशासन की बानी,
होता है आश्वासन जी को सुख की समझ निशानी॥

(११)

गिरे पुराने पीले पत्ते निकली प्यारी कोंपल,
हुए दृगों से दूर कड़े दल, लगे सुहाने कोमल।
शोभा-शाली है हरियाली, सुमन बेलियाँ फूलीं,
अस्थिर जान अवस्था जग की चिन्ताएं कुछ भूलीं॥

(१२-१३)

चलती नहीं सुगन्ध समीरन मधु ऋतु के हर्काले,
चले, चतुर्दिश, मित्र, तुम्हारे आगम की चर्चा/ ले।
फूली सरसों नहीं, महीतल पीत पाँवड़े डाले,
नहीं रँगीले फूल, पताके नाना रंग सँभाले॥
नहीं भ्रमर-गुञ्जार, करें झनकार वीन के झाले,
पिक की नहीं पुकार, वचन हैं रोचक स्वागत वाले।
नहीं कमल-दल-कलित ताल पै ललित भृङ्ग मतवाले*,
फूलदार पट पै "अभिनन्दन"—लेख सुनहले काले।

(१४)

हिन्द-देश का सखा सनातन श्री वसंत मुदनेमी,
जान मित्र-सुख हाथ तुम्हारे हुआ तुम्हारा प्रेमी।
सजे उसी ने साज सकल ये, हे अपूर्व अभ्यागत!
आओ शुभ संवत् प्रसन्न-मुख स्वागत! स्वागत! स्वागत!

(१५)

विमल-सत्व गुण-मयी, चैत में, चारु चन्द्रिका छाना,
प्रभु-अनुराग†-पलास-प्रभा से कलि-कालिमा मिटाना,
त्रिगुण-बोध की त्रिविध पवन से ताप चित्त की हरना,
जान प्रपन्न, कृषीवल-गृह§ संपन्न अन्न से करना।

(१६)

माधव¶ में श्रीकृष्णचन्द्र के वचन समझ अनुरागी,
धर्म भोग अरु कर्म योग के जानें मर्म सुभागी।
मलिन-हृदय-वैशाख-नन्दनों को घूरे दिखलाना,
देश-प्रताप-दिनेश सुभग का दिन दिन तेज बढ़ाना।

(१७)

जेठ मध्य विपरीत-पवन जब तन की तपन बढ़ावै,
फ़ौवारे तू शान्ति-सलिल के शीतल सुखद छुड़ावै,
अमलतास की पीली पीली सरस प्रभा दरसावै,
गर्मी में भी भरत-खण्ड पै रंग बसन्ती छावै!

(१८)

जब आवै आसाढ़, आसकी घनी घटायें लाना,
दबे हुए दुर्भिक्ष बीज को बिजली से झुलसाना।
दुर्मतिमय विद्रोह दलों को गरज गरज डरवाना,
पावस-सुख-विज्ञप्ति-"दुन्दुभी" श्रद्धा-जनक बजाना।

(१९)

बगले देश भक्त सावन में जभी वृथा झख|| मारें,
लोग समझ पाखंड सफ़ेदी पर न चित्त को वारें।
सदुपदेश के मोर पपीहे पूरा आदर पावें,
सत्य-परस्पर-प्रेम वृष्टि से प्रजा भूप सुख पावें॥

---

* दख़ल। † बाजा और आगामि संवत्सर का नाम।
‡ दुर्मति संवत्। § चन्द्रमा। ¶ सर जान हीवट।
|| गवर्नमेंट। / ज़िक्र, सुगन्ध।

* इस लिए स्थिर। † भौंरा का मध्य भाग सुनहरा होता है। ‡ अनुराग का रंग लाल और सत्व का सफ़ेद है। § किसानों के घर। ¶ वैशाख। || मछली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२०)

भादों में "अति दुःख"—कंस के जीवन-खण्डन-कारी,
"परमानन्द"—कृष्ण जग जन्में सकल अमङ्गलहारी।
संयम-यमुना-तीर मञ्जु सत्सङ्ग कुञ्ज मन भावै,
ज्ञान-प्रसङ्ग मधुर वंशी-धुन सुन सुन श्रुति सुख पावै॥

(२१)

क्वार करावे राजभक्त-बर राजहंस-गण-दर्शन,
अभिलाषा के खिलें कमल वन हो मन-मधुप-प्रहर्षण।
भीष्म पितामह आदि पूर्वजों का हो सम्यक् तर्पण,
हो उनका अनुकरण, धर्महित हों धन जीवन अर्पण॥

(२२)

कातिक में हो लक्ष्मी-पूजन भारत-उन्नति-शाली,
दीपावली सुप्रतिभावाली जगै, सजै दीवाली।
उठे जुआ चोरी दुनिया से कुटिल नीतिवालों की,
होती हार रहे तीसौ दिन कपट-प्रीति-वालों की॥

(२३)

मार्गशीर्ष में निर्धन जन पर करुणा पूरी करना,
विपुल वस्त्र-संपन्न उन्हें कर, भीति शीत की हरना।
भरत-खण्ड-दुर्दैव-कोप को करना ऐसा शीतल,
हो न कभी संतप्त यहाँ की संत-प्रशंस्य महीतल॥

(२४)

पूस मास में देशहितैषी ऐसी धूम मचावें,
क्रिसमस के सप्ताह विदित में परमोत्साह दिखावें।
पोलीटिकल*धार्मिक, औद्योगिक, नैतिक, विविध सभाएं
रचें महावार्षिक अधिवेशन, पूर्ण सफलता पाएं॥

(२५)

माघ-मास में सुजन-भाव के सुमन सुमञ्जुल फूलें,
चञ्चल-चित्त-हिंडोल मनोहर-मूर्ति श्यामवर झूलें।
वेदधारिणी सरस्वती की पूजा जग को भावे,
सत्य, सनातन, सत्कृत विद्या, सदा समुन्नति पावे॥

(२६)

फाल्गुन में नर-सिंह-भक्त का गुण सच्चा रंग लावे,
हरिजनत्रासक के कुनाम पर दुनिया धूल उड़ावे।
भीड़ें रंगे हुए स्यारों की फूहड़ शोर न छावें,
पूरन देश रङ्ग में भींगे जग की छटा बढ़ावें॥

(२७)

आओ प्यारे मित्र दुन्दुभी सहित प्रेम तुम आओ,
हर्ष-दुन्दुभी बजे वर्ष भर, सहित क्षेम फिर जाओ।
इस उमंग से निज तुरंग पर सैर हिन्द की कीजै,
रंग ढंग से मान्य महज्जन! सज्जन वश कर लीजै॥

(२८)

सत्कवियों का मान बढ़ाना सद्भक्तों का आदर,
देश-अहितकर अकवि निकर को देना घोर अनादर।
सत्य, सुमति, संपत्ति, सौम्यता, सदुद्योग सुखकारी,
मिलैं पूर्ण विध प्रिय भारत को विनती यही हमारी॥

पूर्ण।

श्रीसमर्थ रामदास स्वामी।

[गताङ्क से आगे]

समर्थ और शिवाजी

गत संख्या में इस बात का उल्लेख किया गया है कि शिवाजी ने श्रीरामदास स्वामी को अपना गुरु बनाया था, और यह भी कहा गया है कि इनका परस्पर सम्बन्ध बहुत गहन और महत्त्व का है। कुछ आधुनिक लेखकों में, इन दो व्यक्तियों के ऐतिहासिक सम्बन्ध में, कुछ मतभेद है। यद्यपि यह बात सर्वमान्य है कि रामदास स्वामी शिवाजी के गुरु थे, उनकी आज्ञा पालन करना शिवाजी अपना परम धर्म समझते थे, तथापि दोनों की भेंट कब और किस स्थान में हुई, शिवाजी ने उपदेशमंत्र किस समय लिया, गुरु और शिष्य का परस्पर बर्ताव कैसा था, शिवाजी किन किन बातों में अपने गुरु से सलाह लिया करते थे, स्वधर्म और स्वराज्यस्थापन के महत्कार्य में समर्थ की कितनी और किस प्रकार की सहायता थी, इत्यादि कुछ प्रश्नों के विषय में कुछ थोड़ा मतभेद

* "पो" को ह्रस्व पढ़ो।

† आगामि संवत् का नाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाया जाता है। अधिकांश विद्वानों की राय देखने से जान पड़ता है कि ये प्रश्न बहुत शीघ्र हल हो जायँगे। महाराष्ट्र की ऐतिहासिक सामग्री की खोज और जाँच करनेवाले विख्यात प्रोफ़ेसर राजवाड़े इस विषय में कहते हैं—"सिद्ध बात को सिद्ध करने का यत्न करने से कोई लाभ नहीं होता। जब तक "दासबोध" ग्रंथ विद्यमान रहेगा, और जब तक इतिहास में यह बात लिखी रहेगी कि मरहठों ने सत्रहवीं सदी में स्वतंत्र राज्यस्थापित किया था तब तक श्रीरामदास और शिव छत्रपति का सम्बन्ध फिर से सिद्ध करने की आवश्यकता, उन लोगों के सिवा जिनका चित्त अव्यवस्थित है (दिमाग़ बिगड़ गया है), और किसी को भी मालूम न होगी।' धुलिया की सत्कार्योत्तेजक सभा ने श्रीरामदास और शिवाजी के सम्बन्ध में बहुत सी ऐतिहासिक बातें प्रकाशित की हैं और वह इस विषय की खोज कर रही है। वह श्रीरामदास स्वामी का बृहत् चरित्र, ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर और आधुनिक विवेचनपद्धति के अनुसार, थोड़े ही दिनों में प्रकाशित करनेवाली है। आशा है कि हिन्दीवालों को भी उक्त चरित्र से कुछ लाभ अवश्य होगा।

जिस समय श्रीरामदास स्वामी लोकोद्धार करने के लिए कृष्णा नदी के किनारे पहुँच कर चाफल में निवास करने लगे उस समय वहाँ नरसोमलनाथ नाम के तहसीलदार रहते थे। उन्होंने समर्थ की योग्यता जानकर उनसे मंत्रोपदेश लिया। कुछ ही दिनों में वहाँ रामदासी संप्रदाय की बहुत वृद्धि होने लगी। धीरे धीरे यह समाचार शिवाजी को भी मालूम हुआ। उस समय शिवाजी की राजसत्ता महाराष्ट्र में ख़ूब बढ़ रही थी। उन्होंने रायगढ़ का क़िला ले लिया था; प्रतापगढ़ में एक नया क़िला बनवा कर वहाँ भवानी देवी की मूर्ति स्थापित की थी। उन्होंने पूना को मुख्य स्थान बना कर, नासिक से करवीर तक का सारा प्रान्त कोंकण का कुछ भाग जीत लिया था। यद्यपि इस प्रकार वे राज्य-सम्पादन के कार्य में लगे थे तोभी संत-समागम की उन्हें विशेष रुचि थी। बालपन ही से साधु और संतजनों के विषय में पूज्यभाव होने के कारण वे साधुसमागम के लिए सदा उत्कण्ठित रहते थे। वे अपना राजकाज करते हुए भी चिंचवड, देहू, आलंदी आदि प्रसिद्ध स्थानों में साधुजनों के दर्शन को बार बार जाया करते थे और उनका उपदेश श्रद्धायुक्त अन्तःकरण से सुनते थे। जहाँ जहाँ हरि-भजन या कीर्तन होता था वहाँ वहाँ वे अवश्य जाते थे। उनकी माता जिजाबाई ने उन्हें छोटेपन ही में अपने सनातन धर्म, शास्त्र, वेद, पुराण और वेदान्त आदि के गम्भीर तत्त्व और सिद्धान्त तथा शिक्षा-दायक कथाओं की शिक्षा दिलाई थी। इसलिए अपनी माता की शिक्षा और साधु-समागम के कारण उनके मन में अपने जीवन की सार्थकता के विषय में अनेक उच्च विचार भर गये थे। वे सदा इसी बात का चिन्तन करते रहते थे कि जीवन की सार्थकता उत्तम रीति से कैसे की जाय। उन्होंने एक बार सुप्रसिद्ध साधु तुकाराम बाबा से मंत्रोपदेश माँगा था; पर उन्होंने शिवाजी को श्रीरामदास स्वामी के शरण में जाने की आज्ञा दी। इस प्रकार मन की मुमुक्षावस्था में जब शिवाजी ने श्रीसमर्थ की साधुकीर्ति सुनी तब उन्हें उनके दर्शन की बहुत अभिलाषा हुई। इसलिए उन्होंने श्रीसमर्थ को एक पत्र भेज कर अपनी राजधानी में बुलाया। परन्तु समर्थ वहाँ नहीं गये। उन्होंने शिवाजी के पत्र का उत्तर भेज दिया।

जिस पत्र का उल्लेख किया है वह इतिहास-दृष्टि से बहुत महत्त्व का है। उसमें शिवाजी को समर्थ ने जो उपदेश किया है वह ध्यान में रखने योग्य है। इसलिए उस पत्र के कुछ अंश का भावार्थ यहाँ देना आवश्यक है। समर्थ शिवाजी को लिखते हैं:—"इस समय भूमंडल में ऐसा कोई नहीं है जो धर्म की रक्षा करे। महाराष्ट्रधर्म तुम्हारे ही कारण बचा है। यहाँ जो कुछ थोड़ा धर्म देख पड़ता है और साधुजनों की रक्षा हो रही है वह सब तुम्हारे ही कारण है। तुम धन्य हो! तुमने दुष्टजनों का संहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है। वे लोग तुमसे डरते हैं। बहुतेरे जन तुम्हारे आश्रय में रहने लगे हैं। अब तुमको धर्म-स्थापन का काम सम्हालना चाहिए। यह बात सच है कि तुमको राजकाज बहुत करना पड़ता है जिस से चित्तवृत्ति व्यग्र हो जाती है। ऐसी दशा में राजा और मंत्री का एक विचार होना चाहिए। यदि एकता न होगी तो कार्य-नाश होगा। सब लोगों को राज़ी रखना; भले बुरे की खूब जाँच करना; न्याय और नीति का कदापि त्याग न करना, लालच में कभी न फँसना, सदा सावधान रहना। हमारा बोलना स्पष्ट है इसलिए क्रोध न आने देना। जो कुछ हमने कहा है उसे उचित रीति से श्रवण करना। यदि सचमुच अंतःकरणपूर्वक काम करना हो तो हमारे बतलाये हुए मार्ग को स्वीकार करो, श्रीरामचन्द्रजी कृपा करेंगे; तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा; तुम्हारे सारे मनोरथ पूर्ण होंगे। इस विषय में सन्देह बिलकुल मत करना।" यह पत्र पढ़ कर शिवाजी के धार्मिक और निष्ठायुक्त अन्तःकरण में श्रीरामदास स्वामी के दर्शन की उत्कंठा और भी तीव्र होगई। तब वे अपने संग कुछ आदमी लेकर समर्थ के दर्शन को चाफल गये। परन्तु, समर्थ का दर्शन न हुआ; क्योंकि वे एक स्थान में न रह कर चाफल के आस पास कृष्णा नदी के किनारे जंगल, दरी और खोरियों में विचरते रहते थे। महीपति ने अपने "संतविजय" में लिखा है कि इस प्रकार शिवाजी महाराज को कई बार निराश होना पड़ा। तो भी उन्होंने यत्न करना न छोड़ा। अंत में एक दिन वे यह निश्चय करके घर से निकले कि जब तक समर्थ का दर्शन न होगा और उनका प्रसाद न मिलेगा तब तक भोजन न करूँगा। इस तरह दृढ़ निश्चय करके, समर्थ का पता लगाते हुए, चाफल के जंगल में भटकते भटकते जब बहुत विह्वल और आर्त होगये तब समर्थ के एक शिष्य-द्वारा उन्हें पता लगा कि समर्थ खड़ी के बाग़ में हैं। शिवाजी ने वहाँ जाकर दर्शन किया। दोनों की प्रेमपूर्ण वार्ता हुई। शाके १५७१, वैशाख शु० ९ गुरुवार के दिन समर्थ ने शिवाजी को उपदेश मंत्र दिया और "दासबोध" के तेरहवें दशक का 'साधुबोध' नामक छठवाँ समास अद्वैत ज्ञान बताने के लिए सुनाया।

यह बात ऊपर कही गई है कि समर्थ एक स्थान में बहुत समय तक न रहते थे। कभी चाफल के मठ में रहते थे, कभी कृष्णा नदी के किनारे वन, पर्वतों की झाड़ियों में रहते थे, और कभी देशपर्यटन या तीर्थयात्रा करने को चले जाते थे। इस कारण शिवाजी अपने गुरु का दर्शन नित्य नियमपूर्वक नहीं कर सकते थे। उनकी यही इच्छा थी कि समर्थ अपने समीप किसी स्थान में रहें तो नित्य समागम का लाभ हो। उन्होंने कई बार प्रार्थना भी की, पर समर्थ ने विशेष ध्यान न दिया। तब शिवाजी ने एक पत्र भेजा जिसमें भिन्न भिन्न अनेक प्रसंगों का उल्लेख है। यह पत्र समर्थ और शिवाजी के पारस्परिक सम्बन्ध का ऐतिहासिक प्रमाण है। इस पत्र से जो बातें प्रकट होती हैं उनका कुल सारांश नीचे दिया जाता है। इस पद से, पढ़नेवाले स्वयं निश्चय कर लेंगे कि समर्थ और शिवाजी का कैसा घना सम्बन्ध था:—

"श्रीसमर्थ ने शिवाजी को उपदेश मंत्र देकर यह आज्ञा दी थी कि "तुम्हारा मुख्य धर्म राज्य-सम्पादन करके धर्मस्थापना करना, देव और ब्राह्मणों की सेवा करना, प्रजा की पीड़ा दूर करके उसका पालन और रक्षा करना है।" उसी समय समर्थ ने यह आशीर्वाद भी दिया था कि "तुम्हारे मन में जो इच्छा होगी वह सब पूर्ण होगी।" इस आज्ञा के अनुसार शिवाजी ने राज्य-सम्पादन का जो उद्योग किया वह सफल हुआ और उनका मनोरथ "स्वामी" के "आशीर्वाद के प्रताप" से पूर्ण हुआ। शिवाजी का यह विश्वास दृढ़ था कि "दुष्ट दुरात्मा जनों का नाश और विपुल द्रव्य-प्राप्ति" श्रीगुरुचरणों के प्रताप ही का फल है। ऐसे समर्थ सद्गुरु रामदास स्वामी के चरण-कमलों में अपना सारा राज अर्पण करके शिवाजी ने यह इच्छा प्रकट की थी कि नित्य गुरुचरणों की सेवा करने का अवसर मिलना चाहिए। उस समय समर्थ ने यही कहा कि "हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले बताये हुए धर्म के अनुसार बर्ताव करना ही सेवकाई है।" इसके बाद शिवाजी ने यह प्रार्थना की कि स्वामी किसी निकट के स्थान में रहें तो बार बार दर्शन का लाभ होगा और किसी स्थान में श्रीराम की मूर्ति स्थापित करके मठ का प्रबन्ध किया जाय तो सम्प्रदाय की वृद्धि होगी। इसके अनुसार समर्थ ने चाफल में श्रीराम की स्थापना तो की; परन्तु "स्वयं आस पास के गिरिगह्वरों में ही रहा करते थे।" इसके बाद शिवाजी ने यह प्रार्थना की:— "श्रीराम की पूजा महोत्सव आदि धर्मकृत्य सांगोपाङ्ग करने के लिए कितने गाँव नियत किये जावें सो आज्ञा दीजिए।" इस पर समर्थ ने कहा, "किसी विशेष उपाधि की आवश्यकता नहीं है। यदि श्रीराम की सेवा करने का तुम्हारा निश्चय ही है तो यथावकाश जो कुछ नियत करने की इच्छा हो सो करो।" तब शिवाजी ने श्रीसमर्थ संप्रदाय की सेवा करने के हेतु गाँव और भूमि दान की सनद लिखकर समर्थ को भेज दी और यह निवेदन किया कि श्रीराम का उत्सव सदा करते रहने की मुझे आज्ञा दीजिए।" शिवाजी का बहुत आग्रह देखकर समर्थ सितारा के पास सज्जनगढ़ के क़िले में रहने लगे। शिवाजी ने वहाँ एक मठ बनवा दिया।

शिवाजी और समर्थ के सम्बन्ध में जितनी बातें लिखी जायँ सब थोड़ी ही होंगी। अब सिर्फ़ तीन और बातों का उल्लेख करके यह विषय समाप्त करेंगे।

एक दिन समर्थ माहुली संगम पर स्नान, संध्या करके भिक्षा माँगते हुए सितारे में शिवाजी के महल में गये और "जय जय श्रीरघुवीर समर्थ" की गर्जना करके भिक्षा माँगी। समर्थ की वाणी सुनते ही शिवाजी का हृदय गद्गद हो गया। वे विचार करने लगे कि ऐसे सत्पात्र सद्गुरु की झोली में क्या भिक्षा डाली जाय। तुरन्त ही उन्होंने एक काग़ज पर यह लिखा कि "श्रीसमर्थ के चरणों में सब राज्य अर्पण कर दिया।" इस पत्र पर मोहर करके वे बाहर आये और वह पत्र समर्थ की झोली में डालकर साष्टांग दंडवत् किया। यह देखकर समर्थ ने पूछा "क्यों शिवबा, यह कैसी भिक्षा डाली? मुट्ठी भर चावल झोली में डाले होते तो दोपहर का समय कटता! आज क्या काग़ज़ का टुकड़ा ही समर्पण करके हमारा आतिथ्य करते हो?" इतना कहकर जब उन्होंने वह काग़ज़ निकाल कर पढ़ा तब मालूम हुआ कि शिवाजी ने अपना सब राज्य अर्पण कर दिया है। समर्थ ने शिवाजी से पूछा "क्यों शिवबा, राज्य तो तुमने हमको दे दिया, अब तुम क्या करोगे?" शिवाजी ने हाथ जोड़कर विनती की, "आपकी चरण-सेवा में रह कर समय व्यतीत करेंगे।" यह सुनकर समर्थ हँसे और कहा, "बाबा! जो जिसका काम है वह उसी को करना उचित है। ब्राह्मणों को जप तप करके ज्ञान सम्पादन करना चाहिए और क्षत्रियों को क्षात्र धर्म ही का पालन करना चाहिए। इस प्रकार अपना अपना कर्तव्य करते रहने से ही मोक्ष-प्राप्ति होती है। अपना अपना कर्म यथोचित रीति से पूर्ण करने ही में जन्म की सार्थकता है। पूर्व समय में रामचन्द्र ने भी अपने कुलगुरु वसिष्ठ को आधा राज्य अर्पण कर दिया था। उस समय वसिष्ठजी ने श्रीराम को योगवासिष्ठरूप से नीति, न्याय और धर्म का उपदेश किया और उनका राज्य उन्हें लौटा दिया। राजा जनक ने भी याज्ञवल्क्य को राज्य अर्पण किया था। उस समय उन्होंने जनक को राजधर्म का उपदेश किया। शिवबा! हम वैरागियों को राज्य की क्या ज़रूरत है? कदाचित् हमने अंगीकार भी कर लिया तो उसके सँभालने के लिए प्रधान की ज़रूरत है। प्रधान तूही बन; और राज्य हमारा समझ कर उसका प्रबन्ध कर" यह उपदेश सुनते ही शिवाजी का अन्तःकरण गद्गद हो गया। जब उन्होंने समझा कि अब बिना राज्य लौटा लिये और कोई उपाय नहीं है तब उन्होंने समर्थ से प्रार्थना की:— "अब कृपापूर्वक आप अपनी पादुका मुझे दीजिए। उन्हीं को स्थापन करके मैं आपके प्रधान की तरह राजकाज करूँगा।" समर्थ ने यह प्रार्थना स्वीकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीसमर्थ रामदास स्वामी और छत्रपति शिवाजी।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की। उसी समय से शिवाजी महाराज ने अपने राज की निशानी, अर्थात् झंडा भी भगवे रंग का कर दिया। मराठों का "भगवा झंडा" इतिहास में प्रसिद्ध ही है।

शिवाजी महाराज जब सामनगढ़ का क़िला बनवा रहे थे तब एक दिन क़िले के काम में लगे हुए सैकड़ों आदमियों को देखकर उनके मन में यह विचार आया कि मैं इतने मनुष्यों का पालन कर सकता हूँ, इसलिए मुझे धन्य है। इस विचार के साथ ही साथ शिवाजी के मन में एक प्रकार का अभिमान भी आगया। इतनेही में अकस्मात् समर्थ वहाँ जा पहुँचे। उन्हें देखकर शिवाजी ने दण्डवत् प्रणाम किया और अकस्मात् पधारने का कारण पूछा। समर्थ ने कहा कि "तू श्रीमान् है। हज़ारों मनुष्यों का पालनकर्ता है; इसीलिए मैं तेरा कारख़ाना देखने आया हूँ।" शिवाजी ने कहा कि यह सब आपही की कृपा का फल है। इस प्रकार वार्तालाप करते हुए समर्थ की दृष्टि समीप पड़े हुए एक पत्थर की ओर गई। उस पत्थर को देखकर समर्थ ने कहा कि इस पत्थर को एक बेलदार से अभी तुड़वा डालो। शिवाजी की आज्ञा पाकर एक बेलदार उस पत्थर को तोड़ने लगा। समर्थ ने कहा इसमें बहुत धक्का न लगने पावे और दो टुकड़े बराबर करो। पत्थर के दो टुकड़े होते ही भीतर के पोले भाग से कुछ पानी और एक जीवित मेंढकी निकल पड़ी! यह चमत्कार देखकर सबको परम आश्चर्य मालूम हुआ। समर्थ ने कहा, "शिवबा! तुम्हारी योग्यता बहुत बड़ी है और तुम्हारी लीला अगाध है। देखो, ऐसी आश्चर्यकारक बात किससे हो सकती है?" शिवाजी ने कहा, "इसमें मेरा क्या है?" समर्थ ने कहा, "क्यों नहीं? तुम्हारे सिवा और कर्ता कौन है? तुम्हारे बिना जीवों का पालन और कौन कर सकता है?" शिवाजी महाराज अपने मन में समझ गये और बोले "मुझ पामर से कुछ नहीं हो सकता। इस दास को क्षमा कीजिए।" समर्थ ने कहा, "मैं क्षमा करने ही के लिए यहाँ इस समय आया हूँ। परन्तु इतना बतला देना आवश्यक है कि भैया, तुम उस सरकार (राम) के बड़े नौकर हो। तुम्हारे हाथ से वह औरों को देता है। इतनी बात से तुम्हें इस प्रकार का अभिमान कभी न करना चाहिए।" यह सुनकर शिवाजी महाराज को बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने, समर्थ के चरणों पर गिर कर, बार बार क्षमा मागी। इसी शिक्षादायक चमत्कार के ऊपर एक चित्र तैयार किया गया है। वह चित्र भी सरस्वती के पाठकों को भेट किया जाता है।

एक दिन सज्जनगढ़ में भोजन के बाद समर्थ शिष्य-मंडली के प्रश्नों का उत्तर देते हुए आसन पर बैठे थे। इतने में सहज उन्हें अपने शरीर पर एक चट्टा उठा हुआ देख पड़ा। उसे देख कर समर्थ को स्मरण हुआ कि हमारी माता ने, हमारे लिए, देवीजी को सोने के पुष्प अर्पण करने का संकल्प किया था। वह संकल्प पूरा नहीं हुआ। अतएव प्रतापगढ़ पर, जहाँ शिवाजी ने देवी स्थापना की थी, समर्थ देवीजी को स्वर्णपुष्प अर्पण करने को गये। वहाँ समर्थ ने देवीजी की जो स्तुति की है उसमें उनके आत्मचरित का भी कुछ उल्लेख है। अन्तिम चार पद्यों में शिवाजी के सम्बन्ध में जो प्रार्थना की है वह ध्यान में रखने योग्य है। उसका भावार्थ यह है, "हे माता, मेरी सिर्फ़ एक प्रार्थना है, यदि वरदान देना है तो यही वरदान दे कि जिसका तू अभिमान रखती है और जो सर्वथैव तेरा है उस शिवाजी की रक्षा कर। उसको हमारे देखते ही देखते वैभव के शिखर पर चढ़ा दे। मैंने सुना है कि आज तक तूने अनेक दुष्टों का संहार किया है; परन्तु, अब इस समय उस बात की प्रतीति मुझे करा दे। सब देवगण हम लोगों को भूल से गये हैं। तू अब हम लोगों के स्वत्व की कितनी परीक्षा लेगी! हे देवी! तू अपने भक्तों का मनोरथ शीघ्र पूर्ण कर; मैं अत्यन्त आतुर हो गया हूँ; इसलिए क्षमा कर और मेरी इच्छा सफल कर।" धन्य है शिवाजी महाराज को! जिनकी ऐश्वर्यवृद्धि के लिए उनके सद्गुरु समर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी की इस तरह प्रार्थना करते हैं! इससे अधिक और कौन बात समर्थ और शिवाजी के पारस्परिक सम्बन्ध में लिखी जाय? जिस महत्कार्य के लिए श्रीरामदास स्वामी ने अपना सारा पुण्य ख़र्च किया—अपना सारा सामर्थ्य लगाया—वह उनकी इच्छानुसार श्रीरामचन्द्रजी महाराज ने पूरा भी किया। यह बात सिंहावलोकन से प्रकट हो जायगी।

समकालीन उपदेशक।

श्रीरामदास स्वामी ने अपने जीवन-काल में स्वधर्म-स्थापना और समाजहित का जो अलौकिक कार्य महाराष्ट्र में किया उसमें उनके समय के अनेक उपदेशक गण, अर्थात् साधुसंत और कवि लोग, भी सहायक थे। उस समय महाराष्ट्र-समाज को अपनी उन्नति करने के लिए सनातनधर्म की व्यापकता, जातिबन्धन की अनिष्टता, कर्तव्यपरायणता, एकता आदि जिन गुणों की आवश्यकता थी उनकी शिक्षा अनेक साधु, संत और कविजन अपने बर्ताव और उपदेश-द्वारा दे रहे थे। पहले पहल सब धार्मिक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में थे। इससे विद्वान् और पण्डित लोगों के सिवा और कोई लाभ नहीं उठा सकते थे। परन्तु समर्थ-कालीन सब साधुसंत और कविजनों ने अपना उपदेश मराठी भाषाही में करना आरम्भ किया। इस कारण यद्यपि उन लोगों को कुछ अहंकारी पुरुषों द्वारा कष्ट सहना पड़ा तथापि उनके मातृ-भाषा-प्रेम से बहुजन-समाज का असाधारण हित हुआ। यूरप में जिस प्रकार लूथर ने बाइबल का अँगरेज़ी भाषा में अनुवाद करके धर्म-क्रान्ति का बीज बोया, उसी प्रकार महाराष्ट्रीय उपदेशकों ने (विशेषतः रामदास स्वामी के समय के और उनके बाद के उपदेशकों ने) संस्कृत में छिपा हुआ सारा ज्ञान-भण्डार मराठी द्वारा सर्वसाधारण लोगों को सुगम और सुलभ कर दिया। सन् १८९५ की पूना सार्वजनिक सभा की त्रैमासिक पत्रिका में इस विषय में यह लिखा है:—

The Saints and Prophets addressed the people both in speech and writing in their own vernacular and boldly opened the hitherto hidden and unknown treasures to all and sundry men and women, Brahmans and Shudras alike..... The early Marathi writers knew that modern India, after Budhistic revolution, was less influenced by the Vedas and Shastras than by the Ramayana and Mahabharat, the Bhagawat Puran and the Gita, and these latter works were translated and made accessible to all.

इस उपाय से महाराष्ट्र में धर्मजागृति होकर लोग अपने समाज और देश का हित सम्पादन करने में समर्थ हुए। इस प्रकार, समर्थ के समय में, जिन महात्माओं ने स्वधर्म, स्वजन और स्वभाषा की सेवा की है उनमें से कुछ लोगों का संक्षिप्त वृत्तान्त देना आवश्यक है। जयराम स्वामी, रंगनाथ स्वामी, आनन्दमूर्ति, केशवस्वामी, मोरयादेव, तुकाराम बाबा, वामन पण्डित, देवीदास, कूर्मदास, दामाजी, बोभ्रुधले बाबा, नृसिंह सरस्वती, मुक्तेश्वर, विट्ठल कवि, अनंतकवि, आनन्दतनय, निरंजन स्वामी, शेख महम्मद, शिवदीन इत्यादि अनेक साधु कवि समर्थ के समकालीन थे। इन सब लोगों के विषय में यदि थोड़ा थोड़ा भी लिखा जाय तो प्रस्तुत लेख बहुत बढ़ जायगा। इसलिए इनमें से प्रथम चार साधु पुरुषों के विषय में कुछ लिख कर यह भाग समाप्त करेंगे।

महाराष्ट्र में "रामदास-पंचायतन" बहुत प्रसिद्ध है। इस पंचायतन में श्रीरामदास स्वामी के साथ जयराम स्वामी, रंगनाथ स्वामी, आनन्दमूर्ति और केशव स्वामी शामिल हैं। जयराम स्वामी के पिता भिकाजी पन्त देशपाँडे कासराबाद में माँडवगण नामक गाँव के निवासी थे। उनकी माता का नाम कृष्णाबाई था। जयराम स्वामी बहुत दिनों तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी माता के साथ पंढरपुर में रहते थे। वहाँ भजन भाव करने पर भगवद्दर्शन होने के बाद वे बड़गाँव में कृष्णाजी आपा अभयंकर के पास गये। उनके उपदेश से वे रामदास स्वामी के शिष्य हुए। उन्होंने शान्तिपंचीकरण, सीतास्वयंवर, रुक्मिणी स्वयंवर नाम के ग्रन्थ लिखे हैं। सन् १६७२ में इनकी मृत्यु हुई। रंगनाथ स्वामी के पिता का नाम गोपालपन्त और माता का नाम बयाबाई था। रंगनाथ स्वामी के ज्येष्ठ बन्धु ब्रह्मानन्द स्वामी भी प्रसिद्ध साधु पुरुष थे। उनके पुत्र सुप्रसिद्ध श्रीधर कवि ने रामविजय, हरिविजय, पाण्डवप्रताप, भगवद्गीता, शिवलीलामृत आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं जो महाराष्ट्र में स्त्री-पुरुष, छोटे बड़े, सब लोग प्रति दिन पढ़ा करते हैं। श्रीरामदास स्वामी के नित्य-दर्शन की अभिलाषा करके रंगनाथ स्वामी सज्जनगढ़ के समीप ही निगड़ी गाँव में मठ बना कर रहते थे। ये स्वामी बड़े राजयोगी और विलासी थे। हमेशा सरदारी ठाट बाट से रहते थे। सिर पर रेशमी ज़रीदार साफ़ा, कानों में बहुमूल्य मोतियों की बाली, बदन में ज़रीदार अँगरखा, हाथ में भाला, पीठ पर ढाल और तीर कमान, बायें पैर में चाँदी का कड़ा धारण किये रहते थे। आप एक क़ीमती घोड़े पर आरूढ़ होकर बाहर निकले और साथ में पच्चीस तीस लँगोटिये ब्रह्मचारी शिष्य रहते थे। स्वयं रंगनाथ स्वामी भी बालब्रह्मचारी थे। वे पायजामे के भीतर एक लंगोट भी लगाते थे। बृहद्वाक्यवृत्ति, चित्सदानन्दलहरी और वसिष्ठसार आदि कई उत्तम उत्तम ग्रन्थ उन्होंने लिखे हैं। सन् १६८४ में उन्होंने समाधि ली। आनन्दमूर्ति रंगनाथ स्वामी के शिष्य थे। समर्थ उनको 'चिरंजीव' कहते थे। सन् १६९६ में वे समाधिस्थ हुए। ब्रह्मनाल में उनकी समाधि है। उन्होंने बहुत से फुटकर पद्य रचे हैं। केशव स्वामी हैदराबाद के भागा नगर में रहते थे। उनके गुरु का नाम काशिराज स्वामी था। एकादशीचरित्र और कुछ स्फुट अभंग, पद आदि कविता उन्होंने रची है। सन् १६२८ में उनका स्वर्गवास हुआ।

रामदास पंचायतन के उपर्युक्त चारों साधु और उनके समय के अन्य साधु तथा कवि जन श्रीरामदास स्वामी का बहुत सम्मान करते थे। सुप्रसिद्ध महाराष्ट्र कवि वामन पंडित संस्कृत के बड़े विद्वान् शास्त्री थे। काशी से रामेश्वर तक अपनी अपूर्व विद्वत्ता स्थापित करके उन्होंने तत्कालीन पंडितों से अनेक जयपत्र प्राप्त किये थे। उन्होंने मराठी भाषा में तो अनेक उत्तम उत्तम ग्रन्थ लिखे ही हैं; पर कई ग्रन्थ उन्होंने संस्कृत में भी लिखे हैं। उनमें से "निगमसार" बहुत प्रसिद्ध है। पहले वे मराठी की निन्दा करते थे और साधु जनों के सम्बन्ध में विशेष पूज्यभाव न रखते थे। जबसे उनकी रामदास स्वामी के साथ भेट हुई तबसे उनका सारा गर्व चला गया। रामदास स्वामी ने उनकी सब शंकाएं दूर कीं और अपने अनोखे चमत्कारों से उन्हें चमत्कृत करके साधुओं के विषय में, उनके मन में श्रद्धा उत्पन्न की। उन्होंने वामन पंडित को अपना शिष्य बनाया और प्राकृत-भाषा में ग्रन्थ रचने का उपदेश दिया। उस समय से वामन पंडित ने मराठी में पचास साठ ग्रन्थ लिखे। उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता पर जो टीकात्मक ओवीबद्ध ग्रन्थ लिखा है वह अद्वितीय है। कहते हैं कि इनके सारे ग्रन्थों के पद्य बारह लाख के क़रीब हैं। इस प्रकार रामदास स्वामी ने अपने समय के पंडितों के मन में मराठी के विषय में प्रेम उत्पन्न किया।

समर्थ के शिष्यगण और साम्प्रदायिक मठ।

यह बात निश्चित रूप से नहीं बतलाई जा सकती कि श्रीसमर्थ रामदास स्वामी के शिष्य कितने, कहाँ और कौन कौन थे; उन्होंने कितने और कौन कौन स्थानों में अपने सम्प्रदाय के मठ स्थापित किये; और किन किन लोगों को मठाधिपति या 'महंत' बनाया। वर्तमान समय में जो विद्वान् लोग महाराष्ट्र के ऐतिहासिक और प्राचीन काव्य-साहित्य की खोज में लगे हैं उनका यह कथन है कि श्रीरामदास स्वामी ने हज़ारों शिष्य और सैकड़ों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महन्त बनाये थे और अनेक स्थानों में अपने मठ स्थापित किये थे। उनके शिष्य और महंतगण सारे हिन्दुस्तान में, विशेष करके महाराष्ट्र में, भ्रमण करके स्वधर्म और सुनीति का उपदेश करके लोगों में जागृति उत्पन्न करते थे। इन सब लोगों की ठीक ठीक गिनती करना अब कठिन है। स्वयं समर्थ ने दा० बो०, दशक १९, समास १० में लिखा है, "कितने लोग हैं सो मालूम नहीं; यह नहीं मालूम कि कितना समुदाय है; सब लोगों को श्रवण और मनन में लगानेवाले इस समुदाय की गणना नहीं हो सकती।" उनके प्रसिद्ध महन्त कल्याण स्वामी एक स्थान में लिखते हैं, "इस भूमंडल में समर्थ की भक्तमंडली की गणना कोई नहीं कर सका।" गिरिधर स्वामी तो यह लिखते हैं कि "समर्थ ने कितने ही महन्त और शिष्य गुप्तरीति से रक्खे थे; उन्हें समर्थ के सिवा और कोई नहीं जानता।" तात्पर्य यह है कि श्रीसमर्थ ने अपने जीवनकाल में जो अनेक शिष्य और महंत बनाये थे और अनेक स्थानों में मठ-स्थापना की थी उन सबका इस समय पता लगाना, केवल कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव सा जान पड़ता है।

यद्यपि समर्थ के सब शिष्यगणों की गणना करना असम्भव है तथापि उनके चरित का जिन जिन महानुभावों ने वर्णन किया है उन्होंने कुछ महन्तों, शिष्यों और मठों के नाम भी दिये हैं। धुलिया (खानदेश) की सत्कार्योत्तेजक सभा ने श्रीरामदास स्वामी की कविता का प्रथम खण्ड गत वर्ष में प्रकाशित किया है। उसकी प्रस्तावना में श्रीरामदास-सम्प्रदाय के महन्तों, शिष्यों और मठों का कुछ वर्णन दिया है। इसी आधार पर कुछ बातें यहाँ पर लिखते हैं।

(अ) श्रीसमर्थ के महन्त। अभी तक कुछ ८९ महन्तों का पता लगा है। उनमें से कुछ के नाम ये हैं:—१ कल्याण स्वामी, डोमगाँव के मठ में। २ दत्तात्रेय स्वामी, शिरगाँव के मठ में। ३ वासुदेव स्वामी, कणहेरी के मठ में। ४ देवदास, दादेगाँव के मठ में। ५ उद्धव स्वामी, टाकली और इन्दूरखोर के मठों में। ६ दिवाकर स्वामी, चाफ़ल के मठ में। ७ अनन्तमौनी, कर्नाटक के मठ में। ८ विश्वनाथ पण्डित को समर्थ ने उत्तर हिन्दुस्तान में भेजा था। ९ बालकृष्ण, बरार में रहते थे। १० माधव, यादव और वेनीमाधव प्रयाग में रहते थे। ११ जनार्दन, सूरत में रहते थे। १२ श्रीधर, रामकेट में। १३ गोविन्द, गोवा में। १४ शिवराम तैलंग प्रान्त में। १५ शंकर, श्रीरंगपट्टन में। १६ हरिश्चन्द्र, अन्तर्वेदी में। १७ रामकृष्ण, अयोध्या में। १८ हरिकृष्ण, मथुरा में। १९ जयकृष्ण, मायापुरी में। २० रामचन्द्र, काशी में। २१ भगवन्त, कांधी में। २२ हरि, द्वारिका में। २३ दयाल, बदरीकेदार में। २४ ब्रह्मदास, ओंकारेश्वर में। २५ बल्लाल, जगन्नाथ में। २६ हनुमान, रामेश्वर में।

ये नाम इन लोगों के मूल नाम नहीं है। बहुतों नाम समर्थ के रक्खे हुए हैं। इस देश के प्रायः सब प्रधान स्थानों में उनके महन्त रहते थे। ऐसा एक भी तीर्थ-क्षेत्र नहीं था जहाँ उन्होंने अपना महन्त न भेजा हो। ये महन्त पहले बहुत दिनों तक, शिष्य की तरह पर, समर्थ के पास ही रह कर सम्प्रदाय की शिक्षा पाते थे। वे परमार्थमार्ग का रहस्य भली भाँति समझ लेते; समर्थ के ग्रन्थों की नक़ल करके श्रद्धापूर्वक पारायण करते; उनके गूढ़ तत्त्वों का स्वयं अनुभव प्राप्त करते; शास्त्र वचन, गुरु वचन और आत्मानुभव का निश्चय करते थे। इसके बाद—

आतां होणार तें होये नाकां। जाणार तें जाये नाकां॥
तुटली मनांतील आशंका। जन्ममृत्यूची॥४४॥
द० ६ स० २।

"अब जो कुछ होना हो सो क्यों न हो और जो कुछ जाना हो सो क्यों न जाय! अब मरने जीने का कोई डर नहीं रहा।" इस प्रकार की निश्शंक और निर्भय वृत्ति से जगत् के उद्धार का कठिन काम करने के लिए, श्रीसमर्थ की आज्ञानुसार, सारे हिन्दु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान में या किसी एक विशिष्ट प्रान्त में भ्रमण करते थे। महन्त का मुख्य कर्तव्य उन्होंने यही रक्खा था:—

महन्तें महन्त करावें। युक्ति बुद्धीनें भरावें ॥
जाणते करून विखरावें। नाना देशीं ॥२५॥

दा० बो० द० ११ स० १०।

"महन्त को चाहिए कि वह और अनेक महन्त बनावे तथा उनमें युक्ति और बुद्धि अच्छी तरह भर दे—इस प्रकार अनेक ज्ञाता महन्त बनाकर, उसे चाहिए कि, नाना देशों में—देश के नाना प्रान्तों में—फैला दे।" इस कर्तव्य का यथोचित पालन करने के लिए परिभ्रमण, विवेक, कष्ट-सहन-शक्ति, मृत्यु की निर्भयता, यश की लालसा, वैराग्य, निस्पृहता, चातुर्य या विचक्षणता, मृदु-वचन, क्षमा, शान्ति, सहिष्णुता, परोपकार-बुद्धि, उत्कट इच्छा या उत्कंठा आदि अनेक विशिष्ट गुणों की आवश्यकता है। इन सब गुणों का वर्णन समर्थ ने अपने ग्रन्थों में (विशेष कर दासबोध में) किया है। खेद की बात है कि अब तक प्रमाण सहित इस बात का पूरा पूरा पता नहीं लग सका है कि समर्थ के ये सब महन्त भ्रमण करते समय, या मठ में रहते हुए, क्या क्या काम, किस प्रकार, किया करते थे; उनके काम करने की रीति या प्रणाली कैसी थी; वे स्वयं किस प्रकार रहते थे—उनका बर्ताव कैसा था। इन महन्तों के कार्यों का सप्रमाण इतिहास मिलजाने से श्रीरामदास स्वामी के जीवन-चरित के मुख्य भाग पर अप्रतिम प्रकाश हो जायगा।

(आ) श्रीसमर्थ के शिष्य। इसमें सन्देह नहीं कि उनके, हज़ारों स्त्री और पुरुष, शिष्य थे। पुरुषों में सिर्फ़ एक छत्रपति शिवाजी महाराज का नाम लिख देना, इस लेख के लिए, बस होगा। स्त्री-वर्ग में सीताबाई, चिमणाबाई, अम्बिका, द्वारकाबाई, भवाबाई, कृष्णाबाई, वेणूबाई, मनाबाई, अन्नपूर्णा, गंगाबाई, गोदाबाई आदि प्रसिद्ध हैं। वेणूबाई ने सीतास्वयंवर, मंगलरामायण, छन्दोरामायण, संकेत रामायण, लवकुश रामायण, सुन्दररामायण, अब्द-रामायण, भाषा रामायण आदि कई ग्रन्थ रचे हैं।

समर्थ के ग्रन्थ।

प्राचीन कवि और साधुओं का ग्रन्थ-समुदाय ही ऐतिहासिक दृष्टि से राष्ट्रीय साहित्य है। उसका जितना सूक्ष्म और मार्मिक रीति से अभ्यास किया जायगा उतना ही उस समय का राष्ट्रीय ज्ञान अधिक होगा। प्रायः देखा जाता है कि भारत की किसी भी प्रांत की प्राकृत भाषा में पहले गद्य ग्रन्थ लिखने की प्रणाली न थी। यद्यपि बोलचाल की भाषा गद्य ही थी और दरबारी काग़ज़पत्र भी गद्य ही की भाषा में लिखे जाते थे; पर कवि और साधु लोग प्रायः पद्य में ही ग्रन्थरचना करते थे। हाँ, उन साधु और कवियों की रचना-शैली में और भिन्न छन्दों के चुनने में अवश्य भेद पाया जाता है। प्रायः प्राचीन साधुओं की कविता पौराणिक विषयों के आधार पर रची हुई पाई जाती है। उनकी कविता में स्वतंत्र रचना बहुत कम देख पड़ती है। श्रीराम-दास स्वामी ने किसी एक पौराणिक विषय पर बहुत कम रचना की है। उनकी प्रायः सब रचना स्वतंत्र है। उन्होंने यों ही मनोरञ्जन के लिए कोई कविता नहीं लिखी; उनकी सारी कविता में कोई न कोई मुख्य हेतु है। प्राचीन प्रथा के अनुसार समर्थ ने भी अपने सब ग्रन्थ पद्यात्मक लिखे हैं। बात केवल इतनी ही है कि काव्यरस की प्रधानता को अपना हेतु समझकर उन्होंने ग्रन्थों की रचना पद्यात्मक नहीं की; किन्तु उन्होंने अपने सब ग्रन्थ उपदेश के लिए रचे हैं; अर्थात् जनसमाज का सुधार ही उनके ग्रन्थों का प्रधान हेतु है। इससे यह अनुमान निकल सकता है कि यदि उस समय गद्य लिखने की प्रथा होती तो वे भी अपने ग्रन्थ गद्यही में लिखते।

अब यह देखना चाहिए कि समर्थ कवि थे या नहीं; यदि वे कवि थे तो किस श्रेणी के कवि थे। उनकी पद्य-रचना को देख कर ही बहुतेरे लोग उन्हें 'कवि' कहते हैं। इसका कारण यही है कि सर्व साधारण लोग पद्य-रचनाही को काव्य समझने लगे हैं। परन्तु साहित्य-शास्त्र की परिभाषा के अनु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार समर्थ कवि नहीं थे। हाँ, समर्थ ने 'कवि' और 'कविता' के जो लक्षण अपने "दासबोध" में बताये हैं, और जिनका उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे, उनके अनुसार वे 'कवि'—अर्थात् आधुनिक भाषा में, प्रतिभाशाली और प्रासादिक उपदेशक—अवश्य थे। उनकी कविता में प्रसाद गुण भरा हुआ है और मनोहर दृष्टान्तों की भी विपुलता है। परन्तु, उन्होंने अपने ग्रन्थों में दृष्टान्तों की योजना, किसी काव्य ग्रन्थ की तरह, केवल रमणीयता या चमत्कार उत्पन्न करने के लिए, नहीं की है। जहाँ जहाँ दृष्टान्त दिये गये हैं वहाँ वहाँ प्रतिपादित विषय का परिपोषण ही प्रधान हेतु है। उनके ग्रन्थों में अद्भुत वक्तृत्व शक्ति पाई जाती है। विषय-निरूपण का प्रवाह ऐसा अप्रतिबद्ध है, शब्दों की योजना ऐसी समुचित है और विचार-पद्धति ऐसी चित्ताकर्षक है कि पढ़नेवाले को यही भास होता है कि मानो कोई साक्षात् बृहस्पति या वाचस्पति व्याख्यान दे रहा है। यही कारण है कि उनके दासबोध में प्रतिपादित सिद्धान्त-विषय तात्त्विक, गहन और शास्त्रीय होने पर भी, ऐसा मालूम होता है कि मानो हम कोई आह्लादजनक काव्य ही पढ़ रहे हैं।

उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को यह मालूम हो जायगा कि उनके ग्रन्थों का स्वरूप कैसा है और श्रीरामदास स्वामी कैसे उत्तम उपदेशक कवि थे। आधुनिक कवियों की दृष्टि से भी उनके ग्रन्थों में अनेक काव्यगुण पाये जाते हैं। उनके रामायण के युद्धकांड में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है, उनके पद और अभंगों में करुण रस का अनुपम आविर्भाव हुआ है। 'दासबोध' में निद्रा का निरूपण करते हुए उन्होंने हास्य रस और बीभत्स रस का अच्छा चित्र खींचा है। काव्य-चमत्कृति के भी दो एक उदाहरण उनके ग्रन्थों में मिलते हैं। दासबोध के चौदहवें दशक के चौथे समास में एकाखड़ी नामक अक्षरालंकार है।

अब यह देखना चाहिए कि समर्थ के विचार कवि और कविता के सम्बन्ध में कैसे थे। इससे पाठकों को यह बात, समर्थही के मुख से, भाँति मालूम हो जायगी कि वे कैसे कवि थे। के मतानुसार गद्य, पद्य ग्रन्थ लिखनेवाले नाना शास्त्रों की ऊहापोह-विवेचनपूर्वक चर्चा वाले पुरुष कवि हैं। इतना ही नहीं; किन्तु वे प्रा दिक कवि हैं। समर्थ की दृष्टि से प्रतिभा-स व्यक्ति ही कवि है। नवरसात्मक कविता रचनेवा कवि, गणितशास्त्री, वेदान्ती, योद्धा, चित्रक साधु, व्याख्याता, शिल्पी, कोई भी हो, यदि उस प्रतिभा के लक्षण हैं तो वह 'कवि' है। समर्थ मत से कविता केवल ग्रन्थरूप ही से नहीं होती किन्तु, वह आचाररूप भी हो सकती है। साध पुरश्चरण, तप, तीर्थाटन, धैर्य, शौर्य और धृ आदि की क्रियायें भी कवित्व में शामिल हैं। तात्प यह है कि विचार और आचार, दोनों में, ईश्वरी दिव्य अंश-प्रतिभा का होना ही कवित्व का लक्ष है। महात्मा तुलसीदास की तरह समर्थ ने नरस्तुति-विषयक कविता का निषेध किया है। उन राय है कि "उदरशान्ति के लिए की हुई नरस्तु की कविता में अपनी व्युत्पत्ति-बुद्धिमानी या चमत्का दिखलाना अधमता का लक्षण है।" समर्थ अप दासबोध में, भक्तकवि का वर्णन करते हुए प्रास दिक कविता का लक्षण बतलाते हैं:—

नाना ध्यानें नाना मूर्ती। नाना प्रताप नाना कीर्ती।
तयापुढें नरस्तुती। तृणतुल्य वाटे॥ ३२॥
त्याचे भक्तीचे कौतुक। तया नाव प्रासादिक।
सहज बोलतां विवेक। प्रगट होये॥ ३४॥

"ऐसे कवि की वाणी से सहज ही—स्वाभाविक या स्वयं—जो हरिभक्ति का कौतुक प्रकट होता हो—ईश्वर के नाना प्रकार के ध्यानों का, नाना प्रकार की मूर्तियों का और नाना प्रकार के प्रताप और कीर्ति का आविर्भाव होता है—उसी का नाम प्रासादिक कविता है। उस कविता के सामने नर स्तुति तृणतुल्य है।" अब देखिए समर्थ के इसी विचार को महात्मा तुलसीदास, प्रासादिक कवि होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण, किस काव्य-चमत्कृति के साथ, अपने अद्वितीय ग्रन्थ "रामचरितमानस" में बतलाते हैं :—

भगति-हेतु बिधि-भवन बिहाई।
सुमिरत सारद आवति धाई॥
कवि कोविद अस हृदय बिचारी।
गावहिँ हरिजस कलि-मल-हारी॥
कीन्हे प्राकृत-जन-गुन-गाना।
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना॥
प्र० सो०, चौ० ११।

भक्ति का वर्णन करने के लिए शारदा, (वाणी-रूप से) सुखमय विधि-भवन छोड़कर, कवियों के हृदय में दौड़ आती है; और यही समझ कर कोविद कवि, कलिमल को हरण करनेवाला हरियश गाते हैं। अपने पेट के लिए, बलात् वाणी को कष्ट देकर, प्राकृतजनों का गुणगान करने से, गिरा (सरस्वती या वाणी) सिर धुन कर पछताती है।

ऊपर के विवेचन से पाठक-गण यह बात समझ गये होंगे कि समर्थ किस श्रेणी के कवि हैं और कवि तथा काव्य के सम्बन्ध में उनके विचार कैसे हैं। अब हम उनके ग्रन्थ-समुदाय का कुछ परिचय पाठकों को दिलाते हैं। समर्थ के उपदेश-ग्रन्थों का भाण्डार अपरिमित है। समर्थ के शिष्य अनन्त कवि ने समर्थ के ग्रन्थों को समुद्र की उपमा दी है। इसमें सन्देह नहीं कि उनका ग्रन्थ-समुदाय समुद्र की तरह व्यापक और अथाह है; गम्भीर है और उसमें अनेक रत्न भरे पड़े हैं। श्रीरामदास स्वामी के ग्रन्थों की खोज महाराष्ट्रीय विद्वज्जन बहुत दिनों से कर रहे हैं। कई प्रकाशकों ने उनके "समग्र ग्रन्थ" प्रकाशित भी किये हैं। पर विद्वानों की राय में वे 'समग्र' नहीं कहे जा सकते; क्योंकि उनके ग्रन्थ-सागर के बहुत थोड़े ग्रन्थ-रत्न अभी तक मिले हैं। धुलिया (खानदेश) की सत्कार्योत्तेजक सभा ने स्वयं समर्थ के, और उनके (रामदासी) सम्प्रदाय के सब ग्रन्थ प्रकाशित करने का बीड़ा उठाया है। इस सभा ने अब तक श्रीसमर्थ के ग्रन्थों में से "दासबोध" (रायल अठपेजी आकार के क़रीब ५०० पृष्ठ) और "रामायण" आदि कुछ अन्य ग्रन्थ (क़रीब १००० पृष्ठ) प्रकाशित किये हैं। इनके सिवा और बहुत से ग्रन्थ सभा के पास, प्रकाशित होने के लिए रक्खे हैं। खोज करने से प्रतिवर्ष कुछ न कुछ नवीन कविता प्राप्त हो जाती है। इससे जान पड़ता है कि श्रीरामदास स्वामी के "समग्र ग्रन्थ" इस समय न तो उपलब्ध हैं और न प्रकाशित हैं। उपलब्ध ग्रन्थों के नाम नीचे दिये जाते हैं; इनमें कुछ अप्रकाशित ग्रन्थों के नाम भी हैं।

१ दासबोध २ रामायण ३ मन के श्लोक ४ चौदा शतक ५ जनस्वभाव गोसावी ६ पंचसमासी ७ जुनाट पुरुष ८ मानसपूजा ९ जुना दासबोध १० पंचीकरणयोग ११ चतुर्थ योगमान १२ मानपंचक १३ पंचमान १४ रामगीता १५ कृतनिर्वाह १६ चतुःसमासी १७ अक्षरपदसंग्रह १८ सप्तसमासी १९ रामकृष्णास्तव २० दासप्रबोध, आदि, आदि।

उपर्युक्त ग्रन्थों के सिवा स्फुट अभंग, स्फुट श्लोक, आरती भूपाली, विविध पद आदि अनेक स्फुट प्रकरण भी उपलब्ध हैं। इन ग्रन्थों में से कुछ प्रमुख ग्रन्थों का परिचय अपने पाठकों को देना आवश्यक है। परन्तु उन प्रमुख ग्रन्थों का थोड़ा भी विवेचन करने से इस चरित-लेख के बहुत बढ़ जाने का भय है। इसलिए समर्थ के ग्रन्थों की आलोचना इस स्थान में करना ठीक नहीं जान पड़ता। इस विषय की विस्तृत चर्चा किसी दूसरे लेख में की जायगी। समर्थ की शिक्षा का रहस्य जानने के लिए उनके "दासबोध" आदि ग्रन्थों का यथोचित भाव प्रकट करना अत्यन्त आवश्यक है।

सिंहावलोकन।

श्रीसमर्थ रामदास स्वामी ने अपने अवतार की समाप्ति के पहले, अपने संकल्पित कार्यों की सिद्धि के विषय में स्वयं ही अपनी कविता के अनेक "स्फुटप्रकरणों" में उल्लेख किया है उसी को श्रीसमर्थचरित का सिंहावलोकन समझना चाहिए। हमको अपनी स्वतंत्र कल्पना के अनुसार उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरित्र का सिंहावलोकन करने की आवश्यकता नहीं है। चाफल के जंगल में घूमते हुए, या कभी एकान्त में बैठे हुए, या कभी शिष्यों के प्रश्न उठाने पर, जब समर्थ को अपने जीवन की पिछली बातों का स्मरण हो आता था तब वे अपने उपास्य देव श्रीराम की स्तुति करने लगते और भगवान् की महिमा कविता में गाते गाते अपने जीवन-चरित की अनेक बातों का सहज उल्लेख कर जाते थे। समर्थ के जिन "स्फुट प्रकरणों" में उनके आत्मचरित्र का कुछ परिचय मिलता है वे सब इसी सहज और आनन्दावस्था के प्रेमोद्गार हैं। इन पद्यों में समर्थ ने यह कहीं नहीं लिखा कि ये सब काम मैंने किये; सब जगह "राम कर्ता राम भोक्ता" ही कहा है। समर्थ जैसे निरहंकारी और निस्पृह साधु पुरुष को यही उचित भी था। हमारे समान साधारण जन जो अहंकार में फँसे पड़े हैं वही "मैंने" और "मेरा" कहा करते हैं। दासबोध के दशक ६ समास ७ में समर्थ कहते हैं :—

मी कर्ता ऐसें म्हणसी। तेणें तूं कष्टी होसी।
राम कर्ता म्हणतां पावसी। यश कीर्ति प्रताप ॥३६॥

यदि तू कहेगा कि मैं कर्ता हूँ तो तुझे कष्ट होगा और यदि कहेगा कि राम कर्ता है तो तू यश, कीर्ति और प्रताप पावेगा।" अस्तु।

"आनन्दवन-भुवन" नामक ५९ पद्यों के एक स्फुट प्रकरण में समर्थ ने इस बात का वर्णन किया है कि उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से जनोद्धार का जो काम आरम्भ किया था वह कहाँ तक सफल हुआ। इस कविता के सारांश पर ध्यान देने से समर्थ-चरित्र का सिंहावलोकन आप ही आप हो जाता है। प्रथम पद्य में समर्थ आनन्दवन-भुवन (अर्थात् नासिक पंचवटी प्रान्त) को जाने का अपना हेतु इस प्रकार बतलाते हैं:"—जन्मदुःख, जरादुःख, बार बार के नित्य दुःख और संसार का त्याग करने के लिए।" इससे यह सिद्ध होता है कि समर्थ जिस समय घर से भागे थे उसी समय उन्होंने अपने मन में परमार्थ विषयक हेतु निश्चित कर लि[या] था। दूसरे पद्य में समर्थ कहते हैं कि आनन्द[वन] भुवन में पहुँचते ही मेरा चित्त श्रीरामचरणानु[राग] में लीन होगया। इसके बाद वे कहते हैं कि [मैं] संसार में मैंने कैसे कैसे बड़े बड़े दुःख सहे, स्वध[र्म] चरण में कैसे अनेक विघ्न उपस्थित हुए; उन वि[घ्नों] को दमन करने के लिए 'विघ्नघ्न' भीम की प्रार्थ[ना] की। फिर, इसके बाद, इस बात का आवेश यु[क्त] वर्णन किया है कि हनुमान्‌जी ने सब विघ्नों [का] नाश कैसे किया। यह वर्णन पढ़ने से जान पड़[ता] है कि स्वधर्माचरण में, अर्थात् जप, तप, अनुष्ठान, पुरश्चरण और तीर्थयात्रा आदि भगवत्प्राप्ति [के] साधनों का अभ्यास करते समय, श्रीसमर्थ [को] कैसी आपदाओं का सामना करना पड़ा। इसके [बा]द 'आनन्दवन-भुवन' तीर्थ की महिमा गाकर फि[र] उस "मुहिम" का पौराणिक रीति से वर्णन किया [है] जो "बंधविमोचन" या लोकोद्धार के लिए भगवा[न] रामचन्द्र ने देवगण सहित की और समर्थ के का[म] में सहायता दी। इस मुहिम-वर्णन के अन्त में, [इ]स मुहिम का उद्देश भी उन्होंने स्पष्ट बतला दिया है:—

कल्पांत मांडला मोठा, म्लेंच्च दैत्य बुडावया।
कैपक्ष घेतला देवीं, आनन्दवनभूवनीं ॥२७॥

अर्थात् "म्लेच्छ दैत्यों" का संहार करने के लि[ए] भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने हमारा पक्ष स्वीका[र] किया और आनन्दवन-भुवन में घनघोर युद्ध किया। जब साक्षात् भगवान् भक्तकल्पद्रुम श्रीरामचन्द्रजी [ने] को समर्थ ने अपना सहायक बना लिया तब इस[में] आश्चर्य ही क्या है कि उनके सारे मनोरथ सफ[ल] हुए। भगवान् की सहायता का जो परिणाम हुआ, [अ]र्थात् धर्मस्थापना और लोकोद्धार का जो का[र्य] किया गया उसका उत्साह-जनक वर्णन शेष पद्यों [में] किया गया है।

जो लोग महाराष्ट्र के सत्रहवीं सदी के इति[हा]स से परिचित हैं वे श्रीरामदास स्वामी के उप[र्यु]क्त आत्मचरित-सम्बन्धी सिंहावलोकन की यथा[र्थ]ता भली भाँति जान सकते हैं। उसके विषय [में]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पतझड़ के दिनों में रोग और कीटकों से आक्रान्त वृक्षों को रसायनों के फुहारे से स्नान कराना।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। एक और "स्फुट प्रकरण" में श्रीराम-महिमा गाते हुए "सुख-भुवन" अर्थात् महाराष्ट्र की जागृति के सम्बन्ध में वे कहते हैं :—'आज कल चारों ओर धर्म की अवनति और अवहेलना देख कर देव कुपित हुआ है। इसलिए अब देवद्रोहियों को—अत्याचारियों को—अपना सब कार बार (अनीति, अधर्म, अत्याचार) समेटना चाहिए। लोगों में जागृति होने लगी है—वही देव का चैतन्यरूप है—उसीसे लोगों की इच्छा सफल होगी। क्या क्या होगा सो महाराष्ट्र में रह कर देखना चाहिए।"

"स्फुटग्रन्थ समास प्रथम' में भी श्रीराम गुण-वर्णन करते हुए समर्थ के मुख से जो स्वाभाविक वचन निकल पड़े हैं उनमें उन्होंने अपने चरित्र के सिंहावलोकन का कुछ आभास दिया है। इन पद्यों का सारांश यह है :—"दीनानाथ श्रीराम वैभव में समर्थों के भी समर्थ हैं; जिन्होंने मेरे मनोरथ पूर्ण किये हैं। मेरी सारी अभिलाषायें उन्होंने पूरी कीं और मुझ दीन को मर्यादा से अधिक बढ़ा दिया। + + + श्रीराम ने विभीषण को लंका दी, इन्द्र की आशंका मेटी और रंक रामदास की प्रतिष्ठा बढ़ा दी। उन्होंने यह स्थान सुन्दर देख कर यहाँ वास किया; 'दास' को पास ही रक्खा और सारा प्रान्त पावन किया। जिन दरी, खोरी और गिरि-कन्दराओं को देखते ही डर लगता है, उन्हें भी वैभवसम्पन्न किया। राम का देना ऐसा ही है!"

"अध्यात्मसार" नामक स्फुट प्रकरण, समर्थचरित्र के सिंहावलोकन की दृष्टि से, बहुत महत्त्व का है। परन्तु, वह बहुत बड़ा होने के कारण उसका विस्तृत सारांश यहाँ नहीं दिया जा सकता। सिर्फ निम्न दो पद्य उद्धृत कर देना ही आवश्यक है :—

जीवीचा पुरला हेत्, कामना मन कामना।
धमंड जाहलें मोठें, घबाड साधलें बकें॥

* * * *

बोलतां भवानी माता, महीन्द्र दास्य इच्छिती।
बोलणें हें प्रचीतीचें, अन्यथा वाउगें नव्हे॥

अर्थात् "जी का हेतु पूर्ण हो गया; अब कामना का मन में काम नहीं है। बहुत कीर्ति हुई और अप्रतिम लाभ मिल चुका। भवानी माता के प्रसन्न होने पर बड़े बड़े राजा सेवा करने की इच्छा करते हैं। यह अपने अनुभव की बात हम कह रहे हैं—इसे मिथ्या कभी न समझना।"

तात्पर्य यह है कि श्रीरामदास स्वामी के ग्रन्थों से ही उनके चरित्र की बहुतेरी बातें मालूम होती हैं; क्योंकि उन्होंने जब कोई सिखावन की बात बतलाई है तब बार बार यही कहा है कि यह हमारे अनुभव की बात है। इसलिए पाठकों को समर्थ के जीवनोद्देश की सफलता के विषय में, हमने अपनी ओर से कुछ न लिख कर, उन्हीं के वचनों का कुछ सारांश देने का यत्न किया है। आशा है कि पाठकों को उपर्युक्त विवेचन से, समर्थचरित्र के सिंहावलोकन करने में सहायता मिलेगी। हम समझते हैं, और इसमें सन्देह नहीं कि हमारे पाठक भी यही समझेंगे कि जब श्रीसमर्थ रामदास स्वामी अपने सारे संकल्पित कामों की सफलता का पुनरालोचन करते होंगे तब उनके अन्तःकरण में प्रेम, आनन्द, धन्यता और हर्ष आदि सात्विक मनोवृत्तियों की लहरें अवश्य उमड़ती होंगी।

त्रिमूर्ति।

अमेरिका में कृषि-विद्या की उन्नति।

दुनिया के इतिहास में पहले कभी भी कृषि की इतनी उन्नति नहीं हुई है जितनी कि पिछले ११ वर्षों में कृषिविद्यालयों और प्रयोग-शालाओं के द्वारा अमेरिका के युक्त-संस्थान ने की है। क्या पहले कभी किसी देश के कृषकों ने अमेरिका के कृषकों के समान असंख्य धन उपार्जन किया है? विचार कीजिए कि सन् १९०८ ईसवी में अमेरिका की कृषि की उपज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मूल्य २३ अरब ३३ करोड़ ४० लाख रुपये ठहराया गया था। देखिए तो सही कि सन् १८९७ ईसवी में यहाँ के कुल संस्थानिक कृषि महाविद्यालयों की आमदनी १ करोड़ ५० लाख रुपयों की थी, किन्तु आज ४ करोड़ ५० लाख है। तब इन महाविद्यालयों की मालियत १५ करोड़ ३० लाख रुपयों के मानी जाती थी किन्तु, आज २७ करोड़ ८० लाख रुपयों के मानी जाती है।

कालेजों से भी अधिक उन्नति प्रथम और द्वितीय श्रेणी की कृषि-पाठशालाओं की हुई है। पहले इन स्कूलों में कृषि-विद्या सिखाने का लोगों के मन में विचार भी उत्पन्न न हुआ था किन्तु आज इस देश में ४५ ऐसे कृषि हाई स्कूल हैं जिनको स्टेट की ओर से सहायता मिलती है; १६ को प्राईवेट तौर पर, ११६ ज़िला नार्मल स्कूल हैं जिनमें से निकल कर लोग इन स्कूलों के शिक्षक होते हैं। और, २५० सार्वजनिक और प्राईवेट हाई स्कूल ऐसे हैं जिनमें थोड़ी बहुत कृषि पढ़ाने का भी बन्दोबस्त किया गया है। इनके सिवा १६ स्कूल ऐसे हैं जो पत्र-व्यवहार द्वारा कृषि-विद्या की शिक्षा देते हैं। विशिष्ट प्राईवेट प्रथम श्रेणी की कृषिपाठशालाओं की संख्या २६ है।

आजकल इस देश में देहाती स्कूलों में कृषि-विद्या का प्रवेश कराने का प्रस्ताव बड़े ज़ोर के साथ हो रहा है। तेरह संस्थानों में तो देहाती पाठशालाओं में कृषि पढ़ाने का क़ानून हो गया है। बाक़ी ३१ संस्थानों और प्रान्तों (हवाई द्वीप को लगा कर) के बहुतेरे देहाती स्कूलों में कृषि-विद्या पढ़ाई जाने लगी है, और जहाँ जहाँ इसका प्रबन्ध नहीं हुआ है वहाँ के ज़िलों के स्कूलों के अधिकारी इस बात की उत्तेजना दे रहे हैं, अर्थात् इस देश के ४४ संस्थान अपने बालकों को अपने इस बड़े उपजाऊ उद्योग के तत्त्व को सिखाने का कुछ न कुछ प्रयत्न कर रहे हैं।

प्रथम श्रेणी की पाठशालाओं में कृषि-विद्या को वैज्ञानिक रीति से पढ़ाना तो सम्भव नहीं हो सकता, न इन पाठशालाओं का यह मतलब ही है कि छोटे बालक वहाँ से पढ़ कर कृषि का उद्योग करें। मुख्य उद्देश इन पाठशालाओं में कृषि ही पढ़ाने का नहीं वरन् छुटपन से ही बालकों की निरीक्षण शक्ति को बढ़ाने का है, अर्थात् प्रकृति के पदार्थों को ध्यान देकर देखने का अभ्यास कराने का। आगे बढ़ने पर उन्हें वैज्ञानिक शास्त्रों को समझने में सुलभता दिलाना है, छोटे बालकों के सामने बाग़ीचे की पेचीदा पत्तियों का कुछ मतलब नहीं होता क्योंकि वे उनके स्वभाव से परिचित नहीं होते; घरों के आस पास उड़नेवाली चिड़ियाँ और कीड़े तथा अन्य पदार्थ उनके सामने से होकर छाया के समान गुज़र जाते हैं। देख कर भी यह समझिए कि उन्हें दिखता नहीं देता। प्रकृति के पदार्थों के गूढ़ स्वभाव को निरीक्षण कर सकने का अभ्यास इन पाठशालाओं में कराया जाता है। बड़े होने पर लड़का चाहे कृषक हो या इन्जीनियर उसकी निरीक्षण शक्ति सब जगह काम आवेगी। उच्च शिक्षा प्राप्त न कर सकने पर जो थोड़ी सी बातें वह कृषि-सम्बन्ध में सीख गया हो वे उसके लिए उपयोगी अवश्य ही हो सकती हैं, बाक़ी निरीक्षण शक्ति उसका सहारा करेगी। द्वितीय श्रेणी की पाठशालाओं में कृषि करने का अभ्यास भी कराया जाता है।

प्रथम और द्वितीय श्रेणी की पाठशालाओं को यहीं छोड़ हम आगे चल कर इस लेख में मुख्य तीन बातों का ज़िक्र करके पाठकों को इस देश में कृषि-विद्या की उन्नति का कारण दिखाना चाहते हैं। वे तीन मुख्य बाते ये होंगी—(१) यहाँ की सरकार कृषि की उन्नति के लिए और क्या कर रही है (२) कृषि-महा-विद्यालय क्या कर रहे हैं (३) कृषि-उद्योग की भूत और वर्तमान दशा।

१—सरकार क्या कर रही है।

यहाँ की सरकार ने जो काम कृषि की उन्नति सम्बन्ध में किया है और कर रही है उसकी समता दूसरे देश के राज्यों से न हुई है और न हो रही है। इस देश की सरकार ने जो कुछ सब तरह के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालयों के लिए किया है उसका तो कुछ कहना ही नहीं, इसके सिवा यहाँ की राजधानी वाशिङ्गटन डी० सी० में सरकार का एक बड़ा भारी कृषि-विभाग है। इस विभाग के साथ कृषि-सम्बन्धी अन्यान्य विषयों के उपविभाग और प्रयोगशालायें (Experiment Stations) हैं, जिनमें कि बड़े बड़े विज्ञानवेत्ता नई नई बातों की खोज करने में लगे रहते हैं। उपविभागों का संक्षिप्त विवरण हम नीचे लिखते हैं :—

(१) वायूपविभाग के अधिकार में हवा के चलने का रुख़ पहले से पहचानना, तूफ़ान की सूचना, नदियों के बहाव के संकेत-चिह्नों को जानना, वर्षा से धान्य, कपास, गन्ना इत्यादि की रक्षा करने-वाली प्रणाली निकालना और अन्यान्य रीतियों से कृषि की उन्नति करना सिखाया जाता है।

(२) पशु-विभाग के अधिकारी पशुपालन, पशु-रक्षा सम्बन्धी शास्त्रीय संशोधन, पशुविक्रय तथा पशुचिकित्सा, पशूत्पादन और डेरी के सम्बन्ध में उपयुक्त पत्रिकायें निकाल कर कृषकों को उस विषय में निपुण करने का प्रयत्न करते हैं।

(३) अरण्य उपविभाग (जंगलात) में जङ्गलों की व्यवस्था और जङ्गलों में उत्पन्न हुए पदार्थों को काम में लाने की तरकीब निकाली जाती है।

(४) रसायन-शास्त्र के उपविभाग के अधिकार में भूमिपरीक्षा, रासायनिक तथा भौतिक पृथक्करण, फल-पृथक्करण, और उसके साथ ही खाद्य पदार्थों का पृथक्करण, अन्नरक्षा में जो कुछ रोगदायक पदार्थ मिश्रित हो गये हों उनका भी पृथक्करण करके फ़रेबियों को दण्ड दे देश की स्वास्थ्य-रक्षा की जाती है। इसके अतिरिक्त खाद-परीक्षा, रासायनिक द्रव्यों से अनउपजाऊ भूमि को उपजाऊ बनाने की चेष्टा की जाती है।

(५) कीटकोप-विभाग के अधिकारी धान्य, वृक्ष, फल, पुष्प तथा मनुष्य और पशुओं को हानि-कारक और लाभदायक कीड़ों का संशोधन कर उनको रोकने और पालने की रीतियाँ निकाल कृषकों को पत्रादिकों द्वारा ख़बर देते हैं। मधु-मक्खियों और रेशम के कीड़ों को पालने के लिए और रोग फैलाने वाले तथा कृषि को नुक़सान पहुचानेवाले कीड़ों को रासायनिकों द्वारा मारने के लिए बहुत कुछ किया गया है।

(६) जीवन-शास्त्र के उपविभाग में जीवित प्राणियों तथा वनस्पतियों के आहार-विहार से रह सकने योग्य लाभ-दायक स्थानों के नक़शे तय्यार किये जाते हैं। पशु, पक्षियों के स्वभावों और प्रकृति के भेदों की खोज की जाती है और उनके उपयोगों को जान उनको रक्षण करने का प्रयत्न किया जाता है।

(७) कृषि उपयुक्त पत्र-प्रकाशालय—इस उप-विभाग में कृषि-उपयोगी सम्पूर्ण समाचार तथा लेख प्रकाशित किये जाते हैं। उपविभाग का एक स्वतंत्र मुद्रणालय है।

(८) पुस्तकालय—इसमें सम्पूर्ण कृषिविषयक पुस्तकों का संग्रह है।

(९) जमा ख़र्च के उपविभाग इत्यादि का ज़िक्र हम यहाँ पर नहीं करेंगे।

कृषि-विभाग में सब मिला कर १०,४२० कर्म्म-चारी नौकर हैं, जिनमें से २,४८८ राजधानी में रहते हैं और बाक़ी ७,९३२ अन्य अन्य स्थानों की प्रयोग-शालाओं में रहते हैं। बहुत से अच्छे विज्ञान-वेत्ता दुनिया के भिन्न भिन्न भागों को भेजे जाते हैं, उनका काम देश देशान्तरों में प्रवास कर वहाँ के पेड़, पौदे, जानवर, चिड़िया इत्यादि के विषयों में खोज करने और उनको इस देश में भेजने का होता है। यहाँ पर उन पदार्थों को भिन्न भिन्न प्रान्तों की प्रयोग-शालाओं में रख उनके किसी लाभदायक होने की सम्भावना की जाँच की जाती है। यदि किसी पदार्थ के सुधार करने की आवश्यकता हो तो वह भी कर लिया जाता है। उदाहरणार्थ—कुछ समय हुआ यहाँ से भारत-वर्ष को एक कीटक-विज्ञान-वेत्ता हमारे देश की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुमक्खियों की खोज करने के लिए गया था। दूसरे ने आस्ट्रेलिया से एक ऐसी जाति का कीड़ा भेजा था जो दूसरी जाति के बहुत से हानिकारक कीड़ों का शत्रु है। आज कल एक वनस्पतिशास्त्रज्ञ (Botanist) साइबीरिया के पेड़ और पौदों को इस देश में भेज रहा है। इसी तरह एक बीज से लेकर बड़ी गाय तक के लिए एक एक अभिज्ञ नियुक्त है।

इस प्रकार जब किसी विषय में कोई संशोधन हो जाता है तो उसे प्रकाशित कर देते हैं। किसानों की कठिनाइयों की खोज कर इस विषय में पत्रिकायें (Bulletins) छाप कर माँगनेवालों को मुफ़्त भेजी जाती हैं। गत बारह वर्षों में १२,००० बुलटिनें कृषिसम्बन्धी विषयों पर छापी गई हैं और उनकी १ करोड़ ४६ लाख प्रति बाँटी गई हैं।

इस विभाग के पुस्तकालय में कृषिविद्या-सम्बन्धी विषयों पर १ लाख १ हज़ार ५ सौ पुस्तकें और रिसाले मौजूद हैं इसके सिवा इस विषय पर १,४५० मासिक और समाचार-पत्रादि बराबर आया करते हैं। इस विद्यारूपी समुद्र की लहरों की अद्भुत शक्ति इस लोक-सत्ताक राज्य में इतनी फैल गई है कि प्रत्येक किसान कृषि-सम्बन्धी समाचारों से परिचित है।

कृषि-कालेज क्या कर रहे हैं।

इस समय संयुक्त संस्थान में सरकार की सहायता पानेवाले ६७ कृषि-महाविद्यालय हैं। ये महाविद्यालय तीन प्रकार के हैं—(१) जिनमें केवल कृषि-विद्याही पढ़ाई जाती है, (२) जिनमें कृषि-विद्या सम्बन्धी सम्पत्तिशास्त्र, इञ्जीनियरिंग और साहित्य भी पढ़ाये जाते हैं, (३) वे कृषि महाविद्यालय जो विश्वविद्यालयों के साथ में हैं।

ऐसा कृषि-कालेज, जिसमें कृषि के सिवा और कुछ नहीं पढ़ाया जाता, केवल एक ही है। २२ संस्थानों में कृषि-कालेज विश्वविद्यालय के साथ जुड़े हुए हैं। १५ संस्थान और प्रान्तों में हब्शी लोगों के लिए भिन्न महाविद्यालय हैं। इन सब प्रकार के कालेजों की श्रेष्ठता में थोड़ा फ़र्क़ माना जाता है। अधिकांश में पदवी प्राप्त करने के लिए हाई स्कूल के बाद चार वर्ष की पढ़ाई समाप्त करनी होती है। स्वाभाविक तौर पर बहुत से कालेजों की पढ़ाई वैज्ञानिक विषयों में अवश्य ही उच्च है। चार वर्ष की पढ़ाई समाप्त करने के बाद अधिकांश महाविद्यालयों में और भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने और कृषि-सम्बन्धी में संशोधन करने का प्रबन्ध किया गया है।

प्रत्येक कालेज के साथ में एक प्रयोगशाला है जिसका काम अनेकानेक कृषि-विषयों का संशोधन करना है। इन प्रयोगशालाओं से कृषकों की कठिनाइयों पर बुलटिनें छाप छाप सारे संस्थान में बाँटी जाती है। प्रत्येक संस्थान अपने अपने कृषकों के लिए सफलता प्राप्त करता हुआ जगत् के विद्या भण्डार की वृद्धि करता है।

सब कालेजों की पढ़ाई एक सी नहीं होती। प्रत्येक कालेज अपने संस्थान के ज़रूरत के मुआफ़िक़ पढ़ाई पर ज़ोर देता है। किन्तु, मूल तत्त्वों में कहीं भेद नहीं होता। चार वर्ष की पढ़ाई के बाद विद्यार्थी थोड़ा थोड़ा सभी कृषि-सम्बन्धीय बातें जान तो जाता है परन्तु सब विषयों में कुशल होना सम्भव नहीं। इस कारण अपनी अपनी इच्छानुसार कोई फल-फूल की खेती (Horticulture) में श्रेष्ठता प्राप्त करता है, कोई अनाज की खेती (Agronomy) में; कोई दूध-मक्खन के उद्योग (Dairy industry) में; कोई पशुपालन (Animal husbandry) में। बहुत से इस प्रकार के औद्योगिक विषयों को थोड़ा सीख वनस्पति-चिकित्सा (Plant Pathology), कीटक-विज्ञान (Entomology), कृषि-सम्बन्धी रसायन, भूमिपरीक्षा (Agricultural Chemistry, soil analysis), कृषिसम्बन्धी इञ्जीनियरिंग (Farm mechanics) इत्यादि सीखते हैं। अथवा यदि कोई केवल ऐसे वैज्ञानिक विषयों में श्रेष्ठता प्राप्त करना चाहे जो कृषि-विद्या से सम्बन्ध रखते हैं तो वह वनस्पति-शास्त्र (Botany), पशुशास्त्र (Zoology),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

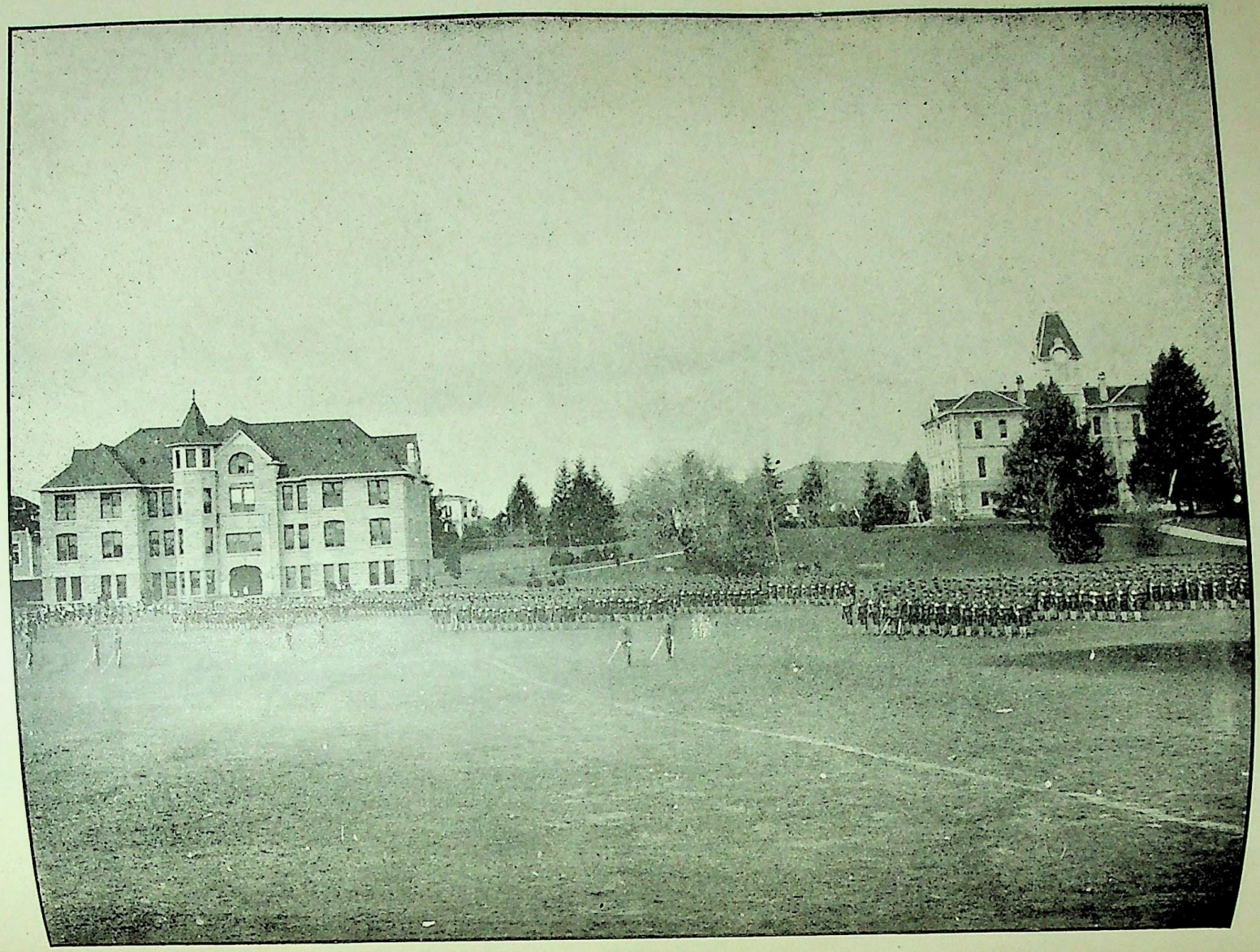

आरीगन के कृषि-महाविद्यालय का एक कोना।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

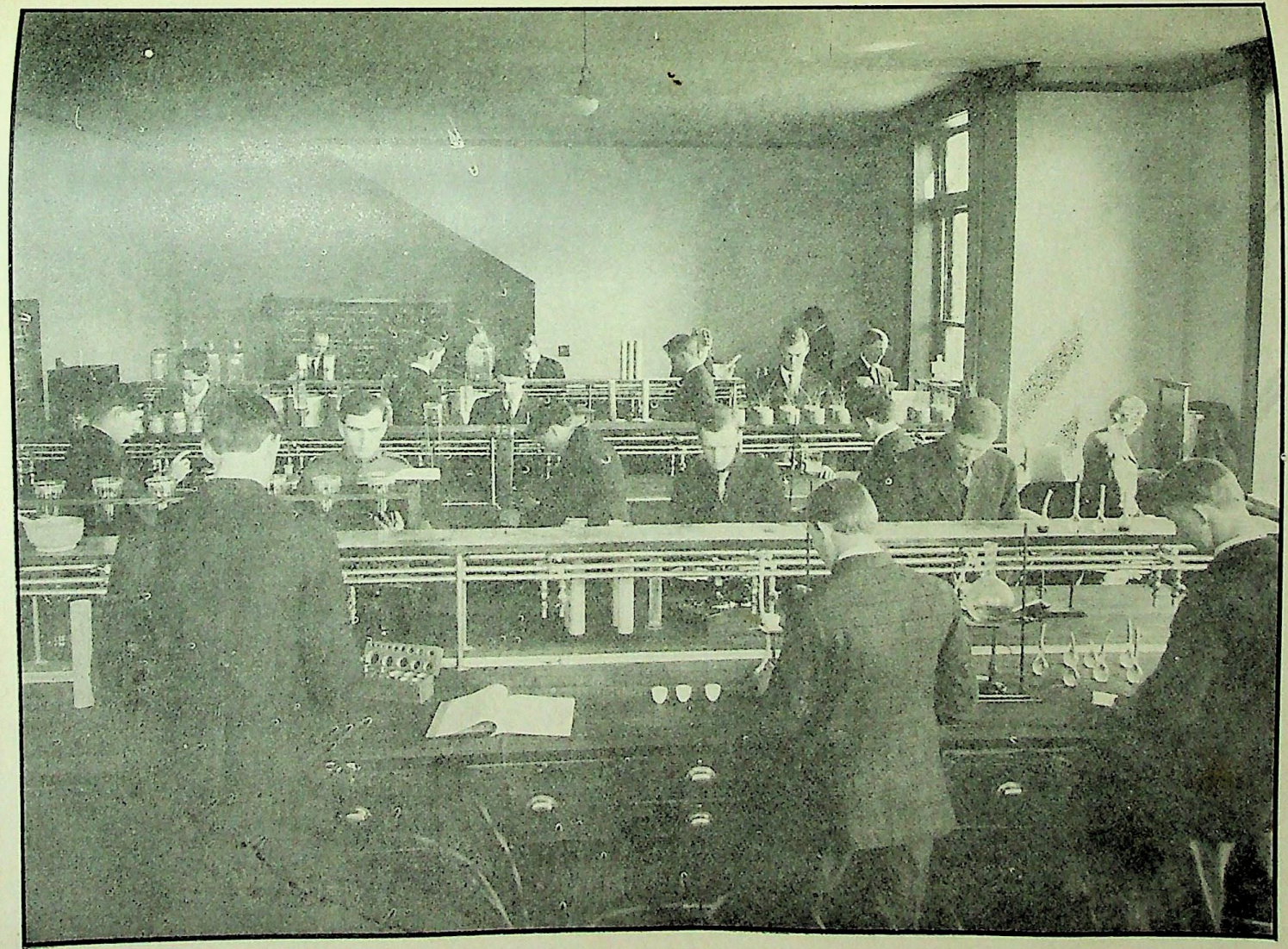

आरीगन के कृषि-महाविद्यालय में भूमि-परीक्षा की एक क्लास ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसायन-शास्त्र (Chemistry), पदार्थविज्ञान-शास्त्र (Physics) या (Bacteriology) (सूक्ष्म वनस्पति जीवों का ज्ञान) में कुशलता प्राप्त कर सकता है।

ऊपर कहे हुए विषयों का बिना थोड़ा थोड़ा ज्ञान हुए कृषि के औद्योगिक विषयों को भी शास्त्रीय रीति से सीखना सम्भव नहीं। इस कारण छात्रों को कालेज के प्रथम वर्षों में इन विषयों में शिक्षा दी जाती है। इनके अतिरिक्त साहित्य इत्यादि विषय भी विद्यार्थियों को पढ़ने होते हैं जिससे कि पदवी प्राप्त करने पर वे योग्य पुरुष होकर निकलें। अमेरिका के कालेजों में एक खूबी यह है कि विद्यार्थी अपनी मनमानी पढ़ाई छाँट सकता है। यदि वह जर्मन भाषा के स्थान फ़राँसीसी भाषा या स्पेनिश पढ़ना चाहे तो ऐसा कर सकता है। अथवा यह कि कृषि-विद्या के साथ में कुछ सम्पत्ति-शास्त्र, इतिहास या इञ्जीनियरिंग की किसी शाखा का थोड़ा ज्ञान प्राप्त करना चाहे तो यह भी हो सकता है।

कृषि-कालेजों में ऐसे विद्यार्थियों के लिए भी प्रबन्ध है जो बहुत पढ़े हुए न होने के कारण चार वर्ष की पढ़ाई करने के लिए समर्थ न हों और जो अपने मतलब के लायक़ विद्योपार्जन कर शीघ्र उद्योग में लग जाना चाहते हों। ऐसे लोगों के लिए दो वर्ष की पढ़ाई होती है। पर उनको कोई पदवी नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त कालेज किसानों को पढ़ाने के लिए एक और उपाय करते हैं। जाड़ों के दिनों में जब कि खेती-पाती के काम से फ़ुरसत रहती है किसानों के लिए दो या तीन महीने की पढ़ाई का प्रबन्ध किया जाता है। जगह जगह के किसान आकर प्रति वर्ष वैज्ञानिक प्रणाली से खेती करने की कुछ बातें सीख जाते हैं और उनकी स्त्रियाँ आकर गृहशास्त्र का शिक्षण ले निपुण गृहिणियाँ बन जाती हैं अर्थात् वह पाक-परिपाटी, सीना-पिरोना, कपड़ा धोना, अचार, मुरब्बा बनाना, बालकों की रक्षा करना, आहार विहार में स्वच्छता रखना ये सब सीख कर अपने गृह-सम्पत्ति को बढ़ाती हैं।

कृषि-विद्या का प्रचार करते हुए महाविद्यालय केवल इतना ही करके संतुष्ट नहीं होजाते। उन्होंने इस कार्य्य को करने के लिए और और अद्भुत रीतियाँ निकाली हैं। जिनमें से (Travelling institutes) सफ़र करनेवाले स्कूल और (movable Schools of agriculture) घूमनेवाले स्कूल मुख्य हैं। घूमनेवाले स्कूलों की क्रिया यह है कि एक कृषि-शास्त्रज्ञ और कुछ शिक्षक अपने साथ पढ़ाने का सामान ले गाँव गाँव में कृषि की शिक्षा देते हैं। जिस स्थान पर पहुँचे वहीं यह स्कूल एक या दो सप्ताह के लिए खोल दिया जाता है और अनेक प्रकार से पढ़ाई आरम्भ होजाती है। शिक्षक किसानों को श्रेष्ठ रीति से कृषि करने की बातों ही पर वक्तृता नहीं देते वरन् व्यावहारिक रीति की परिपाटी दिखला देते हैं जिससे कि उद्योग करने वालों को कठिनता न पड़े।

हम कह चुके हैं कि कृषकों के पास छपी हुई किताबें सरकार और प्रयोगशालाओं की ओर से मुफ़्त भेजी जाती हैं। इन पुस्तकों में लिखी हुई बहुत सी बातों का प्रयोग करना किसानों के लिए यदि सम्भव न हुआ तो वह इन स्कूलों द्वारा उनकी समझ में आ जाता है। इसके अतिरिक्त कृषक अपनी अपनी कठिनाइयों के विषय में अध्यापक से प्रश्न करते हैं और वह सब उनके लिए सहज कर दिया जाता है।

यहाँ पर यदि पाठकगण अङ्कों के पढ़ने से घबराये न हों तो हम कालेजों में पढ़ने और पढ़ाने वालों की संख्या का विवरण देना उचित समझते हैं। सब कालेजों और उनके साथ की प्रयोगशालाओं में अध्यापक और कर्म्मचारियों की संख्या १९०८ में ६,५५५ थी; डिगरी की शिक्षा लेनेवाले अँगरेज़ जाति के छात्रों की संख्या ४,३५४ थी; हब्शियों (negroes) के कृषि-कालेजों के छात्रों की संख्या २,३३६ थी, (ये वही हब्शी हैं जो ५० वर्ष पहले ग़ुलामी की अधोगति में थे) कृषक और २ वर्ष पढ़नेवालों की संख्या एक लाख से अधिक पहुँची थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूत दशा और वर्तमान उन्नति।

डेढ़ सौ वर्ष हुए इस देश में भी हमारे देश की वर्तमान दशा के समान कृषकों के मुँह पर सुस्ती छाई रहती थी, उनके पल्ले पैसा नहीं रहता था, उनके हल निकम्मे थे और उनकी खेती की दशा शोचनीय थी। देश भर में किसी को कृषि की वर्तमान दशा का स्वप्न भी न था। अमुक धरती में किस प्रकार की खेती उपज सकेगी, किस धरती में किस प्रकार का उद्यम करना चाहिए और किस खेती में क्या करने से क्या होगा—इस बात का ज्ञान न था। हल जोतने का न तो नियम मालूम था और न खेत में खाद डालने का फल ही विदित था। फल-फूलों पर रोग और कीटक आकर आक्रमण करते थे। जिस प्रान्त में जो पैदाइश हुई वह दूसरे प्रान्त में नाम तक को न होती थी। जाड़ों के दिनों में गाय और घोड़ों को खाना, दाना देने की कठिनता आ पड़ती था। ढोर और डङ्गर अधमरे से दिखाई देते थे। गाय घर में बालकों को पिलाने तक के लिए भी पूरा दूध न देती थी। तब यह देश सभी प्रकार विवश था।

किन्तु आज क्या ही अद्भुत परिवर्तन हो गया है। ऊपर की सब बातें आसान ही नहीं हो गईं वरन् देश भर में हज़ारों समितियाँ कृषि की उन्नति करने के लिए स्थापित हो गई हैं। जगह जगह पुस्तकालय स्थापित हो गये हैं। प्रत्येक कृषक के पास दो चार समाचार-पत्र ज़रूर ही पहुँचते हैं। प्रति वर्ष हर एक संस्थान में कृषि-प्रदर्शनियाँ होती हैं। ज़िले ज़िले प्रान्त प्रान्त के मेलों में नई नई कृषि की पैदाइशें देखने में आती हैं। आज यहाँ नारङ्गी का मेला है तो कल वहाँ सेव का मेला होता है। आज माताओं को अपने बच्चों को दूध पिलाने का सवाल ही नहीं रहा है। दूध और मक्खन के ऐसे कारख़ाने खुल गये हैं जहाँ कि सैकड़ों मन मक्खन प्रति दिन निकाला जाता है, ऐसी तरकीबें निकाली गई हैं जिनसे दूध से मलाई निकाल लेनेवाले के लिए स्थान नहीं रहा है। कोई भी बे-धड़क बाज़ार से घर में दुही गाय के समान दूध मोल ले सकता है। गायों की ऐसी उन्नति हो गई है कि एक एक गाय प्रतिवर्ष ३०,००० पौंड यानी क़रीब एक मन रोज़ (?) दूध देती है। यहाँ तक उन्नति हुई है कि आजकल बहुत से बड़े दुग्धालयों में गाय के दूध के पदार्थों को बदल कर मनुष्य के दूध के समान बनाया जाने लगा है, जिससे बालकों को माँ के दूध के समान खाना मिले। यह उन्नति केवल गायों और दूध की ही नहीं हुई वरन् तमाम पशुओं का इसी तरह सुधार हुआ है।

रसायन-शास्त्र ने यह निकाल कर ठीक कर दिया है कि किस पशु को क्या क्या और कितना खाने का पदार्थ कौन कौन समय में मिलना चाहिए। पुराने निकम्मे हल आज कल अजायबघरों में रख दिये गये हैं। उनके स्थान में भाफ़ द्वारा चलनेवाले ऐसे हल निकाले गये हैं जो एक साथ १२ इंच गहरी २४ रेखाओं को १० मील घंटे के हिसाब से खोदते चले जाते हैं। हलही की नहीं और सब यंत्रों की भी ऐसी ही कहानी है।

बिना गुठलियों के फल, बिना बीजों की नारंगियाँ, बिना कांटों की नागफनियाँ, ऐसी हज़ारों बातों का वर्णन कर हम पाठकों को थकाना नहीं चाहते। उपाय करने से हमारे देश में भी ऐसा होना असम्भव नहीं है। क्या कभी वह दिन आयेगा?

भोलादत्त पाँडे।
(अमेरिका)

विदुर-वाणी।

(१)

न आने से निद्रा कर समर-चिन्ता जब अति
हुए जी में दुःखी विदित धृतराष्ट्र क्षितिपति।
बुलाया मन्त्रार्थ द्रुत तब उन्होंने विदुर को
विडौजा* ने मानों सुरगुरु सुधी नीतिधुर को॥

---

* विडौज = इन्द्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा धृतराष्ट्र और विदुर।

देते हैं धृतराष्ट्र को विदुर ये शिक्षा स्वयं नीति की। "रक्खो दृष्टि प्रभो! सभी पर सदा निष्पक्ष हो प्रीति की॥
पुत्रों का तज मोह शीघ्र नृपते! दो पायडवों को मही। होती है न असत्य की जय कभी है जीतता सत्य ही"॥

हरिडयन प्रेस, इलाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

उन्हें जो शिक्षा दी तब विदुर ने जाकर वहाँ
सुनाई जाती है वह विदुर-वाणी कुछ यहाँ।
उसे जाना होता यदि नृपति ने जानकर भी।
न होने पाता तो इस तरह सर्वक्षय कभी॥

(३)

"बड़े वैरी वाले, धन-रहित, दुर्वृत्त, विषयी
न पाते हैं शान्ति क्षण भर कभी मङ्गलमयी।
हुई है क्या कोई इस तरह की बात तुम को—
बढ़ी है जो बाधा इस समय हे तात! तुमको?

(४)

कहें मीठी वाणी पुरुषगण ऐसे कम नहीं
न वक्ता-श्रोता हैं कटु-हित-कथा के सब कहीं।
भलाई की बातें अरुचिकर भी पथ्य सम हैं
गुणों को सोचें जो इस तरह के लोग कम हैं॥

(५)

सदाचारी, ज्ञानी, सुकृतरत हैं पाण्डव सभी
तुम्हें देना था क्या नृपति! उनको यों दुख कभी?
तुम्हारी ही निन्दा सब जगत है आज करता
बना देती अन्धा अहह! सबको स्वार्थपरता!

(६)

स्वयं चक्री ही हैं उन पर दया-दृष्टि रखते
इसी से क्या राजन्! तुम न उनका शील लखते?
जहाँ होता धर्म्म प्रभुवर वहीं वास करते
स्वभक्तों की बाधा स्वयमपि रमानाथ हरते॥

(७)

सभी से हो जाता इस जगत में है भ्रम कभी
उसीसे आगे को फिर सँभल जाते बुध सभी।
सदा ही भूले जो उस पर क्षमा कौन करता?
प्रमादी, अन्यायी मनुज जग में शीघ्र मरता॥

(८)

कुपुत्रों को त्यागो रिपु-सदृश हे आर्य्य! अब भी
सुधारा चाहो तो सुधर सकता कार्य्य अब भी।
करोगे क्या सोचो खल शकुनि कर्णादिक सभी?
न लौटाया जाता गत समय पीछे फिर कभी॥

(९)

तुम्हारी आज्ञा के अनुगत रहे पाण्डव सदा
पड़ी कैसी कैसी यदपि उनको घोर विपदा!
उन्हीं का था क्या यों उचित तुमको स्वत्व हरना?
स्वपुत्रों से भी था अधिक उनको प्यार करना॥

(१०)

तुम्हारे पुत्रों को तज कर न ऐसा जन कहीं
जिसे जी से प्यारे सब समय हों पाण्डव नहीं।
वही राजा होता जिस पर प्रजा प्रीति करती
तुम्हारे पुत्रों की प्रकृति अति दुर्नीति करती॥

(११)

न ले जाता कोई यह धन-धरा साथ अपने
निहारे चाहे जो कुछ समय के सौख्य सपने।
कथा औरों की क्या तनु तक नहीं साथ चलता
न तो भी पुत्रों का तनिक तुमको मोह खलता!

(१२)

न जानें पृथ्वी में अब तक हुए भूप कितने
न जानें रक्खे हैं इस जगत ने रूप कितने।
हमेशा कोई भी रह न सकता है स्थिर यहाँ
अनाचारी होना अनुचित नहीं क्या फिर यहाँ?

(१३)

बुरी बातों को जो समझ कर भी हैं न तजते
दुरात्मा वे मानों निज अहित के साज सजते।
रहे चाहे जावे धन, जन, तथा प्राण तक भी
महात्मा कोई भी कर न सकते दुष्कृत कभी॥

(१४)

पृथा-पुत्रों का यों सब कुछ किया जो हरण है
तुम्हारा ही साक्षी इस जगह अन्तःकरण है।
उसी से तो पूछो अनुचित हुआ क्या यह नहीं?
स्वयं साक्षी होता हृदय सबका ही सब कहीं।

(१५)

बिना सोचे ही जो मनुज करता कार्य्य जग में
दृगों को मूँदे सो गमन करता मृत्यु-मग में।
सुधी आगे पीछे समझ कर ही कार्य्य करते
कभी सद्भावों में बुधजन नहीं भ्रान्ति भरते॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१६)

न होता है स्थायी अनय-बल से प्राप्त कुछ भी
न देखा जाता है अचल, छल से व्याप्त कुछ भी।
मिटेंगे दुष्टात्मा कुछ दिन भले ही कुछ करें
नहीं ऐसा होता खल सतत सानन्द विचरें॥

(१७)

किसी का थोड़ा भी प्रभुवर न अन्याय सहते
त्रिलोकी में बोलो, अविरत कहाँ वे न रहते?
अहङ्कारी मानें सहठ हरि से द्वेष करते
हरि-द्वेषी होके स्वयमपि बुरी मौत मरते॥

(१८)

तुम्हारी ही कोई उपनिधि* बिना कारण हरे
तुम्हारा जी तो क्या उस पर दया धारण करे?
धनार्थी होके क्यों फिर कर रहे आप छल को?
धनापेक्षा ज्ञानी प्रिय समझते धर्म्म-बल को॥

(१९)

विचारो, होता है धन भुवन में धर्म्म-हित ही
बढ़ाना कोषों का सतत सब को है उचित ही।
अघों की शङ्का हो जिस विभव में त्याज्य वह है
अलक्ष्मी भी हो जो सुकृत-हित तो राज्य वह है॥

(२०)

स्वयं ही ज्ञानी हो अधिक कहना व्यर्थ तुम से
बताने होते क्या यश-गुण अली को कुसुम से?
सुधी थोड़े ही में विधि समझ जाते विषय की
गिरा छोटों की भी ग्रहण करते नीति-नय की॥

(२१)

गया है दुष्टों से अनुज-युत दुर्योधन छला
बुरे मित्रों से तो सच समझिए है रिपु भला।
विपक्षी से तो है सजग रहना सम्भव सदा
बुरे मित्रों-द्वारा प्रति पद खड़ी घोर विपदा॥

(२२)

अनर्थों को त्यागो सुख-हित बनो इन्द्रियजयी
शठों की शोभा है हठ बहुलता दुर्मतिमयी।
प्रलोभी होते ही मनुज अपना नाश करता
स्वयं ही बंसी में फँस कर यथा मीन मरता॥

(२३)

न मानोगे मेरे वचन तुम तो नाश समझो
स्वपुत्रों से सूना सतत समराकाश समझो।
गये थे मारे ज्यों रजनिचर सीता-हरण में
तुम्हारा भी होगा सब तरह त्यों नाश रण में।

(२४)

अहो! प्रज्ञादृष्टे! विनय करता मैं फिर यही
पृथा-पुत्रों को दो उचित उनकी प्रार्थित मही
सभी बातें सोचो मत शठ सुतों के विवश हो;
करो ऐसे कर्म्म प्रकट जिनसे धर्म्म-यश हो॥"

मैथिलीशरण गुप्त

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म भा शुक्ल ७ संवत् १९०७ वि० को काशीपुरी में हुआ था। हर्ष विषय है कि इस महा कवि की जीवनी इसके वात्सल्य-भाजन गोलोकवासी बाबू राधाकृष्णदास ने और आरा-निवासी बाबू शिवनन्दनसहायजी ने लिखी है। प्रथम पुस्तक में ११४ और द्वितीय में ४४६ पृष्ठ हैं। ये दोनों पुस्तकें बहुत ही सन्तोषदायक हैं और इन दोनों ही महाशयों का श्रम अत्यन्त सराहनीय है। हम लोग इस विषय में बाबू शिवनन्दनसहायजी के बहुतही कृतज्ञ हैं कि उन्होंने अत्यन्त परिश्रम करके भारतेन्दुजी की बृहत् जीवनी देखने का हम लोगों को अवसर दिया। इस जीवनी में बाबू साहब ने गद्य काव्य भी अच्छा किया है और कई स्थानों पर इसकी भाषा पढ़ने में बड़ा आनन्द आता है। इस कथन के उदाहरणस्वरूप हम पाठकों से इनके पृष्ठ ३३७ के पढ़ने का अनुरोध करते हैं। इन दोनों जीवनियों के अतिरिक्त "सरस्वती" के प्रथम भाग में भी इनकी छोटी सी जीवनी दी गई है। इनकी जीवनी के विषय में बहुत कुछ इन तीन

---

*उपनिधि = धरोहर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनियों से विदित हो जाता है. अतः हम उसे यहाँ सूक्ष्मतया लिखते हैं ।

इनके मूल पुरुष राय बालकृष्णजी थे जिनके प्रपौत्र प्रसिद्ध सेठ अमीचंद हुए, और इन महाशय के पौत्र बाबू हर्षचन्दजी हुए। इन्हीं के पौत्र बाबू हरिश्चन्द्र और दौहित्र बाबू राधाकृष्णदासजी थे। भारतेन्दुजी के पिता बाबू गोपालचन्द्र उपनाम गिरिधरदास एक सत्कवि हो गये हैं। इनका वर्णन इनकी कविता की समालोचना में अलग लिखा जायगा। मुकुंदी बीबी भारतेन्दुजी की बड़ी और गोविंदी बीबी छोटी बहिन थीं, और बाबू गोकुलचंदजी इनके छोटे भाई थे, जिनके दो पुत्र और दो पौत्र अद्यावधि वर्तमान हैं। भारतेन्दुजी के दो पुत्र और विद्यावती नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। इनके पुत्र शैशवावस्था ही में परलोकगामी हुए। इनकी कन्या और उसके पाँच पुत्र ईश्वर की कृपा से वर्तमान हैं।

इनकी बुद्धि ऐसी प्रखर थी कि केवल पाँच वर्ष की अवस्था में जब कि और और बालक बोलना तक नहीं जानते तब इन्होंने निम्न लिखित दोहा बनाया था:—

"लै ब्योंड़ा ठाढ़े भए श्रीअनिरुद्ध सुजान ।
बाणासुर की सैन को हनन लगे बलवान" ॥

इनकी माता का देहांत सं० १९१२ में और पिता का सं० १९१७ में हो गया। इनकी पैतृक सम्पत्ति लाखों रुपये की मिली थी अतः केवल १० वर्ष की अवस्था में ये सम्पन्न घर के स्वच्छन्द बालक हो गये। एक बार इनके पिता तर्पण कर रहे थे तब इन्होंने उनसे पूँछा कि "बाबू जी पानी में पानी मिलाने से क्या लाभ?" इस पर क्रुद्ध होकर इनके पिता ने कहा था कि तू हमारे घर को डुबोवेगा। इसी प्रकार इन्होंने "करन चहत जस चाह कछु कछु वा भगवान को" इस पद का केवल ६ वर्ष की अवस्था में एक चमत्कारिक अर्थ सभा में लगाया था, इस पर इनके पिता ने प्रसन्न होकर कहा था कि "तू मेरा नाम चलावेगा।" इनके पिता के ये दोनों वाक्य यथार्थ हुए जैसा कि इनकी जीवनी से प्रकट होगा। बाल्यावस्था में ये बड़े उपद्रवी थे यहाँ तक कि एक बार तीन कोस तक बराबर दौड़ते ही चले गये थे।

भारतेन्दुजी के हिन्दी, फ़ारसी और अँगरेज़ी के प्रथम शिक्षक क्रमशः पं० ईश्वरीदत्त तिवारी, मौलवी ताजअली और बाबू नन्दकिशोर थे। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद के मकान पर एक स्कूल था, उसमें भी कुछ दिन तक ये पढ़े थे, इसी कारण ये राजा साहब को भी गुरुवत् मानते थे। इन्होंने कुछ दिन क्वीन्स कालेज, बनारस में भी शिक्षा पाई थी। पढ़ने में इन्होंने कभी मन नहीं लगाया परन्तु फिर भी अपनी बुद्धि की तीव्रता से ये अपने सब सपाठियों से उत्तम परीक्षा देकर अपने अध्यापकों को आश्चर्य में डाल देते थे। ११ वर्ष की अवस्था में इन्होंने पढ़ना छोड़ कर सकुटुंब जगन्नाथजी की यात्रा की। इन्होंने मराठी, बँगला, गुजराती, मारवाड़ी आदि अनेक भाषाएं समय समय पर स्वयं पढ़ लीं। इनके काव्य-गुरु पं० लोकनाथजी थे।

१४ वर्ष की अवस्था में बाबू गुलाबराय की कन्या मन्नोदेवी से इनका विवाह हुआ। इन्होंने सं० १९२३ में कुचेसर, सं० १९२८ में हरद्वार, लाहौर, अमृतसर आदि, और सं० १९३४ में पुष्कर क्षेत्र की यात्रा की थी। इस साल इन्होंने प्रयाग में एक व्याख्यान भी दिया था। सं० १९३६ में इन्होंने सरयू पार की यात्रा की और उसी वर्ष काशीनरेश के साथ वैद्यनाथजी के दर्शन किये। सं० १९३८ में ये महाशय महाराणा सज्जनसिंहजी से मिलने को मेवाड़ पधारे और वहीं श्रीनाथद्वारा के दर्शन किये। सं० १९४० में ये बलिया गए और डुमरावँ, पटना, कलकत्ता, हरिहर क्षेत्र और इलाहाबाद को भी ये महाशय प्रायः जाया करते थे।

इनमें स्वदेश-प्रेम की मात्रा विशेष थी। इनके काव्यों और कार्यों से स्वदेश-प्रेम के सैकड़ों उदाहरण मिल सकते हैं, उनमें से कुछ का वर्णन यहाँ किया जाता है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) इन्होंने सं० १९२३ में चौखम्भा स्कूल स्थापित किया। जिसमें बिना फ़ीस दिये बालक पढ़ते थे और असमर्थों को भोजन-वस्त्र और पुस्तक इत्यादि की सहायता दी जाती थी। इस पाठशाला को भारतेन्दुजी ने १२ वर्ष पर्य्यन्त अपने ही व्यय से चलाया, फिर म्युनिसिपलिटी और सरकार ने भी कुछ कुछ सहायता की। धीरे धीरे वह हाई स्कूल हो गया और अब तक हरिश्चन्द्र हाई स्कूल के नाम से स्थित रह कर इनकी कीर्ति बढ़ा रहा है।

(२) सं० १९२५ में कविवचनसुधा नामक मासिक-पत्र निकाला जो दूसरे साल पाक्षिक हुआ और उसमें गद्य काव्य भी दिया जाने लगा। कुछ काल उपरांत यह साप्ताहिक हो गया और इसमें काव्य, सामाजिक, राजनैतिक आदि सभी विषय के लेख दिये जाने लगे। इसे भारतेन्दुजी ने ७½ साल तक बड़ी उत्तमता से चलाया। तदनन्तर यह अन्य हाथों में जाकर सब लोगों की सहानुभूति खो बैठा और फिर भारतेन्दु के अस्त होने पर जब इसने एक दिन भी अपना कालम काला नहीं किया तब सबकी आँखों में घृणास्पद होकर उसी साल उसने अपना मुँह काला कर इस संसार से कूच किया।

(३) सं० १९३० में इन्होंने हरिश्चन्द्र मैगज़ीन निकाली जो आठ मास चल कर हरिश्चन्द्र-चंद्रिका के नाम से प्रकाशित होने लगी और सं० १९३६ में भारतेन्दुजी ने इसे मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या को दे दी जिनके प्रबंध में थोड़े ही समय के बाद चंद्रिका भी अस्त हो गई। सं० १९४० में भारतेन्दुजी ने नवोदिता के नाम से इसे फिर निकाला, परन्तु तीन ही मास प्रकाशित होकर यह सदैव के लिए अस्त हुई।

(४) सं १९३० में इन्होंने स्त्रियों के उपकारार्थ गवर्नमेंट की इच्छानुसार बालाबोधिनी नामक पत्रिका निकाली परन्तु वह भी चार ही वर्ष चली।

(५) सं १९२७ में इनके द्वारा कवितावर्धिनी सभा स्थापित हुई जिसमें प्रसिद्ध कवि सरदार, सेवक, बाबा दीनदयाल गिरि, नारायण द्विज, कवि मन्नालाल इत्यादि उपस्थित होते थे। भारतेन्दुजी स्वयं पुस्तक-रचना करते थे और पुरस्कार और प्रशंसा-पत्र देकर और लेखकों को पुस्तक-रचना के वास्ते उत्साहित करते थे। इसी सभा से पं० अम्बिकादत्त व्यास, द्विज बलदेव, इत्यादि को प्रशंसा-पत्र मिले थे।

(६) सं० १९३० में इन्हीं महाशय ने 'तदीय समाज' स्थापित किया जिसमें सभ्यों से कई नियम पालन करने को प्रतिज्ञा-पत्र लिये जाते थे। इन नियमों में हिंसा-निषेध और स्वदेशी वस्तु का व्यवहार भी था। इस समाज से भगवद्भक्ति नाम की मासिक पत्रिका भी निकलती थी जो कुछ दिन चल कर बंद हो गई। यह समाज इनको बहुत प्रिय था।

(७) इसी सं० में इन्होंने 'पेनीरीडिंगक्लब' क़ायम किया। उसमें सुलेखकों के लिखे हुए उत्तम उत्तम लेख भी पढ़े जाते थे। एक बार बाबू साहब उसमें शांत पथिक का वेष बना कर गये और गठरी पटक पैर फैला कर इस ढंग से बैठे कि दर्शक गण अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। इसी तरह एक बार थीयेटर का स्टेज बना कर ये चूरमा पैग़ंबर बने थे। सैकड़ों गज़ काग़ज़ जोड़ कर जन्मपत्री की भाँति लपेटे हुए हाथ में लिये थे उसे खोलते और अपने उपदेश पढ़ते जाते थे। इस पाँचवें पैग़म्बर के उपदेशोंवाला लेख हास्य रस में सच्चे उपदेश का अच्छा नमूना है।

(८) सं० १९३१ में इनके द्वारा वैश्यहितैषिणी सभा स्थापित हुई। अपनी स्थापित सभाओं के अतिरिक्त अन्यान्य सभाओं और देशहितैषी कार्यों में ये सहायक रहते थे।

(९) सं० १९३२ में इन्होंने श्रीनिम्बार्क, श्रीरामानुज, श्रीमध्व और श्रीविष्णु स्वामी नामक वैष्णवों के चार सम्प्रदायों में प्रविष्ट, प्रवीण और पारंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामक तीन परीक्षायें नियत कीं और ये परीक्षोत्तीर्ण व्यक्तियों को पारितोषिक भी देते थे ।

(९०) इन्होंने सामाजिक सुधार पर भी पूरा ध्यान दिया था और अपनी पुत्री के विवाह में अश्लील गीतों का गाना बंद कर दिया था । इस विषय में इनकी कविता में स्थान स्थान पर बहुत कुछ पाया जाता है ।

इनकी जीवनयात्रा की प्रायः सभी बातों का निचोड़ ज़िंदादिली है और इनके सब कार्य्यों से यह प्रकट होती है । ये शतरंज अच्छी खेलते थे, गाने बजाने का शौक़ रखते थे, और कई बाजे बजाते भी थे । कबूतर उड़ाने का भी व्यसन था, ताश भी खेलते थे । हुकुम, चिड़िया, ईंट और पान के स्थान पर इन्होंने शंख, चक्र, गदा और पद्म रक्खा था; इसी प्रकार बीबी, बादशाह की जगह देवी, देवताओं के रूप रक्खे थे । बुढ़वा मंगल के मेले में बड़ा उत्सव करते थे । उदारता इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि कवि पंडितों को हज़ारों रुपये दान कर देते थे । जिसने इनकी कोई चीज़ पसंद की वह तुरंत उसके नज़र हुई । दीपमालिका को इतर के चिराग़ जलाते थे, और देह में लगाने के वास्ते तो सदैव तेल के स्थान पर इतर ही बर्ता जाता था । सारांश यह कि रुपये को पानी की तरह बहाते थे । इनकी यह दशा सुन कर महाराज काशीनरेश ने एक दिन इनसे कहा कि "बबुआ घर को देख कर काम करो" इस पर इन्होंने तुरंत उत्तर दिया कि "हुज़ूर ! यह धन मेरे बहुत से बुज़ुर्गों को खा गया है अब मैं इसको खा डालूंगा" । सं० १९२७ में ये अपने छोटे भाई से अलग हुए थे और थोड़े ही सालों में इन्होंने अपने भाग की समस्त पैतृक सम्पत्ति उड़ा डाली । अपनी ननिहाल की कई लाख रुपये की सम्पत्ति के ये और इनके छोटे भाई उत्तराधिकारी थे । इनकी उड़ाऊ दशा देख कर इनकी नानी ने कुल सम्पत्ति का हिबानामा इनके अनुज के नाम लिख दिया परन्तु बिना इनकी रज़ामंदी के वह क़ानून के अनुसार ठीक नहीं था । अपनी नानी के कहने पर इन्होंने तुरंत उस पर हस्ताक्षर कर दिये और इस प्रकार अपने भाग के ढाई लाख रुपये छोड़ देने में इन्होंने कुछ भी आगा पीछा न किया । यह काम इन्हीं का सा दरियादिल आदमी कर सकता था । इनमें हास्य की मात्रा इतनी थी कि होली में लकड़ी का बड़ा मोटा कुंदा कमर में बाँध कर कबीर गाते गलियों में निकलते थे । पहली अपरैल को अँगरेज़ी सभ्यता के अनुसार मनुष्य दिल्लगी के लिए कोई भी झूठ बोल सकता है । भारतेन्दुजी उस दिन कुछ न कुछ अवश्य करते थे । एक बार आपने नोटिस दिया कि महाराज बिजियानगरम की कोठी में एक योरोपीय विद्वान् सूर्य्य और चन्द्रमा को पृथ्वी पर उतारेंगे । हज़ारों मनुष्य वहाँ एकत्र हुए परन्तु कुछ न देख कर लज्जित हो लौट गये । एक बार प्रकाशित कर दिया कि एक बड़े प्रसिद्ध गायक हरिश्चन्द्र स्कूल में मुफ़्त अपना गाना सुनावेंगे । जब हज़ारों आदमी एकत्र हुए तब परदा खुला और एक मनुष्य विदूषक के वस्त्र पहिने उलटा तान पूरा लिये घोर खरस्वर करने लगा । यह देख लोग हँसते हुए शरमा कर घर लौट गये । एक बार इन्होंने एक मित्र से नोटिस दिला दिया कि एक मेम रामनगर के पास खड़ाऊँ पर सवार गंगाजी को पार करेगी और खड़ाऊं न डूबेगी । हज़ारों लोग एकत्र हुए परन्तु न कहीं मेम न खड़ाऊँ । पीछे सब समझे कि यह भी मज़ाक़ था । भारतेन्दुजी ने सुन्दर कपड़े, खिलौने, फ़ोटो एवं अपूर्व पदार्थों का संग्रह सदैव किया । इनको तसवीरों का संग्रह बहुत ही प्रिय था और इन्होंने बड़ा परिश्रम करके बहुत से बादशाहों एवं अन्य महाशयों की तसवीरें एकत्र कीं परन्तु एक हज़रत ने आकर उनकी बड़ी प्रशंसा की और इन्हें अपनी आदत से विवश होकर वह संग्रह उन्हें दे डालना पड़ा । इसी दान के पीछे लोगों ने उन्हें पछताते देखा । फिर उन्होंने ५००) तक व्यय करके वह संग्रह उन हज़रत से मँगाना चाहा परन्तु उन्होंने न दिया । इनके साथ के बैठनेवाले हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बनारसवासी मित्र हमसे कहते थे कि इनके साथ बैठने में लोगों का जी इतना प्रसन्न रहता था कि कभी चित्त ऊबता ही न था। चाहे जितना शोक क्यों न हो, परन्तु इनके पास पहुँचे कि जी प्रफुल्लित हो गया।

सब उत्तम पदार्थों के शौक़ में इन्हें मद्य की भी लत पड़ गई थी परन्तु फिर भी अपने काव्य में इन्होंने मदिरा की बड़ी निन्दा की है। मल्लिका नामक एक बंगालिन से भी इनका लगाव हो गया था और इन्होंने उसे घर बिठला लिया। इनके सब गुणों में माधवी और मल्लिका-विषयक कलंक बिलकुल छिप जाता है। महाकवि कालिदास के मतानुसार "एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेरिवाङ्कः" और ये भारतेन्दु थे भी तो इनमें कलंक का होना योग्य ही था। अतः लोगों को उस पर दृष्टि भी न डालनी चाहिए। अपने स्वभाव का इन्होंने स्वयं बड़ा ही उत्तम एवं यथार्थ वर्णन किया है, यथा :—

सेवक गुनी जन के, चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत, चित हित गुन गानी के।
सीधेन सों सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सों,
हरीचन्द नगद दमाद अभिमानी के॥
चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह,
नेही नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के।
सरबस रसिक के, दास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा रानी के॥

मेवाड़ यात्रा में इन्हें भय उपस्थित हुआ कि इनका अन्तकाल निकट आ गया। उस समय इन्होंने अपने अनुज से पत्र द्वारा अपनी स्त्री को प्रसन्न रखने तथा मल्लिका की भी लाज रखने का आग्रह किया था। इनका सम्मान साधारण जन-समाज एवं राजा महाराजाओं में बहुत अधिक था, और होता क्यों न? ऐसे पुरुष-रत्न इस स्वार्थी संसार में कहाँ देख पड़ते हैं? और सब बातें छोड़ कर हम इनके सम्मान के विषय में केवल एक बात यहाँ लिखते हैं—संवत् १९३७ में पंडित रामशंकर व्यासजी ने 'सार-सुधानिधि' नामक पत्र में इन्हें 'भारतेन्दु' की पदवी से विभूषित करने का प्रस्ताव छपवाया। उसी समय समस्त पत्रों एवं सब मनुष्यों ने मुक्त कंठ से इन्हें भारतेन्दु कहना शुरू कर दिया और तभी से इन्हें यह उपाधि मिली। हिन्दी, हिन्दू और हिन्द के प्रचंड दुर्भाग्य से संवत् १९४० में यह महाशय क्षयी रोग से पीड़ित हुए और सब तरह दवा होने पर भी ६ जनवरी संवत् १९४१ को पौने दस बजे रात को भारत का चन्द्र संसार को रोता छोड़ अस्त हो गया।

इस महाकवि ने केवल ३५ वर्ष इस संसार को सुशोभित किया और प्रायः १८ वर्ष की अवस्था से काव्य-रचना प्रारम्भ की। पहले ये केवल गद्य लिखते थे और पीछे से पद्य भी लिखने लगे। इन १७ वर्ष के अल्पकाल में इन्होंने १७५ ग्रन्थ बनाये और ७५ ग्रन्थ इनके सम्पादित, संगृहीत वा उत्साह देकर बनवाये हुए और भी वर्तमान हैं। यों तो इन्होंने पाँच वर्ष की अवस्था ही में एक दोहा बनाया था परन्तु १६ या १७ वर्ष की अवस्था से कविता की रचना आरम्भ कर दिया। इन्होंने अपनी समस्त रचनाओं के प्रकाशित करने का स्वत्त्व बाबू रामदीन सिंह अध्यक्ष खड्गविलास प्रेस को दे दिया था, जिन्होंने इनके मुख्य मुख्य ग्रंथों को "हरिश्चन्द्र कला" के नाम से छः भागों में प्रकाशित किया है। इसमें इन्होंने कागज़ वा छापा साधारणतया अच्छा लगाया है, परन्तु इनको भारतेन्दुजी की कविता को सर्व साधारण में प्रचार करने का इतना ध्यान नहीं था जितना कि उससे अपने लाभ उठाने का। इस कारण उन्होंने कला का मूल्य इतना अधिक रक्खा है कि उसको साधारण कवितापेमी नहीं ख़रीद सकते। इसका सालाना आकार कुल मिला कर इंडियन लारिपोर्ट चारों हाई कोर्टों का तिहाई होगा और बरख़िलाफ़ उसके मूल्य डेढ़े से ज़ियादा! याने इंडियन ला रिपोर्ट का सालाना २०) और इसका ३२)!! और तिस पर मज़ा यह कि काग़ज़ वा छपाई भी उससे बहुत नाकिस है!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला के एक एक भाग पर क्रम से अपनी अनुमति प्रकाशित करते हैं।

प्रथम भाग नाटकावली ।

(१) "नाटक" नामक ४६ पृष्ठ के लेख में इन्होंने नाटक के लक्षण वा नाटक बनाने की रीति वा नाटक का इतिहास लिखा है। और इसके अतिरिक्त और बहुत सी जानने योग्य बातें नाटक के विषय में वर्णित हैं जो पढ़ने योग्य हैं। इसकी रचना संवत् १९४० में हुई थी।

(२) "सत्य हरिश्चन्द्र" नाटक संवत् १९३२ में बना। यह आर्य क्षेमेश्वर कृत "चंडकौशिक" के आशय पर बना है परन्तु उसका अनुवाद नहीं है। यह एक स्वतंत्र ग्रन्थ है और भारतेन्दुजी की उत्तम रचनाओं में इसकी गणना है। इसमें महाराज हरिश्चन्द्रजी की सत्य परीक्षा का वर्णन है। इसमें राजाओं के यहाँ पूर्वकाल में जिस प्रकार ऋषियों का आदर होता था वह पूर्ण रूप से दिखलाया गया है। महारानी शैव्या के स्वप्न में आनेवाली विपत्ति का दिग्दर्शन करा दिया गया है। राजा हरिश्चन्द्र की सत्यप्रियता इतनी बढ़ी हुई थी कि स्वप्न में भी पृथ्वी का दान देने पर दानपात्र के न मिलने से वे विकल थे, और सोचते थे कि इसका क्या प्रबंध करूँ। विश्वामित्र और हरिश्चन्द्र की बातचीत से यह साफ़ प्रकट होता है कि विश्वामित्र को पृथ्वी का लेना अभीष्ट नहीं था वरन् वे किसी उपाय से राजा को सत्य-भ्रष्ट करना चाहते थे। ऐसे समय में हरिश्चन्द्र के मुख से यह वाक्य कहलाना बहुत ही योग्य और स्वाभाविक था:—

चन्द टरै सूरज टरै टरै जगत व्यौहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को टरै न सत्य विचार॥
बेंचि देह दारा सुवन होय दासहूँ मंद।
रखिहै निज वच सत्य करि अभिमानी हरिचंद॥

इस ग्रंथ में कवि ने विश्वामित्र का तकाज़ा, गंगा-वर्णन, हरिश्चन्द्र का स्त्री और अपने को बेचना, श्मशान-वर्णन, एवं रोहिताश्व के मरने पर शैव्या और हरिश्चन्द्र का विलाप बहुत ही उत्तम रीति से कहे हैं। इस ग्रंथ से भारतेन्दुजी की कवित्व-शक्ति का पूरा परिचय मिलता है। इस नाटक का अभिनय भारतेन्दु के सामने बलिया में संवत् १९४० में हुआ था। इसमें ८२ पृष्ठ हैं।

(३) "मुद्राराक्षस" विशाखदत्त कृत संस्कृत-नाटक का अनुवाद है। यह अनुवाद इतना उत्तम हुआ है कि यह किसी स्वतंत्र ग्रन्थ से कम आनन्ददायक नहीं है। ये विशाखदत्त महाराजा पृथ्वीराज के पुत्र थे। यह ग्रंथ १०६ पृष्ठ का है। इसमें चन्द्रगुप्त को राज्य देने और राक्षस को उनका मंत्री कर देने के कारण चाणक्य और राक्षस मंत्री में खूब ही नीति की चोटें चली हैं और अंत में हारकर राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्री बनना ही पड़ा। नीति का जटिल विषय होने पर भी इसकी भाषा ऐसी मधुर है कि इसके पाठ करने में बड़ा ही आनन्द होता है।

(४) "धनञ्जय-विजय" कांचन कृत संस्कृत नाटक का अनुवाद है। इसमें गद्य के स्थान पर गद्य और पद्य का पद्य में अनुवाद हुआ है। यह भी स्वतन्त्र ग्रन्थ की भांति मनोहर है। यह सोलह पृष्ठ का है और संवत् १९३० में बना था।

(५) 'करपूर मंजरी' को राजशेखर कवि ने प्राकृत में बनाया था। उसी का यह ३२ पृष्ठ का अनुवाद संवत् १९३२ में बना था। इसमें एक प्रेम कहानी कही गई है और हास्य का भाग भी विशेष है।

(६) 'चन्द्रावली' नाटिका ख़ास इन्हीं की बनाई है। इसमें किसी ग्रन्थ का अनुवाद या छाया नहीं है। यह ४५ पृष्ठ की है और इसकी रचना संवत् १९३३ में हुई थी। इसका समर्पण बहुत ही उत्तम है।

भरित नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह दोहा इनको बहुत ही पसंद था और इनकी बहुत सी रचनाओं में यह वंदना के स्थान पर लिखा गया है। और इस पुस्तक में भी यह दोहा वंदना में दिया गया है। इस नाटिका में चन्द्रावली का प्रेम कहा गया है और यह आद्योपान्त प्रेमालाप से परिपूर्ण है। ऐसा प्रेम से छलकता हुआ कोई दूसरा ग्रन्थ हमने नहीं देखा। इस ग्रन्थ में सिवा प्रेम के दूसरा वर्णन नहीं है। और इसको सर्व साधारण ने इतना पसंद किया कि एक महाशय ने व्रजभाषा में और द्वितीय ने संस्कृत में इसका अनुवाद किया। इस ग्रन्थ में शुकदेवजी, नारद, चन्द्रावली के प्रेम छिपाने, प्रेमोन्मत्तता; यमुना, और योगिनी के वर्णन बड़ेही हृदयग्राही हैं। महात्मा सूरदास और देवजी के अतिरिक्त कोई भी कवि प्रेम का ऐसा उत्तम वर्णन करने में समर्थ नहीं हुआ। नाटकों में यह और सत्य हरिश्चन्द्र भारतेन्दुजी को बहुत पसंद थे और वास्तव में ये दोनों ग्रन्थ इनकी रचना और भाषा-साहित्य के शृंगार हैं। इन ग्रन्थों की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इस ग्रन्थ से विदित है कि ये महाशय गद्य में भी शुद्ध व्रजभाषा का प्रयोग कर सकते थे।

(७) "विद्यासुन्दर" की कथा का वर्णन चौर कवि ने संस्कृत के चौर पंचाशिका में किया था। उसके आधार पर श्रीयुत यतीन्द्रमोहन टैगोर ने बँगला में विद्यासुन्दर नामक नाटक बनाया। उसी ग्रन्थ का अनुवाद भारतेन्दुजी ने किया है यह ग्रन्थ संवत् १९२५ में केवल १८ वर्ष की अवस्था में इन्होंने बनाया परन्तु फिर भी इसकी भाषा ऐसी मधुर है और इसमें ऐसे ऐसे उत्तम छन्द हैं कि उनकी प्रशंसा किये बिना रहा नहीं जाता। उदाहरणार्थ इसका एक छन्द दिया जाता है :—

हमहूँ सब जानतीं लोक की चालन
क्यों इतनें बतरावती हौ।
हित जामें हमारो बनै सो करौ
सखियाँ तुम मेरी कहावती हौ॥
हरिचन्द जू यामें न लाभ कछू
हमैं बातन क्यों बहरावती हौ।
सजनी मन हाथ हमारे नहीं
तुम कौन को का समझावती हौ॥

(८) "भारत-जननी" नाटक किसी अन्य कवि भारत-माता नामक बँगला नाटक से अनुवादित किया था इसको भारतेन्दुजी ने शोध प्रकाशित किया। इसमें भारत-सन्तानों वर्तमान दुर्दशा और गौणरूप से भूत गौरव का वर्णन है। इसमें स्वदेश-भक्ति-पूर्ण होली भी बड़ी उत्तम कही गई है। ग्रन्थ १२ में समाप्त हुआ है और प्रशंसनीय है।

(९) "भारत-दुर्दशा" इनका स्वतन्त्र नाटक है सं० १९३७ में लिखा गया। इसमें बड़ा ही और हृदय-ग्राही वर्णन है, और भारत की मान दुरवस्था एवं उसके कारणों का बहुत उत्तम चित्र इसमें खींचा गया है। इसमें फूट, वैर, कलह, सुस्ती, सन्तोष, खुशामद कायरता, बहुत धर्म, छुवाछूत, शराब, पुराने के वाक्य, जाति, ऊँच, नीच, विवाहों में जन्म पत्री का मिलाना, बहु-विवाह, बाल-विवाह अपव्यय, अदालत, फ़ैशन, शिफ़ारस, उपाधि विधवा विवाह न करना, विलायत गमन की रोक, बहुत देवी, देवता, भूत, प्रेतों का पूजन इत्यादि की निन्दा की है, और यह व्यंजित किया है कि भारतवर्ष में टिकस, क्षुधा पीड़ा, काल, मँहगी, रोग आदि जो विपत्तियाँ हैं और हिन्दुस्तानी जो काफ़िर, काले, नीच पुकारे जाते हैं ये सब बातें उपर्युक्त अवगुणों ही के कारण हैं। भारत दुर्दैव और सत्यानाश फ़ौजदार की बात-चीत में पहले भारत की वर्तमान दशा का वर्णन है तदनन्तर क्रमशः रोग, आलस्य मदिरा, और अंधकार का प्रवेश हुआ है। इसके पीछे छः हिन्दुस्तानी सभ्यों की एक सभा का वर्णन है जिसमें एक बंगाली, एक महाराष्ट्र, एक सम्पादक, एक कवि और दो देशी भद्र-पुरुष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत थे। इसमें सब सभ्यों के व्याख्यान हुए हैं और जिस देश के लोग जैसी हिन्दी बोलते हैं और जैसे विचार जिस देश के हैं उनका ठीक उसी प्रकार से वर्णन कवि ने किया है। इसमें युक्त-प्रदेशीय सभ्यों का बोदापन और कवि की अकर्मण्यता अच्छी दिखलाई गई है। इसमें तुलसीदासजी की चौपाइयाँ बहुत ही मज़ाक के साथ लिखी गई हैं। इसमें प्रायः सभी स्थानों पर हास्य-मिश्रित वर्णन किया गया है परन्तु फिर भी उस हास्य में गूढ़ाशय छिपे हुए हैं। इस ग्रन्थ से भारतेन्दुजी का अपार देश-प्रेम उत्तम और ज़ोरदार कविता करने की शक्ति पूर्णरूप से प्रकट होती है। यह २२ पृष्ठ का एक बड़ा ही अनोखा ग्रन्थ है।

(१०) "नील देवी" एक ऐतिहासिक नाटक है। इसमें अमीर अब्दुश्शरीश ख़ाँ का महाराजा सूर्य्य देव पर धावा करने का वर्णन है। अमीर की ओर की सब बात चीत शुद्ध उर्दू में वर्णित है। यह २० पृष्ठ का अपूर्व ग्रन्थ संवत् १९३७ में बना था। इसमें प्रत्येक वर्णन आद्योपान्त बहुत ही अच्छा है। देववाक्य सुन कर रोयें खड़े हो जाते हैं परन्तु वह यथार्थ है। पागल का पार्ट क्या ही अनोखा आया है। कवि ने सच्चा पागल ला कर दिखला दिया। इसमें क्षत्रियों के युद्धोत्साह में कवि ने वीर-रस का चित्र सामने खड़ा कर दिया और उद्दंडता की हद कर दी। यह ग्रन्थ बलिया में भारतेन्दुजी के सम्मुख खेला भी गया था। इस ग्रन्थ से इनका उत्कट स्वदेश स्नेह देख पड़ता है और यह भी प्रकट होता है कि ये वीर रस की कविता भी परम मनोहर कर सकते थे।

(११) 'माधुरी' संवत् १९४० में बनी है। बाबू राधाकृष्णदास ने लिखा है कि यह किसी अन्य कवि का बनाया हुआ ग्रन्थ है। इसमें वृन्दावन का वर्णन है और केवल ८ पृष्ठों में प्रेम कहा गया है।

(१२) 'पाखण्ड-विडम्बन' संवत् १९२९ में बनाया गया था। यह प्रबोध चन्द्रोदय के तृतीय अङ्क का अच्छा अनुवाद है। इसमें ११ पृष्ठ हैं।

(१३) 'अन्धेर-नगरी' संवत् १९३८ में बनी थी। यह १४ पृष्ठ का प्रहसन का एक ग्रन्थ है और एक ही दिन में बना था। इसमें सौदा बेचनेवालों की आवाज़ों का एवं मुक़द्दमे का वर्णन अच्छा है।

(१४) 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' २० पृष्ठ का छोटा सा प्रहसन संवत् १९३० में बना था। इसमें मांस खानेवालों और मद्यपों की बहुत निन्दा है। इन्होंने ब्राह्मो लोगों की भी अनुचित निन्दा की है। इसमें शास्त्रार्थ और उन्मत्तता के वर्णन बहुत उत्तम हैं। इस ग्रन्थ में हास्य-रस का अच्छा कौतूहल है।

(१५) 'विषस्य विषमौषधम्' में एक महाराजा के सिंहासनच्युत होने का इतिहास और हास्यमय वर्णन है और परस्त्रीगमन की निन्दा है। यह प्रायः गद्य ही में लिखा गया है। यह ९ पृष्ठ का ग्रन्थ संवत् १९३३ में बनाया गया था। इनके सब ग्रन्थों की भाँति यह भी मनोहर है।

(१६) 'दुर्लभ बन्धु' शेक्सपियर कृत मर्चेंट आफ़ वेनिस का अनुवाद है। इसमें ८४ पृष्ठ हैं और यह संवत् १९३१ में बना था। यह भी एक परमोत्तम अनुवाद है और अँगरेज़ी से अनुवादित होने पर भी इसमें भाव बिगड़ने नहीं पाया है।

(१७) 'सतीप्रताप' एक अपूर्ण नाटक था जिसे बाबू राधाकृष्णदास ने पूर्ण किया। इसमें २८ पृष्ठ हैं और इसका भारतेन्दु कृत भाग संवत् १९४० में बना था। इसमें पतिव्रता-शिरोमणि सावित्री का वर्णन है। इसमें पातिव्रत का अच्छा रूप और उसका अच्छा फल दिखाया गया है। बाबू राधाकृष्ण दास ने इसे पूर्ण भी अच्छा किया है। उसका रूप बिगड़ने नहीं पाया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१८) 'रत्नावली' का केवल ४ पृष्ठों का अनुवाद संवत् १९२५ में हुआ था और फिर यह अपूर्ण रह गया।

(१९) 'प्रेम योगिनी' एक बड़ाही विशद ग्रन्थ बन रहा था परन्तु दुर्भाग्यवश यह अपूर्ण रह गया। इसका केवल प्रथम अंक बना है जिसमें २६ पृष्ठ हैं। इस नाटक में भारतेन्दुजी अपने विषय में बहुत कुछ लिख रहे थे। इसके नायक रामचन्द्र स्वयं वेही हैं। समस्त ग्रन्थ बहुत बड़ा होता और उसमें उनकी चित्त की वृत्तियाँ बहुत कुछ जान पड़तीं, परन्तु शोक है कि यह अमूल्य ग्रन्थ अपूर्ण रह गया। इसमें बनारसी, महुला की, माड़वारी और गुजराती भाषाओं में कविता की गई है। इसमें रोज़ की बोलचाल और साधारण घटनाओं का कथन है और इस कारण इसमें बड़ा ही स्वाभाविक और प्राकृतिक वर्णन है। यद्यपि ये महाशय वल्लभीय सम्प्रदाय के थे तथापि इन्होंने गोस्वामियों के निकृष्ट आचरणों की यह कहकर निन्दा कराई है कि "भाई! मालौ लूटैं, मेहेरुवौ लूटैं।" इसमें काशी की निन्दा और स्तुति बड़ी उत्तम कही गई है। इसी भाँति मिसिर, झपटिया और कहार की बातचीत, एवं झूरीसिंह और दूकानदारों का मज़ाक़ बहुत अच्छा कहा गया है। यह ग्रन्थ बहुत ही अनोखा और प्राकृतिक है और इसकी कविता बहुत ही मनोहर और अबल दरजे की है। यह ग्रन्थ संवत् १९३२ में बना था, परन्तु न जाने क्योंकर अपूर्ण रह गया।

द्वितीय भाग—इतिहास-समुच्चय।

नाटकों के अतिरिक्त भारतेन्दुजी में इतिहास-प्रेम भी बहुत था। हमारे कवियों में से इतिहास-विषयक इतने ग्रन्थ किसी ने भी नहीं लिखे।

(१) 'कश्मीर-कुसुम' की भूमिका में भारतेन्दुजी ने इतिहास का अभाव, राजतरंगिणी का चार भागों में बनना, उसकी समालोचना, हर्षदेव का वर्णन, और कश्मीर के वर्तमान राज-घराने का वर्णन किया है। कुसुम में इन्होंने एक चक्र दिया है जिसमें राजसंख्या, नाम, गत, कलि समय, डायर के मत से समय, कनिंघम के मत से समय, विल्सन के मत से समय, राज्यकाल और विशेष वर्णन सूक्ष्मतया कहे गये हैं। इसमें बड़ा परिश्रम किया गया है और इनके ऐतिहासिक ग्रन्थों में यह इन्हें सबसे अधिक पसन्द था। इसमें ३५ पृष्ठ हैं।

(२) महाराष्ट्र देश का इतिहास केवल ९ पृष्ठों में है और उसमें कोई नई बात नहीं है।

(३) रामायण के समय में बहुत सी ऐसी बातों का कथन है कि जो उस समय थीं परन्तु भ्रमवश लोग उन्हें आधुनिक समझने लगे हैं। वे निम्न-लिखित बातें हैं:—भुशुंडी, जैन, भिक्षुक, कौशल्या का घोड़ा काटना, कृष्ण का ईश्वरत्व, मुनियों का मांस न खाना, गोलोक का वर्णन, सड़क का होना, मूर्त्तियों का वर्णन, काग़ज़ पर लिखा जाना, जल-सेना, चारबाक और बुद्ध का वर्णन, पुराणों का वर्णन, मनुस्मृति के श्लोकों का होना, इस बात का ज्ञान कि चन्द्र सूर्य के प्रकाश से चमकता है, गुलाब पाश, संस्कृत का बोला जाना, राम से ब्रह्मा का यह कहना कि वे कृष्ण हैं। इस ग्रन्थ में १० पृष्ठ हैं।

(४) अगरवालों की उत्पत्ति ७ पृष्ठ में।

(५) खत्रियों की उत्पत्ति १४ पृष्ठ में।

(६) बादशाहदर्पण में दिल्ली के बादशाहों का हाल है। इसमें भी चक्र द्वारा ही हाल सूक्ष्मतया कथित है। तदनन्तर उनका सूक्ष्म वृत्तान्त कहा गया है। कुल २२ पृष्ठ हैं।

(७) उदयपुरोदय में २७ पृष्ठों द्वारा बापा रावल के समय तक का इतिहास लिखा गया है।

(८) पुरावृत्तसंग्रह में ४६ पृष्ठों द्वारा स्फुट ऐतिहासिक विषय एवं दान-पत्रादि का वर्णन है।

(९) चरितावली में ९० पृष्ठ हैं। इसमें निम्न महाशयों के चरित्र लिखे हैं:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्रम, कालिदास, रामानुज, शंकर, पुष्पदन्ताचार्य्य, वल्लभाचार्य्य, सूरदास, सुक़रात, नैपोलियन, महाराजा जंगबहादुर, द्वारकानाथ मित्र, श्रीराजारामशास्त्री, लार्ड मेओ, लार्ड लारेंस, और तृतीय सिकन्दर ज़ार। कई महापुरुषों की कुंडलियाँ भी इस ग्रन्थ में दी हुई हैं। इन कुंडलियों में रावण की भी कुंडली है।

(१०) पंच पवित्रात्मा में महम्मद, अली, बीबी फ़ातिमा, इमाम हसन, और इमाम हुसैन के जीवन-चरित्र वर्णित हैं। यह ग्रन्थ २२ पृष्ठ का है।

(११) दिल्लीदरबारदर्पण में संवत् १९३३ के दिल्ली-दरबार का उत्तम वर्णन २५ पृष्ठों में किया गया है।

(१२) कालचक्र में २० पृष्ठों द्वारा संसार की बड़ी बड़ी घटनाओं का समय निरूपण किया गया है।

भारतेन्दुजी के ऐतिहासिक विषयों से विदित होगा कि इन्होंने उत्तमोत्तम विषयों को वर्णनार्थ चुना है और चुनते क्यों न ? इतने बड़े लेखक और कवि होकर ये महाशय अपना समय कैसे अनुचित विषयों पर खोते ? इन्होंने इतिहासों का लम्बा चौड़ा वर्णन कभी नहीं दिया और थोड़ेही स्थान में बहुत कुछ कह देने का सदैव प्रयत्न किया है।

तृतीय भाग—राजभक्ति-सूचक काव्य ।

इस भाग में अन्य महाशयों की बनाई हुई भी कविता बहुतायत से सम्मिलित है परन्तु वह सब इन्हीं के प्रोत्साहन से बनी थी।

(१) विजयिनीविजयवैजयन्ती में ८ पृष्ठों द्वारा (ईजिप्ट) विजय पर हर्ष प्रकाश किया गया है। इस युद्ध में हिन्दुस्तानी सैनिकों ने युद्ध किया था इसी कारण इस स्वदेश-भक्त जातीय कवि को बड़ा हर्ष हुआ।

(२) भारतवीरत्व में ४ पृष्ठों द्वारा अफ़ग़ान समर का वर्णन है।

(३) भारतभिक्षा में ७ पृष्ठ हैं और उसमें तत्कालीन युवराज वर्तमान सप्तम एडवर्ड महाराज के आगमन पर हर्ष मनाया गया है।

(४) विजयबल्लरी में ३ पृष्ठों द्वारा क़ंधार विजय का उत्तम वर्णन है।

(५) मुँहदेखावनी में डूक आफ़ एडिम्बरा का विवाह दो पृष्ठों में वर्णित है।

(६) रिपनाष्टक में लार्ड रिपन की आठ छन्दों में स्तुति है।

(७) राजकुमारसुस्वागत पत्र में राजकुमार के काशी पहुँचने का वर्णन है। इसमें छन्द बड़े उत्तम हैं। यह ३ पृष्ठ का है।

(८) मनोमुकुलमाला में ९ पृष्ठों में चित्र काव्य द्वारा महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा की गई है। इसमें अँगरेज़ी, उर्दू और नागरी के अक्षरों में चित्र हैं।

(९) मानसोपायन ५१ पृष्ठ का एक बड़ा ग्रन्थ है, परन्तु इसमें अन्य लोगों की कविता भी है और भारतेन्दुजी का एक ही पृष्ठ है। इसमें गुजराती और हिन्दी में कविता है।

(१०) युवराज एडवर्ड के विषय में १६ पृष्ठों में उर्दू कविता है।

(११) युवराज एडवर्ड की प्रशंसा में यह ५२ पृष्ठों का ग्रन्थ है परन्तु इसमें बँगला, तामिल, तेलेग्यू आदि की कविता है जिसमें बँगला का एक पृष्ठ इनका है।

(१२) सुमनोञ्जलि में डूक आफ़ एडिम्बरा की प्रशंसा है। इसमें २ पृष्ठ भारतेन्दु के हैं।

(१३) जातीय संगीत युवराज के पीड़ित होने में बना था। इसका एक पृष्ठ इनका है।

इस भाग की कविता या तो शिथिल या साधारण है। इसमें उत्तम कविता बहुत थोड़ी है।

चतुर्थ भाग—भक्तसर्वस्व ।

इसमें भक्ति रस की कविता है और यह वैष्णवों के आनन्दार्थ बना है। इस भाग की भी कविता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारण है। परन्तु भक्ति-पक्ष की होने के कारण वह सराहनीय है।

(१) चरणचिह्न २६ पृष्ठों का ग्रन्थ दोहे और छप्पय में कहा गया है। इसमें देवताओं और भक्तों के चरण-चिह्नों का वर्णन है।

(२) वैष्णवसर्वस्व १५ पृष्ठों का एक गद्य ग्रन्थ है। इसमें वैष्णवों की विष्णु स्वामी, माध्व, चैतन्य, रामानुज, और निम्बादित्य नामक पाँच सम्प्रदायों का वर्णन है।

(३) बल्लभीयसर्वस्व भी गद्य का ग्रन्थ है जिसमें १०२ पृष्ठों द्वारा इसी सम्प्रदाय का वर्णन है।

(४) युगुलसर्वस्व में गद्य-पद्य द्वारा २४ पृष्ठों में श्रीकृष्णचन्द्र, नन्द यशोदा, उनके कुटुम्ब, सखी, सहचरी आदि का वर्णन है।

(५) तदीयसर्वस्व में नारद के ८४ भक्ति सूत्रों पर गद्य में भाष्य किया गया है। यह ५६ पृष्ठों का है। भाष्य उत्तम हुआ है।

(६) भक्तिसूत्रवैजयन्ती में शांडिल्य के १०० सूत्रों पर २४ पृष्ठों में गद्य द्वारा भाष्य किया गया है।

(७) सर्वोत्तम स्तोत्र भाषा में ५ पृष्ठों में २७ पद कहे गये हैं जिनमें स्तुति का विषय है।

(८) उत्तरार्द्ध भक्तमाल में नाभादास के पीछे के भक्तों का वर्णन है। इसमें कविता बिलकुल नाभादासजी के समान और उसी रीति पर की गई है। यदि इसको नाभादास के ग्रन्थ में मिला देवें तो अन्तर जानना कठिन हो जाय।

(९) इसमें ३६ पृष्ठ हैं और छप्पय छन्द विशेष हैं। उत्सवावली में साल भर के उत्सव, पूजाओं और उनके सामान का वर्णन है। इसमें ८ पृष्ठ हैं।

(१०) वैष्णवता और भारतवर्ष गद्य का एक बहुत ही उपयोगी ११ पृष्ठों का ग्रन्थ है। इसमें भारत वर्ष पर वैष्णवता का फल कहा गया है।

(११) पुराणोपक्रमणिका भी गद्य का ३० पृष्ठों का ग्रन्थ है। इसमें अट्ठारहों पुराणों का विषय वर्णित है।

(१२) वैशाखमाहात्म्य गद्य में ८ पृष्ठ हैं।

(१३) कार्त्तिककर्म्मविधि पद्य में ३० पृष्ठ हैं। इसमें संस्कृत के भी उदाहरण दिये गये हैं।

(१४) कार्त्तिकनैमित्तिक कृत्य गद्य में २८ पृष्ठ हैं।

(१५) मार्गशीर्षमहिमा गद्य पद्य में १४ पृष्ठ हैं।

(१६) मार्गशीर्षमहिमा गद्य पद्य द्वितीय में ६ पृष्ठ हैं।

(१७) पुरुषोत्तममासविधान गद्य पद्य में मलमास की महिमा बृहन्नारदीय पुराण के मतानुसार १२ पृष्ठों में वर्णित है।

(१८) कार्त्तिकस्नान पद्य में ६ पृष्ठ हैं। इनको कार्त्तिक स्नान की बड़ी भक्ति थी जैसा कि प्रेमयोगिनी से भी विदित है। गीतगोविन्दानन्द में गीत गोविन्द का भाषानुवाद उत्तम है। इसमें ४३ पृष्ठ हैं। इस भाग में नम्बर २, ३, ५, ६, ८, ०, १ और १९ परमोत्तम हैं।

पंचम भाग—काव्यामृतप्रवाह।

इस भाग में इनके नाटकों के अतिरिक्त और भक्ति-मार्ग को छोड़ कर प्रेम प्रधान पद्य काव्य के ग्रन्थ हैं और वे सराहनीय भी हैं।

(१) होली ३४ पृष्ठ का ग्रन्थ है और उसमें ७९ पदों और छन्दों द्वारा होली का वर्णन किया गया है। इसकी कविता साधारण है।

(२) मधुमुकुल में होली, वसन्त इत्यादि का वर्णन है। इसमें संस्कृत के भी कुछ श्लोक हैं। यह ३८ पृष्ठ का ग्रन्थ है और संवत् १९३७ में बना था। इसमें ८८ छन्द हैं। इसकी भी कविता साधारण है।

(३) प्रेमफुलवारी में भक्ति और प्रेम का काव्य है। इसमें १४ पृष्ठ और ९३ छन्द हैं। इसकी कविता उत्तम है।

(४) 'फूलोंकागुच्छा' संवत् १९३९ में बना था। इसमें १० पृष्ठों द्वारा लावनी कही गई हैं जिनकी साधारण कविता है।

(५) विनयप्रेमपचासा में ५० ग़ज़ल लावनी, और भजन हैं। इसी ग्रन्थ में नये प्रकार की मुकरी भी कही गई हैं। इसकी कविता साधारणतः उत्तम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) प्रेमप्रलाप में विनय, प्रेमादि का वर्णन ७० पदों द्वारा किया गया है। इसमें ३४ पृष्ठ हैं। इसकी कविता उत्तम है।

(७) देवीछद्ममलीला में ३७ पृष्ठ हैं। इसमें १८ पदों में राधाकृष्ण का वर्णन है, प्रातःस्मरण मंगल पाठ में २६ पद हैं, भीष्मस्तवराज में १० पद, श्रीनाथस्तुति में ६ पद, अपवर्ग पंचक में पाँच पद और श्रीसीतावल्लभस्तोत्र में संस्कृत के ३० श्लोक हैं। इसमें श्रीविट्ठलनाथ जी की भी स्तुति वर्णित है। इसकी कविता साधारण है।

(८) प्रेमाश्रुवर्षण में वर्षा और हिंडोले का वर्णन है। इसमें १६ पृष्ठ और ४६ छन्द हैं। इसकी कविता साधारण है।

(९) वर्षा-विनोद में हिंडोला, बारहमासा, वर्षा आदि का वर्णन है। इसमें ४२ पृष्ठ और १३४ छन्द हैं। रचना साधारण है।

(१०) प्रेम माधुरी में प्रेम-सम्बन्धी कवित्त और सवैया हैं। इसमें १९ पृष्ठ और १२२ छन्द हैं। कविता साधारणतः उत्तम है।

(११) सतसई सिंगार में विहारीलाल के दोहों पर ८५ कुंडलियाँ कही गई हैं। इनकी कविता पं० अम्बिकादत्तव्यासजी की कुंडलिया से उत्तम है परन्तु हमारे मत में विहारी के दोहों में उसी प्रकार की कुंडलिया लगाना असाध्य श्रम है। विहारी एक बड़ेही बढ़िया कवि थे और उन्होंने जीवन भर में केवल ७०० दोहे लिखे हैं। फिर प्रत्येक दोहे में उन्होंने मज़मून ख़तम कर दिया है सो हर स्थान पर उसी विषय पर चार पद बढ़ा देने से तादृश उत्तम प्रबन्ध आना सर्वथा असम्भव है। यदि स्वयं विहारीजी ही अपने दोहों पर कुंडलिया चिपकाते तो भी वह छन्द दोहों के समान उत्तम न होते क्योंकि प्रत्येक दोहे में विषय बढ़ाने की गुंजाइश नहीं। फिर यदि कोई वैसा ही कवि अपने जीवन पर्यन्त कुंडलिया चिपकाने का प्रयत्न करे तो शायद उसका श्रम कवि-समाज में आदरणीय गिना जाय। इसी कारण भारतेन्दुजी ने इस श्रम को वृथा समझ कर छोड़ दिया होगा। फिर भी उनके छन्द अच्छे हैं।

(१२) जैनकुतूहल में ३६ पदों द्वारा यह सिद्ध किया है कि मत मतान्तरों का झगड़ा वृथा है और परमेश्वर केवल प्रेम से मिलता है। इसमें ५ पृष्ठ हैं। एक बार ये महाशय जैन-मन्दिर में चले गये थे और इस पर लोगों ने इनकी निन्दा की थी, इसी कारण यह ग्रन्थ बना था।

(१३) प्रेममालिका में ९९ पद ३७ पृष्ठों में हैं। इसमें प्रेम वर्णन है। यह ग्रन्थ बहुत उत्तम है।

(१४) वेणुगीत ७ पृष्ठों का पदों में वर्णित ग्रन्थ है। इसकी कविता साधारणतः उत्तम है।

(१५) प्रेमतरङ्ग में बँगला, पूर्वी बोली, पंजाबी, व्रज-भाषा आदि भाषाओं में पद कहे गये हैं। इसमें उर्दू की कुछ ग़ज़लें भी हैं। इस ग्रन्थ में ६४ पृष्ठ हैं। इसकी कविता साधारणतः उत्तम है। इसमें भी प्रेम का विषय है।

(१६) रागसंग्रह में ६० पृष्ठ और १५१ पद हैं। इसमें स्फुट राग कहे गये हैं। इसकी कविता साधारण है।

(१७) प्रातःस्मरणस्तोत्र में १८ पृष्ठ हैं जिनमें स्तोत्र, स्वरूप-चिन्तन, अक्षय तृतीया, प्रेम सरोवर, प्रबोधिनी और प्रात समीरन पर कविता की गई है। इसकी कविता साधारण है।

(१८) कृष्ण-चरित्र में ३० पृष्ठ और ५१ पद हैं। इसमें कृष्णस्तव, व्रज वर्णन आदि विषयों पर कविता है। इसकी कविता मनोहर है।

इस भाग की कविता प्रशंसनीय है। इसमें पदों का आधिक्य है परन्तु सवैया और घनाक्षरियों का अभाव नहीं है। इसमें कई भाषाओं में कविता की गई है और विषयों में प्रायः प्रेम का प्राधान्य रक्खा गया है और ऐसे वर्णन और विषयों से उत्तम भी हैं। कविता की दृष्टि से इनके प्रथम और पंचम भाग ही विशेष प्रशंसा-पात्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ भाग।

यह भाग अन्य भागों से कुछ बड़ा है परन्तु इसमें भारतेन्दुजी के पसन्द किये हुए अन्य कवियों के ग्रन्थ बहुतायत से हैं और स्वयं इनके ग्रन्थ बहुत कम हैं। उपहास-पूर्ण चूसा पैग़म्बर का लेख इसी भाग में है और इसीमें एक ग्रन्थ में बहुत से छोटे छोटे हँसी आदि के मनोरंजक चुटकुले हैं।

हम हरिश्चन्द्रजी के ग्रन्थों का सूक्ष्मतया परिचय ऊपर दे चुके। हमें शोक है कि स्थानाभाव के कारण कुछ भी विस्तारपूर्वक इनके ग्रन्थों की आलोचना नहीं कर सके। इस विषय पर बाबू शिवनंदनसहायजी ने इनकी जीवनी में कुछ विस्तार से वर्णन किया है। अब हम भारतेन्दुजी की कविता के कुछ कुछ गुण नीचे लिखते हैं।

(१) इनके काव्य में सबसे अधिक और सबसे उत्तम वर्णन प्रेम का है। इन्होंने ऐसा अनोखा हृदय पाया था कि उसमें प्रेम की मात्रा अथाह थी। अतः इनके सब लेखों में उसी की विशेषता रहती थी। इसके उदाहरणस्वरूप "चन्द्रावली नाटिका," और पंचम भाग के प्रायः सभी ग्रन्थ दिये जा सकते हैं। इनमें ईश्वरीय तथा सांसारिक दोनों प्रकार का प्रेम विशेष रूप से था और इन दोनों प्रकार के प्रेमों के वर्णन इनके काव्य में हर जगह प्रस्तुत हैं।

(२) ये महाशय अपने समय के प्रतिनिधि कवि थे। जो जो घटनायें इनके समय में हुईं उन सभों पर इन्होंने कविता की है। महाराजा मल्हार राव गायकवाड़ का पदच्युत होना, दिल्ली दरबार, युवराज का आगमन, मिश्र और अफ़ग़ानिस्तान में युद्ध आदि सभी विषयों पर इन्होंने काव्य-रचना की है। इसी प्रकार भारतवर्ष को उस समय जिन जिन बातों की आवश्यकता थी और उसमें जो जो दोष थे उन सबका इन्होंने सविस्तर वर्णन किया है। हिन्दी-साहित्य को जिन जिन बातों की आवश्यकता थी उन सब विषयों पर इन्होंने साहित्य-रचना की। ऐसा उन्नतिशील और प्रतिनिधि कवि भाषा-साहित्य में एक भी नहीं हुआ।

(३) इनको हिन्दूपन और जातीयता का सदैव बड़ा ध्यान रहता था। स्वदेशाभिमान इतना अधिक शायद ही किसी को हो। स्वदेश-प्रेम से इनका कवि का हृदय परिपूर्ण था। भारतेन्दु के बराबर हिन्द के दोषों पर आँसू बहानेवाला और उसके महत्त्व पर अभिमान करनेवाला कोई भी कवि हिन्दी-साहित्य में न होगा। हिन्द के विषय में इन्होंने बहुतही प्रेम-गद्गद होकर काव्य किया है। यह पुरुष-रत्न हिन्दी, हिन्दू और हिन्द के वास्ते कल्पवृक्ष हो गया है। हास्य के ग्रन्थों तक में इन्होंने देशहित का चिंतन नहीं छोड़ा। इस विषय के "नीलदेवी" और "भारत-दुर्दशा" ज्वलंत प्रमाण हैं।

(४) इनकी कविता में हास्य की मात्रा भी अधिक रहती थी और उसका प्रयोग ऐसी रीति से किया गया है कि वह बहुत ही उत्तम मालूम होती है। "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" और "अंधेरनगरी" तो मानो इसके रूप हैं। और और जगहों पर भी इसकी मात्रा बहुतायत से पाई जाती है।

(५) इनके काव्य में "बल" भी बहुत अधिक है। भाषा-कवियों में बहुत कम में इतना ज़ोर पाया जाता है। "नीलदेवी" और "भारत-दुर्दशा" में इसके उदाहरण अधिकता से मिलेंगे।

(६) विविध विषयों का उत्तम प्रकार से वर्णन करने की शक्ति इनमें बहुत बलवती थी। इन्होंने प्राकृतिक एवं सभी प्रकार के वर्णन बहुत ही उत्तम किये हैं। सौन्दर्य के तो ये उपासक ही थे, अतः प्रत्येक विषय में सुन्दरता पर इनकी निगाह पहुँच जाती थी। इसके उदाहरण सभी स्थानों पर मिलते हैं परन्तु गंगा, यमुना, काशी, शुकदेव, नारद, हरिश्चन्द्र का बिकना, श्मशान, सभा के व्याख्यान, झपटिया दलाल इत्यादि की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातचीत विशेषतया द्रष्टव्य हैं। जैसा जी लगा कर इन्होंने वर्णन किया वैसे ही इन्हीं के सामने प्रायः इनके सभी नाटकों के अभिनय भी हो गये।

(७) इन्होंने रूपकों का वर्णन भी अपनी कविता में विशेषतया किया है। उदाहरण में चन्द्रावली नाटिका में योगिनी और वियोगिनी का रूपक देखिए।

(८) इन महाशय ने पुरानी प्रथा के नायिका, अलंकार, छन्द और रीति विषय पर एक भी ग्रन्थ नहीं बनाया। रसों में इन्होंने ९ पुराने रसों के अतिरिक्त वात्सल्य, सख्य, भक्ति और आनन्द नामक चार नये रस माने कि जिनको पंडितों ने भी प्रामाणिक समझा। इसी प्रकार शृंगार रस में भी इन्होंने कई नये भेद माने हैं जिनका विशेष वर्णन इनकी जीवनी खड्गविलास प्रेसवाली के पृष्ठ ११८ पर हुआ है। और इसी जीवनी में इनके ग्रन्थों का समय भी दिया हुआ है।

(९) इनके समय तक उपन्यास हिन्दी भाषा में नहीं लिखे गये थे। अतः इन्होंने लोगों को उपन्यास लिखने के लिए प्रोत्साहित किया और स्वयं भी दो उपन्यास लिखना आरंभ किये थे परन्तु वे अपूर्ण रहे जिनके नाम ये हैं "एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती" और 'हम्मीर हठ'।

(१०) इन्होंने राजनैतिक और सामाजिक सुधारों पर भी बहुत कुछ बातें लिखी हैं जो इनके ग्रन्थों में यत्र तत्र मिलती हैं, परन्तु विशेषतया भारत-दुर्दशा नाटक में पाई जाती हैं। धार्मिक सुधारों का भी इन्होंने अच्छा वर्णन किया है।

(११) इन्होंने पद्य में व्रजभाषा को और गद्य में खड़ी बोली को विशेष आदर दिया है। परन्तु उर्दू, खड़ी बोली, व्रजभाषा, माड़वारी, गुजराती, बँगला, पंजाबी, मराठी, राजपूतानी, बनारसी, अवधी आदि सभी भाषाओं में इन्होंने कविता की है जो प्रायः सभी में सरस है। इन्होंने गद्य और पद्य प्रायः बराबर लिखा है।

(१२) इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

अहा! स्थिरता किसी को भी नहीं है। जो सूर्य्य उदय होते ही पद्मिनीवल्लभ और लौकिक वैदिक दोनों कर्मों का प्रवर्त्तक था, जो दोपहर तक अपना प्रचंड प्रताप क्षण क्षण बढ़ाता गया, जो गगनाङ्गण का दीपक और काल सर्प का शिखामणि था, वह इस समय परकटे गिद्ध की भाँति अपना सब तेज गवाँकर देखो समुद्र में गिरा चाहता है।

(सत्य हरिश्चन्द्र)

झपटिया—काहो मिसिरजी, तोरी नींद नहीं खुलती, देखो संखनाद होय गवा, मुखियाजी खोजत रहे।

मिश्र—चले तौ आइत्थै, अधियै राति के संख नाद होय तौ हम का करैं। तोरे तरह से हम हूँ के घर में से निकसि के मन्दिर में घुस आवना होता, तो हम हूँ जल्दी अउते, हियां तो दारानगर से आवना पड़त है। अबहीं सुरजौ नाहीं उगे।

झपटिया—कहो जगेसर! ई नाहीं कि जब संख-नाद होय, तब झटपट अपने काम से पहुँचि जावा करौ।

जलधरिया—अरे चल्ले तौ आवत्थई, का भहराय पड़ी! का सुत्तल थोरै रहली? हमहूँ के झापट कंधे पर रखके एहर ओहर घूमै के होतै तब न! हियां तौ गगरा ढोवत ढोवत कंधा छिल जाला।

(प्रेम योगिनि)

अहा! संसार के जीवों की कैसी विलक्षण रुचि है, कोई नेम धर्म्म में चूर है, कोई ज्ञान के ध्यान में मस्त, कोई मत मतान्तर के झगड़े में मतवाला हो रहा है, एक दूसरे को दोष देता है, अपने को अच्छा समझता है, कोई संसार ही को सर्वस्व मानकर परमार्थ से चिढ़ता है, कोई परमार्थ ही को परम पुरुषार्थ मानकर घर बार तृण सा छोड़ देता है, अपने अपने रंग में सब रँगे हैं, जिसने जो सिद्धान्त कर लिया है वही उसके जी में गड़ रहा है और उसी के खंडन मंडन में जन्म बिताता है, पर वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो परम प्रेम अमृतमय एकान्त भक्ति है, जिसके उदय होते ही अनेक प्रकार के आग्रह स्वरूप ज्ञान विज्ञानादिक अन्धकार नाश हो जाते हैं और जिसके चित्त में आतेही संसार का निगड़ आप से आप खुल जाता है—किसी को नहीं मिली; मिले कहाँ से, सब उसके अधिकारी भी तो नहीं हैं, और भी जो लोग धार्म्मिक कहाते हैं उनका चित्त स्वमत-स्थापन, और परमत-निराकरण रूप वाद विवाद से, और जो विषयी हैं उनका अनेक प्रकार की इच्छा रूपी तृष्णा से, अवसर तो पाता ही नहीं कि इधर झुकै। अहा! इस मदिरा को शिवजी ने पान किया है, और कोई क्या पियेगा? जिसके प्रभाव से अर्द्धाङ्ग में बैठी पार्वती भी उनको विकार नहीं कर सकती, धन्य है, धन्य है! और दूसरा ऐसा कौन है? चन्द्रावली

मदवा पीले पागल जोबन बीत्यो जात।
बिनु मद जगत सार कछु नाहीं मानु हमारी बात॥
पी प्याला छक छक आँनद सों नितहि साँझ अरु प्रात।
झूमत चलु डगमगी चाल से मारि लाज को लाज॥
हाथी मच्छड़ सूरज जुगुनू जाके पिये लखात।
ऐसी सिद्धि छोड़ि मन मूरख काहे ठोकर खात॥

भारत-दुर्दशा

पीले अवधू के मतवाले प्याला प्रेम हरी रसकारे।
धिधिकट धिधिकट धिधिकट धाधा बजै मृदंग थाप कसकारे॥
बहार आई है भरदे बादए गुलगूँ से पैमाना।
रहे लाखों बरस साक़ी तेरा आबाद मैख़ाना॥
सँभल बैठो अरे मस्तो ज़रा हुशियार हो जाओ।
कि साक़ी हाथ में मै का लिए पैमाना आता है॥

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति

सोओ सुख निँदिया प्यारे ललन।
नैनन के तारे दुलारे मेरे बारे
सोओ सुख निँदिया प्यारे ललन।
भइ आधी रात बन सनसनात
पसु पंछी कोउ आवत न जात
जग प्रकृति भई मनु थिर लखात
पातहु नहि पावत तरुन हलन।
झलमलत दीप सिर धुनत आय
मनु प्रिय पतंग हित करत हाय
सतरात बैन आलस जनाय
सनसन लगि सीरी पवन चलन।
सोए निसि के सब नींद घोर
जागत कामी, चिंतित, चकोर,
विरहिनि, विरही, पाहरू, चोर,
इन कह छिन रैनिहु हाय कल न।
इस राजपूत से रहो हुशियार ख़बरदार।
ग़फ़लत न ज़रा भी हो ख़बरदार ख़बरदार॥
अज़दर है भभूका है जहन्नुम है बला है।
बिजली है ग़ज़ब इस्की है तलवार ख़बरदार॥
दरबार में वह तेग़ शरर-बार न चमके।
घर बार से बाहर से भि हर बार ख़बरदार॥
चलहु वीर उठि तुरत सबै जय-धुजहि उड़ाओ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि रँग रंग जमाओ॥

(नीलदेवी)

चूरन अमलबेद का भारी।
जिसको खाते कृष्ण मुरारी॥
मेरा पाचक है पचलोना।
जिसको खाता स्याम सलोना॥
हिन्दू चूरन इसका नाम।
विलायत पूरन इसका काम॥
चूरन ऐसा हट्टा कट्टा।
कीना दाँत सभी का खट्टा॥
चूरन चला दाल की मंडी।
इसको खाएँगी सब रंडी॥
चूरन नाटक वाले खाते।
इसकी नक़ल पचाकर लाते॥
चूरन सभी महाजन खाते।
जिससे जमा हज़म कर जाते॥
चूरन खाते लाला लोग।
जिनको अकिल अजीरन रोग॥
चूरन खावैं एडिटर जात।
जिनके पेट पचै नहिं बात॥

(अंधेरनगरी)

दुनिया में हाथ-पैर हिलाना नहीं अच्छा।
मर जाना पर उठ कर कहीं जाना नहीं अच्छा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ाक़ों से मरिये पर न कोई काम कीजिए ।
दुनिया नहीं अच्छी है ज़माना नहीं अच्छा ॥
सिज्दे से गर बिहिश्त मिले दूर कीजिए ।
दोज़ख़ ही सही सरका झुकाना नहीं अच्छा ॥
(भारत-दुर्दशा)

तोहरे आँखि में चरबी छाई माल न चाप्यो गोजर ।
कैसी दून कि सूझि रही है असमानी के ऊपर ।
कहाँ कि ई तू बात निकासी खासी सत्यानासी ।
भूखे पेट कोऊ ना सुतता ऐसी है ई कासी ॥
देखी तुमरी कासी लोगो देखी तुमरी कासी ।
आधी कासी भाँड़ भँड़रिया बाँभन औ संन्यासी ॥
मैली गली भरी कतवारन सँड़ी चमारिनि पासी ।
नीचे नल ते बदबू उबलै मनौ नरक चौरासी ॥
फिरैं उचक्का दै दै धक्का लूटैं माल मवासी ।
क़ैद भये की लाज तनिक नहिँ बेशरमी नंगासी ॥
आप माल कचरैं छानैं उठि भोरै कागाबासी ।
बाप कि तिथि दिन बाँभन आगे धरैं सरा औ बासी ॥
करि व्यवहार साख बाँधैं मनु पूरी दौलत दासी ।
घालि रुपैया काढ़ि देवाला माल डकारै ठासी ॥
काम कथा अमृत सी पीवैं समुझैं ताहि विलासी ।
राम नाम मुँह ते नहिं निकसै सुनतै आवै खाँसी ॥
(प्रेमयोगिनी)

परत चन्द प्रति बिम्ब कहूँ जल मधि चमकायो ।
लोल लहरि लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो ॥
मनुहरि दरसन हेत चंद जल बसत सुहायो ।
कै तरंग कर मुकुर लिए सोभित छवि छायो ॥
कै रास रमन मैं हरि मुकुट आभा जल दिखरात है ।
कै जल उर हरि मूरति बसति ता प्रति बिंब लखात है ॥
कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत ।
कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जल-कुक्कुट धावत ॥
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत ।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत ॥
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर विविधि पच्छी करत ।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत ॥
पिंग जटा को भार सीस पर सुन्दर सोहत ।
गल तुलसी की माल बनी जोहत मन मोहत ॥
कटि मृगपति को चरम चरन में घुंघुरू धारत ।
नारायन गोविंद कृष्ण यह नाम उचारत ॥
लै बीना कर बंदन करत तान सात सुर सों भरत ।
जग अघ छिन में हरि कहि हरत जेहि सुनि नर भवजल तरत ॥
(चंद्रावली नाटिका)

धिक है वह देह औ गेह सखी !
जेहि के बस नेह को टूटनो है ।
उन प्रान पियारे बिना यहि जीवहि ,
राखि कहा सुख लूटनो है ॥
हरिचन्द जू बात ठनी सो ठनी ,
नितकी कुलकानि सों छूटनो है ।
तजि आन उपाय अनेक भटू ,
अब तो हम को बिष घूटनो है ॥
(विद्यासुन्दर)

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने प्रायः सभी विषयों पर कविता की है और सबमें इनको सफलता प्राप्त हुई है। इन्होंने भक्ति, तीर्थ, व्रत, धर्म्म, वीर, शृंगार, हास्य, करुणा, वीभत्स, राजनीति, समाज, प्राकृतिक दृश्य आदि सभी विषयों पर कविता की है और सबमें इनको पूर्ण कृतकार्य्यता प्राप्त हुई है। शुद्ध हिन्दी में गद्य लिखने के तो मानो ये एकमात्र सुधारक थे। इनके प्रथम राजा लक्ष्मणसिंह और राजा शिवप्रसाद भी गद्य के लेखक थे परन्तु प्रथम ने केवल अनुवाद और द्वितीय ने उर्दू मिश्रित भाषा में प्रबन्ध लिखे ह। सबसे प्रथम सर्वाङ्ग सुन्दर गद्य के लेखक भारतेन्दुजी ही हुए और उस समय से अब तक सैकड़ों गद्य के लेखक हो गये और वर्तमान हैं और यद्यपि गद्य लेखन-प्रणाली ने अब उस समय से अधिक उन्नति कर ली है, परन्तु फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि कोई लेखक कुल मिलाकर इनसे उत्तमतर हुआ या है। एकाध वर्तमान लेखकों की भाषा इनसे कुछ गम्भीरतर अवश्य है परन्तु कुल मिलाकर भारतेन्दुजी के लेखों में रोचकता वर्तमान सुलेखकों से अधिक है। भारतेन्दु जी उत्तम गद्य-लेखन के जन्म-दाता और अद्यापि सर्वश्रेष्ठ गद्य-लेखक हैं। जितनी भाषाओं में इस महाकवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को काव्य रचना करने की सामर्थ्य थी उतनी में अन्य किसी भी कवि को नहीं है और न कभी थी।

भारतेन्दुजी के प्रथम हिन्दी में नाटकों का अभाव सा था। उस समय इस भाषा में केवल दो नाटक थे। एक इनके पिता का अनुवादित 'नहुष नाटक' और द्वितीय राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुवादित "शकुन्तला नाटक"। स्वतन्त्र नाटक का ग्रन्थ एक भी न था। इस महाकवि ने इस त्रुटि के दूर करने का पूरा प्रयत्न किया और एक एक करके १८ नाटक ग्रन्थ बनाये जिनमें से कहा जाता है कि दो इस कवि के नहीं हैं। इनमें से ९ ग्रन्थ ख़ास इन्हीं के मस्तिष्क के उपज हैं और शेष संस्कृत से अनुवादित हैं, जिनमें से एक अँगरेज़ी का भी अनुवाद है। इनके अनुवादों में ऐसा कुछ आनन्द आता है कि जैसा स्वतन्त्र ग्रन्थों में आना चाहिए। हम मुक्त-कंठ से कहेंगे कि ऐसा उत्तम अनुवादक भाषा-कवियों में कोई भी नहीं है। वर्तमान कवियों में गद्यानुवाद कई लोग ऐसा ही कर लेते हैं परन्तु पद्यविभाग में ऐसा उत्तम अनुवाद करना इसी कवि के भाग में बदा था।

इनके स्वतन्त्र नाटकों में सभी अत्युत्तम बने हैं, परन्तु उनमें भी सत्यहरिश्चन्द्र, चन्द्रावली और नीलदेवी बहुत ही उत्तम बने हैं। यह कहना कि भाषा में ऐसे नाटक किसी ने नहीं बनाये, इनकी कोई प्रशंसा नहीं करनी है क्योंकि भाषा में दूसरा नाटककार अभी तक उत्पन्न ही नहीं हुआ। इन नाटकों की गणना संस्कृत के उत्तम नाटकों के साथ होगी। शेक्सपियर के सब नाटक इनकी बराबरी नहीं कर सकते। भारत-दुर्दशा और प्रेमयोगिनी भी अपने ढंग के अपूर्व हैं। सती-प्रताप से भारत-वर्षीय स्त्री-धर्म्म का उच्चातिउच्च विचार प्रकट होता है और अन्धेरनगरी और वैदिकीहिंसा भी अच्छे मनोरंजक हैं।

इनके इतिहास-प्रेम और धर्म्म-प्रेम भी इनकी कविता से भली भाँति प्रकट होते हैं। इनकी कोरी साहित्य भाषा उत्तम कवियों की रचनाओं से तुलना नहीं कर सकती परन्तु नाटकों को भी जोड़ लेने से इनका पद बहुत ऊँचा हो जाता है। हिन्दी भाषा की इतनी उन्नति किसी एक व्यक्ति से नहीं हुई जितनी कि भारतेन्दुजी से। इस एक व्यक्ति से हिन्दी भाषा में कितनेही नये विषय आ गये और कितने ही प्रकार के लेख और लेखक उत्पन्न हो गये। सचमुच यह व्यक्ति वर्तमान हिन्दी का एक मात्र जनक हो गया है। इनकी आशु कविता इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि ये महाशय धारा बाँध कर नये छन्द कहते चले जाते थे और जिह्वा नहीं रुकती थी। कविता का इन्हें इतना प्रेम था कि ये सोते में भी उसी के आनन्द में निमग्न रहते थे यहाँ तक कि इन्होंने सोते में भी कुछ छन्द बनाये हैं।

हम भाषा के नौ प्रसिद्ध और सर्वोत्तम कवियों में इनको भी समझते हैं।

परम प्रेम निधि रसिकवर, अति उदार गुन खान।
जग जन रंजन आशु कवि, को हरिचन्द समान॥
जे गुन नृप हरिचन्द में, जग हित सुनियत कान।
ते सब कवि हरिचन्द में, लखहु प्रतच्छ सुजान॥

गणेशविहारी मिश्र,
श्यामविहारी मिश्र तथा
शुकदेवविहारी मिश्र।

स्वामी दादूदयाल और उनका वृत्तान्त।

सन् १९०७ ई० में कुछ लेख मेरी और महामहोपाध्याय श्रीसुधाकर द्विवेदीजी की तरफ़ से स्वामी दादूदयाल की वाणी के विषय में भारतमित्र में छपे थे, जिनमें मैंने महामहोपाध्यायजी की सम्पादित 'स्वामी दादूदयाल की वाणी' पर संक्षिप्त समालोचना की थी। सारांश मेरे लेखों का यह था कि उक्त पुस्तक की असली भाषा, प्राचीन लेख-प्रणाली, प्राचीन हिन्दी के रूपों तथा विभक्तियों को बदल कर महामहोपाध्यायजी ने एक नवीन रचना की है जिनसे स्वामी दादूदयाल का आशय बिलकुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता रहा है। उस पुस्तक को स्वामी दादूदयाल की वाणी कहना सर्वथा अनुचित है।

महामहोपाध्यायजी ने मेरे लेखों के उत्तर में लिखवाया था कि उनकी रचना उस समय पूरी प्रकाशित नहीं हुई, केवल उस पुस्तक का प्रथम भाग ही छपा है—द्वितीय भाग और द्विवेदीजी की भूमिका उस समय न छपी थी। द्विवेदीजी ने यह भी लिखा था कि भूमिका देख कर उनकी पुस्तक पर समालोचना करना उचित है। तबसे ये दोनों अंग भी छप गये हैं। जयपुर के एक विद्वान् महाशय ने द्विवेदीजी की अशुद्ध रचना और स्वामी दादूदयाल का असत्य वृत्तान्त उक्त पुस्तक में देखकर मुझे उनके खंडन करने के लिए लिखा है। द्विवेदीजी ने स्वयं भी अपनी भूमिका में लिखा है कि सुजन प्रामाणिक बातें लिखें और उनके अशुद्ध लेखों का निःसंदेह खंडन करें। इन प्रेरणाओं के अनुसार मैं इस लेख को सरस्वती में प्रकाशित करता हूँ।

प्रथम, महामहोपाध्यायजी की भूमिका देखकर मुझे आश्चर्य होता है कि नागरीप्रचारिणी सभा ने 'स्वामी दादूदयालजी की वाणी' सदृश प्रभावशाली हिन्दी के ग्रन्थ का सम्पादन द्विवेदीजी को दिया। द्विवेदीजी दादू-पंथी ग्रन्थों से और गुजराती अथवा जयपुरी भाषाओं से (जो उक्त पुस्तक में बहुत कर पाई जाती हैं) अत्यन्त अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं। दूसरे, उनकी हिन्दी-भाषा भी दूषित है जैसा कि साढ़े पाँच (५॥) पृष्ठ की भूमिका (जो महामहोपाध्यायजी ने द्वितीय भाग के आदि में लगाई है) स्पष्ट दर्शाती है। आपकी हिन्दी के नमूने देखिए—

(१) "संत लोग दोहा सोरठा इत्यादि छन्दों में अनेक दृष्टान्त द्वारा जो उपदेश किए हैं उन्हें वाणी और नाना प्रकार की गीतों में जो उनके उपदेश हैं उन्हें शब्द कहते हैं।" (प्रथम पृष्ठ की आदि की ही पङ्क्तियाँ)।

(२) "कबीरदास अपने गुरू रामानन्दजी से ज्ञान न पाकर योगाभ्यास से घट के भीतर त्रिकुटी के ऊपर ब्रह्म-गुफा के बीच प्राण को चढ़ लेने से परम पुरुष का दर्शन पाया।" (चौथा पृष्ठ)

(३) "मुझे यह विश्वास है कि ये महात्मा सन्त लोग प्रायः बनारस या व्रज की भाषा में अपनी वाणी वा शब्दों को कहा होगा।" (पाँचवाँ पृष्ठ)

जिन जिन शब्दों के नीचे मैंने लकीर लगाई है उनसे भाषा की अशुद्धियाँ पाठक स्वयं देख लेंगे, अधिक बताने की आवश्यकता नहीं।

स्वामी दादूदयाल के इतिहास के विषय में जो कुछ द्विवेदीजी ने लिख मारा है वह अत्यन्त अप्रामाणिक और मिथ्या है। आप लिखते हैं कि "गोविन्दा नामक कबीर का चेला जिसका पीछे नाम कमाल पड़ा था, तिस कमाल के चेले दादूदास हैं।" इसके प्रमाण में दादूजी की वाणी के गुरदेव के अंग के तीन दोहे (साखियाँ) आपने बताये हैं जिनमें एक यह है:—

सबद दूध घृत राम रस, मथि कर काढ़ै कोइ।
दादू गुरगोविंद बिन, घटि घटि समझ न होइ॥

इस प्रकार इन दोहों में जो "गुर गोविंद" शब्द आया है उसका तात्पर्य्य परम गुरु वा अन्तर गुरु (परब्रह्म) से है न कि गोविंदा व कमाल से। जहाँ जहाँ दयालजी ने गुर गोविंद शब्द कहा है उससे केवल परमात्मा से ही मुराद है। यही आशय लेकर कबीर साहब ने भी अपनी वाणी में गुर गोविंद शब्द रक्खा है। तैसे ही भाष्यकार स्वामी शंकराचार्य्यजी ने भी "गोविंदं भज मूढ़मते" इत्यादि पद रचे हैं। कहिए द्विवेदीजी! क्या गोविंदा (कमाल) कबीरदास का भी गुरु था क्योंकि कबीरजी ने भी गुरुगोविंद शब्द का प्रयोग किया है? वाह महामहोपाध्याय जी! आपने खूब प्रमाण बताया। साधारण पंडित जन भी गोविंद शब्द विष्णु वा कृष्ण भगवान् के प्रति लगाते हैं। स्वामी दादूदयाल के गोविंद शब्द का आशय उनकी निम्न लिखित साखी से स्पष्ट है:—

गुर गोविन्द दोन्यूं षड़ा, किसके लागूं पायं।
बलिहारी गुरदेव की, सतगुर दिया बताय॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह दोहा गुरु की महिमा में कहा गया है। प्रथम पंक्ति में प्रश्न हैं, दूसरी में उत्तर। प्रश्न—जहाँ गुरुजी और गोविन्द (परमेश्वर) दोनों खड़े हों तो वहाँ किसके चरण छूने चाहिए? उत्तर में दयालजी कहते हैं कि गुरुजी के, क्योंकि परमेश्वर गुरुजी के बताने से प्राप्त होता है।

इस प्रकार के गोविन्द शब्द से कोई अजान भी न कहेगा कि दादूदयाल का गुरु गोविन्दा नामक कमाल था। दयालजी ने स्वयं अनेक स्थानों में कबीर साहब की महिमा गाई है परन्तु कबीर साहब को अथवा कमाल को कहीं भी अपना गुरु नहीं माना। वरंच कमाल का नाम भी दादूदयाल की वाणी भर में नहीं आया यद्यपि और अनेक संतों के नाम दयालजी ने प्रशंसापूर्वक दिये हैं।

स्वामी दादूदयाल ने परब्रह्म ही को अपना अंतर्गुरु कहा है। नीचे लिखी साखी देखिए :—

दादू ग़ैब मांहिँ गुरदेव मिल्या, पाया हम परसाद।
मस्तकि मेरे कर धरया, दष्या अगम अगाध॥
दादू मांहैं कीजै आरती, मांहैं पूजा होइ।
मांहैं सतगुर सेविये, बूझै बिरला कोइ॥

ग़ैब का अर्थ हृदय गुहा है और मांहैं का शरीर के अंदर।

फिर महामहोपाध्यायजी लिखते हैं, "दादू दास मोट बनाने वाली जाति (मोची) में पैदा हुए थे। इनका जन्म स्थान जौनपुर है"। "इनका पहला नाम महाबली था, स्त्री के मरजाने से घर छोड़कर साधु होकर बनारस में कबीर के चेले कमाल की अनुग्रह से पूरे योगाभ्यासी हुये।"

"ए छोटे बड़े सभी को दादा दादा कहकर पुकारा करते थे इसलिये कमाल ने इनका नाम दादू रक्खा।"

"एक समय दादू दास घूमते घूमते अजमेर के प्रसिद्ध पीर साहब के स्थान में उपदेश करने गये थे।" (भूमिका का दूसरा पृष्ठ) निःसंदेह और दृढ़तापूर्वक मैं कहता हूँ कि ऊपर लिखी बातें ज़रा भी ठीक नहीं। महामहोपाध्याय जी के ऊपर लिखे वाक्य नितान्त अशुद्ध हैं, और उनकी पंडिताई में धब्बा लगाते हैं। द्विवेदीजी ने ये बातें इस प्रकार से लिखी हैं कि साधारण जन उनको सच्ची ही मानें। कोई इतिहास-लेखक भारी प्रमाण के बिना ऐसी बातों के लिखने का साहस कदापि न करेगा। किंतु महामहोपाध्याय महाशय ने उक्त गपोड़ों को सच्ची बातों की तरह लिखकर पीछे एक अलग (पाँचवें) पृष्ठ पर (जिसको साधारण जन देखें या न देखें) लिख दिया है कि "मुझे दादू दास का लिखा हुआ प्रामाणिक जीवन चरित्र नहीं मिला, अनेक साधु महात्माओं से जो मुझे प्रामाणिक बातें मिलीं उन्हीं की चर्चा की"।

यदि आपको प्रामाणिक लिखा हुआ जीवन-चरित्र नहीं मिला तो आपने उक्त प्रकार से ऐतिहासिक वृत्तान्त लिखने की क्यों तकलीफ़ की? क्या आपको यह न सूझा कि आप एक प्रभावशाली संप्रदाय के संस्थापक को झूठे कलंक लगाते हैं और बिना प्रमाण ऐसे कलंकित वाक्य लिखने से आपको कुछ भी संकोच न हुआ? बड़े आश्चर्य की बात है कि एक महामहोपाध्याय बिना जड़ बुनियाद के, केवल किसी धूर्त के कहने से एक पूज्य संत की बाबत घृणित कुवाक्य लिख मारें! ऐसे अप्रामाणिक लेखों के लिखने का साहस करना किसी भी पंडित को शोभा नहीं देता।

फिर आपने उक्त गपोड़ों को पुष्ट करने के लिए स्वामी दादूदयाल की वाणी से एक दोहा निकाल कर उसके अनोखे अर्थ कर डाले हैं जिससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि आपने या तो बालकों की तरह धूर्त जनों की बातों में विश्वास करके उक्त बातें लिख मारीं या अपनी इच्छा से स्वामी दादूदयाल पर मिथ्या वाक्य आरोपित किये हैं।

दादूदयाल का पूर्व नाम महाबली और उनकी जाति मोटें बनानेवाली मोची बताने में आपने यह प्रमाण लिखा है :—

"साचा समरथ गुर मिल्या, तिन तत दिया बताइ।
दादू मोटा महाबली, घटि घृत मथि करि खाइ"॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस साखी में न दादूदयाल का पूर्व नाम है न उनकी जाति का ज़िक्र है। इस प्रकार के अर्थ इससे निकालना एक कपोल-कल्पना है। कोई विद्वान् जिसने स्वामी दादूदयाल की वाणी अध्ययन की है वैसा अर्थ कदापि न निकालेगा। उस पुस्तक में जहाँ यह साखी आई है वहाँ किसी के नाम व जाति का प्रसंगही नहीं है। प्रसंग है योगाभ्यास का और उसके फल का। उक्त साखी में दयालजी कहते हैं कि जब सच्चा समर्थ गुरु मिले और वह तत्वरूपी ज्ञान दे तब अपने घटि (शरीर में) नाद-बिंदु अमृतरूपी घृत पान करके, योगाभ्यासी मोटा, महाबली, (ज्ञानवान्) हो। द्विवेदीजी जो मोट शब्द लिखते हैं सो मूल पुस्तकों में मोटा महाबली है"।

द्विवेदीजी के लेखों से प्रतीत होता है कि जो प्रामाणिक जीवन-चरित्र स्वामी दादूदयाल का विद्यमान है उसे या तो उन्होंने खोजाही नहीं या उसे देखा हो तो उस पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया, क्योंकि आप आरंभ से ही उलटी चाल चले हैं। आपने एक लेख में लिखा है कि "मेरा मत है कबीर दादूदयाल, सुन्दरदास, ये सब महात्मा युक्त प्रदेश के हैं, संभव है कि दादूजी का जन्म-स्थान युक्त-प्रदेश न हो तथापि उन्होंने इस प्रांत ही में बहुत अवस्था व्यतीत की है।"

यह ख़याल सच्चे इतिहास के बिलकुल ख़िलाफ़ है। स्वामी दादूदयाल काशी की तरफ़ कभी नहीं गये। केवल कुछ सप्ताह आगरे के पास फ़तेहपुर सीकरी में अकबर शाह के साथ रहे थे। वहाँ से आगे पूर्व की ओर नहीं गये। गुजरात और राजपुतानेही में रहे। यदि महामहोपाध्याय उस उलटे ख़याल पर न चलते तो स्वामी दादूदयाल की पुस्तक की जो दुर्दशा उन्होंने की है न होती और न स्वामी जी पर मिथ्या वाक्य ही आरोपित किये जाते।

स्वामी दादूदयाल का महात्मा जन गोपालकृत जीवन-चरित्र' दादूपंथी पण्डितों के पास सर्वत्र मिलता है। उसमें स्वामी दादूदयाल का सब वृत्तान्त लिखा है। यदि द्विवेदीजी उसे पढ़ते तो दादू के नामकरण, जन्मस्थान, उनकी जाति, उनके गुरु, उनके माता-पिता, उनके निवास और कृत्य का ठीक ठीक हाल मिल जाता। मिथ्या गपोड़े जो उन्होंने लिख मारे हैं न छपते। उन अशुद्ध बातों से उन्होंने केवल दयालजी के भक्तों (जिनकी संख्या कई लाख है) का चित्त व्यर्थ दुखाया है।

जन गोपाल दादूजी के शिष्य थे। अकबर शाह के दर्बार में दयालजी के साथ मुक़ाम फ़तहपुर सीकरी में गये थे और बहुत काल तक दयालजी के साथ रहे थे। उन्होंने जो कुछ अपनी आँखों से देखा और कानों से सुना था वही सब "श्रीस्वामी दादूदयालजी की जनम परजत लीला" नामक ग्रंथ में सरस कविता में गाया है। इस ग्रंथ में स्पष्ट लिखा है कि स्वामी दादूदयाल का जन्मस्थान गुजरात देश का अहमदाबाद नगर है। गुजराती भाषा के पद जो दयालजी की वाणी में हैं वे इस बात के प्रत्यक्ष साक्षी हैं।

यद्यपि द्विवेदीजी ने स्वामी दादूदयाल की भाषा को पूर्बी बोली में कर दिया है (इस का ज़िक्र आगे आवेगा) तथापि अनेक स्थानों में वह भाषा को पूरी तौर से नहीं बदल सके। विशेष करके जो पद गुजराती भाषा में हैं उनमें कहीं कहीं तो खिचड़ी कर दी है, पर कितने शब्द आपकी पुस्तक में भी गुजराती भाषा में रह गये हैं। कहिए द्विवेदीजी! यदि स्वामी दादूदयाल की वाणी मूल में पूर्वीभाषा में थी तो आपने गुजराती भाषा के भजन कहाँ से छपवाये हैं?

गुजरात छोड़ कर स्वामीजी ने जयपुर राज्य में साँभर, आंबेर, नराणे में वास किया और मारवाड़ बीकानेर की भूमि में भी कुछ काल भ्रमण किया था। शाह अकबर की अति प्रेरणा से कुछ दिन के लिए फ़तहपुर सीकरी में रहे थे। वहाँ से पूर्व की तरफ़ नहीं गये। जौनपुर वा काशी का नाम उनके जीवनचरित्र में नहीं है।

फिर महामहोपाध्यायजी लिखते हैं कि "कमाल और दादूदास के नीच जाति होने से तुलसीदास उनसे घृणा करते थे और उन्होंने बक्रोक्ति से खलों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बन्दना की"। स्वामी दादूदयाल जैसे संतों को खल कहना सर्वथा अनुचित है। द्विवेदीजी ख़ुद लिखते हैं कि "दादूदास उस समय योगाभ्यासियों में परमप्रसिद्ध थे तथा दादूदास ने कभी किसी की निन्दा न की, सभी के ऊपर दया रखते थे।" क्या ऐसे दयाल, संतों को ही आप खल समझते हैं? भला तुलसीदास ऐसे निरपराधी संतों को खल क्यों कहते? दादूजी की बाणी भर में तुलसीदासजी का नाम ही नहीं है। मेरी जान में तुलसीदास ने दादूदयाल की निंदा नहीं की। और दयालजी का गोसांईं जी से समागम भी मेरी समझ में नहीं हुआ।

स्वामी दादूदयाल के शिष्यों में आप प्रधान शिष्य सुन्दरदास को ही बताते हैं और फिर सुन्दरदास की साहित्य-निपुणता का वर्णन करते हुए उनके एक तुच्छ सवैये को अपनी भूमिका में आपने प्रकाशित किया है। इससे प्रतीत होता है कि द्विवेदीजी दादूदयाल के शिष्यों से अथवा सुन्दरदासजी की अपूर्व कविताओं से कितने अनभिज्ञ हैं। स्वामी दादूदयाल के ५२ शिष्य और ५२ अखाड़े (महंतस्थान) प्रसिद्ध हैं। सुन्दरदासजी की उत्तम कविता आपने देखी नहीं तो सुनी ज़रूर होगी। उनके कुछ काव्य बंबई में छप चुके हैं, परन्तु अधिकतर अभी छपे ही नहीं। दयालजी के अन्य शिष्यों के भी अनेक ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए हैं। शायद आपने पंडित निश्चलदास-कृत विचारसागर और वृत्तिप्रभाकर नामक ग्रंथों के नाम तो सुने होंगे। यह अद्वितीय ग्रन्थ अद्वैत सिद्धांतों पर विख्यात हैं और इन्हें भारत के सब संप्रदायों के विद्वान् संत जन आदर और श्रद्धापूर्वक अध्ययन करते हैं और वेदान्त न्यायादि शास्त्रीय विषयों में प्रामाणिक मानते हैं। इनके सदृश भाषा में कोई और ग्रन्थ इन विषयों पर स्वतंत्र नहीं रचे गये। इनकी प्रशंसा स्वामी विवेकानंदजी ने भी की है।

अपनी भूमिका के चौथे पृष्ठ के आरम्भ में द्विवेदीजी लिखते हैं कि दादू इत्यादि महात्मा "छन्दःशास्त्र में बड़े निपुण थे"। फिर उसी पृष्ठ की २०वीं पंक्ति में आपने लिखा है कि कबीरदास कमाल और दादूदास कुछ पढ़े लिखे न थे"। यह परस्पर विरुद्ध वाक्य कैसे? आपका लिखना कि दादू [illegible] जन्म बनारस प्रांत में हुआ था अत्यंत अप्रामाणिक है। आप दादूदयाल के जीवनचरित्र अथवा निवास स्थानों से बिलकुल नावाकिफ़ जान पड़ते हैं, इसलिए आपका लिखना कि दादूजी के उपदेशों का विशेष आदर बनारस में न हुआ बिना बुनियाद के है।

द्विवेदीजी ने २० अप्रैल सन् १९०७ के भारतमित्र में लिखा था कि "इन महात्माओं (कबीर दादूदयाल आदि) का आदर मारवाड़ गुजरातादि में विशेष हुआ है। इस कारण भक्त लोगों (ने) इनके ग्रंथों की भाषा को अपनी भाषा में बदल दिया है।" फिर भूमिका के ४—५ वें पृष्ठों पर आप लिखते हैं कि "जयपुर मारवाड़ इत्यादि प्रान्तों में जैसी लिखने और बोलने की रीति ज्यूँ त्यूँ जाणाँ घणाँ इत्यादि प्रसिद्ध हैं उसी बोली में लिखे हुये इन के ग्रंथ मिलते हैं (नागरीप्रचारिणी) सभा के योग्य सभ्यों की सम्मति से मैं (सुधाकर द्विवेदी) ने दादू के ग्रंथों से मारवाड़ी लेखप्रणाली को बदल कर बनारस की लेख प्रणाली पर इस ग्रंथ को छपवाया, मुझे यह विस्वास है कि ए महात्मा संत लोग प्रायः बनारस या ब्रज-भाषा में अपनी बाणी वा शब्दों को कहा होगा, इस लिए इस प्रान्त की रीति से मैंने केवल लिखावट को बदला है शब्दों को ज्यों का त्यों रक्खा है।'

महामहोपाध्यायजी ने एक भी प्रमाण ऐसा नहीं दिया कि जिससे यह सिद्ध हो कि स्वामी दादूदयाल युक्त-प्रदेश के थे। वैसेही आपका कथन कि मारवाड़ के भक्त जनों ने दादूदयाल की भाषा बदल डाली है केवल कल्पित है। कोई विद्वान् बिना पुष्ट प्रमाण के ऐसा न कहेगा। यदि आपके पास दादूदयाल की बाणी की कोई पुरानी प्रति पूर्वी बोली में होती तो आपका कथन कोई सच भी मान लेता पर ऐसा एक भी प्रमाण आपने नहीं दिया है, केवल अपने विश्वास पर आप बैठे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि मारवाड़ी जन दादू की असली भाषा में फेरफार करते तो संपूर्ण पुस्तक को केवल मारवाड़ी ही भाषा में कर डालते। वैसे ही गुजराती जन अपनी गुजराती भाषा में संपूर्ण पुस्तक लिख मारते, कोई दूसरी भाषा उसमें न रहने देते। किन्तु इसके विपरीत दादूदयाल की वाणी में गुजराती, मारवाड़ी, पंजाबी, फ़ारसी इत्यादि अनेक भाषायें पाई जाती हैं जिनसे यह साफ़ ज़ाहिर है कि दादूदयाल की असली रचना जैसी की तैसी मूल पुस्तकों में मौजूद है। उसकी भाषा में कोई ऐसा अदल बदल नहीं हुआ जैसा कि महामहोपाध्याय महाशय का विश्वास है। भक्तजनों की असली भाषा के बदलने का दोष लगाना सर्वथा असंगत है। दयालजी के संत जन वाणी के असली शब्दों को बनाये रखने में अत्यन्त दृढ़-चित्त हैं, वे प्राचीन शब्दों में एक मात्रा का बदलना भी अनुचित समझते हैं। दयालजी के पंथ में अनेक अद्वितीय विद्वान् हो गये हैं और अब भी विद्यमान हैं। यदि वर्तमान वाणी में कोई निरर्थक शब्द होता तो ये पंडित-जन अवश्य सुधार देते, किन्तु स्वामी दादूदयाल की वाणी में वैसी कोई बात ही नहीं है, केवल द्विवेदीजी की भूल और नासमझी है। दयालजी की वाणी की हस्त-लिखित पुस्तकें केवल राजपूताने ही में नहीं, पंजाब गुजरातादि अनेक प्रान्तों में भी मिलती हैं और उन सबों में पाठ एकही तरह का है। उनमें कहीं द्विवेदीजी की रचना के शब्द व पूर्वी रीति की बनावट नहीं है।

द्विवेदीजी ता० २० अप्रैल १९०७ के भारतमित्र में स्वयं स्वीकार करते हैं कि नागरी-प्रचारिणी सभा में आई हुई दादूदयाल की हस्त-लिखित पुस्तकों में भी वही मारवाड़ी, गुजराती रीति के पाठ हैं। ऐसी हालत में स्वामी दादूदयाल की वाणी के शब्दों का व लेख-प्रणाली का बदलना अत्यन्त अनुचित हुआ है। पण्डित सुधाकर द्विवेदीजी की संपादित पुस्तक के दोनों भागों में शायद ही कोई पंक्ति ऐसी मिले जिसमें स्वामी दादूदयाल के मूल शब्द मिलें। प्रायः प्रत्येक दोहे व पद में कुछ न कुछ हेर फेर द्विवेदीजी ने करही डाला है। कहीं वाक्यों का रूप बदल दिया है, कहीं एक वाक्य के बदले दूसरा वाक्य कर दिया है, कहीं वाक्य के वाक्य उड़ा दिये हैं। जिससे स्वामी दादूदयाल की रसीली कविता और मर्म-भेदी शब्दों का गुण बिलकुल जाता रहा है और अर्थ का लोप हो गया है। अगले लेख में मैं द्विवेदीजी की रचना को विस्तार से प्रकट करूँगा जिससे पाठक स्पष्ट देखलेंगे कि नागरी प्रचारिणी-सभा की छपवाई "श्रीदादूदयाल की वाणी" पण्डित सुधाकर द्विवेदी की बानी है न कि स्वामी दादूदयाल की।

चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी।

होली का हर्ष।

(१)

बीत गई है शीत-भीति अब वर वसन्त ऋतु आई,
चारों ओर एक अनुपम सी छटा विलक्षण छाई।
धारण किया प्रकृति ने मानों नवजीवन मन भाया,
जिधर देखिए उधर नया ही वेषभाव दरसाया॥

(२)

जलाशयों में शतपत्रों पर भृङ्ग गान करते हैं,
कोकिलादि के शब्द वनों में सुधा स्रोत झरते हैं।
राग-रङ्ग ग्रामों के, तनु में अति उमङ्ग भरते हैं,
सभी ओर के दृश्य हृदय को हठपूर्वक हरते हैं॥

(३)

न तो बहुत सरदी ही पड़ती न अब बहुत गरमी है,
दोनों ने आपस में मिल कर धारण की नरमी है।
निशानाथ निशि में सुख देते दिन में रवि तम हरते,
हिल-मिल कर दोनों यों जगका नित्य अमितहित करते॥

(४)

उधर विपुल वृक्षों ने कोमल नव पल्लव धारे हैं,
इधर मनुष्यों ने भी नूतन पहने पट प्यारे हैं।
फाग-रङ्ग की धूम इधर है उधर प्रसून खिले हैं,
जड़-जङ्गम समय-प्रवाह में एक समान मिले हैं॥

(५)

शीतल-मन्द-सुगन्ध समीरण झूम झूम कर चलता,
चूम चूम कर मृदु पुष्पों को पंखा सा है झलता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानो भूतल-दृश्य देख अब दिनकर भी ललचाते,
धीरे धीरे अपने रथ को हैं नभ में चलवाते॥

(६)

फाग-रङ्ग की आज हमें भी अति उमङ्ग है मन में,
बद्ध न होना पड़ता किस को प्रकृति-वधू-बन्धन में?
धूम मचाये बिना आज है हमसे रहा न जाता,
विवश वही करना पड़ता है जो कुछ समय कराता॥

(७)

फाग खेलने की आतुरता मन में बहुत बड़ी है
किन्तु हाय! क्या करें? बीच में बाधा एक पड़ी है।
जो न फाग खेलें तो मन को किस प्रकार बहलावें?
खेलें तो नव-सभ्य-सभा में अति असभ्य कहलावें!

(८)

सचमुच ही क्या फाग खेलना है असभ्यता-लक्षण?
सभ्यों की यह नई समझ है अद्भुत और विलक्षण!
किन्तु हमारी ग्राम्य-बुद्धि में यही बात दृढ़ होली—
"पारस्परिक-प्रेम-बन्धन को दृढ़ करती है होली"।

(९)

कुछ बातें अवश्य ऐसी हैं इस उत्सव में फैली,
हैं जो तजने योग्य सर्वथा मैली और कुचैली।
उनके कारण जो होली पर व्यर्थ कलङ्क लगाते,
मानो वे अपना अमूल्य धन अपने आप ठगाते॥

(१०)

किसी हेतु से तनु में कोई रोग कभी हो जावे,
तो क्या कर न चिकित्सा तनु की उसको काट गिरावे?
होली से चिढ़ने वालों का क्या ऐसा ही मत है?
है, तो उनके मत के सम्मुख शीश हमारा नत है॥

(११)

चिह्न पूर्व गौरव के अपने छोड़ दिये सब हमने,
शेष रहे थे उत्सव सो भी भुला दिये अब हमने।
अब उन्नति में क्या विलम्ब है, देखो शिखर निकट है,
हे भगवान! गिरें मत उलटे अवसर बड़ा विकट है॥

(१२)

"थे असभ्य-कृषिकार आर्य्यगण पूर्व पुरुष बेचारे,
उनके भावों से क्या होंगे पूरे काम हमारे।"
बलिहारी इस सभ्य-भाव की गहरा ज्ञान बढ़ा है,
दैव! दैव!! हम पर उन्नति का अद्भुत भूत चढ़ा है!!!

(१३)

प्यारे देश-भाइयो! देखो, जागो जागो जागो,
सर्वनाश होने वाला है अब भी निद्रा त्यागो।
तत्त्व-पूर्ण विज्ञान-विहित हैं उत्सव सभी हमारे,
करो यत्न से उनकी रक्षा भूलो उन्हें न प्यारे!

(१४)

आओ एक साथ मिल कर हम सुख से होली खेलें
सींचें राग-रङ्ग से अपनी ऐक्य भाव की बेलें।
मिलें परस्पर शुद्ध रूप से ईर्ष्या दूर भगावें,
हृदय-धाम में सहृदयता की निर्मल ज्योति जगावें।

(१५)

थल में फूल सलिल में शतदल नभ में रवि-शशि हँसते
पशु-पक्षी भी प्रमुदित होकर प्रेम-जाल में फँसते।
रोना तो है लगा जन्म भर हम भी हँस लें आओ,
जो न आज भी हँसे हर्ष से तो कब हँसें बताओ?

(१६)

चाहे जो हो किन्तु आज तो खेलेंगे हम होली,
लाल करेंगे सबके आनन ले गुलाल की झोली।
हे सभ्यो! हम ग्रामीणों का क्या तुम साथ न दोगे?
हमें छोड़ कर, थोड़े से तुम, बोलो क्या कर लोगे?

(१७)

रङ्ग डालते हैं हम तुम पर देखें तुम क्या करते,
आज तुम्हारी वक्र दृष्टि से ज़रा नहीं हम डरते।
देखो, रोको मत, होंठों पर हँसी तुम्हें वह आई,
इसी हँसी के लिए आज का है यह शुभ दिन भाई॥

(१८)

आहा! क्या ही दिव्य दृश्य है दूर हुई सब पीड़ा,
करते हैं हिल-मिल कर हम सब प्रेम रङ्ग की क्रीड़ा।
सब पर आज एकसी मानों अरुण घटा है छाई,
किं वा यह अनुराग-मूर्ति ही प्रकटी है मन भाई॥

(१९)

देखो, कैसा पुण्य योग है प्रेम बढ़ानेवाला,
आलोकित करता है जग को यह उज्वल उजियाला।
धन्य हमारे भव्य-भाव का यह नित-नव्य नमूना,
हँसे अज्ञ जन चाहे इस पर हो न कभी यह ऊना॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२०)

पूर पयोनिधि को भी सकता यह सम्मिलन हमारा,
तत्त्व सत्त्व भावों का इसमें भरा हुआ है सारा।
हे यह ऐसा समय, हमारे सब दुखों को खोवे,
हे हरि! कभी हिन्दुओं का यह शुभ दिन अस्त न होवे॥

(२१)

सभी ओर यह आज हमारी गूँज रही बोली है—
जय जय जय राधा-माधव की होली है होली है।
था जिसने प्रह्लाद भक्त को पावक से उद्धारा,
बना रहे अनुकूल सर्वदा रक्षक वही हमारा॥

मैथिलीशरण गुप्त।

एटम् ।

ठक! क्या आप किसी ऐसी वस्तु का अनुमान कर सकते हैं कि उससे अधिक भीमकाय फिर कोई वस्तु न हो, अथवा ऐसी वस्तु का कि उससे सूक्ष्मतर कोई चीज़ न हो? आप ऐसी चीज़ों का ज़रूर अनुमान कर सकते हैं। आइए, हम और आप इसके विषय में कुछ विचार तो करें। हम प्रथम बड़ी बड़ी चीज़ों से शुरू करेंगे। सबसे बड़ा पदार्थ जिसको हम जानते हैं वह यह ताराकीर्ण विश्व (starry universe) है जिसके अन्तर्गत हम रहते हैं।

यदि हम कहें कि इस ताराकीर्ण विश्व का अगणित मीलों के फ़ासले पर अन्त हो जाता है तो यह विचार भीषण अवश्य है, परन्तु क्या आप समझते हैं कि यह सबसे बड़ी चीज़ है जो हमारी कल्पना में आ सकती है? कदापि नहीं। ज़रा विचार कीजिए। जिस क्षण आपने यह कहा कि इस ताराकीर्ण विश्व की अन्तिम सीमा इतनी दूर पर है, उसी क्षण आपकी कल्पना शक्ति आगे को क़दम मारती है और आपके सम्मुख एक और दीर्घतर पदार्थ का चित्र खेंच देती है जो इस विश्व के परे होकर इसे घेरे हुए है।

आइए, अब लघुता का विचार करें और देखें कि हमको इसकी सीमा कहाँ मिलती है। एक पत्थर का टुकड़ा लेकर इसके टुकड़े टुकड़े कर डालिए। इन टुकड़ों को फिर ऐसा तोड़िए कि इतने बारीक होजायँ कि साँस से उड़ जायँ। अगर आप इस बारीक पत्थर के एक ज़र्रे को लेकर, सूक्ष्म दर्शनयंत्र (microscope) से बड़ा (magnify) करके, किसी औज़ार से पहले की भाँति तोड़ सकते तो वह पहले से भी अधिक बारीक हुबाब हो जाता। यदि इस हुबाब का एक ज़र्रा फिर उसी भाँति पीसा जाता, और यह क्रम अगणित बार किया जाता तो सूक्ष्म से सूक्ष्म ज़र्रे मिल सकते। यह ज़र्रे चाहे जितने सूक्ष्म क्यों न हो जायँ आप इनमें से हर एक को और भी विभेद्य (divisible) ख़याल कर सकते हैं। हाँ उनका विभक्त करना उस समय असम्भव प्रतीत हो सकता है जब वे बिलकुल सत्ता-रहित (nothing) हो जायँ।

इन सूक्ष्म से सूक्ष्म ज़र्रों को, जिनसे सूक्ष्मतर ज़र्रे फिर विचार में नहीं आ सकते एटम्स (atoms) या अणु कहते हैं। विज्ञान (science) का यह सिद्धान्त है कि जितने पदार्थ इस सृष्टि में हैं इन्हीं एटम्स (atoms) से बने हुए हैं। कुछ वर्ष हुए एटम् (atom) सृष्टि में सबसे सूक्ष्म वस्तु समझी जाती थी। यह ख़याल था कि एटम् (atom) के भाग नहीं हो सकते। परन्तु अब प्रसिद्ध हुआ है कि कम से कम इस विषय में सायंस (science) यानी विज्ञान का सिद्धान्त ग़लत है। एटम् (atom) भी विभक्त हो सकता है और एटम् (atom) से भी अधिक सूक्ष्म चीज़ है। इसमें शक नहीं कि कोई सूक्ष्म दर्शन-यंत्र (microscope) ऐसा नहीं कि जिससे हम एटम् (atom) को देख सकें, परन्तु एक प्रकार के गणित से उसके परिमाण (size) का हम अनुभव कर सकते हैं। पानी की एक बूँद की मिसाल लीजिए। यदि हम किसी जादू के सूक्ष्म दर्शनयंत्र (microscope) से इस पानी की बूँद को इतना महान् (magnify) कर सकते कि वह भूगोल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा दिखाई देता, तो, लार्ड केलविन के कथनानुसार जो पदार्थ विज्ञान के एक बड़े प्रसिद्ध वेत्ता हैं—इस बूँद के ज़र्रे (atoms) एक छोटे नींबू की भाँति दिखाई देते अर्थात् पानी की एक बूँद का एटम् या अणु से, परिमाण (size) के लिहाज़ से, वही सम्बन्ध है जो इस भूगोल का एक छोटे नींबू से है।

बस प्रकृति में सबसे छोटा और भाग-रहित होने के स्थान, प्रत्येक अणु या एटम् (atom) बहुत से पार्टिकल्स परमाणुओं से बना हुआ होता है। यह (particles) परमाणु (atoms) अणु से उतनेही सूक्ष्म होते हैं जितने अणु (atoms) उन चीज़ों से होते हैं जो दिखाई देती हैं।

यदि हम अपनी कल्पना शक्ति द्वारा इतने छोटे हो जायँ कि एक अणु (atom) के अन्दर जा सकें तो एक अद्भुत चमत्कार दिखाई देगा और न सिर्फ़ हम उसके भीतर जा सकते हैं, परन्तु एक बार उसके मध्य में बैठने से हमको यह मालूम होता है मानो हम एक बड़े गुंबद के भीतर हैं। वह अणु (atom) जो हमको, जब हम साधारण मनुष्य की लम्बाई चौड़ाई रखते थे अर्थात् एटम् (atom) के भीतर नहीं गये थे बहुत सूक्ष्म जान पड़ता था। हमारे सूक्ष्म होजाने पर आकाश की भाँति एक बड़ी सी चीज़ जान पड़ता है। जिस तरह आकाश में नक्षत्र इत्यादि हैं इसी तरह एटम् (atom) या अणु के वृत्त के भीतर भी ऐसी ही कुछ चीज़ें हैं जो एटम् (atom) के केन्द्र (centre) के चारों तरफ़ परिभ्रमण (revolve) किया करती हैं। इन चीज़ों को (electrons) इलेक्ट्रांस कहते हैं। प्रत्येक इलेक्ट्रांन (electron) विद्युत् की शक्ति से परिपूर्ण रहता है और एटम् (atom) के भीतर वृत्ताकार (in a circle) घूमा करता है। जिस तरह चन्द्रमा पृथ्वी के और पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमा करती है। और यद्यपि वे एटम् (atom) के भीतर बन्द हैं तथापि उनको उसके भीतर इतनी जगह मिल जाती है कि बिना एक दूसरे से टकराये अपने अपने ध्रुव में घूमते रहते हैं, ठीक उसी तरह जिस तरह ग्रह और नक्षत्रादि (planets) अपने अपने ध्रुव में घूमा करते हैं।

अब मालूम हुआ कि एटम् (atom) के भीतर अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थों की एक दुनिया बसी हुई है। एटम् (atom) एक मुर्दा, बेहरकत, ठोस और अविभेद्य (indivisible) वस्तु नहीं है बल्कि एक महल के मानिन्द है जो विद्युत् शक्ति से भरा हुआ है, जिसमें चलती फिरती सूरतें हैं और जिसमें एक अद्भुत जीवन है।

इस एटम् (atom) की दुनिया के बाहर निकल कर जब हम फिर अपने असली परिमाण (size) और आकार में आते हैं और अपने एक अँगूठे के नाखून को देखते हैं तो हम चकित होजाते हैं; क्योंकि यह नाखून जो केवल ख़ून से लाल हड्डी का एक टुकड़ा है अगणित (atoms) एटम्स से बना हुआ है जिनमें हर एक में ऐसी दुनिया बसी हुई है जिसको हम और आप अभी देख चुके हैं।

सरयूनारायण त्रिपाठी।

पुस्तक-परीक्षा।

१—"हिन्दू-विवाह और उसके प्रचलित दूषण"—इस पुस्तक का आशय इसके नाम ही से प्रकट है। विवाह क्या है और आज कल बहुतेरे हिन्दू उसे क्या समझते हैं; बस इसी बात का विचार एक बड़े निबन्ध में किया गया है। इसके लेखक हैं पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय। पुस्तक एक आने के टिकट भेजने से मन्त्री अवध हिन्दी-हितैषी पुस्तकालय, बरखेरवा, बघौली, हरदोई से बिना मूल्य प्राप्त होगी।

❀

२—वाजसनेयोपनिषद्—की टीका पण्डित भीमसेन मिश्र ने संस्कृत और सरल हिन्दी में की है। मैनेजर ब्रह्म प्रेस, इटावा से ≡) में मिलती है।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ११] १ मई, १९१०। वैशाख कृष्ण ७, १९६७। [संख्या ५

महात्मा श्रीसूरदासजी।

सूरदास ने बिरच सूरसागर अति भारी।
कृष्ण-भक्ति की ललित लहर जग में विस्तारी॥
लिया विषै जो हाथ दूर तक उसे निबाहा।
नहिँ छोड़ा यक भाव शब्द-सागर अवगाहा॥
कर अमित विषै बर्नन बिसद सकल परम सुन्दर कहे।
अब कविगन के हित ये विषय इस कवि के जूठे रहे॥

श्री

सूरदासजी की गणना अष्ट छाप अर्थात् व्रज के आठ कवीश्वरों में थी। इन आठों कवियों के नाम ये थे:—सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीत स्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास, और नन्ददास। इनमें से प्रथम चार महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य्यजी के, और अन्तिम चार श्रीस्वामी विट्ठलनाथजी के सेवक थे। व्रज-भाषा के अरुणोदय-काल में व्रज में ये आठों कवि हो गये हैं, और सभों ने पदों द्वारा श्रीकृष्णचन्द आनन्दकन्द का यश-कीर्त्तन किया है। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक बाबू राधाकृष्णदासजी ने, जो काल की कराल गति से हम लोगों को छोड़कर हालही में परलोकवासी हुए हैं, खेमराज श्रीकृष्णदास के छापेखाने में सूरकृत "श्रीसूरसागर" नामक ग्रन्थ संवत् १९५३ वि० में छपाया था। उसी में भूमिका की भाँति उन्होंने सूरदासजी का जीवन-चरित भी लिखा था। इस लेख के लिखने में उस जीवन-चरित्र से भी सहायता ली गई है। इस लेख में जहाँ पृष्ठ और संख्या का हवाला है वह इसी पुस्तक का है।

सूरदासजी का जन्म अनुमान से संवत् १५४० वि० अर्थात् सन् १४८४ ई० में हुआ था, और उनकी मृत्यु संवत् १६२० वि० में होना अनुमान किया जाता है। उनकी मृत्यु का संवत् नितान्त अनुमान पर निर्भर है, क्योंकि जब ६७ वर्ष की अवस्था में उन्होंने 'सूरसारावली' लिखी तो अस्सी वर्ष की अवस्था तक उनका जीवित रहना ठीक जँचता है। बाबू राधाकृष्णदासजी ने लिखा है कि "मुझे उनकी अवस्था का लग भग अस्सी वर्ष की होने का पक्का प्रमाण मिला है," पर वह पक्का प्रमाण क्या है सो उन्होंने नहीं लिखा। सूरदासजी के जन्म-विषयक प्रमाण में यही वक्तव्य है कि सूरसारावली के विषय सूरदासजी ने स्वयं उसी ग्रन्थ के १००२ नम्बर का छन्द यों लिखा है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरू प्रसाद होत यह दरसन सरसठि बरस प्रवीन।
शिव बिधान तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहिँ लीन॥

यह सूरसारावली एक प्रकार से सूरसागर की सूची कही जा सकती है और यह भी जान पड़ता है कि सूरसागर के समाप्त होने के कुछ ही दिन पश्चात् बनाई गई होगी, क्योंकि ग्रन्थ बनाने पर उसकी सूची लिखने की आवश्यकता शीघ्रही होती है। सूरदासजी ने साहित्यलहरी नामक एक और ग्रन्थ बनाया है और उसमें सूरसागर में लिखित एवं अन्य दृष्ट कूट पदों का छाँट कर संग्रह किया है। जान पड़ता है कि सूरसागर के बन जाने के कुछ ही दिन पश्चात् यह ग्रन्थ भी बना होगा। इसमें सूरदासजी ने यों संवत् दिया है :—

मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरी नन्द को लिखि सुबल सम्वत पेख॥
नन्दनन्दन मास छै ते हीन त्रितिया बार।
नन्दनन्दन जनमते हैं बाण सुख आगार॥
तृतिय ऋक्ष सुकर्म्म जोग बिचारि सूर नवीन।
नन्दनन्दन दास हित साहित्य लहरी कीन॥

मुनि=७, रसन=० (जिसमें कोई रस नहीं है, अर्थात् जो कुछ भी नहीं है, याने शून्य है), रस=६, दशन गौरीनन्द=१,=१६०७; नन्दनन्दन मास=बैशाख (मधु), छै ते हीन तृतिया=अक्षै तृतीया, तृतिय ऋक्ष=कृत्तिका नक्षत्र, सुकर्म जोग (देखो सरदार कृत सौर दृष्ट कूट की टीका पृष्ठ ७१)। अतः यह विदित हुआ कि साहित्यलहरी संवत् १६०७ वि० में लिखी गई, और यह ऊपर कहा जा चुका है कि यह सूरसारावली के साथही साथ लिखी गई थी। अतः इसके लिखने के समय भी सूरदासजी की अवस्था ६७ साल की थी। सो उनका जन्मकाल संवत् १५४० वि० हुआ। परन्तु इस हिसाब में यह मान लिया गया है कि सूरसारावली और साहित्यलहरी एकही समय में बनीं। यह अनुमान ऐसा दृढ़ नहीं है कि इस पर निश्चयात्मक रीति से कोई कुछ कहे। सम्भव है कि उन्होंने साहित्यलहरी सूरसागर के कुछही पीछे बनाई हो और सूरसारावली बनाने का विचार उनके चित्त में बहुत दिन पश्चात् उठा हो। परन्तु इतना निश्चय अवश्य है कि ये दोनों ग्रन्थ सूरसागर के पीछे बनाये गये क्योंकि एक उसकी सूची और दूसरा बहुत करके उसका संग्रह है। यह भी जान पड़ता है कि सूरदासजी ने सूरसागर बूढ़ी अवस्था में समाप्त किया होगा, क्योंकि वे एक लाख पद बना चुकने के पीछे सूरसारावली बनाने लगे थे और वह सब पद सूरसागर में हीं सन्निविष्ट थे, क्योंकि इन तीन ग्रन्थों के सिवा इनका कोई चौथा ग्रन्थ नहीं देख पड़ता। तब बूढ़ी अवस्था में सूरसागर बना कर ये महाशय बहुत दिन तो जीवित रहे ही न होंगे, अतः सूरसारावली और साहित्यलहरी के समयों में चाहे कितनाही अन्तर क्यों न हो वह सम्भवतः दस वर्ष से अधिक न होगा। अतः संवत् १५४० वि० के दो चार वर्ष इधर उधर का इनका जन्मकाल अवश्य होगा।

सूरदासजी लिखते हैं कि इनके गुरु श्रीवल्लभाचार्य्य महाप्रभु थे, और श्रीगोस्वामी बिट्ठलनाथजी ने सूरदासजी को अष्ट छाप में रक्खा। यथा—

श्रीवल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो।
(सूरसारा० नं० ११०२)। अपि गोसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी ने लिखा है कि आचार्य्यजी के जन्म एवं मरण काल संवत् १५३५ एवं १५८७ वि० थे, और गोस्वामीजी के १५७२ एवं १६४२ वि०। जब सूरदासजी आचार्य्यजी के शिष्य थे तब निश्चय है कि उनकी अवस्था में भी छोटे होंगे। अतः सूरदासजी का जन्म संवत् १५३५ वि० के पीछे का होगा। उनका मरण काल भी संवत् १५७२ वि० से बहुत पीछे का होगा, क्योंकि उस संवत् में जन्म ग्रहण करके गोस्वामीजी ने बहुत दिनों में प्रतिष्ठा प्राप्त की होगी और तब अपने चार शिष्यों के साथ सूरदास को अष्ट छाप में थापा होगा। अतः इस हिसाब से भी सूरदास जी के जन्म और मरण का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५४० और १६२० के लग भग ठहरते हैं। शिवसिंह-सरोज में इनका जन्म-काल संवत् १६४० वि० दिया गया है परन्तु उसका कोई प्रमाण नहीं दिया गया। अतः वह अग्राह्य है।

श्रीगोस्वामी बिट्ठलनाथजी के पुत्र गोकुलनाथ-जी ने चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता नामक एक पुस्तक लिखी है। भक्तमाल में भी बहुत भक्तों की जीवनी दी गई हैं। इन दोनों पुस्तकों में सूरदास का वृत्तान्त लिखा है, परन्तु वह बहुत छोटा होने के कारण सन्तोषदायक नहीं है। सूरदासजी के वंश इत्यादि के विषय में कुछ गड़बड़ पड़ गया है। वह दो प्रामाणिक पुस्तकों में दो प्रकार लिखा हुआ है। सरदारकृत "सूरदास के हृष्ट कूट" नामक पुस्तक के ७१ वें पृष्ठ पर छन्दावली नं० ११० में कवि-वंश वर्णित है। उससे विदित होता है कि इनका पूर्व पुरुष प्रार्थज गोत्रीय जगात-वंशवाला ब्रह्मराव नामक भद्र पुरुष था। इन्हीं के वंश में पृथ्वीराज के राजकवि चन्द्र उत्पन्न हुए जिनको पृथ्वीराज ने ज्वाला देश दिया। उसके चार पुत्र हुए जिनमें प्रथम राजा हुआ। उसके द्वितीय पुत्र का नाम गुणचन्द था। उसका पुत्र शीलचन्द और शीलचन्द का वीर-चन्द हुआ—वीरचन्द रण थम्भौर के राजा हम्मीर देव का सखा था। उसके वंश में हरिचन्द बड़ा विख्यात हुआ। उसका पुत्र आगरे में रहा जिसके सात पुत्र हुए जिनके नाम ये थे:—कृतचन्द, उदार-चन्द, रूपचन्द, बुद्धिचन्द, देवचन्द, प्रबोधचन्द, और सूरजचन्द। सातवाँ पुत्र सूरजचन्दही हमारा विख्यात कवि सूरदास था। सूर के सब भाई शाह से युद्ध करके परम गति को प्राप्त हुए। सूरजचन्द अन्धा था अतः वह एक कुएं में जा पड़ा और छः दिन तक उसी में पड़ा रहा परन्तु किसी ने पुकार नहीं सुनी। तब सातवें दिन यदुपति ने उसे बचाया।

"परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार।
सातयें दिन आय यदुपति कियो आपु उधार॥
दिव्य चख दै कही सिसु सुनु जोगबर जो चाइ।
हौं कही प्रभु भगति चाहत शत्रु-नाश स्वभाइ॥
दूसरो ना रूप देखौं देखि राधा-श्याम।
सुनत करुणा-सिन्धु भाखी एवमस्तु सुधाम॥
प्रबल दच्छिन बिप्रकुल ते शत्रु ह्वै है नाश।
अखिल बुद्धि विचार विद्या मान मानै मास॥

इस लेख के अनुसार सूरदासजी भाट साबित होते हैं, क्योंकि एक तो जगात कोई ब्राह्मण नहीं हैं वरन् जगातिया भाट को कहते हैं, दूसरे पृथ्वीराज के चन्द कवि तो निश्चय ही भाट थे। यहाँ शत्रु से मुसलमान बादशाह से प्रयोजन है क्योंकि उन्हीं से लड़कर सूर के सब भाई मारे गये थे। बरदान यह हुआ कि दक्षिण के पेशवा राजा शत्रुनाश करेंगे। उस समय न मरहठों का ज़रा भी बल था, न शिवाजी तक, जो क्षत्रिय राजा थे, उत्पन्न हुए थे। तो फिर पेशवाओं का, जो पीछे उनके सचिव हुए, इतना प्रचंड अभ्युदय सोचना कि वे मुसलमानों को परास्त करने में कभी समर्थ होंगे (जैसा कि अन्त में वे हुए) किसी का काम न था। अतः साफ़ ज़ाहिर है कि ये छन्द सूरदासजी के बनाये हुए नहीं हैं, वरन् उनसे लग भग दो सौ वर्ष पीछे पेशवाओं का अभ्युदय और मुग़लों का पतन देखकर किसी भाट ने प्रायः बालाजी बाजीराव के समय में ये छन्द बनाकर सूरदास की कविता में सन्निविष्ट कर दिये हैं। इन छन्दों के कपोलकल्पित होने का दूसरा बड़ा भारी प्रमाण यह है कि श्रीगोकुलनाथ-जी ने अपने चौरासीचरित्र में और मियांसिंह ने भक्तविनोद में सूरदास को ब्राह्मण कहा है। ये गोकुलनाथजी श्रीगोस्वामी बिट्ठलनाथजी के पुत्र थे और गोस्वामीजी सूरदासजी के मरने के समय ४८ वर्ष के थे। अतः समझ पड़ता है कि गोकुलनाथ-जी भी उस समय २०—२५ वर्ष के होंगे। फिर गोस्वामीजी और सूरदासजी में प्रेम और घनिष्ठ सम्बन्ध था। अतः यह विचार तक मन में नहीं आता कि गोस्वामीजी अथवा उनके पुत्र सूरदास-जी का कुल तक न जानते हों। इसी प्रकार चौरासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार्त्ता एवं भक्तविनोद में शत्रुनाश वाले बरदान का कोई हाल नहीं लिखा हुआ है यद्यपि कूपपतन का वर्णन है। यह सम्भव नहीं है कि यदि यह बरदान सूरदासजी को मिला होता तो कूपपतन का वर्णन होते हुए भी इन दोनों पुस्तकों में यह हाल न लिखा होता। फिर यह भी सम्भव नहीं कि यदि इनके छः भाई मारे गये होते तो ये दोनों लेखक उस बात को न लिखते।

इन सब कारणों से यह सिद्ध होता है कि चौरासी वार्त्ता एवं भक्तमाल के अनुसार सूरदास जी वास्तव में सारस्वत ब्राह्मण थे और इनके पिता का नाम रामदास था। इनका जन्म दिल्ली के समीपस्थ सीही ग्राम-निवासी दरिद्र माता-पिता के यहाँ हुआ था। अब यह प्रश्न उठता है कि सूरदास जन्मान्ध थे या नहीं। इसके विषय में सिवा भक्तमाल के कोई प्राचीन प्रमाण तो नहीं मिला, परन्तु रीवाँनरेश महाराज रघुराजसिंहकृत रामरसिकावली में भक्तमाल के आधार पर लिखा हुआ है कि:—'जनमहिते हैं नैन-बिहीना'। हमें तो इस लेख पर विश्वास नहीं आता। सूरदास ने अपनी कविता में रंगों के, ज्योति के, और अनेकानेक हावभावों के ऐसे ऐसे मनोरम वर्णन किये हैं, और उपमायें ऐसी ऐसी उत्तम कही हैं कि यह किसी प्रकार निश्चय नहीं होता कि कोई व्यक्ति बिना आँखों देखे ऐसा वर्णन केवल श्रवण-द्वारा प्राप्त ज्ञान से कर सकता है। चौरासी वार्त्ता में इनका जन्मान्ध होना नहीं लिखा है। एक किंवदन्ती है कि जब सूरदास अन्ध न थे तब वे एक युवती को देख कर उस पर आसक्त हो गये थे और यह दोष नेत्रों का समझ कर तुरन्त दो सुइयों से अपने दोनों नेत्र फोड़ डाले थे। यह बात सत्य जँचती है। सम्भव है कि स्त्री का विषय था। इस कारण चौरासी वार्त्ता में यह न लिखा गया होगा।

भक्तमाल में लिखा है कि इनके माता-पिता ने आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत किया था। कुछ काल में इनके माता-पिता मथुरा दर्शन को गये। उस समय सूरदास भी उनके साथ थे। जब वे घर पलटने लगे तब सूरदास ने उनसे विनती की कि "अब मुझे यहीं रहने दो।" इस पर उनके माता पिता रोने लगे और बोले "तुम्हें अकेले किसके सहारे छोड़ जावें?" तब सूर ने कहा "कृष्णचन्द्र का सहारा क्या थोड़ा है?" इस पर एक साधु ने कहा "मैं इस बालक को अपने साथ रक्खूँगा।" तब सूर के माता-पिता रोते कलपते घर चले गये और ये महाराज ब्रज में रह गये। एक बार अन्ध होने के कारण सूरदास एक कुएँ में जा पड़े और छः दिन तक उसी में पड़े रहे, तब सातवें दिन इन्हें किसी ने निकाला। सूर ने समझा कि स्वयं कृष्ण भगवान् ने उन्हें निकाला। बस इन्होंने निकालनेवाले की बाँह पकड़ ली पर वह बाँह छुड़ा कर भाग गया, जिस पर इन्होंने यह दोहा पढ़ा:—

'बाँह छोड़ाये जात हौ निबल जानि के मोहिं।
हिरदै सों जब जाइहौ मर्द बदौंगो तोहिं॥'

इसके उपरान्त चौरासी वार्त्ता के अनुसार ये महाराज गऊघाट नामक एक स्थान पर, जो आगरा और मथुरा के बीच में है, रहते रहे। वहीं ये महाराज वल्लभाचार्य्य महा प्रभु के शिष्य हुए और उन्हीं के साथ गोकुल में श्रीनाथजी के मन्दिर को गये और बहुत काल पर्य्यन्त वहीं रहते रहे। इसी स्थान पर इनसे गोस्वामी बिट्ठलनाथजी की मुलाक़ात बहुधा हुआ करती थी और गोस्वामीजी इनके पद सुना करते थे। सूरदासजी सदैव कृष्णानन्द में मग्न और उन्मत्त रहा करते थे और अपनी अखंड भक्ति से संसार को शुद्ध करते थे।

यहीं रहते रहते ये महाराज वृद्धावस्था को प्राप्त हुए और जब इन्हें विदित हुआ कि इनका अन्त समय निकट है तब ये पारासोली को चले गये। जब गोस्वामीजी को यह संवाद मिला तब वे भी पारासोली पहुँचे और सूरदास से अन्त पर्य्यन्त उनकी बात चीत होती रही। उसी समय किसी ने सूरदास से पूछा कि "आपने अपने गुरु का कोई छन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं बनाया?" इस पर उन्होंने उत्तर दिया "मैंने सब छन्द गुरुजी ही के बनाये हैं क्योंकि मेरे गुरुजी और श्रीकृष्णचन्द में कोई भी भेद नहीं है।" तथापि उन्होंने एक छन्द भी कहा। वह यों है :—

'भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।
श्रीबल्लभ नख-चन्द-छटा बिनु सब जग माँझ अँधेरो॥
साधन और नहीं या कलि में जासों होत निबेरो।
सूर कहा कहि दुबिधि आँधरो बिना मोल को चेरो॥'

अन्तकाल सूरदासजी ने कृष्ण-राधिका का एक भजन कहा और वे ऐसे प्रेम-गद्गद हुए कि उनके नेत्रों में अश्रु-जल छा गया। इस पर गोस्वामीजी ने पूछा, "सूरदासजी! नेत्र की वृत्ति कहाँ है?" तब सूरदासजी ने निम्न लिखित भजन पढ़ कर शरीर त्याग दिया :—

"खंजन नैन रूप रस माते। अतिसै चारु चपल अनियारे पल पिँजरा न समाते॥ चलि चलि जात निकट श्रवणन के उलटि पलटि ताटंक फँदाते। सूरदास अंजन गुन अटके नातरु अब उड़िजाते॥"

इन महाशय के विषय में कई ग्रन्थकारों का मत है कि ये उद्धव के अवतार थे।

कविता।

सूरदासजी ने तीन ग्रन्थ बनाये हैं अर्थात् सूरसागर, सूरसारावली और साहित्यलहरी (दृष्ट कूट)।

साहित्यलहरी को सूरदास ने सं० १६०७ वि० में संकलित किया था। इसमें सूरसागर से उठा उठा कर एवं कुछ और कूट रक्खे गये हैं। इसकी एक छन्दोबद्ध टीका भी है जो सूरदास के नाम से बनी है, परन्तु यह निश्चय नहीं होता कि यह टीका सच मुच सूरकृत है या नहीं। टीका में प्रत्येक पद के अलङ्कार नायिका आदि दिये गये हैं। परन्तु सूरदास ने रीतिबद्ध कविता नहीं की, किन्तु स्वाभाविक रीति से जो वर्णन जहाँ उचित था लिखा है। अतः शंका होती है कि यह टीका सूरकृत नहीं है। सरदार कवि ने अपनी टीका में पहले ११७ पद दिये हैं और फिर ६३ पद और लिखे हैं। सो उनकी प्रति में कुल १८० पद हैं। इन कूटों में नायिका और अलङ्कार अवश्य निकलते हैं और इनमें श्रुतिकटु दूषण नहीं है, परन्तु यह दोष है कि बिना टीका की सहायता के इनका अर्थ लगाना कठिन है। इनमें यमक और अनुप्रास खूब आये हैं। यदि कोई धैर्य्यवान् व्यक्ति इस पुस्तक के अर्थ लगा कर देखे तो विदित हो कि इसमें सूरदासजी ने कितना परिश्रम किया है।

सूरसारावली में सूरदास ने सूरसागर की सूची सी दी है। इसमें ११०७ छन्द हैं, परन्तु कुल ग्रन्थ एक ही छन्द में वर्णित हैं। इस कारण इसका पढ़ना इतना रुचिर नहीं है जितना कि इस महाकवि की अन्य कविता का। यदि एक ही छन्दवाले दूषण को छोड़ दीजिए तो इस ग्रन्थ में भी सूरदास की वही छटा प्रस्तुत है जिसने उनको कवियों में सूर्य्य की पदवी से विभूषित कराया है।

सूरसागर बारह स्कन्धों में समाप्त हुआ है, परन्तु दशम स्कन्ध के पूर्वार्द्ध को छोड़ कर शेष स्कन्ध बहुत छोटे हैं और उनमें साहित्य भी प्रायः वैसा रोचक नहीं है जैसा कि दशम के पूर्वार्द्ध में। जिस प्रकार तुलसीदास के बाल तथा अयोध्याकांड निकाल डालने से उनके कवित्व-गौरव का एक बृहदंश खण्डित हो सकता है, उसी प्रकार यदि सूरसागर के दशमस्कन्ध का पूर्वार्द्ध निकाल डाला जाय तो सूर को सूर्य्यवत् कोई भी न माने। तथापि जैसे रामायण के अन्य कांडों से गोस्वामीजी की कवित्व शक्ति की पूर्ण झलक मिलती है और पूर्वोक्त दोनों कांड पढ़ कर पाठक अवाक् रह जाते हैं, उसी प्रकार सूर के दशम के पूर्वार्द्ध एवं अन्य स्कन्धों का हाल है। सूरसागर में श्रीमद्भागवत के आशय पर कथा कही गई है परन्तु कथायें बहुत न्यूनाधिक हैं। प्रथम नौ स्कन्धों में विविध वार्त्तायें और कथायें वर्णित हैं और दशम में श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाओं का वर्णन है। एकादश स्कन्ध में उद्धव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का बदरिकाश्रमगमन एवं हंसावतार की कथा कही गई है। बारहवें स्कन्ध में बौद्धावतार, भविष्य कल्कि अवतार, और परीक्षित का शरीर-त्याग वर्णित है। उस समस्त सूरसागर में जो बाबू राधाकृष्णदास द्वारा प्रकाशित हुआ है ४०१८ पद हैं। सूरदासजी ने प्रत्येक वर्णन सूक्ष्मतया किया है, केवल श्रीकृष्ण ने नन्दगृह में बस कर जो लीला की है उसका और उद्धव-संवाद का वर्णन विस्तारपूर्वक है, परन्तु इन्हीं दोनों वर्णनों में सूरदास ने दिखा दिया है कि विस्तार किसे कहते हैं। सूर ब्रजवासी कृष्ण के, और विशेषतया राधाकृष्ण के भक्त थे; अतः ज्योंही कृष्ण मथुरा को चले गये, त्योंही उनका भी वर्णन संक्षेपतया होने लगा। ब्रजवासीदास ने ब्रजविलास को इसी पुस्तक के सहारे बनाया है। इस ग्रन्थ के गुणावगुण का वर्णन और कविता की समालोचना में किया जाता है।

कविता की समालोचना।

(१) सूरदासजी की कविता में सर्वप्रधान गुण यह है कि उसके पद पद से कवि की अटल भक्ति प्रदर्शित होती है। प्रत्येक मनुष्य का काव्य उत्तम तभी होता है जब वह सच्चा होता है। सच्ची कविता तभी बनती है जब कवि जो उस पर बीते, अथवा जो उमंगें उसके चित्त में उठें, अथवा जो भाव उसके चित्त में भरे हों, उन्हीं का वह वर्णन करे। यदि कोई लम्पट मनुष्य वैराग्य कथन करने बैठेगा तो वह सिवा चोरी के और क्या करेगा। उसके चित्त में वैराग्य का अभाव है। उसके चित्त-सागर को वैराग्य की तरंगों ने कभी चंचल नहीं किया है, तब वह बेचारा अनुभव न होने पर भी वैराग्य के असली सच्चे भाव कहाँ से लाकर वर्णित करे। यदि वह हठात् लिखने बैठ ही जायगा, तो वैराग्य के विषय में उसने इधर उधर से जो कुछ सुन लिया होगा वही वह कह भागेगा। ऐसी दशा में उसकी कविता में सिवा नक़ल के कोई असली भाव न आवेगा। ऐसी ही कविता को निर्जीव कहना पड़ता है।

इसके विपरीत जो मनुष्य सच मुच विरागी है उसके चित्त में वैराग्य-सम्बन्धी असली भाव उठें और उनका वर्णन होगा तभी कविता असली और सजीव होगी। इसी कारण उर्दू के कवियों में यह मसल विदित है कि जब कोई शिष्य किसी स्वयं उस्ताद से शायरी सिखाने को कहता था तो उस्ताद पहले यही कहता था कि जाओ आशिक़ हो आओ असली भावों की ही कविता ऐसी बनती है कि श्रोता को बरबस कहना पड़ता है, "थारी कवित में सूलेा लग्यो।"

सूरदास की कविता प्रधानतः ऐसी है कि उसमें भक्ति का चित्र प्रत्येक स्थान पर देख पड़ता है। महाराज जाति-भेद, कर्म्म-भेद आदि को तुच्छ मान कर केवल भक्ति को प्रधान और एक मात्र शृंगार समझते थे। इनके मत में यदि कोई नर भक्त है तो वह बड़ा है, चाहे जिस जाति अथवा पाँति का क्यों न हो (पृष्ठ ४ संख्या १८)। कोई मनुष्य चाहे जितना चन्दन आदि क्यों न लगाता हो, परन्तु यदि वह शुद्ध भक्त नहीं है, तो वह अपना समय वृथा नष्ट करता है (पृष्ठ ५ संख्या २८)। ये महाराज यह नहीं समझ सकते थे कि कोई मनुष्य भक्त कहे कर न हो। जो भक्ति नहीं करता था उस पर ये महाराज अचम्भा करते थे (पृष्ठ ३५ संख्या १३)। ये कहते थे कि 'भगति बिनु बैल बिराने ह्वै हौ' पृष्ठ ३१ संख्या २०३)। भक्ति के विषय में संक्षेपतः इनका मत यह था :—

'तजो मन हरि-बिमुखन को संग।
जाके संग कुबुधि उपजति है परत भजन में भंग।
कहा होत पय पान कराये विष नहिँ तजत भुजंग।
कागहि कहा कपूर चुगाये स्वान न्हवाये गंग॥
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषन अंग।
गज को कहा न्हवाये सरिता बहुरि धरे खहि छंग।
पाहन पतित बाँस नहिँ बेधत रीतो करत निषंग।
सूरदास खल कारी कामरि चढ़त न दूजो रंग॥
(पृष्ठ ३१ संख्या २०४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भजन बिनु कूकर सूकर जैसो।
जैसे घर बिलाव के मूसा रहत विषय बस वैसो॥
उनहू के यह सुत दारा हैं उन्हें भेद कहु कैसो।

❋ ❋ ❋ ❋

ये महाराज जगदीश्वर, राम, एवं कृष्ण को एक ही समझते थे।

सोई बड़ो जु रामहिँ गावै।
श्वपच प्रसन्न होय बड़ सेवक
बिनु गोपाल द्विज जनम न भावै॥

❋ ❋ ❋ ❋

होय अटल जगदीशभजन में
सेवा तासु चारि फल पावै। (पृष्ठ १८ सं ११८)

और शेष देवताओं में देव भाव नहीं रखते थे ('और देव सब रंक भिखारी त्यागे बहुत अनेरे।' पृष्ठ १६ संख्या १०३), परन्तु तो भी ये महाराज गोस्वामी तुलसीदासजी की भाँति और देवताओं को गालिप्रदान नहीं करते थे। सूरदास को एक ईश्वर का उपासक कहना चाहिए।

सगुणोपासना करने का कारण सूर ने इस प्रकार लिखा है :—

अविगति गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगे मीठे फल को रस अन्तर गतिही भावै॥
मन-वाणी को अगम अगोचर सेा जानै जेा पावै।
रूप रेख, गुन, जाति जुगति बिनु निरालम्ब मन चकित धावै। सब विधि अगम विचारहिँ ताते सूर सगुन लीला पद गावै॥ (पृष्ठ १ संख्या २)

इतने बड़े भक्त होने पर भी सूरदास अपने को इतने बड़े पतित समझते थे कि चित्त को आश्चर्य्य होता है (पृष्ठ ११ संख्या ६६; पृष्ठ १२ संख्या ७३)। परन्तु इनकी इतनी प्रबल और प्रगाढ़ भक्ति के होते हुए भी कहना पड़ता है कि इनकी और तुलसीदास जी की भक्ति में भेद था। गोस्वामीजी की भक्ति दास भाव की थी परन्तु इनकी सख्य भाव की। ये महाशय श्रीकृष्णचन्द्र को अपना मित्र समझते थे और इसी कारण इन्होंने राधाजी को भी भला बुरा कहा है, और जब श्रीकृष्ण भी कोई बेजा बात करते थे तब उन्हें भी सूरदास डाट देते थे। तुलसीदास जब कभी राम की नर-लीला का वर्णन करते हैं तब पाठक को यह अवश्य याद दिला देते हैं कि राम परमेश्वर हैं, केवल नर-लीला करते हैं। यह बात ऐसे भोंड़े प्रकार से भी वे सैकड़ों बार स्मरण दिलाते हैं कि जी उकता उठता है और यह जान पड़ता है कि गोस्वामीजी पाठक को इतना बड़ा मूर्ख समझते थे कि कितने ही बार याद दिलाने पर भी वह राम का ईश्वरत्व भुला देगा, अतः उसको पुनः पुनः स्मरण कराने की आवश्यकता है। यह बात सूरदासजी में नहीं है। वे दो एक बार स्मरण कराने को अलं समझते हैं। इन्होंने, जहाँ तक हमें स्मरण है, केवल दो स्थानों पर शिफ़ारसी छन्द दिये हैं (पृष्ठ ११६ संख्या १६; पृष्ठ १२६ संख्या ९२)। श्रीकृष्णचन्द्र को स्वयं अपना ईश्वरत्त्व दिखाने का शौक़ था। उन स्थानों को छोड़ कर सूरदास ने उनका ईश्वरत्त्व मौक़े बे मौक़े नहीं दिखाया है। इन्होंने दो चार स्थानों पर कृष्ण के कामों की निन्दा की है, यथाः—(पृष्ठ ६ संख्या ३१; पृष्ठ ७ संख्या ३९) और—

हम बिगरी तुम सबै सुधारी। द्विजकानीन हमारे बाबा कुंडज पिता जगत में गारी। हम सब जग जाहिर जारज हैं ताहू पर यक बात बिगारी। बड़े कष्ट सों ब्याह भयेा है पतिनी ह्वै गइ पंच भतारी॥

तुम जानत राधा है छोटी। हम सों सदा दुरावति है इह बात कहै मुख चोटी पोटी। कबहुँ श्याम सों नेकु न बिछुरति किये रहति हम सों हठ जोटी॥ नँद नन्दन याही के बस हैं बिबस देखि वेंदी छबि चोटी। सूरदास प्रभु वै अति खोंटे यह उनहूँ ते अतिही खोटी॥

(पृष्ठ २८६ संख्या ७५)

सखी री श्याम कहा हितु जानै।
सूरदास सरबस जो दीजै कारो कृतहि न मानै॥

(पृष्ठ ४७९ संख्या ८४)

इसी प्रकार सैकड़ों पद सूरदास की कविता में मिलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) सूरदास की भाषा शुद्ध ब्रज-भाषा है। चन्द आदि के होते हुए भी यह कहना अयथार्थ न होगा कि हिन्दी के वास्तविक प्रथम कवि सूरदास ही थे, परन्तु तो भी इनकी भाषा ऐसी ललित और श्रुति-मधुर है कि जैसी इनके पीछेवाले कवियों तक में बहुत कम पाई जाती है। इनकी कविता में सम्मिलित वर्ण बहुत कम आते हैं और उसके माधुर्य्य और प्रसाद प्रधान गुण हैं। ओज की मात्रा इनकी कविता में बहुत कम है। इनको यमक और अनुप्रास का इष्ट नहीं था, परन्तु उचित रीति पर इन दोनों गुणों को ये महाराज अपनी कविता में रखते थे। कहीं यमक आदि के लिए इन्होंने अपना भाव नहीं बिगाड़ा है। इनके पद ललित और अर्थ गम्भीरता से भरे हुए हैं।

सिवा सूरसारावली के, समस्त कविता में इन्होंने छन्द इतनी शीघ्र और इस रीति से परिवर्त्तित किया है कि कहीं इनके छन्द अरुचिकर नहीं होते। इन महाराज ने अपनी कविता में संस्कृत के पद बहुतायत से नहीं रक्खे, परन्तु जहाँ कहीं वे आये हैं वहाँ उत्तम रीति से आये हैं। इनकी दो घनाक्षरी भी मिली हैं (पृष्ठ ४०४ संख्या ३६ व ३७)। सूर-कृत दो पद, जो उपमा और रूपक के वर्णन में दिये गये हैं, इनकी भाषा के भी अच्छे उदाहरण हैं।

(३) उपमा—रूपक। ये महाराज अपनी कविता में रूपक लाना पसन्द करते थे, और इन्होंने उपमायें भी बहुत ही उत्तम खोज खोज कर दी हैं। इनके अर्थ-गाम्भीर्य्य, उपमा और पद-लालित्य ऐसे उत्तम हैं कि किसी कवि को यह कहना ही पड़ा कि:—
'उत्तम पद कवि गंग के उपमा को बरबीर (वीरबल)।
केसव अरथ गँभीरता सूर तीनि गुन धीर॥'

उदाहरणार्थ इनके दो पद नीचे लिखे जाते हैं जिनसे इन महाराज के रूपक, उपमा, अनुप्रास और भाषा का अच्छा ज्ञान होगा।

'अद्भुत एक अनूपम बाग। जुगुल कमल पर गज बर क्रीड़त तापर सिंह करत अनुराग॥ हरिपर सर बर, सर पर गिरिबर, गिरि पर फूले कंज पराग। रुचिर कपोत बसत ता ऊपर, ताहूपर अमृत फल लाग॥ फल पर पुहुप, पुहुप पर पालव, तापर सुक पिक, मृगमद काग। खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर यक मनिधर नाग॥ अंग अंग प्रति और छवि उपमा ताको करत न त्याग। सूरदास प्रभु पियहु सुधारस मानहु अधरन को बड़ भाग॥

बरनौं श्रीवृषभानु कुमारि। चित दै सुनु स्याम सुन्दर छवि रति नाहीं उनहारि॥ प्रथमहिं सुभग स्याम बेनी की सुषमा कहहुँ बिचारि। मानहु फनिक रह्यो पीवन को ससि मुख सुधा निहारि। बरनै कहा सीस सेंदुर को कवि जु रह्यो पचिहारि। मानहु अरुन किरन दिन कर की निसरी तिमिर बिदारि॥ भृकुटी निकट निकट नैनन के राजत अति बरनारि। मनहु मदन जग जीति जेर करि राखे धनुष उतारि॥ ता बिच बनी आड़ केसरि की दीह सखिन सँवारि। मानो बँधी इन्दु मंडल में रूप सुधा की पारि॥ चपल नैन नासा बिच सोभा अधर सुरंग सुढारि। मनो मध्य खंजन सुक बैठ्यो लुबधे बिम्ब बिचारि॥ तरिवन सुघर अधर नकबेसरि चिबुक चाह रुचिकारि। कंठ सिरी, दुलरी, तिलरी पर नहिँ उपमा कहुँ चारि॥ सुरँग गुलाब माल कुच मंडल निरखत तन मन वारि। मानो दिसि निरधूम अगिनि के तपि बैठे त्रिपुरारि॥ जो मेरो कृत मानु मोहन करि ल्याऊं मनुहारि। सूर रसिक तबहीं पै बदिहौं मुरली सकहु सम्हारि॥

(४) नखशिख। इन दोनों पूर्वोक्त पदों में कवि की नख शिख वर्णन करने की योग्यता भी प्रकट होती है। नख शिख के उत्तम वर्णन निम्न लिखित छन्दों में भी हैं:—पृष्ठ २८ संख्या १८२, पृष्ठ १८७ व १८७, पृष्ठ २७८ संख्या १०, और वे बहुतही उत्तम और सुहावने हैं।

(५) प्रबन्धध्वनि। इन महाराज ने अपनी कविता में पुराने व्याख्यानों और कथाओं का हवाला बहुत स्थानों पर दिया है। इस कथन के उदाहरणार्थ पृष्ठ ९ संख्या ४८ देखिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारद-मोह (१)

नारद जी का शिवगणों को शाप देकर अपने मर्कट-मुख का प्रतिबिम्ब जल में देखना और लज्जित होना।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) सूरदास की कविता का प्रधान गुण एक यह भी है कि ये महाराज प्रत्येक वस्तु का बहुत सांगोपांग वर्णन करते हैं। ये जिस बात का वर्णन विस्तारपूर्वक कर देते हैं उसमें फिर औरों के लिए बहुत कम भाव रह जाते हैं। या तो ये महाराज बहुत सूक्ष्म वर्णन करते हैं या पूर्ण विस्तार के साथ। इनके सविस्तर वर्णन कर देने पर अन्य कवियों को उसी विषय पर कुछ लिखने में अवाञ्छित भी इस कवि के भाव लिखने पड़ते हैं क्योंकि ऐसी दशा में यह महा कवि नये भावों की जगह छोड़ ही नहीं रखता। इसी कारण रीवांनरेश महाराज रघुराजसिंहजी देव ने यथार्थ लिखा है कि :—

'मतिराम, भूषण, बिहारी, नीलकंठ, गंग, बेनी, सम्भु, तोष, चिन्तामनि, कालिदास की। ठाकुर, नेवाज, सेनापति, सुखदेव, देव, पजन, घनाँनदहु, घनस्यामदास की। सुन्दर, मुरारि, बोधा, श्रीपति हू दयानिधि, जुगुल, कबिन्द, त्यों गोविन्द, केसौदास की। रघुराज और कविगन की अनूठी उक्ति मोहिँ लगी झूठी जानि जूठी सूरदास की॥'

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सूरदास की कविता के नायक यशोदानन्दन और गोपिकावल्लभ श्रीकृष्ण थे। अतः इन्होंने श्रीकृष्णचन्द्र की उन कुल करतूतों को जो उन्होंने यशोदा अथवा गोपियों के सम्बन्ध में की हैं, पूर्ण विस्तार के साथ लिखा है।

(क) सबसे प्रथम जो बहुत उत्तम वर्णन सूरदास ने किया है वह कृष्ण प्रभु की बाललीला का है। जैसा उत्तम और सच्चा बाल-चरित्र इस महा कवि ने लिखा है वैसा संसार भर के किसी ग्रन्थ में हम लोगों ने अद्यावधि नहीं देखा। माता से माखन माँगा जाना, माताद्वारा बालक का लालन-पालन होना, माता का खीझना, चोटी बढ़ने के बहाने दूध पिलाना, चन्द्र के विषय झगड़ा, राम की कथा माता द्वारा सुनाई जाना, इत्यादि ऐसे उत्तम प्रकार से कहे गये हैं कि जान पड़ता है सच मुच कोई बालक माता के पास खेल रहा है। इसके उदाहरण स्वरूप किस छन्द को हम लिखें? पूरा वर्णन पढ़ने से ही इसका स्वाद मिलता है। ज्योंहीं माता ने कहा कि 'कजरी को पय पियहु लाल तब चोटी बाढे', कि बालक ने तुरन्त दूध पीकर पूछा, 'मैया कबहिँ बढ़ैगी चोटी। किती बार मोहिँ दूध पियत भइ यह अजहूं है छोटी'। उदाहरणार्थ एक छन्द नीचे लिखा जाता है :—

'मातु मोहिँ दाऊ बहुत खिझायो। मोसों कहत मोल को लीन्हों तोहि जसुमति कब जायो॥ कहा कहौं यहि रिस के मारे खेलन हौं नहिँ जात। पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुम्हरो तात॥ गोरेनन्द जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर। चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर॥ तू मोहीं को मारन सीखी दाउहि कबहुँ न खीझै। मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति अति मन रीझै॥ सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई जनमत ही को धूत। सूरस्याम मो गोधन की सौं हौं माता तू पूत॥

(ख) बाललीला के पश्चात् इस महा कवि ने माखन-चोरी का वर्णन बड़ाही हृदयग्राही किया है। माखन-चोरी भी ऐसी वर्णित है मानो कोई सचमुच गोपिकाओं को खिझा रहा हो। यशोदा के पास उलाहना आना, और उनका गोपिकाओं के कथन पर प्रतीति न करना, और पुत्र से इनकार सुन कर क्रोध के स्थान पर हर्ष-मग्न हो जाना बड़ेही स्वाभाविक रीति पर वर्णित हुए हैं। फिर बहुत अधिक शिकायतें सुन कर माता का कुछ क्रोध करना और बालक को समझाना, और फिर यह सुन कर कि कृष्ण ने माखन भी चुराया और गोपी के लड़के को भी मारा है, बालक को रस्सी से ऊखल में बाँध देना, यह सब बातें अत्यन्त स्वाभाविक रीति पर लिखी गई हैं (पृष्ठ १४२ संख्या २५)। ऊखल में बाँधने पर जब जब बालक रोया तब तब माता ने इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया कि बालक चोर है। चोरी पर ऐसे समय में ज़ोर देना बड़ाही स्वाभाविक है, और वह प्रकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है कि एक ही बालक होने पर भी, और उसे प्राण से भी अधिक चाहने पर भी, यशोदा बेजा काम देख कर अदूरदर्शिनी माताओं की भाँति चुप न बैठ कर कड़ा दंड भी देती थी। माखन-चोरी-लीला का भी वर्णन अत्यन्त रोचक और स्वाभाविक है।

(ग) ऊखल-बन्धन के पश्चात् काली-पराजय, दावानलपान, और चीरहरण भी बड़ेही उत्तम वर्णन हैं। उद्धृत करने से लेख का कलेवर बहुत बढ़ जायगा, अतः हम यहाँ कोई छन्द नहीं लिखते, परन्तु ये वर्णन देखने ही योग्य हैं।

(घ) इसके पीछे रासलीला, मान, एवं मान-मोचन के भी वर्णन बड़ेही विशद हैं, विशेषतया पृष्ठ ३९९ से ४११ पर्य्यन्त जो मान और मान-मोचन वर्णित है, उससे प्रकट होता है कि यह महाकवि एक ही विषय को कितनी दूर तक और कितनी उत्तमता से कह सकता है और महा-भक्त होने पर भी शृंगार रस के गूढ़ विषयों का इनको कितना उत्तम ज्ञान है। यह कहना पड़ेगा कि माखन-चोरी और रासविलास में वर्णन इतना सविस्तर हो गया है कि यह नहीं कहा जा सकता कि यह केवल शृंगार रस कहनेवालों की रचना की भाँति केवल कोरा काव्य है या किसी कथा का अंग। यदि कोई केवल कथा-प्रसंग जानने के विचार से इसे पढ़ने बैठे तो उसका जी अवश्य उकता जाय। परन्तु वास्तव में ये वर्णन बड़ेही विशद और सच्चे हैं। केशवदास और दास इत्यादि की भाँति इन्होंने अन्य कवियों की कविताओं से उठा उठा कर उल्था अपनी कविता में नहीं रक्खा है और न किसी ऐसे विषय को सविस्तर कहा ही है कि जिसमें इन्हें पूर्ण योग्यता और सहृदयता न होती। अतः इस कविता में जहाँ कहीं सविस्तर वर्णन है वहाँ ही वह सच्चे, असली, ख़ास सूरदास के भावों से भरी है और इसी कारण इस कवि ने सच्चे पाठकों से ऐसे ऐसे वचन कहलाही लिये कि:—

'सूर सूर, तुलसी ससी, उड़गन केसव दास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास॥
'कविता करता तीनि हैं, तुलसी, केसव, सूर।
कविता खेती इन लुनी, सीला बिनत मंजूर॥
'तत्त्व तत्त्व सूरा कही, तुलसी कही अनूठी।
बची खुची कबिरा कही, और कही सब झूठी।
'किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लग्यो, तन मन धुनत सरीर॥

इस अन्तिम दोहे को तानसेन ने बनाकर [illegible] को सुनाया। इसके उत्तर में सूरदास ने निम्न लिखित दोहा पढ़ा:—

'बिधना यह जिय जानिकै सेसहि दिये न कान।
धरा मेरु सब डोलतो, तान सेन की तान॥'

सूरदासजी इतने सच्चे और यथार्थ भाषी [illegible] थे कि इनकी कविता में असम्भव पदार्थों का [illegible] बहुत कम पाया जाता है, अर्थात् किसी असम्भव घटना का होना इन्होंने नहीं कहा है। 'विन्ध्य ले बाढ़िबो उरोजन को पेखो है' की भाँति के [illegible] इस सच्चे कवि को नहीं भाते थे। इस यथार्थ भाव के प्रतिकूल हम श्रीकृष्णचन्द्र के सम्बन्ध में ऐसी कथाओं का वर्णन, कि जो अब असम्भव ज्ञात होती हैं, प्रमाण स्वरूप नहीं मानते हैं, क्योंकि वे उस कथा के अङ्ग हैं जो यह कवि कहने बैठा है। इस यथार्थ भाषण की टेव के कारण इन्होंने कई स्थानों पर सविस्तर सुरति वर्णन किया है और कई स्थानों पर ऐसी ऐसी गालियाँ दिलाई हैं जिनका कविता में सन्निविष्ट करना सभ्यता के प्रतिकूल है। कहना होगा कि ये वर्णन भी परमोत्तम अवश्य हैं।

(ङ) सूरदास ने स्थान स्थान पर नायिका-भेद भी लिखा है; परन्तु कवितारीति के नियमानुसार उसे न लिख कर जिस दशा के पीछे स्वाभाविक रीति पर जो दशा होती है उसी का वर्णन कथा-प्रसंग की भाँति इन्होंने किया है; और जिस नायिका का वर्णन चलाया उसका अपनी विस्तारकारिणी प्रकृति के अनुसार कुछ देर तक वर्णन किया। [illegible] नायिकाओं का वर्णन न करके इन्होंने बहुत कम किया है, परन्तु जो कुछ कहा है वह परम मनोहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अधिक उदाहरण न देकर हम केवल धीरादि भेद का एक पद नीचे लिखते हैं।

'अतिहि अरुन हरि नैन तिहारे। मानहुँ रति रस भये रँग मगे करत केलि पिय पलकन पारे॥ मन्द मन्द डोलत संकित से राजत मध्य मनोहर तारे। मनहु कमल सम्पुट महँ बीधे उड़ि न सकत चंचल अलि बारे॥ झलमलात रति रैनि जनावत अति रस मत्त भ्रमत अनियारे। मानहु सकल जगत जीतन को काम बान खर सान सँवारे॥ अटपटात अलसात पलक पट मूँदत कबहूँ करत उघारे। मनहु मुदित रिकत मनि अंगन खेलत खंजरीट चटकारे॥ बार बार अवलोकि कनखियन कपट नेह मन हरत हमारे। सूरश्याम सुखदायक रोचन दुख-मोचन लोचन रतनारे॥

(च) इन सब कथाओं के पीछे इस महाकवि ने श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन का वर्णन बड़ाही हृदय-ग्राही किया है। यदि कहा जा सकता हो कि अमुक कवि ने 'क़लम तोड़ दी,' तो हम अवश्य कहेंगे कि ब्रज-बिरह-वर्णन में इस महाकवि ने सचमुच क़लम तोड़ दी है। उद्धव-संवाद और कृष्ण-मथुरा-गमन को पढ़ कर जान पड़ता है कि सूरदासजी वियोग-शृंगार के कथन में बड़ेही पटु थे। वियोग का वर्णन किसी दूसरे कवि ने ऐसा उत्तम और स्वाभाविक नहीं किया है। इस विषय में भी कोई छन्द उदाहरणार्थ लिखना हम उचित नहीं समझते क्योंकि एक रोयें से सिंह का अनुभव नहीं कराया जा सकता।

(छ) उद्धव-संवाद भी बहुत ही विस्तृत रूप से कहा गया है। यह पृष्ठ ५०२ से प्रारम्भ होकर पृष्ठ ५६२ पर समाप्त होता है, और ये पृष्ठ रायल अठपेजी के ढाई गुने होंगे। यह भी आद्योपान्त प्रेमालाप से भरा हुआ है, और ऐसा कोई भाव न बचा होगा जो इसमें न आगया हो। इसमें बड़ेही उत्तम पद मिलते हैं। उदाहरणार्थ एक पद नीचे लिखा जाता है:—

'ऊधव मन न भये दस बीस। एक हुतो सो गयो स्याम सँग को अवराधै ईस॥ इन्द्री सिथिल भईं केसव बिनु ज्यों देही बिनु सीस। आसा लगी रहति तनु स्वासा जीजै कोटि बरीस॥ तुम तौ सखा स्यामसुन्दर के सकल जोग के ईस। सूरदास वा रस की महिमा जो पूछै जगदीस॥'

अन्त में उद्धवजी भी ज्ञान भूल कर प्रेम-मग्न हो गये, और प्रेमियों की भाँति कृष्ण के विहार-स्थल देखते फिरे और फिर यदुपति के पास जाकर उन्होंने गोपियों की बड़ी शिफ़ारिश की।

(ज) अन्य राजाओं की कथा एवं युद्ध इत्यादि का वर्णन करने का प्रयत्न इस सच्चे कवि ने इन विषयों से सहृदयता न होने के कारण, नहीं किया और न वे वर्णन अच्छे बनेही हैं। महात्मा सूरदास और गोस्वामी तुलसीदासजी में यही अन्तर है कि गोस्वामीजी ने कुल बातों का वर्णन अच्छा और अपने ख़ास विषयों का बड़ाही विशद किया है, परन्तु महात्मा सूरदास ने अपने ख़ास विषयों का वर्णन ऐसा किया है जैसा कि गोस्वामीजी, या सम्भवतः किसी विद्या का कोई कवि नहीं कर सका है, परन्तु साधारण विषयों का कथन इन्होंने साधारण कवियों से भी ख़राब किया है। उनको उत्तम प्रकार से कहने का इन्होंने प्रयत्न ही नहीं किया। इसी कारण सूरसागर के इधर उधर दो चार पन्ने पढ़नेवाले इन्हें साधारण कवि समझ सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति इनके उत्तम वर्णन संग्रह करके रामायण की इतनी पोथी निकाल ले तो उसकी हिन्दी जानने वालों पर बड़ी अनुग्रह हो।

(झ) इस कवि ने स्फुट विषयों का वर्णन भी कहीं कहीं बड़ाही उत्तम किया है। प्रीति के विषय में इनका यह मत है:—

'प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सों आपै देह दह्यो॥
अलि सुत प्रीति करी जल सुत सों सम्पति हाथ गह्यो।
सारँग प्रीति जु करी नाद सों सनमुख बान सह्यो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम जो प्रीति करी माधव सों चलत न कछू कह्यो।
सूरदास प्रभु बिनु दुख दूनो नैननि नीर बह्यो॥'

सत्संग पर सूरदास को बड़ी श्रद्धा थी। इस बात में भी तुलसीदासजी से इनका मत मिलता है।

'जा दिन सन्त पाहुने आवत। तीरथ कोटि अन्हान करैं फल जैसो दरसन पावत॥ नेह नयो दिन दिन प्रति उनको चरन कमल चित लावत। मन बच क्रम और न नहिँ जानत सुमिरत औ सुमिरावत॥ मिथ्याबाद उपाधि रहित ह्वै बिमलि बिमलि जस गावत। बन्धन करम कठिन जो पहिले सोऊ काटि बहावत॥

इस छन्द से सूरदास के रहन सहन का भी पूरा पता मिलता है।

मुरली—इन महाशय ने पाँच पृष्ठ पर्य्यन्त केवल मुरली का वर्णन किया है और उसमें बड़ेही उत्तम पद लिखे हैं। जब श्याम का इतना वर्णन है तब फिर मुरली क्यों रह जाय? यह इन्हीं का काम था कि मुरली ऐसे विषय पर क़रीब चालीस पद लिखते।

नयन—इस महाकवि ने पृष्ठ ३१९ से क़रीब १८ पृष्ठों में केवल नेत्रों का वर्णन किया है। ऐसे ऐसे छोटे विषयों पर इतनी बड़ी कविता रच डालना साधारण कवि का काम नहीं है। इस वर्णन में भी अच्छे पद हैं। उदाहरण लीजिए:—

'नैना नाहीं कछू बिचारत। सनमुख समर करत मोहन सों यद्यपि हैं हठि हारत॥ अवलोकत अलसात नवल छबि अमित तोष अति आरत। तमकि तमकि तरकत मृगपति ज्यों घूँघट पटहि बिदारत॥'

(ञ) सूरदास ने कई स्थानों में पदों द्वारा कथा कहकर फिर साधारण छन्दों में सूक्ष्मतया उनको दुहराया है। इन सबमें काली की द्वितीय कथा उत्तम है, परन्तु उसमें भी यह दोष है कि कृष्ण और नागिन की बातचीत में कृष्ण ने नागिन को बहुत फटकारा है। कृष्ण भगवान् उस समय बालक थे; शायद यह विचार करके सूर ने ऐसा कहलाया हो।

(७) सूर ने ठौर ठौर पर कूट भी लिखे हैं और इनमें अलंकार और रसांग भी आये हैं। उदाहरण में सरदार कृत सूर हृष्ट कूट (जो मुं० नवल किशो के यहाँ मुद्रित हुई है उस) के पृष्ठ ९४ पर लिखि एक कूट हम यहाँ लिखते हैं। उसका अर्थ भी उ पृष्ठ पर सरदार ने लिखा है।

'जनि हठ करहु सारँग नैनी। सारँग ससि सारँ पर सारँग ता सारँग पर सारँग बैनी॥ सारँग रस दसन गुनि सारँग सारँग सुतहृग निरखनि पैनी सारँग कहो सुकौन बिचारो सारँग पति सारँग र सैनी॥ सारँग सदनहि लैजु बहन गये अजहुँ मानत गत भइ रैनी। सूरदास प्रभु तव मग जे अन्धक रिपु ता रिपु सुख दैनी॥'

(८) इन्होंने लोगों का शील गुण भी अच्छ दिखाया है। यशोदा के यद्यपि एकही पुत्र वृद्धाव में हुआ था तथापि ये उसकी बेजा चाल ढाल कड़ा दंड तक देती थीं और ऐसी उदारहृदया थीं कि रोहिणीपुत्र बलदेव का अपने पुत्र से अधिक सम्मान करती थीं।

'हलधर कहत प्रीति जसुमति की। एक दिवस हरि खेलत मोसों झगरो कीन्हों पेलि। मोको देरि गोद करि लीन्हों इनहिँ दियो कर ठेलि॥

इन्होंने कृष्ण के चले जाने पर देवकी से सन्देशा कहला भेजा है वह विशेषतया द्रष्टव्य है।

'सँदेसो देवकी सों कहियो। हौंतौ धाय तिह सुत की मया करत नित रहियो। यदपि टेव तु जानत उनकी तऊ मोहि कहि आवै। प्रातहि उ तुम्हारे कान्हहि माखन रोटी भावै॥ तेल उबट अरु तातो जल ताहि देखि भगि जाते। जोइ जो माँगत सोइ सोइ देती क्रम क्रम करि करि न्हाते। सूर पथिक सुनि मोहिँ रैन दिन बढ़ो रहत उ सोच। मेरो अलक लड़ैतो मोहन ह्वै है करत सकोच।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यशोदा के शील गुण में केवल यह बात अनुचित जान पड़ती है कि उन्होंने नन्द से बार बार कहा, 'दसरथ तुम से अच्छे थे, क्योंकि तुम पुत्र को मथुरा में छोड़कर जीते जागते घर चले आये।' परन्तु इन्होंने शायद अपनी यथार्थभाषण की टेव से ऐसा कहला दिया।

कुबिजा का शीलगुण भी नौ बढ़ियों की भाँति खूबही दिखाया गया है। वह समझती थी कि गोपी ग्रामीण थीं अतः श्याम को अपने वश में न रख सकीं, परन्तु वह ख़ुद नागर थी अतः उसने उन्हें लुभा लिया। उस दासी ने केवल यह सोचाही नहीं वरन् गोपियों से उद्धव द्वारा यह कहला भी भेजा (पृ० ५०४ व ५०५)।

(९) यद्यपि सूरदास ख़ुद श्याम के भक्त थे, तथापि इन्होंने गोपियों के मुख से काले की ख़ूब निन्दा कराई है और अन्त पर्य्यन्त किसी स्थान पर भी तुलसीदास जी की भाँति कोई शिफ़ारशी छन्द नहीं लिखा। वे कहती थीं कि:—

'सखीरी श्याम सबै इक सार। मीठे बचन सोहाये बोलत अन्तर जारन हार॥ भँवर कुरंग काग अरु कोकिल कपटिन की चटसार।

सखीरी श्याम कहा हितु जानै। कोऊ प्रीति करौ कैसेहू वह अपने गुन ठानै॥ देखौ या जलधर की करनी बरषत पोषै आनै। सूरदास सरबसु जो दीजै कारो कृतहि न मानै॥

ऊधव कारे सबहि बुरे।

इससे ज्ञात होता है कि सूरदास ऐसे संकीर्ण-हृदय न थे कि यदि उनका कोई नायक या उप-नायक स्वयं उनकी राय के प्रतिकूल कुछ कहता तो उनसे गोस्वामी तुलसीदासजी की भाँति बिना अपनी राय प्रकाश किये न रहा जाता। अँगरेज़ी में ऐसे कवियों को Poets of general vision (सर्व-व्यापिनी दृष्टि के कवि) कहते हैं। सूरदासजी इसी प्रकार के कवि थे। भाषा-साहित्य में सूरदासजी, तुलसीदासजी, और देवजी सर्वोच्च तीन कवि हैं। इनमें न्यूनाधिक बतलाना मत-भेद से ख़ाली नहीं है। अतः सूरदासजी की गणना भाषा के तीन सर्वोच्च कवियों में है और निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि इनसे कोई भी अच्छा है। यह महात्मा हिन्दी के वाल्मीकि हैं। उन्हीं के समान ये हिन्दी के वास्तविक प्रथम कवि हैं और उन्हीं के समान इनके भी वर्णन पूर्ण, बड़े और सर्वाङ्ग सुन्दर होते हैं।

गणेशविहारी मिश्र,
श्यामविहारी मिश्र, तथा
शुकदेवविहारी मिश्र।

ब्राह्मणों से विनय।

(१)

हे अग्रजन्म, भू-देव, पूज्य पद विप्रवरो!
इस निज विनीत जन की विनती पर ध्यान धरो।
क्या थे तुम, अब क्या हुए, विचारो दया करो,
सब बातें सोच विचार शीघ्र दुख-दोष हरो॥

(२)

इस समय तुम्हारी दशा बहुत ही हीन हुई
यह जाति तुम्हारी देखो कैसी दीन हुई।
वह शक्ति अलौकिक सकल भूल से क्षीण हुई
हा! पूर्व काल की कथा आज सब लीन हुई॥

(३)

अब वह तप तेज विचित्र कहो सब कहाँ गया?
वह अनुपम ज्ञान पवित्र अहो! अब कहाँ गया?
भस्मावशेष-पावक-सम तुम निःशक्त हुए!
वे धर्म्म-कर्म्म हा! हन्त! आज सब त्यक्त हुए॥

(४)

देखो तो तुम से जगत आज है क्या कहता?
लोकापवाद का सदा न किस को डर रहता?
है किन्तु नहीं उसका भी अब कुछ ध्यान तुम्हें!
मानापमान का भी न रहा क्या ज्ञान तुम्हें?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

रच सकते थे जो सृष्टि दूसरी निज बल से
कर सकते थे भव भस्म अञ्जली के जल से।
हा! द्वार द्वार फिरते हो अब तुम लोग वही
है अहो! तुम्हारे योग्य कहो क्या काम यही?

(६)

हे देव! तुम्हारी तनिक दृष्टि ही की गति से
हो सकते थे कुछ अधिक रङ्क भी भूपति से।
हा! वही आज तुम—हैं जो मद में सने हुए—
उद्धत धनियों के चाटुकार हो बने हुए!

(७)

तुम हो कर भी कुशपाणि विश्व के शासक थे
वर विक्रम-बुद्धि-विकास त्रास-दुखनाशक थे।
करते थे प्रकट प्रभाव नित्य तुम नये नये
बोलो तो, अब वे कर्म्म तुम्हारे कहाँ गये?

(८)

श्रीपरशुराम, कृप, द्रोण-तुल्य थे वीर तुम्हीं
गौतम, वशिष्ठ की भाँति विदित थे धीर तुम्हीं।
सुरपति भी जिन से रण-सहायता लेते थे
ये नृप सिंहासन तुम्हें देख तज देते थे॥

(९)

हे याज्ञवल्क्य व्यासादिक के कुल-वीर वरो!
भृगु भरद्वाज पाराशर मुनि के वंशधरो!
हो कर सचेत जागो निज कर्म्म प्रकाश करो
मत नेत्र मूँद कर अपना आप विनाश करो॥

(१०)

संसार देख कर जिन्हें चकित होता मन में
करता है शिक्षा ग्रहण आत्म-हित-साधन में।
वे ग्रन्थ तुम्हारे ही पुरखों के रचे हुए
हैं अब भी अनुपम और नाश से बचे हुए॥

(११)

तुम डूबे ब्रह्मानन्द नाम के थे रस में
मन के समेत सम्पूर्ण इन्द्रियाँ थीं वश में।
पर हाय! देख कर तुम्हें प्राण रोते अब हैं
वे बातें स्वप्न-समान जान पड़तीं सब हैं॥

(१२)

तत्वज्ञ वृन्द सब जिसे भक्ति-वश है कहता
सहचर सा वह सर्वेश तुम्हारा था रहता।
सोचो तो कैसे वृत्त तुम्हारे बढ़े रहे,
आध्यात्मिक-उन्नति-शिखरों पर तुम चढ़े रहे॥

(१३)

दिखला दो अब फिर वही पूर्व का मान यहाँ
फैला दो फिर वह ज्ञान और विज्ञान यहाँ।
सम्पूर्ण समाजों के प्रधान थे एक तुम्हीं
सब विषयों का करते थे देव! विवेक तुम्हीं॥

(१४)

उन्नति के पीछे अवनति होती है जैसे
अवनति के पीछे उन्नति भी होती वैसे।
अतएव उठो अब लेकर उन्नति के मग को
बतला दो अपनी शक्ति शीघ्र सारे जग को॥

(१५)

यदि अब भी तुम कर्तव्य न पालोगे अपना
तो रह जावेगा पूर्व काल निश्चय सपना।
हिन्दू समाज के दोष तुम्हीं पर आते हैं
सब बातों में अगुआ ही पूछे जाते हैं॥

मैथिलीशरण गुप्त।

पक्षी और कृषि।

कुछ समय हुआ योरप के बहुत से देशों में पक्षियों को मारने की धूम मच गई थी। इटली देश में तो एक ऐसा ख़ब्त पैदा हुआ था कि वहाँ के लोग हर एक प्रकार के छोटे बड़े पक्षियों का वध करने लग गये थे, बेचारे पक्षी इस देश की राह से होकर ऋतुओं के अनुसार उत्तर और दक्षिण को जाया करते थे, इन्हें तो इसी राह से आने जाने की आदत थी पर इटली देशवालों के लिए यह एक खेल और तमाशे की बात हो गई; यहाँ तक कि उन्होंने छोटी गौरय्यों को भी पकड़ना दिल-बहलाव समझा, चंडूल कीड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खानेवाला एक बड़ा लाभदायक पक्षी है और यह इतना निरपराध है कि किसान को भी इसके प्रति कोई शिकायत नहीं। तिस पर भी चंडूल को प्राण-दान न मिला।

यह व्यवस्था देख इन पक्षियों ने इटली की राह छोड़ सिसिली की ओर से जाना आरम्भ किया पर सिसिली के लोगों ने उनको और भी बढ़ कर सताया। इन पक्षियों के वहाँ पहुँचते ही सहस्रों मनुष्यों ने बन्दूकें ले उनका वध करना आरम्भ किया। असंख्य चंडूल मारे गये। परन्तु, इस दुष्टता का फल वहाँ के लोगों को शीघ्रही मिल गया। चंडूलों के मारे जाने से परिणाम यह हुआ कि असंख्य कीड़ों की वृद्धि हो गई।

पूछने की बात है, इतने पक्षियों का वध क्यों किया जाता है? इस कारण नहीं कि देश में अकाल पड़ा है और पक्षियों का आहार कर मनुष्य को अपनी प्राण-रक्षा करनी है? फिर क्या शिकार खेलने की इच्छा से? नहीं नहीं इस कारण कि फ़्राँस, इँगलेंड, जर्मनी और अमेरिका देशों की शौक़ीन स्त्रियों की टोपियाँ इनके परों से सुसज्जित की जावें।

इस प्रकार चिड़ियों का मारना केवल योरप देश में ही नहीं किन्तु और देशों में भी प्रचलित है। भारतवर्ष की ओर निहारने पर मालूम पड़ेगा कि प्रति वर्ष हमारे देश से लाखों चिड़ियों की खाल विलायत भेजी जाती है। थोड़ेही दिन हुए लन्दन के केवल एक नीलाम घर से, ३ महीने के अन्दर, कई लाख चिड़ियों की खालें बेची गई थीं, इनमें से तीन लाख पचास हज़ार भारतवर्ष से आई हुई थीं। इन लाखों पक्षियों की हत्या से कीड़ों की वृद्धि होने के कारण जो नुक़सान वृक्ष और खेती को पहुँचता है उसके पूरा करने को सिवा पक्षियों के और कोई समर्थ नहीं हो सकता।

कीड़ों की जिस असंख्य अधिकता से वृद्धि होती है उसका हिसाब लगाना बहुत कठिन है। उदाहरणार्थ एक साधारण गृहमक्षिका को लीजिए। एक ही मक्खी से एक ग्रीष्म ऋतु के बीच में २१,०००,००० संतति होती है; यदि इस औलाद की भी उसी प्रकार वृद्धि होती रहे और उनको रोक में रखनेवाले जन्तुओं को मार दिया जाय तो संसार थोड़े ही काल में मक्खियों से भर जाय। साधारण मक्खी खाद के ढेरों में अंडे जमा करती है। अंडों से पिलवे निकल खाद में जीवन व्यतीत करते हैं। यदि किसी को उनकी संख्या के विषय में शंका निवारण करना हो तो वसंत ऋतु में बाहर पड़े हुए किसी गीले खाद की ढेर को कुरेद कर देख लेवें। गत वर्ष लेखक ने कैलीफोरनियाँ विश्वविद्यालय के निकट एक अस्तबल के बाहर पड़े खाद से चार पाउँड की ढेरी लेकर कुशलतापूर्वक जो गिना तो ५००० पिलवे पाये।

अमेरिका के एक कीटक-विज्ञान-वेत्ता (Entomologist) ने किसी शाहदाने के बाग़ में जाकर पेड़ों को (Aphids = plant lice) एक जाति के कीड़ों से भरा देख उनकी संख्या जाननी चाही। दस फ़ीट ऊँचे पेड़ की एक पत्ती के ऊपर के कीड़ों को, फिर एक टहनी की पत्तियों को, शाखा की टहनियों और पेड़ की शाखाओं को गिन कर यह हिसाब लगाया कि पेड़ में लग भग १२०००००० कीड़े थे और यदि एक मनुष्य इन कीड़ों को ऐसी शीघ्रता से जितनी कि साधारण बात-चीत में की जाती है गिनने बैठे तो १० घंटे रोज़ के हिसाब से ११ महीने में गिनती समाप्त होगी। बाग़ के और पेड़ भी इसी पेड़ के समान भरे पड़े थे।

जिन जिन देशों ने अज्ञानता के कारण पक्षियों को त्रास दिया है, उन देशों को इस मूर्खता का फल अवश्य मिला है। उदाहरण के लिए सुनिए—प्रशिया (Prussia) देश के बादशाह फ़ेडरिक दी ग्रेट (Frederick the Great) ने अपने बाग़ से गौरय्यों को मार कर निकाल देने की आज्ञा दी। इस राज-कोप का कारण यह था कि बादशाह के खाने के फल गौरय्यों को भी मीठे लगते थे। बस राज की आज्ञा का पालन हुआ। दो वर्ष के बीच में गौरय्यों का नामो-निशान भी न रहा और दूसरे पक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी भयभीत हो अन्य स्थान को भाग गये। पक्षियों का अभाव होने से कीट पिलवों (Caterpillar) ने पेड़ों पर एक भी पत्ती बाक़ी न रक्खी। निदान इस शाप से छूटने के निमित्त फिर दूसरे स्थानों से गौरय्यों को मँगवाना पड़ा।

इस छोटी चिड़िया के ऊपर मनुष्यों का बहुधा कोप होता है। बहुतेरे तो इसके गुणों को जानते ही नहीं। किसानों का जो इस पर कटाक्ष है उसका तो कुछ कहना ही नहीं। यह तो सत्य है कि गौरय्या नाज के दानों पर भी चोंच मार लेती है। परन्तु क्या इस तरह कुछ थोड़ा सा खाना उसका हक़ नहीं? क्या वह मनुष्य की इतनी सेवा नहीं करती जो अपना वेतन ले? वर्ष भर में नौ महीने तो गौरय्या कीटों का ही आहार करती है और उसके बच्चे भी उड़ने योग्य होने तक केवल कीटों पर जीते हैं। प्रकृति-वेत्ताओं का मत है कि एक जोड़ा गौरय्ये का प्रत्येक सप्ताह में ४३०० कीड़े अपने बच्चों के लिए ले जाता है।

पक्षियों के अतिरिक्त चूहा, चकचूँदर, छिपकली, मेंढक, चमगीदड़ और अन्य गोबरीले कीड़े भी (Carabidæ = ground beetles) दूसरे कीड़ों का शिकार करते हैं। किन्तु इस काम में जितनी सेवा पक्षियों से होती है उतनी औरों से नहीं होती।

पक्षी केवल कीड़ों ही पर आक्रमण नहीं करते वरन् पत्तियों और वृक्षों की छालों के बीच में से उनके अंडों को निकाल कर खा जाते हैं। इसके अतिरिक्त वे खेतों में से ऐसे झाड़ और काँटों के बीजों को जिनके उगने पर नाज का जमना कठिन हो जाय उनको भी चुन कर खा जाते हैं। ऐसा एक पक्षी कबूतर है। कबूतर और पक्षियों की तरह कीड़ों को नहीं खाता पर जब इसे झाड़, काँटे के बीज नहीं मिलते तब वह नाज पर दृष्टि फेरता है। पर उसका यह कर्तव्य कदाचित् अनुचित नहीं है।

यहाँ तक तो हमने कीड़ों को कृषि का वैरी ही ठहराया किन्तु बहुत से ऐसे कीड़े भी हैं जिनके लाभों का गुण मनुष्य कदाचित् नहीं भूल सकता। ऐसे लाभदायक कीड़ों में से मधु-मक्षिका का नाम सुन किसके हृदय में प्रेम नहीं समा जाता। मधु मक्षिका हमको केवल मधु ही नहीं देती वरन् हमारे फल फूलों को निर्बीज होने से बचाती है।

प्रकृति में बहुत से ऐसे पुष्प हैं जिनमें कि कीड़ों की सहायता के बीज ही पैदा नहीं होता। जानवरों के समान अनेक वृक्षों में भी बिना नर मादा के सन्तान होना सम्भव नहीं। यदि आप कभी बाग़ में जाकर कुशलपूर्वक निरीक्षण किया हो तो मालूम किया होगा कि किसी पुष्प में पराग होता है और किसी में होता ही नहीं। कभी कभी यह दोनों पुष्प एक ही गुच्छे में होते हैं, कभी पराग वाला पुष्प एक टहनी में और बिना परागवाला दूसरी टहनी में, यहाँ तक कि कभी परागवाला पुष्प एक वृक्ष में और बिना परागवाला दूसरे वृक्ष में होता है। बीज उत्पन्न होने के लिए यह आवश्यक है कि यह पराग बिना परागवाले पुष्प के गर्भ में डाला जाय। इस कार्य्य के करने के लिए प्रकृति ने बहुत से मार्ग बनाये हैं। किन्तु बहुत से पुष्प इस कार्य्य के लिए कीड़ों ही पर निर्भर हैं। मधु मक्षिका मधु बटोरने के निमित्त एक पुष्प से उड़ कर दूसरे पुष्प में जाती हुई पराग को ले जाती है। यह सब किस प्रकार और किन किन कीड़ों से किया जाता है इस बात को यहाँ पर वर्णन करना हमारे लेख के विषय के बाहर है।

किन्तु मधु-मक्षिका के समान कीड़ों को छोड़कर यह सत्य है कि कीड़े कृषि के परम वैरी हैं। विचार कीजिए कि एक जाति का कीटक २४ घण्टे के अन्दर अपने असली भार का २०० गुना खा स्वाहा कर जाता है।

यहाँ पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि यदि पक्षियों की भी वृद्धि होती रहे तो संसार पक्षियों से ही भर जायगा। हाँ एक और प्रश्न भी है। बताइए कि उल्लू और कौवे जो सिवा नुक़सान के और कोई भला नहीं करते किस कारण सम्मानित किये जायँ। उल्लू और कौवे पालतू मुर्ग़ियों के बच्चे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारद-मोह (२)

नारद जी का विष्णु के प्रति विनय-प्रकाश ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उड़ा ले जाते हैं, जहाँ तहाँ से कूड़ा करकट उठाकर हमारे आँगनों में डाल जाते हैं और अनेक प्रकार से मनुष्य को चिढ़ाते हैं। यह सब अपराध तो उनके ऊपर लगा, पर यह भी देखना चाहिए कि घुग्घू की ग़ैर-हाज़िरी में खेतों के चूहों की पंचायत का फ़ैसला करनेवाला भी तो कोई होना चाहिए था। उल्लू, तब, नाज-आहारी चूहों से रखवाली करनेवाला ठहरा।

कौवा अवश्य बड़ा नटखट और सर्वभक्षी है। किन्तु वह भी एक मात्र निषिद्ध नहीं, जैसा कि आगे मालूम होगा। फिर कौवे के भी तो शत्रु हैं। उकाब, बाज़, और उल्लू कौवों को खा जाते हैं। कौवे Robin (राबिन) पक्षी के घोसलों को लूटकर उनके अंडे और बच्चों को खा जाते हैं। इस लिए कौवे राबिन की वृद्धि को कमती करते हैं। राबिन एक प्रकार के गोबरीले (Carabidæ) के पिल्लों को खाते हैं। किन्तु यह गोबरीले नाशकारी कीड़ों का आहार करते हैं। इस कारण कौवे लाभदायक गोबरीलों को खानेवाले पक्षी राबिन को रोक में रखते हैं। क्योंकि यदि कौवा राबिन को न खाता तो राबिन गोबरीलों को खा जाते और वह कीटक जिनको कि गोबरीला खाता था बढ़कर खेती के नाशकारी होते।

किन्तु जब गोबरीलों को खाने के लिए कीड़े प्राप्त नहीं होते तब वे साग-पात खाना आरम्भ करते हैं। यदि गोबरीलों की संख्या अधिक हो जाय तो उनको सदा कीट आहार प्राप्त होना सम्भव न रहे, इस कारण वह फल और नाज खाने लगेंगे और यदि राबिन गोबरीलों को न खाय तो गोबरीले बला हो जायँ। राबिन, गोबरीलों को रोक में रखते हैं और कौवे राबिन को रोक में रखते हैं।

उकाब, बाज़ और उल्लू, कौवे और राबिन दोनोंही का शिकार करते हैं इस कारण उनकी ओर से अकेले राबिन के ऊपर आफ़त न आने से उनकी संख्या अतिन्यून नहीं होती।

कौवे कीट पिलवों का भी आहार करते हैं और राबिन कीट, पिलवों और गोबरीलों दोनों को खाते हैं। जब ये कीटक संख्या में थोड़े हो जाते हैं, तब राबिन और कौवे दोनों की भोजनसामग्री में न्यूनता आजाती है। ऐसा होने पर कौवे बुभुक्षित हो राबिनों और छोटे पक्षियों की ओर झपटते हैं। कुछ वर्षों में राबिनों की संख्या कमती हो जाती है, राबिनों की संख्या कमती होने पर कीटकों की संख्या बढ़ जाती है। जब कीटक बहुतायत से हो जाते हैं तो कौवे राबिनों और दूसरे पक्षियों को छोड़ कीटकों को खाने लगते हैं। क्योंकि एक तो कीटक उन्हें स्वादिष्ठ मालूम होते हैं दूसरे वे आसानी से पकड़े जा सकते हैं। अब राबिन और कौवे दोनोंहीं कीटकों को खाना शुरू करते हैं। परिणाम यह होता है कि फिर कीड़े कमती हो जाते हैं। कीड़े कमती हुए नहीं कि कौवों ने राबिनों को खाना आरम्भ किया। इसी प्रकार यह चक्र चलता रहता है।

अब फिर यह प्रश्न उठता है कि भला यह तो कहिए कि हर तरफ़ से कीड़ों के ही ऊपर आफ़त क्यों आती है। उल्लू, कौवा, राबिन, छिपकली, गोबरीला, मेंढक सभी को मनुष्य ने लाभदायक ठहराया तो कीड़ों को प्रकृति ने क्या मनुष्य का दुःख दाई होने के लिए ही सृजा था। कदापि नहीं। यह सब मनुष्य की उखेड़ पखेड़ के कारण ऐसा हुआ है। कीड़ों को प्रकृति ने वनस्पति-पदार्थ को समता में रखने के लिए बनाया है। क्योंकि यदि वनस्पति के ऊपर कोई रोक न होती तो संसार थोड़े ही काल में वृक्षों से ही भर जाता, यहाँ तक कि एक घास दूसरी घास और एक वृक्ष दूसरे वृक्ष से टक्कर खाने लगता और सबसे बलवान् अपना अधिकार जमा मही में अपनीही जाति का राज्य फैला देता।

मनुष्य की उखेड़ पखेड़ इस प्रकार हुई कि उसने जंगल, झाड़ी काटकर अपने खाने की खेती उगाना आरम्भ किया। बेचारे कीड़ों को जब उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाद्य न मिला तो उन्होंने मनुष्य की खेती पर आक्रमण किया।

कृषि के आस पास की झाड़ियों के कट जाने से इन पर बसेरा करनेवाले कीट और पक्षियों को तो किसी दूर स्थान को निकल जाना पड़ा और कीड़े सरक कर खेती में जा डटे। पक्षियों के वहाँ न रहने से कीड़ों के लिए मानो रामराज्य हो गया और उनकी वृद्धि होने लगी।

किसान और बागवानों को चाहिए कि खेतों के आस पास की झाड़ियों को न काटें और जहाँ तक हो सके पक्षियों को खेतों के आस पास बसेरा देने का प्रयत्न करें। जब प्रकृति की तराज़ू की पलड़ों में हमने फेर डाल ही दिया है तो उसको अपने अर्थ की ओर झुकाना ही हमारा काम है। पक्षियों के साथ साझा करने में हमको कोई हानि नहीं वरन् लाभ है। पक्षियों के साथ विरोध कर हम अपने शत्रुओं की वृद्धि करते हैं। जान लेना चाहिए कि शत्रु के विनाश करने का यदि तनिक भी अवकाश हाथ से जाने दिया जाय तो दिन दिन हानि ही हानि होती है।

भोलादत्त पांडे (अमेरिका)

भोजन की रसायन।

हम लोग जो कुछ भोजन करते हैं, उसकी यदि रसायन जानते तो बहुत सी ऐसी चीज़ें खाना प्रारम्भ कर देते जिनको कि आज कल हम मोटा नाज या घास पात समझ कर काम में नहीं लाते। अपने पशुओं को भी चारा और दाना देने में चतुर हो जाते। यद्यपि यह विषय बहुत बड़ा है और उसका समझना भी हर शख़्स के लिए आसान नहीं, तथापि भोजन रसायन का जानना भी अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए मैं इसका कुछ वर्णन करता हूँ।

भोजन से किस प्रकार शक्ति होती है यह प्रश्न सदा होता है। परन्तु भोजन की ताक़त कि वस्तु पर निर्भर है और किस विधि से अनुभव की जाती है यह ज्ञान लोगों को वर्त्तमान ही में हुआ है।

इस विषय में अमरीका-निवासियों ने उन्नति की है और अमरीका के कृषि-महाविद्यालयों में यह विषय भली भाँति बताया जाता है। चूँकि भोजन ऐसी चीज़ है जो कि हर एक मनुष्य के लिए ज़रूरी है इस हेतु यह जानना भी आवश्यक है कि भोजन का सम्बन्ध देह के साथ क्या है? पहली बात जानने की यह है कि वह पदार्थ जोकि मनुष्य खाता है उन्हीं चीज़ों की तरह है जिन चीज़ों से कि आदमी का बदन (शरीर) बना है।

पन्द्रह से लेकर बीस चीज़ें तक ऐसी हैं जिनसे भोजन और शरीर बने हैं, उनमें से निम्न लिखित सात चीज़ें बहुत करके पाई जाती हैं।

१—ओषजन, (आक्सीजन)
२—अभिद्रवजन. (हाईड्रोजन)
३—कर्बन (कारबन)
४—नत्रजन (नाइट्रोजन)
५—खटिक (केलशीयम)
६—स्फुर (फ़ासफोरस)
७—गंधक (सलफ़र)

ये सात मूल तत्त्व हैं जिनका वर्णन मैं हिन्दी केमिस्ट्री में सविस्तर कर चुका हूँ। जिन सज्जनों को उनका वृत्तान्त देखना हो वे हिन्दी-कैमिस्ट्री मँगा कर देख लें। ये मूल तत्त्व इस तरह संयुक्त होते हैं कि शरीर व भोजनादि नये नये प्रकार के सम्मेलन उत्पन्न करते हैं। उनमें से शरीर व भोजन के लिए ५ बड़े लाभदायक सम्मेलन हैं।

१—चरबी
२—प्रोटीन
३—कार्बो हाइड्रेट
४—खनिज पदार्थ
५—पानी

भोजन में इन सम्मेलनों का कार्य यह है कि वे शरीर को बनाते हैं और घिसे हुए भाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन्तुओं और रेशों को नये सिरे से तय्यार करते हैं। शरीर की गरमी को क़ायम रखते हैं और पुट्ठों में शक्ति उत्पन्न करते हैं।

पानी।

इन सम्मेलनों में सबसे अधिक भाग जल का है। जल शरीर के भार में साठ फ़ी सदी के हिसाब से मिला है। बिना पानी के कोई मांस-तन्तु नहीं बन सकता और इसलिए हमारे भोजन में भी पानी अधिक रहता है। परन्तु पानी न जलने के कारण शरीर में शक्ति नहीं उत्पन्न करता। अगर शरीर में पानी का भाग अधिक होता है तो भारीपन और सुस्ती पैदा करता है।

खनिज पदार्थ।

पानी के सिवा और भी चीज़ें भोजन में मिली हैं जिनसे यद्यपि शरीर को शक्ति नहीं मिलती परन्तु वे शरीर के लिए आवश्यक हैं। ऐसी चीज़ों को खनिज पदार्थ कहते हैं। उनका भार शरीर में ५ या ६ फ़ी सदी है। ये पदार्थ हड्डियों और दाँतों में पाये जाते हैं और अन्य रेशों में पाये जाते हैं और शरीर के द्रव पदार्थों में हल हो कर मिले रहते हैं। उनके होने का प्रमाण यह है कि जब शरीर जला दिया जाता है तब केवल खनिज पदार्थ राख बन कर दिखाई देते हैं।

केलशीयम फ़ास्फ़ेट जिसके बिना हड्डी नहीं बन सकती वह खनिज पदार्थ है। इसके अतिरिक्त सोडियम मेगनीशीयम और लोहा आदि भी शरीर के लिए आवश्यक हैं। विशेष शक्तिकारक पदार्थ ऐन्द्रिक (आरगेनिक) सम्मेलन हैं। ऐन्द्रिक उन पदार्थों का नाम है जो कि जीवधारी शरीर और वनस्पति में पाये जाते हैं।

प्रोटीन।

प्रोटीन में अधिकतर नत्रजन का सम्मेलन है। प्रोटीन वे चर्बी का मुलायम मांस और पतली कुरकुरी हड्डी में मिली होती है। अंडे में जो सफ़ेद सफ़ेद पदार्थ दिखाई देता है वह भी प्रोटीन है। गेहूँ में भी प्रोटीन शामिल है जिसको कि गिलूटीन कहते हैं। गेहूँ का सबसे अधिक बलदायक भाग गिलूटीन का है। यह गिलूटीन पानी में हल हो जाती है। इसलिए अगर गेहूँ धोया जाता है तो गिलूटीन उसमें हल होकर निकल जाती है और उस गेहूँ की शक्ति कम हो जाती है। इसी तरह मांस की प्रोटीन भी पानी में घुलकर निकल जाती है। इसीलिए बहुत धोये हुए मांस की शक्ति कम हो जाती है। मनुष्य के शरीर में १८ फ़ी सदी प्रोटीन का भार है। मनुष्य में प्रोटीन की कमी होने से वह कमज़ोर और दुर्बल हो जाता है। बिना प्रोटीन के हड्डी नहीं बन सकती। प्रोटीन ही से शरीर के रेशे और नसें बनती हैं। बिना उसके शरीर बन नहीं सकता। प्रोटीन शरीर में जलकर काम करने का हौंसला और फ़ुर्ती पैदा करती है। और कुछ कुछ बदलकर चरबी भी बन जाती है और चरबी बनकर शरीर में जमा रहती है। परन्तु यह सब उसका मामूली काम है। ख़ास काम प्रोटीन का जिससे वह बड़ी आवश्यक है वह नस, रेशा और पुट्ठे बनाने का है।

चरबी।

चर्बी ख़ासकर मांस, मक्खन, और मछली आदि में पाई जाती है। इसके सिवा वह वनस्पति आदि वस्तुओं में भी जैसे कि बिनौला, अख़रोट, गरी, जुवार में भी पाई जाती है। मनुष्य और जानवरों के शरीर में भी चरबी मांस के नीचे थका या छोटे छोटे ढेर की शकल में रहती है और छोटे छोटे टुकड़ों की शकल में भिन्न भिन्न रेशों के बीच में फैली रहती है। शरीर में चरबी की मात्रा भोजन और शारीरिक कसरत और अवस्था पर निर्भर है।

यदि भोजन पेट में उस ज़रूरत से ज़ियादा पहुँचे जितनी ज़रूरत कि शरीर को ख़ास उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय है तो अधिक भोजन शरीर में जमा हो जाता है और आगे के वास्ते काम आता है।

भोजन की प्रोटीन और भोजन की चरबी शरीर में शारीरिक प्रोटीन और शारीरिक चरबी हो जाती हैं। इसके सिवा भोजन में जो शकर और निशास्ता होता है वह चरबी बनकर शरीर में जमा रहता है और जब कभी भोजन की कमी होती है तब यह पूँजी जलकर काम आती है।

मनुष्य के शरीर के भार में १५ फ़ी सदी चरबी होती है। जिन लोगों को अच्छा या ज़रूरत से ज़ियादा खाना मिलता है और कसरत या मेहनत कम करनी पड़ती है वे लोग मोटे हो जाते हैं। उसकी वजह यह है कि बढ़ती का भोजन चरबी बनकर जमा होता जाता है।

परन्तु मोटाई का कारण भोजन और कसरत के अतिरिक्त और भी हो सकता है जिसके यहाँ वर्णन करने की आवश्यकता नहीं।

कार्बो हाइडरेट।

निशास्ता शकर, फल या पौदे के रेशे या सेलेलोस इत्यादि कार्बो हाइड्रेट कहलाते हैं। कार्बो हाइड्रेट ख़ासकर तरकारियों में, नाज में और आलू इत्यादि में अधिकतर मिलता है।

दूध में जो एक ख़ास तरह की शकर पाई जाती है वह भी कार्बो हाइड्रेट है। मनुष्य के शरीर में कार्बो हाइड्रेट का भाग १ फ़ी सदी है। निशास्ता और शकर इत्यादि हर मामूली भोजन में अधिकतर होते हैं और वे भोजन के बड़े उपयोगी और आवश्यक अंश हैं क्योंकि वे जलकर मनुष्य के भीतर काम करने की शक्ति पैदा करते हैं और बहुत आसानी से हज़म हो जाते हैं और उनसे शरीर में चरबी भी बनती है।

महेशचरणसिंह।

भगवान् बुद्धदेव।

[भाग ११ संख्या २ पृष्ठ ७१ से आगे]

(३)

बुद्ध के जन्मसमय की धार्मिक दशा।

बुद्ध के जन्म समय में धर्म की बड़ी बुरी दशा थी। धार्मिक अराजकता चारों ओर फैली हुई थी, और ऐसे विपत्ति-काल में अन्धकारग्रसित मनुष्य-आत्मा ज्योति और साहाय्य के लिए चिल्ला रही थी, पर उसे कोई उत्तर न मिलता था। शंका और अशान्ति आत्मा को घेरे रहती थीं। चारों तरफ़ से, जैसा हम पहले कह आये हैं, अन्धकार की भीषण छाया से धार्मिक संसार ढका हुआ था। पर जब हम तमसाच्छादित गड़बड़ को विचार से देखते हैं तब हमें मुख्य तीन प्रवृत्तियाँ (tendencies) दृष्टिगोचर होती हैं, जो एक दूसरे से और छोटी छोटी अन्य प्रवृत्तियों से संघटित होने के कारण इस समय की धार्मिक हलचल और बेचैनी को उत्पन्न करती हैं।

मुख्य तीन प्रवृत्तियों में से एक पशु-यज्ञ करने की प्रवृत्ति थी। जिस समय बुद्ध-देव का जन्म हुआ था, उस समय पशु-यज्ञ पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था। निर्दोष, दीन, असहाय जानवरों के ख़ून से यज्ञ-वेदी लाल की जाती थी जिसमें यजमान के संकट दूर हों, उसके दुष्कर्मों का फल नष्ट हो जाय, और उसकी इच्छा का बीज पल्लवित हो और उसमें अभीष्ट फल लगें, जिसमें पूज्य-देव परितृप्त होकर यजमान की मनोकामना पूर्ण करें।

पुरोहित लोग यज्ञ के कराने में सदैव बड़े मुस्तैद रहते थे। उन लोगों को इससे बड़ा लाभ था, यही उनकी जीविका का मुख्य स्रोत था। यज्ञ करने के विधान बड़ेही विवादास्पद और पेचीदा थे।

यज्ञ की सफलता इन विधानों और नियमों के पूर्णतया पालन करने पर निर्भर थी। ज़रा भी चूके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरर्थक से भी निरर्थक क़ायदे का भी उल्लंघन हुआ कि यज्ञ-विध्वंस हुआ!

अनात्मवाद और कर्म्मकाण्ड ही (Materialism and Ritualism) का पूर्ण रूप से सार्वभौमिक राज्य था। समाज बाह्याडम्बर में फँसा हुआ था, परन्तु समाज की आत्मा घोर अन्धकार में पड़ी हुई प्रकाश के लिए चिल्ला रही थी। पर उसकी कुछ भी परवा न की जाती थी। इस यज्ञ-प्रथा का प्रभाव समाज पर बड़ा ही बुरा पड़ता था। एक तो यज्ञों में जो पशु-हत्या होती थी, उसके कारण मनुष्यों के हृदय निर्दय और कठोर होते जाते थे, और फिर लोगों के हृदय में से जीवन के महत्त्व और प्रतिष्ठा का भाव उठता जाता था। मनुष्य आत्मिक जीवन के गौरव को भूलने लगे थे। इन यज्ञों का दूसरा बुरा प्रभाव यह था कि मनुष्यों में जड़ पदार्थ की महिमा बहुत ज़्यादा फैल गई थी; वे इतना ही नहीं कि आभ्यन्तरिक बातों की अपेक्षा बाह्य बातों का अधिक सम्मान करने लगे थे। किन्तु बाह्य बातों को ही अपने जीवन में सबसे श्रेष्ठ स्थान देते थे। लोगों का विश्वास था कि यज्ञद्वारा किये हुए बुरे कामों का फल नष्ट हो जाता है। भला सद्-जीवन और पवित्र आचरण का गुरुत्व ऐसे समाज में कब रह सकता है? क्योंकि लोग जानते थे कि पाप से कलुषित आत्मा की कालिमा को नष्ट करने के लिए पश्चात्ताप और सत्तप की प्रचण्ड अग्नि उद्दीपित करने की कोई आवश्यकता नहीं, केवल यज्ञ के मांस-दुर्गन्धाभिसिक्त धूम से ही आत्मा उज्ज्वल हो जायगी। पर इसका फल इससे बिलकुल ही विपरीत होता था। आत्मा की कालिमा और ज़्यादा गहरी होती जाती थी। यज्ञ करने में बहुत रुपया ख़र्च होता था, बड़ी दक्षिणाएं पुरोहितों को देनी पड़ती थीं। बहुमूल्य वस्त्र, गाय, घोड़े, और सुवर्ण की दक्षिणा होती थी। अतएव हर एक के भाग्य में यज्ञ करके यश प्राप्त करना न बदा था। धनवान् पुरुष ही यज्ञ करने का साहस कर सकता था।

इसलिए विचार-प्रवाह कर्मकाण्ड के विरुद्ध बहने लगा और लोग आत्मशान्ति प्राप्त करने के लिए नये नये उपाय सोचने लगे।

इन उपायों में से एक उपाय हठयोग भी था। उनका विश्वास था कि कठिन तपस्या करने से उनको ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हो जायगी। उनमें दैवी शक्तियों का आविर्भाव होगा, प्रकृति की शक्तियाँ उनके वश में हो जायँगी। उनका यह भी ख़याल था कि आत्मा और शरीर में विरोध है; आत्मा शरीर रूपी कारागार में क़ैद कर दिया गया है। अतः इस बन्धन से निवृत्त होते ही आत्मा स्वतन्त्र हो जायगी। ज्यों ज्यों शरीर क्षीण होता जायगा, त्यों त्यों आत्मा का उत्तरोत्तर विकास होता जायगा। इस विचार को लेकर ये लोग अपने शरीर को नाना प्रकार के तपों से नष्ट करने लगे। गर्मी के दिनों में अपने चारों तरफ़ अग्नि जलाकर बहुत से तपस्वी सूर्य भगवान् की तरफ़ मुख किये मन्त्र का जप करते थे। कोई कोई महीनों तक बड़े बड़े कठिन उपवास करते थे। सर्दी और गर्मी का कुछ ख़याल न करके ये लोग अपने अर्थ-साधन में दत्त-चित्त रहते थे। इन लोगों को कठिन से कठिन शारीरिक दुःख से भी क्लेश न होता था। इनका अभ्यास इतना चढ़ा बढ़ा था कि बाज़े तपस्वी अपने शिर के, मूँछों और दाढ़ी के बालों को हाथ से नोच नोच कर फेंक देते थे। निःसंदेह इनकी सहिष्णुता प्रशंसनीय थी। पर ये लोग भी अपने अर्थ-साधन में लेखक की राय में, ग़लत रास्ते पर चले गये थे। इन लोगों का विचार कि शरीर और आत्मा में स्वाभाविक विरोध है, ठीक नहीं। आत्मा और शरीर में इतनी प्रगाढ़ विभिन्नता कदापि नहीं। शरीर और आत्मा में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। आत्मा शरीर के द्वारा और उसके ही साहाय्य से उन्नति कर सकती है। जैसे अपने हथियारों को फेंक कर कारीगर का अपने कार्य्य में सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न करना नितान्त मूर्खता है, वैसेही शरीर को नाश करके, आत्मोन्नति की कामना करना निस्संदेह पागलपन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। क्योंकि शारीरिक उन्नति करते हुए भी आत्मोन्नति हो सकती है। इस पृथ्वी-मण्डल तथा उसकी अवस्था और जीवन की सामग्री का लक्ष्य करके ऊपर के वाक्यों की सत्यता स्वयं सिद्ध है। अन्य लोकों में चाहे केवल आत्मा ही अपने वास्तविक स्वरूप में विचर कर ज्ञान और धर्म का संचय करती हो। पर इस लोक में यदि आपको सच्ची आत्मोन्नति करनी है, तो शरीर को नाश करके, कृतकार्य होने की अभिलाषा छोड़ दीजिए। आधुनिक मनःशास्त्र-वेत्ताओं ने आत्मा और शरीर के पारस्परिक सम्बन्ध को बड़ी सुन्दरता के साथ दर्शाया है। अस्तु। बुद्ध-देव के जन्म-समय में पूर्वोक्त तामसी तप की महिमा ख़ूब फैली हुई थी; और भगवान् बुद्धदेव ने स्वयं लग भग ६ वर्ष पर्य्यन्त इसी हठयोग का कठिन व्रत धारण किया था पर जब उनको इसकी निस्सारता का विश्वास हो गया, तब वह इसे छोड़कर सत्य ज्ञान और सत्तप की खोज में चल दिये। दूसरी प्रवृत्ति यही तप-माहात्म्य था।

(३) पर उत्साह-पूर्ण पुरुषों की आत्मा को न तो कर्म-काण्ड में शान्ति मिली और न हठ तपश्चर्या में ही परमानन्द का लाभ हुआ। ऐसे लोगों को समाज का बनावटी और झूठा जीवन तकलीफ़ देने लगा; उनके आत्मा की ज्वाला और अधिक भभकने लगी। इन सत्य के खोजियों ने अपने घर बार से और इस असत्य-प्रिय संसार से मुख मोड़कर जंगल की तरफ़ प्रस्थान किया। जिस समय बुद्धदेव का अवतार हुआ था उस समय विचरते हुए साधु-संन्यासियों की बड़ी संख्या थी। ये लोग देश के एक कोने से दूसरे कोने तक घूमा करते थे। इनका लोगों में बड़ा मान था। इन परिव्राजकों के ठहरने के लिए राजे महाराजे, बस्ती से बाहर, अच्छे अच्छे स्थान बनवा देते थे। उस समय के लोग अतिथि-सत्कार करना ख़ूब अच्छी तरह जानते थे; इसलिए धनाढ्य पुरुष इन संन्यासियों के विश्राम के लिए आश्रम योग्य स्थानों में रचवा देते थे। या बहुत से स्थानों में इसका प्रबन्ध पंचायती चन्दे से हो जाता था। वहीं पर विचरते विचरते संन्यासी लोग आ जाते थे। उनके भोजनादि का प्रबन्ध अतिथि-सेवा-परायण उस समय के लोग पूर्ण-रूप से करते थे। नित्य-प्रति लोग इन महात्माओं के दर्शनों को जाते थे, और दार्शनिक तथा धार्मिक विषयों पर इन संन्यासियों की व्याख्या सुनते थे। यदि वहाँ पर उसी समय और भी कोई संन्यासी ठहरे होते थे, तो फिर शास्त्रार्थ भी छिड़ जाता था। ये लोग पूर्ण स्वतंत्रता के साथ अपने विचारों को प्रकट करते और अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। स्त्री और पुरुष दोनों ही इस संन्यासाश्रम में प्रवेश कर सकते थे।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि ये लोग अपने विचारों और सिद्धान्तों को फैलाने में पूर्ण स्वतन्त्रता दिखाते थे। प्रचलित संस्थाओं से इन लोगों को कोई विशेष प्रेम न था। यह भी ऊपर कहा जा चुका है कि बहुत से लोग, प्रचलित धर्म्म से असंतुष्ट होकर घर छोड़कर चल दिये थे। इसलिए ये लोग प्रचलित धर्म्म का प्रतिपादन और समर्थन न करते थे। प्रचलित प्रणाली की त्रुटियों से असंतुष्ट होने के कारण ये लोग चारों तरफ़ इन संस्थाओं की बुराइयों को ज़ाहिर करते थे, समाज की वर्तमान अवस्था की समालोचना करते थे। सर्व-साधारण के हृदयों में प्रचलित धर्म्म में असंतोष और अश्रद्धा पैदा कर रहे थे, उनके विश्वासों की जड़ को धीरे धीरे कमज़ोर करते जाते थे। पुराने देवी-देवताओं की ओर से इनको मोड़कर दूसरी तरफ़ ले जाने का प्रयत्न करते थे। प्रचलित धर्म की जड़ डिगने लगी। क्षेत्र धीरे धीरे इन संन्यासियों ने तैयार कर दिया था कि नये विचारों का बीज बोया जाय। पर अभी बीज बोनेवाले की कमी थी; और लोग उसकी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। पर जब तक वह धर्म-वीर नहीं आता जो अपने सत्य के शंखनाद से अन्धकार की सेना को परास्त करके तितर बितर कर दे, जिसमें सद्धर्म्म की ज्योतिर्मय रश्मियों की सुधामय उष्णता से अधर्म-रूपी शीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से कुम्हलाई हुई समाज-जीवन की लता फिर से लहलहा उठे और अन्धकार से संकुचित आत्मा-मृणालिनी विकसित हो जावे, उस समय तक, आओ हम लोग इन संन्यासियों की व्याख्या को ध्यान-पूर्वक सुनें जिसमें इनके सिद्धान्तों का हमें सामान्य ज्ञान हो जाय।

वेदों में एक ईश्वर का ज़िक्र कई जगह पर आया है। वैदिक समय में लोगों को इसका भी ज्ञान था कि मनुष्य में जीव है, और जीव शरीर के नाश होने पर, पितृलोक में जाता है। पर परमात्मा और जीव का क्या सबन्ध है। जीव नित्य है या अनित्य; जगत् अनादि से है, या अभी प्रथम ही ईश्वर ने रचा है। परमात्मा, जीव और प्रकृति की सत्ता और उनकी नित्यता और उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है इन और अन्य गूढ़ विषयों की मीमांसा पूर्णतया वेदों में नहीं। वेदों में बीज-रूप से कहीं कहीं भलेही हो पर यह नहीं कहा जा सकता कि इनकी सविस्तर व्याख्या वेदों में करदी गई है। पर विचारशील पुरुषों के हृदयों में तो ऐसे प्रश्न ज़ोर से उठते होंगे। और अवश्य उनके हृदय में ऐसी उत्कंठा उत्पन्न होती होगी कि इस संसार के गूढ़ रहस्य को समझें और उसका यथावत् ज्ञान प्राप्त करें। बस वही लोग जङ्गलों में जाकर परिश्रम और महान् धैर्य से इस अज्ञेय जगत् के गोरख-धन्धे को सुलझाने का प्रयत्न करने लगे। बहुत से जिज्ञासु कुछ दिनों तक कृतकार्य न हुए; पर प्रकृति के मुख पर जो घूँघट पड़ा हुआ है उसको हटाकर उसके सत्य स्वरूप को जानने की इच्छा इनमें अति बलवती थी। परमात्मा की यह प्रार्थना करते हुए कि—

"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्म्माय दृष्टये॥"

(ईशोप० १५)

इन धीर पुरुषों ने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि की तलवार से प्राकृतिक बाह्य परतों को काट डाला; और जो कुछ इन लोगों ने देखा और अनुभव किया, वह सब हमारे उपकारार्थ अमर सद्विद्या-भाण्डार, उपनिषदों में कह गये, ताकि जिसका जी चाहे, वहाँ अमृत पान कर अपनी आत्मा को शान्ति दे। उपनिषदों में विचार और सिद्धान्त मिलते तो हैं परन्तु कुछ इधर हैं और कुछ उधर; बहुत से विचारों की झलक-मात्रही हमें दिखाई देती है; और फिर भी उपनिषदों में एक बात कहीं पर है, तो दूसरी जगह दूसरी बात उससे विपरीत सी कही हुई जान पड़ती है। इन उपनिषदों में कर्म के ऊपर ज्ञान की प्रधानता दिखाई गई है; ज्ञान के द्वारा अज्ञान का नाश और मोह से निवृत्ति बतलाई गई है। पुनर्जन्म और जीव की नित्यता पर ज़ोर दिया गया है। अज्ञान, जीव के दुःख-सुख का कारण, परमात्मा की सत्ता, और आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध, इन विषयों पर बड़ा ही गूढ़ता और तीक्ष्ण बुद्धिमत्ता के साथ विचार किया गया है। धीरे धीरे उपनिषदों के विचारनेवालों की संख्या बढ़ने लगी। उनके उपदेशों का अध्ययन और मनन होने लगा। कुछ लोगों ने उपनिषदों में अद्वैतवाद पाया। किसी ने उनसे विशिष्टाद्वैत निकाला, और किसी के मत में न अद्वैत और न विशिष्टाद्वैत, किन्तु द्वैतावाद निकला। इसी तरह से अनेक प्रकार के मत-मतान्तर हो गये और शास्त्रों का प्रादुर्भाव हुआ। वर्तमान षड्-दर्शन उस समय के आचार्यों की व्याख्याएँ हैं। बहुत सी व्याख्याओं का नाश हो गया; बहुत सी व्याख्याओं में परस्पर अधिक विरोध न था। हमें एक पुस्तक के द्वारा पता लगता है कि पहले कम से कम ७२ तरह की दार्शनिक सम्प्रदायें (Schools of Philosophical Thought) मौजूद थीं, पर मुख्य यही छः थीं। भिन्न भिन्न आचार्य जगत् के रहस्य का पृथक् पृथक् उत्तर देते थे पर इन सब से प्रबल दो तरह के सिद्धान्त थे। सांख्य जो आत्मा और प्रकृति में भेद मानता था दूसरा सिद्धान्त सांख्य के विरुद्ध था वही विचार-शैली, परिणत अवस्था में वेदान्त के नाम से जगत् में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collecti

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध है। यह दार्शनिक विकास दस बीस वर्षों में नहीं हुआ, इसमें सहस्रों वर्ष लगे होंगे। जो हो, बुद्धदेव के समय में दार्शनिक विचार परिपक्व हो चुके थे, परन्तु बहुतेरे वेदान्ती साधु-संन्यासी आत्मा-परमात्मा, माया प्रकृति सम्बन्धीय शुष्क वितण्डा-वाद में फँसे हुए थे। यह शुष्क ज्ञान-मार्ग भगवान् बुद्धदेव के समय की तीसरी प्रबल प्रवृत्ति थी।

तीन तो ये मुख्य धाराएँ उस समय बड़े ज़ोर में बह रही थीं। पर सतह के नीचे और भी बहुत सी छोटी छोटी धाराएँ थीं। जैसे टोनाटुटके का भी सर्व-साधारण में बड़ा रिवाज था। सर्प-पूजा, वृक्ष, भूत-चुड़ैल-माहात्म्य भी काफ़ी तौर पर फैला हुआ था।

हम पहले कह चुके हैं कि परिव्राजकों ने प्रचलित संस्थाओं की नींव कमज़ोर कर दी थी; लोगों के विचारों में बड़ी ही आज़ादी आ गई थी। लोगों के विश्वास डिगने लगे थे। संशयवाद बहुतों के हृदय की शान्ति को नष्ट कर रहा था। अश्रद्धा और अविश्वास चारों तरफ़ देश भर में बढ़ रहे थे। साधु और संन्यासी, योगी और आचार्य अपने अपने लटके लिये फिरते थे, जिनके द्वारा वह समाज की धार्मिक अशान्ति को दूर करने का दावा करते थे। कोई कहता था कि यज्ञ में दीन ग़रीब बकरों का बलिदान दो तो समाज का कल्याण होगा, समाज के संकट सब दूर हो जायँगे। कोई कोई दूसरी ओर से चिल्लाते थे कि यज्ञ से कुछ नहीं होना है। बकरों के काटने से कोई फ़ायदा न होगा। ये कहते थे कि रोग तो है समाज के शरीर में, कष्ट है समाज के आत्मा को इसलिए यदि रोगी को उपवास कराया जाय, यदि उसको चान्द्रायण व्रत धारण कराया जाय, ज्येष्ठ की गर्मी में भभकती हुई अग्नि के सामने यदि रोगी बैठाया जाय, तो समाज के आत्मा की आन्तरिक जलन शान्ति न होगी।

यह समय की अवस्था थी। जब तक प्रचलित सिद्धान्तों पर जो जो प्रश्न समाज में उठते हैं, उनका संतोष-जनक उत्तर अच्छी तरह से नहीं दिया जाता तब तक सामाजिक हलचल में कमी होही नहीं सकती। हलचल और अशान्ति इस बात को बताती है कि अब समाज की स्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ है। नये नये प्रश्न और शंकाएँ समाज की नई नई आवश्यकताओं और नई नई अभिलाषाओं के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। जब तक समाज फिर ऐसे सिद्धान्त को धारण नहीं करती, जो परिवर्तित अवस्था के प्रश्नों को हल करके, समाज की आन्तरिक स्थिति के जीवित रहने की शक्ति प्रदान करे तब तक हलचल और अशान्ति फैली रहती है। यदि समाज ऐसे सिद्धान्तों को ढूँढ़ कर धारण कर सकी, तो जीवित रहती है। नहीं तो समाज की मृत्यु अवश्यमेव होती है। इस सिद्धान्त को ध्यान में रख कर बुद्धदेव के समय की स्थिति में जो हलचल मची हुई थी, उसका कारण विचारना चाहिए। क्योंकि हलचल नई आवश्यकता को बताती है। और जब हम इस आवश्यकता को जान जायँगे, तब हमें यह भी मालूम हो जायगा कि बुद्धदेव से और उनके समय से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध था और कहाँ तक बुद्धदेव अपने समय के विधेय थे।

असली प्रश्न जो मनुष्य के सामने अनादि काल से है वह यह है कि जो कुछ दुःख इस संसार में है, उसका कारण क्या है? याज्ञिकों ने इसका उत्तर दिया था कि देवताओं का क्रोध अथवा नाराज़ी है। उनको प्रसन्न करने का साधन इन लोगों ने स्वभावतः पशु-यज्ञ स्थिर किया, क्योंकि ख़ुद देखते थे यदि कोई आदमी रुष्ट हो जाता है तो वह बिनती करने और भेंट देने से प्रसन्न हो जाता है। परन्तु यह मत भ्रमात्मक है। एक तो, मनुष्य का शत्रु या मित्र अधिकतर वही है; अपना हित या अनहित असल में वही कर सकता है, अन्य कोई नहीं। नरक में ले जानेवाला कोई और नहीं, वही ख़ुद होता है जो आत्मा का हनन अपने आप करता है। दूसरे भाव से अधिक कर्म का आदर करना ठीक नहीं। इसमें मनुष्य या समाज का मंगल कदापि नहीं हो सकता। यदि पापों से बचना है तो यज्ञ से यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम नहीं होने का। बाह्य आभ्यन्तरिक को कभी भी वश में नहीं कर सकता। अतः आत्मा की कालिमा को नाश करना है तो आत्मा को पश्चात्ताप की प्रचण्ड ज्वाला में डाल दो, तब आत्मा सुवर्ण की तरह शुद्ध हो जायगी। "तपस्या" में भी यह बड़ी भारी ग़लती थी। तप करनेवाले शरीर और आत्मा में भेद मानते थे और अपने पापों का कारण अपने शरीर को मान कर उसके नाश का प्रयत्न करते थे। "शरीर" हम को पाप की तरफ़ नहीं ले जाता, हमारी बुरी कामनाएँ हमको पाप की ओर प्रेरित करती हैं और उन्हीं प्रेरणाओं के वश में होकर हम पाप करते हैं। इसमें शरीर का कोई दोष नहीं; यह हमारे 'शरीर के उपयोग या दुरुपयोग पर निर्भर है। मनुष्य-शरीर पाप का कारण नहीं है, किन्तु मुख्य कारण मनुष्य की बुरी कामनाएँ है। जो लोग यह समझते थे कि केवल शुष्क ज्ञान से ही जीवनोद्धार होगा वे भी भ्रम में फँसे हुए थे। बड़ा रोग जो समाज का था, वह था हृदय (Heart) का रोग। दर्द तो पेट में और दवा करना आँख की, ठीक नहीं ज्ञात होता। यहाँ यह मतलब कदापि नहीं है कि ज्ञान के बिना कोई मनुष्य सत्य-उन्नति कर सकता है। पर इतना अवश्यमेव विश्वास है कि शुष्क ज्ञान पर ही ज़ोर देने से उन्नति कभी नहीं हो सकती। क्या हम बड़े बड़े विद्वानों को नीच और बुरे कर्म करते हुए नहीं देखते? कोरे ज्ञान (Simple Intellectualism) से मनुष्य-समाज का बेड़ा भवसागर पार लगना असम्भव सा प्रतीत होता है। पर यदि यह कहा जाय कि ज्ञान-काण्ड में सत्कर्म का निषेध तो कहीं नहीं, इस पर हमारा कथन सिर्फ़ इतनाही है कि दुनिया भर का अन्तर सिर्फ़ ज़ोर ज़रा इधर से उधर देने से (Emphasis) पड़ जाता है। एक विद्वान् का कथन है कि "It makes all the difference in the world whether you plan truth in the first place or in the second." अर्थात् इसमें ज़मीन आसमान का फ़र्क़ पड़ जाता है कि हम सत्य सम्पादन पहले करें या पीछे। उस समय समाज की बीमारी हृदय की बीमारी (Heart-disease) थी। और समाज को ऐसे वैद्य की आवश्यकता थी कि जो उसके हृदय की दवा करे। भगवान् बुद्धदेव ने अवतरित होकर समय की आवश्यकता को ठीक ठीक समझ कर सदुपदेश किया। उन्होंने जो नई बात दुनिया को बतलाई वह यह थी कि संसार में जो धर्म्म-मार्ग पर चलना चाहते हैं, जो परोपकार और आत्मानुभव करना चाहते हैं वे आत्मोन्नति (Self-culture) में विश्वास लावें और सदाचार अपने जीवन में बर्तने का प्रयत्न करें। ६ ठवीं शताब्दी के पहले की दुनिया का विश्वास था यज्ञ में और मन्त्रों में, बुद्ध ने भारत में, कन्फ़ूशियस् ने चीन में, ज़रदस्त ने फ़ारस में, और एक महात्मा ने मिश्र में यज्ञ-मंत्र बाह्य कर्मकाण्ड और धर्माभास की जगह अन्तःकरण शुद्ध करने (The religion of the conscience) का धर्मोपदेश किया, और सारी दुनिया की जातियों का इतिहास उलट पलट कर दिया। यही एक इतिहास में बड़ीही आश्चर्यजनक घटना है कि जो उस समय दुनिया के जो मुख्य मुख्य सभ्य देश थे उन्होंने लग भग एकही समय में एक सा पलटा खाया। पर इसमें कोई शक नहीं और हम पक्षपात से यह नहीं कहते, क्योंकि पाश्चात्य बड़े बड़े विद्वान् भी इस बात के साक्षी हैं कि भगवान् बुद्धदेव उस समय के उपदेशकों में सबसे कहीं चढ़े बढ़े थे। इनका उपदेश कहीं ज़्यादा गम्भीर और सत्यता से परिपूर्ण था। इन महापुरुष की जीवन-कथा और इनका पावन उपदेश एक स्वतंत्र निबन्ध में कुछ समय के अनन्तर पाठकों की भेंट किया जायगा।

इस लेख को समाप्त करते हुए हम Rhys Davids के वचनों को उद्धृत करते हैं, जो उन्होंने भगवान् बुद्ध के विषय में एक स्थान पर लिखे हैं।

"We should never forget that Gautama was born and brought up and lived

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Harid...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

and died a Hindu. His teaching, far reaching and original as it was, was Indian throughout. Without the intellectual work of his predecessors his own work, however original, would have been impossible. He was no doubt the greatest of them all; and most probably the world will acknowledge him as in many respects the most intellectual of the religious teachers of mankind. But Buddhism is essentially an Indian system. The Buddha himself was throughout in his career and characteristic Indian.....we need only claim for him here that he was the greatest, wisest and best of the Hindus."

अर्थात् हमें यह याद रखना चाहिए कि गौतम का जन्म हिन्दू घराने में हुआ था, वह हिन्दू ही सारी ज़िन्दगी मरते दम तक रहे। उनका उपदेश अपूर्व और गहरा अवश्य है पर उसमें भारतीयता भरी हुई है। गौतम के पहले के लोगों के मानसिक परिश्रम और विचारों के बिना गौतम के विचारों में चाहे जितनी अपूर्वता क्यों न हो उनका होनाही असम्भव था। जो काम उन्होंने किया होही नहीं सकता था। निःसन्देह गौतम अपने पहले के सब महापुरुषों से बड़े थे और शायद संसार उन्हें जनसमाज के धर्म्मोपदेशकों में सबसे बढ़कर बुद्धिमान् मानेगा, परन्तु बौद्धधर्म्म वस्तुतः भारतीय धर्म्महीं की एक शाखा है। बुद्ध की सारी ज़िन्दगी में भारतीयता भरी रही। इतना तो हम अवश्यही दावे के साथ कह सकते हैं कि बुद्ध हिन्दू जाति में सबसे महान् सबसे अधिक बुद्धिमान् और सबसे उत्तम पुरुष थे।

वेङ्कटेशनारायण त्रिपाठी।

मुनि का मोह।

(१)

एक समय उदयाद्रियुत कर रवि की छवि मन्द।
नारद मुनि ने तप किया हिमगिरि पर सानन्द॥

(२)

उनके तप से चित्त में चिन्तित हुआ सुरेश।
तपोभङ्गहित काम को दिया शीघ्र आदेश॥

(३)

राग-रङ्ग मय मोहिनी सेना लेकर सङ्ग।
चला अनङ्ग उमङ्ग से करने को तप भङ्ग॥

(४)

वहाँ पहुँच कर मदन ने की माया विस्तार।
प्रकटी सुन्दर शैल पर शोभा विविध प्रकार॥

(५)

नारद ऐसे समय भी हुए न विकृत-अधीर।
अव्यय शब्द समान वे रहे प्रकृत-गम्भीर॥

(६)

जीत चुके जो मन उन्हें मनसिज कितनी बात?
मन की इच्छा के बिना क्या कर सकता गात?

(७)

भीत हुआ मुनि-शाप से होकर काम हताश।
होता है दुःसाध्य में निष्फलता से नाश॥

(८)

तब मुनि-चरणों में गिरा मदन क्षमा के अर्थ।
लज्जा-वश कुछ कथन को हुआ न किन्तु समर्थ॥

(९)

यों विलोक उसकी दशा किया न मुनि ने रोष।
अहो! भूल जाते सुजन शरणागत के दोष॥

(१०)

देकर दर्पक को क्षमा हुआ उन्हें यह दर्प—
मैंने भी शिव के सदृश जीत लिया कन्दर्प!

(११)

गर्व-सहित हरि के निकट जाकर तब तत्काल।
नारद ने उनसे कहा मन्मथ का सब हाल॥

(१२)

जान उन्हें अभिमान-रत हँसे तनिक भगवान।
थी माया उन्मादिनी उनकी वह मुसकान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारद-मोह (२)

नारद जी का क्रोध में भरकर विष्णु को शाप देना।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Harid

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१३)

करने को तब चूर्ण सब मुनि का घोर घमण्ड।
की लीलामय ने प्रकट लीला एक प्रचण्ड॥

(१४)

चले वहाँ से हो बिदा जब मुनिवर तप-धाम।
मिली मार्ग में तब उन्हें पुरी एक अभिराम॥

(१५)

चित्र-पताका-युक्त उस पुर का भवन-कलाप।
मानों मेघों से मुदित करता था आलाप॥

(१६)

था उस पुर के भूप का यदपि 'शीलनिधि' नाम।
अन्य गुणों का भी विदित था वह नरवर धाम॥

(१७)

अलङ्कृता तरुणी सदृश देख पुरी सस्नेह।
पहुँचे फिर कौतुक विवश नारद मुनि नृप-गेह॥

(१८)

स्वागत किया महीप ने मान पवित्र निकेत।
पाते कहाँ न पूज्य जन पूजा प्रेम-समेत॥

(१९)

स्वयंवरा थी भूप की सुता एक अभिराम।
आई वह मुनि के निकट करने उन्हें प्रणाम॥

(२०)

झँप जाते हैं नयन ज्यों देख चञ्चलालोक।
सहसा मुनि-दृग झँप गये उसका रूप विलोक॥

(२१)

विश्वमोहिनी वह सुता थी यों छवि से व्याप्त।
मानो विधि-नैपुण्य की सीमा हुई समाप्त॥

(२२)

जीत जिन्होंने था लिया सेना सहित मनोज।
हुए विमोहित मुनि वही लख नृपात्मजा-ओज!

(२३)

शान्त भाव जाता रहा हुआ चलाचल चित्त।
वे अति ही उत्सुक हुए उसकी प्राप्ति-निमित्त॥

(२४)

थी यद्यपि वह नृप-सुता सभी गुणों की खान।
मुनि तो छवि ही पर बिके मधु पर मधुप समान॥

(२५)

'निश्चय ही तुम धन्य हो पाकर यह सन्तान'।
यों कह मुनि ने भूप से किया शीघ्र प्रस्थान॥

(२६)

फिर वे उसकी प्राप्ति का करने लगे प्रयत्न।
"हाय! मुझे कैसे मिले अब वह रमणी-रत्न॥

(२७)

"मुझे वरेगी वह कभी रहते अगणित भूप?
अहो! नारियाँ देखतीं गुण से पहले रूप॥

(२८)

"केवल एक उपाय है हो जिसमें वह वश्य।
मिले मुझे हरि-रूप तो पाऊँ उसे अवश्य॥"

(२९)

नाच उठा यों सोचकर उनका मनोमयूर।
यत्न हाथ आया जहाँ सिद्धि कहाँ फिर दूर!

(३०)

करने से तब प्रार्थना प्रकट हुए भगवान।
बोले यों मुनि से वचन नूतन मेघ-समान—

(३१)

"ज्यों अबोध शिशु का पिता रखता है नित ध्यान।
त्योंही अपना हित मुने! मुझसे लीजो जान॥"

(३२)

लुप्त हुए प्रभुवर उधर गूढ़ गिरा कह स्वल्प।
हुआ इधर मुनिराज का अद्भुत काया कल्प॥

(३३)

और अङ्ग तो सब हुए अनुपम रूप निधान।
पर उनका मुख हो गया मर्कट-वदन-समान॥

(३४)

हरि-मोहित कपि-वदन वे मुकुट विभूषित शीश।
हुए कौतुकी मनुज के मानों क्रीड़ा-कीश!

(३५)

स्वयं वरस्थल में मुदित पहुँचे वे तत्काल।
बैठे थे शङ्कित-हृदय जहाँ विपुल भूपाल॥

(३६)

वरमाला कर में लिये जय-लक्ष्मी सी व्यक्त।
राज-सभा में नृप-सुता आई लज्जाऽऽसक्त॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Hari

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३७)

मुग्ध हुए मुनि लख उसे आते अपने पास।
पर जब वह ठहरी नहीं हुए तुरन्त उदास॥

(३८)

हिले डुले वे बहुत कुछ चला न एक प्रबन्ध।
दो दो दृग रहते हुए कौन बनेगा अन्ध?

(३९)

प्रकटे तब नृप-रूप-हरि मानों विधु घन-मुक्त।
वरा उन्हें उसने वहाँ नृप-गण-आशा-युक्त॥

(४०)

हुए क्षुब्ध मुनिवर्य्य उस रमणी-रत्न-विहीन।
मानों मुख का ग्रास ही लिया किसी ने छीन!

(४१)

थे शिव के दो गण वहाँ विदित जिन्हें था भेद।
बोले वे हँसकर वचन उनको देख सखेद—

(४२)

"कौन देश के हैं भला आप विलक्षण भूप?
देखो तो जाकर ज़रा दर्पण में निज रूप॥"

(४३)

सुन कर उनके वचन मुनि हुए यथा हतबोध।
देख रूप जल में तथा हुआ और भी क्रोध॥

(४४)

मर्कट-मुख था प्रथमही तिस पर पड़ा विकार।
मिला भयानक रौद्र से अद्भुत के आगार!

(४५)

दिया गणों को शीघ्र तब मुनि ने शाप प्रचण्ड—
'राक्षस हो जाओ खलो! लो हँसने का दण्ड'॥

(४६)

इतना करके भी हुए वे न ज़रा सन्तुष्ट।
चले रमा-पति के निकट विकट रूप अति रुष्ट॥

(४७)

मिले मार्ग ही में उन्हें सहसा त्रिभुवननाथ।
उसी राजपुत्री सहित लक्ष्मी भी थीं साथ॥

(४८)

शोभित यों उनके सहित थे हरि अद्भुतकर्म्म—
भुक्ति-मुक्ति-युत हो यथा मूर्तिमान सद्धर्म्म॥

(४९)

नारद उनको देखकर बोले फिर सक्रोध।
रहता किसको क्षोभ में भले बुरे का बोध॥

(५०)

"हरे! हरे! इस भाँति के कर्म्म तुम्हारे क्रूर।
खड़े रहो जाते कहाँ? होकर मद में चूर॥

(५१)

"विश्वासी के साथ भी होता है छल हाय!
तुम्हें स्वार्थ से काम है चाहे जो हो जाय॥

(५२)

"होकर पूर्ण स्वतन्त्र तुम करते हो उत्पात।
नहीं रहेगी किन्तु अब पहले की सी बात॥

(५३)

"हरना तुम को सहज है औरों का सुख भोग्य।
मिला नहीं कोई अभी तुम्हें तुम्हारे योग्य॥

(५४)

"नर बन कर तुमने मुझे वञ्चित किया विशेष।
लोगे तुम नरयोनि में जन्म शीघ्र कमलेश!

(५५)

"कीश बनाया है मुझे कर तुमने अन्याय।
कठिन समय में कीश ही होंगे तुम्हें सहाय॥

(५६)

"तुमने वनिता-विरह का दिया मुझे सन्ताप।
होगे वनिता-विरह में व्यग्र विकल तुम आप"॥

(५७)

सुन कर मुनि के वचन यों विहँसे जगदाधार।
तथा झुका कर सिर उन्हें किया शाप स्वीकार॥

(५८)

मायापति ने मुकुट पर रक्खा ज्यों ही हाथ।
छोड़ा सिर झुकता समझ माया ने मुनि-साथ॥

(५९)

सहसा स्वप्न-विनाश से होता है जो हाल।
हुई दशा मुनि की वही क्षण भर को उस काल॥

(६०)

रमा राजपुत्री हुईं तत्क्षण अन्तर्धान।
मुनि को केवल सामने दीख पड़े भगवान॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६१)

अपराधी की भाँति तब करके वे अनुताप।
प्रभु-चरणों में गिर पड़े करते हुए विलाप॥

(६२)

"हाय! हाय! मुझसे हुआ ऐसा दुष्कर दोष।
होगा जग में कौन जन मुझ सा कलमष-कोष॥

(६३)

"दग्ध हुआ जाता हृदय हाय! हुआ क्या आज।
मेरी मति मारी गई रही न कुछ भी लाज॥

(६४)

"प्रस्तुत हूँ मैं सामने दोषी सभी प्रकार।
जो कुछ करना हो करो है तुमको अधिकार॥

(६५)

"किस मुँह से मागूँ क्षमा करके ऐसा पाप।
हा! हा! विनती है यही फले न मेरा शाप॥

(६६)

"हो सकता है कौन जन कब तुमसे प्रतिकूल?
हुई हाय! अज्ञान-वश मुझसे ऐसी भूल।

(६७)

"प्रभुवर! रक्षा कीजिए सहा न जाता ताप।
दोषी भी मैं दास हूँ दयासिन्धु हो आप॥

(६८)

"कृपा तुम्हारी हे प्रभो! करे न जो उद्धार।
हो न एक भी जीव तो भवसागर से पार॥"

(६९)

सुनकर हरि ने विनय यों क्षमा किया मुनि-दोष।
दया दिखा कर विविध विध दिया पूर्ण परितोष—

(७०)

"जपो मुने! शुद्धयर्थ तुम शङ्कर के शत नाम।
गर्व न करना चाहिए करके कोई काम॥"

(७१)

सफल किया मुनि-शाप फिर हरि ने हर भू-भार।
कहीं बुरे से भी भला होता सभी प्रकार॥

(७२)

प्रभु का सर्वोपरि हुआ यह अवतार पवित्र।
राम-चरित्र समान है अन्य चरित्र न मित्र!

मैथिलीशरण गुप्त।

सतसई-संहार।

[भाग ११ संख्या ३ पृष्ठ १२६ वें से आगे]

५–"यदपि चवायनि चो(?)कनी चलति चहूँ दिश सैन'
तदपि न छाँडत दुहुँन के हँसी रसीले नैन॥६५॥"

"यद्यपि चबाव करने में चिकनी चुटपटी चतुर है, यद्यपि चारों ओर उँगली उठा उठा कर लोगों की सैन चलती है, तौभी दोनों के रसीले नेत्र हँसी नहीं छोड़ते तीसरी विभावना।" (पृ० २६)

चबाव करने में चिकनी चुटपटी (?) चतुर कौन है? इन विशेषणों का कोई विशेष्य भी है! यदि ये विशेषण नायिका के मान लिये जायँ तब 'तीसरी विभावना' में यह क्या काम देंगे? इनसे 'तीसरी विभावना' का भान कैसे हो जायगा? "कार्योत्पत्ति-स्तृतीया स्यात्सत्यपि प्रतिबन्धके" या "प्रतिबन्धक के होत हूँ कारज पूरन मान" यह 'तीसरी विभावना' का लक्षण है। अर्थात् प्रतिबन्धक (कारण) के होते हुए भी कार्योत्पत्ति हो जाना, तीसरी विभावना कहलाती है। नायिका का "चबाव में चिकनी चुट-पटी चतुर होना" रसीले नेत्रों से हँसी छुड़ाने या हँसी रोकने का साधक बाधक कुछ भी नहीं, और ये 'चुटपटी' 'चतुर' 'उँगली उठा उठा कर' मूल के किन पदों का अर्थ है? जिस 'लालचन्द्रिका' से आपने 'तीजी' या 'तीसरी विभावना' नक़ल की है वहीं से यदि इसका अर्थ भी समझ लेते तो यह सीधा सादा दोहा इस तरह 'चुटपटी' 'चतुर' की लपेट में आकर गोरखधंधा न बन जाता। पर समझने की तो आपने क़सम खाई है, चाहे दोहे का साधारण अर्थ भी न हो सके परन्तु अलङ्कार का नाम आप ज़रूर लिख देते हैं, जिससे कोई समझे कि आप बड़े आलङ्कारिक हैं!

उक्त दोहे की 'लालचन्द्रिका' इस प्रकार है :—

"सखी का वचन सखी से, जो भी निन्दाभरी चिकनी चलती हैं चारों ओर से सैन—कहैं आँख का इशारा, तो भी नहीं छोड़ते हैं दोनों के हाँसी, अनु-राग भरे नैन.....तीजी विभावनालंकार",..... इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—ऊँची चितै सराहियत गिरह कबूतर लेत।
दृग झलकित मुलकित वदन तनु पुलकित कहि देत? ७३

इसके मूल पर भी दो जगह हाथ साफ़ किया है, 'ऊँचे चितै' तथा 'किहि हेत' की जगह 'ऊँची चितै' और 'कहि देत' (?) न जाने किस अभिप्राय से बनाया गया है! अर्थ और भी विलक्षण है, फ़र्माते हैं :—

"ऊँचे देख कर सराहा जाता है, कबूतर गिरह लेता है किस कारण नेत्र झलकते मुख मुलकता (?) और शरीर पुलकित होता है, इत्यादि, (पृ० २८)

देखिए न, किस तरह ढेले से लुढ़काये हैं! "ऊँचे देख कर सराहा जाता है" कौन? कुछ पता नहीं! "कबूतर गिरह लेता है" लेने दीजिए, आपका कुछ हर्ज? यों तो चील मँडराती है, बाज़ झपटता है, कौवा उड़ता है, तोता कुतरता है, इत्यादि बहुत सी बातें हुआ करती हैं, आप अपना मतलब कहिए! 'झलकता, मुलकता, पुलकता,' की बहार भी देखने लायक़ है! "गौरश्वः पुरुषो हस्ती" इत्यादि निराकाङ्क्ष पदसमूह की तरह इस टीका के ये पद आकाङ्क्षारहित होने से निरे निरर्थक हैं। इसकी लालचन्द्रिका :—

"सखी का वचन नायिका से—ऊपर देख के सराहते हैं सब, गिरहबाज़ कबूतर=जो उड़ने में बाज़ी करता है, और तेरी आँखें डबडबाती हैं, प्रसन्न मुख है, और शरीर में रोमांच हुए, सो किस लिए? तात्पर्य यह कि नायक के (उड़ते) कबूतर देख (उसके सम्बन्ध से) नायक का स्वरूप नायिका के मन में आया जिससे सात्त्विक भाव हुआ। हेतु अलंकार स्पष्ट है"।

७—टुनिहाई सब टोल में रही जु सौति कहाय।
सुतौ ऐंच पिय आपत्यौं, करी अदोषिल आय॥१२४॥

"जो टोना करनेवाली सब सखियों के समूह में तेरी सौति (?) बाज रही थी (?) सो तैंने नायक को वशकर वह सौत बेछूत करदी लेखालंकार (?), जो सौतों का वशीभूत करना कर्म दोषमय था टोना के पद से वह गुण हुआ, जैसे टुट कहेरी (?) भूत की छूत दूर करै तैसे इसने सौत से दूरकर निज वश किया" (पृ० ४६)

इसमें कुछ पदों को छोड़कर और दो एक पद बदलकर लेखालंकार (?) से ऊपर की इबारत लालचन्द्रिका से नक़ल की गई है। ख़ैर, और तो पीछे देखा जायगा, पहले एक बात पूछलें, क्यों विद्यावारिधिजी! यह "लेखालंकार" कौन से साहित्य में लिखा है? यदि आप लल्लूलालजी का नाम लेकर लालचन्द्रिका का हवाला दें तो भी नहीं बनता, लल्लूलालजी की ऐसी अशुद्धि क्षन्तव्य हो सकती है, क्योंकि वह संस्कृत के पण्डित नहीं थे, जैसा कि व्यासजी ने 'विहारीविहार' की भूमिका में सिद्ध किया है। परन्तु आपके श्रीनाम के साथ तो 'विद्वद्वृन्दशिरोमणि' 'विद्यावारिधि' जैसी उपाधियाँ हैं, जो महत्त्व में 'महामहोपाध्याय' से भी बढ़कर हैं। फिर आप जो बार बार 'काकोक्ति' (?) 'लेखालंकार' 'प्रवत्सत पतिका' इत्यादि महाभ्रष्ट पद लिख रहे हैं, इसका क्या कारण समझा जाय? क्या कविता का ठीक अर्थ कर सकना और शब्दों को शुद्ध लिखना, उन विद्याओं के अन्तर्गत नहीं है, जिनके कि आप 'वारिधि' हैं? और महाराज की जय रहे, आपने तो भूमिका में प्रतिज्ञा की थी कि "भावार्थ और अक्षरार्थ बहुत सरल हो इस पर विशेष दृष्टि रक्खी गई है" फिर यह क्या बात है कि इस प्रतिज्ञा का उल्लङ्घन आप पद पद पर कर रहे हैं! आप दृष्टि नहीं रख सके, वह प्रायः झपक गई है, ठीक है, आख़िर को मनुष्य 'अनिमिष' तो नहीं है, पलक लगही जाती है! आपके यह परिष्कार काठिन्य में रसगङ्गाधर की पंक्तियों से कुछ कम नहीं हैं। कहीं यह 'ग्रन्थग्रन्थियाँ' श्रीहर्ष की तरह आपने जान बूझकर ही तो नहीं लगा दी हैं! यदि यही बात है तो श्रीहर्ष के समान इसकी सूचना भी आपको दे देनी चाहिए थी, अस्तु, अब एक काम कीजिए, अपनी टीका में आई हुई ऐसी ऐसी कठिन फक्किकाओं पर एक टीका-टिप्पणी स्वयंही लिख छोड़िए, अन्यथा सूरदास के कूट पदों की तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका अर्थ समझने में लोगों को बड़ी कठिनाई होगी। फिर वह किसके पास जायँगे, इसलिए इस मुश्किल को स्वयं ही हल करते जाइए। टीका तो न जानें आप कब करेंगे, हमें अपनी इन ऊपर की पंक्तियों का ज़रा अर्थही समझा दीजिए। हाँ महाराज! "सौतें का वशीभूत करना कर्म दोषमय था" इसका क्या मतलब है? यह कौन सी विद्या में लिखा है कि 'वशीभूत करना' कर्म दोषमय है? जब कि गुरु का शिष्य को, स्वामी का सेवक को, राजा का प्रजा को; प्रेमपात्र का अपने प्रेमी को 'वशीभूत' या अपने क़ाबू में करना कोई दोष नहीं, जुर्म नहीं, किसी धर्मशास्त्र या क़ानून में इसके लिए दण्ड नहीं लिखा; (यदि हो तो पता दीजिए, आप 'विद्यावारिधि' हैं) फिर बेचारी 'सौतें' ने आपका क्या बिगाड़ा है जो उनके-वशीभूत कर्म को बिना कारण बतलाये, आप दोषमय बता रहे हैं! आप जैसे धार्मिकोपदेष्टा को ऐसा पक्षपात शोभा नहीं देता, कहीं आपने अपना यह टीका एशियाटिक सोसाइटी (बंगाल) में तो नहीं भेज दिया? वहाँ यदि वह वायसराय की लेजिसलेटिव कौन्सिल के किसी मेम्बर की नज़र पड़ गया, तो ऐसा न हो कि आपके उद्भावित इस नये 'दोषमय' कर्म के मुताल्लिक़ ताज़ीरातहिन्द में एक नई दफ़ा बढ़ाने के लिए (कौन्सिल में) प्रस्ताव होने लगे! अस्तु। इससे अगली बात और भी विचित्र है "टोना के पद से वह गुण हुआ"!! ग़ज़ब हुआ, महाराज! यह क्या बात हो गई! जो कर्म अभी अभी 'दोषमय' था, वह सिर्फ़ 'टोना के पद से' ख़ालिस गुण—('गुणमय' भी नहीं?) कैसे हो गया? इस रसायनविद्या—इस कैमिस्ट्री को आज कल के मन्दमति मनुष्य आपके अनल्प अनुग्रह बिना नहीं समझ सकेंगे! देखिए न कैसी अद्भुत बात हुई! टोना के पदमात्र से ही वह—दोषमय कर्म 'गुण' हो गया! टोना करने की भी ज़रूरत पड़ी! धन्य हो, आपका जादूरक़म क़लम भी ऐसे ऐसे करश्मे दिखलाता है कि देखनेवाले दंग रह जायँ!

"जैसे टुट कहेरी (?) भूत की छूत दूर करे तैसे इसने सौत से दूर कर निजवश किया" 'टुट कहेरी' कैसा फ़सीह महावरा है? ख़ास दीन्दारपुरी है! जी हाँ, फ़रमाइए ".....भूत की छूत दूर करे' भूत को नहीं, किन्तु उसकी छूत को दूर करे, क्या मतलब, जब किसी को भूत चढ़ कर उतर जाय, पीछे से जो उसकी छूत लगी रह जाय उसे दूर करे, इत्यर्थः। अथवा यों समझिए, जिस प्रकार चाण्डालादि किसी अस्पृश्य पदार्थ के स्पर्श हो जाने पर स्नानादि द्वारा उसकी छूत दूर की जाती है, ठीक उसी प्रकार! "तैसे इसने" इसने किसने? साफ़ साफ़ कहिए न? "सौत से दूर कर" किसे दूर कर? साक्षात् किसी पदार्थ को या उसकी छूतमात्र को? "निजवश किया" आपने भी पति (प्रतीयमान) को भूत की उपमा देकर बड़ा भारी काम किया! 'उपमालंकार, को कालिदास और विहारीलाल से छीन कर निज वश किया'! थोड़ी बात नहीं! ठीकही हुआ, विहारीलालजी ने 'चाह' को "चुरैल" (३०६ दो०) ठहराया है, आपने 'चाहनेवाले' को 'भूत' बना दिया! इसी प्रकार कल को कोई दूसरे टीकाकार उठेंगे वह 'नायक' को 'प्रेत' पिशाच, राक्षस इत्यादि की उपमा देंगे, फिर यदि किसी ने 'साहित्य-परिचय' लिखा तो वह नायक के शठ, दक्षिण, आदि भेदों के साथ भूत-प्रेतादि को भी शामिल कर देगा! क्यों न हो, तरक़्क़ी का ज़माना है!

प्रिय पाठकगण! इस बीभत्सव्यापार—भूत प्रेत और छूत छात आदि का विहारी के उक्त दोहे में गन्ध भी तो नहीं, यह सब कुछ टीकाकार के दिमाग़ की उपज है। दोहे का भाव यह है:—

नवोढा नायिका के रूपादि गुणों की प्रशंसा करती हुई सखी, उससे कहती है कि तेरे आने से पहले नायक जिस तेरी सौत—नायिका के वश में था, वह 'टुनिहाई'—टोना करनेवाली प्रसिद्ध थी कि इसने नायक पर जादू करके उसे इस प्रकार अपने वश में कर रक्खा है, सो तैने आते ही अपने लोकोत्तर रूपादि गुणों से नायक को अपनी ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Hari

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खींच कर अपनी उस सौत को दोषरहित कर दिया, अर्थात् उसे इस इलज़ाम से बरी कर दिया कि वह टोना करनेवाली है। क्योंकि यदि वह जादूगरनी होती तो नायक उससे छूट कर तेरे वशमें न हो सकता, इससे जाना गया कि जादू से नहीं किन्तु सौन्दर्यादि गुणों से ही—उसने नायक को अपने अधीन कर रक्खा था, अब उससे अधिक रूपवती होने के कारण नायक को तैने अपनी ओर खींच लिया। इसलिए "लेशः स्याद्दोषगुणयोर्गुणदोषत्वकल्पनम्" इस साहित्यलक्षण के अनुसार यहाँ "लेशालङ्कार" है, (जिसे विद्यावारिधिजी ने "लेखालंकार" लिखा है) अर्थात् जहाँ गुण के स्थान में दोष और दोष के स्थान में गुण की कल्पना होजाय, वहाँ लेशालंकार होता है। जैसे यहाँ टोना करने रूप दोष के स्थान में रूपवती होने रूपी गुण की कल्पना की गई। नायक का वश में होना टोना के प्रभाव से नहीं था किन्तु सौन्दर्यादि गुणों के कारण था, यह भाव। क्यों विद्यावारिधिजी! ठीक है न?

८—*छप्यो नेह कागज† हिए भई लखाइ न टांक।
विरह तचै उघरयो सुअब सैहुँड कोसो आँक ॥१२७॥

"जो कागजरूपी—प्रीति निर्मल मन में छिपी थी और थोडी भी प्रसिद्ध न हुई सो अब थूहर के दूध के लिखे अक्षरसी विरह की आग से सिक कर खुली। पूर्णोपमा थूहर के दूध के लिखे अक्षर आग पर सेकने से चमकते हैं"। (पृ० ४७)

*'छप्यो' के स्थान में "छतो" पाठ चाहिए। यही, लालचन्द्रिका, हरिप्रकाश, विहारीविहार तथा कृष्णदत्त की टीका में है। 'छप्यो' तो यहां नितान्त अयुक्त है, क्योंकि 'नेह' का छिपा रहना तो 'भई लखाइ न टांक' इससेही सिद्ध है, फिर 'छप्यो' कहने की क्या ज़रूरत है? नेह छतो, का अर्थ है प्रीति थी।

† यहां फ़ारसी उर्दू का 'काग़ज़' नहीं चाहिए, किन्तु व्रजभाषा का "कागद" चाहिए। प० सिं० श०

बस रहने भी दो, क्यों इस काव्य की दुर्दशा पर कमर कसी है! यह काम आपके बस का नहीं है, जो काम आदमी से न होसके उसमें हाथही क्यों डाले! खट्टे अंगूर और टेढ़ी खीर से दूर ही रहना अच्छा है। आपको यह सम्मति किस भले आदमी ने दी थी कि आप सतसई को हाथ लगावें? आपके इस टीका से तो यह ग़रीब वैसेही अच्छी थी, यह टीका तो इसके लिए स्याही का टीका हो गया। जिसकी बातें ही आपकी समझ में नहीं आतीं उसके दुभाषिया—मुतरज्जिम आपक्यों बन गये?—"जो कागजरूपी प्रीति निर्मल मनमें छिपीथी" यह देखिए कैसा विलक्षण भाष्य है? क्यों महाराज! सेहुँड के दूध से लिखने से 'कागज' छिप जाता है? वह ज़रा भी नहीं दीखता! और 'अक्षर' दीखते रहते होंगे? तभी तो श्रीमान् ने 'छिपी हुई प्रीति' को 'कागज' ठहराया है! इस पर तुर्रा यह है कि इस प्रकार रूपक का रूप बिगाड़ कर और उपमा का उपमर्द करके आप लिखते हैं—'पूर्णोपमा'। धन्य आपकी पूर्णोपमा! किसी को अलङ्कारशास्त्र पढ़ना हो तो आप से पढ़े! इस दशा में इसे पूर्णोपमा कहना ऐसाही है जैसे कोई किसी 'मृगनयनी' की एक आँख फोड़ कर उसे चिढ़ाने के लिए 'मृगाक्षी' कहे। इस दोहे का स्पष्ट अर्थ यह है:—

हृदयरूप काग़ज़ पर प्रीति (अङ्कित) थी, जो (संयोगदशा में) ज़रा भी (किसी को) प्रसिद्ध न हुई थी, सो अब विरह की आँच से सेकने पर सेहुँड के दूध से लिखे हुए अक्षर की तरह प्रकट हो गई, चमकने लगी।

दोहे में 'कागद-हिये' यह 'समस्त रूपक' है—

"उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते।
यथा बाहुलता पाणिपद्मं चरणपल्लवः॥" (दण्डी)

अथवा—'उपमान रु उपमेय में भेद परै न लखाय।
तासों रूपक कहत हैं सकल सुकवि समुदाय॥"

अर्थात् जहाँ उपमेय और उपमान में अभेदप्रतीति हो, ऐसी उपमा को ही रूपक कहते हैं—जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहुलता, चरणपल्लव इत्यादि, या जैसे 'कागदहिये' 'लाजलगाम' (२६९ दो०) 'दीपकदेह' (३२७ दो०) इत्यादि में।

विद्यावारिधिजी ने समझा होगा कि "कागद-हिये" ये दो पृथक् पद हैं, इनका आपस में कुछ सम्बन्ध तो है ही नहीं, बस झट 'कागद' का कान पकड़ के 'नेह' के साथ नत्थी कर दिया! 'हिया' बेचारा हाय हाय करता और पुकारता ही रह गया—(मैं कहता रह गया ज़ालिम! मेरा दिल है मेरा दिल है!!) कि दयानिधे! यह आप क्या करते हैं? मेरे इस चिरसंगी सखा (कागद) को कहाँ लिये जाते हैं! विहारीलालजी ने तो इसे मेरे साथ अभेदरूप से रक्खा है, यदि मेरा विश्वास न हो तो प्राचीन टीका-कारों से पूछ देखिए। हम दोनों एक हैं, अभिन्न-हृदय हैं, हममें भेद न डालिए, हमें पृथक् न कीजिए, भग-वन्! दया कीजिए, इससे दूर होते मैं फटा जाता हूँ।

उधर 'नेह' ने भी इस विभाग पर नाराज़ी ज़ाहिर करके कहा कि रहने दीजिए, मुझे 'कागद' नहीं चाहिए मैं "सेहुँड़ के आंक" की समता से ही ख़ुश हूँ। कविविधाता ने मुझे उसके ही सदृश बनाया है। और अब तक जिस (कागद) के यहाँ मैं अज्ञातवास की दशा में छिपा रहा, अब प्रकट होते समय उसीकी बराबरी का दावा करते हुए मुझे लज्जा आती है, सो मैं "कागजरूपी प्रीति" कहलाना नहीं चाहता, माफ़ कीजिए।

परन्तु वंग-विच्छेद करनेवाले माई लार्ड कर्ज़न के समान हमारे 'विद्वद्वृन्दशिरोमणि' विद्या-वारिधि ने उनकी इस करुणोक्ति पर ध्यान न देकर कहा कि चुप रहो, हम नहीं जानते, विहारीलाल ने तुम्हें कहीं और किसी के साथ रक्खा हो, न हमें किसीसे पूछने की कुछ ज़रूरत है: हम स्वयं विद्या-वारिधि हैं, पृथक् होने में भलेही तुम्हारा अर्थनाश क्या सर्वनाश हो जाय, कुछ परवा नहीं, हमारी आज्ञा तुम्हें माननी पड़ेगी। बहुत कहने सुनने पर 'हृदय' का दिल रखने के तौर पर उससे कहा कि 'कागद' के बदले हमने तुम्हें 'निर्मलता' प्रदान की "नेह" का अपील डिसमिस, क्योंकि उससे कुछ छीना नहीं गया, बल्कि और 'काग़ज़' का कैरन्सी नोट दिया गया है।

इस प्रकार इस कागज-केस का ख़ातमा हुआ।

श्रीपण्डित परमानन्द कवि ने 'शृङ्गारसप्तशती' में इस दोहे का दोहा-छन्द में ही कैसा अच्छा अनु-वाद किया है, सहृदय संस्कृतज्ञ पाठकों के विनो-दार्थ उद्धृत है:—

"प्रेम हृदयपत्रानुगतमलक्षितं यदुवास।
तद्व+क्षाक्षरमिव तनौ विरहाग्निना बभास॥"

९—उठि ठक ठक एतो कहा पावस के अनुसार (?)
जान परैगी देखियौं दामिनि घन अँधियार॥१५६॥

"उठ वर्षा के समय नायक के पास चलने में इतनी अडचड़ क्यों है, वहाँ ऐसी विदित होगी कि, मानो बिजली बादल को लिए अंधकार में है।

भ्रांतालंकार"। (पृ० ५६)

न मालूम कौनसी अद्भुत पोथी आपके हाथ लग गई है जिसमें इस प्रकार के विचित्र पाठान्तर भरे पड़े हैं! जिस प्रकार टीका करने में आप मन-मानी करते हैं, किसी टीकाकार की नहीं सुनते, इसी प्रकार मूल कविता में भी स्वयं इसलाह कर देते हैं। और न हुआ तो यहाँ 'अभिसार' का "अनुसार (?) ही कर दिया? और उसका अर्थ किया है '.....समय'? नजानें किस कोश के अनुसार 'अनुसार' का अर्थ '.....समय' किया गया है! 'भ्रान्ति' या 'भ्रान्तिमान्' की जगह आप लिखते हैं "भ्रांतालंकार" (?) क्यों न हो, यह भी तो "लेखालंकार" का लंगोटिया यार, और 'काकोक्ति' का काका है! अस्तु।

'नायक के पास चलने में' इतना अर्थ अब किन पदों का है? क्योंकि जिस "अभिसार" का यह अर्थ था, उसका तो आपने "अनुसार" बना डाला!

(+ सीहुण्डो वज्रः स्नुक् स्त्री स्नुही गुडेत्यमरः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Hardwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वहाँ ऐसी विदित होगी" वहाँ कहाँ? नायक के पास न? बहुत ख़ूब, और कौन विदित होगी? कर्त्ता ग़ायब? ".....कि मानो बिजली बादल को लिये अन्धकार में है।"

इसके आगे हमारे भ्रान्त अलङ्कारशास्त्रीजी लिखते हैं 'भ्रांतालंकार (?)' ख़ैर 'भ्रान्ति' न सही 'भ्रांता (?) ही सही "काकोक्ति" वाले के आगे तो यह कोई बड़ी बात नहीं! परन्तु 'मानो'* लगने से तो यह ख़ासी सोलह आना "उत्प्रेक्षा" हो गई? "भ्रान्ति" कहाँ रही? किसी साहित्यग्रन्थ में 'भ्रान्ति' का लक्षण देखकर अपने उपर्युक्त वाक्य में ज़रा लक्षणसमन्वय तो कीजिए, कि इस दशा में यह 'उत्प्रेक्षा' है या 'भ्रान्ति' है! ख़ैर जी, अलंकार पड़ें भाड़ में, यहाँ तो बेचारी कविता के कपड़े ही फाड़े जारहे हैं, उसका शरीरही वज्रप्रहारों से क्षत विक्षत किया जा रहा है, भला जिसका जिस्म ही ज़ख़्मों से चकनाचूर हो रहा हो, अलंकार क्या उसकी ख़ाक शोभा बढ़ायेंगे, उसे तो वे और भार प्रतीत होंगे, घावों में चुभेंगे, ग़रीब की जान बच जाय यही ग़नीमत है!

जी हाँ, फ़र्माइए, कैसी विदित होगी "मानो बिजली बादल को लिये अन्धकार में है" यहाँ 'बिजली' तो नायिका को समझें, और 'बादल' नायक को, तथा 'अन्धकार' नायक के मकान या संकेतस्थान को? मालूम होता है नायक तहख़ाने या काजल की कोठरी में काला बादल बना छिपा बैठा है, तभी तो वहाँ अन्धकार की प्रतीति या भ्रान्ति हो सकेगी! अब तक तो यही सुनते थे कि बादल में बिजली रहती है, और काले बादल में वह ख़ूब चमकती है, परन्तु अब आप से मालूम हुआ कि बादल में रहना और चमकना क्या, वह तो बादल को बग़ल में दबाकर अन्धकार में जा छिपती है!

अच्छा, अब ललूलालजी की ज़बानी उनकी भाषा में इसका अर्थ सुन लीजिए:—

"सखी का वचन नायिका से—उठ, बखेड़ा इतना क्या है, बरखा के चलने में, नायक के पास, जानी जायगी दिखाई देने से ऐसे कि बिजली बादल काले के अंधेरे में है....."। मतलब यह कि मार्ग में कोई देख न ले इसलिए कृष्णाभिसारिका का वेश बनाने इत्यादि बखेड़े में पड़ने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि यदि किसी ने मार्ग में देख भी लिया तो वह पहचान न सकेगा कि यह नायिका जा रही है, किन्तु उसे भ्रान्ति होगी कि वर्षा के काले बादल में यह बिजली चमक रही है!

पाठकगण! इस आशय की गन्ध भी बारिधि-जी के टीका में है?

१०—कहा लडैते दृग करै (?) परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीत पट कहूँ मुकुट वनमाल।२२७।

"हे लाड़ले! ऐसे क्या तुमने अपने नेत्र किये हैं जो तुम बेहाल पड़े हो कहीं मुरली, कहीं पीला वस्त्र, कहीं मुकुट, कहीं वनमाला पड़ी है; चलकर तो देख। व्याजस्तुति।" (पृ० ७९)॥

व्याजस्तुति काहे को इसे तो "व्याज छुरी" कहना चाहिए! अर्थ के बहाने कविता के कमनीय गले पर यह कुन्द छुरी फेरी जा रही है, जिसके तले बेचारी बेहाल पड़ी हुई छटपटा रही है! अर्थ, भाव, अलङ्कार, ये सब एक एक करके इस कठिन अवस्था में इसका साथ छोड़ गये हैं, निःसहायावस्था में पड़ी पैर पीट रही है, दम तोड़ रही है, !!

सच कहा है किसी ने:—
"कौन होता है बुरे वक़्त की हालत का शरीक,
मरते दम आँख को देखा है कि फिर जाती है॥"

---

* "मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादिभिः।
उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादृशः"॥

इस लक्षण के अनुसार संस्कृत के 'मन्ये शङ्के' इत्यादि शब्दों की तरह, हिन्दी में मानो, जानो, इत्यादि उत्प्रेक्षा-व्यञ्जक शब्द हैं। प० सिं० श०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहारी की कविता के रसिक-प्रेमियो! देखते हो, तुम्हारी प्यारी कविता का क़तलेआम किस तरह खुले मैदान हो रहा है! बिहारी की पीयूष-रसवर्षिणी कविता-मेघमाला को ये आँधी के प्रचण्ड झोंके किस प्रकार छिन्न भिन्न कर रहे हैं!! इस लतिका को अनर्थ की प्रचण्ड ज्वाला किस तरह जला रही है!!! हो सके तो इसके प्राण बचा लो; यह चली!

कितना सरल और सीधा दोहा है! "जो इतने पर भी न समझे तो उस बुत से खुदा समझे"

सखी, नायिका से, नयनों की चोट खाये हुए कृष्ण की दयनीय दशा सुना कर लड़ैते नेत्रों की शिकायत करती हुई ख़बर लेने की प्रार्थना कर रही है कि तैने अपने नेत्र कैसे लड़ैते—लड़नेवाले किये हैं, जिनकी चोट खाकर लाल (कृष्ण) बेहाल पड़े हैं, कहीं मुरली पड़ी है, कहीं पीताम्बर, कहीं मुकुट और कहीं वनमाला पड़ी है, उन्हें कुछ सुध नहीं।

लड़ैते शब्द का अर्थ नेत्रोंही का विशेषण मान कर हरिप्रसाद तथा लल्लूलालजी ने 'लाड़ले' किया है, परन्तु यहाँ लड़ैते का अर्थ यदि लड़नेवाले किया जाय तो बहुत ठीक हो, 'लठैत'—'डकैत' की तरह हिन्दी में 'लड़ैत' आता भी है, जैसे कहा जाता है कि अमुक आदमी बड़ा 'लड़ैत' है। 'आँखें लड़ाना' हिन्दी और उर्दू में महावरा है, उर्दू के प्रसिद्ध कवि 'मोमिन' का शेर है:—

"दिल गया दमपर बनी, आँखें लड़ीं कहती हैं हाल,
बेक़रारी आहोज़ारी अश्कबारी आपकी"

विद्यावारिधिजी ने 'लड़ैते' को सम्बोधन समझ कर 'हे लाड़ले!' बना दिया, और तो मज़ा देखिए, कहते हैं:—"ऐसे क्या तुमने अपने नेत्र किये हैं जो तुम बेहाल पडेहो" यह तो आप कहीं लिखतेहो नहीं कि 'किसका वचन किससे' तथापि 'लाड़ले' और 'पडेहो' इन पदों से पता चलता है, कि सखी श्रीकृष्ण से कह रही है, ऐसा मालूम होता है कि श्रीकृष्ण की आँखें बड़े ज़ोर से दुखने आगई हैं, उनको प्रबल पीड़ा से वह व्याकुल हैं उन्हें अपने मुरली, मुकुट और कपड़े लत्ते की कुछ सुध नहीं, अचेत पड़े हैं, आँखों की तीव्र पीड़ा ऐसी ही होती है, उसमें कुछ होश नहीं रहता। शायद श्री-कृष्ण ने कुछ कुपथ्य भी कर लिया है, इससे पीड़ा और भी बढ़ गई है, तभी तो सखी उन्हें समझा रही और धमका रही है, कि "तुमने अपने नेत्रों की यह क्या दशा करली! जिससे इस तरह बेहाल पड़े हो, सिर पैर की कुछ ख़बर नहीं! लाड़ में आकर (हे लाड़ले! इस हेतुगर्भ विशेषण का अर्थ?) तुम दिन दिन बिगड़ते जाते हो! "चलकर तो देख" अब तो सखी क्रोध से पागल हो गई जान पड़ती है, 'तुम' से तू तड़ांग' पर उतर आई! 'चल कर तो देख' न जानें कहाँ लिये जाती है और क्या दिखाना चाहती है! कदाचित् 'वनमाला' और 'पीताम्बर' दिखाना चाहती हो, परन्तु नेत्ररोग में तो ऐसी चीज़ों से बचना चाहिए, जैसा कि 'विवृतोक्ति' अलङ्कार के उदाहरण में किसीका यह अपूर्व पद्य है:—

"सुभ्रु! त्वं कुपितेत्यपास्तमशनं त्यक्ताः कथा योषितां,
दूरादेव विवर्जिताः सुरभयः स्रग्गन्धधूपादयः।
कोपं रागिणि मुञ्च मय्यवनते दृष्टे प्रसीदाधुना,
सत्यं त्वद्विरहान्द्रवन्ति दयिते! सर्वा ममान्धा दिशः॥"

और फिर वह बेचारे तो स्वयं बेहाल पड़े हैं, उनमें चलकर देखने की हालियत कहाँ? देखा! कैसी गुस्ताख़ (सखी) है! कोई पागल हुई है? हट परे दूर हो, आई वहाँ से, इलाज मालजा गया, दमदिलासा गई, बेहाली में उन्हें पड़ा भी नहीं रहने देती, जब होश होगा आप जा कर देखलेंगे!!

(अपूर्ण)

पद्मसिंह शर्म्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैपाल।

नैपाल का राज्य आज कल पूर्व में सिक्किम से लेकर पश्चिम में कमाऊँ तक, तिरहुत, अवध और संयुक्त-प्रदेश की उत्तरी सीमा पर क़रीब ५०० मील की लम्बाई में फैला हुआ है। तराई को छोड़ कर यह सारा देश पर्वतों और घाटियों से परिपूर्ण है। प्राचीन समय में नैपाल केवल उसी घाटी का नाम था जो क़रीब २० मील लम्बी और १५ मील चौड़ी है और जिसमें अब नैपाल की राजधानी काठमाण्डू और कुछ अन्यान्य नगर बसे हैं। जिस तरह काश्मीर के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वहाँ प्राचीन समय में एक बहुत बड़ी झील थी, और कश्यप ऋषि ने बाराँमुले पहाड़ काट कर उसका पानी निकाल दिया था, तब काश्मीर में आदमियों की बस्ती हुई थी, उसी तरह नैपाल के विषय में भी कहा जाता है कि यहाँ भी पहाड़ों के बीच में सारा पानी भारा हुआ था और प्राचीन समय के एक ऋषि ने पहाड़ काट कर वहाँ से पानी बहा दिया। जहाँ से यह पहाड़ काटा गया था वहाँ अब बागमती नदी बहती है। कहते हैं कि कलियुग के आरम्भ में नेमुनि ने गुप्त घराने के राजाओं की नींव डाली और उसी के नाम से इस देश का नाम नैपाल हुआ।

अस्तु, यह तो हुई पौराणिकी कथा। नैपाल के विषय में दृढ़ ऐतिहासिक प्रमाण समुद्रगुप्त के उन प्रयागस्थ शिला-लेखों से मिलता है जो सन् ४०० ईसवी में तैयार किये गये थे। उन्हीं लेखों में यह ज़िक्र आया है कि नैपाल उस समय में आज कल की तरह एक स्वाधीन राज्य था परन्तु गुप्त घराने को वहाँ के राजा अपना अधीश्वर मानते थे और नाम मात्र के लिए कुछ उन्हें कर भी देते थे, ठीक उसी तरह जैसे आजकल नैपाल की गवर्नमेंट नाम मात्र के लिए चीन के महाराज को कर देती है और दूसरे राज्यों से बृटिश गवर्नमेंट के अनुकूल व्यवहार करती है। यों तो नैपाल में यह भी विचार प्रचलित है कि सन् ईसवी से तीसरी शताब्दि पहले महाराज अशोक का वहाँ राज्य था और विन्सन्ट स्मिथ साहब इस विचार की पुष्टि भी करते हैं। पाटन में बहुत से मन्दिर हैं जिनके विषय में यह कहा जाता है कि अशोक और उनकी पुत्री ने उन्हें बनवाया था। नैपाल पाटलिपुत्र (पटने) से बहुत दूर भी नहीं है। फिर आश्चर्य ही क्या यदि अशोक का वहाँ राज्य रहा हो। परन्तु अशोक के समय से और समुद्रगुप्त के समय तक वहाँ का ठीक ठीक हाल मालूम नहीं होता। छटी शताब्दी में लिछावी वंश का वहाँ राज्य था पर विन्सन्टस्मिथ के अनुकूल इस लिछावी-वंश का वैसाली के लिछावी वंश से कोई सम्बन्ध था इस बात का कहीं ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। सातवीं शताब्दि में जब कि कन्नौज के श्रीहर्ष का साम्राज्य हिमालय से नर्मदा तक फैला हुआ था तब इस साम्राज्य और तिब्बत के बीच बस नैपाल ही राज्य था। ठाकुरी वंश के संस्थापक अंशुवर्म्मा की मृत्यु सन् ६४२ ई० में हुई थी। इसकी पुत्री तिब्बत के महाराज स्रंगसानगेम्पू को ब्याही थी। विन्सिन्ट स्मिथ साहब कहते हैं कि उस समय महाराज स्रान्गसेन गेम्पू का बड़ा ही प्रताप था। चीन के महाराज को भी अपनी पुत्री का विवाह सन् ६४१ ई० में इनके साथ करना पड़ा। यह बात सर्वथा अप्रामाणिक नहीं है कि श्रीहर्ष ने नैपाल पर भी अपना आधिपत्य जमा रक्खा था और अपना संवत्सर भी वहाँ जारी कर दिया था परन्तु सिलवियन लिवी का मत है कि वहाँ तिब्बत के महाराज स्रान्गसान गेम्पू ही का रोब जमा रहा। सन् ६४८ ई० में जब श्रीहर्ष का देहान्त हुआ और उसका मंत्री अरुणासव बलात् गद्दी पर बैठ गया तब चीन का राजदूत वाँगहियनसी भारतवर्ष में आया था, परन्तु अरुणासव ने उसका इतना अपमान किया कि उसे अपनी जान लेकर नैपाल के रास्ते भागना पड़ा। नैपाल और तिब्बत दोनों ने मिलकर अरुणासव पर चढ़ाई की और उसे भारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिफ़ाज़त दी। इससे और अन्यान्य बातों से यह तो सिद्ध है कि आठवीं शताब्दि के शुरू में नैपाल तिब्बत के अधीन था और कुछ दिनों तक और भी रहा। पर अक्तूबर ८७९ ई० से एक नया नैपाली संवत् आरम्भ हुआ। इससे जान पड़ता है कि नैपाल थोड़े ही दिनों में फिर स्वतंत्र हो गया होगा।

वंशावली में जो नैपाल के राजाओं का इतिहास लिखा है उसके देखने से मालूम होता है कि इस देश में गुप्त अहीर, सोमवंशी, सूर्यवंशी और राजपूत राजा एक दूसरे के बाद राज्य करते रहे, और इनके समय में बौद्ध मत का बहुत प्रचार हुआ। नेवार लोगों में जो कि नैपाल के पुराने रहनेवाले हैं बहुतेरे लोग अब भी इसी मत के हैं। गोरखा लोग जो कि आज कल नैपाल में राज्य कर रहे हैं और जो कि क़रीब २०० बरस हुए कि इस मुल्क में दाख़िल हुए थे, अपने तईं मेवाड़ के सिसोदिया राजपूतों के वंशज बतलाते हैं। लेकिन इन लोगों की सूरत शकल से मालूम होता है कि अगर राजपूत हिन्दुस्तान से जाकर नैपाल में आबाद भी हुए थे तो उन्होंने वहाँ की मंगोलियन औरतों से शादी विवाह किये होंगे। नैपाल में दाख़िल होकर इन लोगों ने एक छोटी सी रियासत क़ायम की जिसका नाम गोरखा था। और तभी से इन लोगों का नाम भी गोरखा पड़ गया। नैपाल में इस वक़्त कई छोटी छोटी रियासतें थीं, जैसे पटन, कान्तीपुर और भटगाँव। सन् १७४२ ईसवी में पृथ्वीनारायण गोरखा का राजा हुआ और उसने आस पास की रियासतों को फ़तेह करना शुरू किया। गोरखाओं और अंगरेज़ों से पहले पहल इसी समय में लड़ाई हुई। जिन रियासतों पर गोरखाओं ने चढ़ाई की थी उन्होंने अँगरेज़ों से मदद माँगी और अँगरेज़ों ने उनकी सहायता के लिए अपने सिपाही भेजे। परन्तु इनको गोरखाओं ने हराकर भगा दिया। जब सन् १७७४ ईसवी में पृथ्वीनारायण मरा तो उसने सारे नैपाल को जीतकर गोरखाओं का राज्य स्थापित कर दिया था। पृथ्वीनारायण के दो लड़के थे। प्रतापसिंहसा और बहादुरसा। प्रतापसिंह अपने बाप के बाद राजा हुआ और उसने अपने छोटे भाई बहादुरसा को देश-निकाला दिया। मगर यह राजा तीन ही बरस के बाद मर गया। और उसका लड़का रणबहादुरसा राजा हुआ। मगर यह बिलकुल बच्चा था। बहादुरसा अपने भाई के मरने के बाद फिर लौटकर आगया, और अपने भतीजे के नाम से राज्य करने लग गया। रणबहादुरसा ने बड़े होकर सन् १७९५ में अपने चचा को मार डाला, मगर यह ऐसा दुष्ट था कि दस बरस बाद ख़ुद मार डाला गया। इसके बाद गिरवन युद्ध विक्रमसा राजा हुआ। और इसी के ज़माने में सन् १८१४ में गोरखों और अँगरेज़ों से बड़ी लड़ाई हुई जिसमें अन्त में गोरखों को हार माननी पड़ी और तराई का बहुत कुछ हिस्सा अँगरेज़ों को दे देना पड़ा। इस मौक़े पर यह बयान कर देना भी अनुचित न होगा, कि इस लड़ाई से २५ बरस पहले नैपाल और चीन में एक बड़ा युद्ध हुआ था, और चीन से ७०,००० हज़ार आदमियों की एक फ़ौज लड़ने आई थी। जब इस लड़ाई में गोरखाओं की हार हो गई तब उन्होंने चीन के बादशाह को हर पाँचवे बरस नज़राना भेजना स्वीकार किया। इस ज़माने में नैपालियों में आपस में बहुत झगड़े हुआ करते थे। अँगरेज़ों से लड़ाई के ख़तम होने के बाद भीमसेन थापा वज़ीर हुआ। मगर सन् १८३९ में वह अपमान के साथ निकाला गया। और उसकी जगह पांडे घराने के लोग जो कि उसके शत्रु थे अधिकारी हो गये। ४ बरस बाद भीमसेन के भतीजे मतबेरसिंह ने पांडों को मार के निकाल दिया, और आप वज़ीर हो गया। इसी मतबेरसिंह का भानजा जंग बहादुर था। मतबेरसिंह से और राजा की छोटी रानी से नहीं बनती थी। राजा की बड़ी रानी मर गई थी और छोटी रानी चाहती थी कि गद्दी बड़ी रानी के बेटे को न मिले किन्तु मेरे बेटों को मिले। मगर मतबेरसिंह यह बात नहीं मानता था। यह हाल देख कर रानी ने मतबेरसिंह को मारने की तदबीर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridw

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसी के भानजे जंगबहादुर को इस काम पर नियुक्त किया। जंगबहादुर ने रानी का कहना मान लिया। रानी ने मतबेरसिंह को यह कहला भेजा कि मैं बहुत बीमार हूँ। जब वह रानी को देखने के लिए महल में आया तो जंगबहादुर ने उसको गोली मार दी। मतबेरसिंह के मरने के बाद फ़तह-जंग वज़ीर बनाया गया और जंगबहादुर को जनरल की पदवी दी। मगर असल में कर्ता धर्ता रानी का आशना गगनसिंह था। थोड़े ही दिन बाद राजा ने गगनसिंह को मरवा डाला। गगनसिंह के मरने पर रानी बड़े क्रोध में आई और राजधानी में बड़ा हल-चल हुआ। सारे सर्दार कोट में जमा हुए जंगबहादुर बुद्धिमानी से अपने सिपाहियों को भी अपने साथ लेता गया था। वहाँ पर जंगबहादुर के रिश्तेदारों और फ़तह जंग के साथियों में कुछ तकरार हुई, और जंगबहादुर ने इस अवसर को अच्छा समझकर रानी का तरफ़दार बनकर सारे सरदारों को मरवा दिया। इनके मारे जाने के बाद उसी समय आधी रात को रानी ने जंगबहादुर को वज़ीर और सेनापति की पदवी दी। यह सन् १८४६ की बात है। रानी को उम्मेद थी कि जंगबहादुर मेरे बेटों को राजा बनावेगा मगर जंगबहादुर ने ऐसा न किया। क्योंकि वह बड़ी रानी के बेटे सुरेन्द्रविक्रम को गद्दी का हक़दार समझता था। रानी की हरकतें उसे अच्छी न मालूम होती थीं और वह जानता था कि जब तक नैपाल में रहेगी एक न एक उत्पात मचाती रहेगी। इससे उसने रानी को काशी जाने के लिए मजबूर किया। जब रानी काशी को चली तो राजा भी उसी के साथ हो लिया। जंगबहादुर को उम्मेद थी कि राजा थोड़े दिनों में नैपाल लौट आवेगा मगर उसकी मति कुछ ऐसी पलटी कि उसने बाहर ही बाहर से जंगबहादुर को मरवाने की कोशिश की। आख़िर जंगबहादुर ने तंग आकर उसको गद्दी से उतार दिया। और उसके बेटे सुरेन्द्र विक्रम को राजा बना दिया। मगर यह राजा नाम मात्र का था। राज पाट का सारा इन्तज़ाम जंगबहादुर के हाथ में था। जंगबहादुर अँगरेज़ों की क़दर करता था और वह ख़ूब समझता था कि नैपाल की भलाई अँगरेज़ों के साथ रहने में है। जब सन् १८४५ में अँगरेज़ों और सिक्खों से पहली लड़ाई हुई थी तब सिक्खों ने नैपालियों से मदद माँगी थी। उस समय जंगबहादुर ने अपने देशवालों को यही सलाह दी थी कि वे सिक्खों का साथ न दें। क्योंकि उसका ख़याल यह था कि अँगरेज़ों से झगड़ा करने में नैपाल के वास्ते ख़राबी है। जब ३ बरस बाद सिक्खों से और अँगरेज़ों से दूसरी लड़ाई हुई तब जंगबहादुर नैपाल का अधिकारी था। उसने अँगरेज़ों को कहला भेजा कि वह उनको सिक्खों के ख़िलाफ़ मदद देने के वास्ते तैयार है। मगर अँगरेज़ों ने उस समय नैपाल से मदद लेनी मुनासिब न समझी। सन् १८५० में जंगबहादुर विलायत गया और वहाँ जाकर अँगरेज़ों की चतुराई का हाल अपनी आँखों से ख़ुद देखा। पाँच बरस बाद उसने तिब्बत पर चढ़ाई की। इसका कारण यह था कि तिब्बतवाले नैपाल के सौदागरों पर बहुत सख़्ती करते थे और अनेक प्रकार से उनको तंग करते थे। आख़िर को तिब्बतवालों को हार माननी पड़ी और उन्होंने वादा किया कि हम १०००० रुपया साल नैपाल को ख़िराज देंगे और नैपाल की चीज़ें जो हमारे यहाँ आवेंगी उनपर महसूल न लगावेंगे। जंगबहादुर ने तिब्बत की राजधानी लासा में एक नैपाली वकील नियुक्त किया जिसका यह काम था कि जो नैपाली सौदागर तिब्बत में जाय उसकी रक्षा करे। जब सन् १८५७ में हिन्दोस्तान में ग़दर हुआ तब महाराजा जंगबहादुर ने अँगरेज़ों की बड़ी मदद की। लखनऊ के फ़तह करने में गोरखों की फ़ौज भी थी और जब लखनऊ के फ़तह होने के बाद अवध और रुहेलखंड से बाग़ी सिपाही निकाले गये तो गोरखे इस काम में अँगरेज़ों को बराबर मदद देते रहे। जंगबहादुर अँगरेज़ों को बराबर मदद देता था। लेकिन अगर अँगरेज़ों से लड़कर कोई उसकी शरण जाता था तो वह उसको अपने यहाँ पनाह भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देता था। सिक्खों की लड़ाई के बाद दलीपसिंह की मा को उसने पनाह दी थी। और ग़दर के बाद लखनऊ की बेग़म और उसके लड़के और नाना साहब की रानियों ने भी नैपाल में पनाह ली थी। जंगबहादुर अँगरेज़ों से दोस्ती रखता था मगर नैपाल के पुराने दस्तूर के मुआफ़िक यह नहीं चाहता था कि वे उस देश में आज़ादी के साथ आने जाने लगें। नैपालियों में एक मसल मशहूर है कि अँगरेज़ी सौदागरों के बाद अँगरेज़ी सिपाही भी पहुँचते हैं। इसी वजह से नैपाली अपने देश में दूसरों का आना जाना पसन्द नहीं करते।

जंगबहादुर ३० बरस नैपाल पर हुकूमत करके सन् १८७७ में मरा। इसकी ज़िन्दगी का हाल पढ़ने से मालूम होता है कि इसने हुकूमत करने के वास्ते चाहे जो जो कुछ अच्छी बुरी बातें की हों मगर जब इसको हुकूमत मिल गई तो इसने मरते दम तक हर तरह अपने देश की उन्नति की कोशिश की।

यह पहले कहा जा चुका है कि नैपाल में अशोक का राज्य रहा। बस, बौद्ध मत का प्रवेश भी वहाँ तभी से समझिए। तबसे सैकड़ों बरस तक नैपाल की धार्म्मिक दशा कैसी रही, कुछ पता नहीं। हाँ, सातवीं, शताब्दि ईसवी में बौद्ध मत की महायान शाखा का प्रचार था जो शैव मत से बहुत कुछ मिलती जुलती है। तबसे वहाँ बौद्ध मत का ह्रास और अधःपात होता ही गया यहाँ तक कि अब तो वहाँ के मठों में विवाहित बौद्ध संन्यासियों या भिक्षुकों के झुंड के झुंड रहते हैं। गोरखा गवर्नमेंट की भी बौद्ध मत पर कुछ बड़ी कृपादृष्टि नहीं है। यदि यही हाल रहा तो थोड़े ही दिनों में नैपाल में बौद्ध मत का लोप हो जायगा। बौद्ध मत जो आज कल भी तिब्बत, लङ्का, ब्रह्मा, चीन, जापानादि देशों में फैला हुआ है अपने जन्म-स्थान भारतवर्ष से क्यों उठ गया, इस प्रश्न के उत्तर देने में बड़े बड़े विद्वानों के गहन विचार हुए हैं। कोई कोई तो कहते हैं कि हिन्दूराजाओं ने बौद्धों पर बड़े अत्याचार किये, इसी से बौद्ध मत यहाँ से उठ गया। परन्तु विन्सन्ट स्मिथ की राय में यह बात बिलकुल ठीक नहीं। मुसलमानों के अत्याचार से बौद्ध मत की भलेही हानि हुई है पर हिन्दूराजाओं के कारण नहीं। शशाङ्कादि दो एक राजाओं को छोड़ कर बाक़ी सभों का बर्ताव बौद्धधर्म्मावलम्बियों से शत्रुता का नहीं रहा। यहाँ बौद्ध धर्म्म के लुप्त होने का कारण हिन्दू-धर्म्म की वह विचित्र और प्रबल शक्ति है जिससे वह थोड़े दिनों में सभी नये मज़हबों को अपने में मिला लेता है। जिन कारणों से बौद्ध मत का हिन्दुस्तान में लोप हुआ, उन्हीं कारणों से नैपाल में भी उसका लोप हो रहा है।

कल्याणेश्वरी जुत्शी

कृषक ।

(१)

हे हे कृषक सुजान ! बता तू सच मुझे,
होते मेरे प्राण मुदित क्यों लख तुझे ?
तुझमें ऐसी कौन विलक्षण शक्ति है,
उपजाती जो सहज हृदय में भक्ति है ?

(२)

विश्व-सरोवर का तू सुरभित पद्म है,
सहिष्णुता सारल्य सत्य का सद्म है।
है आडम्बर-शून्य सद्गुणागार तू,
शुचि सुशीलता शान्ति सौख्य आधार तू॥

(३)

मन तेरा निर्लोभ, सरस, गत-रोष है,
थोड़े में भी सदा तुझे सन्तोष है।
तेरा आत्मत्याग अतुल है सर्वथा,
देख न सकता कभी किसी की तू व्यथा॥

(४)

कोमल तेरा हृदय दया का धाम है,
करने में परमार्थ तुझे आराम है।
हल ही तेरा खड्ग, खेत रणभूमि है,
स्वर्ग सदृश सुख मूल तुझे वनभूमि है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

कहता तुझे असभ्य सभ्य संसार है,
पर तू उसका भ्रात! जीवनाधार है।
तज दे यदि तू कभी प्रकृत निज धीरता,
रहे न भोग-विलास सभ्यता का पता!

(६)

तुझसे जिनके लगे समस्त विलास हैं,
करते तेरा वही हाय! उपहास हैं।
देता सुख तू जिन्हें सहन कर आपदा,
देते हैं दुख वही अहो! तुझको सदा॥

(७)

मानो सारी मही तुझे परिवार है,
अहंकार तब सदा विश्व-उपकार है।
भूषण तेरा सरल सत्य-व्यवहार है,
श्रम, संयम, उत्साह गले का हार है॥

(८)

ईर्ष्या, छल, आलस्य, द्वेष, मत्सर तथा,
रहते तुझसे दूर दोष ये सर्वथा।
निर्मल तेरा दोष-विहीन स्वभाव है,
तुझमें दूषण एक दूषणाभाव है॥

(९)

मिलते तुझको अहह! अनेकों कष्ट हैं,
करते तेरा सौख्य दुष्ट जन नष्ट हैं।
छल मिथ्या से पूर्ण सकल संसार है,
भोले भालों का न यहाँ निस्तार है॥

(१०)

जहाँ देखते वहीं कपट-बर्ताव है,
नहीं कहीं पर सत्य-पूर्ण सद्भाव है।
बाह्याडम्बर-पूर्ण बुरा व्यवहार है,
जग में दुर्लभ स्वार्थ-रहित उपकार है॥

(११)

करता तेरा यदपि आज गुण गान हूँ,
कृषक! किन्तु मैं कपटी कुटिल महान हूँ।
मुख में मेरे राम, बगल में है छुरी,
पर पीड़न मम धर्म, कपट है चातुरी॥

लोचनप्रसाद।

श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त।

गत वर्ष की तीसवीं नवम्बर को दो बजे रात्रि के समय बड़ोदा के दीवान श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त सी० आई० ई० के स्वर्गवास होने का समाचार पाठक सुन ही चुके हैं। आज उन्हीं महाशय का चित्र और संक्षिप्त चरित हम अपने पाठकों की भेंट करते हैं। श्रीमान् का जन्म एक प्रतिष्ठित और कुलीन घराने में १३ अगस्त सन् १८४८ में कलकत्ते में हुआ था। आपके पिता डिप्टीकलक्टर थे। अतः उन दिनों में जब कि रेलें न खुली थीं। दत्त महाशय लड़कपन में अपने पिता के साथ बङ्गाल के अनेक स्थानों में फिरे। आपको ईस्ट इंडिया कम्पनी, लार्ड डलहौसी, लार्ड केनिङ्ग इत्यादिकों के समय का स्मरण था। सन् १८५८ में जब कि महारानी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र पढ़ा जा रहा था आप अपने पिताजी के साथ पबना नगर में उपस्थित थे।

थोड़ेही दिनों के बाद आपके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया और आप अपने चचा श्रीयुत शशीचन्द्रजी के पास रहने लगे। शशीचन्द्रजी भी बड़े विद्याव्यसनी और अंगरेज़ी के विद्वान् थे। एक तो रमेशचन्द्रजी कुशाग्रबुद्धि और चतुर थे ही, दूसरे मिला ऐसा सत्संग। फिर आपके विद्याभ्यास के विषय में कहना ही क्या है। आपने मेट्रीकुलेशन परीक्षा सन् १८६४ में पास की और १८६६ में एफ० ए० यूनीवर्सिटी में आपका नम्बर द्वितीय रहा। बी० ए० पास करने ही वाले थे कि आपके जीवन में एक विचित्र घटना हुई। सहसा आपको विलायत जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीरमेशचन्द्र दत्त, सी० आई० ई०

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Harid

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सूझी। इधर श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और विहारीलाल गुप्त के मनों में भी कुछ ऐसी ही उमङ्गें उठ रही थीं। इन सभों ने चुपचाप आपस में कुछ गपड़तान की। सुरेन्द्र बाबू को तो विलायत जाने के लिए उनके पिता ने आज्ञा दे दी। रहे रमेश बाबू और विहारीलाल गुप्त। ये भी चुपचाप रफ़ूचक्कर हो गये और सुरेन्द्र बाबू के साथ हो लिये। समुद्र-यात्रा करने में आज कल लोग इतना बिगड़ते हैं तब उन दिनों की कठिनाइयों के विषय में कहना ही क्या है। परन्तु इन विघ्नों से भला रमेश बाबू ऐसे लोग क्यों हताश होने लगे। निदान आपने और आपके दोनों मित्रों ने इँगलेंड पहुँच कर सिविल-सर्विस परीक्षा पास ही की और 'कलक्टर साहब' बन बन कर लौटे।

सन् १८७१ से १८९७ तक रमेशचन्द्रजी बङ्गाल के अनेक ज़िलों में काम करते रहे। बरीसाल, बाकरगञ्ज, मैमनसिंह ऐसे ज़िलों में जहाँ अँगरेज़ों के लड़के छूटते थे आपने बड़ी उत्तमता के साथ कलक्टरी की। बङ्गाल टेन्सी एक्ट के पास होने में आपने लार्ड मेकडानल्ड की बड़ी सहायता की थी। आपकी योग्यता देख कर सरकार ने आपको उड़ीसा का कमिश्नर बनाया था। आप ही एक हिन्दुस्तानी थे जो इस पद पर नियुक्त किये गये थे। सन् १८८६ में आपने छुट्टी लेकर सकुटुम्ब विलायतयात्रा की और योरप के अनेक प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानों की सैर की।

विद्वानों के देश-सेवा करने में आज कल प्रायः दो बाधायें आजाया करती हैं। या तो उन्हें ऐसी जीविका नहीं मिलती जिससे वे सुवित्त होकर उत्तमोत्तम ग्रन्थ पढ़ें और लिखें। महाराज भर्तृहरिजी ने ठीक ही कहा है "संसारार्णवलङ्घनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणाम्। यामन्वेषयता प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः॥" या जिन्हें यथेष्ट जीविका मिलती भी है वे प्रायः लोभवश जीविका के ऐसे कीड़े बन जाते हैं कि परमार्थसाधन और देशोपकार के लिए उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। परमेश्वर की कृपा से दत्त महोदय के सामने इन दो में से कोई भी अन्तराय न था। उन सरकारी सेवकों में वे न थे जो दिन भर तो सेवा करें और विराम मिलने पर सेवा-सम्बन्धिनी वार्ताओं की ही जुगाली और चिन्ता में चूर रहें। सेवासमय में आपने ऋग्वेद का अनुवाद, प्राचीन भारत का इतिसाहादि अनेक उपयोगी ग्रन्थ अँगरेज़ी और बङ्गला में लिख-डाले। आप अँगरेज़ी के इतने बड़े विद्वान् होने पर भी मातृ-भाषा के बड़े प्रेमी थे। बङ्गला के सुप्रसिद्ध लेखक बाबू बङ्किमचन्द्र इनके मित्र थे। एक बार बङ्किम बाबू जब बङ्गदर्शन निकालने का प्रबन्ध कर रहे थे तब उन्होंने रमेश बाबू से बङ्गला में कुछ लिखने के लिए प्रार्थना की। उस समय वहाँ बङ्गला का वैसाही निरादर था जैसा आज कल यहाँ हिन्दी का हो रहा है। वहाँ अँगरेज़ी पढ़े लिखे बाबू लोगों को मातृ-भाषा में लिखने पढ़ने में वैसी ही लज्जा लगती थी जैसी आज कल यहाँ अँगरेज़ीदाँ साहबान को हिन्दी लिखने पढ़ने में शरम आती है। लोग अपनी मातृ-भाषा न जानने में बड़ा फ़ख़ समझते थे। बस बङ्किम बाबू की प्रार्थना का उत्तर रमेश बाबू ने वैसा ही दिया जैसा कि अँगरेज़ी पढ़े विद्वान् आज कल दिया करते हैं जब उनसे हिन्दी में लिखने की प्रार्थना की जाती। "बङ्गाली हमें नहीं आती, बङ्गाली साहित्य हमने नहीं पढ़ा इत्यादि"। भला ये बहाने बङ्किम बाबू क्यों सुनने लगे। आपने रमेश बाबू से कहा "There is no Bengali language and literature. Both have to be created, you are cultured, you have the literary instinct and you love your country. Whatever men like you write will be literature", अर्थात् बङ्गाली भाषा और साहित्य है ही नहीं। दोनों उत्पन्न करना है। आप विद्वान् हैं, स्वदेश भक्त हैं और आपको स्वभावतः साहित्यानुराग है, जो कुछ आप ऐसे विद्वान् बङ्गाली भाषा में लिखेंगे, बस वही साहित्य हो जायगा।" बङ्किम बाबू के उत्साह दिलाने पर श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त ने बङ्गाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखना शुरू की और थोड़े ही दिनों में आप एक प्रसिद्ध बङ्गाली भाषा के लेखक हो गये।

हम पहले कह चुके हैं कि श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्तजी के जीवन का उद्देश उदर भरना ही न था। वे स्वदेशभक्त थे, इसलिए उन्होंने अपनी सारी ज़िन्दगी सरकारी सेवा में व्यतीत करना उचित न समझा। यदि चाहते तो और भी बहुत दिनों तक सरकारी नौकरी में जमे रहते। परन्तु आपने १८९७ में ही पेन्शन ले ली और अपना सारा समय स्वदेश-सेवा में देने लगे। सन् १८९७ से सन् १९०४ तक इँगलैंड में रह कर साहित्य और राजनैतिक विषयों पर पुस्तकों और लेखों द्वारा भारत का हित करते रहे। इसी समय आपने लंडन यूनीवर्सिटी में अध्यापकता भी की। सन् १८९९ में आप लखनऊ कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए। सन् १९०४ में गुण ग्राहक महाराज गायकवाड़ ने इन्हें बड़ोदा बुलवाकर अपना मंत्री बनाया। इस बीच में जब तक आप भारतवर्ष में रहे कांग्रेस इत्यादि देशहितैषिणी सभाओं में योग देते रहे। सन् १९०५ में बनारस इंडस्ट्रियल कान्फ़रन्स के सभापति निर्वाचित हुए। १९०६ की कलकत्ता कांग्रेस में भी कुछ देर के लिए आप श्रीयुत दादाभाई नौरोजी के स्थानापन्न हुए थे। बनारस में कांग्रेस के समय नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा देवनागरी को समस्त भारत की एकलिपि स्वीकार कराने के लिए जो अधिवेशन हुआ था उसके भी आप सभापति थे। शरीर त्यागने के कुछ ही दिन पहले आपको गवर्नमेंट ने डीसेंट्रलाईज़ेशन कमीशन का मेम्बर बनाया था। बड़ोदा में रह कर आपने उस राज्य का कितना हित किया यह सब लोगों को विदित ही है। न्याय और शासन विभाग का पृथक् करना, प्रारम्भिक शिक्षा आवश्यकीय और मुफ़्त कर देना इत्यादि सुधार जिनके करने में अभी हमारी सरकार आगा पीछा कर रही है, श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त महोदय की सहायता से बड़ोदा में कभी के हो गये।

सच तो यह है कि इस पुरुष रत्न के अकाल काल-कवलित हो जाने से बड़ोदा राज्य क्या सारे भारतवर्ष का दुर्भाग्य समझना चाहिए।

चित्र-दर्शन।

नारद-मोह*

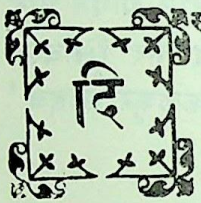

सम्बर संख्या की सरस्वती में पण्डित गणेशराम मिश्र का बनाया हुआ जो 'हेमलता की बिदा' का चित्र निकल चुका है वह पाठकों के चित्त में अभी ताज़ा ही होगा। आपकी मनोहर लेखनी से तीन चित्र और प्रकट हुए हैं। उनका विषय "नारद-मोह" अथवा इस संख्या में बाबू मैथिलीशरण गुप्त वर्णित "मुनि का मोह" है।

एक चित्र में नारदजी स्वयंवर से लौटकर शिवगणों को शाप दे अपना मर्कट-मुख जल में अवलोकन कर लज्जित हो रहे हैं।

रंगीन चित्र में क्रुद्ध हो विष्णु भगवान् को शाप दे रहे हैं।

तीसरे चित्र में भगवान् के माया खींच लेने पर उनके सम्मुख अपना विनय भाव प्रकट कर रहे हैं।

सभी चित्रों में भिन्न भिन्न भाव कितनी अच्छी तरह से अंकित किये गये हैं उनकी कल्पना चित्रावलोकन से ही होती है। रंगीन चित्र में किशोर वय के भगवान् विष्णु तथा उनके आस पास स्थित लक्ष्मी और राजकुमारी के स्वरूप कैसे ललित और सुन्दर हैं।

---

* पण्डित प्रेमशंकर दुबे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

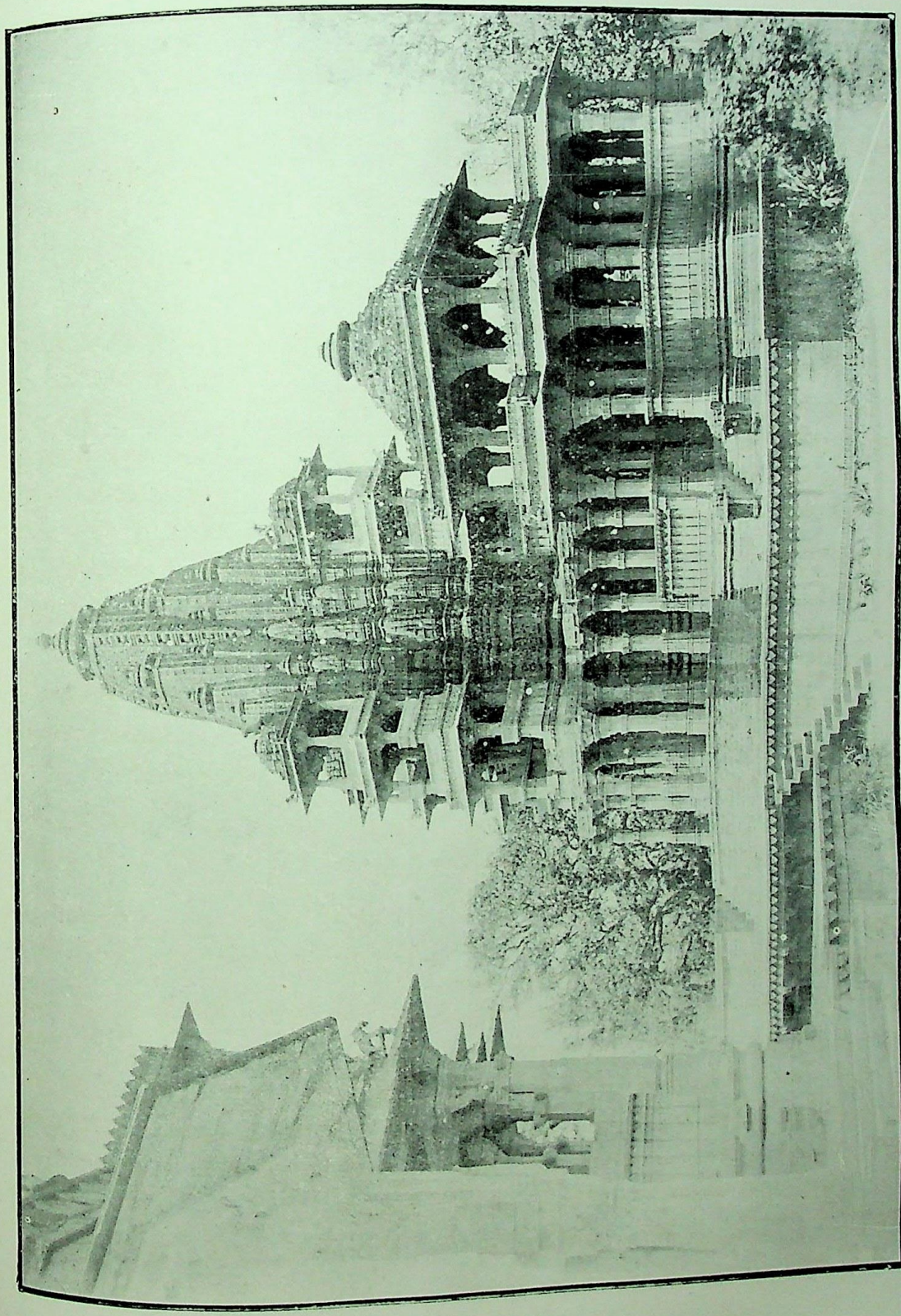

महाराज अजीतसिंह का देवल ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक की ख़ुशख़ती और कूफ़ी आदि तत्कालीन अनेक लिपियों के नमूने।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्ष का स्थान है कि मिश्रजी ने थोड़े ही समय में चित्रकला में इतनी उन्नति की है। आप सर जेमसेदजी जी० जी० भाई के बंबई कला-भवन के निकले हुए विद्यार्थी हैं। आपने वहाँ केवल १३ मास ही अभ्यास किया है। बिना ईश्वर-कृपा इतनी उन्नति थोड़े काल में प्रायः असंभव ही है परन्तु मिश्रजी के सुयोग्य गुरु जबलपुर निवासी पण्डित बालकृष्ण राव क्षीरसागर के विशेष अनुग्रह का यह फल है। मिश्रजी ने गुरु-सेवा करने ही के हेतु जबलपुर में सरकारी पुत्रीशाला (फीमेल नारमल स्कूल) में केवल ३०) मासिक वेतन पर रहना अंगीकार किया है।

मिश्रजी के बनाये हुए रविवर्मा के वासंतिका के रंगीन चित्र की सादृश्य प्रति मेरे कमरे में कई मास लटकी रही। परन्तु मेरी मित्र-मंडली में से किसी को भी इस चित्र के विषय में सिवा रविवर्मा के क़लम के और किसी की कल्पना न हुई। आशा है कि आपकी मनोहर लेखनी से और भी चित्रों का आनन्द शीघ्र ही प्राप्त होगा।

महाराज अजीतसिंह का देवल*

मारवाड़ की प्राचीन राजधानी मंडोर के खंडहरों में जहां पुराने शिल्प के कई उत्तम चिह्न रह गये हैं वहां नये शिल्प के भी कुछ अच्छे नमूने जोधपुर के अगले राजाओं के देवलों में देखे जाते हैं जो नागाद्री नदी के तीर पर पंक्ति में दक्षिण से उत्तर को बने हुए हैं। इन पर लाखों ही रुपया ख़र्च हुआ है और ये उत्तरोत्तर एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर हैं। उनमें जो सर्वोत्तम और सर्वांङ्ग सुन्दर है उसका चित्र आज सरस्वती के पाठकों की भेंट है।

वह भूमि जो इन देवलों के नीचे तथा पड़ोस में है यद्यपि श्मशान भूमिहै, जहाँ ४०० वर्ष से राठौड़ राजाओं और राजकुमारों की उत्तर-क्रिया होती रही है, तो भी अपने स्वाभाविक दृश्य से बहुत रमणीय और सुहावनी जान पड़ती है। बहुत से देशी और विदेशी लोग सदाही उसकी शोभा देखने आया करते हैं। क्योंकि यहाँ पानी, हरयाली, पहाड़ नाना प्रकार के वृक्ष और फल फूलों से प्राकृतिक छटा भी दिव्य है और मानुषी कारीगरी अर्थात् कलाकुशल शिल्पकारों की नई पुरानी कारीगरी का चमत्कार भी कुछ कम नहीं है।

पुरानी कारीगरी के चिह्न सब टूटे फूटे और गिरे पड़े हैं। उनमें कोई ऐसा नहीं है कि जो नख-शिख साबित हो, परन्तु नई कारीगरी के नमूने जिनमें मुख्य ये देवल हैं प्रायः सबही बने हुए हैं और जो किसी में कुछ टूट फूट हुई भी है तो वह ऐसी नहीं है कि जिससे उनका रूप ही बिगड़ गया हो।

ये देवल गिनती में ६ हैं और ऊँची ऊँची कुरसियों पर बने हुए हैं। लंबाई चौड़ाई ऊँचाई और कारीगरी में एक से एक उसी क्रम से बढ़ता गया है जिस क्रम से कि उन राजाओं के ऐश्वर्य की उन्नति तथा ऋद्धि और सिद्धि की वृद्धि होती गई है।

इन ६ पीढ़ियों में जो राजा महाराजा हुए वे अपनी वीरता और योग्यता से पीढ़ी दर पीढ़ी उन्नति करते गये थे। राव से राजा, राजा से महाराजा और महाराजा से राजराजेश्वर के उच्च पद पर पहुँचे थे।

पहला देवल राव मालदेवजी का है जिन्होंने संवत् १५८८ से संवत् १६१९ तक स्वतंत्रतापूर्वक ५२ परगनों में राज्य किया था। इनका देवल मोटा राजा ने बनाया है। इसके आगे का सभामंडप तो अब नहीं रहा, परन्तु देवल शिखिरसहित साबित खड़ा है जिसके दरवाज़े पर मारवाड़ी भाषा और मारवाड़ी अक्षरों में यह लेख खुदा है।

संवत् १६४७ वर्ष फागण बदि १
श्रीराउ उदे संघ राजे सूत्रधार

* मुंशी देवीप्रसाद, जोधपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नर संघ पुत्र नेतो हेमो, कलो,
गुणपत केसव—

इस देवल के पीछे पश्चिम को नदी और सामने मीठे पानी की एक बावड़ी है।

दूसरा देवल मोटा राजा उदयसिंह का है जिनका देहान्त संवत् १६५१ में लाहौर में हुआ था और उत्तर-क्रिया भी वहीं रावी नदी पर की गई थी। परन्तु देवल यहाँ कुल आमनाय से बना।

तीसरा देवल सवाई राजा सूरसिंह का है ये बुड़हानपुर के पास महकर के थाने पर संवत् १६७६ में स्वर्गगामी हुए थे।

चौथा देवल महाराजा गजसिंह का है इनका देहान्त आगरे में संवत् १६९४ में हुआ था।

पाँचवां देवल महाराजा जसवंतसिंह का है जिन्होंने संवत् १७३५ में काबुल के सूबे के थाने जमरूद पर अपनी जीवन-यात्रा समाप्त की थी।

छठा देवल राजराजेश्वर महाराजा श्री अजीतसिंह का है जिनका प्राणान्त तो संवत् १७८१ के आषाढ़ शुक्ल १३ को जोधपुर के क़िले में हुआ था और उत्तर क्रिया यहाँ की गई थी। इनके साथ सती होनेवाली स्त्रियों की संख्या अगले पिछले सब राजाओं से बढ़ी हुई थी। मारवाड़ के इतिहास में लिखा है कि रानियाँ ६ रानियों की मान से (दासियाँ) २० गायनें २०, उड़दाबेगणियाँ (उर्दू बेगमें) ९, हजूर बेगणियां (हजूरी बेगमें) २, महाराजा की चिता पर चढ़कर उनके साथ सती हुई थीं। गंगानाम १, उपस्त्री जो महाराज के साथ मारी गई थी वह भी साथ ही जलाई गई। कई बंदर और कई मोर भी अपनी अपनी इच्छा से चिता में गिर गिरकर जले थे। इस प्रकार कुल ८४ प्राणी महाराजा पर जान क़ुरबान करके उनके साथ गये थे। वह दिन जोधपुर में बड़े शोक, संताप और हाहाकार का था जैसा फिर कभी किसी के देखने में नहीं आया।

पाठकवृंद! आप जिस ऊँचे और बड़े देवल को एक विशालदेव मंदिर के समान देखते हो वही इन्हीं बड़े उद्योगी और साहसी राजराजेश्वर महाराजा अजीतसिंह का है जिन्होंने अपने और अपने औरंगज़ेब पिता को कष्ट देने का पूरा पूरा बदला बादशाह की संतान से लिया था।

इस देवल की दक्षिण तरफ़ तो इनके पिता महाराजा जसवंत का देवल है। पीछे नागाद्री नदी बहती है। आगे रास्ता चलता है जिसके उत्तर में तालाब और दक्षिण में बाग़ हैं।

देवल से उत्तर की तरफ़ क़िले का रास्ता नागाद्री का बंद और पहाड़ हैं। आसपास आम के वृक्ष हैं।

इस देवल की कारीगरी, पत्थरों की जुड़ाई और खुदाई सराहनीय है और एकही पत्थर की नालें तो जो इसके ऊपर के खंडों पर चढ़ाई गई हैं बहुत ही प्रसिद्ध हो गई हैं। जो कोई कहता है कि मैंने अजीतसिंहजी का देवल देखा है तो लोग उससे पूछते हैं कि बताओ उसकी नालें कैसी हैं।

इस देवल का काम महाराजा अभयसिंह के राज में ही होने लगा था परन्तु समाप्त महाराजा भीमसिंहजी के समय में हुआ है। यह बात ख्यात से भी जानी जाती है और इसके एक शिलालेख से भी जो बाहर की सीढ़ियों से चढ़कर अंदर जाते हुए दहने हाथ की तरफ़ दरवाज़े की १ पट्टी पर बड़े बड़े अक्षरों में खुदा मिलता है, उसकी नक़ल यह है।

महाराजाधराज श्रीअजीत
सीघजी रो देवल (१)
महाराजा श्रीभीवसीघजी
करायो दरोगो श्रीरायतेगो (२)
गजधर वीरा 'महस' मती
कातीबद १२ संवत् १८६० रा (३)
संवत् १८५६ मास भद्र वा
वुद १४ सरु हुवो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

अन्तिम मुग़ल सम्राट् बहादुरशाह के लेख का नमूना।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लेख के खोदे जाने के एक सप्ताह पीछे ही कार्तिक शुक्ल ४ संवत् १८६० को महाराजा भीमसिंह का अकस्मात् देहान्त हो गया। ये महाराजा गजीतसिंह की पाँचवीं पीढ़ी में छठे उत्तराधिकारी थे।

खेद का विषय है कि अपने सर दादा का उतना बड़ा देवल बनानेवाले महाराजा के दग्ध स्थान पर इतना भी मकान नहीं बना जो इस देवल की १ छोटी सी गुमटी के बराबर ही हो। टूटी फूटी तिबारी में उनकी तसवीर काग़ज़ पर बनी हुई रक्खी है। इस तरह मृतमहाराजाओं के रंगीन काग़ज़ी चित्र रखने की प्रथा यहीं से चली या शायद पहले से हो क्योंकि ऊपर लिखे देवलों में से पत्थर की मूर्ति तो पहले में भी नहीं है जैसी उस समय के दूसरे देवलों और क्षत्रियों में सतियों सहित देखी जाती है। सबके सिंहासन सूने पड़े हैं जिसमें लंगूर मोर और चिमगादड़ बसेरा लेते हैं। राज्य की तरफ़ से मरम्मत और सँभाल तो होती रहती है परन्तु इन जानवरों का पालन पोषण और वंश-विस्तार भी यहीं हुआ करता है।

फ़ारसी लिपि के नमूने।

फ़ारसी लिपि के नमूनें के चित्रों में एक में प्राचीन समय के लेखक की ख़ुशख़ती और कूफ़ी आदि तत्कालीन अनेक लिपियों के भी नमूने प्रदर्शित हैं। दूसरे चित्र में अन्तिम मुग़ल सम्राट् बहादुर शाह के लेख का नमूना दिखलाया गया है।

विविध विषय।

१—प्राचीन स्थानों और वस्तुओं की खोज।

गत मार्च की उन्नीसवीं तारीख़ को लार्ड मिन्टो ने भगवान् बुद्धदेव के शरीर की भस्म, जो कुछ दिन हुए पेशावर के निकट एक टीला खोदने से प्राप्त हुई थी, ब्रह्मा देश से आये हुए प्रतिनिधियों को सादर समर्पण कर दी। उस टीले के खोदने से भस्म के साथ और कौन कौन सी चीज़ें मिलीं थीं इसका वर्णन सरस्वती में पहले हो चुका है। पेशावरवाले टीले की तरह सिंध में मीरपुर नामक स्थान के निकट भी एक टीला था। बम्बई प्रान्त के प्राचीन स्थानों और वस्तुओं की खोज करनेवाले विभाग के अध्यक्ष मिस्टर कज़न्स ने मीरपुरवाले टीले को खोदकर पुरातन समय की कुछ चीज़ें प्राप्त की हैं। आपने टीले की शकल और अन्यान्य बातों से अनुमान कर लिया कि उस स्थान पर किसी समय में बौद्धों का मठ रहा होगा। आपका अनुमान निकला भी सच्चा। दस दिन तक टीला खुदवाने के बाद एक पक्की दीवार में बहुत सुन्दर २ फ़ुट ३ इंच ऊँची बुद्धदेव की मूर्त्ति निकली। फिर क्या था, और भी खुदाई शुरू हुई—कई एक दीवारें मिलीं, स्तूप के चिह्न मिले, बहुतेरी मूर्तियाँ और सलेखपट्टिकाएं मिलीं! एक पत्थर के सन्दूक़ में आधी चाँदी से मढ़ी हुई एक सुन्दर स्फटिक की बोतल थी। इस बोतल में कुछ मोती सोने की गुटिकाएं और एक छोटी अँगूठी इत्यादि चीज़ें पड़ी हुईं थीं और एक डेढ़ इञ्च लम्बा छोटा सा चाँदी का सम्पुट भी था। इस सम्पुट के भीतर भी एक और छोटा सोने का सम्पुट था। इसके अन्दर एक सूक्ष्म प्याले में कुछ भस्म थी। सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखने पर इस बात का पता लगा है कि यह भस्म जले हुए मनुष्य-शरीर की भस्म है। पेशावरवाली भस्म के उत्तरा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिकारी तो ब्रह्मादेशवासी ठहराये गये। देखें यह सिन्धवाली भस्म किसके हाथ लगती है?

इसी तरह पश्चिमीय तिब्बत में भी पादरी फ्रेंक ने ब्राह्मी लिपि में बहुत से शिलालेख प्राप्त किये हैं। ये शिलालेख ईसवी सन् से २०० या ३०० वर्ष पहले के कहे जाते हैं। यह तो सिद्ध ही है कि २००० वर्ष से भी पहले भारतवासी इन पहाड़ों पर पहुँच गये थे। परन्तु शिलालेखों से और भी बहुतेरी बातों का पता लगेगा। लेह ज़िला में भी क़ब्रों के अन्दर घड़ों में भरी मनुष्यों की हड्डियाँ और लोहे और सोने के ज़ेवर निकले हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये हड्डियां डार्ड सर्दारों के कुटुम्बियों की हैं। चीनी लेखक स्वीशू के अनुसार डार्ड लोगों में भी शायद सर्दारों के शव की खाल खींचकर हड्डियाँ और मांस के टुकड़े सुवर्ण सहित घड़ों में भर कर गाड़ने की चाल थी। सर्दारों के साथ उनके कुटुम्ब और मंत्री भी वहीं पर इसी तरह गाड़े जाते थे। सर्कार की ओर से प्राचीन स्थानों और वस्तुओं की खोज लगाने वाले महकमे ने पादरी फ्रेंक को गत जून मास में भेजा था। इतनेही दिनों में फ्रेंक साहब ने बहुत कुछ पता लगाया है। आशा है कि उनके द्वारा पश्चिमीय तिब्बत में बहुतेरी बातों का पता लगेगा।

२—देवनागरी लिपि और श्रीयुत शारदाचरण मित्र।

कलकत्ता हाई कोर्ट के भूतपूर्व जज श्रीयुत शारदाचरण मित्र के नाम से कौन भारतवासी अपरिचित है? देवनागरी को समस्त भारतवर्ष की लिपि बनाने के लिए आपने बड़ाही प्रयत्न किया है और कर रहे हैं। गत मार्च की इंडियन रिव्यू में आपने इसी विषय पर एक बड़ा महत्त्व-पूर्ण लेख लिखा है, जिसमें आपने जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् ग्रिम्म, इँगलेंड के प्रोफ़ेसर मोनियर विलियम्स, सर अर्सकाइन पेरी इत्यादिकों के विचारों का प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि भारतवर्ष की या समस्त भूमण्डल की यदि कोई एक ही लिपि हो सकती है तो बस देवनागरी ही। माना कि देवनागरी में अभी कोई कोई शब्द नहीं लिखे जाते परन्तु इसका प्रबन्ध बड़ी ही सुगमता के साथ किया जा सकता है, जैसे अक्षरों के नीचे बिन्दु लगाने से। यदि कुछ दिक़्त पड़ेगी भी तो अन्य किसी लिपि की अपेक्षा बहुत कम। श्रीमान् का कथन है कि उत्तर, पूर्व और पश्चिम में तो देवनागरी लिपि के स्वीकार करने में कोई विरोध नहीं जैसा कि काशी और आरा की नागरीप्रचारिणी सभाओं, कलकत्ते की एकलिपिविस्तारपरिषद् और बड़ोदा की कान्फ्रेंस के स्वीकृत प्रस्तावों से सूचित होता है। तब दक्षिण में भी किसी प्रकार का विरोध न होना चाहिए क्योंकि तेलगू, तामील, मालयालम और कनारी भाषाएं चाहे कुछ संस्कृतेतर भलेही हों पर इसमें संदेह नहीं कि इन भाषाओं में संस्कृत के शब्द बहुतायत से हैं और वर्ण भी संस्कृत ही हैं। अपने लेख के अन्त में श्रीमान् कहते हैं:—"Whatever the origin of the Devanagri may be, whether any one or more of the Indian scripts be more ancient than the Devanagri, it has obtained a status which gives it a title at the present day to supersede all other scripts. A Bengali may think that the script with which he has been accustomed and in which Bengali authors of eminence have published permanent and lasting productions should be adopted. A Guzrati or a Mahrastri may take the same narrow view. But such ideas are emanations of short-sighted policy, and for the good of India in the long run, for the greatest good of the greatest number, small sacrifices must be made. It will be a glorious thing for the Continent of India to have a common script and a common literature." अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवनागरी की उत्पत्ति चाहे जो हो, चाहे इस देश की अन्यान्य लिपियाँ देवनागरी से पुरानी ही क्यों न हों परन्तु उसकी स्थिति आजकल ऐसी है कि अन्य लिपियों की अपेक्षा उसको ही सारे देश की एक-लिपि बनने का अधिकार है। कोई बङ्गाली भलेही विचारे कि जिस लिपि में बङ्गाल के बड़े बड़े ग्रन्थ-कारों ने अपनी कृतियाँ प्रकाशित की हैं, वही लिपि समस्त भारतवर्ष की एकलिपि स्वीकार होनी चाहिए। एवं कोई महाराष्ट्र या गुजराती भी अपनी अपनी लिपियों के लिए संकीर्ण हृदय हो सकते हैं। परन्तु ऐसे विचार रखना अदूरदर्शिता है। भारत वर्ष और अधिकांश भारतवासियों के हित के लिए कुछ तो स्वार्थोत्सर्ग करना ही चाहिए। भारतवर्ष के लिए एकलिपि और एकसाहित्य होना बड़े गौरव की बात होगी।

३—पुच्छल तारे।

प्रोफ़ेसर बर्नार्ड ने हेली केतु की तसवीर ली है। अमेरिका की ज्योतिष सभा ने मिस्टर एलर्मन को ८ वीं मार्च को होनूलूलू भेजा है। आप वहाँ से हेली केतु को सूर्य्य के सामने गुज़रते हुए देखेगे। हेलीकेतु के अतिरिक्त और भी दो पुच्छलतारे इस वर्ष में दर्शन देने को थे। एक के तो दर्शन हो चुके। ये क़रीब क़रीब हर पाँचवें वर्ष कृपा करते हैं। इनका नाम है 'टेम्पलस कामेट'। इनका पता ३ जुलाई १८७३ में मिलन नगर में लगा था। तब से इन्होंने १८७८, १८९४, १८९९ और १९०४ में दर्शन देने की कृपा की। दूसरे हैं 'अरेस्ट कामेट'। इनका पता १८५१ में लगा था। ये भी १८५७, १८७०, १८७५, १८९० और १९०७ में दर्शन दे चुके हैं। ज्योतिषी अभी इनका स्वागत करने के लिए ध्यान लगाये बैठे हुए हैं।

४—निःशब्दशाला।

अप्साला के विश्वविद्यालय में एक ऐसा स्थान बनाया गया है, जहाँ बाहर से शब्द का प्रवेशही न हो सके। इस शाला की फ़र्श और दीवारें सीसा वग़ैरः विशेष पदार्थों से बनाई गई हैं। इस शान्त-स्थान में बैठने से हृदय की धड़कन और नसों की कर्कशध्वनि तक सुनाई देती है। परन्तु इसकी बनावट में अभी एक बड़ा दोष है। वहाँ वायु संचार ठीक ठीक न होने के कारण एक घंटे भर से अधिक बैठना असम्भव है।

५—विचित्र आविष्कार।

पाश्चात्य लोगों को नये नये आविष्कार करने का कुछ ख़ब्त सा हो गया है। बिना नई चीज़ों का पता लगाये उन्हें कलही नहीं पड़ती। उनके आविष्कार प्रायः उपयोगी तो होतेही हैं परन्तु कभी कभी उनकी रचनायें आविष्कार क्या खिलौना होती हैं। एक साहब ने ऐसा टोप तैयार किया है कि उससे छाते का भी काम निकल जाया करे। सोला हेट से तो कुछ धूप ही से रक्षा होती थी, परन्तु इस टोप से बारिश से भी रक्षा हो सकेगी। दूसरे साहब रेल के कुलियों से नाराज़ मालूम होते हैं। आपने पहिये लगाकर ऐसे ट्रन्क और सन्दूक़ तैयार किये हैं कि जब बोझ का वज़न ज़्यादा हो जाय तब उन्हें गाड़ी की तरह लुढ़काता हुआ ले जाय। तीसरे साहब मछली का शिकार ज़रा शान के साथ खेलना चाहते हैं। आपने बाँस में एक ऐसी घंटी लगाई है कि मछली फँसते ही वह बजने लगे। चौथे साहब कुत्ते से कपड़े सिलाना चाहते हैं। सीनेवाली कलों में आपने एक ऐसा यंत्र बाँधा है कि कुत्ता उसमें कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगावे और कपड़ा सिलता जाय।

६—आवश्यकीय प्रारम्भिक शिक्षा।

आजकल उन्नतशील देशों में बच्चों की शिक्षा का बड़ी उत्तमता से प्रबन्ध किया जाता है। वहाँ के राजा और प्रजा दोनोंहीं को भलीभाँति निश्चय हो गया है कि शिक्षित स्त्री पुरुषों की जितनीही संख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ेगी उतनीही देश की उन्नति होगी। यही कारण है कि उन देशों में सरकार की ओर से नियम हो गया है कि बच्चों को कम से कम एक नियमित आयु से नियमित आयु तक तो प्रारम्भिक शिक्षा अवश्यमेव दी जानी चाहिए। इस आवश्यकीय प्रारम्भिक शिक्षा के लिए किसी प्रकार की फ़ीस नहीं ली जाती। टीका लगानेवालों की तरह इन्सपेक्टर गली गली फिरते हैं और इस बात का पता लगाते हैं कि कौन माता पिता अपने बच्चों को पढ़ने नहीं भेजते। नियम उल्लंघन करनेवालों को सर्कार की ओर से दण्ड मिलता है। इँगलेंड में बच्चों को यह आवश्यकीय प्रारम्भिक शिक्षा क़रीब ७ बरस मिलती है, अमेरिका में ८ वर्ष, जापान में ४ वर्ष और इटली में ३ वर्ष। इस हिसाब से यूनाइटेड स्टेस (अमेरिका) निवासियों में से फ़ी सदी २१ मनुष्यों को हर वक्त शिक्षा मिलती रहती है। कनाडा, आस्ट्रेलिया, स्विटज़रलैण्ड, ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैण्ड में फ़ी सदी १७ से २० मनुष्यों को शिक्षा मिलती रहती है। जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, नारवे, और नेदरलैण्ड में फ़ी सदी १५ से १७ मनुष्यों को, फ़ान्स में क़रीब १४ फ़ी सदी से कुछ ज़्यादा, स्वीडन में १४ फ़ी सदी, डेन्मार्क में १३, बलिजयम में १२, जापान में ११, इटली, ग्रीस और स्पेन में क़रीब ९ फ़ी सदी, रूस और पुर्तगाल में क़रीब ५ फ़ी सदी मनुष्यों को शिक्षा मिलती रहती है। फ़िलीपाइन द्वीप में भी, जहाँ के लोग पराधीन हैं, कुल आबादी में से फ़ी सैकड़ा ५ मनुष्यों को शिक्षा मिलती रहती है। बड़ौदा राज्य में भी ५ फ़ी सदी, परन्तु भारतवर्ष के अंग्रेज़ी साम्राज्य में कुल आबादी में से फ़ी सदी क़रीब १ मनुष्य को शिक्षा मिलती रहती है! ग़नीमत है। पर माननीय गोखले से यह हिन्दुस्तान की दुर्दशा देखकर न रहा गया। उन्होंने गत अठारहवीं मार्च को वाइसराय की कौंसिल में यह प्रस्ताव प्रविष्ट किया कि अन्य देशों की भाँति इस देश में भी प्रारम्भिक शिक्षा सिर्फ़ लड़कों के लिए ६ वर्ष से १० वर्ष की उम्र तक क्रमशः आवश्यकीय और मुफ़्त कर दी जाय। श्रीमान् ने अपने प्रस्ताव की पुष्टि में अकाट्य युक्तियाँ और प्रमाण दिये। परन्तु हतभाग्य भारत के अभी ऐसे सुदिन कहाँ जो यह सीधासादा परमोपयोगी प्रस्ताव स्वीकार हो जाता?

निवेदन।

मेरे लेखों को पढ़कर बहुत से मित्र मुझे पत्र भेजते हैं। कोई शिकागो यूनीवर्सिटी के पते पर भेज देता है; कोई आरेगन। कोई सियेटल के पते पर पुस्तकें रवाना कर देता है। कई बार पत्र नहीं मिले। कारण स्पष्ट है, मेरा एक जगह ठिकाना नहीं; कभी कहीं, कभी कहीं। आपही रुपया कमाना और आपही पढ़ना! इस दशा में एक ठिकाना हो नहीं सकता, जहाँ सुभीता समझता हूँ, वहीं चला जाता हूँ। पर इस अदला बदली के सबब से डाक में बड़ा गड़बड़ मचती है। भारत से पत्र के आने में एक महीने से ऊपर लगता है। इन सब बातों को सोच कर मैंने यह ज़रूरी समझा है कि एक 'ख़ास ठिकाना' डाक के लिए बनाया जावे। अब मैंने यह प्रबन्ध किया है कि मेरी डाक:—

S. Deva
P. O. Box 860
New York City
N. Y.

इस पते पर आवे। मैं जहाँ हूँगा मुझे पत्र मिल जावेगा, गुम होने का डर नहीं रहेगा। क्योंकि न्यूयार्क चिट्ठी भेज पता बदलवा देना आसान है।

विनीत
सत्यदेव।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ११] १ जून, १९१०। ज्येष्ठ कृष्ण ८, १९६७। [संख्या ६

महाकवि केशवदासजी।

"एक लहैं तप पुंजन के फल
ज्यों तुलसी अरु सूर गोसाईं।
एकन के बहु सम्पति भूषन
केशव ज्यों बर बीर बड़ाईं॥
एकन को जसही सों प्रयोजन
है रस खानि रहीम कि नाईं।
दास कवित्तन की चरचा
गुनवन्तन को सुखदै सब ठाईं॥"

महाकवि केशवदास ने सत्रहवीं शताब्दी में कविता की है—इन्होंने कवि-प्रिया के द्वितीय प्रभाव में अपने कुल का इस प्रकार वर्णन किया है:—ब्रह्मा के सनकादि मानसिक पुत्र थे और सनकादि के मानसिक पुत्र सनाढ्य हुए। परशुराम ने सनाढ्यों के पैर पखार कर उन्हें बहुत ग्राम दिये। रामचन्द्र ने उन्हें मथुरा मंडल में ७०० ग्राम दिये। श्रीकृष्णचन्द्र ने उन्हें फिर वही देश दिया।

सनाढ्यों के कुम्भवार उदेश कुल में देवानन्द हुए। उनके जयदेव और जयदेव के दिनकर पुत्र हुए। इनसे अलाउद्दीन बादशाह बहुत ख़ुश रहता था—उन्होंने गया तीर्थ किया। दिनकर के गया-गदाधर, उनके जयानन्द और उनके त्रिविक्रम मिश्र पुत्र हुए। इन महाराज के गोपाचल क़िले के राजा ने पैर पूजे। त्रिविक्रम के पुत्र भावशर्म, और उनके सुरोत्तम मिश्र हुए। इनसे मानसिंह से अनबन थी परन्तु रानाजी ने इन्हें बीस गाँव दिये। इन सुरोत्तम मिश्र के पुत्र हरिहरनाथ हुए। ये महाशय तोमर पति के यहाँ रहे। हरिहर के पुत्र कृष्णदत्त हुए। महाराज रुद्र ने इनको पुराण की वृत्ति दी। कृष्ण-दत्त के पुत्र काशीनाथ हुए और इन्हीं काशीनाथ के बलभद्र, केशवदास, और कल्यानदास पुत्र थे।

केशवदास के जन्म का संवत् भली भाँति हम को ज्ञात नहीं है। स्वयं ओड़छे में जाकर हमने केशवदास के विषय में सब लोगों से पूछ ताँछ की परन्तु शोक कि वहाँ कोई इनके विषय में कुछ भी नहीं जानता। बहुत देर पूछ ताँछ के पीछे लोगों ने एक इमली दिखाकर कहा कि यहीं केशवदास का मकान था। इससे अधिक उनके विषय में ओड़छे में कुछ भी नहीं मालूम पड़ा।

केशवदास ने संवत् १६४८ वि० में रसिकप्रिया बनाई थी। यह एक उत्तम ग्रन्थ है और केशव ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल चार ग्रन्थ बनाये हैं। इससे विदित होता है कि ये महाशय ग्रन्थ धीरे बनाते थे। इससे विचार यह उठता है कि सम्भवतः चालीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने यह ग्रन्थ बनाया होगा। केशवदास कवि होने के अतिरिक्त संस्कृत के पूर्ण पण्डित भी थे। इनके पिता काशीनाथ ने शीघ्रबोध नामक ज्योतिष का एक ग्रन्थ भी बनाया है। इससे जान पड़ता है कि उन्होंने केशवदास को भी ज्योतिष अवश्य पढ़ाया होगा। फिर इनके पितामह को ओड़छे में पुराण की वृत्ति मिली थी। सो वही वृत्ति इनकी भी होगी। अतः ये पुराण भी ख़ूब पढ़े होंगे। केशवदास की कविता से भी प्रकट होता है कि वे संस्कृत के पूर्ण पण्डित थे। इन्द्रजीतसिंह इनको गुरुवत् समझते थे; इस बात से भी प्रकट होता है कि ये महाशय संस्कृत के पूरे पण्डित होंगे। विज्ञानगीता देखने से भी विदित होता है कि इनको संस्कृत दर्शन-शास्त्र पर भी प्रगाढ़ अधिकार था। इन सब बातों से प्रकट हुआ कि केशवदास ने विद्या प्राप्त करने में पूरा श्रम करके तब काव्य करना प्रारम्भ किया होगा। अतः अनुमान से जान पड़ता है कि इनका जन्म संवत् १६०८ वि० (सन् १५५२ ई०) के लग भग हुआ सो सूरदास की मृत्यु के समय केशवदास बारह वर्ष के होंगे।

भूषण के सिवा किसी भाषा-कवि का केशवदास के समान सत्कार नहीं हुआ। ये महाशय ओड़छे में रहते थे। उस समय से अब तक वहाँ गहरवार वंशीय क्षत्रिय राज्य करते हैं। ये क्षत्रिय महाराज रामचन्द्र के वंशोद्भव हैं। इनके पुरखाओं में पंचम सिंह बड़े प्रतापी हुए। पंचम के पुत्र बुन्देल थे जिनके कारण गहरवार ठाकुर बुन्देला कहलाने लगे। इन्हीं के बसे हुए देश को बुन्देलखंड कहते हैं और यहाँ इसी कुल के क्षत्रिय बहुत स्थानों पर अब भी राज्य करते हैं। इसी कुल में भारतीचन्द बड़े पराक्रमी राजा उत्पन्न हुए। इन्हीं भारतीचन्द ने कालिंजर के क़िले पर धावा करते हुए हिन्दुस्तान के बादशाह शेरशाह सूर का वध किया। भारतीचन्द के कुल में राजा मधुकर शाह ओड़छे के राजा हुए। इन्होंने अकबर शाह के गढ़ छीन लिये और स्वयं मुरादशाह इनसे लड़कर हार गया। मधुकर शाह के दूलहराम, बीरसिंहदेव, इन्द्रजीतसिंह आदि बारह पुत्र हुए। बड़े पुत्र दूलहराम राजा हुए। केशवदास मधुकर शाह के रामसिंह नामक कोई पुत्र का होना नहीं लिखते, परन्तु वे रामसिंह ही को राजा कहते हैं और उनको इन्द्रजीतसिंह का भाई कहते हैं। मधुकर शाह के बड़े पुत्र दूलहराम थे सो उनका राजा होना अनुमानसिद्ध है। जान पड़ता है कि इन्हीं का उपनाम रामसिंह था।

जहाँ अकबर के दरबार में और सब राजा खड़े रहते थे वहाँ उसने रामसिंह को बैठक दी। रामसिंह के राज्य का इन्तिज़ाम इन्द्रजीत के हाथ में रहता था। उन्होंने इन्द्रजीतसिंह को कक्षेवा कमल नामक गढ़ दिया। इन्द्रजीत के यहाँ संगीत का अखाड़ा था। उनके यहाँ निम्नलिखित पट् पातुर थीं:—

रायप्रवीन, नवरँग राय, विचित्र नयना,
तान तरंग, रंग राइ, और रंग मूरति।

इन्द्रजीत की रायप्रवीन से आशनाई थी। रंडी होने पर भी वह पतिव्रता थी। एक बार उसके रूप-लावण्य का वर्णन सुन कर अकबर ने उसे बुला भेजा। उस समय रायप्रवीन ने, जो उत्तम कविता भी करती थी, इन्द्रजीत की सभा में जाकर यह कवित्त पढ़ा:—

"आई हौं बूझन मन्त्र तुम्हें निज
सासन सों सिगरी मति गोई।
देह तजौं कि तजौं कुल कानि
हिये न लजौं लजि है सब कोई॥
स्वारथ और परमारथ को गथ
चित्त विचारि कहौ अब सोई।
जामैं रहै प्रभु की प्रभुता अरु
मोर पतिव्रत भंग न होई॥"

इस बात पर इन्द्रजीत ने उसे अकबर के यहाँ न भेजा। तब अकबर ने क्रोध करके उन पर एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करोड़ रुपया जुरमाना किया। उस समय केशवदास ने आगरा जाकर वीरबल द्वारा यह जुरमाना माफ़ कराया और रायप्रवीन ने अकबर के यहाँ किसी मौक़े से निम्नलिखित दोहा पढ़कर अपना पातिव्रत बचाया।

'बिनती रायप्रवीन की सुनिये साहि सुजान।
जूठी पातरि भखत हैं बारी बायस स्वान॥'

(२) अब हम स्वयं केशवदास का जीवनचरित्र जहाँ तक हमें उनके काव्य या कहावतों द्वारा ज्ञात हुआ है, नीचे लिखते हैं। जैसा ऊपर कहा जा चुका है उनका जन्म ओड़छे में सन् १५५२ ई० में हुआ था। पहले उन्होंने संस्कृत में पूर्ण पण्डिताई प्राप्त की और सम्भवतः ३५ वर्ष की अवस्था में कविता करनी प्रारम्भ की। इनके जन्मस्थान ओड़छे होकर बेतवै नदी बही है। ओड़छे के राज-महल अब भी दर्शनीय हैं और बेतवै तो बड़ी ही मनोरम नदी है। हम तो आध घंटे तक खड़े हुए उसे देखतेही रहे परन्तु तो भी हमें तृप्ति नहीं हुई। केशवदास ने ओड़छे और बेतवै का बड़ा उत्तम वर्णन किया है। उदाहरणार्थ दो एक छन्द यहाँ दिये जाते हैं।

'नदी बेतवै तीर जहँ तीरथ तुंगारन्य।
नगर ओड़छो बहु बसै धरनी तल में धन्य॥
केशव तुंगारन्य में नदी बेतवै तीर।
नगर ओड़छो बहु बसै पंडित मंडित भीर॥

ओड़छे तीर तरंगिनि बेतवै ताहि
तरै नर केशव को है।
अर्जुन बाहु प्रबाहु प्रबोधित
रेवा ज्यों राजन की रज मोहै॥
जोति जगै जमुना सी लगै जग
लाल बिलोचन पाप बियो है।
सूर सुता सुभ संगम तुंग
तरंग तरंगित गंग सी सो है॥'

सच मुच बेतवै का तरना बड़ा ही दुर्गम है। चालीस वर्ष की अवस्था में इन्होंने रसिक-प्रिया नामक अपना प्रथम ग्रन्थ सं० १६४८ कार्तिक शुक्ला ७ सोमवार (सन् १५९२ ई०) को समाप्त किया। यह ग्रन्थ इन्द्रजीत के कहने से बना था। इस समय तक केशवदास का पूर्ण आदर ओड़छे में नहीं हुआ था, परन्तु इन्होंने रसिक प्रिया में लिखा है कि—

'तिन कवि केसवदास सो कीन्हों धरम सनेहु।
सब सुख दै कै यह कही रसिक-प्रिया करि देहु॥'

इससे प्रकट होता है कि इन्द्रजीत इनके इस समय से प्रथम शिष्य हो चुके थे। यहाँ 'तिन' से इन्द्रजीत का प्रयोजन है। इसी के कुछ दिन पीछे केशवदास को जुरमाना माफ़ कराने आगरा जाना पड़ा। वहाँ जाकर ये महाराज वीरबल से मिले और उनकी प्रशंसा में इन्होंने यह छन्द पढ़ा :—

'पावक पंछी पसू नर-नाग
नदी नद लोक रचे दस चारी।
केसव देव अदेव रचे
नरदेव रचे रचना न निवारी॥
कै बर बीर बली बर को सु भयो
कृतकृत्य महा व्रत-धारी।
दै करतापन आपन ताहि
दियो करतार दुओ करतारी॥

इस छन्द को सुन कर महाराज वीरबल इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने एक करोड़ का जुर्माना अकबर से माफ़ करा दिया और छः लाख रुपये की हुंडियाँ उनके जेब में थीं वह निकाल कर केशवदास को तुरन्त दे दीं। तब केशव ने परम प्रसन्न होकर यह छन्द पढ़ा :—

'केसवदास के भाल लिख्यो विधि
रंक को अंक बनाय सँवारयो।
छोड़े छुट्यो नहिँ धोये धुयो बहु
तीरथ के जल जाय पखारयो॥
ह्वै गयो रंक ते राउ तहीं जब
बीर बली बलबीर निहारयो।
भूलि गयो जग की रचना
चतुरानन बाय रह्यो मुख चारयो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब वीरबल ने परम प्रसन्न होकर इनसे फिर कहा कि 'माँगु'। इसको केशवदास ने यों कहा है :—

'यों हीं कह्यो जु वीरबल माँगु जु माँगन होय।
माँग्यो तुव दरबार में मोहि न रोकै कोय॥'

जब केशवदास जुर्माना माफ़ करा के ओड़छे गये उसी समय से इनका बड़ा भारी मान होने लगा और तभी इन्होंने लिखा कि :—

'भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत जीवै जुग जुग जाके राज केसोदास राज सो करत है।'

यदि इसके प्रथम इनका इतना मान होता तो वीरबल के यहाँ ये अपने को रंक न कहते। इसी समय इन्द्रजीत ने इन्हें इक्कीस गाँव दिये और एक बार प्रयाग में गंगाजी में खड़े होकर इनसे कहा कि जो चाहिए माँग लीजिए।

'इन्द्रजीत तासों कह्यो माँगन मध्य प्रयाग।
माँग्यो सब दिन एक रस कीजे कृपा सभाग॥'

इससे विदित होता है कि इस समय इनकी पूरी महिमा थी, अतः इन्होंने केवल उसका स्थिर रहना माँगा। इन्द्रजीत के कारण महाराजा रामसिंह भी केशवदास पर बड़ी कृपा करते थे और उनको मन्त्री और मित्र की भाँति मानते थे।

केशवदास के वरदान माँगने से प्रकट होता है कि इन्होंने वरदान माँगने में धनादि की तृष्णा कभी नहीं की और केवल प्रतिष्ठा-वर्द्धक बरदान माँगे। इसी समय महाराजा वीरबल काबुल के युद्ध में मारे गये। उस समय उनकी उदारता का वर्णन केशवदास ने यों किया :—

'पाप के पुंज पखावज केसव
सोक के संख सुने सुषमा में।
झूठ की झालरि झाँझ अलीक के
आवझ जूथन जानि जमा में॥
भेद की भेरी बड़े डर के उफ
कौतुक भेा कलि के कुरमा में।
जूझत ही बल बीर बजे बहु
दारिद के दरबार दमामें॥'

केशवदास ने कविप्रिया में सिवा अमरसिंह और वीरबल के और किसी समकालीन का दान नहीं वर्णित किया है यद्यपि बहुत से देवताओं का दान वर्णित है।

इससे जान पड़ता है कि केशवदास अमरसिंह के यहाँ भी गये थे। अमरसिंह का हाल अभी हमें पूरा जान नहीं पड़ा। एक अमरसिंह महाराणा प्रतापसिंह के पुत्र थे। सम्भव है कि केशवदास उनके यहाँ उदयपूर गये हों क्योंकि केशव के पूर्व पुरुषों का भी चित्तौर के महाराणा से सम्बन्ध था।

सन् १५९२ ई० से १६०२ ई० तक केशवदास कविप्रिया तथा रामचन्द्रिका बनाते रहे और कार्तिक शुक्ल ५ संवत् १६५८ वि० को बुध के दिन उन्होंने कविप्रिया समाप्त की और बुधवार कार्तिक शुक्ल १२ को रामचन्द्रिका समाप्त की। फिर संवत् १६६७ वि० (सन् १६१३ ई०) में इन्होंने विज्ञानगीता समाप्त की। केशवदास ने कविप्रिया में रामचन्द्रिका और विज्ञानगीता के बहुत से छन्द रक्खे हैं। इससे प्रकट होता है कि उन्होंने या तो कविप्रिया समाप्त करने के पीछे भी उसमें छन्द बढ़ाये हैं या विज्ञानगीता भी उसी पुस्तक के साथ बनता रहा होगा और समाप्त बहुत दिन पीछे हुआ होगा।

हमको सन् १६११ ई० के पीछे केशवदास के जीते रहने का अब तक कोई प्रमाण नहीं मिला।

एक किंवदन्ती है कि इन्द्रजीतसिंह के चित्त में यह भावना उठी कि उनका दरबार बहुत ही उत्तम है परन्तु लोगों के मरजाने से वह क्षीण हो जायगा। सो वे सोचने लगे कि किस प्रकार वह सभा चिरस्थायिनी हो। इस पर कहा जाता है कि केशवदास ने उनको प्रेत-यज्ञ करने की सलाह दी क्योंकि प्रेतों की अवस्था दश हज़ार वर्ष की होती है। कहते हैं कि फिर वहाँ प्रेत-यज्ञ किया भी गया और उसमें सब लोगों के साथ मर कर केशवदास भी प्रेत हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये, इसी कारण इनको कवि जन कभी कभी 'कठिन काव्य के प्रेत' भी कहते हैं क्योंकि इनके प्रेत होने के अतिरिक्त इनका काव्य कठिन भी है। प्रेतयोनि में केशवदास का जी नहीं लगता था। एक बार ये महाशय एक कुएँ में बैठे थे और उसी में गोस्वामी तुलसीदास पानी भरने गये। कहते हैं कि केशवदास ने उनका लोटा पकड़ लिया। जब तुलसीदास ने छुड़ाने के लिए बहुत कुछ कहा तब इन्होंने कहा कि "हमें किसी प्रकार प्रेत-योनि से छुड़ाओ तो हम लोटा छोड़ें"। इस पर तुलसीदास ने इनसे कहा कि "तुम अपनी बनाई हुई रामचन्द्रिका के इक्कीस पाठ कर डालो तो तुम्हारी प्रेतयोनि छुट जाय"। केशवदास को रामचन्द्रिका का पहला कवित्त ही नहीं स्मरण आता था सो तुलसीदास ने उन्हें वह याद दिलाया और वे रामचन्द्रिका के इक्कीस पाठ करके मुक्त हुए। इन्द्रजीतसिंह का प्रेतयज्ञ करना किसी इतिहास में नहीं लिखा है सो यह कथा केवल मनगढ़न्त जान पड़ती है। यह विख्यात बहुत है इसी कारण इसे हमने लिख दिया। इन सब बातों का निष्कर्ष केवल इतना है कि केशवदास तुलसीदास के पहले मरे थे। गोस्वामी जी सन् १६२४ ई० में मरे थे (सम्वत् सोरह सै असी असी गंग के तीर—सावन सुकुला सत्तिमी तुलसी तजो सरीर')। सो केशवदास जी ने सन् १६१८ ई० के लग भग शरीर छोड़ा होगा।

(३ क) केशवदास के विवाह, पुत्र, पौत्रादि के विषय में हम लोगों को कुछ भी ज्ञात नहीं है। हमारे प्रिय मित्र बाबू राधाकृष्णदासजी ने यह लिखा है कि कविवर बिहारीलाल केशवदास के पुत्र थे। उन्होंने इस विषय में बहुत से उत्तम प्रमाण दिये हैं परन्तु कुल बातें सोच कर हमारा विचार है कि बिहारीलाल के पिता का नाम केशव अवश्य होगा परन्तु वे ये केशवदास न थे क्योंकि यदि इन दोनों में पिता-पुत्र का सम्बन्ध होता तो दो में से एक भी तो इस बात को स्पष्ट रूप से अवश्य लिख जाता। फिर जैसे कालिदास कविन्द और दूलह का एवं ऋषिनाथ ठाकुर, सेवक का सम्बन्ध तथा मतिराम भूषणादि का सम्बन्ध सब पर किंवदन्तियों द्वारा प्रकट है इसी प्रकार इनका भी अवश्य प्रकट होता। केशवदास के विषय में हम लोगों को इतना अवश्य ज्ञात है कि ये महाराज बुड्ढे होकर मरे थे क्योंकि ये स्वयं कहते हैं कि—

'केसव केसनि असि करी जैसी अरि न कराहिँ।
चन्द्रवदनि मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाहिँ॥'

(३ ख) केशवदास पण्डित होने पर भी पण्डितों की भाँति शुष्कचित्त न थे वरन् बुढ़ापे को इस कारण बुरा समझते थे कि चन्द्र-वदनी स्त्रियाँ इनको नायक की दृष्टि से न देख कर बूढ़े बाबा समझती थीं। फिर इन्द्रजीतसिंह इनको गुरु की भाँति मानते थे परन्तु इन्होंने उनकी गणिकाओं तक का बड़े आदर के साथ वर्णन किया है यहाँ तक कि उनका रायप्रवीन के साथ अनुचित सम्पर्क तक वर्णित करने में इन्होंने मुँह न मोड़ा। उसी गणिका की इन्होंने रमा, सरस्वती और शिवा तक की उपमा देने में कोई दोष न समझा।

'नाचत गावत पढ़त सब सबै बजावत बीन।
तिन में करति कवित्त यक रायप्रवीन प्रवीन॥
रतनाकर पालित सदा परमानन्दहि लीन।
अमल कमल कमनीय कर रमा की रायप्रवीन॥
रायप्रवीन कि सारदा सुचि रुचि बासित अंग।
वीणा पुस्तक धारिणी राजहँस सुत संग॥
वृषभ बाहिनी अंग उर बासुकि लसत प्रवीन।
शिव सँग सोहति सर्वदा शिवा की रायप्रवीन॥
सविता जू कविता दई ता कहँ परम प्रकास।
ताके कारन कविप्रिया कीन्हीं केशवदास॥'

रसिक होने के अतिरिक्त केशवदास कोरे भक्त भी न थे। इन्होंने कृष्ण की शनि से उपमा दी है ('राहु मनो शनि अंक लिये' रसिकप्रिया) और रामचन्द्र के विषय में यह सन्देह उपस्थित कराया कि "कैधों कोऊ ठग हौ ठगोरी कीन्हें कैधों तुम हरि हर श्री हौ शिवा चहत फिरत हौ।" कोरा भक्त राम की ठग से, कृष्ण की शनि से और एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणिका की शिवा, रमा तथा शारदा से समानता कभी न करता। फिर भी केशवदास को रामचन्द्र का इष्ट था ('केशवदास तहीं करचो रामचन्द्र जू इष्ट' रामचन्द्रिका)।

केशवदास के ग्रन्थ।

(४) केशवदास ने कुल मिलाकर चार ग्रन्थ बनाये हैं, परन्तु इन ग्रन्थों के अतिरिक्त भी इनके कुछ स्फुट छन्द मिलते हैं, यद्यपि ऐसे छन्द गणना में बहुत थोड़े हैं—

(४क) रसिकप्रिया। यह ग्रन्थ सन् १५९२ ई० (सोमवार कार्तिक शुक्ल संवत् १६४८ वि०) में समाप्त हुआ। यह इन्द्रजीतसिंह की इच्छानुसार बना है। जैसा कि इसका नाम प्रकट करता है इस ग्रन्थ में रसिकों के लिए रुचिकर वर्णन हुआ है यहाँ तक कि वीर, रौद्र, बीभत्स, शान्त आदि रसों तक में शृंगार रस का पीछा नहीं छोड़ा गया। इन्होंने प्रच्छन्न और प्रकाश प्रायः सभी उदाहरणों में दिखाया है।

नव-रस वर्णन से मुख्य ग्रन्थ का प्रारम्भ हुआ है। फिर संयोग और वियोग एवं प्रच्छन्न और प्रकाश शृंगार का वर्णन है। तदनन्तर नायिका जाति अर्थात् पद्मिनी, चित्रिनी, शंखिनी और हस्तिनी को दिखाकर केशवदास ने चारों प्रकार के नायकों का वर्णन किया है। फिर कर्म्मानुसार नायिका-भेद कहा है। जैसे अधिकतर कविजनों ने इस कर्म्म-भेद को कहा है वैसे विस्तार के साथ केशवदास ने नहीं कहा। फिर चारों प्रकार का दर्शन (साक्षात्, चित्र, स्वप्न, श्रवण) कह कर इन्होंने हाव भाव का वर्णन किया है, और इसके पश्चात् वियोग शृंगार कह कर शेष आठों रसों का शृंगार से मिला हुआ वर्णन किया है। यह वर्णन बिलकुल अच्छा नहीं है। अन्त में चारों वृत्तियों (कौशिकी, भारती, अरभटी, सात्विकी) को दिखा कर सोलहवाँ अध्याय भी समाप्त कर दिया। केशवदास ने गणिका को अति निन्द्य समझ कर उसका वर्णन इस ग्रन्थ में नहीं किया और इस में कविता के कुल अंगों का वर्णन न करके केवल भाव-भेद और रसभेद का वर्णन किया है और वह भी विस्तारपूर्वक नहीं। इस ग्रन्थ में जहाँ तक हो सका है शृंगार रस का ही अवलम्ब लिया गया है। आकार में यह ग्रन्थ पद्माकरजी के जगद्विनोद के बराबर होगा और उत्तमता में मतिरामकृत रसराज से मिलता जुलता है परन्तु उसके बराबर नहीं पहुँचता। यह केशवदास का प्रथम ग्रन्थ है। अतः इसे बहुत उत्तम पाने की आशा करना उचित नहीं है, तो भी यह ख़राब नहीं है और इनका प्रथम ग्रन्थ होने पर भी भाषा के उत्तम ग्रन्थों में इसकी गणना है।

(४ख) विज्ञान-गीता—यह ग्रन्थ संवत् १६६७ वि० (१६११ ई०) में बना था। समय के अनुसार यह केशवदास का चौथा ग्रन्थ है परन्तु शोक है कि उत्तमता में यह उनके ग्रन्थों में सबसे न्यून है। इसमें इक्कीस अध्याय हैं जिनमें से बारह अध्याय पर्य्यन्त महामोह और विवेक की लड़ाई का वर्णन है और शेष नौ अध्यायों में ज्ञान कहा गया है। प्रथम अध्याय में कवि-वंश तथा राज-वंश संक्षेपतः कहे गये हैं और एक प्रकार से ग्रन्थ की प्रस्तावना भी इसी अध्याय में कही गई हैं। द्वितीय सर्ग में काम और रति की बात चीत होती है, और तीसरे में दम्भ और अहंकार काशी-विजय का विचार करते हैं। इसमें पेट के दो छन्द अच्छे हैं। चौथे अध्याय में महामोह सेना साज कर चलता है और सातों द्वीपों (जिनका वर्णन विष्णुपुराण में हुआ है) और अवतारों को देखता है। इन अन्तिम तीनों अध्यायों की कविता बहुत शिथिल है। पाँचवें अध्याय में कलिनाथ और उसकी रानी की बहस होती है, छठवें में कलिनाथ अपनी विजयों और चमू का वर्णन करता है, और रानी काशी का माहात्म्य कहती है। सातवें अध्याय में चार्वाक और कलि की वार्त्ता हुई है और आठवें में शान्ति और करुणा का वर्णन है। नवें में राजधर्म द्वारा महामोह लड़ाई का उद्योग करता है परन्तु वर्षा-ऋतु के कारण लड़ना प्रारम्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करता। दसवें अध्याय में वर्षा और शरद का उत्तम वर्णन है। ग्यारहवें अध्याय में तीन स्तोत्र पुराने संस्कृतवाले कवियों के ढँग पर बने हैं और उत्तम भी हैं। उनकी टेकें निम्न लिखित हैं :—

'प्रबोधो उदेा देहि श्री बिन्दु माधेा।
'राखि लेहु राखि लेहु राखि लेहु विश्वनाथ।
'नमेा देवि गंगे नमेा देवि गंगे।

इन तीनों स्तोत्रों द्वारा विवेक अपने देवताओं को प्रसन्न करता है। बारहवें अध्याय में महामोह और विवेक का महाघेार युद्ध हुआ जिसमें महामोह पूर्णतया पराजित हेा गया। यह युद्ध बहुत ही संक्षेप से कहा गया है। इन बारह अध्यायों में प्रथम, दशम और एकादश छोड़कर शेष प्रशंसनीय नहीं हैं और इनकी कथा का भाव संस्कृत के प्रबोध चन्द्रोदय नामक ग्रन्थ से लिया गया है। तेरहवें अध्याय में माया का और चौदहवें में शुकदेवजी का वर्णन है। पन्द्रहवें में मन-शुद्धि, विवेक, और पूजा का हाल है और यह अध्याय औरों की अपेक्षा कुछ उत्तम है। सेालहवें में राजा शिखीध्वज और उसकी रानी चुडाला की कथा येाग-वाशिष्ठ से कही गई है और सत्रहवें में ज्ञान-विज्ञान की भूमिका है। अट्ठारहवें अध्याय में प्रह्लाद की कथा, उन्नीसवें में बलि की कथा एवं विप्रमहिमा, और बीसवें में येाग की सात भूमिकायें लिखी गई हैं। केशवदास ने अपने अन्तिम (इक्कीसवें) अध्याय में सीधा सादा कामकाजी येाग कहा है। यह अध्याय भी बहुत ही उत्तम है। उदाहरण स्वरूप एक छन्द नीचे लिखा जाता है:—

'निसि बासर बस्तु बिचारहि कै
मुख सांचुहिये करुना धनु है।
अघ निग्रह संग्रह धर्म कथानि
परिग्रह साधुनि को गनु है॥
कहि केशव भीतर जेाग जगै
अति बाहेर भेागनि सेां तनु है।
मन हाथ सदा जिनके तिनको
बनही घरु है घर ही बनु है॥'

विज्ञानगीता के प्रथमार्द्ध में रूपक द्वारा मनुष्य के मेाह और विवेक का युद्ध दिखाया गया है। इसमें विशेष गुण बहुत कम है और इसका मुख्यांश या तेा शिथिल काव्य है या साधारण। उत्तम काव्य तीनही अध्यायों में पाया जाता है। इस ग्रन्थ का द्वितीयार्द्ध प्रकाश रूप से ज्ञान और वैराग्य का कथन करता है। केशवदास ने संस्कृत के ज्ञान-सम्बन्धी मुख्य मुख्य विभेदों को सूक्ष्मतया कहा है परन्तु पूर्णतया किसी विभाग का वर्णन नहीं किया। इसमें साफ़ साफ़ और क्रमबद्ध रीति से न तेा गीता का ज्ञान कहा गया है न येागवाशिष्ठ का। कहना पड़ता है कि श्रीमद् भगवद्गीता पढ़ने में जेा अकथनीय अलैकिक आनन्द प्राप्त हेाता है उसका चतुर्थांश आनन्द विज्ञानगीता से नहीं मिलता। यह कहा जा सकता है कि इस विज्ञानगीता से संस्कृत से अनभिज्ञ पाठकों को लाभ हेा सकता है, परन्तु केशवदास ऐसे पंडित को ज्ञान का अधिक क्रमबद्ध वर्णन करना चाहिए था। इनकी गीता पढ़ने से यही ध्यान में आता है कि व्यासदेव और केशवदास की कवित्त्व शक्ति में पृथ्वी और आकाश का अन्तर है। यदि केशवदास ने केवल विज्ञानगीता बनाई हेाती तेा हम उन्हें दूसरे दर्जे का कवि कहते। भगवद्गीता पढ़ने में ज्ञान के साथ साथ काव्य का भी पूरा आनन्द आता है। फिर भी इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि विज्ञानगीता में सदेाष काव्य नहीं है।

(४ ग) कविप्रिया। यह ग्रन्थ संवत् १६५८ वि० कार्तिक शुक्ल ५ बुधबार को समाप्त हुआ है। इसमें केशवदास ने अपने कुल और राज-कुल का पूरा वर्णन दिया है और यह केशवदास का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ माना जाता है। हमको इसमें निश्चय नहीं है कि इनकी रामचन्द्रिका इनके सब ग्रन्थों में उत्तम है कि कविप्रिया। ये दोनेांही ग्रन्थ उत्तम हैं। कविप्रिया में सत्रह अध्याय हैं। इसमें केशवदास ने कविता के दूषण, कवियों के गुण-दोष, कविता की जाँच, अलंकार, बारहमासा, नखशिख, और चित्र काव्य लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम अध्याय में राजवंश और द्वितीय में कविवंश कहा गया है। तृतीय अध्याय में दोषों का वर्णन है। इन्होंने लिखा है कि—

'बिप्र न नेगी कीजिये मूढ़ न कीजै मित्त।
प्रभु न कृतघ्नी सेइये दूषण सहित कवित्त॥'

केशवदास ने पाँच मुख्य और बारह अमुख्य दूषण कहे हैं। पाँच मुख्य दूषणों में अन्ध (पन्थ-बिरोधी), बधिर (शब्दबिरोधी), पंगु (छन्द-बिरोधी), नग्न (अलंकारहीन) और मृतक (अर्थहीन) की गणना है। द्वादश साधारण दोष ये हैं:—

अगण, हीनरस, जतिभंग, व्यर्थ (अर्थविरोध) अपार्थ (मतवालों अथवा बच्चों की सी निरर्थक बात), कर्णकटु, पुनरुक्ति, देशविरुद्ध, काल-विरुद्ध, लोकविरुद्ध, न्यायविरुद्ध, और आगम-विरुद्ध।

चतुर्थ अध्याय में केशवदास ने काव्य को तीन प्रकार का कहा है अर्थात् उत्तम, मध्यम, और अधम। उन्होंने देव काव्य को उत्तम, मानुषी को मध्यम और सदोष को अधम कहा है।

केशव ने सत्य-भाषिणी, असत्य-भाषिणी, और सत्यासत्य-भाषिणी तीन प्रकार की कविमति स्थिर की है। फिर इन्होंने कविता के नियम कहे हैं। पंचम अध्याय से अलंकारों का वर्णन प्रारम्भ हुआ है। इन्होंने अलंकारों के सामान्य और विशिष्ट दो भेद किये हैं। सामान्य अलंकारों में इन्होंने रंग, चित्र, गति और राजश्री का वर्णन किया है। इन सामान्य अलंकारों में एवं समस्त कविप्रिया में इन्होंने अपना आचार्य्यत्व प्रकट किया है। सफ़ेद बालों के तीन छन्द बहुतही उत्तम कहे हैं। छठे अध्याय में सीता के मुख की प्रशंसा में निम्नलिखित तीन भावों में घटित होनेवाला छन्द बहुत ही उत्तम कहा है।

"हरि कर मंडन, सकल दुख खंडन,
मुकुर महि मंडल को कहत अखंड मति।
परम सुबास, पुनि पीउष निवास,
परिपूरन प्रकास केसो दास भू अकास गति॥
बदन मदन कैसो श्रीजू को सदन जहि
सोदर सुभोदर दिनेसजू को मीत अति।
सीता जू के मुख सुषमा की उपमा को
कहि कोमल न कमल अमल न रजनिपति॥'

सातवें अध्याय में समुद्र, नगर, सूर्य्योदय, षट् ऋतु आदि के बहुत से उत्तम वर्णन हैं। आठवें में राजश्री का उत्तम वर्णन किया है। इससे जान पड़ता है कि ये राजाओं के बीच में रहे हैं।

नवें अध्याय से विशिष्ट अलंकारों का प्रारम्भ होता है। प्रायः सभी कवियों ने अलंकारों के कथन में इसी विशिष्ट विभाग का वर्णन किया है। केशवदास ने अलंकारों में अन्य कवियों की भाँति क्रम नहीं कहा है न सब अलंकार ही कहे हैं। तेरहवें अध्याय पर्य्यन्त अलंकारों का वर्णन किया है। इसमें बहुत स्थानों में एक एक अलंकार को बहुत बढ़ाकर कहा है और उसके बदले कितनेही अलंकारों का नाम ही नहीं लिया। बहुत से अलंकारों में अन्य कवियों के कहे हुए नामों के प्रतिकूल नाम इन्होंने कहे हैं। दशम अध्याय में आक्षेपालंकार में बारह-मासा भी कहा है। पन्द्रहवें अध्याय में नखशिख और सोलहवें में यमक है। इनका नखशिख बहुत विशद बना है। सत्रहवें अध्याय में केशवदास ने चित्र काव्य को लिखा है और उसको बड़े परिश्रम से बनाया है। कविप्रिया केशवदास का बहुत उत्तम ग्रन्थ है और उन्होंने उसे वैसाही माना भी है। उन्होंने कहा है कि:—

'सगुन पदारथ अरथयुत सुबरन मय सुभ साज।
कंठमाल ज्यों कविप्रिया कंठ करौ कविराज॥
सुबरन जटित पदारथनि भूषन भूषित मानि।
कविप्रिया है कविप्रिया कवि संजीवनि जानि॥

केशवदास ने अपने किसी और ग्रन्थ की इतनी प्रशंसा नहीं की। जैसे रसिकप्रिया वास्तव में रसिकप्रिया है वैसे ही कविप्रिया भी सच मुच कवि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिया है। केशवदास ने अपना पूरा आचार्य्यत्व इस ग्रन्थ में ख़तम कर दिया है। इसको पढ़ने से मनुष्य कविता का बहुत कुछ सामान जान सकता है। कविता के जिज्ञासुओं को काव्य सिखाने में यह ग्रन्थ बड़ा उपकारी है। यह ग्रन्थ इन्द्रजीत की गणिका प्रवीनराय के नाम पर बना है। इसमें कवि ने शृंगार रस को बहुत कम रक्खा है और बहुत से विषयों पर कविता की है। फिर भी इसे प्रधानतः अलंकारों का ग्रन्थ कहना चाहिए क्योंकि अलंकारों के अतिरिक्त इसमें गुण दोष, षट ऋतु और नखशिख के सिवा कुछ नहीं कहा है। फिर षट ऋतु और नखशिख भी एक प्रकार से अलंकार ही हैं। अतः केवल गुण दोष का कथन रह गया। सो सदोष कविता सालंकार होने पर भी निन्द्य मानी जायगी। यह ग्रन्थ कुल मिलाकर बहुत उत्तम बना है और इसीसे केशवदास को भाषाकाव्य में आचार्य्य की पदवी मिली है।

(४ घ) रामचन्द्रिका। इस ग्रन्थ को केशवदास ने सन् १६०२ ई० (सं० १६५८ वि० कार्तिक शुदि १२ बुधवार) में समाप्त किया। इसे इन्द्रजीतसिंह ने बनवाया था। कविप्रिया की भाँति रामचन्द्रिका भी केशवदास का बड़ा ही उत्तम ग्रन्थ है। इसमें इन्होंने रामचन्द्र की कथा कही है। यह ग्रन्थ उनतालीस अध्यायों में समाप्त हुआ है। केशवदास ने रामचन्द्र की उत्पत्ति के पीछे से कथा का आरम्भ किया है। इन्होंने राम की बाल-लीला बिलकुल नहीं कही। केशवदास को वाल्मीकिजी ने स्वप्न में राम-यश गान करने का उपदेश दिया उसी समय से इन्होंने रामचन्द्र को इष्टदेव माना। विश्वामित्र के अयोध्या-प्रवेश के साथ केशवदास ने अयोध्या का बड़ा ही उत्तम वर्णन किया है। इसको पढ़ने से जान पड़ता है कि राजाओं की सभा कैसी होती है। तुलसीदास ने महाराजा और साधारण व्यक्ति की सभा में बहुत कम अन्तर रक्खा है परन्तु केशवदास नित्य सभाएं देखते थे सो वह इसमें कैसे ग़लती करते? इन्होंने विमति से सीता स्वयंवर में एक शंका उठाई है परन्तु उसका कोई उत्तर नहीं दिया।

'रावण बाण महाबली जानत सब संसार।
जो दोऊ धनु कर्षि हैं ताको कहा विचार॥

यह शंका उठनी न चाहिए थी क्योंकि जो व्यक्ति पहले धनुष चढ़ाता, जनक के प्रणानुसार जानकी जी उसी को ब्याह दी जातीं और प्रण पूर्ण हो जाता। फिर उसके पीछे चाहे सैकड़ों मनुष्य धनुष चढ़ाया करते परन्तु उनसे और राजा जनक के प्रण से कोई सम्बन्ध न होता। रावण के धनुष न उठा सकने पर उसका बाण से यह बहाना करना कि "मैं तो इसे आज़मा चुका और पल भर में उठा लूँगा, अब कुछ आप भी तो उठा कर देखिए" बड़ा ही उत्तम है। वैसेही बाण का बहाना भी देखने योग्य है। केशवदास कथा के अमुख्य वर्णनों के लिए न ठहर कर तुरन्त मुख्य कथा का वर्णन करने लगते हैं; यह इनमें बड़ा गुण है। इन्होंने ज्योंनार में गाली बड़ीही उत्तम गवाई है, और परशुराम व राम के झगड़े के समय महादेव को बुलाकर बहुत अच्छा निबटेरा करा दिया और जब भरत राम को वन से फेरने गये थे उस समय भरत को भागीरथीजी से समझवा दिया। यह भी झगड़ा मिटाने का अच्छा ढँग है, यद्यपि इस स्थान पर तुलसीदासजी का काव्य अपूर्व आनन्द देता है। केशवदास ने विभीषण की कठोर वार्त्ता पर रावण को क्रोधित कराया है। जब अंगद रावण से बसीठी करने गया था उस समय रावण ने उसे मिला लेने का पूरा प्रयत्न किया; रावण के योद्धाओं का बड़ा उत्तम परिचय दिया गया है; जब रावण ने कुम्भकर्ण से कठोर बात कही उस समय मन्दोदरी ने अपने तीनों लड़कों को पुकार कर कहा कि तुम्हारे पिता भैयों से भिड़ते हैं। तुम उन्हें क्यों नहीं समझाते? इसके पीछे उसने कुम्भकर्ण की बड़ी प्रशंसा की; मन्दोदरी का बानरों से डर कर चित्रशाला में भागना और अंगद द्वारा उसकी दुर्गति होनी और तब रावण का यज्ञ छोड़ देना परम स्वाभाविक है; इन सब वर्णनों की उत्तमता देख कर केशवदास की अपूर्व कवित्वशक्ति की जितनी बड़ाई की जाय थोड़ी है। सीता का अग्नि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अङ्क में रामचन्द्र के पास जाना भी ख़ूब उत्तम है। रामचन्द्र ने बानरों इत्यादि का वशिष्ठ से परिचय कराने में भी बहुत उत्तम रीति पर अनुगमन किया है। हनुमान के विषय में रामचन्द्र ने कहा कि—

'सीता पाई रिपु हत्यो देख्यो तुम अरु गेहु।
रामायण जय सिद्धि को कपि शिर टीका देहु॥'

इसके पीछे रामचन्द्रिका की कविता कुछ शिथिल पड़ गई है। रामचन्द्र ने दो अध्यायों में राजश्री की निन्दा की है। इसके पीछे राम का राज्याभिषेक हुआ। ऐसे समय राजश्री की निन्दा अयुक्त जान पड़ती है। अभिषेक में केशवदास ने राजसी ठाट अच्छा दिखाया है। अभिषेक के पीछे अंगद ने रामचन्द्र से कहा कि अब मैं रघुवंशियों से लड़कर अपने बाप का बदला लेना चाहता हूँ। रामचन्द्र ने कहा—

'कोऊ मेरे वंश में तोसों करि है युद्ध।
तब तेरो मन होयगो अंगद मोसों शुद्ध॥'

फिर जब रामचन्द्र ने लव-कुश को युद्धोन्मुख देखा तब अंगद से कहा—

'अंगद जीति इन्हें गहि ल्यावो।
कै अपने बल मारि भगावो॥
बेगि बुझावहु चित्त चिता को।
आजु तिलोदक देहु पिता को॥'

अंगद की मनोकामना भी बड़ी ही स्वाभाविक थी। इसी प्रकार गुरुगोविन्दसिंह को पितृ-हन्ता समझ कर उनके दो मुसल्मान विश्वास-पात्र सैनिकों ने उन पर प्रहार किया था।

केशवदासजी ने भी गोसाईंजी की भाँति भरत का शील गुण और उनका पद बहुत ऊँचा दिखाया है। चौगान का वर्णन अच्छा है। केशवदास ने उरछा के नौचौकिया महल के मुक़ाबिले में रामचन्द्र के यहाँ पाँच चौकें लिखी हैं। राज-प्रासाद के वर्णन में भी इन्होंने दिखा दिया है कि कवि ऐसे ऐसे पदार्थ देखता रहा है। केशव की कविता में राम के राजसी गुण ख़ूब प्रकट हुए हैं। जल-केलि, उपवन आदि का वर्णन एवं दूत की कटु-बात को साफ़ साफ़ न कहलाना अच्छा हुआ है। श्वान की फ़रियाद में मठपतियों की निन्दा है। सीता-त्याग से कथा और कविता फिर बहुत उत्तम हो गई है। इसके पीछे लवणासुर का वध कहा गया है। वह ब्राह्मणों को विकल करता था। शत्रुघ्न ने उसे युद्ध घोषणा के प्रथम अन्तिम सन्देश यह कहला भेजा था कि—

'महाराज श्रीराम हैं क्रुद्ध तोसों।
तजौ देश कोकै सजौ युद्ध मोसों॥'

जब लव कुश लक्ष्मण तक को जीत चुके और हनुमान्, भरत के साथ युद्ध को गये उस समय उन्होंने बड़ा ही स्वाभाविक आश्चर्य्य प्रकट किया कि—

'नाम वरण लघु वेष लघु कहत रीझि हनुमन्त।
इतो बड़ो विक्रम कियो जीत्यो समर अनन्त॥'

यहाँ शत्रु पर भी हनुमान् का रीझना बड़ा ही स्वाभाविक है क्योंकि सच्चा शूर ही सच्चे शूर के विक्रम पर रीझ सकता है और वह अवश्य रीझेगा उसका चाहे जितना बड़ा अपकार हो गया हो।

शायद बिना विभीषण की लेथाड़बाज़ी के कोई रामायण पूर्ण नहीं कही जा सकती, परन्तु खेद कि हमारे यहाँ केशव के सिवा संस्कृत तक के किसी कवि को यह न सूझा कि विभीषण ने कोई बुरा काम भी किया या नहीं। सब कवियों ने विभीषण की इसी कारण बड़ी भारी प्रशंसा की कि वह रामचन्द्र का भक्त था, परन्तु शोक कि उसके प्रचंड दूषण पर किसी ने भी ध्यान न दिया। सत्य है। यदि कोई उसके राक्षसी कर्म्म की तीव्र आलोचना करता तो शायद थानेश्वर और पानीपत पर पृथ्वीराज और राणा सांगा को अपने अनुयायियों के उसी राक्षसी व्यवहार के कारण पराजय का असह्य और घातक दुःख न उठाना पड़ता। उस समय आर्य्यों और अनार्य्यों का घोर युद्ध होने को था और यह क्षुद्र हृदय विभीषण रावण के थोड़े से अनादर से न केवल रावण को वरन् सब राक्षसों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पक्ष को छोड़ कर उन्हीं के मूलोच्छेदन में प्रवृत्त हुआ और फिर अपने सगे भाई और भतीजों को अपने सम्मुख मरवा डालने में भी इस राक्षस को तनिक भी पश्चात्ताप न आया और यह बराबर उनके मारे जाने की तरकीबें रामचन्द्र को बताता गया। केशवदास राजाओं में रहते थे और प्रत्येक मनुष्य के स्वदेश और स्वकुल रक्षणवाले कर्त्तव्य एवं धर्म्म को खूब समझते थे अतः उन्होंने लव द्वारा विभीषण का इन शब्दों से उपहास कराया:—

'तब दौरि कै बाण विभीषण लीन्हों।
लव ताहि बिलोकत ही हँसि दीन्हों॥

लव—आउ बिभीषण तू रण दूषण।
एक तुही कुल को कुल भूषण॥
जूझि जुरे जे भले भये जी के।
शत्रुहि आय मिले तुम नीके॥
देव बधू जबही हरि ल्यायो।
क्यों तबहीं तजि ताहि न आयो॥
यों अपने जिय के उर आये।
छुद्र सबै कुल छिद्र बताये॥

जेठो भैया अन्नदा राजा पिता समान।
ताकी तैं पतिनी करी पतिनी मातु समान॥
को जानै कै बार तू कही न ह्वै है माय।
सो तैंने पतिनी करी सुनु पापिन के राय॥

सिगरे जग माँझ हँसावत है।
रघुबंसिन पाप नसावत है॥
धिक तेा कहँ तू अजहूँ जु जियै।
खल जाय हलाहल क्यों न पियै?
कछु है अब तेा कहँ लाज हिये।
कहि कौन विचार हथ्यार लिये?
अब जाय कै रोष कि आगि जरौ।
गरु बाँधि कै सागर बूड़ि मरौ।

कहा कहौं हौं भरत को जानत है सब कोय।
तेा सों पापी संग में क्यों न पराजय होय॥

अन्त में राम ने आठों पुत्रों और भतीजों में अपना सब राज्य बाँटकर उनको नीति का उपदेश दिया। रामचन्द्र की स्वर्ग-यात्रा का केशवदास ने वर्णन नहीं किया। रामचन्द्रिका वास्तव में महा-काव्य है और उसके लक्षण में भी आती है।

केशवदास ने पात्रों के शील गुण का भी अच्छा वर्णन किया है। भरत को बिलकुल दब्बू भाई नहीं दिखलाया है वरन् जैसे सब छोटों में वे बड़े थे वैसे ही उनका महत्त्व भी अच्छा दिखाया गया है। जब राम ने भरत से सीता छोड़ने को कहा तब उन्होंने स्वयं रामचन्द्र से यह कहा:—

'वै माता वैसे पिता तुम सेा भैया पाय।
भरत भये अपवाद को भाजन भूतल आय॥'

जब लव-कुश ने उनके दो भाइयों को मार डाला तब भरत ने कहा कि—

'बालक रावण के न सहायक।
ना लवणासुर के हित लायक॥
हैं निज पातक वृक्षन के फल।
मोहत हैं रघुबंसिन के दल॥
शत्रुघ्न तज्यो तन सोदर लाजनि।
पूत भये तजि पाप समाजनि॥
हम हूँ तेहि तीरथ जाय मरैंगे।
सत संगति दोष अशेष हरैंगे॥

रामचन्द्रिका भाषा काव्य का शृंगार है। ऐसा रोचक ग्रन्थ भाषा-साहित्य में सिवा तुलसीकृत रामायण के एक भी नहीं है। इस ग्रन्थ में गणना में कविप्रिया से अधिक उत्तम छन्द नहीं हैं परन्तु इसमें एक उत्तम कथा भी वर्णित है इसी कारण इसकी रोचकता बहुत बढ़ गई है। इसे एक बार उठा लेने से, रामचन्द्र के लंका जीत कर अयोध्या लौटने तक, बिना पढ़े पुस्तक रखने को चित्त ही नहीं चाहता। इस ग्रन्थ में केशवदास छन्द इतनी शीघ्रता से बदलते गये हैं कि छन्द कहीं अरुचिकर नहीं होते।

भाषा-साहित्य में कथा प्रसंग वर्णन करने की छन्दानुसार दो प्रणालियाँ हैं, एक तेा गोसाईं जी की भाँति दोहा चौपायोंवाली और दूसरी केशव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दास की भाँति विविध छन्दोंवाली। प्रथम प्रकार में काव्य बहुत उत्तम न होने पर वर्णन रोचक नहीं रहता, परन्तु द्वितीय प्रथा में साहित्य की विशेष उत्तमता न होने पर भी कथा उतनी शीघ्र अरुचि-कर नहीं होती। यह द्वितीय प्रथा केशवदास ने इसी ग्रन्थ द्वारा चलाई है।

केशवदास भाषा-कविता के प्रायः अरुणोदय काल में हुए हैं अतः इन्होंने एक रीति ग्रन्थ भी बनाया है। अब रीति ग्रन्थ बनाने की भी परिपाटी सी चल पड़ी है।

कथा वर्णन करने की भी दो प्रथायें हैं, एक तो संस्कृत के कवियों की भाँति और दूसरी गोस्वामी तुलसीदासजी की भाँति। इन दोनों प्रथाओं का अन्तर हम एक उदाहरण द्वारा दिखलावेंगे। संस्कृत के कवि यदि भुज का वर्णन करेंगे तो वे उसकी लम्बाई का, बजुल्ले का, कलाई की गठन का और अँगूठियों का वर्णन करके उसे छोड़ देंगे, परन्तु यदि गोसाईंजी भुज का वर्णन करेंगे तो शायद इन बातों का कथन न हो परन्तु बाहु मूल से लगाकर उँगलियों के नखों तक का बिना उपमा और रूपकों आदि के सीधा सादा रूप एक एक रोम पर्य्यन्त दिखा देंगे। संस्कृत के कवि मुख्य कथा को छोड़ कर रूपक उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं, आदि पर विशेष ध्यान देंगे, सूर्य्योदय, गंगा की तरंगों, समुद्र आदि पर अधिक रुझान रक्खेंगे और नायकों के काव्य सम्बन्धी चोटीले भाव सुझानेवाले छोटे छोटे कर्म्मों और भावों को कह कर उसके सहारे काव्य की छटा दिखावेंगे और सूक्ष्म रीति पर कथा का भी डोर लिये रहेंगे, परन्तु गोस्वामीजी इन बातों पर विशेष ध्यान न देंगे किन्तु मुख्य कथा को सांगोपांग बड़े विस्तारपूर्वक कहेंगे। यदि नैषध को पढ़िए तो यह भूल जाता है कि हम कोई कथा पढ़ रहे हैं और यह जान पड़ता है कि यह कोरा काव्य है, परन्तु तुलसीदास में यह कहीं नहीं भूलता कि हम कथा पढ़ रहे हैं। जिस प्रथा को हम तुलसीदासवाली अथवा भाषा की प्रथा कह रहे हैं वह वास्तव में महर्षि वाल्मीकि और वेदव्यास की प्रथा है। अधिक संक्षेपतः हम इन दोनों प्रथाओं को काव्य-सम्बन्धी प्रथा और कथा-सम्बन्धी प्रथा कहेंगे। हमारे केशव दासजी ने इसी काव्य-प्रथा में रामचन्द्रिका कही है। यह दोनों प्रथायें भाषा में भी स्थिर हैं।

(४ ङ) केशवदास का बनाया हुआ वीरसिंह देव पर भी एक ग्रन्थ सुना जाता है परन्तु अभी वह देखने में नहीं आया है।

अब हम केशवदास की कविता के गुण-दोष यथाशक्ति दिखाने का प्रयत्न करते हैं।

(५ क) केशवदासजी गोस्वामी तुलसीदासजी के समकालीन कवि थे। उस समय तक भाषा-साहित्य स्थिर नहीं हुआ था। इसी कारण पण्डित-समाज में इसकी कविता बहुत आदर की दृष्टि से नहीं देखी जाती थी। अतः ये दोनों कवि भाषा में काव्य करने में कुछ लज्जा सी बोध करते थे—गोस्वामीजी ने लिखा है कि—

'भाषा भनित मोरि मति थोरी।
हँसिबे योग हँसे नहिँ खोरी॥'

इसी प्रकार केशवदासजी ने कहा है कि—

'उपज्यो तेहि कुल मन्दमति शठ कवि केशवदास।
रामचन्द्र की चन्द्रिका भाषा करी प्रकास॥
भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषाकवि भो मन्दमति तेहि कुल केशवदास॥'

इसी भाषाकवि होने की ग्लानि के कारण इन दोनों कवियों ने यत्र तत्र श्लोक भी बनाये हैं। केशव दास की भाषा व्रज-भाषा थी परन्तु कहीं कहीं बुन्देलखंडी शब्द भी इसमें मिल गये हैं।

(५ ख) केशवदास की कविता में संस्कृत के शब्द बहुतायत से आते थे और इसी कारण इनकी कविता में कहीं कहीं श्रुति-कटु शब्द भी आ जाते थे। संस्कृत-शब्दों में मिलित वर्ण बहुतायत से होते हैं और अधिकतर ऐसेही वर्ण श्रुति-कटु समझे जाते हैं। केशवदास शब्दों की योजना में कर्ण-कटु नहीं मानते। इनके मत में जब अर्थयोजना ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो कि वह कहने में अच्छी न लगे, तब कर्ण-कटु दूषण होता है। यथा—

'कहत न नीको लागई सो कहिए कटु कर्ण।
केशवदास कवित्त में भूलि न ताको वर्ण॥
बारन बन्यो बनावतनि सुबरन बली बिसालु।
चढ़िये राज मँगाइ कै मानो राजत कालु॥'

इस उदाहरण में एक भी शब्द कर्ण-कटु नहीं है, परन्तु अर्थ में श्रुति-कटु दूषण अवश्य है।

(५ ग) इस बात के होते हुए भी केशवदास की भाषा बहुत उत्तम है और दो चार चुने चुने आचार्यों को छोड़ कर और किसी की भाषा इनसे उत्तम नहीं है। बहुत लोग समझते हैं कि इनकी कविता में ओज गुण अधिकता से है, परन्तु इनकी समस्त कविता पढ़ कर हम यही कहेंगे कि उसमें माधुर्य्य और प्रसाद गुणों की ही प्रधानता है। इनकी भाषा का उदाहरण स्वरूप एक छन्द हम नीचे देते हैं।

'शोभित मंचन की अवली गज
दन्त मई छवि उज्ज्वल छाई।
ईश मनो बसुधा मैं सुधारि
सुधाधर मंडल मंडि जुन्हाई॥
ता महँ केशवदास विराजत
राज कुमार सबै सुखदाई।
देवन सों मिलि देव सभाजनु
सीय स्वयंवर देखन आई॥'

(५ घ) केशवदास ने अपने कथावाले ग्रन्थों में छन्द बहुत शीघ्र बदले हैं। इस कारण से इनकी रामचन्द्रिका और भी सुहावनी हो गई है। अपने रीति और रस ग्रन्थों में इन्होंने प्रायः लक्षण आदि दोहों और उदाहरण सवैया अथवा दंडकों में कहे हैं। यह रीति इन्हीं की चलाई हुई है और भाषा के प्रायः सभी कवियों ने इनका अनुकरण किया है। केवल कथा प्रसंगवाले कवियों में से बहुतों ने गोस्वामी तुलसीदास के मार्ग पर चल कर दोहा चौपाइयों में हीं कविता की है।

(५ ङ) केशवदास ने तुकान्त में बड़ी सख़्ती नहीं रक्खी। कई स्थानों पर सवैया में दो पदों में एक प्रकार के तुकान्त रक्खे और शेष दो में बिलकुल दूसरे प्रकार के (रामचन्द्रिका अध्याय सातवाँ छन्द चौंतीसवाँ, अध्याय चौबीसवाँ, छन्द बाईसवाँ, अध्याय उनतालीसवाँ छन्द छत्तीसवाँ देखिए)। विज्ञानगीता में भी एक स्थान पर 'साधु' का दूसरा तुकान्त 'कराल' रक्खा है (पृष्ठ १९ वाँ देखिए)। इसी प्रकार कई स्थानों में किया है। इससे प्रकट होता है कि ये तुकान्त अधिक नहीं मानते थे; परन्तु शोक है कि इनके पीछे कवियों ने इस स्वच्छन्दता को स्थिर नहीं रक्खा। भाषा में तुकान्तहीन छन्द लिखने में कोई दूषण नहीं परन्तु अभी इसे बहुत कम लोग मानते हैं।

(५ च) केशवदास को अनुप्रास का इष्ट न था जैसा कि इनके बनाये हुए पूर्वोक्त छन्दों से प्रकट होगा, परन्तु कभी कभी एकाध अनुप्रास पूर्ण छन्द भी ये लिख देते थे—यथा:—

'सब जाति फटी दुख की दुपटी
कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटीहू घटी
जग जीव जतीन की छूटी तटी॥
अघ ओघ की बेरी कटी बिकटी
निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुँ ओरन नाचत मुक्ति नटी
गुण धूर जटी जटी पंचबटी॥

इस छन्द को इन्होंने 'एषा पंचबटी' वाला श्लोक देख कर बना दिया। केशवदास ने और भी बहुत स्थानों में संस्कृत-कवियों के भाव अपनी कविता में बहुतायत से कहे हैं।

(६ क) केशवदास की कविता में अलंकार बहुतायत से आते थे परन्तु पूर्ण रसों के उदाहरण इनकी, या बहुत से कवियों की कविता में अधिकता से नहीं पाये जाते। इन्होंने परिसंख्यायें बहुत स्थान पर लिखी हैं ('मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय' इत्यादि)। रामराज का वर्णन विशेषतया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिसंख्याओं में हुआ है। उपमायें, रूपक, और दृष्टान्त भी अधिकता से इनके काव्य में पाये जाते हैं। विज्ञानगीता में रसों और अलंकारों के उदाहरण बहुत कम आये हैं।

(६ ख) केशवदास की कविता में उत्तमोत्तम छन्दों का बाहुल्य है। प्रायः प्रत्येक विषय पर इन्होंने उत्तम कविता की है और हर विषय पर वह सराहनीय है। केशवदास को भाषा का मिल्टन कहना चाहिए। इन दोनों मनुष्यों का पाण्डित्य और काव्य अत्यन्त सराहनीय है परन्तु शेक्सपियर और तुलसीदास एवं सूरदास की बराबर इनकी कविता नहीं पहुँचती। जहाँ केशवदास ने प्रत्येक विषय पर उत्तम काव्य किया है वहाँ यह भी कहना पड़ता है कि इनकी कविता किसी स्थान पर ऐसी नहीं है कि वैसी रचना कोई भी दूसरा कवि न बना सका हो। बिना तन्मय होने के अद्वितीय काव्य कोई भी नहीं बना सकता। हमारे कवियों में सूरदास, तुलसीदास, विहारीलाल, भूषण, आदि एक एक विषय में आसक्त थे अतः उस उस विषय पर उन्होंने ऐसी उत्तम सच्ची कविता की है जैसी किसी भाषा का कोई भी कवि उस विषय पर नहीं बना सका। केशवदास किसी विषय में तल्लीन होकर आत्म-विस्मरण नहीं कर सकते थे, अतः इनकी कविता ऐसी कहीं नहीं हुई है कि मानो कवि बिमल बिमल कर कह रहा हो। ये महाशय बड़े पण्डित और बुद्धिमान् थे परन्तु स्वभावतः कवि न थे। तो भी अद्वितीय न होने पर भी इनकी कविता बहुत ही ऊँचे दरजे की है और हम सूरदास, तुलसीदास, भूषण, विहारी और देव के अतिरिक्त इनको किसी से नीचा पद नहीं दे सकते।

(६ ग) केशवदास ने बहुत बातों के बड़ेही हृदयग्राही वर्णन किये हैं। इनमें से निम्न लिखित विषयों के वर्णन विशेषतया सराहनीय हैं :—

अयोध्या, स्वयंवर, सूर्य्योदय, राम-विवाह, परशुराम और राम का संवाद, भरत की सेना, वर्षा, लंकादाह, उपवन, रामाश्वमेध की चमू (रामचन्द्रिका में) और वर्षा और शरद् (विज्ञानगीता में)।

केशवदास सदैव महाराजों में रहे, अतः उन्होंने बड़े आदमियों की बातचीत और उनके साज सामान का बहुतही यथायोग्य वर्णन किया है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित वार्तालाप देखिए :—

विश्वामित्र दशरथ, विश्वामित्र जनक, सीता रावण (इसमें स्त्रियों के ऊँचे पद का पूरा विचार रहा है), तथा सीता हनुमान्। केशवदास ने केवल रावणाङ्गद संवाद ऐसा कराया है जैसा राजाओं की सभाओं में होना असम्भव है। इस विषय में वाल्मीकिजी की कविता दर्शनीय है। केशवदासजी ऋषियों और राजाओं की बातचीत में ऋषियों के मान पर सदैव ध्यान रखते थे।

(७) इन्होंने कहीं कहीं अनुपयुक्त कथन भी कर दिये हैं।

(७ क) रावण का दूत रामचन्द्र से कुछ कहने के लिए उनके पास भेजा गया था। उसने लौट कर रावण से रामचन्द्र का वर्णन निम्न दंडक द्वारा किया :—

'भूतल के इन्द्र भूमि बैठे हुते रामचन्द्र
मारिच कनक मृगछालहि बिछाये जू।
कुम्भ हर कुम्भकर्ण नासा हर गोद शीस
चरण अकम्प अच्छ अरि उर लाये जू॥
देवान्तक नरान्तक त्योंहीं मुसक्यात वीर
विभीषण बैन तन कान रुख बाये जू।
मेघनाद मकराक्ष महोदर प्राण हर
बाण त्यों बिलोकत परम सुख पाये जू॥'

यह छन्द सुन कर रावण को कुछ भी क्रोध नहीं आया। ऐसा कटु वाक्य केशवदास भलेही कहें परन्तु स्वयं रावण का दूत रावण ही से ऐसा कह कर अपना प्राण गँवाये बिना कभी न बचता। ऐसी ऐसी बातें हमारे कवियों ने भक्ति-भाव के कारण रावण को ज़लील बनाने के निमित्त कही हैं परन्तु उन्होंने नहीं सोचा कि ये बातें सम्भव भी हैं या नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७ ख) केशवदास ने जहाँ तक हो सका है सनाढ्यों की बड़ी बड़ाई की है। ये बातें उत्तम कवि के मुख से शोभा नहीं पातीं।

(७ ग) केशवदास ने सीता के छोड़े जाने के कुछ ही पहले जो सीता और राम का वार्तालाप कराया है उसमें काल-विरुद्ध दूषण है। वह ऐसीही बातचीत है जैसी आजकल की यहाँ की स्त्रियाँ अपने पतियों से करती हैं, परन्तु उस समय स्त्रियों का पद यहाँ भी वैसाही था जैसा आजकल योरप में है। इस विषय में भवभूतिकृत उत्तररामचरित्र देखने योग्य है।

(७ घ) केशवदास ने कविप्रिया में पृथ्वी को त्रिकोण कहा है (छठवाँ अध्याय)। वास्तव में यह आकार हिन्द का है जैसा कि सब जानते हैं और पृथ्वी गोल है। इससे अनुमान होता है कि केशवदास ज्योतिष अच्छी तरह नहीं जानते थे।

(७ ङ) महर्षि विश्वामित्र का राक्षसों द्वारा यज्ञ करने में पीड़ित होना एक आश्चर्य्य की बात है। यह सन्देह उठता है कि ऋषि लोग तो शाप से ही अपना काम चला लेते थे तब, विश्वामित्र शाप से काम न लेकर अयोध्या क्यों दौड़े आये? इसका उत्तर वाल्मीकिजी ने दे दिया है। विश्वामित्र ने कई बार क्रोध करके अपनी तपस्या का फल खो दिया अतः उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वे क्रोध न करेंगे। फिर बिना क्रोध के शाप नहीं हो सकता इस कारण वे शाप भी नहीं दे सकते थे। गोस्वामी तुलसीदास इस बात को बचा गये हैं और विश्वामित्र को क्रोध नहीं कराया परन्तु केशवदास ने कह दिया कि—

'जान्यो विश्वामित्र के क्रोध बस्यो उर आय।
राजा दशरथ सों कह्यो बचन बशिष्ठ बनाय॥'

(८ क) आज कल हमारे यहाँ तीर्थस्नान और प्रतिमा-पूजन बहुत प्रचलित हैं परन्तु केशवदास इन दोनों बातों के प्रतिकूल थे। इन्होंने गोदावरी के विषय में लिखा है कि—

'रीति मनों अविवेक कि थापी।
साधुन की गति पावत पापी॥'

इन्होंने रामचन्द्रिका में गंगासागर से सत्संग को बड़ा बतलाया है, और विज्ञानगीता में लिखा है कि—

'चित्त न तजत बिकार न्हात यद्यपि नर गंगा॥'

और इसी ग्रन्थ में कहा है कि प्रतिमा-पूजन शूद्र को करना चाहिए। इन्होंने मठपतियों की इतनी निन्दा की है कि उनके छूने को भी पाप बतलाया है। केशवदास ने असली देव की व्याख्या रामचन्द्रिका के पच्चीसवें अध्याय में रामचन्द्र से कराई है।

'राम रमापति देव नहिँ रंग न रूप न भेव।
देव कहत ऋषि कौन को सिखऊँ जाकी सेव?॥
सत चित प्रकाश प्रभेव। तेहि वेद मानत देव॥
तेहि पूजि ऋषि रुचिमंडि। सब प्राकृतन को छंडि॥'

इसी प्रकार विज्ञानगीता के पन्द्रहवें अध्याय में यह लिखा है:—

'अजन्मु है अमर्नु है। अशेष अन्तु सर्नु है॥
अनादि अन्त हीनु है। जु नित्य ही नवीनु है॥
अरूप है अमेय है। अमाप है अमेय है॥
निरीह निर्विकार है। सुमध्य अध्यहार है॥
अकृत्य है अखंडि है। अशेष जीव मंडि है॥
समस्त शक्तियुक्त है। सुदेव देव मुक्त है॥
ताकी पूजा करहु ऋषि कृत्रिम देवन छंडि।
मनसा वाचा कर्मना निपट कपट को खंडि॥'

इसी अध्याय में इन्होंने कहा है कि बासना छोड़ कर प्राणायाम साधना अच्छा है। इन कथनों से प्रकट है कि केशवदास भी सूरदास की भाँति केवल एक परमेश्वर को मानते थे और शेष देवताओं को कृत्रिम समझते थे।

बासना छोड़ना और प्राणायाम साधना गीता का आशय है। विज्ञानगीता का उदाहरण स्वरूप जो छन्द ऊपर कहा गया है वह भी गीता के आशय पर है और उसी के आशय पर विज्ञानगीतावाला जीवन मुक्त का निम्न लक्षण भी है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'लोक करे सुख दुःखनि कै जनि
राग बिरागनि या महँ आनै।
डारै उपारि समूल अहंतरु
कंचन कांच न जो पहिँचानै॥
बालक ज्यों भवै भूतल में
भव आपुन से जड़ जंगम जानै।
केशव वेद पुरान प्रमान
तिन्हें सब जीवन मुक्त बखानै॥'

इन्होंने विज्ञानगीता के निम्न दोहे में अद्वैत मत का बड़ा ही हृदयग्राही उदाहरण दिया है :—

'देव अरूप अमेय है कहे निरीह प्रकाश।
सर्व जीव मंडित कहौ कैसे केशवदास?॥
ज्यों अकाश घट घटनि में पूरण लीन न होय।
यों पूरण संदेह में रहे कहे मुनि लोय॥'

केशवदास कहते हैं कि मनुष्य नित्य प्रति लौट लौट कर वही कर्म करता है परन्तु आश्चर्य्य कि वह ऊबता नहीं। संसार और स्वर्ग नरक निम्नानुसार हैं :—

'जोही जानो कर्म सब सबै जगत के कन्त।
आदि सरस मध्यम बिरस अति नीरस है अन्त॥
जोई करै सेा भोगवै यह समुझौ नृप नाथ।
स्वर्ग नरक बन्धन मुकुत मानें मन की गाथ॥'

(८ ख) इस प्रकार से गूढ़ ज्ञान कह कर इन्होंने साधारण मनुष्यों के लिए मोटिया ज्ञान भी कहा है।

केशवदास ने दान दो प्रकार के कहे हैं, एक सुपात्रों और द्वितीय कुपात्रों का।

इनके मत में कुपात्रों के दान से पुण्य के स्थान पर दानी को घोर पाप लगता है। सुपात्रों का दान तीन प्रकार का होता है, अर्थात् सात्विक, राजस और तामस।

'पूजिये द्विज आपने कर नारि संयुत जानिये।
देव देवहि थापि कै पुनि वेद मन्त्र बखानिये॥
हाथ ले कुश गोत्र उच्चरि स्वर्ण युक्त प्रमानिये।
दान दै कछु और दीजहि दान सात्विक जानिये॥'
देत नहीं अपने कर दानै। और न हाथ जु मंगल जानै॥
दानहि देत जु आरसु आवै।
सेा वह राजस दान कहावै॥
विप्रन दीजत हीन बिधानै।
सेा वह जानहु तामस दानै॥
द्विज धाम देहिँ जेा जाय। बहु भाँति पूजि सुराय॥
कछु नाहिनै परिमान। कहिये सेा उत्तम दान॥
द्विज को जेा देत बोलाय। कहिये सेा मध्यम राय॥
गुनि जाचना मिसि दानु। अति हीनता कहँ जानु॥'

दानपात्रों के क्रम को इन्होंने यों कहा है :—

'पहिले निज वर्त्तिन देहु अवै।
फिरि पावहिँ नागर लेाग सबै॥
फिरि देहु सबै निज देसिन को।
उबरेा धन देहु बिदेसिन को॥'

दान सकाम तथा अकाम एवं दक्षिण (धर्म-निमित्त) और बाम (धर्म-विरुद्ध) भी होते हैं।

केशवदास ने भूमिदान को सर्व-श्रेष्ठ माना है। इन्होंने दानपात्र ब्राह्मणों को ही माना है और उन्हीं में न्यूनाधिक गुणों के कारण उत्तमता की न्यूनाधिकता कर दी है पर भूखों, कंगालों आदि का दान से अधिक सम्बन्ध नहीं माना है और न देशहितकारक दानों का वर्णन किया है।

(८ ग) केशवदास ने हर स्थान पर ब्राह्मणों की महिमा गाई है। उदाहरणार्थ दो एक छन्द नीचे लिखे जाते हैं।

'द्विज दोषी न विचारिये कहा पुरुष कह नारि।
राम बिरामन कीजिये बाम ताड़का तारि॥
ब्रह्म दोष के अग्नि कण सब समूल जरि जात॥
ज्यों द्विज दोष ते सन्तति नाशति
त्यों गुण भाजत लेाभ के आगे॥
बिप्र न जानहु ये जग रूपै।
जानहु ये सब विष्णु स्वरूपै॥
साचारो वा निराचारो साधुर्वाऽसाधुरेव च।
अविद्यो वा सुविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनके पूजे तुम भये अन्तर्यामी श्रीप।
तिनकी बात हमैं कहा बूझत त्रिभुवन दीप॥
'गाय द्विजराज तिय काज न पुकार लागै।
भोगवै नरक घोर चोर को अभय दानि॥'

परन्तु इसके साथही साथ केशवदास शत्रु पर आने वाली दया को भी निन्द्य समझते थे।

'दया धिक् अरि पै आवै।'

(८ ग) अन्त में सब धर्म्मों का सार केशवदास ने निम्न लिखित कलि-धर्म्म कहा है:—

जब वेद पुराण नसै हैं। जप तीरथ मध्य बसै हैं॥
उपदेश जुमारि किवारे। कलि केवल नाम उधारे॥

स्त्रियों के वास्ते केशवदास ने केवल पति-भक्ति धर्म्म कहा है।

'कुबजै कलही काहली कुटिल कृतघ्न कुरूप।
सपनेहू न तजै तरुणि कोढ़ीहू पति भूप॥
नारी तजै न आपनो सपनेहू भरतार।
पंगु गुंग बौरा बधिर अन्ध अनाथ अपार॥'

(९ क) केशवदास ने अपने सब ग्रन्थों में अन्य ग्रन्थों के छन्द बराबर लिखे हैं। इनकी कविता कुछ कठिन भी होती है, यहाँ तक कि कवियों में यह बात प्रसिद्ध है कि—

'कवि कहँ दीन न चहै बिदाई।
पूछै केशव की कविताई॥'

(९ ख) केशवदास सर्वव्यापिनी दृष्टि के कवि थे (poet of general vision)। इन्होंने रामचन्द्रिका में रामचन्द्र की ठग से भी समानता कराई है। अब इसका यह प्रयोजन नहीं है कि कवि उन्हें ठग कहता है वरन् जंगल में ऐसे लोग भी मिलते थे जो उन्हें ठग समझ बैठते थे। इसी भाँति इन्होंने हनुमान् के विषय में विभीषण से रावण को यह सलाह दिलवाई कि—

'एक रंक मारि क्यों बड़ो कलंक लीजई।
बुन्द सेंकिगो कहा महा समुद्र छीजई॥'

(९ ग) केशवदास ने एक महाकाव्य भी बनाया है क्योंकि रामचन्द्रिका वास्तव में महाकाव्य है और महाकाव्य के लक्षण में भी आती है। केशवदास के मतानुसार भी यह उत्तम काव्य है।

केशवदास भाषा-काव्य के एक बड़ेही भारी कवि थे और देवजी आदि ने भी इनको महाकवि माना है यथा 'केशव आदि महाकविन' इत्यादि। ये महाशय भाषा के भाम मम्मट के समान थे।

गणेशविहारी मिश्र,
श्यामविहारी मिश्र, तथा
शुकदेवविहारी मिश्र।

बन्धु-विरोध।

(१)

दो भ्राता दानव-वंश-जात,
थे सुन्द और उपसुन्द ख्यात।
रहते थे वे नित एक सङ्ग,
निष्कपट प्रेम होता अभङ्ग॥

(२)

पाने को वर वैभव अपार,
तप किया उन्होंने एक बार।
श्रम किये बिना जग में यथार्थ,
मिलते न सहज दुर्लभ पदार्थ॥

(३)

उन दोनों का तप देख श्रेष्ठ
सन्तुष्ट हुए अति सुरज्येष्ठ*।
हो कैसा ही भक्त-प्रपन्न,
रहते हैं सब उस पर प्रसन्न॥

(४)

बोले विधि तब उनसे विचार,
"माँगो वर तुम इच्छानुसार"।
होता न बड़ों का तोष व्यर्थ,
दे सकते हैं सब कुछ समर्थ॥

---

* ब्रह्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

"जगती तल में बल के समान—
है वस्तु नहीं कोई प्रधान"।
बोले यों सोच अनादितेय *
"हम रहें सदा सब से अजेय"॥

(६)

बोले विरञ्चि तब 'एवमस्तु'
पाई असुरों ने इष्ट वस्तु।
करता श्रम जो होकर सचेष्ट,
पाता अवश्य वह फल यथेष्ट॥

(७)

वर मिलने पर फिर वे अनार्य्य,
मनमाने करने लगे कार्य्य।
पाकर प्रभुत्व सहसा अनन्त,
होते उद्धत दुर्जन तुरन्त॥

(८)

करके सदैव सुर-कार्य्य नष्ट,
वे सब को देने लगे कष्ट।
देकर औरों को दुःख दुष्ट
होते हैं मन में अधिक तुष्ट॥

(९)

पाकर उनसे बहु भाँति त्रास,
सुर गये शीघ्र लोकेश पास।
होगा ऐसा निर्बुद्धि कौन—
निज अशुभ देख जो रहे मौन?

(१०)

कर वहाँ शीघ्र सबने विवेक,
की प्रकट नई अप्सरा एक।
है जग में ऐसा कौन काम—
कर सके न जो ललना ललाम?

(११)

दोनों दानव कर मद्यपान—
थे उपवन में जब विद्यमान।
पहुँची तिलोत्तमा वहीं तूर्ण †
होते समयोचित कार्य्य पूर्ण॥

(१२)

कर प्रकट वहाँ कौशल नवीन,
कन्दुक-क्रीड़ा में हुई लीन॥
बहु हाव-भाव करके प्रकाश—
हरतीं बधुएँ मन अनायास॥

(१३)

तब देख उसे वे दनुज-नाथ,
दोनों मोहित हो गये साथ।
दोनों के मन में बढ़ा चाव,
पड़ता न कहाँ छवि का प्रभाव॥

(१४)

पाने को वह सुन्दरी-रत्न,
तब दोनों करने लगे यत्न।
निज बन्धु-भाव वे गये भूल
होती कान्ताएँ कलह-मूल॥

(१५)

बोले वे दोनों यों पुकार—
"प्यारी! तुम हम पर करो प्यार।"
है जहाँ मोह पाता विकास,
करती न वहाँ फिर बुद्धि वास॥

(१६)

बोली तिलोत्तमा पिक समान
"मैं हूँ उसकी जो हो प्रधान।"
सम्बन्ध-समय में बार बार—
करता न कौन लघु-गुरु-विचार?

(१७)

बोले तब दोनों बल-निधान—
"मैं हूँ प्रधान, मैं हूँ प्रधान।"
कहता अपने को कौन हीन?
सब रहते हैं निज मान-लीन॥

(१८)

तब कहा सुन्द ने कर अमर्ष,
"है मेरा वय में भी प्रकर्ष।"
निज गौरव करने को बखान—
करता न कौन बहु विधि विधान?

* असुर। † शीघ्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१९)

उपसुन्द दैत्य भी तब सरोष—
कर प्रकट सुन्द के विविध दोष ।
बोला तत्क्षणही साभिमान ,
रखते न नीच सम्बन्ध-ध्यान ॥

(२०)

"होने से वय में अधिक ज्येष्ठ—
हो सकता है कोई न श्रेष्ठ ।
हों जिसमें सब गुण विद्यमान—
है वही श्रेष्ठ उत्तम प्रधान" ॥

(२१)

यों ज्येष्ठ सहोदर को समक्ष ,
करके बहु विधि आक्षेप-लक्ष ।
सकुचा न अहो ! वह दैत्यराज !
रहती मदान्ध जन को न लाज ॥

(२२)

उपसुन्द-वचन सुन निज विरुद्ध ,
तब हुआ और भी सुन्द क्रुद्ध ।
सुन कर अपना अपवाद लेश ,
होता न क्षोभ किस को विशेष ?

(२३)

बातों बातों में इस प्रकार
उन दोनों में ठन गई रार ।
प्रतिपक्षी जन के वचन घोर
लगते बाणों से भी कठोर ॥

(२४)

तज कर तब सब सम्बन्ध शुद्ध ,
वे दोनों करने लगे युद्ध ।
न हुई रमणी पर कहाँ रार ?
होता न प्रमत्तों में विचार ॥

(२५)

लड़कर वे दोनों दैत्यनाथ ,
हत हुए परस्पर एक साथ ।
होता है बन्धु-विरोध यत्र ,
है सर्वनाश ही उचित तत्र ॥

(२६)

यों हुए युक्ति से शत्रु नष्ट ,
मिट गये सुरों के सकल कष्ट ।
होता बल से भी जो न सिद्ध ,
सो कार्य्य बुद्धि करती प्रसिद्ध ॥

(२७)

दुर्जय दैत्यों का भी तुरन्त ,
है जिसने यों कर दिया अन्त ।
जिसके सम्मुख सब गये हार ,
अबला-बल को है नमस्कार !

मैथिलीशरण गुप्त ।

श्रीविद्यारण्य स्वामी ।

पाठक, गत १९०१ की मनुष्य-गणना से सूचित होता है कि भारतवर्ष में मँगतों की संख्या ५२ लाख है । इनसे देश का तो कोई उपकार नहीं होता वरन् हानियाँ अनेक होती हैं । इनके भरण-पोषण में दरिद्र भारत-वासियों को क़रीब वार्षिक १० करोड़ रुपये व्यय करने पड़ते हैं ? यदि ये लोग देश का कोई सत्कार्य-जन-समुदाय-शिक्षा, पतित-जाति-उद्धार आदि—करते तो आज भारतवर्ष ऐसी गिरी दशा में न रहता ! जो साधुओं में अच्छे हैं वे तो संसार से विरक्त रह हिमालय की किसी गुहा में शरण लेते हैं, मानो वे हैं हीं नहीं । उनके सदुपदेशों से हम वञ्चित रहते हैं ; उनके अनुभवों से हमें उपकार नहीं होता । रहते कौन हैं, वही जो निकम्मे हैं, जिन्हें विद्या आदि से सम्बन्ध नहीं । परोपकारादि सद्गुणों ने जिन्हें छुआ तक नहीं । हाँ दो चार माई के लाल हो सकते हैं । पर वे इने गिने ही हैं ।

आज मैं जिस महात्मा का चरित्र आपको भेंट कर रहा हूँ वे ऐसे वैसे महात्मा नहीं थे । आपने केवल कन्दराओं में बैठकर अपनी ही मुक्ति के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार को नहीं त्यागा था। आप उन महापुरुषों में से हैं जिन्होंने भारत को उन्नत किया है, जिन्होंने भारतवासियों को समूल नष्ट होने से बचाया है। जब इस्लाम का प्रबल प्रताप-नक्षत्र चमक रहा था, मुल्ला लोग एक हाथ में खड्ग और दूसरे हाथ में क़ुरान लिये इस्लाम धर्म की विजयपताका सर्वत्र फैला रहे थे, तब हिन्दुओं की दशा बड़ी ही शोचनीय थी। उन्हें पुराण-कल्पित ३३ कोटि देवताओं में श्रद्धा घटने लगी थी, हिन्दू-नरेशों की शक्ति क्षीण हो चली थी, हिन्दू लोगों को अपनी आत्मशक्ति पर भी भरोसा नहीं रहा था। तेरहवीं शताब्दी बीत चली। पठानों की उस समय बादशाहत थी। ऐसे ही समय में हमारे चरित्र-नायक का प्रादुर्भाव हुआ। आपने सोते हुए हिन्दुओं को ख़ाली जगाही नहीं दिया वरन् उनमें नया जोश—नई शक्ति—पैदा कर दी।

बाल्यावस्था।

दक्षिण प्रान्त में एक पुरानी नगरी है। नाम है पम्पापुरी। पम्पापुरी तुङ्गभद्रा नदी के किनारे बसी है। पम्पापुरी रामायण के प्रेमियों से अपरिचित नहीं है। भगवदवतार श्रीरामचन्द्रजी ने वनवासकाल के कुछ दिन यहीं काटे थे। यही पम्पापुरी महात्मा विद्यारण्य की जन्मभूमि है। १३ वीं सदी के अन्त में आपका जन्म एक प्रसिद्ध तैलंगी—ब्राह्मण कुल में हुआ था। आपके पिताजी का नाम मायान्न था। वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार सायणाचार्य्यजी विद्यारण्य के सहोदर भाई थे। बालक विद्यारण्यजी ने थोड़ी ही उम्र में विद्वत्ता और विशुद्ध चरित्रता के लिए अच्छी ख्याति लब्ध की। विद्यारण्यजी चारों वेद, छहों दर्शन, धर्मशास्त्र, सम्पूर्ण वेदाङ्ग, काव्य, इतिहास आदि में पारङ्गत हो गये। आप श्रीशङ्कर स्वामी के अद्वैतमत के अनुयायी थे। इसी अद्वैतमत के प्रचार के लिए आपने प्राण-पण से चेष्टा की।

भक्ति।

प्रौढ़ होते ही विद्यारण्यजी ने ब्रह्मचर्य्य त्याग कर गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश किया। पर गार्हस्थ्य आश्रम में आप बहुत दिनों तक टिक न सके। आपकी पत्नी ने अल्प अवस्था ही में शरीर त्याग किया। अब आप संन्यासी हुए। आप पक्के शैव थे। आपका उद्देश था कि आर्य्य लोग आपस के साम्प्रदायिक झगड़ों को छोड़ कर सम्मिलित होकर विधर्मी मुसलमानों से सामना करें। हिन्दू-मन्दिरों को नष्ट भ्रष्ट करना आदि मुसलमानों के अनेक घोर अत्याचारों को आपने निज आँखों से देखा था। इन्हीं से दुःखित हो, आप हिन्दू लोगों में एकता उत्पन्न करके—राष्ट्रीय भाव उत्पादित करके—एक शक्तिमान् हिन्दू राज्य स्थापित करने की चिन्ता करने लगे। ईश्वर ने सामग्री पहले ही प्रस्तुत कर रक्खी थी। आपको ज़्यादा तरद्दुद करना नहीं पड़ा। आपके उद्योगों का फल विजयनगर राज्य संस्थापित हुआ। सन् १३३६ में आपने विजयनगर की नीव डाली। राज्य सिंहासन पर आपने "हरिहर" नामक राजकुमार को अभिषिक्त किया।

हिन्दू राज्य की नीव पड़ चुकी, एक सुयोग्य राजकुमार, देव हरिहर सिंहासन पर आसीन हुए, अब राज-कार्य्य के झंझटों से पृथक् होने की इच्छा विद्यारण्यजी की हुई। पर देव हरिहर को ऐसे राजनीति-विशारद का वियोग दुस्सह प्रतीत होता था। इन्हीं के अनुरोध से विद्यारण्यजी ठहर गये। हरिहर ने विचारा, विद्यारण्य श्रीसरस्वती देवी के प्रियपात्र हैं; ऐसे ही नर-रत्नों के सत्सङ्ग के प्रभाव से मेरी कीर्ति भी अचल हो जायगी, उक्ति है :—

विद्वत्त्वं च नृपत्त्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

यह अक्षरशः सत्य है। आज यदि कविकुलतिलक कालिदासजी के महाकाव्य नहीं रहते तो महाराज विक्रम को कौन जानता?। अस्तु। हरिहर ने केवल कीर्ति-लाभ की आशा ही नहीं की थी, वरन् उन्हें दृढ़ विश्वास था कि यदि विद्यारण्यजी से सुयोग्य मन्त्री रह जायँगे तो इनके प्रभाव से छोटे मोटे हिन्दू-राज्य उनकी छत्रछाया के आश्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन जायँगे। इधर शंकराचार्य्य के शिष्यों ने इनको अद्वैतवाद के लिए जी तोड़कर प्रचार करते देख विद्यारण्यजी को शृंगेरी पीठ का जगद्गुरु शंकराचार्य बनाया। जबसे महात्मा विद्यारण्यजी शृंगेरी मठ के शंकराचार्य पद पर आरूढ़ हुए आपका अधिकार बहुत बढ़ गया। हिन्दू मात्र, क्या राजा, क्या प्रजा, सभी आपके प्रभाव को मानने लगे।

मन्त्रित्व ।

मठाधीश होकर भी आप अपने देव हरिहर को न भूले। आपने विजयनगर का विस्तार समुद्र तक कर दिया। अब विजयनगर एक छोटे से राज्य से साम्राज्य हो गया। इस साम्राज्य के लिए महात्मा विद्यारण्यजी को शस्त्र-प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी। राजनीति ही से उद्देश सिद्ध हो गया। मुसलमानों के आक्रमणों से प्रजा नाकों दम आगई थी, सर्वत्र अराजकता फैल गई थी। मुसलमान लोग प्राचीन हिन्दूराज-पद्धति नष्ट कर अपनी नई पद्धति स्थापित करना चाहते थे, पर इसमें उन्हें कामयाबी न हुई। देश की दुर्दशा हो गई। मन्दिर नष्ट हो गये थे, मठ बुरी हालतों में थे।

राजनीतितत्त्ववित् विद्यारण्य देव हरिहर और उनके उत्तराधिकारी देव बुक्का को योग्य सम्मति देते थे। दोनों सम्राट विद्यारण्यजी का पूर्ण विश्वास करते थे, और उनकी बातों के अनुसार राज्य-कार्य्य सम्पादन करते थे। विद्यारण्यजी उदार-चरित थे। अत्याचार इन्हें स्वीकृत नहीं था। आपने अपने समय में जैन, वैष्णव आदि किसी सम्प्रदाय पर अत्याचार नहीं होने दिया। आपके मन्त्रित्व में देश में शान्ति विराजती थी, राज्य सुखसमृद्धि से पूर्ण था। राज्य में सराय, अस्पताल, तालाब, नहर, आदि उपकारी कार्य्यों में रुपये लगाये जाते थे।

साहित्य-सेवा ।

जब तक विजित जाति का धर्म और साहित्य सजीव रहते हैं तभी तक जेताओं के केवल शारीरिक बल से विजित जाति ध्वंस नहीं हो सकती। विद्यारण्यजी दूरदर्शी थे अतएव आपने धर्म और साहित्य—दोनों को सजीव रखने के लिए कम उद्योग नहीं किया। साहित्य-सेवा आपकी कम नहीं हुई। संस्कृत के साहित्याचार्य्यों में आपकी गणना है। आपकी बनाई कोई १०० पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। १०८ उपनिषदों पर आपने अद्वैतमत की टीका रची है।

मृत्यु ।

जैसे आपके जन्म का साल संवत् नहीं मिलता वैसेही आपका मृत्यु-काल भी ज्ञात नहीं होता। सम्भव है कि ६०, ७० वर्ष की उम्र में सन् १३६० के लग भग आपकी मृत्यु हुई हो।

ऐसा साहित्य-सेवी, राजनीति-विशारद और धर्मनिष्ठ पुरुष कदाचित् ही किसी देश के इतिहास में मिलेगा!

युगलकिशोर अखौरी।

श्वेताम्बुज रहस्य* ।

बहुत काल हुआ जब भारतवर्ष में हमारा प्रथमही आगमन हुआ था, हमको दैवात् एक अद्भुत घटना देखने का अवसर प्राप्त हुआ।

इस पुनीत भूमि में चिरकाल तक रहते रहते हमको दृढ़ विश्वास हो गया है कि वास्तव में महात्माओं की इस जन्म-भूमि की असीम महिमा को जानना सहज नहीं, हमारे देश के विद्यारत्न यह कह कर कि भारतवर्ष में क्या है जो हम नहीं जानते, केवल अपनी अज्ञानता का परिचय देते हैं।

---

* "ईस्ट ऐंड व्यस्ट" (East and west) के "Mystery of the white lotus" का संक्षेप में भावार्थ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पवित्र स्थान उन अलौकिक शक्तियों का आगार है जिन्हें जान लेना सबका काम नहीं। कभी कभी शुद्ध आत्माओं को जो इस मायामय सागर में निमग्न होकर भी उस जगत्पिता परमात्मा को अपना सर्वस्व मानते हैं महात्माओं द्वारा ऐसे ऐसे रहस्यों का कुछ कुछ ज्ञान हो जाया करता है।

लग भग ४० वर्ष के हुए कि वैशाख मास में जब कि पृथिवी माता उष्णता से व्याकुल हो रही थीं निर्जल सरितायें और पत्रहीन वन स्वच्छ आकाश की ओर चातकवत् देख रहे थे और कृषकगण इन्द्र देवता से अकालरक्षा की प्रार्थना कर रहे थे, मैं अपने ज़िले में कृषकों को धैर्य्य और सहायता देने के लिए गाँव गाँव भ्रमण कर रहा था।

उसी समय एक स्थान पर एक अधबैसू फ़क़ीर ने जिसके अस्थिपञ्जर ही शेष रह गया था और जिसके बड़े और घने केश भस्म में सने हुए थे, मेरे चित्त को अपनी ओर आकर्षित किया।

जैसा कि आगे चल कर पाठकों को ज्ञात होगा यह फ़क़ीर उनमें से नहीं था जो केवल अपनी पेट-पूजा के निमित्त त्यागी बन बैठते हैं। इसमें कुछ विशेषता थी। मैं देखता था कि कभी तो वह किसी वृक्ष के नीचे बैठा रहता था और कभी एक मैली गठरी अपने कंधे पर रक्खे इधर उधर घूमा करता था। जब मुझे वह घूमता घामता कहीं मिल जाता था तब मैं एक आध रुपया निकाल कर फेंक देता था। वह उस रुपये को उठा लेता था। मैं नहीं कह सकता कि उस समय वह मेरी ओर अपने रक्तवर्ण नेत्रों के कराल कटाक्ष से क्या कहता था।

एक दिन घूमते घूमते मैं बहुत थक गया था। अपने ख़ेमे में पहुँचते ही मैं व्याकुल हो गया। आते ही आते मैं ख़ेमे के सामने एक आराम चौकी पर विह्वल होकर गिर पड़ा, मेरे दोनों चपरासियों ने पंखा करना आरंभ किया। इतने ही में मुझे कुछ निद्रा सी आ गई। इस निद्रावस्था में उसी फ़क़ीर की प्रतिमा मेरे समक्ष आकर उपस्थित हुई। मैं चौंक पड़ा और आँखें खोलीं तो कुछ भी न था।

इसके अनन्तर मेरा चित्त कुछ विशेष व्याकुल हो गया। मैंने समझा, प्रायः बहुत काम करने से और इधर उधर दौड़ने से ऐसा हो गया है। अतः अपने चित्त और श्रम को शान्त करने के लिए मैंने थोड़ी ब्रांडी और सोडा मंगाया और शनैः शनैः ख़ेमे में जाकर पान करने लगा। यह मैं कर ही रहा था कि मेरा एक चपरासी खाँसता हुआ मेरे समक्ष आया और कहने लगा।

"साहब! वह फ़क़ीर जिससे आप विशेष स्नेह रखते हैं, सड़क के निकट वट-वृक्ष के नीचे पड़ा है और बहुत क्लेशित सा प्रतीत होता है। उस के लिए क्या आज्ञा होती है"।

वास्तव में यह सुन कर मुझे बड़ा आश्चर्य्य हुआ। क्योंकि मैंने उस फ़क़ीर को कुछ ही देर पहले जब मैं अपने ख़ेमे को लौट रहा था दूर एक गाँव के पास देखा था। निद्रावस्था में उसी को मैंने अपने सम्मुख देखा। फिर चपरासी द्वारा ज्ञात हुआ कि वह अब वट-वृक्ष के नीचे पड़ा है। कुछ देर में सोचता रहा कि वह इतनी दूर पैदल किस प्रकार इस शीघ्रता से मेरे ख़ेमे के पास आया होगा और इतनी ही देर में उसको क्या हो गया जो वह इतना व्यथित है। मैं तत्काल ही उठा और अपने चपरासी से मैंने कहा।

"चलो हमको बताओ वह कहाँ है"?

वह मुझे उस स्थान पर ले गया। वहाँ पहुँचकर मैंने देखा कि फ़क़ीर बरगद के नीचे घोर वेदना में पड़ा है। उसका अन्तिम श्वास जल्दी जल्दी चल रहा है। नेत्र बिलकुल बैठ गये हैं। उसकी गठरी, जो सदैव वह अपने स्कंध पर ले चलता था, उसके समीप पड़ी है। उसकी ऐसी दशा देखकर मैंने कहा :—

"फ़क़ीर, मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ? क्या मैं तुम्हें अपने ख़ेमे में ले चलूँ? वहाँ तुम को विशेष सुख मिलेगा और मैं यथाशक्ति तुम्हारे लिए जो आवश्यक होगा उसके करने का उद्योग करूँगा—"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़क़ीर ने उत्तर दिया:—"साहब! मैं आपके अनुग्रह का बड़ा कृतज्ञ हूँ। मुझे इस बात का हर्ष है कि मुझे यहाँ से प्रस्थान करने के पूर्व तुमसे मिलने का सुअवसर प्राप्त हो गया। अब तुम मेरे लिए कुछ कष्ट न करो। मानुषिक शक्ति अब मेरे लिए कुछ नहीं कर सकती—"

मैंने बहुत कुछ चाहा कि उसको अपने ख़ेमे में लेजाकर यथाशक्ति उसकी रक्षा करने का कुछ उद्योग करूँ। परन्तु फ़क़ीर ने एक न मानी। मेरे बहुत आग्रह करने पर वह रुष्ट हो गया। उसको रुष्ट देखकर मैं चुप हो गया। थोड़ी देर के अनन्तर फ़क़ीर बोला:—

"साहब! अब मेरे पास बहुत थोड़ा समय रह गया है। अतः शीघ्रता करनी चाहिए। मैं तुमको अपना एक स्मारक चिह्न प्रदान करना चाहता हूँ जो तुमको बहुत लाभ पहुँचावेगा। परन्तु उसमें तुम दृढ़ विश्वास करो। नहीं तो वह निष्फल हो जायगा—"

इतना कहकर उसने उस गठरी को खोलना चाहा; परन्तु निर्बलता के कारण वह उसे उठा न सका। मैंने तुरन्त उस गठरी को उठाकर उसके समीप रख दिया। तब उसने मुझसे उसे खोलने को कहा। उसे खोलने पर उसमें से बहुत सी छोटी छोटी पुटलियाँ निकलीं, जो कि पृथक पृथक् चिथड़ों में बँधी थीं। मैं प्रत्येक पुटली निकाल निकाल कर रखता गया। इतने में एक पुटली देखतेही फ़क़ीर उठ बैठा और बड़ी शीघ्रता से मेरे हाथ से लेकर उसे खोलने लगा। इस पुटली को देखतेही उस फ़क़ीर के शरीर में बल आगया, उसके भीतर घुसे हुए नेत्रों में कान्ति सी झलकने लगी और उसके चेहरे पर तेज हो आया। उसने उस पुटली को खोल कर एक छोटासा काठ का डिब्बा निकाला और मेरा चपरासी जो मेरे समीप ही खड़ा था उसके चले जाने का सङ्केत किया। चपरासी के चले जाने पर फ़क़ीर ने कहा:—

"साहब! इस डब्बे के भीतर एक ऐसा अमूल्य पदार्थ है जो ईश्वर प्रत्येक मनुष्य को नहीं देता। मेरा अन्तिम समय अब आ पहुँचा है, नहीं तो मैं तुमसे इसके प्राप्त करने की समस्त कथा कहता। अब मैं इस पदार्थ को तुम्हें प्रदान करता हूँ। इसको यत्न से रखना, क्योंकि प्रायः लोग इसे चुराने का प्रबन्ध करेंगे और यह पदार्थ अयोग्य हाथों में कदापि न पड़ना चाहिए। यदि तुम इस पर विश्वास करोगे तो परमात्मा सदैव तुम्हारी सहायता करेगा"—

उसके इन वचनों से मुझे बड़ा आश्चर्य्य हुआ। मैं चुप चाप चकित हुआ खड़ा रहा। फ़क़ीर ने उस डिब्बे के भीतर से एक काँच की शीशी निकाली जिसके भीतर एक अर्ध-विकसित कमल का फूल था। इस शीशी को निकाल कर फ़क़ीर ने कहा:—

"साहब! भली भाँति देखो, यही वह अमूल्य पदार्थ है—इसको मेरे पास सात वर्ष हो गये हैं। न तो यह शुष्क हुआ है, न पूर्णतया विकसित ही हुआ है। जिसके पास यह रहेगा उसको इसके द्वारा बड़े बड़े लाभ होंगे। इसके द्वारा विचित्र रहस्यों का ज्ञान होगा। यह तुमको सदा आपत्तियों से बचावेगा। इसकी साधना कुत्सित काम के लिए न करना। और यदि कोई कभी आकर इसको तुमसे माँगे तो तुम इसे उस याचक को, जो इसका पात्र हो इसी प्रसन्नता से दे देना जैसे कि मैं इस समय तुमको दे रहा हूँ"—

मैंने समझा कि किसी व्यक्ति ने उस फ़क़ीर को उस पदार्थ पर ऐसा विश्वास दिलाकर ठग लिया है। फ़क़ीर ने मेरे इस भ्रम को समझ लिया और कहा:—

"साहब! क्या तुम यह समझते हो कि मैं अपने अन्तिम समय में एक ऐसे महानुभाव को, जिसने सर्वदा मेरे ऊपर अनुग्रह किया है, धोखा दूँगा? कदापि नहीं। परन्तु तुम गोरों की प्रकृतिही ऐसी होती है। तुम हमारे देश की शक्तियों पर विश्वास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करते और समझते हो कि हमारा ईश्वर केवल एक औपन्यासिक ईश्वर है। जब तुमको इस पदार्थ की शक्ति ज्ञात होगी तब तुम अपने भ्रम को समझ जावगे"।

ऐसा कहकर उसने उस शीशी को खोला और मेरी नासिका के पास लाकर मुझसे उसे सूँघने को कहा। मैंने उसके कथन का पालन किया। सूँघने से मुझे उसका गंध नवीन कमल का सा प्रतीत हुआ और मुझे कुछ अचेतनता सी मालूम होने लगी। यहाँ तक कि मैं कुछ समय के लिए बिलकुल अचेत हो गया।

कुछ काल के उपरान्त जब मैं सचेत हुआ तब मैंने देखा कि वह फ़क़ीर मेरे मुँह की ओर देख देखकर मुसकरा रहा है। फ़क़ीर ने कहा:—

"साहब! अब तो तुम्हारा भ्रम दूर हो गया। कहो कैसा मनोरञ्जक दृश्य देखा?"

वास्तव में उसका कथन सत्य था। मैंने उस श्वेताम्बुज के सूँघने से जो दृश्य देखा वह बड़ाही आनन्ददायक था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं टैविस्टक (Tavistock) नगर में, जहाँ मैंने अपनी बाल्यावस्था व्यतीत की थी, एक नदी के तट पर, हरित और अति मनोहर स्थान पर खड़ा हूँ। मेरे निकट ही एक स्त्री और एक पुरुष खड़े खड़े वार्त्तालाप कर रहे हैं। परन्तु वे एक लता-कुञ्ज में होने के कारण मुझको नहीं देख सकते। वे भाई-बहन थे। वह युवती किसी समय मेरी हृदय-देवता थी। भारतवर्ष में तीन वर्ष उससे पृथक् रहने पर भी उसकी मनोमोहिनी प्रतिमा मेरे हृदय में पूर्ववत् विद्यमान थी। आयवी ट्रेविनन (Ivy Trevinon) उस रमणी का नाम था। मुझसे उसका पाणिग्रहण होनेवाला था। मेरे भारतवर्ष आने के पूर्व कुछ ऐसी ख़बरें उड़ीं जिन पर मुझे विश्वास हो गया। अतएव इस सम्बन्ध की आशा को मैंने तिलाञ्जलि देकर जीवन पर्य्यन्त दुख भोगने की प्रतिज्ञा की।

उस रमणी का भ्राता वेस्ट इंडीज़ (West Indies) से लौट कर अपनी बहन के पास आया था। उसी को लिये हुए वह उससे अपने दुःखों की राम-कहानी कह रही थी। उसने इस सम्बन्ध-परित्याग हो जाने का समस्त वृत्तान्त और कारण बड़े आर्त्तस्वर से कहा।

मैं इस वार्त्तालाप को अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुनता रहा इससे यह निश्चय हो गया कि जिन कारणों से मेरी प्रियतमा आयवी (Ivy) और मैं जीवन पर्य्यन्त के लिए पृथक् पृथक् हो गये थे, वह सब केवल दुष्टों की साज़िश थी। क्या इस प्रमाण को पाकर भी मुझे उस अमूल्य श्वेताम्बुज की अलौकिक शक्ति पर कुछ भ्रम रह गया? कदापि नहीं। फ़क़ीर ने मेरे इस विश्वास को जान कर कहा:—

"साहब! ईश्वर सर्वदा तुम्हारी सहायता करे और उस रमणी को, जिसे तुमने अभी देखा है, सकुशल रक्खे। बस मुझे अब और कुछ नहीं कहना है। अपने सेवक को बुलाओ मैं अब थोड़ा सा जल पानकर चलने की इच्छा करता हूँ"—यह सुन कर मैं दौड़ा गया और अपने चपरासी से जल लाने को कहकर उसी क्षण पुनः उस फ़क़ीर के पास आकर उपस्थित हुआ। इस समय उसकी दशा देखकर मेरे नेत्र भर आये। मैं खड़ा खड़ा उस महात्मा का इस लोक से परलोक जाना देखने लगा। इतने में चपरासी जल लाया। मैंने फ़क़ीर को धीरे से उठाया। उसने जल पानकर इस असार संसार को छोड़ महापथ के लिए प्रस्थान किया। मैं उस पवित्र शरीर को पृथ्वी माता की गोद में रखकर अपना ख़ेमा वहाँ से हटा कर दूसरे स्थान को चला गया।

[२]

इस घटना के अनन्तर मैंने शीघ्रही एक पत्र अपनी प्रियतमा आयवी को लिखकर डाक-द्वारा विलायत भेजा। उस पत्र में मैंने सारा वृत्तान्त, जो मुझे श्वेताम्बुज द्वारा ज्ञात हुआ था, लिखा और आयवी से लोगों की बातों पर विश्वास करके बिना उसे अपना निरपराध होना साबित करने का अव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

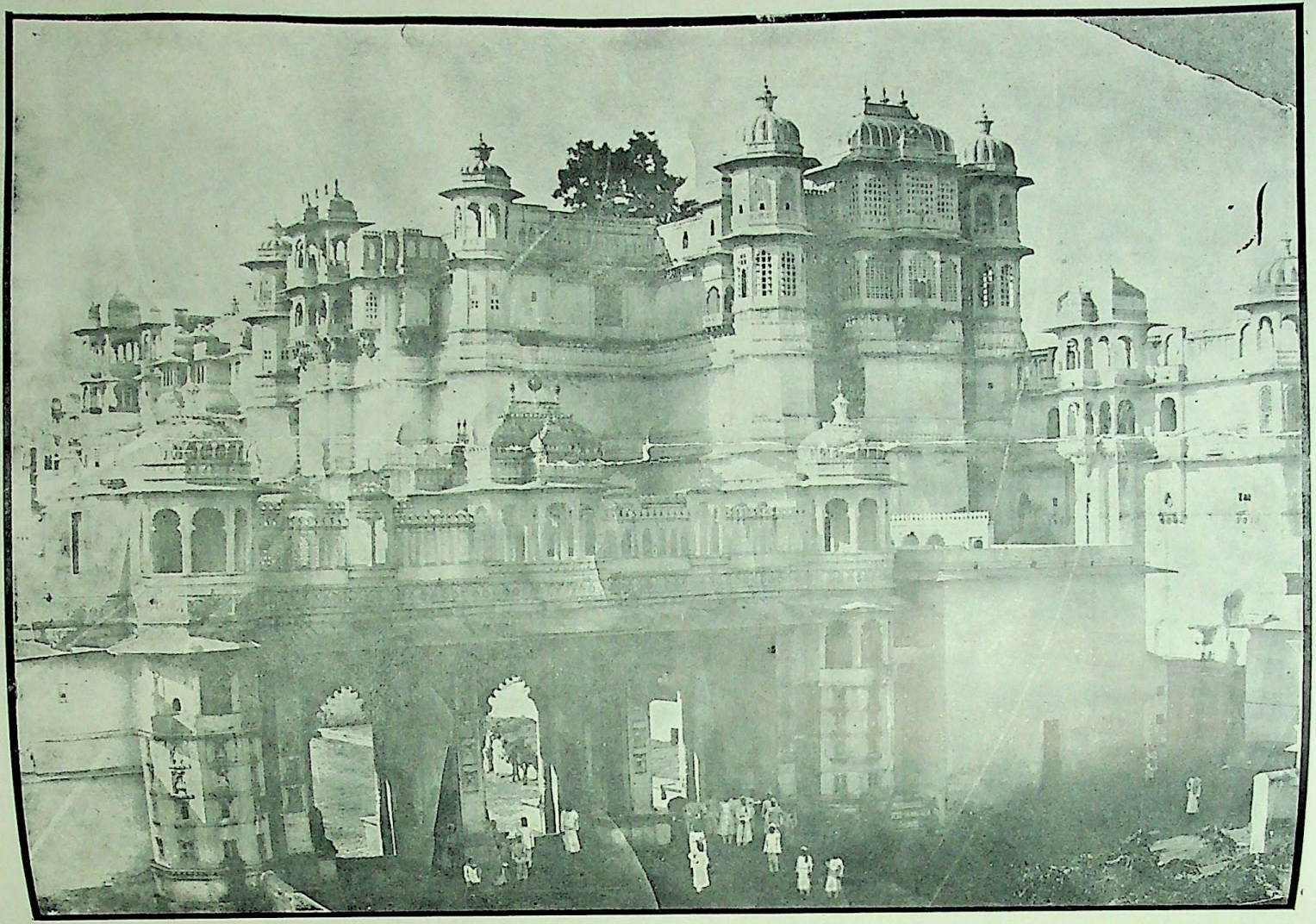

वर्तमान महाराज उदयपुर का राजमहल ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर दिये। सम्बन्ध परित्याग करने की क्षमा माँगी। लौटती डाक से आयवी का करकमलाङ्कित पत्र आया जिसमें उसने जो कुछ मैंने अपनी अचेत अवस्था में देखा था उसको सत्य कहकर बड़ा आश्चर्य्य प्रकट किया और मुझे क्षमा प्रदान कर मेरी सहधर्मिणी होना अङ्गीकार किया। किं बहुना—छः मास के भीतरही भीतर मेरा और आयवी का विवाह हो गया और वह आकर मेरे मनोमन्दिर में राज्य करने लगी—

इसके उपरान्त फ़क़ीर का अन्तिम स्मारक चिह्न मेरे पास ठीक एक वर्ष वैसेही रहा। उससे कुछ सहायता लेने की आवश्यकता न पड़ी।

एक वर्ष के बाद मेरा विश्वासपात्र चपरासी पेंशन लेकर चला गया और एक दूसरा आदमी उसके स्थान पर नियत हुआ। यह चपरासी अपने कार्य्य में बड़ा निपुण था। परन्तु मैं नहीं कह सकता कि आयवी और मैं उस पर क्यों नहीं विश्वास करते थे। हम दोनों सदैव उससे खिचे रहते थे—

मेरे सदर स्थान के निकटही सात मील की दूरी पर एक "मिल" चलती थी। उसका प्रधान कर्मचारी जोन्स (Jones) मेरा परम मित्र था। मैं और जोन्स लँगोटिया यार थे। एक दिन मेरे कचहरी जाने के पूर्व मेरे मित्र जोन्स दौड़े हुए मेरे पास आये। मैंने उनसे पूछा कि क्या है? जोन्स ने बड़ी विकलता से कहा:—"मित्र! मैं बड़े कष्ट में हूँ। कल 'मिल' में काम करते करते मुझे बड़ी देर हो गई थी। इतने में लग भग ३०००) रु० आये, मैं घर जाने की जल्दी में था। अतः मैंने बिना गिनेही वह रुपया अपनी गाड़ी में रख लिया और बंगले पर पहुँच कर एक बकस में थैलियाँ बन्द करके सो गया। रात को कोई चोर आया और सब रुपया उठा ले गया। मैंने इस विषय में बहुत कुछ पूछ पाछ की, परन्तु कुछ पता नहीं चला।

मैं अब तुम्हारे पास आया हूँ। मेरी कुछ सहायता करो। नहीं तो मिल के मालिक इस चोरी का सारा दोष मेरे ऊपर लादेंगे। मैं बहुत व्याकुल हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूँ"—

मैं शीघ्र अपनी गाड़ी में जोन्स को लेकर मिल में गया। बहुत कुछ तहक़ीकात करने पर भी कुछ परिणाम न निकला। लौट कर मैंने पुलिस के इन्स्पेक्टर को भेजा। उसने भी पुलिस की सारी चाल चलाई और बड़ा परिश्रम किया। परन्तु सफलता न हुई।

मेरे मित्र जोन्स के रंज का ठिकाना न था। मैं भी सोचने लगा कि किस प्रकार मैं अपने मित्र की सहायता करूँ। इतने में मुझे श्वेताम्बुज का स्मरण हो आया। मैंने कहा यह बड़ा अच्छा अवसर है। अब मैं इसी अलौकिक शक्ति द्वारा अपने मित्र को इस घोर संकट से बचाने का उद्योग करूँगा—

मैं शीघ्र अपने कमरे में गया। वहाँ अपना बकस खोला। उससे वह काठ का डिब्बा मैंने निकाला। उसके भीतर से शीशी बाहर निकाली। फिर उसकी डाट खोलकर उस श्वेताम्बुज को सूँघने पर अचेत हो गया। इस दशा में मैंने देखा कि मैं अपने मित्र जोन्स की मिल के निकट एक सुनसान सड़क पर खड़ा हूँ। उस समय सूची-भेद अंधकार है और एक समीपवर्ती सघन कुञ्ज से चार मनुष्य निकल कर दौड़ते हुए एक वृक्ष के नीचे जाकर कुछ गाड़ रहे हैं। उन चार मनुष्यों में एक तो मेरा चपरासी था। दूसरे को उसके साथ कभी कभी मैंने देखा था, शेष दो को मैं न जानता था। इतना रहस्य देखने के उपरान्त मेरी निद्रा भङ्ग हुई। मैंने उसी समय रातही को गाड़ी मँगाई। मैंने मिल में पहुँच कर अपने मित्र जोन्स को बुलवाया। वह एक लालटेन लिये हुए आये। मैं उनको लेकर उसी वृक्ष के नीचे पहुँचा और खुदवाना प्रारम्भ किया। थोड़ाही खोदने के उपरान्त सब थैलियाँ मय रुपयों के मिल गईं। मेरे मित्र जोन्स मारे हर्ष के खिल उठे। उनको मैं वहीं छोड़कर बँगले पर लौट आया और कोतवाल को बुलाकर अपने चपरासी को उसके साथियों सहित पकड़े जाने की आज्ञा दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बाद एक वर्ष तक फिर वह श्वेताम्बुज वैसाही पड़ा रहा। उसकी अलौकिक शक्ति से सहायता लेने का कोई अवसर न आया। इसी वर्ष ईश्वर की कृपा से आयवी का और हमारा आनन्द बढ़ाने को एक बच्चा उत्पन्न हुआ। इसकी उत्पत्ति से हम दोनों के सांसारिक आनन्द की सीमा न रही—वह हर समय आयवी की गोद शोभित करता था। दैवात् थोड़े दिनों बाद वह हमारे समस्त सुखों का आधार एकाएक रोग-ग्रसित हो गया जिससे आयवी को और मुझे असह्य वेदना हुई। सिविल सर्जन दिन में कई बार आते थे; परन्तु फिर भी रोग दिन प्रति दिन बढ़ताही जाता था। एक दिन सिविल सर्जन ने अलग ले जाकर मुझ से कहा :—

"मित्र जो कुछ बन पड़ता है करता हूँ। परन्तु....." उनके इस रुक जाने से पाठक समझ सकते हैं कि मेरी क्या दशा हुई। मैं उसी समय सिविल सर्जन को बिदाकर अपने कमरे में गया और वहाँ मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उस अवस्था में मैंने देखा कि वही फ़क़ीर मेरे सम्मुख खड़ा है। उसकी अब वह दशा नहीं है जो पहले थी। अब उसका समस्त शरीर देदीप्यमान हो रहा था और उसके मस्तक पर महत्ता के विशेष लक्षण देख पड़ते थे। उसने कहा "साहब! जिस समय तुम्हें कोई कष्ट हो तुम मेरा स्मरण किया करो। मेरी सहायता सदैव तुम्हारे लिए उपकारी होगी। वह पदार्थ जो मैं तुमको दे चुका हूँ तुम्हें तुम्हारी वर्तमान वेदना से बचावेगा शोक क्यों करते हो?"

इतने में मेरी मूर्च्छा जगी तो देखा कि प्यारी आयवी भी मलिन मुख किये मेरे समीप पाषाण प्रतिमा सी खड़ी है। उसकी चेष्टा से प्रतीत होता था कि मेरे और उसके सांसारिक जीवन का आधार म्रियमाण दशा में है। मेरे कई बार प्रश्न करने पर आयवी ने सिसकते हुये कहा :—

"प्राणपति! क्या कहूँ? अपने श्वेताम्बुज से क्यों नहीं सहायता माँगते? वही हमारे इस अपार दुःख को दूर कर सकता है"।

उसके इस कथन से मेरी मूर्छितावस्था में फ़क़ीर ने मुझसे जो कुछ कहा था उसका स्मरण हो आया। मैंने कहा :—

"प्रिये! तुम बालक के निकट चलो। मैं श्वेताम्बुज निकालता हूँ"—

मैंने पुनः उसी प्रकार श्वेताम्बुज सूँघा और पूर्ववत् अचेत हो गया। इस अवस्था में मैंने देखा कि मैं एक अत्यन्त रमणीक सघन वन में खड़ा हूँ। मेरे समक्ष एक परमरम्य पर्वत-कन्दरा में, जो कि वृक्ष-शाखाओं से आच्छादित है, एक महात्मा अपने हाथ में एक सुमिरनी लिये विराजमान हैं। उन महात्मा के समक्ष एक लम्बे शरीर का मनुष्य दोनों हाथ जोड़े खड़ा है और महात्मा से कह रहा है :—

"महाराज! चिरकाल के उपरान्त मुझे यहाँ पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वह श्वेताम्बुज, जो सर्वदा समस्त आपत्तियों से मेरी रक्षा करता था मेरे यहाँ से कोई चुरा ले गया। मैं बहुत काल से उसकी खोज कर रहा हूँ। यदि वह मुझे न प्राप्त हुआ तो मेरा सर्वनाश हो जायगा। महाराज ही के हाथों से मुझे वह पदार्थ मिला था। आज मैं आपही की शरण में आया हूँ और आशा करता हूँ कि स्वामी मुझे उसे प्राप्त करने में सहायता देंगे।"

महात्मा ने उत्तर दिया :—

"पुत्र! यह ईश्वर की प्रेरणा थी कि इतने दिनों तक तुमको उस अलौकिक पदार्थ के वञ्चित हो जाने से ये कष्ट मिले। अब तुम क.....नगर को जाव। वहाँ अमुक अँगरेज़ से उस पदार्थ को माँगो। वह तुम को सहर्ष देदेगा। परन्तु जाने में शीघ्रता करो और इस बात का ध्यान रक्खो कि वहाँ पहुँचने में दो दिन से अधिक न लगें, नहीं तो उस अँगरेज़ को बड़ी हानि पहुँचेगी। इस समय तक वह अवश्य श्वेताम्बुज का पात्र था, परन्तु अब यदि वह उसके समीप अधिक रहेगा तो उसको आफ़तें झेलनी पड़ेंगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह मनुष्य महात्मा को दण्डवत् कर वहाँ से चलता हुआ इतने ही में मैं भी सचेत हो बैठा।

आयवी पुनः दौड़ती हुई आई और कहा कि प्यारे टाम Tom की दशा अब अधिक शोक-जनक हो चली है। मैं श्वेताम्बुज को बकस में बन्द कर आयवी के साथ ही साथ टाम के पास गया।

वास्तव में उसकी दशा ऐसी ही थी। परन्तु मैं जानता था कि वह चंगा हो जायगा। मैं खड़ा खड़ा उसके पलंग के पास यह सोचही रहा था कि इतने में मेरे द्वार पर किसी ने खटका दिया। मैंने जाकर देखा तो वही मनुष्य था जिसको मैंने अपनी अचेतना में उस महात्मा के सामने देखा था। मुझे देखते ही उसने प्रणाम किया और कहा :—

"साहब! मैं तुम्हारे पास अपना श्वेताम्बुज माँगने आया हूँ"—

मैंने कहा—"प्रथम मुझे यह बतलाओ कि वह किस प्रकार का है'—

उसने उत्तर दिया—"वह एक शीशी में बन्द है, न कभी शुष्क होता है और न पूर्णतया विकसित ही होता है। आज तीन वर्ष हुए एक फ़क़ीर ने उसे तुमको दिया था,,—

इतना सुन कर मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि यथार्थ में वही व्यक्ति उस अलौकिक पदार्थ का स्वामी है। मैंने उस फूल को लाकर उसे सहर्ष दे दिया। उसने उसको लेकर कहा :—

"साहब! तुमको कभी कोई बाधा न होगी और इस श्वेताम्बुज की दैवी शक्ति सर्वदा तुम्हारे घर में वर्त्तमान रहेगी"—

इतना कह कर उसने प्रणाम किया और चलता हुआ। इसके थोड़ी देर बाद टाम की दाई ने आकर कहा कि बच्चा इस समय सो रहा है और कुछ अच्छा है। दूसरे दिन बालक बिलकुल अच्छा हो गया और चौथे दिन पूर्ववत् खेलने लगा।

सिविल सर्जन महोदय, जो कि आते रहते थे। बालक के अच्छे हो जाने पर बोले :—

"कहो मित्र! हमने तुम्हारे बच्चे को कैसा बचाया?" इसके उत्तर में मैं केवल मुसकरा कर चुप हो रहा।

पृथ्वीपालसिंह।

गुहिलोत।

मैंने गुहिलोतों की उत्पत्ति के विषय में एक लेख बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में छपवाया है। आज उसका सारांश आप की पत्रिका के द्वारा हिन्दी जाननेवालों को सुनाता हूँ जिससे लोगों को उस पर विचार करने में सहायता मिले। हिन्दी भाषा की एक पत्रिका में यह पढ़ कर मुझे बड़ा हर्ष हुआ कि एक महाशय मेरे इस लेख का खण्डन लिखेंगे। निवेदन यही है कि वे युक्तियों से सत्यासत्य का निर्णय करें।

[१] उदयपुर के महाराना केवल उपाधियों से ही "हिन्दुआ सूरज" नहीं हैं, उनकी वंशावली भी उनको सूर्य का साक्षात् वंशधर बतलाती है। वे रघुवंशी कहलाते हैं और सूर्यवंश के प्रधान राजा रामचन्द्र के पीढ़ीजाद वंशज हैं। यों तो और भी सूर्यवंशी क्षत्रिय अपनी अपनी वंशावलियाँ रामचन्द्र से ही मिलाते हैं; चाहे उनमें से कितने लोगों के दावे पर सन्देह भी होता हो, परन्तु महाराना के इस दावे और उनके वंश की शुद्धि के विषय में आदर-पूर्ण हिन्दुओं में से कोई भी शङ्का नहीं उठाता।

[२] इस वंश का साधारण नाम गुहिलोत वा गहलोत है जो संस्कृत गुहिलपुत्र का अपभ्रंश है। चित्तौरगढ़ में संवत् १३३५ का एक शिला-लेख मिला है जिस में मेवाड़ राजवंश के एक पूर्वज सिंह को गुहिलपुत्र लिखा है—

"श्रीएकलिङ्गहराराधनपाशुपताचार्यहारीतराशिक्षात्रिय-गुहिलपुत्रसिंहलब्धमहोदय"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुशन संवत् ९०७ के आल्हण देवी के भेराघाट-वाले शिला-लेख में उसी राजवंश का एक राजा हंसपाल 'गोभिल-पुत्र' कहा गया है—

"अस्ति प्रसिद्धमिह गोभिलपुत्रगोत्रम्
तत्राजनिष्ट नृपतिः किल हंसपालः॥"

विक्रम संवत् १२२४ के हांसी के लेख में संस्कृत गुहिलपुत्र वा गोभिलपुत्र के स्थान पर गुहिलोत शब्द आया है, क्योंकि उसमें प्रसिद्ध चाहमान पृथ्वीराज का मामा कील्हण, जो आसिका दुर्ग (हांसी) के क़िले का रक्षक नियत किया गया था, 'गूहिलोतान्वय' अर्थात् गुहिलोत वंश का कहा गया है।

यों मूल पुरुष के नाम के आगे पुत्र लगा कर वंश का नाम चलाना राजपूताना में साधारण बात है, क्योंकि गोत्र या खांप अब भी 'गजसिंहोत', 'भारमलोत' आदि नामों से बताई जाती है। इन शब्दों में 'ओत' संस्कृत 'पुत्र' का अपभ्रंश है।

इसके अतिरिक्त तद्धित के नियमों से भी गोत्र के नाम बनाये जाते हैं; जैसे विक्रम संवत् १३३१ के चित्तौरगढ़ के लेख में गौहिल्य (गुहिल से उत्पन्न हुए) शब्द आया है—

"तस्माद् दधौ गुहिलवर्णनया प्रसिद्धां
गौहिल्यवंशभवराजगणोऽत्र जातिम्।"

यह सारा श्लोक कुमलगढ़ में मामा देव के मन्दिर की प्रशस्ति में भी खुदा हुआ है जो राणा कुम्भ ने उत्कीर्ण कराई थी। इसी गौहिल्य से एक खांप का नाम गोइल या गोयल निकला है।

विक्रम संवत् १५०० के महुवा के लेख में राजा सारङ्ग का उल्लेख है जो गोहिल्ल कहा गया है। यह शब्द गौहिल्य का एक बिगड़ा हुआ रूप है।

यह वंश 'गुहिलान्वय' या 'गुहिलवंश' भी कहलाता था क्योंकि बालादित्य के चाटसू के लेख में "वंशस्तद्विपरीत एष गुहिलस्योद्धारभूतो भुवः" मिलता है। परन्तु विक्रम संवत् १२०२ का एक लेख मांग्रोल में मिला है जिसमें वंश को ही 'गूहिलान्वय' कहा है अर्थात् वंश के कर्ता का नाम ही वंश का नाम हो गया है।

[३] गुहिलोतों की उत्पत्ति के टाड ने दो कथानक लिखे हैं। एक तो परम्परागत, जिस में सूर्य वंश के अन्तिम राजा सुमित्र से परम्परा चला कर वलभी के अन्तिम राजा शीलादित्य से इस वंश को मिला दिया गया है। दूसरा मुसलमानों का कथन टाड ने उद्धृत किया है कि 'या तो यह वंश नौशेरवां के पुत्र नौशिज़द का है या येज़ेदगिर्द की पुत्री का,' परन्तु अबुलफ़ज़ल से पहले इस मत का उल्लेख कहीं नहीं मिलता और कोई प्रमाण भी नहीं मिलता।

अब देखना चाहिए कि स्वयं गुहिलोतों के पुराने लेखों में, जो इस विषय के सबसे पुराने और सबसे प्रामाणिक लेख हैं, क्या मिलता है।

[४ क] आबू पहाड़ पर अचलेश्वर मन्दिर के पास एक मठ में सं० १३४२ का राजा समरसिंह के राज्य का एक शिलालेख है जिसमें इस वंश के अति प्राचीन राजा बप्प का यह वर्णन है—

हारीतात्किल बप्पकोऽद्रि (द्रि) वलयव्याजेन लेभे महः
क्षात्रं धातृनिभाद्वितीर्य मुनये ब्राह्मं स्वसेवाच्छलात्।
एतेऽद्यापि महीभुजः क्षितितले तद्वंशसंभूतयः
शोभन्ते सुतरामुपात्त वपुषः क्षात्रा हि धर्मा इव॥

(भावार्थ) बप्पक ने सेवा के मिस से ब्राह्म तेज दे करके ब्रह्मा के सदृश हारीत मुनि से पैर के कड़े के मिस से क्षत्रिय तेज पाया। उसके वंश से उत्पन्न राजा आज भी भूमण्डल में मूर्त्तिमान् क्षात्र धर्मों की तरह प्रकाशमान हैं।

जब बप्पक (बापा) ने अपने ब्राह्म तेज को देकर अपने गुरु हारीतराशि से क्षात्र तेज बदले में लिया तब इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि बापा ब्राह्मण था और हारीतराशि क्षत्रिय था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सरस्वती

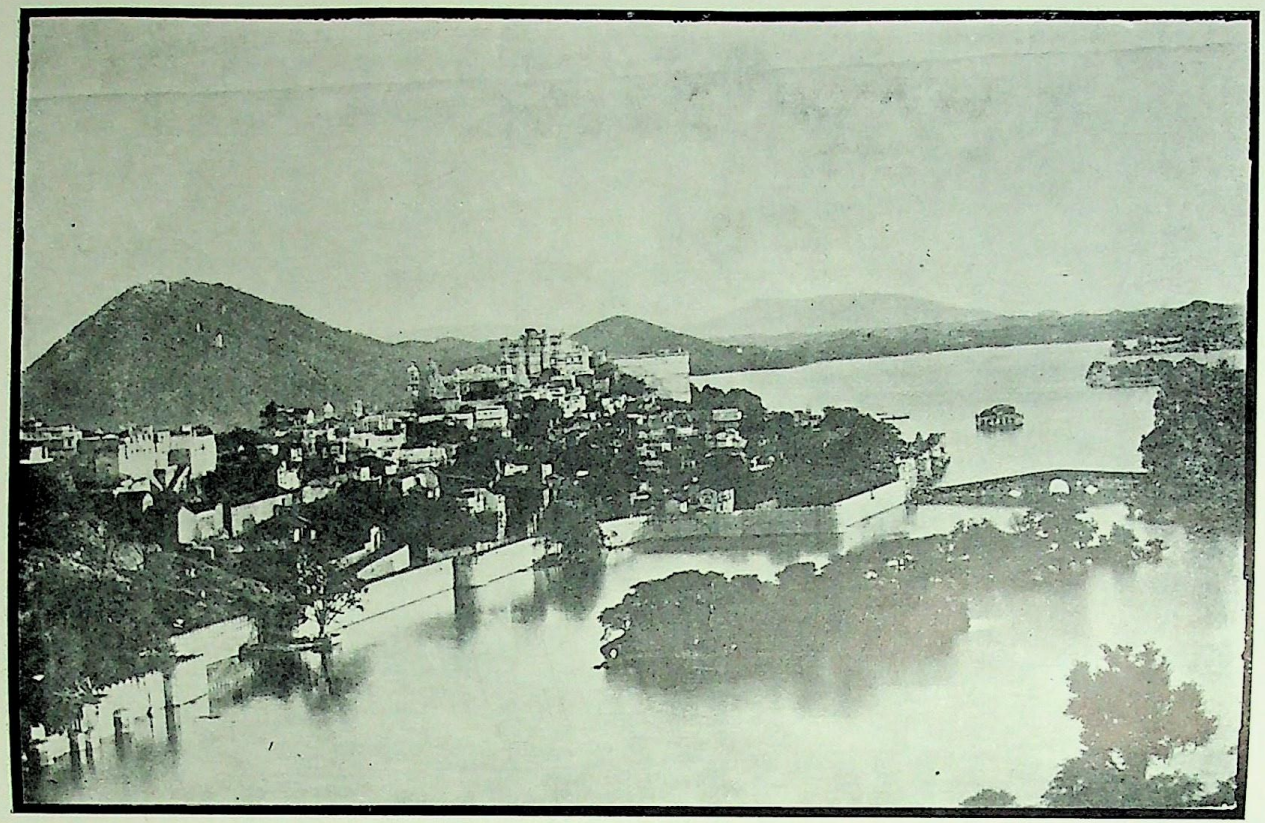

उदयपुर की पिचोला झील ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) विक्रम संवत् १३३१ के चित्तौरगढ़ के लेख में एक श्लोक है जो मामादेव की प्रशस्ति में भी मिलता है उससे भी यह बात पुष्ट होती है—

जीयादानन्दपूर्वं तदिह पुरमिलाखंडसौंदर्यशोभि-
द्योणी प्र(पृ)ष्ठस्थमेव त्रिदशपुरमधःकुर्वदुच्चैः समृद्ध्या।
यस्मादागत्य विप्रश्चतुरुदधिमहीवेदिनिक्षिप्तयूपो
वप्पाख्यो वीतरागश्चरणयुगमुपासीत (सीष्ट) हारीतराशेः॥

(भावार्थ) भूखण्ड की शोभा से शोभित आनन्दपुर की जय हो जो भूमि पर रहकर भी स्वर्ग को अपनी समृद्धि से खूब नीचा दिखलाता है। जहाँ से आकर चारों समुद्रोंवाली पृथ्वी की वेदि पर यज्ञस्तम्भ स्थापन करनेवाले वीतराग बप्प नामक ब्राह्मण ने हारीतराशि के चरणों की उपासना की।

इसमें बप्प को स्पष्ट विप्र लिखा है और उसे आनन्दपुर से आया हुआ कहा गया है।

(ग) शिलादित्य सप्तम के अलीना दानपत्र में आनन्दपुर का उल्लेख मिलता है जिसे डाक्टर फ्लीट ने आनन्द तालुक़े के प्रधान नगर आनन्द से मिलाया है जो कैरा से इक्कीस मील अग्निकोण में है। कलचुरी राजा बुद्धराज के सरसवणी ताम्रपत्रों में भी यह नाम आया है और डाक्टर कीलहार्न डाक्टर फ्लीट के मत के अनुकूल होते हैं। परन्तु शब्दसादृश्य के सिवा इसमें कोई प्रमाण नहीं है। न आस पास के गाँव मिलाये गये हैं और न आनन्द और उसके पड़ोस के गाँवों में मिले हुए किसी लेख में यह नाम मिलता है। इसलिए मेरे मत में आनन्दपुर को बड़नगर ही मानना उचित है क्योंकि कुमारपाल के समय की बड़नगर प्रशस्ति में बड़नगर को आनन्दपुर और नागर ब्राह्मणों की बस्ती कहा है। नागर ब्राह्मणों में यह प्रसिद्ध है ही कि उनका निकास बड़नगर से है। फिर ईसवी सन् ६४९ और ६५६ के अलीना दानपत्र एकही व्यक्ति को दिये गये थे जो एक में तो आनन्दपुर से आया हुआ और दूसरे में आनर्तपुर से आया हुआ कहा गया है। लोक-प्रसिद्धि भी यही है कि त्रेता युग में आनन्दपुर का नाम आनर्तपुर था।

सो यदि गुहिलोतवंश का स्थापक बप्प ब्राह्मण आनन्दपुर से आया, जो बड़नगर ही है, तो यह मानना चाहिए कि वह नागर ब्राह्मण था।

[५] इसमें यदि सन्देह रहता हो तो राणा कुम्भ के समय के बने 'श्रीएकलिङ्गमाहात्म्य' के नीचे लिखे अवतरण से हट जायगा—

जयति जगति विख्यातं सकलमहीलोकपावनं सुमहत्।
श्रीएकलिङ्गदैवतगोत्रं वैजवापाह्वम्॥ १॥
जयति तथानन्दपुरे नागरकुलमण्डनो महीदेवः।
यजनादिकर्मकुशलो विजयादित्याभिधो विप्रः॥ २॥
तत्तनयो द्विजवर्यः केशवनामा बभूव लोकेऽस्मिन्।
श्रुतयो यत्र चतस्रः षडङ्गसहिता भान्ति॥ ३॥
तस्य सुतो जगतीतलमखिलं तपसा सुखास्पदं कुर्वन्।
नागाराउलनामा बभूव पात्रं स्मृतीनां यः॥ ४॥
तत्पुत्रो जगति भोगाराउलसंज्ञो धराधिपैर्वन्द्यः।
आसाधरोस्य सूनुः श्रीदेवाहूस्तस्य तनुजन्मा॥ ५
तत्तनुजः सर्वज्ञो दत्ताध्वरकृद्विभूतिभृद्विमलः।
स महादेवो भगवानभिधानेनाभिधेयेन॥ ६॥
तस्य कुलालङ्करणं गुहदत्तोऽन्वर्थनामधेयोऽभूत्।
अद्यापि यस्य नाम्ना वंशोऽयं ख्यातिमाञ्जगति॥ ७॥
यदुक्तं पुरातनैः कविभिः।
आनन्दपुरविनिर्गतविप्रकुलानन्दनो महीदेवः।
जयति श्रीगुहदत्तः प्रभवः श्रीगुहिलवंशस्य॥ ८॥

(भावार्थ) जगत भर में प्रसिद्ध, भूलोक के पवित्र करनेवाले विशाल वैजवाप नामक गोत्र की जय, जिसका देवता एक लिङ्ग है॥१॥ आनन्दपुर में नागर कुल के भूषण, महीदेव, यज्ञ आदि कर्मों में कुशल विजयादित्य नामक ब्राह्मण की जय॥२॥ इस लोक में उसका पुत्र केशव नामा ब्राह्मणवर्य हुआ जिसको छहों अङ्गों के साथ चारों वेद प्रकाशित थे॥३॥ उसका पुत्र सारे भूमण्डल को तपस्या से सुख-निधान करता हुआ नागाराउल हुआ जो स्मृतियों का पात्र था॥४॥ उसका पुत्र भोगाराउल हुआ जो राजाओं से पूजित था। उसका पुत्र आसा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर और उसका श्रीदेव ॥५॥ सर्वज्ञ, चतुर यज्ञों का करनेवाला, (शिवपक्ष में, दक्ष यज्ञ का नाश करनेवाला) विभूतिवाला, (संपत्तिवाला, शिवपक्ष में भस्मवाला) और निर्मल, उसका पुत्र महादेव हुआ जो नाम से और अर्थ से भी महादेव था ॥६॥ उसके कुल का भूषण अन्वर्थ नामवाला (क्योंकि महादेव के पुत्र कार्त्तिकेय का नाम भी गुह है) गुहदत्त हुआ जिसके नाम से आजतक यह वंश जगत् में प्रसिद्ध है ॥७॥ जैसा कि पुराने कवियों ने कहा है "आनन्दपुर से आये हुए ब्राह्मण-कुल को आनन्द देनेवाला भूदेव गुहदत्त जयशाली हो, जो गुहिल वंश का स्थापक है" ॥८॥

यह आठवाँ श्लोक 'पुरातनैः कविभिः' के लेख से उद्धृत किया है अर्थात् राना कुम्भा के समय से पुराना है। यह शक्तिकुमार के आटपुर के लेख से लिया गया है जिसका हाल आगे चलकर लिखा जायगा। इन सब श्लोकों से सिद्ध होता है कि गुहिलवंश अर्थात् गुहिलोतों का प्रभव गुहदत्त भूदेव अर्थात् ब्राह्मण था और आनन्दपुर से आये हुए ब्राह्मण वंश में था। और उसका पूर्वपुरुष विजयादित्य नागर-वंश का भूषण कहा गया है जिससे आनन्दपुर के बड़नगर होने और गुहदत्त के नागर ब्राह्मण होने में कोई सन्देह नहीं रह गया। और एक नई बात यह मिली कि गुहदत्त के कुल का गोत्र वैजवाप था।

[६] (क) राणा कुम्भ ने जयदेव कवि कृत प्रसिद्ध गीतगोविन्द काव्य पर एक रसिकप्रिया नामक टीका लिखी है; उसके आदि में यह श्लोक मिलता है—

श्रीवैजवापेन सगोत्रवर्यः श्रीबप्पनामा द्विजपुङ्गवोऽभूत्।
हरप्रसादादपसादराज्यप्राज्योपभोगाय नृपोऽभवद्यः ॥५॥

(भावार्थ) वैजवाप का समान-गोत्र बप्पनाम द्विज-श्रेष्ठ हुआ जो शिव के प्रसाद से प्रशस्त राज्य के भोग के लिए राजा हो गया।

इसमें भी बप्प को द्विजपुङ्गव और वैजवाप-सगोत्र लिखा है।

(ख) मेवाड़ के ब्राह्मण लोग राणा के वंश के संक्षिप्त वर्णन में एक श्लोक पढ़ा करते हैं जिसमें शीशोदिया वंश के दश गुण गिनाये गये हैं। वह यह है—

देवः श्रीएकलिङ्गो हरितऋषिगुरुर्बाणमाता कुलाम्बा
पर्वाणि त्रीणि सूत्रे यजुरिति निगमो वजवापाह्वगोत्रम्।
बप्पो मूलं नरेशो द्विजसुरभिदया मेदपाटेश्वरत्वं
चित्रोद्रिर्मूलभूमिर्दशभिरिति गुणैर्भाति शीशोदवंशः॥

(भावार्थ) शीशोदवंश इन दश गुणों से शोभित है—१ देवता श्रीएकलिङ्ग (उदयपुर से १४ मील उत्तर को, जिसके कि महाराणा दीवान कहलाते हैं और जिसके मन्दिर में जाकर पुजारी के बदले पूजा कर सकते हैं), २ हरित ऋषि गुरु, ३ बाणमाता कुलदेवी (व्यानमाता जो एक महारानी के साथ लंका टापू से आई थी और जिसकी मूर्त्ति चित्तौड़ में और कैलवाड़े में है), ४ जनेऊ में तीन पर्व की गाँठ, ५ वेद यजुर्वेद, ६ वैजवाप गोत्र, ७ वंश का स्थापक नरेश बप्प, ८ गोब्राह्मण पर दया, ९ मेदपाट (मेवाड़) की प्रभुता १० मूलभूमि चित्तौड़।

इसमें से इतनी बात पर ध्यान दीजिए कि शीशोदवंश का वेद यजुर्वेद, गोत्र वैजवाप और जनेऊ में तीन गाँठें हैं।

[७] जनेऊ में उतनी ही गाँठें होती हैं जितने कि गोत्र में प्रवर होते हैं। अब, "गोत्र-प्रवर-निबन्ध-कदम्ब" नामक ग्रन्थ का नीचे लिखा अंश पढ़ जाइए—

अथ कात्यायनलौगाक्ष्युक्तमत्रिगोत्रकाण्डमुदाहरिष्यामः.....दक्षव्यालिखदार्णकृद्धालवना अर्णनाभिवैवेयवैजवापिश्रिमिश्वमौञ्जकेशो गविष्ठिरा इत्येते दश गविष्ठिराः। एतेषामविवाहः। तेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो भवति आत्रेयगाविष्ठिरवौ वातिथेति अत्रिवद्गविष्ठिरवत्पूर्वातिथिवत् .....

तात्पर्य यह हुआ कि कात्यायन और लौगाक्षि के मत के अनुसार (ये दोनों क्रमशः शुक्ल और कृष्ण यजुर्वेद के माननीय सूत्रकार हैं) गविष्ठिर गोत्रवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दश में वैजवापि गोत्र भी है और इस गोत्रवालों के तीन ऋषियों का प्रवर है; आत्रेय, गविष्ठिर, पौर्वातिथ; वे अग्नि को अत्रि, गविष्ठिर और पूर्वातिथि वाले नामों से संबोधन करें।

तेरहवीं शताब्दी ईसवी में भी नागर ब्राह्मणों में वैजवाप गोत्र था। काठियावाड़ बड़ौदा राज्य में अमरेली प्रान्त के कोड़िनार ग्राम में जो नानाक की प्रशस्ति मिली हैं उसके सातवें और आठवें श्लोक ये हैं—

त्रेताधूमपवित्रितोम्बरचरं स्वाध्यायघोषोत्तरं
स्थानं तीर्थमनोहरं नगरमित्यास्ते किलानश्वरम्।
आर्योपासनया वृषप्रियतया यच्च द्विजेन्द्रश्रिया
व्यक्तं वक्ति फणीन्द्रभूषणभृतो दवस्य संस्थापनम् ॥७॥
गुञ्जा नाम ग्रामस्तदन्तिके वैजवापगोत्राणाम्।
श्रीकरणव्यापारात्प्रीणितचौलुक्यनृपदत्तः ॥८॥

(भावार्थ) तीनों यज्ञाग्नियों के धूम से पवित्रित आकाशवाला, वेद पढ़ने से गूंजता हुआ, एक अविनाशी अत्यन्त सुन्दर तीर्थ स्थान नगर नाम का है जो आर्योपासना (सज्जनों की रहन और दुर्गा की पूजा), वृष की प्रियता (धर्म और बैल का प्रेम) और द्विजेन्द्रश्री (ब्राह्मणों की लक्ष्मी और चन्द्रमा की ज्योति) से स्पष्ट ही सर्पभूषण शिवजी का स्थान जान पड़ता है। उसके पास ही वैजवाप गोत्रवालों का गुंजा नामक ग्राम है जो 'श्री' करने (मोहर करना, मन्त्रीपना) से प्रसन्न चालुक्य राजा ने दिया है।

गुञ्जा ग्राम बड़नगर (आनन्दपुर=नगर) के नैर्ऋत्यकोण में चार मील पर है और एक तरह बड़नगर का ही भाग गिना जाता था क्योंकि इसकी प्रथम प्रशस्ति के नवें श्लोक में नानाक के पूर्वज सोमेश्वर को गुंजावासी कहा है और दूसरी प्रशस्ति के पहले श्लोक के आनन्दपुरवासी कहा है। इसलिए गुंजा के निवासी वैजवाप नागर ब्राह्मण ही रहे होंगे। और आजकल भी नागर ब्राह्मणों में वैजवाप या वैजवापी गोत्र के लोग हैं परन्तु वे ऋग्वेदी हैं। हुआ करें, क्योंकि प्रवराध्याय के पढ़नेवाले जानते हैं कि एक गोत्र के लोग भिन्न भिन्न वेदों के पढ़नेवाले भी होते हैं। यह असंशय हो गया कि नागर जाति के ब्राह्मणों में पहले भी वैजवाप गोत्रवाले थे, अब भी हैं।

[८] अब यह विचार करना है कि राणा के वंश के ब्राह्मण होने का सबसे पहला प्रमाण कितना पुराना है और सबसे पिछला कितना नया।

(क) ऊपर विक्रम संवत् १३४२ (ईसवी सन् १२८५) का आबू का लेख और विक्रम संवत् १३३१ (ईसवी सन् १२७४) का चित्तौरगढ़ का लेख उद्धृत किया गया है परन्तु उन दोनों से भी पुराना एक प्रमाण मिलता है। पहले कहा जा चुका है कि एकलिङ्गमाहात्म्य के आदि के आठवें श्लोक के पहले "यदुक्तं पुरातनैः कविभिः" लिखा है। यह श्लोक शक्तिकुमार के राज्य के आटपुर अथवा आड़पुर (जो पहले मेवाड़ की राजधानी थी) के लेख में से उद्धृत है जो संवत् १०३४ विक्रमी अर्थात् ईसवी ९७७ का है, अर्थात् चित्तौड़गढ़ वाले लेख से तीन सौ वर्ष पुराना है! इसकी नक़ल ज्ञानचन्द्र यती ने टाड साहब के लिए की थी और मांडल के जैन-भाण्डार में रक्खी हुई है। ऐसे ही जयपुर राज्य के अन्तर्गत चाटसू में गुहिलोत बालादित्य के राज्य का बिना संवत् का एक शिलालेख मिला है जिसमें उनके पूर्वज भर्तृभट्ट का वर्णन यों किया है—

ब्रह्मक्षत्रान्वितोऽस्मिन्समभवदसमे रामतुल्यो विशल्यः
सौ(शौ)र्याढ्यो भर्तृप(भ)ट्टो रिपुभटविटपिच्छेदकेलीपटीयान्॥७॥

(भावार्थ) इस लासानी वंश में भर्तृभट्ट हुआ जो परशुराम की तरह ब्रह्म और क्षत्र तेजों से युक्त था, तथा निष्कंटक, वीर, तथा वृक्षरूपी वीर शत्रुओं के काटने के विनोद में निपुण था।

इसमें 'ब्रह्मक्षत्रान्वित' शब्द का स्वारस्य यह है कि 'ब्रह्म और क्षत्र तेजों से युक्त' और 'ब्रह्मक्षत्रिय वंश का' दोनों अर्थ हो सकते हैं। राजा की तुलना भी परशुराम से की है जो जन्म से ब्राह्मण होकर कर्म से क्षत्रिय हो गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लेख को पण्डित गौरीशङ्करजी ओझा विक्रम संवत् ११०० के पास का मानते हैं परन्तु मैं कम से कम एक सदी इससे भी पहले का मानता हूँ।

(ख) जोधपुर के राजा जसवंतसिंहजी (ईसवी सन् १६३४—१६८१) के दीवान मूता नेणसी (मेहता नयनसिंह) ने एक ख्यात अर्थात् इतिहास की पुस्तक लिखी है जो बहुत प्रामाणिक मानी जाती है। उसके दूसरे भाग में शीशोदिया राजवंश के बारे में एक डिंगल भाषा का छप्पय उद्धृत किया है—

आदि मूल उतपत्ति ब्रह्म पण क्षत्री जाणां।
आणँदपुर सिणगार नयर आहोर बखाणां।
दल समूह राव रांण मिले मंडलीक महाभड़।
मिलै सबै भूपती गरू गहलोत नरेस्वर।
एकल मल्ल धू ज्यूं अचल कहे राज बापै कियो।
एक लिङ्ग देव था टूठतां राजपाट इण पर दियो॥१॥

(भावार्थ) पहले वह ब्राह्मण से उत्पन्न हुआ और फिर क्षत्रिय जाना गया, आनन्दपुर की वह शोभा था और आहोर उसकी राजधानी बरनी जाती है। बड़े वीर, राव, राणा और सामन्त उसके नीचे थे और सब राजा और गुरु गहलोत राजा से मिल गये। अकेले बहादुर बापा ने ध्रुव की तरह अचल राज किया। एकलिंग देव ने प्रसन्न होकर उसको राजपाट दिया।

इस कविता में आगे जाकर यह भी लिखा है कि बापा का पुत्र गुहादित (गुहादित्य, गुहदत्त) था और इस डिङ्गल कवि का नाम भैरव था।

(ग) उन्नीसवीं सदी के मध्यभाग में मुंशी करीमुद्दीन ने एक "तवारीख़ मालवा" लिखी है जिसमें और और रियासतों के साथ बड़वानी रियासत का भी इतिहास है जिसमें शीशोदियों की एक शाखा का राज्य है। मुंशीजी के लेख का सार यह है—"इस राजवंश की राजधानी पहले चित्तौड़ थी और फिर अदासगढ़ हुई। (बड़वानी) वंश का स्थापक धनक था। वह ब्राह्मण था और गहलोत कहलाता था। (इसके आगे उदय से लेकर ग्रहादत तक लम्बा कुर्सीनामा है) ग्रहादत का पुत्र श्रीबापाजी था। उसने शिव का आराधन किया। एक दिन चित्तौड़ का राजा निःसन्तान मर गया तब यह निश्चय हुआ कि जिसे हाथी राजा वरण करे वही राजा हो। बापा को, जो इस समय वहाँ मौजूद था, हाथी ने तीन दफ़ा गले में माला पहनाई। यों राजा बने पीछे एक दिन उसकी आँखें दुखीं तब एक वैद्य ने शराब में दवाई घोल कर उसकी आँखों में लगा उसे चङ्गा किया। पीछे बापा ने ओषधि का हाल पूछा और सब हाल सुन कर वह बेत की तरह काँपने लगा और बोला—"मैं ब्राह्मण हूँ। तुमने मुझे शराब पिला दी और मेरी जाति खो दी" इस पर उसने पिघला हुआ शीशा पी लिया जिससे कि वंश का नाम 'शीशोदिया' हो गया। बापाजी का बड़ा पुत्र खुमाण चित्तौड़ का राजा हुआ और दूसरा पुत्र धनक खुमाण के डर से चित्तौड़ छोड़ कर नर्मदा तट में विन्ध्याचल को भाग गया।"

[९] अब तक जितना कुछ जाना गया है उसका सिंहावलोकन कर जाइए। वंश का स्थापक एक गुहदत्त था जिसके नाम से वंश गुहिल-पुत्र, गोभिलपुत्र, गूहलोत, गेहलोत आदि कहलाया। गुहिल गुहदत्त का छोटा और अनुकम्पा का रूप है जैसे देवदत्त का देवल। कुछ पिछले लेखों में बप्प, बप्पक या बापा को वंश का स्थापक लिखा है परन्तु वह गुहदत्त के वंश में ही एक राजा था। शक्तिकुमार के विक्रम संवत् १०३४ के लेख से जाना जाता है कि गुहदत्त के पूर्वज आनन्दपुर से आये थे, स्वयं गुहदत्त नहीं। यही 'एकलिङ्ग माहात्म्य' से जाना जाता है। उसीसे यह जाना जाता है कि आनन्दपुर अर्थात् बड़नगर से आनेवाले ये लोग नागर ब्राह्मण थे। उनका गोत्र वैजबाप था, उनके तीन प्रवर थे और वे यजुर्वेदी थे। और प्राचीन समय से लेकर मूता नेणसी की ख्यात और मुंशी करीमुद्दीन की तवारीख़ मालवा तक यह कथानक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महामहोपाध्याय डाक्टर गङ्गानाथ झा ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रमशः चला ही आता है कि राणा का वंश ब्राह्मणों से निकला है।

[१०] अब यह प्रश्न उठता है कि जब शीशोदिये अर्थात् गुहलोत ब्राह्मण थे तब वे क्षत्रिय क्यों कर हो गये? इस प्रश्न के उत्तर में जो प्रमाण और युक्तियाँ मिली हैं और उनके सहारे जो कल्पनायें मैंने की हैं वे 'सरस्वती' की अगली संख्या में प्रकाशित की जायँगी क्योंकि आज का लेख बहुत बढ़ गया है। वे सब एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के जर्नल में छप चुकी हैं। सरस्वती के इन दोनों लेखों को मिलाने से सोसाइटीवाले लेख का सार पूरा होगा। फिर गुहिलोतों के पुराने राजाओं के इतिहास पर एक लेख मैं और लिखूँगा परन्तु उसका उनकी उत्पत्ति से कुछ सम्बन्ध नहीं है। उत्पत्ति के विषय पर विचार करनेवाले मोहनलाल विष्णुलाल पंड्याजी सरीखे सज्जन इन्हीं दोनों पर जो चाहें लिखें, जिससे इतिहास का उपकार हो।

देवदत्त रामकृष्ण भांडारकर।

महामहोपाध्याय
डाक्टर गङ्गानाथ झा, एम० ए०।

सरस्वती के पाठकों को देशीय विदेशीय भूत पूर्व तथा वर्तमान अनेक गण्य मान्य महानुभावों के जीवन-चरित्र पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। भारतवर्ष के प्रायः सबही प्रांतों के विशिष्ट पुरुषों का बहुत कुछ परिचय मिल चुका है। परन्तु मिथिला के प्रसिद्ध और आदरणीय सत्पुरुषों के सम्बन्ध में भी कुछ लिखने का प्रायः किसी को उत्साह नहीं दिखाई देता। यह निर्विवाद सिद्ध है कि प्राचीन तथा अर्वाचीनकाल में भी मिथिला पण्डित-प्रकाण्ड की जननी बनी रही है। जिन शङ्कर, मिश्र और वाचस्पति मिश्र के विषय में लोकोक्ति है कि "शङ्करवाचस्पत्योः सदृशौ शङ्करवाचस्पती" वे शङ्कर और वाचस्पति मिथिला ही की पुण्य-भूमि में उत्पन्न हुए थे। कवि-शिरोमणि विद्यापति ठक्कुर मिथिला ही के सुपुत्र थे। गङ्गेश उपाध्याय, केशव मिश्र और जयदेव मिश्र प्रभृति ने मिथिला ही को अलङ्कृत किया था। तात्पर्य यह है कि षड्दर्शन के तत्रापि विशेषतः न्याय और मीमांसा के, मिथिला में अद्वितीय विद्वान् होते आये हैं। संस्कृत के विद्वानों की यदि गणना की जाय तो आज भी भारत के किसी प्रान्त से मिथिला-देश पीछे न पड़ेगा, प्रत्युत जहाँ अब भी मीमांसकप्रवर श्रीचित्रधर मिश्र, विद्यावाचस्पति श्रीमधुसूदन झा, दार्शनिक-शिरोमणि श्रीगंगानाथ झा, वैयाकरण-केसरी श्रीपरमेश्वर झा और नैयायिकप्रवर श्रीबच्चा झा प्रभृति पण्डिताग्रगण्य उपस्थित हैं, उसको पण्डित-समाज का अवश्य ही अग्रेसर मानना पड़ेगा। खेद की बात है कि ऐसे असाधारण पण्डितों के विषय में सर्वसाधारण को विशेष विदित न हो। अतएव मैंने सरस्वती के पाठकों को भूतपूर्व तथा वर्तमान आदर्श मैथिलों का यथावकाश परिचय देने का सङ्कल्प किया है। मैं सर्वतः प्रथम म्योरसेंट्रल कालेज इलाहाबाद के वर्तमान संस्कृत प्रोफ़ेसर श्रीयुत गङ्गानाथ झा का वृत्तान्त संक्षिप्त में निवेदन करता हूँ।

पं० श्रीगङ्गानाथ झा का जन्म सन् १८७२ ई० के सेप्टेम्बर की २५ तारीख़ को मौज़े गन्धवारि ज़िला दरभङ्गा में हुआ था। मैथिल ब्राह्मणों में श्रोत्रिय-वंश सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। ये इसी श्रोत्रिय-वंश के पाली शाखावाले हैं। इनके पिता का नाम तीर्थनाथ झा था, पर वे धरानाथ झा के नाम से अधिक प्रसिद्ध थे। पण्डित तीर्थनाथ झा वास्तव में बड़े पुण्यात्मा और तीर्थस्वरूप, परम महानुभाव थे। उन्होंने अवश्य ही बहुत पुण्य का सञ्चय किया होगा जिसके फलस्वरूप उनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डितजी के सदृश पुत्र मिले। पण्डितजी भी अपने भाइयों में मध्यम हैं।

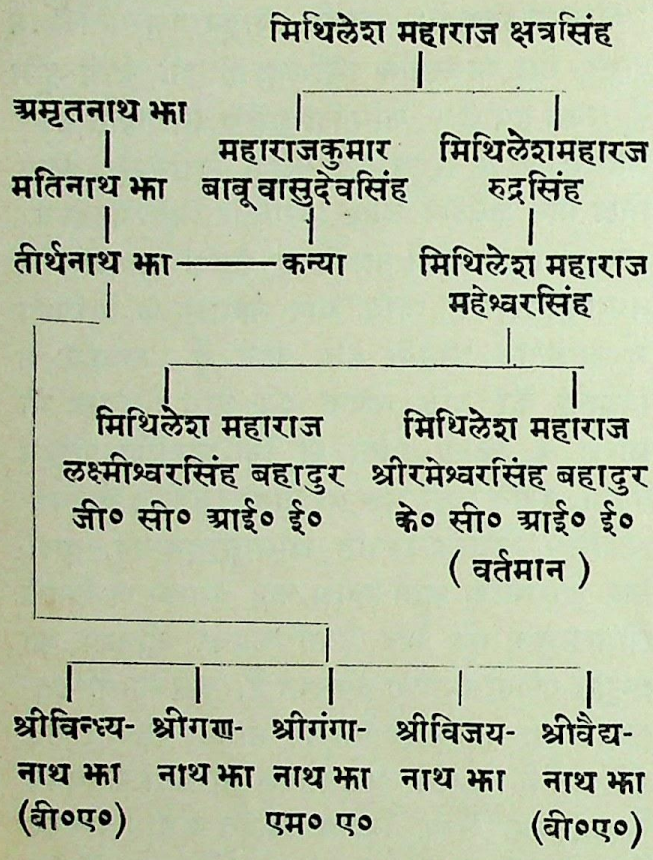

जैसा कि ऊपर के वंश-वृक्ष से विदित होता है श्रीमान् महाराज बहादुर दरभङ्गा से पण्डितजी का सम्बन्ध समीप है।

बहुत बाल्यावस्था में पण्डितजी की शिक्षा का भार सौराठ ग्राम के पण्डित रङ्गे मिश्र को सौंपा गया। इनकी अपूर्व प्रतिभा देख कर स्वर्गीय महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह बहादुर इतने प्रसन्न हुए कि सन् १८७९-८० ई० में जब इनकी अवस्था केवल ७-८ वर्ष की थी, उन्होंने इनकी शिक्षा की देख-रेख अपने ऊपर ले ली और इनको राज-स्कूल दरभङ्गा में भर्ती करा दिया। उस समय राजस्कूल के हेडमास्टर मि० एस० एच० वाटलिंग थे। वे भी इनके पढ़ने लिखने से बहुत सन्तुष्ट रहते थे, यहाँ तक कि वर्ष समाप्त हुए बिना भी इनको एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में चढ़ा दिया करते थे। सन् १८८६ ई० में इन्होंने केवल १३ वर्ष ६ महीने की अवस्था में कलकत्ता यूनिवर्सिटी की एंट्रेंस परीक्षा पास कर ली। इसके अनन्तर महाराज बहादुर की आज्ञानुसार क्वीन्स कालेज बनारस में पढ़ने लगे। इस समय बनारस में भी कलकत्ता यूनिवर्सिटी की पढ़ाई थी। सन् १८८८ ई० में इन्होंने प्रथम श्रेणी में एफ़० ए० पास किया। यूनिवर्सिटी भर के उत्तीर्ण छात्रों में ग्यारहवाँ और पश्चिमोत्तर प्रान्तवालों में इनका पहला नम्बर रहा। ऐसी योग्यता से परीक्षा में उत्तीर्ण होने के कारण इनको पश्चिमोत्तर गवर्नमेंट स्कालरशिप (छात्र-वृत्ति) एवं विजयानगरम् स्कालरशिप दिया गया। संस्कृत में सर्वोत्कृष्ट रहने के कारण इनको मित्र-मेडल भी मिला। क्वीन्स कालेज के छात्रों में मि० ज्योतिप्रसाद और ये फिज़िक्स में ब्रैकेटेडफ़र्स्ट (तुल्ययोग्यता के पाये गये) थे इसलिए टकर स्कालरशिप पाने का भी इनको अधिकार था पर बीकोर्स (गणित तथा विज्ञान भाग) न लेने के कारण इन्होंने वह स्कालरशिप न लिया। इसके एक वर्ष बाद सन् १८८९ में मिथिला के सुप्रसिद्ध वैयाकरण और धर्मशास्त्री पं० हर्षनाथ झा की कन्या से इनका विवाह हुआ। कालेज के प्रिन्सिपल डाड तथा राइट साहब के एवं प्रोफ़ेसर वेनिस साहब श्रीयुत अभयचरण सन्याल, श्रीयुत उमेशचरण सन्याल, और पं० विन्ध्येश्वरीप्रसाद शुक्ल प्रभृति के ये कृपापात्र और प्रिय छात्र थे। सन् १८९० ई० में ये बड़ी योग्यता के साथ इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की बी० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। इस परीक्षा में इनका नम्बर यूनिवर्सिटी में प्रथम रहा। फिलासफ़ी में आनर्स मिला। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी सन् १८८९ ई० में स्थापित हुई थी। इस प्रकार इस यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएटों के ये द्वितीय दल में परिगणित हैं। बी० ए० पास करने के अनन्तर इन्होंने संस्कृत विषय लेकर एम० ए० का अध्ययन आरम्भ किया परन्तु इस समय एम० ए० के अध्ययन का कोई प्रबन्ध किसी पाठशाला में न रहने के कारण इनको अपने तौर पर काशीस्थ पण्डित श्रीजयदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिश्र के पास पढ़ना पड़ा। सन् १८९२ ई० में द्वितीय श्रेणी में एम० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण होकर ये महामहोपाध्याय श्रीशिवकुमार मिश्र और म० म० पं० कैलाशचन्द्र शिरोमणि भट्टाचार्य्य के पास दो वर्ष तक दर्शन शास्त्र पढ़ते रहे। स्वर्गीय महाराजा लक्ष्मीश्वरसिंह बहादुर इनको बराबर ४०) रुपया मासिक छात्रवृत्ति देते रहे। पण्डितजी १८९४ ई० में काशी छोड़ कर महाराज बहादुर दरभङ्गा की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने इनका विद्या में असीम अनुराग देख कर इनको पुस्तकालयाध्यक्ष नियत किया। जब इन्होंने पुस्तकालय का काम सम्हाला तब वहाँ पुस्तकों की केवल आठ अलमारियाँ थीं परन्तु महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह सदृश विद्या-रसिक स्वामी का इस ओर अनुराग देख कर पण्डितजी ने उक्त पुस्तकालय में केवल चार वर्ष के भीतर पुस्तकों की क़रीब सौ अलमारियों का संग्रह करके विचित्र उन्नति दिखला दी। इनमें भारतवर्ष-सम्बन्धी पुस्तकों का, विशेषतः ऐतिहासिक ग्रन्थों का, विलक्षण संग्रह है।

इस बीच में शङ्करपुर के स्वर्गीय बाबू जनेश्वरसिंह से पण्डितजी की गाढ़ मित्रता हुई। यहाँ तक कि जब बड़ी महारानी और वर्तमान महाराज बहादुर के बीच में वैमनस्य की सम्भावना हुई तो उक्त महारानी के अनुयायी बाबू साहब की मैत्री के अनुरोधवश सन् १९०२ में इनको दरभंगा राजकीय सेवा से अपना सम्बन्ध पृथक् करना पड़ा।

जिन दिनों में पण्डित जी पुस्तकालय के अध्यक्ष रहे इन्होंने अपने अवकाश का बहुत ही अच्छा उपयोग किया. अर्थात् अनेक उपयोगी ग्रन्थ लिख डाले। महामहोपाध्याय पण्डित श्रीचित्रधर मिश्र सदृश अद्वितीय मीमांसक के पास पूर्व-मीमांसा का विशेषरूप से अध्ययन करके इन्होंने कुमारिल भट्ट के श्लोकवार्तिक और तन्त्रवार्तिक का अँगरेज़ी में अनुवाद किया। ये दोनों अनुवाद एशियाटिक सोसाइटी, बङ्गाल द्वारा प्रकाशित हो रहे हैं।

इसी समय म्योर सेंट्रल कालेज के संस्कृत प्रोफ़ेसर महामहोपाध्याय पं० आदित्यराम भट्टाचार्य्य ने पेन्शन ले ली और २२ नवम्बर सन् १९०२ को पंडितजी इस प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त किये गये। ये सन् १९०५ में इलाहाबाद युनिवर्सिटी के फ़ेलो चुने गये। सन् १९०७ में डाक्टर टीबो के साथ इन्होंने 'इंडियन थाट' नाम का मासिकपत्र निकालना आरंभ किया जिसमें भारतवर्ष के दर्शनग्रन्थों का अँगरेज़ी में अनुवाद देकर पाश्चात्य विद्याविशारदों का असीम उपकार कर रहे हैं।

पण्डितजी ने जो पुस्तकें लिखी हैं उनका विवरण इस प्रकार है :—

संस्कृत-ग्रन्थ।

१—भक्ति-कल्लोलिनी—शाण्डिल्य के भक्ति-सूत्र की छन्दोबद्ध टीका।

२—भावबोधिनी—जयदेव के "प्रसन्न राघव" की टीका। अँगरेज़ी भाषा में अनुवादित ग्रन्थ।

१—काव्यप्रकाश।
२—योगसार-संग्रह।
३—सांख्य-तत्त्व-कौमुदी।
४—देवी गीता।
५—छान्दोग्य उपनिषद् शाङ्कर भाष्य-सहित।
६—बृहदारण्यक उपनिषद्।
७—योगसूत्र व्यास-भाष्य एवं वाचस्पत्य टीका सहित।
८—श्लोकवार्तिक।
९—तन्त्रवार्तिक।
१०—वैशेषिक सूत्र प्रशस्तपाद भाष्य-सहित।
११—खण्डन-खण्डखाद्य।
१२—प्रभाकर मीमांसा।
१३—तर्क भाषा।

अँगरेज़ी भाषा में प्रबन्ध।

१—प्रोफ़ेसर ड्यूसन की "फिलोसोफ़ी आफ़ उपनिषद्" की समालोचना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—जैन शास्त्रमाला की समालोचना।

३—"Universal Brotherhood" (सार्वजनिक बन्धुता)

४—"Indian Retoric" (भारतीय साहित्य)

५—"Sanskrit Prose" (संस्कृत गद्यकाव्य)

६—"Eastern Philosophy and Western Science" (भारतीय दर्शन और पाश्चात्य विज्ञान)

७—"Ethics of the Upanishads" (उपनिषद् की नीतिशिक्षा)

हिन्दी में प्रबन्ध।

१—पुराणों के अनुसार सृष्टि-प्रक्रिया

पूर्वोक्त ग्रन्थों में प्रायः अनेक ग्रन्थ "मेडिकल हाल प्रेस बनारस" और "थियोसोफ़िकल पब्लिशिङ्ग कम्पनी मद्रास" द्वारा प्रकाशित हुए हैं।

इनके अतिरिक्त पण्डितजी जिन ग्रन्थों को सम्प्रति लिख रहे हैं उनका उल्लेख नीचे करते हैं:—

१—अद्वैतसिद्धि का अँगरेज़ी में अनुवाद।

२—न्याय सूत्र पर वात्स्यायन भाष्य एवं उदयकर के वार्तिक का अँगरेज़ी-अनुवाद।

३—मीमांसा सूत्र पर अँगरेज़ी टीका तथा अनुवाद।

४—एशिया के विविध दार्शनिक मतों का हिन्दी में सविस्तर विवरण।

५—संस्कृत-गद्य और पद्य के आदर्श का संग्रह।

इस समय पंडितजी की अवस्था केवल ३७ वर्ष की है पर इस थोड़े से समय में इन्होंने शिक्षित-समाज का जितना उपकार किया है उसका परिचय आप लोगों को पंडितजी के ग्रन्थों की नामावली पढ़ने से भलीभाँति हो सकेगा। संस्कृत के गम्भीर से गम्भीर दर्शनग्रन्थ तथा उपनिषद् आदि का अँगरेज़ी में यथावत् अनुवाद करना साधारण कार्य नहीं है। पंडितजी अँगरेज़ी के प्रौढ़ लेखक हैं। जिन ग्रन्थों के समझने के लिए बड़ी प्रखर बुद्धि की आवश्यकता है उनका विदेशीय भाषा में ज्यों का त्यों भाव प्रकट कर देना अवश्यही अगाध पाण्डित्य का परिचय देता है।

पाठक! बड़े महत्त्व की बात यह है कि पण्डितजी की जिस तरह अगाध विद्या है वैसेही इनका विनय भी सराहने योग्य है। कालेज में पाँच घंटा पढ़ाने के बाद जो कुछ अवकाश मिलता है आप उसका प्रायः पुस्तकावलोकन और ग्रन्थ-लेख में उपयोग करते हैं। इसी से लोगों से मिलने मिलाने वा गप्प में आप निरर्थक समय नहीं बिताते। इससे प्रायः बहुत लोगों के हृदय में अन्यथा कल्पनायें उठने लगती हैं, पर जहाँ तक मेरा पण्डितजी से सम्पर्क रहा है मैं दृढ़ता-पूर्वक कह सकता हूँ कि आपमें अभिमान का लेश नहीं, प्रत्युत "विद्या ददाति विनयम्" को भली भाँति चरितार्थ कर रहे हैं। मुझे स्मरण है कि एक दिन पण्डितजी ने प्रसङ्ग-वश कहा था कि "मैं अपने छात्रों का भी अभ्युत्थान देकर सत्कार करता हूँ।" कहिए, क्या यह पराकाष्ठा का विनय नहीं है? धर्म की ओर भी आपकी इतनी रुचि है कि प्रति वर्ष बड़े दिन की छुट्टी में अथवा ग्रीष्मावकाश में आप सकुटुम्ब किसी न किसी तीर्थस्थान में प्रायः जाया करते हैं।

आपके इसी धर्मपरायणता आदि सद्गुणों का यह फल है कि आज आपने उस सौभाग्य को प्राप्त किया है जो लक्षावधि मैथिलों में किसी को उपलब्ध नहीं है। कितने गौरव की बात है कि आप मैथिलों में सर्व प्रथम एम० ए० होने के अतिरिक्त मीमांसा के प्रभाकरमत पर अँगरेज़ी तथा संस्कृत में प्रबन्ध लिखने के कारण नवंबर की १८ तारीख़ को "डाक्टर आफ़ लेटर्स" की उपाधि से भूषित किये गये हैं। मिथिला का परम सौभाग्य है और हमको अवश्यही इस बात का गौरव है कि आप यूनिवर्सिटी की चरम उपाधि प्राप्त कर चुके। यह भी बड़े हर्ष की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि श्रीमान् की साहित्य-सेवा पर प्रसन्न हो हमारी गवर्नमेंट ने भी इस वर्ष आपको महामहोपाध्याय की पदवी प्रदान कर गुणग्राहकता दिखाई है।

इतना हमको अवश्य कहना है कि पण्डितजी जैसे योग्य व्यक्ति मिथिला की सामाजिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी अनेक त्रुटियों को देखते हुए भी उनके निराकरण के लिए कोई चेष्टा नहीं करते। इसे देख कर मैथिल-समाज के कतिपय लोगों की अवश्य ही कुछ मनोहानि होती है। पण्डितजी से हमारी हार्दिक प्रार्थना है कि मिथिला के साथ अवश्य ही कुछ सहानुभूति प्रकट करें। मिथिला को इस समय अग्रेसर की आवश्यकता है। यदि आप जैसे महानुभावों में से कोई अग्रेसर बन खड़े हों तो अनुयायियों की त्रुटि न रहेगी।

रामभद्र ओझा।

सेवा।

किस तरह से हम अपने जीवन को आनन्दमय बना सकते हैं? वह कौन सी वस्तु है जिसके प्राप्त करने से मनुष्य का जन्म सफल हो जाता है और वह कौन सी बात है जिससे मनुष्य में प्रबल शक्ति आ जाती है? ऐसे ऐसे प्रश्न भूतकाल के हज़ारों मनुष्यों ने किये हैं, वर्तमान के लाखों मनुष्य कर रहे हैं और भविष्यकाल के करोड़ों मनुष्य करेंगे। पाठक, क्या आपको भी ऐसे प्रश्नों के उत्तर में कुछ प्रेम है?

इन्हीं प्रश्नों को दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि हमारे जीवन का तात्पर्य क्या है? बहुत से मनुष्य इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए अपना सर्वस्व देने के लिए तैयार थे और बहुत से अब भी तैयार हैं। तो क्या फिर इस प्रश्न का ठीक उत्तर मिल सकता है? हाँ, अवश्य प्राप्त हो सकता है क्योंकि कहा है कि "जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ"।

इसके जवाब में एक बड़ी गंभीर परन्तु सीधी सादी बात है। यदि हम इसी बात को अपने जीवन का धरा बना लें और ख़ूब मज़बूती से पकड़ लें तो वह हमारे सम्पूर्ण जीवन को आनन्दमय, प्रभावशाली और शक्तिमान् बना देगी और यदि सब लोग इसी नियम पर चलने लगें तो इस पुरानी दुनिया की बिलकुल काया पलट जाय, और यह जगत् अन्धकारमय और शोकमय होने के बदले लोगों को प्रकाशमय और आनन्दमय प्रतीत होने लगे और उन लोगों को जो दुनिया के व्यसनों में पड़े हुए अपने को सुखी समझते हैं मालूम हो जाय कि असली आनन्द के सामने सांसारिक सुख ऐसा तुच्छ और मिथ्या है जैसे सोने के सामने पीतल और हीरे के सामने काँच। तब वे लोग यह भी समझ जायँगे कि जिन मनुष्यों को हम नीच और अधम समझते रहे हैं वे हमसे किसी तरह से कम नहीं हैं बल्कि शायद वह हमसे अच्छे हैं क्योंकि उनका जीवन हमारे जीवन से अधिक आनन्द से व्यतीत होता है। यदि इस बात को, इस नियम को, हम ग्रहण करलें तो बहुत से सामाजिक प्रश्न, जो हमारे सामने उपस्थित हैं, हल हो जायँगे और मनुष्य मात्र के आनन्द की वृद्धि होगी। बहुत से लोग, जिन्हें अपना जीवन वृथा मालूम होता है, इस नियम को ग्रहण करने से यह प्रतीत करने लगेंगे कि हमारा जन्म किसी मुख्य उद्देश के लिए हुआ है। वह अपने जीवन को लाभकारक, प्रभावशाली और आनन्दमय बनावेंगे। अमीरों और ग़रीबों में से बहुत से लोग ऐसे हैं जिनका समय काटे ही नहीं कटता; परन्तु यदि वे इस सीधे सादे नियम पर चलने लगें तो उन्हें यह मालूम हो जायगा कि समय बहुत थोड़ा है और कार्य्य बहुत अधिक है इसलिए बड़ी शीघ्रता करने की आवश्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कता है। वे कहेंगे कि बड़े शोक की बात है कि हमने वृथा ही इतना समय ग़लत रास्ते पर चलने के कारण खो दिया। परन्तु इसमें हमारा क्या दोष? हम तो जानते ही न थे कि कौन सा मार्ग ठीक है।

बहुधा लोगों ने सच्चा, प्रभावशाली और आनन्द-मय जीवन व्यतीत किया है और अब भी कर रहे हैं। इनसे हमें क्या शिक्षा मिलती है? इन सबमें कौन सी मुख्य बात थी जिससे वे सफलता प्राप्त कर सके? मेरे विचार में यह बात आती है कि जहाँ तक यह कोशिश हुई है कि हम अपने जीवन को बड़ा और प्रभावशाली कैसे बनावें उतना ही लोग सफलता से दूर रहे हैं। परन्तु यदि उन्होंने इसी नियम पर अर्थात् हमारे प्रश्न के उत्तर पर अपने जीवन की इमारत बनाई है तो वे अपने कार्य्य में सफल हुए हैं और उनकी इमारत बहुत मज़बूत और पक्की तैयार हुई है।

पाठक आप कहेंगे कि इतना तो बक गये परन्तु मतलब की बात नहीं कही। लीजिए, बात तो कहते हैं इसे ख़ूब जाँच लीजिए यदि ठीक निकले तो उसे ग्रहण कर लीजिएगा, छोड़िएगा नहीं और दूसरों को भी उससे सूचित कीजिएगा। बहुधा लोगों का ख़याल रहा है कि जो मनुष्य संसार में प्रभुता, सफलता और आनन्द प्राप्त करना चाहता है उसे चाहिए कि अपने सारे विचारों को स्वयं अपने ही लिए लगादे। परन्तु यह भ्रम है। संसार का यह अटल नियम कि वही मनुष्य अपने जीवन को (Successful) सफल कर सकता है जिसने दूसरों की सेवा के लिए अपने शरीर को अर्पण कर दिया है अर्थात् जितना अधिक हम दूसरों की सेवा करने के लिए और उनके दुःख-विमोचन के लिए तत्पर रहते हैं उतना ही अधिक हमारा जीवन प्रभावशाली, और आनन्दमय होता है। सेवा और प्रेम ही संसार के आनन्द बढ़ाने के दो मूल मंत्र हैं। प्रिय पाठक, सेवा से मेरा मतलब यह नहीं है कि अपने पेट के लिए किसी की ग़ुलामी करना शुरू कर दीजिए। सेवा से मेरा तात्पर्य यह है कि रोगियों को औषधि दीजिए, वस्त्र-विहीनों को वस्त्र पहनाइए, जिनके दिल टूट गये हैं उन्हें ढाढस बँधाइए, जो दुर्बल हैं उन्हें बल दीजिए, जो निर्धन हैं उनकी धन से सहायता कीजिए, जो अज्ञानी हैं उनके लिए ज्ञान रूपी प्रकाश का दीपक जलाइए और मनुष्य मात्र में न्याय से प्रेम और अन्याय से घृणा पैदा कर दीजिए। लोगों में यह भाव उत्पन्न कर दीजिए कि संसार को आनन्दमय बनाना हो तो वे अपने जीवन का कर्तव्य समझने लगें और उन्हें यह भी बता दीजिए कि इस कार्य्य की सफलता के लिए केवल सेवा ही एक मुख्य साधन है।

संसार में वही लोग बड़े और महात्मा गिने जाते हैं जिन्होंने अपना सारा जीवन दूसरों की सेवा में व्यतीत किया है। यदि आप संसार में अपने यश को अटल करना चाहते हो तो दूसरों की सेवा में अपने आपको भुला दो, दूसरों की सेवा रूपी हवन में अपने आपको आहुति दे दो, सारा देश, नहीं नहीं सारा संसार, आपके नाम को सोने के अक्षरों से लिखेगा, और जब तक सूर्य्य और चन्द्र इस पृथ्वी पर रहेंगे आपका नाम भी मौजूद रहेगा।

जो मनुष्य आनन्द प्राप्त करना चाहता है उसे यह याद रखना चाहिए कि संसार का अटल नियम है कि "इस हाथ दे और उस हाथ ले।" हमको उतना ही आनन्द मिल सकता है जितना आनन्द हम दूसरों को देते हैं अर्थात् जितनी हम उनकी सेवा करके उनके दुःख दूर करते हैं और उनके आनन्द को बढ़ाते हैं उतना ही आनन्द हमको मिल सकता है। इसलिए, प्रिय पाठक गण! इस नियम को ग्रहण करके अपने जीवन को इसके अनुसार व्यतीत कीजिए और इस नियम-पालन के फल से फलीभूत हूजिए।

नारायण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों की स्वतंत्रता।

स्वतंत्रता एक ऐसी वस्तु है जिससे कि हर एक जीव हार्दिक स्नेह रखता है। पशु, पक्षी, मनुष्य इत्यादि जितने सृष्टि के जीव हैं हर एक को स्वतंत्रता प्रिय है। देखो, चिड़िया या अन्य पशु पक्षी जब तक पिंजड़ा या कटहरा इत्यादि में बंद रहते हैं कितने मलीन मालूम होते हैं परन्तु उसमें से निकलने या छूटने पर कैसे आनन्दित और प्रफुल्लित होते हैं और फिर फँसना नहीं चाहते। इसका कारण यही है कि वे स्वतंत्रता को प्यार करते हैं, स्वतंत्र होने पर हर एक जगह अपने मन माना जा सकते हैं, बन्धन में पड़े हुए उत्तम से उत्तम पदार्थ के भोजन का आनन्द उनको नरकवत् ज्ञात होता है परन्तु स्वतंत्र रहने पर स्वेच्छा से विचरते हुए सूखे तृण का भी भोजन उनको स्वर्गवत् सुख देता है। सत्य है, स्वतंत्रता ऐसी ही वस्तु है और इसकी इच्छा स्वाभाविक ही है। ऐसी अवस्था में जो मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए यथाशक्ति चेष्टायें किया करते हैं यह कोई अनोखी बात नहीं है।

आजकल भारतवर्ष में हमारी बहिनें भी स्वतंत्र होने की इच्छा कर रही हैं। कोई कोई बहिनें मेम लोगों का अनुकरण करने के लिए स्वतंत्रता चाहती हैं। कोई कोई विद्या पढ़ने के लिए आज़ादी चाहती हैं। कोई कोई सभा-सुसाटियों में जाने के लिए परतंत्र रहना बुरा समझती हैं, किसी किसी का मत है कि जिस दिन स्त्रियाँ स्वतंत्रता-लाभ करेंगी उसी दिन इस बूढ़े भारत का अंत होगा। कोई कोई कहते हैं कि अपनी पूर्वजाओं का अनुकरण करनेवाली स्त्रियों को स्वतंत्रता मिलनी चाहिए इत्यादि विचार हर एक के हृदय में स्वतंत्र होने अथवा स्वतंत्रता पाने के हेतु उत्पन्न हो रहे हैं।

अवश्यमेव यह विचार बहुतही गंभीर है कि स्त्रियों को कैसी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए, कैसी स्वतंत्रता लाभ करने से स्त्रियाँ अपनी उन्नति कर सकेंगी। यह कोई साधारण बात नहीं है क्योंकि इस बात पर भारत का बहुत कुछ उलट फेर होना निर्भर है। यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत-ललनायें परतंत्र रहते रहते प्रायः बुद्धिहीन हो गई हैं, पर अब उन्हें उसी अवस्था में रखना और स्वतंत्र न होने देना कहाँ तक न्याय-सङ्गत है, हम अपने विचारशील पाठकों ही पर छोड़ती हैं। हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हम लोगों को ऐसी आज़ादी दीजाय जैसी कि आज कल सभ्य समाज कहलानेवालों की लेडियों को मिली हुई है। नहीं, कदापि नहीं? हमारा अभिप्राय केवल यह है कि हम लोगों को वैसीही स्वतंत्रता मिलनी चाहिए जैसी कि प्रताप के समय में क्षत्राणियों को तथा पूर्व समय में ऋषि-पत्नियों तथा राज-पत्नियों या राजकुमारियों को मिलती थी जो कि अपने कर्तव्य का पालन भलीभाँति करती थीं। अपने देश तथा राज्य की रक्षा करती थीं, अपने अतिथियों का भले प्रकार सत्कार करती थीं, अपने पातिव्रत के प्रभाव को जानती थीं, पति को किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाती थीं, अपने पति और पुत्रों को उत्साह दिलाती थीं, बड़े बड़े शास्त्रज्ञों को शास्त्रार्थ में हराती थीं, राज्य के कामों में योग देती थीं, युद्ध में शत्रुओं को पराजित करती थीं, अपनी संतान को सुसंतान बनाती थीं। ये सब गुण-लाभ उनको स्वतंत्रता से प्राप्त होते थे। बस उन्हीं का अनुकरण करनेवाली हम लोगों को भी वैसीही स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। आँख बन्द कर पश्चिमी लेडियों का अनुकरण करनेवाली स्वतंत्रता से तो हमारी वर्तमान परतंत्रता ही भली है। ऐसी उन्नति के करने से यह कहीं ज़्यादा अच्छा हो कि हम लोग अपनी इसी गिरी दशा में रहें। दूसरे इस बात का भी ध्यान रखना उचित है कि वेही स्त्रियाँ स्वतंत्रता की अधिकारिणी हो सकती हैं जो कि पूरी तौर से विद्या पढ़ अपना हानि-लाभ जानती हैं और यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझती हैं कि कैसी स्वतंत्रता से हमारी उन्नति होगी। वास्तव में केवल ऐसी ही भारत-ललनाओं को स्वतंत्रता मिलनी भी चाहिए। दूसरे शब्दों में यह कहना अनुचित न होगा कि आज कल के समय को देखते पूर्ण रूप से विद्या का प्रचार ही हमारी बहिनों के लिए स्वतंत्रता का साधक है और अविद्या रूपी अन्धकार को दूर करना परतंत्रता की जड़ को खोद बहाना है। इसके विपरीत हर एक बहिन का बिना पढ़े लिखे ही पूर्ण स्वतंत्र हो बैठना उसके और स्वदेश दोनों ही के लिए हानि-कारक है। क्या हमारे देश के बहुतेरे नवयुवक स्वतंत्रता या अपना और अपने पूर्वजों का स्वरूप भूल नई सभ्यता को ही पसन्द नहीं करने लगे। वे मद्यपान करना, होटल में जाकर खाना, चाल, ढाल, पहिनाव इत्यादि में पूरी तरह पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण करने में ज़रा भी त्रुटि नहीं करते।

अब यह प्रश्न उठता है कि कैसी और कौनसी तालीम मिलने पर स्त्रियाँ स्वतंत्रता पाने योग्य होती हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि संस्कृत या हिन्दी ही एक ऐसी उत्तम और स्वच्छ शिक्षा है जिसके अच्छी तरह पाने पर शायद ही कोई आदमी नई पश्चिमी सभ्यता से चकाचौंध होता हो। इससे यह स्पष्ट हुआ कि स्त्रियों को यदि स्वतंत्रता देना हो या उनको स्वतंत्रता पाने की अभिलाषा हो तो यह उचित होगा कि भारत-ललनाओं को पहले हिन्दी और संस्कृत का अभ्यास करावें जिसमें कि वे लोग इस नये दीपक की रोशनी की तरफ़ न झुक कर अपने पुराने गौरव और स्वरूप को न भूलें।

याद रहे कि जब इसी प्रकार की स्वतंत्रता और ऐसी ही शिक्षा हमारी ललनाओं को मिलेगी तभी सब बातों का सुधार होगा। इससे हमारा अभिप्राय यह न समझना चाहिए कि हम अँगरेज़ी शिक्षा के विरुद्ध हैं। नहीं, हमको अँगरेज़ी शिक्षा भी मिलनी चाहिए; परन्तु ऐसा कदापि न होना चाहिए कि हमको सारी बातें अँगरेज़ी ही ढँग की ऐसी सिखाई जायँ कि हम पूर्ण रूप से अँगरेज़ हो बैठें।

कुछ थोड़ी सी हमारी बहिनें इस घोर अविद्या के समय में भी अपनी उन्नति कर शिक्षा से परिपूर्ण हुई हैं। परन्तु शोक है कि उनमें बहुतेरी बहिनों का शिक्षित होना और न होना बराबर है क्योंकि जब हम अपनी मातृभाषा और अपनी प्राचीन चाल-ढाल, रहन-सहन को तिलाञ्जलि दे दूसरे का अनुकरण करने लगेंगे तब यह अनुमान हो सकता है कि इस शिक्षा से कहाँ तक हमारी भलाई हो सकती है।

हे जगदीश्वर! हम अबलाओं के हृदय में कुछ ऐसा ज्ञान प्रदान कीजिए जिसमें कि हम लोग अपनी हानि और लाभ जानकर सर्वसुखदायिनी विद्या पाने के योग्य होकर अपना सर्वस्व तन, मन, धन परोपकार में अर्पण करें।

सावित्री देवी।

सतसई-संहार।

[गतांक से आगे]

११—यों दल मिलियत*(?)निरदई,दई†(?)कुसुम से गात।
करधर देखो धरधरा अजौं न उर को जात ॥२२८॥

भगवन्! यह निर्दयी होकर फूलों से गात को ऐसे दल कर मलते हैं, हाथ रख कर देखो मेरी छाती का धड़कना अब तक नहीं जाता, नायकाकी सखीका नायक से उरहना। विषमालंकार॥" (पृ० ७९)

नहीं मालूम पड़ता कि कौन किससे कह रहा है और क्या कह रहा है! यदि "हे भगवन्(?) से "……नहीं जाता' तक की इबारत पर ध्यान देते हैं तब तो ऐसा जान पड़ता है कि नायक के

* मलियत। † दई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामनेही नायिका अपनी सखियों से नायक की शिकायत कर रही है कि—'यह (यह—जो हज़रत सामने खड़े हैं!) मेरे फूलों से गात को निर्दयी होकर ऐसे दल कर मलते हैं कि बस कुछ न पूछो, तुम हाथ रख कर देखो मेरी छाती का धड़कना अब तक बन्द नहीं होता।'

पर जब सोचते हैं कि नायिका तो क्या सामान्य वनिता भी इस प्रकार लज्जा को तिलाञ्जलि देकर सबके सामने इस तरह न कहेगी, और साथ ही जब टीकाकार के इस वाक्य—'नायका की सखी का नायक से उरहना (?)" को देखते हैं तो और ही सन्देह में पड़ जाते हैं कि यह बात क्या है! यह ठीक है, हमने माना कि "नायका (?) की सखी नायक को उरहना (?) या उलाहना दे रही है। तब इसकी (उलाहना देने वाली की) छाती क्यों धड़क रही है? क्योंकि गात तो नायिका का मला गया है न! इसे तो किसी ने कुछ नहीं कहा! और यदि नायिका का गात मला जाने से ही इसकी यह दशा हो गई है तो फिर 'विषमालङ्कार' कैसा? तब तो ख़ासा "असङ्गति" अलङ्कार न होगा? कुवलयानन्द के इस लक्षण और उदाहरण के अनुसारः—

"विरुद्धं भिन्नदेशत्वं कार्यहेत्वोरसङ्गतिः।
विपं जलधरैः पीतं मूर्च्छिताः पथिकाङ्गनाः॥"

विहारी का यह दोहा भी 'असङ्गति' अलङ्कार का उत्तम उदाहरण है:—

"तू मोहन मन गड़ि रही गाढ़ी गड़नि गुवालि।
उठै सदा नटसाल लौं सौतिन के उर सालि॥३२४॥

ओह, इस बखेड़े में पड़ने की क्या ज़रूरत है! जो विद्यावारिधिजी कहते हैं वही सही, इस दशा में भी मानलो कि यहां 'असङ्गति' नहीं 'विषमालङ्कार' ही है:—

"मान लीजे शैख़ जो दावा करे। एक बुज़ुर्गेदीं को हम झुटलाएँ क्या!"

रही, 'उरहना देनेवाली' की धड़कन, सो हो सकता है कि वह दौड़कर आई हो, इसलिए दम चढ़ आया हो और छाती धड़कने लगी हो! इति सर्वं रमणीयम्।

१२—चलत घरै(?)घर घर तऊ, घरी न घर ठहराति।
समुझि उही घर को चलै, भूलि उही घर जाति॥२४६॥

"अपने घर की कोठरी कोठरी में घूमती है, तौभी घरमें घडी भर नहीं ठहरती जानकर भी उसी घर को जाती है, भूलकर भी उसी घरको जातीहै" इत्यादि (पृ० ८५)

यदि कोठरियों की संख्या और उनकी लंबाई चौड़ाई भी लिख देते तो और अच्छा होता! और यह भी लिखने से रह गया कि कोठरी कोठरी में वह क्या ढूँढने के लिए घूमती है, और जल्दी जल्दी घूमती है या आहिस्ता आहिस्ता? क्या उसके घर में कोई बड़ा बरांडा, दालान या कमरा घूमने के लिए नहीं था? और यह और भी विचित्र बात है कि अपनेही घर की कोठरी कोठरी में घूमती है, तौभी घर में घड़ी भर नहीं ठहरती? जब कि वह घर में घड़ी भर भी नहीं ठहरती तो "कोठरी कोठरी में किस वक्त घूमती" है? आख़िर को घूमने में कुछ देर तो लगती ही होगी? मालूम होता है घर में दो एक छोटी छोटी कोठरियाँ होंगी उनकी परिक्रमा जल्द जल्द दो चार मिनट में करके वह चल देती है! क्यों महाराज! यही बात है या कुछ और? पाठकगण! इन तिलिस्मी 'कोठरियों' का दोहे में कहीं पता भी नहीं, न मालूम विद्यावारिधिजी ने यह बेबुनियाद इमारत कहाँ से खड़ी कर दी? तभी तो वह ठहर न सकी धमसे नीचे गिर गई! "घैर" इस निन्दार्थक शब्द का "घरै" बना दिया! कुछ तो चाहिए था!

दोहे का अर्थ है कि—नायिका यह जानकर भी कि घर घर में इसकी चर्चा और निन्दा होती है, उसी के (नायक के) घर को जाती है, और जब प्रेमोन्माद में लोक-चर्चा और निन्दा को भूल जाती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तब भी उसी के घर जाती है; सब कुछ भूलकर भी उसका घर नहीं भूलती! "दीवाना बकारख़्वेश हुशियार"

१३–द्वैज सुधादीधितिकला, यह लखि दीठि लगाय।
मनो अकाश अगस्तिया, एकै कली लखाय॥२५०

"दोयज के चन्द्रमा की अमृत भरी कला को जान दृष्टि लगाकर देख, जैसे आकाशरूपी अगस्त के वृक्ष में एकही कली दिखाई दे रही है [दीधिति चन्द्रमा]। 'मुग्धाहाव, पर्यायोक्ति और उत्प्रेक्षालंकार'॥ (पृ० ८६)

शिव! शिव!! यह देखिए "सुधादीधिति" चन्द्रमा के दो टूक कर दिये! हा दैव! विहारी के काव्यचन्द्र को यह कैसा अकालग्रहण लग गया?

आज से कोई चौदह सौ साल पहले अरब में एक बार हज़रत मोहम्मद साहब ने चाँद के दो टुकड़े किये थे, वह घटना अब तक उनके "मोअ-ज्ज़िज़ों" में "शक़्क़ुलक़मर" के नाम से प्रसिद्ध है। या अब इतने दिनों पीछे भारतवर्ष में विद्यावारिधिजी ने यह "शक़्क़ुलसुधादीधिति" (?) का करश्मा दिखलाया है!!

चन्द्रार्थक "सुधादीधिति" इस समस्तपद में से 'सुधा' निकालकर एक ओर फेंक दी, और 'दीधिति' को एक तरफ़ डाल दिया! और नया तमाशा देखिए 'दीधिति' का अर्थ करते हैं आप "चन्द्रमा"!!! जय विद्यावारिधे! धन्य विद्वद्वृन्द-शिरोमणे! यह अपूर्व अर्थ करके तो आपने अपनी संस्कृतज्ञता की पराकाष्ठा और विद्यावारिधिता की थाह दिखादी!

सच है 'तुलसी आह ग़रीब की कभी न ख़ाली जाय' आपने तो विहारी की कविता को ख़राब किया ही है, पर याद रखिए आपकी यह टीका ही आपकी 'विद्यावारिधिता' के लिए 'अगस्त्यमुनि' हो गया! आपका यह उद्योग 'विषमालङ्कार' का लम्बायमान उदाहरण बन गया! भले मानुषो! यदि कविता का अर्थ समझ में नहीं आता तो यह भी कोई बड़ी बात है कि 'दीधिति' किसे कहते हैं! 'अमरकोश' पढ़नेवाला विद्यार्थी भी जानता है कि 'दीधिति' चन्द्रमा को नहीं, 'किरण' को कहते हैं, (किरण चाहे चन्द्रमा की हो या सूर्य की) चन्द्रमा का नाम 'शीतदीधिति' है, सुधादीधिति' है, इसी प्रकार 'सूर्य' का नाम "तिग्मदीधिति"। किसी कोश या काव्य में केवल 'दीधिति' चन्द्रमा का नाम नहीं आया, आप चाहे किसी भी संस्कृत के विद्वान् से पूछ देखिए। न मालूम आपको यह धोखा किसने दे दिया! कहीं लल्लूलालजी के बहकाने में तो नहीं आगये! कुछ लक्षण तो ऐसेही प्रतीत होते हैं, अच्छा तो ज़रा ठहरिए, 'लाल-चन्द्रिका' देखलें:—

"मुग्धाहाव वर्णन....."सखी का वचन नायका से। दीधिति चन्द्रमा। दूज के चन्द्रमा की कला को अमृत जान तू यह देख दृष्ट लगाकर मानो आकाश-रूपी अगस्त के वृक्ष में एकही कली दिखाई देती है, प्रतीप, पर्यायोक्ति और उत्प्रेक्षालंकार" इत्यादि।

यह जो कहिए, आप लालचन्द्रिका की नक़ल किये बैठे हैं! लल्लूलालजी ने प्रारम्भ में "दीधिति चन्द्रमा" लिखा है, आपने उसे अन्त में स्थापित करके, उसके इधर उधर ब्रैकेट का 'परिवेष' बना दिया है, कुछ तो भिन्नता और विशेषता चाहिए थी! टुकड़े करके भी सन्तोष न हुआ बेचारे के ऊपर और ब्रैकेट का परिवेष (घेरा) भी लगा दिया!

'सुधादीधिति' में के सुधा का अर्थ लल्लूलाल-जी ने सिर्फ़ 'अमृत' करके उसे कला का विशेषण बनाया, आपने उसे 'अमृत भरी' कर दिया! लल्लू-लालजी के इस वाक्य में 'कला को अमृत जान' 'जान' यह विधि या समापिका क्रिया जान पड़ती है, परन्तु आपने उसे 'कला को' के आगे रखकर सम्बोधन का सा रूप दे दिया, अर्थात् 'ऐ जान! (बाज़ारी महावरा!) दृष्टि लगाकर देख'। इस दशा में ऐसा अर्थ करने के सिवा दूसरी गति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है, यदि 'जान' और 'दृष्टि' के बीच में "और" शब्द होता तोभी कुछ बात थी! लालचन्द्रिका के 'प्रतीप' को न जानें आपने क्यों छोड़ दिया! जब आदमी नक़ल करे तो पूरीही करे! और आपका यह 'मुग्धाहाव' प्रयोक्ता के मुग्धत्व की डौंडी अलग पीट रहा है! विद्यावारिधिजी! 'मुग्धाहाव' नहीं, "मौग्ध्यहाव" कहिए। अन्यथा 'मुग्धाहाव' के साथ 'मध्याहाव' और "प्रौढाहाव" आदि भी मानने पड़ेंगे, समझे जनाब!

'हावों' का हाल लिखते हुए 'साहित्य-परिचय' के २१ पृष्ठ पर आपने स्वयं 'मौग्ध्य' लिखा है, और नहीं तो उसेही देख लीजिए, पर आपको इससे क्या, वहाँ साहित्यदर्पण में 'मौग्ध्य' देखा वह नक़ल कर दिया, यहाँ 'मुग्धाहाव' देखा वैसा लिख दिया! नक़ल में अक़ल को क्या दख़ल! लल्लूलालजी यदि भूल से 'सुधादीधिति' का पदच्छेद करके 'सुधा' को 'कला' में मिला गये और 'दीधिति' का अर्थ 'चन्द्रमा' कर गये तो इसका कारण था कि वह बेचारे संस्कृत के विद्वान् नहीं थे, उनसे ऐसी अशुद्धि हो जाना सम्भव और क्षन्तव्य है, परन्तु आपको तो अपनी "विद्वद्वृन्द-शिरोमणि" "विद्यावारिधि" की उपाधियों का ध्यान रखना चाहिए था, ये बेचारी अपने जी में क्या कहती होंगी, अपने कर्मों को कोसती होंगी?

महाराज! शब्दों का दुष्प्रयोग बुरा होता है, इससे बचना चाहिए, क्या आपने आचार्य दण्डी का यह श्लोक नहीं सुना? :—

"गौर्गौः कामदुघा सम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते बुधैः।
दुष्प्रयुक्ता पुनर्गौत्वं प्रयोक्तुः सैव शंसति॥"

१४—चितवन भोरे भाय की गोरे मुख मुसक्यान।
लगनि लटकि आली गरे चित खटकत नित आन॥३१२

"उसका भोरे भाय से देखना और गोरे मुख की मुसकान लगना लगाना लटक के सखी के गरे यह बात नित्य मेरे शरीर में आनकर खटकती है।"
'स्वभावोक्ति' (पृ० १०६)—

यहाँ 'भोरे' 'भाय' 'गरे' इन्हें आपने यथा-स्थित ही रहने दिया है। व्रजभाषा से आपको ख़ास प्रेम है, 'तिया' 'पिया' उरहना, इत्यादि शब्द बेअख़्तियार जहाँ तहाँ आपके जादूरक़म क़लम से टपक पड़े हैं!

'लगना लगाना लटक के सखी के गरे' 'यह बात नित्य मेरे शरीर में आनकर खटकती है'। ज़रूर खटकती होगी, हमारे कानों में भी आपके यह शब्द खटक रहे हैं। "लगना लगाना लटक के" कैसी अच्छी लटपट पंछी की पूंछ है!

जी हाँ, क्या होता है! "बात नित्य शरीर में आनकर खटकती है"। किसके शरीर में खटकती है, यह तो आपसे पूछना ही फ़ज़ूल है, इसका पता तो देंगेही नहीं। अब तक 'बात चित्त में खटकती है मन में खटकती है' यह सुना करते थे, अब आपसे मालूम हुआ कि वह शरीर में भी खटकती है! पर यह मालूम न हुआ कि वह सारे शरीर में आनकर खटकती है या हाथ, पैर, सिर आदि किसी एक अंग में? सब पुरानी बातों में फेर फार हो रहे हैं, विद्या-वारिधिजी ने सोचा कि शब्दों के अर्थों और महा-वरों में भी तबदीली होनी चाहिए, इसकी इसलाह का काम उन्होंने अपने हाथ में लिया है, अब आगे को 'चित्त' का अर्थ 'शरीर' करना होगा, यह बात 'जी में खटकती है' की जगह 'शरीर' में खट-कती है, कहना होगा, इस बात को सब नोट करलें।

है भी तो ठीक, चित्त में इतनी सामर्थ्य कहाँ, जो इस नित्य के खटके को सह सके! अब तक जो हुआ सो हुआ, अब उसे छुट्टी मिलनी चाहिए, और यह काम शरीर के सपुर्द होना चाहिए।

एक बात और है। कोई चीज़ चित्त में खटक भी कैसे सकती है? यदि कोई किसी के ढेला या कंकर मारता है तो वह शरीर में ही तो जाकर लगती है और खटकती है! चित्त से क्या वास्ता?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न जाने विहारीलालजी 'चित खटकत' कैसे लिख गये? यही क्यों, इससे अगले दोहे में भी तो उन्होंने यही कहा है:—

क्षणक्षण में "खटकत सुहिय" खरी भीर में जात।
कही जु चली बिनही चितै ओठन ही में बात। ३१३

"क्षण क्षण में वह बाला मेरे मनमें खटकती है बड़ी भीर में जाते हुए वह देखकर होठों ही में बात कहकर चली। 'स्मृति' (पृ० १०६)

ऐसा मालूम होता है कि पुनरुक्ति से बचने के लिए विद्यावारिधिजी ने इस दूसरे दोहे की टीका में, "मेरे मन में खटकती है" लिख दिया है। "शरीर में खटकती है" तो पूर्व आही चुका था, सबही बातों का ध्यान रखना पड़ता है! अथवा यह बात होगी कि नित्य के खटकने से शरीर जर्जर हो गया, उसमें छिद्र हो गये, अतः उन छिद्रों में होकर बात अब मन में खटकने लगी! जिस प्रकार घड़े में बार बार कंकर मारने से छेद हो जाते हैं तो घड़े के अन्दर की चीज़ पर कंकर जा लगती है! इस प्रकार इस विरोध का परिहार हो सकता है!

१५—अपनी गरज न बोलियत, कहा निहोरो तोहि।
तू प्यारो मोजीय को, मोजी, प्यारो मोहि॥ ३५१।

"अपनी गरज से बोलते हैं इसमें मरा क्या निहोरा है तुम मेरे जी के प्यारे हो और तुम्हें मेरा जी प्यारा है। काव्यलिंग। (पृ० ११८)

मूलपाठ में काँट छाँट किये बिना श्रीमान् को सब्र नहीं आता, यह कुटेव छूटनी कठिन है। यहाँ 'गरजनि' का पदच्छेद करके और 'इकार' उड़ा कर 'गरज न' ही घड़ दिया! तथा ४ थे, चरण में 'मोजिय' को 'मोजी', बनाकर कामा लगा दिया! 'मोजी' के आगे का यह कामा शायद 'जिय' के 'यकार' की यादगार है!

'कहा निहोरो तोहि' का अर्थ करते हैं—"इसमें मरा क्या निहोरा है" यह 'मरा' स्त्रियों की गाली है, स्त्रियाँ प्रायः 'जला' 'मरा' बोला करती हैं। विद्यावारिधिजी ने इसे शायद इसलिए रक्खा है कि जिससे यह पता चल जाय कि यह किसका वचन है, क्योंकि वैसे तो किसी दोहे के अर्थ में आप यह लिखते ही नहीं कि कौन किससे कह रहा है। सिर्फ़ क्रियाओं और महावरों द्वाराही वक्ता का पता चलाया जा सकता है, सो वह भी यदि भाग्य से कहीं आगये तो। सो इस 'मरा' से मालूम हुआ कि नायिका नायक से कह रही है कि "तुम मेरे जी को प्यारे हो और तुम्हें मेरा जी प्यारा है" बहुत ठीक है, ऐसा होनाही चाहिए, इसमें किसी का क्या निहोरा है, ऐसा कौन निष्ठुर होगा जो जी से प्यार करनेवाले को प्यार न करे, या उससे न बोले, यह तो एक बहुत मामूली और मोटी बात है, फिर न मालूम कवि विहारीलालजी को यह क्या सूझी कि वह ऐसी साधारण बात के लिए भी दोहा बनाने बैठ गये! क्या ऐसी ऐसी आम बातों के लिए भी काव्य बनाया जाया करता है? इसमें कौनसा "……रस सुख लोकोत्तर चमत्कार" है कि इसे इस दशा में काव्य कहा जाय? यह भी कोई बात नहीं कि किसी से बोलने के लिए इसी की ज़रूरत हो कि वह बोलने वाले को जी से चाहता है, उदासीनता की दशा में और भले आदमियों में दुश्मनी की हालत में भी बोलचाल बन्द नहीं होती। इसके अतिरिक्त बोलने वाली का यह कहना कि "मैं अपनी गरज से बोलती हूँ" इस दशा में व्यर्थ है, क्योंकि जब एक दूसरे को बराबर जी से चाहते हैं तो बोलने में दोनों की 'गर्ज़मुश्तर्का' हुई, एक की ग़रज़ बतलाना सरासर ख़िलाफ़ क़ानून है। चाहे आप इस बात को किसी वकील से पूछ देखिए। दोहे की यह दुर्दशा करके भी आप फ़र्माते हैं "काव्यलिंग" विद्यावारिधिजी! इसमें तो आपने काव्यत्व की एक बूँद भी नहीं छोड़ी, यह तो सूखे छिलके रह गये! अब इन कोरे शब्दों में आप कहाँ काव्य का लिङ्ग ढूँढ रहे हैं? कृपा कीजिए, काव्य वाव्य का नाम लेकर सहृदय काव्यरसिकों के साथ मज़ाक़ न कीजिए,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता के ज़ख़्मों पर नमक न छिड़किए। आपकी टीका की प्रचण्ड ज्वाला ने काव्यलतिका भस्म कर डाली। अब यहाँ 'काव्यलिङ्ग' कहाँ है! हाय ग़ालिब! तुमने यह शेर इसी मौक़े के लिए तो नहीं कहा था?:—

"जला है जहाँ जिस्म दिल भी जल गया होगा।
कुरेदते हो जो अब राख जुस्तजू क्या है?"

सहृदय पाठकगण! आपने देखा, बिहारी की इस अत्युत्कृष्ट उक्ति को किस प्रकार जलाकर राख किया है!

यह दोहा रोषभाव की शान्ति और औत्सुक्य भाव के उदय होने पर कलहान्तरिता का अथवा प्रणयकुपित नायक को मनाती हुई नायिका की उक्ति है—जिसका अभिप्राय यह है कि मैं अपनी ग़रज़ से बोलती हूँ, कुछ तुझ पर एहसान नहीं करती। जो मुझे अपना जी प्यारा न होता और जी को तू प्यारा न होता तो तेरी ऐसी करतूतों को देखकर भी, क्यों तुझसे बोलती! तुझसे बोले बिना 'जी' से नहीं रहा जाता, उसकी ख़ातिर सब बातों को भूलकर, बोलनाही पड़ता है, जान बड़ी प्यारी चीज़ है, उसके लिए सब उपाय करने पड़ते हैं!

इसी दोहे के अर्थवाली एक गाथा "गाथा-सप्तशती" में है:—

"बालक! त्वत्तोधिकं निजकमेव वल्लभं मम जीवितम्।
तत्त्वया विना न भवतीति तेन कुपितं प्रसादयामि॥"३—१५

अर्थ—हे बालक! परपीड़ानभिज्ञ! तुझसे ज़्यादह मुझे अपनीही जान प्यारी है, वह तेरे बिना नहीं बचेगी इसलिए तुझ रूठे हुए को मना रही हूँ। इन दोनों के भाव में कितना सादृश्य है!

(अपूर्ण)

पद्मसिंहशर्म्मा।

विविध विषय।

१—महाराज सप्तम एडवर्ड का स्वर्गवास।

अद्यैव हसितं गीतं पठितं यैः शरीरिभिः।
अद्यैव ते न दृश्यन्ते कष्टं कालस्य चेष्टितम्॥

हमारे भारतवर्ष के राजराजेश्वर सप्तम एडवर्ड का स्वर्गवास हो गया। इस दुर्घटना ने बृटिश साम्राज्य ही नहीं, किन्तु सारे संसार को शोकाकुलकर दिया है। यों तो 'मरणं प्रकृतिः शरीरिणां,' जो जन्म लेता है वह मरता ही है, क्या राजा क्या रङ्क सभी को एक दिन देह छोड़नी ही पड़ती है; परन्तु जीवन उसीका सफल है जिसकी मृत्यु पर लोगों को हार्दिक शोक हो। महाराज एडवर्ड शान्तिप्रिय नरेश थे। आपका प्रभाव इँगलैंड के ही अनेक राजनैतिक दलों पर न था, किन्तु अन्यान्य देशों के राजा और नेतागण आपका बड़ा दबाव मानते थे। यह प्रबल शक्ति आप संसार में शान्ति स्थापित करने में लगाया करते थे। यही कारण है कि आप सर्वदैव लोकप्रिय रहे। यद्यपि बृटिशगवर्नमेंट की शासनप्रणाली के अनुसार राजा के हाथ में बहुत अधिकार नहीं है तथापि महाराज एडवर्ड अपनी चिरस्मरणीया माता विक्टोरिया के समान अपने प्रभाव से सदैव प्रजा का हित-साधन करते रहते थे। उन सारी प्रतिज्ञाओं को जो आपकी माता ने भारतवासियों से की थीं आपने दृढ़ता-पूर्वक स्वीकार ही नहीं किया किन्तु दोहराया और तदनुसार व्यवहार भी करना आरम्भ किया था। इसीसे भारतवासियों को आपकी मृत्यु से विशेष कष्ट हुआ है। परमेश्वर आपकी आत्मा को शान्ति और आपके कुटुम्बियों और प्रजा को धैर्य्य दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—महाराज पञ्चम जार्ज।

महाराज सप्तम एडवर्ड के वियोग पर शोक प्रकट करते हुए हम आपके चिरजीवी सुपुत्र अपने नवीन राजराजेश्वर पञ्चम जार्ज का भक्तिपूर्वक स्वागत करते हैं। हमें दृढ़ आशा है कि आपके शासनकाल में प्रजा आपके पूज्य-पाद पिता सप्तम एडवर्ड और आपकी दादी चिरस्मरणीया विक्टोरिया के शासन समय के भाँति अत्यन्त प्रमुदित रहेगी। थोड़े ही दिन व्यतीत हुए जब आप भारतवर्ष में पधारे थे तब आपने अपनी सुजनता और शालीनता से प्रजामात्र को मुग्ध कर लिया था। इँगलैंड लौटने पर आपने जो गम्भीर वक्तृता-गीलडहाल में सन् १९०६ में दी थी वह प्रत्येक भारतवासी के हृदय में अङ्कित है। आपने श्रीमुख से कहा था कि "I cannot help thinking from all I have heard and seen that the task of governing India will be made the easier if we on our part, infuse into it a wider element of sympathy" अर्थात् जहाँ तक मैंने देखा और सुना है उससे मुझे ऐसा जान पड़ता है कि भारत वर्ष का शासन और भी सरलता के साथ होने लगे यदि शासकगण शासन में सहानुभूति की मात्रा बढ़ा दें। आपके संदेसे से भी यही बात झलकती है। भगवान् आपको दीर्घायु करे।

३—राजा जयसिंहजी।

हम अत्यन्त शोक के साथ प्रकाशित करते हैं कि खेतड़ी-नरेश राजा जयसिंहजी बहादुर का परलोकवास सत्रह वर्ष की सुकुमार अवस्था में क्षय-रोग से ता० ३० मार्च सन् १९१० को जयपुर में हो गया।

इनका जन्म संवत् १९४९ में आगरे में हुआ था। संवत् १९५७ में इनके प्रतिभाशाली पिता राजा अजीतसिंहजी बहादुर का स्वर्गवास आगरे ही में सिकन्दरे की एक मीनार से गिर पड़ने की दुर्घटना से हुआ और इस प्रकार आठ वर्ष की अवस्था में राजा जयसिंहजी का राज्याभिषेक हुआ। सन् १९०४ में इन्होंने मेयो कालेज, अजमेर, में प्रवेश किया जहाँ से कि इस वर्ष ये प्रशंसा के साथ डिप्लोमा पाते। बहुत समय तक इनकी शिक्षा और रक्षा का भार हिन्दी-हितैषियों के चिरपरिचित मित्र पण्डित चन्द्रधर गुलेरी बी० ए० पर रहा। बड़े बड़े अनुभवी लोगों का कथन है कि राजपूताना के राजाओं की पिछली पीढ़ी और आगामि पीढ़ी में ऐसा होनहार और सद्गुण युवक और कोई नहीं हुआ। उनके विनय, शील, विद्याभिनिवेश, सदा हँसता हुआ मुख, देशप्रिय और लोकोपकार के उच्च विचार—सभी का स्मरण इस अकाल मृत्यु की वेदना को और काल की कराल गति के अनुशोचन को कई गुना कर देता है। संस्कृत और हिन्दी की ओर उनका प्रेम बहुत था और दोनों का कितना ही उपकार उनके हाथों होता। एक समय खेतड़ी के एक उच्च कर्मचारी ने उन्हें सम्मति दी कि आप उर्दू का भी अभ्यास कीजिए क्योंकि उससे बहुत काम पड़ेगा। आपने हँसते हँसते उत्तर दिया कि मैं अपने यहाँ उर्दू रहने दूँगा तब काम पड़ेगा न?

उनके एक गुरुजन लिखते हैं कि "शरीर के गठन और गुणों के उपचय से यद्यपि वे हम लोगों से बढ़ कर होते जाते थे तो भी सदा विनय से नम्र हुए रहते थे। कभी गुरुओं के सामने उन्होंने अग्रासन नहीं लिया। हाँ, जाते जाते यह अभिनय कर गये कि हम लोगों को यहाँ पर तुषाग्नि में अपने हृदय को पकाने को छोड़ा और स्वयं अभय अमर अशोक पद को चले गये!"

४—स्वर्गीय राजा कमलानन्दसिंह*।

हा! यह कहते हृदय विदीर्ण होता है, आँखों में आँसू उमड़े आते हैं और कण्ठ रुद्ध हुआ जाता है कि श्रीनगर पुर्निया के अधिप साहित्यसरोज राजा कमलानन्दसिंह साहब भी अब इस संसार में नहीं हैं।

* पं० जनार्दन झा प्रेषित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप अपने समस्त प्रिय जनों को सर्वदा के लिए शोक-सागर में निमग्नकर असमय में ही चल दिये। आप की इतनी ही थोड़ी उम्र में एकाएक स्वर्ग-यात्रा से सभी स्वजन समाज शोक-मूर्छित हो रहा है। हिन्दी-सभ्य समाज में तो सर्वत्र हाहाकार मच रहा है। हिन्दी-साहित्य-सरोवर जो एकही सरोज से अधिकतर शोभायमान होकर आमोद से भरा रहता था, वह अब निरामोद हो गया। उसकी सारी शोभा जाती रही। हिन्दी-साहित्य का आप जो कुछ उपकार कर गये हैं वह अब किसी दूसरे से होना कठिन जान पड़ता है। आपके सदृश हिन्दी-भाषा के प्रेमी, हिन्दी के सहायक और सुलेखकों के उत्साहवर्धक मैथिल धनवानों में कोई दिखाई नहीं देता।

राजा साहब की सुजनता, सुशीलता, दयालुता और उदारता आदि अनेक गुण अनुकरणीय थे। आप जैसे गुणज्ञ थे वैसे ही गुणियों का सत्कार भी खुले दिल करते थे। सुशीलता आपकी आँखों से टपकी पड़ती थी, शील की मात्रा इतनी अधिक थी कि दूसरे के लिए आप स्वयं कष्ट सह लेते थे। कविता-शक्ति भी आप में विलक्षण थी। आपकी कविता का एक नमूना देखिए :—

"घोर अगम्य गंभीर जलाशय
ऐसे कुदेश में वास है रोज को।
पास में भेक समाज सदा
तब कैसे बढ़ाय सकौं गुन ओज को॥
नेक दया कमला की रहै
तिहि सों नित फूलि करौं मन मौज को।
जो सुकवी न विराजते तो कहो
कौन सराहते आज सरोज को॥"

कविता में आप अपना उपनाम सरोज रखते थे।

आपका स्वास्थ्य बहुत दिनों से बिगड़ा था परन्तु औषधादि सेवन से बीच बीच में आप स्वास्थ्य-सम्पन्न भी हो जाते थे।

राजा साहब ने बङ्किम बाबू के बँगला 'आनन्द मठ' उपन्यास का हिन्दी में अनुवाद करके छपवाया था। पीछे वही अनुवाद श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार के अध्यक्ष ने उनसे लेकर और उसकी कई हज़ार कापियाँ छापकर ग्राहकों को उपहार में दी थीं। वे रवीन्द्र बाबू के 'राजारानी' नाटक का भी हिन्दी में अनुवाद कर रहे थे। मुझे यह मालूम नहीं कि वह पूर्ण हुआ या अपूर्ण ही रहा।

इधर वे कई वर्षों से बराबर मुङ्गेर में ही रहा करते थे। किसी किसी अवसर पर कुछ दिन के लिए डेवढ़ी श्रीनगर जाते थे। गत चैत्र शुक्ला एकादशी को उनके चिरजीवी ज्येष्ठकुमार श्रीगङ्गानन्दसिंह और मँझले कुमार श्रीअम्बिकानन्दसिंह का यज्ञोपवीत होने वाला था। अतएव वे एक मास पहलेही मुँगेर से डेवढ़ी गये। इधर आकर उनका स्वास्थ्य कुछ अधिक बिगड़ने लगा। ज्यों ज्यों उपनयन का दिन समीप आने लगा त्यों त्यों उनकी बीमारी भयङ्कर रूप से बढ़ने लगी। कितनेही सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठित वैद्य आपकी चिकित्सा के लिए बुलाये गये। वैद्यों ने, जहाँ तक जाना, चिकित्सा की, किसी दवा ने फ़ायदा न किया। काल को कौन रोक सकता है? आख़िर गत चैत्र शुक्ला षष्ठी बृहस्पति की रात में एक बजे राजा साहब इस असार संसार को त्याग कर स्वर्गगामी हुए। चौंतीस वर्ष कई महीने की उम्र में ही श्रीमान् सबको शोकाकुल कर संसार से विमुख हो गये।

हाय! उधर उत्सव की तयारियाँ हो रही थीं, उपनयन का एकही सप्ताह बाक़ी रह गया था, इधर एकाएक यह वज्रपात! "का दिखाय विधि काह दिखावा, का सुनाय विधि काह सुनावा।" इस दैवी दुर्घटना से जो श्रीनगर में शोक उमड़ पड़ा है उसका उल्लेख किसी प्रकार हो नहीं सकता। पर क्या किया जाय। भावी को कौन टाल सकता है।

"मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते।
अद्य वाब्द शतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः॥" श्री० भा०

राजा साहब का पाञ्चभौतिक शरीर अब नहीं है किन्तु उनका कीर्ति-कलेवर वर्तमान है। जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक उनकी कीर्ति संसार में स्थिर रहेगी तब तक उन्हें एक प्रकार से जीवित ही समझना चाहिए "कीर्तिर्यस्य स जीवति।"

५—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन।

बड़े हर्ष की बात है कि हिन्दीसाहित्यसम्मेलन की चर्चा आरम्भ हो गई है। इस सम्मेलन में किन किन विषयों पर विचार किया जायगा इसकी विवेचना हिन्दी-हितैषियों को पहलेही से करलेना चाहिए। हमारी समझ में सम्मेलन का पहला अधिवेशन इस साल प्रयाग में क्रिसमस की छुट्टियों मेंही होना उचित है। जब कांग्रेस के समय में अनेक कान्फरन्सें होती ही हैं और उनसे कांग्रेस में कोई विघ्न नहीं पड़ता तब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से भी विघ्न नहीं पड़ सकता। हिन्दी-हितैषी काशी या प्रयाग के आसपास केवल संयुक्त प्रदेशही में नहीं है। पञ्जाब, मध्य प्रदेश आदि अनेक प्रान्तों से लोग सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए उत्सुक होंगे। इसमें संदेह नहीं कि उन वर्षों में जब कि कांग्रेस के अधिवेशन दूर अन्यान्य प्रान्तों में हों तब सम्मेलन दशहरे की छुट्टियों में ही ठीक होगा, पर इस साल जब कि दशहरे के दोही महीने बाद कांग्रेस और अन्यान्य कान्फ़रन्सों के सिवा एक बहुत बड़ी प्रदर्शिनी प्रयाग में होगी, तब शायदही लोग दो बार घर छोड़कर लम्बा सफ़र करने का प्रयास उठावें। सम्मेलन का पहलाही अधिवेशन फीका होना ठीक नहीं।

६—नागरी और नवीन सिक्के।

अब तक सिवा इकन्नियों के नागरी अक्षर किसी भी सर्कारी सिक्के पर नहीं पाये जाते। हमारे नवीन सम्राट् पञ्चम जार्ज के राज्याभिषेक के समय नये सिक्के अवश्य ही ढाले जायँगे। हमें पूर्ण आशा है कि यदि हिन्दी हितैषी सर्कार से सानुरोध प्रार्थना करेंगे तो नागरी भी नये सिक्कों को सुशोभित करने लगेगी। जब नागरी अक्षरों और हिन्दी भाषा का यहाँ के अधिकांश निवासियों में प्रचार है तब सिक्कों का नाम नागरी में भी लिखना हिन्दी भाषा का आदर ही नहीं किन्तु सर्वथैव उपयोगी है। जब हमारी सरकार ने सरकारी दफ़्तरों में भी देवनागरी अक्षरों के प्रचार की उदारतापूर्वक आज्ञा दी है तब सरकारी सिक्कों पर भी—यदि हिन्दी-प्रेमी सज्जन आलस्यनिद्रा को त्याग कर दृढ़तापूर्वक आन्दोलन करें तो—देवनागरी अक्षरों का अङ्कन, हमारी उदार सरकार, अवश्य करा देगी। जब तक हिन्दी भाषा और देवनागरी अक्षरों से हमारी सरकार के समस्त सिक्के अलङ्कृत न हों तब तक हिन्दी के सच्चे प्रेमियों को सरकार की सेवा में नम्रतापूर्वक शुद्ध हृदय से निरन्तर उद्योग करते रहना चाहिए। आशा है, ऐसा करने से अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

७—चित्र-दर्शन।

डाक्टर आर० पी बेनर्जी बी० ए०, बी० बी० एस० एल०, कृत राजपुताने के ऐतिहासिक स्थानों का वर्णन हम यथावकाश फिर प्रकाशित करेंगे। आज हम अपने पाठकों के विनोदार्थ डाक्टर साहब के भेजे हुए उदयपुर के वर्तमान महाराज के राजमहल और पिचोला झील के चित्र प्रकाशित करते हैं। उदयपुर राज्य की राजधानी पहले चित्तौर में थी। कहते हैं कि वर्तमान उदयपुर नगर महाराना उदयसिंह ने नाहर मागरा पर बसवाया था और पिचोला झील के निकट उदयनिवास नामक राजमहल बनवाया था। परन्तु किसी किसी का मत है कि महाराना प्रतापसिंह ने अपने पिता उदयसिंह की यादगार में उदयपुर बसाया और पिचोला झील पर राजमहल बनवाया था।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

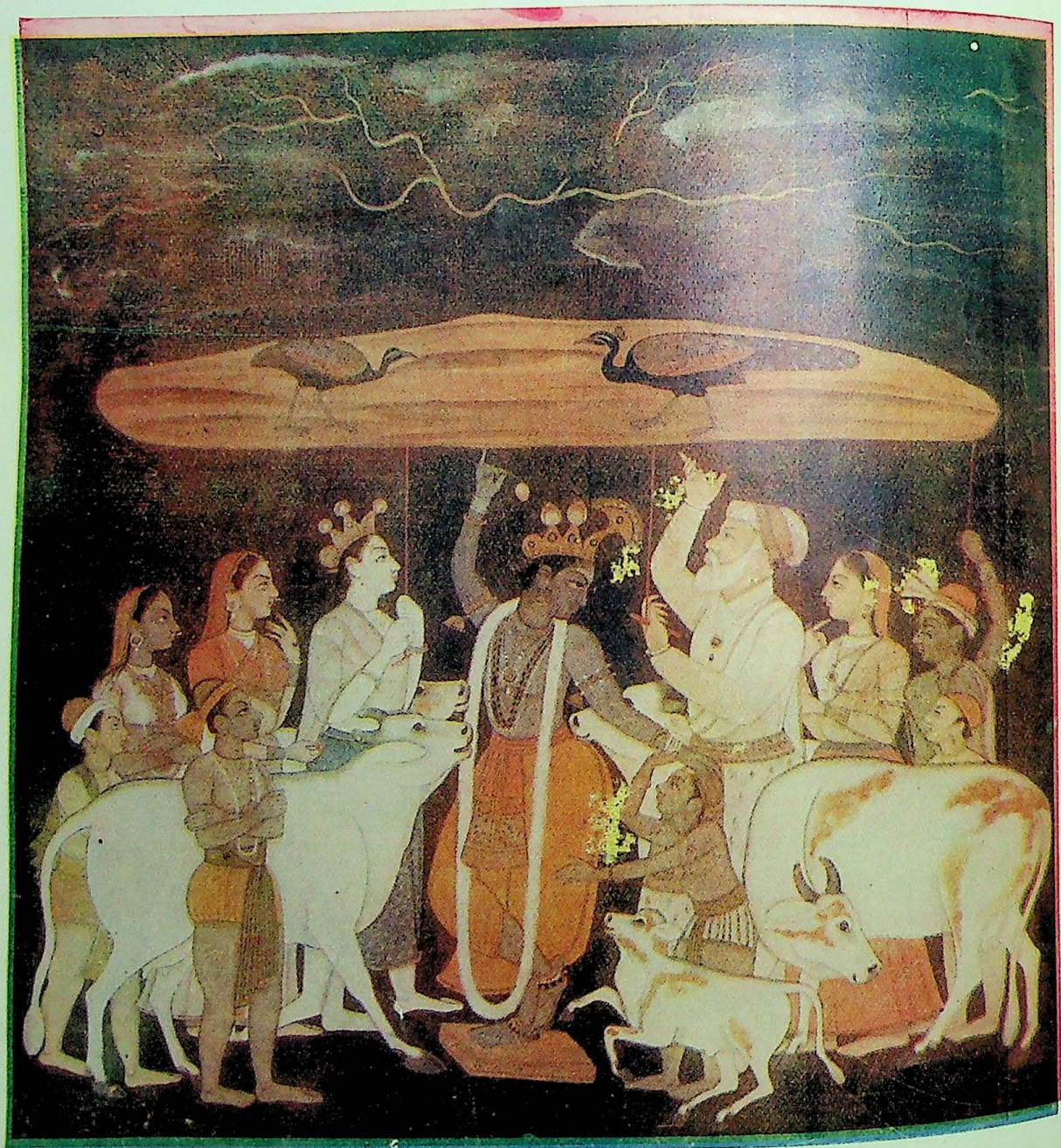

गोवर्द्धन-धारण ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

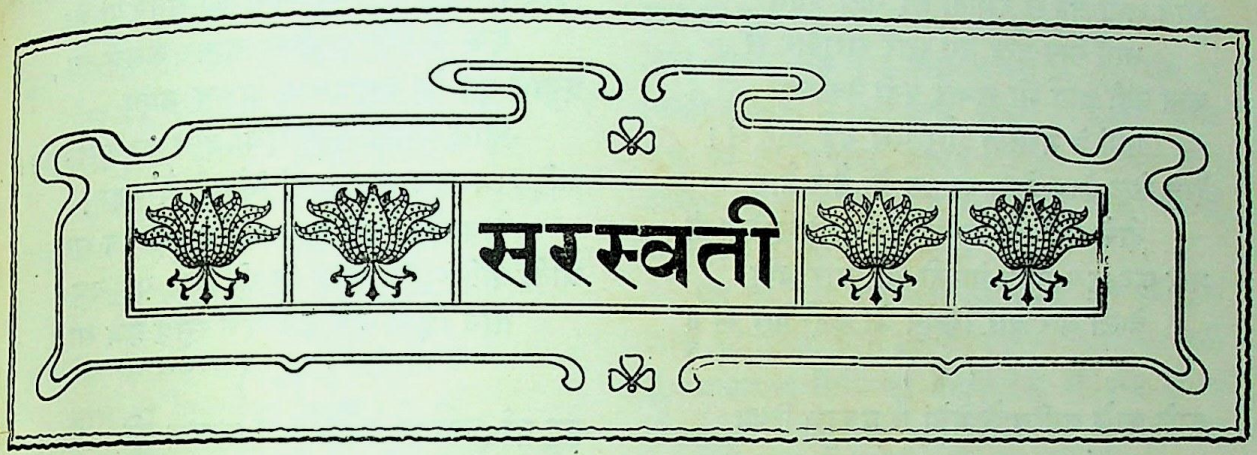

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ११] १ जुलाई, १९१०। आषाढ कृष्ण ९, १९६७। [संख्या ७

गोवर्द्धन-धारण।

(१)

एक बार नन्द आदि गोपों ने कृतज्ञता से
व्रज में सजाये साज सारे इन्द्र-याग के,
किन्तु लीला-शील व्रजराज के वचन मान
पूजा गिरि गोवर्द्धन इन्द्र-याग त्याग के।
मान अपमान क्षुब्ध शक्र के सहस्र नेत्र
लाल लाल होकर अँगारे बने आग के,
दीखा उस काल में कराल-ज्वाल-जाल मानो
जलता विशाल कञ्ज-कानन में जाग के॥

(२)

पावस-निशा में ज्योतिरिङ्गणों से शाल-तुल्य
होकर सुशोभित सहस्र नेत्र रोष से,
नीर भरे मेघों को बुलाकर समक्ष शीघ्र
बोला यों उन्हों के से गभीर धीर-घोष से।
हो कर मदान्ध मूढ़ गोपों ने हमारा भाग
गिरि को दिया है एक बालक के दोष से,
प्रलय बिनाही अभी प्रलय मचाओ सभी
जाओ वेग व्रज को बहाओ वारि-कोष से॥

(३)

पाकर सुरेश के निदेश को अशेष मेघ
आये व्रज-देश मध्य गज मतवाले से,
छाये व्योम बीच सूर्य-सोम को छिपाये हुए
तान पवमान ने वितान दिये काले से।
दिन का विनाश हुआ रात का विकाश मानो
दीखे ठाट बाट हाट घाट के निराले से.
होने लगा जल से प्रपूर्ण शीघ्र सारा थल
फूट पड़े इन्द्र के मलीन मन-छाले से॥

(४)

करते हुए सिंहनाद रूप घोर शब्दों को
बजती यथैव नई दुन्दुभी मढ़ाई है,
वायु के विमान पर मान भरे बैठे हुए
शम्पा रूप कोप की करालता बढ़ाई है।
घेर व्रज-मण्डल को वीर-नीरदों ने आज
तीरों के समान नीर-धारा आन ढाई है,
मानो रोष-घोष कर दोष से तमोगुण की
तोष-पूर्ण सत्वगुण-कोष पै चढ़ाई है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

आने लगी वन से रँभाती हुई गायें शीघ्र
भागे गोप-वृन्द वेग सारे सराबोर से,
कान पड़ी बात भी सुनाई पड़ी नेक नहीं
मेघों ने मचाया शोर ऐसे बड़े ज़ोर से।
दौड़े खेल छोड़ छोड़ बालक जो ठौर ठौर
दीखे वीथियों में बहे वारि की हिलोर से
मार कर कूक मानो मोरनी भी प्यार भरी
बोली बार बार छिपने को कहीं मोर से॥

(६)

काले काले वारिवाले मेघों में प्रकाश छिपा
मानों व्रज अन्धकार-सिन्धु में समा गया,
बार बार बाडव-शिखा की भाँति भीत कर
अम्बर में दामिनी-विभास भूरि भा गया
होने लगी घोर नीर-वर्षा व्रज बोरने को
'त्राहि त्राहि त्राहि' शोर चारों ओर छा गया,
धीरज समीर के झकोरों में सभी का उड़ा,
पाहि पाहि प्रलय-प्रसङ्ग पास आ गया॥

(७)

"अच्युत! अनेक बार की है ज्यों दया की दृष्टि
त्योंहीं आज नेक उसी दृष्टि से निहार लो,
कौन है सहायक हमारा और चक्रपाणे!
शरण तुम्हारे ही सदा से हैं विचार लो।
हा हा हा! अनाथों को सनाथ करने के लिए
शीघ्रता के साथ नाथ! हाथ को पसार लो,
डूबते हैं दीन दीनबन्धो! अन्ध-सिन्धु मध्य
चाहो जो उबारना तो वेगही उबार लो॥"

(८)

"डूब रही पुण्य-भूमि आज व्रजराज! देखो,
कैसे हा! बचेगी जो न आपही बचाओगे,
ध्वंस हुआ जाता सौरभेयी-वंश कंसरिपो!
नष्ट हुआ गोकुल क्या दूसरा बसाओगे?
जाते अहो! मारे ये तुम्हारे सारे प्यारे जन
माधव! मुरारे! कैटभारे! कब, आओगे?
देर जो लगाओगे न पाओगे किसी को यहाँ
पीछे पछताओगे कठोर कहलाओगे॥"

(९)

विविध प्रकार व्रज-वासियों की वाणियों को
देख के विलाप-लीन कातर कलत्र सा,
द्रवित हुए यों नन्दनन्दन अनन्द मानो
खोल दिया दिव्य दया-दान का सुसत्र सा।
करि सम झूम झुक वाईं छिँगुनी पै अहा!
गोवर्द्धन गोत्र उठा रक्खा पद्म-पत्र सा
आती वारि-वृष्टि व्योम से थी दृष्टि यत्र यत्र
तान दिया तत्र तत्र एक सृष्टि-छत्र सा॥

(१०)

दूर हुई आपदा अशेष व्रज-मण्डल की
बल कर हारी मेघ-मण्डली विचारी है,
चारों ओर फैली ध्वनि हर्ष और विस्मय की
देखो! धरामध्य दिव्य दृश्य मनोहारी है।
शैल तो उठाये हरि आप करि कञ्ज मानो
जाती मरी बोझ से यशोदा मातु प्यारी है
"दब मति जाय मेरो वारो कान्ह प्यारो हाय!
नेक ना सहारो धारो भारो भूमिधारी है॥"

(११)

मान मघवा का हरने को भरने को मोद
निष्फल प्रहार करने को मेघ-माला के,
रक्खा गिरि नख पै किशोर श्यामसुन्दर ने
भक्तों को पिला के पूर्ण प्याले हर्ष-हाला के।
किन्तु है समर्थ शत्रु दोनों ही सदैव से जो
मन्मथ के ताप और पाला के कसाला के,
टेढ़े हुए दिव्य गिरिधारी-नख नित्य जहाँ
जयति उरोज ओजवाली गोपबाला के॥

(१२)

हलधर बन्धु को उठाये गिरिराज सुन
आई वृषभानुजा मराल की सी चाल से,
देख सखियों के संग सुन्दर लता ही उसे
मुग्ध गिरिधारी हुए चञ्चल तमाल से।
डगता जान कम्प से करस्थ शैल क्रीड़ा का
व्रीड़ावश बन्द किये लोचन विशाल से,
ऐसे घनश्याम का पवित्र स्वेद नीर जाल
त्राण करे सर्वदा कराल काल-ज्वाल से॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१३)

बोले गिरिधारी राधिका को देख ललिता से—
"तू भी दे सहारा सखी! शैल बड़ा भारी है,"
सुन व्रजराज की रसीली उक्ति युक्ति भरी
हँस वह बोली गिरा नित्यही सो न्यारी है—
"गर्व न जनाओ श्याम! वाम कर शैल धरे
राधिका का अङ्ग है सो शक्ति क्या तुम्हारी है?"
ललिता की चातुरी से लज्जा और हर्ष भरी
युगल किशोर जोड़ी रक्षक हमारी है॥

(१४)

सात दिन बीते वृष्टि होते हुए अम्बर से
हाथ पर गोपीनाथ भूधर धरे रहे,
बाँका हुआ बाल भी किसी का नहीं वारिदों से
मानो वृक्ष आदि कभी हर्ष से हरे रहे।
हो कर तब होश में सुरेश पड़ा पैरों में
दीन उसे देख आप रोष से परे रहे,
धन्य हैं वे सज्जन-शिरोमणि प्रणाम-योग्य
ऐसे भगवान की जो भक्ति से भरे रहे॥

(१५)

चरित विचित्र है तुम्हारे रमानाथ! सारे
जगतपिता हो कभी नन्द के दुलारे हो,
तस्कर कभी हो नवनीत के विनीत कभी
हिम के फुहारे कभी आग के अँगारे हो।
निर्गुण कभी हो कभी सगुण अनेक एक
योगियों के ईश कभी गोपियों के प्यारे हो,
नटखट पूरे नट-राज हो! कहाँ लों कहें
मन की छिपी क्या तुम्हें मन में हमारे हो॥

मैथिलीशरण गुप्त।

धर्म।

म भारतवासियों के आचार विचार में धर्म का बहुत कुछ प्रभाव देखने में आता है। जन्म से लेकर मरण-पर्यन्त चाहे हम किसी दशा में रहें, कुछ करें, धार्मिक-बन्धन से अलग नहीं हो सकते। हम को केवल अपने पूजा-पाठ या संस्कारों में ही धर्म की आवश्यकता नहीं, किन्तु हमारा खाना पीना, आना जाना, लेना देना, पढ़ना पढ़ाना इत्यादि सब ही कुछ धर्म की साँकल में जकड़ा हुआ है। हम हिन्दू होकर सब कुछ छोड़ सकते हैं, पर धर्म को किसी अवस्था में नहीं छोड़ सकते। हमारे शास्त्र धर्म को ही हमारा जीवन-सर्वस्व बतलाते हैं। प्राचीन शिक्षा का तत्त्व ही यह है कि हमारा कोई काम धर्म को छोड़ कर न हो।

यह तो है प्राचीनकाल की शिक्षा; पर वर्तमान-काल की शिक्षा ठीक इसके विपरीत काम कर रही है। पाश्चात्य लोगों का सम्पर्क होने से इस समय पश्चिमीय शिक्षा ही हम लोगों में सभ्यता का आदर्श मानी जा रही है। पाश्चात्य जातियों को धर्म के सम्बन्ध में बहुत कड़ुवे फल चखने पड़े हैं। पश्चिम के लोगों को धार्मिक विश्वास ने ही कई सौ वर्षों तक आपस में लड़ाया है। धर्म के ही नाम पर वहाँ सैकड़ों विद्वान् एवं उदारचेता पुरुष बलि दिये गये हैं। इसलिए अब इस शान्ति और उन्नति के समय में पश्चिम-निवासियों की यदि धर्म से उदासीनता पाई जाती है, तो वह अकारण नहीं है। धार्मिक संस्कारों ने यूरोप में रक्त की नदियाँ बहाई हैं, इसलिए अब यूरोप-निवासियों ने अपने अभ्युदय का मार्ग धर्म की लाइन से हटा कर निर्माण किया है। अब वहाँ धर्म केवल आसमानी बादशाहत के प्राप्त करने का एक ज़रिया रह गया है।

प्राचीन आर्य लोग धर्म को केवल मुक्ति का ही साधन नहीं मानते थे किन्तु अभ्युदय का विशाल और रमणीय मन्दिर भी इसी की बुनयाद पर खड़ा करते थे। उनका अटल विश्वास था कि धर्म के बिना मनुष्य केवल मुक्ति का ही अनधिकारी नहीं होता, किन्तु वास्तविक अभ्युदय से भी वञ्चित रहता है। धर्म का लक्षण करते हुए कणाद ऋषि वैशेषिक दर्शन में लिखते हैं:—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

"जिससे संसार और परमार्थ दोनों की सिद्धि हो, वह धर्म है। इस सूत्र में अभ्युदय का निर्देश पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया है, इससे सिद्ध है कि उनकी दृष्टि में यदि धर्म का पहला फल कोई था, तो वह अभ्युदय ही था, जिसको आज पश्चिमीय शिक्षा धर्म से बिलकुल बेलाग बनाना चाहती है। इसके अतिरिक्त हिन्दू-शास्त्रों में मनुष्य-जन्म के जो चार फल धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के नाम से बतलाये गये हैं, इनमें भी धर्म के बाद अर्थ और काम का नम्बर है जो केवल अभ्युदय से ही सम्बन्ध रखते हैं। अतएव हिन्दू अपने शास्त्रों को मानते हुए सांसारिक उन्नति के लिए धर्म को पीछे नहीं छोड़ सकते।

पश्चिम की शिक्षा का प्रभाव जिन लोगों पर पड़ा है, वे स्वदेशीय हों या विदेशीय, हमको भी यह सलाह देते हैं कि हम अपने धर्म का संस्कार करें और इसकी कोई सीमा नियत करें कि जिससे आगे यह अपने पैर न फैला सके। उनकी यह स्थिर सम्मति है कि जब तक हमारे हर एक काम में धर्म का पचड़ा लगा हुआ है, हम कभी उन्नति नहीं कर सकते और न अपना कोई जातीय आदर्श बना सकते हैं। ऐसे लोगों की नेकनीयती में, जो हमें यह सलाह देते हैं, हम कोई सन्देह नहीं कर सकते और यह भी मानते हैं कि वे केवल हमारी हितैषिता से ही हमको यह सलाह देते हैं, जिसके लिए हमको उनका कृतज्ञ होना चाहिए। पर यहाँ पर हम इतना अवश्य निवेदन करेंगे कि उन्होंने पश्चिम की धार्मिक अवस्था को लक्ष्य में रख कर ही हमको यह सलाह दी है। हमारे धर्म के तत्त्व पर गम्भीर दृष्टि से विचार नहीं किया। यह ठीक है कि आज कल इस देश में भी हमारे दुर्भाग्य से, या विदेशियों के संसर्ग से, धर्म की वह परिस्थिति (पोजीशन) नहीं रही जो प्राचीन काल में थी, तथापि यह हम डंके की चोट कहेंगे कि सभ्य शिरोमणि आर्यों का धर्म मतवाद से सर्वथा पृथक है।

विदेशियों के आने से पूर्व धर्म का यह अभिधेय (जो आज कल हमारे देश में माना जाता है) कदापि न था। उस समय "धर्म" शब्द सामान्य रीति पर मनुष्य के स्वभाव या आचार का बोधक था। यही कारण है कि प्राचीन आर्यों ने उसको मनुष्य की प्रत्येक दशा से (चाहे वह आत्मिक हो या सामाजिक, व्यावहारिक हो वा पारमार्थिक) सम्बद्ध किया था, क्योंकि प्रत्येक दशा में अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही मनुष्य का मनुष्यत्व है।

अब यह प्रश्न होता कि जब धर्म मत से पृथक् है तो फिर मतवाद में उसका सन्निवेश या परिणाम क्यों कर हुआ? इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि यद्यपि यहाँ मतवाद की कुछ कुछ चर्चा विदेशियों के आने से पूर्व भी हो चली थी, तथापि उस समय किसी मत का भी यह विश्वास या आग्रह नहीं था कि धर्म या मुक्ति सिवा हमारे मत के और कहीं नहीं मिल सकती। अब तक भी यदि संसार में कोई ऐसा धर्म विद्यमान है, जो सदाचारी को धर्मात्मा और ज्ञानी को मोक्ष का अधिकारी (चाहे वह किसी मत का अनुयायी हो) मानता है, तो वह केवल हिन्दू-धर्म है। यह गौरव सदा हिन्दू-धर्म को ही रहेगा कि वह सदाचार को धर्म का और ज्ञान को मोक्ष का कारण मानता है। यह संस्कार, कि सिवा हमारे मत के और कहीं धर्म या मुक्ति का लाभ नहीं हो सकता, हमने विदेशियों से ही लिया है। जब यह संस्कार उत्पन्न हो गया तब हम लोग भी अपने अपने मत को धर्म और दूसरों के मत को अधर्म समझने लगे। अपने मत को धर्म समझने का तो सबको अधिकार है, परन्तु दूसरों के मत को अधर्म कहना अत्याचार है। इसी से धार्मिक जगत् में यह अशान्ति उत्पन्न हुई है।

इस मतवाद को धर्म समझने का यूरोप में परिणाम यह हुआ कि धर्म का सम्बन्ध केवल उपासनालयों (गिर्जों) से रह गया और वह भी आठवें दिन घंटे दो घंटे के लिए। और बहुत से स्वतन्त्रता देवी के उपासक तो इससे भी मुक्त (आज़ाद) हो गये। सांसारिक अभ्युदय से ही धर्म का नाता नहीं तोड़ा गया, किन्तु चरित्र-शोधन और मानसिक उच्च भावों की प्राप्ति के लिए भी धर्म को अनावश्यक समझा गया। अब वहाँ केवल ईश्वर पर झूँठा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा विश्वास रखने और प्रचलित प्रथानुसार शब्द-विशेषों में उसकी प्रार्थना करने का नाम धर्म है, बाक़ी सारे काम धर्म से अलग कर लिये गये।

हम उनकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते हैं। यदि वे ऐसा न करते और केवल हमारी तरह से मतवाद में ही पड़े रहते तो आज उनके देश में विद्या की यह उन्नति, बुद्धि का यह चमत्कार और अभ्युदय का यह अखण्ड प्रताप कभी देखने में न आता। यदि हमारे धर्म की भी ऐसी ही व्यवस्था हो और वह वास्तव में मतवाद का प्रवर्त्तक हो, तब तो हमको भी कृतज्ञता के साथ उनकी यह सलाह माननी चाहिए और उस पर चलना चाहिए। और, यदि हमारा धर्म मतवाद से पृथक् है तो हमें लोगों की भ्रान्ति को मिटाना चाहिए।

हम यहाँ पर यह कह देना चाहते हैं कि मत के अर्थ में धर्म शब्द का प्रयोग करना भी हमने विदेशियों से ही सीखा है। हम लोग भूल से या लाचारी से विदेशीय भाषाओं में धर्म के वाच्य को मज़हब या रिलीजन शब्दों में (जो मत के पर्याय वाचक हैं) प्रकट करते हैं। परन्तु हमारे शास्त्रों में कहीं धर्म शब्द मत या विश्वास के अर्थ में नहीं आया, प्रत्युत स्वभाव, सुकृत और आचार इन तीन अर्थों में ही सर्वत्र इसका प्रयोग देखने में आता है। धात्वर्थ से भी यही तीन अर्थ मेल खाते हैं, क्योंकि 'धृ' धातु धारण करने के अर्थ में है। 'यो ध्रियते दधाति वा स धर्मः।'

"जो धारण किया जाय वा धारण करे, उसको धर्म कहते हैं। महाभारत के शान्ति पर्व में भी इसका यही निर्वचन किया गया है :—

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद्धारणासंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥

धर्म हम सबसे धारण किया जाता है और फिर वही हम सबको धारण करता है। अतएव जो धारण क्रिया का कर्म कर्त्ता दोनों है, वही धर्म है। उपनिषदादि में जहाँ "धर्मञ्चर" "धर्मान्न प्रमदितव्यम्" इत्यादि वाक्य आते हैं, वहाँ भी तात्पर्य सुकृत या सदाचार से ही है। मत या विश्वास के अर्थ में कहीं पर भी धर्म शब्द का प्रयोग देखने में नहीं आता और आवे क्यों, जब कि मत और धर्म में महान् अन्तर है। मत यदि जल की एक लहर है, जो उठी और विलीन हुई तो धर्म पहाड़ की एक मज़बूत चट्टान है, जिससे टकरा कर सैकड़ों लहरें इधर विशीर्ण हो जाती हैं और उसको कुछ हानि नहीं पहुँचा सकतीं। मत का सम्बन्ध मन से है, जो स्वभाव से ही चञ्चल है। पर धर्म का सम्बन्ध केवल आत्मा से है, जो कि ज्ञान और आनन्द का भाण्डार है। मत हमारा देश, काल और पदार्थों की परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है, पर धर्म प्रत्येक पदार्थ में अविच्छिन्न रीति पर सदा एक-रस रहता है। यदि किसी पदार्थ में उसका धर्म न रहे तो यह समझा जायगा कि वह पदार्थ ही न रहा। मनुष्यों के मत रात दिन बदलते रहते हैं, पर किसी पदार्थ का धर्म जब तक वह पदार्थ है, उसको छोड़ नहीं सकता। सच तो यह है कि इस मतवाद के ही कारण हम लोग धर्म का महत्त्व भूल गये और उससे विमुख होकर आज इस अधोगति को प्राप्त हो रहे हैं।

देखो सामवेदीय तलवकार उपनिषद् क्या कहती है :—

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥

"जिसका कोई मत नहीं अर्थात् जो किसी विश्वास पर जम नहीं गया है, वह जाननेवाला है और जिसका कोई मत है अर्थात् किसी अपने माने हुए विश्वास पर जम गया है, वह कुछ नहीं जानता। जो जानने का घमण्ड करते हैं, वे उसको नहीं जानते और जो अपने को न जाननेवाला समझते हैं, वही उसको जानते हैं।"

यह बिलकुल सच है। मतवादी कभी जिज्ञासु नहीं होता। उसे जिज्ञासा तो तब हो, जब कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह समझे कि मुझे दूसरों से कुछ सीखना है। वह तो अपने मत या ख़याल को ही इलहाम समझता है। वह किसी का शिष्य बनना नहीं चाहता, बल्कि संसार को अपना शिष्य बनाना चाहता है। उसकी दृष्टि में जो उसके मत से सहमत नहीं, वे सब झूँठे और वह केवल आपही सच्चा है।

ऋषियों के पवित्र उपदेश की सत्यता संसार का इतिहास सिद्ध कर रहा है। जहाँ जहाँ, जब जब, मतवाद प्रबल हुआ, ज्ञानवाद को उसने रोका ही नहीं किन्तु ज्ञानवादियों के साथ वह बर्त्ताव किया जो लुटेरे मालदारों के साथ करते हैं। मतवाद के अत्याचारों से संसार का इतिहास अब तक रुधिर के आँसू बहा रहा है। पर क्या कोई धर्मवादी भी संसार के इतिहास में आपको ऐसा मिलेगा, जिसने संसार तो क्या किसी एक मनुष्य या प्राणी का भी अनिष्ट चाहा हो? धर्मात्मा युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित जीवन-पर्यन्त दुःख उठाते रहे, पर उनके मन में और तो और उन लोगों से भी (जो रात दिन उनको सताते थे) कभी बदला लेने का ख़याल तक न आया। महात्मा बुद्ध ने दूसरों का दुःख देख कर अपना सुख त्याग दिया। हज़रत ईसा अपने देश-वासियों की भलाई के लिए सूली पर चढ़ गये। महात्मा सुक़रात ने अपने धर्म का प्रचार करते हुए ख़ुशी से ज़हर का प्याला पी लिया। महात्मा लूथर मतवादियों के अत्याचार से जीवन भर कष्ट उठाता रहा। धर्मात्मा मेज़िनी अपने देशवासियों के दुःख की आग में पतङ्ग की तरह जल गया। यह है धर्मवादियों का इतिहास, जिसके आगे मतवादियों ने भी (पहले चाहे विरोध किया हो, पर पीछे) अपना सिर झुका दिया है। पर शोक केवल इसी बात का है कि इन रिफ़ार्मरों ने जिस मतवाद के आग्रह को उखाड़ने में जीवन भर यत्न किया, उसी दल में पीछे से इनके अनुयायी भी फँस गये और फँसते जाते हैं।

अब हमारे पाठक समझ गये होंगे कि मत में और धर्म में क्या अन्तर है? और, यह भी उनको मालूम हो गया होगा कि इस देश में धर्मवाद के स्थान में मतवाद की प्रतिष्ठा का कारण अधिकतर विदेशीय शिक्षा का प्रभाव ही है। इस दशा में उनका अपने आचरण से हमको यह सलाह देना कि हम भी अपनी सांसारिक उन्नति के लिए धर्म को एक कोने में रखदें, कहाँ तक हमारे लिए हितकर हो सकता है। इस पर विज्ञ पाठक विचार करेंगे।

हम मानते हैं कि इस समय हमारी धार्मिक दशा वह नहीं है, जो उपनिषदों और दर्शनों के समय में थी। हमने धर्म के महत्त्व को बिलकुल भुला दिया है। अधिकतर तो इस समय हमारा धार्मिक बल मतवाद के शुष्क वाद-विवाद में या केवल वाचिक ज्ञान में व्यय हो रहा है। जो थोड़ा बहुत उससे बचता है वह लकीर पीटने में समाप्त हो जाता है। परन्तु क्या इसलिए कि धर्म का प्रयोग अन्यथा किया जा रहा है हम धर्म को ही छोड़ दें। यदि कोई मनुष्य अपनी मूर्खता से अग्नि में हाथ जला लेता है तो क्या उसको यह उपदेश करना ठीक होगा कि वह अग्नि से कभी कोई काम ही न ले या कि उसे अग्नि से काम लेने की विद्या सिखाना ठीक होगा? प्रत्येक बुद्धिमान् मनुष्य यही कहेगा कि दूसरी बात होनी चाहिए।

अच्छा तो अब किसी वस्तु से काम लेने के पूर्व उसका ज्ञान होना आवश्यक है कि वह पदार्थ क्या है और किसलिए है? धर्म किसलिए है अर्थात् उसके उद्देश क्या हैं? इसमें कुछ विवाद नहीं है, सब मानते हैं कि धर्म मुक्ति (ईश्वर की प्रसन्नता या आत्मा की प्रसन्नता के लिए है। अब रहा प्रश्न का दूसरा अंश कि वह क्या है? इसके उत्तर में यद्यपि आंशिक विरोध होगा, कोई कहेंगे कि जो हमारे धर्म पुस्तक में लिखा है, वह धर्म है। कोई अपने अन्तःकरण (कान्शेन्स) को धर्म का स्रोत बतलावेंगे। कोई लोकाचार, देशाचार या कुलाचार को धर्म कहेंगे और कोई सामाजिक वा राजनैतिक प्रबन्ध को धर्म का आदर्श मानेंगे। परन्तु ये सब जिस अंश में अविरुद्ध हैं, वह तो सर्वसम्मति से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म कहलावेगा। हिन्दूशास्त्रों में उसी धर्म का विवेचन किया गया है। मानव-धर्म-शास्त्र में जो धर्म के दश लक्षण बतलाये गये हैं, यथा :—(१) धृति (२) क्षमा (३) दम (४) अस्तेय (५) शौच (६) इन्द्रियनिग्रह (७) बुद्धि (८) विद्या (९) सत्य (१०) शान्ति; ये मनुष्य मात्र के लिए हैं। इनमें से कोई लक्षण भी ऐसा नहीं है जिसका आस्तिक तो क्या कोई नास्तिक भी अनादर कर सके। यही धर्म है जिसके आधार पर सनातन काल से यह सारा विश्व क़ायम है और क़ायम रहेगा। इसी धर्म को लक्ष्य में रख कर यजुर्वेद के तैत्तिरीयारण्यक में कहा गया है :—

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा, लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति, धर्मेण पापमपनुदन्ति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति।

"इस सारे जगत् की स्थिति का कारण धर्म है। संसार में धर्मात्मा के पास प्रजा दौड़ कर जाती है। धर्म से पाप को दूर करते हैं, धर्म में ही सब कुछ स्थित है, अतएव धर्म ही सबसे उत्तम पदार्थ है।"

धर्म ही वह वस्तु है कि जिसके बिना हम मनुष्याकृति रखते हुए भी मनुष्य नहीं कहला सकते। धर्म ही वह कल्पवृक्ष है कि जो इस दुःखमय संसार को भी स्वर्गधाम बना देता है। धर्म ही परम मन्त्र या नीति है जिसके आगे सारी सिद्धियाँ हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। धर्म ही वह अमृत या ओषधि है कि जिसको पान करके हम सारे पापरूप रोगों से मुक्त हो जाते हैं। विद्या, सम्पत्ति और प्रभुता संसार में ये तीन बड़ी शक्तियाँ मानी गई हैं। परन्तु एक धर्म के बिना यही संसार को उजाड़ और श्मशान बना सकती हैं।

इस सब कथन का सारांश यह है कि जन्म से लेकर मरण-पर्यन्त मनुष्य का जो कुछ कर्त्तव्य है वही उसका धर्म है। क्या कर्त्तव्य का त्याग भी किसी दशा में हो सकता है? यदि ऐसा हो तो फिर वह दशा ही न रहेगी। राजा वही है जो राजधर्म का पालन करे। प्रजा वही है जो प्रजाधर्म का पालन करती है। पितृधर्म का पालन करनेवाला पिता और पुत्र धर्म को निभानेवाला पुत्र कहाता है।

बस यही कर्त्तव्य रूप हमारा धर्म था जिसका बन्धन जगन्मान्य ऋषियों ने प्रत्येक दशा में हमारे लिए लगाया था। पाठक! अब आपही बतलाइए कि क्या ऐसे पवित्र धर्म को किसी दशा में भी हम त्याग सकते हैं? यदि त्याग दें तो क्या हमारी वही गति न होगी जो आत्मा को छोड़ कर शरीर की और शरीर को छोड़ कर नख और केशादि की होती है?

बदरीदत्त शर्मा।

गुहिलोत।

[गताङ्क से आगे]

प्रचीन विश्वास के अनुसार महाराना की वंश-परम्परा वलभी के अन्तिम राजा शीलादित्य से निकली हुई मानी जाती है, जो ऐसा कहा जाता है कि, मुसलमानों के आक्रमण में मारा गया। टाड ने भी यही यथाश्रुत परम्परा लिख दी है। परन्तु वलभी का अन्तिम राजा शीलादित्य सप्तम था जिसका समय गुप्त संवत् ४४७ अर्थात् ७६६ ई० होता है। उस समय उसकी राजधानी को नष्ट करने और राजा के मारने को मुसलमान कहाँ से आये? दूसरे, उदयपुर के भूमाट ज़िले के सामोली ग्राम में एक शिलालेख मिला है जिसमें गुहिलोत राजा शील का समय विक्रम संवत् ७०३ अर्थात् ६४६ ईसवी निकलता है जो वलभी के अन्तिम राजा से १२० वर्ष पहले हुआ। और, यह गुहिलोत शील वंश के स्थापक गुहदत्त से पाँच पीढ़ी दूर था। इससे गुहदत्त का समय प्रायः ईसवी ५४६ हुआ। तो यह कैसे हो सकता है कि गुहदत्त अपने से २२० वर्ष पीछे के वलभी के अन्तिम राज्य शीलादित्य के वंश में हो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२] वलभी के राजाओं की बढ़ती के समय में ही नागर ब्राह्मणों का नाम पहले पहल आने लगा है। वलभी के राजाओं के बहुत से ऐसे ताम्रपत्र मिले हैं जिनमें दानपात्र आनन्दपुर वा आनर्तपुर अर्थात् बड़नगर से आये हुए ब्राह्मण हैं। नागरों को छोड़ कर शर्क्कराक्षि गोत्र और किसी प्रान्त के किसी प्रकार के ब्राह्मणों में नहीं मिलता। और, इन दानपत्रों में बहुत से दानपात्रों का गोत्र शर्क्कराक्षि है।

(१ गुप्त संवत् २७० का अलीना ताम्रपत्र)

आनर्तपुरविनिर्गतखेटकनिवासिशार्क्कराक्षिसगोत्रबहृवृचसब्रह्मचारिब्राह्मण—मित्रपुत्रब्राह्मणविष्णुमित्राय .....

(२ गुप्त संवत् ४४७ का अलीना ताम्रपत्र)

श्रीमदानन्दपुर वास्तव्यतच्चातुर्विद्यसामान्यशर्क्कराक्षि सगोत्र बहृवृच सब्रह्मचारिभट्टाखण्डलमित्राय भट्टविष्णुपुत्राय.....

(३ गुप्त संवत् ३३० का अलीना ताम्रपत्र)

आनर्तपुरविनिर्गतकासरग्रामनिवास्यानर्तपुरचातुर्विद्यसामान्यशर्क्कराक्षिसगोत्रबहृवृचस ब्रह्मचारि ब्राह्मणकेशवमित्रपुत्रब्राह्मणनारायण(ण)मित्राय .....

(४ गुप्त संवत् ३३७ का अलीना ताम्रपत्र)

'आनन्दपुरविनिर्गतखेटकवास्तव्य (व्या) नन्दपुरचातुर्विद्यसामान्यशर्क्कराक्षिसगोत्रबहृवृचस ब्रह्मचारिब्राह्मणकेशवपुत्रब्राह्मणनारायणाय'.....

ये सब ताम्रपत्र वलभी के राजाओं के हैं। भिन्न भिन्न समय के हैं। अलीना में मिले हैं। दानपात्र ब्राह्मण सभी शर्क्कराक्षि गोत्र के हैं और आनन्दपुर या आनर्तपुर (बड़नगर) से निकले हुए हैं, अर्थात् नागर ब्राह्मण हैं। इनमें से पहले तीन में नामों के आगे मित्र शब्द आया है।

यह मित्र क्या नाम का अंश है ? नहीं, क्योंकि तीसरे ताम्रपत्र का जो दानपात्र है वही चौथे का है तो भी तीसरे में मित्र पद है और चौथे में नहीं। इससे यह नाम का अंश हो नहीं सकता।

तो क्या यह शर्म्मा की तरह ब्राह्मणों के नाम के आगे आदर सूचक उपाधि है ?—यह भी ठीक नहीं जान पड़ता क्योंकि संस्कृत-साहित्य में और पुराने लेखों में इसका ऐसा प्रयोग कहीं नहीं मिलता। अवश्य ही अवध, रुहेलखंड, आदि में कई सिक्के मिले हैं जिनमें राजाओं के नाम के आगे "मित्र" उपाधि आई है। और दूसरे ताम्रपत्र में मित्र के सिवा भट्ट पद भी है, यदि 'मित्र' केवल आदर-वाचक होता तो 'भट्ट' उपाधि व्यर्थ होती।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि शर्क्कराक्षि गोत्र के और आनन्दपुर से आये हुए ब्राह्मणों के नाम के आगेही मित्र पद जोड़ा गया है; वलभी राजाओं के और और लेखों में दूसरे प्रकार के ब्राह्मणों के नाम के आगे नहीं जोड़ा गया; अर्थात् उन्हीं के नाम के आगे यह जोड़ा गया है कि जिनका नागर ब्राह्मण होना निश्चित है।

[३] कुमारपाल की बड़नगर प्रशस्ति में नागर ब्राह्मण 'नगर' नाम से कहे गये हैं। उसके पहले वे नागर नहीं कहलाते थे। बड़नगर का नाम नगर भी था। (देखो, मेरे पहले लेख में नानाक की प्रशस्ति का सातवाँ श्लोक, नगरमित्यास्ते किलानश्वरं) इससे नागरों का विश्वास और लोगों का अनुमान है कि 'नगर' से 'नागर' शब्द बना है। परन्तु कुमारपाल के लेख में शहर को आनन्दपुर और उसके निवासी ब्राह्मणों को नगर कहा है। इससे, और गुजरात के बनियों में और बुलन्दशहर के गूजरों में नागर और स्यालकोट के जाटों में नागर मिलने से, यह अनुमान ठीक नहीं और न यही ठीक है कि नागरमात्र ही ब्राह्मण हैं। अस्तु, नगर वा नागर नाम के प्रचलित होने के पहले कोई और गोत्र-नाम अवश्य रहा होगा जिससे आज कल जिन्हें नागर ब्राह्मण कहते हैं वे दूसरे ब्राह्मणों से पृथक किये जाते हों। पहले जो चार ताम्रपत्रों के अंश उद्धृत किये गये हैं उन्हें पढ़ कर यह अनुमान करना ठीक है कि ये ब्राह्मण मित्र कहलाते थे। राजपूताना में और गुजरात के हिस्सों में अब भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

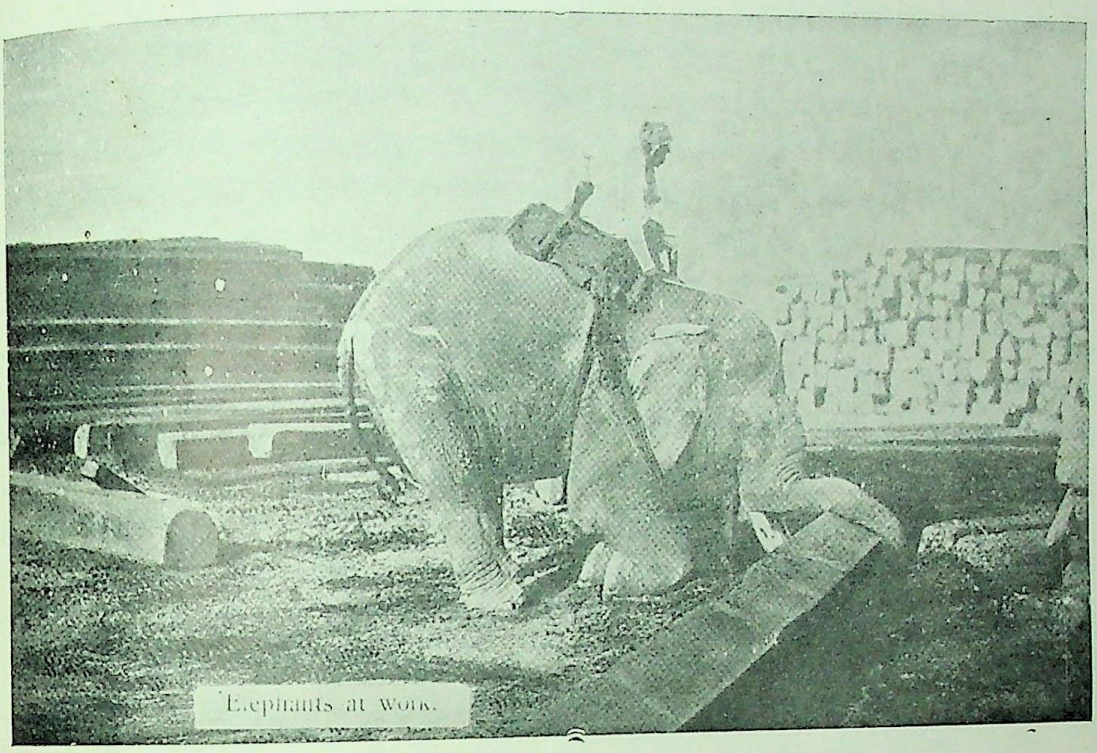

हाथी का शहतीर उठाना।

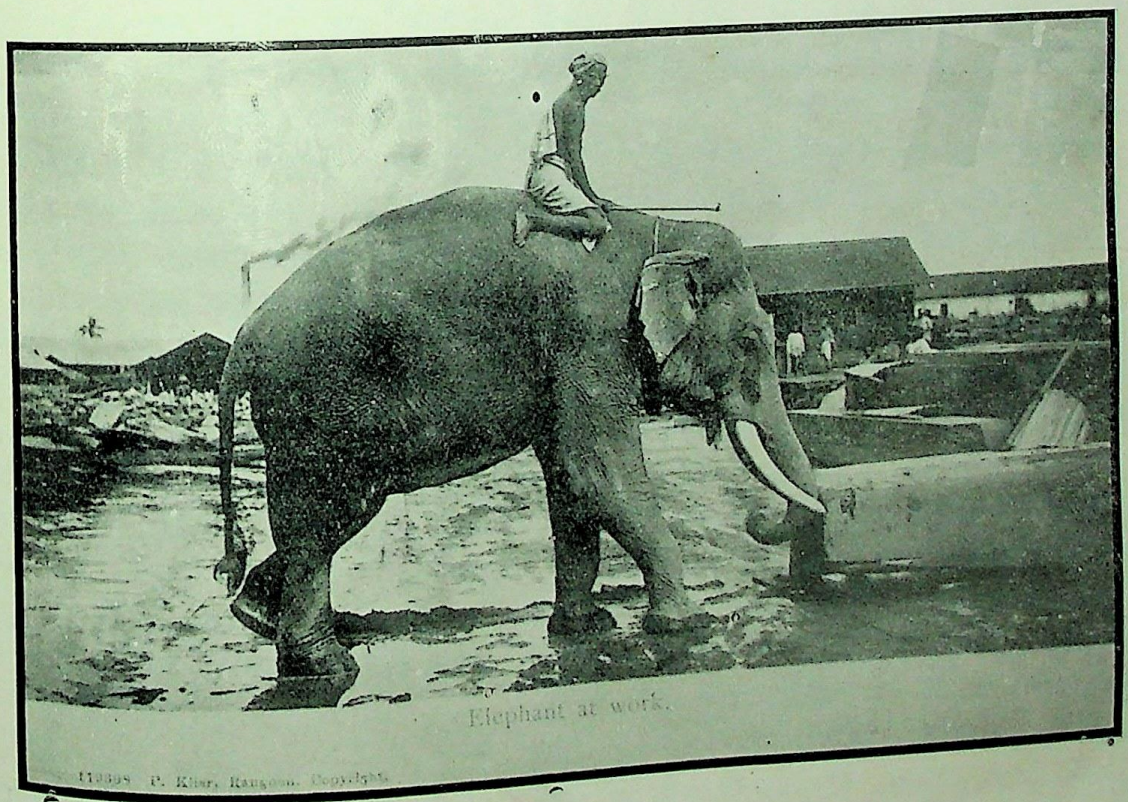

हाथी का शहतीर हटाना।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आगे खाँप का नाम लिखने या बोलने की चाल है (जैसे नन्द निर्वाण, बल्लूजी हाड़ा)। इससे इस अनुमान के विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं मिलता कि वलभी राजाओं के दानपात्र ब्राह्मण, जो आजकल नागर ब्राह्मण कहलावेंगे, खाँप से मित्र थे इसी लिए यह शब्द उनके और उनके पिताओं के नामों के आगे मिलता है।

[४] वलभी राज्य का स्थापक भटार्क था और जहाँ जहाँ ताम्रपत्रों में उसका उल्लेख है वहाँ वहाँ उसका वर्णन "प्रसभप्रणतामित्राणां मैत्रकाणामतुल-ऋसपत्नमण्डलाभोगसंसक्तसंप्रहारशतलब्धप्रतापः" इत्यादि मिलता है। इससे स्पष्ट है कि भटार्क मैत्रक खाँप का था अर्थात् वलभी के राजा मैत्रक थे; और जब उनके दानपत्रों में नागर ब्राह्मण मित्र कहे गये हैं तो यह अनुमान असंगत नहीं है कि मित्र और मैत्रक एक ही नस्ल, एकही वंश और एकही गोत्र के थे और मित्र और मैत्रक एकही खाँप के नाम हैं; जैसे कि गुजरात के सोलंकियों को एक कवि ने कहीं पर चुलुक्य कहा है और कहीं पर चौलुक्य। यों जब यह प्रमाणित हो गया कि वलभी के राजा और नागर ब्राह्मण वंश से एक ही थे तो मेवाड़ के राजाओं को वलभी के राजवंश से मिलाने वाला लोकप्रवाद भी सार्थक हो जाता है। और यह भी हो सकता है कि अवध, रुहेलखंड, गोरखपुर आदि के सिक्कोंवाले मित्र इसी मैत्रक खाँप के हों और 'नागर' भी इन मैत्रकों की एक छोटी खाँप हो जिससे कि यह शब्द गुजरात के बनिये और बुलन्दशहर के गूर्जरों में 'नागर' नाम से और स्यालकोट के जाटों में नगरे नाम से चला आता है। यही नागर शब्द बड़नगर के रहनेवाले ब्राह्मणों में रूढ़ हो रहा है जिनकी छोटी खाँप नागर और बड़ी खाँप मैत्रक थी और इसी लिए यह धोखा देता रहा है कि बड़नगर अर्थात् नगर में रहने के कारण ये ब्राह्मण नागर कहलाये!

[५] डाक्टर भगवान्लाल इन्द्रजी का मत है कि ये मैत्रक और कोई नहीं हैं, मिहिर अर्थात् मेहर, मेर मेड़, नाम से प्रसिद्ध जाति है। संस्कृत में मित्र और मिहिर दोनों सूर्य के नाम हैं और संस्कृत लेखकों की चाल के अनुसार यह नई बात नहीं कि मिहिरों के बारे में वे पर्यायशब्द मित्र को काम में लेने लगें।" मेरों के हिन्दुस्थान पर दो न्यारे न्यारे आक्रमण हुए। पहला आक्रमण तो मैत्रकों का था; और दूसरा मेरों का, जो काठियावाड़ और गुजरात में अब भी इसी नाम से मिलते हैं। अब यह जानना चाहिए कि ये मैत्रक लोग कौन थे। मैत्रकों का सबसे पहला लेख वलभी के राजा प्रथम ध्रुवसेन का कुकड़ दानपत्र है जो गुप्त संवत् २०७ अर्थात् ईसवी सन् ५२६ का है। ध्रुवसेन इस राजवंश का चौथा राजा था और उसके पहले उसका पिता भटार्क राज्य कर चुका था; और भटार्क के पीछे ध्रुवसेन के बड़े भाई धारासेन और द्रोणसिंह ने राज्य किया। इससे भटार्क का समय ५०० ईसवी के पास आ गया। यह बात सबको विदित है कि उत्तरी भारतवर्ष का गुप्तों का महाराज्य हूणों ने नष्ट किया और उन्हें यशोधर्मदेव ने पराजित किया। अन्तिम गुप्त राजा बुद्धगुप्त का समय ईसवी सन् ४८५ है और यशोधर्मदेव का समय सन् ५३३ ईसवी। इसका अर्थ यह है कि ईसवी सन् ४८५ और ५३३ के बीच में हूणों की प्रबलता रही। और इसी समय में मैत्रक प्रबल हुए क्योंकि उनके वलभी राज्य के स्थापक भटार्क का समय प्रायः ५०० ईसवी आता है। इससे प्रकट होता है कि गूर्जरों की तरह मैत्रक भी हूणों के सदृश एक जाति थी जो हूणों के साथ भारतवर्ष में ईसवी छठी शताब्दी के आरम्भ में आई।

[६] मारवाड़ के गूजर आपस में आदर के लिए मेहर शब्द का उपाधि की तरह प्रयोग करते हैं, और अहीरों के लिए मेहर शब्द आदरार्थ काम में आता है, जैसे नन्द मेहर। इससे सिद्ध होता है कि मैत्रक या मेहर गूजरों से मिलती हुई जाति थी। जब मेहर नामधारिणी यही जाति कुछ दिनों पीछे भारतवर्ष में आई तो पहले आये हुए मैत्रक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनमें एकही वंश के होने के कारण मिल गये जिससे अब कहीं मैत्रक नाम या उसका अपभ्रंश उपलब्ध नहीं होता। राजपूताना और काठियावाड़ में मेहर या मेड़ लोग बहुत हैं। अजमेर में तो मेरवाड़ा नामक एक प्रान्त ही है। काठियावाड़ में बार्दा पहाड़ियों के पास बहुत मेर हैं और पोरबन्दर के जेठवा लोग उनके सर्दार हैं। सिन्धी बलोचियों में मेरा या मेहरा उपाधि है। काठियावाड़, कच्छ और मकरान के चतुर मुसलमान माँझियों और जहाज़ चलानेवालों में मेर उपनाम मिलता है। काठियावाड़ के खोजे और मेमनों में, जिन्होंने मुसलमान धर्म ग्रहण किया है, मेहर एक प्रिय नाम है। मेहर, मिहर या महर अब भी आदर दिखानेवाली उपाधि है। गिरनार के खाँट कोलियों में सरदारों को मेर की उपाधि मिलती है। जब, अब तक यह उपाधि आदरसूचक है तो क्या आश्चर्य है कि अलीना ताम्रपत्रों के दानपात्र ब्राह्मण अपने नामों के आगे अपनी खाँप या नस्ल का नाम मित्र जोड़ते रहे हों? क्योंकि मित्र वा मिहिर (सूर्य) मेर वा मेहर का संस्कृत बनाया हुआ रूप है। इससे मित्र वा मैत्रक और मेहर, मेर वा मिहिर एक ही जाति सिद्ध हुई जो हूणों के साथ हिन्दुस्तान में घुस आई थी।

[७] मनुस्मृति में मैत्रक नामक एक सङ्कर जाति का उल्लेख है; वह प्रामाणिक नहीं है। कुछ लोग मैत्रकों को मेड़ वा मेढों से मिलाते हैं जो अरब लोगों के हमलों के समय में सोराठ और मालिया नामक गुजरात के सूबों में बसे हुए थे। मित्र वा मैत्रक ब्राह्मणों के साथ साथ ही मग वा माघ ब्राह्मणों का पता मिलने लगता है।

[८] यह सिद्ध किया जा चुका है कि गुहिलोत पहले नागर ब्राह्मण थे और फिर क्षत्रिय हो गये। नागर ब्राह्मण मैत्रक थे और मैत्रक गूर्जरों की तरह एक विदेशी जाति थी और उनसे मिलती जुलती थी। जब कोई विदेशी जाति हिन्दुस्तान में आकर बसती थी और "हिन्दू" बन जाती थी तब उसके न्यारे न्यारे भाग उन उन जातियों के नाम स्वीकार कर लेते जिन जिन के पेशे वे स्वीकार करते। आई हुई विदेशी जाति के पुजारी ब्राह्मण बन जाते, उसके योद्धा क्षत्रिय बन जाते; उनके सुनार सोनी और उनके खाती सुथार बन जाते। पुरानी जातियों में और इन नई बनी जातियों में यह पहचान होती कि नई आई जाति के लोग अपनी हिन्दू जाति के नाम के पहले अपनी नस्ल या खाँप का नाम रखते जैसे, आभीर ब्राह्मण, अहीर सुनार, अहीर सोंपी (छींपी), गूजर सोनी, गूजर लुहार। यों बाहर से आई हुई क़ौम के लोग हिन्दू समाज की न्यारी न्यारी जातियों में बँट जाते, और अपने हिन्दू-जाति-नाम के साथ साथ अपनी समष्टि-विदेशीय-जाति या नस्ल या खाँप का नाम भी रखते।

[९] परन्तु जिस समय नई आई हुई क़ौम के लोग अपने अपने पेशों को हिन्दू लोगों की जातियों में बदलते और उन उन जातियों में मिलते थे जिन जिनके पेशे वे अपनी क़ौम में करते थे, उस समय कुछ पेशेवाले अपने पुराने पेशे को छोड़कर नया पेशा स्वीकार कर लेते थे। अपनी क़ौम का पुराना पेशा छोड़कर वे हिन्दू लोगों की उस जाति का पेशा कुछ दिन करते हैं जिसके पेशे से उनका पेशा मिलता है, और फिर उसे छोड़ कर नया पेशा स्वीकार करके उस नये पेशे की जाति बन जाते हैं। यह तभी होता है जब कि पुराने पेशे की जाति में उनकी दृढ़ता न हुई हो। यों करने पर वे जुड़े हुए नाम धारण करते हैं; जैसे ब्रह्मक्षत्रिय;—अर्थात् वे विदेशी क़ौम में ब्राह्मण का काम करते थे, हिन्दुस्तान में आकर भी ब्राह्मण का काम करते रहे और फिर कर्म से क्षत्रिय हो गये। यही गुहिलोतों के विषय में हुआ है। मैत्रक नागर ब्राह्मणों ने कुछ दिन ब्राह्मण जाति में रह कर उसके कर्म किये और पीछे क्षत्रियों के धर्म स्वीकार किये। पहले एक चाटसू के शिला-लेख का हवाला दिया गया है जिसमें गुहिलोत राजा भर्तृभट्ट को 'ब्रह्मक्षत्रान्वित' अर्थात् 'ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों गुणों से युक्त' और 'ब्रह्मक्षत्रिय दोनों वंशों का' कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१०] केवल भर्तृभट्ट ही ब्रह्मक्षत्रिय अथवा ब्रह्मक्षत्री जाति का नहीं कहा गया है। बंगाल के प्रसिद्ध सेन वंश के राजा विजयसेन के देवपाड़ा के लेख में सामन्तदेव को "ब्रह्मक्षत्रियाणां कुल-शिरोदाम" कहा गया है जिसका अर्थ यही होना चाहिए कि 'ब्रह्मक्षत्री जाति के सिर की माला' और यह नहीं कि 'ब्राह्मण और क्षत्रिय कुलों के सिर की माला'। बल्लालचरित काव्य में सेन राजाओं को 'ब्रह्मक्षत्र' कहा है। यही काहे को, आज भी भारतवर्ष में पंजाब, राजपूताना, काठियावाड़, गुजरात और दक्षिण में फैली हुई ब्रह्मक्षत्री (ब्रह्मक्षत्रिय) नामक जाति है। मेरे मत में इस जाति के पूर्वज नई आई हुई क़ौमों में ब्राह्मणों का काम करते थे और उनके हिन्दू बन जाने पर कुछ दिन ब्राह्मण का काम करके हिन्दू समाज में पूरी तरह लीन होने के पहले ही क्षत्रियपने का काम करने लग गये। अवश्य ही ब्रह्मक्षत्रिय लोग कहते हैं कि हम उन क्षत्रिय स्त्रियों के वंश में हैं जिन्होंने परशुराम के भय से अपने आपको ब्राह्मण कह कर बचाया। यह पौराणिक युक्ति उस समय की है जब लोग एक जाति का दूसरी में बदल जाना असम्भव मानते हैं और जाति की पथरीली दृढ़ता को ही देखते हैं।

[११] गुहिलोतों के बारे में प्रमाणों से हम यह पा चुके हैं कि नागर ब्राह्मण क्षत्रिय हो गये अर्थात् ब्रह्मक्षत्रिय बन गये। यदि नागर ब्राह्मणों में से ब्रह्मक्षत्रिय बनने का और कोई प्रमाण चाहिए तो वह बंधारा नामक छींपी जाति में मिलता है। जोधपुर राज्य की सन् १८९१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ़ इस जाति का पूर्ण वर्णन करते हुए लिखते हैं कि "ये बंधारे ब्रह्मक्षत्रि हैं। ये जालोर और जसवन्तपुरे के ज़िलों में हैं और पगड़ो और ओढ़नी (चादर) बुनने और रँगने का काम करते हैं। ये बंधारे कहलाते हैं क्योंकि पहले कपड़े को बाँधते हैं और पीछे रँगते हैं।*.....ये अपने को नागर ब्राह्मण कहते हैं और बंधारे होने का यह उपाख्यान बताते हैं—एक समय हस्तिनापुर के राजा ने कुछ नागर ब्राह्मणों को दान देना चाहा परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। इस पर राजा ने क्रुद्ध होकर उनके जनेऊ तोड़ डाले और उन्हें मारना चाहा। वे वहाँ से भाग कर चामुण्डा माता के शरण आये और उसके लिए उन्होंने एक चूंदडी बाँधी (रँगी)। इसलिए वे बंधारे कहलाए।" यह एक ब्रह्मक्षत्री जाति का उदाहरण है जो अपना पहले नागर ब्राह्मण होना मानती है। इससे स्पष्ट है कि गुहिलोत जो पहले नागर ब्राह्मण थे किस प्रकार ब्रह्मक्षत्रिय अर्थात् क्षत्री हो गये और यह भी स्पष्ट है कि ब्रह्मक्षत्रिय जातियाँ विदेशी क़ौमों के ब्राह्मण पेशेवाले वे फिरक़े थे जो हिन्दू समाज की जातियाँ बनना शुरू होने के पीछे और बन चुकने के पहले ब्राह्मण का कर्म छोड़ कर क्षत्रिय का कर्म करने लगे।

उपसंहार।

अवश्यही जिस प्रकार लेखों के प्रबल प्रमाणों पर मेरे लेख का प्रथम भाग दृढ़ है उस प्रकार यह द्वितीय भाग नहीं परन्तु जो प्रमाण हमें अब तक मिले हैं उनके बल पर दूसरे भाग के अनुमान अनुचित नहीं है। जो महाशय विचारपूर्वक इन लेखों के प्रतिपाद्य विषय पर युक्तिपूर्ण खण्डन वा मण्डन लिखेंगे उनका उपकार मैं ही क्या पुराने इतिहास के प्रेमी मात्र मानेंगे।†

देवदत्त रामकृष्ण भांडारकर।

---

* जिससे कि बिना बँधे हुए हिस्से का एक रँग बँधे हुए हिस्से में न पैर जाय जहाँ कि दूसरा रँग दिया जाता है।

† मैं अपने मित्र पण्डित चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए० का बड़ा कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस लेख को हिन्दी में लिखकर मुझे बड़ी सहायता दी। लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंका

मैं लड़कपन ही से यह सुना करता था कि नक़शे में जो टापू सीलोन नाम से विख्यात है वही लङ्का है। उसका भारत से अत्यन्त ही निकट तथा श्रीरामेश्वरनाथजी से वहाँ तक पहाड़ो सिलसिले या छोटे टापुओं की शृङ्खला का विद्यमान होना (जिसका श्रीरामचन्द्रजी के बनवाये हुए पुल का टूटा फूटा भाग होना सम्भव है) उक्त वार्ता की पुष्टि भी करता है। परन्तु कुछ दिनों से ऐसे कई लेख मैंने पढ़े कि यह सीलोन वह राम-रावण के युद्धवाली लङ्का नहीं है। इस विषय पर मैं प्रायः विचार करता रहा और मैंने जान लिया कि इस प्रकार के लेखों की बुनियाद का यह प्रश्न था कि लङ्का में तो राम ने विभीषण को सदा के लिए राज्यतिलक कर दिया था सो यदि कोई लङ्का टापू होगी तो वहाँ विभीषण का राज्य हो होगा तथा वह जीता जागता वहाँ अब तक भी, चाहे लाखों वर्ष भी व्यतीत हो चुके हों. बैठा होगा! अस्तु।

हाल में मुझे यहाँ (कम्पाला ब्रिटिश ईस्ट अफ़्रीका देश में) एक सीलोन-निवासी बौद्ध-धर्मावलम्बी हाशय मिले जो हीरे, जवाहिर, लाल, माणिक्य इत्यादि बहुमूल्य पत्थरों को वहाँ से लाकर घूमते हुए बेंचते फिरते हैं। वे हिन्दी थोड़ी थोड़ी समझ लेते हैं परन्तु अँगरेज़ी में भली भाँति वार्तालाप कर सकते हैं। अतः मैंने उनसे अँगरेज़ी में वहाँ के हालात पूछे। उसका सारांश इस प्रकार है :—

प्रश्न (मेरी ओर से)—हम लोगों के इतिहास बतलाते हैं कि अयोध्या के राजा श्रीरामचन्द्रजी की स्त्री सीता को लङ्का का राजा रावण हर ले गया था और राम ने उस पर चढ़ाई कर के उसे नष्ट किया इत्यादि। क्या यह सीलोन वही लङ्का है?

उत्तर—हाँ वही है, निस्सन्देह वही है।

प्रश्न—क्या रावण के होने के कोई प्राचीन चिह्न वहाँ विद्यमान हैं?।

उत्तर—हाँ हैं। रामेश्वर के सीधे दक्षिण जा कर जो लङ्का का समुद्री किनारा मिलेगा वहाँ से सौ मील के लग भग दूरी पर बहुत दूर तक पुराने खँड़हर पड़े हैं। दूर से वे दिखाई देते हैं परन्तु उनके निकट आज तक कोई नहीं जा सका। वहाँ सोने चाँदी के मकान भी रहे होंगे क्योंकि दूर से ऐसी चमक दमक ज्ञात होती है।

प्रश्न—निकट कोई क्यों नहीं जा सका?

उत्तर—साँप इत्यादि वहाँ भरे पड़े हैं कोई कभी जा ही नहीं सकता।

(उत्तरदाता का अभिप्राय यह है कि दैवी शक्ति उस प्रदेश की रक्षक है। परन्तु मेरा ऐसा ख़याल है कि जिस प्रकार भारत व अन्य देशों के सहस्रों प्राचीन खँडहरों की जाँच नहीं हुई उसी प्रकार लङ्का के इन ऊजड़ स्थानों पर भी किसी ने ध्यान नहीं दिया और जिस प्रकार इस समय पेशावर के खँड़हर में से श्रीबुद्ध महाराज की पवित्र हड्डियाँ प्राप्त हो गई हैं इसी प्रकार लङ्का में रावण के समय की कुछ यादगारें खोज करने पर मिलेंगी)

प्रश्न—और भी कुछ ऐसी बात जानते हो तो बतलाओ!

उत्तर—रावण के वंशवाले मौजूद हैं (तात्पर्य यह कि उसकी जातिवाले)। उनका हाल यों है कि जब रावण मारा गया तो कुछ लोग उसके सेना में से भाग गये और वे लङ्का के दूसरी छोर पर जाकर सुरक्षित हो गये। उन्हीं के वंशवाले इस समय पन्द्रह १५ सहस्र की संख्या में पूर्वीय लङ्का में बसे हैं।

प्रश्न—हमने रावण इत्यादि को राक्षस सुना है सो क्या ये उस के वंशवाले हमारे जैसे ही मनुष्य हैं या कुछ भिन्न हैं।

उत्तर—उनके सारे कार्य हमसे जुदा ही हैं। वे बड़े योद्धा हैं। हर समय तीर कमान रखते हैं, वस्त्र नहीं पहनते वरन् पत्तों से अङ्ग ढाँकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल मांस ही का अहार करते हैं। लङ्का-निवासियों के सिवा दूसरों को देखें तो बिना मारे न छोड़ेंगे।

प्रश्न—क्या वे मनुष्य का मांस खाते हैं?

उत्तर—नहीं। परन्तु मांसाहार के सिवा और कुछ भी नहीं खाते पीते। (मैं समझता हूँ कि प्राचीन काल में मांसाहारियों को राक्षस कहा जाता रहा होगा)।

प्रश्न—उन पर गवर्नमेण्ट का शासन किस प्रकार होता है?

उत्तर—उन पर कोई शासन नहीं कर सकता। उन में स्वयं एक राजा है, वे उसी की मानते हैं।

प्रश्न—वे किस नाम से विख्यात हैं!

उत्तर—रावण नाम उनकी जाति का इन दिनों प्रख्यात है और वे वेद्दा भी कहलाते हैं।

प्रश्न—सीलोन की जन संख्या कितनी है?

उत्तर—पैंतीस लाख।

प्रश्न—क्या सब बौद्ध ही हैं।

उत्तर—हाँ। केवल कोलम्बो या ऐसे भारी नगरों में कुछ दूसरे लोग मिल सकेंगे, शेष सारे ही बौद्ध हैं।

प्रश्न—तुम जो हीरे जवाहिर लाये हो क्या ये सब वहीं उत्पन्न हुए हैं?

उत्तर—हाँ। सिवा वहाँ के दूसरा माल हम नहीं रखते। ये सब हमारी पृथ्वी के ही हैं। वहाँ ऐसे बहुमूल्य पत्थरों की बहुतायत है, कोई भी थोड़े पुरुषार्थ से कृतकार्य हो सकता है।

प्रश्न—वहाँ शादी ब्याह के रिवाज कैसे हैं?

उत्तर—लड़की २० वर्ष और लड़का २५ वर्ष की आयु से पूर्व कदापि ब्याहे नहीं जाते (हमारे प्राचीन भारत में भी ऐसा ही प्रचार था परन्तु शोक है कि हम लोगों को बाल्य-विवाह ने अत्यन्त पतित कर दिया) लड़की का बाप दहेज देता है जो विवाह से पूर्व लड़के के बाप से तै हो जाता है (ठीक ऐसा ही जैसा हमारे देश में इन दिनों प्रचार है) बाप की जायदाद लड़की लड़कों में बराबर बराबर बाँटी जाती है, यद्यपि बाप की मरज़ी से न्यूनाधिक भी हो सकता है।

पाठक! ऊपर के प्रश्नोत्तर से आप चाहे जो परिणाम निकालें। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि यह सीलोन वही लङ्का है जिसका वर्णन हमारे सर्वमान्य इतिहास रामायण में आया है। हमारा यह भी ख़याल है कि राम की अयोध्या अब वह अयोध्या नहीं है जो वाल्मीकि ऋषि के दृष्टि में नाच रही थी परन्तु लङ्का के जङ्गलों में कदाचित् रामचन्द्रजी के समय की ही कई वस्तुएँ विद्यमान होंगी क्योंकि जहाँ भारत और अवध पर तब से अब तक बीसियों जातियाँ शासन कर चुकी हैं वहाँ लङ्का का रावणीय गढ़ जबसे विध्वंस हुआ है तबसे उसे किसी ने स्पर्श तक भी नहीं किया। अस्तु पूरा हाल तो उस देश में जाकर अपनी आँखों देखनेही से ज्ञात हो सकता है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जिस प्रकार हम लोग राम-रावण के युद्ध का वृत्तान्त पूर्ण श्रद्धा से पढ़ते सुनते रहते हैं इसी प्रकार सीलोन का एक एक बच्चा रामचरित से परिचित है। हाँ उन लङ्का निवासी महाशय ने कल रात को यह भी कहा कि "हमारे देश में रामरावण युद्ध के नाटक आपस में खेले जाते हैं जो सप्ताह में दो दिन की जगह छः मास में समाप्त हुआ करते हैं"। इससे पाठकों को दशहरा की रामलीला का मिलान कर लेना चाहिए। इति शम्।

मङ्गलानन्दपुरी।

पद्माकर भट्ट।

पद्माकर भट्ट के विषय में डुमरावँ निवासी पण्डित नकछेदी तिवारी ने एक लेख लिखा था जो देवनागर के प्रथम वर्ष की प्रथम संख्या में प्रकाशित हुआ है। इस लेख को हम मुख्यशः उसी के आधार पर लिखते हैं क्योंकि हमारे पास उससे अधिक उत्तम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई प्रमाण नहीं है। पद्माकर ने अपने किसी ग्रन्थ में सन् संवत् का कोई ब्योरा नहीं दिया। अतः उनके ग्रन्थों का पूर्वापर क्रम बहिरंग प्रमाणों और अनुमानों पर ही निर्भर है।

पद्माकर भट्ट तैलंग ब्राह्मण थे। उनका जन्म सन् १७५३ ई० में बाँदा में हुआ और सन् १८३३ ई० में वे कानपूर में गंगातट पर स्वर्गवासी हुए। इस देश में तैलंगियों की माथुर और गोकुलस्थ नामक दो शाखायें हैं। पद्माकर ने जगद्विनोद के कई अध्यायों के अन्त में लिखा है कि "मथुरास्थाने मोहनलाल-भट्टात्मज कविपद्माकरविरचित" जिससे जान पड़ता है कि ये महाशय माथुर शाखा के थे। ये लोग अत्रिगोत्री हैं। मधुकर भट्ट की पाँचवीं पीढ़ी में जनार्दन भट्ट उत्पन्न हुए। इनके पाँच पुत्र थे, अन्नाजू, गुधरजू, मोहनलाल, क्षेमनिधि और श्रीकृष्ण। मोहनलालजी बाँदा नगर में सन् १६८७ ई० में उत्पन्न हुए। ये महाशय पूरे पण्डित होने के अतिरिक्त कवि भी थे। आप पहले नागपुर के महाराजा रघुनाथ राव उपनाम अप्पा साहब के यहाँ रहे और फिर सन् १७४७ ई० में पन्ना के महाराज हिन्दू-पति के यहाँ जाकर उनके मन्त्र-गुरु हुए और उन्होंने इन्हें पाँच गाँव भी दिये। वहाँ से मोहनलालजी जयपुर के नरेश प्रतापसिंह के यहाँ गये। ये महाराज सन् १७७९ ई० में सिंहासनारूढ़ हुए थे और सन् १८०३ ई० में स्वर्गवासी हुए। प्रतापसिंह माधोसिंह के पुत्र थे। इन्हीं के पुत्र महाराजा जगत्-सिंह थे जो सन् १८०३ ई० में सिंहासनारूढ़ हुए और इन्होंने १७ वर्ष तक राज्य किया। प्रतापसिंह के यहाँ मोहनलाल ने एक हाथी, जागीर, सुवर्ण-पदक, तथा कविराज शिरोमणि की पदवी पाई।

पद्माकरजी मोहनलाल भट्ट के पुत्र थे, और जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, सन् १७५३ ई० में उत्पन्न हुए थे। विद्या पढ़ने में इन्होंने संस्कृत और प्राकृत का भी अच्छा अभ्यास किया था। ये महाराज "सुगरा" में नेाने अर्जुनसिंह के मन्त्र-गुरु हुए। इनके वंशधर अब भी वहाँ मन्त्र-गुरु होते हैं। सन् १७९२ ई० में ये महाराज गोसाईं अनूपगिरि उपनाम हिम्मत बहादुर के यहाँ थे। हिम्मत बहादुर की प्रशंसा में इन्होंने जो कविता की है, और जिसका कुछ अंश नीचे दिया जायगा, वह उत्तम है। इन्होंने रामरसायन नामक एक रामायण भी बहुत लम्बी चौड़ी बनाई है। वह आकार में वाल्मीकीय रामायण से कुछ ही छोटी है और यह ग्रन्थ प्रायः उसी का भाषानुवाद सा है। रामरसायन तुलसीकृत रामायण की भाँति दोहा, चौपाइयों में बनी है। यह कथा प्रासंगिक रीति का ग्रन्थ है न कि नैषध आदि की भाँति काव्यछटाप्रदर्शक। इसके प्रथम तीन कांड (बाल, अयोध्या, और आरण्य) हमारे पास वर्तमान हैं। ये भारतजीवन प्रस में छपे हैं। पद्माकरजी की अन्य कविता देखते हुए रामरसायन की कविता को बहुत शिथिल कहना पड़ता है। पद्माकर कृत किसी ग्रन्थ की कविता ऐसी शिथिल नहीं है। इससे विदित होता है कि सन् १७९२ ई० में हिम्मत बहादुर के यहाँ जाने और "हिम्मत बहादुर विरदावली" नामक ग्रन्थ बनाने के पहले ये महाशय रामरसायन बना चुके थे। पण्डित नकछेदी तिवारी ने लिखा है कि जगद्विनोद बना चुकने के पीछे उन्होंने रामरसायन बनाया है, परन्तु जगद्विनोद की काव्य-प्रौढ़ता और राम-रसायन की शिथिलता देखकर हम यह कथन किसी अंश में प्रामाणिक नहीं मान सकते। कविता का गौरव देख कर हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि राम-रसायन पद्माकर का प्रथम ग्रन्थ है और प्रायः सन् १७८० ई० से १७८५ ई० पर्यन्त बना होगा। उदाहरण नीचे लिखा जाता है:—

धन्य जनक तुम दोऊ भाई।
पूजत जिनहिँ सकल ऋषिराई॥
तुम नित लहहु अनन्द बधाये।
यह कहि दशरथ डेरन आये॥
नान्दीमुख तहँ कीन्ह सराधू।
पूजि सुप्रोहित गुरु मुनि साधू॥
प्रातहि बहु गोदान कराये।
इक इक लाख सुविप्रन पाये॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधिवत चाह्यो सुतन सों यों गोदान दिवाय।
द्यावत भे धन द्विजन को दशरथ हिय हरषाय॥

बाँदा में बहुत लोग कहते हैं कि यह ग्रन्थ पद्माकर कृत नहीं है वरन् उनके सोनारिन से उत्पन्न पुत्र मनीराम का बनाया हुआ है। पद्माकरजी हिम्मत बहादुर के सन् १७९२ ई० के एक युद्ध में वर्तमान थे। इसका संवत् पद्माकरजी ने स्वयं वर्णन किया है। हिम्मत बहादुर पहले नवाब बाँदा के यहाँ नौकर थे। ये बड़े बहादुर युद्ध-कर्त्ता थे। पीछे से ये अवध के बादशाह के यहाँ नौकर हो गये और उनकी ओर से बहुत सी लड़ाइयों में सम्मिलित रहे। ये महाशय बक्सर की लड़ाई में भी लड़े और उसमें घायल भी हुए थे। पद्माकरजी ने इनके साथ बहुत दिनों तक रह कर "हिम्मत बहादुर बिरदावली" नामक एक उत्तम ग्रन्थ बनाया। यह ग्रन्थ हमने नागरी-प्रचारिणी ग्रन्थ-माला द्वारा प्रकाशित देखा है और वह हमारे पुस्तकालय में प्रस्तुत है। इनके साथ पद्माकर सन् १७९९ ई० तक रहे थे। सो उसी समय तक यह ग्रन्थ बना होगा।

तीखे तेग बाही जे सिलाही चढ़े घोड़ेन पै
स्याही चढ़े अमित अरिंदन की ऐल पै।
कहै पदुमाकर निसान चढ़े हाथिन पै
धूरिधार चढ़ै पाक शासन के शैल पै॥
साजि चतुरंग चमू जंग जीतिवे के लिए
हिम्मति बहादुर चढ़त फर फैल पै।
लाली चढ़ै मुख पै बहाली चढ़ै बाहन पै
काली चढ़ै सिंह पै कपाली चढ़ै बैल पै॥

तुपक तमंचे तीर तेार तरवारन में
काटि काटि सेना करी सोचित सतारे की।
कहै पदमाकर महावत के गिरे कूदि
बिलक किलाए आए गज मतवारे की॥
हेरन हसन हरखन सान धन वह
जूझत पवांर वीर अरजुन भारे की।
जंगमैन थाका करचौ सूरन में साका जिहि
ताका ब्रह्मलोक को पताका लै पंवारे की॥

इस ग्रंथ की कविता उत्तम और भाषा इसकी प्राकृत मिश्रित व्रज भाषा है। सन् १७९९ ई० में पद्माकरजी सितारे के महाराज रघुनाथ राव उपनाम रघोबा के यहाँ गये। सुना जाता है कि इनकी कविता से प्रसन्न होकर रघुनाथ राव ने इन्हें १ हाथी १ लाख रुपया और दस गाँव दिये। रघुनाथ राव के दान की प्रशंसा जगद्विनोद में कई जगह वर्णित है। उनके यहाँ कुछ दिन रह कर पद्माकरजी जयपुर के महाराजा प्रतापसिंह के यहाँ गये। प्रतापसिंहजी बड़े वीर पुरुष होने के अतिरिक्त कवि भी थे, अतः उन्होंने पद्माकर का सम्मान करके उन्हें अपने यहाँ नौकर रख लिया। जब सन् १८०३ ई० में महाराजा प्रतापसिंहजी वैकुंठवासी हुए और उनके पुत्र महाराज जगत्सिंहजी गद्दी पर बैठे तब उन्होंने पद्माकर का पूर्ववत् मान तथा पद स्थिर रक्खा। इन्हीं महाराज की आज्ञा से पद्माकरजी ने संभवतः सन् १८१० ई० के लग भग अपनी कविता का भूषण जगद्विनोद ग्रन्थ निर्माण किया। यह ६२७ छन्दों का एक बड़ा ग्रन्थ है और इसमें भाव भेद एवं रसभेद विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। भाव भेद के अन्तर्गत नायिका भेद भी आजाता है। जगद्विनोद न केवल पद्माकरजी की कविता का वरन् भाषा कविता का शृंगार है। इसके छन्द पद्माकर के साहित्य गुणों के वर्णन में लिखे जायँगे। नायिका भेद के पढ़नेवाले जगद्विनोद और मतिरामजी कृत रसराज सबसे पहले पढ़ते हैं और इन दोनों ग्रन्थों की कविता जैसी मनोहर है वैसे इनके लक्षण वा उदाहरण भी बहुतही साफ़ हैं। शृंगार रस के ग्रन्थों में इन दोनों के बराबर किसी अन्य ग्रन्थ का प्रचार नहीं है और भाषा-रसिकों ने जितना आदर इन ग्रन्थों को दिया है वह योग्य है।

इसी समय या इसके कुछ ही आगे पीछे पद्माकरजी ने पद्माभरण नामक एक अलंकारों का ग्रन्थ बनाया और उसमें केवल दोहा चौपाई में अलंकारों के लक्षण व उदाहरण दिखलाये हैं। इस ग्रंथ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३४४ छंद हैं। काव्य की उत्तमता में यह साधारण है। उदाहरणार्थ दो एक छन्द नीचे दिये जाते हैं।

धन से तम से तार से अंजन की अनुहार।
अलि से मावस रैनि से बाला तेरे बार॥
निरखि रूप नँदलाल को दृगन रुचै नहिँ आन।
तजि पियूष कोऊ करत कटु औषधि को पान॥
तो बचननि की मधुरता रही सुधामह छाय।
चारु चमक नल मीन की नैनन गही बनाय॥

सन् १८१४ ई० में महाराज मानसिंह का विवाह जगतसिंह की बहन से और महाराजा जगत्सिंह का विवाह मानसिंह राजा कृष्णगढ़ के यहाँ हुआ। उस समय जगत्सिंहजी के साथ पद्माकरजी भी थे और उनसे और कविराजा बाँकीदास से चर्चा हुई थी।

तदनंतर पद्माकरजी उदयपुर के महाराजा भीमसिंह के यहाँ गये। भीमसिंहजी का राजत्व काल सन् १७७९ ई० से सन् १८२९ ई० तक रहा है। उनके यहाँ पद्माकरजी सम्भवतः सन् १८१६ ई० के लगभग गये होंगे। वहाँ जाकर रानाजी के चित्त-विनोदार्थ इन्होंने गुनगौर मेले का वर्णन किया। इस मेले को रानाजी बहुत पसंद करते थे। यह मेला उदयपुर में अब तक होता है। रानाजी ने इनका बड़ा सम्मान करके सुवर्णपदक और भूषणादि देकर इन्हें प्रसन्न किया।

कुछ दिनों के पीछे ये महाराज ग्वालियर के महाराजा सेंधिया दौलतराव के दरबार में गये। इनका राजत्व काल सन् १७९६ ई० से १८२८ ई० तक है। सेंधिया महाराज के यहाँ इन्होंने निम्न लिखित छंद पढ़ा :—

मीनगढ़ बम्बई सुमंद मंदराज, बंग,
बंदर को बंद करि बंदर बसावैगो।
कहै पदुमाकर उकासि कासमीर हू को
पिंजर सों घेरिकै कलिंजर छुड़ावैगो॥
बाँका नृप दौलत अलीजा महराज कबूँ
साजि दल पकरि + + + + को दावैगो।
दिली दहपट्टि पटना हू को झपट्टि करि
कबहूँ कलत्ता कलकत्ता को उड़ावैगो॥

सेंधिया महाराज के यहाँ भी पद्माकर का अच्छा मान हुआ। इनके नाम पर पद्माकरजी ने आलीजा प्रकाश नामक ग्रन्थ बनाया है, परन्तु सुना जाता है कि इन्होंने इसके आदि में दौलतराव की प्रशंसा के कुछ छन्द रख कर मुख्य विषय में जगद्विनोद ही को रख दिया है। यह ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है और न हमने इसे देखा है, अतः इसके विषय में निश्चयात्मक कुछ नहीं कह सकते।

कहते हैं कि सेंधिया दरबार के मुख्य मुसाहब ऊदाजी दक्खिनी के कहने से पद्माकर ने हितोपदेश का भाषानुवाद भी किया था। यह ग्रन्थ भी अभी प्रकाशित नहीं हुआ है और न हमारे देखने में आया है। अतः हम इसके विषय में नहीं कह सकते कि इसकी कविता कैसी है, और इसका पद्माकर द्वारा इस समय निर्मित होना ठीक है या नहीं।

पं० नकछेदी तिवारी ने पद्माकर का रघुनाथ राव के यहाँ से दौलतराव के यहाँ होकर और वहाँ आलीजा प्रकाश और भाषा हितोपदेश बनाकर जयपुर जाना लिखा है, परन्तु हमको पूर्वोक्त क्रम से उनका सितारा, जयपुर, और ग्वालियर जाना यथार्थ मालूम पड़ता है। कारण यह है कि सन् १८०३ ई० में महाराज प्रतापसिंह स्वर्गवासी हुए थे और तिवारीजी ने लिखा है कि पद्माकर उनके यहाँ नौकर रहे हैं, तो इस हिसाब से पद्माकर का प्रतापसिंह के यहाँ कम से कम क़रीब दो साल के रहना मानना पड़ेगा। फिर महाराज रघुनाथराव के यहाँ भी उन्होंने प्रचुर पुरस्कार पाया था सो वहाँ भी वे साल डेढ़ साल से कम क्या रहे होंगे। तिवारीजी के कथनानुसार पद्माकर सन् १७९९ ई० में हिम्मत बहादुर के यहाँ से चले तब सन् १८०३ ई० तक उनको इतना समय कहाँ से मिलता कि वे रघुनाथराव और प्रतापसिंह के यहाँ भी रहते और बीच में महाराज सेंधिया के यहाँ जाकर दो ग्रन्थ भी बना आते। महाराजा जगत्सिंह ने सन् १८०३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

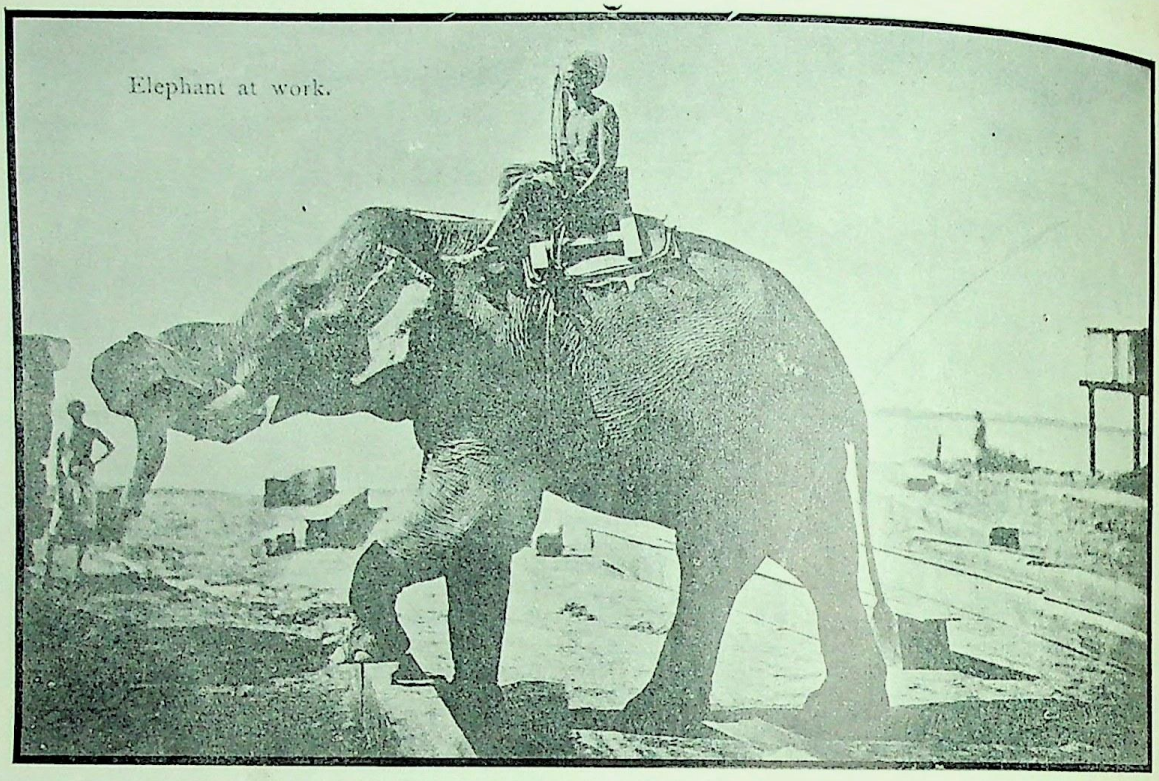

हाथी का शहतीर जमा करने के लिए ले चलना।

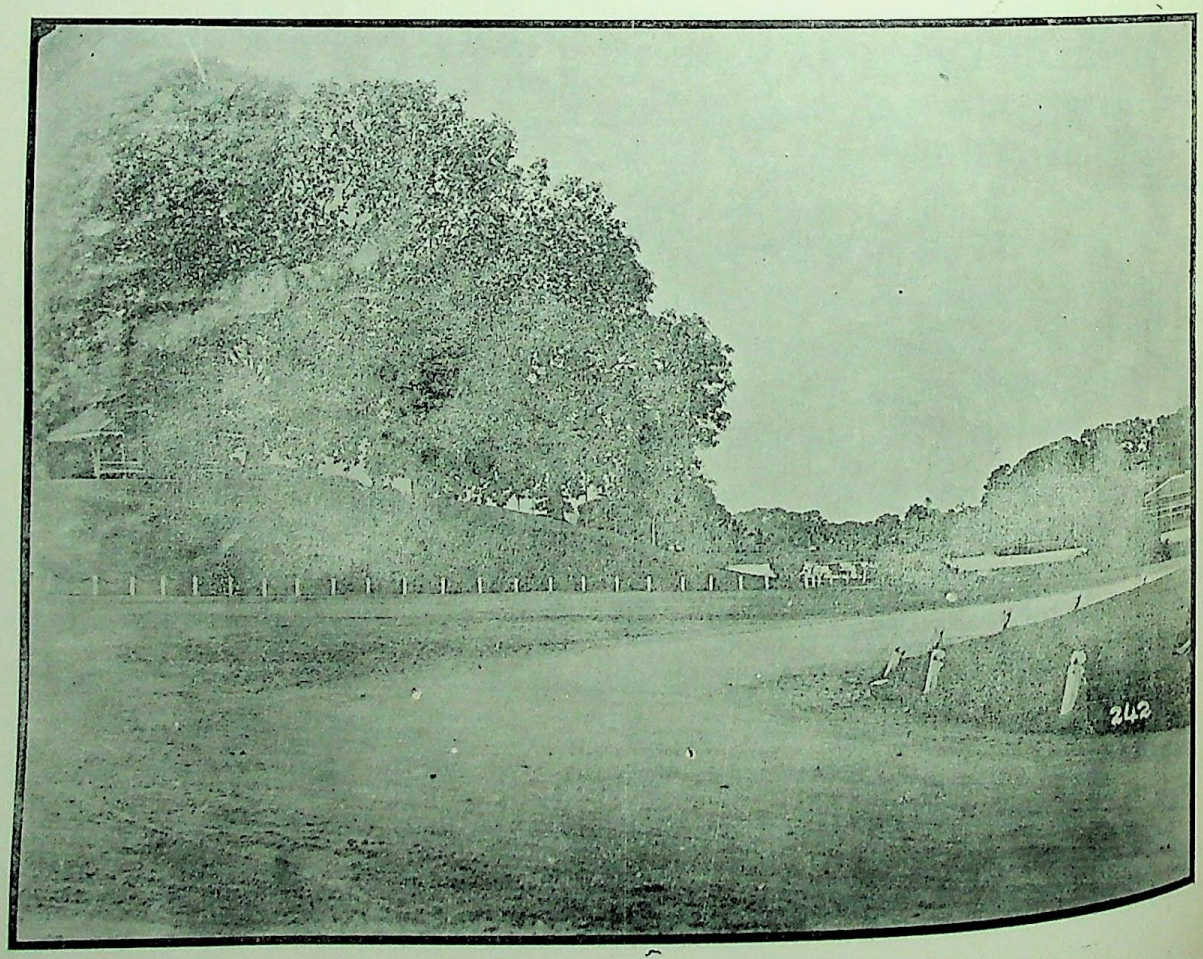

रंगून की प्राचीन झील

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक राज्य किया है और सेंधिया दौलतराव ने सन् १८२९ तक राज्य किया है सो पद्माकर का जयपूर के पीछे ग्वालियर का जाना मानने में कोई आपत्ति भी नहीं है। ग्वालियर से ये महाशय बूँदी गये और वहाँ से अपने घर बाँदा को वापस आये। सुना जाता है यह कुष्ठ रोग से पीड़ित हो गये थे।

इसी समय रोगमुक्त होने की अभिलाषा से इन्होंने प्रबोधपचासा नामक ५१ छन्दों का एक ग्रन्थ भक्ति-रस का बनाया। यह ग्रन्थ भी उत्तम बना है और पद्माकर के ग्रन्थों में यह बहुत ही पूज्य दृष्टि से देखने योग्य है। इसके छन्दों से निर्वेद टपकता है और यह जान पड़ता है कि दुनिया के देखे हुए और उससे उकताये हुए किसी बुड्ढे ने इसे बनाया है। स्थानाभाव के कारण केवल एक छन्द इसका उद्धृत करते हैं, परन्तु इसके सब छन्द दर्शनीय हैं।

मानुष को तन पाय अन्हाय
अघाय पियो किन गंग को पानी।
भाषत क्यों न भयो पदुमाकर
रामहिँ राम रसायन बानी॥
सारँगपानि के पायन को
तजि कै मनरे! कत होत गुमानी।
मोटी मुचंड महा-मतवारिनि
मूड़ पै मीचु फिरै मड़रानी॥

रोगमुक्त होने पर पद्माकरजी गंगा-सेवनार्थ कानपुर चले आये और वहीं सुखपूर्वक इन्होंने अपनी आयु के शेष दिन व्यतीत किये। जान पड़ता है कि इन्होंने क़रीब सात बरस तक गंगा-वास किया है। इसी समय इन्होंने गंगालहरी नामक ५६ छन्दों का एक उत्तम ग्रन्थ बनाया। इसके भी सब छन्द बड़े उत्तम हैं पर उदाहरणार्थ १ छन्द नीचे लिखते हैं।

जैसे तैंन मोकों कहूँ नेकहू डेरात हुतो
तैसे अब तोसों हौंहूँ नेकहू न डरिहौं।
कहै पदुमाकर प्रचंड जो परैगो तौ
उमंड करि तोसों भुजदंड ठोकि लरिहौं॥
चलो चलु चलो चलु बिचलु न बीचही ते
कीच बीच नीच तो कुटुंबहि कचरिहौं।
एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहिँ
गंगा की कछार मैं पछारि छार करिहौं॥

पद्माकरजी ने अपने पापों को अपार कहा है। हमने बाँदा में जाँच करने से केवल इतना सुना था कि इन्होंने एक सोनारिनि को घर बिठला लिया था। इस एक पातक को कोई अपार नहीं कह सकता है। जान पड़ता है कि रोगी हो जाने के कारण पद्माकरजी अपने को उस जन्म के पापी समझते थे, इसी कारण उन्होंने ऐसे दीन वाक्य कहे हैं।

अन्य कवियों की भाँति पद्माकरजी ने प्रधानतः शृंगार काव्य न करके वीर और भक्ति पक्ष का काव्य बहुत अधिक किया है। इनके सात ग्रन्थों में केवल जगद्विनोद में शृंगार का काव्य है, परन्तु समय के कुचक्र से इनका केवल यही ग्रन्थ परम-प्रसिद्ध हुआ।

पद्माकरजी ने सन् १८३३ ई० में गंगाजी के किनारे कानपुर में शरीर त्याग किया। इन्होंने लाखों रुपये पैदा किये और ये सदैव बड़े आदमियों की भाँति महाराजाओं से सम्मान पाकर रहते रहे और अन्त में पुत्र, पौत्रों से सम्पन्न अस्सी वर्ष की वृद्धावस्था में श्रीगंगाजी के किनारे देवताओं की भाँति यह संसार छोड़ कर देवलोक की यात्रा कर गये। इनके लिए कविता कामधेनु हो गई। इस प्रकार सुखपूर्वक बहुत कम कवियों का समय बीता। अपने विषय में पद्माकर ने केवल एक निम्न लिखित छन्द बनाया है जिससे इनकी महत्त्व-पूर्ण जीवनी का पूरा परिचय मिलता है।

भट्ट तिलँगाने को बुँदेल खंड बासी नृप
सुजस प्रकासी पदुमाकर सुनामा हौं।
जोरत कवित्त छन्द छप्पय अनेक भाँति
संसकृत प्राकृत पढ़ोजु गुन ग्रामा हौं॥
हय रथ पालकी गयन्द गृह ग्राम चारु
आखर लगाय लेत लाखन की सामा हौं।
मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौ जगतसिंह
तेरे जान तेरो वह विप्र मैं सुदामा हौं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्माकर के मिहीलाल और अम्बाप्रसाद उपनाम अम्बुज नामक दो पुत्र थे। गदाधर कवि इनके पौत्र थे। पद्माकर के वंशधर जयपुर, बाँदा, दतिया और छत्रपुर आदि स्थानों में रहते हैं।

इनके ग्रन्थों का वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं। अब सूक्ष्मतया इनकी कविता के गुण दोष नीचे लिखे जाते हैं।

इनकी कविता का सर्वोत्तम गुण अनुप्रास है। भाषा में किसी कवि ने यमक और अनुप्रास का इतना व्यवहार नहीं किया है। इन्होंने अनुप्रास इतना अधिक रक्खा है कि कहीं कहीं वह बुरा मालूम होता है। यथा—

मलिकान मंजुल मलिंद मतवारे मिले
मंद मंद मारुत मुहीम मनसाकी है।
कहै पदुमाकर त्यौं नादत नदीन नित
नागरि नवेलिन की नजरि निसा की है॥
दौरत दरेरे देत दादुर सु दूदैं दीह
दामिनी दमंकनि दिसान मैं दिसा की है।
बद्दलनि बूंदन विलोके बागुलान बाग
वंगलन वेलिन बहार बरखा की है॥

अन्य सुकवियों की भाँति इनकी भाषा बहुत मधुर और कोमल है। ऐसी उत्तम भाषा लिखने में बहुत कविजन समर्थ नहीं हुए हैं। यथा—

ए ब्रजचंद चलौ किन वा ब्रज
लूकैं बसंत की ऊकन लागीं।
त्यौं पदुमाकर पेखौ पलासन
पावक सी मनौं फूकन लागीं॥
वै ब्रजवारी बिचारी बधू
बनि बावरी लौंहिए हूकन लागीं।
कारी कुरूप कसायनैं ऐसी
कुहू कुहू कैलिया कूकन लागीं॥

पद्माकर ने कहीं कहीं लोकोक्तियाँ भी बहुत अच्छी कही हैं। यथा—

सोने में सुगंध और सुगंध में सुन्यो न सोनो
सोनो और सुगंध तो में दोनो देखियत हैं॥
साँचहू ताको नहोत भलो
जो कही नहिँ मानत चारि जने की॥

मतिरामजी की भाँति पद्माकरजी ने भी प्रायः हर उदाहरण के साथ एक दोहा भी कहा है और उनमें दोहे अच्छे हैं। यथा—

कछु गजपति के आहटनि छिन छिन छीजत सेर।
विधु विकास विकसत कमल कछू दिनन के फेर॥
मदन लाज बसतिय नयन देखत बनत इकंत।
इचे खिँचे इत उत फिरत ज्यौं दुनारि के कंत॥
कनक-लता श्रीफल फरी रही विजन वन फूलि।
ताहि तजत क्यों बावरे अरे मधुपमति भूलि॥

पद्माकर की कविता में उत्तम छंद बहुतायत से पाये जाते हैं। उदाहरण देना हम व्यर्थ समझते हैं क्योंकि ऐसे छंद इनके ग्रन्थ में हर जगह मिल सकते हैं और ऊपर के उद्धृत छन्दों में भी आचुके हैं।

देवजी की भाँति पद्माकर ने भी कहीं कहीं ऐसा सच्चा वर्णन किया है कि मानो तसवीर खींच दी गई है। यथा—

आरस सों आरत सम्हारत न सीस पट
गजब गुजारत गरीबन की धार पर।
कहै पदुमाकर सुरा सों सरसार तैसे
बिथुरि बिराजैं बार हीरन के हार पर॥
छाजत छबीले छिति छहरि छरा के छोर
भोर उठि आई केलि मंदिर दुआर पर।
एक पद भीतर औ एक देहरी पै धरे
एक करकंज एक कर है किवार पर॥

इससे विशेष इनकी कविता जो पाठक देखना चाहें उनको चाहिए कि जगद्विनोद, गंगालहरी और प्रबोधपचासा देखें।

बहुत कवियों की दृष्टि में इनकी कविता बिलकुल निन्द्य है क्योंकि उनके मतानुसार पद-लालित्य के फेर में पड़ कर इन्होंने निरर्थक अथवा शिथिल अर्थवाले शब्द बहुत से रख दिये हैं और इनके विशेषण बहुत स्थानों पर अप्रयुक्त एवं अशुद्ध हैं। इधर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र तक इनकी कविता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रेमी थे और कर्पूरमंजरी में उन्होंने मुक्त-कंठ से इनका परमोत्तम कवि होना स्वीकार किया है। ये महाशय अनुपयुक्त विशेषण एवं पद कहीं कहीं अवश्य लिख जाते थे परन्तु इस बहुतायत से नहीं जैसा कि इनके तीव्रालोचक बतलाते हैं। इस एक छोटे से दूषण से इनकी उत्तम कविता दूषित नहीं ठहर सकती। उधर ये महाशय ऐसे ऊँचे दरजे के सुकवि भी नहीं हैं कि हम इनकी गणना परमोत्तम कवियों में कर सकें। इन सब बातों पर ध्यान देकर हमने इन्हें तृतीय श्रेणी का कवि माना है।

गणेशविहारी मिश्र,
श्यामविहारी मिश्र,
शुकदेवविहारी मिश्र।

हिन्दू-काव्य और कवि-कौशल।

आदर्श सृष्टि कवि का लक्ष्य और प्रधान कार्य है। जिस कविता का पठन और मनन करने से पाशवभावापन्न मनुष्य प्रकृत मनुष्यत्व में उपनीत हो सके और मनुष्यत्व देवत्व में परिणत हो सके, वही कविता सृष्टि का आदर्श और लक्ष्य-स्थल होनी चाहिए। हिन्दू-शास्त्र इसी रीति से गठित हुए हैं। इन शास्त्रों ने इसी प्रकार की शिक्षा दी है, और विधि बतलाई है, जिससे कोई हिन्दू भूमिष्ठ होकर भी क्रमशः उच्च और उच्च से उच्चतर तथा उच्चतम अवस्था को प्राप्त कर सके।

हिन्दू-जीवन को इसी तरह की काव्यसृष्टि लक्ष्य होनी चाहिए। जिस कविता में ऐसी शक्ति है, वही पठन-पाठन करने योग्य है। जो इसके विपरीत है, वह सर्वथा अपाठ्य है। जिस कविता का वारंवार पाठ करने से, सहस्रावधि भावना देने से पाशवभावापन्न मनुष्य, देवभावापन्न नहीं हो सकता; अथवा जो कविता किसी नरपशु को देवोपम नहीं बना सकती; उस निकम्मी कविता से क्या लाभ है? संसार में ऐसी कविता की आवश्यकता ही क्या है? कविता कवि का लीलाक्षेत्र और स्वहस्तोपार्जित राज्य है। कविता कवि की रुचि, शिक्षा और प्रवृत्ति की परिचायक है। जब कवि की कल्पना ही काव्य का मूल है, तब उस कल्पना को पवित्र, संयत और निर्मल रखने में विशेष यत्नवान् रहना चाहिए। शेक्सपियर की जो इच्छा अद्वितीय मेक्बेथ आयेागो और उथेलेाको जन्म देने में समर्थ हो चुकी है, वही इच्छा, शिक्षा, रुचि और प्रवृत्ति के हेर फेर से उसी शेक्सपियर को एक जनक राजा और एक महाराज युधिष्ठिर का जन्मदाता बना सकती थी। जब शिक्षा, रुचि और प्रवृत्ति के ऊपर ही सब बातें निर्भर हैं, तब उन्हीं रुचि, शिक्षा और प्रवृत्तियों को उत्तम बनाने में विशेष सावधान रहना चाहिए। इस प्रकार यदि पक्की नींव पर हिन्दू-जीवन के अनुरूप कविता की जायगी, तो वह निस्सन्देह सर्वाङ्ग-सुन्दर होने के साथ ही समाज की उपकर्त्री भी होगी। सैकड़ों कोट-बूट-धारी अङ्गरेज़ी उपन्यास और धोती और पगड़ी-धारी हिन्दी उपन्यासों के पढ़ने से हमारी रुचि और प्रवृत्ति विकृत हो उठी है। उसी विकृत रुचि और प्रवृत्ति से जब हम कोई पुस्तक पढ़ते हैं या कोई काम करते हैं; तो सभी विकृत हो जाता है। यदि कोट बूट को तिलाञ्जलि दे भागवत का कृष्णचरित्र पढ़ा जाय, तो कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ दीखेगा ही नहीं। प्रभूत ज्ञानापन्न उज्ज्वल प्रतिभा-विशिष्ट होने से मनुष्य की रुचि और प्रवृत्ति दूसरी ओर मुड़ जाती है। कुन्दनन्दिनी तैयार की गई, विदेशी भाव से विधवोद्वाह कराया गया और अन्तमें विदेशियों का ही अनुकरण कर विषपान करा, विकृत रुचि से हिन्दुओं के घर घर विष के बीज बखेर दिये गये। आकार और परिच्छद हिन्दुस्तानी हुआ तो क्या हुआ! काया तो साहबी ही है। हिन्दी और अङ्गरेज़ी की ढेरों पुस्तकें छप छपकर प्रकाशित हो रही हैं। अधिकांश इन पुस्तकों में प्रेमी और प्रेमि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काओं की ही कथा है। कोर्टशिप एवं अन्त में किसी अभावनीय वियोग-कातरता अवतारण कर पुस्तक की परिसमाप्ति की गई है। यदि बङ्गला-साहित्य के गद्य अमरकवि बङ्किम बाबू चाहते तो क्या कुन्द-नन्दिनी का परिणाम अन्यरूप में न कर सकते थे? यदि मान लें कि अवश्यमेव कर सकते थे, तो कहनाही पड़ेगा कि यह उनकी कल्पना का दोष है। उन्होंने अपनी कल्पना को दूसरा स्वरूप क्यों न दिया; जिसमें उसका फल हिन्दू-समाज को हितकारी होता? शेक्सपियर यदि हिन्दू-शास्त्रों से शिक्षित होते, हिन्दू रुचि-विशिष्ट से परिचित होते, तो उनकी रुचि, प्रवृत्ति और शिक्षा कुण्ठाबर्ठा मेकवेथ को अङ्कित कर कभी तृप्त न होती वरन् मेकवेथ से बढ़ चढ़ कर किसी उज्ज्वल चरित्र का अङ्कन कर संसार में अक्षय्य आदर्श छोड़ जाती। जो विश्व-सृष्टि में नहीं है, वही तो काव्य जगत् में स्थान पावेगा। जिसका प्रतिरूप जगत् में विद्यमान है, उसका काव्य-सृष्टि में प्रयोजन ही क्या है। विश्वकर्मा से बढ़कर उज्ज्वल वर्ग दिखाने में और कौन समर्थ हो सकता है? सुवर्ण सर्वत्र नहीं है—किन्तु विश्वकर्म्मा-सृजित सुवर्ण भी है और पर्वत भी है। इसी सुवर्ण और पर्वत को एकत्र करना कवि का कार्य है। एवं इसका सिरजन कर इसे मानवोपयोगी भी बनाना होगा। यही कवि का कार्य है। जिससे कोई उपकार नहीं हो सकता, उसकी उत्पत्ति से लाभ ही कौन सा है? सेली की "स्काई लार्क" (Sky-Lark) एक अत्यन्त मनोहर कविता है; किन्तु यदि यह लार्क चिड़िया (लवा) पृथ्वी के किसी कार्य में न आई; तो उसका होना, न होना बराबर है। केवल कुछ सुन्दर वाक्य और भाव की समष्टि से विशेष लाभ होने की सम्भावना नहीं है। ऐसी कविता का जब पाठ किया जाता है, तब जान पड़ता है कि मानों हम किसी स्वप्नराज्य में बिचर रहे हैं, लार्क के साथही साथ हम भी मेघों के अन्तराल में घुस गये हैं और लार्क के पीछे पीछे अदेह उड़ते जा रहे हैं। मानों हमें अब कभी संसार में लौटना ही न पड़ेगा; और इसी तरह अनन्त ब्रह्माण्ड में भ्रमण करते फिरेंगे। जो कवि इस सुख-कल्पना का जनक है, क्या वह अच्छा नहीं है? हम कहते हैं, कि जो कल्पना कार्य में परिणत हो सकती है, वही अधिक मूल्यवान् है। कवि नाना रूप सुन्दर कल्पना कर सकेंगे, किन्तु उनसे लाभ क्या हो सकता है? मानव-जीवन के लक्ष्य को यदि कवि-कल्पित सुन्दर वस्तु भूल में डालती हो—मानव-मन को किसी दूसरी ओर लिये जाती हो; तो वह कवि-कल्पित सुन्दर वस्तु हमारी परम शत्रु है।

अतएव कवि का कौशल ऐसा होना चाहिए, जिससे सृष्टि को लाभ हो और जो कार्य में परिणत हो सके। केवल किसी वस्तु विशेष की विवेचना कर देने से ही वह प्रकृत कविकौशल नहीं कहा जा सकता। कवि-कुशलता का मुख्य प्रयोग वही है, जिससे मनुष्य को बिना किसी तरह का कष्ट उठाये, शिक्षा भी मिल जाय और मनुष्य उसका अनुकरण भी कर सके। जो कवि लोग एक चरित्र के मध्य मेंही किसी अन्य चरित्र की अवतारणा कर अपने विचित्र कौशल का परिचय देते हैं, उसमें भी एक विलक्षण चमत्कार है। एक चरित्र के बीच में ही किसी दूसरे चरित्र के अनुप्रवेश कर देने का फल यह हुआ करता है कि पूर्व चरित्र की गति में विशेष परिवर्तन हो जाता है। इस गति-परिवर्तन से पूर्व-चरित्र सम्भवतः विभिन्न रूप धारण करता है। अन्यथा उसमें सामान्य आकृति-गत कुछ विलक्षणता आही जाती है।

नैतिक, सामाजिक और धार्मिक उन्नति, काव्य-सृष्टि का एक अङ्ग है। काव्य सृष्टि और उसकी परिपुष्टि के लिए कविकौशल की विशेष आवश्यकता है।

पाठक, कण्व ऋषि के आश्रम में गन्धर्व रीति से शकुन्तला के साथ महाराज दुष्यन्त का विवाह हो चुका है। राजा दुष्यन्त स्वराज्य के लिए प्रस्थानित हो चुके हैं और उनके प्रेम में पगी शकुन्तला अपनी पर्णकुटी में बैठी हुई उनकी चिन्ता में व्यग्र है। इसी समय ऋषिवर कण्व के आश्रम में भिक्षा माँगने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गद्दियों का गरोह ।

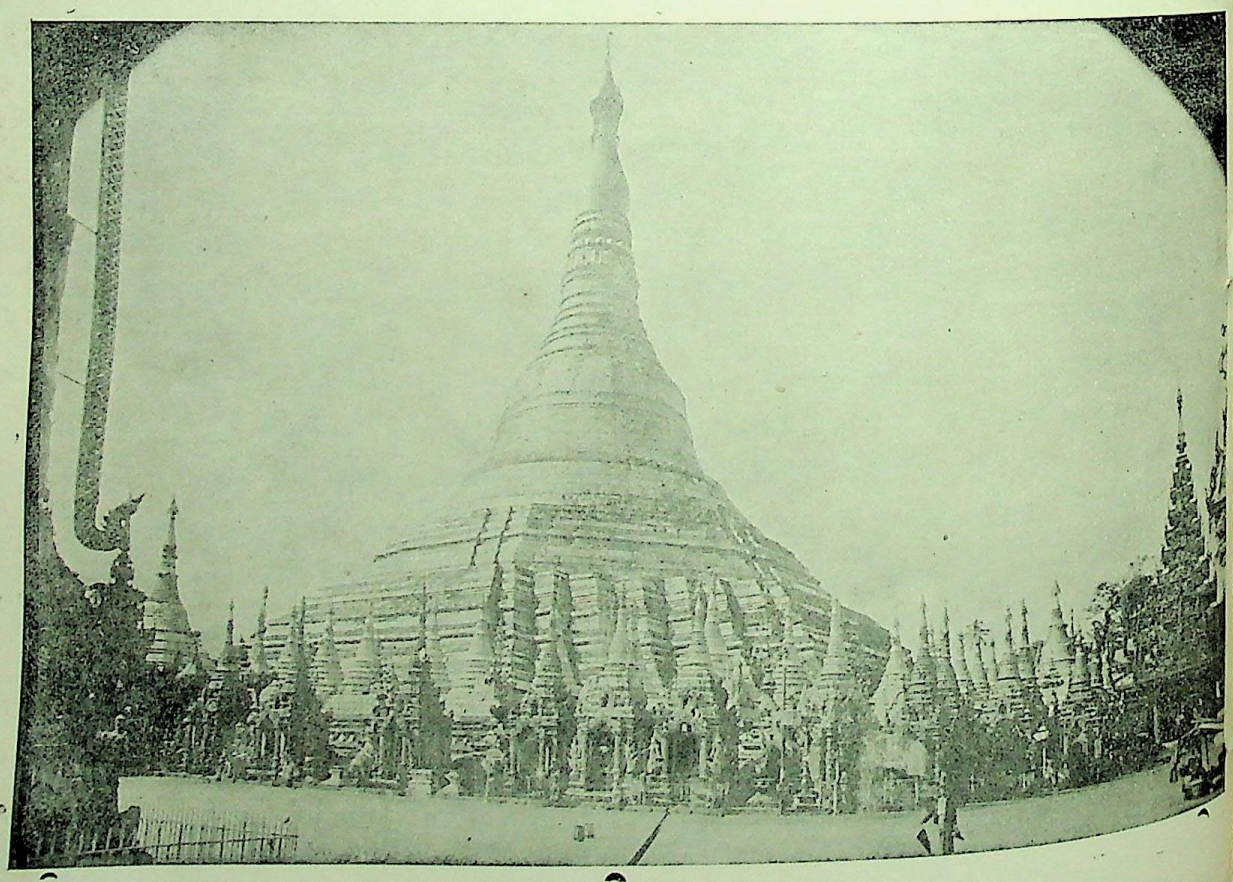

रंगून का श्वेगोडोन पगोडा ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्वासा ऋषि आ पहुँचे। कहलाते तो ऋषि थे, किन्तु क्रोध की ज्वलन्त प्रतिमूर्ति थे। सृष्टि के आदि से ही जहाँ कवियों को क्रोध प्रकाश करने की आवश्यकता पड़ी है, वहीं देखिए दुर्वासा ऋषि किसी न किसी कार्य के मिष वहाँ बुलाये गये हैं। सच-मुच विचार तो कीजिए, सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि चारों युगों में अखण्ड परमायु धारण कर केवल क्रोध-सर्वस्व ग्रहण किये दुर्वासा महाराज शाप देने के लिए सर्वत्र प्रस्तुत दिखाई देंगे। दुर्वासाजी के ऋषि-चरित्र में हम ऐसे किसी कार्य का विवरण नहीं पाते, जिससे वे ऋषि-पदवी के उपयुक्त पात्र समझे जायँ। कवि ने दुर्वासाजी का जहाँ जहाँ आव्हान किया है, वहाँ वहाँ पर वे ज्वलन्त क्रोध की मूर्ति धारण किये आ विराजे हैं। पृथ्वी में उनके तुल्य क्रोधी कदाचित् ही कोई और हुआ हो। तथा ऐसा भी कोई ढूँढ़े न मिलेगा, जिसके ऊपर दुर्वासाजी केवल क्रुद्ध होकर शान्त हो गये हों। क्रोधित हुए, शाप दिया और प्रस्थानित हुए। जहाँ देखिए, वहाँ इन्होंने इतना ही कार्य साधा है। कवि का—दुर्वासा के बुलाने का—काम भी सफल हो गया। किन्तु काव्य-सृष्टि की घटना एक दूसरी ही ओर फिर गई। गान्धर्व विवाह कोई श्लाघ्य कर्म्म नहीं है। महाराज दुष्यन्त के समय में और उनके पक्ष में समाज-विगर्हित था। केवल यही बात दरशाना, दुर्वासा के आनयन का फल है। नैतिक संरक्षा के लिए ही दुर्वासा महाराज ने शाप दिया था। इसके अनन्तर कवि ने दिखलाया है कि ऋषिवर का शाप भाजन हुआ है। पूर्वकालीन ऋषियों के वाक्य अकाट्य होते थे। एक बार उनके मुख से जो बात निकली, वह फलीभूत हुए बिना नहीं रहती थी। देखिए न, राजा परीक्षित विशेष सावधान रहने पर भी ब्रह्मशाप से पीछा न छुटा सके। तक्षक कुसुम-कीट बन फूलों में जा बैठा और इस तरह फूलों के द्वारा वह महाराज के सन्निकट जा पहुँचा। अन्त में उसने वहाँ सर्प का उग्र रूप धारण कर महाराज को काटा और प्राण ले लिये। अतः शाप के फलीभूत होने के लिए कवि ने दुर्वासाजी को ऋषि बनाया है केवल मौज में आकर ऋषि नहीं कह मारा; बिना ऋषि बनाये शाप अकाट्य नहीं हो सकता। मानो कार्यतः क्रोध में भी ऋषि-चरित्र का अंश विद्यमान है। कहिए यहाँ पर कवि का कौशल कितना सुन्दर है? इस कुशलता से घटना-स्रोत बदल गया। कुछ समय के लिए उलटी गङ्गा बहने लगी। दुष्यन्त महाराज बिना प्रमाण और निदर्शन के शकुन्तला को गृहिणी रूप में रनिवास में न रख सके। और वे उसे गृहिणी कहें ही किस बिरते पर? क्योंकि यदि वे शकुन्तला को बिना किसी दृढ़ प्रमाण के गृहिणी मान लेते, तो समस्त प्रजा उनकी देखादेखी, इस प्रथा को प्रचलित किये बिना न रहती। "गतानुगतिको लोकः" को लोग सनातन से मानते चले आ रहे हैं। वादी विवाह के झगड़े का अभियोग न्यायालय में उपस्थित कर कह देता कि यह स्त्री मेरी ही है, इसकी नहीं है। और, प्रमाण में कह सकता था कि "महाजनो येन गतः स पन्था"। दुष्यन्त उस समय वाक्य-शून्य हो सकते थे। राज्य में पुत्र कन्याओं को लेकर इसी तरह का विषम गोल योग उपस्थित हो सकता था। एक पुरुष किसी अन्य व्यक्ति की सम्पत्ति को अपनी सिद्ध करने की चेष्टा कर आकाश पाताल एक करने लग जाता। सम्भवतः ऐसे सब कार्य कारणों का विचार करके कवि ने एक ऐसा उपाय कर दिया कि जिससे ऐसी असुविधा हो ही न सके। आद्य-कवि यदि मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा श्रीसीताजी को वनवास की व्यवस्था न दिलाते, तो उक्त कवि-गुरु को भी विशेष कौशल से इसी प्रकार की कोई अवतारणा करनी ही पड़ती। जब सती सीताजी को वनवास की आज्ञा सहज ही दिलवा दी तभी तो कवि महाराज को विशेष माथापच्ची करने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

इस प्रकार कवि का कौशल काव्य जगत् में असाध्य साधन कर देता है। काव्य जगत् का ईश्वर कवि है। यदि वह चाहे तो अपनी सृष्टि में प्रलय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर एक नई ही सृष्टि रच डाले। काव्य जगत् इच्छा-मय जगत् है। जो कवि अपनी इच्छा के कौशल-प्रयोग द्वारा प्रकट करने में अधिक चतुर नहीं हैं, उनकी सृष्टि सर्वाङ्ग-सुन्दर नहीं है। इस जगत् की सृष्ट वस्तुओं को कोई दोष नहीं दे सकता। दोष हो सकता है तो कविकल्पना का। कवि यदि दोष-युक्त सृष्टि-कल्पना को अपने हृदय-मन्दिर में स्थान न दे, तो सौन्दर्य्यहीन-सृष्टि कदापि न हो। सृष्टि की निन्दा व्यर्थ है। समस्त दोष तो कविकल्पना के ही मत्थे मढ़ा जाना चाहिए*।

लल्लीप्रसाद पाण्डेय।

मानव-रहस्य।

बाल्यकाल

(भाग ११ संख्या ३ पृ० १३६ से आगे)

जन्म के समय मनुष्य के समान असमर्थ किसी जीव का बच्चा नहीं होता। वह नंगा, गूँगा, निस्सहाय धरती पर आकर गिरता है और अपनी दशा पर रोता है। अन्य जीव जब पैदा हुए ज़रा हवा लगी कि कूदने फाँदने लग गये, परन्तु मनुष्य वर्षों निर्बलता सहन करके पूर्णता को प्राप्त होता है। गर्भ में भी मनुष्य के बच्चे को बहुत दिन रहना पड़ता है। जन्म पीछे समर्थ होने तक उसको बड़े संकट झेलने पड़ते हैं। अठारह बीस वर्ष सीखते सीखते तब कहीं जाकर स्वतंत्र बनने योग्य होता है। अन्य जीवों को शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। कुत्ते के बच्चे की जहाँ आखें खुलीं वह भूँकने, चलने और दूध पीने लगता है। केवल ५० दिन में मा-बाप के समान हो जाता है। मनुष्य अपने बच्चों की ख़ातिरही एक स्थान पर बहुत वर्ष तक रहने के लिए बाध्य होते हैं। जब तक एक बच्चा समर्थ नहीं होता कि दूसरा आ जन्म लेता है और पिता दिन दिन माया-मोह में फँसता जाता है। बच्चे बड़े होकर अपने मा-बाप के साथ रहते हैं और उनके शत्रु मित्र को अपना शत्रु मित्र समझने लगते हैं। बाप मर जाता है तो बेटा मालिक बनता है। इसी तरह आपस में सम्बन्ध होते होते यह सिलसिला टूटने नहीं पाता। वन-जीवों तथा अन्य समुदाय के लोगों से बचने के लिए गाँव भर के लोगों को मिलकर रहना होता है। सारांश यह कि ये जो बड़े बड़े शहर क़स्बे और गाँव दिखाई देते हैं ये सब बच्चों की रक्षा के निमित्त ही हैं, यदि और जीवों के सदृश मनुष्य भी जन्मोपरान्त शीघ्रही समर्थ हो जाता तो वह आज "अशरफ़ुल मख़लूक़ात" कहलाने योग्य न होता। संसार में कैसे कैसे बलवान् और भयानक जीव भरे पड़े हैं, इन सबसे बचने के लिए ही मनुष्य का इतना समय शिक्षा प्राप्त करने में व्यतीत होता है। अपनी रक्षा के लिए मनुष्य ने वस्त्र पहिनना, हथि-यार और औज़ार से काम करना सीखा है, तथा भोजन पकाने की युक्ति निकाली है। ये सब बातें मनुष्य के मस्तिष्क से सम्बन्ध रखती हैं। इसी की बढ़वारी के लिए उसको इतना बड़ा बचपन काटना होता है। शरीर की पूरी बढ़वारी २५ वर्ष की अवस्था में हो चुकती है। अर्थात् पूर्णायु का एक चतुर्थांश संसार में टिकने की योग्यता प्राप्त करने में ख़र्च होता है। औसत उमर ६५ वर्ष की होती है

---

* हमने अपने एक मित्र से 'कवि-कौशल' शीर्षक एक लेख लिखने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने सम्मति में कहा कि स्वतन्त्र लेख लिखने की आवश्यकता नहीं है। श्री अमृतलाल वसु का यही लेख बतला कर कहा कि इसी का अनुवाद कर डालो। इसमें सब बातों का समावेश हो गया है। यह लेख अबसे कोई १० वर्ष पहले 'प्रयास' नामक मासिक पत्र में प्रकाशित हो चुका है। इसमें हमने अपनी ओर से कुछ भी नमक मिर्च नहीं मिलाया है, और न हिन्दी की पुस्तकें और उनके लेखकों का उल्लेख ही किया है। लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस हिसाब से असमर्थता और पूर्णायु का सम्बन्ध १:२½ ठहरता है। हमारी तबीयत का झुकाव खेल कूद की ओर अधिक होता है। यह बात अन्य जीवों में भी पाई जाती है जिनकी समझ हमारे समान नहीं होती। परन्तु परमात्मा ने खेल कूद का आनन्द सबको दिया है। सिंह को जब भूख न सता रही हो और लड़ने के लिए उसका कोई वैरी भी शेष न रहा हो तो वह अपने शारीरिक बल को उछल कूद में लगाकर खेलने का आनन्द लेता है। दीपक के प्रकाश में जो आप इतने कीड़ों को उड़ते देखते हैं यह खेल वे मन प्रसन्न करने के लिए ही करते हैं। घने वृक्ष की डालियों में चिड़ियों का वह चहाना, एक जगह से उड़कर दूसरी जगह बैठना उनका खेलही है। मनुष्य के सिवा जितने जीव हैं वे सब काम केवल उस समय करते हैं जब उनको भूख लगी हो अन्यथा वे अपना बल खेल कूद में ही ख़र्च करते हैं। विद्वानों का मत है कि रूप कुरूप की परख करना भी खेलने की प्रकृति का एक अंग है। शरीर को आरोग्य रखने के लिए भी खेल की आवश्यकता स्वयं सिद्ध है। बचपन में बच्चा स्तनपान करना, रोना, हँसना, तथा खेलना अपने आपही सीखता है। बच्चे का सबसे पहला और सबसे प्यारा काम खेलना है। मनुष्य खेल के दिनों को उम्र भर नहीं भूलता। निस्सन्देह उन लोगों का बड़ा दुर्भाग्य है जो दिन रात कामकाज में ही फँसे रहते हैं और खेलकूद को कुछ फ़ुरसत नहीं पाते। जंगली मनुष्य ज्योंही काम काज से थकते हैं त्योंही उनके हृदय में खेल का प्रवेश होता है जो उन्हें आनन्द से नचाता है। हम आलसी सभ्यजन ताश खेलकर बैठे बैठे अपना मन मग्न करते हैं।

पृथ्वी पर ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ खेलने की क्रिया न हो। बच्चों के खेल देखने से जाति मात्र की सभ्यता पहचान ली जा सकती है। खेलही में हृदय के सच्चे उद्गार निकलते हैं। काम करना, अक़्ल लड़ाना, तथा बड़े बूढ़ों से बात करने में बच्चे का सब स्वाँग बनावटी है, उसके मूल गुण दोष केवल खेल में खुलते हैं। चतुर लोगों ने इस स्वतंत्र वृत्ति को परख करही बच्चों की शिक्षा के अच्छे अच्छे उपाय निकाले हैं। आजकल स्कूलों में जो शिक्षा चली है उसका मूल खेलही है।

खेल एक ऐसा व्यसन है कि बच्चा कभी इससे अघाता नहीं। जितना अधिक खेलता है उतनाही उसका चाव विशेष होता जाता है। मनुष्य के बच्चे केवल शारीरिक बल से ही नहीं खेलते बुद्धिबल का भी प्रयोग करते हैं।

खेल के साथ बच्चे ऐसी अनेक बातें सीख जाते हैं जो भविष्य में उनके बड़े काम आती हैं। अनुकरण और कल्पना ये दो बातें हमारे बच्चों में अधिक हैं। जो बच्चे इनका जितना अधिक प्रयोग करते हैं उतने ही चतुर समझे जाते हैं। हर खेल में जीत हार की बात होती है। जीतने की चेष्टा करना मानो उनकी शिक्षा का बढ़ना है।

मनुष्य के बच्चों को मिलकर रहने की सीख खेलही में मिलती है, जितने खिलाड़ी अधिक इकट्ठे होते हैं उतनेही बच्चे अधिक मग्न होते हैं। खेल देखनेवाले और खेल खेलनेवाले दो प्रकार की रुचि के बालक होते हैं। सबके हृदय में खेलते समय अनेक भाव उदय होते हैं यथा—हर्ष, विषाद, आशा, निराशा, अभिमान, उत्साह आदि। खेल देखकर बच्चे की तबीयत का झुकाव मालूम कर लिया जा सकता है। उनमें सुन्दरता का ज्ञान उपजता है, आभूषणों में रुचि बढ़ती है। खेल में रूप सजाने और शृंगार करने का भी काम होता है। साथही यदि गाना बजाना भी मौजूद है तो खेल का मज़ा और भी बढ़ जाता है। ग़रीबों के लड़के ताली बजाकर या टीन खटकाकर ख़ुश हो लेते हैं। बच्चों के खेल में समाज की शारीरिक, मानसिक, ऐतिहासिक अवस्था और शिल्प-कुशलता का अभ्यास मिलता है। किसानों के बच्चों का खेल शहरवालों से बिलकुल अलग होता है। देश, काल, ग़रीबी, अमीरी, मज़दूरी, सिपाहगीरी, धर्म, अधर्म आदि बातों के अनुसार खेल में अन्तर देखा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चों का खेल यथार्थ में सांसारिक कार्यों के जानने का अभ्यास बढ़ाना है। खेल में अनेक नई बातें सीखी जाती हैं। लड़के मर्दों के से और लड़कियाँ स्त्रियों के से काम सीखती हैं। बच्चों को अपने मन के रोकने की शक्ति खूब होती है इसीसे यदि उनको बचपन में दुष्कर्मों से रोका जाय तो वे जन्म भर रुके रहते हैं। उदाहरण के लिए तमाखू पीने की आदत की बात सोचने योग्य है। जिन बच्चों के मा-बाप उन्हें बचपन में इस आदत से बचाये रहते हैं वे बच्चे समर्थ होने पर भी तमाखू पीना नहीं सीखते और जो मा-बाप इस बात की चिन्ता नहीं करते उनके बच्चे तमाखू के सिवा चर्स, गाँजा और चंडू तक पीना जान जाते हैं। इस प्रकार की अनेक बातें हैं। खेलने के साथ साथ शारीरिक और मानसिक दोनों शक्तियाँ बढ़ती हैं।

बच्चा चाहे सभ्य जाति का हो अथवा असभ्य का बाल्यकाल में जैसी शिक्षा पाता है उसी के अनुसार मनुष्य बनता है। आरम्भ में सब बच्चों का मस्तिष्क एक सा होता है फिर उसको जैसा सिखाया जाता है उसमें वैसी ही लकीरें बनती जाती हैं। अमेरिका के हबशी गोरे बच्चों के साथ साथ स्कूल में पढ़ते हैं, वे सब बातों में उनके समान ही निकलते हैं। परीक्षा के लिए इस बात को अच्छी तरह आज़माया गया है तो यही सिद्ध हुआ है कि शिक्षा का असर सब पर एक सा होता है। मनुष्य की बुद्धि परखनेवाले एक विद्वान् ने आस्ट्रेलियावालों को सबसे कम बुद्धिमान् पाया है। इस जाति के बच्चों को भी जब पढ़ाया जाता है तो वे खूब पढ़ते और समझते हैं परन्तु जब वे जवान होते हैं तो ऐसे सुस्त और काहिल हो जाते हैं कि सब पढ़ना-लिखना व्यर्थ हो जाता है। इसी बात पर शायद किसी ने कहा है:—

काग पढ़ायौ पींजरा—पढ़ि गयौ त्रारौ वेद।
जब सुधि आई कुटम की—रह्यौ ढेढ़ कौ ढेढ़॥

महेन्दुलाल गर्ग।

वसन्त-वियोग।

(१)

संवत् क्या था, इसका कुछ भी नहीं विवेक
देश, समझ लो मृत्युलोक में कोई एक।
एक मनोहर मंजु बाग में किसी पांथ का हुआ प्रवेश,
बाग-छटा पर एक बार तो विवश मुग्ध होता अलकेश।

(२)

थे जो उसके वासी सज्जन मालाकार,
किया सहित सत्कार पथी का सावगत कार।
अभ्यागत को स्वागत देना सेवा के दरसाना भाव,
थी उन लोगों की परिपाटी था सुनीति से सदा बनाव।

(३)

लंबा चौड़ा था अनेक योजन आराम,
अगणित कुञ्जें थीं अन्तर्गत शोभा-धाम॥
उनमेंही से एक कुञ्ज में लगा पथिक करने आराम,
प्राकृत छवि से था वह आवृत आगे पीछे दक्षिण वाम।

(४)

सुन्दर वृक्ष तुंगवर उसमें थे छविसार,
वकुल, अशोक, चनार, बेल, कचनार, अनार।
चन्दन, चंपा, सेमल, किंशुक, खैर, कनैर, सरो, सहकार,
तूत, लवंग, कदम्ब, आंवला, सेब, नाशपाती, खंभार।

(५)

पीपल, पनस, उदुम्बर, जम्बू, बट, जम्भीर,
बेर, बहेर, करंज, निम्ब, निम्बू, अंजीर।
अगर, तगर, खर्जूर, ताल, कर्पूर, नारियल, शाल, तमाल,
पारिजात, अर्जुन, अगस्त आदि कसमस्त तरुशास्त्रसाल।

(६)

ललित लहर लेती थी तरलित उनके तीर,
लतावल्लिकावली:—मल्लिका, मृदु वा नीर।
विष्णुप्रिया, *मोगरा, चांदनी, सोमलता, देवना, गुल,
जाही, जूही, एला, केला, बेला, कनक बेल, सुकुमार।

---

* विष्णुकान्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७)

गुलालाला, गुलमेंहदी, शब्बो गुल अब्बास,
गेंदा, गुलदाऊदी, मेंहदी, कुंद सुबास।
तुलसी,सूरजमुखी,निवारी,गुललाला,गुलाब,जसवंत,
विचल नमित हो अमित डालियां करती थीं रसवंत दिगंत॥

(८)

हरियाली से सुखमाशाली थी अतिकांति,
गुण संपन्नों को भी पन्नों की थी भ्रांति।
नीले पीले लाल सेत सुन्दर फूलों का था सामान,
नीलम पुष्पराज मणि मानिक मुक्तों का था पूरा भान॥

(९)

हिलते थे वृक्षों के पल्लव रुचिर अधीर,
लगती थी आगत शरीर में सुखद समीर।
मानों करके कर सहस्र निज, सेवा आतुर चातुर बाग,
व्यजन क्रिया से मनरंजन कर व्यंजन करना था अनुराग॥

(१०)

भौंरों की थीं गुंजन झनकारें भरपूर,
करते थे ध्वनि चातक कोकिल कीर मयूर।
बुलबुल चक्रवाक पारावत मैना मुनिया लाल, निदान
तम्बूरे पर मधुर स्वरों में अतिथि-मान-सूचक था गान॥

(११)

थी उपवन की पवन परिमलित, मिलित पराग,
पुष्पसार से सिंचित था उसका प्रतिभाग।
अनायासही बन जाता था अर्घ्यदान का पूर्ण विधान,
बनता क्यों न?सदा जब सज्जित था जलचंदनकासामान॥

(१२)

तरु-शाखाएं फल गुच्छों का पाकर भार,
झुक झुक भूमि छुवे लेती थीं बारंबार।
मानो बाग देव के किंकर समझ अतिथि सेवा की नीति,
रखते थे फलफूल सामने निज पवित्र उपहार सप्रीति॥

(१३)

माली भी थे सभी जानते सेवा-नीति,
लाए डाली साज फूलफल सादर प्रीति।
विस्मय-मय तत्समय बटोही हुआ जभी जाँचे फलफूल,
"है ऐसी ही सृष्टि यहाँ की किंवा हुई दृष्टि की भूल॥

(१४)

"अमल्तास के सरस सुहावन पीले फूल,
संग उन्हीं के हैं कदम्ब शोभा के मूल।
हरसिंगार भी हैं डाली में तथा चाँदनी कुंदसरोज,
छै ऋतुओं के फूलों की है एक साथही अद्भुत ओज!॥

(१५)

"विमल फलों में भी है पूरी वही बहार,
पके आम, खिरनी, जम्बूफल, बिही, अनार।
लीमू, लीची,कटहल,बड़हल,कदली,दाख,सेब,अंगूर,
हैं प्रस्तुत फल बारामासी रुचिर रंग रस में भरपूर"॥

(१६)

बोला भोला पथी "आर्य्य जन! है आश्चर्य्य,
है आकर महिमा का वा कुसुमाकर वर्य्य!
विविध देश अरु विविध काल के हों जिसमें प्रस्तुत फल-फूल,
हो निवास ऐसे सुबाग में परम भाग जब हों अनुकूल"॥

(१७)

"सच है श्रीमन्!" बोल उठा इक मालाकार,
"है सचमुच यह महिमण्डल में महिमागार।
किन्तुक्षमा हो दोष,बागयह अगणितगुणगणका है कोश
एकमात्र गुण जान,मित्र वह हुआ आपकोहै परितोष"॥

(१८)

बोल उठा फिर मुदित मुसाफ़िर "निस्सन्देह!
वश्यकरण ये है अवश्य गुणगण का गेह।
एक तान से गायक के गुण का हो जाता है अनुमान,
एक कला से पूर्ण चन्द्र का मन को हो सकता है भान॥

(१९)

"पाक स्वाद सूचक होता है केवल ग्रास,
बिन्दु पान है क्षीर-सिंधु रस का प्रतिभास।
पुष्पाकर दिग्दर्शन ही से पाकर पवनस्पर्शन मात्र,
कहनेका मैं हूँ अधिकारीहै यह अमित-ललित-गुण-पात्र॥

(२०)

"तदपि करौं यदि स्वीकृत कुछ वर्णन कायास,
हो विशेष उल्लास बलित यह बाग बिलास।
इक तो कोमल सरसवाद में है फूलों की छटा अपार,
तिस पैमालाकार,अधिकहो किसेबाग-वर्णनअधिकार?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२१)

बोला यों प्राचीन एक तब मालाकार,
" रहती है याँ छै ऋतुओं की सदा बहार।
दूर दूर देशों के तरुवर सुन्दर सकल सपुष्प अशेष,
हैं याँ, सो तुम जान चुके हो अब आगे कुछ सुनो विशेष॥

(२२)

" नन्दन वन का सुना नहीं है किसने नाम,
मिलता है जिसमें देवों को भी आराम।
उसके भी वासी सुखरासी, उग्र हुआ यदि उनका भाग,
आकर के इस कुसुमाकर में कर देते हैं नन्दन त्याग॥

(२३)

" बाँध पुण्य की पूंजी प्राणी तज संसार,
जाकरते हैं देवलोक में मुदित विहार।
पुण्य क्षीण होतेही छिन में छिन जाता है स्वर्ग विलास,
मृत्यु लोक में फिर आते हैं प्रबल वासनाओं के दास॥

(२४)

" यदि सुवासना हुई सात्विकी उनकी शुद्ध,
पूर्व सुकृति से होना है यदि उन्हें प्रबुद्ध।
इस दुर्गम उद्यान बीच वे पाजाते हैं सुगम प्रवेश,
भाते हैं स्वच्छन्द जगत् में पाते हैं आनन्द अशेष॥

(२५)

" इस उपवन के अधम वर्ग वाले भी जीव,
कीट विहङ्ग भुजङ्गम हैं सानन्द अतीव।
'पृथिवी' 'पानी' 'पवन' 'प्रभा' 'नभ' विदित 'क्रिया'
इस सुदेश के मोददान में रखते हैं कुछ अकथ प्रभाव॥

(२६)

" छोटे जीव-जंतु भी इसके तज कर देह,
सुख परिपूरित लोकों में पाते हैं गेह।
अथवा इसी बाग का जो है मालाकारों का वर-वंश,
पाकर सुख से जन्म उसी में होते हैं नरकुल अवतंश॥

(२७)

" है उत्तर में कोट शैल सम तुंग विशाल,
विमल सघन हिम वलित ललित धवलित सब काल।
सुर, किन्नर, गन्धर्व निरन्तर रखते हैं उसमें निज वास,
बिना तपोबल साधारण जन ह्याँ जाते खाते हैं त्रास॥

(२८)

" चन्द्रभानु की सेत सुनहली प्रभा अपार,
पा वह रजतमय स्थल वाली हिम की धार।
अद्भुत गुण गर्भित पानी का करती है जो प्रकट प्रवाह,
अन्तर्बाह्य शुद्धि का उससे होता है अपना निर्वाह॥

(२९)

" हे नरदक्षिण! इसके दक्षिण पश्चिम पूर्व,
हैं अपार जल से परिपूरित कोश अपूर्व।
पवन देवता गगन पंथ से सुघन घटों में लाकर नीर,
सींचा करते हैं यह उपवन करके सदा कृपा गंभीर॥

(३०)

" रखते हैं सब जीव परस्पर पूरा प्रेम,
व्यापक है संपूर्ण बाग में सच्चा क्षेम।
कोमल पौधों की क्यारी में कहीं कंटकारी की मूल,
लग जावै, तो फूल लगेंगे, कंटक नहीं लगेंगे भूल॥

(३१)

" बुलबुल आदिक की चोटी पर कर आराम,
तितली देती है सुलोल कलगों का काम।
शुक-पारावत-शावक-जन को लाकर बहुधा शाकाहार,
स्वयं खिलाकर और खिलाकर जुरें दरसाते हैं प्यार॥

(३२)

" कुंजर वत्स केसरी पग में शुंड लपेट,
करते हैं बल, करते, डरते नहीं, चपेट।
वृक से बानर मृग नाहर से नकुल जाति से पन्नग जाल,
भीति मुक्त सत्प्रीति युक्त हो हिल मिल रहते हैं सबकाल।

(३३)

" कर देते हैं बाहर भुनगों का परिवार,
तब करते हैं कीश उदुंबर का आहार।
पक्षीगृह विचार तरुगण को नहीं हिलाते हैं गजवृन्द,
हंसभृंग हिंसा के भय से खाते नहीं बन्द अरबिन्द॥

(३४)

" धेनुवत्स जब छक जाते हैं पीकर छीर,
तब कुछ दुहते हैं गौओं को चतुर अहीर।
लेते हैं हम, मधु कोशों से, मधु जो गिरै आपही आप,
मक्खी तक निदान इस थल की पाती नहीं कभी संताप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३५)

"इधर उधर के आकर इसमें हिंसक जीव,
हो जाते हैं पवन लगेही साधु अतीव।
बिज्जू, जुर्रे, बाज, तेंदुए, रीछ, भेड़िये, मगर, भुजंग,
खाते हैं फलफूल वनस्पति कंद मूल सब सहित उमंग"॥

(३६)

"धन्य! धन्य!" कह उठा मुसाफ़िर "है बस धन्य"!
अग्रगण्य बागों में है यह बाग अनन्य।
जहाँ सत्वगुण के महत्त्व से तरु पशुपक्षी हों स्वच्छन्द,
क्यों न कहें हम, है उस थल में राजमान पूरा आनन्द?

(३७)

इतनी कृपा हुई जो मुझपर, मालाकार!
कीजै किञ्चित् और कथन का श्रम स्वीकार,
है जिज्ञासा, है यह किसका महिमा सुखमामय उद्यान,
माली प्रतिभाशाली ये किन महापुरुष की हैं सन्तान"?

असमाप्त

(पूर्ण)

खाद और उसका उचित व्यवहार।

उत्तम खेती मध्यम बान निषद चाकरी भीख निदान
(एक ग्रामीण कहावत)

इस प्राचीन कहावत पर विचार करने से यही जान पड़ता है कि इस भारतभूमि में एक समय ऐसा था कि यहाँ की कृषि-वृत्ति की तुलना कोई व्यापार वा अन्य उद्योग कदापि न कर सकता था। सारा संसार जानता है कि यहाँ की प्रचुर भूमि उर्वरात्व में प्रथमश्रेणी की गिनी जाती थी—एक बड़े और प्रसिद्ध पश्चिमीय विद्वान् अपनी पुस्तक में लिख गये हैं कि भारतवासी कृषि-कर्म्म में बड़े निपुण होते हैं पर उन्हीं के वंशज आज यह कहने पर उद्यत हो गये हैं कि भारत के कृषि की हीनावस्था का कारण यहाँ के कृषकों की अज्ञानता वा अविद्या है। शोक! प्रतिष्ठा के उच्चतम आसन पर पहुँच कर यह विनिपात और अपकीर्ति!

जो हो पर इस बात पर तो प्रायः आजकल के पश्चिमीय विद्वानों और हमारे देश के नव-शिक्षित भाइयों की सम्मति मिलती है कि भारतवर्ष की कृषि की वर्तमान दशा शोचनीय हो रही है और यदि हमारे भाइयों का इस विषय की ओर पूर्णरूप से ध्यान आकर्षित न किया जायगा तो भविष्य में भी इसकी उन्नति का द्वार संकीर्ण ही प्रतीत होता है। दैविक आपत्तियों के अलावा इस अवनति के अनेक कारण हैं जिसके लिए हम किसानों को दोष कदापि नहीं दे सकते। कुछ तो वे दोष हैं जो हमारे देशी किसानों पर उनकी अविद्या के कारण लगाये गये हैं। हम इस दोषारोपण को अनुचित नहीं ठहरा सकते क्योंकि हम स्वयं जानते हैं कि हमारे भाई "लकीर के फ़क़ीर" वाली कहावत को पूरी तरह चरितार्थ करते हैं और नई चालें, वैज्ञानिक उपायों को चाहे वे कैसेही निर्दोषी और लाभदायक हों धारण करने में सङ्कोच करते हैं जिसमें सरासर उनकी भूल है। हम इस विषय में अधिक लिखना व्यर्थ समझ कर केवल उन साधारण बातों को किसानों पर दर्शाया चाहते हैं जो नई नहीं हैं और जिन्हें वे स्वयं जानते वा समझते हैं पर उचित रीति से उन्हें काम में नहीं लाते।

भूमि की पैदावारी खाद और पानी पर निर्भर है। खाद देने के पूर्व किसान को (१) भूमि की वर्तमान दशा और (२) जायदाद (अन्न वा ग़ल्ले) की जाति पर विचार करना चाहिए। अर्थात् यह सोच लेना चाहिए कि भूमि में कितने और किस खाद की कमी है और ग़ल्ला क्या चाहता है। भूमि में अच्छे उपज के लिए तीन चीज़ों की सदैव आवश्यकता रहती है। (१) खार वा सज्जी (२) फ़ास्फ़रिक ऐसिड जो एक प्रकार का तेज़ाब हड्डियों में बहुधा पाया जाता है (हमने अच्छे किसानों के मुँह से कहते सुना है कि जानवरों की हड्डी जिस खेत में अधिक पड़ी रहती है उसमें वा उस स्थान पर जहाँ हड्डी पड़ी हुई सड़ रही हो पौदा खूब हरा भरा और बड़ा होता है और उसका दाना मोटा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पुष्ट होता है) (३) नाइट्रोजन, एक प्रकार की हवा जो शोरे से निकाली जाती है और जो हवा में जिसे हम अपना जीवनाधार समझते हैं लग भग ८० फ़ी सैकड़े पाई जाती है। यह नाइट्रोजन पौदों की ज़िन्दगी के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना पौदे कदापि जीवित नहीं रह सकते और यह वस्तु शोरे की खाद और पशुओं के गोबर में रहती है। गोबर बड़ा गुणकारी है परन्तु उसका गुण देर में और धीरे धीरे प्रकट होता है और शोरा अपना गुण शीघ्र दिखाता है। चतुर किसान गोबर का खाद समयानुकूल विधिपूर्वक खेत में डाल कर बहुत लाभ उठा सकता है। वह उससे खेत का बल बढ़ाता, दाने को पुष्ट करता और पौदे को बड़ा और मोटा उपजाता है।

बड़े शोक की बात है कि इस देश के किसान लकड़ी के अभाव में गोबर के उपलों (गुहरों वा कंडों) को धूप में सुखा कर ईंधन के काम में लाते हैं जिससे सर्वोत्तम उपजाऊ खाद अपने गुण को खो बैठता है। क्या ही अच्छा होता यदि गोबर को बचा कर उसके स्थान में लकड़ी, कोयले, सर्पत और पत्तियाँ ईंधन के काम में लाई जातीं। राख में जो कंडों के जलाने पर शेष रह जाती है केवल ३ सैकड़े नाइट्रोजन रह जाती है, बाक़ी ९७ सैकड़े बरबाद हो जाती है। कुछ महाशय इस बात का खंडन करते हुए यह कहते हैं कि उपलों को जला देने से जो ९७ सैकड़े नाइट्रोजन आकाश में उड़ जाती है वह वर्षा ऋतु में बर्सात के जल के साथ नाइट्रिक ऐसिड (शोरे का तेज़ाब) में रूपान्तर होकर भूमि पर गिर पड़ती है और जायदाद को लाभ पहुँचाती है। इसके उत्तर में मेरा यह कथन है कि रसायन द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि थोड़ी नाइट्रोजन शोरे के तेज़ाब के रूप में पानी के साथ भूमि पर आती है। उसका अधिकांश तो उपलों को जलातेही निकम्मा हो जाता है।

बहुधा कहा जाता है कि करैल मिट्टी में खाद का देना आवश्यक नहीं है क्योंकि बिना खाद डाले ही उसकी उपज अच्छी होती है। परन्तु इसकी भी जाँच हो चुकी है कि मालवा और मध्यप्रदेश की काली भूमि का बल अब न्यून होता जाता है और अनुमान किया गया है कि यदि खाद इन खेतों में नहीं दिया जायगा तो भूमि की उपज अवश्य बहुत घट जायगी। मध्य प्रदेश के कृषि-विभाग के डाइरेक्टर डी० क्लाउस्टन साहब एम० ए०; बी० एस० सी० ने नागपुर में एक एकड़ (क़रीब डेढ़ बीघा) भूमि में शोरा, गोरुओं का गोबर और उनके कंडों की राख डाल कर निम्न लिखित गेहूँ की फ़सल (जायदाद) हासिल की है—

खेत सींचा गया।

खाद की जाति (क़िस्म)	नाज की औसत उपज सेरों में				खाद डालने से अधिक पैदावारी		सींचाई और खाद का ख़र्च	लाभ (+) हानि (-)
	५ साल १८९०-९५	५ साल १८९५-००	५ साल १९०१-०५	१५ साल १८९०-०५	नाज में सेरों	अधिक उपज का दाम		
						रु० आ० पाई	रु० आ० पाई	रु. आ. पा.
सब्ज़ी (शोरा) १२० सेर	४६५½	४१३	६३९	५०६	२५८½	१९-१४-००	१८-१०-००	+१-४-०
खाद (गोबर) १६० मन	३५८½	४५७½	७५०	५२२	२७४½	२१-२-००	८-०-००	+१३-२-०
राख १६० मन गोबर से	२९२	३०९	४१०	३३८½	९१	७-०-००	८-०-०	-१-०-०
बिना खाद	२४३	१८५½	३१३½	२४७½	...	...	२-०-००	...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेत नहीं सींचा गया।

खाद की जाति (क़िस्म)	नाज की पैदावारी का औसत सेरों में						खाद डालने से अधिक पैदावारी		खाद की क़ीमत	लाभ (+) हानि (−)
	७ साल	१८८५-९०	७ साल	१८९०-९५	७ साल	१८९५-०१	७ साल	१९०१-०५	२० साल	१८८५-०५	नाज सेरों में	अधिक उपज का दाम		
												रु० आ० पा०	रु० आ० पाई	रु. आ. पा.
सज्जी (शोरा) १२० सेर	५६६½	३७५½	२५७		४०८½		४०१½		१६१½		१२-०-०		१६-१०-०	-४-३-०
खाद (गोबर) १६० मन	४१६½	३१३½	१८२½		५०६		३६४½		१२४½		९-०-०		६-०-०	+३-९-०
राख १६० मन गोबर से	४७४½	२८८	१७९½		३६२		३२६		८६		६-९-०		६-०-०	+०-९-०
बिना खाद	३९९½	२०९	९८½		२५३½		२४०		...		...		...	...

ऊपर के टेबिल से ४ बातें प्रतीत होती हैं। प्रथम यह कि गेहूँ की फ़सल के लिए सींची हुई भूमि में गोबर का खाद शोरे के खाद से अधिक लाभदायक है और अधिक समय तक ठहरता है।

दूसरी यह कि बिना खादवाली भूमि के मुक़ाबिले में कंडे की राखवाली भूमि में अधिक उपज होती है।

तीसरी यह कि राख का गुण गोबर से (जिससे राख बनाई गई है) लगभग एक तिहाई है।

चौथी यह कि ⅔ अथवा गोबर के खाद का दो तिहाई गुण उसको ईंधन की जगह जलाने से जाता रहता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि १६० मन पीछे १४) की हानि हुई।

दूसरे टेबिल से बिना सींचे हुए जायदाद की पैदावारी का होना अनियमित प्रतीत हुआ और रबी की फ़सल के लिए खाद का असर ऋतु वा मौसम के असर से कम रहा। इसका कारण यह है कि पानी के अभाव में पौदों में खाद खींचने की शक्ति नहीं है। पानी पड़ने से खाद घुल जाती है और पानी में घुले हुए खाद को पौदा खींच सकता है। यदि पानी नहीं दिया गया तो खेत में डाले हुए खाद की उपजाऊ शक्ति बहुत कम हो जाती है और निकम्मी होकर बरबाद हो जाती है। इतनाही नहीं वरन् सूखी भूमि में अधिक खाद डालने से लाभ के स्थान में बहुत हानि भी होती है क्योंकि दीमक उस भूमि में अवश्य लग जाती है और नाज का बीज पड़ने के पश्चात् पौदों की जड़ों को काटना आरम्भ कर देती है।

बिना सींची हुई भूमि में खाद डाल कर पूरा पूरा लाभ उठाने के लिए ख़रीफ़ यानी भदई की फ़सिल अति उत्तम होती है। वर्षा ऋतु के आदि में खेतों में खाद डाल कर कई बार हल से खेतों को जोत देना चाहिए, ताकि खाद मिट्टी में अच्छी तरह मिलकर मिट्टा का अंश बन जाय। ख़रीफ़ के कट जाने पर उसी खेत में रबी वा चैती बोने से खाद का शेष अंश रबी की फ़सिल को लाभकारी है। उसी खेत में दो या तीन वर्ष का अंतर देकर खाद डालने से सर्वोत्तम लाभ होता है। यदि किसी भूमि में केवल रबी की ही फ़सिल जैसे गेहूँ, चना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मसूर, सरसों इत्यादि होती हो और सींचने का सुभीता न हो तो खेतों में आषाढ़ के महीने में खाद डालना चाहिए परन्तु जहाँ सुभीता हो वहाँ अगस्त यानी भादों का महीना उत्तम होता है।

औसत में एक जानवर से (बैल, गाय, भैंस वा भैंसा) लग भग ७० मन फ़ी साल सड़ा हुआ गोबर मिलता है। मानुस यानी पूरी युवा अवस्था को पहुँचा हुआ हल का बैल साल भर में लग भग १०० मन गोबर देता है। अब यदि हम केवल औसत ७० मन का सड़ा हुआ खाद प्रति वर्ष का हिसाब करें तो हमारे टेबिल नम्बर १ से स्पष्ट है कि ½ एकड़ खेत के लिए १ बैल का गोबर काफ़ी है वा यों कहिये कि १ एकड़ भूमि के लिए एक वर्ष का अंतर देकर एक बैल का गोबर काफ़ी होगा। किसी देश की भूमि और वहाँ की मवेशियों की गणना मालूम कर पाठक अनुमान कर सकते हैं कि इतनी भूमि के लिए इतने बैलों का गोबर ठीक होगा।

खाद की तादाद अधिक हो जायगी यदि घोड़ों, भेड़ों और बकरियों की लीदें, वृक्षों की पत्तियाँ, पौदों का डंठर, सड़कों और घरों का कूड़ा, जानवरों का मूत्र और अन्य सड़ी और बदबू करनेवाली वस्तुओं की भी गणना इसमें शामिल कर ली जाय।

गोबर के खाद का गुण तीन बातों पर निर्भर है (१) पशुओं की जाति (२) उनके चारे की क़िस्म और (३) उनके गोबर के सञ्चित रखने के उपाय। यह भी निर्णय कर लिया गया है कि नाइट्रोजन, शोरा और फ़ास्फ़रिक ऐसिड का भाग मवेशियों के गोबर में उनकी उम्र पर निर्भर है। यदि वे मानुस हो चुके और उनका बढ़ना और भारी होना बन्द हो गया तो पूर्वोक्त तीनों वस्तुओं का अंश लग भग उतनाही होता है जितना कि उस चारे में है जिसे वे खाते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो बैल किसान प्रति दिन अपने काम में लाते हैं चाहे वे हल, गाड़ी वा पुर खींचते हों उनके गोबर में खाद अधिक होता है। इसके विरुद्ध उन पशुओं के गोबर में जो केवल बछड़े हैं वा वे गायें जो दूध दे रही हैं वा गाभिन हैं खाद का अंश कम होता है। खाद का गुण उस चारे पर भी निर्भर है जिसे बैल खाता है। यदि पशुओं को वे वस्तु खाने को दी जायँ जिनमें तेल वा चिकनाई अधिक हो जैसे बिनौला राई इत्यादि— नाइट्रोजन संयुक्त चारे, तो उनके गोबरों और मूत्रों में भी नाइट्रोजन का भाग अधिक होता है और वह खाद-द्वारा खेतों में पहुँच कर उनको उपजाऊ बनाता है।

गोबर के खाद को सञ्चित रखने की रीति।

हमें शोक के साथ कहना पड़ता है कि इस उपयोगी विषय पर किसान लोग उचित ध्यान नहीं देते। किसी ग्राम में आप प्रवेश कीजिए आपकी दृष्टि अनायास उन घूरों पर अवश्य जा पड़ेगी जो खुले हुए मैदान में बिना किसी प्रकार के गड्ढे और झोंपड़ी के आपके दाहिने बायें पड़े हुए मिलेंगे। कहीं कहीं पर बरसात के दिनों में मेघ की झड़ी लगी है जिसके मूसलधार पानी के आघात से कुल गोबर बह कर कहीं का कहीं जा रहा है और नाइट्रोजन का उपयोगी अंश नमक, सज्जी और फ़ास्फ़रिक ऐसिड बहा जाता है। और यदि ग्रीष्म की ऋतु रही तो सूर्य्यनारायण के असह्य किरणों से गोबर सूख कर कंडे की तरह हो गया है और उसकी उपजाऊ शक्ति अमोनिया यानी शोरा उड़ कर हवा में मिल गया है और केवल निकम्मा ठोस अंश रह गया है जो यदि खेत में डाला जाय तो पानी में घुलता ही नहीं। अतएव पौदे उसे खींच ही नहीं सकते। खाद को सञ्चित रखने में तीन मूल विषयों पर ध्यान देना चाहिए (१) यह कि गोबर और गोमूत्र दोनों को बटोरना (२) खाद को गड्ढे में इकट्ठा करना और उसको तर रखना। पर, स्मरण रहे कि वह पानी की बहुतायत से कदापि बलबला कर बह न जाया करें और (३) खेत में डालने के पूर्व खाद को भली भाँति से सड़ा देना। सञ्चित रखने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीतियाँ हैं। एक तो भूमि-स्वामियों के लिए जो प्रथम कुछ द्रव्य व्यय करके बैलों और ढोरों के रखने के लिए एक गोशाला बनवावें जिसका फ़र्श पत्थर का हो और जिसमें एक V आकार का एक फ़ुट चौड़ा और ४ इञ्च गहरा गटर या पनारी हो। फ़र्श गटर की ओर कुछ कुछ झुकी हुई हो ताकि पशुओं का मूत्र बह कर उसमें आ जाय और फिर वह गटर में बहते बहते गोशाला की झोपड़ी के बाहर एक बड़े गहरे पुख़्ते गड्ढे में इकट्ठा हो। उस गडढे के ऊपर एक छोटा छप्पर अवश्य होना चाहिए ताकि उसमें का खाद सूर्य्य की किरणों और बरसात के पानी से सूख वा बह न जाया करे—गोशाला के फ़र्श को प्रति दिन पानी से धोना चाहिए—वह पानी गोमूत्र से मिल कर उसको सदैव तर रक्खेगा।

दूसरी रीति सर्व साधारण के उपयोगी है क्योंकि उसमें अधिक व्यय की सम्भावना न होने के कारण दीन से दीन किसान भी उसे कर सकता है। वह यह है :—जिस झोंपड़ी में गायें बाँधी जाती हों उसमें छोटी छोटी बाँस की खूँटियाँ गाड़ कर उन पर छः इञ्च मोटा एक लकड़ी का तख़्ता रख देना चाहिए। फिर इस तख़्ते पर छः इञ्च की गहराई तक सूखी मिट्टी बिछा देनी चाहिए। यह मिट्टी पशुओं का मूत्र जज़्ब कर लेगी। तीन वा चार सप्ताह के बीत जाने पर उस मूत्र-मिश्रित मिट्टी को उठाकर भूर में जिसके ऊपर छप्पर हो डाल देना चाहिए और नवीन मिट्टी प्रथम बार की नाईं तख़्ते पर बिछा देनी चाहिए। मिट्टी पर से गोबर प्रति दिन उठा कर फ़र्श को साफ़ सुथरा रखना आवश्यक है और यदि मिट्टी पर झोपड़ी पड़ जाय जिससे वह पेशाब न सोक सके तो उसको खुर्पी से खुखुरा देना चाहिए ताकि गोमूत्र को वह सोक सके। गडढे के चारों ओर छोटी सी नाली बना देनी चाहिए जिससे उसके ऊपर के छत का बरसाती पानी उसी नाली में पड़ कर बह जाया करे और यदि ग्रीष्म काल में पानी की आवश्यकता हो तो हाथ से उस गोमूत्र-मिश्रित मिट्टी और गोबर की ढेरी पर पानी छिड़क देना लाभदायक है।

पूर्वोक्त छोटे से लेख से पाठकों को ज्ञात हो गया होगा कि गो-मूत्र और गोबर दोनों को बचा रखना उत्तम है। पहले का गुण पौदों पर शीघ्र पड़ता है और वे जन्म से ही लहलहाते हरे भरे निकलते हैं और दूसरे का असर देर में होता है, परन्तु वह पौदों को दृढ़ और पुष्ट करता है।

मुहब्बतसिंह दोनवार।

महाराज एडवर्ड की अन्तिम यात्रा।

ता रीख़ २० मई शुक्रवार १९१० महाराज एडवर्ड की अन्तिम-यात्रा के लिए मुक़र्रर की गई थी। जिस पथ से होकर महाराज के शव की सवारी निकली थी वह दो दिन पहले से ही सजाया गया था। कई मकानवालों ने बैंजनी रँग का कपड़ा (जो बादशाही शोक का निशान है) अपने घरों के आगे लगाया था। सफ़ेद किनारे उस पर बहुत ही भले मालूम देते थे। पथ पर हर एक खम्भे पर बेल और पत्तों की डालें लगाई गई थीं, और कई दिन पहले से ही लोगों के बैठने के लिए प्लेटफ़ार्म (चबूतरे) बनाये गये थे। किसी किसी जगह पर तो सिर्फ़ बैठने के लिए पाँच छः गिन्नियें तक दी गई थीं, यानी १०० रुपये तक। बाज़ तो कहते हैं कि ५० गिन्नियें तक भी एक कुरसी के वास्ते दी गईं थीं। सवारी के एक दिन पहले तो किसी स्थान पर भी बैठने के वास्ते जगह मिलनी मुशकिल हो गई थी। बृहस्पतिवार रात के १० बजे तक महाराज का शव जहाँ पड़ा हुआ था उसके पास से लोगों को गुज़रने की आज्ञा थी। कई दिन तक यह आज्ञा रही और इस काल में कितने ही नर-नारी और बालक उस मकान के कमरे से गुज़रे थे। इस कमरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का नाम वैस्टमिनस्टर हाल है और हाउस आफ़ कामन्स की इमारतों में है। इस कमरे तक उन दिनों में पहुँचना कोई आसान बात नहीं थी। सुबह ६ बजे दरवाज़े खुलते थे। बहुतेरे लोग तो रात भर दरवाज़ों के आगे खड़े रहते थे और सुबह ५ बजे तो ख़ासी मील, डेढ़ मील की क़तार जो कि दोहरी होती थी दरवाज़ों से लेकर एमबैंकमेंट के साथ साथ खड़ी हो जाती थी और जब किवाड़ खुलने का समय आता था तब तो कुछ पूछिये ही नहीं। एक दिन तो यह क़तार ५ मील लम्बाई को पहुँच गई थी, इस क़तार के एक तरफ़ तो दीवार होती थी और दूसरी तरफ़ पुलीस के आदमी खड़े रहते थे। जो लोग क़तार में होते थे उन्हें धक्का वग़ैरः की कोई तकलीफ़ नहीं होने पाती थी और सब अपनी बारी से चलते थे। कोई आध घंटा चलने के बाद हम भी दरवाज़े के पास पहुँचे, (इतनी जल्दी इसलिए कि हम बहुत ही सुबह घर से चले थे और वहाँ पर कोई ५½ बजे पहुँच गये थे। दरवाज़े के अन्दर जाकर कुछ सीढ़ियें चढ़नी पड़ीं और फिर उस कमरे के सिरे पर हम पहुँच गये। वहाँ पर बहुत आदमी खड़े थे, क्योंकि बादशाह का शव कमरे के मध्य में था और वह जगह नीची थी। यहाँ से सब कमरा बहुत अच्छी तरह से दिखाई देता था। ताबूत के ऊपर एक बैंजनी रँग का कपड़ा था और यूनियनजैक भी; और सिर की तरफ़ ताज वग़ैरः रक्खे थे। चारों तरफ़ इसके जंगी सिपाहियों का पहरा था, जिनके कि मुँह बाहर की तरफ़ थे। इनके इर्द गिर्द जँगला था, और उसके बाहर लोग दोनों तरफ़ से गुज़र रहे थे। दो दो आदमियों को इकट्ठा गुज़रने की आज्ञा थी। जो पहरे पर खड़े थे वे अपनी जगह पर से बिलकुल नहीं हिलते थे, और अपने हथियार, नेज़ा या तलवार नीचे की तरफ़ झुकाये हुए थे। पैरों की तरफ़ एक गोरखे का पहरा था। कमरे में हर वक्त बड़ी बड़ी बत्तियें जला करती थीं, और दूसरे दरवाज़े से लोग बाहर जाते थे। लोग अपनी टोपी उतार कर पास से गुज़रते थे, और स्त्रियाँ बिना टोपी उतारे ही। अब प्रोसेशन यानी ज़नाज़े के निकलने का हाल सुनिए।

शुक्रवार को हम सुबह कोई ३-३० बजे उठे और कपड़े वग़ैरः पहिन कर जल्दी से थोड़ा सा कुछ खा कर पैदल ही चल दिये, क्योंकि सुबह कोई रेल वग़ैरः न जाती थी। पर थोड़ी दूर जाकर हमने मोटर गाड़ी किराये की और माल पर जा उतरे। रास्ते में मनुष्य और स्त्रियाँ ही नज़र आती थीं। हम माल के एक किनारे सेन्ट जेम्स पार्क में कुर्सियों पर जा बैठे। यहाँ पर यह कुर्सियाँ सरकारी थीं और सिर्फ़ छः आने देने पड़ते थे। बैठे बैठे हमने कितनी ही पल्टनें इधर उधर गुजरती देखीं। जैसे जैसे दिन चढ़ता जाता था आदमियों की भीड़ भी बढ़ती जाती थी। सिर्फ़ पुरुष ही न थे स्त्रियाँ भी थीं। बहुतेरे लोग तो अपने साथ बैठने के लिए कम्बल लाये थे और बहुतेरे ऐसी ही गीली ज़मीन पर बैठे थे। यहाँ पर जिस दिन बादशाह की मृत्यु हुई थी, कोई छुट्टी नहीं हुई और न दूकानें ही बन्द हुई थीं; लेकिन आज सब बन्द थीं, और छुटी भी सब जगह थी। मातम का निशान मनुष्यों के लिए ज़्यादातर काली टाई या काले कपड़े थे। स्त्रियाँ सब कपड़े काले पहनती हैं और जो बहुत शोक करती हैं वे एक काला दुपट्टा गले में डाल लेती हैं। क़रीब दस बजे तक सबको धूप में खड़ा रहना पड़ा। आज दिन बहुत ही साफ़ था और धूप बहुत कड़ी मालूम देती थी। कई एक स्त्रियाँ न सह सकीं और मूर्छित हो गईं। डोली बरदार (Ambulance men) बहुत फ़ुर्ती से काम करते थे, जहाँ ख़बर मिली कि किसी की तबीयत ख़राब हुई, वे फ़ौरन वहाँ पहुँच जाते और हर तरह से सहायता करते थे। और अगर हालत ज़्यादा ख़राब होती थी तो स्ट्रेचर पर डालकर ले जाते थे। इस सब इन्तज़ाम के सबब से बहुत कम आदमियों को तकलीफ़ हुई और इतनी भीड़ भाड़ होने पर भी कोई जान ज़ाया न होने पाई। यह समय आसानी से गुज़र गया। लोग सड़क पर चल रहे थे और बड़े बड़े अफ़सर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराजा सप्तम एडवर्ड का ताबूत ।

इंण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर उधर जा रहे थे। दस बजे प्रोसेशन (सवारी) निकलना शुरू हुआ। पैदल पलटनें गुज़रती रहीं फिर बड़े बड़े अफ़सर गुज़रे और इसके बाद बादशाह का शव निकला जो तोप की गाड़ी पर रक्खा हुआ था और ताज वग़ैरः भी ऊपर पड़े हुए थे। जैसे शव गुज़रा सब लोग टोपियाँ उतार कर नंगे सिर हो गये। शव के दोनों तरफ़ एक क़तार में फ़ौजी सिपाही (Foot Guards) चल रहे थे, इसके बाद प्रिन्स लुई आफ़ बेटन वर्ग चल रहे थे। फिर बादशाह का प्यारा घोड़ा था, उसकी रकाबें में बादशाह के बूट पड़े हुए थे जिनकी एंडियें तो आगे की ओर और नोक पीछे की ओर थीं घोड़े के पीछे बादशाह का प्यारा कुत्ता था। सुना गया है कि इसे बादशाह का बहुत ही शोक है। इसके बाद बादशाही झंडा था, वह एक सवार के हाथ में था उसके पीछे महाराज पञ्चम जार्ज थे, उनकी दहनी ओर कैसर और बाईं ओर ड्यूक आफ़ केनाट थे। इसके बाद बादशाह के निज के आदमी थे और फिर और बादशाह जो कि मातम में शरीक होने के लिए आये थे तीन तीन की क़तार में थे। पहली क़तार में दहनी ओर स्पेन के बादशाह और बीच में ग्रीस के, और बाईं ओर नारवे के; इनके बाद पोर्चगाल, डेन मार्क और बलगेरिया के बादशाह थे। इनके बाद कुछ और शाही ख़ानदानों के आदमी थे। फिर कुछ बाडीगार्ड थे। अब गाड़ियों का ताँता शुरू हुआ। पहली गाड़ी में महारानी ऐलग-ज़ैनडरा थीं और उनके साथ रूस की महारानी थीं। इनके बाद दूसरी गाड़ी में महारानी मेरी, और नारवे की महारानी थीं और सामने की तरफ़ ड्यूक आफ़ कार्नवाल और प्रिन्स आफ़ वेल्स। इस गाड़ी के बाद और गाड़ियाँ थीं जिनमें और शाही ख़ानदान के आदमी और स्त्रियाँ थीं। पीछे एक गाड़ी में प्रेसीडन्ट रुज़वल्ट थे। यह सब जुलूस पैडिंगटन स्टेशन तक ऐसा ही गया और वहाँ से रेल पर सवार होकर विंडसर पहुँचा। वहाँ फिर जुलूस बनाया गया लेकिन अब बादशाह और सब पैदल चलते थे सिर्फ़ महारानियाँ गाड़ियों पर थीं। यहाँ पर भी बहुत भीड़ भाड़ थी। यहाँ बादशाह जार्ज के पीछे उनके दोनों कुमार चल रहे थे। दोनों ही नाविकों की वर्दी में थे। यहाँ पर शव की गाड़ी को नाविकों ने खींचा था। इसका सबब यह था कि महारानी विक्टोरिया के शव को खींचने के वास्ते जो घोड़े थे वे यहाँ पर कुछ बिगड़ गये थे। इसलिए नाविकों ने गाड़ी खींची थी। इसी लिए अब भी नाविक गाड़ी खींच रहे थे, गाड़ी के पीछे भी रस्से डाल कर पीछे से भी नाविक उसे थाँमे हुए थे, गाड़ी के पहियों में रबर लगा हुआ था ताकि आवाज़ न होने पावे।

विंडसर के स्टेशन से शव को सेंट जार्ज के गिरजे में ले गये। वहाँ पर गाड़ी से उतार कर कंधों पर उठाया गया था और ताज वग़ैरः पीछे और आदमी उठाये हुए थे। इसके पीछे पीछे महारानी एलेग़ज़ैनडरा (Queen Alexandra) महाराज के साथ चल रहीं थीं। पीछे पीछे कैसर के साथ महारानी मेरी (Queen Mary) चल रहीं थीं। ताबूत गिरजे के हाल में ले जाकर रक्खा गया, वहाँ पर सर्मन पढ़ा गया और फिर बादशाह ने बढ़ कर उसके ऊपर बादशाही झंडा रक्खा, फिर महारानी एलेग़ज़ैनडरा (Queen Alexandra) उसकी तरफ़ झुकी और ताबूत नीचे को चला गया, और ऊपर थोड़ी सी मिट्टी फेंकी गई। इस गिरजे के नीचे कमरे बने हैं। वहाँ पर और भी बादशाहों के ताबूत पड़े हैं। इस कमरे का फ़र्श हाल ही में साफ़ किया गया है। यह कमरा एक लम्बा सा बरांडा है, इसकी दोनों ओर दीवारों में जगह बनी हुई हैं जिनमें कि बादशाहों के ताबूत पड़े हुए हैं और बाहर सोने के हरफ़ों में नाम लिखे हुए हैं। यहाँ के लोग बादशाह को बहुत चाहते थे और उदास हैं, लेकिन ऐसे नहीं कि रोवें। हम एक मकान में ठहरे हुए थे। वहाँ पर बातें हीं बातें एक बूढ़ी स्त्री हमसे पूँछने लगी "तुम महाराज एडवर्ड का जनाज़ा देखने के लिए जाओगे"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने कहा "हाँ" तो कहने लगी "तुम तो नहीं रोओगे" मैंने कहा "यह क्या" कहने लगी कि "जब महारानी विक्टोरिया (Queen Victoria) का जनाज़ा गुज़र रहा था तो मैं एक हिन्दुस्तानी के साथ बैठी हुई देख रही थी। जब महारानी का शव पास से गुज़रा तो वह हिन्दुस्तानी रो उठा"। यह कहकर वह हँसने लग गई मानो हमारे देशी भाई ने कोई बुरा काम किया था।

स० स०।

मैनचस्टर
२७। ५। १०

मुक्ति की प्राप्ति और आर्थिक स्वतन्त्रता।

मुक्ति' और 'नजात' हमारे कैसे प्यारे शब्द हैं। सबेरे, सायंकाल प्रभु से प्रार्थना करते हुए हम इनकी याचना करते हैं। मन्दिरों, मसजिदों में अपने पुरोहितों, पण्डितों से इनकी प्राप्ति के उपदेश सुनते हैं। वैराग्य के गीत गाकर अपने आपको उस धाम में पहुँचाने का यत्न करते हैं। व्यास और मन्सूर की उक्तिओं को कण्ठाग्र कर अपनी इस साध को मिटाते हैं। गरज़ कि 'येन केन प्रकारेण' इस मुक्ति-रत्न की उपलब्धि का उपाय करते हैं।

यदि विचार करें तो यह स्पष्ट है कि मुक्ति नाम 'आज़ादी freedom' का है, और प्रत्येक स्त्री-पुरुष को आज़ादी हासिल करने का उद्योग करना चाहिए। बल्कि जिसने यह मनुष्य-शरीर पाया है उसका परम धर्म मुक्ति की प्राप्ति है। हमारे सब कर्म आन्तरिक अथवा बाह्य, शारीरिक व सामाजिक, मानसिक अथवा आत्मिक उसी रत्न की प्राप्ति के लिए होने चाहिएँ। परन्तु यह भी याद रखना उचित है कि मुक्ति का असली स्रोत अन्तरात्मा है। मुक्ति प्राप्ति के लिए मन की ऐसी दशा होनी ज़रूरी है कि जिसमें विकार उत्पन्न न हो। शान्ति, गम्भीरता, निर्मलता, इसके आवश्यक लक्षण हैं। विचार-शक्ति उस अवस्था को पहुँच जावे कि कोई लोभ पैदा न हो। अब क्या इससे यह परिणाम नहीं निकलता कि स्वतन्त्रता के बाधक, या यूं कहिए कि मन को क्षुभित करने वाले जो कारण हैं उनको दूर किये बिना मुक्ति के दर्शन दुर्लभ हैं।

उन कारणों को आपके हृदय पर खचित करने के लिए हम दो चार उदाहरण देते हैं। मेरे एक मित्र जिनकी अवस्था तेईस वर्ष के क़रीब थी, एक रेल के दफ़्तर में १५ रुपये मासिक पर नौकर थे। मित्र के विचार बहुत श्रेष्ठ थे और अच्छी सोसाइटी में आपने रहन सहन किया था। पन्द्रह रुपये के क्लर्क को जैसा काम करना पड़ता है सभी जानते हैं। इतनी तनख़्वाह में वे कुछ भी बचा नहीं सकते थे। मगर जीवन पालन का दूसरा उपाय कोई न था। उनके आश्रित एक वृद्धा माता और दो बहिनें थीं जिनकी सहायता वे बहुत थोड़ी कर सकते थे—कुछ भी नहीं कर सकते थे। जब वे मुझे अपने दुःख की कथा कहते और मुझे उनके घर जाने का इत्तफ़ाक पड़ता, सिवा अश्रुपात के और कोई उपाय न था। मैं विद्यार्थी था, उनकी सहायता मुझसे कहाँ बन सकती थी। उनके जीवन की बाक़ी कथा किसी उपन्यास में ही लिखने के काबिल है, जिसको पढ़कर मुक्ति के उपदेशकों के रोंगटे खड़े हो जावें और उनको पता लगे कि मुक्ति का उपदेश करने से पहले उन बातों के लाने की ज़रूरत है जो मन की शान्ति के स्तम्भ हैं।

इसी जीवन का दूसरा भयङ्कर रूप देखिए। मेरा कई एक ऐसे युवकों से परिचय है जिनका विवाह निर्धनता के कारण नहीं हो सका। प्रकृति के विरुद्ध उन्होंने वर्षों जदोजहद की, अन्त को पराजित हो भीषण व्याधियों का शिकार हो गये। उनके पापों का अपराध समाज के ऊपर है जिसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्था ऐसी है कि इसके नीरोग, मज़बूत, सदाचारी पुत्र अपने आदर्शों का पालन नहीं कर सकते। ऐसे भी हठी और मूर्ख लोग हम में से हैं जो कहेंगे कि नहीं उन युवकों को सारी आयु ब्रह्मचर्य्य पालन करना चाहिए ताकि मुक्ति शीघ्र मिले। ऐसे अज्ञानियों को समझाना माथा-पच्ची करना है।

और लीजिए। एक चंगा, भला आदमी काम तलाश करता है काम नहीं मिलता। हज़ारों ऐसे हैं जिनको काम के लिए जूतियाँ चटख़ानी पड़ती हैं। ऐसे आदमी घृणित काम करते हैं; चोरी आदि कुकर्म करने पर कमर कसते हैं। अब सोच की बात है कि क्या इन सब कारणों के रहते मुक्ति के उपदेश वृथा नहीं हैं?

स्वतन्त्रता से अभिप्राय यह है कि हमारे रहने को साफ़ सुथरा घर हो; हमारे परिवार के लिए काफ़ी खाना और कपड़े हों; कुछ फ़ुरसत दिल बहलाव के लिए हो; भजन उपासना के लिए काफ़ी समय मिले; हमारे पास ख़र्च को काफ़ी रुपया रहे; उत्तम शिक्षा का हमारे लिए प्रबन्ध हो, और हमारी सन्तान की भावी उन्नति के पूरे सामान हों। ये सब चीज़ें जब हो जावें तो फिर हम बड़े प्रेम और श्रद्धा से श्री पण्डित जी महाराज को बुलाकर उनकी अगुवानी करें; धूप, दीप, नैवेद्य से उनकी आरती करें और मुक्ति के अमृतरूपी उपदेश सुनें। तब तो कुछ लाभ भी होगा। नहीं तो उन वस्तुओं की प्राप्ति के बिना ही, या मनुष्य समाज की ऐसी व्यवस्था किये बिनाही वे सब उपदेश वृथा है।

समाज में पापों का कारण साधारण जन-समूहों (masses) की ग़ुलामी की दशा है। जब तक किसी जाति के साधारण जन-समूह (masses) की आर्थिक दशा शोचनीय है, तब तक स्वतंत्रता, मुक्ति आदि के विचार मृगतृष्णा मात्र हैं। एक आदमी जो अपनाही उदर पालन करने के लिए दूसरे पर निर्भर है, कभी शान्ति-लाभ नहीं कर सकता। आप उसे योग वसिष्ठ पढ़ने को दे दो, अध्यात्म-रामायण की कथा सुनाओ, उपनिषदों के वाक्यों का उपदेश करो, श्रुति की महिमा अलापो, क़ुरान की आयतें सुनाओ—कुछ करो—उसका मन इसी सोच में लगा रहेगा कि मुंशीजी को कैसे ख़ुश रक्खें जो नौकरी बनी रहे। चाहे उसकी नौकरी दस पैसे रोज़ की हो, चाहे दस रुपये रोज़ की, चाहे आप उसके भले के लिए बड़ी बड़ी सभाओं का उत्सव रच लेकचरबाज़ी करें, चाहे कितनीही देशभक्ति की पुकार मचावें, नतीजा एक ही है। आज़ादी और शान्ति की प्राप्ति के लिए आर्थिक स्वतंत्रता (Economic Independence) आवश्यक है। यही एक ऐसी दृढ़ नींव है जिस पर मुक्ति की अचल इमारत खड़ी हो सकती है। जैसे बहुत मार खाने से लड़का ढीट हो जाता है, और अपने उत्तम गुणों को खो देता है, यही दशा हमारे देश की भी है। बहुत मार खाने से हम लोग abject to pain हो गये हैं, हम लोगों में बहुत कुछ नीचता और कार्पण्य आगया है। अमली जीवन छोड़ ख़ाली खोखली बातों पर अपना समय ज़ियादा गुज़ारते हैं। बहुत से हम में से अपने प्रारब्ध को दोष दे हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं; संसार उनको शून्य दिखाई देता है। सैकड़ों वर्ष पराधीन रहने से उनपर उत्तम विचारों का असर बहुत कम होता है; निराशा उनको घेरे रहती है। हमारी पठित समाज भी ख़ाली शब्द जंजाल में पड़ी हुई है। ऐसे "ज्ञानी" तो हमारे यहाँ बहुत हैं जिनको जन-समूहों masses के दुख-सुख से कोई वास्ता नहीं। ऐसी दशा में हम देश के दुख के असली कारण की ओर अपने पाठकों का ध्यान बार बार दिलाया चाहते हैं ताकि उनके दिल पर यह ख़याल लिखा रहे। और साथही यह भी प्रार्थना करेंगे कि समय समय पर हमारे पाठक अपने शहर के उन महल्लों में जहाँ निर्धन लोग बसते हैं, जाकर मनुष्य-समाज के अन्याय का हृदय-विदारक चित्र देखा करें। अख़बारों में इधर उधर की ख़बरें पढ़लेना और बात है, और अपनी आँखों से उन दृश्यों को देखना दूसरी बात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है कि योरप की जातियों ने अर्थ-शास्त्र-संबन्धी प्रश्नों पर बहुत कुछ रोशनी डाली है, और वहाँ ऐसे ऐसे विद्वान् पैदा हुए हैं जिन्होंने अपनी सारी जीवनी मनुष्य-समाज की स्वतन्त्रता-सम्बन्धी सवालों को हल करने में ख़र्च की है। ऐसे ऐसे देश-हितैषी वहाँ पैदा होते रहे हैं जिन्होंने समाज के अधिकार और कर्तव्य की रक्षा के निमित्त बड़े बड़े उपाय किये हैं। उनके देश-वासियों ने भी उनका साथ दिया है और अपनी इष्टसिद्धि के लिए घरबार, स्त्री पुत्र सभी कुछ स्वाहा कर दिया है। मुक्ति को उन्होंने धर्म का प्रथम और मुख्य अङ्ग समझकर उसकी प्राप्ति के लिए हर प्रकार के दुख सहे हैं। ऐसी अवस्था में यह ज़रूरी है कि हम उनके अनुभव से लाभ उठावें और जो कुछ उन्होंने सैकड़ों वर्षों के घोर परिश्रम के बाद प्राप्त किया है, या सामाजिक उन्नति की है उसको जानें। आज जो सवाल हमारी जाति को घुन की तरह खारहे हैं वे सवाल किसी काल में योरपीयन जातियों को भी खारहे थे; और कई एक योरोपियन जातियाँ ऐसी भी हैं जिनको आज तक घुन लगा हुआ है। बुद्धिमान् का काम है कि दूसरे के अनुभव से फ़ायदा उठावे, और अपने रास्ते में वे विघ्न न आने दे, जिन्होंने दूसरों को हैरान व परेशान किया था।

सत्यदेव (अमेरिका)

पर्वत-यात्रा

रात के साढ़े बारह बजे का समय है। एक यात्री पंजाब प्रांत के पठानकोट स्टेशन पर पहुँचा, कुली के सिर पर असबाब लदवा कर बाहर आया और बरांडे में पड़ी बेंच पर आ बैठा। सोचने लगा कि अब क्या किया जाय। धनाढ्य पुरुष जिन्होंने पहले ही से प्रबन्ध कर लिया था टाँगों में बोझा लदवाने लगे। यात्री अभी अपने जाने का प्रबन्ध करने के सोच में ही था कि "होशियार रहो, जागते रहो" की आवाज़ कानों में पड़ी। चौंक कर देखा तो मालूम हुआ कि पुलिस का एक सिपाही बरांडे में इधर उधर घूम रहा है और यही आवाज़ दे रहा है। यात्री यह तमाशा देख कर विस्मित हो सोचने लगा। "नारायण इस सिपाही के पहरे का लाभ ही क्या! यदि मुसाफ़िर आध घड़ी भी विश्राम न करने पावें"। इसी सोच में था कि एक टाँगेवाले ने आकर प्रश्न किया "कहिए साहब आप दुबेरा चलेंगे?"

यात्री "हाँ"। टाँगेवाला "सारा टाँगा ले लीजिए आप आनन्दपूर्वक पहुँच जायँगे" यात्री "ऐसा नहीं हो सकता" कह कर अपने स्थान पर आ बैठा परन्तु थोड़ी देर बाद ख़याल आया कि "चलने का प्रबन्ध अवश्य होना चाहिए। रात इस तरह काटनी कठिन है" यह सोच कर कुली को आवाज़ दी और जब वह आया उसे बोझा दे बाहर आ टाँगे के बाबू के पास जिनकी Tonga Agency साथ ही थी पहुँचा। टाँगा बाबू बड़े भले आदमी थे। बड़ी कृपा-दृष्टि से उन्होंने बोझा अपने पास रखवा लिया और बैठने के लिए कहा। यात्री ने धन्यवाद देकर उत्तर दिया कि "मुझे आज अवश्य जाना है। इसलिए कोई इक्का ही ढूँढता हूँ" यह कह कर कुछ दूर आया ही था कि एक इक्केवाला मिला और पूछने लगा कि क्या आप दुबेरा चलेंगे? यदि चलना हो तो इक्का तैयार है आपको ही लेकर चल दूँगा और एक सवारी के सवा दो रुपया लूँगा। आप अड्डे पर ठहरें। मैं अभी इक्का लाता हूँ" बहुत अच्छा कह कर यात्री अपना बोझ उठवा कर नियत स्थान पर जा पहुँचा और रात्रि को ढाई बजे दुबेरा की तरफ़ चल दिया। रात्रि अँधेरी थी इसलिए रास्ते में कुछ दिखाई न देता था, परन्तु पक्की सड़क होने के कारण इक्का तेज़ी से जा रहा था। दस मील के सफ़र के बाद सुबह हुई और मालूम हुआ कि यात्री पर्वत पर शनैः शनैः चढ़ रहा है। रास्ता का दृश्य बड़ा सुंदर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

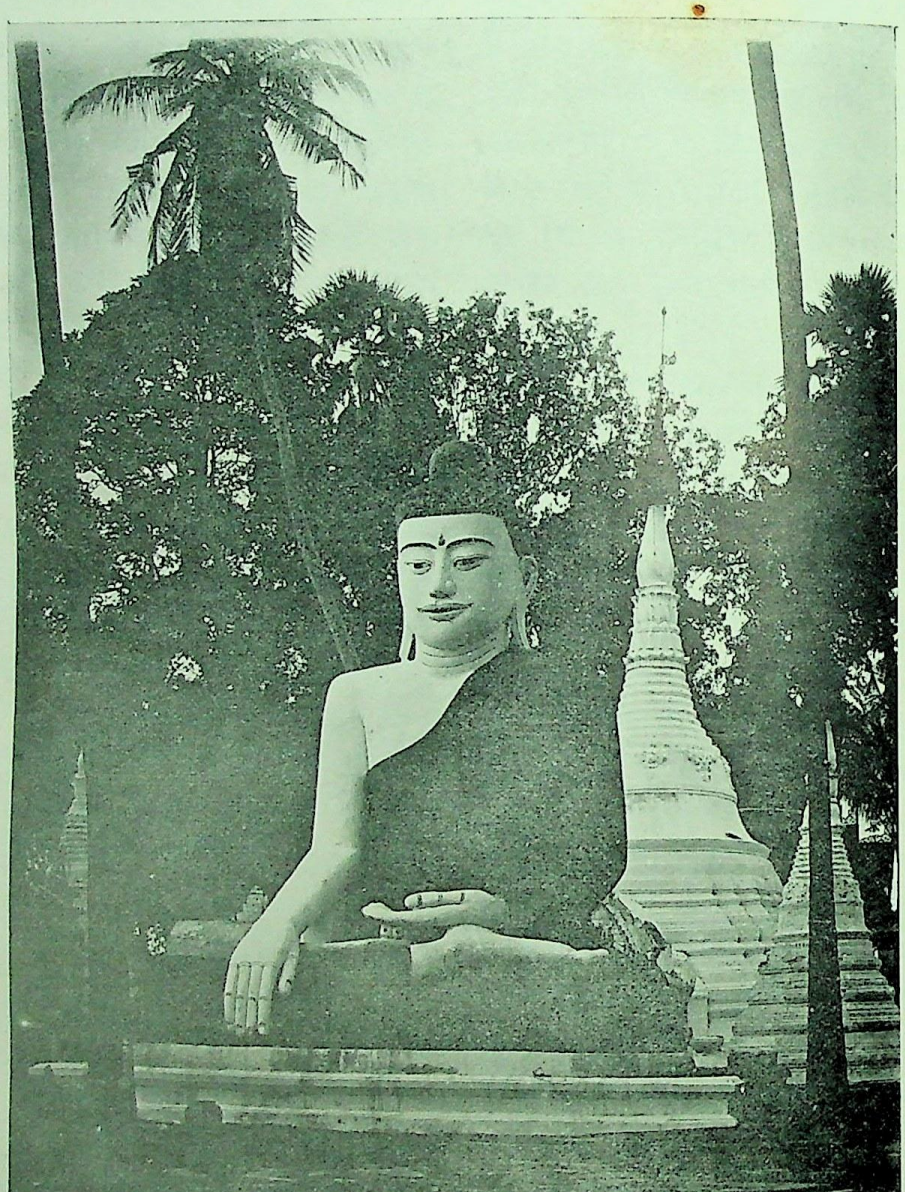

रंगून के श्वेगोडान पगोडा की मूर्त्ति।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। प्रातःकाल की ठंडी वायु और चारों तरफ़ हरियाली मन को प्रफुल्लित कर रही थी, कि इतने में कानों में मुरली का स्वर सुनाई दिया। पाठकों में से जिन्होंने मुरली कभी सुनी है वेही समझ सकते हैं कि चाँदनी रात्रि में या प्रातःकाल यह कैसा आनन्द देती है। ज्यों ज्यों इक्का चलता गया त्यों त्यों मुरली का स्वर साफ़ होता गया। इतने में पाँच पहाड़ी पुरुष एक झोपड़ी के बाहर बैठे हुए नज़र पड़े। उनमें से एक मुरली बजा रहा था। स्वर ऐसा मधुर और आकर्षक था कि यात्री ने इक्के को वहीं ठहरा दिया और कुछ समय वहाँ पहाड़ी लोगों के पास ठहर कर आनन्द लेने लगा। इस तरह पहाड़ के आरंभ के दृश्य देखता हुआ यात्री दुनेरा दस बजे दिन को पहुँचा॥

दुनेरा

दुनेरा पठानकोट से २४ मील ऊपर को है। यहाँ डाकख़ाना, तारघर, सराय, डाक-बँगला और कुछ दुकाने हैं। असली गाँव यहाँ से डेढ़ मील है। यह स्थान केवल सरकारी फ़ौजों के आराम के लिए जो डलहौज़ी जाती हैं बनाया गया है। यहाँ पुलिस का थाना भी है। इस स्थान के शुरू में एक घास का मैदान है जहाँ "एक बोर्ड में फौजों के लिए" एक अँगरेज़ी में लिखा हुआ लगा है और साथ ही एक (Coffee Shop) भी है। यात्री एक स्थान पर जाकर ठहर गया और डलहौज़ी जाने के लिए सवारी ढूँढ़ने लगा, परन्तु कोई सवारी न मिलने के कारण वहीं ठहरना पड़ा। अपना सारा दिन यात्री ने महात्मा मेज़ीनी (इटली को स्वतंत्रता देवी के दर्शन करानेवाले) के चरित पढ़ने में व्यतीत किया। सायंकाल थोड़ा सा इधर उधर घूमने के बाद वापस आ आराम करने के लिए अभी बैठा ही था कि आकाश-मंडल मेघों से घिर गया। चंद्रमा जो कभी मेघों में छिप जाता और कभी बाहर निकल आता था अजीब आनन्द दे रहा था। इतने में काली घटा चढ़ आई। यह सब दृश्य अभी देख ही रहा था कि निद्रा ने धर दबाया और यात्री ज़रा देर में ख़र्राटे लेने लगा।

रात्रि आधी जा चुकी थी कि अकस्मात् बड़ी ज़ोर से गर्जना हुई। गर्ज इतनी भयंकर थी की यात्री काँपता हुआ अकस्मात् अंदर भागा और बाक़ी और पुरुष भी जो सोये हुए थे काँप उठे। जब कुछ होश आया तो मालूम हुआ कि वर्षा ज़ोर से हो रही है और गर्ज बिजली की हुई थी। गर्ज इतनी हृदय-वेधक थी कि अब भी जब उसका स्मरण होता है तो कँपकँपी छूटती है। बड़ी देर के बाद फिर निद्रा आई, प्रातःकाल जब आँख खुली तो देखा कि वर्षा उसी तरह ज़ोर से हो रही है। साधारण कर्तव्यों से फ़ुर्सत पा यात्री फिर सवारी ढूँढने के लिए यत्न करने लगा, परन्तु बहुत यत्न करने पर भी प्रबन्ध न हो सका। आख़िर अकेले वह अपने लिए ही सारा इक्का कर डलहौज़ी को रवाना हुआ।

डलहौज़ी पहाड़ पर २४ मील ऊपर है। दुनेरा से यक्का या टाँगा ऊपर जाते हुए दो मील तक इस तरह चक्कर काटता है कि साथ ही जाता दिखाई देता है। मीलों तक दृष्टि दौड़ती है, कहीं पानी, कहीं हरियाली और कहीं मैदान दृष्टि-गोचर होते हैं। कहा जाता है कि डलहौज़ी के समान ऊँचा (Sanitarium) पंजाब प्रांत में और कोई नहीं। डलहौज़ी के रास्ते में एक पहाड़ आता है जिसे "केरू" पर्वत कहते हैं। पंजाबी में एक शब्द "किरना" है जो "गिरना" का अपभ्रंश है "केरू" किरना शब्द से है, पर्वत के इस भाग को "केरु" इसलिए कहते हैं कि यह सदैव गिरताही रहता है,। इस पर्वत का कुछ भाग सड़क पर है। इसलिए सड़क उस स्थान में सदाही ख़राब रहती है और सरकारी कुली सदा इस जगह काम करते रहते हैं। एक स्थान पर जहाँ बहुत भय है लकड़ी की छत थी ताकि मिट्टी और पत्थर ऊपर से गुज़र नीचे गिर पड़ें और सड़क ख़राब न हो। यात्री ने चेम्बे पहुँच कर सुना कि एक बड़ा भारी पत्थर इस पहाड़ पर से गिरा और छत के टुकड़े टुकड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दिये। परन्तु सरकारी प्रबन्ध अत्युत्तम होने के कारण मुसाफ़िरों को कोई भय नहीं।

पहाड़ों पर सवारी का विशेष प्रबन्ध होता है। इक्कों और टाँगों के साथ एक और तरह की सवारी होती है जिसे अँगरेज़ी में "रिकशा" कहते हैं। रिकशा एक तरह की गाड़ी होती है जिसे पशु नहीं खींचते बल्कि उसमें मनुष्यों से ही पशुओं का काम लिया जाता है। यात्री ने अपने रास्ते में देखा कि धनाढ्य पुरुष और आम तौर पर अँगरेज़ लोग आनन्द से अंदर बैठे होते हैं और कुली उसे भागे लिये जाते हैं। यदि दुर्भाग्यवश कुली थक जाय तो धन और हुकूमत में मदांध पुरुष उन्हें शीघ्र चलने के लिए ताड़ना करते हैं। यह दृश्य देख कर यात्री को बहुत कष्ट हुआ और वह सोचने लगा कि क्या मनुष्य-जीवन का कर्तव्य अपने से दुर्बलों पर अन्याय करना है? क्या धन पास होने का परिणाम यही होना चाहिए कि बजाय अपने भाइयों के लिए विश्राम का प्रबन्ध करने के उलटा उन्हें पशुवत् समझा जाय?

रास्ते में पहाड़ पर यदि दृष्टि दौड़ाई जाय तो स्थान स्थान पर छोटी छोटी झोपड़ियाँ दृष्टि-गोचर होंगी। इन झोपड़ियों में पहाड़ी लोग रहते हैं जिन्हें "गद्दी" कहते हैं। ये लोग बड़े परिश्रमी, और ईमानदार होते हैं, चोरी करना इन्होंने सीखाही नहीं। गद्दी मज़दूरों को बोझा देकर तीन तीन घंटे पहलेही भेज दिया जाता है और एक कौड़ी का नुक़सान नहीं होता। ये लोग निर्धन बहुत होते हैं। आम तौर पर टाट के टुकड़ों के कोट पहने हुए नज़र आते हैं। पहाड़ जाते हुए रास्ते में बड़ा बड़ा बोझा लादे दिखाई पड़ते हैं। मर्दही नहीं स्त्रियाँ भी पीठ पर बोझा और आगे कपड़ा बाँध कर उसमें अपने बच्चे को डाले पहाड़ पर चढ़ती चली जाती हैं। पाठक गद्दी लोगों की तसवीर इस अङ्क में प्रकाशित है। ये लोग पहाड़ों में इसी तरह बारहों मास रहते हैं। गरमी के दिनों में नाज और आवश्यक वस्तुयें शीत के लिए इकट्ठी कर लेते हैं और जब बरफ़ पड़ती है तब महीनों अपनी झोपड़ियों के अंदरही व्यतीत कर देते हैं। इनका गुज़ारा खेती पर है, इनकी झोपड़ियों के साथ सीढ़ियों की तरह दूर दूर तक खेती उगी हुई दिखाई देती है। गाय और बकरियाँ इनके पास बहुत रहती हैं। ये लोग ऊन के कोट अपनी आवश्यकतानुसार आपही शीत के लिए बना लेते हैं। कई कोट ऐसे अच्छे होते हैं कि उनपर कितनाही मेह पड़े ज़रा भी शीत मालूम नहीं होता। गद्दी बालक और स्त्रियाँ अकसर पहाड़ पर गाय और बकरी चराते दिखाई देते हैं। ये अपने लिए आपही दरज़ी, मोची, लुहार का काम कर लेते हैं। वहीं यात्री को एक गद्दी बतलाया गया था, जो इतना योग्य वैद्य है कि दूर दूर से उसके पास लोग जाते हैं। ये लोग सुन्दर होते हैं परन्तु निर्धन होने के कारण चीथड़ों में ही गुज़र करते हैं। इनके विवाह इस प्रकार होते हैं। जंगल में घूमते घूमते जब किसी युवा और युवती का आपस में प्रेम हो जाता है तब युवा के बड़े युवती के बड़ों के पास "सगाई" का संदेशा भेज देते हैं। इस तरह जब सगाई हो जाती है तब कुछ समय बाद विवाह की तिथि नियत हो जाती है और उसमें बिरादरी इकट्ठी होती है। बकरी का मांस उबाला जाता है और कुछ साग वग़ैरह होता है। मकई के आटे की मोटी मोटी रोटियाँ पकाकर आनन्दपूर्वक लस्सी के साथ उड़ाते हैं। जो धनवान् हैं वे कुछ चाँदी के ज़ेवर भी पहनते हैं। इन लोगों की बोली भी बड़ी विचित्र है जिसका ज़िक्र चम्बे का हाल लिखते समय फिर कभी किया जायगा। इस तरह रास्ते में हर प्रकार के दृश्य देखता हुआ यात्री सायंकाल को डलहौज़ी की छावनी बैलून बाज़ार पहुँचा।

यात्री।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सतसई-संहार।

[गतांक से आगे]

१६-गैंधाई सीसी सुलखि, विरहबरी बिललात।
बीचै सूख गुलाब गो, छीटो छुई न गात ॥३८२॥

प्रीतम! एक सखी ने जो उलट कर सीसी उसके शिर पर डाली अर्थात् विरह से विकल हो बिलाते हुए सीसी (?) लुढकाली बीच में ही गुलाब सूख गया उसके शरीर में छींट भी न लगी। (अयुक्तालंकार। पृष्ठ १२८)

आपने भी अर्थज्ञान के विरहं से विकल हो 'बिलाते' (?) हुए बिहारी के काव्यामृत कटोरे को इस प्रकार 'लुढकाला' (?) है कि काव्यप्रेमियों तक उसकी एक छींट भी न पहुँच सकी, सबका सब काव्यरस बीच में ही सूख गया, या धूल में मिल गया! काव्यामृतपिपासु देखते ही रह गये!

विद्यावारिधे! यह आप क्या कह रहे हैं? ज़रा सोचिए तो सही! 'हे प्रीतम!' कह कर नायक को कौन सम्बोधित कर रही है! नायिका स्वयं तो कह नहीं रही, क्योंकि 'उसके शरीर पर तो सीसी (?) 'लुढकाली' गई है। सखी; नायिका का विरह नायक से निवेदन कर रही है, पर सखी नायक को 'हे प्रीतम!' नहीं कहा करती, सम्बोधन के इस अनौचित्य पर आपने ध्यान नहीं दिया! और "अर्थात् विरह से विकल हो बिलाते हुए सीसी लुढकाली" इसका क्या मतलब है? क्या 'सीसी' लुढकाने (?) वाली, स्वयं विरह से विकल हो बिला (?) रही है? उसकी ऐसी दशा क्यों है? उसे किसका विरह है? फिर उसने वह 'सीसी' अपने ही ऊपर न लुढकाल-(?) कर किसी दूसरी के ऊपर क्यों लुढ़काली! विरह की विकलता ही जो ठहरी! बेचारी लुढकालना अपने ऊपर चाहती होगी, जल्दी में घबराकर और के ऊपर लुढका दिया! पर बीच में ही गुलाब क्यों सूख गया, इसका कोई कारण ऐसी दशा में प्रतीत नहीं होता, यह अयुक्त बात हुई इसीलिए शायद आपने यहाँ "अयुक्तालंकार" (?) लिखा है!

साहित्य-शास्त्र में 'अत्युक्ति' 'अतिशयोक्ति' अलङ्कार तो हैं, पर यह "अयुक्तालंकार" आज तक न सुना था? लल्लूलालजी ने तो "अत्युक्ति" में की 'इकार' उड़ाकर उसे "अत्युक्तालंकार" बनाया और श्रीमान् विद्यावारिधिजी ने उसमें से 'तकार' की मिलावट को भी निकाल बाहर किया और एक ख़ासा नये ढंग का 'अयुक्तालंकार' घड़ कर 'सतसई' के गले मढ़ दिया। पुराने ओल्डफ़ैशन के अलङ्कार आज कल की सुशिक्षित सोसाइटी में रद्दी और भद्दे हो गये, इसीलिए हमारे विद्यावारिधिजी 'लेखालंकार' 'काकोक्ति,' 'भ्रांतालंकार' 'अयुक्तालंकार' इत्यादि न्यूफ़ैशन के नये नये अलंकारों से श्रीमती सतसई को "सर्वाङ्गभूषित" कर रहे हैं!

दोहे का साफ़ अर्थ यह है कि नायिका को विरहाग्नि से जलती और विलाप करती हुई देख कर, तापशान्ति के लिए उसके ऊपर गुलाब की शीशी उलटी की, परन्तु शरीर से जो विरहाग्नि की लपटें निकल रही थीं उनसे गुलाब बीच ही में सूख गया, शरीर तक एक भी बूँद न पहुँची!

विरहताप का वर्णन बिहारीलाल ने जिस अपूर्वता, अधिकता और अतिशयोक्ति से अपने काव्य में किया है, वह बड़ा ही विचित्र है, इस विषय में वह सबको मात कर गये हैं।

हम कभी फिर बिहारी का विरह-वर्णन अन्य कवियों की इस विषय की उक्तियों के साथ मुक़ाबला करके सरस्वती के पाठकों को सुनावेंगे।

१७-विरहबरी लख जोगननु, कह्यो सो उहि कैबार।
अरी आव भुज भीतरे, बरसत आज अँगार ॥३८५॥

"बिरहबरी ने पटबीजनों को देख कर कैबार यह बात सखी से कही अरी आउ, भजिया आज अँगारे भीतर ही बरसते हैं।" (पृष्ठ १२९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज! दया कीजिए, विहारी की कविता पर यह अनर्थरूप अँगारे न बरसाइए, इसे जलाकर आपके हाथ क्या आ जायगा? अर्थ न हुआ करे तो मूल को तो न बिगाड़ा करो! 'लखि' का 'लख' 'जीगँनिनु' का 'जेागननु' और 'भजि' का 'भज' आपने किसके कहने से किया है? और कृपानिधान! मेह और ओलों की तरह, अंगार भी यदि बरसें तो बाहर ही बरसें, पटे हुए मकानों के भीतर नहीं। यहाँ आपको 'भ्रान्ति' हो गई, "भीतरे" का सम्बन्ध "अरी आव भजि" के साथ है, 'बरसत' के साथ नहीं! समझे हुजूर! पुरनूर!

कृष्ण कवि ने जो इस दोहे पर कवित्त लिखा है उसका यह अन्तिम चरण देखिए कैसा अच्छा है:—

....." नीचे ते उठाय नारि डीठि परे जीगना
सु आगि आगि आगि कै कै भाज गई भौन में "

१८—कहे जु वचन वियोगिनी विरह विकल अकुलाय।
किये न को अँसु प्रां सहित सोवत (?) बोल सुनाय ॥३९४

"उस वियोगिनी ने जो विरह से व्याकुल हो चिल्लाकर वचन कहे हैं उनको सोने को जाते में सुनाकर किसको आँसू सहित नहीं किया अर्थात् उसके शयन समय उसके दुःख की कथा को सुन कर सब रोने लगते हैं" (पृ० १३१)

आपके श्रीमुख से भी विहारी के काव्य की दुर्दशा को सुन कर सब सहृदय रोने लगते हैं!

मूल के "सुवा सु बोल सुनाय" को श्रीमान् ने 'सोवत (?) बोल सुनाय' बना दिया! इतने पर भी दावा है कि....." कटोरे में कीचड़ नहीं मिलाई गई'। 'अकुलाय'—'घबराकर' का अर्थ आप 'चिल्लाकर' करते हैं!!

'उस वियोगिनी ने.....' तो खैर 'चिल्लाकर' या घबराकर 'वचन कहे हैं,' पर "उनको सोने को जाते में सुनाकर" किसने सुनाकर? उस वियोगिनी ने ही सुनाकर या किसी और ने! और 'उनको सोने को जाते में सुनाकर' (क्या अच्छी इबारत है!) 'किनको' सुनाकर? उन्हीं वचनों को जो 'दिन में' 'चिल्ला चिल्लाकर' कहे थे? मालूम होता है, वह 'वियोगिनी' दिन में (या जागते में!) लखनऊ के मरसिया पढ़नेवालों की तरह, खूब चिल्ला चिल्लाकर जिन वचनों का अभ्यास करती है, उनको ही 'सोने को जाते में' सुनाकर सब को रुलाती है! 'उसके शयन के समय उसके दुःख की कथा को' सुनने को, रोनेवालों की एक मजलिस लगती है! रोज़ रात को दुःख की कथा बैठती है!!

"जमा करते हो क्यों रक़ीबों को?
इक तमाशा हुआ, गिला न हुआ"!

यहाँ विद्यावारिधिजी के हाथ से 'अलङ्कार' न जाने कैसे छूट गया! आश्चर्य है! इस बात को तो वह भूलनेवाले न थे! कविता की अन्त्येष्टि करके भी वह उससे शरीर से अलङ्कार तो उतारा नहीं करते थे! यह आज नई बात कैसे हो गई! फिर क्या 'कहे जु वचन वियोगिनी'—इस कविता के पास कोई भी 'अलङ्कार' नहीं था! जिस विहारी की प्रत्येक कविता के पास एक एक छोड़ कई कई अलङ्कार हैं, 'अलङ्कारों की संसृष्टि' है उसकी यह कविता अलङ्कार-शून्य, कैसे रह गई! राजा के घर मोतियों का काल कैसे पड़ गया!

हरि कवि और लल्लूलाल कवि तो कहते हैं कि इस कविता के पास भी एक अलङ्कार था, जो उन्होंने अपनी आँखों देखा था! वह कहाँ गया! किसने छीन लिया?

देखिए हरि कवि इसके विषय में क्या कहते हैं, उन्हीं की ज़ुबानी सुनिए:—

"कहे जु इति। सखी सों सखी—एकान्त में कहे जो वचन वियोगिनी ने, 'विरह सों बिकल'—दुखी होय कैं, 'अकुलाय कैं' जो वचन वियोगिनी ने कहे, कौन कों, आँसू सहित नहि किये, किये हो, यह अर्थ काकुस्वरसों, 'सुवाने सुबोल सुनाय'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगून के श्वेगोडोन पेगोडा का दूसरा दृश्य ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुवा ने सु कहिए वेही बोल सुनाय,—ताहि बोल कौं सुनाय कैं सुवा को बोल कारन, आँसू कारज, हेत्वलङ्कार ॥" (हरिप्रकाश टीका)

और भी आपने सुना ? हरिजी कहते हैं कि वियोगिनी ने तो 'सोने को (या चांदी को ?) जाते में' दुःख की कथा किन्हीं सब को नहीं सुनाई थी, वह बेचारी तो एकान्त में बैठकर चुपकेसे रोई थी ! विरह की विकलता से घबराकर; बे-अख़्तार उसके दुखी दिल से कुछ वचन निकल गये थे—उसने अपने 'शयन समय' किसी को रुलाने के लिए दुःख की कथा नहीं कही थी ! पर बदक़िस्मती से वहाँ (एकान्त स्थान में) पिंजरे में बैठे 'गङ्गाराम' सुन रहे थे, उन हज़रत ने वे सुने हुए वचन दोहरा कर, सबके सामने भाँडा फोड़ दिया ! और विद्यावारिधिजी ने व्यर्थ ही बेचारी वियोगिनी पर सबके सामने निर्लज्जता से दुखड़ा रोने का इलज़ाम लगा दिया !

"क़ाबिले अफ़सोस है, उस शख़्स की रुसवाई भी,
परदे ही परदे में कमबख़्त जो रुसवा हो जाय !! "

१९—कोटि यतन कोऊ करो, तनुकी तपति न जाय।
जौं लगि भीजै चीर लेां रहै न यों (?) लपटाय* ॥४०८

"प्यारी कोटि यतन करो परन्तु प्यारे के तनु की तपन नहीं जायगी जब तक भीजे चीर के समान तुम्हारे शरीर में लिपट कर न रहै। पूर्णोपमा—नायक उपमा (?) चीर उपमेय लौं वाचक लिपटना धर्म ॥" (पृ० १३६)

अफ़सोस ! बड़ा सख़्त मर्ज़ है ! असाध्य रोग है !!

"प्यारी कोटि यतन करो परन्तु प्यारे के तनु की तपन नहीं जायगी"—क्यों महाराज ! फिर यह 'तपन' कैसे जायगी ? किसी डाक्टर को बुलाया जाय ? या यूनानी हकीम को ! या 'टुट-कहेरी' से भूत की छूत दूर कराई जाय ? कुछ तो बतलाइए ! आपकी राय में 'प्यारी' और 'प्यारे' के वश का तो यह रोग है नहीं ? प्यारी करोड़ उपाय करो, उसके किये तो कुछ होगा नहीं ? यह 'तपन' कैसी है ? कहीं ज्येष्ठ आषाढ़ की गरम लुएं तो नहीं लग गई हैं ?

हाँ, आपने यह क्या फ़र्माया—"जब तक भीजे चीर के समान तुम्हारे शरीर में लिपटकर न रहै"—आपके इस प्रयोग (नुसख़े) की विधि कुछ समझ में नहीं आई ? यह भीजे चीर के समान 'तुम्हारे' पद वाच्य कौन है ? और इसके 'शरीर' में 'लिपट कर' कौन न रहे ? "पूर्णोपमा" (?) या 'विभूति' (?)

आपका निर्दिष्ट यह 'तनुतपनोपशमन' उपाय तो 'लटकमेलक' के 'कुलव्याधि' के इस प्रयोग को भी मात कर रहा है ! रोग, निदान, औषध और वैद्य सबही विलक्षण हैं ! :—

"यस्य कस्य तरोर्मूलं येन केनापि पेषयेत् ।
यस्मै कस्मै प्रदातव्यं यद्वा तद्वा भविष्यति "

और आपकी यह "पूर्णोपमा" तो "सर्वोपमा-देवे योग्य है" !!!

कहाँ हैं पण्डित कन्हैयालालजी ! जो पूछते थे कि "अलङ्कार कहाँ तोड़े मोड़े गये हैं, और उनकी सूरत क्यों नहीं पहचानी जाती" आप पहचान सकते हों तो कृपया बतलाइए कि यहां

दोहे का शुद्ध पाठ इस प्रकार है :—
"कोटि (रि) जतन कोऊ करो तन की तपति न जाय।
जौ लौं भीजे चीर लौं रहै न प्यौ लपटाय ॥"

विद्यावारिधिजी ने रेखाङ्कित शब्दों को बदल दिया है। ख़ैर और तो जो कुछ किया है वह किया ही है, पर "प्यौ" का 'यों' (?) न जाने क्यों किया है ! शायद इससे शरीर में लिपटने का प्रकार विवक्षित है ? '.....' बतला दिया कि यों'—'कोऊ' का अर्थ किया है 'प्यारी !' और 'यों' (?) का प्यारे ! प० सिं० श०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पूर्णोपमा" कैसी है? देखिए, ख़ूब अच्छी तरह ध्यान से, पहचान लीजिए।

हाँ, विद्यावारिधिजी महाराज! "पूर्णोपमा—नायक उपमा (?) चीर उपमेय".....यह 'नायक' काहे की उपमा (?) है! इसी 'पूर्णोपमा' की? और कौनसी 'उपमा' है? यह 'लुप्त नकार' 'उपमान' तो नहीं है? अच्छा, अब समझे, "नायक उपमान,' 'चीर उपमेय"—यह मतलब! बहुत ठीक, बहुत ख़ूब!

महाराज की जय रहे, यह तो अब "प्रतीप*" हो गया!! 'पूर्णोपमा' कहाँ रही! समझे कि नहीं? सुनिए:—

"प्रतीपमुपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम्"।

अर्थात् जहाँ 'उपमान' को 'उपमेय' बना दिया जाय वह 'प्रतीपालङ्कार' है। सो आप देखिए कि आपके यहाँ 'उपमान' का 'उपमेय' बन गया है या नहीं! जिस 'लालचन्द्रिका' से आपने यह "पूर्णोपमा" नक़ल की है, पहले वहाँ से इसका अर्थ समझ लीजिए:—

"अंतरंगिनी सखी का वचन सखी से। कड़ोड़ उपाय कोई करो नायका के शरीर की जलन न जायगी। जब तक भीगे वस्त्र की भाँति रहै नहीं है नायक लिपटकर॥ काम के आधिक्य से प्रौढा का भी वचन सखी से संभवे॥ पूर्णोपमालंकार। नायक उपमेय, भीगा चीर उपमान, लौं वाचक, औ लिपटना धर्म॥"

देखा आपने! आपकी "पूर्णोपमा" में और इसमें कितना भेद है? यहाँ 'भीगा चीर' उपमान है, आपने उसे 'उपमेय' बना दिया, और 'नायक' जो 'उपमेय' है उसे 'उपमा (न)' कर दिया है। इतना उलटा (प्रतीप) कर देने पर भी आप उसे "पूर्णोपमा" ही बतलाये जाते हैं! इसे 'तोड़ मोड़कर अलङ्कारों की सूरत बिगाड़ना' कहते हैं या क्या???

२०—तजो(?)आँच अति विरह की, रह्यो प्रेम-रस भीज।
नयननि के मग जल बहै, हियो पसीज पसीज॥४२८॥

"हे सखी! अब इसका शरीर विरह की आँच से तचा है और प्रेम के रसमें भीज कर हृदय से पसीज पसीज कर नेत्रों के मार्ग से जल बहता है।" समासोक्ति। (पृष्ठ १४२)

हा भगवति विहारि-कविते! शोच्यासि, यदेवं तपति समुच्छिन्नाज्ञानान्धकारे प्रकाशितदिक्चक्रवाले ललाटन्तपे ज्ञानसहस्रांशौ, परित्रायतां हन्यमाना तपस्विनीत्यूर्ध्वबाहु समाक्रन्दति त्वद्भक्तवृन्दे, प्रचरति च दुःसाहसिकहृदयविकम्पते महामहिमशालिचक्रवर्ति-जार्जमहाप्रभुशासनचक्रे, सोरस्ताडमब्रह्मण्यमुद्घोषयन्ती, त्वमकरुणमुरोविदारं व्यापाद्यसे!! परमेशः परलोकप्रस्थितायास्ते सदूतिं विदध्यादित्याशिषमन्तरा किमन्यद्वदामः शोकशुष्कहृदया मन्दभाग्या वयम्!!!

हा विहारीलाल! किस बुरे मुहूर्त्त में तुम यह कविता करने बैठे थे! क्या तुमने भी किसी जन्म में किसी की कविता को इसी प्रकार भ्रष्ट किया था जिसका यह बदला अब तुमसे लिया जा रहा है! ज़रूर कुछ ऐसी ही बात है, अन्यथा तुम्हारी अमृतरसनिष्यन्दिनी सूक्ति लता पर इस प्रकार कुठार प्रहार करके उसे अग्नि की ज्वाला में न झोंका जाता!

विद्यावारिधिजी! सच बतलाइए आप इस कविता के पीछे क्यों हाथ धोकर पड़े हैं? इस ग़रीब ने आपका क्या बिगाड़ा है जो आप इसे इस तरह बिगाड़ रहे हैं! साधु पुरुषों का यदि किसी के साथ कुछ वैर भी होता है तोभी वह इस तरह उसके प्राणों के गाहक नहीं हो जाया करते!

---

* 'प्रतीप'—उलटा हो गया। "प्रतीपालङ्कार' नहीं। 'अलङ्कार' तो इस दशा में कोई भी नहीं रहा! हाँ, "पूर्णोपमा" का उलट पुलट करके सत्यानाश कर डाला है! प० सिं० श०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुरा मानने और नाराज़ होने की बात नहीं, ज़रा शान्तचित्त होकर सोचिए कि यदि श्रीमान् 'विद्वद्वृन्दशिरोमणि विद्यावारिधिजी' कोई अत्युत्कृष्ट कविता लिखें, ग़लती हुई, माफ़ कीजिए—मेरे शब्द वापस दीजिए।

ऐसा भला आप क्यों करने लगे? अच्छा तो यों समझिए, कि श्रीमान् अपने जन्म भर के परिश्रम से बहुत सा द्रव्य व्यय करके सर्वसाधारण के उपयोगार्थ "अतिललित, मधुर मुग्ध" पुष्पफलों से 'सर्वाङ्गभूषित' कोई सुरम्य उद्यान (बाग़ीचा) लगावें, जिसके पुष्प और फलों से अनेक प्राणियों का उपकार हो रहा है, अब यदि कोई महापुरुष दुरुस्त करने के बहाने से उसे उखाड़ पछाड़ और काट छाँट करके ईंधन बनाने लगे और फलपुष्पसमन्वित वृक्षों की जगह बबूल और कटेली के काँटेदार झाड़ बोने लगे तो कितने अनर्थ और शोक की बात है! प्रत्येक सहृदय पुरुष को इससे क्षोभ और दुःख होगा कि नहीं?"

वह भौंरे जो उसके पुष्पों का मकरन्द पान करके मत्त रहते थे, वह पक्षिगण जो उसके अमृतोपम फलों को खाकर इन्द्र के उद्यान को भी तुच्छ समझते थे, उस बाग़ीचा बरबाद करनेवाले की जान को क्या दुआ देंगे? उनकी सन्तप्त आत्मा का सब्र किस पै पड़ेगा?

क्या इस दुर्घटना से आपके हृदय पर आघात न पहुँचेगा। पहुँचना तो ज़रूर चाहिए, सबकी यही राय है!

कोई बिहारी की आत्मा से पूँछे, न्यूटन को अपने अमूल्य ग्रन्थ के जलने का इतना दुःख न हुआ होगा जितना बिहारी को अपनी कविता की इस दुर्दशा पर हो रहा होगा!

न्यूटन ने तो अपनी उस क्षति को किसी प्रकार अन्य ग्रन्थ लिखकर पूरा भी कर दिया था, पर बिहारी को अब कहाँ से लायेंगे? हन्त कविते देवि! निराश्रयासि, कमाक्रन्दामः। कस्ते साहाय्यं विधास्यति? निन्द स्वभागधेयं! अलङ्घनीया नियतिः।

सहृदय काव्यरसिकगण! यह दोहा कविकल्पना का अलौकिक और अत्युत्कृष्ट नमूना है, कवि की अपूर्व प्रतिभा का चमकता हुआ चमत्कार है, कवितादेवी का मनोमोहक सुन्दर चित्र है! वाग्देवी का मुख-दर्पण है!

ऐसीही कविता के विषय में यह कहा गया है:—

"ज्योत्स्नेव हृदयानन्दः सुरेव मदकारणम्।
प्रभुतेव समाकृष्टलोका कवयितुः कृतिः॥"

ऐसी ऐसी अनूठी उक्तियों के कारण ही 'सतसई' मर्मज्ञ काव्य-प्रेमियों के कण्ठ का कण्ठा और गले का हार बनी हुई है, या बनी हुई थी, कहना ठीक होगा।

जैसा उत्कृष्टतम यह दोहा है ऐसी ही निकृष्टतम इसकी टीका है। यही क्यों, जहाँ मारा है, विद्यावारिधिजी ने रग पर नश्तर मारा है! सतसई में जो जितने अच्छे दोहे हैं उतनी ही उनकी अधिक दुर्दशा की गई है, कोई किसे किसे रोवे!

"हैराँ हूँ दिलको रोऊँ कि पीटूँ जिगर को मैं,
मक़दूर होतो साथ रक्खूँ नौहागर* को मैं"

विद्यावारिधिजी की सताई हुई सतसई के उत्तम पद्यों को रोने के लिए तो "नौहागरों" की एक पलटन दरकार है! एक 'नौहागर' को साथ रखने से काम न चलेगा।

दोहे का शुद्ध पाठ और अर्थ इस प्रकार है:—

तच्यो आँच अति विरह की रह्यो प्रेम रस भीज।
नैननि के मग जल बहै हियो पसीज पसीज॥

कोई किसी के विरह में रो रहा है (या रो रही है) आँसू टपाटप गिर रहे हैं, उसे दिखाकर कोई अपने साथी से कहता है। अथवा रोनेवाला (विरही) स्वयं अपने बहते हुए आँसुओं को देख कर कहता है:—

प्रेम के रस में भीगा हुआ और विरह की तेज़ आँच से तचा (तपा) हुआ, पसीज पसीज कर

* नौहागर—मातम करनेवाला—रोनेवाला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह हृदय पानी के रूप में आँखों के रास्ते से बह रहा है!

जब किसी चीज़ का अर्क़ निकालना होता है तो (यदि वह चीज़ सूखी हो) उसे भिगो कर आँच पर चढ़ा देते हैं और नलके से अर्क़ निकालते हैं, इस अप्रस्तुत पदार्थ की प्रतीति नेत्रों से बहते हुए आँसू रूप प्रस्तुत पदार्थ से होती है, इसलिए इस लक्षण के अनुसार :—

"समासोक्तिः परिस्फूर्त्तिः प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य यत् ॥"

पूर्वोक्त दोहे में समासोक्ति अलङ्कार है।

परन्तु विद्यावारिधिजी "……शरीर……तचा है,…प्रेम के रस में भीज कर हृदय से पसीज पसीज कर नेत्रों के मार्ग से जल बहता है…" यह विचित्र अर्थ करके भी 'समासोक्ति' बता रहे हैं! 'शरीर' तचा है……प्रेम के रस में भीग कर……पानी बहता है!" मतलब यह कि सूखा पानी नहीं बहता किन्तु वह प्रेम के रस में भीग कर बहता है (?) उस पानी का 'हृदय' से सिर्फ़ इतना ही वास्ता है कि तचे हुए शरीर का पानी (पसीना!) उसमें आकर जमा होता है, और वहाँ ग्रौट कर फिल्टर होता है, बस फिर आँखों के वाटरपम्प से बाहर निकल जाता है!!!

ठीक है, इस दशा में भी समासोक्ति अलंकार बना ही हुआ है, क्योंकि आँखों से पसीना या पानी निकलने रूप प्रस्तुत पदार्थ से 'बाटरवर्क' रूप अप्रस्तुत पदार्थ की प्रतीति होती है!!

पर, विद्यावारिधिजी की 'समासोक्ति' में और विहारीलाल की समासोक्ति में जो अन्तर है वह स्पष्ट ही है।

इस दोहे पर 'सुकवि' पण्डित अम्बिकादत्त व्यास की कुण्डलिया पढ़ने लायक़ है, दोहे के साथ मिलाकर इसे पढ़िए :—

"हियो पसीज पसीज हाय दृगद्वार बहत है,
काजर नहिं जरिगये अधिक रँग स्याम गहत है।
'सुकवि' बूंद मिस टूक टूक ह्वै निकरि चल्यो सब,
हाय याही में पीतम है यह तच्यो आँच अब॥

विहारी के दोहे का समानार्थक किसी कवि का एक संस्कृत-पद्य भी है :—

"अनुदिनमतितीव्रं रोदिषीति त्वमुच्चैः,
सखि! किल कुरुषे त्वं वाच्यतां मे मुधैव।
हृदयमिदमनङ्गाङ्गारसङ्घाद्विलीय,
प्रसरति बहिरम्भः सुस्थिते! नैतदश्रु॥"

अर्थ—'तू नित्यप्रति बहुत रोती रहती है' ऐसा कह कर हे सखी! तू मुझे व्यर्थ क्यों बदनाम करती है? काम के अंगारों से पिघल पिघल कर यह हृदय पानी होकर बाहर निकल रहा है, हे सुस्थिते! विरहपीडानभिज्ञे! यह आँसू नहीं हैं!

किसी फ़ारसी कवि का यह शेर भी (इसी मतलब का) सुनने लायक़ है :—

"चे मेपुर्सी ज़ हाले मादिले ग़मदीदाअत चूं शुद।
दिलम् शुद ख़ूनो ख़ूं शुद आबो आब अज़ चश्म बेरूं शुद"

इसका अभिप्राय है कि :—

"तेरी जुदाई का ग़म खाये हुए मेरे दिल का हाल क्या पूछता है? दिल का ख़ून हुआ, वह ख़ून पानी बना और पानी आँखों के रास्ते से बाहर निकल गया" झगड़ा चुका!

प्रायः ऐसा होता है कि भिन्नभाषा-भाषी और भिन्नदेशनिवासी कवियों के भाव और विचार आपस में इस प्रकार मिल जाते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है और ऐसा मालूम होता है कि एक दूसरे की कापी कर रहा है। अक्सर कुकवि तो दूसरे का अर्थ चुराकर भी इस प्रकार का सादृश्य दिखा देते हैं, परन्तु विहारी जैसे अपूर्व प्रतिभाशाली महाकवि के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। किसी एक विषय पर दो कवियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

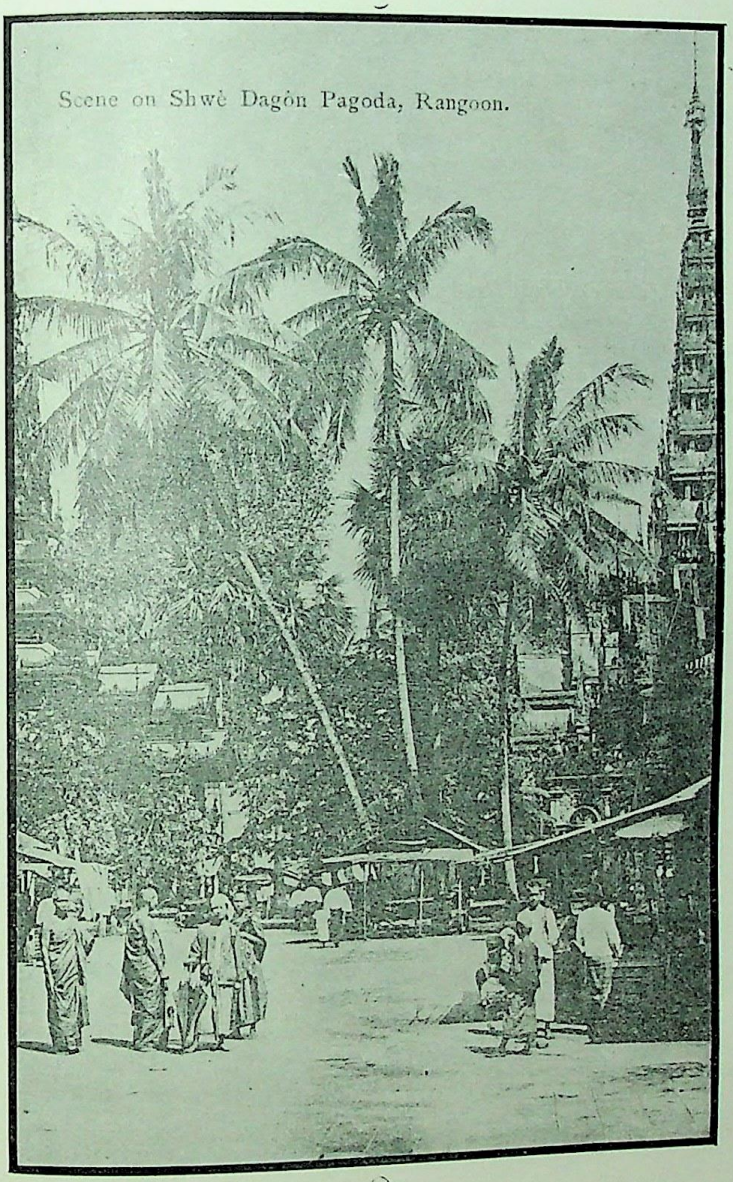

रंगून के श्वेगोडेन पेगोडा का तीसरा दृश्य।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

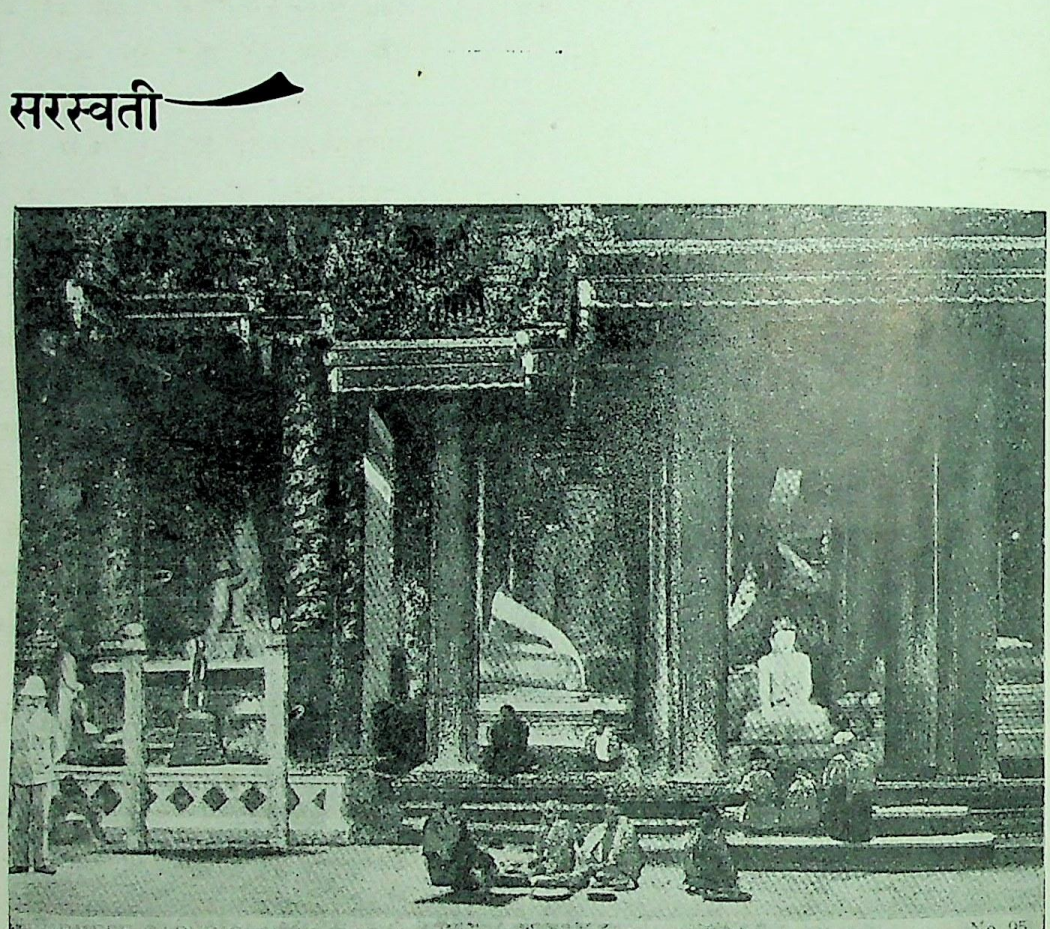

रंगून के श्वेगोडेन पेगोडा का भीतरी दृश्य और कारीगरी।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असादृश्य को ; जो स्वतः ही अचानक और अनायासरूप से, कवि के प्रतिभापट पर अङ्कित हो प्रकट हो जाते हैं, फ़ारसी में 'तवारुद्' कहते हैं। ऐसे स्थल 'सतसई' में भी कई हैं, संस्कृत और उर्दू फ़ारसी के पद्य, सतसई के दोहों से कहीं कहीं टकरा जाते हैं सही, पर वह बात, वह लक्ष्यवेधिता और दृढ़पातिता जो इन 'नावक के तीरों' में है दूसरी जगह कम है। ज़रा सतसई इस असमयसंहार से बच जाय और विहारी का काव्यचन्द्र इस अनर्थोपराग से छूट जाय तो इस पर विस्तृतरूप से हम कभी फिर लिखेंगे और विहारी की अलौकिक कल्पना के उत्कृष्ट उदाहरण सहृदय काव्यमर्मज्ञों के सामने रक्खेंगे।

(अपूर्ण)

पद्मसिंहशर्म्मा।

ग्रीष्म-वर्णन।

तपत घोर अथोर ग्रीषम करत भीषम ताप को।
लेखनी सूखत छनहि छन लिखत जासु प्रताप को॥
सोखि डार्यो रोखि नद नारे सरित सरितान को।
कूप कुंडन में रह्यो ना बूँदहू जलपान को॥
झूरि डारे पात तरु अरु झरि गये फल फूल हू।
दूब तृन कुस काँस के वन झरसि रोमयमूल हू॥
जरत भूधर बरत बारू करत जनु दावा मई।
भूरि भूभुल के भभूकनि भूमि तावा सी तई॥
उड़त धूरि ढढूँर चहुँ दिसि लगत लपटै लूक सों।
होत अंधाधुन्ध मग में घोर मारुत झूँक सों॥
बाय मुख पंछी रहे करि विलग पंखन को दोऊ।
पेट भरि भरि बाय घूँटत घुसत खोतन में कोऊ॥
कीचवीचन मीन तलफत व्याल व्यौरन में धसे।
कोल भीलहु खोह करि करि कै कगारन में बसे॥
द्विरद दंतन बीच करि कै सुंड निजमुख में करे।
सिंह हाँफत उदर धरि धरि दुरि दरीचिन में परे॥
जेठ की विखसी जलाकैं एक तो सुध बुध हरैं।
और जिनको दहत विरहा हाय सो कैसी करैं!

बालगोविन्द (गोविन्द)

विविध-विषय।

१—चेलों की भर्ती।

प्रयाग से लीडर नामक दैनिकपत्र अँगरेज़ी में निकलता है। इस पत्र की गत ग्यारहवीं जून की संख्या में राय बहादुर लाला बैजनाथ ने साधुनामधारी मण्डलियों में नवजवान चेलों की भर्ती के विषय में एक बड़ा ही महत्त्व-पूर्ण लेख लिखा है। "नारि मुई घर सम्पति नासी, मूड़ मुड़ाय भये संन्यासी।" ऐसे काषायवस्त्र-धारियों की तो गोस्वामी तुलसीदास के समय से ही कमी नहीं थी, पर आज कल बालक-बाबाओं की बड़ी भरमार है। शास्त्रानुसार संन्यास लेने का केवल उन्हीं को अधिकार है जिन्हें संसार के विषयों से पूर्ण वैराग्य हो गया हो, अथवा उन लोगों को जो अपने सांसारिक कार्यों को समाप्त कर चुके हैं। भला वैरागी, उदासी, निर्मले और गुसाइयों की बहुतेरी मण्डलियाँ जो आज कल पाँच पाँच और दस दस वर्ष के छोकड़ों को "संन्यासी" बना डालती हैं उनसे क्या लाभ होना है? इन वैराग्य-शून्य बाबा लोगों से न तो यही लोक सुधरता है और न परलोक ही। सज्जन गृहस्थों को रँगे साधु नाम धारियों से सचेत रहना चाहिए और गवर्नमेंट द्वारा इस बात का प्रबन्ध कराना चाहिए कि बेचारे नौजवान लड़के बाबा लोगों से फुसलाये न जा सकें। स्वर्गीय लाला निहालचन्द ने ऐसे क़ानून बनाने का उद्योग किया था कि जिससे एक नियत आयु से कमवाले युवक संन्यासी न हो सकें। लाला बैजनाथ का विचार है कि जब तक कोई ऐसा क़ानून न बन जाय तब तक यह नियम तो अवश्य ही हो जाना चाहिए कि जब कभी कोई १८ वर्ष से कम आयुवाला लड़का चेला बनाया जाय तब इसकी रजिस्ट्री तहसील या कलक्टरी में अवश्य होनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—मिस्टर दीक्षित और हिन्दी-प्रचार।

मिस्टर एम० के दीक्षित, बी० ए० बी० एल० (लंडन) ने हिन्दी-प्रचार के विषय में मई नम्बर के इस्ट ऐन्ड वैस्ट नामक पत्र में एक बड़ाही गम्भीर लेख लिखा है। आपका विचार है कि कावेरी के उत्तर में प्रायः सर्वत्रही लोग हिन्दी समझ सकते हैं। "Italian is not more allied to Spanish nor either of them to French than Bengali is to Guzrati and Marathi and both of them to Hindi. अर्थात् इटालियन स्पेनिश भाषा से उतना सम्बन्ध नहीं रखती और न इटालियन और स्पेनिश फ्रञ्च से जितना बँगाली, गुजराती और मराठी से; और ये दोनों हीं हिन्दी से सम्बन्ध रखती हैं। आपके विचार में मराठी गुजराती और बंगाली इत्यादि भाषाओं की यदि ऊपरी बातें निकाल डाली जायँ तो उनके मूल स्वरूप और सूरदास और तुलसीदास के समय की हिन्दी में बहुत ही कम भेद रह जाता है। आप कहते हैं कि इँगलैंड में जब हम लोग हिन्दी में बोलते हैं तब हमारे अन्य प्रान्तों के हिन्दुस्तानी भाई हमारा मतलब समझही लेते हैं। "We transcend our local differences and talk to one another in Hindi, even when our Madrasi friends are present, without any danger of being misunderstood. In the messes of our various law-temples and College Halls we understand one another quite easily. When we look at these points of similarity we feel that the Pan-Hindi movement is not a mere chimera—a day dream—but that it is quite possible if only we lose our stolid inertness, if once we forget our carping proclivities, if once we transcend our parochial differences, if for once we cease to be the fabled frog of the well with a contracted vision." जब अनेक भाषाओं के रहते हुए भी प्राचीन समय में संस्कृत समस्त भारतवर्ष की राष्ट्रीय भाषा हो चुकी है तब हिन्दी के भी राष्ट्रीय भाषा होने में किसी प्रकार की आपत्ति न होनी चाहिए। अन्यान्य देशों में भी फ्रेडरिक आदि राजाओं ने सिसीलियन भाषा को राष्ट्रीय भाषा बना दिया। इसी तरह डन्टे आदि बड़े बड़े कवियों और लूथर आदि धर्म्मप्रचारकों का प्रभाव राष्ट्रीय भाषाओं के बनाने में बहुत कुछ पड़ा है। हिन्दी के भी राष्ट्रभाषा बनने में ये सब प्रकार की सुविधायें हैं।

(१) दीक्षितजी की सम्मति है कि हम लोगों को हिन्दी का उपयोग इसी तरह करना चाहिए जैसे कि तीन चार सौ बरस पहले योरुप में लेटिन का उपयोग होता था और अँगरेज़ी इस तरह इस्तेमाल करनी चाहिए जैसे कि अँगरेज़ फ्रेञ्च और जर्मन भाषायें इस्तेमाल करते हैं।

(२) पुस्तकें और समाचार-पत्र देवनागरी लिपि में छपा करें।

(३) पहले हिन्दी उन प्रान्तों में द्वितीय भाषा की जगह पढ़ाई जाय जहाँ की भाषा हिन्दी से मिलती जुलती है।

(४) एक ऐसा कोष तैयार होना चाहिए जिसमें क़रीब २५००० अँगरेज़ी शब्दों के पर्याय उन सब भाषाओं में लिखे जायँ जो संस्कृत से निकली हैं।

३—विचित्र डाक्टरी।

राकफ़ेलर इन्सटिट्यूट में एलेक्सिस केरल नामक एक प्रसिद्ध डाक्टर हैं। शल्यतंत्र (Surgery) में आप असाधारण प्रवीण हैं। आप एक जानवर का गुर्दा काट कर दूसरे जानवर के गुर्दे के स्थान में जमा देते हैं। यह लगाया हुआ गुर्दा प्राकृतिक गुर्दे की भाँति अपना कार्य्य करता रहता है। आपने सिद्ध कर दिया है कि एक कुत्ते की टाँग काटकर यदि दूसरे कुत्ते के लगा दी जाय तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के भावी वाइसराय श्रीमान् आनरेब्ल सर चार्ल्स हार्डिंग ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, कुदरती टाँग की तरह काम करती रहती है। मनुष्य का हृदय (heart) मृत्यु के तीस घंटे बाद तक भी शरीर से पृथक किया गया और फिर वैसेही चलाया गया है जैसे कि वह उसकी जीवित अवस्था में चलता था। डाक्टर केरल ने एक कुत्ते का हृदय काटकर दूसरे कुत्ते के गले में लगा दिया तो इस दूसरे कुत्ते के एक ही साथ दो हृदय काम करने लगे। एक उसका निज का हृदय और दूसरा बनावटी, जो गर्दन में डाक्टर साहब ने लगाया था।

४—दही और दीर्घ जीवन।

प्रोफ़ेसर मेचनीकाफ़ ने दही के अनेक लाभदायक गुण दर्याफ़्त किये हैं। इनमें मुख्य एक यह भी गुण है कि यदि यह ख़ास तरह से बनाया जाय तो मनुष्यों को नीरोग और दीर्घायु बनाता है। प्रोफ़ेसर साहब का कथन है कि मनुष्यों के शरीर में भोजनावशिष्ट कुछ ज़हरीला भाग इकट्ठा होता जाता है। यही कारण है कि लोग वृद्धावस्था में रोगी और निर्बल हो जाया करते हैं। दही के सेवन से यह ज़हरीला भाग बहुत कुछ नष्ट होता रहता है। प्रोफ़ेसर डूक्लो एक अपने मित्र सहित बलगेरिया देश के किसी पहाड़ी हिस्से में सैर कर रहे थे। वहाँ के निवासी आपको प्रायः पुष्ट और दीर्घायु नज़र आये। वहाँ क़रीब तीस लाख की आबादी में क़रीब तीन हज़ार मनुष्यों की आयु १०० वर्ष से अधिक थी। वृद्धावस्था में भी वहां के निवासी नीरोग दिखलाई पड़ते थे। बलगेरिया-निवासियों ने अवश्य ही दीर्घायु होने की तरकीब निकाल ली होगी।

५—भारत के नये वाइसराय।

वर्तमान ईसवी सन् के अन्त से श्रीमान् चार्ल्स हार्डिंग भारत के भावी वाइसराय नियत किये गये हैं। आपका भव्य चित्र इसी संख्या में अन्यत्र प्रकाशित किया जाता है। आपका पूरा नाम है राइट आनरेब्ल सर चार्ल्स हार्डिंग, पी० सी,० जी० सी० एम० जी०, जी० सी० वी० ओ०, सी० बी०, आई० एस० ओ०। आप इँगलेंड के एक प्रतिष्ठित कुल के भूषण हैं। जैसे उच्चपद पर आपकी नियुक्ति हुई है और जैसे महत्त्व का कार्य आपको सौंपा गया है, आपकी गुणावली भी तदनुरूपही है। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि आपकी नियुक्ति राजा और प्रजा दोनों के लिए मङ्गल-कारिणी हो।

६—बिना तार के गीत।

टेलीग्राफ़ (तार) और टेलीफ़ोनों से तो हमारे पाठक बहुत दिनों से परिचित हैं। बिना तार के तार की ख़बरों के आने जाने की बात भी पुरानी हो गई। पर अब बिना तार के सहारे ही लोग दूर दूर से गाना भी सुनने लगे। निउयार्क नगर के यार्क एवन्यू और फ़ार्टियथस्ट्रीट नामक स्थानों में गीत गाये गये। मेट्रोपालिटन टावर पर बैठे हुए लोग बिना तार के सहारेही वे गीत सुनते रहे। गाना साफ़ सुनाई देता था, परन्तु कभी कभी आवाज़ भर्राई हुई और अस्पष्ट भी हो जाती थी।

७—चित्र-दर्शन।

इस अङ्क में प्रकाशित बहुतेरे चित्रों की चर्चा लेखों ही में हो चुकी है। केवल हाथियों, और दो एक चित्रों के विषय में अवश्य कुछ कहना है। बर्मा देश में हाथी केवल सवारी और शोभा ही के लिए नहीं रक्खे जाते, उनसे भारी चीज़ों के ढोने और उठाने का भी काम लिया जाता है एक चित्र में हाथी बड़े बड़े शहतीर अपनी सूँड़ से उठा रहा है। दूसरे में शहतीरों का ठेलना दिखलाया गया है और तीसरे में उसका शहतीरों को जमा करने के लिए ले चलना। रंगून की झील का दृश्य बड़ाही मनोहर है। संध्या समय वहाँ के श्रीमान इस झील के किनारे सैर के लिए जाया करते हैं। श्वेगोडान पेगोडा भी रंगून में एक दर्शनीय मन्दिर है। यह बड़ा विशाल है।

यह पुस्तक वितरित न की जाय
सन्दर्भ ग्रन्थ NOT TO BE ISSUED
REFERENCE BOOK
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एशिया में इस पेगोडा से बढ़ कर शायद ही कोई और बड़ा बौद्धों का मन्दिर हो।

८—सरकारी इश्तिहार।

गवर्नमेंट ने कृपा कर सरस्वती में प्रकाशित करने के लिए निम्नलिखित इश्तिहार भेजा है:—

होम डिपार्टमेन्ट।

गवर्नमेन्ट-हिन्द, पब्लिक, नं० १६९२

मुक़ाम शिमला—मवर्रिख़ा २४ मई सन् १९१० ई०

आला हज़रत अक़दस बादशाह इँग्लिस्तान और क़ैसर-हिन्दुस्तान ने पैग़ाम मुन्दर्जे ज़ैल हिन्दुस्तान के महाराजगान और राजगान और नवाबान और वालियान-रियासतहा और रऊसा और बाशिन्दगान को इरसाल फ़रमाया है—

"महाराजगान और राजगान और नवाबान और वालियान-रियासतहा और बाशिन्दगान हिन्दुस्तान,

हमारे अज़ीज़ वालिद माजिद की पुरग़म और नागहानी वफ़ात के बाइस हम बहैसियत एक अज़ीमुश्शान और क़दीमी ख़ान्दान के वारिस होने के तख़्तनशीन होते हैं। बहैसियत बादशाह और क़ैसर होने के हम महाराजगान और राजगान और नवाबान और वालियान-रियासतहा और अपनी सल्तनत-हिन्दुस्तान के तमाम बाशिन्दगान को सलाम भेजते हैं। बाद अज़ां हम तमाम अक़वाम और तबक़ात और मज़ाहिब-मुख़्तलिफ़ा हिन्दुस्तान का दिली शुक्रिया अदा करते हैं उस मोअस्सिर और कसीर वफ़ादारी और दिल-बस्तगी के लिये जो उन्होंने इस मौक़े पर ताज-सल्तनत और साहिबान-ताज की निस्बत ज़ाहिर की है। जलिया हज़रत मलिका विक्टोरिया मर्हूमा ने जब सन् १८५८ ई० में ज़िमाम-सल्तनत-हिन्दुस्तान को अपने दस्त मुबारक में लिया था तो अपनी रिआयाय हिन्दुस्तान और वालियान-रियासतहा को ख़िताब फ़रमाया था और उनके फ़र्ज़न्दगिरामी ने जो हमारे वालिद मुहतरिम और महबूब थे, उसके पचास साल बाद उस वाक़िये अज़ीम की यादगार में दो बारा आपको ख़िताब फ़रमाया था। यह ख़िताबात सल्तनत-शाहिन्शाही के मक़ासिद और मराहिम ख़ुसरवाना के निशानात हैं, और अपने तमाम अहद-सल्तनत में हम निहायत दयानत से उन्हीं मक़ासिद के पाबन्द रहेंगे। आला हज़रत मरहूम की फ़रमाइश से और उन्हीं की मिसाल पर अमल करके हम पाँच साल क़ब्ल अपनी मलिका मुहतरिमा के साथ हिन्दुस्तान को तशरीफ़ ले गये थे। उस मौक़े पर हमने बड़ी बड़ी सल्तनतों से जिनका तवारीख़ में ज़िक्र है और उस तमद्दुन की यादगारों से जो हमारे तमद्दुन से ज़्यादा क़दीम है और वूदोबाश क़दीमी के आदाब और रसूम से और वालियान-रियासतहाय हिन्दुस्तान और उन ममालिक वसीया के शहरों और क़स्बों और देहात और बाशिन्दगान से ज़ाती वाक़िफ़ियत हासिल की थी; और उस अजीब सफ़र के निहायत मोअस्सिर हिस्सयात और मोहब्बतआमेज़ वाक़ियात कभी हमारी याद से कम या फ़रामोश नहीं हो सकते। उन उमूर अज़ीमा और मुहिम्मा में जिनकी अंजाम-दिही हमारे ज़िम्मे होगी, हमको आपकी बावफ़ा और बाहिम्मत हमराही पर पूरा एतिमाद है, और हमको यक़ीन है कि हिन्दुस्तान की बेहबूदी में जो हमेशा हमारे मद्-नज़र रहेगी, हम आपसे पूरी इमदाद की तवक्को रख सकते हैं॥"

हस्बुल हुक्म आली जनाब नवाब गवर्नर-जनरल
बहादुर इजलास—कौन्सिल,
(द०) ए० अर्ल,
क़ायम-मुक़ाम सेक्रेटरी गवर्नमेन्ट-हिन्द

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ११] १ अगस्त, १९१०। श्रावण कृष्ण ११, १९६७। [संख्या ८

(रहीम) अब्दुल् रहीम ख़ानख़ाना।

रहीम का जन्म संवत् १६१० विक्रमीय में हुआ था। ये महाशय अकबर बादशाह के पालक बैरम ख़ाँ के पुत्र थे। अकबर शाह के दरबारी नौरतन में ये भी थे और इनको अकबर बहुत मानता था। ये महाशय अकबर के समस्त दल के सेनापति और मंत्री थे, और इस पद पर जहाँगीरशाह के समय तक रहे। कहा जाता है कि इन्होंने अपनी ज़िंदगी भर कभी किसी पर क्रोध नहीं किया। उमर भर इन्होंने परोपकार ही के काम किये। एक बार अकबर और महाराणा प्रतापसिंह की सेनाओं से घोर युद्ध हो रहा था। उस समय इनकी स्त्री को रानाजी के सैनिकों ने किसी प्रकार क़ैद कर लिया। जब यह हाल रानाजी को विदित हुआ तब उन्होंने बड़े सम्मानपूर्वक उनको ख़ानख़ाना के पास भेज दिया। कुछ समय के उपरान्त रानाजी का राज्य अकबर ने छीन लिया और २४ वर्ष तक रानाजी पहाड़ और जंगलों में घूमते फिरे। अन्त में किसी प्रकार उन्होंने अकबर की सेना को जीत कर अपना देश फिर छीन लिया। जब अकबर को यह समाचार मिला तब उसने एक वृहत् सेना भेजने का फिर विचार किया। यदि यह चढ़ाई होती तो प्रतापसिंह को पहले की भाँति राज्य त्याग कर फिर भागना पड़ता। इस अवसर पर ख़ानख़ाना ने पुराना एहसान मान कर अकबर को समझा बुझा कर, हार की निन्दा सह कर भी, सेना न भेजने पर उसे राज़ी किया। इन्होंने यावज्जीवन सुपात्रों को बड़े बड़े दान दिये, यहाँ तक कि ये महाशय कवि और गुणियों के कल्पतरु थे। गंग कवि को एक ही छन्द के बनाने पर ३६ लाख रुपया दान दिया था। इनको श्रीकृष्ण भगवान् का इष्ट था और इसी हेतु इन्होंने अन्त में संन्यास धारण करके भिक्षावृत्ति ग्रहण की। ऐसी अवस्था में भी अर्थी लोग इनको घेरते थे और अपने में दानशक्ति न होने के कारण रहीम को क्लेश होता था। यहाँ तक कि इन्होंने सोचा कि इस प्रकार दान देने के अयोग्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रह कर जीना वृथा है। निम्न लिखित दोहे इस बात के साक्षि-स्वरूप हैं :—

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
बाँटन वारे को लगै, ज्यों मेंहँदी को रंग॥
तब ही लग जीबो भलो, दीबो परे न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमें न रुचै रहीम॥
ए रहीम दर दर फिरैं, माँगि मधुकरी खाहिँ।
यारो यारी छाँड़िए, वे रहीम अब नाहिँ॥

फिर भी एक याचक के कारण विवश होकर रहीम को रीवाँ-नरेश से १ लक्ष मुद्रा माँग कर उसे दिलवाना पड़ा। इस अवसर पर इन्होंने यह दोहा बना कर रीवाँ-नरेश को सुनाया था :—

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेश।
जा पर विपदा परति है, सो आवत यहि देश॥

इनका शरीरपात संवत् १६८४ में हुआ।

ये महाशय अरबी, फ़ारसी, हिन्दी और संस्कृत के पूर्ण विद्वान् थे, और इनकी गुणज्ञता के कारण कवि, पण्डित आदि सदैव इनकी सभा में प्रस्तुत रहते थे। गंग पर इनकी विशेष कृपा रहती थी और वे भी इनकी सभा के भूषण थे। पण्डित नकछेदी तिवारी ने लिखा है कि इन्होंने रहीम सतसई, बरवै नायिकाभेद, रासपंचाध्यायी, मदनाष्टक, दीवान फ़ारसी और वाक़यात बाबरी का फ़ारसी अनुवाद; ये छः ग्रन्थ बनाये हैं, जिनमें से द्वितीय मुद्रित और प्रथम के हस्तलिखित दो सौ बारह दोहे हमारे पुस्तकालय में वर्तमान हैं। शेष ग्रन्थ हमने नहीं देखे। परन्तु शिवसिंहसरोज में मदनाष्टक के ये छन्द लिखे हैं जिनकी भाषा खड़ी बोली है :—

कलित ललित माला, बा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला, चाँदनी में खड़ा था॥
कटि तट बिच मेला, पीत सेला नवेला।
अलिबन अलबेला, यार मेरा अकेला॥

"बरवैनायिकाभेद" में ९४ छन्द हैं। इसमें लक्षण न देकर केवल उदाहरण मात्र दिये गये हैं। यह ग्रन्थ पूर्वीय भाषा में हैं, और इसकी कविता परम प्रशंसनीय है। रहीम की कविता में सचमुच अलौकिक आनन्द आता है। इस ग्रन्थ में प्रायः सभी बरवै मनोहर हैं, परन्तु उदाहरणार्थ केवल तीन यहाँ पर लिखे जाते हैं :—

खीन मलिन बिष भैया अौगुन तीन।
पिय कह चन्द बदनियाँ अति मतिहीन॥
ढीलि ओखि जल अँचवनि तरुनि सुगानि।
धरि खसकाय घइलना मुरि मुसकानि॥
बालम अस मनु मिलयउँ जस पय पानि।
हंसिनि भई सवतिया लइ बिलगानि॥

रहीम की काव्य-प्रौढ़ता उनकी सतसई पर विशेषतया अवलम्बित है। इस ग्रन्थ में किसी नियम पर न चल कर रहीम ने स्वच्छन्दतापूर्वक अपने प्रिय विषयों पर रचना की है; सुतरां यह ग्रन्थ बड़ा ही उत्तम और रोचक बना है। हमारे पास के केवल २१२ दोहों में ही रहीम के विचार और उनकी आत्मीयता कूट कूट कर भरी है। इनका प्रत्येक दोहा एक अपूर्व आनन्द देता है। ये महाशय वास्तव में महापुरुष थे और इनका महत्त्व इनके छन्दों से भली भाँति प्रकट होता है। इनके विचारों का कुछ उल्लेख नीचे किया जाता है।

इनको मान सबसे अधिक प्रिय था :—

रहिमन मोहि न सोहाय, अमी पियावै मान बिन।
बरु बिष देइ बोलाय, मानसहित मरिबो भलो॥
रहिमन रहिला की भली, जो परसै चितुलाय।
परसत मन मैला करै, सो मैदा जरिजाय॥

इनको बड़ों की ख़ुशामद इतनी अप्रिय थी कि ये उनकी भी अयोग्य प्रशंसा को सहन नहीं कर सकते थे :—

थोरो किये बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमन्त को, गिरिधर कहै न कोय॥

इनके विचारों की उँचाई और गम्भीरता निम्न लिखित दोहों से विदित होती है :—

कोउ रहीम जनि काहु के, द्वार गये पछिताय।
सम्पति के सब जात हैं, बिपति सबै लैजाय॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रति संपतिवान को, सब कोऊ बसु देत।
दीनबंधु बिन दीन की, को रहीम सुधि लेत॥
काम न काहू आवई, मोल रहीम न लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहेब चारा देइ॥
भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन गिरिते भूमि लौं, लखो तो एकै रूप॥

दान लेना भी रहीम निंद्य समझते थे :—

रहिमन माँगत बड़ेन की, लघुता होति अनूप।
बलि मख माँगन हरि गये, धरि बावन को रूप॥

इन्होंने बहुत स्थानों पर ऐसे यथार्थ चोज़ निकाल कर रख दिये हैं कि जिनकी यथार्थता में भी एक निराला ही आनन्द आता है :—

खैर खून खाँसी खुसी बैर प्रीति मधुपान।
रहिमन दाबे ना दबै जानत सकल जहान॥
रहिमन बहरी बाज गगन चढ़ै फिरि क्यों तिरै।
पेट अधम के काज फेरि आय बंधन परै॥

इनका पूर्वोक्त गुण इनकी पैनी दृष्टि का एक उदाहरण है। इसी प्रकार इनकी दृष्टि सभी स्थानों पर रहती है। इन्होंने योंही बहुत स्थानों पर सच्ची सच्ची बातें सीधी रीति पर कह दी हैं जो उसी प्रकार भली मालूम पड़ती हैं :—

सबको सब कोऊ करै कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिए जा दिन अटकै काम॥
धन दारा अरु सुतन सों लगो रहै नित चित्त।
नहिँ रहीम कोऊ लख्यो गाढ़े दिन को मित्त॥
काज परे कछु और है काज सरे कछु और।
रहिमन भवँरी के भए नदी सेरावत मौर॥
रहिमन चाक कुम्हार को माँगे दिया न देइ।
छेद मँ डंडा डारिकै चहै नाँद लै लेइ॥

इस कवि का तजुर्बा बहुत ही बढ़ा हुआ था और अपने लोकानुभव के फलस्वरूप इसने यह दोहा कहा है :—

अब रहीम मुसकिल परी गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तौ जग नहीं झूठे मिलैं न राम॥

इन्होंने इतनी यथार्थ बातें कहीं हैं कि इनके बहुतेरे कथन कहावतों के स्वरूप में परिणत हो गये हैं :—

जे गरीब को आदरैं ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग॥
जो रहीम करिबे हुतो ब्रज को यहै हवाल।
तौ काहे कर पर धर्यो गोबरधन गोपाल॥
मुकता कर करपूर कर चातक तृष हर सोय।
ए तो बड़ो रहीम जल कुथल परे विष होय॥

ये महाशय मुसलमान होने पर भी कृष्ण और राम के पूरे भक्त थे। इनको ईश्वर पर पूर्ण विश्वास था :—

तैं रहीम मन आपनो कीनो चारु चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहै कृष्णचंद्र की ओर॥
रहिमन को कोउ का करै ज्वारी चोर लबार।
जो पति राखनहार है माखन चाखन हार॥
माँगे मुकुरि न को गयो केहि न त्यागियो साथ।
माँगत आगे सुख लह्यो ते रहीम रघुनाथ॥

इन्होंने नीति के भी बहुतही उत्तम चुनिन्दे दोहे लिखे हैं और संसार ने उन्हें इतना पसंद किया कि प्रायः वे सभी किंवदंतियों के रूप में कहे जाते हैं :—

फरजी साह न ह्वै सकै गति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सूधी चालु ते प्यादो होत वजीर॥
छिमा बड़ेन को चाहिए छोटेन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो जो भृगु मारी लात॥
रहिमन बिगरी आदि की बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं छुटो न बावन नाम॥

विपत्ति के विषय में इनका यह मत था :—

रहिमन बिपदा हू भली जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में जानि परत सब कोय॥

सत्संग और कुसंग पर भी इन्होंने बहुत ज़ोर दिया है :—

कदली सीप भुजंग मुख साँति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए तैसोई फल कीन॥
रहिमन नीच प्रसंग सों लगत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे मदहि कहैं सब ताहि॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीति आदि पर विशेष ध्यान रखने पर भी इन्होंने काव्याङ्गों को हाथ से जाने नहीं दिया है। इनकी रचना में यत्र तत्र चित्र-काव्य भी मिलता है। परन्तु उसमें भी इन्होंने उपदेश नहीं छोड़े हैं :—

जो रहीम गति दीप की कुल कपूत की सोय।
बारे उजियारो करै बढ़े अँधेरो होय॥
गुन ते लेत रहीम कहि सलिल कूप ते काढ़ि।
काहू को मन होयगो कहा कूप ते बाढ़ि॥
कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय॥

इन्होंने उपमायें, दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा आदि भी बहुत उत्तम खोज खोज कर कही हैं :—

नैन सलोने अधर मधु कहि रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लोन पर मीठे हू पै लौन॥
बड़े पेट के भरन को है रहीम दुख बाढ़ि।
यातै हाथी हहरि कै रह्यो दाँत द्वै काढ़ि॥
हरि रहीम ऐसी करी ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि आपनी ओर को डारि दियो पुनि दूरि॥

इस महानुभाव की कविता की सभी लोगों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है और वास्तव में वह सब प्रकार से प्रशंसनीय है। इन्होंने शुद्ध व्रज भाषा में कविता की है और फारसी एवं संस्कृत के पूर्ण विद्वान् होने पर भी ग्राम्य भाषा तक का उत्तम प्रयोग करने में ये कृतकार्य हुए हैं। इन्होंने शब्दों के बाह्याडम्बर का तिरस्कार करके केवल भाव को प्रधान रक्खा है और फिर भी इनकी कविता व भाषा दोनों मनोमोहिनी हैं। इनकी रचना बिलकुल सच्ची है और उसमें हर स्थान पर इनकी आत्मीयता झलकती है। उत्तम छन्दों के उदाहरण में इनका पूरा ग्रंथ ही रक्खा जा सकता है। हम इनको प्रथम श्रेणी में समझते हैं।

गणेशविहारी मिश्र,
श्यामविहारी मिश्र,
शुकदेवविहारी मिश्र।

महाराज सप्तम एडवर्ड का स्वर्गवास।

शुक्रवार ता० ६ मई के पौने बारह बजे रात्रि को महाराज एडवर्ड अपने कुटुम्ब और कोटानुकोटि प्रजा से मुख मोड़ सुरपुर सिधारे। इस शरीर का कोई ठिकाना नहीं। किसी कवि ने सत्य कहा है :—

पानी केरा बुलबुला, इस मानुष की जात।
देखतही छिप जायँगे, ज्यों तारा परभात॥

किसी ने स्वप्न में भी न सोचा था कि महाराज का शरीरान्त इतनी जल्दी हो जायगा। मृत्यु के कुछ काल पूर्व तक आप बराबर होश में रहे। पाँच बजे संध्या तक अपने कमरे में पूरी पोशाक पहिने इधर उधर टहलते रहे। छः बजे के अनुमान दो प्याले काफ़ी के पिये। फिर कुरसी पर बैठ महारानी तथा और लोगों से बातचीत करते रहे। महारानी को बड़ी घबराती देख उन्हें "मैं अच्छा हूँ और अच्छा हो जाऊँगा" "I am alright, shall be alright" कह कर सम्बोधन किया। यहाँ तक उनसे कहा कि आज रात्रि को आप नाटक देखने अवश्य जावें। पाँच और छः के बीच ख़बर मिली कि आपकी घोड़ी ने घुड़दौड़ में विजय पाई। इस संवाद को सुन आप बहुत प्रसन्न हुए। बस इसके बाद ही आपकी प्रकृति बिगड़ने लगी। साढ़े छः बजे संध्या को डाक्टरों का पर्चा निकला कि महाराज की दशा बहुत शोचनीय है। इसके निकलतेही सारे नगर में खलबली मच गई। सहस्रों नर नारी महल के सामने जा खड़े हुए। सैकड़ों गाड़ियों का तांता लग गया। लोग महाराज की दशा जानने को बहुत घबराने लगे। पर कोई ठीक ख़बर न देता था। बीसों तरह की ख़बरें लोगों में फैलने लगीं। कोई कहता था कि महाराज कुछ अच्छे होंगे इसीसे डाक्टरों ने पर्चा नहीं निकाला। किसी ने सोचा कि काम पूरा हो चुका इससे पर्चा नहीं निकला इत्यादि। अन्त को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज एडवर्ड की मृत्यु-शय्या ।

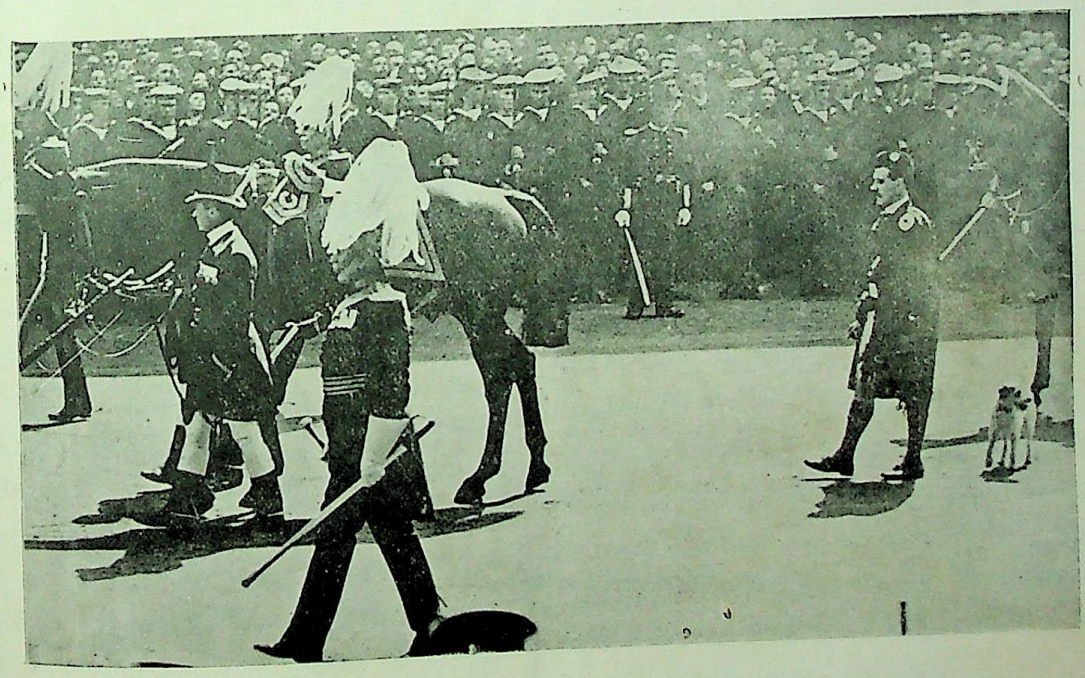

महाराज एडवर्ड का प्यारा घोड़ा और शोकातुर कुत्ता ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमान १२ बजे कैन्टरबरी के बड़े पादड़ी सिर झुकाये महल से निकले। बहुतेरे लोगों ने पूँछा कि महाराज की दशा कैसी है? पर कोई उत्तर न मिला। इनके बाहर आने से लोगों को विश्वास हो गया कि महाराज का शरीरान्त हो चुका। फिर भी बहुतों को आशा बनी रही। नये महाराज की महारानी और कई डाक्टर भी बाहर निकल आये। पर साफ़ तौर से कुछ न मालूम हुआ। प्रायः एक बजे रात्रि को होम सेक्रेटरी मि० चर्च हिल को ख़बर भेजी गई कि महाराज का देहान्त हो गया। इनके पश्चात् समाचार पत्रों को मालूम हुआ। दूसरे दिन सबेरे सब समाचार-पत्र काले कालमों से रंगे हुए महाराज के चित्रसहित निकले। सम्पूर्ण नगर में शोक छा गया। बहुतों पर समाचार वज्र की भाँति गिरा। घर घर लोग महाराज के गुणों को स्मरण कर अश्रुपात करने लगे।

मृत्यु का कारण।

महाराज बहुधा शीत ऋतु का कुछ भाग फ़्रांस के बियारिटस नगर में व्यतीत किया करते थे। यह छोटा सा शहर समुद्र के किनारे है और ठंड काल में उष्णता के कारण अच्छा समझा जाता है। यहाँ की भाँति वहाँ इतनी ठंड नहीं पड़ती। अपने पुराने नियमानुसार महाराज बियारिट्स पहुँचे। साथ में डाक्टर थे जो हमेशा साथ रहा करते हैं। पर इस वर्ष वहाँ की आबोहवा कुछ ठंडी थी। हवा भी ख़ूब तेज़ चलती थी। बाहर आने जाने में ठंड लग गई। डाक्टरों ने अच्छा बन्दोबस्त रक्खा। यहाँ ख़बर मिली कि मामूली सरदी हुई है। पर डेली न्यूज़ "Daily News" के संवाददाता ने लिखा कि सरदी का बहुत ज़ोर है। यहाँ तक कि महाराज ने तीन दिन तक पोशाक नहीं उतारी। फिर आप कुछ अच्छे हुए और यहाँ आये। यहाँ आकर राजकीय कामों में पड़े। कभी कभी नाटक देखने गये। प्रकृति सुधरने की अपेक्षा बिगड़ती ही गई। डाक्टरों ने ब्राइटन (Brighton) जाने की सलाह दी। ब्राइटन समुद्र के किनारे का छोटा शहर है। यहाँ भी महाराज बहुत जाया करते थे। पर अब की बार यहाँ बियारिट्स की भाँति प्रचंड आँधी चलती थी। अन्त में जल्द ही लौटना पड़ा। ता० ५ मई को राज्य-सम्बन्धी बहुत काम किया। डाक्टरों ने काम करने से रोका पर न माने। उसी दिन महारानी करफ्यू (Corfu) द्वीप से लौटनेवाली थीं। महाराज सदैव उन्हें लेने को स्टेशन जाया करते थे। पर इस दिन प्रकृति बहुत ख़राब होने से नहीं पहुँच पाये। इस कारण लोग अनेक कल्पनायें करने लगे। संध्या को डाक्टरों का परचा निकला कि अधिक सरदी के कारण महाराज दो दिन से अपने कमरे के बाहर नहीं निकल सके। ता० ६ का हाल हम आगे लिख चुके हैं। शुक्रवार इस देश में अशुभ दिन समझा जाता है। कोई कार्य इस दिन शुरू करने से सफल नहीं होता। रोगी यदि इस रात्रि को बच गया तो बच गया नहीं तो मृत्यु होने में कोई सन्देह नहीं रहता। जो हो महाराज की सांसारिक यात्रा आज समाप्त हुई। महाराज की मृत्यु के पीछे कई समाचारपत्रों ने लिखा कि मृत्यु का कारण केवल सरदी नहीं पर हृदय की कमज़ोरी भी थी। वस्तुतः इसी ने उनके प्राण जल्द लिये। इसमें बहुत कुछ सत्यता जान पड़ती है। कारण यह कि केवल सरदी से मनुष्य इतनी जल्दी नहीं मर सकता। पाँच धुरन्धर डाक्टर महाराज की सेवा में दिन रात महल में रहा करते थे। निदान किसी बात की कमी न थी पर—

काल के हाथ कमान, बूढ़ा बचे न ज्वान।

टोरी (Tory) समाचारपत्र लिखते हैं कि (Liberal Government) लिबरल गवर्नमेंट ने महाराज के प्राण लिये क्योंकि बजट व हाउस आफ़ लार्डस इत्यादि की उन्हें बहुत चिन्ता रहा करती थी। पर ऐसा लिखना इन अख़बारों का भ्रम है। इसमें सन्देह नहीं कि महाराज को अवश्य कुछ चिन्ता थी? पर ऐसी ऊँट पटाँग कल्पना करना कि इसी से उनकी मृत्यु हुई केवल उदार दल को बदनाम करना है। मरते समय महाराज के सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुटुम्बी मौजूद थे। केवल (Norway) नार्वे की महारानी पीछे पहुँची। वे यहाँ न थीं। आप महाराज की सबसे छोटी पुत्री हैं। महाराज के तीन पुत्रियाँ हैं जिनमें से एक (Duke of Fife) ड्यूक फाईफ को व्याही हैं। दूसरी ने व्याह नहीं किया और तीसरी नार्वे की महारानी। दो पुत्र थे जिनमें बड़े का देहान्त सन् १८९२ ई० में हुआ और दूसरे नये महाराज जार्ज हैं। महाराज की मृत्यु के पूर्व पार्लीमेंट बन्द थी (Speaker) स्पीकर अपने भाई के पास (Constantinople) कान्सटेंटी नोपल में थे। प्रधान मंत्री मि० एसक्विथ मैडीटरेनियन भूमध्यसागर में समुद्री हवा खा रहे थे। ख़ज़ानची मि० लायड जार्ज इटाली में थे। पर मृत्यु के समाचार मिलते ही सब लन्दन लौट आये।

घोषणा (Proclamation)

ता० ९ मई के नौ बजे सवेरे नगर के मुख्य मुख्य ठिकानों पर घोषणापत्र पढ़े गये कि आज से युवराज अपने मृत पिता के स्थान में महाराज हुए। ये घोषणायें चार स्थानों में हुईं अर्थात् (St. James Palace) सेंट जेम्स पेलेस (Charing Cross) चेअरींगक्रास, (Temple Bar) टैम्बिल बार और (Royal exchange) रायल एक्स चेंज। घोषणापत्र पढ़नेवाले कर्मचारी बड़े ठाट बाट से निकले। सहस्रों मनुष्य घोषणा सुनने को इकट्ठे हुए। टेम्पलबार के निकट जो घोषणा हुई वह कुछ लिखने योग्य है। यह स्थान कचहरियों और क़ानूनी शालाओं के निकट है। जिस सड़क पर यह कार्यवाही हुई उसका नाम (Fleet street) फ़्लीट स्ट्रीट है। इसी सड़क पर लन्दन के सम्पूर्ण मुख्य मुख्य समाचारपत्रों के दफ़्तर हैं। टेम्पलबार शहर की प्राचीन सरहद् या फाटक समझा जाता है। यहाँ प्राचीन समय में पक्का फाटक था पर अब सिवा एक मामूली चिह्न के कुछ नहीं रहा। प्राचीन नियमानुसार बिना लार्ड मेअर की आज्ञा के कोई राजा शहर में क़दम नहीं रख सकता था। लार्ड मेअर का ठीक ठीक अर्थ करना कठिन है पर यहां उसे हमारे यहाँ की म्युनिसीपेलिटी का अध्यक्ष कहना अयोग्य न होगा। यह पुराना ढकोसला अभी तक जारी है। फाटक की जगह उस स्थान पर रेशम की एक रस्सी आड़ी लगा दी जाती है। शहर की ओर से लार्ड मेअर अपने कर्मचारियों सहित बड़े समारोह से इस फाटक पर आ खड़ा होता है। दूसरी ओर से महाराज के कर्मचारी आ खड़े होते हैं। इनमें से एक तुरही को तीन बार बजाता है। वहाँ से लार्ड मेअर ललकार कर पूछता "Who comes there" कौन आता है? तब महाराज की ओर के कर्मचारी उत्तर देते हैं कि हमें शहर में घुस कर मनादी करने दो कि आज से अमुक युवराज इस देशके शासनकर्त्ता हुए। इसको सुन कर लार्ड मेअर सबको भीतर आने देता है और घोषणापत्र सुनने पर सब शहर में प्रवेश करते हैं। बस यही कार्यवाही इस अवसर पर हुई।

(लाइङ्ग-इन-स्टेट) Lying—in—state

लाइङ्ग-इन-स्टेट का यथार्थ अर्थ करना सहज नहीं। ता० १६ तक महाराज का मृत शरीर बकिङ्गहम-महल में रहा। ता० १८ को पार्लीमेंट के (Westminster Hall) वेस्ट मिनिस्टर हाल में रक्खा गया। बकिङ्गहम महल से आज महाराज की अन्तिम यात्रा थी। सैकड़ों आदमी रात भर उन सड़कों पर जा खड़े हुए जहाँ से महाराज का मृत शरीर निकलनेवाला था। काफिन (Coffin) एक तोपदार गाड़ी पर रक्खा गया था। काफिन से अर्थ कपड़े का नहीं पर उस लकड़ी के सन्दूक़ का है जिसमें मृत शरीर बन्द किया जाता है। काफिन के साथ विधवा महारानी, नये महाराज और महारानी तथा बाहर से आये हुए राजा लोग थे। दर्शकों की भीड़ भी ख़ूब थी। ता० १७ से १९ तक काफिन वेस्ट मिन्स्टर हाल में रहा। वह लकड़ी के एक ऊँचे ढाँचे पर जमाया गया। यहाँ उसे लोग १० बजे सवेरे से १० बजे रात तक देख सकते थे। महाराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकप्रिय होने से सारी विलायत उनके अंतिम दर्शन करने के लिए टूट पड़ी। लोग रात रात भर खड़े रहे ताकि काफिन देखने को मिले। यहाँ छोटा बड़ा कोई हो एक के पीछे एक खड़ा रहता है और बारी आने पर भीतर जा सकता है। इससे दर्शकों की क़तार ७ मील तक लम्बी हो गई। हज़ारों आदमी मारे भूक, प्यास के अधमरे हो गये। ऊपर से इन्द्र भगवान् का कोप हुआ। पर लोग न हटे। बराबर जमे रहे। इतने धैर्य्य और कष्ट पर भी बहुतों को निराश घर लौटना पड़ा। कई थकी हुई स्त्रियों को मि० जान बर्न्स Johns Burns ने आश्रय दिया। आप ऐसे मौक़े पर बड़ी उदारता दिखाते हैं। जान बर्न्स एक उच्च पदाधिकारी हैं। स्थानीय व्यापारी-विभाग के आप प्रधान कर्म्मचारी हैं। अपने श्रम और बुद्धि द्वारा इस ऊँचे पद पर पहुँचे हैं। पहले एक साधारण मज़दूर थे। भीतर कमरे के दर्शक काफिन की ओर देखते और सिर झुकाते हुए जल्द आगे बढ़ते जाते थे। काफ़िन के आस पास सिपाहियों का पहरा था। इनमें दो गोरखे भी थे जो मूर्ति की नाईं सीधे खड़े रहते थे। बहुत से लोग फूलों की मालायें काफ़िन पर चढ़ाते हुए चले जाते थे। कई लोग अश्रुपात करते दिखाई दिये। जर्मनी के बादशाह घुटने टेक काफ़िन के सामने प्रार्थना करने लगे। आँखों से आँसू टपक रहे थे। शोक इस बात का है कि सहस्रों मनुष्य कितने ही घंटे खड़े रहने पर भी काफ़िन न देख सके। चाहिए था कि रात भर खुला रखते। हमारे एक मित्र की यही दशा हुई। अनुमान १० लाख दर्शक काफ़िन देख सके। (Gladstone) ग्लेडस्टोन का काफ़िन भी इस कमरे में रक्खा गया था। इससे समझ लेना चाहिए कि उनका कितना मान था। सिवा ग्लेडस्टोन के किसी प्राइम मिनिस्टर का काफ़िन पहले कभी नहीं रक्खा गया था। हम यह लिखना भूल गये कि दर्शकों की क़तार की प्रत्येक पंक्ति में ६ दर्शक थे। इस प्रकार की पंक्तियाँ एक दूसरे के पीछे पाँच और सात मील की दूरी तक फैली थीं। खड़े खड़े अनेक स्त्री-पुरुष मारे थकावट के मूर्छित हो गिर पड़े। पर किसी के प्राण नहीं गये।

अन्तिम संस्कार।

ता० २० शुक्रवार के बारह और एक बजे दिन के बीच महाराज का अंतिम संस्कार हुआ। आज आपकी परिवार, पार्लीमेंट, प्रजा और नगर से आख़िरी बिदा थी। सारे शहर में आज मातम फैला था। दूकान, दफ़्तर, सब बन्द थे। ७½ लाख प्रजा का लन्दन आज जनहीन सा दिखाता था। सूर्य भगवान् का आज बड़ा ज़ोर था। आकाश में बादलों का नाम न था। मारे धूप के मुँह झुलसे से जाते थे। पर यहाँ के अपढ़ लोगों के विश्वासानुसार ऐसा दिन ऐसे मौक़े के लिए अशुभ समझा जाता है क्योंकि कहावत है कि—

"Happy is the corpse that the rain falls on,
Happy is the bride that the Sun shines on."

अर्थात् वही मृत शरीर सुखी है जिस पर मेह बरसता है, और वह दुलहिन जिस पर सूर्य चमकता है। सर हैनरी केम्बल बैनरमैन जिस दिन दफ़न किये गये थे उस दिन ख़ूब वर्षा हुई थी। लोग कहते थे वे बड़े भाग्यवान् थे। कहते हैं महारानी विक्टोरिया के दिन भी वर्षा हुई थी। परन्तु ये सब कोरे ढोंग धतूरे हैं। यदि इस दिन वर्षा होती तो लोगों को बहुत हताश होना पड़ता। महाराज की आत्मा को भी सुख न होता। महाराज के आख़िरी दर्शन लेने को आज दर्शकों की अपार भीड़ थी। कहते हैं ऐसा जमाव विक्टोरिया महारानी के लिए भी न हुआ था। शहर और आस पास के लोगों के अतिरिक्त, आयरलेंड स्काटलेंड जर्मनी और फ़्रांस से सैकड़ों लोग आये थे। हम पैरिस से लौट रहे थे। हमारा जहाज़ फ़्रेंच लोगों से खचाखच भरा था। हमारे पूछने पर कई एक ने उत्तर दिया कि हमने काफ़िन देखने के लिए बैठने का स्थान भी मोल ले लिया है। निदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शकों की भीड़ का कोई समाचार पत्र ठीक ठीक कूत नहीं लगा सका। कोई बीस लाख कोई ३० लाख बताता है। Hyde Park हाइड पार्क में कहा जाता है दो लाख से कम भीड़ न थी। वस्तुतः ऐसे अवसरों पर मनुष्य-संख्या करनी असम्भव सी है। अंदाज़ ही ठीक समझना चाहिए।

सड़कों की सजावट।

जिन जिन सड़कों से काफ़िन निकलनेवाला था उनके मकान काले, बैंजनी, परदे, पताकों और फूल की बड़ी बड़ी मालाओं से सजे थे। दर्शकों की बैठकें भी काले और बैजनी कपड़ों से ढँकी थीं। सात बजे के बाद कोई गाड़ी नहीं आ जा सकती थी। सड़कों पर पतली पीली मिट्टी छिड़की जा रही थी ताकि चलनेवालों की आवाज़ न सुनाई दे। सैकड़ों लोग प्रोग्राम एक एक पैनी को बेच रहे थे, जिन पर महाराज का चित्र और दिन की कार्यवाही का ब्यौरा छपा था। बहुत से महाराज के चित्रदार बटन, कपड़े के बैंजनी रंग के फूल (mourning flowers शोक-सूचक फूल) मूर्तियाँ और छोटी बड़ी तसवीरें बेच रहे थे। पुलिस का पहरा सब सड़कों पर दो बजे रात से था। एक कानिस्टबिल से हमने पूछा क्या तुम नाश्ता कर आये हो? कहने लगा जी हाँ, पर दो बजे किया था, अब फिर भूँखा हूँ। दो बजे रात से खड़े होनेवाले को अवश्य ही भूक लगेगी। घुड़सवार पुलिस तितर बितर दर्शकों को जहाँ तहाँ हटा रही थी। पर सबसे बड़ी नम्रता से बर्ताव करती थी। Sir, Please, Madam महाशय, कृपाकर, मैडम (स्त्री के लिए आदरसूचक शब्द) कह कर आगे बढ़ने, पीछे हटने या अलग होने को कहती जाती थी। दर्शक भी उनके इस बर्ताव के उत्तर में जहाँ तहाँ चुपचाप हटते जाते थे। लाखों की भीड़ का ऐसा अच्छा प्रबन्ध करना सहज बात नहीं है। लन्दन की पुलिस इसके लिए प्रसिद्ध है। पुलिस के पीछे गोरे खड़े थे। पर ये सिवा चुपचाप खड़े रहने के किसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं करते थे। ये कंधे से कंधे लगाये खड़े थे। इनके पीछे दर्शक थे। इस वास्ते न तो दर्शक सड़क पर आ सकता था न सड़क पर का भटकता दर्शक दूसरे दर्शकों में मिल सकता था। ऐसे भटकते हुए दर्शक ख़ास ख़ास सड़कों से बाहर कर दिये जाते थे।

दर्शकों की दशा।

सैकड़ों दर्शक रात भर सड़कों पर खड़े रहे। बहुतेरे दो तीन बजे रात से पहुँचे। पर ऐसों को इस जगह आने में कुछ कठिनाई पड़ी। छः बजे लाखों में से एक हम थे पर भाग्य से हमें जगह अच्छी मिल गई थी। कुछ देर बाद एक तरुण स्त्री जो मारी मारी फिर रही थी हमारे पास आकर बड़ी दीनता से पूँछने लगी क्या कृपा कर मुझे यहाँ खड़े होने को आप आज्ञा देंगे? हमें दया आई और अपनी जगह उसे दे दी। बस अब हम मारे मारे फिरने लगे पर शीघ्र हमें भी उत्तम स्थान मिल गया। दर्शक बड़ी तयारियों से आये थे। ऐसा न करते तो बड़ी तकलीफ़ उठाते। सबके पास कुछ न कुछ खाने की चीज़ें थी। कोई नारंगी, केले, सेव, बिस्कुट, चाकोलेट लिये थे। किसी किसी के पास प्यास बुझाने को सोडा लैमनेड था। शराबी शराब लिए थे। मूर्छा रोकने के लिए कई तरह के नमकों की शीशियाँ लिये थे। चुरुट तमाकू पीना मना था। लेडियाँ बड़े बड़े टोप पहिनने से रोकी गई थीं क्योंकि पीछे खड़े रहनेवालों की नज़र को वे बिलकुल रोक देते हैं। जिनको जगह सड़कों पर नहीं मिली वे बाग़ीचों के वृक्षों पर जा चढ़े। कोई कोई चढ़ते समय गिर पड़े पर थोड़ी सी चोट से अधिक चोट नहीं पहुँची। कोई अपनी बाईसिकिल सहित वृक्षों पर बैठे थे। नारफ़क स्क्वैर (Norfolk Square) में एक आदमी बड़े ऊँचे मकान की चिमनी पर बैठा नीचे तमाशा देख रहा था। इसी प्रकार एक स्त्री लालटेन के खम्भे पर जा चढ़ी थी। पुलिस ने बहुत मना किया पर वह न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महारानी एलक्ज़न्ड्रा ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतरी। लोगों ने ख़ूब तालियाँ ठोकीं। वहाँ पार्लीमेंट की बड़ी घड़ी पर एक मनुष्य जा बैठा था। वृक्षों के आस पास तार लगाने पर भी लोग ऊपर जो चढ़े थे, वहीं से बैठे बैठे प्रोग्राम पढ़ कर कहते थे कि अब फ़लाना आ रहा है इत्यादि। इतनी भारी भीड़ रहते भी हल्ला गुल्ला ज़रा नहीं होता था। पर सूर्य्य भगवान् का कोप था। जो उनके सामने खड़े थे उनके मुँह जले जाते थे। छाता लगाना मना था। मना भी न होता तो लगाना कठिन था। कोई पंखा कोई रूमाल कोई अख़बारों से धूप बचाते थे। मारे पसीने के स्नान से तर बतर हो रहे थे। बहुतों के टोप टूट गये। लेडियों के टोपों की सुई गिर गईं। किसी किसी के रूमाल, दस्ताने, छाते, हाईकालर, कंघियाँ, कमर-पट्टे इत्यादि मारे धक्का धूमी के खो गये। ऐसी भीड़ में उन्हें किसको ढूँढ़ने की शक्ति थी? पाकटों के कलवचाकोलेट वग़ैराः चकनाचूर हो गये। लोगों को दम लेना कठिन हो गया। नतीजा यह हुआ कि सैकड़ों मूर्छित हो नीचे गिरने लगे। पर दाई और डाक्टर सब निकट थे। पार्लीमेंट और पैडिंगटन तक ३५ मुक़ामों पर एक एक डाक्टर कुछ दाई पैर आदमी के मौजूद थे, जो तुरन्त मूर्छित दर्शकों को उठा शहर ले जाते थे। कम मूर्छित ठंडी हवा और दवा से कुछ देर बाद अच्छे हो जाते थे। जो अधिक बेहोश थे वे निकट के अस्पतालों में भेज दिये जाते थे। इस प्रकार किसी तरह की लापरवाही नहीं होने पाई। ऐसी प्रचंड धूप में दर्शकों को बेचैन और बेहोश देख सड़क के किनारे के कई होटलों के लोगों ने बड़ी दया दिखाई। किसी ने ऊपर से स्पंज (sponge) भिगा कर रस्सी द्वारा नीचे फेंका। किसी ने सोडा लैमनेड वा सादे पानी की भरी बोतलें। दर्शकों ने एक दूसरे को ज़रूरत पर फल इत्यादि दिये। हमारे पास एक बूढ़ा था। मारे प्यास के मर रहा था। हमने एक नारंगी निकाल उसे दी। तब बेचारे की जान में जान आई। पुलिस के कोई कोई सिपाही भी गश खा गये थे पर तुरन्त मदद पहुँच गई। कोई कोई पुलिसवालों ने दर्शकों पर असीम कृपा की है। एक सूँघने के नमक की बड़ी बोतल लिये था जो गश खाते हुओं को सुँघाता फिरता था। गोरे सिपाही अपनी कमर में पानी की बोतलें लिये थे। किसी किसी ने इनके द्वारा बहुत स्त्रियों की प्यास बुझाई। एक स्त्री अपना टोप लिये लिये थक गई थी। पुलिसवाले से पूँछा क्या तुम्हारी पीठ पर इसे रख दूँ। उसने बड़ी दयालुता से स्त्री को अपने कोट में सुई द्वारा टोप लटकाने की आज्ञा दी। इस भाँति एक दूसरे ने बड़ी सहानुभूति दिखाई। कमबख़्ती से एक तारवाला लड़का कहीं से सड़क पर आ पहुँचा। पास की सड़क में तार ले जाना था। दर्शकों की मज़बूत दीवार तोड़ना कठिन था अतएव दर्शकों ने उसे अपने सिर पर से हाथों हाथ दूसरी ओर पहुँचा दिया। लड़का तार की भाँति तुरन्त तैरता निकल गया। लोग सब ही हँसे। एक स्त्री को अपनी बैठक पर पहुँचने को बड़ी मुशकिल हुई। एक दर्शक ने उसे अपने कन्धे पर चढ़ा कर उस पार कर दिया। दूसरे दिन समाचारपत्रों से मालूम हुआ कि सब मूर्छित कुछ ऊपर छः हज़ार के थे। पर सब अच्छे हो गये। इतने वृहत् जन-सागर में सहस्र बूँद की भाँति हैं। प्रशंसा इस बात की है कि किसी के प्राण नहीं गये। गाँठ कटने की कोई रिपोर्टें नहीं हुईं। न और ही किसी जुर्म की। यही पुलिस और प्रजा दोनों के परस्पर प्रेम-बर्ताव का परिणाम है।

काफ़िन का निकलना।

ठीक साढ़े नौ बजे महाराज का काफ़िन पार्लीमेंट से निकला और साढ़े ग्यारह बजे विन्डसर जाने के लिए पैडिंगटन स्टेशन पहुँचा। ६८ तोपों की सलामी हुई। ६८ इसलिए कि महाराज ६८ वर्ष के थे। पहले महाराज की सरों के कुछ सिपाही, फिर जर्मनी, नारवे, रशिया, एशिया, जपान, डैनमार्क, स्वीडन और चीन के फ़ौजी अफ़सर घोड़ों पर निकले। हमारे यहाँ के गोरखे सिपाही भी थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो बंगाल रिसाले के दुपट्टेवाले अँगरेज़ पैदल जा रहे थे। फिर जहाज़ी सेना निकली। इनके पीछे महाराज के निज कर्मचारी और इनके पीछे महाराज की तोपदार गाड़ी जिस पर काफ़िन रक्खा था। काफ़िन एक क़ीमती बैंजनी रंग की बड़ी चादर से ढका था। ऊपर ताज, दण्ड इत्यादि राज-चिह्न रक्खे थे। काफ़िन निकलते ही सब ने टोप उठाये। बहुत से दर्शक रो पड़े क्योंकि महाराज की यह सदैव के लिए बिदा थी। काफ़िन के आगे बैंडबाजा धीमे स्वर से बजता था। सिपाही जो काफ़िन के आगे पीछे थे उल्टी तलवारें और बन्दूकें लिये जा रहे थे। जर्मन-नरेश और इनके बाद दूसरे देशों के राजे महाराजे घोड़ों पर सवार हुए निकले। इनके पीछे महाराज का घोड़ा, इसकी रकाबों में महाराज के उल्टे बूट रक्खे थे। कुछ पीछे सीज़र कुत्ता जा रहा था। इसका हाल आगे मिलेगा। अब गाड़ियों की डोर लगी। पहली गाड़ी विधवा महारानी की थी जो कुछ बाहर सिर किये लोगों की सहानुभूति का सिर झुका कर उत्तर देती जाती थीं। इनके देखने से सबके हृदय गद्गद हो गये। काल की अद्भुत गति है। कल क्या दशा थी! आज क्या हुई!! इनके शोक का क्या ठिकाना है? इस बात को वही समझ सकता है जिस पर ऐसी बीतती है। भगवान् ऐसी दशा से सबको बचावे। विधवा महारानी की गाड़ी के पीछे ११ गाड़ी और निकलीं जिनमें नारवे, ग्रीस इत्यादि की रानी मि० रूसवेल्ट और अनेक बड़े बड़े लोग बैठे थे। तात्पर्य यह है कि महाराज के काफ़िन के साथ ९ राजा महाराजा, चार रानी और ४१ राजकुमार तथा इसी उच्च पद के लोग थे। इतने बहुत से राजे महाराजे कभी किसी के लिए नहीं आये। इसके कदाचित् दो कारण हैं। एक यह कि महाराज का रिश्ता टर्की और सरविया को छोड़ सभी से कुछ न कुछ था। दूसरा, बल्कि मुख्य कारण यह है कि आप सबको प्रिय थे। एक बड़ी बात भूले जाते हैं। वह यह थी कि नौ बादशाहों से थोड़ी सी दूर मि० क्विन फ़ाककोट और टाप हैट पहिने आस पास निगाह फेरते चुप चाप जा रहे थे। आप एक प्रसिद्ध जासूस हैं जो ऐसे अवसरों पर बादशाहों की हिफ़ाजत किया करते हैं ताकि कोई लगा लिपटा बदमाश किसी प्रकार का आक्रमण न करे। मि० क्विन को केवल वही पहचान सकते हैं जो उन्हें ख़ूब जानते हैं। देखने में आप बिलकुल सादे भोले से दीखते हैं। कोई नहीं कह सकता कि आप जासूस हैं।

रेलगाड़ी जिसमें काफ़िन था।

जिस ख़ास गाड़ीद्वारा काफ़िन गया उसमें दस डिब्बे थे। ये डिब्बे बड़ी ख़ूबसूरती से सजाये गये थे। एनजिन का नाम महाराज एडवर्ड था। आज वह बड़ा उदास दीखता था। इन दस डिब्बों में २०० मुसाफ़िरों का स्थान था। इनमें बाहर से आये हुए राजा रानी इत्यादि बैठे थे। विधवा महारानी, नये महाराज और महारानी, और कई बड़े बड़े लोग बैठे थे। इन डिब्बों के बीच के डिब्बे में महाराज का काफ़िन था। इसी डिब्बे में महारानी विक्टोरिया का भी काफ़िन भेजा गया था। डिब्बे के चारों कोनों पर चार अफ़सर काफ़िन की ख़बरदारी के लिए चुपचाप बैठे थे। कुल गाड़ी का चार्ज रेलवे के अफ़सर मि० बुचर को था। आप सदैव महाराज की गाड़ी के साथ विन्डसर आया जाया करते थे। पैडिंगटन स्टेशन से विन्डसर जाने को ३५ मिनिट लगते हैं। इसके बीच के स्टेशनों पर रेल के अफ़सर काफ़िन को सलामी करते जाते थे।

महाराज का विन्डसर में अन्तिम संस्कार।

विन्डसर में महाराज की पुरानी गढ़ी है। वहाँ आप कभी कभी रहा करते थे। वस्तुतः सब पूर्व महाराज यहाँ रहते आये हैं। यह एक बड़े रमणीय स्थान में बसा है। गढ़ी के आस पास छोटी बस्ती है। विन्डसर यहाँ से २७ मील पर है। महाराज के पूर्वजों की समाधि यहीं है। आज महाराज भी उन्हीं में जा मिले। राजा महाराजा जिस नियम से यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काफ़िन के आगे पीछे चले थे उसी प्रकार वहाँ भी चले। (St. George's chaplet) सेंट जार्ज चैपलेट नाम के छोटे गिरजाघर में महाराज का शरीर सदैव के आराम के लिए रक्खा गया। बड़े पादरी ने प्रार्थना की। सब लोग नंगे सिर थे। घुटने टेक समाधि के निकट खड़े हुए। "Now the labourers task is over" "अब श्रमी का श्रमांत हुआ" नामक गीत गाया गया। विधवा महारानी और नये महाराज ने घुटने टेक कर काफ़िन के आख़िरी दर्शन किये। बस महाराज का सांसारिक नाता टूटा। एक बजे के लग भग यह कार्यवाही हुई। यहाँ से लेकर विन्डसर तक गिरजाघरों में घंटे बजने लगे। पादड़ियों ने विशेष प्रार्थनायें कीं। कुछ देर के लिए रेल, ट्राम, ट्यूब (Tube) इत्यादि खड़ी हो गईं। यह नियम पृथ्वी के सब अँगरेज़ी देशों में मनाया गया। हिन्दुस्तान का हाल आप जानें। विधवा महारानी और सब लोग उसी दिन लन्दन लौट आये। उस दिन लन्दन में बड़ी उदासी छाई थी। लोग कुछ रंज और कुछ थकावट के मारे घरों से बाहर नहीं निकले। महाराज ने दस वर्ष ही राज्य कर पाया पर इस अल्प शासन की कीर्ति सांसारिक इतिहास में सदैव चमकती रहेगी।

मूरत से कीरत बड़ी, बिना पंख उड़जाय।
मूरत तो जाती रहे, कीरत कभी न जाय॥

फूलों की मालायें।

मालायें जो महाराज के काफ़िन पर चढ़ाने को आईं वे लग भग पाँच और छः सहस्र के थीं। सब विन्डसर भेजी गईं थीं। एक एकड़ ज़मीन तक फैली थीं। सिवा इस देश के इटली, जर्मन, और फ़्राँस से मालायें आईं थीं। कई आकार की थीं। कोई कोई दस फुट लम्बी थीं। बड़ी मेहनत से तैयार की गईं थीं। उन पर भाँति भाँति के चित्र और शब्द लिखे थे। देखने में बड़ी सुन्दर थीं। मोटा हिसाब लगाने से मालूम हुआ कि इनका मूल्य क़रीब १५ लाख रुपये था। हमारे यहाँ के लोगों को इसे पढ़कर आश्चर्य होगा। पर उन्हें कदाचित् यह नहीं ज्ञात है कि यहाँ फूल बहुत महँगे हैं। गुलाब के एक फूल का एक आने से चार आने तक मोल है। कभी कम कभी बढ़ भी जाता है। पार्लीमेंट से लेकर पैडिंगटन स्टेशन तक रास्ते भर कई प्रकार की मालायें लगाई गईं थीं। बहुत सी लारल Laurel और फर्न fern की थीं। इन पर देनेवालों के नाम बड़ा ख़ूबसूरती से लिखे थे। बहुतों ने प्रख्याति न होने के कारण नाम नहीं दिये थे। ग़रज़ यह है कि अमीर और ग़रीब सबही ने यथाशक्ति फूल भेजे थे। यही हाल विन्डसर की सड़कों का था। पैडिंगटन और विन्डसर के बीच भी रेल की सड़क पर जगह जगह मालायें लटकीं थीं। महाराज की यादगार में बहुत से दर्शक लारल और फर्न के पते घर लेते आये। इन्हें जहाँ तक होगा रक्खेंगे। विक्टोरिया महारानी के समय के ऐसे पत्ते कोई कोई अभी तक किताबों में रक्खे हैं।

महाराज का कुत्ता।

महाराज Cæsar सीज़र नाम के कुत्ते को बहुत चाहते थे। उसका भी इनपर बहुत प्रेम था। जहाँ जहाँ महाराज जाते थे सीज़र साथ रहता था। यह एक साधारण कुत्ता है। शरीर पर बड़े बड़े बाल हैं। इस जाति के कुत्ते को Fox terrier कहते हैं। इसके कालर पर My name is Cæsar and belong to the king "मेरा नाम सीज़र है और मेरे मालिक महाराज हैं" लिखा है। सबेरा होते ही महाराज के बिछौने पर जा कूदता था, कोई कितना ही रोके पर वह नहीं मानता था। अतएव दोनों में बड़ा प्रेम था। जिस दिन से महाराज बीमार हुए सीज़र ने उनका कमरा नहीं छोड़ा। जैसे जैसे बीमारी बढ़ चली कुत्ता उसी भाँति निराश हो चला। खाना, पीना कम कर दिया। जब तक महाराज का शरीर कमरे में रहा तब तक सीज़र वहाँ से नहीं हिला। जब शरीर उठ गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब से उसने उस कमरे की ओर मुँह तक नहीं फेरा। उसे साफ़ मालूम हो गया कि मेरा स्वामी इस महल में नहीं है। महारानी एलगज़ेन्ड्रा और महाराज जार्ज ने बहुत कुछ प्यार किया ताकि कुछ खावे पीवे। जानवरों का डाक्टर भी मना मना कर हैरान हो गया। दफ़न के दिन सीज़र महाराज के काफ़िन के पीछे नीचा सिर किये शोकातुर जा रहा था। एक हाईलेन्डर चाँदी की जंज़ीर से पकड़े था। लाखों आदमियों की भीड़ रहते उसने ज़रा भी आस पास नहीं देखा। "जहाँ पीव प्यारो नहीं वही बजार उजार"। हज़ारों नर नारी उसे देख रो पड़े। अभी तक सीज़र का दिल बहुत टूटा हुआ है। सीज़र की भाँति महाराज का अश्व भी साथ था। इसकी क्या दशा थी सो मालूम नहीं।

मालिक-मकानों की चाँदी।

महाराज की मृत्यु से सैकड़ों दूकानदार और मकानवालों के घर भर गये। कई एकों ने जन्म भर की कमाई उस दिन पूरी कर ली। यह लाभ केवल उन्हीं लोगों को पहुँचा जिनके मकानों के सामने से काफ़िन निकला था। कई दिन आगे से दर्शकों ने बैठकें ख़रीद ली थीं। किसी ने एक गिनी, किसी ने पाँच गिनी एक बैठक के दिये। दूकानदारों ने सामान अलग कर बेचें और कुरसियों से दूकानें भर दी थीं। जिनके मकान के सामने कुछ जगह थी वहाँ मचानें खड़ी कर दीं। किसी किसी मचान पर दो सौ दर्शक बैठ सकते थे। एक खिड़की का किराया १५० पौंड हाथ आया। एक आदमी ने दो हफ़्ते पूर्व दो कमरे किराये पर ले रक्खे थे। भाग्य से महाराज मर गये। उसने दोनों कमरे दर्शकों को ३०० पौंड में किराये पर दे डाले। लीजिए साढ़े चार हज़ार रुपये साढ़े चार घंटे के भीतर कमा लिये। एक ने अपनी बड़ी छत से दो हज़ार पौंड पाये। एक ने अपने मकान के खुले स्थान पर लकड़ी का ढालू ढाँचा बना २००० दर्शकों को स्थान दिया जिससे १०००० दस हज़ार पौंड कमाये। बैठकों का इतना भाव बढ़ गया था कि लोग चौगुनी क़ीमत देने पर भी बैठक नहीं पा सके। इस प्रकार हिसाब लगाया गया है कि क़रीब एक लाख बैठकें तैयार की गई थीं और क़रीब पाँच लाख पौंड वसूल किये गये। यह हाल बड़ी बड़ी जगहों का था। अब छोटी छोटी बातों का हाल सुनिए। कई एक ने पुरानी कुरसी और सन्दूक़ किराये देकर ख़ूब रुपया कमाया। एक कुरसी के पाँच शिलिंग और संदूक़ के दस शिलिंग लिये। उधर गाड़ीवालों ने जो सड़क के पास खड़े थे गाड़ियों पर खड़े होने के दस दस शिलिंग ले लिये। पुरानी टूटी फूटी बसों (एक प्रकार की दुहरी घोड़ा गाड़ी) पर केवल खड़े होने के दो दो शिलिंग ले लिये। हाइड पार्क (Hyde Park) में Achilles एकीलीज़ की एक ऊँची मूर्ति है। कई लोग घंटों आगे पहुँच उसके आस पास जा बैठे। इन लोगों ने दूसरों को अपनी जगह दस शिलिंग प्रत्येक आदमी के हिसाब से बेच डाली। Hyde Park corner हाइड पार्क कोने के निकट एक बदमाश एक मकान के दर्वाज़े पर खड़ा था। लोगों ने जाना घर का मालिक है। खड़े होने की आज्ञा माँगी। दस आदमियों से ढाई पौंड ले हवा हो गया। उसी स्थान के निकट वैलिङ्गटन की मूर्ति के नीचे कुछ लोग रात को आ सोये थे ताकि सबेरे काफ़िन देखना मिले। एक चालाक लड़के ने कुछ रद्दी काग़ज़ के तकिये फ़ी छः आने को बेच सहज में पांच शिलिंग बना लिये। बस जहाँ देखो लोगों को कमाने की सूझ रही थी। बाग़ोंवों में की कुर्सी के छः आने देने पड़े। हालाँ कि यहाँ से काफ़िन कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। बहुत से वृक्षों पर जा चढ़े पर उतरने की दो दो घड़ी। बागवान ने सीढ़ी के दो शिलिंग हर एक आदमी से लिये। कहते हैं महाराज के तिलक के समय भी इसी प्रकार बैठकें बेचने का बाज़ार गरम था। पर वह और यह और मौक़ा था। ऐसे मौक़ों पर ऐसी जुएबाज़ी रोकने का कोई रास्ता निकालना चाहिए। पर घटना किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार की नहीं हुई। सब बैठकें म्युनीसीपल इन्स-पेक्टरों द्वारा जाँची गई थीं नहीं तो अवश्य बहुतों के हाथ पैर टूटते।

समाचार-पत्र।

इस देश में समाचार-पत्र पढ़ने का लोगों को बड़ा शौक़ है। यह सब विद्या और धन का प्रभाव है। इसलिए समाचार-पत्रों की बड़ी बिक्री होती है। यहाँ के बहुत से अख़बारों की ग्राहक-संख्या सहस्रों नहीं लाखों है। महाराज की मृत्यु के दूसरे दिन सारे अख़बार सचित्र काले बार्डरों में निकले। आज इनकी ग्राहक-संख्या दूनी और चौगुनी बढ़ गई। जहाँ देखो लोगों के हाथ में अख़बार दिखाई देते थे। कोई कोई समाचार-पत्र काले बार्डरों में कई दिन तक निकले। दफ़न के दिन सब समाचार-पत्र बन्द थे। लोग बड़े बेचैन थे। इस दिन प्रातः और संध्या दोनों के समाचार-पत्र बन्द थे। दूसरे दिन शनिवार को बड़े बड़े आकारों में निकले। सब में महाराज के काफ़िन इत्यादि के चित्र थे। साथ ही दफ़न का पूरा ब्यौरा छपा था। प्रत्येक अख़बार के संवाददाता पार्लीमेंट से पैडिंगटन और पैडिंगटन से विन्डसर तक जगह जगह मौजूद थे। इनके अतिरिक्त फ़ोटो लेनेवाले अलग थे। इस हिसाब से प्रत्येक अख़बार के छः से बारह तक संवाददाता थे। हर एक संवाददाता ने हर एक सड़क का हाल लिखा जहाँ से काफ़िन निकला। किपलिंग और कानन डायल ने भी लेख लिखे। इस प्रकार उस दिन प्रत्येक समाचार-पत्र को कई सहस्र रुपये केवल लेख लिखाने में व्यय हुए। हमारे यहाँ एक ही एडीटर से सब काम लिया जाता है। कहो अख़बार कैसे रोचक हो सकते हैं? उस दिन Daily Mirror डेली मिरर की १५ लाख कापियाँ बिकीं। सहस्रों ग्राहकों ने आफ़िस जा घेरा। बड़ी आफ़त हुई। पुलिस बुलाई गई, तब कहीं भीड़ कम हुई। दो बजे दिन के पूर्व १५ लाख कापियाँ हाथों हाथ बिक गईं। तिस पर भी लोग मोल लेने को तड़पते फिरे। कहीं किसी News agent न्यूज़ एजेन्ट (समाचार पत्र बेचने वाले) के पास नहीं मिलता था। डेली मिरर की क़ीमत आध आना है। पर उस दिन छः आने तक को नहीं मिलता था। दूसरे दिन फिर कई लाख कापियाँ निकलीं तब कहीं लोगों को शांति हुई। डेली मिरर के सिवा और भी कई दैनिक-पत्र नहीं मिलते थे। डेली मिरर १२ सफ़े का एक दैनिक पत्र है जो सवेरे निकलता है। इसमें बहुधा तसवीरें रहा करती हैं जो कितनाही मूल्य देने पर शायद मिल सकती हैं। तसवीरों के सिवा कुछ लेख भी रहते हैं। आध आने में ऐसा सुन्दर पत्र बहुत ही सस्ता है। इस दिन इसमें कई नये विज्ञापन निकले। इसलिए सिवा बिक्री के और भी इसे आमदनी हुई। Times टाइम्स ने भी एक अतिरिक्त पत्र निकाला जिसमें बीमारी के दिन से दफ़न तक का कुल हाल था। इसकी कीमत ३ आने थी। दफ़न के एक दिन आगे भी ख़ूब अख़बार बिके। इनमें बहुत सी बातें थीं जैसे काफ़िन किस रास्ते से किस समय निकलेगा। कहाँ कहाँ खड़े होने से अच्छा दीखेगा। क्या क्या चीज़ें खाने की साथ ले जानी चाहिए इत्यादि।

दूकानें।

जब से महाराज की मृत्यु हुई है तब से यहाँ की कुल दूकानों की सजावट एकदम पलट गई है। यह दशा ता० ३० जून तक होगी। हर एक चीज़ काली काली नज़र पड़ती है। काले टाई, काले टोप, काले मौज़े, काले दस्ताने, काली लकीरदार कमीज़ें, काली किनारों के लिफ़ाफे इत्यादि। हर एक दूकान में महाराज की एक बड़ी तसवीर रक्खी हुई है। किसी किसी में विधवा महारानी और नये महाराज की भी हैं। परदे काले या बैंजनी रङ्ग के पड़े हुए हैं। स्त्री, पुरुष, सब जहाँ तक बनता है काले कपड़े पहनते हैं। पुरुष काले साही लगाये हैं। स्त्रियाँ काले टोप, काले बुरके और काली पोशाकें पहने रहती हैं। कोई कोई पुरुष बायें हाथ के कोट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आस्तीन पर मातम का काला पट्टा लगाये हैं। पार्लीमेंट, गिरजाघर, नाटकघर, दूकान, दफ़्तर, स्कूल इत्यादि पर आधे झंडे खड़े हैं। निदान जहाँ देखो वहाँ मातम ही मातम दिखलाई देता है।

महाराज की जीवनी।

महाराज का जीवन-चरित्र सब अख़बारों में छप चुका है और कई छोटी मोटी पुस्तकें भी लिखी जा चुकी और लिखी जा रही हैं। हम यहाँ केवल दो चार बातें कह कर उनकी जीवनी पूरी करते हैं। महाराज का जन्म ९ नवम्बर सन् १८४१ ईसवी में हुआ था और मृत्यु ६ मई सन् १९१० को। इसलिए आप ६८ वर्ष के थे। सन् १९ में आप आक्सफर्ड शिक्षार्थ भेजे गये। कुछ दिन बाद अमेरिका की सैर को गये और लौट कर केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कालेज में दाखिल हुए। सन् १८६३ में डैनमार्क की राजकन्या एलेग्ज़ेंड्रा से विवाह हुआ। १८६४ में बड़े पुत्र का जन्म हुआ और दूसरी साल नये महाराज जार्ज का। सन् ७५ में आप भारत पधारे। सन् १८९२ में बड़े पुत्र का देहान्त हुआ। सन् १९०१ में महारानी विक्टोरिया का स्वर्गवास हुआ। जनवरी १९०२ में आप बहुत बीमार हुए और १९०२ के अगस्त में राज्याभिषेक हुआ। आक्सफ़र्ड और केम्ब्रिज जाने के पूर्व आपने कुछ काल एडिवर्ग में शिक्षा पाई थी। सैर आपने क़रीब क़रीब सब संसार की कर डाली थी। नियम के पक्के पाबन्द थे। हर एक बात बराबर समय पर किया करते थे। स्मरणशक्ति आपकी तीव्र थी इसी से अनेक भाषायें जानते थे। ६१ वें वर्ष में आपने उर्दू सीखी थी। फ़्रेंच और जर्मन भाषायें बड़ी आसानी से बोल सकते थे। एक समय फ़्राँस के प्रसीडेन्ट के आप अतिथि हुए। प्रेसीडेन्ट महाशय ने अपनी स्पीच लिख कर पढ़ी पर हमारे महाराज ने बिना किसी तैयारी के फ़्रेंच भाषा में एक धारा-प्रवाह भाषण कर डाला जिसे सुन प्रेसीडेन्ट साहब चकित हुए। इसी प्रकार वे जर्मन-भाषा भी बोलते थे। आवाज़ आपकी ऊँची थी। छोटेपन में उच्चारण के कुछ दोष थे पर उनकी माता ने सब दूर करा दिये थे। इस त्रुटि के दूर करने को योग्य शिक्षक रक्खे गये थे। आपको घुड़दौड़ का बड़ा शौक़ था। छः बार जगद्विख्यात डर्बी की घुड़दौड़ में विजय पाई और प्रत्येक डर्बी घुड़दौड़ देखने जाया करते थे। इसी भाँति क्रिकेट, गाने, नाचने का भी शौक़ था। सबसे बड़ा गुण आपमें मिलनसारी का था। इसी से आप (Peace maker) शांति स्थापन करनेवाले कहलाते थे। हर एक देश के राजा लोगों से आप ख़ुद मिलने जाते थे। यही कारण है कि आपके अन्तिम संस्कार में संसार के इतने राजा महाराजा इकट्ठे हुए थे। यदि आपमें ये गुण न हों तो यहाँ के टोरी दल-वाले अख़बार न मालूम किस देश से लड़ाई करा देते। स्वभाव के आप शान्त थे। सबसे सदैव हँस कर बात-चीत किया करते थे। छोटे बड़े को एक सा समझते थे। एक बार आप (Brighton) ब्राइटन में समुद्र के किनारे हवा खा रहे थे कि एक बालक ने आकर पूछा। क्या आप मुझे सही समय बतायँगे? तुरन्त घड़ी निकाल कर समय बताया। बालक ने पूछा क्या आप कह सकते हैं! बेवकूफ़ बादशाह यहाँ से कब निकलेगा मैं उसके देखने को सवेरे से ठहरा हूँ (Can you tell me when the blooming king is coming? I have been waiting to see him since morning) इसे सुन आप हँस कर कहने लगे मैं भी उसके लिए ठहरा हूँ। और इतना कह कर आप आगे बढ़ गये। एक पादड़ी जो महाराज को जानता था पास ही खड़ा हुआ सब सुन रहा था।

महाराज पँचम जार्ज।

नये महाराज ३ जून सन् १८६५ ई० में पैदा हुए थे। आपके विषय में अधिक लिखना बे मौक़ा सा दिखाई देता है। इतना ही कहना बस होगा कि आपका बहुत सा जीवन सामुद्रिक सेवा में व्यतीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ है। स्वभाव के आप सुशील हैं। किसी किसी का विचार है कि आप अपने पिता से भी बढ़ कर लोकप्रिय होंगे। पर यह सब समय दिखावेगा। आपके पाँच पुत्र और एक पुत्री है। सबसे बड़े कुमार की आयु १६ साल है। क़रीब एक वर्ष से आप राजकीय कार्यों में रुचि दिखलाने लगे थे। पार्लीमेंट की बड़ी बड़ी बहसों में आप मामूली दर्शक की नाईं हाउस आफ़ कामन्स में मौजूद रहते थे। और भी आप कई कार्य करने को अपने पिता की ओर से भेजे जाते थे। इसलिए आप बादशाही के लिए बिलकुल नये नहीं हैं। मृत महाराज को घुड़दौड़ का बड़ा शौक़ था। पर आपको नहीं। एक बार पिता ने बुला भेजा कि डर्बी की घुड़दौड़ देखने आओ। आपने नम्रता से कहला भेजा कि मैं जहाज़ छोड़ कर नहीं आ सकता। पर अब मालूम होता है आप भी घुड़दौड़ का शौक़ जारी रक्खेंगे। राज्य का भार लेते हुए आपने कहा था कि "I will follow in my father's footsteps" मैं अपने पिता का अनुकरण करूँगा। ईश्वर आपको ऐसी ही बुद्धि दे। भारत भ्रमण आप कर ही चुके हैं। आशा है कि हमारी उन्नति पर भी विशेष ध्यान देंगे।

प्यारेलाल मिश्र ।
(लन्दन)

बिजली ।

ज्यों संसार में उन्नति होती जाती है त्यों त्यों बिजली की अद्भुत लीलाएँ नज़र आरही हैं। किसी ने सच कहा है कि यदि आजकल किसी देश की उन्नति का पता लगाना हो तो यह देखना चाहिए कि उस देश में बिजली का कितना प्रचार है। यह तो हर एक मनुष्य को मालूम है कि बिजली के द्वारा तार चलता है जिसकी वजह से युरोप से हिन्दुस्थान तक छः घंटे में समाचार आता है। परन्तु यह शायद लोगों को कम मालूम होगा कि और क्या क्या काम बिजली से लिये जाते हैं।

पोर्ट आर्थर से रात के एक बजे समाचार आया कि युद्ध आरंभ हो गया और प्रातःकाल होते होते सारे जापान में ख़बर फैल गई और समस्त जापान में जोश लहर मारने लगा। यह किसकी लीला थी कि सहस्रों मील की घटना को पलक मारते मारते दुनिया के एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँचा दे? यह वही विचित्र बिजली का कार्य्य था जिसने आकाश-मण्डल में चढ़ कर तार के ख़बर दे दी।

अब यदि कोई मनुष्य बिजली की असलियत पूँछे तो सिर्फ़ इतना कह देना काफ़ी है कि यह वही बिजली है जिसके असर को हिन्दुस्तान वालों ने युरोप की पैदाइश के हज़ारों बरस पहले पता लगा लिया था—यह वही बिजली है जिसको हिन्दुस्तान के दहक़ानी (गाँव के) राजपूत आसमान से गिरा-कर अपनी तलवारों का लोहा बनाते थे—यह वही बिजली है जिसको हिन्दुस्तानी हकीम अष्टधाती अँगूठी या गंगायमुनी तावीज़ सोने चाँदी की जंज़ीरों या ज़ेवरों में बन्द करके अपने सुकुमार बच्चों वा लड़कों, रोगियों—नाज़ुक बदन स्त्रियों, बाँके तिर्छे पहलवानों—महाबली राजाओं की तन्दुरुस्ती क़ायम रखने के लिए इलाज के काम में लाते थे। यह वही बिजली है जिसके बल से भारतवासी बिना आवाज़ किये अग्निबाण चलाते थे—और इसी बिजली के बल से आग बरसाते थे तो बरफ़बारी भी कर सकते थे—आजकल के लोग गोली, बंदूक़, तोप वग़ैरः से वाक़िफ़ हैं इसलिए उनको अपने पूर्वजों के अग्नि-बाणों पर तो यक़ीन शायद आगया होगा, लेकिन बाणों से पानी और बरफ़ बरसाना कैसे मुमकिन है यह शायद वे अब तक न समझे होंगे। लेकिन अगर वे बिजली-शास्त्र ग़ौर से पढ़ें तो यह अचंभा भी जाता रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात्पर्य्य यह कि यह वह मुल्क है जिसके लिए बिजली की अद्भुत चमत्कारिक लीलाएँ नई नहीं हैं—परन्तु शोक का स्थान है कि लोग, ख़ासकर हिन्दू जाति के लोग, बिजली की विद्या से इस क़दर नावाक़िफ़ हैं कि एक मामूली सी बिजली की रोशनी देख कर या तार के ज़रिये ख़बर पाकर इस क़दर ताज्जुब करते हैं कि जैसे कोई अनोखे गाँव में ऊँट देख कर भौचक्का सा रह जाय।

बिजली की ताक़त कोई जादू नहीं है, सिर्फ़ उसका व्यवहार ज़रूर जादूगरी का काम करता है। यदि आप चाहें तो अपने बालों को रबर के कंघे से घिस कर बिजली पैदा कर सकते हैं और उसी कंघे में वह ताक़त पैदा कर सकते हैं कि उस कंघे के महज़ पास लाने से एक हलकी घंड़ी ख़ुद ब ख़ुद बज जाय। इसे घिसने में बिजली का भेद गुप्त है। पुराने समय में गंधक की गेंद पर हाथ घिस कर बिजली पैदा की जाती थी—और इसी तरह पर कल बनाकर बिजली की चिनगारी पैदा की जाती थी। इन्हीं चिनगारियों को अगर शीशे की नली में बन्द करके पैदा करें तो उस नली में वह ताक़त पैदा होती है कि जिसकी मदद से लोहे के संदूक़ में बन्द किया हुआ ख़ज़ाना अंधी कोठरी में घर बैठे दर्शित होता है—या यदि मनुष्य के शरीर में कोई गोली या तीर की गाँसी अटकी हो तो बिना चीर फाड़ के ठीक ठीक नज़र आती है।

यदि एक तरफ़ जस्ता और एक तरफ़ ताँबा का टुकड़ा पानी में डाल कर ज़रा सा तेज़ाब डाला जाय तो बिजली की धारा चलनी आरंभ होती है—इसी बुनियाद पर तरह तरह की ब्याट्री बनाई जाती हैं—जिनके बनाने की सब तदबीरें बिजली-शास्त्र में लिखी हैं और इसी ताक़त से आज हर घर में घंटियाँ बजती हैं—घर बैठे चोर आने पर बटन दबाते ही पुलिस को ख़बर होती है—इसी ताक़त की बदौलत बड़े बड़े चौमंज़िले पँचमंज़िले के आदमी बिना उतरे हुए बड़ी बड़ी कोठी और मकानों में एक दूसरे से बात कर सकते हैं—या वे चिल्लाये जिस कोठरी या कमरे में चाहें नौकरों को बुला सकते हैं—इसी ताक़त की बदौलत निहायत अच्छी सोना चाँदी की क़लई होती है—इसी ताक़त से लोहे पर सफ़ेद निकिल की क़लई होती है—इसी बिजली की धारा ने कच्ची धातुओं से माल निकालना सहज कर दिया है—इसी धारा से आज ज़री का काम फ्राँस में बनता है, वह ज़री जो हिन्दुस्तान में आँख फोड़कर बनाई जाती है—

इसी ब्याट्री को यदि इस तरह बनावें कि उसमें पानी न रहे तो उसका नाम सूखी ब्याट्री है—सूखी ब्याट्री के कारण आजकल ऐसे चिराग़ बनते हैं जो बहुत ही ख़ूबसूरत छड़ी या जेबी डिब्बे की शकल के होते हैं और आवश्यकता के समय इससे एक बारगी रोशनी करके चोर या कीड़ा वग़ैरः देख सकते हैं। ऐसी ब्याट्री को फूल में रख कर शौक़ीन लोग छाती पर रात को चमकदार फूल लगाते हैं या उससे झाँकी और आराइश इत्यादि का काम लिया जाता है—यह ब्याट्री है जो मोटरकार को भकाभक रेल से अधिक तेज़ ले जाती हैं। इसी ब्याट्री से हवा के गैस भावीजन और हाइड्रोजन मिला कर पानी बनाने का दावा किया जाता है।

यदि किसी तार में ज़ोरदार धारा जा रही हो और यदि उसको कहीं पर काट दिया जाय तो इस क़दर गरमी पैदा होगी कि तार का सिरा लाल हो जायगा, बल्कि गल जायगा। इसी नियम को ध्यान में रख कर बिजली की रोशनी तैयार की गई जिससे बे तेल या दियासलाई के जिस वक्त चाहें रोशनी कर सकते हैं और ज़रा से बटन के दबाने से पूरा मकान या बाज़ार रोशन कर सकते हैं। यह वह रोशनी है जो पानी के अंदर जल सकती है, जो पहाड़ों पर चोटी चोटी को रोशन कर सकती हैं—जो लाल पीली नीली रोशनी तरह तरह की रंगत और साज़ (ख़ूबसूरती) पैदा करती है। बिजली के शोले में यह सिफ़त है कि किनारे से बैठे बैठे दुश्मन का जहाज़ एक बटन दबाने से डुबो देता है—जब तक यह शोला ईजाद न हुआ था तब तक लोग लड़ाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पहाड़ों में सुरंग लगाते थे या क़िले के भीतर घुस कर क़िलों में आग लगाकर क़िला तोड़ते थे लेकिन आप भी अपनी जान को खोते थे। लेकिन बिजली की चिनगारी से आज सुरंग लगाना या पहाड़ तोड़ना आसान है।

जिस तार में बिजली चलती है उस तार में भी ऐसी आकर्षण-शक्ति हो जाती है कि वह दूसरे लोहे को अपनी तरफ़ खींच सकता है और जब धारा बन्द हो जाती है तब आकर्षक बल जाता रहता है और खींचा हुआ लोहा अलग हट जाता है। इसी उसूल पर आज (Telegraph) टेलीग्राफ़ का (Relay) बनाया गया है—जिससे सैकड़ों कोस की ख़बर मिलती है। बिजली की आकर्षण शक्ति ने टेलीफून, बिजली की घंटी, और तरह तरह के कलों को चला रक्खा है।

जिस तरह बिजली की धारा से आकर्षण-शक्ति पैदा होती है उसी तरह इस शक्ति से बिजली की धारा भी पैदा हो सकती है। इसी लिए यदि किसी तार को चुम्बक के दोनों सिरों के बीच में ऊपर नीचे बार बार किया जाय तो उस तार में बिजली की धारा पैदा होती है। इसी विधिपर डाइनमो बनाया गया है जिससे हज़ारों घोड़ों की ताक़त की बिजली पैदा होती है—और जिसको घुमाने से शहर भर बिजली की रोशनी से रोशन हो सकता है। इसी डाईनमो के द्वारा बड़े बड़े क़लई करने के कारख़ाने, कान कनी के कारख़ाने और गली गली कल चलाने की ताक़त पहुँचाने का प्रबन्ध होता है।

बड़े बड़े शहरों में जैसे कि न्यूयार्क New York और शिकागो Chicago में सिर्फ़ डाइनमो Dynamo से बिजली पैदा करने की ही बड़ी बड़ी कम्पनियाँ हैं जिनका काम यह है कि हर कारख़ाने को बिजली की ताक़त रोज़ाना पहुँचावें जिससे वह बिना Engine इंजन रक्खे चक्की चला सकते हैं। खराद चलाते हैं, रंदा करने की मशीन चलाते हैं, बरमा मशीन लकड़ी चीरने की मशीन—कपड़ा बुनने की मशीन, वग़ैरः चलाते हैं।

मशहूर फ़्राँसीसी बिजलीगर Ampere ऐमपीयर ने यह सोचा कि यदि दो चुम्बक के सिरों के बीच में किसी तार को ऊपर नीचे लाने से बिजली पैदा होती है तो यह भी मुमकिन है कि यदि चुम्बक के सिरों के बीच में तार रखकर उस तार में बाहर से बिजली डालें तो तार भी ऊपर नीचे आवेगा। चुनांचि उसने इस तजरबे को पूरा किया—जिसका नतीजा यह हुआ कि उस उसूल पर बिजली का Motor मोटर बना। यही मोटर हर गली में ट्राम-गाड़ी रेलगाड़ी चलाता है—यही मोटर गरमियों में हाकिमों के कमरे-दफ़्तरों के कोठों पर पंखा चलाता है—यही मोटर धोबी की मशीन—पानी खींचने की मशीन, आटा पीसने की मशीन चलाता है।

जरमन प्रोफ़ेसर हर्ज़ ने देखा कि जब बिजली का शोला पैदा होता है तो तमाम Ether (आकाश) में धक्का लगता है और बिजली की लहर उठती है—जैसे अगर दो गड्ढों में पानी भरा हो और उसके बीच की मेंड के काटने से कुल पानी में लहरें उठती हैं—यह सोचकर मारकोनी ने एक आला ऐसा बनाया कि जो उन लहरों को देखतेही बजने लगे और आज इसी के द्वारा बेतार के Europe योरोप और अमेरिका में बातें होती हैं—यह तो बिजली के थोड़े से क़ायदे दरयाफ़्त करने का नतीजा है। अभी बहुत सी दरयाफ़्तों से काम लेना है जो बहुत जल्द ही होंगी लेकिन यह देखना है कि इन कारनामों का सेहरा किसके सिर बँधता है। क्या हमारे हिन्दुस्तानी भी इस तरफ़ कुछ करके दिखावेंगे? हमको आशा है कि हम लोग बहुत कुछ कर सकते हैं—परन्तु शोक है जैसा कि शेख़ सादी ने कहा है :—

करीमां रा बदस्त अंदर दिरमनेस्त।
खुदावंदाने नेमत रा करमनेस्त

Europe यूरोप और अमरीका में एक एक तजरबे के लिए रईस और अमीर हज़ारों रुपये साल का ख़र्च बिना लालच या फ़ायदे की उम्मेद के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं—चाहे तजरबा फलदायक हो या न हो सैकड़ों विद्वान् सिर्फ़ इसलिए बड़ी बड़ी तनख़्वाहें पाते हैं कि अपनी विद्या से नये नये आविष्कार करें। हिन्दुस्तान में आज यह माद्दा नहीं है कि उसके रईस व अमीर इस तरफ़ ध्यान दें। और हिन्दुस्तान की तरफ़ से भी कुछ मालूमात करके दुनिया को रोशनी पहुँचावें—और युरोप की विद्या का जो ऋण लिया है उसका उद्धार करें। अगर कहा जाय कि मामूली आदमी इस तरफ़ तवज्जह करें तो यह बेजा है क्योंकि इसका नतीजा देर को मिलता है और यह बेचारे ग़रीब निम्नलिखित मिसरा पढ़ कर नौ दो ग्यारह होते हैं।

"मुफ़लिसी सब बहार खोती है।"

महेशचरणसिंह।

कर्म्मयोग।

"क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्म्मजा *।

संस्कृत-साहित्य में वेदों के समय से लेकर पौराणिक-काल-पर्यन्त भिन्न भिन्न विषयों पर जो दार्शनिक, ऐतिहासिक और पौराणिक ग्रन्थ लिखे गये हैं, उनमें जिन जिन कथा-वार्त्ताओं का वर्णन किया गया है वे भावी लोगों को शिक्षाप्रद होकर कल्याण-कृत हों इसी अभिप्राय से उनमें लिखी गई हैं। उक्त ग्रन्थों में से जिस ग्रन्थ को मनोनिवेशपूर्वक पढ़ो उसमें पाठक को अमूल्य शिक्षा देनेवाले उपदेश मिलते हैं। संस्कृत के साहित्य में एक अनूठा गुण यह और है कि उसमें संग्रह किये हुए उपदेश उसके पाठकों को ऐहिक और पारमार्थिक दोनों श्रेय देने के लिए समानरूप से समर्थ पाये जाते हैं। यह गुण अन्य देशीय साहित्य में क्वचित् ही पाया जाता है। हमारे यहाँ के उक्त ग्रन्थों के पाठकों और श्रोताओं को उनसे जो लाभ बतलाये गये हैं वे निम्न लिखित पद्य में भली भाँति दृष्टि-गोचर होते हैं।

श्रुत्वा धर्म्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षं च गच्छति॥ ९॥

इसका भावार्थ यह है कि उक्त ग्रन्थों के श्रवण करनेवाले को सबसे प्रथम अपने धर्म अर्थात् कर्त्तव्य कर्म का ज्ञान होता है उसके अनन्तर वह अपनी दुर्मति अर्थात् खोटी चाल को छोड़ने के लिए समर्थ हो सकता है। खोटी टेव के छोड़ देने पर उसे आत्म-वान् बनानेवाला ज्ञान प्राप्त होता है; ज्ञान-प्राप्ति के अनन्तर उसे परम लाभ अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है। राजा परीक्षित ने भगवच्चरित को उक्त प्रकार श्रवण कर अपना हित किया था। यह अत्यन्त खेद का विषय है कि इधर कुछ वर्षों से उक्त ग्रन्थों का पठन-पाठन बिना उनका तत्त्वार्थ समझे किया जाता है, वस्त्वर्थ को समझे बिना उक्त ग्रन्थों का श्रवण पठन करने के कारण उनसे कुछ लाभ नहीं हो सकता। इस बात की सूचना महात्मा व्यासजी ने यद्यपि दे रक्खी है तथापि काल-चक्र की कुटिलता के कारण कई वर्षों से प्रायः ऐसा ही प्रचार पड़ गया है कि उक्त ग्रन्थों का पठन पाठन बहुधा बिना उनका परमार्थ जाने ही किया जाता है। इस विषय में व्यासजी ने जो आज्ञा दी है वह यह है :—

वेदस्याध्यापनं सर्वं धर्म्मशास्त्रस्य चैव यत्।
अजानतोऽर्थं तत्सर्वं तुषाणां कंडनं यथा॥

इसका सरलार्थ यह कि जिस प्रकार भूसी कूटनेवाले को उससे कोई वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती, ठीक उसी प्रकार बिना अर्थ जाने वेद और धर्म-शास्त्रादि ग्रन्थों का पठन-पाठन करनेवाले को कोई वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती।

इस समय संस्कृत के पठन-पाठन की प्रणाली बहुत कुछ सुधारी जा रही है। ऐसी अवस्था में

* इस संसार में जिस वस्तु की प्राप्ति के लिए स्वार्थ-त्यागपूर्वक कर्म्मयोग स्वरूप उपाय किया जाता है, उसकी सिद्धि शीघ्र होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशा की जा सकती है कि अब संस्कृत के ग्रन्थों का पठन-पाठन "श्रुत्वा धर्मं विजानाति" पद्य के अनुसार किया जाने लगेगा।

वेद, उपनिषद, योग और सांख्यादि दर्शनों में मनुष्यों के ऐहिक और पारमार्थिक श्रेयों को सिद्ध करनेवाली जो विविध युक्तियाँ और अनेक उपाय, स्थान स्थान पर लिखे गये हैं, उन सबके वस्त्वर्थ को जाननेवाले परम कर्मयोगी श्रीकृष्ण ने अपने परम प्रिय मित्र अर्जुन के हितार्थ उपदेश किया है, वही उपदेश-समूह आज कल गीता के नाम से समस्त विदित विश्व में विख्यात है। जिस भाषा के दार्शनिक विद्वान् ने इस ग्रन्थ को पढ़ा है उसने इस ग्रन्थ की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। भारत में भी इस ग्रन्थ का कितना मान है इस विषय में तो कुछ कहने की आवश्यकता ही क्या। इस समय केवल भाषा जाननेवाले लोगों में जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासकृत चौपाई-रामायण का अधिक प्रचार पाया जाता है, उसी प्रकार संस्कृत के पण्डितों में गीता का प्रचार पाया जाता है। तात्पर्य—संस्कृत ग्रन्थों में से आज दिन भारत में जितना यह ग्रन्थ प्रसिद्ध है उतना अन्य ग्रन्थ क्वचित् ही होगा। इस ग्रन्थ के वक्ता कर्मयोग के पक्षपाती परमात्मा श्रीकृष्ण ने इस ग्रन्थ में कर्म की स्थान स्थान पर जो प्रशंसा की है उसकी सहायता से आज हम अपने पाठकों के समीप कर्म के महत्त्व और गौरव को उपस्थित करते हैं। भरोसा है कि हमारे वस्त्वर्थ-जिज्ञासु पाठक गण हमारे इस छोटे से लेख से कर्मयोग की महिमा को अंशतः जान कर इतने उत्कंठित होंगे कि उनके चित्त में मूल ग्रन्थ से इसके पूर्ण महत्त्व को प्राप्त करने के लिए अनिवार्य्य इच्छा उत्पन्न होगी।

गीता का मननपूर्वक अध्ययन करने से यह बात तुरन्त ही ध्यानस्थित हो सकती है कि श्रीभगवान् ने अर्जुन को पहले ऐहिक सुख और संसिद्धि प्राप्त करने के हेतु ही कर्मनिष्ठ होने के लिए उपदेश किया है। अतः हम भी इस लेख में ऐहिक ही सुख और श्रेय के साधन के विषय में कर्मयोग की योग्यता और आवश्यकता का विचार करेंगे। क्योंकि श्रीकृष्ण परमात्मा के उपदेशों से यह बात स्पष्टतया जानी जा सकती है कि जिसे सांसारिक सुख और श्रेय नहीं प्राप्त होता यह परमार्थ के लिए उम्मीदवार तक नहीं हो सकता तो फिर उसका परमार्थ प्राप्त करना तो निःसंदेह असम्भव ही है! (नायं लोकोस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ४-३१)

"कर्मयोग" यह शब्द कर्म और योग इन दो शब्दों के मेल से बनाया गया है। संस्कृत में "कृ" धातु को 'मनिन्' प्रत्यय लगाकर "कर्मन्" शब्द सिद्ध किया जाता है। भाषा में इसका अर्थ होता है कार्य, काम, "क्रिया", उद्योग, इत्यादि। गीता में श्रीकृष्ण ने योग शब्द को जिस अर्थ में व्यवहृत किया है उसका उल्लेख आपने उसमें स्थान स्थान पर कर दिया है। यथा—

"सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते" २-४८

इसका सरलार्थ यही है कि किसी कार्य की सफलता वा निष्फलता की समता को योग कहते हैं। इसी ग्रन्थ में आगे चल कर योग की व्याख्या इस प्रकार और की हुई पाई जाती है।

"योगः कर्मसु कौशलम्" २-५०

अर्थात् कार्य को सम्पन्न करने की कुशलता अर्थात् चतुराई वा पटुता को योग कहते हैं। तात्पर्य गीता के अंतः प्रमाणों से "योग" शब्द का अर्थ समता और पटुता सिद्ध होता है।

इस ग्रन्थ के सुप्रसिद्ध भाष्यकार भगवान् शंकराचार्य्य ने अपने भाष्य में स्थान स्थान पर "कर्मयोगः" अर्थात् कर्मानुष्ठानम् लिखा है। कर्मानुष्ठान का मतलब काम करना, कार्य करना। इस अर्थ का अनुधावन और समर्थन अन्य भाष्यकारों ने भी किया है। इस ग्रन्थ के सब भाष्यकारों के इस शब्द के अभिप्रेतार्थ को विचार-क्षेत्र में लेने से इस सामासिक शब्द का अर्थ "चतुराईपूर्वक काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने का उपाय" सिद्ध होता है। इस शब्द का यही अर्थ हमने भी अपने इस निबंध में माना है।

गीता-शास्त्र में परमात्मा श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि कर्म की व्याख्या को निश्चित करने में बड़े बड़े चूडांत पण्डितों की बुद्धि भी तादृश काम नहीं दे सकती। (किं कर्म किमकर्मेति कवयोप्यत्र मोहिताः) इसलिए श्रीकृष्ण ने अर्जुन को नीचे लिखे हुए इसके भेद बतला दिये हैं।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥४–१७

इस मंत्र में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्म के तीन भेद सूचित किये हैं। उनके नाम आपने कर्म, विकर्म और अकर्म कहे हैं। शंकराचार्य्यादि भाष्यकारों ने शास्त्र-विहित कर्म को, कर्म कहा है, शास्त्र-निषिद्ध कर्म को विकर्म कहा है; और शास्त्र-विहित कर्म के न करने को अकर्म कहा है। गीता में श्रीकृष्ण ने इन शब्दों की व्याख्याएँ कई प्रकार से की हैं। उनके अर्थ भी भाष्यकारों ने बहुत विस्तृत किये हैं। इन भाष्यों का आनन्द आकर भाष्य-ग्रन्थों को देखने से ही प्राप्त हो सकता है। इस छोटे से लेख में उसका यथार्थ उल्लेख किसी अवस्था में नहीं हो सकता। यहाँ उन व्याख्याओं का केवल सारांश प्रदर्शित करने के लिए उद्योग किया जाता है।

परम कर्मयोगी श्रीकृष्ण ने जिसको श्रेष्ठ कर्म-योगी माना है उसके लक्षण आपने चौथे अध्याय के अठारहवें मंत्र में यों कहे हैं :—

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥

इस मंत्र के पदों का वाच्यार्थ यही है कि जो बुद्धिमान् कर्म को (निज कर्त्तव्य कर्म को) अकर्म, और अकर्म के निज कर्त्तव्य कर्म मान कर उसे सम्पादन करता है वही कृत्स्न कर्मकृत् युक्त है अर्थात् अखिल कर्मकर्त्ता योगी है। इस मंत्र में कहे हुए अभिप्राय को आगे चल कर श्रीकृष्ण भगवान् ने कुछ स्पष्टता के साथ यों कहा है।

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः ॥

पिछले मंत्र में श्रीभगवान् ने जो कहा है कि जो पुरुष स्वकर्त्तव्य कर्म को अकर्म समझ कर करता है वही पूरा योगी है। यह बात सच मुच ही बड़ी कौतूहलजनक जान पड़ती है। क्योंकि यह बात आपाततः ठीक वैसी ही बोध होती है जैसे कोई किसी को एक ही समय में चलने और खड़े रहने की आज्ञा दे। इस उक्ति की विचित्रता को उक्त मंत्र में कहे हुए अभिप्रायद्वारा भगवान् ने अंशतः सरल और बोध-गम्य कर दिया है। इस मंत्र का आशय यही है कि जो योगी अपने कर्त्तव्य कर्म के फल की अभिलाषा को छोड़ निरन्तर सन्तुष्ट और निराश्रय रह कर, उसके सम्पादन काय को करता है; उसे श्रीकृष्ण परमात्मा कहते हैं, मैं अकर्म कर्त्ताही मानता हूँ। विज्ञ पाठक! श्रीकृष्ण की यह उक्ति बड़ी विचित्र दीख पड़ती है। क्योंकि एक स्थान पर स्वयं आपने कहा है कि यद्यपि मुझे किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा नहीं है, तथापि मैं कर्म (स्वकर्त्तव्य-कर्म) करता ही रहता हूँ। (न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन। नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि) श्रीकृष्ण के इस कथन से क्या यह नहीं ध्वनित हो सकता कि जिस चीज़ की आवश्यकता निजको न हो उसके लिए उद्योग करना व्यर्थ है? संसार में सर्वत्र यही बात देखी सुनी भी जाती है। अर्थात् जो मनुष्य किसी व्यर्थ वस्तु के लिए उद्योग करता है उसे सब लोग मूर्ख, अविवेकी और कर्त्तव्य-विमुख कहा करते हैं। ऐसी अवस्था में परमात्मा श्रीकृष्ण का यह कहना कि कर्म के फल को छोड़ कर कर्म करनेवाले को मैं खरा योगी मानता हूँ, बहुत ही विचित्रता-युक्त बोध होता है। साथ ही "मिथ्या वचन न ईश्वर कहहीं", और "शिष्टस्य गतिश्चिंतनीया" आदि वाक्य श्रीकृष्ण के उक्त कथन में विश्वास करने के लिए हठात् हमें विवश करते हैं। किंचित् अधिक विचार करने से श्रीकृष्ण के उक्त कथन की गति बहुत उत्तमतया ज्ञात हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है। वह इस प्रकार कि परमात्मा कहते हैं कि जो सज्जन अपने कर्म के फल की आशा को छोड़ कर उसे करता है उसे मैं परमयोगी मानता हूँ। इस कथन में कर्म फल को छोड़ने का यदि यह अभिप्राय लिया जाय कि जो सज्जन अपने कर्म के फल की प्राप्ति को केवल निजके लाभ के लिए ही नहीं किन्तु सर्वसाधारण के लाभ के लिए मान कर उसे सम्पादन करते रहते हैं, उन्हें श्रीकृष्ण परम योगी मानते हैं, तो हम समझते हैं कि श्रीभगवान् के उक्त कथन की गति सुचारुरूपेण लग सकती है। एक उदाहरण, भरोसा है, इसे और भी स्पष्ट कर देगा। वह यही है कि इस समय पश्चिम देश के जिन परम कर्मयोगी पुरुषों ने बाष्प, विद्युत् आदि की शक्तियों का पता लगा, नाना प्रकार के यंत्रों की रचना कर, सर्वसाधारण को उनसे लाभ पहुँचाया है, उन लोगों ने इन दिशाओं में केवल निज के हित के लिए ही कर्मयोग की, अर्थात् कर्म्मस्वरूप उपाय की साधना नहीं की। किन्तु उन भद्र पुरुषों ने बिना किसी से वेतन लिये अर्थात् निराश्रय रह कर, संतोषपूर्वक अपने आविष्कार को सर्वसाधारण के हितार्थ सिद्ध करने के लिए उद्यम और परिश्रम किया है। यही कारण है कि आज दिन सब लोग उनको आशीर्वाद देते हैं और सब लोग उनकी सराहना करते हैं। यह उदाहरण श्रीकृष्ण के उक्त कथन को अक्षरशः स्पष्ट कर देता है। तात्पर्य्य इस उदाहरण को समीप रख कर श्रीकृष्ण परमात्मा के उक्त उपदेश पर परामर्श करने से आपके कथन का यही अभिप्रेतार्थ प्रतीत होता है कि जो लोग बिना किसी से किसी प्रकार की सहायता लिये, मनः प्रसादपूर्वक किसी काम को स्वार्थत्यागपूर्वक सर्व साधारण के हित के लिए सिद्ध करते हैं वही लोग, तत्वदर्शी श्रीकृष्ण परमात्मा की सम्मत्ति के अनुसार प्रशंसनीय कर्म्मयोगी माने जा सकते हैं। इस स्वल्प प्रतिपादन द्वारा हमारे विज्ञ एवं विवेकी पाठकों को परमयोगी श्रीकृष्ण के ऐहिक हितसाधक कर्म्मयोग के अभिप्राय का और कुछ नहीं तो दिग्दर्शन तो अवश्यही हो सकेगा। सर्व साधारण के हितार्थ किसी कार्य्य को सिद्ध करनेवाले सज्जन की सर्वतोभाव प्रशंसा की जाती है।

इस प्रकार एतदर्थ उसकी प्रशंसा का किया जाना ही उसका कर्म्म-बंधन से मुक्त होना कहा गया है।

"कर्म्मबंधं प्रहास्यसि"

जिस प्रकार स्वकर्त्तव्य कर्म्म में जागरूक रह कर उसे संपादित करने की सम्मति श्रीकृष्ण ने दी है, उस प्रकार उसका संपादन करना बहुतही कठिन है। इसलिए गीता में श्रीकृष्ण ने स्थान स्थान पर ऐसी बहुत सी युक्तियाँ और बहुत से साधन बतलाये हैं, जिनके अभ्यास से मनुष्य के चित्त में स्वकर्त्तव्य कर्म्मपरायण होने का उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है। स्वार्थत्यागपूर्वक स्वकर्त्तव्य कर्म्म-परायणता की श्रीकृष्ण ने यहाँ तक प्रशंसा की है कि उसका साधन करते करते यदि कोई पंचत्व को भी प्राप्त हो जाय तो इस प्रकार का निधन उसके लिए, स्वकर्त्तव्य-कर्म्म से विमुख होने की अपेक्षा कहीं बढ़ कर श्रेयस्कर है। यथा—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

पाठक देखिए, इस मंत्र में स्वधर्म्म अर्थात् स्वकर्त्तव्य कर्म्म की तत्परता के विषय में परमात्मा श्रीकृष्ण क्या कहते हैं। इस मंत्र में आप स्पष्ट रीति से कहते हैं कि जिस किसी कार्य्य के संपादन को कोई अपना स्वधर्म्म अर्थात् स्वकर्त्तव्य कर्म्म मान ले, उसका साधन किसी दूसरे सकलांग-पूर्ण कर्म के साधन की अपेक्षा कुछ हीनांग भी हो तो भी उसे यही उचित है कि वह अपने एक बार स्वधर्म अर्थात् स्वकर्त्तव्य कर्म्म माने हुए कार्य्य में ही निरंतर संलग्न बना रहे। उसके लिए इतने को ही श्रीकृष्ण ने बस नहीं कहा है, किन्तु यहाँ तक कह दिया है कि उस कार्य्य को सिद्ध करने में यदि उसका शरीरपात भी हो जाय तो, उसके लिए, उस कार्य्य को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ देने की अपेक्षा, वह प्राणत्याग कहीं बढ़ कर प्रशस्यतर है। जिन सज्जनों ने रेडियम, और फोटोग्राफ़ी का आविष्कार किया है वा आजकल जो लोग व्योमयान की युक्ति को सिद्ध करने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न कर रहे हैं, उनके जीवन की घटना पर विचार करने से श्रीकृष्ण-कृत उक्त मंत्रस्थ स्वधर्म्मपरता की प्रशंसा का एक एक अक्षर सत्य जान पड़ने में अणुमात्र भी किसी को संदेह नहीं रहेगा। यहाँ लों संक्षेप से जो कुछ लिखा गया है उससे हमारे पाठकों को कर्म्मयोग अर्थात् कर्म्म-स्वरूप उपाय का अभिप्रेतार्थ तथा उसका महत्त्व किसी अंश में विदित हो गया होगा। अब आगे इस कर्म्मयोग की आवश्यकता के विषय में परम कर्मयोगी श्रीकृष्ण ने जो कहा है उसका उल्लेख किया जाता है।

तृतीय अध्याय के चौथे मंत्र में कर्मयोग की आवश्यकता के विषय में श्रीकृष्ण परमात्मा कहते हैं—हे अर्जुन,

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति॥

इसका भावार्थ यह है कि बिना कर्म्म किये अर्थात् बिना कर्म्म-स्वरूप उपाय किये किसी को किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। इसे सभी जानते हैं कि जब तक किसी को किसी विषय में सिद्धि प्राप्त नहीं होती तब तक उसे उस विषय का पूरा पूरा ज्ञान नहीं होता; और बिना ज्ञान प्राप्त हुए किसी को यथेष्ट सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसके उदाहरण स्वरूप में हम अपने पाठकों को मोटरकार का स्मरण दिला देनाही अलं समझते हैं। मोटरगाड़ी को देख कर हमारे पाठक कह सकते हैं कि उसमें जितने कल पुर्ज़े लगे हैं, वे सब लौकिक पदार्थों से ही बनाये हुए हैं। वे सब पदार्थ यदि अलग अलग पड़े रहते तो, उनके मेल की सिद्धि से आज दिन मनुष्यों को जो सुख प्राप्त हो रहा है वह कभी किसी को प्राप्त नहीं हो सकता। इस उदाहरण से श्रीकृष्ण का कथन सुचारुरूपेण प्रमाणित हो गया कि बिना कर्मयोग की साधना किये इस संसार में किसी को सांसारिक सुख देनेवाली सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। साथ ही उसके यह भी ज्ञात हो जाता है कि एक बार किसी वस्तु के सिद्ध करने में जितना परिश्रम, और अध्यवसाय करना पड़ता है, उसकी सिद्धि अर्थात् उसका ज्ञान प्राप्त हो जाने पर फिर तदर्थ उतना परिश्रम अर्थात् कर्मयोग नहीं करना पड़ता। जिस परम कर्मयोगी ने चिरकाल लों परिश्रम कर नाना प्रकार के प्रत्यय कर पहली मोटरगाड़ी तयार की थी, उसे प्रथम जितना कर्म करना पड़ा था उतना अब लोगों को मोटरगाड़ी बनाने में नहीं करना पड़ता। इसी बात को भगवान् ने उक्त मंत्र में कहा है कि आदि में बिना कर्म किये कोई निष्कर्म अर्थात् थोड़े परिश्रम से अधिक सुख पानेवाला नहीं हो सकता। जिस बात को स्पष्ट करने के लिए आज हमने मोटरगाड़ी के उदाहरण से सहायता ली है, उसे स्पष्ट करने के लिए श्रीकृष्ण ने मानवी शरीरादि कई भावपूर्ण बातों से सहायता ली है। तात्पर्य्य कई दृष्टान्त और दार्ष्टान्तों द्वारा अर्जुन को कर्मयोग की अत्यन्त आवश्यकता समझाकर अंत में आपने उसे बड़ी प्रभावोत्पादक भाषा में कहा है, हे अर्जुन,

तस्मादसक्तः सततं कार्य्यं कर्म्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म्म परमाप्नोति पूरुषः॥

इसी लिए तू निरंतर स्वार्थ-त्यागपूर्वक अपने कर्त्तव्य कर्म का अनुष्ठान कर; क्योंकि स्वार्थ त्यागपूर्वक अपने कर्त्तव्य कर्म का संपादन करने से ही पुरुष अपनी परम प्रिय संसिद्धि को प्राप्त होता है। इसी बात को कह कर श्रीकृष्ण चुप नहीं हो रहे; किन्तु आगे चल कर आपने अर्जुन से यह बात साफ़ तौर पर कह दी कि हमने तुझसे कर्मानुष्ठान की जो इतनी आवश्यकता कही है उसे जो लोग नहीं मानते उन्हें अंत में नष्ट हो जाना पड़ता है। यथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये त्वेतदभ्यसूयंतो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान् विद्धि नष्टानचेतसः॥

अर्थात् हमारे कहे हुए इस कर्मयोग का जो अनुष्ठान नहीं करते और असूया करते हैं उन्हें, उनके प्रकांडज्ञानी होने पर भी, नष्ट ही होना पड़ेगा; इसमें, हे अर्जुन! तू अणुमात्र भी शंका मत कर।

यहाँ तक कर्मानुष्ठान की आवश्यकता के विषय में जो कुछ समासतः लिखा गया है उससे हमारे विज्ञ पाठकों को कर्मयोग अर्थात् निज कर्त्तव्य कर्म के अनुष्ठान की आवश्यकता और उसके महत्त्व का अंशतः तो भी अनुमान हो ही गया होगा। अब आगे जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने इस कर्मयोग के अनुष्ठान की प्राचीन परंपरा का कथन किया है उसका संक्षेप से निरूपण किया जाता है।

अब इधर कई वर्षों से हमारे यहाँ के धार्मिक, पौराणिक, दार्शनिक तथा ऐतिहासिक ग्रंथों का पठन पाठन तथा उनका मनन और अनुशीलन यथावत् न होने के कारण हम लोगों के भाव और हम लोगों की कामनाएँ प्रकृति के इतनी प्रतिकूल हो गई हैं कि हम लोगों से कुछ करते धरते ही नहीं बनता। उद्योग और परिश्रम के विषय में तो लोगों की प्रायः यह धारणा हो गई है कि जिन्हें खाने पीने की सुविधा है उन्हें उद्योग और परिश्रम की आवश्यकता ही नहीं है। सुख और संसिद्धि के विषय में लोगों की बहुधा यही भावना पाई जाती है कि जिसे खाने-पीने तथा पहनने ओढ़ने को यथेष्ट मिला करता है, उसी प्रकार जिसे अपनी विषय-प्रवणता को परितुष्ट करने के लिए मनोभिलषित पदार्थ मिला करते हैं, साथही स्वयं नाममात्र को भी उद्यम और परिश्रम नहीं करना पड़ता वही सच्चा सुखी और पूरी संसिद्धि का भोग करनेवाला माना जाता है। इस समय हमारे देश के लक्ष्मी-कृपा-भाजन लोगों में प्रायः अधिक लोग वही हैं जो अपने संतान को अनुचित लाड़ के मारे ख़राब कर डाला करते हैं। यह सब अविद्या काही कारण है। धन्यवाद है हमारे वर्तमान शासकों को, जिनकी कृपा और सहायता से आज दिन हमें अपनी पुराण-विद्या का अनुशीलन करने का सुधामय सुस्वादु अवसर प्राप्त हुआ है। भरोसा है कि हम भारत-वासी एक बार पुनः अपने को कर्मयोग-प्रिय बनाकर अपने पूर्वजों के सपूत और स्वकर्त्तव्य-प्रवण संतान होने का गौरव प्राप्त कर सकेंगे।

कई बलवती युक्तियों द्वारा और और अनेक सुपुष्ट प्रमाणों द्वारा महामहिम श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्मयोग की श्रेष्ठता और फलाभिसंधि के त्याग-पूर्वक निरंतर उसके अनुष्ठान की आवश्यकता भली भाँति समझा दी तथापि अर्जुन आपके कथन को अर्वाचीन मानकर उसमें अश्रद्धा न करे इस अभिप्राय से आपने इस कर्मयोग की प्राचीनता का वर्णन करना पुनः आरंभ किया। अर्जुन से आपने कहा—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥
एवं परंपरा प्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।

हे अर्जुन, सृष्टि की आदि में, इस नाशरहित फलवाले कर्मयोग का रहस्य मैंने विवस्वान को समझाया था, और उन्होंने अपने पुत्र मनु को इसकी शिक्षा दी थी; मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को इस कर्मयोग का दीक्षित बनाया था। तात्पर्य्य, अत्यन्त प्राचीन काल के राजर्षिगण इसके माहात्म्य को भली भाँति जानते थे और साथही इसका सदनुष्ठान करते थे। इसी लिए तुझसे मैं बारंबार कहता हूँ कि—

कुरु कर्म्मैव तस्मात् त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।

अर्थात् बहुत प्राचीनकाल से बड़े बड़े राजर्षिगण जिस कर्मयोग को करते आये हैं उसी कर्मयोग का अनुष्ठान तू भी कर। इसके सिवा तुझे मैं अभी यह बतलाही चुका हूँ कि—

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

जनकादि राजर्षिगण एकमात्र कर्मयोग के अनुष्ठान से ही संसिद्धि को प्राप्त हो सके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात्पर्य—इन इतिहास-प्रसिद्ध पुरुषों के उदाहरणों द्वारा भी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्मयोग का ही महत्त्व और उसी की आवश्यकता भलीभाँति प्रदर्शित की है। बारंबार अर्जुन से आपने यही आग्रह किया है कि सब प्रकार के संशयों को दूर करके, हे अर्जुन! तू इस कर्मयोग का ही अनुष्ठान कर। (छित्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत!) क्योंकि मैं कर्मयोगी को ही सर्वोपरि श्रेष्ठ मानता हूँ। मेरी सम्मति तो यह है कि—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

कर्मयोगी, कर्मी से ही, (अर्थात् जो केवल फलों की अभिलाषा से ही काम करता है) श्रेष्ठ नहीं है किन्तु वह तपस्वियों और ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ है। अतः हे अर्जुन! तू आदि में कर्मयोगी ही बन। क्योंकि बिना कर्मयोग अर्थात् कर्मस्वरूप उपाय का आश्रय लिये कोई ज्ञानी नहीं हो सकता; और बिना ज्ञान प्राप्त किये किसी को न तो ऐहिक ही सुख और शान्ति मिल सकती है, और न पारमार्थिक ही कर्मयोग को साधते साधते युक्त पुरुष को कुछ काल में स्वयं ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। जैसे किसी दफ़्तर में कुछ दिन तो किसी पद का काम सीखते सीखते सीखनेवाला पुरुष कुछ दिनों में उस पद के सब रहस्य को स्वयं जान जाता है, और उच्च पदस्थ अधिकारियों की कृपा से उस पद का वह अधिकारी स्वयं बना दिया जाता है। ठीक इसी प्रकार परमात्मा की कृपा से कर्मयोगी भी, कर्मयोग की साधना करके संसिद्धि को प्राप्त हो सकता है।

उपसंहार में हम अपने विचार-शील पाठकों से यह प्रार्थना करते हैं कि इस छोटे से लेख में हमने, भगवद्गीता में कहे हुए परमयोगी श्रीकृष्ण के उपदेशों को केवल ऐहिक विषय-प्रवण ही मानने की जो ढिठाई की है तदर्थ आप लोग हमें क्षमा प्रदान करें। हमारे इस लेख से कोई सज्जन यह न मान लेवें कि हम उन उपदेशों को परमार्थ का सहायक नहीं मानते। हम उन उपदेशों को लौकिक और पारमार्थिक दोनों का एकसा सहायक मानते हैं। इस समय उन उपदेशों को लौकिक मानने की आवश्यकता देख कर हमने उनको इस लेख में लौकिक-हितसाधक दिखलाया है। क्योंकि स्वयं गीता में श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा है कि जिसे पेट भर खाने को नहीं मिल सकता, उससे कर्मयोग की साधना नहीं हो सकती। इसके सिवा निम्न लिखित पद्य भी सुप्रसिद्ध ही है।

वासुदेव जरा कष्टं कष्टं निर्द्धनजीवनम्।
पुत्रशोको महाकष्टं कष्टात्कष्टतरं क्षुधा॥

इस पद्य का सारांश यही है कि इस संसार में दरिद्रता और तज्जन्य क्षुधा की पीड़ा यह दोनों नितान्त दुखदायिनी हैं। आज कल भारत में अन्न-कष्ट के कारण लोगों को जिस प्रकार "त्राहि त्राहि" करनी पड़ती है सो सब देश-दशा-विज्ञ लोगों को विदित ही है। ऐसी अवस्था में प्रथम देश की दरिद्रता और उसके अन्न-कष्ट को दूर करने के लिए भारतवासी लोगों को कर्मयोग की प्रशंसा में गोस्वामी तुलसीदासजी की कही हुई नीचे लिखी हुई पंक्तियों को भी निरन्तर हृदयस्थ रखना चाहिए।

सकल पदारथ हैं जग माहीं।
कर्महीन नर पावत नाहीं॥

इन पंक्तियों का अर्थ यह है कि मनुष्य को सब प्रकार के सुख देनेवाले पदार्थ-मात्र इसी संसार में विद्यमान हैं। पर जो लोग उनकी प्राप्ति के लिए कर्मयोग की साधना नहीं करते उन्हें वे नहीं मिलते। इन पंक्तियों का भी ध्वनितार्थ यही है कि श्रेयःकाम पुरुषों को निरन्तर कर्मयोग के अनुष्ठान में ही लगे रहना चाहिए। क्योंकि संसार के जिन कामों को तुच्छातितुच्छ मान कर अपने को परम बुद्धिशाली माननेवाले लोग परित्यक्त कर देते हैं, उन्हीं का सूक्ष्म रीति से अनुसंधान कर, कर्मयोगी लोग उन्हीं से बड़े बड़े लाभ प्राप्त कर लेते हैं। पारलौकिक परम लाभ की अपेक्षा लौकिक लाभ कर्मयोग की सहा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थता से शीघ्र सिद्ध हो सकता है। अतः भारत की दरिद्रता और अन्न-कष्ट को दूर करने के लिए वाणिज्य और कृषि का उत्कर्ष करनेवाले स्वल्पव्यय-संभूत तथा अधिक लाभप्रद साधनों को आविष्कृत करने के लिए प्रत्येक भारतवासी को कर्मयोगी बनना चाहिए।

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री।

वसन्त-वियोग।

अध्याय २

[गताङ्क से आगे]

(३८)

जान पथी का भाव और सुचि कामना,
बोला माली वृद्ध "साधु यह भावना *!
हुई, देख यह धन्य परम सौ जन्म, प्रेरणा प्रेम की,
कथन करेंगे सभी कथा निज अभी कारिणी क्षेम की†

(३९)

"केवल माली-वंश कथन होगा नहीं,
दिखलावेंगे बाग घूम कर सब कहीं।
माली-कुल-इतिहास, सहित उल्लास, समझने के लिए,
उपवन का प्रतिभाग, पथी बर भाग, घूमना चाहिए"॥

(४०)

एक विशिष्ट समाज उपस्थित हो गया,
पथी देख वह साज सुविस्मित हो गया।
कुंजर, मोर, तुरंग, विलक्षण रंग, अनेक प्रकार के,
बने काष्ठ के बड़े नगों से जड़े सभी परदार थे॥

(४१)

थे उन पर आरूढ़ मनोहर रूप के,
माली तेज निधान सुरों के भूप से।
यात्रा का उत्साह, सैर की चाह, चढ़ी थी ध्यान में,
प्रतिबिंबित था भाव और सब चाव वही प्रतियान में॥

(४२)

पवन-यान था एक भवन आकार का,
था जंगम-आगार सभी निस्तार का।
सातरंगसेकलित, ध्वजावलिबलित, ललितअभिरामथा,
"इन्द्र-धनुष" था नाम वेग का धाम बड़े आराम का॥

(४३)

पथी, नवागत सदृश, बाग में और भी,
उत्सुक थे, कुछ सैर करें प्रति ठौर की।
उनका भी अधिकार सुमालाकार बाग में जान के,
लाये नव-पथिपाससमस्त समाससहित हित-मानके॥

(४४)

बढ़ा परस्पर प्रेम पथिक वर वृन्द में,
सबके हुआ विकास हृदय-अरविन्द में।
कौन कहाँ का पला, कहाँ का चला, बाग़ में आगया,
हो नहिं सका विवेक, लगा प्रत्येक जगद्वासी नया॥

(४५)

जब प्रस्थान-मुहूर्त्त नियत शुभ आ गया,
विपुल शंख-रव तुमुल गगन में छा गया।
एक पथिक ने कहा, "शंख का महानाद ये क्यों किया"?
बोला यानाधीश "उत्तराधीश अर्थ सूचन दिया"॥

(४६)

"कौन उत्तराधीश? कौन सा वेष है?
इहाँ से कितनी दूर? कौन वह देश है?
सूचन का क्या काम? महामतिधाम! बात कुछ है नई!
दीजै पूरा भेद, न हो यदि खेद, ज्ञप्ति किस पथ गई?"॥

(४७)

"सज्जन! धीरज धरो, भेद खुल जायँगे,
बात बात का पता आप सब पायँगे।
बाग भ्रमण के साथ, उदीची-नाथ आदि जो देवता,
उनका परिचय, आप्त, करोगे प्राप्त-सहित उन्मोदता॥

(४८)

"शंखध्वनि जो तुमुल हुई इस काल ये,
छेदन के अतिरिक्त विघ्न दुर्जाल के।
सूक्ष्म तत्त्व-आधार, तरंगाकार-वेग ऐसा किया,
यात्रा-विषयविचार-विसूचन सार-रूप से कर दिया॥

---

* ११ मात्रा, १० मात्रा। † ११, ८, १० मात्रा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४९)

"ईश ध्यान के साथ बैठिये यान में",
पाते ही आदेश पथी सब आन में।
"इन्द्र-धनुष"-आसीन, हुए सुख लीन और वह मंडली,
बड़ी छटा से मढ़ी गगन में चढ़ी बढ़ी यानावली॥

(५०)

उन्मुख मालाकार, बाग में जो रहे,
"यात्रा हो यह सफल" वचन मन से कहे।
अपने नियत सुकार्य्य, महाशय आर्य्य यहाँ करने लगे,
सुर विमान का मान वहाँ वे यान वृन्द हरने लगे॥

(५१)

हंसों के समुदाय यानदल देख के,
उत्तर-दिशा-प्रयान चित्त से लेख के।
रोक न सके स्वभाव, सहित अति चाव, चले उड़ के वहीं,
करता निज प्रिय-देश-गमन-उद्देश अधीर किसे नहीं?

(५२)

सघन-गगन-नीलिमा अचल काली घटा,
यान रंगीले इन्द्रचाप-जंगम-छटा।
सहचर हंसावली, बलाकावली, पास ही त्यों लसी,
बरसा अद्भुत रंग, अनूठे अंग सुहाये पावसी॥

(५३)

पथ में मालाकार कथा कहते चले,
रस पीयूष-प्रवाह भूरि बहते चले।
"है निकुंज यह 'चित्र' नामकी, मित्र, जहाँ हम थे अभी,
है 'कामद' उपनाम महा सुखधाम, जनाते हैं सभी॥

(५४)

"इसमें मुनि-समुदाय रहे आरंभ से,
महिमा के आधार धर्म के स्तंभ से।
आश्रम है कुछ दूर, प्रभा भरपूर, महामुनि अत्रि का,
अनसूया सुकलत्र, रचे सर्वत्र चरित्र सुचन्द्रिका॥

(५५)

"आगे है इक कुंज 'अवध' के नाम की,
भावी-जन्म-स्थली रमाधर राम की।
सानुज-सीता राम वहीं तज धाम और तज मान को,
विलसेंगे इस ठाम, अमित गुण ग्राम, भक्त सुखदान को॥

(५६)

"है देा धारा यहाँ परम ओजस्विनी,
'मन्दाकिनी' अमन्द प्रसिद्ध 'पयस्विनी'।
ऋषि-विदुर-भक्त राम-अनुरक्त-हृदय कंजावली
उनसे सिंचित रहे, सुमोहित रहे मोद-भृंगावली"॥

(५७)

वर्णन करते हुए इसी बिधिबाग को,
पहुँचे नूतन कुंज प्रसिद्ध 'प्रयाग' को।
त्रिगुण-रंग की तीन धार-छबिलीन धरातल थी, "अहो"
हुई महध्वनि, "जयतिसुरध्वनि, जयति' त्रिवेणी, जय कहो

(५८)

पथिकों से उस समय न ऊपर रह गया,
गगन-गमन का प्रेम बात में बह गया।
उतरा यान समाज सहित सब साज ताक सुस्थान को,
झुकै यथा खगनाथ पक्षि-गण साथ सरित जलपान को॥

(५९)

तीर्थराज का देश पवित्र सुहावना,
देखा, घूमे पथी, सहित शुचिभावना।
अक्षयवट का यजन, ईश का भजन पूर्ण विधि से किया,
हो फिर यानारूढ़, प्रयोजन गूढ़, मार्ग अपना लिया॥

(असमाप्त)

(पूर्ण)

प्राचीन और अर्वाचीन सङ्गीत।

म लोग ऐसे होंगे जिन्होंने यह सुना या पढ़ा न हो कि पुराने ज़माने के गाने बजाने में कितनी ताक़त थी। सिर्फ़ इन्सानों हीं पर नहीं बल्कि हैवान दरख़्तों और जड़ चीज़ों पर भी उसका असर पड़ता था। चौपाये जादूभरी रागिनियों से मस्त हो जाते थे, चिड़ियाँ उतर उतर गवैयों के कन्धों पर आ बैठती थीं, मछलियाँ पानी की सतह पर आकर ख़ामोश रह जाती थीं, साँप बिच्छू अपना स्वभाव भूल जाते थे, हिरन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी चौकड़ी में रुक कर मुलायम सुरों से मोहित हो जाते थे, जङ्गली हाथी बे हिसाब हरकत खड़े रह जाते थे, शेर और चीते भी अपनी क्रूरता भूल जाते थे, दरख़्त झुक जाते थे, पौदे नाचने लगते थे, रङ्ग रङ्ग के फूल खिलने लगते थे। कहते हैं कि जड़ वस्तुओं पर भी संगीत का असर पड़ता था। चट्टानें मोम की तरह मुलायम मालूम होने लगती थीं; समुद्र की लहरें अपना ज़ोर घटा देती थीं, और ज़बरदस्त आँधियाँ मन्द वायु की तरह चलने लगती थीं। गाने बजाने के ज़ोर से आग पैदा कर सकते थे और बादलों को बुला कर पानी बरसा सकते थे। अप्सराओं और गन्धर्वों का तो ज़िकर ही क्या, बैजू बावरे और मियाँ तान्सेन के बारे में वह रवायतें मशहूर हैं कि मामूली आदमी जिसको गाने बजाने में दख़ल नहीं है कभी उनको सच न मानेगा। कहते हैं कि अकबर बादशाह के ज़माने में मियाँ तानसेन ने एक रात की रागिनी दिन को गाई। सूर्य्य छिप गया और जहाँ तक उनकी आवाज़ जाती थी वहाँ तक अँधेरा फैल गया।

पुराने सङ्गीत में यह ताक़त थी। मगर हाल के लोग कभी इन बातों पर एतबार न करेंगे और या तो इन बातों को अतिशयोक्ति और या इन्हें बिलकुल झूठ समझेंगे। फिर भी इतना तो सब मानेंगे कि पुराने सङ्गीत से इन्सान की रूह तर व ताज़ा हो जाती थी। ख़ुशी या रञ्ज पैदा हो जाता था, ख़ुशी बढ़ जाती थी या कम हो जाती थी, नेकी की तरफ़ रग़बत होती थी या बुरे कामों में हिम्मत बढ़ती थी और कितनीही बीमारियाँ जाती रहती थीं। और यह भी हम यक़ीन कर सकते हैं कि पुराने गाने बजाने का असर एक दरजा तक जानवरों पर भी पड़ता था। अब अगर हम अपने हाल के सङ्गीत और उसकी ताक़त को देखते हैं तो हमें संदेह होता है कि वह उन्नति की दशा में है, या अवनति की। लेकिन जब हम आँखों को बन्द करके और कानों में रुई भर कर इस बारे में ग़ौर करते हैं तब साफ़ मालूम होता है कि इस फ़न ने बड़ी बढ़िया तरक़्क़ी की है! यह सच है कि अब हम नारदजी की वीणा या बैजू बावरे के राग नहीं सुनते जो चिड़ियों को भी अपनी तरफ़ खींच लेते थे, हिरनों को मोहित कर लेते थे और इन्सान के दिल को पूरे तौर से अपनी मरज़ी के मुताबिक़ कर लेते थे लेकिन हम अकसर देखते हैं कि ज्योंही हाल में कोई गवैया अपनी बदकारी की वजह से भर्राई हुई आवाज़ के साथ और चन्द शोर करनेवाले बाजों, मसलन चिल्लानेवाले हारमोनियम और गरजनेवाले तबलों और नगाड़ों, से मिल कर अपनी तुली हुई चीख़ शुरू करता है तो चिड़ियाँ आस पास से भाग जाती हैं और अगर कोई हिरन क़रीब भी होता है तो उसकी रफ़्तार तेज़ हो जाती है। कान रखनेवाले शरीफ़ों को अपनी जगह से उठ जाना पड़ता है और बाज़ वक़्त कुत्ते और कौए अपने उन सुरीले शब्दों से जिनको हम भूँकना और काँव काँव करना कहते हैं धुन बाँध देते हैं। क्या इन सब बातों से यह नहीं ज़ाहिर होता कि हाल के गाने में बनिस्बत पुराने के ज़्यादा असर है? बेशक ज़ाहिर होता है, सिर्फ़ फ़र्क़ इतना है कि पुराने ज़माने के गान की ख़ासियत अपनी तरफ़ खींचती थी और हाल का गाना अपनी तरफ़ से हटाता है। वह शक्ति और थी लेकिन तरक़्क़ी आज कल का संगीत पहले से उससे ज़्यादा कर गया है। हम यह कह चुके हैं कि पुराने गाने में हर क़िस्म की रागिनियाँ थीं और एक ख़ास रागिनी से एक ख़ास जोश उभार सकते थे। कोई राग हर्ष पैदा करता था, कोई विषाद। कुछ लोगों को वीर बनाता था; कुछ को कायर; एक आशा या प्रीति उत्पन्न करता था और दूसरा क्रोध इत्यादि। अब हाल के गाने ने इन सब क़िस्मों को भुला दिया है और एक बे मानी झगड़ा समझ रक्खा है। अब उसका एक और अकेला मक़सद नाजायज़ इश्क़ और बुरे ख़यालात पैदा करना है। यह बेशक तरक़्क़ी है क्योंकि इस तरह पर एकता हासिल हो गई। इस दुनिया में हर इल्म अपनी तरक़्क़ी में बहुत बातों से एक बात की तरफ़ चल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है और जब वह एक बात हासिल हो जायगी तो वह इल्म कमाल को पहुँच जायगा। तो अब अगर हमारे हाल के सङ्गीत ने एकता हासिल कर ली है तो कहना दुरुस्त है कि उसने न सिर्फ़ तरक्की ही हासिल की है बल्कि कमाल को पहुँच गया है। और इस कमाल का नतीजा क्या है? यह कि गाने बजानेवालों की वह समाजें और गोल जिनमें स्त्री और पुरुष बिना किसी तमीज़ के मिले हैं हमारे हिन्दुस्तान में पैदा हो गये हैं और बुराई फैलाने में एक दूसरे से बढ़ कर हो जाना चाहते हैं। पलीबियस (Polybuis) कहता है कि अरकेरिया के ठंडे और सुस्त मुल्क में सङ्गीत लोगों के आचार शुद्ध करने के लिए ज़रूरी था और यह कि और किसी जगह में इतने जुर्म न होते थे जितने कि सिनेटस (Cynetus) में जहाँ कि उससे ग़फ़लत की जाती थी। तो फिर क्या हैरत की बात है कि हमारे हाल के सङ्गीत से मुजरिमों को वजूद में लाने का काम लिया जाता है क्योंकि ऐसा करना तो ग़ैर मुजरिमों की इज़्ज़त और शोहरत क़ायम रखने के लिए निहायत ज़रूरी है।

हमारी किताबों में लिखा है कि अगले फ़िलासफ़र और योगी यानी वे लोग जो अपनी इन्द्रियों को जीत लेते थे और सांसारिक सुख से अलग हो जाते थे सङ्गीत विद्या का अभ्यास करते थे। बरख़िलाफ़ इसके आजकल की संगीत-विद्या प्रायः उन लोगों के हाथ में है जो एक लहमा भी बिना किसी विषय वासना या जोश या गुनाह या पापमय विचारों के नहीं गुज़रने देते। इससे बढ़ कर और क्या इस फ़न की तरक्की की दलील हो सकती है? जिस बात के हासिल करने में बरसों लग जाते थे और जिसमें सिर्फ़ योगी लोग दक्ष होते थे वह एक ज़रा सी देर में हासिल हो जाती है। अधम से अधम उसका करना जानते हैं और ऐसी कामयाबी के साथ कि बेचारे योगी लोगों को स्वप्न में भी वह नज़र न आती और इस क़दर नाम और तारीफ़ हासिल करते हुए कि फ़िलासफ़र लोग उसकी हरगिज़ उम्मीद न कर सकते थे चाहे वे अपना कलेजा तक बाहर निकाल कर रख देते।

अब हम ज़रा बाजों की तरफ़ ध्यान देते हैं क्योंकि उनमें हमको अर्वाचीन संगीत की उन्नति के बहुत ज़ाहिरा निशानात नज़र आते हैं। पुराने लोगों का सबसे उम्दा और आम बाजा वीणा था। अन्दर बिलकुल पोला दो लौकी के तोंबे, एक डान्ड जिन पर परदे और तार बे तरतीबी से लगे हुए बाक़ी और सब बातें ऐसी पेचीदा थीं कि वर्णन नहीं की जा सकतीं। लेकिन सबसे बड़ा ऐब उसमें यह था कि उसके सुर बहुत धीमे होते थे और सिर्फ़ बीसही गज़ के फ़ासले पर उसकी आवाज़ बिलकुल न सुनाई देती थी। तरक्की भला यह कब बर्दाश्त कर सकती थी? उसने यह मंत्र फूँका कि बाजों को ज़्यादा और और ज़्यादा दूर से सुनाई देना चाहिए—इस पर लगातार कोशिशें हुईं। न सिर्फ़ इसी बात की कि अच्छी शकलवाले बाजे मुहैया किये जायँ और पेचीदगियों से परहेज़ किया जाय बल्कि इस बात की भी कि सुरों की आवाज़ बढ़ाई जाय। सितार सारङ्गी इसरार वग़ैरः इन कोशिशों के फल होते लेकिन आजकल के कान के लिए वे भी निहायत कमज़ोर हुए—आजकल का कान हारमोनियम से कम आवाज़ देनेवाले बाजे से तृप्त नहीं हो सकता और हारमोनियम होता भी सन्दूक़ की शकल का है और आसानी से बजाया जा सकता है और तमाम पेचीदगियों और साथ उसके तमाम संगीत की ख़ूबियों से भी बरी है जिनकी आजकल का कान कुछ परवाह भी नहीं करता। पस हारमोनियम चाहे कैसेही उसके स्वर ख़राब हों आजकल लोगों की नज़रों में चढ़ा हुआ है। लेकिन चतुर लोग देख सकते हैं कि बहुत से कान इस बाजे को वह शोर मचाने के नाक़ाबिल समझते हैं जिसकी उन्हें ज़रूरत है और अक्सर कहते हैं कि स्वरों की आवाज़ बलन्द की जाय। पस अब मैं यह नहीं कह सकता कि इसका नतीजा क्या होगा। शायद हारमोनियम बड़े बनाये जायँ या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घड़ियालों और विजय घण्टों को सप्तक के स्वरों में तरतीब देकर एक नया बाजा तयार करें!

अभी तक मैंने सिर्फ़ उन बाजों का ज़िक्र किया है जो वास्तव में संगीत से सम्बन्ध रखते हैं। अब मैं उन बाजों के विषय में भी कुछ कहने की धृष्टता करता हूँ जो हाथ या लकड़ी वग़ैरः से पीटे जाते हैं और ताल ज़ाहिर करते हैं। उन्होंने हर एक बात में तरक्की की है, अपनी शकल में, मज़बूती में, बलन्द आवाज़ी और करख़्तगी में, लेकिन ख़ासकर क़द में। इस क़िस्म का सबसे पुराना बाजा डमरू था जिसे शिवजी सङ्गीत के मूजिद इस्तेमाल करते थे। यह बढ़ा होकर पखावज हुआ, फिर ढोलक, फिर तबला या अगर सिर्फ़ एकही तरफ़ लें तो खंझरी, डफ और नगाड़ा हुआ। अब आजकल के डफरू और नगाड़े इस क़दर बड़े होते हैं कि कई सौ डमरू उसमें से बनालें, और उनकी आवाज़ इस क़दर बलन्द होती है कि शेर की गरज या हाथी की चिंघार इनके सामने क्या चीज़? बल्कि अगर ये बाजे उनके ग़ारों के क़रीब बजाये जायँ तो वे उसे छोड़ कर भाग खड़े हों और अगर आपके पास एक नगाड़ा या ढोल हो और अगर आप उसको एक मज़बूत हथौड़े से पीटने की ताक़त भी रखते हों तो आप बिला ख़तरेशे जङ्गल में इस पार से उस पार जा सकते हैं क्योंकि कोई जानवर सिवा आदमियों के आपके बाजे की आवाज़ के क़रीब आने की हिम्मत न करेगा। लेकिन सबसे आला भड़ भड़ जो हर एक दूसरी आवाज़ को मेट देने और चारों तरफ़ बहरापन पैदा करने की क़ाबिलियत रखती है वह उस वक़्त वजूद में आती है जब उसी क़िस्म के कई पीटनेवाले बाजे मिला कर एक साथ बजाये जाते हैं। उसमें सबसे उमदा सबसे ज़्यादा बलन्द आवाज़ और सबसे ज़्यादा करख़्त ताशा कहलाते हैं जिसमें एक जोड़ी ढोल, एक जोड़ी ताशा और एक जोड़ी झाँझ होते हैं। यह कहा जाता है कि ताशेवाले हमको निहायतही ख़ुशगवार गतों से ख़ुश करते हैं, लेकिन शर्त यह है कि हममें ज़रा सब्र हो, और हमारे कान उनको काफ़ी तौर पर बर्दाश्त करने के लिए मज़बूत हों। पस ताशे को पहले ही सबसे बड़ा रुतबा हासिल था लेकिन अब मेरठवालों ने इसको कमाल को पहुँचा दिया है। मेरे कानों की ख़ुशक़िस्मती से मुझे एक मर्तबा इन मशहूर बाजों के सुनने का हज़ हासिल हो चुका है। पहली मरतबा मैंने उनको क़रीब आध मील के फ़ासले से सुना। मैं उनकी आवाज़ से चौंक पड़ा और चूंकि कोई आबशार (Cataracts) आतशफ़िशाँ का दहाना (Crater) नज़दीक न था लिहाज़ा मेरा पहला ख़याल यह हुआ कि किसी आतशबाज़ी की दूकान में आग लग गई है और तमाम लोग ज़ोर ज़ोर से चिल्ला रहे हैं। यह ख़याल और भी मज़बूत हो गया जब मैंने गली में तमाम आदमियों को उसी तरफ़ दौड़े जाते हुए देखा जिधर से आवाज़ आ रही थी लेकिन जैसे जैसे वह भारी लहरें गुज़रते गये आवाज़ पहचान पड़ती जाती थी क्योंकि वह मेरीही तरफ़ आरही थी। आख़िरकार मुझे यह मालूम हुआ कि आवाज़ एक नये ढंग के ताशे की आती है। मैं अपने ऊपर हँसा लेकिन मुझे उसका बड़ा अफ़सोस और पछतावा हुआ कि मैंने मेरठ के ताशे ऐसी सञ्जीदा बात की निस्बत अशकुन का ख़याल किया और उसी वक़्त उस गुनाह से पाक होने के लिए मैंने दिल में अहद कर लिया कि इस ताशे की कुछ तारीफ़ ज़रूर लिखूँगा जिस अहद को मैं अब पूरा करता हूँ। मैं फिर कहता हूँ कि मेरठवालों ने ताशे को कमाल के एक बड़े भारी दरजे तक पहुँचाया है और मेरी यह दुआ है कि उसका भयानक भड़ भड़ और हाहाकार दिन ब दिन बढ़ता जाय। अब आख़िर में मेरी यह उम्मेद है कि बलन्द आवाज़ी और करख़्तगी में जो तरक्की हो रही है वह बन्द न होगी यहाँ तक कि हम बन्दूक़ों और तोपों, चलती हुई डाक-गाड़ियों और उनके सुरीले टक्करों (Collisions) ग़ुस्सावर समुद्रों और सख़्त तूफ़ानों अमेरीका के न्यागारा और जापान के भूडोलों और ज्वालामुखियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक़ल अपने ढेलों से पूरे तैार से करेंगे। और साथ ही इसके लकड़ी के कान भी बनावेंगे ताकि उनके मुक़ाबिले में कुछ भिड़ सकें।

नानकप्रसाद।

स्वाधीनता की समालोचना।

हिन्दी-साहित्य-संसार की दशा बड़ी ही विचित्र और आश्चर्य-जनक है। इस अद्भुत प्रदेश में "अखिल शान्ति" का पूर्ण-रूप से साम्राज्य है। चाहे जैसी घटना घटित हो, परन्तु इस साहित्य के अनन्य भक्त अपने मौन-व्रत को पालन करने में भीष्म की सी दृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं। कुछ सम्पादक तो अपने प्रण के पालन में इतनी दूर तक भी जाने को कटिबद्ध रहते हैं कि यदि कोई सज्जन किसी पुस्तक की समालोचना लिखने का कष्ट भी उठाने की कृपा करे तो वे उसे न छाप कर, समालोचक की धृष्टता पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करते हैं। इन महा-पुरुषों का विचार है कि किसी को पीछे हटाने तथा आगे बढ़ाने का इन्हें कोई अधिकार नहीं। दूसरे, मुफ़्त में कलह, विवाद पैदा करने से फ़ायदा क्या! अतएव इस प्रदेश के वासी अपनी राह आते हैं, और अपनी राह जाते हैं, उनको अपने काम से काम। दूसरों के झगड़ों में पड़ कर निष्प्रयोजन क्यों अपने ऊपर आपत्ति बुलावें।

ऐसी दशा शोचनीय अवश्य है। तारीख़ २५।५।०७ हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक चिर स्मरणीय दिन है। क्योंकि इस दिन एक अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण और प्रभावशाली ग्रन्थ का प्रादुर्भाव हिन्दी में हुआ था। इसी दिन नागपुर की हिन्दी-ग्रन्थ-प्रकाशक मंडली ने "हिन्दी-ग्रन्थमाला का पहला पुष्प—मिल की प्रसिद्ध स्वाधीनता (Liberty) नामक पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद हिन्दी-रसिकों को "सादर सम-र्पण" किया था। शोक के साथ लिखना पड़ता है कि पुस्तक के जन्म-समय से अद्यावधि हिन्दी के लेखकों और सम्पादकों में से किसी ने भी इसके स्वागत में एक पंक्ति भी नहीं लिखी! यह बड़े आश्चर्य्य और लज्जा की बात है।

मिल की पुस्तक अँगरेज़ी भाषा में लिखी गई है और सरस्वती-सम्पादक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीजी ने इसका हिन्दी में अनुवाद किया है। द्विवेदीजी ने इस पुस्तक का अनुवाद कर हिन्दी-साहित्य का और देश का जो उपकार किया है वह बहुत बड़ा है और यह उपकार हमारे हृदयों में चिर-स्थायी रहेगा। यदि द्विवेदीजी ने इस "स्वाधीनता" के अनुवाद को छोड़ कर और कोई साहित्य-सेवा न की होती, तो भी उन्होंने बड़ा भारी काम किया होता; क्योंकि हिन्दी-संसार में ऐसी पुस्तक का प्रकाशित होना एक बड़े मार्के की बात है। इसके पूर्व कि ऐसे गहन और क्लिष्ट ग्रन्थ लिखे जायँ, हिन्दी-साहित्य की उन्नति और हिन्दी-पढ़नेवालों की विचार-शक्ति और रुचि में बहुत ही ज़्यादा परिवर्तन होने की आवश्यकता है। स्वाधीनता का प्रकाशन हिन्दी-साहित्य की वृद्धि का एक बड़ा चिह्न है। हर एक हिन्दी-हितैषी को प्रफुल्लित होना चाहिए।

जॉन स्टूअर्ट मिल इँगलिस्तान के एक बड़े भारी तत्त्ववेत्ता हुए हैं। इनकी पुस्तकों का प्रभाव इनके देश-वासियों पर बहुत बड़ा पड़ा था, जिसके कारण इँगलिस्तान में अनेक उपयोगी सामाजिक और राजनैतिक सुधार किये गये थे। मिल साहब का प्रभाव, उनके समय में, तत्कालीन अन्यान्य विद्वानों के प्रभाव से कहीं ज़्यादा था। मिल साहब एक बड़े प्रौढ़, सत्य-प्रिय और सद्भावी तत्त्वज्ञ थे। आपने बड़े बड़े गहन विषयों पर पुस्तकें लिखी हैं। यद्यपि आपके बहुत से विचारों को आज कल लोग ठीक नहीं मानते और जो आपने लिखा उसमें अब बहुत कुछ अधूरा और दूषित प्रतीत होता है, तथापि इसमें कोई संदेह नहीं कि मिल साहब का आसन इँगलैंड के सरस्वती-मन्दिर में बहुत ही उच्च और प्रतिष्ठित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिल ने बहुत सी पुस्तकें अनेक विषयों पर लिखी हैं। इन "ग्रन्थों में 'स्वाधीनता', "उपयोगितातत्त्व", "न्यायशास्त्र" और "स्त्रियों की पराधीनता"—इन चार ग्रन्थों का बड़ा मान है।" जिनको मिल साहब का सम्पत्ति-शास्त्र पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उनके विचार में यह पुस्तक भी मिल-कृत ग्रन्थों में अपूर्व है। परन्तु इन पुस्तकों में से मिल की "स्वाधीनता" बहुत ही प्रबल है। योग्य समालोचकों का विचार है कि मिल साहब की समस्त पुस्तकों में यह ग्रन्थ अद्वितीय है। इसकी भाषा बड़ीही ओजस्विनी है, पर साथ ही साथ रसमयी और सुस्पष्ट है। विचार-शृंखला और सिद्धान्त-प्रतिपादन की शैली अतिही सुन्दर और अद्भुत है। पुस्तक को यदि एक दफ़ा हाथ में उठा लीजिए तो फिर बग़ैर अन्त तक पहुँचे, उसे छोड़ने को चित्त नहीं चाहता। मिल साहब ने अपने सिद्धान्तों को ऐसे उत्कट प्रमाणों और उदाहरणों से प्रतिपादित किया है कि उन्हें स्वीकार ही करना पड़ता है। पुस्तक, वास्तव में बड़ेही महत्त्व की है, और इसकी जितनी प्रशंसा की जाय वह सब सर्वथा उचित है। इसे पढ़ कर अगणित आदमियों के विचारों में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया, उनके जीवन ने एक महान् पलटा खाया। प्रसिद्ध चार्ल्स किङ्ग्स्ले (Charles Kingsley) ने इस पुस्तक को जब पढ़ना प्रारम्भ किया, तो ऐसे तल्लीन हुए कि समाप्त करके ही उठे; वह कहते हैं "It made me a changed man" अर्थात् "पुस्तक के अध्ययन ने मुझे एक परिवर्तित मनुष्य बना दिया"। पुस्तक का प्रभाव उन पर इतना गहरा पड़ा कि वह उसी समय से एक दूसरे मनुष्य हो गये। इस कथन में यह कोई अतिशयोक्ति नहीं कि जिस किसी ने मिल की 'स्वाधीनता' का ध्यानपूर्वक पाठ किया है उसकी भी यही दशा हुई है। प्रत्येक पाठक की प्रायः वही दशा होती है जो कि किङ्ग्स्ले महाशय की हुई थी।

ऐसी पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद करना एक बहुत ही बड़ा काम है। इस कार्य्य को सफलता के साथ करने के लिए हिन्दी-साहित्य-संसार में द्विवेदीजी ही ऐसे विद्वान् का काम था। इतने गहन और क्लिष्ट ग्रन्थ के अनुवाद करने में, मिल के भाव को ठीक ठीक सरल, शुद्ध और साथ ही साथ, सुपाठ्य भाषा में प्रकट करना कोई आसान बात नहीं। जिस ख़ूबी और योग्यता से द्विवेदीजी ने ऐसे दुस्तर कार्य्य को किया है उसके लिए हम सब आपके बड़ेही कृतज्ञ हैं। द्विवेदीजी में नवीन शब्द-रचना की शक्ति असाधारण है; लेखन-चातुरी अपूर्व और भाषा-पाण्डित्य और संस्कृत में प्रवीणता असामान्य है। इसलिए कोई आश्चर्य्य नहीं कि मिल की पुस्तक के अनुवाद करने में द्विवेदीजी को इतनी कामयाबी हुई। जब हम कार्य्य की असाधारण कठिनता की ओर ध्यान देते हैं तब हमको विशेष हर्ष होता है कि अच्छा हुआ श्रीमान् ने ही इस कार्य्य-भार को अपने ऊपर लिया। क्योंकि, जैसा द्विवेदीजी अपनी प्रस्तावना में कहते हैं, "पुस्तक की भाषा बहुत क्लिष्ट है। कोई कोई वाक्य प्रायः एक एक पृष्ठ में समाप्त हुआ है। विषय भी पुस्तक का क्लिष्ट है। इससे इस अनुवाद में हमको बहुत कठिनता का सामना करना पड़ा है।" जिन्होंने मूल ग्रन्थ को पढ़ा है वे ऊपर के वाक्यों की सत्यता का अक्षरशः समर्थन करेंगे। हमारे एक मित्र को एम० ए० की परीक्षा के लिए मिल की "लिबर्टी (Liberty) स्वाधीनता पढ़ना पड़ी थी। आप बहुत ही तीव्र-बुद्धि हैं, परन्तु पाँच छः दफ़ा ध्यान-पूर्वक पढ़ जाने पर भी आपको अच्छी तरह से पुस्तक का बोध नहीं हुआ। पढ़ते समय तो उनको ऐसा मालूम होता था कि वे सब पुस्तक को समझते जाते हैं पर पुस्तक को बन्द करते ही वह फिर सब कुछ भूल जाते थे, और भूल जाने से ज़्यादा बुरी बात यह थी कि उनको अजीब भ्रम होने लगता था। इससे पाठकों को पता लग सकता है कि पुस्तक के अनुवाद में द्विवेदीजी को कितनी घोर "कठिनता का सामना करना पड़ा है," और इस ग्रन्थ को रच कर द्विवेदीजी ने हिन्दी का कितना भारी उपकार किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवाद के विषय में हम इतना ही कहना काफ़ी समझते हैं कि अनुवाद बहुत ही सरल और सुबोध है। द्विवेदीजी ने, अनुवाद करने में, जिस आदर्श का अनुसरण किया है वह, हिन्दी-साहित्य की वर्त्तमान अवस्था में, बहुत ही ठीक प्रतीत होता है। आपका सिद्धान्त है कि "इस समय हिन्दी में जितनी पुस्तकें लिखी जायँ ख़ूब सरल भाषा में लिखी जायँ.....(क्योंकि) पुस्तक लिखने का मतलब सिर्फ़ यह है कि उसमें जो कुछ लिखा गया है उसे लोग समझ सकें। यदि वह समझ में न आया, अथवा क्लिष्टता के कारण उसे किसी ने न पढ़ा, तो लेखक की मेहनत बरबाद जाती है।" इसीलिए द्विवेदीजी ने "इस पुस्तक में हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत इत्यादि के शब्द.....प्रयोग किये हैं।" "मतलब को ठीक ठीक समझाने के लिए कहीं कहीं पर हमने एक ही बात को दो दो तीन तीन तरह से लिखा है। कहीं कहीं पर एक ही अर्थ के बोधक अनेक शब्द हमने रक्खे हैं। कहीं मूल के भाव को हमने बढ़ा दिया है और कहीं पर कम कर दिया है।" यदि हमको कोई दोष इस अनुवाद में दिखाई पड़ता है—और वास्तव में यह दोष नहीं है—तो दोष यह है कि द्विवेदीजी ने पुस्तक को सरल और बोध-गम्य बनाने में भाषा-पद्धति का विचार कुछ भी नहीं किया। उदाहरण देने की कोई आवश्यकता नहीं। पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ में यह दोष, पढ़ते समय, खटकता है। यही नहीं, परन्तु पुस्तक को सरल बनाने के प्रयत्न ने भाषा को बहुतही बिगाड़ दिया है। इस लिहाज़ से तो द्विवेदीजी की "शिक्षा" कहीं ज़्यादा अच्छी है। हमें आशा है कि दूसरे संस्करण में इस दोष को यथा सम्भव दूर करने का प्रयत्न द्विवेदीजी करेंगे। द्विवेदीजी ख़ुद ही अपनी प्रस्तवना में लिखते हैं कि "यदि पुस्तक उपयोगी समझी गई, और यदि लोगों ने इसे पढ़ने की कृपा की,..... तो इसकी भाषा ठीक करने में देर न लगेगी।

मूल पुस्तक पाँच अध्यायों में विभक्त है। द्विवेदीजी ने एक बहुत ही विस्तृत भूमिका भी लिखी है जिसमें उन्होंने जान स्टूअर्ट मिल के जीवन की मुख्य मुख्य घटनाओं का बहुत रोचक ढँग से वर्णन किया है। पुस्तक के महत्त्व और पुस्तक के अनुवाद करने की आवश्यकता पर विचार किया है। इस पुस्तक में दो चित्र भी दिये गये हैं। एक तो है श्रीमान् कुमार कमलानन्दसिंह का चित्र और दूसरा है श्रीमान् पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजी का। क्याही अच्छा होता यदि साथही साथ जान स्टूअर्ट मिल का चित्र भी दे दिया जाता। जब दूसरा संस्करण निकाला जाय, तब, आशा है, कि इस बात का अवश्यमेव ध्यान रक्खा जायगा।

हम पहले कह आये हैं कि पुस्तक बहुतही महत्त्व-पूर्ण है। जिन सिद्धान्तों का विवेचन इसमें किया गया है, उनके प्रचार करने की बड़ी भारी ज़रूरत है। जिन्होंने पुस्तक को पढ़ा है उनका विचार है कि इसके सिद्धान्तों को सोने के अक्षरों में लिखवा कर प्रत्येक मनुष्य को अपने पास रखना चाहिए। क्योंकि इस देश में अन्ध-परम्परा का ही एक मात्र सम्मान और आदर है। विचार की स्वतंत्रता और व्यवहार की स्वाधीनता का हमारा समाज सख़्त विरोधी है। प्रचलित रीतियों के जो दास हैं, समाज में उनकी प्रशंसा है। परन्तु जो इस दासत्व को नहीं स्वीकार करते और जो सोच विचार कर काम करते हैं, उनके भाग्य में समाज की गालियाँ खानाही बदा है। समाज चाहता है कि व्यक्ति सिर्फ़ लकीर का फ़क़ीर बना रहे, अपनी बुद्धि और विचार-शक्ति सत्य की खोज और सत्य के पालन में, कदापि काम में न लावे। अपनी आँखों पर पट्टी बँधवाकर, समाज के हाथ को पकड़ व्यक्ति जीवन-यात्रा में, समाज के प्रदर्शित पथ का ही पथ-गामी बने। व्यक्ति के जीवन पर समाज का ऐसा अनि-यंत्रित राज्य होना व्यक्ति और समाज दोनों ही के लिए अत्यन्त ही हानिकारक है। क्योंकि समाज व्यक्तियों के समूह का नाम है और समाज की उन्नति व्यक्ति-विशेष की उन्नति पर निर्भर है। व्यक्ति-विशेष की उन्नति के दो ही मार्ग हैं, एक तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति की स्वतंत्रता और दूसरे स्थिति-वैचित्र्य (Variety of Situations or plurality of paths). उन्नति और सुधार का एक मात्र साधन व्यक्ति की स्वाधीनता है। रूढ़ि की सत्ता, रीति भाँति की प्रबलता, सारी उन्नति को रोकती है। इसका उदाहरण हमाराही देश है। यहाँ पर जब तक आर्य्य लोग रूढ़ि के सामने घुटना टेकने से इनकार करते रहे, जब तक वे लकीर के फ़क़ीर नहीं हुए, जब तक स्वाधीनता के साथ धर्म्म और सत्य का पालन करते रहे, जब तक समाज की अप्रतिहतसत्ता-रूपी शृंखला में व्यक्ति जकड़ नहीं गया, तब तक हमारा देश विद्या और कलाओं में, ज्ञान और विज्ञान में, समत्ति और समृद्धि में, ऐश्वर्य्य और वैभव में संसार के समस्त देशों में अग्रगण्य था, संसार के देशों का, धर्म्म और ज्ञान में पूज्य गुरु था। पर आज हम ख़ुद अन्धकार में पड़े हुए प्रकाश और ज्योति के लिए दूसरों के मुहताज हैं। इसका कारण केवल यह है कि हमारे देश में समाज सब कुछ है और व्यक्ति कुछ नहीं; व्यक्ति के सम्पूर्ण विचारों पर और उसके व्यवहारों पर समाज का पूरा आधिपत्य है, समाज व्यक्ति विशेष के जीवन का पूर्ण स्वामी है।

पर यदि व्यक्ति को पूर्ण रूप से स्वाधीनता हो, उसको हर एक काम के करने में पूरी आज़ादी हो, और यदि वह बे-रोक-टोक जो चाहे सो कर सके, तो भी बड़ा उपद्रव होना संम्भव है। बड़ी भारी गड़बड़ी समाज में मच जायगी। क्योंकि, जैसा मिल अपनी स्वाधीनता में एक स्थान पर लिखते हैं, दूसरों की काररवाइयों को एक मुनासिब हद के भीतर रखने, अर्थात् उचित रीति पर उनका प्रतिबन्ध करने, पर ही हर आदमी का सांसारिक सुख अवलंबित है; अन्यथा संसार में न तो मनुष्य की ज़िन्दगी का, न उसकी आज़ादी का और न उसके माल व असबाब का कोई ठीक ठिकाना रहेगा। यदि मनुष्य के ऊपर कोई बन्धन न रहे, तो समाज का स्थिर रहनाही असम्भव हो जायगा। तो फिर ऐसी अवस्था में करना क्या चाहिए? न तो व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता ही होनी चाहिए और न व्यक्ति को समाज का पराधीन ही रहना उचित है। मनुष्यों की स्वाधीनता और समाज के बन्धन की हदबन्दी किस तरह करनी चाहिए? "उस हद को कहाँ पर नियत करना चाहिए?" "व्यक्ति-विशेष, अर्थात् अलग अलग हर आदमी के लिए समाज के द्वारा कब, कहाँ तक और किस प्रकार का बन्धन बनाया जाना उचित होगा"? यह प्रश्न बड़ेही महत्त्व का है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो दुनिया भर के सब प्रश्न इस प्रश्न के अन्तर्गत हैं। इस प्रश्न के ठीक ठीक उत्तर देने परही समाज और संसार दोनों ही का हित होगा। मिल साहब का कहना सर्वथा सत्य है "कि कुछ दिनों में यही, अर्थात् सामाजिक स्वाधीनता का विषय सबसे बढ़कर समझा जायगा।"

मिल साहब ने अपने 'स्वाधीनता' नामक ग्रन्थ में इस परम आवश्यक और महान् प्रश्न के उत्तर देने का प्रयत्न किया है। और इसमें कोई संशय नहीं कि जो कुछ उत्तर उन्होंने दिया है, वह अधिकांश सत्य है। और जो सिद्धान्त उन्होंने समाज की सत्ता की सीमा के नियत करने के लिए बताये हैं, वे भी प्रायः ठीक ही हैं।

मिल के विचार में इस सीमा के स्थिर करने में एक बात का ध्यान रखना चाहिए। वह बात यह है—"समाज के किसी आदमी के काम-काज की स्वाधीनता में, एक अथवा बहुत आदमियों के रूप में, मनुष्य-मात्र की दस्तन्दाज़ी का सिर्फ़ एकही उद्देश्य है। वह उद्देश्य, आशय या मतलब आत्म-रक्षा—अपनी हिफ़ाज़त है। जितने सभ्य, अर्थात् सुधरे हुए समाज हैं, उनमें से किसी आदमी के ऊपर, उसकी इच्छा के विरुद्ध, सिर्फ़ इस मतलब से सत्ता या शक्ति, मुनासिब तौर पर काम में लाई जा सकती है कि उस आदमी से दूसरों को नुक़सान या तकलीफ़ न पहुँचे। स्वयं उस आदमी के शरीर या मन की रक्षा का उद्देश कोई चीज़ नहीं।.....उसके व्यवहार या चाल चलन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस हिस्से से दूसरों का सम्बन्ध है, सिर्फ़ उसी का वह ज़िम्मेदार है; सिर्फ़ उसी के लिए वह उत्तरदाता है। जिस हिस्से से सिर्फ़ उसी का सम्बन्ध है उसमें उसकी स्वाधीनता अखण्डनीय है, वह छीनी नहीं जा सकती। अपना, अपने शरीर का, अपने मन का हर आदमी मालिक है, हर आदमी बादशाह है।" जहाँ पर दूसरे के हित को हानि पहुँचने की सम्भावना है, वहाँ पर समाज का व्यक्ति की व्यवहार-स्वाधीनता में हस्तक्षेप करना मुनासिब है। समाज को व्यक्ति से कुछ ऐसे भी काम बलपूर्वक कराने का हक़ है," जिनसे समाज के हित होने की विशेष सम्भावना रहती है "उदाहरणार्थ दूसरे के हित साधने के लिए कोई भी आदमी न्यायालय में साक्षी देने को मजबूर किया जा सकता है। तीसरे बहुत से ऐसे मौक़े आ जाते हैं जहाँ पर कोई आदमी अपने किसी काम से नहीं, परन्तु चुपचाप बैठे रहने से (by his inaction) दूसरों का अनहित करता है, वहाँ पर वह आदमी समाज के सामने अपराधी है, समाज के सम्मुख वह अपने चुपचाप बैठे रहने के लिए ज़िम्मेदार है। ऐसी अवस्थाओं की उपस्थिति में व्यक्ति अवश्यमेव समाज का उत्तरदाता है; और समाज उसको उचित दंड दे सकता है। "जिन बातों का सम्बन्ध, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से, सिर्फ़ दूसरों से ही है" उनके करने की ज़िम्मेदारी करनेवाले पर ज़रूर है। परन्तु इन बातों को छोड़ कर कुछ बातें ऐसी भी हैं जिनके करने से सिवा करने वाले के और किसी दूसरे को प्रत्यक्ष रीति से फ़ायदा या नुक़सान नहीं पहुँचता; यदि पहुँचता भी है तो अप्रत्यक्ष रीति से। ऐसी बातों के करने में हर आदमी को स्वाधीनता देना मुनासिब है। इस स्वाधीनता में तीन बातें शामिल हैं—(१) सदसद्विवेक और विचार की स्वाधीनता (Liberty of conscience); इसके साथही साथ उसको "अपनी राय ज़ाहिर करने के लिए स्वाधीनता देना उतनेही महत्त्व की बात है, जितने महत्त्व की बात उसे उस राय को मन में क़ायम करने के लिए स्वाधीनता देना है" (२) रुचि और उद्योग की स्वाधीनता (liberty of tastes and pursuits); और (३) हर आदमी को और दूसरे आदमियों के साथ मिल कर उन बातों के करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए, जिन बातों से दूसरों को किसी तरह से भी नुक़सान नहीं पहुँचता। हर एक आदमी को इन तीनों बातों में स्वाधीनता मिलनी चाहिए। परन्तु इसके दो अपवाद भी हैं (१) नाबालिगों को ऐसी स्वाधीनता न देनी चाहिए क्योंकि वे इस स्वतंत्रता का उचित उपयोग कदापि नहीं कर सकते और (२) न इस स्वाधीनता का पात्र वह समाज है जो इतना परिणत नहीं हुआ कि उसके व्यक्ति-विशेष "एक दूसरे की बराबरी समझ कर, बिना रोक टोक के, किसी भी विषय पर विचार कर अपनी तरक्की करने के लायक़ हों"।

मिल ने 'स्वाधीनता' के पहले अध्याय में इस सिद्धान्त का वर्णन किया है। आगेवाले अध्यायों में इस सिद्धान्त के प्रतिपादन का प्रयत्न किया है। सुविधा के कारण द्वितीय अध्याय में मिल इस सिद्धान्त के एक अंश का केवल विचार-सम्बन्धिनी स्वाधीनता का—निरूपण करते हैं। तीसरे और चौथे अध्यायों में इस बात का विचार किया गया है कि व्यक्ति को ऐसे कामों के करने की स्वाधीनता होना परमावश्यक है जिनका सम्बन्ध केवल उसी व्यक्ति-विशेष के हित से है; जिनके करने से दूसरों को, प्रत्यक्ष रीति में, न कुछ फ़ायदा और न कुछ नुक़सान ही होता है। और पाँचवें अध्याय में इस सिद्धान्त के प्रयोग उदाहरण देकर समझाये गये हैं।

"द्वितीय अध्याय बड़ेही महत्त्व का है"। मिल ने जो कुछ भी लिखा है, उस सबमें यह अध्याय सर्वोत्तम है। इसकी प्रमाण-शृंखला सर्वोत्कृष्ट है। इस अध्याय की भाषा ओजस्विनी, सरल, सरस और प्रभावशालिनी है। मिल ने ऐसी सुन्दर भाषा और कहीं पर नहीं लिखी; यहीं पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने अपनी लेखन-शक्ति को पराकाष्ठा को पहुँचा दिया है उसने हद कर दी। और जो उदाहरण अपने प्रमाणों की पुष्टि में मिल ने दिये हैं वे बहुत ही युक्त हैं और बहुत अंश तक मिल के प्रमाणों की कमज़ोरी को छिपा लेते हैं।

इस अध्याय में मिल ने विचार-सम्बन्धिनी स्वाधीनता का विचार किया है। आपकी राय में विचार के प्रकाश करने में प्रत्येक मनुष्य को अप्रतिहत स्वतंत्रता रहनी चाहिए। हर एक आदमी बिना रोक टोक अपने ख़यालात हर एक मज़मून पर ज़ाहिर कर सके। इसी में उस आदमी का और समाज का भला है। और जहाँ पर समाज व्यक्ति के विचार प्रकट करने की स्वाधीनता पर प्रतिबन्ध लगाता है, वहाँ पर किसी प्रकार की भी उन्नति नहीं हो सकती; और वह समाज परिवर्तित अवस्था में शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाता है। क्योंकि परिवर्तित दशा में नवीन आवश्यकताएं उत्पन्न होती हैं, नई शंकाओं का प्रादुर्भाव होता है। प्रचलित रीति-भाँति उन ज़रूरतों को पूरा करने में असमर्थ होती हैं; पुराने विचार नये प्रश्नों का समाधान नहीं कर सकते। ऐसी दशा में यदि समाज अपने को अपनी परिवर्तित अवस्था के अनुकूल (adjust) बना नहीं सकता, तो वह समाज, प्रकृति के अटल नियम के अनुसार, संसार में जीवित रहने के अयोग्य होने के कारण, जल्दी या देर में, मर जाता है। क्योंकि (Life means simply response to environments) और उन्नति, चाहे धार्मिक, हो चाहे सामाजिक या आर्थिक विचारों के परिवर्त्तन पर ही निर्भर है। परन्तु विचार में तबदीली पैदा करने के लिए यह आवश्यक है कि विचारों के प्रकट करने में पूरी आज़ादी हर एक को हो इसी लिए मिल ने विचार-सम्बन्धिनी स्वाधीनता पर इतना ज़ोर दिया है। जिन प्रमाणों का प्रयोग मिल ने इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में किया है उन्हीं का क़रीब तीन सौ वर्ष पहले परम प्रसिद्ध मिल्टन (Milton) ने प्रेस की स्वाधीनता की ज़रूरत साबित करने में प्रयोग किया था। मिल ने उन्हीं दलीलों से, विचार-सम्बन्धिनी स्वाधीनता की आवश्यकता बताने में, काम लिया है। मिल ने विचार-सम्बन्धिनी स्वाधीनता की पुष्टि में चार प्रमाण दिये हैं:—

"पहला—यदि किसी मत का प्रकाशित किया जाना रोक दिया जाय तो बहुत हानि होने की सम्भावना है। क्योंकि यह कोई नहीं कह सकता कि जिस मत का प्रकाशन रोका गया है वह हर्गिज़ सच नहीं। सम्भव है वह सच हो। दृढ़ता के साथ यह कहना कि वह सच नहीं है मानो सर्वज्ञ होने का दावा करना है (To deny its truth is to assume infallibility.)।

दूसरा—जो बात ज़ाहिर की जाने से रोकी गई है वह यदि भ्रान्ति-मूलक भी हो तो भी उसमें थोड़ी बहुत सत्यता का होना सम्भव है। बहुधा उसमें सत्यता का थोड़ा बहुत अंश होता भी है। जितनी प्रचलित बातें हैं, जितने प्रचलित मत हैं, जितने रीति-रवाज हैं, उनमें सत्यता ही सत्यता है ऐसा बहुत कम देखा जाता है। वे पूरे तौर से सही नहीं हुआ करते अथवा यों कहिए कि सत्य का सर्वांश उनमें कभी नहीं रहता। अतः विरोधी मतों की नोक झोक होने से ही सत्य के अंश के मिलने की आशा रहती है।

"तीसरा—मान लीजिए कि रूढ़ मत, अर्थात् प्रचलित राय या बात, ठीक है। यही नहीं यह भी मान लीजिए कि वह सब तरह से सच है; उसका सर्वांश सत्य है, उसका कोई अंश भ्रान्तिमूलक नहीं, तो भी यदि वह मत प्रकट न किया जायगा और उसके विपक्षी, दिल खोल कर ख़ूब उत्साह के साथ उसका विरोध न करेंगे तो वह मत एक दुराग्रह की तरह एक हठवाद की तरह, लोगों के मन में लीन रह जायगा। उसकी उपयोगिता, उसकी युक्तियुक्तता, उसकी सत्यता का कभी अनुभव न होगा। वह बात कभी उनकी समझ में अच्छी तरह न आवेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"चौथा—यही नहीं, किन्तु वाद-विवाद और विवेचना न होने से किसी भी मत, राय या बात के असली अर्थ के कमज़ोर हो जाने या उसके बिलकुल ही भूल जाने का डर रहता है; और आदमियों के आचार, विचार, और व्यवहार पर उसका जो परिणाम होना चाहिए वह धीरे धीरे जाता रहता है। इस दशा में उस मत की जो मोटी मोटी बातें होती हैं—जो विशेष विशेष वचन होते हैं—सिर्फ़ वही याद रह जाते हैं। उनसे कोई फ़ायदा नहीं होता; उनकी हितकारिणी शक्ति जाती रहती है; परिणाम में अच्छा फल देने की उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है। उस मत की नियमावली का—उसके वचनों का—मन के ऊपर सिर्फ़ बोझमात्र लदा रह जाता है। तजरिबा और समझ के बल से सच्चे और मनोनीति विश्वास के जमने में बहुत अधिक बाधा आती है।"

जो दलीलें मिल ने विचार-सम्बन्धिनी स्वाधीनता के सिद्ध करने में दी हैं वे स्वयं-सिद्ध प्रतीत होती हैं। जानमार्ले (John Morley) और लैस्ली स्टीफ़ैन (Leslie Stephen) के विचार में ये सर्वथा अखंडनीय हैं, यद्यपि सरफिट्ज़ जेम्स स्टीफ़ैन (Sir Fitz James Stephen) और (Fredrick Harison) फ़्रैड्रिक हैरिसन के इस कथन में बहुत ज़्यादा सत्यता है कि मिल के प्रमाण और उदाहरण (illustrations) ज़रूरत से ज़्यादा अनन्य सम्बद्ध (too absolute) हैं। परन्तु समाज में, स्वाधीनता के होते हुए भी, व्यवहार की स्वाधीनता के बिना उन्नति का होना बहुत ही कठिन है। हमारे देश में विचार की स्वाधीनता सदैव रही है। ऐसी गिरी हुई अवस्था में भी हर एक मनुष्य को स्वाधीनता है कि चाहे वह नास्तिक हो या आस्तिक रहे; चाहे ईश्वर में विश्वास करे, या न करे, मूर्ति को पूजे या न पूजे परन्तु जब तक उसका आचरण "ठीक" है, जब तक "खाने पीने" में और "उठने बैठने" में वह समाज के नियमों का उल्लंघन नहीं करता, जब तक अपने व्यवहार में वह समाज का पराधीन बना हुआ है; तब तक उसको समाज की अप्रसन्नता का कोई भी भय नहीं। पर, जहाँ थोड़ी सी स्वतंत्रता वह अपने व्यवहार में प्रकट करने लगता है, समाज में फिर उसका रहना असम्भव हो जाता है। उसी समय से समाज उसका शत्रु हो जाता है। इसी लिए हमारे देश की अवस्था ऐसी पतित है क्योंकि समाज की सत्ता व्यक्ति के जीवन पर अनियंत्रित है। उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति को न केवल विचार की ही स्वाधीनता हो किन्तु आत्म-सम्बन्धी कामों (Self-regarding acts) में उसके व्यवहार की भी स्वाधीनता होनी चाहिए। अतएव मिल ने तीसरे और चौथे अध्यायों में आत्म सम्बन्धी (Self-regarding) कामों में स्वाधीनता की आवश्यकता पर इतना ज़ोर दिया है। जिन प्रमाणों से उसने इस बात को सिद्ध किया है, उनका सविस्तर वर्णन करना इस छोटे से लेख में असम्भव है। पर पाठकों के सुभीते के लिए हम सारांश में उन प्रमाणों के देने का प्रयत्न करते हैं।

मिल का विचार है कि "हर आदमी को इस बात का अधिकार होना चाहिए कि जो काम उसे पसन्द हो करे; दूसरों को तकलीफ़ न पहुँचा कर जिस तरह का आचरण वह करना चाहे करे और जिस तरह के व्यवहार या बर्ताव में उसे अपना लाभ जान पड़े उसे करे। यदि किसी को इस बात की जाँच करने की इच्छा हो कि जुदा जुदा तरीक़े से रहने में क्या हानि और क्या लाभ है तो वह ख़ुशी से उन सब तरीक़ों की जाँच करे और तजरिबे से उन बातों को जाने। मतलब यह है कि जिन बातों से दूसरों का सम्बन्ध नहीं है उन्हें करने के लिए हर आदमी स्वतन्त्र है। जहाँ आदमी अपने इच्छानुसार बर्ताव नहीं कर सकता, किन्तु और लोगों की चाल ढाल और रूढ़ि के अनुसार उसे बर्ताव करना पड़ता है, वहाँ समझना चाहिए कि मनुष्य के सुख की एक बहुत बड़ी चीज़ कम है।

इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में मिल ने निम्न लिखित प्रमाणों का प्रयोग किया है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) यदि व्यक्ति को आत्म-सम्बन्धी कामों में व्यवहार की—स्वतन्त्रता है तो व्यक्तिविशेषता (Individuality) का विकास हो सकेगा, परन्तु यदि उसको यह स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं, तो उसकी व्यक्ति विशेषता की वृद्धि मारी जायगी। समाज की रीति रवाज को ज़बरदस्ती और बग़ैर समझे बूझे व्यक्ति से जबरदस्ती मनवाना अत्यन्त ही हानि कारक है। क्योंकि आँख मूँद कर रीति-रवाज़ का अनुसरण करने से उसकी मानसिक और आत्मिक शक्तियों की यथेष्ट उन्नति नहीं हो सकती। इसलिए ज़रूरी है कि व्यक्ति को आत्म-सम्बन्धी कामों की स्वाधीनता होनी चाहिए जिसमें उसकी शक्तियों का पूर्ण रूप से विकास हो सके।

(२) यदि समाज में आत्म-सम्बन्धी व्यवहार की स्वाधीनता है तो उसमें उन्नत चरित और उन्नत बुद्धिवाले मनुष्यों के उत्पन्न होने की सम्भावना है। इसलिए जिस खेत में वे पैदा होते हैं उसकी रखवाली ख़ूब ख़बरदारी से करनी चाहिए, जिसमें इस तरह के थोड़े से आदमी पैदा होते हैं वे तो होते रहें। प्रतिभा, अर्थात् विलक्षण बुद्धिवालों का सिर्फ़ स्वाधीनता-रूप वायु-मंडल में ही अच्छी तरह श्वासोच्छ्वास का आराम और मौक़ा मिलता है।

(३) तीसरा कारण यह है कि हर एक मनुष्य का स्वभाव दूसरे मनुष्य के स्वभाव से भिन्न होता है इसलिए हर एक मनुष्य को अपने स्वभाव के अनुकूल "रहन सहन" की आज़ादी होना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य के आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी भिन्न भिन्न अवस्थाओं की आवश्यकता होती है इसलिए जीवन-क्रम में विचित्रता होनी ज़रूरी है।

(४) जहाँ पर आत्मविषयक बातों पर समाज दस्तन्दाज़ी करेगा वहाँ पर उसका दख़ल देना उन्नीस बिस्वे बेजा है।

ये सब दलीलें इस बात को साबित करती हैं कि आत्म-विषयक बातों में समाज का दस्तन्दाज़ी न करना ही व्यक्ति और समाज दोनों ही के लिए हितकर है।

जिन पाठकों ने इस लेख को यहाँ तक विचारपूर्वक पढ़ने की कृपा की है, उनको पता लग गया होगा कि जिन सिद्धान्तों का विवेचन इस पुस्तक में किया गया है, उनका जानना आज कल के समय में, प्रत्येक मनुष्य के लिए कितना आवश्यक है। द्विवेदीजी ने अपनी भूमिका में एक जगह पर लिखा है कि मिल-कृत पुस्तकों में मिल ने जिन विचारों से,—जिन दलीलों से—काम लिया है वे बहुत प्रबल और अखंडनीय हैं। यद्यपि कई विद्वानों ने मिल की विचार-परम्परा का खण्डन किया है, तथापि वे कृतकार्य्य नहीं हुए। उनको कामयाबी नहीं हुई।..... स्वाधीनता में मिल ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है वे बहुत ही दृढ़ प्रमाणों के आधार पर स्थित हैं। यह बात इस पुस्तक के पढ़ने से अच्छी तरह मालूम हो जायगी।" हमारी समझ में, द्विवेदीजी ने मिल-कृत ग्रन्थों की प्रशंसा में जो ऊपर दिये हुए वाक्य लिखे हैं, उनमें कुछ थोड़ी सी अतिशयोक्ति है। मिल के बहुत से सिद्धान्त, इस समय दूषित और अधूरे समझे जाते हैं। मिल के समय से अब तक मनुष्य-ज्ञान की अपूर्व वृद्धि हुई है। उदाहरणार्थ विकास-सिद्धान्त (Evolution Theory) का प्रयोग सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर विचार करते समय मिल कहीं नहीं करता, जो तत्त्ववेत्ता आज कल अपने विचार-क्रम (System of Thought) में इस महान् और सर्व-व्यापी सिद्धान्त से काम नहीं लेता वह हमारा सच्चा पथ-प्रदर्शक नहीं हो सकता। पर इस समय स्वाधीनता की सविस्तर समालोचना करने का हमारा विचार नहीं है। समय और स्थान के अभाव से इस काम को हम आगे के लिए छोड़ देते हैं। पर इसमें कोई भी संशय नहीं कि पुस्तक बड़ेही महत्त्व की है और हर एक आदमी को, जो अपने देश का हित चाहता है इस पुस्तक को पढ़ना और मनन करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण मई १९०७ में हुआ था। और यद्यपि इसका मूल्य २) रक्खा गया था, तथापि थोड़े महीनों के भीतर भीतर सब प्रतियाँ हाथों हाथ बिक गईं। और हमने १९०७ में इसके दूसरे संस्करण के छपने का विज्ञापन देखा था, पर अभाग्यवश नागपुर की मंडली थोड़े समय के बाद टूट गई। फिर पिछले साल हमने सुना कि द्विवेदीजी इसके छापने का ख़ुद ही प्रबन्ध कर रहे हैं; हमने सुना कि पुस्तक प्रेस में भी है, परन्तु न जाने किन कारणों से आज तक नहीं प्रकाशित हुई। यह पुस्तक इतने महत्त्व की है कि इसे मुफ़्त बाँटना चाहिए। परन्तु जब पाठक दाम देकर लेने को तैयार हैं, तब हमारी समझ में नहीं आता कि ऐसी आवश्यक पुस्तक के प्रकाशन में इतनी शिथिलता क्यों की जा रही है। हम द्विवेदीजी से पाठकों और अन्य हिन्दी पढ़नेवालों के नाम से अपील करते हैं कि वह कृपा करके इसका दूसरा संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित करें। जितनी देर होगी, उतनी ही हानि होने की सम्भावना है, जिसके लिए द्विवेदीजी ज़िम्मेदार होंगे। इसलिए हम फिर आपसे इस कार्य में शीघ्रता करने का निवेदन करते हैं। द्विवेदीजी के मित्रों और समीप-वर्त्तियों का कर्तव्य है कि वे द्विवेदीजी से, इस बात के लिए आग्रह करें और हिन्दी-साहित्य-सेवियों की कृतज्ञता के भागी बनें।

वेंकटेशनारायण त्रिपाठी।

कुरुक्षेत्र के संग्राम का परिणाम।

(१)

करुणाधिकृत वर वीरता का धाम यह सब देख लो!
पारस्परिक संग्राम का परिणाम यह सब देख लो।
पर देखने के पूर्व सब कर लो कलेजे को कड़ा,
निज देश के दुर्दैव का यह दृश्य है दारुण बड़ा॥

(२)

भारत रहा भारत न जिससे क्षय हुआ सब पक्ष§ का,
हा! यह भरतकुल का भयङ्कर सर्वनाश समक्ष है।
रणभूमि कौरव-पाण्डवों की ऐतिहासिक है यही—
शोकार्त गान्धारी जिसे श्रीकृष्ण को दिखला रही॥

(३)

*दुःशील दुर्योधन न जो शठता सहित हठ ठानता,
पाण्डित्य-पूर्वक पाण्डवों की योग्यता को जानता।
तो डूबता भारत न यों रण-रक्त-पारावार में,
ले डूबता है एक पापी नाव को मँझधार में॥

(४)

*'निश्चेष्ट होकर बैठ रहना यह महा दुष्कर्म है,
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है।'
इस तत्त्व पर ही कौरवों से पाण्डवों का रण हुआ,
जो भव्य भारतवर्ष के कल्पान्त का कारण हुआ॥

(५)

*हा! बन्धुओं के ही करों से बन्धु-गण मारे गये!
हा! तात से सुत, शिष्य से गुरु शीघ्र संहारे गये!
इच्छारहित भी वीर पाण्डव रत हुए रण में अहो!
कर्तव्य के वश विज्ञ जन क्या क्या नहीं करते कहो?

(६)

सौ पुत्र जिसके थे अहो! धृतराष्ट्र की रानी वही;
एकाकिनी सी यह यहाँ पर आज देखो रो रही!
अन्तःसलिल-घन-तुल्य उसके पास ही हरि हैं खड़े,
वर-वीर दोनों पक्ष के रण में निहत होकर पड़े॥

(७)

"हा हन्त! इस दुर्दृश्य को ही देखने को लोक में,
जो मृत्यु के उपरान्त भी डाले रहेगा शोक में।
हे देवकीनन्दन! मुझे क्या आयु थी इतनी मिली?
है जान सकता कौन मुझको यातना कितनी मिली!

---

§ पक्ष=बल, पराक्रम।

* ये पद्य इस प्रसङ्ग के अनुकूल जान कर अपने बनाये हुए "जयद्रथ-वध" में से हमने उद्धृत कर दिये हैं। लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्ण और गान्धारी !

जिनके हित भूप किरीट बड़े थे हुए पांवड़े रत्न जड़े
वे आज मही पर पड़े मरे क्या से यह क्या हो गया हरे !

सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८)

युग नेत्र-युत भी अन्ध मुझको जो अपूर्व प्रभाव से—
यह सर्वनाश समक्ष ही दिखला रही है चाव से।
उस दिव्य दृष्टि-प्राप्ति को भी हानि ही मैं मानती,
माधव! न अपना सा कहीं हतभाग्य जन मैं जानती॥

(९)

देखो; दिवाकर-तुल्य जिनका अति अखण्ड प्रताप था,
फैला हुआ संसार में सर्वत्र कीर्ति-कलाप था।
इस रक्त-कर्दममय मही पर सो रहे हैं आज वे,
हा! अब न जाने हैं कहाँ सब साज और समाज वे!

(१०)

उपमा सुरों में भी न जिनकी श्रेष्ठ कवियों को मिली,
निर्दोष, निर्मल कीर्तिरूपी कौमुदी जिनकी खिली।
था हा! असाध्य न कार्य्य कोई विश्व में जिनके लिए,
कुरुवृद्ध भीष्म वही शरों की आज शय्या हैं किये!

(११)

भृगुराम सम बलधाम ये गुरुवर्य्य द्रोणाचार्य्य हैं—
विख्यात जिनके लोक में अद्भुत, अलौकिक कार्य्य हैं।
तनु त्याग कर पाला इन्होंने पुण्य पुत्र-स्नेह को,
है जान पड़ता अब कृपी भी तज रही हैं देह को!

(१२)

पाण्डव न सुख से सो सके चिरकाल जिनके हेतु से,
जो सर्वदा संग्राम में होते उदित थे केतु से।
सुत के सहित वे कर्ण भी परलोक को अब गत हुए!
केशव! गिना सकती न मैं बरबीर जितने हत हुए॥

(१३)

सारे अनर्थों का शकुनि को जानती थी मूल मैं,
पर आज उसकी भी दशा पर पा रही हूँ शूल मैं।
घेरे उसे हैं काक कितने, हो रहा क्या हाल है!
चलता न छल-बल एक भी आता अहो! जब काल है॥

(१४)

हा! पुत्र-पौत्र-विहीन अब मैं सोच किस किस का करूँ?
मिलती नहीं है माँगने से मृत्यु भी जो मैं मरूँ।
देता जिन्हें कर था अहो! नृप-गण विनय से नत हुआ
जीती हुई मैं देखती हूँ निज सुतों को हत हुआ॥

(१५)

केवल इसे कुरुवंश का ही नाश कहना भूल है
हा! हो चुका इस युद्ध में सब देश नष्ट समूल है।
कुछ कौरवों की ओर से कुछ पाण्डवों की ओर से
हत हो गये हैं वीर सब यों क्षात्र-धर्म्म कठोर से॥

(१६)

*जो तुच्छ अपने सामने थे इन्द्र को भी मानते,
जो कुछ कहो बस हैं हमीं जो थे सदा यह जानते।
वे वीर देखो, आज भू पर सर्वदा को सो रहे
हैं मर चुके लाखों तथा घायल हज़ारों हो रहे॥

(१७)

*इस ओर देखो रक्त की यह कीच कैसी मच रही!
है पट रही खण्डित हुए बहु रुण्ड मुण्डों से मही।
कर- पद असंख्य कटे पड़े शस्त्रादि फैले हैं तथा
रङ्गस्थली ही मृत्यु की एकत्र प्रकटी हो यथा!!

(१८)

* हो मुग्ध गृध्र किसी किसी के लोचनों को खींचते
यह देख कर घायल मनुज अपने दृगों को मींचते।
मानों न अब भी है नृपों का मोह पृथ्वी से हटा,
लिपटे हुए उससे पड़े दिखला रहे अन्तिम छटा॥

(१९)

*झुकते किसी को थे न जो नृप-मुकुट रत्नों से जड़े,
वे अब शृगालों के पदों की ठोकरें खाते पड़े!
पेशी* समझ माणिक्य को वह विहग देखो, ले चला
पड़ भोग की हो भ्रान्ति में संसार जाता है छला॥

(२०)

*दुर्योधनानुज हैं पड़े वे भीम के मारे हुए,
काम्बोज नृप ये सात्यकी के हाथ से हारे हुए।
मृत अच्युतायु श्रुतायु हैं वे वह अलम्बुष है मरा,
वह सोमदत्तात्मज पड़ा है रक्त-रञ्जित कर धरा॥

(२१)

उस ठौर दुःशासन-हृदय का भीम ने शोणित पिया,
हा! द्रौपदी के दुःख का यों दैत्य सम बदला लिया!
सब पाण्डवों को शाप से मैं भस्म कर सकती अभी,
पर पिण्ड देगा कौन फिर जो नष्ट हों वे भी सभी?

† मांस-ग्रन्थी, बोटी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२२)

हा! पुष्प-शय्या-योग्य ये अत्यन्त ही सुकुमारियाँ,
अब केश खोले रोरहीं हैं भरतकुल की नारियाँ।
सुत, पति, पिता, भ्रातादि विषयक शोक जितने सृष्टि में
प्रत्यक्ष ही वे सब यहाँ पर पड़ रहे हैं दृष्टि में॥

(२३)

गोविन्द! विधवा देख कर भी निज सुबधुओं को यहाँ
हा! हा! न जाने प्राण मेरे देह में अटके कहाँ?
जो वेद और पुराण-वाणी है असत्य नहीं कभी
तो सत्य ही सुत वीर मेरे स्वर्ग में होंगे सभी॥

(२४)

हा! सौ सुतों के मध्य मेरी एक मात्र मनोहरी,
थी दुःशला जो यह सुता जीती हुई अब है मरी।
गृध्रादिकों से सिर-रहित पति-देह रक्षण कर रही,
क्षण भर व्यथा को भूलकर रक्षार्थ मन में डर रही॥

(२५)

*निज वीर पति अभिमन्यु का शव गोद में धारे हुए,
सुध बुध बिसारे शोक से सर्वस्व सा हारे हुए।
हतभागिनी यह उत्तरा देखो, रुदन करती यहाँ—
'हे नाथ! मुझ को छोड़कर जाते कहो तुम हो कहाँ?'

(२६)

यह कोमलाङ्गी प्रिय बधू रानी सुयोधन की हरे!
किस भाँति रोदन कर रही पति के हृदय पर सिर धरे।
पति-शोक-युत सुत-शोक भी वह पा रही अति घोर है,
अब भी न फटता हाय! मेरा उर अतीव कठोर है!

(२७)

थी हाय! समझाती रही मैं इस सुयोधन को सदा—
'सुत! सम्पदा के लोभ से तू मत बुला यह आपदा।
पर निज गदा के गर्व से मेरी गिरा मानी नहीं!
भवितव्यता की गति किसी ने है कभी जानी नहीं॥

(२८)

बेटा सुयोधन! ध्यान रखते जो बड़ों की बात का,
तो देखना पड़ता न यह दुर्दिन हमें अभिघात का।
वह गर्व और प्रताप सारा अब तुम्हारा है कहाँ?
भस्मावशेष कृशानु सम तुम दीख पड़ते हो यहाँ!

(२९)

परलोक को तुम क्या गये सर्वस्व हा! हा! ले गये,
केवल हमें इस लोक में तुम दुःख दुःसह दे गये।
हम दीन अन्धों पर तुम्हें ममता तनिक आई नहीं,
माता-पिता की प्रीति कुछ भी तात! दिखलाई नहीं!

(३०)

पूर्णेन्दु सम जिनके सिरों पर शुभ्र शोभित छत्र थे,
सेवक अपेक्षाधिक जिन्हें करते सुखी सर्वत्र थे।
हा! गृध्र-पक्षों की उन्हीं पर आज छाया हो रही!
आता नहीं जो ध्यान में भी समय दिखलाता वही॥

(३१)

गोविन्द! जो तुम कह रहे हो मैं न यों रोदन करूँ,
पर हाय! अब क्या सोच कर मैं चित्त में धीरज धरूँ?
वात्सल्य के वश था जिन्होंने कुछ न पुत्रों से कहा,
है सोच सर्वाधिक मुझे उन वृद्ध राजा का हहा!

(३२)

निश्चय युधिष्ठिर पुत्र सम सेवा करेंगे सर्वदा,
नाना उपायों से हमारा दुख हरेंगे सर्वदा।
पर वासुदेव! कृशानु सम यह शोक हम कैसे सहें?
सोचो तुम्हीं किस भाँति हम सर्वस्व-गत-गृह में रहें?"

(३३)

हो मौन गान्धारी तनिक को, शोक फिर करने लगी,
कोमल हृदय में और दारुण दुःख की ज्वाला जगी।
श्रीकृष्ण ने निज सान्त्वना से शान्त तब उसको किया,
बहु भाँति वचनामृत बहाकर तीक्ष्ण ताप हटा दिया॥

(३४)

इस भाँति कौरव-पाण्डवों का शोकमय संग्राम है,
पारस्परिक विद्वेष का बस नाश ही परिणाम है।
इस फूट के फल आज तक भी हैं हमें खलते नहीं!
गिरते हुए भी मार्ग में हम देखकर चलते नहीं!!

(३५)

*सब लोग हिलमिलकर चलो पारस्परिक ईर्ष्या तजो,
भारत न दुर्दिन देखता मचता 'महाभारत' न जो।
होकर सदा को स्वप्न सा सब शौर्य्य सहसा सो गया,
हा! हा! इसी समराग्नि में सर्वस्व स्वाहा हो गया!

मैथिलीशरण गुप्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सतसई-संहार।

[गतांक से आगे]

२१—*नेक हँसोही बान तजि, लखो परत मुख नीठि।
चौका चमकनि चौंध में, परत चौंध सी दीठि ॥४८१

खी तू नेक हँसने का स्वभाव छोड दे तेरा मुख नजर भरकर देखा जाय है, दाँत के चौके की चमक से हमारी दृष्टि चौंधाईसी होजाती है। काव्यलिंग।"

(पृ० १५९)

विद्यावारिधिजी! बुरा मानने की बात नहीं, सच बतलाइए, टीका करते समय आपका ध्यान कहाँ रहता है? कुछ आप होशोहवास से भी काम लेते हैं या नहीं? क़लम उठाई, और आँख मीचकर जो जी में आया सो लिख मारा! और न जाने यह अलङ्कारनिर्देश की सनक आपके दिमाग़ में क्यों समा गई है! कविता का गला घोटकर भी अलङ्कार उसके गले मढ़ देते हैं! न मालूम इस 'मृतमण्डन' से क्या लाभ विचारा है?

ज़रा सोचने की बात है, आपके इस अपूर्व अर्थ की मौजूदगी में 'काव्यलिङ्ग' किस प्रकार ठहर सकता है! इस दशा में तो यह दोहा बावले की बड़ है, और कुछ भी नहीं! कुछ समझ में नहीं आता कि जब ".....मुख नजर भरकर देखा जाय है," तो वह "नेक (बद भी नहीं?) हँसने का स्वभाव क्यों छोड़ दे! और जब "दाँत के चौके की चमक से आपकी (देखने वाले की) दृष्टि चौंधाई सी हो जाती है" तब उसका "मुख नजर भरकर कैसे देखा जाय है!" और फिर इस विचित्र अर्थ* में 'काव्यलिङ्ग' किधर को समाय है?

जहाँ से आपने 'काव्यलिंग' लिया है, वहीं इसका अर्थ भी देखिए :—

"सखी का वचन नायका से, नायक के साक्षात्। तनक हँसने का सुभाव छोड़ दे, देखा जाता है तेरा मुँह नीठ करके। दाँत के चौके की चमक से चौंधाई सी हो जाती है दृष्टि हमारी॥ हाँसी को उपमा बिजली से। इससे दृष्टि को चकाचौंधी लगती है॥ काव्यलिंग अलंकार।" (लालचन्द्रिका)

दोहे के पूर्वार्द्ध में सखी, नायिका से हँसने की आदत छोड़ने का अनुरोध इसलिए करती है कि नायक को उसका (नायिका का) मुख किसी-प्रकार—मुश्किल से दीख पड़ता है, इस बात का समर्थन दोहे के उत्तरार्द्ध में किया है कि दन्त-द्युति = दाँतों की चमक से नज़र चौंधा जाती है, (इस कारण मुख नहीं दीख पड़ता है!) इसीलिए 'काव्यलिङ्ग' अलङ्कार है :—

"समर्थनीयस्यार्थस्य काव्यलिङ्गं समर्थनम्"

या "काव्यलिंग जहँ युक्ति सो अर्थ समर्थन होय" अर्थात् कहे हुए अर्थ को युक्तिद्वारा समर्थन करना 'काव्यलिङ्ग' का लक्षण है। जैसे यहाँ हँसने की हालत में मुख साफ़ साफ़—अच्छी तरह से नहीं दीखता, इस बात को इस प्रकार समर्थित किया है कि दाँतों की तेज़ चमक के सामने नज़र नहीं जमती, दृष्टि काम नहीं देती। जिस तरह बिजली की चमक में कोई चीज़ साफ़ नज़र नहीं आती!

---

* शुद्ध पाठ इस प्रकार है :—"नैंक हँसौंहीं बानि तजि लख्यो परत मुख नीठि" प० सिं० श०।

* विद्यावारिधिजी के इस विलक्षण अर्थ में तो "तृतीय-विभावना" का भान हो रहा है! "कार्योत्पत्तिस्तृतीया स्यात्सत्यपि प्रतिबन्धके" अर्थात् 'आँखों की चकाचौंध रूप, प्रतिबन्धक कारण के होते हुए भी 'नजर भरकर मुख दीखना' रूपी कार्य हो गया!—पर ऐसी हालत में विद्यावारिधिजी को दोहा भी नया घड़ना पड़ेगा, बिहारी के उक्त दोहे पर यह नहीं घट सकता! प० सिं० श०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल के 'नीठि' शब्द ने विद्यावारिधिजी को और भी कई जगह ठोकरें खिलवाई हैं, सतसई में जहाँ जहाँ भी यह 'नीठ' या 'नीठि' शब्द आया है, वहीं वहीं इसका अर्थ करने में आप लुढ़कड़ा गये हैं, कहीं इसका अर्थ 'बिलकुल नहीं' कर दिया है, और कहीं कुछ और, कहीं वैसेही छोड़ दिया है, (४२२ तथा ४२९ दोहों में भी आपने इसी प्रकार 'नीठ' की पीठ पर अनर्थ के कोड़े लगाये हैं !)

'नीठ' शब्द विहारी के काव्य में बहुत जगह आया है, यह शब्द अब तक भी इधर इसी अर्थ में बोला जाता है, जिस अर्थ में विहारी ने इसका प्रयोग किया है। 'नीठ' का अर्थ है 'किसी प्रकार' मुश्किल से। जैसे कहते हैं—"अमुक ने यह चीज़ पाँच सेर करके दी थी, पर तोलने पर 'नीठकर' साढ़े चार सेर उतरी है"।

२२—*तो लखि मो मन जोगही, सो गति कही न जाति।
ठोडी गाड गड्यो तऊ, उडो रहत दिन राति ॥४८६॥

"जो तुझे देख कर मेरे मनने जो पकडी है सो गति कही नही जाती है, यद्यपि ठोडी के गर्त में पडा है तथापि दिन रात उडता ही रहता है यदि कहो दिन-रात उड़ने से उड़ने की पुष्टाई (?) नहीं है तो इसका भाव यह कि, कहीं हाथ चिबुक को स्पर्श न करे यही सोच रहता है।" (पृ० १६०)

टीका में आपने जो 'जो जो सो सो' की झड़ी लगाई है, सो कही नहीं जाती है ! और डकार के नीचे के बिन्दु से तो न जाने आपको क्या अदावत है उसे आप देख ही नहीं सकते, 'ठोडी', 'उडता' इनके नीचे भी आपसे बिन्दु नहीं जुड़ता !

शङ्कासमाधान और भाव खोलने में तो आप कमाल ही कर जाते हैं "……यदि कहो दिन रात उड़ने से उड़ने की पुष्टाई (?) नहीं है" क्यों कहें कि उड़ने से उड़ने की पुष्टाई नहीं है, ! यदि उड़ने से उड़ने की पुष्टाई न होगी तो क्या गड़ने से उड़ने की पुष्टाई होगी ? यह आप क्या कह रहे हैं, ज़रा होश की ठंडाई (पुष्टाई की बहिन!) पीजिए ! धन्य री पुष्टाई !

"तो इसका भाव यह कि, कहीं हाथ चिबुक को स्पर्श न करे यही सोच रहता है"—

सोच की बात पक्की है, भला कहीं चिबुक हाथ से छूने की चीज़ है ! शिव शिव, चिबुक जैसा अस्पृश्य पदार्थ, हाथ से छुआ जाय ! बेशक इसका रात दिन 'सोच' रहना चाहिए, कहीं चिबुक के अन्दर बारूद का गोला छिपा हो, और वह हाथ से छूतेही फूट जाय तो क्या हो ! विद्यावारिधिजी ने भाव खोल कर सर्वसाधारण को सावधान कर दिया, बड़ी कृपा की, सम्भव था कोई चिबुक को छूकर अपने हाथ से ही हाथ धो बैठता ! धन्य महाराज ! बलिहारी आपकी दूर-दर्शिता की ! आपसे हितोपदेष्टा को ऐसाही भाव बतलाना चाहिए था !!

अस्तु, और हाँ, खूब याद आई, इस दोहे का अलङ्कार कहाँ है ? यह आप अब अलङ्कार क्यों उड़ाने लगे ?

यह दूसरी वारदात है, इस अलङ्कारापहरण की कुचेष्टा से बाज़ आइए, वरना रिपोर्ट की जायगी। प्रतिज्ञा तो की थी आपने 'अतिललित मधुर मुग्ध अलङ्कारों से सतसई को सर्वाङ्गभूषित' करने की। सो 'सर्वाङ्गभूषित' करना तो दूर रहा उलटे कविता के पहले अलङ्कार भी आप उतारने लगे ! 'अनवरचन्द्रिका' के कथनानुसार "विभावना" और हरिप्रकाश, तथा लालचन्द्रिका के लेखानुसार "विरोधाभास" अलङ्कार, इस दोहे के पास था, वह कहाँ गया ? बतलाइए न ? मौनसाधन से काम न चलेगा।

सहृदय पाठक-गण ! देखा आपने किस प्रकार "सर्वसाधारण की बुद्धि में कविवर का आशय प्रगट किया जा रहा है" ! सर्वसाधारण तो क्या 'विद्वद्वृन्दशिरोमणि, विद्यावारिधिजी' स्वयं भी

* दोहे के रेखाङ्कित पद इस प्रकार चाहिएँ—
लही। ठोड़ी। उड़यो रहै। इत्यादि। प०सिं०श०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस टीके से कविवर का आशय न समझ सकेंगे, चाहे उनसे पूछ देखिए।

इससे तो हरिकवि की टीका पुराने ढँग की होने पर भी बहुत साफ़ और कविवर का आशय प्रकट करनेवाली है। विद्यावारिधिजी! सुनिए और समझिए :—"तो लखि इति। साभिलाष नायक को वचन नायिका सों। तोहि देखिकै मेरे मन ने जो गति लही है, सो काहू सों कही न जाति है, आश्चर्य है। ठोड़ी के गाड़ में—खाड़ में परयो है। तौ भी दिन रात उड़यो रहत है, विलास करिबे के अनेक मनोरथ रूप पौन में परयो है। "विरोधाभास" है। "भासै जहाँ विरोध सो वहैं विरोधाभास"। गाड़ में परयो है, यह विरोध सो है।"

(हरिप्रकाश टीका)

किसी अत्यन्त अभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति के लिए मन की व्याकुलता या चंचलता को "मन का उड़ना" कहते हैं, वारिधिजी इस मामूली महावरे को न समझे, और दोहे का भाव खोलने के स्थान में अपनी समझ की पोल खोलने और 'पुष्टाई' की ठंडाई घोटने लगे!

नायिका के लावण्यवारिपूरित चिबुकगर्त्त में पड़ा हुआ, चाहे ज़क़न ڈاڑھ में डूबा हुआ नायक का मन, मनोरथ-तरङ्गों में हिलोरें ले रहा है, नाना प्रकार की अभिलाषाओं के पवन में उड़ रहा है। किसी प्रकार उस चिबुक का छूना नसीब हो, वह हाथ लगे, सौन्दर्य-विमुग्ध प्रेमी के इस साभिलाष चिन्तन को, विद्यावारिधिजी फ़र्माते हैं—"कहीं हाथ चिबुक को स्पर्श न करे यही सोच रहता है'—

कैसा विलक्षण और अलौकिक भाव है!!! अनर्थ की ज्वाला ने रसिकता और सहृदयता को फूँक दिया! जलाकर राख कर दिया!!

ऐसेही अरसिक-मूर्धन्य, और सहृदयता-शून्य महापुरुषों से घबरा कर किसी कवि ने विधाता से यह प्रार्थना की है :—

"इतरपापफलानि यदृच्छया विलिख तानि सहे चतुरानन!
असिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मालिख मालिख मालिख॥"

२३—छिप्यो छबीलो मुख लसै, नीले अंचल चीर।
मनो कलानिधि झलमले, कालिन्दी के नीर॥४२०॥

"नीले अंचल में छिपा हुआ प्यारी का छबीला मुख ऐसे शोभा देता है, मानों नीले अंचल को चीर कर चन्द्रमा कालिन्दी यमुना के नीर में शोभा देता है। उत्प्रेक्षा। (पृ० १६१)

वाह उस्ताद! क्या कहने हैं! "मानों नीले अंचल को चीर कर चन्द्रमा कालिन्दी यमुना के नीर में शोभा देता है"

इस अनर्थ के काले स्याह परदे को फाड़कर आपका पाण्डित्य भी अमावस्या के चन्द्रमा (?) की तरह विद्यावारिधि की खाड़ी में अपूर्व शोभा दे रहा है!!!

आपके अनर्थ-दुःशासन ने कविता-पाञ्चाली के चीर की चीर कर धज्जियाँ उड़ादीं!! वह बेचारी मुँह छिपाये, सहृदयों की सभा में खड़ी हुई, लज्जा उतारनेवाले; अनर्थकारी की जान को रो रही है!!

उक्त दोहे का भाव है :—

"नीले चीर के आंचल में छिपा हुआ सुन्दर मुख ऐसी शोभा दे रहा है, मानों (नीले जलवाली) यमुना के जल में चन्द्रमा झलक रहा है!"

सहृदय काव्यरसिकगण! कैसी अच्छी 'वस्तूत्प्रेक्षा' है! क्या सुन्दर कविता है!

विद्यावारिधिजी ने 'नीले अंचल' का एक छोटा सा टुकड़ा तो प्यारी का मुख छिपाने के लिए छोड़ दिया और बाक़ी चीर का एक बड़ा तम्बू तयार करके जमना के जलपर तान दिया, जिसके नीले अंचल को चीर कर "चन्द्रमा कालिन्दी यमुना के नीर में शोभा दे रहा है"!!!

विद्यावारिधिजी ने सोचा होगा कि प्यारी का मुख तो नीले अंचल से ढक रहा है, फिर जमना का जल उघड़ा हुआ कैसे रह जाय? उस पर भी नीले अंचल का शामियाना या तम्बू तानना चाहिए! जिसे चीर कर चन्द्रमा शोभा दे! और यदि कालिन्दी का नीर, निरावरण ही छोड़ दिया गया तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीले अंचल में छिपे हुए प्यारी के मुख से लग्गा न खायगा, जुगत न मिलेगी! सो विहारी की इस कमी को विद्यावारिधिजी ने अपने पल्ले से पूरा किया! इस तम्बू तानने में आपको अपनी गिरह से कितना कुछ ख़र्च करना पड़ा होगा, यह बात जमना के चकले पाट को देखकरही समझ में आ सकती है! मालूम होता है, जल्दी में तम्बू के लिए कपड़ा अच्छा मज़बूत न मिल सका, पुराना गला हुआ मिला, इसीसे वह चन्द्रमा की किरणों का बोझ न सँभाल सका! उनके पड़तेही चिर गया, फट गया, और उसमें से निकलकर, नीचे बहते हुए कालिन्दी के जल में चन्द्रमा चमकने लगा!

चाहे कुछ ही हो, विद्यावारिधिजी ने एक बार तो जमना के नीले नीर पर नीला तम्बू तानही दिया, नीले नीर को डबल नीला बना कर उसमें चन्द्रमा को सुशोभित करही दिया! इस भगीरथ-परिश्रम के लिए उन्हें धन्यवाद मिलना चाहिए। अस्तु, यह तो सब कुछ होगा, पर विद्यावारिधिजी से यह तो पूछना चाहिए कि उन्होंने जोशेजिनूं में आकर चीर को क्यों चीर डाला?

यह चीर विहारी का काव्य पढ़नेवालों के लिए कोई नई चीज़ तो न थी, रंग भी कुछ ऐसा डरावना न था, जिसे देख कर आप बिदक गये और उसे चीर डाला!

यह चीर तो इस दोहे से पूर्व भी और पश्चात् भी कई जगह 'सतसई' में आया है। एक जगह 'भीजा हुआ' "जौ लौं भीजे चीर लौं रहै न प्यौ लपटाय"। (दो० ४०८)

दूसरी जगह 'मजीठ में रंगा हुआ'—"फीको परै न बर घटै रंग्यौ लोहरंग चीर"। (दो० ५९१)

तीसरी बार :—

"रह्यौ ऐंच अन्त न लह्यौ अवधि-दुशासन वीर।
आली बाढ़त विरह ज्यौं पांचाली को चीर॥" १२५

अन्यत्र तो ख़ैर कुछ ऐसी चिन्ता की बात न थी, पर इस अन्तिम दोहे में, ईश्वर ने बड़ाही अनुग्रह किया, यह पांचाली का परम सौभाग्यही समझना चाहिए कि विद्यावारिधिजी सँभल गये, पांचाली, चीर फाड़ से बच गई!

यदि वारिधिजी यहाँ "पांचाली को चीर"—में भी, चीर को ल्यबन्त (चीरयित्वा (?)) समझ कर अर्थ करते तो बड़ा अनर्थ हो जाता, फिर पाञ्चाली की ख़ैर न थी, दुःशासन ने तो सिर्फ़ चीर खींचाही था, यहाँ चीर के साथ वह भी चीर डाली जाती!!! "आमदावूद बलाय वले बख़ैर गुज़श्त"।

(अपूर्ण)

पद्मसिंहशर्म्मा।

विविध-विषय।

१—राष्ट्रीय बल।

उन्नतशील देशों में हर तरह से राष्ट्रीय बल बढ़ाने का यत्न किया जाता है। वहाँ की सरकार और विचारवान् नेतागण दोनों मिल कर अपने देशवासियों की सामाजिक, आर्थिक और मानसिक दशा पर अहर्निश विचार करते हैं और अन्यान्य देशवासियों की स्थिति से मिलान किया करते हैं। यदि किसी बात में भी अपने देशवासियों को विदेशियों की अपेक्षा पिछड़ते पाते हैं तो तुरन्त ही तन, मन, धन से उस त्रुटि को दूर करने का उपाय करते हैं। कुछ दिनों से योरप के बहुतेरे देशों में और विशेष कर फ़्रांस में लोगों को विवाह करने से अरुचि हो चली है। इसी से वहाँ की जन-संख्या कुछ कम होने लगी है। जब किसी देश के निवासियों की गणनाही घटने लगी तब राष्ट्रीय बल कब तक रह सकता है? परन्तु योरप-वाले अपने देश की अधोगति देख कर हाथ पर हाथ धरे चुपचाप बैठे रहनेवाले नहीं; समाचारपत्रों, गिर्जाघरों और लेकचरों में बड़े ज़ोर के साथ आन्दो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लन आरम्भ हुआ है और विवाह तथा संतानोत्पत्ति की ओर लोग प्रवृत्त किये जाने लगे हैं। यही हाल बच्चों की परवरिश का है। सरकार और समाज की तरफ़ से धनहीन प्रसूताओं की दवा और भोजनादि का प्रबन्ध किया जाता है। एक स्थान पर तो यह नियम हो गया है कि हर प्रसूता को १५) इनाम के दिये जायँगे यदि उसका बच्चा एक साल तक अच्छा रहे। बच्चे जब बड़े होते हैं और स्कूल जाने लगते हैं, तब भी उनकी तन्दुरुस्ती पर ख़याल रक्खा जाता है, भोजनाभाव के कारण वे दुर्बल नहीं होने पाते। काहिलों की ख़बर ली जाती है और बेरोज़गारों के लिए रोज़गार का प्रबन्ध किया जाता है। शिक्षा के विषय में तो कुछ पूछिएही नहीं। १३ वर्ष की उम्र तक प्रत्येक लड़के और लड़की को स्कूल जाना ही पड़ता है। लड़के और लड़कियों की कौन कहे अंधों, बहरों और गूँगों को भी शिक्षा दी जाती है। प्रारम्भिक शिक्षा तो मुफ़्त दी ही जाती है, परन्तु प्रारम्भोत्तर शिक्षा भी मुफ़्त देने का विचार हो रहा है। कुली और मज़दूरों को भी फ़ुर्सत के समय उच्च शिक्षा देने के उपाय किये जाते हैं। जिन देशों में अज्ञान दूर करने की ऐसी उत्कट अभिलाषा है और जहाँ प्रत्येक निवासी की शारीरक, मानसिक और आर्थिक दशा सुधारने की समाज और सरकार दोनों ही को ऐसी उत्कंठा रहती है फिर क्यों न वहाँ राष्ट्रीय बल दिनों दिन बढ़ता रहे। भारतवर्ष में बच्चों की मौतों और प्रौढ़ों के अस्वास्थ्य और दारिद्र्य में प्रति दिन वृद्धि होती जाती है। परन्तु यहाँ के श्रीमानों की आँखे न जाने कब खुलेंगी!

२—इँगलैंड और भारतवर्ष का शिक्षाव्यय।

स्टेटिस्ट नामक पत्र लिखता है कि इँगलैंड और वेलस की आबादी ३५,३४८,७८० है और भारतवर्ष के केवल उस भाग की आबादी जिसका शासन गवरनर जनरल के अधीन है, यानी रियासतों को छोड़ कर, २३२०७२८३२ है। सन् १९१०—११ यानी एक साल के लिए इँगलैंड के शिक्षा-विभाग ने २१०९७०१५५) रुपये माँगे हैं। यह तो सिर्फ़ वही ख़र्च है जो कि सरकार देगी। फ़ीस और आक्सफ़र्ड और केम्ब्रिज में लगी हुई रियासतों की आमदनी से कुछ मतलब नहीं। अब ज़रा भारतवर्ष के शिक्षा-विभाग का ख़र्च सुन लीजिए, आबादी का मिलान आपने करही लिया। सन् १९०७—०८ यानी एक वर्ष में कुल ६०२८१४६०) रुपये ख़र्च किये गये। भारतवर्ष की अपेक्षा इँगलैंड में प्रति मनुष्य पर १५ गुणा अधिक ख़र्च किया जाता है।

३—विचित्र वृद्धा।

उडग्रीन नामक स्थान में एक विचित्र बुढ़िया है। इसकी उम्र १०७ वर्ष की है। आप बिना ऐनक के सुई में डोरा डाल लेती हैं, अच्छी ख़ासी ख़ुराक खाती हैं, चलती फिरती हैं, बेतन लेने एक पहाड़ी पर चढ़ जाती हैं। आपको गाने और नाचने का भी शौक़ है।

४—व्योमयान और बम्बवृष्टि।

व्योमयानों को बनते देर नहीं और लोग इनका युद्ध-प्रयोग सोचने लगे। अमेरिका की गवर्नमेंट अब इन यानों के द्वारा शत्रुदल का पता लगाया करेगी और ४५ या ५० मील फ़ी घंटा चलनेवाले व्योमयानों द्वारा बम्ब के गोले पृथ्वी से कुछ दूर ऊपर से ही बरसाया करेगी। फ़िलहाल लेफ़्टनन्ट फ़ोलामय ने व्योमदूत बनना और मिस्टर चार्ल्स हेमिल्टन ने युद्ध में बम्ब-वृष्टि करना स्वीकार किया है।

५—गोवर्धन-धारण का चित्र।

श्रीनगर (गढ़वाल) निवासी श्रीयुत मोलाराम-रचित गोवर्धन-धारण का चित्र गत मास की सरस्वती में निकल चुका है। उसी पर श्रीयुत मुकुन्दीलालजी लिखते हैं:—"इस चित्र में चित्रकार (मोलाराम) ने भाव बड़ी योग्यता तथा दक्षतापूर्वक बतलाये हैं। बनैले पशुओं का भय दो मोरों द्वारा दिखलाया है। मोर स्वयं विचलित हैं। मोरनी भय के मारे भागी हुई मोर की शरण आरही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन दो मोरों के विषय में कुछ लोगों ने मुझ से कहा कि पर्वत के लिहाज़ से ये मोर बड़े हो गये हैं। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि मनुष्यों के लिहाज़ से पर्वत छोटा हो गया है। ऐसे आक्षेप करनेवालों को स्मरण रहे कि इस प्रकार की सच्ची भारतीय चित्रकारी में इन छोटी छोटी बातों का विचार नहीं किया गया। मोर सारे बनैले पशुओं के प्रतिनिधि मानिए अर्थात् मोरों का जोड़ा सब बनैले पशुओं को संकेत करता है।

दो गायें कृष्ण की दाहिनी ओर से करुणा और विनीत भाव से देखती हुई लपकी आरही हैं। एक बछड़ा घबराया हुआ कृष्ण की शरणागत हो गया है। वही हाल एक गोप बालक का भी है। कृष्ण उसे आश्वासन दे रहे हैं। कृष्ण का हाथ तो बालक के सिर पर है पर दृष्टि उस बछड़े की ओर है जो अपनी मा से पीछे छूट गया है और जिसकी ओर मुड़कर उसकी मा देख रही है।

इस प्रतिबिम्ब में, जो इतना अच्छा दिखाई देता है, असली चित्र के भाव व सौन्दर्य पूर्णतया प्रकट नहीं होते। असली चित्र इस नक़ल से १० गुना अधिक सुन्दर और भाव-पूर्ण है! दमकती हुई दामिनी की छटा और मूसलधार मेघ-वृष्टि जो मोलारामजी ने अपने चित्र में इतने स्पष्ट-रूप से दिखाई हैं वे इस प्रतिबिम्ब से प्रकट नहीं होतीं। तथापि यह छाया सराहनीय है। उत्तराखण्ड में श्रीनगर (गढ़वाल) है। इस ढँग के चित्रों पर मुसलमानी चित्रांकणविधि का प्रभाव माना जाता है। पर इस चित्र पर इस ईरानी प्रभाव की शंका नहीं की जाती क्योंकि यह ऐसे स्थान पर बना है जहाँ मुसलमानों से कुछ सम्पर्क न था और चित्रकार एक हिन्दू राजा के दरबार की छाया में रहता था। इस पर मुसलमानी झलक कुछ है तो नन्दराव के आभूषणों के पहिनाव पर है। इसका कारण यह है, कि उस समय सभ्य लोगों में इस पहिनाव का प्रचार था। इस चित्र के रचयिता मोलारामजी के पूर्वज तथा उनका चित्र इसी ढँग की पोशाक पहिने हैं। दिल्ली से औरंगज़ेब की मारकूट के समय ये लोग दिल्ली से श्रीनगर चले आये थे। अतएव नन्दराय की पोशाक पर ही मुसलमानी झलक है।

चित्रकार के पूर्व पुरुष दिल्ली से शाहज़ादे सुलेमांशिकोह के साथ श्रीनगर (गढ़वाल) में आये थे। राजसिंहासन का भूखा औरंगज़ेब प्रायः सभी भाइयों को मार व मरवा चुका था। दाराशिकोह जो गद्दी का हक़दार था उसका कटा सिर* औरंगज़ेब देखही चुका था। दारा के पुत्र सुलेमानशिकोह को मारकर उसने निष्कंटक राज्य करना चाहा। सुलेमान शिकोह विपुल सम्पत्ति लेकर ४० मुसाहिबों के साथ श्रीनगर के राजा फ़तेहशाह महाराज की शरण आया। औरंगज़ेब को जब इस बात का पता लगा उसने फ़तेहशाह को लिख भेजा कि या तो हमारे शत्रु (सलेम †) को वापिस दो या लड़ने का सामान करो। औरंगज़ेब का सामना करना कठिन कार्य था। किसी चाल से सुलेमान शिकोह औरंगज़ेब के हाथ पकड़ाया गया।

इस चित्र के रचयिता श्रीयुत मोलारामजी के पूर्वज शामलदास केहरदार जो दिल्ली से सलेम के साथ आये थे उन्हें फ़तेहशाहजी ने अपनेही यहाँ रख लिया। इन लोगों को ६० गाँव की जागीर और ५) रोज़ाना दिया जाने लगा। यह जागीर इन लोगों के वंश में गोरखालोगों के राज्य तक रही पर इस ज़िले के अँगरेज़ों के अधीन (१८१५) हो जाने पर यह जागीर जाती रही।

ये लोग जाति के तोंवर राजपूत थे। चित्र-विद्या में इनका बड़ा अनुराग था। नक़्क़ाशी और मूर्ति-तक्षण इत्यादि के ठप्पे वग़ैरह हज़ार इनके पास थे। परन्तु यह स्पष्ट रूप से अभी विदित नहीं हुआ

* इस विषय पर कलकत्ते के सुप्रसिद्ध चित्रकार अवनींद्रनाथ ठाकुर ने बड़ा अच्छा चित्र बनाया है।

† चित्रकार मोलाराम लिखकर जो काग़ज़ पत्र कविता छोड़ गये हैं उनमें सुलेमान शिकोह का नाम सलेम लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि ये लोग स्वयं चित्रांकण करते थे या नहीं। जो हो; इनकी पाँचवीं पुस्त में मोलाराम एक विलक्षण पुरुष उत्पन्न हुए। इनका जन्म संवत् १८१७ में हुआ था।

मोलारामजी ने कई चित्र बनाये जो अब भी उनके पोते बालकराम शाह के पास हैं 'गोवर्धन-धारण' भी इन्हीं चित्रों में से एक है। यदि बालकराम शाहजी की कृपा रही तो और भी उत्तम उत्तम चित्र सरस्वती के पाठकों की भेट होंगे। मोलारामजी के बनाये हुए कुछ चित्र मैं अँगरेज़ी के अद्वितीय मासिकपत्र "माडर्न रिव्यू और बंग-भाषा की सर्वोत्तम मासिक पुस्तक "प्रवासी" में भी प्रकाशित करा चुका हूँ। इस बात का यत्न किया जारहा है कि प्रयाग की प्रदर्शनी में भी मोलारामजी के कुछ चित्र दिखलाये जायँ। मोलारामजी ७३ वर्ष की अवस्था में स्वर्गलोक को सिधारे। मोलाराम जी चित्रकार के अतिरिक्त फ़ारसी के पण्डित और हिन्दी के अच्छे कवि भी थे। इनकी ईश्वर-भक्ति व देवी-उपासना असीम थी। इनके पुत्र लालाराम और नाती आत्मारामजी तक चित्रांकण इनके ज्ञान दान में जारी रहा तत्पश्चात् उत्साह न मिलने के कारण उन लोगों ने यह काम छोड़ दिया। इनके वंशज फ़तहराम शाह और तुलसीराम शाह को अवकाश मिलता तो शायद वे भी अच्छे चित्रकार निकलते।"

६—गोवर्धन-धारण-विषयक प्राचीन कवियों की उक्तियाँ *।

भौंहनि कमान तान फिरति अकेली, बधू!
तापै ये विसिख कोर कज्जल भरै है री!
तोहिँ देखि मेरेहू गोविन्द मन डोलि उठै,
मघवा निगोड़ो उतै रोष पकरै है री!॥
बलि बलि जाहुँ वृषभानु की दुलारी!
मेरो नेक कह्यो मान, तेरो कहा बिगरै है री।
चंचल चपल ललचौंहैं दृग मूँद राखि,
जौ लौं गिरिधारी गिरि नख पै धरैहै री!॥१॥

सबही के गोधन है, सबही के बाला बाल,
सबही को परी आय प्रानन को भीर है।
सबही पैं बरषत गोलाधार मेह यह,
सबही की छाती छेद पारत समीर है।
मेरेहो अनोखो यह बेटा है कि माँग आन्यो
बोझिल पहार तरे कोमल शरीर है।
गिरिया के कर तैं धरीक किन लेय कोऊ
सबही अहीर पै न काहू हीर पीर है॥२॥

लोपे कोपे इन्द्र लौ रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै गो गोपी गोपाल॥३॥
डिगत पानि डिगलात गिरि लखि सब व्रज बेहाल।
कंप किसोरी दरस कै खरे लजाने लाल॥४॥
प्रलय करन बरखन लगे जुरि जलधर इक साथ।
सुरपति गर्व हर्‌यो हरखि गिरिधर गिरिधरि हाथ॥५॥

(बिहारी लाल)

* पण्डित पद्मसिंह शर्म्मा प्रेषित।

७—इस अङ्क के चित्र।

इस अङ्क में प्रकाशित बहुतेरे चित्रों की चर्चा लेखों में होचुकी है। केरन-निवासिनी कन्यायें उत्तर वर्मा की हैं। वर्मीय रमणी के चुरुट को ज़रा गौर से देखिए। वहाँ की स्त्रियाँ कैसे बड़े बड़े चुरुट पीती हैं। अकबरी दर्बार में निम्न-लिखित नवरत्नों के चित्र हैं।

१ हकीम महमान, २ राजा टोडरमल, ३ राजा मानसिंह, ४ राजा वीरबल, ५ मुल्लादोपियाज़ा ६ फ़ैज़ी, ७ अबुलफ़ज़ल, ८ मिर्ज़ा तानसेन और ९ नवाब ख़ानख़ाना (बैरमख़ाँ)

८—अशुद्धि-संशोधन।

जुलाई की सरस्वती में "वसन्तवियोग" के २५ वें छन्द का तीसरा चरण पूरा यों है:—

"पृथ्वी", "पानी", पवन "प्रभा" "नभ" विदित "क्रिया" "अभिधान" "बनाव"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—पावस आगमन।

चातक समूह बैठे बोलन को बाये मुख,
नाचन को मोर ठाढ़े पाँवही उठाये हैं।
"पूरनजू" पावस को आगम सुखद जानि
आनँद सों वेलिन के हिये लहराये हैं॥
द्रोही द्रुमजातिकेरे! अरक जवास एरे!
तेरे जरिबे के अब घोस नियराये हैं
हीतल महीतल को शीतल करनहारे *
देखु कैसे प्यारे घन कारे घेरि आये हैं॥ १॥

अवली बकन की विमल दरसाये देत,
चहूं ओर छाये देत घटा घनी काली हैं।
इन्द्र को धनुष सप्तरंगी दरसाये देत,
धरापर देत सरसाये हरियाली है॥
पावस सुहायो निज आगम जनाये देत,
धोय के बहाये देत ग्रीषम विहाली है।
मोरन के शोरन सों कानन रमाये देत,
झंझा की झकोरन झुमाये देत डाली है॥ २॥

भाँति भाँति फूलन पै भूलन भ्रमर लागे,
कालिंदी के कूलन पै कुंजन अपारन में।
इन्द्र की बधूटिन के वृन्द दरसान लागे,
मोद सरसान लागे मोरन पुकारन में॥
दामिनि छटा सों घटा गाजन अथोर लागी,
राजन हिलोर लागी सरिता की धारन में।
फूले बन फूले मन आनँद भरन लागे,
झूले लागे परन कदंबन की डारन में॥ ३॥

(पूर्ण)

चलन हिंडोरे की कदम्बन हलाये देति,
फूलन बिछाये देति झूकनि की झमकनि।
मोतिन की माल बकपाँतिन उड़ाये देति,
भूषन पराये देति जीगन की चमकनि॥
ललित सुगान तान पिक सरमाये देति,
भौरन भ्रमाये देति केशन की लमकनि।
स्यामरे सलोने कान्ह मेघन हराये देति
कामिनि दबाये देति दामिनि की दमकनि (४)

(ललित)

* अन्योक्ति।

मनोरञ्जक श्लोक।

प्राचीन काल में जब संस्कृत-साहित्य उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा था उस समय कई बड़े बड़े बौद्ध कवि हो गये हैं। इनमें एक धर्मकीर्ति नाम का कवि बड़ा आलङ्कारिक और दार्शनिक हो गया है। उसने कोई उत्तम ग्रन्थ लिखा था जिसकी यथोचित समालोचना न देख कर और अतएव विकल होकर उसने यह अद्भुत श्लोक लिखा है—

शैलैर्बन्धयतिस्म वानरभटैर्वाल्मीकिरम्भोनिधिं
व्यासः पार्थशरैस्तथापि नतयोरत्युक्तिरुद्भाव्यते।
वागर्थौ च तुलाधृताविव तथाप्यस्मत्प्रबन्धानयं
लोको दूषयितुं प्रसारितमुखस्तुभ्यं प्रतिष्ठे! नमः॥

अर्थात् वाल्मीकि मुनि ने बानरों द्वारा लाये हुए पर्वतों से समुद्र को बँधवा दिया और व्यास मुनि ने अर्जुन के बाणों से भी ऐसा ही किया तथापि इनकी ऐसी बातों को कोई अतिशयोक्ति नहीं समझता—परन्तु मेरे ग्रन्थों को जिनके शब्द और अर्थ मानों नाप जोख कर रक्खे हैं दूषित करने के लिए जो लोग मुँह बाये हुए हैं सो हे प्रतिष्ठे! तुम्हें ही नमस्कार है। उचित समालोचना न होने से यही हालत होती है!

पाण्डेय भगवतीप्रसाद।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ११] १ सितंबर, १९१०। भाद्रपद कृष्ण १३, १९६७। [संख्या ९

लंदन से स्काटलैंड।

स्टर की छुट्टियों में हम स्काटलैंड पहुँचे। इतिहास-जाननेवालों को स्काटलैन्ड कोई नई बात नहीं है। पर जो कुछ हमने देखा सुना वह कदाचित् हमारे पाठकों को कुछ रोचक हो।

रात के दस बजे हम ग्रेट नार्दर्न रेल (G.N.R.) से उत्तर की ओर रवाना हुए। हमारी गाड़ी में केवल तीसरे दर्जे के डिब्बे थे। पर ये हमारे यहाँ के पहले दर्जे से भी कहीं बढ़कर थे। कौन सा आराम था जो इस दर्जे में न था। सोने बैठने को ख़ासे स्प्रिंगदार गद्दे थे। डिब्बे को गरम करने के लिए स्टीम था। खिड़कियों में परदे थे। सामान रखने को पृथक् प्रबन्ध था। टहलने को ख़ूब लम्बा रास्ता था। दर्वाज़े पर नौकर को बुलाने के लिए घंटी लगी थी। डिब्बे के अंत में पायख़ाना था। इसके निकट हाथ मुँह-धोने को ठंडा-गरम-पानी, साबुन और तौलिया रक्खी थी। रेल में खाने पीने का सब सामान था जो नौकर को बुलाने से अपने डिब्बे में आसकता था। इसके सिवा खाने का भी एक कमरा अलग था। मुँह देखने को शीशे भी लगे थे। जिसको कम्मल या तकिये की ज़रूरत होती थी वह छः आने देने से मिल सकते थे। इन चीज़ों को सफ़र के अंत तक काम में ला सकते हैं। रेल की ओर से ये किराये पर मिलती हैं। निदान हर तरह का सुभीता रेल में मौजूद था। बाहर जाने की कोई आवश्यकता न थी।

न्युकासिल (Newcastle)

सवेरे न्युकासिल पहुँचे। यह नगर कोयले के लिए जगत् में प्रसिद्ध है। Tyne टाइन नदी पर बसा है। मनुष्य-संख्या लगभग सवा दो लाख है। बीच नगर में कोयले की खान हैं। यहाँ का स्टेशन संसार में एक बड़ा स्टेशन समझा जाता है। शहर पहाड़ियों पर बसा है। मकान, सड़कें, ट्राम इत्यादि सब लन्दन से मिलते हैं। पर मनुष्यों के उच्चारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बहुत भेद मालूम पड़ता है। स्टेशन में स्टीफेनसन Stephenson का बनाया हुआ एक ऐंजिन अभी तक रक्खा है। स्टीफेनसन वही आदमी है जिसने प्रथम रेल का ऐंजिन निकाला था। नगर में इसका एक बड़ा ऊँचा स्मारक बना है। थोड़ी दूर चलकर उसकी झोंपड़ी है जहाँ वह रहा करता था। न्युकासिल के पास Tyne टाइन नदी का एक विचित्र पुल बना है जिसमें क़रीब एक करोड़ रुपये ख़र्च हुए थे। न्युकासिल के लोग लिबरल हैं। यहाँ टोरियों की नहीं चल पाती।

सर वाल्टर स्काट की भूमि।

न्युकासिल से रवाना होकर चार घंटे के बाद प्रसिद्ध उपन्यासलेखक और कवि सर वाल्टर स्काट (Sir Walter Scott) के प्रदेश में प्रवेश किया। स्काट ने अपनी लेखनी द्वारा स्काटलैंड के इस विभाग को ऐसा प्रसिद्ध कर दिया है कि आज सारे संसार के लोग इसे देखने आते हैं। न्युकासिल से तीन चार स्टेशन आगे हमारे साथियों ने इशारा करके बताया कि ये ऊँचे टीले Druids ड्रूइड लोगों के हैं जिन पर खड़े होकर वे सूर्य की पूजा करते थे। कुछ दूर चलकर हेसनडीन Hassenden स्टेशन आया। यहाँ से भारतीय बड़े लार्ड मिन्टो Minto की रियासत शुरू होती है। इस रियासत पर जहाँ तक नज़र पहुँच सकी वहाँ तक हमें ऊँचे पहाड़ और खेत दिखाई दिये। हरियाली बहुत कम थी। खेती यहाँ जौ और ओट (Oats) की होती है। इलाक़ा कितना बड़ा है सो मालूम नहीं हुआ। दूसरा स्टेशन एडनम Ednam था जिसके निकट कवि टामसन Thompson ने "ऋतु" (Seasons) नाम की कविता लिखी थी।

मैलरोज़ Melrose।

अनुमान ११ बजे दिन को हम मैलरोज़ पहुँचे। गाड़ी से उतर कर सामान स्टेशन में रक्खा और गाँव वग़ैरा देखने को निकले। दिन बहुत साफ़ था। जाड़े का नाम न था। गाँव कुछ बड़ा नहीं है। बीच गाँव में पुराना गिरजाघर है जिसके देखने को छः आने देने पड़ते हैं। गिरजाघर अब गिरी दशा में है। केवल दीवारें रही हैं। भीतर जाकर उस पत्थर को देखा जिस पर बैठकर स्काट ने "Lay of the Last Minstrel" ले आफ़ दी लास्ट मिन्सट्रल" नाम की कविता का कुछ भाग लिखा था। इस कविता में इस गिरजाघर और ट्वीड Tweed नदी का हवाला बहुत कुछ है। ट्वीड गाँव के किनारे से बहती है। इसका पाट बहुत छोटा है। एक पार से दूसरे पार जाने को झूले (Suspension Bridge) का पुल बंधा है जिसपर केवल पथिक आ जा सकते हैं। चलने से पुल हिलता है। यह पुल सन् १८२६ ईसवी में बनाया गया था।

एबट्सफ़र्ड Abbotsford।

मैलरोज़ से चलकर उत्तर की ओर दो मील पर एबटसफ़र्ड नाम का छोटा सा गाँव है। यह भी ट्वीड-तट पर बसा है। इसके आस पास ऊँची ऊँची पहाड़ियाँ हैं। कहीं कहीं हरे खेत हैं। मैलरोज़ से एबटसफ़र्ड जाने को पक्का रास्ता बना है। हम लोग पैदल ही चले। वैसे मोटर और दूसरी गाड़ियाँ भी किराये पर मिलती हैं। एबट्सफ़र्ड स्काट ही ने बसाया था। गाँव से थोड़ी दूर पहाड़ के नीचे एक अति मनोहर स्थान पर स्काट का बड़ा मकान बना है। मकान के आगे पीछे सुन्दर बाग़ लगे हैं। सामने से ट्वीड नदी मन्द मन्द बह रही है। चारों ओर ऊँचे पहाड़ और वृक्ष दिखाई देते हैं। मकान और ट्वीड के बीच हरी घास का ख़ूबसूरत कालीन सा बिछा है। सन्नाटा ऐसा है कि सिवा ट्वीड के मन्द-प्रवाह के कहीं से किसी की आवाज़ नहीं आती। भला ऐसे स्वर्गवत् स्थान में बैठ कर स्काट अपने दिमाग़ी घोड़े न दौड़ाता तो और कहाँ दौड़ा सकता था? ऐसे रम्य स्थान को देखने से मृत लेखनी में भी जान आ जाती है। किस सामग्री की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्काट की कमी थी ? प्रकृति का सोलह आना सौन्दर्य यहाँ मौजूद है। प्रकृति के साथ साथ सांसारिक सामान का पूरा जमाव था। स्काट के पुस्तकालय में २० सहस्र पुस्तकें हैं जिनमें कई ऐसी हैं जो शायद कहीं मिल सकें। ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच, अँगरेज़ी इत्यादि भाषाओं की पुस्तकें यहाँ मौजूद हैं। पुस्तकालय बहुत ही अच्छा सजा है। चारों ओर प्रख्यात लोगों के चित्र टँगे हैं। बीच बीच में कई चीज़ें ऐसी हैं जो दूसरों ने उसे दी थीं या ख़ुद उसने संग्रह की थीं। निदान सारा मकान ऐसा साफ़ और सुन्दर है मानों कल ही बना था। भारत की भी कोई कोई बस्तुयें दिखाई दीं जो उसका लड़का लाया था। इसका लड़का सेना में अफ़सर था। इस पुस्तकालय में उस समय के धुरन्धर लेखक, जैसे वर्डसवर्थ, साउदे, जैफरी, मोर, अरविंग, इत्यादि स्काट से साहित्य पर वार्तालाप किया करते थे। आज यह स्थान मक्का, काशी और जैरूसलम हो रहा है, जहाँ संसार के चारों कोनों से लोग यात्रा करने आते हैं। हमने कई अमेरिकन और जर्मन लोगों को देखा। उष्ण काल में दर्शकों की अपार भीड़ रहा करती है। यह विशाल गृह स्काट ने अपनी लेखनी की आमदनी से बनाया था। कई लाख की इमारत है। इसका फ़र्श संगमरमर का है। ऊपर बड़े बड़े क़ीमती कालीन बिछे हैं। इस मकान की मालकिन अब उनकी परपोती हैं, जो लन्दन में रहा करती हैं। इसकी देख रेख उन्हीं के ज़िम्मे है। स्काट बड़े ठाट से रहा करता था। वह बहुत मिलनसार था। उस समय के प्रसिद्ध लोग उसके मित्र थे। उसका समय बड़ा अमूल्य था। बड़े तड़के उठकर नाश्ता तक लिखना पढ़ना पूरा कर चुकता था। स्काट साधारण स्वभाव का होने से नौकर-चाकर सब को बराबरी का समझता था। उसके सईस, माली और क्लर्क की तस्वीरें, जो उसके कमरे में टँगी हैं, इसकी साक्षी हैं। छोटे छोटे बच्चे और कुत्तों का भी उसे शौक़ था। पुस्तकालय के बाज़ू के कमरे में लकवा से उसका देहान्त सन् १८३२ में हुआ। आज उसके बिना सारा मकान उजाड़ सा दिखाई देता है। इस मकान की दिखाई एक शिलिंग याने १२ आने हैं। तस्वीरें मोल लेनी हों तो अलग क़ीमत देनी चाहिए। इस देश में यह नियम सा है कि कहीं भी पुरानी चीज़ें देखने जाओ, थोड़ी बहुत दक्षिणा अवश्य देनी पड़ती है। यह बात कदाचित् दूसरे देशों में नहीं है। कुछ सप्ताह हुए हम पैरिस देखने गये थे। वहाँ बड़ी बड़ी पुरानी इमारतें इत्यादि देखीं पर किसी ने एक कौड़ी तक नहीं ली। इसलिए यहाँ ऐसी बातें देखने में कितनाही ख़र्च पड़ जाता है। कोई प्रदर्शिनी देखने जाओ तो कहने को देखने की फ़ीस एक शिलिंग है पर भीतर जाने से कई शिलिंग ख़र्च हो जाते हैं। न ख़र्च करो तो देखना कुछ काम का नहीं।

ड्राइबर्ग Dryburgh।

ड्राइबर्ग उस स्थान का नाम है जहाँ स्काट की समाधि है। यह जगह आक्सफ़र्ड से दस बारह मील है। रेल का स्टेशन है। स्टेशन से समाधि डेढ़ मील पर सघन जंगल में एक ऊँचे टीले पर ट्वीड Tweed नदी के तट पर है। जिस स्थान में समाधि है वहाँ पहले एक पुराना गिरजाघर था जो अब बाहिरी दीवारों के खँडहर हैं। यहाँ वही एक शिलिंग दक्षिणा देखने की देनी पड़ती है। ट्वीड नदी को एक झूले के पुल द्वारा पार कर जाना पड़ता है। पुल के पास कवि टामसन की मूर्ति है। यहाँ इसने "Winter" विन्टर (शीत-ऋतु) नाम की कविता लिखी थी। कुछ दूर ऊपर पहाड़ी पर Wallace वालैस की विशाल मूर्ति खड़ी है। वालैस स्काटलैंड का प्रख्यात देशभक्त योद्धा था। भीतर गिरजे में जाकर स्काट की क़ब्र देखी। इस देश में नामी लोगों का दफ़न गिरजों में होता है। हमारे देश-भाइयों को ज़रा आश्चर्य मालूम होगा इसलिए हमने इस बात को साफ़ कर लिखना ठीक समझा। क़ब्र की कोठरी का चित्र देखने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ अच्छा दिखाई देता है पर यथार्थ में वह बहुत बुरी दशा में है। कभी कोई मरम्मत नहीं होती। दीवारों के पत्थर टपक रहे हैं। मकरजाला छाया है। आस पास घास जमा है। देखकर शोक हुआ। ऐसे विख्यात पुरुष की समाधि की यह दशा! सामने नीचे के द्वार पर जो लोहे के सींकचे दिखाई देते हैं उन्हीं के भीतर स्काट की समाधि है। पहले उसकी स्त्री की है जो उसके पूर्व सन् १८२६ में मरी थी। फिर उसके निकट स्काट की है। इस पर इसके मरने का सन् १८३६ लिखा है। स्काट के निकट उसके बड़े लड़के की है जो सन् १८७७ में मरा था। यही लड़का भारत में सैनिक अफ़सर था। दूसरे लड़के का पता नहीं क्या हुआ। इन तीनों के बाज़ू स्काट का दामाद और उसकी जीवनी-लेखक लाकहर्ट गड़ा है। ड्राइबर्ग जाते समय पहले पड़ता है इससे पहले इसे देखकर मैलरोज़ और मैलरोज़ से अबट्सफ़र्ड देखना चाहिए। अबट्सफ़र्ड से लौटकर फिर मैलरोज़ से रेल गाड़ी द्वारा एडिनबर्ग जाना चाहिए। तीनों स्थान एकही दिन में आसानी से देखे जा सकते हैं।

यहाँ हम रेल के कर्म्मचारियों की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। इन लोगों ने हमारे साथ ऐसा बर्ताव किया जो हमारे देश में छोटे लाट से किया जाता है, बल्कि कहीं अधिक। हम लिख चुके हैं कि पहले जाते समय ड्राइबर्ग देखते हुए दूसरे स्थान देखना चाहिए। पर हमने ऐसा करने की अपेक्षा उलटा किया। कारण कि हमें किसी ने ठीक रास्ता नहीं बताया। हमको एक ही दिन में तीनों स्थान देख सीधे एडिनबर्ग जाना था। इसलिए हमने मैलरोज़ से फिर गाड़ी ली और वहाँ से ड्राइबर्ग देखने गये। साथ में कुछ सामान था इसे मैलरोज़ स्टेशन पर छोड़ दिया क्योंकि लौटकर फिर वहीं हो जाना था। लौटते समय हमने गाड़ी के गार्ड से कहा कि हम अपना सामान मैलरोज़ छोड़ आये हैं इसलिए कृपा कर हमें उसे उठा लेने देना। उसने कहा बहुत अच्छा। गाड़ी इस स्टेशन पर केवल दो मिनट ठहरती है। अभाग्य से प्लेट फ़ार्म दूसरी ओर था। इसे पहुँचने के लिए पुल पार करना पड़ता था। हम सामान लेने दौड़े। वहाँ देखा तो कमरा बन्द है जिसमें सामान था। स्टेशन मास्टर से कहा, वह बेचारा दौड़ा आया और झट ताला खोल हमें सामान दिया। यहाँ दो मिनट हो चुके, गाड़ी खड़ी है। हमें सामान लेकर पुल पार करना है। स्टेशन मास्टर ने एक क्लर्क से कहा, तुरन्त सामान ले उस पार रख आओ। वह और हम कड़बड़ कड़बड़ पुल पर से उतरे। गार्ड भला-मानस डिब्बे का द्वार खोले खड़ा था फ़ौरन हमको भीतर कर गाड़ी चलने की सीटी बजाई। हमने जल्दी जल्दी में थोड़े शब्दों में उसे धन्यवाद दे पाया। दूसरे स्टेशन पर हमसे पूछने आया क्या आपका सामान सब आ गया? हमने कहा, हाँ, धन्यवाद। गाड़ी को क़रीब ६ मिनट की देर हो गई थी। हम उसकी इस कृपा को कभी नहीं भूल सकते। भारत में हम कई रेलों से यात्रा करने गये पर गाड़ी खड़ी करनी दूर रही, धक्के भी खाने पड़े। भगवान् जाने ये बातें हमारे देश में कब होंगीं। लौटते समय हम एक Junction जंकशन पर एक आदमी से बातें करने लगे, इतने में गाड़ी ने सीटी दी, हम घबराते हुए भागे और एक डिब्बे में जा घुसे। सामान हमारा दूसरे डिब्बे में था। दूसरे स्टेशन पर हमने गार्ड से कहा—हमने अपना सामान किसी डिब्बे में रख दिया है क्या कृपा कर ढूँढ देंगे? उसने कहा कुछ चिन्ता नहीं, आगे के स्टेशन पर आपको मिल जायगा। लीजिए बेचारा हमारा बैग bag लिये आ गया। हमने उसे बहुत धन्यवाद दिये।

एडिनबर्ग Edinburgh।

सन्ध्या के आठ बजे एडिनबर्ग पहुँचे और एक हिन्दुस्तानी भाई के पास ठहरे जो डाक्टरी पढ़ रहे हैं। आप मैसूर-निवासी हैं। एडिनबर्ग एक छोटा साफ़ सुन्दर शहर है। इसकी लोग Athens एथेन्स से उपमा देते हैं। एथेन्स हमने नहीं देखा है पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

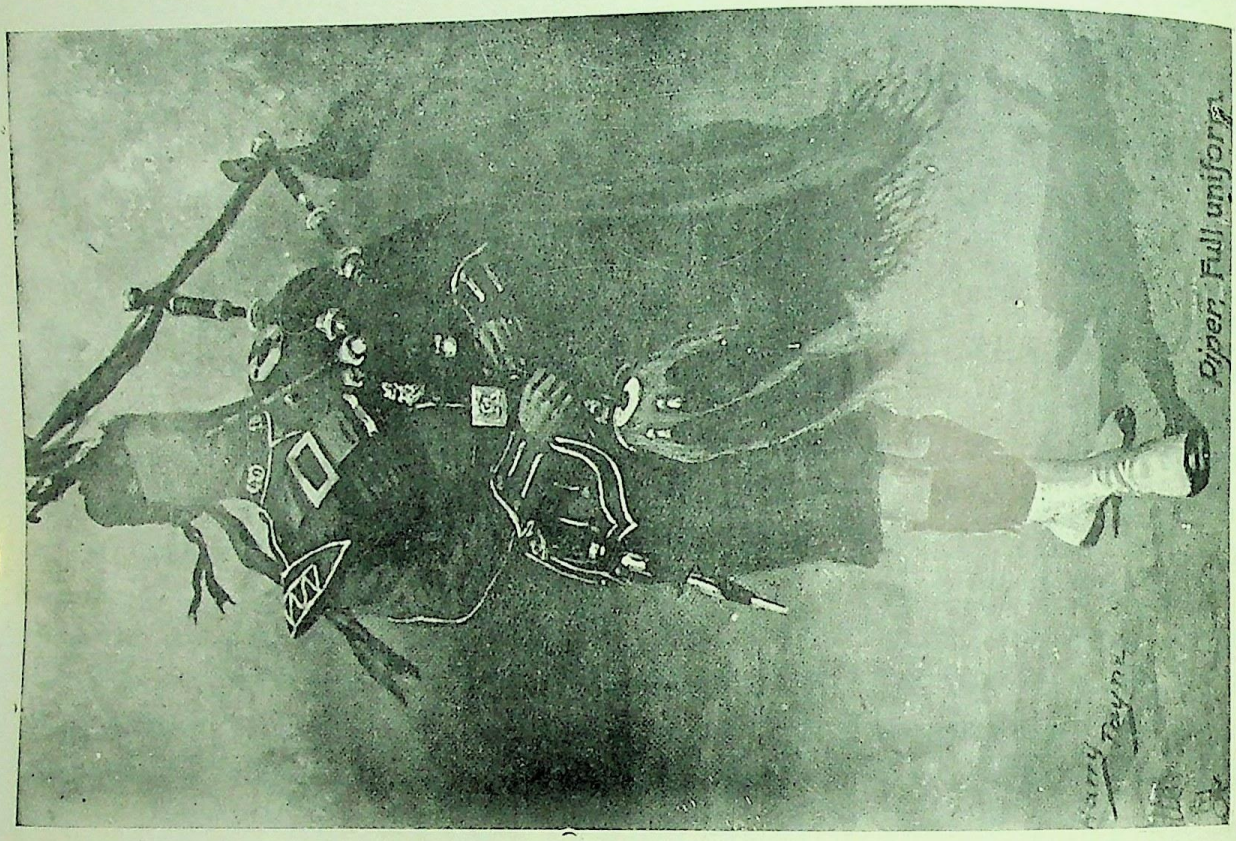

हाइलेंडर स्काटलैंड का सैनिक।

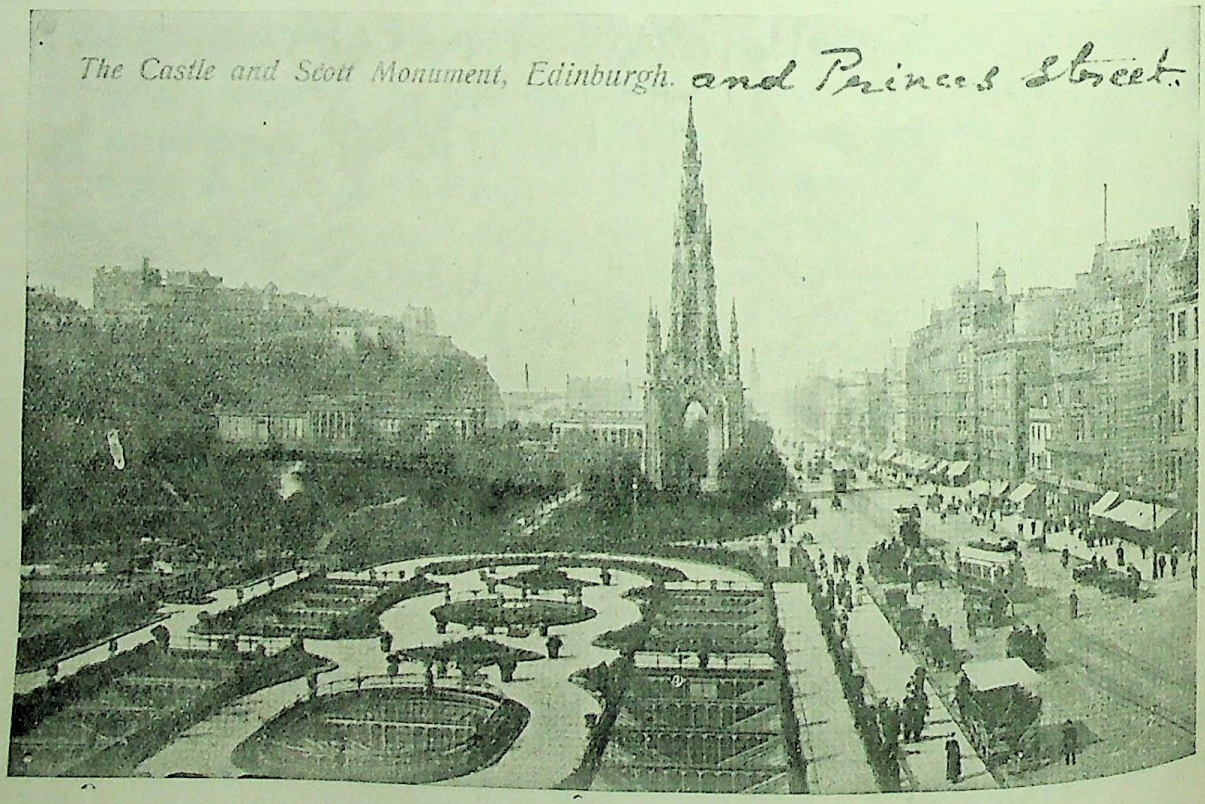

स्काट-स्मारक और प्रिंसेस स्ट्रीट।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेरिस के मुक़ाबले में वह कुछ नहीं है। इसकी मनुष्य-संख्या कुछ ऊपर तीन लाख है। पहाड़ियों पर बसा है। मकान लंदन के मकानों से भी ऊँचे हैं। कहने का मतलब यह है कि प्रायः सम्पूर्ण नगर में एक से एक ऊँचे मकान हैं। लंदन में ख़ास ख़ास जगह में हैं। मकानों की औसत ऊँचाई पाँच-मंज़िले होगी। मकान सब पत्थर के बने हैं क्योंकि पहाड़ी देश होने से पत्थर बहुतायत से मिलता है। कोई कोई मकान बहुत नये तर्ज़ के हैं जैसे यहाँ भी नहीं। खिड़कियाँ और दर्वाज़े खोलने और बन्द करने के बिलकुल नये तरीक़े हैं। लन्दन में दर्वाज़े पर खटखटों के बाद भीतर से कोई खोलने आता है। वहाँ बाहर से घंटा का बटन खींचना पड़ता है खींचते ही शब्द भीतर पहुँचता है। मालिक मकान ऊपर से कुंजी द्वारा खोल देता है, दर्वाज़े तक नहीं जाना पड़ता, चाहे कितने ही ऊपर हो। नीचे के दर्वाज़े से ऊपर हर एक मँज़ले से इसी प्रकार का सम्बन्ध है। इसी भाँति खिड़कियों के शीशे साफ़ करते समय वे बड़ी सुगमता से खुल सकती हैं। ये बातें यहाँ देखने में नहीं आतीं। एडिनबर्ग में सड़कें बहुत चौड़ी और साफ़ रहती हैं। सड़कों पर थूकने की सख़्त मनाही है। लन्दन की भाँति वहाँ ट्राम्स इत्यादि हैं। पर ट्यूब Tube नहीं हैं। ट्राम-गाड़ियाँ अलबत्ता पुराने ढँग की हैं; न जाने ये क्यों नहीं बदली गईं। किराया बड़ा सस्ता है। एक छोर से दूसरे छोर तक एक या डेढ़ आने में जा सकते हो। बहुत हिस्सों में सड़कें पत्थरों से पटी हैं जिन पर घोड़ा-गाड़ी की आवाज़ से कान फूटे जाते हैं। आप लोगों को भी ऐसे कड़े रास्ते पर चलने से कष्ट होता है। एडिनबर्ग में Princes Street प्रिंसेज़स्ट्रीट (एक सड़क का नाम) बड़ी चौड़ी और ख़ूबसूरत समझी जाती है। यह अनुमान पौन मील लम्बी है। इसके किनारे बड़े बड़े मकान और दूकानें हैं जैसे Waverley वेवरली होटल, जनरल पोस्ट आफ़िस, चित्रशाला, स्काट का स्मारक-चिह्न इत्यादि। स्काट का स्मारक चित्र में देखिए। नीचे स्काट की मूर्ति है। हाथ में पुस्तक लिये बैठा है। यह स्मारक २०० फ़ुट से ऊँचा है और बड़ा सुन्दर है। कई लाख में बना था। इसके ऊपर भी लोग एक आना देकर जा सकते हैं। इस स्मारक के एक ओर सुन्दर बाग़ीचे हैं जो कासल Castle (गढ़ी) पर से देखने में बड़े सुहावने मालूम पड़ते हैं। ऊँचे टीले पर जो बड़ा मकान दिखाई देता है वहीं गढ़ी है। यहाँ से सम्पूर्ण शहर अच्छी तरह दिखाई देता है। यह पुराने राजाओं का निवास-स्थान था और अब वहाँ कुछ सेना रहती है। यह दुर्ग बहुत सीधा और ऊँचा है। महारानी मेरी के आभूषण यहाँ अभी तक रक्खे हैं जो छः आने देने से देख सकते हैं। गढ़ी कोई बहुत लम्बी चौड़ी नहीं है। इसके आस पास गहरी खाई है पर उसमें पानी नहीं है। ऊपर से दोपहर को तोप दगती है। गढ़ी पर पुरानी तोपें भी रक्खी हैं। बाहर फाटक के एक अच्छा परेट के लिए पक्का मैदान है जहाँ सुबह शाम गोरे क़वायद किया करते हैं। इसके एक ओर एक पत्थर का स्मारक है जिस पर दक्षिण अफ़्रीका के संग्राम में मरे हुए अफ़सरों के नाम लिखे हैं। हमारे यहाँ के ग़दर का भी स्मारक बना है और उस पर ग़दर में मारे गये गोरों के नाम खुदे हैं। प्रिंसेज़ सड़क एक तरफ़ प्रसिद्ध स्काच और अँगरेज़ों की घुड़सवार और खड़ी बैठी मूर्तियाँ हैं। इस सड़क से मिलती हुई कई सड़कों के चौराहों पर भी इसी प्रकार मूर्तियाँ रक्खी हैं। यह इस नगर में एक विचित्र बात है जो कई जगह देखने में नहीं आती।

और कई देखने योग्य स्थान।

एडिनबर्ग स्काटलैंड की पुरानी राजधानी थी। इसलिए यहाँ पार्ल्यामेंट भी थी। पार्ल्यामेंट लंदन उठ आने से अब वह स्थान कचहरियों का काम देता है। इन कचहरियों में स्काट कुछ दिन हेड क्लार्क रहा था। यह भवन इतना भारी नहीं है जितना कि यहाँ की पार्ल्यामेंट का है। इसके निकट सेंट ज़ाइल्स चर्च St. Giles Church है जिसमें जान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाक्स John Knox नामी धार्मिक उपदेशक गरजा करता था। इसके पास जाननाक्स की क़ब्र है और थोड़ी दूर पर इसका घर है जहाँ वह रहा करता था। यह एक पुराना सा मकान बहुत हलकी जाति के लोगों के महल्ले में बना है। गिरजाघर के सामने Heart हृदय का चिह्न बना है यह मिडलोदियन Midlothian स्काटलेंड के मध्य स्थान का) के बीचोंबीच का चिह्न है। हृदय का चिह्न सड़क पर एक पत्थर पर बना है जिसे बाहर का आदमी नहीं पहचान सकता। चाहिए था कि इसके आस पास कोई कठहरा सा बना देते। इस स्थान पर पुराने समय में जेलख़ाना था जिसका वर्णन स्काट ने अपनी कविता Heart of Midlothian हार्ट आफ़ मिडलेादियन में किया है। इस स्थान से नीचे की ओर Holyrood हेाली रूड नामक पुराना महल बना है जेा अभी तक अच्छी दशा में है। इसके दरवाज़े पर पहरा रहता है। इस महल में महारानी मेरी का विवाह हुआ था। मेरी के सोने का कमरा व उसका बिछौना अभी तक रक्खा है। वह कमरा भी मौजूद है जिसमें स्पेन Spain का कलावन्त रिज़ियेा Rizzio मारा गया था। कहते हैं रिज़ियेा से मेरी बहुत प्रसन्न थी इसी जलन के मारे उसके पति ने उसे मार डाला। पहले चार्ल्स का राज-तिलक इसी महल में हुआ था। इसके पीछे टूटा-फूटा एक गिरिजाघर है। अब यह महल पार्ल्यामेंट के चुनाव के समय लार्ड लेाग काम में लाते हैं। इसके सामने आर्थर हिल Arthur Hill है। यह पहाड़ी बड़ी ऊँची है जिस पर चढ़ कर दूर दूर तक के स्थान दिखाई देते हैं। यहाँ का अस्पताल बहुत बड़ा है। स्कूल, कालेज मामूली मकान हैं। यहाँ की यूनिवर्सिटी या विश्वविद्यालयों की पढ़ाई-लिखाई हिन्दुस्तान की भाँति होती है। आक्सफ़र्ड और केम्ब्रिज को नहीं पाती। आक्सफ़र्ड केम्ब्रिज में छात्रों के जेा नियम हैं वे यहाँ नहीं। यहाँ जेा जिसके जी में आवे वहाँ रहे। कोई देख-रेख करनेवाला नहीं है। यह स्थान डाकृरी की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध है अतएव दूर दूर से छात्र यहाँ पढ़ने आते हैं। कोई पाँच सहस्र विद्यार्थियों में आधे से अधिक डाकृरी पढ़ते हैं। क़रीब २०० हिन्दुस्तानी छात्र हैं। इनमें से भी बहुत से डाकृरी पढ़ते हैं। जिस दिन Senate Hall सैनेटहाल में डिग्रियाँ दी गई थीं हम वहीं थे। यहाँ का सैनेट हाल ख़ूब लंबा चौड़ा है। आक्सफ़र्ड, केम्ब्रिज इसके सामने कोई वस्तु नहीं हैं। इसमें आसानी से १० सहस्र से ऊपर दर्शक बैठ सकते हैं। उस दिन ३२ स्त्रियेां को कई प्रकार की डिग्रियाँ मिलीं। बहुतों को एम० ए० की डिग्री मिली। दो हिन्दुस्तानी भाई थे। एक मद्रास के मि० नरसिंहम जिन्हें एम० ए० की डिग्री और दूसरे लाला बोधराज चोपड़ा पंजाब के जिन्हें डाकृरी की डिग्री मिली। यहाँ का अजायबघर भी बुरा नहीं है। इसमें हमने अकबर की क़ब्र का नमूना और हिन्दुस्तानी हाथ से पीसने की चक्की देखी। मरी Whale ह्वेल मछली जेा यहाँ रक्खी है वैसी किसी अजायबघर में नहीं देखी गई। उसकी कुल लम्बाई ७८ फ़ुट है।

रासलिन गढ़ी Roslin Castle।

एडिनबर्ग से कुछ मील पर रासलिन गढ़ी है जेा बहुत पुरानी कही जाती है। रेल से एक घंटे का रास्ता है। स्टेशन निकट ही है। गढ़ी अब गिरी दशा में है पर कोई कोई भाग अभी तक अच्छे हैं। क्रामवैल की फ़ौजों ने इसकी धूल उड़ाई थी। इसके पास से एक नाला बहा है। सामने घने जंगल का पहाड़ है। इसमें पाँच खंड हैं और एक हज़ार सिपाहियों के रहने का स्थान है। सबसे नीचे के खंड में रसोईघर था। सब खंडों के बीच से एक बड़ा छिद्र नीचे तक है जिसके द्वारा नीचे से ऊपर भोजन रस्सी द्वारा आ जा सकता था। इसी के पास एक और सूराख़ है जिसमें से नीचे ऊपर के आदमी बिना चढ़े उतरे आसानी से बात कर सकते थे। अस्पताल, पढ़ने, सोने, बैठने, इत्यादि के लिए अलग अलग कमरे बने हैं। एक ओर जेलख़ाना भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसके बाहर एक वृक्ष है जो ७०० वर्ष का है। इसे Yew tree कहते हैं। दर्शक इसके पत्ते तोड़ कर अपने पास यादगार की भाँति रखते हैं। इस गढ़ी का वर्णन स्काट ने अपनी रोसाबैल Rosa belle नामक कविता में किया है। इसकी दिखाई भी छः आने पड़ी और छः आने गढ़ी बतानेवाले को दिये। इसके निकट एक छोटा गाँव है। डेढ़ मील पर जंगल में Hathornden हाथर्नडैन नाम की गढ़ी है। यह उस समय बन्द थी। केवल गरमी में खुलती है। इस गढ़ी में Poet Drummond कवि ड्रूमंड पैदा हुआ था। इससे मिलने को Ben Johnson बैन-जानसन कवि आया था। वह वृक्ष जिसके नीचे दोनों मिले थे अभी तक मौजूद है।

फोर्थ नदी का पुल Forth Bridge।

इस पुल की सूरत-शकल विचित्र है। पर बनावट में अपने ढंग का संसार में एक ही समझा जाता है। इसमें केवल ३ महराबें हैं। सात वर्ष में तैयार हुआ था। डेढ़ मील के क़रीब लंबा है। ऊपर से दो गाड़ी आ जा सकती हैं। चलनेवालों के दोनों ओर अलग रास्ते हैं। इसके बनने में ३५ लाख पौंड ख़र्च पड़ा था। तीन वर्ष में पुताई पूरी हुई थी। सन् १८९० ई० में मृत महाराज एडवर्ड ने इसे खोला था। महाराज लार्ड रोज़बरी के मकान पर ठहरे थे जो इसके पास है। एडिनबर्ग से पाँच मील बाद लार्ड रोज़बरी की रियासत शुरू हो जाती है और ठीक इस पुल पर पूरी होती है। इस रियासत में कई तेल की खाने भी हैं। लार्ड रोज़बरी स्काटलैंड-वासी हैं यह लन्दन में बहुत रहा करते हैं। एडिनबर्ग से कुछ दूर चल कर एक छोटा सा पाँच मील के घेरे में जंगल है। इसके आस पास ऊँची पक्की दीवार बनी है जो आज तक ज्यों की त्यों है। इसका बनवानेवाला रामसे नामी एक धनी मानी गृहस्थ था। यह बड़ा परोपकारी था। कई वर्ष हुए स्काटलैंड में भयङ्कर अकाल पड़ा था। रामसे ने सहस्रों नर-नारियों के प्राण इस दीवार द्वारा बचाये। कहते हैं एक गज़ लंबी चौड़ी और ऊँची दीवार की बनवाई एक पौंड अर्थात् १५) पड़े थे। इस हिसाब से लाखों रुपये ख़र्च हुए। स्काटलैंड में जब एडिनबर्ग से ग्लासगो तक रेल चली तब उसका किराया बहुत था। ग़रीब लोग दे नहीं सकते थे। रामसे ने कई मोटर गाड़ियाँ बिना किराये के चला दीं। रेल को हानि पहुँचने लगी तब उसने आप से आप किराया कम कर दिया इस प्रकार राजा अमान की भाँति इस परोपकारी स्काच की अनेक कहानियाँ हैं। प्रिंसेज़ सड़क पर इसकी विशाल मूर्ति लोगों को उसकी सदैव याद दिलाती रहती है।

ग्लासगो।

एडिनबर्ग से ग्लासगो रेल द्वारा एक घंटे का रास्ता है। इसकी मनुष्य-संख्या १२ लाख के क़रीब है। पर व्यापार अधिक होने से बड़ा मैला रहता है। शहर में धुएं के सिवा कुछ नहीं दिखाई देता। यहाँ जहाज़ बनाये जाते हैं। दूसरे व्यापार भी कई होते हैं। क्लाइड (Clyde) नदी पर बसा है। क्लाइड दरिद्रता में कलकत्ते की हुगली को भी मात करती है। बरसात के पहले झाले का जैसा कीचड़-दार गाढ़ा पानी होता है वही दशा इसके जल की है। यहाँ की ट्रेम गाड़ियाँ एडिनबर्ग से अच्छी हैं। यहाँ का टौनहाल देखने योग्य है। क़रीब ८० लाख रुपये इसमें ख़र्च हुए थे। शहर का उत्तरी भाग साफ़ और सुन्दर है। इसमें एक ओर एक टेकड़ी पर विश्वविद्यालय है। बहुत ऊँचा पूरा मकान है। इसी विश्वविद्यालय के लार्ड कर्ज़न रेक्टर हैं। रेक्टर का काम साल में एक बार एक निबन्ध पढ़ देने का है। इनसे वह भी न बना। आप यहाँ जनरल इलेक्शन में लगे थे। छात्रों ने ख़ूब सुनाई। अन्त में क्षमा माँगनी पड़ी। हमारे यहाँ के छात्रों से और यहाँ के छात्रों में कितना भेद है सो इसी से जाना जा सकता है। जब हम विश्वविद्यालय में पहुँचे उस समय परीक्षायें हो रही थीं इससे बहुत ही थोड़े हिन्दुस्तानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridw

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाइयों को देख सके। यह स्थान एनजिनीयरिंग शिक्षा के लिए प्रख्यात है। ग्लासगो से हम हाई-लेंडस् (उच्चस्थलों) की ओर बढ़े। जाते समय रेल से गये और लौटते समय जल द्वारा आये। हमारी रेल बड़े ऊँचे, टेढ़े मेढ़े पहाड़ों में से बड़े वेग से जा रही थी। एक ओर बड़े ऊँचे पहाड़ और दूसरी ओर कई सौ फ़ुट नीचे झीलें थीं। नीचे देखने से बहुत भय लगता था। झीलों की किश्तियाँ और उनके सवार छोटे छोटे खिलौने से दिखाई देते थे। कई घंटे के सफ़र के बाद हमारी गाड़ी उस स्टेशन पर पहाड़ों के बीच जा खड़ी हुई जहाँ से स्काटलेंड की प्रसिद्ध झील लाक लेामंड (Loch Lomond) शुरू होती है। दिन आज बहुत साफ़ और गरम था। सूर्य का ख़ूब तेज था। चारों ओर ऊँचे पहाड़ थे। कहीं कहीं बर्फ़ के सफ़ेद चादर से बिछे थे। कहीं झरनों का श्वेत जल ऊँचे से वह रहा था। कोई कोई हम में से पहाड़ों पर चढ़ने का प्रयत्न करते थे। चारों ओर सन्नाटा था। प्रकृति का पूरा सौन्दर्य सामने था। यहाँ वहाँ घूमते घूमते हम थक गये और झील के तट रेल पर जा बैठे। यहाँ कई नर-नारी बैठे व लेटे हुए थे। हम सब आपस में गप शप करने लगे। कोई पहाड़ों की सराहना करता था कोई झील के स्वच्छ, स्वादिष्ट शान्त जल की। सामने बैनलेामंड Ben Lomond नामक ऊँचा पहाड़ पुराने समय की याद दिलाने लगा। इसकी ऊँचाई तीन सहस्र फ़ुट से ऊँची है। इसकी गुफाओं में स्काटलेंड का नामी डाकू सरदार राबराय रहा करता था। वह यहाँ से दूर दूर तक धावे मारा करता था। इस भाग को राबराय का प्रदेश कहते हैं। किसकी शक्ति थी जो इसके प्रदेश में पैर रख सकता। कवि स्काट ने राबराय पर बहुत कुछ यहीं ठहर कर लिखा था। राबराय की तसवीर स्काट के मकान में अभी तक टँगी है। इस सब वर्णन को पढ़ कर सहस्रों यात्री इस प्रदेश को देखने के लिए आने लगे। कवि वर्डसवर्थ Poet Wordsworth और उसकी बहिन सबसे पहले पहुँचे। लाकलेामंड झील की लम्बाई २७ मील है। छोटे से छोटे स्थान पर इसकी चौड़ाई एक मील और सबसे अधिक चौड़ाई पाँच मील है। इसके बीच में छोटे बड़े २८ टापू हैं जहाँ गरमी में दूर दूर के लेाग आकर ठहरते हैं। जल इसका मीठा है क्योंकि समुद्र से पृथक है। इसके थोड़ी दूर पहाड़ से उस पार दूसरी झील है जो इससे छोटी है। इसका नाम लाककैटेराइन Loch = Katarine है। स्काट की कविता Lady of the Lake लेडी आफ़ दी लेक का सामान यही झील है। हम इस विषय पर अधिक न लिखेंगे क्योंकि जिन्होंने स्काट के ग्रन्थ नहीं पढ़े उन्हें ये बातें अरोचक होंगी। इतना ही कह देना काफ़ी होगा कि स्काटलेंड का यह भाग बहुत ही मनोहर है। यहाँ आने से सांसारिक झमेले भूल जाते हैं और मन वैराग्य की ओर दौड़ता है।

उपसंहार।

अन्त में हम स्काटलेंड की कुछ फुटकर बातें कहा चाहते हैं। स्काच लेाग बहुधा मिलनसार होते हैं। स्वास्थ्य इन लेागों का बहुत अच्छा होता है। स्काटलैंड में यहाँ लंडन की अपेक्षा सर्दी अधिक पड़ती है। जून से सितम्बर तक यहाँ की शोभा देखने योग्य है। जाड़ा इस समय नहीं रहता। हरियाली भी जहाँ तहाँ पूरी हो आती है। स्त्रियाँ सुडौल और सुन्दर होती हैं। हाईलैंड की स्त्रियाँ बड़ी मज़बूत, मेहनती और सरल होती हैं। यहाँ कपड़े धोने की जो चाल है वह तसवीर से ज़ाहिर है। कहारों की स्त्रियाँ और जवान लड़कियाँ बड़े बड़े टोकने ले शहरों में मछली बेचने आती हैं। इनकी पोशाक़ से ये आसानी से जानी जा सकती हैं। एक कहार की लड़की का नमूना इन चित्रों में मिलेगा। यहाँ के हाईलैंडर की पोशाक का नमूना भी चित्र से मालूम होगा। रास्ते में गाने नाचनेवाली तरुण लड़कियों की तसवीर से ज्ञात होगा कि वे कैसी सुन्दर हैं। स्काच लेागों का उच्चारण अँगरेज़ों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराला है। वे तुतला कर बोलते हैं। देहाती लोगों की भाषा समझना कठिन है। वे निरी स्काच भाषा बोलते हैं। शहर के लोग अँगरेज़ी और स्काच-मिश्रित भाषा बोलते हैं। अँगरेज़ी एक बड़ी विचित्र तरह से खींच कर बोलते हैं। शहरों की स्त्रियाँ Tie Collar टाई कालर लगाती हैं। लन्दन में बहुत थोड़ी स्त्रियाँ टाई कालर बाँधती हैं। स्काटलैंड में विद्या का प्रचार इँगलैंड से अधिक है। एडिनबर्ग में स्काट, बर्न्स, वर्डसवर्थ, आडमग्रे इत्यादि कवि और साहित्य-लेखक रहा करते थे। पर अब उनके मकानों के नाम मात्र चिह्न रह गये हैं। एडिनबर्ग पेंशन-याफ़्ता या आरामतलब लोगों का शहर है। रोज़गार यहाँ बहुत ही कम है। ग्लासगो इसका उलटा है। यहाँ रहने का ख़र्च लन्दन की अपेक्षा कुछ कम पड़ता है। पढ़ाई की फ़ीस भी कम है। सुना है स्काच लोग मद्यपान के बड़े शौक़ीन हैं। इसलिए यहाँ की Scotch whisky मशहूर है। इसका कारण ठंड कहा जा सकता है। पर स्काच लोग बड़े परिश्रमी और साहसी होते हैं। संसार के कोने कोने में फैले हैं। स्काच लोगों का मोटो Motto या मूल-मंत्र "*Nemo me impugne lacesset*" है। अर्थात् "बिना दंड के मुझे कोई नहीं छू सकता"। इनका जातीय चिह्न एक प्रकार का काँटेदार पौदा है, यह हमारे यहाँ की भटकटैया से मिलता है। कहते हैं अँगरेज़ और इन लोगों में जब लड़ाइयाँ हुईं तब जंगल पहाड़ों में अँगरेज़ी सिपाहियों को इस कटीले पौदे ने बहुत हानि पहुँचाई जिससे स्काच लोगों को विजय पाने में बड़ी सहायता मिली। सुना जाता है इसी से यह कहावत चल निकली है। इसके और भी मतलब सुने गये हैं। अधिक लिखने की ज़रूरत नहीं। अपने विद्यार्थी-मित्र द्वारा सुन कर हमको रंज हुआ कि स्कूल और कालेजों में कुछ वर्षों से हमारे और स्काच छात्रों के बीच भेद हो गया है। हम लोग न बालन्टियर हो सकते हैं न उनकी कालेज-सम्बन्धी सभा सोसायटी में शामिल हो सकते हैं। बोर्डिङ्ग हौस और खेल कूद में भी हम लोग इकट्ठे नहीं हो सकते। हमारे मित्र का कहना है कि जो चार पाँच वर्ष पूर्व हमारा मान था वह अब नहीं रहा। इसके कारण लिखने की आवश्यकता नहीं। एडिनबर्ग में हम अपने नागपुरी हिस्लाप कालेज के छात्रप्रिय प्रिंसपल मि० ह्विटन Whitton से मिले। हमें देख आप बहुत प्रसन्न हुए और बड़े आदर से मिले। यहाँ वहाँ कई स्थान दिखाने ले गये। आप बहुत प्रसन्न-चित्त हैं। भारत से इन्हें बड़ी प्रीति है। कहते थे, यदि समय जाने आने में कम लगता तो एक बार और हो आते। आप भारत पर कभी कभी लेकचर देकर हमारी दशा दिखाते रहते हैं। इनके दामाद Dr. Buchanan डा० ब्युकानन, सिविलसर्जन, नागपुर, से भी यहीं मुलाक़ात हुई। आप छुट्टी पर हैं। मध्य प्रदेश के भूतपूर्व चीफ़ कमिश्नर Sir Andrew Fraser सर एंड्रूफ़्रेज़र से भी मिले। आपका नम्र बर्ताव जैसा वहाँ था उससे बढ़ कर यहाँ पाया। आपने हमारी अच्छी ख़ातिर की और प्रान्त का सब हाल पूछते रहे। यों हमारी स्काटलैंड की यात्रा समाप्त हुई।

प्यारेलाल मिश्र।

सूदन।

ये महाशय माथुर ब्राह्मण, महाराज बसन्त के पुत्र मथुराजी के निवासी थे। भरतपुर के महाराजा बदनसिंह के पुत्र सुजानसिंह उपनाम सूरजमल इनके आश्रयदाता थे। जान पड़ता है कि ये महाशय भरतपुर में बहुधा रहा करते थे और सूरजमल के युद्धों में भी सम्मिलित रहते थे। इन्होंने लड़ाइयों का वर्णन आँखों देखा सा किया है। इन्हीं सूरजमल के भाई प्रतापसिंह के यहाँ सोमनाथ कवि रहते थे। सूदन कवि ने "सुजान-चरित्र" नामक एक बड़ा ग्रन्थ बनाया है, और वही नागरी-प्रचारिणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridw

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा ने "ग्रन्थमाला" द्वारा प्रकाशित किया है। इसमें २३४ पृष्ठ छपे हैं परन्तु यह जान पड़ता है कि ग्रन्थ अपूर्ण है। इसमें सूदनजी ने अध्याय समाप्ति पर निम्न-लिखित छन्द हर जगह लिखा है। और, इसमें तीन पद वही रहते हैं परन्तु चतुर्थ पद अध्याय में वर्णित-कथा के अनुसार बदलता रहता है :—

भुवपाल पालक भूमिपति बदनेश नंद सुजान है।
जानै दिली दल दक्खिनी कीन्हें महा कलिकान है॥
ताको चरित्र कछूक सूदन कह्यो छन्द बनाय कै।
कहि देवध्यान कवीश नृप कुल प्रथम अंक सुनाय कै॥

ग्रन्थारम्भ में सूदन ने छः छन्दों में १७५ कवियों के नाम लिख कर उन्हें प्रणाम किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि उसमें वर्णित कवि सूदनजी से प्रथम या समकालीन हैं; कवियों के नाम ये हैं :—

केशव, किशोर, काशी, कुलपति, कालिदास, केहरि, कल्यान, करन, कुन्दन, कविन्द, कंचन, कमच, कृष्ण, कनकसेन, केवल, करीम, कविराज, कुँवर, केदार, ख़ानख़ाना, खगपति, खेम, गंगापति, गंग, गिरधरन, गयन्द, गोप, गदाधर, गोपीनाथ, गोबर्धन, गोकुल, गुलाब, गोविन्द, घनश्याम, घासीराम, नरहरि, नैन, नायक, नवल, नन्द, निपट, नित्यानन्द, नन्दन, नरोत्तम, निहाल, नेही, नाहर, नेवाज, चन्दबरदाई, चन्द, चिन्तामनि, चेतन, चतुर, चिरंजीवि, छीत, छबीले, यदुनाथ, जगनाथ, जीव, जयकृष्ण, जसवन्त, जगन, टीकाराम, टोडर, तुरत, तारापति, तेज, तुलसी, तिलोक, देव, दूलह, दयाल, दयादेव, देवीदास, दूनाराय, दामोदर, धीरधर, धीर, धुरन्धर, पुखी, पीत, पहलाद, पाती, प्रेम, परमानन्द, परम, परवत, प्रेमी, परसोत्तम, विहारी, बान, वीरबली, वीर, विजय, बालकृष्ण, बलभद्र, बल्लभ, वृन्द, वृन्दाबन, वंशीधर, ब्रह्म, बसन्त, रावबुद्ध, भूषन, भूधर, मुकुन्द, मनिकंठ, माधव, मतिराम, मलूकदास, मोहन, मंडन, मुबारक, मुनीस, मकरन्द, मान, मुरली, मदन, मित्र, अक्षर, अनन्त, अग्र, आलम, अमर, अहमद, आज़मख़ाँ, इच्छाराम, ईसुर, उमापति, उदय, ऊधो, उधृत, उदयनाथ, राधाकृष्ण, रघुराय, रमापति, रामकृष्ण, राम, रहीम, रणछोरराय, लीलाधर, लीलकंठ, लोकनाथ, लीलापति, लोकमनि, लाल, लच्छ, लच्छी, सूरदास, शिरोमनि, सदानन्द, सुन्दर, सुखदेव, सोमनाथ, सूरज, सनेही, सेख, श्यामलाल, साहेब, सुमेर, शिवदास, शिवराम, सेनापति, सूरति, सबसुख, सुखलाल, श्रीधर, सबलसिंह, श्रीपति, हरिप्रसाद, हरिदास, हरिवंश, हरिहर, हरी, हीरा, हुसेनी, हितराम।

सुजान-चरित्र में सूरजमल के युद्धों का वर्णन है और इसमें संवत् १८०२ से १८१० विक्रमीय तक की घटनायें कही गई हैं। ग्रन्थ-निर्माण का समय नहीं दिया गया है। जान पड़ता है कि संवत् १८१० के कुछ पीछे यह ग्रन्थ बना है और इसी से प्रारम्भ से ही इसमें दिल्ली और दक्षिणी दलों की दुर्गति का वर्णन हर अध्याय में किया गया है। इसमें लिखा है कि सूरजमल ने प्रथम मेवाड़ छीन लिया और फिर मालवा में माड़ौंगढ़ जीता। संवत् १८०२ में बादशाह अहमदशाह के सैनिक असदख़ाँ ने फ़तेहअली पर धावा किया। सूरजमल ने फ़तेहअली की सहायता करके असदख़ाँ का ससैन्य संहार किया। इसी अध्याय में घोड़ों की जाति, सूरजमल से फ़तेहअली के वकील की बात-चीत और असदख़ाँ का व्याख्यान परम प्रशंसनीय हैं। सूदनजी हर अध्याय के लिए नई वन्दना लिखते हैं। संवत् १८०४ में सूरजमल ने जयपुर के महाराजा ईश्वरीसिंह की सहायता करके मरहठों को पराजित किया। संवत् १८०५ में बख़शी सलाबतख़ाँ बादशाह की तरफ़ से सूरजमल से लड़ कर पराजित हुआ। इस युद्ध का एक छन्द नीचे लिखते हैं :—

तोमतम छाए सुलतान दल आए सोतौ
समर भजाए उन्हें छाई है अचक सी।
काल कैसी रसना कराल कर बाल तेरी
ब्याल भाल काटिकै करन लागी तकसी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूदन सुजान मरदान हरिनारायन
देव हरिदेव जंगजीत तेाहिँ बकसी।
जूझत हकीमख़ाँ अमीरन के धकसी
ग्रै बकसी के जिय में परी है धक पकसी॥

संवत् १८०६ में बादशाही वज़ीर नवाब सफ़दर जंग मंसूर ने बंगश पठानों पर चढ़ाई की जिसमें सूरजमल ने वज़ीर का साथ दिया था। इससे जान पड़ता है कि उस समय वही मनुष्य बादशाह का बहुत जल्दी शत्रु ग्रौर मित्र दोनों हो सकता था। पहले सूरजमल ने बादशाही अफ़सर असदख़ाँ को मार कर फ़तेहग्रली को सहायता दी ग्रौर फिर दूसरे ही साल सरकारी बख़्शी जब उनसे लड़ने ग्राया तब वही फ़तेहग्रली बख़्शी की तरफ़ से सूरजमल से लड़ा। इसी के दूसरे साल स्वयं सूरजमल बादशाह से मिल कर बंगश से लड़ने गये ग्रौर उसके चार ही वर्ष पीछे बादशाह से लड़ कर उन्हों ने दिल्ली लूटी। बंगश की लड़ाई का वर्णन सूदनजी ने बहुत उत्तम किया है। जब सूरजमल सेना समेत मंसूर के दल में पहुँचे तब वे मंसूर से मिलने गये ग्रौर उसके पीछे मंसूर भी सत्कारार्थ उनके डेरे पर मिलने गया। उधर अहमदख़ाँ पठान ने ग्रपनी सेना एक उत्तम व्याख्यान द्वारा युद्धार्थ प्रोत्साहित की ग्रौर—

"यों सुनि अहमदख़ाँ का कहना सब पठान उठिधाए।
जो पठान तिसको तो लड़ना ऐसे बचन सुनाए॥"

"बंगस की लाज मऊखेत की अवाज यह
सुने ब्रजराज ते पठान बीर बंब के।
भाई अहमदखान सरन निदान जानि
ग्रायो मनसूर तो रहैं न अब दब के॥
चलना मुझे तो उठ खड़ा होना देर क्या है
बार बार कहे ते दराज़ सीने सब के।
चंड भुज दंडवारे हयन उदंड वारे
कारे कारे डीलन सँवारे हेात रब के॥"

इस ग्रध्याय में कितने ही योद्धाग्रों के व्याख्यान उत्तम हैं ग्रौर अहमदख़ाँ ने जो संदेसा सूरजमल से कहला भेजा था वह भी प्रशंसनीय है।

संवत् १८०९ में सूरजमल ने घासहरे का दुर्ग वहाँ के राव को मार कर छीन लिया। राव की वीरता की भी सूदन ने अच्छी प्रशंसा की है:—

"अड़ राखी ऐंड़ राखी मैड़ रजपूती राखी
राव रज राखि राह लीन्हीं सुरपुर की।"

संवत् १८१० में अहमदशाह ने मंसूर को बरख़ास्त कर दिया; इस पर क्रोध करके मंसूर सूरजमल को दिल्ली पर चढ़ा ले गया ग्रौर इन्होंने कई दिन तक दिल्ली को ख़ूब लूटा। इस लूट का वर्णन सूदन ने बहुत उत्तम ग्रौर विस्तारपूर्वक लिखा है ग्रौर दिल्ली-वासियों की विकलता को भी कई छन्दों में कई बोलियों द्वारा दर्शित किया है। उसमें से खड़ी बोली का छन्द नीचे लिखा जाता है।

"महल सराय से रवाने बुग्रा वू वू करो
मुझे अफ़सोस बड़ा बड़ी बीबी जानी का।
आलम में मालुम चकत्ता का घराना यारो
जिसका हवाल है तनैया जैसा तानी का॥
खाने खाने बीच से अमाने लेाग जाने लगे
आफ़तही जानो हुआ ओज देहकानी का।
रब की रजा है हमैं सहना बजा है
वक्त हिन्दू का गजा है आया छोर तुरकानी का"॥

पूर्वी बोली का केवल एक पद नीचे लिखा जाता है:—

"असकस कीन्ह म्वार दिली का नवाब ग़ार
चीन्हत न सार मनसूर जट्ट ल्यावा है"।

अंत में जयपुर के महाराजा माधवसिंह ने आकर संधि कराई। फिर इसी संवत् में आपाजी ग्रौर मल्हारराव ने सूरजमल से दो करोड़ रुपया कर माँगा ग्रौर न मिलने से चढ़ाई करने की धमकी दी। इन्होंने कर देने से इन्कार किया ग्रौर युद्ध के वास्ते तैयारी की। इस बार की तैयारी का वर्णन बहुत ही उत्तम किया गया है। महाराष्ट्र दल के आजाने पर श्रीकृष्णचन्द्रजी ग्रौर कालयमन का युद्ध वर्णन करके बिना लड़ाई वर्णन कियेही ग्रन्थ समाप्त हो गया है। इसी कारण हमारा विचार है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि यह ग्रन्थ अपूर्ण रह गया है। यह अध्याय भी बहुत उत्तम है परन्तु स्थानाभाव के कारण हम इस अध्याय के केवल तीन छन्द उद्धृत करते हैं।

"उतते राव मल्हार, जयपुर ते कूचहि कियो।
जैसे सलभ अपार, उठै प्रजा संघारहित॥
हारे देखि हाड़ा मनमारे कमधुज बंस
कूरम पसारे पाँय सुनत नगारे के।
केते पुर जारे केते नृपति सँघारे तेई
जोरि दल भारे व्रज भूमि पै हँकारे के॥
रारे मधुसूदन सँवारे बदनेस प्यारे
व्रज रखवारे निज बंस अवधारे के।
होत ललकारे सूर सूरजप्रताप भारे
तारे से छिपेंगे सब सुभट सितारे के॥
ऐंठि बाँध्यो मुकुट समेटि घुँघुरारे बार
कुंडल चढ़ाए कान कलँगी सुघट की।
जाँघिया जकरि कै अकरि अंगराग करि
कटि मैं लपेटी कसि पेटी पीत पट की॥
भृगुपति अंकढाल सकति श्रिया को चिह्न
सूदन सनाह बन माल लाल टटकी।
कोटिन सुभट की निहारि मति सटकी यों
सुन्दर गोपाल की धरनि भेष भट की॥

सूदन कवि ने केशवदासजी की रीति का अनुसरण किया है और विविध छन्दों का प्रयोग करके सुजान-चरित्र को एक बहुत उत्तम और रोचक ग्रन्थ बना दिया है। रोचकता की मात्रा में यह ग्रन्थ रामचन्द्रिका से शायद ही कुछ कम हो। इसमें हर विषय का बहुतही सजीव सच्चा और वास्तविक घटनाओं से पूर्ण वृत्तान्त लिखा गया है। युद्ध-कर्ताओं के व्याख्यान और महाराजाओं से दूतों की वार्ता विशेषतया द्रष्टव्य हैं। युद्ध की तैयारी वर्णन करने में इसकी बराबरी कोई भी कवि नहीं कर सकता परन्तु इनका युद्ध वर्णन उतना उत्कृष्ट नहीं है; फिर भी प्रत्येक युद्ध के पीछे के छन्द बहुतही प्रशंसनीय हैं। इन्होंने भूषण के मत पर न चलकर केवल सूरजमल का ही वर्णन नहीं किया है वरन उनके अनुयायी एवम् अन्य सरदारों के अनुयायी छोटे छोटे युद्धकर्ताओं का भी अच्छा वर्णन किया है। शत्रुओं का ऐसा उत्तम व प्रभावपूर्ण वर्णन हमने किसी ग्रन्थ में नहीं देखा। सूदन ने अपने नायक का जैसा उत्तम वर्णन किया है वैसाही उसके प्रतिद्वंद्वी का भी किया है। इस विषय में असदख़ाँ, अहमदख़ाँ, अन्य अफ़ग़ान, घासहरे के राव एवम् काल-यमन का वर्णन दर्शनीय है। सूदन ने असदख़ाँ, अफ़ग़ानगण, मरहठों की चढ़ाई और कृष्णचरित्र का बहुतही चित्ताकर्षक वर्णन किया है। उद्दण्डता में भी यह कवि किसी से कम नहीं है और फिर हास्य की कविता भी इसने उत्तम की है। कहीं कहीं इन्होंने रूपक भी अच्छे कहे हैं। एक स्थान पर उत्तम व्यूह-रचना का भी अच्छा वर्णन है। सम्भवतः यह व्यूह सूरजमल को पसंद था।

सूदनजी की कविता में व्रज-भाषा, खड़ी बोली, माड़वारी, राजपूतानी, पूरबी, पंजाबी, आदि भाषाओं का प्रयोग हुआ है और इनकी कविता सब भाषाओं की प्रशंसनीय है। कालयमन का युद्ध प्रायः पंजाबी बोली में लिखा गया है। ये महाशय यमक और अनुप्रास का प्रयोग अधिक नहीं करते थे। युद्ध-वर्णन में इन्होंने मिलित वर्णों का प्रयोग अधिकता से किया है। इनको हम बहुतही उत्तम कवि समझते हैं और हम इनकी गणना प्रथम श्रेणी में करते हैं। युद्ध की तैयारी में सूदन, युद्ध-वर्णन में लाल और आतंक एवं भागने के वर्णन में भूषण सर्वश्रेष्ठ हैं। इन तीनों महाशयों की कविता युद्ध काव्य की शृंगार है। अपने पूर्वोक्त कथनों के उदाहरणार्थ हम कुछ छन्द सूदनजी के नीचे देते हैं। यथा :—

"पिल्ले रहिल्ले सुभिल्ले करीपास
मिल्ल्यौ इसाखान झिल्ल्यो नहीं त्रास।
खिल्ले खरे खग्ग गिल्ले भए रत्त
छिल्ले घने गत्त चिल्ले नहीं मत्त।
बुल्ले कुजाहस्त इसवक्त मंसूर
बुल्ल्यौ इसाखान मन खेत में पूर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौं भाखते राखते ज्यों कढ़ी जाल
सबै रुहेले किये नैन यों लाल।
कोई चढ़्यौ दंति दै दंत पै पाउ
काहू गही पुच्छ की राह कै दाउ।
केती छनाछन्न बाजीं तहाँ तेग
मानौ महामेघ में चंचला वेग।

कीन्हों इसाखान को मारि कै चूर
कट्यो तऊ सीस हट्यो नहीं सूर"।
"नैननि लई सलाम सलाबत खानने" (यथार्थता)
"तैं अपने मन में गना बूड़ा तुरकाना" (यथार्थता)

"बापु बिस चाखै भैया खटमुख राखै देखि
आसन मैं राखै बस बास जाको अचलै।
भूतन के छैया आस पास के रखैया
और काली के नथैया हूके ध्यान हू ते न चलै॥

बैल बाध बाहन बसन कौ गयन्द खाल
भाँग कौं धतूरे कौं पसार देत अँचलै।
घर को हवालु यहै संकर की बाल कहै
लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै"॥ (हास्य)

"पूत मजबूत बानी सुनिकै सुजान मानी
सोई बात जानी जासौं उरमैं छमा रहै।
जुद्ध रीति जानौ मत भारत को मानौ जैसौ
होइ पुठवार ताते ऊन अगमा रहै॥

बाम और दच्छिन समान बलवान जान
कहत पुरान लोक रीति यों रमा रहै।
लालजू समर घर दो उनकी ऐके बिधि
घर मैं जमा रहै तौ खातिर जमा रहै॥ (ब्यूह)

एकै एक सरस अनेक जे निहारे तन
भारे लाज भारे स्वामि काज प्रतिपाल के।
चंगलौं उड़ायौ जिन दिली की वजीर भीर
पारी बहु मीरनु किए हैं बे हवाल के॥

सिंह बदनेस के सपूत श्रीसुजानसिंह
सिंह लौं झपटि नख दीने कर बाल के।
वेई पठनेटे सेल साँगन खखेटे भूरि
धूरि सौं लपेटे लेटे भेटे महाकाल के॥ (युद्धान्त)

सेलनु धकेला तें पठान मुख मैला होत
केते भट मेला हैं भजाए भुव भंग मैं।
तंग के कसेते तुरकानी सब तंग कीनी
दंग कीनी दिली और दुहाई देत बंग मैं॥

सूदन सराहत सुजान किरवान गहि
धायो धीर धारि वीरताई की उमंग मैं।
दक्खिनी पछेला करि खेला तैं अजब खेल
हेला मारि गंग मैं रुहेला मारे जंग मैं॥(युद्धान्त)

गणेशविहारी मिश्र,
श्यामविहारी मिश्र,
शुकदेवविहारी मिश्र।

निन्नानवे का फेर।

(१)

एक सुन्दर ग्राम में था वैश्य एक धनी कहीं,
पास उसके एक शिल्पी वास करता था वहीं।
भोगते थे एक सा सुख-भोग दोनों सर्वदा,
था धनी शिल्पी न तो भी मुदित रहता था सदा॥

(२)

एक दिन उस वैश्य की गृहिणी बड़े आश्चर्य्य से,
यों वचन कहने लगी निज अनुभवी प्रियवर्य्य से—
"कुछ दिनों से एक शङ्का नाथ! मुझ को हो रही,
भेद तुम उसका बताओ सुन कथा मेरी कही॥

(३)

"यह पड़ोसी जो हमारा विदित नाम सुयोग है,
यदपि है न धनी तदपि नित भोगता बहु भोग है।
प्रभु-कृपा से हम धनी हैं और यह धन-हीन है,
तदपि हमसे भी अधिक यह क्यों सतत सुखलीन है?

(४)

"जब झरोखे से कभी मैं देखती उस ओर हूँ,
देख कर पाती न उसके मोद का कुछ छोर हूँ।
रुचिर नाना पाक बनते नित्य उसके गेह में,
श्रेष्ठ पट पति और पत्नी पहनते हैं देह में॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

"सुरभि सुन्दर भोजनों की फैलती सब ओर है,
नित्य सुन पड़ता तथा आनन्द-सूचक शोर है।
बात क्या है सो न कुछ भी समझ में आती कभी,
धन-रहित यह वैतनिक पाता कहाँ से सुख सभी!"

(६)

वचन वनिता के श्रवण कर विहँस बोला अर्य्य*यों—
"इस ज़रा सी बात पर होता तुम्हें आश्चर्य्य क्यों?
रोज़ जो एकाध रुपया यह कमा लाता यहाँ,
शाम को उसको उड़ा कर मत्त हो जाता यहाँ॥

(७)

"इस समय तो यह तरुण है श्रम न कुछ खलता इसे,
किन्तु पूरा कष्ट देगी जरठ-निर्बलता इसे।
प्राप्त होता द्रव्य जो कुछ नित्य यह खोता उसे,
प्रथम जो संग्रह न करता दुःख फिर होता उसे॥

(८)

"आय के अनुसार ही व्यय नित्य करना चाहिए,
द्रव्य-संग्रह कर समय के अर्थ धरना चाहिए।
नियम यह सम्पत्ति-विषयक याद जो रखता नहीं,
दुःख पाकर लोक-सुख का स्वाद वह चखता नहीं॥

(९)

"धन बिना संसार में कुछ काम चल सकता नहीं,
दुःख के दृढ़ जाल से निर्धन निकल सकता नहीं।
हो न सकता धर्म्म भी धन का बिना संग्रह किये,
नित्य वित्त-निमित्त सबको यत्न करना चाहिए॥

(१०)

"ज्ञात है अज्ञान से कुछ गुण न सञ्चय का इसे,
इस तरह न रहे, नियम जो विदित हो व्यय का इसे।
यदि किसी कारण न यह दस पाँच दिन श्रम कर सके,
और तो क्या, तो उदर भी यह न अपना भर सके॥

(११)

"'आज का कल को बचावे वह न पुरुषार्थी कभी'
इस तरह की समझ उलटी हो रही इसकी अभी।
किन्तु पीछे याद होगा भाव आटे-दाल का,
जब अबल होकर बनेगा कवल काल कराल का॥"

* अर्य्य = वैश्य।

(१२)

"आप तो यह विपद में पड़ कर मरेगा ही कभी,
पर हुए पुत्रादि तो वे भी दुखी होंगे सभी।
सो जिसे तुमने जगत में सब प्रकार सुखी कहा,
दुःख के गहरे गढ़े में वह अनाड़ी गिर रहा॥"

(१३)

जान कर परिणाम यों अपने पड़ोसी का बुरा,
वैश्य-वनिता हो गई व्याकुल तथा करुणातुरा।
द्रवित हो जातीं हृदय में तनिक ही में नारियाँ,
चित्त से भी मृदुल होतीं सर्वदा सुकुमारियाँ॥

(१४)

वचन फिर कहने लगी वह इस तरह निज नाथ से—
"कर रहा निश्चय अहित यह आप अपने हाथ से।
शोचनीय भविष्य का इसको न कुछ भी ध्यान है,
सत्य ही होता नहीं केवल गुणी में ज्ञान है॥

(१५)

"याद कर इसकी दशा होता मुझे है दुख बड़ा,
कीजिए कुछ यत्न जो यह मोह में न रहे पड़ा।
क्या किसी विध भूल अपनी याद हो सकती इसे?
दूसरों का दुःख हरना है नहीं हितकर किसे?"

(१६)

"हो हमारा द्रव्य भी क्यों व्यय न कुछ इस काम में,
पर न हो प्राणेश! इसको कष्ट अब परिणाम में।
चार, छै, दस बूँद से घटता नहीं नद-नीर है,
किन्तु दीन विहङ्ग की मिटती तृषा गम्भीर है॥"

(१७)

मौन होकर वैश्य तब कुछ सोचने मन में लगा,
फिर वचन बोला प्रिया से प्रेम के रस में पगा।
"यत्न सोचा एक मैंने चित्त में इसके लिए,
हो कदाचित् सफलता पूरी तरह उसके किये॥"

(१८)

एक पट में बाँध तब निन्नानवे रुपया लिये,
और कह यों वचन उसने वे प्रिया को दे दिये—
"डाल देना तुम इन्हें उसके सदन में रात को,
है मुझे विश्वास होगी कार्य्य-सिद्धि प्रभात को॥"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१९)

वैश्य-वनिता ने बहुत होकर प्रफुल्लित गात में,
फेंक दी वह पोटली उसके यहाँ फिर रात में।
जब सुयोग उठा सवेरे और वे रुपया मिले,
सूर्य्य-दर्शन से कमल-सम प्राण तब उसके खिले!

(२०)

किन्तु जब गिन कर उन्हें वह यत्न से रखने लगा,
देख कर निन्नानवे तब मोह से मानो जगा।
"एक रुपया और इनमें मैं मिलाऊंगा अभी,
और कर पूरे इन्हें सौ फिर धरूँगा मैं सभी॥"

(२१)

सोच कर वह वैतनिक इस भाँति अपने चित्त में,
चार, छै आने सदा रखने लगा निज वित्त में।
और जब सौ हो गये तब और भी इच्छा बढ़ी,
मिट गई वह भ्रान्ति जो थी शीश पर पहले चढ़ी॥

(२२)

कुछ दिनों में छोड़ कर सब धन उड़ाना नित्य का,
द्रव्य-सञ्चय मुख्य समझा लक्ष्य उसने कृत्य का।
नित्य सादी चाल से चलता हुआ संसार में,
बन चला धनवान वह रह लीन निज व्यापार में॥

(२३)

"क्या 'सुरभि सुन्दर भोजनों की' फैलती अब भी सदा?"
हँस कर प्रिया से एक दिन यों वैश्य ने पूछा यदा।
तब देख उसकी ओर हँस बोली वधू कुछ देर में—
"अब पड़ गया है नाथ! वह निन्नानवे के फेर में!"

मैथिलीशरण गुप्त।

आक्सिजन।

वायु जिसमें हम साँस लेते और रहते सहते हैं, अँगरेज़ी वैज्ञानिकों के मत के अनुसार, प्रधानतया तीन पदार्थों से बनी है—आक्सिजन, नाइट्रोजन और कार्बानिक एसिड गेस। आक्सिजन एक भाँति का वायुरूपी पदार्थ है। यह पदार्थ सृष्टि में बहुतायत से पाया जाता है क्योंकि यह जीवमात्र के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह न केवल वायु का ही एक भाग है, किन्तु जल और पृथ्वी में भी मौजूद है। पृथ्वी में इसका हिस्सा ४०, ५० फ़ी सदी होता है, जल में ८८ फ़ी सदी और वायु में २१ फ़ी सदी। वायु में यदि वह पदार्थ न होता तो कोई वस्तु जल न सकती। किसी वस्तु के जलने का यह अर्थ है कि वह वायु में जो आक्सिजन है उससे संयुक्त (combine) हो रही है और दूसरे रूप में बदल रही है। जब कोई चीज़ जलती है तो वह सर्वथा नष्ट यानी नेस्तोनाबूद नहीं हो जाती, वह केवल दूसरे रूप में बदल जाती है चाहे वह रूप हमें पहले की तरह दिखाई दे या न दिखाई दे। मृत शरीर जब जलाया जाता है तब वह नेस्तोनाबूद नहीं हो जाता, वह केवल दूसरे रूपों को धारण कर लेता है। वैज्ञानिकों का यह सिद्धान्त है कि भौतिक वस्तु मेटर (matter) नाशमान नहीं। वह केवल अनेक रूप धारण किया करता है।

आक्सिजन जीवन के पालन करनेवाला पदार्थ है। इसके बिना संसार में ज़िन्दा चीज़ें ज़िन्दा नहीं रह सकतीं। मनुष्य, जानवर, पेड़ इत्यादि सब इसी के बल से जीवित हैं। पेड़ इत्यादि जब इस वायु को त्याग करते हैं तब मनुष्य और जानवर इसको ग्रहण करते हैं। ग्रहण करने से केवल साँस लेने ही से अभिप्राय नहीं है, किन्तु आक्सिजन का ख़ून के ज़रिये शरीर की नस नस और छोटी से छोटी रग रग में पहुँच जाने से है जिससे शरीर में पराक्रम, उष्णता और जीवन उत्पन्न हो। आक्सिजन का किसी पदार्थ से संयुक्त (combine) होना उष्णता उत्पन्न करता है। इसी लिए मनुष्यों और जानवरों के शरीर वायुमंडल से, जिसमें वे रहते हैं, अधिक गर्म होते हैं; क्योंकि आक्सिजन शरीर के भीतर जाता हुआ और भोजन के कुछ हिस्से से संयुक्त (combine) होता हुआ प्रतिक्षण गर्मी को उत्पन्न किया करता है।

सच तो यह है, कि मनुष्य के लिए खाद्य पदार्थ भी इतने आवश्यक नहीं हैं जितना आक्सिजन। भोजन न मिलने पर मनुष्य दस पाँच दिन जीवित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रह सकता है परन्तु आक्सिजन के बिना क्षण भर भी नहीं। इस शरीररूपी विचित्र शिल्पशाला (complex laboratory) में आक्सिजन और खाने पीने की चीज़ें मिलकर (combine) बराबर नये नये सेल्स (cells) और टिश्यूज़ (tissues) पैदा किया करते हैं। तत्त्ववेत्ताओं के गम्भीर सिद्धान्त कि, "normal living is the right adjustment of internal relation to external relation" अर्थात् आभ्यन्तरिक सम्बन्धों का बाह्य सम्बन्धों के अनुकूल होने ही का नाम जीवित रहना है और "Whatever amount of power an organism expends in any shape is the correlate and equivalent of a power that was taken in from without" अर्थात् जो कुछ शक्ति या बल कोई जीव किसी भी रूप में ख़र्च करता है वह शक्ति या बल पहले उसे कहीं से मिला है, अब समझ में आते हैं। शारीरिक जीवन में, आत्मिक जीवन में भी, हमारा उत्तम जीवन नितान्त उत्तम अवस्था या परिवेष्टन (environments) पर अवलम्बित है। इसीलिए ईश्वर ने आक्सिजन को जो उत्तम जीवन के लिए परमावश्यक है सृष्टि में बहुतायत से पैदा किया है।

यह बात यहाँ ध्यान देने की है कि प्रकृति ने ख़ालिस आक्सिजन नहीं पैदा किया है। उसने हमारे लिए उसके एक हिस्से को नाइट्रोजेन के चार हिस्सों में मिलाकर रक्खा है। ख़ालिस आक्सिजन बहुत तेज़ होता है। हमारे साँस लेने के लिए सब से अच्छा आक्सिजन वह है जो मेल की हालत में हवा में रहता है। मनुष्य मुद्दतों से ऐसेही आक्सिजन का आदी हो रहा है। कई एक शारीरिक रोग ऐसे हैं जिनसे शरीर के आक्सिजन की मात्रा कम हो जाती है। तब हवा में मिश्रित आक्सिजन के अलावा और आक्सिजन के देने की आवश्यकता होती है। परन्तु रोगों में भी जब आक्सिजन का प्रयोग किया जाता है तब शुद्ध आक्सिजन का नहीं। उसमें हवा का मेल कर देते हैं।

अब नीरोग मनुष्यों को भी शुद्ध आक्सिजन का प्रयोग बताया जाता है। प्रोफ़ेसर डबल्यू० प० एन्डरसन ने एक पत्र में लिखा है कि एक बार मेक्सिको शहर से निकलकर वे लोग योपो और इक्षी पहाड़ों पर चढ़े। दोनों पहाड़ १७००० फ़ीट से अधिक ऊँचे हैं। इन दोनो में से योपो पर चढ़ना आसान था और फिर अच्छे समय में उसपर चढ़ाई की गई थी तो भी उसपर चढ़ने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और जितने आदमी गये थे सब बीमार हो गये। परन्तु जब इक्षी पर चढ़ने की बारी आई तब इन लोगों ने अपने साथ आक्सिजन ले लिया और इसका उपयोग करते हुए बड़ी आसानी से वे चोटी पर पहुँच गये। यदि यह घटना सत्य है तो हिमालय ऐसे ऊँचे से ऊँचे पहाड़ों की चोटियों पर जाना एक आसान काम हो गया।

डा० लियोनार्ड हिल का सिद्धांत है कि आक्सिजन के प्रयोग के बाद मनुष्य ९ मिनट से अधिक अपनी साँस साध सकता है। आक्सिजन का इस्तेमाल करने के बाद ग़ोताख़ोर मामूल से ज़्यादा देर तक पानी के भीतर रह सकते हैं। आजकल अँगरेज़ी ढंग के खेलकूद जो होते हैं उनमें ½ मील की दौड़ भी होती है। डा० हिल का कहना है कि अगर कोई ½ मील वाली दौड़ दौड़नेवाला आक्सिजन इस्तेमाल करके दौड़े तो उसको दौड़ भर साँस लेने की ज़रूरत न पड़ेगी और वह इस बची हुई शक्ति को अधिक तेज़ दौड़ने में ख़र्च कर सकेगा अर्थात् अधिक तेज़ दौड़ सकेगा। शारीरिक मेहनत करनेवाला यदि मेहनत करने के पहले या बाद में आक्सिजन इस्तेमाल करे तो उसको थकावट का दुःख रत्ती भर न मालूम होगा। एक व्यक्ति जो ½ मीलवाली दौड़ प्रायः ५२ सेकन्ड में दौड़ा करता था ३ मिनट के आक्सिजन लेने के बाद ५० ही सेकन्ड में दौड़ गया और इतनी थकावट भी न मालूम हुई जितनी १०० गज़ के दौड़ने में मालूम होती है। एक दूसरा व्यक्ति इसी तरह आक्सिजन ३ मि०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

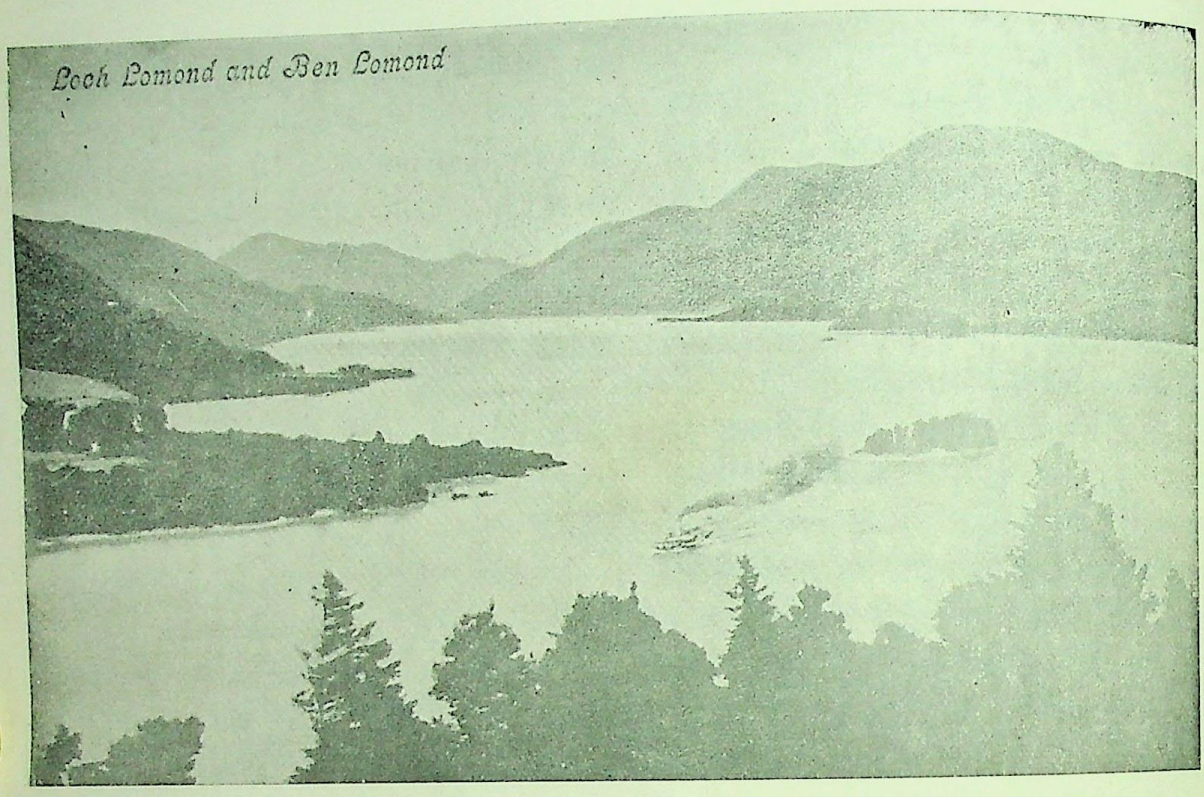

लूच लोमंड और बेन लोमंड झील ।

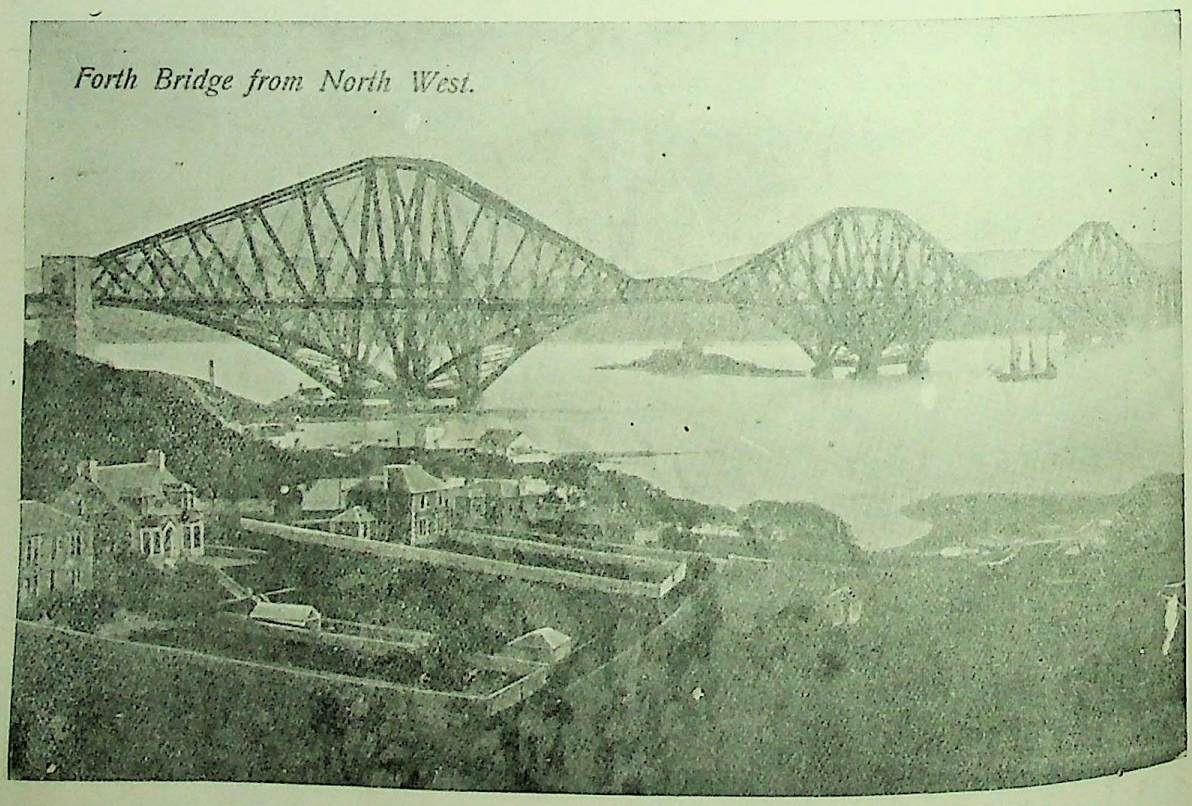

फोर्थ नदी का पुल ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीने के बाद ½ मील केवल १ मि० ५५ से० में दौड़ गया।

इन सब बातों से सिद्ध होता है कि आक्सिजन उत्तेजना (stimulant) के काम दे सकता है, परन्तु आक्सिजन को उत्तेजना के तौर पर (stimulant), है कि, काम में लाना कहाँ तक उचित है। यह विचारणीय है। हमारी समझ में नवजवानों को दौड़, कुश्ती इत्यादि कामों में इसका इस्तेमाल न करना चाहिए। जवानी में किसी उत्तेजक वस्तु (stimulant) की ज़रूरत न होना चाहिए। इससे हमारी शक्ति (energy) अवश्य बढ़ जाती है, परन्तु इस शक्ति (energy) की वृद्धि और इसका ख़र्च असाधारण (abnormal) होते हैं, और नतीजा इसका अच्छा नहीं होता। ऐसा ख़याल है कि उन नवजवानों के दिल जो अपरिमित व्यायाम करते हैं आगे चलकर ख़राब हो जाते हैं। फिर उन जवानों के दिलों का क्या कहना जो अपने दिलों को नियम विरुद्ध उत्तेजना दिया करते हैं और ऐसे समय में जब दिल ख़ुद अपनी शक्ति भर काम कर रहा है। किसी दौड़, सफ़र, चढ़ाई या मेहनत के बाद थोड़े आक्सिजन का इस्तेमाल फ़ायदामन्द हो सकता है, परन्तु पहले किसी तरह से उचित नहीं है। दो मनुष्यों के शारीरिक बल का ठीक ठीक अन्दाज़ा उसी समय हो सकता है जब उनकी स्थिति साधारण (conditions normal) हो; जब दोनों सिवा अपने पराक्रम के किसी और पदार्थ का आश्रय नहीं लेते। यदि ऐसा न हो तो एक कमज़ोर, कम दमवाला मनुष्य अपने से एक अधिक पराक्रमी पुरुष को मुक़ाबले में हरा सकता है। परन्तु इससे वह अधिक बलवान् और पराक्रमी कदापि नहीं हो सकता। मौक़ा पड़ने पर ऐसे आदमी की कलई भी खुल जाती है। एक समय में एक बाइसिकल (पैरगाड़ी) पर चढ़नेवाला एक मील एक मिनट से कम में चला गया। परन्तु, पाठक, आप जानते हैं वह कैसे एक मील एक मिनट में गया? वह अच्छी पैरगाड़ी को एक रेल गाड़ी के, जो इतनी ही तेज़ी से जाती थी, पीछे पीछे ले गया था और उसने पटरियों के बीच में एक मील तख़्ते डाल लिये थे—ख़ैर यहाँ तक तो कुछ हरज नहीं—और ट्रेन की पिछली गाड़ी के पीछे एक मंडप (shed) बना लिया था जिसके भीतर रह कर वह पैरगाड़ी को दौड़ाते ले गया था। अब आप इतनी तेज़ पैरगाड़ी ले जाने का भेद समझ गये होंगे। इस ढंग से वह हवा के मुक़ाबले से बचा रहा और तेज़ दौड़नेवाली रेलगाड़ी के पीछे जो एक क़िस्म का खिंचाव होता है इससे उसने सहायता पाई। ऐसी हालत में १ मील १ मिनट में जाना बहुत प्रशंसनीय नहीं है। मतलब यह कि असाधारण स्थिति (abnormal conditions) में कोई पराक्रम का काम दिखलाना इस बात को सिद्ध नहीं करता कि वह काम साधारण स्थिति (normal conditions) में भी किया जा सकेगा। ऐसे कामों की कोई तारीफ़ नहीं करता।

सरयूनारायण त्रिपाठी।

राजा टोडरमल।

अपनी अपार कर्तव्यदक्षता और अनुपम चातुर्य-कौशल के बल पर पेशवाई राज्य को सम्हालनेवाले और उसे ऊर्जित दशा पर लानेवाले राजनीति-धुरन्धर नाना फड़नवीस का जीवन-चरित गत वर्ष हमने पाठकों को भेट किया था। आज हम फिर एक ऐसे कर्मवीर पुरुष का चरित पाठकों को सुनाते हैं जो अकबरी साम्राज्य के विस्तार और उसके उत्तम प्रबन्ध का प्रधान कारण था; और जो अपनी राज्यप्रबन्ध-दक्षता, कर्तव्यतत्परता और शूरवीरता के बल पर अपनी कीर्ति अजरामर कर गया है।

राजा टोडरमल खत्री या "क्षत्री" जाति के थे। अवध प्रान्त के सीतापुर ज़िले के तारापुर नामक ग्राम में उनका जन्म हुआ था। यद्यपि पंजाबी लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टोडरमल को अपने प्रान्त का निवासी बतलाते हैं। और लाहौर ज़िले के चूमन गाँव में राजा टोडरमल के महलों के भग्नावशिष्ट भाग अब तक मौजूद हैं तौभी इससे यह सिद्ध नहीं होता कि राजा टोडरमल का जन्म भी वहीं हुआ था। वास्तव में, अकबर बादशाह के यहाँ रह कर, वैभव-सम्पन्न होने पर, राजा टोडरमल ने ये महल तयार कराये होंगे। अस्तु।

टोडरमल के पूर्ववय का चरित्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है। जो कुछ उपलब्ध है वह इतनाही कि उनके बालपन की अवस्था बहुत कष्टमय थी। बचपन ही में उनके पिता का देहान्त हो गया, इसलिए उनका संगोपन करके, कामकाज करने के योग्य बनाने का भार, उनकी माता पर आ पड़ा। उनकी माता ने उन्हें थोड़ी बहुत शिक्षा दी होगी; पर उनकी अनाथ और दीन दशा का विचार करने से यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि टोडरमल को पुस्तकी विद्या बहुत सी मिली होगी। प्रथम तो उनके मा-बाप दरिद्री थे और फिर, तिस पर भी, कमाऊ पिता का देहान्त उनके बालपनही में हो गया। माता परदे में रहनेवाली थी। जगत् के अनुभव-ज्ञान की वायु भी उसके पास न पहुँची होगी। अकबर के प्रचण्ड साम्राज्य के मुख्य सूत्रधार का बालपन ऐसी नीच दशा में व्यतीत हुआ! जान पड़ता है कि उस सुलक्षण बालक के अन्तःकरण में, अपनी माता की (ऐसी बुरी दशा में निराश्रय रहते हुए, परिश्रम करके, थोड़े ख़र्च में) गृह-प्रबन्ध करने की युक्ति देख कर ही उन गुणों का अंकुर उग आया था जिनका कि आगे चल कर पूर्ण विकास हुआ। कुछ बोध-सामर्थ्य आने पर टोडरमल, अपनी माता का आशीर्वाद लेकर, कोई नौकरी-चाकरी की खोज करने के लिए दिल्ली शहर की ओर रवाना हुए। उस समय दिल्ली शहर, राजधानी होने के कारण, बहुत तरक्की पर था। गुणी और परिश्रमी पुरुषों के लिए, उस समय दिल्ली में नौकरी-चाकरी या उद्योग-धंधों का टोटा न था। इसीलिए हमारे इस उम्मेदवार उद्योगी और मनस्वी पुरुष ने भी, अपने मन में दृढ़ विश्वास कर लिया था कि दिल्ली राजधानी में हमें कोई न कोई अच्छा उद्योग अवश्य मिल जायगा और उद्योग मिलने पर हम अपनी प्यारी माता को सुख दे सकेंगे तथा उससे किंचित् उऋण होकर यश के भागी भी बनेंगे।

टोडरमल गाँव के बाहर निकल कर क्या देखते हैं कि सूखे गोबर में लिपटे हुए एक सर्प को एक चील झपट कर ले उड़ी। सम्मुख मार्ग में एक वृद्ध ब्राह्मण आ रहा था, उसने भी यह कौतुक देखा। ब्राह्मण टोडरमल से बोला "बेटा, तुझे शकुन बहुत अच्छा हुआ है। जिसको ऐसा शकुन होता है वह 'राजा' होता है अथवा वह राजा का मुख्य प्रधान तो अवश्य ही होता है।" ब्राह्मण के ये वचन सुन कर टोडरमल को बहुत सन्तोष हुआ। दस पन्द्रह दिन के प्रवास के बाद वे दिल्ली पहुँचे। पास में कुछ भी नहीं था। ऐसी स्थिति में वे एक धर्मशाला में जा बैठे। वह दिन तो किसी न किसी तरह उन्होंने व्यतीत किया। दूसरे दिन टोडरमल उद्योग ढूँढ़ने के लिए शहर घूमने निकले। सौभाग्यवश वे अकबर के दीवान मुज़फ़्फ़रख़ाँ के दफ़्तर के निकट पहुच गये। उस समय दफ़्तर में दो चार मुहर्रिरों की ज़रूरत थी। टोडरमलजी से मुख्य मुहर्रिर ने पूँछा कि क्या तुम्हें लिखना-पढ़ना आता है? क्या तुम हिसाब रख सकते हो? टोडरमल ने कहा, हाँ। अन्त में उनकी परीक्षा ली गई और एक नौकरी मिली।

टोडरमल को नौकर हुए दो चार महीने भी न हुए थे कि वे अपनी बुद्धिमत्ता और कार्यदक्षता के कारण मुज़फ़्फ़रख़ाँ की नज़र में चढ़ गये! टोडरमल ने थोड़ेही दिनों में आफ़िस के सारे कामों की जानकारी प्राप्त कर ली और उनसे बहुत लोगों को मदद मिलने लगी। बड़ी बड़ी जवाबदही के हिसाब भी दीवानजी अकसर टोडरमल ही को सौंप कर आप निश्चिन्त रहते थे। अपने सहकारियों के साथ टोडरमल का ऐसा सरल बर्ताव था कि वे कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी की दृष्टि में नहीं खले। थोड़ेही दिनों के बाद मुज़फ़्फ़रख़ाँ ने उन्हें ख़ास अपने दफ़्तर में रख लिया। टोडरमल की कार्यदक्षता, नेकनीयती, उत्साह और सुन्दर ढब देख कर मुज़फ़्फ़रख़ाँ बहुत प्रसन्न हुआ और उसने बहुत जल्द टोडरमल को अपना हेड क्लर्क बना लिया। राजदरबार के योग्य पुरुष समझ कर मुज़फ़्फ़रख़ाँ ने एक दिन टोडरमल को बादशाह की भेंट कराई। टोडरमल को देख कर अकबर बादशाह के मन पर उनके विषय में बहुत अच्छा परिणाम हुआ। कुछ समय के बाद अकबर-शाह ने उन्हें अपने मुख्य विभाग में ले लिया। बादशाह टोडरमल के गुणों पर इतना रीझ गया कि फिर टोडरमल की सम्मति के बिना कोई कामही न होने लगा।

टोडरमल केवल मुहर्रिर ही बन कर नहीं रहे। उन्होंने लेखनी के काम में जितनी पटुता प्राप्त की उतनी ही दक्षता उन्होंने तलवार के काम में भी सम्पादन की। टोडरमल के समान पुरुषों का चरित मनन करने से स्पष्ट मालूम हो जाता है कि मनस्वी पुरुष जिस विषय में प्रवेश करता है उसे सम्पूर्ण किये बिना वह कभी नहीं रहता। टोडरमल ने युद्ध और सेना की व्यवस्था का अनुभव तत्काल प्राप्त कर लिया। उस समय के सेना-विभाग-विषयक प्रबन्ध में अंधाधुंधी देख कर उन्हें बहुत खेद हुआ। कभी कभी तो किसी एक सेनानी के खोजने ही में आठ आठ, दस दस दिन लग जाते थे। युद्ध का अवसर आ पड़ने पर जगह जगह सेना के लिए अन्न और घास आदि का भी ठीक ठीक प्रबन्ध न होता था। आस पास के गाँओं से लूट मार कर अन्न और चारा एकत्र किया जाता था, इस कारण प्रजा को असह्य दुःख होता था। इतना होने पर भी लाखों रुपये ख़ज़ाने से सैन्य ख़र्च के लिए पड़ जाते थे! टोडरमल को इस बात पर बड़ा आश्चर्य और दुःख हुआ कि ख़ज़ाने से इतना रुपया उठ जाने पर भी ग़रीब प्रजा लुटी जाती है! जाँच करने से उन्हें मालूम हुआ कि ख़ज़ाने के रुपये बीचही में कामदार और अढ़तिये लोग खा जाते हैं और ग़रीबों को व्यर्थ लूटते हैं! इसी कारण जहाँ जहाँ फ़ौज के डेरे पड़ते हैं वहाँ वहाँ आस पास की प्रजा डर के मारे व्याकुल हो जाती है। टोडरमल के समान प्रबन्ध-दक्ष और न्यायी पुरुष को यह अंधाधुंधी सहन नहीं हो सकी। उन्होंने बादशाह से इस बात का ज़िक्र करके, उत्तम प्रबन्ध का मार्ग सुझाया। यह काम बादशाह ने उन्हीं को सौंपा। आज्ञा पातेही टोडरमल ने बड़ी सख़्ती के साथ सब इन्तिज़ाम किया। पहले तो उन्होंने सेना के भाग, विभाग और अन्तर्विभाग बना कर उसका प्रबन्ध किया इसके बाद फ़ौजी छाव-नियों पर अढ़तियों के द्वारा बाज़ार लगवा कर रसद पहुँचाने का प्रबन्ध किया। इस काम के लिए जगह जगह ठेकेदार नियत किये। सरकारी ख़ज़ाने से ख़र्च के लिए रुपये दिये जाने लगे और ठेकेदार तथा अढ़तियों से पाई पाई का हिसाब चुकता होने लगा। इस कारण बीच में रुपये खाने के लिए लोगों को जो अवसर मिलता था वह बन्द हो गया और रैयत को लूट मार से जो दुःख सहना पड़ता था वह भी बन्द हुआ। टोडरमल का यह बन्दोबस्त और चतुरता देख कर लोग दंग हो गये और उन्हें 'सर्वसाक्षी' तथा 'सर्वज्ञानी' कहने लगे। सब प्रजा आशीर्वाद देने लगी।

इस काम से टोडरमल के गुणों की छाप अकबर के मन पर पूर्णतया बैठ गई। अभी तक टोडरमल केवल दीवान का ही काम करते थे; पर सेना-विषयक प्रबन्ध में उनकी चतुरता देख कर सेना के एक बड़े भाग का भी काम उन्हें सौंपा गया। अकबर का उन पर इतना विश्वास जम गया कि उसने टोडरमल को एक बड़े महत्त्वपूर्ण काम के लिए भेजा। बहादुरख़ाँ नामक एक बड़े सरदार ने कई सरदारों को मिला कर जो बलवा किया था उसे शान्त करने के लिए टोडरमल को जाना पड़ा। उन्होंने मीर मुअज़्ज़ुल्मुल्क की सहायता से इस बलवे को बड़ी बहादुरी और चतुरता के साथ शान्त किया। अन्त में मुख्य बलवाई बहादुरख़ाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादशाह की शरण में आया। बादशाह ने उसे क्षमा प्रदान की।

चित्तौरगढ़ और सूरत आदि की कई चढ़ाइयों में टोडरमल के कारण बादशाही सेना को जय मिली। सच्चे शूर वीर सैनिक को जो यश प्राप्त होता है वही यश टोडरमल को थोड़े ही दिनों में मिला! अकबर ने उन्हें एक स्वतंत्र सेना का अधिकारी बना कर गुजरात पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। टोडरमल ने बड़ी बहादुरी के साथ गुजरात प्रान्त पर अधिकार कर लिया। इस चढ़ाई में सफलता प्राप्त करने के बाद बादशाह की आज्ञा पा कर वे बिहार प्रान्त पर अधिकार जमाने के लिए गये। इस काम के लिए मन्सूरख़ाँ नामक एक सरदार को बादशाह ने पहले भेजा था; पर उससे अच्छा प्रबन्ध न हो सका। सेना में व्यसन बढ़ जाने के कारण अंधाधुंधी मची हुई थी। टोडरमल ने परिश्रम-पूर्वक सब प्रबन्ध ठीक कर दिया। पहले तो कर्कश सैनिक मुग़ल लोगों ने टोडरमल की कुछ भी परवा न की; पर टोडरमल में चतुरता कुछ कम न थी; किसी का विरोध न करते हुए, स्वयं मन्सूरख़ाँ (जिस पर वे नियत किये गये थे) को ही बड़प्पन दे कर टोडरमल ने फ़ौज की सारी व्यवस्था लगा दी! उनके इस गुण का सैनिक वीरों पर अच्छा असर पड़ा और जो मुसलमान पहले उनसे विरोध करते थे वही अब उनकी आज्ञा, आदर-पूर्वक, स्वीकार करने लगे! सेना का प्रबन्ध ठीक हो जाने पर, टोडरमल ने पाटन पर चढ़ाई की। उस प्रान्त में दाऊदख़ाँ नामक एक कट्टर बाग़ी बलवा मचा रहा था। शूर वीर टोडरमल ने बड़ी बहादुरी के साथ उसका पराजय किया। वे स्वयं घोड़े पर बैठ कर लड़ाई में डटे रहते थे और वीरों को उत्तेजन देते थे। दाऊदख़ाँ ने शरण लेकर सुलह करनी चाही। यद्यपि टोडरमल ने, उसकी दग़ाबाज़ी देख कर उससे सुलह करने की सलाह नहीं दी थी; पर तोभी उससे सुलह की गई। इस पर कुछ अप्रसन्न होकर वे बादशाह के पास दिल्ली लौट आये। अकबर ने टोडरमल की बहुत प्रशंसा की। इस चढ़ाई में जीते हुए ५४ हाथी टोडरमल ने बादशाह को नज़र किये। अकबर ने उन्हें मुख्य दीवान का पद प्रदान किया।

यह पद पाते ही टोडरमल ने उस विभाग का सुधार करना आरम्भ कर दिया। इतने ही में टोडरमल के भविष्य कथनानुसार दाऊदख़ाँ ने सुलह की कुछ भी परवा न करके, फिर से बलवा मचाया। अफ़ग़ानों ने भी सिर उठाया। इसका समाचार पा कर बादशाह ने फिर भी टोडरमल को ही यह बलवा शान्त करने के लिए भेजा और उनकी सहायता के लिए ख़ानजहाँ को भी साथ भेजा। इस चढ़ाई में मुसलमान सैनिक भी ख़ानजहाँ की अपेक्षा टोडरमल को ही अधिक मान देते थे। टोडरमल सिपाहियों को ठीक समय पर वेतन चुका देते थे। कर्तव्यपरायण पुरुष की ओर उनका सदा ध्यान रहता था। उन्होंने फ़ौज में चुने हुए सिपाही रक्खे थे। आलसी सिपाहियों को—फिर वे चाहे जिसकी शिफ़ारिस से भरती हुए हों—उन्होंने सख़्ती के साथ निकाल दिया था। इस कारण पुरुषार्थी लोगों के कर्तृत्व का बड़ा मान था। अकबर ने टोडरमल को भेज दिया था; पर समय समय पर दाऊदख़ाँ के ज़ुल्म का हाल सुन कर उसको भय मालूम होता था। अन्त में अकबर ने भी, कुछ फ़ौज लेकर, इस बलवे को शान्त करने के लिए, आगरे से कूच किया। अकबर दोही तीन मंज़िल चला था कि मार्ग में टोडरमल और ख़ानजहाँ जो उधर से लौटे आ रहे थे, मिले। उन्होंने दाऊदख़ाँ का सिर बादशाह के पैरों के पास रख दिया। टोडरमल की यह शूर-वीरता देख कर अकबर बहुत प्रसन्न हुआ और उनका अत्यन्त सम्मान किया।

टोडरमल फिर मुख्य दीवान का काम करने लगे। उन्होंने जमाख़र्च और तहसील-वसूल का प्रबन्ध करना शुरू किया। परन्तु इधर बंगाल की फ़ौज में फिर अप्रसन्नता और अशान्ति के चिह्न देख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ने लगे। जब तक राजा टोडरमल फ़ौज का इन्तज़ाम देखते थे तब तक पूर्ण शान्ति थी; पर उनके दूसरे काम में लगते ही, बंगाल की फ़ौज में बलवे की आग सुलग उठी। बलवाइयों ने काबुल में, अकबर बादशाह के भाई मिर्ज़ा महम्मद हकीम के पास, एक इस प्रकार का पत्र भेजा कि "हम आपको हिन्दुस्तान का बादशाह बना देंगे, आप बहुत जल्द चले आइए।" बड़े संकट का समय आ पहुँचा। बलवाइयों ने बंगाल के सूबेदार को मार भगाया। इधर मिर्ज़ा महम्मदहकीम भी सिंधु नदी के तीर तक आ पहुँचा। अकबर बादशाह बड़ी आपत्ति में फँसा। उसे अपने मुसलमान सरदारों में से किसी पर भी विश्वास न जमता था। अन्त में बहुत सोच विचार कर बादशाह ने राजा टोडरमल को बंगाल का बलवा दबाने के लिए और राजा मानसिंह को अपने भाई से भिड़ने के लिए भेजा। उस समय बादशाह को अपने मुसलमान सरदारों पर बिलकुल विश्वास न था, इसी कारण उसने इन दो हिन्दू सरदारों को ऐसे बड़े महत्त्व के काम पर भेजा। राजा टोडरमल और राजा मानसिंह दोनों महापुरुषों ने, अपना अपना कर्तव्य, बड़ी योग्यता के साथ, पूरा किया। राजा टोडरमल ने इस काम में जो चतुरता दिखलाई वह अवर्णनीय है। उन्होंने बलवाइयों में आपस की फूट देख कर पहले, उनके बीच में परस्पर संशय बढ़ा कर, विरोध पैदा कर दिया। अपनी धाक जमाने के लिए मुंगेर का क़िला, बड़ी वीरता के साथ, अपने अधिकार में कर लिया और आस पास का बहुत सा प्रदेश भी घेर लिया। बलवाई लोग आपस में ही झगड़ने लगे। इधर टोडरमल ने, अनेक प्रकार के इश्तिहार जारी करके, प्रजा का मन बलवाइयों के विरुद्ध कर दिया। उन्होंने जब यह देखा कि अब बलवाइयों का ज़ोर कम हो गया तब एक दम उन पर हमला कर दिया। बहुत से फ़ितूरी शरण में आ गये। राजा टोडरमल ने उन्हें क्षमा प्रदान की। जो शरण में नहीं आये उन्हें उन्होंने क़ैद कर लिया। कुल चार महीने में उन्होंने बलवे को शान्त कर दिया। उनकी चतुरता के कारण, इस चढ़ाई में न तो बहुत प्राणहानि हुई और न अधिक धन ख़र्च हुआ।

बंगाल प्रान्त से लौट कर टोडरमल को गुजरात जाना पड़ा। गुजरात प्रान्त में भी वही हाल था। मिर्ज़ा कामरान् की लड़की और इब्राहीम नामक लड़के ने बलवा मचाया था। टोडरमल सूरत, भड़ोंच और चंपानेर होते हुए पट्टन तक पहुँचे। वहाँ उन्हें समाचार मिला कि उस प्रान्त के सूबेदार मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका को बलवाइयों ने घेर कर बहुत हैरान किया है। टोडरमल ने, वहाँ पहुँचतेही, बलवाइयों पर एक दम हम्ला करके उनका ग़ोल फोड़ दिया। बलवाई लोग भड़ोंच की ओर भगे; पर टोडरमल ने वहाँ उनका पीछा न छोड़ा और हताश होकर बलवाइयों को भड़ोंच का प्रान्त भी छोड़ना पड़ा। राजा टोडरमल ने ऐसी युक्ति के साथ अपनी सेना को लगा कर बलवाइयों का पीछा किया कि उनको साँस लेने तक का समय न मिला। ऐसी दशा में बलवाइयों का क्रोध बहुत भड़क उठा और वे बड़े आवेश के साथ राजा टोडरमल की फ़ौज का सामना करके लड़ने लगे। परन्तु राजा टोडरमल की चतुराई के सामने उतावले बलवाई लोग भला कैसे टिक सकते थे? टोडरमल की सेना ने अनेक बलवाइयों का संहार किया और उनके एक बड़े ग़ोल को क़ैद कर लिया। इस ग़ोल के सारे वीर बलवाई अश्वारोही थे। अन्त में मालूम हुआ कि वे सब शूर रमणी हैं और तीर कमान बाँधने में अत्यन्त पटु हैं। जिस समय उनके गोल ने, बलवाइयों से मिल कर टोडरमल की सेना से युद्ध किया था उस समय उनकी बाण-वर्षा ऐसी होती थी मानों सचमुच ओलों की तीव्र बौछार आ रही है। इस रमणीदल को छोड़ कर और सब बलवाई भग गये।

इस प्रकार, गुजरात में शान्ति स्थापन करके राजा टोडरमल बादशह के पास लौट आये। राजा टोडमल ने अपनी वीरता और चतुरता से बंगाल और गुजरात में शान्ति स्थापन करके बाद-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाह अकबर को बिलकुल निश्चिन्त कर दिया। अपने इस कर्तव्य में सफलता प्राप्त होने से, टोडरमल को महा आनन्द हुआ और उन्होंने अपने महल में उत्सव करने की तयारी की। उस उत्सव में पधारने के लिए उन्होंने अकबर को भी निमंत्रण भेजा। उत्सव के समय राजा टोडरमल ने उस रमणीदल के अश्वारोहियों को अपने महल के सामने दो श्रेणियों में खड़ा किया और उन्हीं के द्वारा अकबर शाह का स्वागत कराया। बादशाह को, राजा टोडरमल का ऐसा उत्साह देख कर, बड़ा कौतुक मालूम हुआ। उस समय अकबरशाह इतना प्रफुल्लित हुआ कि बहुत देर तक वह इस बात का ही निश्चय न कर सका कि ऐसे पुरुष-रत्न को इसके इस उपकार का क्या बदला देना चाहिए। उसी दिन से बादशाह ने राजा टोडरमल को अपना मुख्य प्रधान नियत किया और आठ हज़ार रुपया मासिक वेतन नियत कर दिया। राजा वीरबल का चरित सरस्वती के पाठक-गण किसी पिछली संख्या में पढ़ चुके हैं। वीरबल के मारे जाने पर अकबर ने राजा टोडरमल को उनकी जगह पर काबुल की तरफ़ भेजा। टोडरमल उधर के श्याम पर्वतों में, अपनी सेना के सहित, बिजली की तरह तड़पते फिरते थे। थोड़े ही दिनों में उन्होंने कट्टर पठानों और अफ़ग़ानों के नाकों दम कर दिया और उन्हें अकबर बादशाह के शरण में लाकर दास बना दिया।

राजा टोडरमल इतने चतुर, शूर और युक्तिवान् थे; परन्तु उन्होंने किसी लड़ाई में भी सेनापति का अधिकार स्वयं नहीं लिया। उन्हें अपनी कोरी बड़ाई नहीं पसन्द थी। इतना होने पर भी वे सदा महत्त्व का ही काम करते थे और उसका यश, वे स्वयं न लेकर, किसी दूसरे कार्यकर्त्ता और उत्साही पुरुष को देते थे। इसी कारण उन्हें सब लोग बहुत निरभिमानी समझते थे। युद्ध में बिना कारण अधिक प्राणहानि होना उन्हें बिलकुल पसन्द न था। जहाँ तक हो सकता था वे इस प्रकार की मनुष्य-हत्या अवश्य बचाते थे। उनकी राय थी कि जब किसी उपाय से शान्ति स्थापन न हो सके तब युद्ध का प्रसंग खड़ा करना चाहिए; अन्यथा छोटी छोटी बातों के लिए युद्ध की आवश्यकता नहीं। टोडरमल चाहे जिस युद्ध में जाते, अथवा किसी भी काम में निमग्न होते; पर वे साथ ही साथ इस बात का विचार भी सदा किया करते कि जमा-ख़र्च का ठीक बन्दोबस्त होने के लिए कौन सी प्रणाली क़ायम की जाय। यह अत्यन्त महत्त्व का काम उन्होंने आगे चल कर किया और इसी काम से उनकी कीर्ति भारत में अजरामर है। आईने-अकबरी में राजा टोडरमल के विषय में लिखा है:—"वे अपने लिए महत्त्वाकांक्षा बिलकुल न रखते थे। उन्होंने अकबर के राज्य की अन्तर्व्यवस्था की ओर अपना सारा मन लगा दिया था और इसी व्यवस्था के कारण उनका नाम चिरस्मरणीय रहेगा।"

अकबर के पहले मुसलमानी राज्य में बड़ी अन्धाधुन्धी चलती थी। सच तो यह है कि उस समय के बादशाह प्रजा के अधिकारों की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते थे। वे समझते थे कि प्रजागण को ईश्वर ने कष्ट सहनेही के लिए बनाया है। हिन्दू प्रजा की उस समय जैसी दुर्दशा थी वह इतिहास पढ़नेवाले जानते ही हैं। भूमिकर निरूपण या जमाबन्दी का भी कोई ठीक बन्दोबस्त न था। अकबर के पहले मुसलमानी बादशाहत में मुसलमान-रैयत से कुल उत्पन्न का एक दशमांश सरकार लेती थी और हिन्दू प्रजा से बादशाह और उसके अधिकारी कुछ अधिक भूमिकर वसूल करते थे! जब मुसलमानी साम्राज्य अकबर के हाथ में आया और उसने देश में चारों ओर अपनी सत्ता स्थापित करके शांति का राज्य कर दिया तब उसके मन में, सब विभागों का जमाख़र्च और भूमिकर आदि के प्रबन्ध हो जाने के विषय में उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। सुदैव से उसे टोडरमल और अब्बुलफ़ज़ल के समान राजनीतिज्ञ प्रधान भी मिल गये थे। अस्तु। राजा टोडरमल ने जब राज्य में चारों ओर शांति स्थापित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दी तब अकबर ने उन्हें बंगाल प्रान्त से ज़मीन की जाँच शुरू करने की आज्ञा दी। टोडरमल ने पहले ज़मीन की माप करने का विचार करके साठ गज़ लम्बी एक लोहे की मज़बूत ज़ंजीर तयार करवाई। उसी ज़ंजीर के द्वारा टोडरमल ने अकबर के सारे राज्य-विस्तार की माप की। इसके बाद प्रत्येक ज़मीदार या काश्तकार की जितनी जितनी ज़मीन थी और उस ज़मीन पर उनके जो जो हक़ थे उन सबकी एक अच्छी लिस्ट तयार की। इसके सिवा टोडरमल ने भिन्न भिन्न प्रान्तों के लोगों की रीति-रवाज, मत-मज़हब और चालढाल के विवरण की एक बड़ी पुस्तक तयार की। तदनन्तर उन्होंने यह इन्तज़ाम किया कि ज़मीन के मालिक से लगान कितना और किस प्रकार लिया जाय तथा उसके वसूल करने का अधिकार किसको है। राज्य के सब प्रकार के जमाख़र्च की अनेक पुस्तकें उन्होंने तयार कीं और तहसीलदार, ज़िलेदार तथा पटवारी आदि अधिकारी नियत किये।

राजा टोडरमल ने भूमिकर वसूल करने का जो नियम निश्चित कर दिया वही किसी न किसी रूप में आज भी क़ायम है। उस नियम में बहुतही कम रद्दो-बदल या फेरफार हुए होंगे। टोडरमल ने ज़मीन की योग्यता के अनुसार, लगान वसूली के नियम, कुछ निश्चित वर्षों के लिए, क़ायम कर दिये। लगान में नक़द रुपया नहीं लिया जाता था। ज़मीन की उत्तमता या निकृष्टता के अनुसार, कुल उत्पन्न के एक तृतीयांश से लेकर एक-बीसवाँ अंश ½० तक लिया जाता था। सब प्रकार की ज़मीन के सरकारी लगान का औसत एक षष्ठांश था। इस हिसाब से प्रति बीघा दस सेर से अधिक लगान काश्तकार को कभी नहीं देना पड़ता था। लगान ठहराने के पहले बीज और मज़दूरी के लिए भी कुछ अनाज ठहरा लिया जाता था। अनावृष्टि, बीमारी, अतिवृष्टि, दुष्काल आदि अनपेक्षित संकटों के आजाने पर लगान में छूट देने या बिलकुल माफ़ कर देने का अधिकार वसूली के प्रान्तिक सूबेदार को रहता था। प्रजा के पास बीज या ख़र्चे की कमी होने पर बीज या तगाई का रुपया देना भी वसूली के सूबेदार का एक मुख्य कर्तव्य था।

अकबरी साम्राज्य कुल बारह सूबों में बँटा था। प्रत्येक सूबा कई मुख्य विभागों में बँटा रहता था और प्रत्येक मुख्य विभाग में कई परगने होते थे। क़रीब एक करोड़ दाम (४० दाम=१ रुपया) वसूली के सूबे में एक करूड़ा नाम का अधिकारी रक्खा जाता और उस पर देख भाल करने के लिए एक अमीन रक्खा जाता था। परगने में एक मुख्य अफ़सर रहता और उसके नीचे कुछ छोटे छोटे अधिकारी रहते थे। एक दूसरे पर देख-भाल रखने का बहुत अच्छा प्रबन्ध राजा टोडरमल ने किया था। हिसाब की बही बहुत साफ़ रक्खी और जमा-ख़र्च की जाँच भी ख़ूब सख़्ती के साथ की जाती थी। इसी कारण टोडरमल की नियत की हुई प्रणाली में कभी गड़बड़ नहीं पड़ी। उन्हें हिसाब रखने में झुठाई या जालसाज़ी कभी पसन्द न आती थी। अप्रामाणिक पुरुष के अपराध को वे कभी सहन न करते थे। ऐसे पुरुषों को वे सदा कठिन सज़ा देते थे। इसी कारण बहुधा मुसल्मान अधिकारी उनसे अप्रसन्न रहते थे। परन्तु राजा टोडरमल ने उनकी कभी कुछ परवा नहीं की। अन्धाधुन्ध और अप्रबन्ध को दूर करने में स्वार्थान्ध अधिकारियों की ओर से अनेक विघ्न पड़े; परन्तु दृढ़ निश्चयी और दक्ष टोडरमल ने कभी उन विघ्नों की परवा नहीं की।

इस प्रकार अकबर की राज्य-व्यवस्था का सुधार करने के बाद टोडरमल का ध्यान सेना के प्रबन्ध की ओर गया। पहले साम्राज्य की ओर से कोई मुख्य फ़ौज न रहती थी। जब कोई युद्ध का प्रसंग आपड़ता तब तुरंत ही भिन्न भिन्न सर्दार लोग सैन्य एकत्र कर लाते थे। आवश्यकता पड़ने पर सैन्य एकत्र कर लाने के लिए, उन सर्दारों के पास, बादशाह की ओर से जागीरें लगी रहती थीं। इस नियम में राजा टोडरमल को बड़ी अड़चन यह देख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ी कि एक समान तैयार और अभ्यस्त सैनिक युद्ध प्रसंग पर नहीं मिलते थे। इसलिए टोडरमल ने अकबर बादशाह को यह सूचना दी कि साम्राजय के ख़र्च से एक "खड़ी यानी स्थायी फ़ौज" सदा तयार रहनी चाहिए, जिससे युद्ध प्रसङ्ग आपड़ने पर शिक्षित सिपाही सेना में जा सकें। यह सूचना अकबर बादशाह को बहुत पसन्द आई और उसने "खड़ी फ़ौज" रखने का प्रबन्ध करने के लिए टोडरमल को आज्ञा दे दी। परन्तु यह सूचना स्वार्थी जागीरदार लोगों को पसन्द नहीं हुई। उन्होंने अनेक विघ्न उपस्थित किये; पर टोडरमल ने किसी की भी परवा न करके अपना इष्ट फ़ौजी सुधार कर लिया। सेना को सरकारी ख़ज़ाने से वेतन मिलने लगा और युद्ध प्रसंग पर शिक्षित सेना सजी हुई रहने लगी। इस सुधार के कारण, बहुत से सर्दार और जागीरदार, टोडरमल के शत्रु हो गये; पर उनके समान कर्तव्य-निष्ठ और दक्ष पुरुष इन स्वार्थसाधुओं की भला क्यों परवा करने लगे!

फ़ौजी प्रबन्ध करके उन्होंने दान-धर्म-खाता, धर्मशाला, पुल, अस्पताल, ज़कात, व्यापार और कलाकौशल आदि अनेक विषयों के सम्बन्ध में जाँच करके सारा अप्रबन्ध दूर कर दिया। सारांश—राज्य प्रबन्ध की बड़ी बड़ी बातों से लेकर छोटी छोटी बातों तक का सारा प्रबन्ध राजा टोडरमल ने किया। उनके प्रबन्ध का, अकबरी साम्राज्य पर, बहुत अच्छा परिणाम हुआ। भूमिकर निश्चित हो जाने से काश्तकारों को बहुत सुभीता और सुख हो गया। हिन्दू-मुसलमान का जो भेद, लगान वसूल करने में किया जाता था वह बन्द हो गया। काश्तकारों को यह विश्वास हो गया कि अपनी ज़मीन पर हम जितना परिश्रम करेंगे उतना हमारा ही हित होगा। वे लोग ज़मीन से अधिक माल उत्पन्न करने का प्रयत्न करने लगे। राजा पर प्रजा का विश्वास जम गया और राजा का लगान भी, सहज में, बिना ज़ुल्म किये, पहले से दुचन्द वसूल होने लगा। इस प्रकार अपने प्रबन्धों की सफलता देख कर राजा टोडरमल को परम सन्तोष हुआ।

टोडरमल के इतने पवित्र जीवन का अन्त अच्छा नहीं हुआ—अर्थात् हत्यारों के हाथ से उनकी मृत्यु हुई! यद्यपि वे वृद्ध हो गये थे; तथापि अपने किसी कर्तव्य-धर्म को पूर्ण करने के लिए वे कश्मीर गये थे। लौटते समय मार्ग में एक दुष्ट यवन ने उनके हृदय में ख़ंजर भोंक कर उनके प्राण ले लिये! इस प्रकार ११ नवम्बर सन् १५८९ में अकबरी साम्राज्य-रूपी इमारत का एक मुख्य आधार-स्तम्भ गिर गया। राजा टोडरमल के चरित्र की आलोचना करते हुए, अब्बुलफ़ज़ल आईने-अकबरी में लिखता है:—

"टोडरमल की मृत्युवार्ता सुन कर बादशाह को बहुत दुःख हुआ। टोडरमल के पीछे, उनकी जगह पर, उनकी हानि की पूर्ति करनेवाला कोई नहीं रहा। उनका मन यदि और कुछ अधिक उदार होता, उनमें संकुचितपन न होता और उनकी न्याय-निठुरता में थोड़ी सौम्यता होती तो पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए महापुरुषों ही में उनकी गणना अवश्य हुई होती।"

राजा टोडरमल स्वभावतः विलक्षण धर्मनिष्ठ थे। धर्म-सम्बन्धी बातें निकलने पर अब्बुलफ़ज़ल और बीरबल आदि उनकी हँसी किया करते थे। परन्तु टोडरमल कभी उसका उत्तर न देते थे। वे उन लोगों के वचन शान्ति के साथ सहन कर लेते थे। एक बार स्वयं अकबर बादशाह के साथ वे अजमेर से पंजाब को जा रहे थे। मार्ग में टोडरमल की देवमूर्ति खो गई। कदाचित् किसी ने, उन्हें चिढ़ाने या सताने के लिए, वह मूर्ति चुरा ली। राजा टोडर का नियम था कि जब तक वे देव-पूजा नहीं कर लेते थे तब तक अन्न-ग्रहण नहीं करते थे। इसी नियम के अनुसार, देवमूर्ति न मिलने तक, उन्होंने तीन दिन मुख में पानी नहीं डाला। उनकी इस धर्मनिष्ठा को जो लोग पागलपन समझते थे उन लोगों ने उनकी बहुत हँसी की; पर उन्होंने कुछ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

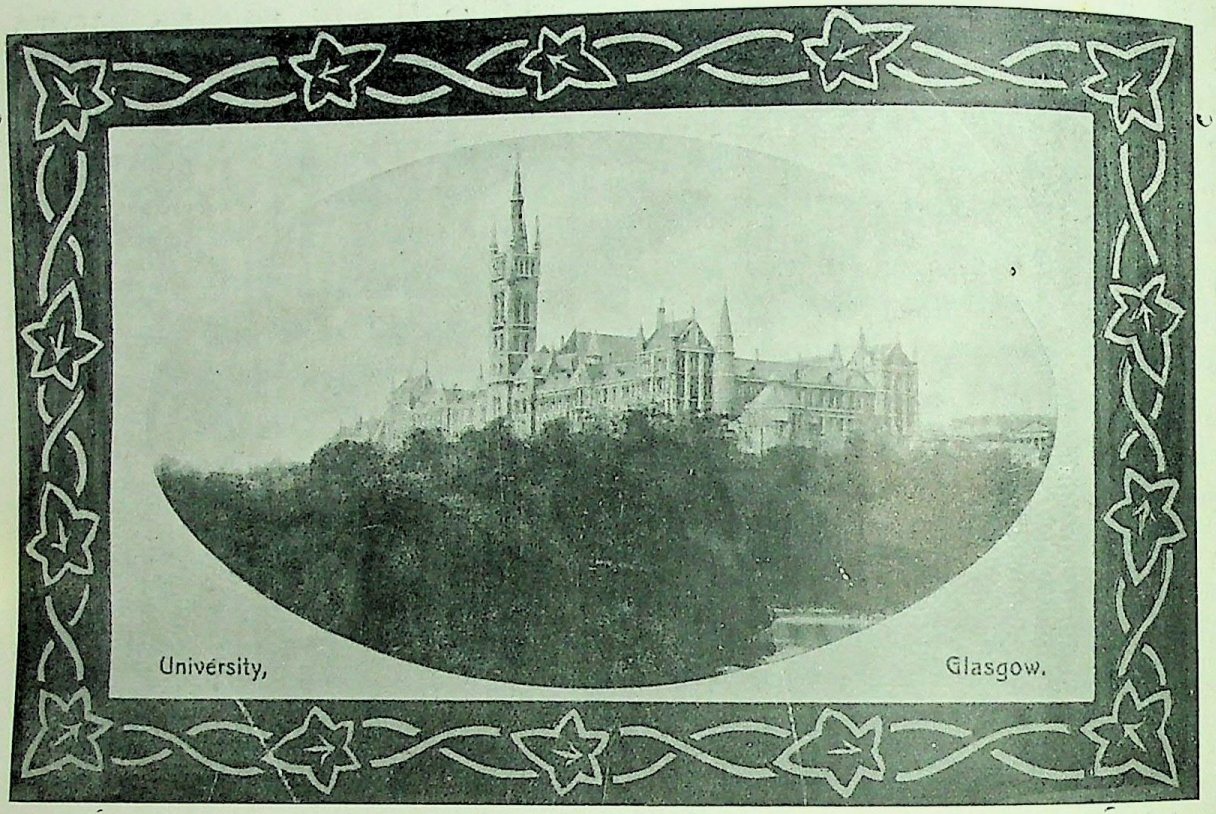

ग्लासगो का विश्वविद्यालय ।

स्कॉटलैंड की गाने और नाचनेवाली लड़की ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर नहीं दिया—इसी गुण को अब्बुलफ़ज़ल उनके मन का संकुचित होना बतलाते हैं।

टोडरमल न्यायनिष्ठुर ज़रूर थे; पर वे दयाशील भी थे। दुष्ट लोगों के लिए वे साक्षात् नृसिंह के अवतार थे। परन्तु साधारण तौर पर सबसे उनका बर्ताव बहुत ही सौम्य था। स्वार्थीपन और अहंकार तो उन्हें छू भी नहीं गया था। "निजहित-निरपेक्ष" ऋषि की तरह, राजकाज के मुख्य प्रधान रहते हुए भी, वे सच्चे आत्मत्यागी और निर्लेप थे। वे सदा पूजा-अर्चा और व्रतनियम किया करते थे। उनका मुख्य आहार वनस्पति था। वे सच्चे सात्विकी पुरुष थे। दीन लोगों की सहायता करने के लिए वे सदा मुक्तहस्त रहते थे और अपने नीचे के अधिकारियों से वे सदा मित्रता का बर्ताव रखते थे। राजा टोडरमल* के इस पवित्र चरित्र से हमको कई प्रकार की शिक्षा मिलती है।

अकबर बादशाह के सभी प्रधान कविता रचते थे। राजा टोडरमल की रची हुई भी कई कवितायें पाई जाती हैं। उदाहरण के लिए यहाँ पर हम एक पद्य देते हैं :—

गुन-बिन चाप जैसे, गुरु-बिन ज्ञान जैसे,
मान-बिन दान जैसे, जल-बिन सर है।
कंठ-बिन गीत जैसे, हेत-बिन प्रीत जैसे,
वेश्या रत-रीत जैसे, फूल-बिन तरु है॥
तार-बिन जंत्र जैसे, स्याने-बिन मंत्र जैसे,
नर-बिन नारि जैसे, पुत्र-बिन घर है।
"टोडर" सुकवि जैसे, मन में विचार देखो,
धर्म-बिन धन जैसे, पंखी बिन पर है॥

इस कविता से पाठक इस बात का अनुमान भली भाँति कर सकते हैं कि राजा टोडरमल कैसे कवि थे। इस पद्य से उनकी बहुज्ञता और नीतिज्ञता का अच्छा परिचय मिलता है।

लक्ष्मीधर वाजपेयी।

---

* राजा टोडरमल के वंशज अभी अवध प्रान्त तथा अम्बाला और लाहौर के ज़िले में रहते हैं; पर अब उनकी दशा अच्छी नहीं है। लाहौर में रहनेवाले उनके वंशज इतने ग़रीब हो गये हैं कि उनमें से कोई कोई अब दो दो पैसे के लिए अन्य लोगों के पत्र लिख दिया करते हैं और इसी प्रकार अपना निर्वाह करते हैं। काल की महिमा धन्य है! लेखक।

गुहिलोत।

अर्थात्

उदयपुर के राजाओं का ब्राह्म-क्षत्री होना

मिस्टर देवदत्त रामकृष्ण भांडारकर एम० ए० महाशय पूनावालों ने "गुहिलोत" राजपूतों की उत्पत्ति पर एक लेख अँगरेज़ी में लिख कर एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के जर्नल और प्रोसीडिंगस भाग ५ नं० ६ जून १९०९ ई० में छपवाया है। इस सोसाइटी के लाईफ़ मेम्बर हम भी हैं। उस लेख का सारांश हिन्दी में भी उन्होंने "सरस्वती" भाग ११ संख्या ६।७ जून और जुलाई १९१० में छपवाया है। पाठकों को ज्ञात हो कि गुहिलोत राजपूत उदयपुर के राजा हैं कि जिनको अब तक हिन्दुस्तान भर में सब लोग अयोध्या के श्रीरामचन्द्रजी के वंश में सूर्यवंशी होना मानते हैं। उन गुहिलोतों को मि० भांडारकरजी ने कई एक प्रमाणों से कि जो उनके हिन्दी सारांश में लिखे हैं, सिद्ध कर बताया है कि वे असल में गुजरात के नागर ब्राह्मण थे और पीछे से क्षत्री बने हैं :—

"That the Guhilots were originally Nagar Brahmans, afterwards became Kshatriyas, is certain and incontrovertible, as we have seen above."

If anybody is still sceptic about this conclusion, his doubt is completely set at rest by the following extract from the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Ekaling-mahatmya composed during the reign of Rana Kumbha, for which I am indebted to the kindness of Pandit Gaurishankar Ojha."

मि० भांडारकरजी ने यह सुन कर कि हम उनके लेख का खंडन लिखनेवाले हैं, अपने हिन्दी के लेख के आदि और अंत में हमारे विषय में यह लिखा है :—

"हिन्दी-भाषा की एक पत्रिका में यह पढ़ कर मुझे बड़ा हर्ष हुआ कि एक महाशय मेरे इस लेख का खंडन लिखेंगे। निवेदन यही है कि वे युक्तियों से सत्यासत्य का निर्णय करें"।

"फिर गुहिलोतों के पुराने राजाओं के इतिहास पर एक लेख मैं और लिखूँगा, परन्तु उसका उनकी उत्पत्ति से कुछ सम्बन्ध नहीं है। उत्पत्ति के विषय पर विचार करनेवाले मोहनलाल विष्णुलाल पंड्याजी सरीखे सज्जन इन्हीं दोनों पर जो चाहें लिखें, जिससे इतिहास का उपकार हो।"

यह पढ़ कर मुझ को भी बड़ी ख़ुशी हुई कि मि० भांडारकरजी ने अन्य कोई कोई विद्वानों की तरह बुरा नहीं माना है, किन्तु विरुद्ध विचारों का भी प्रकाश होना इतिहास के लिए परम उपयोगी समझा है। विद्वानों का धर्म भी यही है कि सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करें। यदि मेरे स्वास्थ्य ने अवसर दिया और मैं जीता रहा तो मैं अवश्य ही अपने विचारों को प्रकाश करूँगा। मैं दो वर्ष से निरन्तर बीमार रहता हूँ। (Diabetes) की बीमारी से अत्यन्त ही निर्बल हो गया हूँ। तथापि मैं खाट में पड़ा हुआ भी अपने विचारों को प्रकाशित करूँगा।

परन्तु मेरे विचार प्रकाश होने से पहले मिस्टर भांडारकरजी को इतनी बातें अवश्य ही करनी चाहिए :—

(क) यद्यपि मि० भांडारकरजी अपने दूसरे लेख का इस लेख से कुछ भी सम्बन्ध होना नहीं समझते हैं परन्तु उसका चोली दामन का सा सम्बन्ध है। अतएव उस दूसरे लेख को शीघ्र ही प्रकाशित कर दें। क्योंकि हम को दिखाना होगा कि जिसके प्रमाण को इस लेख में माना है उसको दूसरे में नहीं माना है। अभी पबलिक तो नहीं जानती है परन्तु मैं इस आनन्दपुर थियेारी को भली प्रकार जानता हूँ और यह भी जानता हूँ कि तदनुसार उस दूसरे लेख में क्या क्या ऐतिहासिक वृत्त होंगे।

(ख) जिन प्रशस्तियों के प्रमाण इस लेख में दिये हैं तथा दूसरे लेख में भी देंगे उनमें से जो बिना छपी ताले में बन्द हैं और पबलिक को उपलब्ध नहीं हैं उनकी *Fac simile* आदि छपवा कर पबलिक के सम्मुख रखवा दें ताकि पबलिक उनके दर्शन तो करे और जाने कि वे कैसी हैं। अब तक सब मेवाड़ के इतिहास लिखनेवाले अपने अपने मतलब को सिद्ध करने के लिए उनके हवाले तो देते हैं और किसी किसी की नक़ल पर से कयास के घोड़े भी दौड़ाते हैं। पर न जाने वे प्रकट क्यों नहीं की जाती हैं। जब उन प्रशस्तियों में से कोई बात हम अपने अनुकूल बतावेंगे तब बिचारी पबलिक कैसे निर्णय कर सकेगी। उन प्रशस्तियों में हमको ही कई शंकायें हैं।

(ग) ऐसे ही जिन एक लिंगमाहात्म्य और मूल्य नैरासी की ख्याति आदि पुस्तकों के प्रमाण मि० भांडारकरजी ने इस लेख में दिये हैं वा आगामि लेख में देंगे वह भी पबलिक को उपलब्ध नहीं हैं। भला बिना उनके सम्मुख हुए पबलिक क्या निर्णय करेगी। हम तो ऐसी दशा में भी उनके लिखे हालात अपने लेख में प्रकाश कर देंगे परन्तु पबलिक तो अंधकार में ही रही। अतएव अत्यावश्यक है कि प्रशस्तियों की *Fac simile* और इन ग्रन्थों को पबलिक के सम्मुख रखने का प्रयत्न किया जावे। हम को प्रशस्तियों की नक़लों पर कम विश्वास है। इत्यलम्।

गोरपाड़ा
मथुरा
३।८।१०

मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयसिंहप्रकाश ।

(रघुवंश का हिन्दी-कविता में एक पुराना अनुवाद)

कुछ वर्ष हुए मुझे जयपुर में गलता (गालवाश्रम) की गद्दी के आचार्यजी के पुस्तकालय में कालिदास महाकवि के बनाये हुए प्रसिद्ध रघुवंश महाकाव्य का एक हिन्दी पद्यबद्ध अनुवाद मिला जिसका नाम 'जयसिंहप्रकाश' है। मैंने इस पुस्तक की नोटिस काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को कर दी थी और सभा ने मेरी पुस्तक से इस काव्य की प्रतिलिपि भी करवा ली; कदाचित् सभा उसे कभी छापे। आज इस लेख के द्वारा हिन्दी के प्रेमियों का उस पुस्तक से परिचय कराये देता हूँ।

पुस्तक गुटके के ढँग की है; खुले पत्रों की नहीं। ऊपर लाल मख़मल की जिल्द बँधी हुई है। पत्र पतले, चिकने, मैले काश्मीरी के समान काग़ज़ के २५८ हैं और दोनों ओर लिखे हुए हैं। प्रत्येक पृष्ठ ६½ इंच चौड़ा और ८½ इंच लम्बा है। प्रति पृष्ठ में पंक्ति १४ और प्रति पंक्ति में प्रायः १६ अक्षर हैं। लिखावट लाख की काली स्याही की है, अङ्क और विराम चिह्न, छन्दों के नाम और 'उवाच' और प्रत्येक उल्लास के अन्त की 'इतिश्री' लाल स्याही से लिखे हुए हैं। लिखावट के चौतरफ़ा लाल रेखायें हैं और उनके आगे प्रायः एक इंच से कुछ अधिक का हाशिया छूटा हुआ है जिसे पुराने समय में आयु कहा करते थे, क्योंकि जितनी यह आयु बड़ी होती उतनी ही पुस्तक की आयु—कीड़े आदि के आक्रमणों से—बचती थी। बाईं ओर के पृष्ठ की बाईं आयु के ऊपर के कोने पर पत्राङ्क हैं जिन पर 'र भा' लिखा हुआ है जिससे इस पुस्तक का नाम रघुवंश भाषा जान पड़ता है।

पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार होता है—

श्रीगणेशाय नमः । ओं ।

बचन अरथ ज्यों मिलि रहे, बचन अरथ निति आप।
पारबती परमेश्वरै, बन्दौं जग मा बाप ॥ १ ॥

पाई * कुसुम जयसिंह को, जु हैं सवाई नाम।
भाषा रघु में करत हों, सुकवि आतमाराम ॥ २ ॥

सूरज तें लै ह्वांतकें, बंसु बरनिहौं तास।
नांउ धर्यो या ग्रन्थ को, तौ जयसिंहप्रकास ॥३॥

कितै बंसु रवि ते भयो, कित मेरी मति छुद्र।
तिन पूरा लै मोहतें, दुस्तर तिरत समुद्र ॥ ४ ॥

इसमें पहला और चौथा दोहा क्रमशः रघुवंश के पहले और दूसरे श्लोक का अनुवाद है, बीच के दोनों दोहे कवि ने अपने वर्णन के जोड़ दिये हैं।

मूल के एक श्लोक का अनुवाद कवि ने नियम से एक ही छन्द में किया है। कहीं एक आध छन्द बढ़ाया है। अवश्य ही छन्द कई प्रकार के काम में लिये हैं; एक सर्ग में एक ही छन्द रहे यह संस्कृत-कवियों की सी पाबन्दी नहीं रक्खी गई। दोहा, सोरठा, कवित्त, चर्चरी, वृतानन्द, हिंडोलना, लीलावती, छप्पै, घनाक्षरी, बत्थुवा, प्लवंगम, बरवै, हाकलि, पादाकुलिक, तोटक, पटहली, करिणी—ये कुछ छन्दों के नाम यों ही देख कर लिखे जाते हैं। मूल के सर्ग की जगह उल्लास रक्खा गया है। जहाँ किसी का वाक्य आरम्भ होता है वहाँ 'धेनु के वचन राजा सों' 'हरिणी उवाच' आदि भी कहीं कहीं लगा दिया है; पर बहुत थोड़े स्थानों पर। नीचे की सारणी से सर्ग और उल्लासों का सम्बन्ध जान पड़ेगा :—

* इसके पहले शोधक की कलम ने 'हु' लिखा है। 'हुकुम' चाहिए। 'सु' शोधक ने मिटाया नहीं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रघुवंश *

सर्ग		श्लोक संख्या
१	वसिष्ठाश्रमगमन ...	... ९५
२	नन्दिनी-वर-प्रदान ...	— ७५
३	रघुराज्याभिषेक ...	... ७०
४	रघुदिग्विजय ...	... ८८
५	अजस्वयंवराभिगमन ...	... ७६
६	स्वयंवरवर्णन ...	... ८६
७	अजपाणिग्रहण ...	... ७१
८	अजविलाप ...	... ९५
९	मृगयावर्णन ...	... ८२
१०	रामावतार ...	... ८६
११	सीताविवाहवर्णन ...	... ९३
१२	रावणवध ...	... १०४
१३	दण्डका-प्रत्यागमन ...	... ७९
१४	सीता-परित्याग ...	... ८७
१५	श्रीरामस्वर्गारोहण ...	... १०३
१६	कुमुद्वती-परिणय ...	... ८७
१७	अतिथि-वर्णन ...	... ८१
१८	वंशानुक्रम ...	... ५३
१९	अग्निवर्ण-शृङ्गार ...	... ५७

जयसिंह प्रकाश

उल्लास नाम	छन्द संख्या
वसिष्टासमाजिगमनो० ...	९२
नंदिनीवरप्रदानो० ...	७५
पुत्रोत्पत्ति	७२
रघुदिग्विजय ...	९१
स्वयंवराभिगमन ...	७९
स्वयंवरवर्णन ...	८५
इंदुमती-पाणि-ग्रहण ...	७२
अजविलाप	१००
मृगयावर्णन ...	८७
रामोत्पत्ति	७३
भार्गव रामजय ...	९४
रावणवध	९८
भरतसंगम ...	८९
सीतापरित्याग ...	८८
स्वर्गागमन	१०६
विभीषण-प्राप्ति	८५
अतिथि-वर्णन ...	८०
वंशानुवर्णन ...	५४
राज्ञीराज्याभिषेक ...	५६

पुस्तक का अन्त इस तरह पर है—

सोरठा।

जो वह प्रजनि समाज पुत्र हौस राखे हिए।
तासु भूति के काज रानी गरभु धर्यो तबै॥
महि ज्यों बीज समेति बैठी सिंहास (न) लसै।
सिखें राज विधि लेति मूल वृद्ध मन्त्री सहित॥
फिरि भाखत हैं तासु रीति यहै कोविद सकल।
अगिनि बरन सम जासु फैलि रह्यो वसुधा हुकम॥५६

इति श्रीमन्महाराजाधिराज सवाई जैसिंहजी निदेसात आत्मारामकृतौ जैसिंहप्रकासे राज्ञी राज्याभिषेको नाम एकोनविंसतिकोल्लासः† ॥ २१ ॥ शुभं ॥ शुभमस्तु लेखक पा ॥ ॐ ॥ ठकयोः ॥

(नीचे हरिताल की रेखा देकर दूसरे हस्ताक्षरों में)

सत्रह सै यकहत्तरा दसराहौ गुरुवार।
राम कियो उज्जेनि में कै रघुवंस विचार॥

* सर्गों के नाम और श्लोकों की संख्या जीवानन्द विद्यासागर के संस्करण (सन् १८८०) से ली गई है

† इसी ढंग की इबारत प्रत्येक उल्लास के अन्त में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक के लिपिकार ने अपना नाम नहीं लिखा। र के संयोग, एकार आदि अक्षरों की लिखावट से यह सम्भव जान पड़ता है कि वह कश्मीरी हो।

ग्रन्थकार का नाम आत्माराम कवि है और कविता में उसने अपना नाम (तख़ल्लुस) राम रक्खा है। यह जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह जी (दूसरे) के आश्रित था और उनकी आज्ञा से (निदेशात्) उसने यह काव्य बनाया। पुस्तक स्थान स्थान पर हरताल से शोधी गई है; जो अक्षर कहीं कहीं छूट गये हैं वे फिर लिख दिये गये हैं, जो पंक्तियाँ लेखक ने भूल से दो वार लिखी हैं वे हरताल से मार दी गई हैं। यों ही जो पंक्तियाँ—एक जगह समूचा छन्द—छूट गई है वे आयु पर लिख दी गई हैं। और जिस हस्त ने ये टूटक लिखी हैं उसी हस्त ने अन्त का समयवाला दोहा लिखा है। यही नहीं, एक जगह एक छन्द को बदलकर दूसरा पाठ (और यह कहना चाहिए कि सुधरा हुआ पाठ) भी उन्हीं हस्ताक्षरों में लिखा है।

तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्व्यस्यतामिति।
कैकयी शङ्क्येवाह पलितच्छद्मना जरा॥
(रघुवंश १२। २)

इसका अनुवाद यथास्थान यह लिखा हुआ है—

राजु राम को देहु कानमूल में आइ नृप।
जरा कहति मनु एहु कैकेई की संक तै॥ २॥
(पत्र १६२)

और आयु पर, उसी मनुष्य ने जिसने अन्त का दोहा लिखा है, यह दूसरा अनुवाद लिखा है—

सेत केस मिसि है जरा करन मूल नृप आइ।
राम राजु दै कहति मनु कैकेई डर पाइ॥

यह स्पष्ट है कि यह अनुवाद पहले सोरठे से अच्छा है। अब यदि यह मानें कि किसी 'राम' ने 'उज्जैन' में रघुवंश का विचार किया अर्थात् पहले की लिखी पुस्तक को सुधारा तो यह प्रश्न उठता है कि उसे क्या पड़ी थी कि ग्रन्थकार के पाठों को सुधारे और नये छन्द बनाकर रक्खे? इसलिए यही ठीक जँचता है कि संशोधन और पाठान्तर स्वयं आत्माराम कवि ने अपने हाथों किये हैं और संवत् १७७१ के दशहरा (आश्विन शुक्ल १०) गुरुवार को वह कवि उज्जयनी में विद्यमान था। इससे यह तिथि यदि इस अनुवाद के पूर्ण होने की नहीं है तो 'विचार' (आवृत्ति=संशोधन) की अवश्य है।

महाराजा सवाई जयसिंहजी के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।* संवत् १७५६ में ये आमेर (ढूंढाइ) की गद्दी पर बैठे जिस समय इनकी अवस्था ११ वर्ष की थी और संवत् १८०० में इनका स्वर्गवास हो गया। फर्रुख़सियर बादशाह ने, अपने पूर्वज जहाँदारशाह की तजवीज़ को बहाल रखके इन्हें मालवे का सूबेदार बनाया (संवत् १७६९?) "उज्जैन पहुँचने पर निश्चय हुआ कि रुहेलों ने मालवा में बहुत उपद्रव मचा रक्खे हैं तुरन्त उन पर चढ़ाई की। उमदनी और भिलसा नामी स्थानों पर दो बड़ी लड़ाइयाँ हुईं जिनमें से भिलसा के खेत रूहिलों का सरदार दलेलख़ाँ मारा गया तब वे लोग निराश होकर मालवा से निकल गये। इन लड़ाइयों से लौटते समय सागरपुर नामी नगर में† नदी के तट पर जयसिंहजी ने यज्ञोपवीत‡ लिया और जगन्नाथजी जोशी ने गायत्री मन्त्र का उपदेश किया। रुहेलों का बखेड़ा मिटे

* स्वर्गीय रामनाथ रत्नूजी के इतिहास राजस्थान से।

† सिप्रा?

‡ जगन्नाथ ज्योतिषी जगन्नाथ सम्राट् थे जिनके वंश में जयपुर के राजगुरु सम्राट् जी हैं। जगन्नाथ सम्राट् ने सम्राट्सिद्धान्त नामक ज्योतिष ग्रन्थ बनाया, रेखागणित का संस्कृत अनुवाद किया और ज्योतिष वेधशालायें बनाने और अश्वमेध यज्ञ करने में वे जयसिंहजी के दक्षिण हस्त थे। जयसिंहजी का यज्ञोपवीत इतने विलम्ब से होना चिन्त्य है; सम्भव है कि सम्राट् जगन्नाथ ने कोई दीक्षा दी हो। इन्हें गङ्गालहरी के कर्ता प्रसिद्ध पण्डित-राज जगन्नाथ त्रिशूली से जो शाहजहां के समसामयिक थे मिलाना भूल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे मालवा में जयसिंहजी के अधिकार में किसी प्रकार का क्लेश न हुआ। हाँ एक बार मरहठों की सेना चौथ माँगती हुई नर्मदा के पार उतर आई थी परन्तु पीछे हटा दी गई। दिल्ली में बादशाह फर्रुख़सियर को जब सैयद अब्दुल्लाह और हसन अली के पक्ष का बहुत भय हुआ तब उसने जयसिंहजी को दिल्ली बुला लिया"। यह संवत् १७७४ के पहले हुआ जब कि "फर्रुख़सियर ने अपने दरबार के कई लोगों को मिलाकर सैयद अब्दुल्लाह को मारना चाहा उस मिलावट में चिनकिलीजख़ाँ जयसिंहजी और सर बुलन्दख़ाँ मुख्य थे"

एक दफ़ा फिर भी महाराज सवाई जयसिंहजी मालवे के सूबेदार हुए थे, जैसा कि स्वर्गवासी रत्नूजी अपने इतिहास के पृष्ठ ११५ में लिखते हैं—"संवत् १७८९ में दक्षिण में मरहठों ने बहुत सिर उठाया और नर्मदा के पार होकर उत्तर को बढ़े और मालवा के सूबेदार मुहम्मदख़ाँ से न दबे तो बादशाह मुहम्मदशाह ने जयसिंहजी को मालवा का सूबेदार नियत किया। जयसिंहजी ने मालवा में पहुँच कर दो वर्ष तक मरहठों का सामना किया परन्तु जब देखा कि मरहठे बढ़ते चले आते हैं और दिल्ली से सहायता के लिए सेना कुछ भी नहीं आती तब बादशाह मुहम्मदशाह से लिखा पढ़ी करके संवत् १७९१ में मालवा का सूबा मरहठों के सेनापति बाजीराव को दिलाकर * आप जयपुर चले आये और फिर अपने घर कार्यों में तत्पर हुए।"

अतएव यदि यह ग्रन्थ पहली सूबेदारी के समय में बना है (संवत् १७६९—१७७४) तो ऊपर लिखे दोहे के संवत् "सतरह से यकहत्तरा" और 'उज्जैनि' का समन्वय हो जाता है। तुष्यतु न्याय से यदि यह दोहा प्रमाण न माना जाय तो भी आत्माराम कवि संवत् १७५६—१८०० के बीच में हुए।

सवाई भूपाल की कीर्त्ति इतिहास में कई प्रकार की है। अपने समय में जैसे लोकोत्तर कार्य उन्होंने किये वैसे किसी और ने नहीं। कहीं अश्वमेध और

---

* सुनते हैं पेशवा ने महाराज सवाई जयसिंहजी को यह ख़रीता भेजा था—

पीत्वा गर्जन्त्यपस्ते दिशि दिशि जलदास्त्वं शरण्यो गिरीणां
सुत्रामत्रासभाजां, त्रिदशविटपिनां जन्मभूमिस्त्वमेव।
ऐश्वर्यं यच्च यादृक् त्वयि सलिलनिधे किन्तु विज्ञाप्यमेतत्
सर्वोपायेन मैत्रावरुणिमुनिकृपादृष्टयः प्रार्थनीयाः॥

अर्थात् "हे समुद्र! सब दिशाओं में मेघ तुम्हारा जल पीकर गरजते हैं इन्द्र से (पक्ष कटने के भय से) डरे पर्वतों का शरण भी तू ही है; कल्पवृक्षों की जन्मभूमि भी तू ही है; और तुझमें ऐश्वर्य भी जितना कुछ है (वह कहना ज़रूरी नहीं) परन्तु, प्रार्थना यह है कि सब उपायों से अगस्त्य मुनि की कृपादृष्टि चाहते रहिए"। इसमें चमत्कार यह है कि सवाई जयसिंहजी को समुद्र की अन्योक्ति से बढ़ाता हुआ ब्राह्मण दक्षिणी पेशवा अपने को दक्षिण दिशा के पति अगस्त्य ऋषि से मिलाता है जो समुद्र को पी गये थे। इसके उत्तर में सवाई महाराज का यह उत्तर गया—

क्षन्तव्यो द्विजजातितः परिभवोऽप्येतद्वचः पालनात्
पीतः कुम्भसमुद्भवेन मुनिना किं जातमेतावता?
मर्यादां यदि लङ्घयेद्विधिवशात् तस्मिन् क्षणे वारिधि-
स्त्रैलोक्यं सचराचरं ग्रसति वै कस्तत्र कुम्भोद्भवः?

"ब्राह्मण जाति से अपमान भी सहना चाहिए इस वचन को पालनेवाले समुद्र को यदि घड़े से पैदा होनेवाला (अगस्त्य) ऋषि पी गया तो इससे क्या हुआ? यदि कभी वह अपनी मर्यादा को उलाँघ जाय तो स्थावर-जङ्गम सहित तीनों लोकों को ग्रस जाय, बिचारे घड़े से जन्मे हुए की गिनती ही क्या?

परन्तु कुछ समय पीछे जयसिंहजी ने मरहठों को मालवा देने की आज्ञा बादशाह से लेकर, स्वयं सिप्रा नदी में स्नान करके ब्राह्मण बाजीराव पेशवा को मालवा का भूमिदान संकल्प कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाजपेय यज्ञ होता है, कहीं धर्मशास्त्र का जयसिंह कल्पद्रुम लिखवाया जा रहा है, कहीं लाटिन और अरबी से गणित के ग्रन्थों का अनुवाद कराया जाता है, कहीं "जीच मुहम्मदशाही" सारिणी बनाकर पुर्तुगाल के ज्योतिषियों की ग़लतियाँ सुधारी जाती हैं, कहीं पाँच पाँच वेधशालायें बनाकर उलुगबेग समरकन्दी और अरब ज्योतिषियों के यन्त्रों के दोष मिटाये जाते हैं, कहीं भूषण कवि के शब्दों में 'दिल्ली की ढाल' बनकर विरोधियों का मुँह तोड़ते समय फटे आसमान में थेगली लगाई जाती है और कहीं 'दिल्ली ढाहनहार' बनकर छोटे ग्रामेर राज्य की सीमायें बढ़ाकर राजपूताने का सब से समृद्ध राज्य सवाई जयपुर स्थापन किया जा रहा है; कहीं एक सूत से नापकर ज्यामिति के क्षेत्र का सा नगर बसाया जाता है जिसके जोड़ के नगर अमेरिका में डेढ़ सौ वर्ष पीछे बसने लगे, कहीं राजपूतों के विवाह आदि की कुरीतियों और अपव्ययों के मिटाने के नियम बनाये जा रहे हैं और यों कर्नल वाल्टर की वाल्टरकृत राजपुत्रहितकारिणी सभा के उद्देश्यों को उससे पौने दो सौ वर्ष पहले पूरा किया जा रहा है !!*

अब यहाँ पर कुछ अवतरण दिये जाते हैं जिससे आत्माराम कवि की शक्ति का ज्ञान हो जाय और पाठक जान सकें कि उसने महाकवि कालिदास की उक्तियों की मान-रक्षा कहाँ तक की है। पहले मूल श्लोक दिये जाते हैं और पीछे जयसिंह प्रकाश के अनुवाद। इनको लिखने में पदच्छेद और आजकल की लिखावट के अनुरूप परिवर्तन कर दिये गये हैं। और पहले तीन चार अवतरणों के साथ तुलना के लिए लाला सीताराम बी० ए०—अवधवासी भूप उपनाम—का अनुवाद भी उद्धृत किया जाता है।

आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च।
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत् (२।५)

सहित सवाद जे हैं तिनन के अगरास
ल्याइ करि करि ते वे आगे भरिवो करै।
रामु कवि कहै ताको अंग सहरावत रहत
फेरि हेरि हेरि डांस हरिवो करै॥
चल्यो चाहै तहाँ ताही ओर को चलति कहूँ
रोके न अखंडित यों गति धरिवो करै।
भूपति दिलीप सोई दिन दिन ऐसी भाँति
नंदिनी गऊ की नीकें सेवा करिवो करै॥ (२।५)*

स न्यस्तचिह्नामपि राजलक्ष्मीं तेजोविशेषानुमितां दधानः।
आसीदनाविष्कृतदानराजिरन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः (२।७)

तजे प्रसिद्ध चिह्न राजलक्षि भूप सो धरें।
लई सु जानि तेज की विशेषता चितै परें॥
मनो मतंग इन्द्र चित्त मत्तभाउ है सही।
प्रगट्ट दानतोय पांति ऊपरै नहीं गही। (२।७)†

स पल्वलोत्तीर्णवराहयूथान्यावासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि।
ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन्॥
(२।१७)

तुच्छ तालनि ते भजे उठि सकल सूकर जोर।
वास के तरु ताकि तिनके सींह आवत मोर॥

---

* सवाई जयसिंहजी का विशेष वर्णन पढ़ना हो तो *The Jaipur Observatory and Its Builder*, by Lieut. A. ff. Garrett, R. E., assisted by Pandit Chandradhar Guleri, *Pioneer Press*, Allahabad, 1902. में मिल सकता है जो Superintending Engineer, Jaipur State से मोल मिल सकती है।

* कवहुंक मृदु तृन नोचि खिलावत।
हांकि मांछि कहुँ तनहिं खुजावत॥
जो दिसि चलत चलत सोई राहा।
यहि विधि तेहि सेवत नरनाहा॥

† राजचिह्न यद्यपि सब त्यागे
तऊ तेजबस नृप सोई लागे।
छिपे दानरेखा के संगा
होत मनहुं मदमत्त मतंगा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एन बैठि रहे तहाँ जित हरित हैं तिन गात।
स्याम कानन हेत याँहीं लखत भो नृप जात॥
(२।१७) *

स निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ।
स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौ मलयदर्दुरौ॥
असह्यविक्रमः सह्यां दूरान्मुक्तमुदन्वता।
नितम्बमिव मेदिन्याः सस्तांशुकमलङ्घयत्॥
(४।५१।५२)

इच्छा भरि करि वास मलयदर्दुर पहार तहँ।
जामि रहे जिन तटनि दिग्ध चंदन दरखत जहँ।
ताही दिसा उरोज तिन्हें कहि (य) त गिरि दोऊ।
या विधिसेां विक्रम असह्य राजा रघु सोऊ।
त्यज्जियउ दूर जो सिंधु ते अंसुक जाको सिथिल इमि।
लंघियउ सह्य परबत तबहि वसुधा मनहूँ नितंब जिमि॥
(४।५४)

निद्रावशेन भवताप्यनवेक्ष्यमाणा
पर्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव।
लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी
सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्रः॥
(५।६७)

नींद के निहारि बस तुम्हैं ओर आपनी
लख्यो न अनुराग तातें मानि दुख दंद ऊ।
रजनी में खंडिता बधू लौं ह्वै धरी क 'लक्षि
जासेां जाइ मिली लह्यो आनंद को कंद ऊ।
रामु कवि कहैं जो दिगंतनि में लंबित हो
कोन जाहि वार वार करत पसंद ऊ।
तेज के तुमार एहो रघु के कुमार कांति
बदन तिहारे की तजत वह चन्द ऊ॥ (५।७०)

हृष्टापि सा ह्रीर्विजिता न साक्षाद् वाग्भिः सखीनां प्रियमभ्यनन्दत्।
स्थली नवाम्भः पृषताभिवृष्टा समुद्रकेकाभिरिवाभ्रवृन्दम्॥

करति बड़ाई नाह की सखी वचन ह्वै बाम।
आपु करि सकति नाहिने लाजवती अभिराम॥
लाजवती अभिराम राम आनंदित जो है।
ज्यों सिंचित बनभूमि नए जल बुँदनि सोहै॥
ज्यों सिंचित वनभूमि जितै केका सरसाई।
तिनही सेा निजनाह मेघ की करत बड़ाई (७।७०)

अथ भूमिपतिं शशाप

हस्तार्पितैर्नयनवारिभिरेव वृद्धः॥
दिष्टान्तमाप्स्यति भवानपि पुत्रशोका
दन्ते वयस्यहमिवेति तमुक्तवन्तम्।
आक्रान्तपूर्वमिव मुक्तविषं भुजङ्गम्
प्रोवाच कोशलपतिः प्रथमापराद्धः॥
शापोऽप्यदृष्टतनयाननपद्मशोभे
सानुग्रहो भगवता मयि पातितोऽयम्।
कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो
बीजप्ररोहजननीं ज्वलनः करोति॥
इत्थं गते गतघृणः किमयं विधत्तां
वध्यस्तव ? (९।७९—८१)

.....पिता फिरि नैन नीर कर लीनेा।
ताही समैं सराप नृपति को या विधिसेां कहि दीनेा॥
वृद्ध अवस्था में भूपति हेा तुमहूँ हमरी नाईं।
भाष्यो पुत्रसेाक ते पैहेा भाग नास की ताईं॥
दाबै पूँछ, तज्यो है विष को, वृद्ध मनेा विषधरु है।
याके अन्त प्रथम अपराधी कहत कोसला वरु है॥
एहेा मुनिराज भगवान के सरूप तुम
दियेा मेाकेां सापु सेाई करी कृपा अति है।
देखी है न बालक-वदन-मुख-सेाभा तातें
जानियत हूवै अब ताकी उतपति है॥
राम कवि कहैं यह उचित अरथ आगि
इंधन समृद्ध खेत जारति जरति है।
पीछे निहचै करि दहन ताही बसुधा में
बीज की अनंत अधिकाई को करति है॥
ऐसी भांति आइ ताही मुनि के समीप
बोल्येा भूप दसरथ जाके लाज है नहीं जिये।

* जल सन उठत वराह-समूहा।
चलत रूख दिसि नभचर जूहा।
हरी घास जहँ बैठ कुरंगा।
चल्यो लखन सोई सौरभि संगा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्काटलैंड में कपड़े धोने की विधि।

स्काटलैंड की मछली बेचनेवाली।

मुद्रण-यन्त्र प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बँधुआ हों रावरो अरज यातें करत हों
होइ कछु आयसु जो सोई अब कीजिए ॥
(१४।८३—८६)

पित्रा दत्तां रुदन् रामः प्राङ्मही प्रत्यपद्यत ।
पश्चाद्वनाय गच्छेति तदाज्ञां मुदितोऽग्रहीत् ॥
दधतो मङ्गलक्षौमे वसानस्य च वल्कले ।
ददृशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः ॥ (१२।७—८)

दसरत्थ भूमि पहिलें जु दीनि ।
करि अस्रुपात सुत राम लीनि ॥
फिरि कह्यउ जबहि वनवास जाहु
उठि सिद्ध भयउ हँसि महाबाहु ॥
पहिले जिन मंगल चीर धरे ।
फिरि है वन को बकला पहिरे ।
तिनको मुखराग समान लखैं ।
जन वे विसमै-जुत जासु चखैं ॥ (१२। ७—८)

तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दशव्याप्य दिशो महिम्ना ।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक् तया रूपमियत्तया वा (१३।५)

त्यह त्यह अवस्थ को जु है पत्त (?)
गुन व्यापि दिसन थिरता करत्त ।
यह समुद रूप हरि की समान
एतो अरु ऐसो न कछु मान ॥ (१३।५)

आनन्दजः शोकजमश्रु बाष्पस्तयोरशीतं शिशिरो विभेद ।
गङ्गासरय्वोर्जलमुष्णतप्तं हिमाद्रिनिस्यन्द इवावतीर्णः ॥
ते पुत्रयोर्निर्कृतशस्त्रमार्गानार्द्रानिवाङ्गे सदयं स्पृशन्त्यौ ।
अपीप्सितं क्षत्रकुलाङ्गनानां न वीरसूशब्दमकामयेताम् ॥
क्लेशावहा भर्तुरलक्षणाहं सीतेति नाम स्वमुदीरयन्ती ।
स्वर्गप्रतिष्ठस्य गुरोर्महिष्यावभक्तिभेदेन बधूर्ववन्दे (१४।३-४)

कौसिला सुमित्रा के तपत सोक आंसुन को
मेटें सुख आंसु जिन सीत कह्यो जाहिनें ।
गंग सरजू को तातो नीर ताहि भेदत ज्यों
उतरि के हिमगिरि सोत सुध काहिनें ॥
सुतन के अंग राकसनि कीन्हें घाय मनों
आले तिन्हें परसे दया से कर दाहिने ॥

छत्रिन की बधुन को इच्छित जऊ है तऊ
वीरसू' सबद ए चहति चित नाहिनें ।
सुरलोकवासी दसरथ तिनकी वै रानी
कौसिला सुमित्रा बड़े सील सनमान की ।
तिनहू को बंदन करत भई बधू उत
आदर बड़े सेा राखि भगति समान की ॥
राम कवि कहें तब ऐसी भाँति आपुहीतै
आपनी सकल जंह बारता बखान की ।
लच्छन न एक अपलच्छन अनेक भर—
ताकी दुख देन हार मोहि जानौ जानकी ॥
(१४। ३—४)

उपस्थितां पूर्वमुपास्य लक्ष्मीं वनं मया सार्धमसि प्रपन्नः ।
तदास्पदं प्राप्य तयातिरोषात् सोढास्मि न त्वद्भवने वसन्ती ॥
निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां तपस्विनीनां भवतः प्रसादात् ।
भूत्वा शरण्या शरणार्थमन्यं कथं प्रपत्स्ये त्वयि दीप्यमाने ॥
(१४।६३-६४)

फिरि यह कहियेा प्रथम तुम राजलक्षि तजि आसु ।
मोहि संग लै दिन घने कियेा जाइ वनवासु ॥
सेा अब लक्षि तुम्हें मिली फिरि ताही करि रोषु ।
तुव घर ते काढ़्यो हमें न कछु रावरो दोषु ॥

फिरि यह कहियेा रिषि निसाचरनि
पीडित जे तिनकी नारि सबै ।
उनकी रक्षा में करी सकल विधि
तुव प्रसाद प्रभु पाइ तबै ॥
ते वे तुम अबहूँ विद्यमान हेा
नै सुरु आनेा (?) आपु चितै ।
सेा में क्यों करिके आजु
अकेली सरन कौन की जाउँ कितै ?
(१४।६४—६५)

तामभ्यगच्छद्रुदितानुसारी कविः कुशेध्माहरणाय यातः ।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ॥
(१४।७०)

लेम समिध कुस जात रुदन सुनि सीय ।
बालमीकि उत आयउ कोमलजीय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भील बध्यो खग देखि कियउ जिन सोक।
होत भयउ तिनको वह जगत सलोक॥ १४ (७०-७१)

उत्खातलोकत्रयकण्टकेऽपि सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकत्थनेऽपि।
त्वां प्रत्यकस्मात्कलुषप्रवृत्तौ अस्त्येव मन्युर्भरताग्रजे मे॥

(१४।७२)

नाक भूमि पताल के निज सकल वैरिन मारि।
हैं जु निन्दारहित वे साँची प्रतिज्ञा धारि॥
तोहि मैं विन काज को जिन कियो है हित लोपु।
ता बड़े भाई भरत के में हमारो कोपु॥ (१४।७४)

और अधिक अवतरण देने का लोभ संवरण करना चाहिए, क्योंकि लेख बढ़ गया है।

श्रीचन्द्रधर शर्मा।

वसन्त-वियोग।

अध्याय ३

[गताङ्क से आगे]

(६०)

*सर्व यात्रा कथन में विस्तार है,
कीर्ति कुंज समूह की विन पार है!
इस समय इतिहास के जो ग्रन्थ हैं साहित्य प्राण,
कुंज छवि माहात्म्य का अद्यापि देते हैं प्रमाण॥

(६१)

नाम हीं कुछ क्यारियों के प्रेम से,
लै, कथा पूरी करैंगे क्षेम से।
"अवध""ब्रह्मावर्त्त""मिश्रित""गया""काशी"शुभप्रदा
"व्रज""विहार""प्रभास""माया" आदि पावन सर्वदा

(६२)

पाठको! अब आगया वह कोट है,
शेष उत्तर देश जिसकी ओट है।
नाम इसका ही जगत में विदित गिरि हिमवान है,
चित्रकारों का हृदय पट, चित्र इसका ध्यान है॥

(६३)

रवि प्रकाशित हिमवलित शिखरावली,
दूर से इस भाँति लगती थी भली।
चारु चाँदी के कँगूरों पै चढ़ा जल स्वर्ण का,
श्वेत में किंवा हुआ आभास पीले वर्ण का!

(६४)

मुग्ध यानारूढ़ हैं सौन्दर्य्य पै,
हैं निछावर चित्त पर्वतवर्य्य पै।
दीन हो कहते पथी हैं, "हाय कुछ रुक जाइये,
शीघ्रता मत कीजिये, इस यान को बिलमाइये",

(६५)

"सो सही" ज्यों ही कहा यानेश ने,
यान उतरे त्वरित ओर नगेश के।
पर्वत स्थल के निकट वह यानदल जब आगया।
दृष्टि में वह सृष्टि का सौन्दर्य्य दूना छा गया॥

(६६)

यानदल थोड़ी उचाई पै रहा,
मन्दचाल, अमंद शोभा में बहा।
छवि निदर्शन हेतु फैले पथिक जन के हस्त थे,
थे सभी मस्तक झुकाए नेत्र सब के मस्त थे॥

(६७)

क्या मनोहारी हरे मैदान हैं!
स्वच्छ कोसों तक छटा की खान हैं!
फूल फूले अमित रंगों के प्रभा-आगार हैं,
फर्श मख़मल सब्ज़ के रंगीन बूटेदार हैं॥

(६८)

कहीं रिमझिम झरी झरनों की बहार,
है सुरभि के साथ पावस का विहार।
परम शीतल पवन भी इस भाँति आती है चली,
शरद को भी प्रिय लगी मानों मनोहर ये थली॥

(६९)

वृन्द वृन्द उमंग संग विहंग हैं,
शब्द सरसीले छबीले रंग हैं।
कहीं चरती चामरीं हैं कहीं चारु कुरंग हैं,
सिद्ध गायन के कहीं दरसे रसायन अंग हैं॥

---

* १६ मात्रा (७, ७, ५), अन्त° में १ लघु अधिक होने से २० हो सकती हैं, तीसरी पंक्ति में ७, ७, ७, ५ (वा ६) मात्राएँ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७०)

देवता का भाव व्यापक है अपार,
देव धारा ! देव दारा ! देवदार !
देव ऋषियों का तपस्थल ! देव माया का विभास !
देव देव महेश प्रिय ! जय अचल देव प्रभानिवास !

(७१)

और भी आगे बढ़ी यानावली,
तुंग शृंगों की हुई बाधक अली।
यानदल को पुनः ऊँची पवन में जाना पड़ा,
कई ऊँचे शिखर पाकर तदपि कतराना पड़ा॥

(७२)

देखिये अब और ही कुछ रंग है,
एक केवल सत्त्व* गुण का अंग है।
जहाँ जाती दृष्टि है बस वहाँ हिम की सृष्टि है,
परम निर्मल! शुद्ध! उज्ज्वल! * शांत रस की वृष्टि है!

(७३)

धूलों हो कर्पूर की भी श्वेतिमा,
पूर्णचन्द्र प्रकाश में हो पीतिमा।
छीर सागर की छटा हो लोल, कर अवलोकना,
आपही ‡ सम आप है बस अचल आभा शोभना॥

(७४)

हाँ विहंगों की नहीं चिहकार है,
भृंग पुंजों की नहीं गुंजार है।
गति कुरंगों की नहीं है नहीं द्रुमलतिका कहीं,
क्या तमोगुण की चलाई, है रजोगुण तक नहीं!॥

(७५)

वाह, कैसा निर्जनत्व प्रभाव है!
शैल पै कैवल्य का बस भाव है!
सत्य की सी तर्जणी हिमशृंग के मिष ठौर ठौर
यानियों को दे रही थी शुद्ध शिक्षा और और :—

(७६)

मूक "एको ब्रह्म" की थी गर्जना,
उस चलाचल की कहीं थी वर्जना।
इक जगह वह भाव "सत्यंवद"* विसूचक स्वच्छ था
कहीं "धर्मंचर*" सहित उपदेश "ऊर्द्ध्वं गच्छ" का!†

(७७)

मान के उपदेश वे मानो भले।
धर्मचारी ऊर्ध्वगामी हो, चले,
शृङ्ग बाधा से सुरक्षित यान धाए वेग से,
पान्थ गण समझे नहीं उस मार्ग को उद्वेग से!

❋ ❋ ❋ ❋

(७८)

वाह वा! अब क्या धरा द्युतिवंत है,
हिम सही है पर नहीं हेमंत है।
मेघ हैं पर कोइ भी बाधा नहीं बरसात की,
प्राप्त है पर्य्याप्तसेवा सुखद वासित बात की॥

(७९)

अतिथि मानो योग निद्रा से जगे,
स्नेह में इस देश नूतन के पगे।
छोड़ यानों को सिधारे हंस मानस ताल को,
जीव हों ज्यों ब्रह्मगामी त्याग साधन जाल को!॥

(८०)

यानियों की दृष्टि जो नीचे गई,
बात देखी इक अचम्भे की नई।
पंक्तियाँ जो थीं मरालों की हवा में भासमान,
थीं महीतल में सुबिम्बित और सारा आसमान!

(८१)

फिर अधिक ग्रीवा झुका देखी छटा,
बिम्बमिष जंगम विमानों की घटा।
चलित हों जिमि छीरसागर में विशाल सुहावने,
यानदल श्रीवरुणजी के विपुल आकृति के बने।

(८२)

मुदित मालाकार बोले "सज्जनो"!
भाग्यशाली धर्मशील महज्जनो!
है तुम्हारे चित्त में इतना अचम्भा किस लिए,
आ गया वह शुभ समय इच्छा बली थी जिस लिए॥

---

* सत्त्व गुण का रंग श्वेत है तथा शान्तरस का भी।
† प्रतीप ‡ अनन्वयालंकार।

* श्रुति † "ऊर्द्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था" (भ० गीता)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८३)

भेद वह इस देश में तुम पावगे,
पा जिसे तुम सबहि कुछ पा जावगे।
बाग का इतिहास सब हस्तामलक हो जायगा,
ज्ञान वह तुम को सुमालाकार पद पर लायगा!

(८४)

बास कर आराम में आराम से,
मुक्त रह कर क्रोध से अरु काम से।
शुद्ध मालाकार का कर्त्तव्य-पालन कीजियो,
पूर्व मालाकारगण को मोद पूरा दीजियो॥

(८५)

है प्रणाली ऐसिही इस बाग की,
रीति है अनुराग की वैराग की।
पुण्य का सम्बन्ध लाया है तुम्हें इस बाग में,
लै समस्त प्रबन्ध बन्धन मस्त रहना त्याग में॥

(८६)

लौट निज निज कुंज को जब जाइयो,
कर्म की कुंजी न ये बिसराइयो।
आयगा जब दिन तुम्हारे हेतु भी विश्राम का,
आ रहेंगे बिपुल सुपथी, आसरा है राम का॥

(८७)

बल्लिकाएँ बाग की सूखें नहीं!
कोइ द्रुम शाखा न दुख पावे कहीं!
जीव सबही स्तंब से गज सिंह तक निज बाग के,
प्रिय कुटुम्बी के सदृश हैं, सकल भोगी भाग के॥

(८८)

सलिल-धारा-क्षीणता होने न पाय *,
भूमितल की आर्द्रता खोने न पाय!।
कुंज और निकुंज की वह मंजुता घटने न पाय,
सुमन छबिद्रुम सघन छाया मय छटा छटने न पाय!॥

(८९)

रत्नमण्डित बाग के मन्दिर महान,
तुंग और अमन्द सुखमा के निधान।
यज्ञशालाएँ, कुटीरैं साधुजन निस्तार की,
पुस्तकालय सुर-गृहादिक वस्तुएँ उपकार की॥

(९०)

सर्व का रक्षण परम कर्त्तव्य है,
नीति बारंबार ये वक्तव्य है।
चेत से उद्यान की नियमावली को जान के,
नित्य करना अनुसरण हित शुद्ध इसमें मान के॥

(९१)

आप्तजन उपदेश यों देते हुए,
प्रेम से बोले "नमः श्रीशंभवे!"
यान उतरे स्थित हुए जब उस धरा छबिरास पै,
कहा यानाधीश ने "ये रजत गिरि कैलास है!"

(शेष आगे)

"पूर्ण"

* यहाँ लिपि की असमर्थता प्रतीत होती है "यः" से ह्रस्व "ए" का काम लीजिए और भी कहीं कहीं लिपि की त्रुटि क्षमा-योग्य है।

सतसई-संहार।

[गतांक से आगे]

२४–मानहु विधि तनु अच्छ छबि, स्वच्छ राखिवे काज।
दृगपग पोंछन को किये, भूषन पायनदाज॥ ५१५

नों शरीर की अच्छी छबि स्वच्छ रखने के निमित्त विधाता ने दृग और पग के पोंछने को भूषणों को पायनदाज किया है जो फरश के आगे देहली में पगपोंछन होता है उसे पायनदाज कहते हैं। उत्प्रेक्षालंकार॥" (पृ० १६९)

अफ़सोस! न हुए इस समय बिहारीलाल, अधिक नहीं तो उन ७०० (सात सौ) में से आधी मोहरें (अशरफ़ियाँ) तो हम आपको (विद्यावारिधिजी को) दिलवाही देते, जो उन्हें जयपुर दरबार से, (प्रति दोहा १ मोहर के हिसाब से) पुरस्कार में मिली थीं। उर्दू और फ़ारसी के महाकवि ग़ालिब का कथन है कि "सख़ुनसन्ज (कवि) से सख़न फ़हम (कविता का मर्म समझनेवाला)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी किसी प्रकार भी योग्यता और प्रतिष्ठा में कम नहीं है। यही नहीं किन्तु पहले से दूसरे का दर्जा बड़ा है, क्योंकि वह कविता के गूढ रहस्यों को जिस उत्तमता से समझता और प्रायः उसके ऐसे ऐसे अपूर्व और विलक्षण अर्थों को सोचता है, जो स्वयं कवि को भी नहीं सूझते"—एक बार एक शख़्स जो कवि तो न थे परन्तु 'सहृदय' और 'सख़न फ़हम' अबल दर्जे के थे, ग़ालिब से मिलने दिल्ली गये, और उन्हीं के पास जाकर ठहरे, रात को कविता की चर्चा छिड़ने पर उन्होंने ग़ालिब के ही कुछ शेरों की ऐसी अपूर्व और विलक्षण व्याख्या की कि ग़ालिब सुन कर फड़क गये, और वज्द में आकर झूमने लगे, उन्होंने कहा कि "शेर कहते वक्त मेरी बुद्धि में यह बात न थी, मुझे यह भाव स्वयं नहीं सूझा था" इस मुलाक़ात का हाल अपने एक शिष्य और मित्र कवि को लिखते हुए ग़ालिब ने यह पूर्वोक्त सम्मति प्रकट की है।

वास्तव में ग़ालिब की यह राय बहुतही ठीक है। यदि मल्लिनाथ सा सिद्ध गारुड़िक, कालिदास की "दुर्व्याख्याविष-मूर्च्छिता" कविता-कामिनी को अपनी 'सञ्जीवनी*' बूटी से न बचाता, पुनरुज्जीवित न कर जाता, अथवा यों कहिए कि विद्यावारिधि के टाइप के टीकाकारों के अनर्थ-वज्र-प्रहारों से उसकी रक्षा न करता, तो आज कालिदास को कौन पूछता! कविता के साथ कालिदास का भी नाम शेष रह गया होता! भगवान् वेदव्यास के 'ब्रह्मसूत्रों' का वह अलौकिक और अपूर्व अर्थ जिसने अपने महत्त्व के आगे संसार भर के विद्वानों को सिर झुकाने के लिए विवश कर दिया है, लोगों को कैसे सूझता यदि भगवान् शंकर का शारीरक भाष्य आज न होता!

महर्षि गोतम के दुरूहतम न्यायसूत्रों का अभिप्राय आजकल के ये ऐरागैरा नत्थू ख़ैरा कभी समझ सकते! यदि वात्स्यायनमुनि इस समय के संकुचद्दृष्टि, मन्दमति लोगों पर अनुग्रह करके अपना भाष्य न रच गये होते!

इसी तरह यदि श्रीमान् 'विद्वद्वृन्द शिरोमणि' 'विद्यावारिधि' महाराज "सर्व साधारण की बुद्धि में कविवर का आशय प्रगट कराने की" इच्छा से प्रवृत्त होकर अपना यह अमूल्य "अतिललित मधुर मुग्ध" टीका न बनाते तो भला विहारी के काव्य के ऐसे ऐसे रहस्यपूर्ण भाव और निराले अर्थ संसार को कैसे मालूम होते!

विद्यावारिधिजी अपनी महिमा का वर्णन सुनकर प्रसन्न हो रहे होंगे, जी में ख़ुश होंगे कि 'मल्लिनाथ, शंकराचार्य और वात्स्यायन के साथ एक पंक्ति में बैठने का सौभाग्य तो प्राप्त हुआ, पाँचों सवारों में तो मिल गये! परन्तु शोक है कि हम उन्हें ज़्यादह देर तक ख़ुश नहीं रख सकते, अब आगे जो कुछ कहा जाता है, उसे सुन कर शायद विहारीलालजी इनाम की अशरफ़ियाँ विद्यावारिधिजी को न बँटावें, एक बात ऐसी ही निकल आई, क्या करें मजबूरी है, हमने तो अपनी तरफ़ से बहुत ज़ोर लगाया कि किसी तरह विद्यावारिधिजी को पुरस्कार की मोहरों में से हिस्सा मिल जाय, परन्तु "कविताक्रन्दन" ने मामला बिचाल दिया, इनाम का नाम सुनतेही बड़े दर्दनाक लहजे (कारुणिक स्वर) में कविता चीख़ उठी कि "हाय यह क्या ग़ज़ब करते हो! मेरे क़ातिल को यह उलटा इनाम कैसा देते हो! ख़ूब रहा :—

"यह अजीब माजरा है, मुझे रोज़ईदे-क़ुर्बां,
वही ज़िबह भी करे है, वही ले सवाब उलटा।"

देखते नहीं हो, इन्होंने किस तरह "दृग और पग के पोंछने को भूषणों का पायनदाज किया है"—मानो नायिका के शरीर को सड़क बना कर उस पर अनर्थ का पत्थर फोड़ कोलहू चलाया है!!! कविता की कोमल काया को दुर्भाव के 'दुर्मट' से इस बुरी तरह कुटवाया है कि उसने देखनेवालों को ख़ून के आठ आठ आँसू रुलवाया है!!

* "भारती कालिदासस्य दुर्व्याख्याविषमूर्च्छिता। एषा सञ्जीविनी टीका तामद्योज्जीवयिष्यति"॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचने की बात है कि जब नायिका का शरीर "पगडंडी" (?) बन गया, लोग उसे पैरों से रौंद कर चलने लगे तो 'भूषणों का पायनदाज' क्या काम देगा? वह शरीर की अच्छी छवि को 'स्वच्छ' कैसे रख सकेगा? 'भूषणों का पायनदाज' तो राहगीरों के पैरों से टूट टूट कर, नायिका के शरीर में घुस जायगा! उसे और क्षत विक्षत करके महा-भयानक और बीभत्स बना देगा? शिव शिव! इस कारुणिक दृश्य से किस सचेता पुरुष का हृदय न पिघलेगा? कौन सहृदय न रो पड़ेगा?

"अपि ग्रावा रुद्यादपि च विदलेद्वज्रहृदयम्" !!

सहृदय पाठकगण! यह दोहा 'सतसई' के चोटी के दोहों में से है, इसमें कवि ने अपनी नाज़ुक-ख़याली और कल्पना-शक्ति का कमाल दिखला दिया है, कविता-सृष्टि में इस दोहे का और जवाब नहीं है! बस क़लम तोड़ दिया है!

"मानहु विधि तन अच्छ छवि, स्वच्छ राखिबे काज।
दृग पग पौंछन कौं किये, भूषन पायनदाज॥"

उर्दू कवि के "ख़याली बोसों* से माशूक़ के गुलेरुख़सार पर नीले दाग़ पड़ने" में भी वह लुत्फ़ नहीं जो इस दोहे के भाव में है!

शरीर की कोमलता और कान्ति की यह परा-काष्ठा है कि नज़र के पड़ने से भी वह मैली हुई जाती है! इसीलिए मानो ब्रह्मा ने भूषणों का पायन-दाज़ बना दिया कि दृष्टि अपने पग उससे पोंछ कर तन्वी के तन पर पड़े! शरीररूपी स्वच्छ चाँदनी को, आँखों के मैले पैर ख़राब न कर दें, इसीलिए भूषण रूप पायनदाज़ बनाया गया है! (आँखों के पैर और उनसे शरीर की कान्ति का मैला होना! कितनी नज़ाकत, सफ़ाई और नाज़ुकख़याली है! कुछ ठिकाना है!!) अन्यथा 'दर्पण में मोरचे की तरह' प्रतीत होनेवाले इन भूषणों की आवश्यकता क्या थी?

"पहिर न भूषण कनक के, कहि आवत इहिं हेत।
दर्पन के से मोरचा, देह दिखाई देत"॥ (६२६)

सखी नायिका से कह रही है कि मैं जो तुझे सोने के भूषण पहनने का निषेध कर रही हूँ सो इसलिए कि वह तेरे शरीर में इस प्रकार दिखाई देते हैं जैसे दर्पण में मोरचा!

जिस शरीर की उज्ज्वलता को देख कर आँख उज्ज्वल होती है, वह यदि आँखों के पैरों से मैली हो जाय तो आश्चर्य ही क्या है?:—

"कहा कुसुम कह कौमुदी, कितिक आरसी जोति।
जाकी उजराई लखे, आँख ऊजरी होति"॥ (६१९)

फूल, चाँदनी, या आरसी (दर्पण) में भला वह आबताब और चमक दमक कहाँ है? उसके उजाले से तो स्वयं आंख उजाला पाती है!

"सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारास्वीन्दुषु।
विना मे मृगशावाक्ष्या तमोभूतमिदं जगत्॥"
(भर्तृहरिः)

विद्यावारिधिजी ने उक्त दोहे के सौन्दर्य को कितना बिगाड़ा है, कुछ ठिकाना है? कविकल्पना-समुद्भूत दृग के पगों को "दृग और पग के पोंछने को" कह कर सचमुच के पैर निकाल दिये! "दृगपग" इस समस्त (षष्ठीतत्पुरुष) पद में द्वन्द्वयुद्ध (?) (दृग और पग?) कराकर दृग की टांगें तोड़ डालीं! माना सहृदयता की आँखें फोड़ डालीं!! जो निर्मल शरीर दृष्टि के पड़ने से भी मैला होता था उसे "पगडंडी" बना दिया!!!

२५—ह्वै कपूर मणिमय रही, मिलति न द्युति मुकतालि।
छिनछिन खरी विचक्षणी, लहत छानि तृण आलि॥५२३

"मोतियों की लड़ी शरीर की कान्ति में मिल कर कपूर सी होकर मनमें रही सखी चतुर भी है, परन्तु खड़ी हुई छिन छिन में छप्पर का तिनका

* "क्या नज़ाकत है कि आरिज़* उनके नीले पड़ गये।
हमने तो बोसा लिया था ख़्वाब में तसवीर का"
* आरिज़ = कपोल।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेती है; अर्थात् मोतीमाला देख महामोहित होती है, चतुर सखी यह देख तृण तोड़ती है।" (पृ० १७१)

चतुर सखी तो भला तृणच्छेदनरूप अपलक्षण क्यों करने लगी है, पर यह कविता आपके अनर्थों से पनाह माँगती हुई, मुँह में तृण लेकर 'त्रायस्व मां, पाहि मां' चिल्लाती हुई, ज़रूर प्रार्थना कर रही है कि उसकी जांबख़्शी कर दी जाय तो बड़ा पुण्य हो! हम भी आपसे सहृदयता के नाम पर अपील करते हैं कि "न हन्तव्या निरपराधा निराश्रया तपस्विनी कविता" इस दोहे के साथ जो अन्याय और अनर्थ किया गया है, वह वर्णनातीत है! जिस दुर्दशा से इसकी सूरत बिगाड़ी गई है, जिस बुरी तरह से इसका सर्वनाश किया गया है, इसे अनर्थ की भट्टी में झोंका गया है, उसका वर्णन करते और सुनते हुए कलेजा मुँह को आता है! हृदयपटल फटा जाता है! विराट के यहाँ अज्ञातवास में रहते हुए भीम ने जिस 'पशुमार' से (पशुमारममारयत्) कीचक का वध किया था, उसके हाथ, पैर आदि अवयवों को शरीर में गड़ोकर 'पिण्डाकार' बना दिया था, उसी 'पशुमार' से यह दोहा मारा गया है!! कीचक को तो उस दशा में लोगों ने किसी प्रकार पहचान भी लिया था, परन्तु यह बिलकुल नहीं पहचाना जाता! 'कीचक' को तो अपने दुष्कर्मों का दण्ड मिला था, यह ग़रीब बिना क़सूर ही मारा गया! इस छोटे से दोहे की नन्ही सी जान पर इतना ज़ुल्म!

यदि सतसई के अन्यान्य दोहे, जिनका कि विद्यावारिधिजी ने अपनी टीका में क़तलेआम किया है, वारिधिजी को बख़्श दें, माफ़ कर दें, अपने ख़ून का बदला न भी चाहें, और केवल एक यही दोहा, सहृदयों की सभा में फ़रयाद करने लगे तो यक़ीन कामिल है कि सभा इत्तफ़ाक़ राय से वारिधिजी के ख़िलाफ़ सख़्त फ़ैसला दे, वारिधिजी को लेने के देने पड़ जायँ! सुनिए और ख़ूब ध्यान से देखिए कि मूलपाठ की क्या दुर्गति बनाई है:—

"है कपूरमनिमय रही, मिलि तनदुति मुकतालि।
छन छन खरी विचच्छनौ, लखति छुवाय तृन आलि॥"

यह बहुटीका-सम्मत, शुद्ध पाठ है। अब ज़रा इससे वारिधिजीवाला पाठ मिलाइए, देखिए, उसमें और इसमें कितना भेद है? 'छुवाय' का 'छानि' बना कर अर्थ करते हैं "घर का छप्पर!!"

उक्त दोहे की हरिप्रकाश टीका:—

"है कपूर इति। सखी नायिका के रूप की स्तुति नायक सों करति है। नायिका के तनदुति सों मिलिकैं मुक्तालि जो है मोती की माला सो कपूरमनिमय हो रही है। अर्थ यह कपूरमनि ही होय रही है। भ्रान्ति बसतें, खरी विचच्छनौ—अति प्रवीन जो है आली—सखी सो भी तृन को छुआय कै लखति है—जानती है। कपूरमनि को हाथ पै घसै, तृन पै धरकै उठावै तो तृन को लियेही उठि आवै। यहाँ तद्गुणालंकार और भ्रान्ति अलंकार है, मुक्तावली ने अपनो गुन स्वेतता ताको छोड़ि तनद्युति को गुन लियो। इत्यादि।"

भाव यह है कि नायिका के गले की मोतीमाला, शरीर के कुन्दन रंग में मिल कर कर्पूर-मणि सी प्रतीत होने लगी, सुफ़ेद रंग के मोती पीतवर्ण होकर 'कर्पूरमणि' का धोखा देने लगे, यहाँ तक कि पास रहनेवाली अतिचतुर सखी, जिसने माला के मोतियों को गले में पहनने से पहले, उनको असली रंग में देखा था, वह भी बार बार धोखा खाने लगी कि माला तो श्वेत मोतियों की थी, यह 'कर्पूरमणि' कहाँ से आ गई! अपने सन्देह की निवृत्ति के लिए वह परीक्षा करने लगी कि यदि यह कर्पूरमणि होगी तो तिनके को खींच लेगी, तिनका उससे चिमट जायगा।

"कर्पूरमणि" का दूसरा नाम संस्कृत में तृणमणि भी है, जिस प्रकार अयस्कान्तमणि (चुम्बक) लोहे को खींच लेती है इसीप्रकार 'कर्पूरमणि या' 'तृणमणि' का यह स्वभाव है कि वह तिनके को खींच लेती है। संस्कृत में 'शंकुक' कवि का एक पुराना श्लोक है, जिसमें तृणमणि के इस गुण का उल्लेख है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ये गृह्णन्ति हठात्तृणानि मणयो ये वाप्ययःखण्डकं,
ते दृष्टाः प्रतिधाम दग्धमनसो विच्छिन्नसंख्याश्चिरम्।
नो जाने किमभावतः किमथवा दैवादहो श्रूयते,
नामाप्यत्र न तादृशस्य हि मणेः रत्नानि गृह्णाति यः"॥

कवि कहता है कि जो हठपूर्वक तिनके को या लोहे के टुकड़े को पकड़ लेते हैं ऐसे जी जलानेवाले मणि (तृणमणि,—अयस्कान्तमणि) तो घर घर अत्यधिकता से मिलते हैं, परन्तु न जाने अभाव से या अभाग्य से किसी ऐसे मणि का पता नहीं लगता, नाम तक नहीं सुना जाता, जो रत्नों को खींच लाया करे!

तिनके और लोहे को खींचनेवाले मणियों से क्या फ़ायदा? रत्न खींचनेवाला मणि मिले तो कुछ बात भी है! उससे कविजी रत्नों का शिकार खेला करें!

फ़ारसी में 'कर्पूरमणि' को कहरुबा ربا کہ कहते हैं, उर्दू कवियों ने भी इसमें यह गुण माना है कि वह तिनके को पकड़ती है :—

"काह* कर देता था मेरा शौक़ इक इक कोह† को,
और तमाशा देखती थी मैं लगाकर कहरुबा‡"।

('यज़दानी'—'पासुख़े हिन्द')

"मुनकिरे यकरंगिये माशूक़ो आशिक़ ये जो लोग!
देखलें क्या रंगे काहो कहरुबा मिलता नहीं?"

(अमीर लखनवी)

श्रीमान् विद्यावारिधिजी ने "ह्वैकपूरमनिमय रही" का अर्थ किया, "कपूरसी होकर मन में रही" 'सुधादीधितिकला' की तरह यहाँ भी पदच्छेद करके सत्यानाश किया है, 'कपूर' का अर्थ 'कपूरसी' (?) "मणिमय" का अर्थ "मन में (?)"। "खरी विचच्छनौ" (अत्यन्त चतुर) पद में से आपने 'खरी' को पृथक करके 'खड़ी हुई (?)' कर दिया!

'छूवाय'=छुआकर—का 'छानि' बनाकर 'छप्पर' (?) छा दिया! जिस (छप्पर) में से "खड़ी हुई सखी छिन छिन में तिनका ले रही है!" हायरी अक़िल! यह न सोचा कि मोती की माला पहननेवाली, छप्परों में नहीं रहा करतीं!!

"अर्थात् मोती माला देख महामोहित होती है, चतुर सखी यह देख तृण तोड़ती है"।

यह 'महामोहित' कौन होती है? और 'चतुर सखी' यह देख तृण क्यों तोड़ती है? कहीं यह बावली तो नहीं हो गई??

इस दोहे का टीका प्रारम्भ से अन्त तक "उन्मत्त-प्रलाप" है! 'अलङ्कार' इसका भी आप हड़प कर गये हैं!

(अपूर्ण)

पद्मसिंहशर्मा।

* काह = तिनका—घास। † कोह = पहाड़।
‡ कहरुबा = कर्पूरमणि।

अमेरिका-भ्रमण।

जब से मैं यूनाइटेड स्टेट्स में आया हूँ, मेरी यह प्रबल इच्छा रही है कि मैं इस देश में पैदल भ्रमण करूँ। पर यह देश अपने देश की तरह नहीं है, जहाँ एक भगवा कपड़ा पहिनने से मनुष्य सारे भारत का चक्कर सहज ही में लगा ले; दूसरे अपने देश की भाँति यहाँ थोड़े थोड़े फ़ासले पर गाँव नहीं हैं। बाज़ बाज़ रियासतों में तो पचास पचास मील के अन्दर झोंपड़ी तक दृष्टि नहीं पड़ती, और किसी किसी में मीलों बड़े बड़े पर्वत चले गये हैं जहाँ से अकेले पथिक का गुज़रना कठिन है। यह देश अभी बहुत वन्य है। सैकड़ों मील घने जंगल खड़े हैं जहाँ जंगली जानवर निर्भय विचरते हैं। जंगलों की बात तो एक ओर रही, बड़े बड़े शहरों के निकट झाड़ियाँ और वृक्ष ऐसे सघन खड़े हैं कि रीछ और भेड़िया आनन्द से रहते हैं। अभी दो सप्ताह भी नहीं हुए कि सियेटल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पश्चिमी-भाग में एक मनुष्य ने अपने घर के निकट ही रीछ का शिकार किया था। क्योंकि यहाँ हर एक के पास बन्दूक़ पिस्तौल, तमंचे हैं इसलिए यहाँ के लोग इन जंगली जानवरों का कुछ भी भय नहीं करते बल्कि उनको ऐसी जगह रहने में आनन्द आता है जहाँ शिकार का अवसर मिले। बहुत से लोग जिनको शहरों में अवसर नहीं मिलता, प्रत्येक सप्ताह बन्दूकें ले शिकार की तलाश में बाहर निकलते हैं।

मैं बंदूक़ चलाना नहीं जानता था, पर तो भी मेरे मन ने बार बार यही ज़ोर दिया कि एक बार अवश्य ही पैसेफ़िक महासागर से अटलान्टिक महासागर तक चक्कर लगा इस देश की यात्रा करनी चाहिए।

लेकिन मन को कुछ काल के लिए दबाना था। क्योंकि अभी मेरा अध्ययन समाप्त नहीं हुआ था। पिछली फ़रवरी को मैं अपनी परीक्षा से निपट गया। आगे पढ़ने की यदि मेरी इच्छा हो भी तो भी न्यूयार्क जाना चाहिए, जहाँ शिक्षा-सम्बन्धी उच्च कोटि का विश्वविद्यालय है। दो, तीन महीने इसी अधेड़ बुन में लगा रहा। मन को 'पैदल सफ़र' के विचार से हटाता था और यह युक्ति करता था कि कुछ माह धन कमा शीघ्र न्यूयार्क पहुँचना चाहिए, और यदि हो सके तो वहाँ से शीघ्र भारत। पर चित्त में अमेरिका-भ्रमण की इच्छा प्रबल थी। रात को बिस्तरे पर लेटा हुआ घंटों सोचा करता, मन को जंगलों के भयानक दृश्यों का नक़्शा खेंच डराता, पर इच्छा प्रबल थी, वह भला काहे को सुनती थी। मेरे अन्दर बड़ा युद्ध होता था, कभी एक पासा जीतता, कभी दूसरा। ईश्वर की इच्छा भी ऐसी ही मालूम हुई, क्योंकि धन कमाने का जो विचार किया था उसमें कई एक विघ्न पड़ गये और मुझे सफलता न हुई।

आख़िर बड़े सोच विचार के बाद अब मैंने यह फ़ैसला कर लिया है कि मैं यूनाइटेड स्टेट्स में पैदल ही भ्रमण करूँगा। मैंने अपनी सब किताबें भारत रवाना कर दी हैं। केवल थोड़ा सामान मेरे पास रह गया है उसमें से भी अधिक एक सन्दूक़ में बन्द कर उसे अपने किसी मित्र के पास रख पैदल न्यूयार्क की ओर रवाना हूँगा। पाठक, यूनाइटेड स्टेट्स का नक़्शा उठा कर उसके पश्चिम में वाशिङ्गटन रियासत देखिए। उस रियासत में सियेटल के निकट टकोमा आपको दिखाई पड़ेगा। टकोमा से नीचे दक्षिण को पोर्टलैंड है जो सियेटल से कोई १९० मील पर है। पोर्टलैंड से मैं सन फ़्रांसिस्को जाऊंगा। यह केलीफ़ोर्निया रियासत में सबसे बड़ा शहर है। यदि सन फ़्रांसिस्को में मैं बिना किसी विपद के पहुँच गया तो फिर वहाँ से दक्षिणी रियासतों में घुसूँगा। यहीं अधिक हब्शी लोग हैं, और मैं (Negro Problem) हब्शियों और अमरीकनों के पारस्परिक सम्बन्ध का ब्यौरा आप लोगों को अच्छे प्रकार बतला सकूंगा। यहाँ से आगे वाशिङ्गटन है जहाँ यूनाइटेड स्टेट्स अमरीका का प्रेसीडेंट रहता है। इसे अमेरिका की राजधानी समझिए। यहाँ से आगे न्यूयार्क है। कुल फासला टकोमा से न्यूयार्क, फ़िसको के रास्ते, साढ़े तीन हज़ार मील से ऊपर है। रास्ते में भयानक जङ्गल, पर्वत, दरया हैं। इसलिए आवश्यक है कि मेरा 'अमेरिका-भ्रमण' बहुत ही दिलचस्प हो। मेरे पास कुल जमा तीन डालर हैं और सारा ख़र्च रास्ते का मुझे काम करके निकालना है, इस कारण सफ़र में अवश्य ही देर लगेगी। पूरा एक वर्ष लगेगा। दूसरे मैंने यह यात्रा देश देखने के लिए की है, सब कुछ अच्छी तरह देखता हुआ जाऊँगा।

यदि हो सका तो अपनी इस यात्रा का वृत्तान्त सरस्वती में प्रति मास छपाने का विचार है।

समय आवेगा कि कभी मेरे सफ़र का वृत्तान्त पुस्तकाकार निकलेगा पर इसके लिए पाठकों को कई वर्षों की राह देखनी होगी।

इस यात्रा में मेरे ऊपर बहुत से कष्ट आने सम्भव हैं। शायद कोई जंगली जानवर ही मुझे खा जाय क्योंकि बन्दूक़ का अभ्यास तो अभी रास्ते में करना है। मुमकिन है कि भूख से ही किसी जंगल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्राण देने पड़ें क्योंकि मैं मांसाहारी नहीं हूँ और न कभी जन्म से मांस खाया है। इसलिए पाठकगण! आप लोग मुझे आशीर्वाद दें कि मैं अपने भ्रमण को निर्विघ्न समाप्त करलूँ और कोई आपदा मेरे ऊपर न पड़े।

जिस किसी भाई को मुझे पत्र भेजना हो वह—

S. Deva,
P. O. Box 860,
New York City, N. Y.,
U. S. A.

इस पते पर भेजें। मैं जहाँ हूँगा मुझे मिल जायगा। पत्र के जवाब में देरी हो, तो भाई मुझे क्षमा करें, कारण स्पष्ट है।

सियेटल, वाश
५ जून, १९१०

आपका देशबन्धु
सत्यदेव।

उत्तर और बृहन्नला।

(१)

अति असह्य अज्ञात वास जब पूरा होने पर आया,
वीर पाण्डवों ने तब मन में एक अलौकिक सुख पाया।
उन्हीं दिनों पाकर सहायता कुरुपति, द्रोण, कर्ण, कृपकी,
हरी सुशर्म्मा ने बहु गायें चिर वैरी विराट नृप की॥

(२)

मत्स्यराज पर विपद देखकर निज कर्त्तव्य सोच मन में,
करने को सहायता उनकी गये युधिष्ठिर भी रण में।
सज्जन निज उपकारों का ज्यों बदला कभी न लेते हैं,
प्रत्युपकार रूप ऋण त्योंहीं प्राणों से भी देते हैं॥

(३)

गये भीम, सहदेव, नकुल भी करके अस्त्र शस्त्र धारण,
पर अर्जुन से कहा न नृप ने नर्तक होने के कारण।
इससे उनको हुई विकलता हुआ हृदय में दुःख अपार,
प्रायः वेश देखकर ही सब करते हैं योग्यता-विचार॥

(४)

"उत्तर कुरु के जिस विजयी को सब 'जगदेकवीर' कहते,
अबला बना हुआ बैठा है वही आज बल के रहते!
हाय! प्रकट होने पर हमको लोक कौन पदवी देगा?
वह भीषण अपयश निश्चयही प्राण हमारे हर लेगा॥

(५)

"हाय! हाय! धिक्कार हमें है छिपे हुए बैठे हैं हम,
आश्रय-दाता नृप विराट पर विपद पड़ी है दारुणतम।
इच्छा और शक्ति रहते भी हम कर्तव्य न कर सकते,
हाय न तो जीही सकते हैं न हम आज हैं मर सकते!

(६)

"कृष्णा का अपमान सभा में और विपिनकी बाधा घोर,
रहे झेलते किसी भाँति हम करके अपना हृदय कठोर।
अहो! दैव, क्या इतने पर भी तुझको दया नहीं आई?
नरकरूप अज्ञात वास में महा असुविधा प्रकटाई!

(७)

"आर्य्य भीम, सहदेव, नकुलयुत धर्म्मराज को लेकर सङ्ग,
मत्स्यराज सानन्द गये हैं करने को रिपु से रण-रङ्ग।
होने से विपरीत वेश हा! हुआ हमारा ही न प्रबन्ध,
भला वीरता के कामों से नाट्यकला का क्या सम्बन्ध?

(८)

"अच्छा, क्यों न आपही अब हम चले जायँ युद्धस्थल में,
किन्तु देखकर वैरी हमको जान न लेंगे क्या पल में?
पूर्ण हुआ अज्ञात वास जब फिर डरही क्या है इसका?
चाहे जो हो, किन्तु जगत में अर्जुन को डर है किसका?

(९)

"समय कहाँ पावेंगे फिर हम प्रकटित होने का ऐसा?
मिलता नहीं सुयोग सर्वदा जग में जैसे को तैसा।
अबतो नहीं रहा जाता है फिर क्यों यह अवसर खोवें?
कुछ भी हो, अर्जुन के वैरी अब चिर निद्रा में सोवें॥"

(१०)

निश्चय करते हुए इसी विधि जाने का सत्वर रण में,
अस्थिर अर्जुन घूम रहे थे नाट्य-भवन के प्राङ्गण में।
उसी समय पुत्री विराट की थी जिसकी सूरत भोली,
आकर उनके निकट उत्तरा उनसे इस प्रकार बोली—

(११)

"बृहन्नले! इस समय राज्य पर कठिन समय जो आया है,
नीच त्रिगर्तराज ने आकर जो उत्पात मचाया है।
उसके साथ युद्ध करने को जिस प्रकार हैं पिता गये,
अब उससे भी अधिक उपद्रव सुने गये हैं नये नये!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

उत्तर और बृहन्नला ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१२)

"अधमशिरोमणि दुर्योधनने इसी समयमें पहुँच यहाँ,
करके हरण बहुत सी गायें घेरी नगरी जहाँ तहाँ!
भैया उत्तर ही घर पर हैं गये युद्ध में वीर सभी,
फिर भी बालक होकर भी वे प्रस्तुत हैं युद्धार्थ अभी॥

(१३)

"कुछदिन हुए अचानक उनका मारागया सारथी विज्ञ,
सैरिन्ध्री कहती है तू भी है इस गुण में पूर्ण अभिज्ञ।
कई वार अर्जुन का तू ने है समुचित सारथ्य किया,
देकर निज कौशलका परिचय उनको अत्यानन्द दिया॥

(१४)

"क्या भैयाकी भी सहायता करसकताहै तू इस काल?
आशा है यह बात मानकर करदेगा तू मुझे निहाल।
तुझको अपनाही विचारकर इस प्रकार कहती हूँ मैं,
तुझे ज्ञात है, तुझसे जैसी तुष्ट सदा रहती हूँ मैं॥"

(१५)

सुनकर वचन उत्तरा के यों सुखी हुए मनमें अति पार्थ,
फिर क्या कहना अनायासही जो मनमाना मिलेपदार्थ।
किन्तु हर्ष को प्रकट न करके बोले वे कुछ सकुचाते,
धीरों के गम्भीर हृदय के भाव नहीं ऊपर आते॥

(१६)

"भला नाचने-गाने वाले क्या जानें ऐसी बातें?
करनी पड़ती हैं कितनीही ऐसे समय नई घातें।
पर जब और उपाय नहीं है यह आज्ञा पालेंगे हम,
प्रेम-भरा अनुरोध तुम्हारा किस प्रकार टालेंगे हम?"

(१७)

नववल्ली सी खिली उत्तरा फैली मुख पर छटा नई,
प्रकृत मन्द गतिको तजकर वह झट उत्तरके निकट गई।
आखिरकार युद्ध करने को राजकुमार हुआ तैयार,
मानो मन्मथ ने धरणी पर धारण किया नया अवतार॥

(१८)

तब कृतज्ञता-पूर्ण दृष्टि से सैरिन्ध्री की ओर निहार,
बृहन्नला भी प्रस्तुत होकर पाने लगा प्रमोद अपार।
देख उसे विपरीत ढङ्ग से कवच पहनते हुए विशाल,
हँसती हुई उत्तरा उससे बोली ऐसे वचन रसाल—

(१९)

"बृहन्नले! रणमें जाकर तू मुझको नहीं भूल जाना,
कुटिल कौरवों को परास्तकर उनके वस्त्र छीन लाना।
उनसे रङ्ग बिरङ्गी गुड़ियाँ मैं सानन्द बनाऊँगी,
और खेलती हुई उन्हीं से मैं तेरा गुण गाऊँगी॥"

(२०)

सुनकर उसके वचन पार्थ यों उसे देख कुछ मुसकाये,
उत्तर दिये विनाही फिर वे स्यन्दन शीघ्र सजा लाये।
कहते नहीं श्रेष्ठ जन पहले करकेही दिखलाते हैं,
कार्य्य सिद्ध करने से पहले बातें नहीं बनाते हैं॥

(२१)

रथारूढ़ होकर फिर दोनों समरभूमि को चले सहर्ष,
चकित हुआ मनमें तब उत्तर देख पार्थ-पाटव-उत्कर्ष।
पुरसे निकल शीघ्र पहुँचे वे उसी शमी पादप के पास,
शस्त्र छिपा रक्खे थे जिसपर पाण्डु-सुतोंने विनाप्रयास॥

(२२)

इन्द्रधनुष-सम विविध वर्णमय वीरों के वस्त्रोंवाली,
चपल चञ्चला के प्रकाश-सम चमकीले शस्त्रोंवाली।
पवन-वेग मय वाहनवाली गर्जन करती हुई, बड़ी,
उसी जगहसे घनमाला-सम कौरवसेना दीख पड़ी॥

(२३)

सूर्योदय होने पर दीपक हो जाता निष्प्रभ जैसे,
उसे देख कर उत्तर का मुख शोभा-हीन हुआ तैसे।
क्षण भर में ही उसका पहला साहस सारा लुप्त हुआ,
जगा हुआ उत्साह भीति को जागृत करके सुप्त हुआ!

(२४)

बोला तब भयसे कातर वह शक्ति भूल अपनी सारी—
"देखो, देखो, बृहन्नले! यह सेना है कैसी भारी!
इसे देख कर धैर्य छूटता अङ्ग आप ही हैं थकते,
मैं क्या, इसे स्वयं सुर-गण भी रण में नहीं हरा सकते॥

(२५)

"मैं किसभाँति लड़ूँगा इससे, लौटाओ रथ-अश्व अभी,
सैन्य-सहित जब पिता आयँगे होगाबस अब युद्धतभी।
बिन्दु और सागर की समता हो सकती है भला कहीं!
गुरुतम गिरिसे जग-शावकको टक्कर लेना योग्यनहीं"॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२६)

देख उसे भयभीत धनञ्जय बोले यों उससे स्वच्छन्द-
"यह क्या, राजकुमार! अभीसे पड़तेहोतुमकैसेमन्द?
वीर पिताके पुत्र अहो! तुम इस प्रकार करते आक्रन्द,
सावधान! चञ्चलहोकर यों मतदेनाअरिको आनन्द॥

(२७)

"भला अभी तक शत्रुजनोंने है ऐसा क्या कार्य किया—
जिसने तुमसे वीरपुत्र का हृदय अचानक कँपा दिया?
किसी कार्य को देख प्रथमही शङ्कित होना ठीक नहीं,
यश विशेषता सेही मिलता है यह बात अलीक नहीं॥

(२८)

"स्वार्थ-सिद्धि के लिए लोक में दुराचार जो करते हैं,
दुराचारहीं के कारण वे बुरी तरह से मरते हैं।
दुर्योधन-दुःशासनादि हैं महादुराचारी धिक-पात्र,
आओ, उनको वध करने में बनजावें हम कारण-मात्र॥

(२९)

"जैसा निश्चय कर आये हो अब वैसाही काम करो,
धैर्य धरो, मत डरो विघ्नसे आगे बढ़ कर नाम करो।
जो कुछ गर्व जना आये हो देखो, वह खोजाय नहीं,
करोभूल कर काम न ऐसा सिर नीचा होजाय कहीं"॥

(३०)

इस प्रकार अर्जुन ने बहुविध दिया उसे उत्साह बड़ा,
पर भयके कारण उसका कुछ उस पर नहींप्रभावपड़ा।
बोला वह "चाहे जो हो पर इनसे लड़ न सकूँगा मैं,
बृहन्नले! रथ को लौटादे तुझे बहुत धन दूँगा मैं॥"

(३१)

अर्जुन को यों उत्तर देकर उत्तर रथ से उतर भगा!
तब वे उसे पकड़ने दौड़े मनमें कुछ कुछ क्रोध जगा।
तत्क्षण दुर्योधन के दल में अट्टहास यों भास हुआ—
चञ्चलकरताहुआजलधिको मानोंइन्दु-विकासहुआ॥

(३२)

"क्षत्रिय होकर रणसे डरते हैं तुमको धिक्कार अरे!"
यों कह धावित हुए पार्थ जब उड़े केश-पट पवन भरे।
कच-कलाप जापकड़ाउसका स्वच्छपाट कासालच्छा,
"ऐसे जीने के बदले हो मरजाना ही है अच्छा॥

(३३)

"अहो! तुच्छ जीवन पर तुमको है इतनी ममता मनमें,
हँसते हँसते मरजाते हैं धीर धर्म के साधन में।
क्षत्रिय होकर पीठ दिखाते निश्चय ही यह है दुर्दैव,
क्या कर्तव्य-विमुखहोकर भी जी सकतेहो, कहो, सदैव?

(३४)

"ऐसा हाल अभी से है जब तब आगे कैसा होगा?
वृद्धकाल क्या कभी किसी का युवाकाल जैसा होगा?
कीर्तिमान जन मरा हुआ भी अमर हुआ जगमें जीता,
मरे हुए से भी जीते जी है अपयशी गया बीता॥

(३५)

"डरो नहीं तुम युद्ध न करना सबसे स्वयं लड़ूँगामैं,
बनो सारथी ही तुम मेरे आँच न आने दूँगा मैं।
होताअहो! सुभद्रा-नन्दन यदिअभिमन्युआजइसकाल,
तो यह अभी जानलेतेतुम-कितनासाहसरखतेबाल॥"

(३६)

यों कह कर अर्जुन ने अपना पूरा परिचय दिया उसे,
चकित, विनीत औरफिरनिर्भय इसप्रकारसे कियाउसे।
उसी शमी पादप के नीचे फिर वे उसको ले आये,
और दिखा कर अपने आयुध उसके द्वारा उतराये॥

(३७)

वेश बदलने लगे पार्थ तब कौरव भ्रमित हुए भ्रम से,
धूल-धूसरित रत्न शाण पर लगा चमकने क्रम क्रमसे।
दुर्योधन की सब आशाएँ मिट्टी में मिल गईं वहीं,
होताहै परिणाम कहीं भी बुरे काम का भला नहीं॥

मैथिलीशरण गुप्त।

विविध-विषय।

१—हिन्दुओं का इतिहास।

गत वर्ष पञ्जाब हिन्दू कान्फरन्स ने हिन्दुओं का एक प्रामाणिक इतिहास तैयार कराने का प्रस्ताव स्थिर किया था। इस प्रस्ताव को कार्य्य में परिणत करने के लिए निम्न लिखित महाशयों की एक कमेटी बना दी गई थी।

(१) रायबहादुर लाला लालचन्द एम० ए० एडवोकेट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) मास्टर दुर्गाप्रसाद।

(३) श्रायुत दीवान हरीचन्द।

(४) भक्त ईश्वरदास एम० ए०, एडवोकेट।

(५) लाला शिवदयाल एम० ए० वाइस प्रिन्सपल ट्रेनिङ्ग कालेज।

(६) लाला हंसराज, बी० ए०, प्रिन्सपल, डी० ए० वी० कालेज (मंत्री)।

बड़े हर्ष की बात है कि इस कमेटी ने अपना कार्य्य आरम्भ कर दिया है। सुयोग्य ग्रन्थकर्त्ता की खोज हो रही है। गत वर्ष १०००) एक हज़ार रुपया हिन्दू-कान्फ़रन्स के कोष में बचा था। वह धन हिन्दू कान्फ़रन्स ने इस कार्य्य के लिए अर्पण कर दिया। परन्तु इस कार्य्य के आरम्भ करने के लिए कम से कम १०,०००) दस हज़ार रुपयों की आवश्यकता होगी। लाहौर के लाला लालचन्द ने शेष धन के लिए हिन्दुओं से अपील की है। हिन्दी-हितैषियों के लिए यह और भी हर्ष की बात है कि यह पुस्तक हिन्दी में लिखी जायगी।

अब तक भारतवर्ष के इतिहास पर पुस्तकें प्रायः विदेशियों ही ने लिखी हैं। इन्हीं पुस्तकों का प्रचार हमारे स्कूल और कालेजों में है। हिन्दी में इतिहास की पुस्तकें बहुतही कम हैं। यदि कुछ हैं भी तो प्रायः वे इन्हीं अँगरेज़ी पुस्तकों के आधार पर लिखी गई हैं। यद्यपि विदेशीय ग्रन्थकर्ताओं ने भारतवर्ष के इतिहास लिखने में बड़ा परिश्रम किया है और जहाँ तक उनसे हो सका है अपनी समझ में सच्ची घटनाओं का ही वृत्तान्त दिया है, तथापि यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष में बहुत काल व्यतीत करने पर भी वे हमारे रीतरवाजों से अनभिज्ञ रह जाते हैं। जिस भक्ति, श्रद्धा, आदर और प्रेम से हम अपने पूर्वजों को देखते हैं, उस दृष्टि से विदेशी देखही नहीं सकते। अपने घर की बात जितना घर वाला जान सकता है उतना बाहरी नहीं जान सकता। जिन लोगों ने संस्कृत-साहित्य का परिशीलन भले प्रकार नहीं किया वे बेचारे रामायण, महाभारत आदि सद्ग्रन्थों के रहस्य को क्या समझ सकते हैं? तभी तो बाज़ लोग ऐसी हृदय विदारक बातें लिख मारते हैं कि महाराज दशरथ को उनकी स्त्री ने विष देकर मार डाला, रामरावण युद्ध महाभारत के बाद हुआ, शिवाजी एक लुटेरा था इत्यादि। कितने शोक की बात है कि ऐसी पुस्तकों के द्वारा हमारे बच्चों के कोमल हृदयों में हमारे ही पूर्वजों के विषय में बुरे संस्कार उत्पन्न हों! कोई भी सजीव जाति अपने देश के श्रद्धास्पद और पूजनीय महापुरुषों की इस प्रकार छीछालेदर होते हुए चुप न रहेगी, उनके सम्बन्ध में कही गई दूषित और कल्पित कथाओं के बुरे संस्कारों से अपने बच्चों के हृदयों का कलुषित होने देना तो दूर की बात है।

ऐसी दशा में जब कि 'रामकहानी' जैसी भ्रष्ट पुस्तकें हमारे बच्चों के कोर्स में ठूँसी जारही हैं, पञ्जाब हिन्दू कान्फ़रन्स का हिन्दी में हिन्दुओं का स्वतंत्र इतिहास तैयार कराना सर्वथा सराहनीय है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि हिन्दू मात्र, जिनके हृदय में अपने पूर्वजों का गौरव नष्ट नहीं हो गया है, पञ्जाब हिन्दू कान्फ़रन्स की इस उत्तम उद्योग की सफलता के लिए तन मन धन से सहायता करेंगे। सहायता और दान, लाला लालचन्द एम० ए०, एडवोकेट लाहौर या लाला गोपालचन्द वकील, मंत्री पञ्जाब हिन्दू सभा लाहौर के पास भेजना चाहिए।

२—वानप्रस्थाश्रम।

लाला बैजनाथ, रिटायर्ट जज, आगरा लिखते हैं:—

"इस समय वानप्रस्थाश्रम लुप्तप्राय हो गया है। इसी कारण संन्यास का भी यथावत् पालन नहीं होता और उसका ब्रह्मचर्य्य और गृहस्थाश्रमों पर भी बुरा प्रभाव पड़ा है। बहुत से सज्जन जिन्हें संसार से उपरति है और मोक्ष के अभिलाषी हैं वे किसी सुगम स्थान में रहना चाहते हैं। उच्च विचार अध्यात्मचिन्तन की भी बड़ी आवश्यकता है। धर्म के अच्छे उपदेशकों की बड़ी कमी है। इन बातों पर ध्यान देकर मैंने ब्रह्मलीन श्रीस्वामी रामतीर्थजी महाराज की सम्मति से एक आश्रम हृषी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केश में बनाने का प्रबन्ध किया था। परन्तु उनका शरीर पहलेही छूट गया। फिर एक आश्रम रामाश्रम के नाम से उनका स्मारक बनाया गया। यह स्थान हृषीकेश से १॥ मील पर लक्ष्मण झूला के मार्ग में दो पहाड़ों के बीच में गङ्गातट पर एकान्त और रमणीक भूमि में बनाया गया है। इसमें एक पुस्तकालय संस्कृत और भाषा की सब विषयों की पुस्तकों का रक्खा गया है, और कुछ धर्म-सम्बन्धी पुस्तकें अँगरेज़ी और फ़ारसी की भी हैं। आश्रम में पाँच कमरे पक्के और चार कुटियें अभी बनी हुई हैं, और भी बनाने का प्रबन्ध किया जायगा। यह आश्रम अब दो वर्ष से जारी है, और यहाँ पर विद्वान् साधु तथा गृहस्थ आकर शास्त्र-विचार करते हैं। अब जैसा कि इस आश्रम का उद्देश है मेरा यह विचार है, कि यहाँ वे लोग जिन्हें संसार से उपरति हो और अपना समय ध्यान, विचार, ईश्वराराधन, देश-सेवा, परोपकारादि में व्यतीत करना चाहें इस आश्रम में निवास करके अपने सत्संग से मुझे कृतार्थ करें। उनकी यथाशक्ति सेवा की जायगी। आश्रम में रहने के ये नियम हैं। आशा है कि सब के अनकूल होंगे।

(१) जो सज्जन एकान्त निवास करना चाहेंगे उनको आश्रम में यथावकाश जगह दी जायगी और आवश्यक वस्तुओं से भी यथासम्भव सेवा की जायगी।

(२) जो लोग अपने भोजन-वस्त्र का स्वयं प्रबन्ध करना चाहेंगे उनसे यह आशा की जायगी कि वे अपना अन्न वस्त्र तथा जीवन शास्त्रोक्त वानप्रस्थाश्रम, व संन्यस्त के नियमों के अनकूल यथासमय बर्तें, अपनी इच्छाओं को छुटावें, और त्यागपरायण हों, भोगों को छोड़ें।

(३) कुछ विद्वानों को साधु आश्रम के ख़र्च से यथाशक्ति शुद्ध सात्त्विक और सादा भोजन भी मिलेगा।

(४) आश्रम में दिनचर्य्या इस प्रकार होगी। प्रातःकाल स्नान, भजन, ध्यान, शास्त्र-विचार व साधु-समागम, मध्याह्न काल में भोजन, तत्पश्चात् थोड़ी देर आराम, फिर तीसरे पहर कथा किसी मोक्षशास्त्र की, और शास्त्र-विचार दो घण्टे तक। सायंकाल भ्रमण अथवा गङ्गा तट पर ध्यान, भजन; रात्रि को भोजन के पश्चात् ईश्वराराधन के साथ शयन।

(५) मुख्य उद्देश उन सज्जनों का जो इस आश्रम में रहेंगे देश-सेवा व परोपकार-ध्यान व आत्म-विचार होगा और प्रत्येक सज्जन से यह आशा की जायगी कि वह यथाशक्ति इन सब कामों में अपना समय दे सांसारिक विचारों को जहाँ तक हो सके छोड़े। जो लोग अपना सांसारिक काम समाप्त कर चुके हैं और जिनको शान्ति और सुख के साथ शेष जीवन व्यतीत करना और परमपद की प्राप्ति और देश-सेवा की अभिलाषा है उनकी सेवा के लिए यह आश्रम मौजूद है, प्रार्थना है कि वे अवश्य आवें और मुझे अपने दर्शनों से कृतार्थ करें। वर्षा के कारण अभी आश्रम में जाने का समय नहीं है, कार्तिक में होगा।" इस विषय में पत्रव्यवहार पूर्वोक्त लालाजी से करना चाहिए।

कुछ ऐसेही विचारों से श्रीयुत खुशीराम पेन्शनर, भोगपुर, पो० रानीपोखरी (देहरादून) ने "ज्वालापुर तथा कनखल के बीच गङ्गा नहर के किनारे ३० बीघे भूमि क्रय की है, आवश्यकतानुसार और भी क्रय कर ली जायेगी"। आप लिखते हैं कि सब अवस्थावृद्ध महानुभावों से प्रार्थना है कि वे इस भूमि में वानप्रस्थाश्रम स्थापन करके नियम-पूर्वक निवास करें। दश महानुभावों के उद्यत हो जाने पर आश्रम का कार्य आरम्भ कर दिया जायगा।

इस आश्रम के नियम ये हैं:—

(१) इस आश्रम में आत्मोन्नति तथा धर्मप्रचारार्थ अपने आपको उद्यत करने की इच्छावाले जिनकी आयु ४५ वर्ष से न्यून होगी ऐसे द्विज लोग निवास करेंगे। यदि धर्म-पत्नी साथ आवे तो साथ ला सकते हैं परन्तु बाल-बच्चे आश्रम में नहीं रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) इस आश्रम में रहने की इच्छावाले वानप्रस्थियों को भूमि बिना दाम मिलेगी।

(३) कुटिया निज द्रव्य से बनानी होगी, जिसकी लागत ५००) के लगभग होगी, सब कुटियाँ एक सी बनेंगी।

(४) आश्रम में यज्ञशाला तथा पुस्तकालय आदि सब बनने के लिए १००) रु० पृथक देना होगा।

(५) दैनिक खान पानादि के लिए प्रतिमास १५) रु० लिया जायगा जिसमें भोजन, वस्त्र, पुस्तक आदि सब सम्मिलित होंगे।

(६) सब वानप्रस्थ भोजन एक समय करेंगे, सायंकाल को केवल दुग्धपान ही होगा, और भोजन प्रायः सात्विक और साधारण होगा। अर्थात् रोटी, शाक, दाल, दुग्ध, मिष्टान्न फलादि।

(७) दिनचर्य्या यथासम्भव ऐसी होगी जिससे आत्मा तथा शरीर सुदृढ़ और कष्ट सहने योग्य बने, यथा ब्राह्म मुहूर्त्त में उठना, ततः शौच, सन्ध्या, अग्निहोत्रादि से निवृत्त होकर स्वाध्याय करना, पुनः भोजनोपरान्त स्वस्थान में विचार, तीसरे प्रहर यज्ञशाला में मिल कर प्रश्नोत्तर वार्तालापादि, कथा श्रवणादि, फिर नित्य-कर्म ततः दुग्ध पान फिर वार्तालाप फिर शयन, दिनचर्या का समय-विभाग प्रत्येक ऋतु के अनुसार आश्रम के सामयिक अधिष्ठाता बना दिया करेंगे।

(८) वानप्रस्थ लोग कभी कभी दो दो चार चार मिल कर धर्मप्रचारार्थ भ्रमण भी किया करेंगे।

(९) वैदिक सिद्धान्तों पर परस्पर परामर्श करके तत्त्व निश्चय करना, और उससे प्रजा को अभिज्ञ करना, तथा वैदिक ग्रन्थों के नाना भाषाओं में भाष्य करना इस आश्रम का मुख्य उद्देश होगा।

(१०) आश्रम की देख भाल तथा अन्य कार्य-निर्वाह के लिए सर्व सम्मति से कोई एक अधिष्ठाता नियत समय तक चुन लिया जाया करेगा। जिसकी अनुमति प्रत्येक कार्य में आवश्यक होगी।

जिन महाशयों को इन नियमों से सहानुभूति हो और इस आश्रम में निवास करना अभीष्ट हो वे पूर्वोक्त श्रीयुत .खुशीरामजी से पत्र व्यवहार करें।

३—व्योमयानों की लम्बी दौर और नक़ली लड़ाई।

योरप और अमेरिका से प्रायः रोज़ ख़बरें आतीं हैं कि व्योमयानों में उड़नेवाले कहीं पर उनसे टपक पड़े, कहीं उनके चोट लगी, कहीं व्योमयानही चूर चूर हो गये। पर वहाँ के निवासी व्योम-विहरण के कुछ ऐसे पीछे पड़ गये हैं कि यदि एक मनुष्य के प्राण जाते हैं तो दस उसी कार्य को सिद्ध करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। जहाँ नूतन आविष्कारों के पीछे लोग ऐसे कटिबद्ध हो जाते हैं कि बात बात पर अपने प्राणों की आहुति देने को तैयार हैं फिर क्यों न वहाँ के लोगों को सफलता प्राप्त हो। देखिए दो ही चार वर्षों में साहसी योरोपियनों ने क्या से क्या कर दिखाया। दो चार मील के चक्कर तो व्योमयान बहुतेरे देशों में लगा चुके। इनकी दौड़ भी हो चुकी। उसी दिन फ़्राँस से इँगलिश चैनल पार कर एक व्योमयान इँगलैंड पहुँच गया। अब लन्दन से न्यूयार्क (अमेरिका) तक आकाश-मार्ग से जाने की ख़बर है। बैरन रोयन लन्दन के पास एक ज़बर्दस्त व्योमयान तैयार करा रहे हैं। वह साल भर में तैयार हो जायगा। यह एक हज़ार फ़ीट लम्बा होगा और ६५ फ़ीट इसका व्यास होगा। इसी पर सवार होकर आप ७२ घंटों में एटलांटिक महासागर को पार करेंगे। आपका यह विचार है कि लन्दन से पेरिस, वायना, रोम, सेन्ट पीटर्सबर्ग इत्यादि स्थानों को रेलगाड़ियों की तरह व्योमयान द्वारा आने जाने का प्रबन्ध कर दिया जाय। आपने टाइमटेबल वग़ैरः भी बनाकर तैयार कर लिये हैं।

इधर सैनिक अफ़सरों को अपनी ही धुन सवार है। आप लोगों ने व्योमयानों पर सवार होकर नक़ली लड़ाइयाँ करनी शुरू कर दी हैं। हालही में मोरमिलन नामक स्थान में लेफ़्टनंट क्लेवनैड ग्रोनियर ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्योमयानों में सवार होकर नक़ली लड़ाई की। कहते हैं कि इस कार्य में उन्हें बड़ी सफलता हुई।

४—आश्चर्यजनक घड़ियाँ।

वेंटली साहब ने १९०२ के लिवर्पूल की प्रदर्शिनी में एक ऐसी घड़ी दिखाई थी जिसमें दस वर्ष से चाबी नहीं दी गई और वह घड़ी अब भी चल रही है। परन्तु अब उन्होंने एक और तरह की घड़ी बनाई है जो पृथ्वी की विद्युत् से ही चला करेगी। इसके पुर्ज़े सत्तर वर्ष तक ख़राब भी न होंगे।

५—कृत्रिम दुग्ध।

अमेरिका में लोग बादाम से दूध इस ख़ूबी से बनाने लगे हैं कि इस कृत्रिम दुग्ध और गौ के दुग्ध में क़रीब क़रीब कुछ भी भेद नहीं रह जाता। गुण और स्वादु सभी मिलते हैं। मलाई भी एक सी ही तैयार होती है।

६—पुस्तक-परीक्षा।

'राक्षसकाव्यं सटीकम्'—यह प्रसिद्ध काव्य महाकवि कालिदास प्रणीत कहा जाता है। इसका अनुवाद हिन्दी और अँगरेज़ी में राजा पृथ्वीपाल सिंह एफ़० टी० यस०, यम० ए० यस० बी० ने किया है और मूल सहित इंडियन प्रेस, प्रयाग में छपाया है। पुस्तक में श्रीमान् राजा साहब के अध्यापक पण्डित सीताराम शास्त्रीजी कृत काव्य की संस्कृत टीका भी छपी है। अनुवाद बहुत ही अच्छा हुआ है परन्तु शास्त्री जी की टीका में कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति यत्र तत्र चिन्त्य है। काव्य-रसिकों को यह पुस्तक मँगा कर आनन्द लेना चाहिए। मूल्य केवल ।) है।

विप्र लता प्रथम भाग—लेखक श्रीयुत धर्मपाल बी० ए०, अनुवादक पं० शिवचरणलाल शर्मा—

हिन्दुओं के सामाजिक-धार्मिक तथा राजनैतिक दशा पर मुसलमानों का क्या प्रभाव पड़ा, यही बात इस पुस्तक में दिखलाई गई है—लेखक का मत है कि "भारत-वासियों ने यदि मक्कारी, झूठ, फ़रेब, मार काट, धोकेबाज़ी, मदिरापान, आदि बुरी बातें सीखीं तो ज़्यादातर मुसलमानों से और किसी क़दर योरप-वासियों से। लेखक ने इस मत को इसलामी बादशाहों का कच्चा चिट्ठा सुनाकर पुष्ट किया है। पुस्तक का मूल्य ।) है—पं० शंकरदत्त धर्म-दिवाकर प्रेस, मुरादाबाद, से मिल सकती है।

माणिक आदर्श—लेखक श्रीयुत हरिदास माणिक, ९४ मिश्रपुष्कर-काशी। इस पुस्तक में तीन नग्न भारतीय शूरवीर राजपूतों के अद्भुत आत्मोत्सर्ग का विवरण है (१) टीकमगढ़ के हरदोल बुंदेला जिन्होंने अपने भाभी के सतीत्व-रक्षण में अपने सेवकों सहित विष पान किया (२) संयम राय राठोर जिन्होंने दिल्ली के अन्तिम हिन्दू महाराज पृथ्वीराज को चील गिद्धों द्वारा नोचे जाने से बचाने में अपना मांस काट काट कर गिद्धों को खिलाते हुए प्राण त्याग किया (३) बल्लूजी जिन्होंने नागोर राज अमरसिंह के शव लाने में अपने प्राण गँवाये—पुस्तक रोचक है—मूल्य ।) है लेखक से मिल सकेगी।

७—महाराज रमेशसिंह का स्वर्गवास।

दैनिक पत्र सम्राट् के सम्पादक और स्वामी महाराज रमेशसिंहजी के स्वर्गवास हो जाने की दुर्घटना सुन कर हमें बड़ा ही दुःख हुआ है। न जाने हिन्दी के कैसे दुर्भाग्य हैं कि उसके सच्चे हितैषियों का ह्रास इस शीघ्रता से हो रहा है। राजा साहब से हिन्दी-साहित्य की बहुत कुछ उन्नति हुई और होनेवाली थी। परमात्मा राजा साहब की आत्मा को शान्ति और उनके कुटुम्बियों को धैर्य्य दे।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ११] १ अक्टोबर, १९१०। आश्विन कृष्ण १३, १९६७। [संख्या १०

लाल कवि।

इस महाकवि ने संवत् १७६५ के लगभग छत्रप्रकाश नामक दोहा चौपाइयों में एक अनमोल ग्रन्थ बनाया है, जिसे काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने अपनी ग्रंथमाला में प्रकाशित किया है। इनका नाम शिवसिंह सरोज में नहीं दिया गया, परन्तु उसमें लिखा है कि बूँदी के महाराज छत्रसाल के यहाँ एक लाल कवि थे। छत्रप्रकाश के रचयिता लाल महोबा और पन्ना के महाराज छत्रसाल के यहाँ थे। इन्होंने अपने कुल, निवास स्थान आदि के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। लालजी ने लिखा है कि छत्रप्रकाश स्वयं छत्रसाल की आज्ञा से बनाया गया है। इस ग्रंथ में सं० १७६४ विक्रमीय तक छत्रसाल की जीवनी का वर्णन किया गया है पर उसके पीछे ग्रन्थ अपूर्ण जान पड़ता है। सम्भव है कि लाल कवि छत्रसाल के पूर्व ही स्वर्गवासी हो गये हों अथवा नागरी-प्रचारिणी सभा को अपूर्ण प्रति प्राप्त हुई हो। छत्रसाल का स्वर्गवास संवत् १७९० के लगभग हुआ था। उनके जीवन-सम्बन्धी २७—२८ साल का हाल इसमें नहीं मिलता है। लाल ने लिखा है कि छत्रसाल का जन्म संवत् १७०६ में हुआ है। यथा—

सम्वत् सत्रहसै लिखे आठ आगरे बीस।
लगत बरस बाईसईं उमड़ि चल्यौ अवनीस।

यह संवत् बुँदेलखंड गज़ेटियर से मिलता है। लाल ने कुल कथा सच्ची सच्ची लिखी है। यहाँ तक कि एक युद्ध में छत्रसाल के भागने का भी वर्णन किया है। इनकी कथा सब तरह बुँदेलखंड गज़ेटियर से मिलती है इसलिए उसे सच्ची मानने में कोई शंका नहीं हो सकती। इनके अनुसार बुँदेला क्षत्री महाराज रामचन्द्रजी के पुत्र कुश के वंश में हैं, और उनकी काशीश्वर एवं गहिरवार उपाधियाँ हैं। इस वंश में पंचमसिंह एक बड़े प्रतापी राजा हुए हैं। उन्हीं के पुत्र महाराज बुँदेला उपनाम वीर थे और जिस देश में इनके वंशज बसे उसी को लोग बुँदेलखण्ड कहते हैं। उस समय बुँदेला लोग महोबा और ओड़छा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य करते थे। लाल ने बुंदेला के पूर्वजों में हरिब्रह्म से लेकर छत्रसाल पर्यन्त सबके नाम लिखे हैं। ओड़छा के मधुकर शाह इत्यादि का नाम भी इसी वंशावली में आ जाता है। लाल ने छत्रसाल के पिता चंपतिराय के विजयों का वर्णन बड़ा ही उत्तम और विस्तारपूर्वक किया है और अपनी कविता में दिखला दिया है कि तत्कालीन भारतवर्ष के इतिहास पर चंपतिराय का कितना प्रभाव पड़ा है। चंपतिराय चार भाई थे। अतः इन्होंने चार पर अपनी कविता में बहुत कुछ कहा है। यथा :—

चारिउ भैया उदभट जानौ।
चारिउ भुजा विष्णु की मानौ॥
चारिउ चरन पुन्य छबि छायै।
चारिउ फलन देन जनु आयै॥
हिन्दुवान सुर गज उर आनौ।
ताके चारौ दंत बखानौ॥
चारौ अंग चमू जिन राखी।
चारौ समुद जीति अभिलाखी॥
अंतःकरन चारि हुलसाए।
चारिउ चक्र सुजस बगराए॥
हरि के आयुध चारि गनाए।
ते जनु छिति रच्छन हित आए॥

चंपति के विजयों का हाल निम्न लिखित छन्दों से कुछ विदित होगा :—

गनै कौन चंपति की जीतैं।
गनपति गनैं तऊ जुग बीतैं॥
साहि जहाँ उमड़्यौ घनघोरा।
चंपति झंझा पौन झकोरा॥
साहि कटक झकझोरि झुलायौ।
गिल्यौ बुँदेलखंड उगिलायौ॥
धनि चंपति फिरि भूमि बहोरी।
भुजन पात साही झकझोरी॥
प्रलै पयोद उमंड मैं ज्यौं गोकुल जदुराय।
त्यौं बूड़त बुंदेल कुल राख्यौ चंपतिराय॥
कीनो कूच राति उठि जागे।
चंपति भयो सबन के आगे॥
उमड़ि चल्या दारा के सैहैं।
चढ़ीं उदंड जुद्ध रस भैहैं॥
चंपतिराय जगत जसु छायौ।
ह्वै हरौल दारा बिचलायौ॥
धनि चंपति राख्यौ तुम पानी।
धनि धनि काल कुँवरि ठकुरानी॥
धनि चंपति जिन खल दल खंडे।
धनि चंपति निज कुल जिन मंडे॥
धनि चंपति निरबल जिन थापे।
धनि चंपति जिन सबल उथापे॥
धनि चंपति सज्जन मन भाए।
धनि चंपति जग जस बगराए॥
धनि चंपति की कठिन कृपानी।
धनि चंपति की रुचिर कहानी॥
तब तौ चंपति भयौ सहाई।
गिली भूमि भुज बल उगिलाई॥
चंपतिराय कहाँ अब पैये।
कैसे अपनो बंस बचैये॥
जब ते चंपति करयौ पयानौ।
तबतैं पर्‌यौ हीन हिंदुवानौ॥
लग्यौ हीन तुरकन कौ जोरा।
को राखै हिंदुन को तोरा॥
चंपतिराय तेग कर लीनी।
ओप बुँदेलखंड कौ दीनी॥
भुजनपात साही झकझोरी।
गई भूमि जुरि युद्ध बहोरी॥
पंचम उदयाजीत के कुल को यहै सुभाउ।
दलै दौरि दिल्ली सदल ज्यौं दुरदनि बनराउ॥

चंपतिराय के मरने के समय समस्त राज्य मुग़लों के कब्ज़े में आगया था। अतः छत्रसाल को, जो चंपतिराय के तीसरे पुत्र थे, फिर से बादशाह का सामना करना पड़ा। उन्होंने केवल पाँच सवार और २५ पियादों से औरंगज़ेब से बादशाह के साथ लड़ाई का साहस किया। इन्होंने अपनी पालिसी को इस प्रकार अपने बड़े भाई से कहा है कि जिससे इनकी हिम्मत का पूरा परिचय मिलता है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जे भुमियाँ हम मैं मिलि रैहैं।
तेई संग फौज के ह्वैहैं॥
जे न लागिहैं संग हमारे।
दोषु न लागै तिनके मारे॥
जे उमराव चौथि भरि दैहैं।
तेई अमलु देश को पैहैं॥
जिनमें ऐंड़ युद्ध की पावै।
तिनपै उमँगि अस्त्र अजमावै॥
तेग छाइहै देस में देस आइहैं हाथ।
शत्रु भागिहैं मान भय लेाग लागिहैं साथ॥"

छत्रसाल ने पहले दो चार छोटी छोटी लड़ाइयाँ लड़कर और अपना बल बढ़ा के एक एक करके केशवराय दागी, रणदूलह, रूमी, तहौवरख़ाँ, शैख़ अनवर, सदरुद्दीन, अब्दुलसमद, शेख़ अफ़गानख़ाँ और शाहकुली को परास्त किया। दागी को छोड़ ये सब दिल्ली के अफ़सर थे और इन सबके साथ बड़ी बड़ी शाही फ़ौजें थीं यहाँ तक कि अकेले रणदूलह के साथ ३० हज़ार फ़ौज थी। इन सबका युद्ध छत्रप्रकाश में बहुत उत्तम रीति से वर्णित है और इसमें भी सदरुद्दीन और अब्दुलसमद का युद्ध बड़ा ही विशद है। इन सबमें केवल शेर अफ़गन के सामने से एक वार छत्रसाल को भागना पड़ा था। इस समय संवत् १७६३ में औरंगज़ेब की मृत्यु हेा गई और उनके पुत्र बहादुर शाह बादशाह ने छत्रसाल को मित्रभाव से बुलाकर उनसे लेाहगढ़ जीत देने की प्रार्थना की। इसपर छत्रसाल ने बादशाह को लेाहगढ़ जीत दिया। तब बादशाह ने इन्हें दो करोड़ रुपये वार्षिक आय के राज्य का (जो इनके कब्ज़े में था) स्वतंत्र राजा मान लिया। इसी स्थान पर छत्रप्रकाश समाप्त हेा गया है। इसके कुछ पहले किसी व्याज से लाल ने कृष्ण-कथा का १० पृष्ठ में उत्तम वर्णन किया है। छत्रसाल के युद्धों के अतिरिक्त लाल ने पंचम और षष्ठ अध्याय में बहुत उत्तम वर्णन किया है। छत्रसाल की प्रशंसा के कुछ छन्द नीचे लिखे जाते हैं।

लखत पुरुष लच्छन सब जानै।
पच्छी बोलत सगुन बखानै॥
सत कवि कवित सुनत रस पागै।
बिलसत मति अरथन मैं आगै॥
रुचि सेां लखत तुरँग जे नीके।
बिहँसि लेत मुजरा सब ही के
कह्यो धन्य छिति छत्र छतारे।
तुम कुल चंद हिंदुगन तारे॥
चौंकि चौंकि सब दिसि उठैं सूबा खान खुमान।
अब धौं धावै कौन पर छत्रसाल बलवान॥
रूमी भगे साहि त्यौं जाने।
कारी परी कुल्लि तुरकाने॥
छता कह्यौ रच्छक सेा जानौं।
सेाइ बलवंत सहायक मानौं॥
जेा प्रभु तिहूँ लेाक को स्वामी।
घट घट व्यापक अंतरजामी॥
जहाँ सेवकहिँ निद्रा लागै।
साहेब तहाँ संग ही जागै॥
गरबीलेन के गरबन ढाहै।
गरब प्रहारी बिरद निबाहै॥
केतिक मिरजा की रिस खेाटी।
प्रभु के हाथ सबन की चेाटी॥

इन पूर्वोक्त छन्दों से छत्रसाल की भक्ति भी पूर्ण रूप से प्रकट होती है। कई स्थानों पर छत्रसाल के बहुत ही उत्तम व्याख्यान इस ग्रन्थ में वर्णित हैं। शिवाजी और छत्रसाल का मिलना इस ग्रन्थ का बहुत ही उत्तम भाग है। छत्रसाल की शिवाजी पर श्रद्धा देख कर यह जान पड़ता है कि अनुपम वीर होने के अतिरिक्त वे शूरवीरों के भक्त भी बहुत बड़े थे।

लाल ने केवल दोहा चौपाइयों में कविता की है, और १५० पृष्ठों के इस ग्रन्थ में कोई भी तीसरा छन्द नहीं लिखा परन्तु फिर भी वे ऐसी मनोहर कविता रचने में समर्थ हुए हैं कि कहना पड़ता है कि तुलसीदासजी के अतिरिक्त किसी और का भी उन्हीं के सन्मान दोहा चौपाई बनाना सम्भव है। इनकी भाषा गोस्वामीजी की भाषा से पृथक् है और इन्होंने व्रज-भाषा, बुँदेलखण्डी और अवधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोली का मिश्रण किया है। इनको यमक, अनुप्रास आदि का बिलकुल शौक़ न था। परन्तु फिर भी इनकी भाषा बड़ी मधुर है। इन्होंने दिखा दिया है कि कवि यमकादि बाह्याडम्बरों को छोड़ कर एक छोटे से छन्द में भी उत्कृष्ट कविता कर सकता है। इनकी कहावत ऐसी मधुर है कि इनके कितने ही पद किंवदन्तियों के रूप में परिणत हो गये हैं; यथा :—

ज्ञान गनन्ता पौरुख हारै।
सो जीतै जो पहिले मारै॥
रीती भरै भरी ढरकावै।
जो मन करै तो फेरि भरावै॥

सत्कवियों का एक यह भी लक्षण है कि वे अपने नायकों के वर्णन करने में सर्वमान्य यथार्थ बातों का कथन करके उसके साथ अपने नायक के गुणों और कर्मों को उनके उदाहरणस्वरूप दिखला देते हैं। लाल में यह बात पूर्ण रूप से पाई जाती है। यथा :—

दान दया घमसान मैं, जाके हिये उछाह।
सोई वीर बखानिए, ज्यौं छत्ता छितिनाह॥
तिन मैं छिति छत्री छवि छाए।
चारिहुँ जुगन होत जे आए॥
भूमिभार भुज दण्डनि थम्भे।
पूरन करैं जुकाज अरम्भे॥
गाय वेद दुज के रखवारे।
जुद्ध जीति के देत नगारे॥
छत्रिन की यह वृत्ति बनाई।
सदा तेग की खाय कमाई॥
गाय वेद विप्रन प्रतिपालै।
घाउ ऐंड़ धारिन पर घालै॥
उद्यम ते संपति घर आवै।
उद्यम करै सपूत कहावै॥
उद्यम करै संग सब लागै।
उद्यम ते जग मैं जसु जागै॥
समुद उतरि उद्यम ते जैये।
उद्यम ते परमेसुर पैये॥
जब यह सृष्टि प्रथम उपजाई।
तेग वृत्ति छत्रिन तब पाई॥
यह संसार कठिन रे भाई।
सबल उमड़ि निरबल को खाई॥
छनिक राज संपति के काजै।
बंधुन मारत बंधु न लाजै॥
कछू काल गति जानि न जाई।
सब ते कठिन काल गति भाई॥
सदा प्रबुद्ध बुद्धि है जाकी।
तासों कैसे चलै कजाकी॥
साहस तजि उर आलस माँड़ै।
भाग भरोसे उद्यम छाँड़ै॥
ताहि तजै जग संपति ऐसे।
तरुनी तजै वृद्धपति जैसे॥
बिपति माँह हिम्मति ठिक ठानै।
बढ़ती भए छिमा उर आनै॥
बचन सुदेस सभनि में भाखै।
सुजसु जोरिबे मैं रुचि राखै॥
जुद्धनि जुरै अकेले सैसे।
सहज सुभाय बड़ेन के ऐसे॥
जाकी धरम रीति जग गावै।
जो प्रसिद्ध बलवन्त कहावै॥
जाहि जोट भैयन की भावै।
करत अनारबीन बनि आवै॥
लै अवतार बड़े कुल आवै।
जुद्ध न जुरै जगत जस छावै॥
सत्य बचन जाके ठिक ठाए।
प्रीति जोग ए सात गनाए॥

इस कवि की उद्दंडता सभी स्थानों पर सूर्यवत् प्रकाशमान है। भाषा-साहित्य में किसी भी सत्कवि की रचना में इतनी उद्दण्डता नहीं पाई जाती। दो एक उदाहरणों में इसका बोध नहीं कराया जा सकता, परन्तु स्थानाभाव से हम यहाँ दोही एक उदाहरण दे सकते हैं।

उमड़ि चल्यौ दारा के सौंहैं।
चढ़ीं उदण्ड जुद्ध रस भौंहैं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब दारा दिल दहसति बाढ़ी।
चूमन लगे सबन की दाढ़ी॥
को भुजदण्ड समर महि ठोंकै।
उमड़ौ प्रलय सिन्धु को रोंकै॥
छत्रसाल हाड़ा तहँ आयो।
अरुन रंग आनन छबि छायो॥
भयो हरौल बजाय नगारो।
सार धार को पहिरन हारो॥
दौरि देस मुगलनि के मारौ।
दपटि दिली के दल संघारौ॥
ऐंड़ एक सिवराज निबाही।
करै आपने चित की चाही॥
आठ पातसाहिन झकझोरै।
सूबनि पकरि दण्ड लै छोरै॥

काटि कटक किरवान बल बाँटि जंबुकनि देहु।
ठाटि जुद्ध यहि रीति सों बाँटि धरनि धरिलेहु॥

लाल ने युद्ध सभी स्थानों पर उत्तम वर्णन किया है, परन्तु वे सब वर्णन बड़े हैं अतः यहाँ उद्धृत नहीं किये जा सकते; इसलिए एक छोटा सा वर्णन यहाँ उद्धृत करते हैं।

चहूँ ओर सों सूबनि घेरो।
दिसनि अलात चक्र सो फेरो॥
पजरे सहर साहि के बाँके।
धूम धूम मैं दिन कर ढाँके॥
कबहूँ प्रगटि जुद्ध मैं हाँकै।
मुगलनि मारि पुहमि तल ढाँकै॥
बाननि बरखि गयंदनि फेरै।
तुरकनि तमकि तेग तर तेरै॥
कबहूँ जुरै फौज सों आछे।
लेइ लगाइ चालु दै पाछे॥
बाँके ठौर ठौर रन मंडे।
हा हा करे डाँड़ लै छंडे॥
कबहूँ उमड़ि अचानक आवै।
घन सम घुमड़ि लोह बरसावै॥
कबहूँ हाँकि हरौलनि कूटै।
कबहूँ चापि चँदालनि लूटै॥
कबहूँ देस दौरिकै लावै।
रसदिकहू की कढ़न न पावै॥
चौकी कहैं कहाँ ह्व जैहो।
जित देखौ तित चंपति हैहो॥
चौंकि चौंकि चौकी उठैं दौकि दौकि उमराय।
फाके लसिकर हैं परे थाके सबै उपाय॥

लाल कवि ने उपमा बहुत कम स्थानों पर कही हैं और जहाँ कही भी हैं वहाँ अन्य कवियों की भाँति कोरी उपमा न कह कर मुख्यार्थ विवर्द्धक उपमायें रूपक उत्प्रेक्षा आदि कहीं हैं और कहीं कहीं उपमायें आदि न कह कर अन्य रीति से उसी प्रकार मुख्यार्थ को वर्द्धमान किया है।

कटि अरु मुंड उछालत कैसे।
बटन खेल खेलत नट जैसे॥
कढ़ि सरदार गोल ते गाजे।
आनन मनौं मजीठनि माँजे॥
कौतुक देखि जोगिनी गाई।
खप्पर जटनि माँजती धाई॥

इस कवि ने यह दिखा दिया है कि अलंकारों की सहायता न लेकर भी कवि उत्तम कविता कर सकता है। लाल ने स्तुति के साथ मुख्य विषय के मिला देने में बड़ी पटुता दिखाई है। इसके उदाहरण द्वितीय, तृतीय और पंचम पृष्ठ पर मिलेंगे। इनकी कविता में रस बहुतायत से आये हैं।

कुल बातों पर विचार करके हम लालजी को प्रथम श्रेणी का कवि मानते हैं। इन्होंने तुलसीदास जी की भाँति कथा-प्रणाली पर कविता की है और कथा प्रासंगिक कवियों में इनको एवम् सूदन कवि को प्रथम श्रेणी में रखना चाहिए। लाल ने अपनी कविता बहुत ही सर्वांग सुन्दर बनाई है और जिस विषय पर कविता की उसी को उत्तमोत्तम रीति से कहा है। यद्यपि सूदन इनके समकक्ष कवि हैं तथापि सब बातों पर ध्यान देने से कहा जाता है कि लाल की कविता सूदन से उत्तम है।

गणेशविहारी मिश्र,
श्यामविहारी मिश्र,
शुकदेवविहारी मिश्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू-विधवा-आश्रम।

हिन्दू-विधवा की ज़िन्दगी आज कल दुःख से भरी हुई है। जीवन उसके लिए अन्धकारमय है; संसार एक अरण्य है। जितने भोग-विलास संसार में हैं, वे उसके भोगने के लिए नहीं, उसको तरसना ही बदा है। पराधीनता, रोटी के लिए दूसरों का मुख ताकना, और सब की बातें सहना, मानो ब्रह्मा ने उसके ललाट पर लिख दिया है। हमारी सामाजिक प्रथा ने उसकी छाती पर अत्याचार का हिमालय रख दिया है; और वह दीन हीन बेचारी पर्वत के नीचे दबी हुई ख़ून के आँसुओं को बहाती और जीवन को व्यतीत करती है। उसके लिए तो सचमुच ही धर्म का मार्ग तलवार की धार से भी कम चौड़ा है; और इसी मार्ग पर चलना जीवन-यात्रा के लिए परमावश्यक है; पैर अणुमात्र भी इधर उधर विचलित हुआ नहीं कि वह बेचारी ऐसे गहरे खड्ड में गिरती है, कि जिससे बाहर निकलना सर्वथा असम्भव है। हमारी विधवायें प्रायः घर की टहलनी या चाकरानी हुआ करती हैं। क्या इससे अच्छे काम में ये मदद नहीं दे सकतीं? इन सब बातों को विचारने से यह मालूम होता है कि यदि हम अपनी अभागिनी विधवाओं को शिक्षित बनायें, तो हर तरह के उपयोगी कामों में वे सहायता कर सकती हैं। पहले तो शिक्षा का फल यह होगा कि उनको जीवन-संग्राम में, सांसारिक कठिनाइयों का सामना करने में बहुत सहायता मिलेगी। जहाँ आज वे अपने समय को इधर उधर की बातों में बिताती हैं, और यह बिलकुल ही सत्य है कि जब हमें कुछ करना धरना नहीं होता है, तब हमारे मन में अनेक प्रकार के उचित और अनुचित भाव और वासनायें उठा करती हैं—वहाँ वे शिक्षित हो जाने पर अपने समय का दुरुपयोग नहीं करेंगी, उनका समय अच्छी पुस्तकों के पढ़ने में व्यतीत हुआ करेगा। साथ ही साथ उनके भाव परिष्कृत और अच्छे होते जायँगे। उनका जीवन उच्च बन जायगा। अपनी आपत्ति और संकट के दुस्सह भार को धैर्य के साथ सहने की उनमें शक्ति आ जायगी और दुनिया के कुएँ-खाइयों से वे बच कर चलेंगी। रोटियों के लिए भी उनको दूसरों का मोहताज न रहना पड़ेगा, और साथ ही साथ परोपकारी कार्यों में भी वे हमारी बड़ी मदद कर सकेंगी। कन्या पाठशालाओं के लिए आज कल शिक्षित अध्यापिकाओं की हमको अत्यन्त आवश्यकता है। पढ़ी लिखी, शिक्षित धाइयों और डाक्टरनियों की माँग चारों ओर दिनों दिन बढ़ रही है। इन सब कामों को हमारी विधवायें बहुत कुछ कर सकती हैं। जहाँ आज अशिक्षित होने के कारण वे दूसरों को भार रूप हो रही हैं, वहाँ शिक्षित होने पर वही देशोन्नति और पारमार्थिक कार्य्यों में हमारी परमोपयोगिनी सहायिका हो जायँगी। आज उनका जीवन व्यर्थ कलह-विवाद, रोने और छाती कूटने में नष्ट होता है। शिक्षा मिलने पर वही जीवन दूसरों के दुःखों को दूर करने में लग सकता है। और इस काम में विधवायें दूसरों की तकलीफ़ों में अधिक सहानुभूति प्रकट कर सकती हैं। क्योंकि दुखिया दूसरों की पीर को पूरी तरह समझ सकता है, आपत्ति दोनों के हृदयों में सहानुभूति और प्रेम उत्पन्न कर देती है।

इन सब बातों को देखकर पूना के कुछ सज्जनों को यह आवश्यक समझ पड़ा कि पूना में एक हिन्दू विधवा-आश्रम खोला जाय। १४ वर्ष हुए एक ऐसा आश्रम पूना शहर से ५ मील पर स्थापित किया गया था। पहले पहल आश्रम झोपड़ों में था, आज वही आश्रम एक सुन्दर भवन में है। पहले आश्रम में ४ विधवाये थीं; पर आज कल इसमें १०० स्त्रियाँ रहती और शिक्षा पाती हैं। यद्यपि अन्य सज्जनों ने इस आश्रम के लिए बहुत कुछ किया है, पर इस काम में सबसे अधिक उत्साह के साथ परिश्रम प्रोफ़ेसर कर्वे ने किया है। यह कहना अत्युक्ति न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोफ़ेसर कर्वे का विधवाश्रम, पूना।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

विधवाश्रम की कन्यायें ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी कि यदि कर्वे महाशय ने इतना उत्साह न दिखाया होता तो शायद आश्रम की वर्त्तमान में ऐसी उन्नत अवस्था न होती। इसलिए इस आश्रम का दूसरा नाम कर्वेस हिन्दू-विधवा-आश्रम है।

कोई २० वर्ष हुए पूना के कुछ शिक्षित सज्जनों ने एक अबला-रक्षिणी नामक सभा स्थापित की थी। थोड़े समय के अनन्तर उनको एक विधवा-आश्रम खोलने की आवश्यकता दिखाई पड़ी; और इस काम के लिए एक ऐसे उत्साही नवयुवक की सख़्त ज़रूरत थी, जो तन-मन-धन में इस आश्रम के लिए काम करे। प्रोफ़ेसर कर्वे अपना जीवन फरगुसन कालेज (Fergusson College) के अर्पण कर चुके थे। पर इतने से आपको संतोष नहीं हुआ। आपको कालेज के काम करने के बाद जो समय बचता था, उसको वह किसी परोपकारी काम में ही लगाना चाहते थे। अतएव जब अबला-रक्षिणी सभा को एक उत्साही नवयुवक की आवश्यकता हुई तब प्रोफ़ेसर कर्वे ने आश्रम की सेवा करना स्वीकार किया। उस समय से आज तक कर्वे महाशय ने सात्विक त्याग और अप्रतिहत उत्साह के साथ आश्रम की सेवा की है। धन्य हैं ऐसे पुरुष जो अपना जीवन दूसरों की सेवा में लगा देना ही परम कर्त्तव्य समझते हैं, जो अपनी आत्मा की आहुति पारमार्थिक हित-रूपी यज्ञ-ज्वाला में दे देते हैं, जो यश, मान, धन, और ऐश्वर्य को तुच्छ समझते हुए तिरस्कार, अपमान, आदि की परवा न करते हुए एकमात्र सद्धर्म के पालन और रक्षण में अविचलित यावज्जीवन लगे रहते हैं। प्रोफ़ेसर कर्वे ने जो उपकार स्त्री-जाति का किया है, उसका अन्दाज़ा लगाना कठिन है। परन्तु काम से तो बढ़ कर कर्वे महोदय का जीवन है जो हम सबके लिए निःस्वार्थ और निष्काम कार्य्य का एक उच्च आदर्श है और हम लोगों को, देश-सेवा में पथ-प्रदर्शक है।

आश्रम के स्थापित करने का निम्न लिखित उद्देश्य था; और आगे चल कर पाठकों को मालूम हो जायगा कि इस उद्देश्य की पूर्ति यह आश्रम कहाँ तक करता है :—

To educate young widows from the higher caste that do not allow widow re-marriage, so as to enable them to earn an honourable living, and to cultivate their minds.

(*Vide* the 14th Annual Report of the H. W. H.)

अर्थात् आश्रम का उद्देश्य उन ऊँचे वर्णों की विधवाओं को, जिनमें पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित नहीं है, शिक्षा देना है जिसमें वे विधवायें प्रतिष्ठा-पूर्वक अपनी जीविका कर सकें और शिक्षित भी हो जायँ।

इस उद्देश्य से आश्रम खोला गया। पहले पहल आश्रम में शायद ४ विधवायें थीं। हाँ, एक बात लिखने के योग्य है। ऐसे पुण्य के काम में संचालकों का शिक्षित समाज से सहानुभूति और सहायता की आशा करना उचित था, पर सहानुभूति तो दूर रही, पूना के एक दल ने इसका कठिन विरोध करना प्रारम्भ किया। संचालकों को चारों तरफ़ से गालियाँ सुननी पड़ीं; लोगों ने इनकी हँसी करनी प्रारम्भ की; यहाँ तक कि आश्रम के विषय में नाना प्रकार की अफ़वाहें चारों तरफ़ फैल गईं। मालूम होता था कि विरोध की बाढ़ इस आश्रम को बहा ले जायगी। पर संचालक सच्चे और उत्साही, अपने नियमित पथ से तिल भर भी न डिगे; विरोध ने इनके उत्साह को किसी प्रकार से भी कम न किया, पर उलटे ये लोग और भी ज़्यादा जोश के साथ काम करने लगे। धीरे धीरे इनके परिश्रम का फल दिखाई पड़ने लगा। जब लोगों ने आश्रम को जाकर देखा तब उसमें झूँठे ख़यालात और बहम दूर होने लगे; संचालकों के स्वार्थ त्याग का प्रभाव भी लोगों के हृदयों पर असर पैदा करने लगा। १९०६ में, आश्रम में ५६ स्त्रियाँ थीं। १९०७ में ५६ से ६६ हो गईं १९०८ में संख्या ८८ तक पहुँच गई और आज दिन आश्रम में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों की संख्या १०० के लग भग है; और प्रत्येक वर्ष संख्या बढ़ती जाती है।

आश्रम के काम चलाने के लिए एक मेनेजिङ्ग कमेटी (Managing Committee) है जिसके सभासद पूना के प्रतिष्ठित सज्जन हैं। सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डाक्टर रा० जी० भंडारकर मेनेजिङ्ग, कमेटी के सभापति हैं; और प्रोफ़ेसर कर्वे इस कमेटी के मंत्री हैं। अन्तरङ्ग प्रबन्ध (Ladies, Committee) के लिए एक महिलाओं की कमेटी (Internal Supervision) भी है जिसमें माननीय जस्टिस रानडे की धर्मपत्नी श्रीमती रमाबाई रानडे भी सम्मिलित हैं। और कुछ श्रीमतियों ने अपना जीवन आश्रम को दे दिया है। इनको (Life-workers) (लाइफ़-वर्कर्स) कहते हैं। लाइफ़-वर्करों के ये नाम है। (१) श्रीमती काशी बाई देवधर; आप मद्रास यूनिवर्सिटी की एफ़० ए० की परीक्षा पास कर चुकी हैं, और अब बी० ए० के लिए अध्ययन कर रही हैं। (२) श्रीमती वेणुबाई नाम जोशी; आप बम्बई यूनिवर्सिटी की मेट्रीक्यूलेशन परीक्षा (Matriculation) पास हैं। (३) श्रीमती पार्वती आठवले। (४) श्रीमती बनुबाई देशपांडे चार और शिक्षक हैं जिनमें से रामाबाई ठाकुर तो ट्रेनिङ्गकालेज में शिक्षा पाई हुई हैं और एक दूसरी अध्यापिका हैं जो मेट्रिक्यूलेशन पास हैं।

जैसा ऊपर कहा गया है आज तक आश्रमवासिनियों की संख्या लग भग १०० के है; जिसमें से ८५ तो विधवाये हैं; ९ विवाहिता और ६ कुमारी कन्यायें हैं। कुमारी कन्यायें इस शर्त पर आश्रम में ली जाती हैं कि उनके पिता या संरक्षक इस बात का प्रण करें कि कन्या का विवाह वे २० वर्ष की उमर तक न करेंगे। और विवाहिता स्त्रियाँ यहाँ पर इसलिए जाती हैं कि वे शिक्षा प्राप्त करें और अपने को दूसरों की सेवा करने के योग्य बनायें। इन्हें ६ या ७ रुपया मासिक आश्रम को देना पड़ता है और सभों का ख़र्च आश्रम के कोष (Fund) से होता है। हाँ, यदि किसी विधवा के माता-पिता या संरक्षक यह नहीं चाहते कि वह आश्रम में मुफ़्त रहे, तो वे मासिक ख़र्च आश्रम को दे भी सकते हैं, परन्तु अधिकतर इनका ख़र्च आश्रम को ही उठाना पड़ता है।

आश्रम को रुपया कहाँ से मिलता है? इतने भारी काम को आश्रम कैसे सफलता के साथ चलाता है? आश्रम दूसरों की उदारता पर निर्भर है। चन्दे और दान से आश्रम का काम चलता है। गत वर्ष (१९०९) आश्रम की कुल आमदनी १६,२८६) रुपया थी, जिसमें १४,६२१, रुपये ख़र्च हुए। रोकड़ में इस समय (१९०९) ४६,१२० रुपये हैं।

आश्रम का ख़र्च दिनों दिन अब बढ़ता ही जाता है, पर अब तक सज्जनों की उदारता से इसका काम अच्छी तरह होता रहा है। कभी आश्रम के संचालकों को रुपये की कमी नहीं रही। लाइफ़-वर्करों में से एक श्रामतीजी का काम केवल यह है कि वे देश में इधर उधर भ्रमण करती फिरें, स्थान स्थान आश्रम के विषय में व्याख्यान दें, लोगों का ध्यान आश्रम और विधवाओं की अवस्था की ओर आकर्षित करें, उनमें आश्रम के लिए सहानुभूति उत्पन्न करें; और अपील करके चन्दा जमा करें। जो लोग आश्रम को देखने जाते हैं, वे कुछ थोड़ा बहुत अपनी अपनी शक्ति के अनुसार आश्रम की सहायता करते हैं। गत वर्ष सारे भारतवर्ष से आश्रम को देखने के लिए १५२५ सज्जन और महिलायें आईं थीं। आश्रम छोटे और बड़े दान दोनों ही को बड़ी कृतज्ञता के साथ स्वीकार करता है, और हमें पूर्ण आशा है कि सरस्वती के पाठक भी यथाशक्ति ऐसे उत्तम धर्म-मन्दिर की सहायता करने में किसी से उदारता में कम न रहेंगे। प्रत्येक हिन्दू का यह धर्म है कि वह ऐसे उपयोगी आश्रम की सहायता करें। हिन्दू लोग बड़े प्रसिद्ध दानवीर हैं; पर दुःख तो इस बात का है कि हमारा अधिकांश दान अनुचित कामों में लगता है। दान हम को देश, काल और पात्र देख कर देना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधवाश्रम में अन्य-प्रान्तों से आई हुई विधवायें और कन्यायें।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधवाश्रम की अध्यापिकायें ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु आजकल तो पात्रापात्र का कुछ भी विचार नहीं किया जाता । आँख बन्द करके हम दान करते हैं । अतएव पाठक ! हमारी आपसे प्रार्थना है कि आप स्वयं इस आश्रम की यथाशक्ति सहायता करें और अपने मित्रों से भी इसकी सहायता करने के लिए आग्रह करें और इस पुण्य कार्य के भागी बनें ।

दिनचर्या ।

प्रातःकाल ६ और ६॥ बजे के भीतर ही सब आश्रम-निवासिनियों को उठना पड़ता है । नित्यकर्म के पश्चात् सबको, बारी बारी से, गृह-कार्य थोड़े समय के लिए करना पड़ता है । स्नानानन्तर, सब, थोड़ी देर या तो पूजा-पाठ करती हैं या धर्म पुस्तकों को पढ़ती हैं । बाक़ी समय में वे पठन-पाठन किया करती हैं । भोजन के बाद ११ बजतेही सब स्कूल के लिए तैयार हो जाती हैं । १५ मिनट धार्मिक शिक्षा दी जाती है, जिसमें गीता का पाठ मुख्य है । ११ बजे से फिर पढ़ाई शुरु होती है और ५ बजे स्कूल बन्द हो जाता है । बीच में आधे घंटे की छुट्टी मिलती है, जिसमें वे कुछ जलपान कर लेती हैं । स्कूल के बाद उनको फिर कुछ गृहकार्य थोड़ी देर के लिए करना पड़ता है । ७ बजे शाम से ९ बजे रात तक वे फिर अध्ययन करती हैं । ९ से ९॥ तक गीता-मन्दिर में सब एकत्र होती हैं । और वहाँ या तो भजन होते हैं, या किसी धार्मिक-विषय पर व्याख्यान या किसी धार्मिक पुस्तक का पाठ होता है । १० बजे तक सब सो जाती हैं ।

शनिवार के दिन आधे दिन की छुट्टी रहती है और इसी दिन इनको लीपना पोतना, आश्रम को साफ़ कर, कपड़ों को धूप में डालना पड़ता है । रोटी पकाना भी लड़कियों को सिखाया जाता है ।

मराठी सबको पढ़ाई जाती है, और अँगरेज़ी में मैट्रिकयूलेशन तक की शिक्षा का प्रबन्ध है । इस आश्रम से कोई ४ या पाँच मैट्रिक पास भी कर चुकी हैं । मराठी वर्नाक्युलर मिडिल परीक्षा (Vernacular Final Examination) में १९०९ में ५ लड़कियाँ भेजी गईं थी, जिनमें से ३ उत्तीर्ण हुईं । और चित्रकारी की परीक्षा में भी इस आश्रम की लड़कियों को अच्छी सफलता प्राप्त हुई । संस्कृत भी पढ़ाई जाती है और अब ऊँचे दर्जे की लड़कियों को हिन्दी भी पढ़ना पड़ती है ।

मोज़े इत्यादि का बुनना भी लड़कियों को सिखाया जाता है लेखक ने यहाँ के बुने हुए मोज़े ख़रीदे थे । और उसके विचार में मोज़े अत्यन्त ही सुन्दर और सुघढ़ थे । विलायती मोज़ों के कान काटते हैं । और इससे ज़्यादा क्या चाहिए ? कपड़ा बुनने का भी बन्दोबस्त है । १९०९ में ९१५ गज़ कपड़ा बुना गया । हाथ से चलानेवाली कलें (Hand loom) हैं और सात लड़कियाँ काम करती हैं । धोती, चादर आदि वस्त्र तैयार किये जाते हैं । सीने पिरोने का भी काम सिखाया जाता है । यों तो साधारण सीना पहले भी सबको सिखाया जाता था, पर अब तरह तरह के कपड़े सीना सिखाया जाता है । पिछले वर्ष २३६ कपड़े सिये गये थे । ६ कन्यायें सीने का काम करती हैं ।

यहाँ पर सज्जनों की उदारता से कोई २० छात्र-वृत्तियों का भी प्रबन्ध है । जो कन्यायें परीक्षाओं में उच्च कोटि में पास होती हैं; उनको यह छात्र-वृत्तियाँ मिलती हैं ।

लेखक ने ऊपर संक्षेप रीति से आश्रम के विषय में ख़ास ख़ास बातों का वर्णन किया है । इससे पाठकों को अन्दाज़ा लग जायगा कि इस आश्रम से कितना फ़ायदा हो रहा है और हो सकता है । इन विधवाओं के जीवन को जो अन्यथा रोने और कलह-विवाद में नष्ट होता, यह आश्रम उपयोगी बना रहा है । यही विधवायें शिक्षित होकर शिक्षा को चारों तरफ़ फैलायेंगी और इस तरह से देश के अविद्यान्धकार को दूर करने में सहायता करेंगी । राष्ट्र-निर्माण में स्त्री-पुरुष दोनों ही की आवश्यकता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष, स्त्री की सहायता के बिना, इस महान् कार्य्य करने में सर्वथा असमर्थ है; अतएव स्त्री को इस कार्य्य में सहायक बनाने के लिए यह ज़रूरी है कि वह शिक्षित हो और अपने धर्म-पालन में दृढ़ हो।

लेखक को इस आश्रम को देखकर जो आनन्द हुआ उसका वर्णन करना कठिन है। लेखक पाठकों के ध्यान को इन तीन बातों की ओर आकर्षित करना चाहता है। पहली बात जो लेखक को आश्रम में जाते ही दिखाई पड़ी वह सफ़ाई थी। लेखक को अच्छी तरह से मालूम है कि हिन्दुओं के मकान कैसे और कितने साफ़ रहते हैं। आश्रम की सफ़ाई, उन गृहों को देखते हुए अद्भुत थी। प्रत्येक बात में सफ़ाई, मैल का तो कहीं नाम तक भी नहीं। दूसरे लड़कियों की शारीरिक अवस्था, हमारे घरों की स्त्रियों की तन्दुरुस्ती, प्रायः अच्छी नहीं रहती। किन्तु इस आश्रम की निवासिनियों का स्वास्थ्य कहीं अच्छा था। तीसरे लड़कियों का पारस्परिक प्रेम और पवित्र मुखों को देखकर हृदय पर बड़ा पावन प्रभाव पड़ता था। चौथे, अध्यापिकाओं और अध्यक्षिणी और लड़कियों में माता-पुत्री का सम्बन्ध है। आश्रम घर से भी ज़्यादा है। आश्रम को देखकर यह मालूम होता है कि मानों सब लड़कियाँ एक ही कुटुम्ब की हैं, और इनमें इतना परस्पर प्रेम है कि मानों, एक दूसरे में बहिन बहिन का सम्बन्ध है। पाँचवें यह आश्रम सब प्रकार से 'हिन्दू-आश्रम' है। "भारतीयता" हर एक बात में झलकती है। इस आश्रम का यह "हिन्दूपन" प्रशंसनीय है। लड़कियाँ शिक्षा पाती हैं, स्कूलों में रहती हैं, पर लड़कियाँ अपने हिन्दूपने को नहीं भूलतीं, वे और अधिक "हिन्दू" हो जाती हैं। इस तरह से यह आश्रम पूर्णरूप से "राष्ट्रीय" आश्रम है। अतएव, पाठक, हम आपसे फिर यह प्रार्थना करते हैं कि आप इस आश्रम की यथाशक्ति सहायता करें।

दर्शक।

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय।

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय आक्सफ़र्ड से कुछ छोटा है। यहाँ छोटे बड़े सब प्रकार के २३ कालेज हैं। यह विश्वविद्यालय अनुमान १३ वीं सदी में जारी हुआ था। इसमें भी बड़े बड़े लेखक कवि इत्यादिकों ने शिक्षा पाई है। यह स्थान विशेष कर गणित के लिए प्रसिद्ध है। पर अब सीनियर रैंगलर की डिगरी तोड़ दी गई है। विज्ञान-शास्त्र, क़ानून और डाक्टरी भी पढ़ाई जाती है। आक्सफ़र्ड की अपेक्षा यहाँ हिन्दुस्तानी छात्र आधे से अधिक हैं। सब मिलकर ८० या ९० हैं। डाउनिङ्ग (Downing) कालेज में हिन्दुस्तानी छात्रों की संख्या सबसे अधिक है। यह कालेज सबसे नया है। ऊपर से देखने में बहुत सादा है। पहले इसके चलने की कम आशा थी पर कुछ ज़मीन बेच देने से ठीक चल रहा है। सन् १८२१ में यह कालेज खोला गया था। यहाँ के कालेजों में दो प्रकार के छात्र होते हैं। यानी एक वे जो कालेज के अहाते में रहते हैं और दूसरे शहर में रहनेवाले। पहले प्रकार के छात्रों को दूसरे प्रकार के छात्रों की अपेक्षा अधिक ख़र्च पड़ता है। इसी से बहुत से हिन्दुस्तानी भाई बाहर शहर में रहते हैं। हमारी राय में यदि यूनिवर्सिटी का यथार्थ छात्र बनना हो तो कालेज के अहाते में रहना उचित है। शहरवाले छात्रों को और बातों में स्वतंत्रता है पर इसके साथ कुछ हानि भी है। हम यह नहीं कहते कि सब शहर में रहनेवाले छात्र ख़राब हैं। पर इतना अवश्य कहेंगे कि कालेज में रहनेवालों की अपेक्षा उन्हें ख़राब बातों में पड़ जाने का मौक़ा है। पर नगरनिवासियों को भी कुछ डर है क्योंकि वे केवल ऐसे मकानों में रह सकते हैं जिनको यूनिवर्सिटी ने मंज़ूर किया हो। यही प्रथा आक्सफ़र्ड की है। रहने का ख़र्च ९० से दो सौ पौंड तक है। इसमें सब ख़र्च मिले हैं। यहाँ के प्रसिद्ध भूतपूर्व छात्रों के नाम ये हैं। ग्रे, स्पेन्सर, मिल्टन, डार्विन, पेली, क्राम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधवाश्रम की निवासिनियों की बनाई हुई कुछ चीज़ें।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

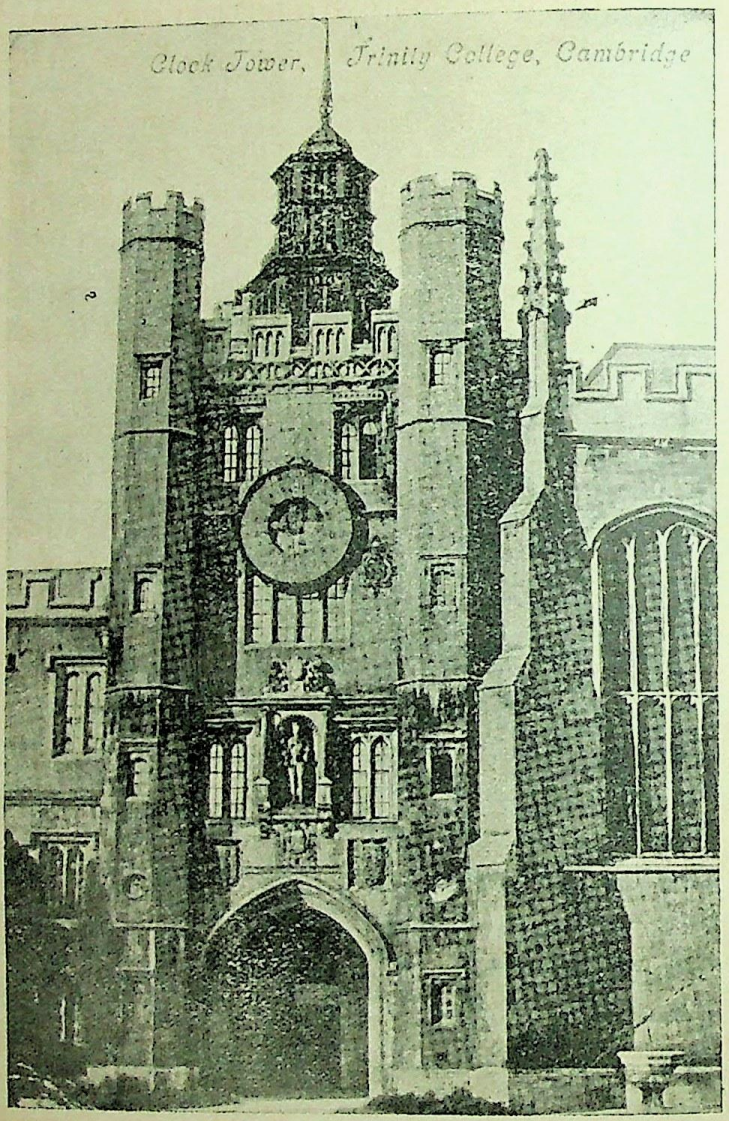

ट्रिनिटी कालेज की क्लाक टावर ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैल, मृत सप्तम एडवर्ड, बेकन, सर फ़िलिप सिडनी, काउले, ड्राइडन, न्यूटन, बायरन, मैकाले, टैनीसन, वर्डस्वर्थ, ह्वेवैल, लार्ड रैले, हिट्स जेम्स, स्टीफन, बैनसन, फ्लैचर, मारलो, सर रिचर्ड टैम्पिल, लार्ड लिटन, बिरल, अर्ल सालसबरी, विलबरफोर्स, बाइकौंट, पामर्सटन, लार्ड बर्ल, रावर्ट, सिसिल इत्यादि।

कालेज।

कैम्ब्रिज में दो सबसे बड़े कालेज हैं अर्थात् सेंट जान्स और ट्रिनिटी कालेज। ट्रिनिटी सबसे बड़ा है। इसके मुक़ाबले में आक्सफ़र्ड तो क्या कदाचित् संसार में कोई कालेज नहीं है। इसमें पाँच लम्बे चौड़े चौक हैं जिनके आस पास छात्रों के कमरे और बीच में बाग़ और हरी दूब के मैदान हैं, जहाँ छात्र क्रिकैट टैनिस इत्यादि खेलते हैं। नज़दीक ही से नदी बही है जिसमें बीसों किश्तियाँ पड़ी हैं। इनमें छात्र सबेरे शाम हवा खाने को निकलते हैं। आज कल इनमें बड़ा आनन्द आता है। अनेक छात्र इनमें लेटे वृक्षों की छाया में पुस्तकें पढ़ते दिखाई देते हैं। मई महीने में यूनिवर्सिटी के छात्रों में जल-दौड़ होती है जिसे देखने सहस्रों दर्शक पहुँचते हैं। लन्दन वाली वार्षिक जल-दौड़ से और इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। लन्दनी जल-दौड़ में केम्ब्रिज दो साल से हार रहा है। प्रत्येक कालेज में एक बड़ा पुस्तकालय है जहाँ छात्र सुभीते से लिख पढ़ सकते हैं। पुस्तकालय ऐसे वैसे नहीं पर सहस्रों प्राचीन पुस्तकों से आभूषित हैं। ट्रिनिटी कालेज का पुस्तकालय देखने योग्य है। इसमें एक लाख से अधिक पुस्तकें हैं। सौ में दो हस्त-लिखित पुस्तकें हैं। बेकन, काउले बायरन, न्युटन, ड्राइडन, मैकाले, ह्वेरैल; टैनीसन, बैनसन, लार्ड रैले, फिटस, सम्मस्टीवन्स, और मृत सप्तम एडवर्ड इत्यादि इसके मुख्य छात्र थे। आज इसमें क़रीब एक सहस्र छात्र पढ़ रहे हैं। ट्रिनिटी की लाएब्रेरी में कवि बायरन की मूर्त्ति रक्खी है। इसके हाल में Childe Harold नाम की पुस्तक है। कहते हैं यह मूर्त्ति लन्दन के Westminster Abbey में रखने को बनाई गई थी पर बायरन को व्यभिचारी समझ बड़े पादड़ी ने नहीं रखने दी। लायब्रेरी के आस पास इस देश के प्रख्यात लोगों की तसवीरें और छोटी छोटी मूर्त्तियां रक्खी हैं। एक ओर न्यूटन का बनाया हुआ दुर्बीन रक्खा है। काँच के सन्दूक़ों में प्राचीन काल के सिक्के और हस्तलिखित पुस्तकों के नमूने और पत्र हैं। शेक्सपियर के लेखों की प्रथमावृत्ति की चार पुस्तकें हैं जो सन् १६३२ में छापी गई थीं। इनमें की एक ३००० पौंड को बेच दी गई है। टैनीसन की In Memorium इन मिमोरियम नामक हस्तलिखित कविता बड़ी सावधानी से बचाकर रक्खी हैं। इसी प्रकार दूसरी कविता Locksley Hall लाक्सली हाल मौजूद है। टैनीसन अच्छे अक्षर लिखता था। इन्हीं के निकट मिल्टन की कविता Lysidas लिसिडस रक्खी है। मिल्टन ख़राब अक्षर लिखता था, बड़ी कठिनाई से पढ़े जाते हैं। जिन्होंने उसकी पुस्तकें नहीं पढ़ी हैं वे कदाचित् ही उसके लेख पढ़ सकें। उसकी लिसिडस कविता की अन्तिम पंक्ति "To=morrow to fresh woods and pastures new" कुछ साफ़ लिखी है।

पैरेडाईज़ लास्ट (Paradise Lost) लिखने के पूर्व जो उसके पात्रों की सूची उसने बनाई थी सो भी मौजूद है। इन सबके देखने से बड़ा आनन्द आया। सेंट जान्स कालेज की लायब्रेरी में क़रीब ४० हज़ार पुस्तकें संख्या ७०० के लग भग है। इसमें चार बड़े चौक हैं। बेन जानसन, बर्डसवर्थ, बिलवरफ़ोर्स, अर्ल सालसबरी और बाइकांउट पामर्स्टन इसके मुख्य छात्र थे। इसके बीच से एक छोटी नदी बही है। इसके पुल को Bridge of Sighs अर्थात् "आह का पुल" कहते हैं। पुल बहुत ही छोटा है। दोनों ओर कालेज के चौक हैं। कहते हैं यह पुल Venice वैनिस के पुल की नक़ल है। वहाँ एक ओर कचहरी और दूसरी आर फाँसीघर था। अपराधी कचहरी से निकल पुल पर कुछ देर आह भरी साँस लेते हुए फाँसीघर को जाता था। कोई कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ी देर खड़े हो साँस लेकर नीचे नदी में गिर प्राण दे देते थे। सुना है सेंट जान्सवाले पुल पर नापास छात्र फल सुन कर साँस लेते हुए उस पार अपने अपने कमरों में जाते थे। पहले यह बात रही पर अब जहाँ तक सुना है शायद ही कोई ऐसा करता हो। कीज़ (Caius) कालेज के तीन पुराने फाटक देखने योग्य हैं। पहला "नम्रता का फाटक (Gate of humility) इसका अर्थ यह है कि छात्र को विद्या उपार्जन करते समय नम्र रहना चाहिए। यह फाटक नीचा होने से छात्रों को आप ही आप नीचा सिर करना पड़ता है। इससे निकल कर दूसरा फाटक मिलता है। यह Gate of Virtue अर्थात् पुण्य का फाटक है। इसका अर्थ यह है कि छात्रावस्था में विद्यार्थी को पुण्यवान् रहना चाहिए। आख़िरी फाटक Gate of Honour है जिसका मतलब यह है कि यदि तुम शीलवान् और पुण्यवान् रहोगे तो कीर्तिवान् होगे। कीर्तिवाले फाटक के सामने Senate Hall सैनेट हाल है जहाँ छात्रों को उपाधियाँ दी जाती हैं। यह हाल बहुत मामूली और छोटा है, लम्बाई क़रीब १०० फ़ुट और चौड़ाई ४० फ़ुट है। इसके निकट विश्व-विद्यालय का पुस्तकालय है जिसकी पुस्तक-संख्या पाँच लाख से कुछ अधिक है। ट्रिनिटी पुस्तकालय की भाँति इसकी हस्तलिखित पुस्तक-संख्या ख़ासी है। पुराना Magna Charta मैगनाकार्टा अर्थात् अँगरेज़ों की स्वतंत्रता का प्रतिज्ञापत्र यहाँ ज्यों का त्यों रक्खा है। विकलिफ़ की हस्तलिखित बाइबिल अच्छी हालत में है। किंग्सकालेज का गिरजाघर बड़ा ऊँचा मकान है। तीन सौ फ़ुट लम्बा और ५० फ़ुट चौड़ा है इसके भीतर खम्भे न होने से बनावट में यह विचित्र है। कहते हैं संसार में इसकी बनावट के सामने कोई गिरजाघर नहीं है। लकड़ी का काम इटली के लोगों का है। इसके भीतर सिवा मोमबत्ती के दूसरे प्रकार का उजेला नहीं होता। इस देश के हर एक कालेज के साथ एक एक गिरजाघर है जिसमें विद्यार्थी शामिल होते हैं। पर यह विद्यार्थियों की मर्ज़ी की बात है। कालेजों में गिरजाघर होने का कारण यह है कि पहले समय में विद्या-सम्बन्धी बातें पादड़ियों के हाथ में थीं इससे यह प्राचीन प्रथा अभी तक जारी है। क्राइस्ट कालेज Christ College में मिल्टन का लगाया हुआ मलबैरी Mulberry वृक्ष अभी तक बना है। इस कालेज का बाग़ बहुत सुन्दर है। इसके पुराने छात्र, सर फिलिप सिडनी, डारविन, और पेली थे। सिडनी Sidney कालेज में क्रामवैल की असली तसवीर टँगी है जिसके दाम दस हज़ार पौंड अर्थात् डेढ़ लाख रुपये कहे जाते हैं। तसवीर छोटी सी और साधारण है। बाहरी आदमी इसे दस आने को भी न लेगा। क्रामवैल इसी कालेज का विद्यार्थी था। पैमब्रोक Pembroke कालेज में एक घड़ी है जिस पर घंटों के अंक नहीं है किन्तु केवल मामूली निशान हैं। कवि स्पेन्सर और ग्रे Gray इस कालेज में पढ़े थे। इसकी लायब्रेरी में ग्रे कवि की प्रसिद्ध elegy इलैजी कविता असली शकल में रक्खी है। स्त्रियों का कालेज अलग है। केम्ब्रिज का अजायबघर मामूली है। इसमें ताजमहल का अच्छा नमूना रक्खा है।

शहर।

इस पुराने नगर की जन संख्या ४५ सहस्र के लग भग है। सड़कों पर घोड़े की ट्राम और मोटर बसे चलती हैं। बिजली की ट्राम अभी यहाँ तक नहीं पहुँची। सड़कें बहुत सकरी और मकान छोटे हैं। मकान पीली ईंट के बने हैं। छः बैंक और एक नाटकघर हैं जो गरमी में बन्द रहता है। किसी समय में यहाँ टकसाल रह चुकी है। आलिवर क्राम-वैल इसके प्रथम मेम्बर थे जो लंदन की पार्लीमेंट के लिए चुने गये थे। इस नगर के देखने को आधा या अधिक से अधिक एक दिन काफ़ी है। लन्दन की भाँति यहाँ हल्ला गुल्ला नहीं होता। यहाँ किसी भाँति का रोज़गार कोई नहीं करने पाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

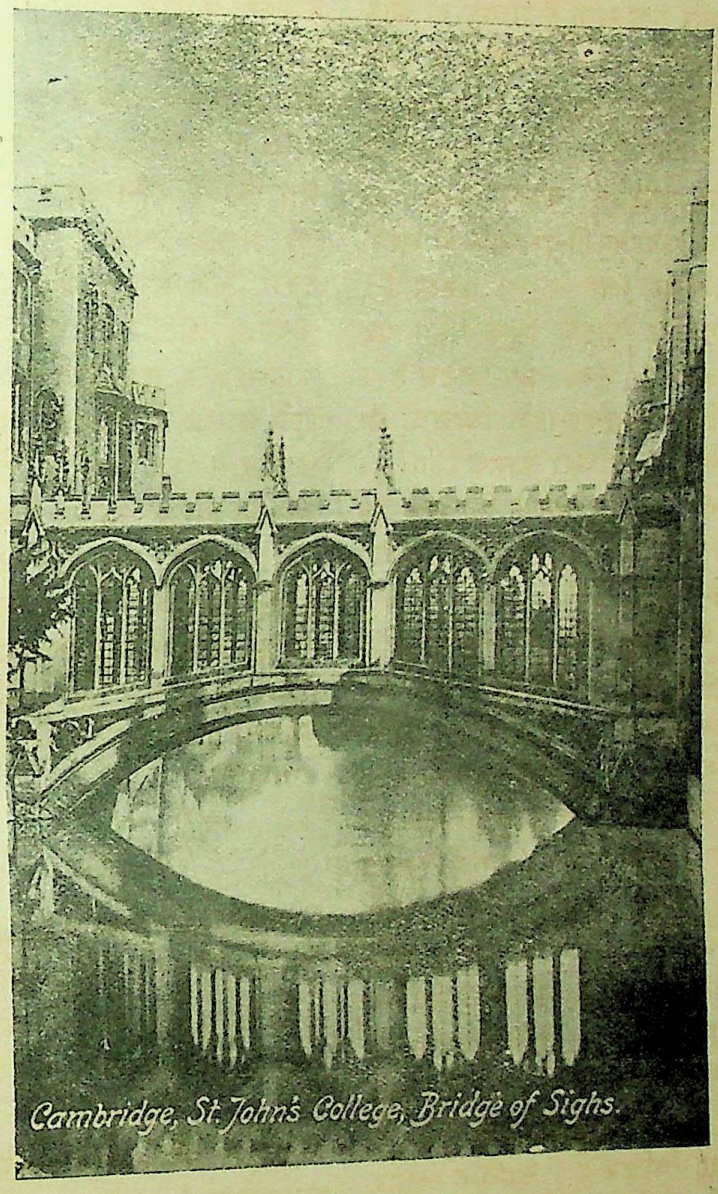

ब्रज आफ़ साइज़ ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केम्ब्रिज का किंग चेपल ।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आक्सफ़र्ड और यहाँ केवल उतने ही दूकानदार रहने पाते हैं जिनकी छात्रों को आवश्यकता है। गरमी में सब छात्र बाहर चले जाने से और भी झुजड़ हो जाता है। बस केम्ब्रिज की और कोई बात लिखने लायक़ नहीं मालूम होती।

प्यारेलाल मिश्र।
(लन्दन)

प्रेम-सरोवर* ।

(१)

क्याही कान्ति विचित्र प्रेमसर की स्वर्गीय शोभामयी।
चक्राकार-सु-घाट शोभित जहाँ हैं दिव्य बुर्जें कई॥
अतिनिर्मल-नीर-शीतल सदा सुस्वादु गम्भीर है,
है अत्यन्त सुहावनी कुमुदिनी भृङ्गादि की भीड़ है॥

(२)

आते हैं जन जीव जन्तु खग जो आशा लगाये हुए।
पाते जीवन-दान हैं सब वहाँ जाते ठगाये न वे॥

(३)

चारों ओर लता पता सघन वे झूमैं झुकी हैं भली।
फूलै फूल कदम्ब कूल उनकी सौरभ्य आती चली॥
छाया भी रहती निरन्तर जहाँ सन्तापहारी घनी।
है निष्पङ्क अतीव तीर उसकी शोभा निराली बनी॥

(४)

है स्वच्छन्द लगी जहाँ निकट ही नीरंध्र वृक्षावली।
चक्राकार कहीं, कहीं सहज ही सौन्दर्य श्रेणी भली॥
शाखा भूमि लगीं विनीत उसकी है नील पत्रावली।
फूली चित्र-विचित्र मञ्जुल कहीं अन्यत्र पुष्पावली॥

(५)

क्रीड़ासक्त कहीं कपोत फिरते उन्मत्त होके महा।
गाते कोकिल-पुञ्ज-मञ्जुल कहीं स्वर्गीय तानें जहाँ॥
छत्राकार-कलाप-नृत्य-रत है प्यारी मयूरावली।
चित्ताकर्षक है सुरम्य तट की प्रान्तीय वन्यस्थली॥

(६)

जो हैं शान्त कुटीर तीर उनकी शोभा मनोमोहिनी।
वे एकान्त नितान्त शान्त उनमें है स्वच्छता सोहनी।
आती धीर-समीर-शीतल सदा सौरभ्य सानी हुई।
प्रायः सन्त जहाँ निवास करते माया-सने भी कई॥

(७)

सुरभित हरियाली में जहाँ मत्त होके।
मुखरित विहगाली चित्त को है लुभाती॥
सु-मधुर रसशाली बोलियों को सुनाके।
मनहर पथिकों को पास मानों बुलाती॥

(८)

प्रति प्रति तरुओं की डालियें पास जाती
भ्रमरित भ्रमराली क्या यही है बताती?
"यह बनलतिकायें भाग्यशाली महा हैं।
प्रति दिन करते श्रीकृष्ण लीला यहाँ हैं"

कन्हैयालाल पोद्दार।

---

* व्रज मण्डलान्तर्गत, मथुरा से क़रीब २२ मील के बरसाने और नन्दग्राम के मध्य में, "प्रेम-सरोवर" है। इस (प्रेमसरोवर) के समीप ही श्रीमान् सेठ लक्ष्मीनारायणजी का बनवाया हुआ "प्रेमनिकुञ्ज" नामक श्रीराधागोविन्दचन्द्रदेव जी का मन्दिर और सुविशाल उद्यान है। यह बड़ा ही रमणीय स्थल है। तत्सम्बन्धीय एक सवैया छन्द यहाँ लिखा जाता है, आशा है पाठकों को रुचिकर होगा:—

उतैं आवत हे जु गुविन्द अहो!
इतै आत रहीं वृषभान कुमारी।
बिच प्रेम-सरोवर भेंट भई
यह "प्रेम निकुञ्ज" नवीन निहारी॥
"प्रिय! पुष्पित वाटिक मञ्जु यहाँ
रहिये" यह कीन्ह बिनै जब प्यारी।
तब नित्य-निवास कियो इत है
मिलि राधे-गुविन्द निकुञ्ज-विहारी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीसमर्थ रामदासस्वामिकृत दासबोध।

अप्रेल की संख्या में श्रीसमर्थ रामदास स्वामी के ग्रन्थों के विषय में कुछ थोड़ा सा वर्णन किया गया है। उस लेख में यह कहा गया था कि समर्थ के प्रमुख ग्रन्थों की विस्तृत चर्चा किसी दूसरी संख्या में की जायगी। श्रीरामदासस्वामी के उपदेश-तत्त्वों का रहस्य जानने के लिए सबसे पहले उनके "दास-बोध" ग्रन्थ ही का परिचय अत्यन्त आवश्यक है। आज हम इसी ग्रन्थ के विषय में यथामति कुछ लिखने का यत्न करते हैं। मराठी ग्रन्थमाला में प्रकाशित, प्रोफ़ेसर राजवाड़े के, एक निबन्ध की बहुत सी बातें इस लेख में ली गई हैं इसलिए आरम्भ ही में श्रीयुत राजवाड़े महाशय को कृतज्ञता-पूर्वक धन्यवाद देना हमारा कर्तव्य है। अस्तु।

२—ग्रन्थ की रचना।

श्रीसमर्थ रामदासस्वामी के सारे उपदेश-ग्रन्थों में दासबोध ही सबसे बड़ा ग्रन्थ है। इसमें २० दशक और प्रत्येक दशक में १० समास (अध्याय) हैं—अर्थात् कुल ग्रन्थ में २०० समास हैं। पद्य-संख्या ७७४९ है। समालोचकों का मत है कि धीरे धीरे इस ग्रन्थ के बनने में दस बारह वर्ष लगे होंगे। इस ग्रन्थ के छठवें दशक के चौथे समास में गत कलि-युग का मान ४७६० लिखा है, इससे जाना जाता है कि यह शाके १५८१ अर्थात् सन् १६६० ईसवी में बनाया गया होगा। शाके १५६६ में श्रीरामदास स्वामी तीर्थयात्रा से लौटे और कृष्णानदी के तीर जाकर रहने लगे। उसी समय उन्होंने ग्रन्थ-लेखन का काम प्रारम्भ किया होगा। कोई कहते हैं कि शाके १५८०-१५८१ दो वर्ष ही में यह ग्रन्थ पूरा हुआ। महीपति का कथन है कि एक ही दिन में यह ग्रन्थ पूरा हो गया! तात्पर्य यह कि इस समय इस बात का निश्चय नहीं किया जा सकता कि दासबोध के बनने में कितना समय लगा होगा। इस ग्रन्थ की सब रचना किसी निश्चित प्रकार के क्रम से नहीं है। प्रथम आठ दशक तक ठीक बँधा हुआ क्रम पाया जाता है। इसके बाद विषयों का क्रम ठीक ठीक नहीं मिलता। पहले यदि कुछ अध्यात्म-विषयक समास हैं तो उसके बाद फिर कुछ समास उपदेश विषयक आ गये हैं या बीच ही में कुछ वर्णनात्मक समास हो गये हैं। इसका कारण एक प्रचलित दन्त-कथा से मालूम हो सकता है। उस कथा का सारांश यह है कि श्रीरामदासस्वामी अपनी कूबड़ी में स्याही, क़लम और काग़ज़ रखते थे। वे जहाँ जहाँ वन में घूमते थे वहीं किसी वृक्ष के नीचे बैठ कर लिखा करते थे। यह बात सच है कि समर्थ बहुत समय तक एक ही स्थान में न रहते थे। वे सदा भ्रमण ही करते रहते थे। दासबोध के समान बड़ा ग्रन्थ लिखने के लिए बहुत समय तक एक स्थान में रहना आवश्यक था। परन्तु वे कई स्थानों में रहते थे और जब उनकी इच्छा होती तभी कुछ लिखा करते थे। इस प्रकार जो कुछ लिखा जाता था उसके समास बना कर और दस दस समासों का एक दशक बनाकर यह ग्रन्थ बहुत समय में तैयार हुआ। पहले समासों में क्या लिखा गया उसका, कुछ समय के बाद, दूसरा समास लिखते समय, स्मरण न रहता होगा; और कदाचित् लिखी हुई कापी भी किसी दूसरे स्थान में रह जाती होगी। इसी कारण विषय-क्रम में विसं-गति देख पड़ती है। यह बात स्वाभाविक है। पहले आठ दशकों का विषय-क्रम ठीक होने का कारण यह जान पड़ता है कि श्रीसमर्थ ने आठवें दशक तक के सब विषयों की मर्यादा पहले ही से निश्चित करली थी। यह बात ग्रन्थ के अन्तःप्रमाण से सिद्ध है। इन आठ दशकों की विषय-मर्यादा निश्चित कर लेने के कारण ही उनमें पुनरुक्ति नहीं है। परन्तु इसके बाद बारह समासों में पुनरुक्ति बहुत है। उदाहरणार्थ पंच महाभूतों की उत्पत्ति का तात्त्विक विषय कई दशकों में बार बार पाया जाता है। कई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समासों के नाम भी एक ही हैं। इस पुनरुक्ति का भी कारण वही कालान्तर और स्थानान्तर है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। दासबोध की रचना के सम्बन्ध में एक और बात ध्यान में रखने योग्य है। महाराष्ट्रीय साधुसन्तों के चरित्रकार कवि महीपतिजी अपने सन्तविजय में कहते हैं :—

स्वामी प्रसाद-वचनें बोलत। कल्याण लिहीत निजहस्तें ॥
पाठान्तराप्रमाणें सुरस। ओव्या बोलती रामदास ॥
तें तो सत्वर लिहीत से। उत्तर न पुसे परतोनी ॥

अर्थात् स्वामी रामदास अपने प्रासादिक वचन सुरस ओवी के रूप में बोलते जाते थे मानों सब ओवियाँ उन्हें कण्ठाग्र हों; और कल्याण स्वार्थ (उनके प्रिय शिष्य) अपने हाथ से शीघ्रता के साथ लिखते जाते थे। कल्याणस्वामी के लिखने की यह तारीफ़ थी कि वे दुबारा नहीं पूछते थे।

३—ग्रन्थ का महत्त्व और उसकी सर्व-प्रियता।

जो समाज सब प्रकार से निकृष्ट दशा को पहुँच चुका है उसे ऐहिक और पारमार्थिक मार्ग बताकर शाश्वत सुख की प्राप्ति करा देना ही इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश है। ऐहिक और पारमार्थिक कर्तव्यों की संगति जैसी इस ग्रन्थ में मिलाई गई है वैसी शायद ही और किसी ग्रन्थ में होगी। इस ग्रन्थ में यह स्पष्ट रीति से बताया गया है कि केवल किसी एक व्यक्ति का अपने घर द्वार, कामधन्धा, लड़केबालों के सम्बन्ध का कर्तव्य ही ऐहिक कर्तव्य नहीं है; किन्तु सारे जनसमाज के ऐहिक सुख—अपने देश भाइयों के सांसारिक सुख—के लिए यत्न करने में ही, अर्थात् परोपकार करने में ही, मनुष्य-जन्म की सार्थकता है। ग्रन्थ-निर्माण होते समय अनेक भावुक स्त्री-पुरुषों ने इसे सुना। इसके सम्पूर्ण होते ही अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ सारे महाराष्ट्र में फैल गईं। उसी समय, लोगों की दृष्टि के सामने इस ग्रन्थ के पहुँचतेही, अनेक लोग इसके विषय में नाना प्रकार के तर्क करने लगे। कोई कहने लगे कि इसमें त्रिकाण्ड धर्म का निरूपण है; कोई कहने लगे कि यह केवल व्यवहार-मति का ग्रन्थ है। यद्यपि यह कथन पृथक् पृथक् रूप से सत्य नहीं है; तथापि सचमुच—समष्टिरूप से—सब मिलाकर सत्य अवश्य है। इस ग्रन्थ में ज्ञान, कर्म, भक्ति और व्यवहार का निरूपण है। उस समय जो वेदान्ती थे उन्हें इसमें केवल ज्ञान-विवेक ही देख पड़ा; जो कर्ममार्गी थे उन्हें केवल कर्ममार्ग का प्रतिपादन मिला; जो भक्त थे उन्हें भक्ति का निरूपण प्राप्त हुआ; और जिनकी दृष्टि केवल व्यवहार ही की ओर लगी हुई थी उन्होंने सिर्फ़ व्यवहार-नीति ही पाई। इस प्रकार जैसी जिसकी दृष्टि थी—जैसा जिसका भाव था—वैसा ही उसको यह ग्रन्थ प्रतीत हुआ। ठीक यही हाल इस समय भी श्रीसमर्थ रामदासस्वामी और उनके ग्रन्थों के विषय में हो रहा है। जिस प्रकार प्राचीन पद्धति के भावुक जनों को श्रीसमर्थ पूजनीय हैं और उनका दासबोध प्रिय है उसी तरह आधुनिक विद्वानों की दृष्टि में भी श्रीरामदासस्वामी एक अलौकिक पुरुष हैं और उनका ग्रन्थ बहुत आदरणीय हैं। परन्तु आजकल कुछ लोग अपने अपने स्वभाव और विचारों के अनुसार श्रीसमर्थ और उनके ग्रन्थ को केवल व्यावहारिक—राजनैतिक—सिद्ध करने का यत्न कर रहे हैं। यह उनकी भूल है। दासबोध एक देशीय ग्रन्थ नहीं है। यह ग्रन्थ किसी विशिष्ट काल या देश ही के लिए नहीं बनाया गया है। इसके तात्त्विक सिद्धान्त सदा, सब काल, सब स्थानों में एक ही से लागू हैं। हाँ, यह बात सच है कि जिस समय यह ग्रन्थ बना उस समय महाराष्ट्रीय समाज विपन्नावस्था में था। इसलिए उस देश की स्थिति को लक्ष्य करके महाराष्ट्रियों को उपदेश दिया गया है। परन्तु यथार्थ में यह ग्रन्थ सर्व-देशीय और सर्वकालिक महत्त्व का है। जो काम इस ग्रन्थ ने प्रथम कर दिखाया है वही काम वह भविष्य में भी कर दिखा सकता है। जिस प्रकार धर्म की ग्लानि होने पर ईश्वर का अवतार होता ही है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी प्रकार समाज की निकृष्ट दशा आने पर समाज को उबारने का काम इस ग्रन्थ में ग्रथित सिद्धान्तों ही का है। यह ग्रन्थ उस समय मार्ग-प्रदर्शक हो सकता है। इस ग्रन्थ की महिमा कहाँ तक लिखें? यह ग्रन्थ मराठी भाषा में एक अपूर्व रत्न है। मोरोपन्त और बादन पण्डित के समान बड़े बड़े कवि इसकी प्रशंसा करते करते थक गये। हम किस गिनती में हैं?

४—संक्षिप्त विषय-वर्णन।

श्रीरामदास स्वामी ने इसी ग्रन्थ के ७ वें दशक के ९ वें समास में ग्रन्थ के लक्षण बताये हैं। इन लक्षणों के देखने से स्पष्ट मालूम हो सकता है कि ग्रन्थों में क्या होना चाहिए; सच्चा ग्रन्थ कौन है; या उसमें कौन कौन विषय होते हैं। नमूने के लिए दो एक पद्य देखिए:—

जेणें परमार्थ वाढे। आंगीं अनुताप चढे।
भक्ती साधन आवडे। त्या नाव ग्रन्थ ॥३०॥
जेणें होये उपरती। अवगुण पालटती।
जेणें चुके अधोगती। त्या नाव ग्रन्थ ॥३२॥

अर्थ—ग्रंथ उसको कहना चाहिए कि जिससे परमार्थ बढ़े, मन में अनुताप उत्पन्न होवे, भक्ति प्रिय लगे, अवगुण बदल जावें और अधोगति से मुक्त हों। ठीक इन्हीं लक्षणों से युक्त समर्थ का यह दासबोध ग्रन्थ है। इस संसार में मनुष्यमात्र जन्म से मृत्यु तक अपने सुख ही के लिए यत्न करते हैं। कोई अपने प्रपंच अर्थात् गृहस्थी ही में सुख मानते हैं और कोई परमार्थ में। दोनों यद्यपि 'सुख' प्राप्ति ही को अपना उद्देश मानते हैं तथापि दोनों के प्रयत्नों में और फलों में भेद है। हर एक अपने ही मार्ग को सत्य और अन्य मार्ग को मिथ्या कहता है। परमार्थ-प्राप्ति के मार्ग से जानेवालों की संख्या बहुत कम होती है क्योंकि यह मार्ग कठिन है और इसमें विघ्न बहुत हैं। धैर्यशाली पुरुष ही इसको पार कर सकते हैं। अधिकांश जन स्वार्थ ही में फँसे रहते हैं। इसी लिये इन लोगों को परमार्थ मार्ग में लगाने के लिए साधु और संतों के बोध की परम आवश्यकता है। इस प्रकार के स्वार्थी—संसारी—जनों के हित का बोध इस "दासबोध" ग्रन्थ में किया गया है। श्रीरामदास स्वामी जैसे परमार्थ में पारंगत थे वैसे ही व्यवहार में भी कुशल और दक्ष थे। प्रपंच का काम यथोचित रीति से करते हुए परमार्थ-साधन करने का ही उपदेश उन्होंने इस ग्रन्थ में किया है। उन्होंने यह कहीं नहीं कहा कि संसारत्याग करके अरण्यवास करने से ही मोक्ष प्राप्ति होती है। घर-गृहस्थी में रह कर सांसारिक सब काम नीतिपूर्वक करते हुए, शुद्ध अन्तःकरण से यदि ईश्वर की भक्ति की जाय तो निःसन्देह पारमार्थिक सुख की प्राप्ति होगी यही उचित और यथार्थ उपदेश इस ग्रन्थ में दिया गया है। जिस प्रकार शूरता की परीक्षा के लिए रण-भूमि होती है वैसे ही सच्चे ज्ञान की कसौटी का स्थान यही 'असार' संसार है। जन समुदाय से अलग होकर जो परमार्थ प्राप्ति का यत्न करता है उससे संसार में रहकर परमार्थ प्राप्ति करने वाला पुरुष अधिक श्रेष्ठ और धन्य है। जो इस भवसागर से डर कर दूर भागना चाहता है वह डरपोक है। समर्थ अपने "मनोबोध" में कहते हैं:—

भवाच्या भयें काय भीतोसि लंडी।
धरीं रे मनां धीर धाकासि सांडी॥

अर्थ—ऐ डरपोक, तू इस भवभय से क्यों डरता है? अरे मन, धीरज धर और भय का त्याग कर। अस्तु।

यह ग्रन्थ गुरु और शिष्य के संवाद रूप में लिखा गया है। पहले दशक के आरंभ में ग्रन्थ का नाम बता कर, उसमें कौन कौन विषय हैं उन विषयों का प्रतिपादन किन किन प्राचीन ग्रन्थों के प्रमाण पर किया गया है, इसके अधिकारी पाठक कौन हैं, इसके पढ़ने से क्या लाभ है, इत्यादि बातें बतलाई गई हैं। इसके बाद शिष्ट और प्राचीन पद्धति के अनुसार मंगलाचरण कहके सद्गुरु और संत सज्जनों की वन्दना की है। श्रोताओं की प्रार्थना करके कवियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशंसा की है; सभा का वर्णन करके परमार्थ की श्रेष्ठता बताई है। इस दशक के अंत में नरदेह की योग्यता बता कर उसकी बड़ाई की गई है। यहीं से "बोध" का आरम्भ हुआ है। दूसरे दशक में, यह सोचकर कि मूर्ख जन नरदेह की बड़ाई ही में भूल कर उसका दुरुपयोग न करें, उसकी न्यूनता बताई है और देहाभिमान के त्याग का उपदेश दिया है। 'मैं', 'मेरा'—इस संसार—की नश्वरता बतलाकर कुविद्या त्याग करने के लिए मूर्ख के लक्षण बतलाये हैं। इसके बाद भक्ति का कुछ वर्णन करके सत्व, रज और तम का वर्णन क्रमशः न करते हुए पहले रज, फिर तम और अंत में सत्त्व गुण का वर्णन किया है। पहले रजोगुण के वर्णन करने का कारण यह जान पड़ता है कि रजोगुण ही सांसारिक सुखादि भोगों का मुख्य प्रवर्तक है। फल की आशा रख के कर्म करना या पूर्व कर्म के फल का उपभोग करना रजोगुण ही का धर्म है। संसारी लोगों के अधिकांश व्यवहार इसी गुण से होते हैं। अतएव पहले इसी का वर्णन किया गया और बताया गया कि यदि यही रजोगुण पारमार्थिक कार्य में लगाया जाय तो सत्वगुण की वृद्धि और तमोगुण का नाश आपही आप हो जायगा। इतना बतलाकर आगे सुविद्या का वर्णन किया गया है। यह सब व्यावहारिक उपदेश है। तीसरे दशक में एक व्यक्ति के गर्भवास से मृत्यु पर्यन्त उसका जीवन-चरित बताकर 'स्वगुण-परीक्षा' का उपदेश दिया है। इसमें मनुष्य की संसार-यात्रा का अतिउत्तम चित्र है। इसके पढ़ने या सुनने से मन पर बहुत अच्छा प्रभाव होता है। चौथे दशक में श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, बंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन इन नव प्रकार की भक्तियों का पृथक् पृथक् वर्णन करके चारों प्रकार की मुक्तियों का वर्णन किया है। श्रीसमर्थ का यह सिद्धान्त सर्वमान्य है कि आत्मनिवेदन ही सायुज्य-मुक्ति दायक मुख्य भक्ति है।

नवमी भक्ति आत्मनिवेदन।
नु होतां न चुके जन्ममरण॥
हें वचन सत्य प्रमाण।
अन्यथा नव्हे॥ ४—१—२५

पाँचवें दशक में पहले सद्गुरु और सत् शिष्य के लक्षण बतलाकर सत्य उपदेश का निरूपण किया है। आर्य धर्म के इस सनातन सिद्धान्त पर कि "सद्गुरु विण ज्ञान कांहीं। सर्वथा होणार नाहीं।" सद्गुरु के बिना ज्ञान की प्राप्ति कदापि न होगी—श्रीसमर्थ ने बहुत ज़ोर दिया है। परन्तु इसी के साथ यह भी बताया है कि गुरु ऐसा चाहिए जो शिष्य को परमार्थ के साधनों की शिक्षा दे और इन्द्रियदमन कराके विषयों से निवृत्त करे। जो इस प्रकार शिक्षा न दे सकें वे यदि कौड़ी के तीन तीन भी मिलें तो भी त्याज्य हैं:—"शिष्यास न लविती साधन। न करविती इन्द्रियें दमन। ऐसे गुरू अडक्याचे तीन। मिळाले तरी त्यजावे॥" ऐसा कह कर अनेक प्रकार के असद्गुरु का वर्णन किया है जो समाज में गुरु बनकर लोगों को ठगते और भ्रष्ट करते हैं। इसके बाद बहुधा ज्ञान का निरूपण करके शुद्ध ज्ञान का वर्णन किया है। तदनन्तर क्रमशः बद्ध, मुमुक्षु, साधक और सिद्ध के लक्षण और कर्तव्यों का प्रभावशाली वर्णन किया है। बद्ध और मुमुक्षु के लक्षण पढ़ते समय, कैसा भी पाषाण हृदय मनुष्य हो तोभी उसका अन्तःकरण पश्चात्ताप से विदीर्ण हो जाता है। इन दो समासों के प्रत्येक पद्य का एक एक शब्द, पढ़नेवाले को अपने कृत कर्मों की याद दिलाकर और कुछ समय तक चित्त की वृत्तियों को अनुताप से शिथिल करके ईश्वर के स्मरण में लीन कर देता है। छठवें दशक से अध्यात्म-निरूपण का प्रारम्भ हुआ है। इसके प्रथम पाँच समासों में माया और ब्रह्म का अच्छी तरह विवरण करके सगुण भजन का प्रतिपादन किया है। इसके बाद यह उपदेश किया है कि सबमें जो सार है उसको ढूढ़ लेना चाहिए और असार वस्तु का त्याग करना चाहिए। सातवें दशक में चौदह ब्रह्मों का शास्त्रों के प्रमाण देकर वर्णन किया है और यह बतलाया है कि जितने नाम हैं—जितना कुछ बतलाया जा सकता है—वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशाश्वत ब्रह्म हैं। शाश्वत ब्रह्म वाचा से परे है—वह अनिर्वाच्य है। आठवाँ दशक अध्यात्मज्ञान का सार है। इसी को "ज्ञानदशक" भी कहते हैं। इसमें पहले ईश्वर की महिमा का वर्णन करके दो समासों में अनेक सूक्ष्म आशंकायें उठाई हैं; फिर सूक्ष्म और स्थूल पंच महाभूतों का विस्तारपूर्वक विवरण करके मोक्ष, आत्मा, सिद्ध पुरुष और शून्यत्व का निरूपण किया है। आठवें दशक के बाद विषयों का कोई क्रम ठीक ठीक नहीं मिलता, पर इसमें सन्देह नहीं कि ग्रन्थ के इसी भाग में संसारी लोगों के लिए अनेक व्यावहारिक उपदेश-रत्न भरे पड़े हैं। नवें दशक में ब्रह्म निरूपण करके अनेक शंकाओं का समाधान करते हुए निस्सन्देहता स्थापन की गई है। दसवें दशक में पहले इस बात का युक्तिपूर्वक प्रतिपादन किया है कि अन्तरात्मा सबमें एक ही है। इसके बाद बीज लक्षण, पंचप्रलय, और प्रकृति पुरुष आदि कई महत्त्वपूर्ण विषयों का दिग्दर्शन करके भीम-दशक—ग्यारहवें दशक—का प्रारम्भ हुआ है। यह दशक बड़े महत्त्व का है। इसके नाम ही से इसका महत्त्व समझ लेना चाहिए। श्रीहनूमानजी को शास्त्र में ग्यारहवाँ भीम (रुद्र) माना है; इसी लिए इस दशक का नाम भीम रक्खा गया है। इसमें पहले अध्यात्मविद्या का सिद्धान्त बतलाकर सांसारिकों के लिए अच्छी शिक्षा दी है। इसी में राजकारण अर्थात् राजनीति-सम्बन्धी तत्त्वों का निरूपण है। इसके बाद महन्त के लक्षण बतलाये हैं। महन्त को कौन कौन बातें जाननी चाहिए, किस प्रकार चतुराई के साथ लोगों के अन्तःकरण का हाल जानकर उनको अपने समुदाय में मिलाना चाहिए और कठिन प्रसंग आ पड़ने पर किस प्रकार उसका निर्वाह करना चाहिए इत्यादि अनेक महत्त्व की बातें बतलाई हैं। इसी दशक के अन्त में साधारण उपदेश बतलाकर विशेषता के साथ यह बतलाया है कि निस्पृह लोगों का बर्ताव जन-समाज के साथ कैसा होना चाहिए। इस शिक्षा का सार नीचे लिखे हुए दो पद्यों में भरा है:—

उत्तम गुण तितुके घ्यावे। घेऊन जनास सिकवावे।
महंतें महंत करावे। युक्ति बुद्धीने भरावे।
गाठाते करुन विखरावे। नाना देसीं ॥२५॥

तात्पर्य, सारे उत्तम गुण पहले स्वयं ग्रहण करके तब लोगों को सिखाना चाहिए। महन्तों को चाहिए कि वे अपने समान अनेक महन्त (निस्पृह पुरुष) तैयार करें, उन्हें युक्ति और बुद्धि का निधान बनावें। इस प्रकार अनेक ज्ञाता तैयार करके नाना देशों में—नाना प्रान्तों में—उन्हें भेजना चाहिए। क्यों भेजना चाहिए? ये भी वही काम करें। इस प्रकार क्रमशः जगदुद्धार हो जावेगा। एक दृष्टि से यह समास और भी बड़े महत्त्व का है। इसमें श्रीसमर्थ ने जो कुछ कहा है वह स्वयं पहले उन्होंने किया है और तब उसका अनुकरण करने के लिए लोगों को उपदेश दिया है। इसलिए उसके सिद्धान्त बिलकुल पक्के हैं। अस्तु। बारहवें दशक में विवेक और वैराग्य का बहुत ही उत्तम विवेचन किया गया है। श्रीसमर्थ ने विवेक का महत्त्व बहुत कुछ बतलाया है। क्या ऐहिक और क्या पारमार्थिक किसी भी प्रकार के सुख की प्राप्ति के लिए विवेक के बिना सब उपाय निष्फल होते हैं। "विवेक पाहिल्या बीण। जो जो उपाव तो तो सीण।" यह बात सच है कि जब तक विषयों के सम्बन्ध में वैराग्य उत्पन्न न होगा तब तक ज्ञान का लाभ नहीं हो सकता। परन्तु यह वैराग्य विवेक युक्त होना चाहिए। यदि वैराग्य के साथ विवेक न हो तो अनर्थ के सिवा कोई लाभ नहीं—न तो प्रापंचिक सुख होगा और न पारमार्थिक।

विवेकें वीण वैराग्य केलें।
तरी अविवेकें अनर्थीं घातलें।
अवघे व्यर्थचि गेलें।
दोहीं कडे। १२-४-६

तेरहवें दशक में आत्मानात्म-विवेक, सारासार-निरूपण, उत्पत्ति और प्रयत्न का वर्णन किया है। इसी दशक के छठवें समास में लघुबोध है। इसमें समर्थ की शिक्षा का सारांश है। इतिहासज्ञों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमान है कि श्रीरामदासस्वामी ने यही लघुबोध शिवाजी को बतलाया था। चौदहवें दशक में फिर 'निस्पृह' के लक्षण बतला कर भिक्षा, कवित्व कला, कीर्तन, लक्षण, हरि-कथा-निरूपण और चातुर्य-लक्षण बतलाये हैं। इसके बाद युग-धर्म नाम के समास में तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक दशा का अच्छा परिचय मिलता है। पन्द्रहवें दशक में फिर चातुर्य के लक्षण और निस्पृह व्याप लक्षण बतलाये हैं। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि श्रीसमर्थ ने महन्तों और निस्पृहों का वर्णन इस ग्रन्थ में बार बार किया है। निस्पृह महन्तो ही उनकी व्यावहारिक शिक्षा का सार है; क्योंकि बिना निस्पृह महन्तों के जगदुद्धार या लोककल्याण कदापि नहीं हो सकता। सोलहवें दशक में पहले वाल्मीकि, सूर्यनारायण, भूमाता और पवनदेव का स्तवन करके जल, अग्नि आदि महाभूतों का वर्णन किया है। इन सारे व्याख्यानों में आधुनिक वैज्ञानिक या शास्त्रीय सिद्धान्तों का भी परिचय मिलता है। इसके बाद उपासना की व्यापकता बतलाते हुए यह सिद्धान्त स्थापित किया है कि "उपासने चा मोठा आश्रयो। उपासने वीण निराश्रयो। उदण्ड केलें तरी तो जयो। प्राप्त नाहीं॥" अर्थात् मनुष्य को ईश्वर की उपासना का बहुत बड़ा आश्रय है; बिना उपासना के निराश्रित रहना होता है; निराश्रित अवस्था में चाहे जैसा प्रयत्न किया जाय जय-लाभ नहीं होता। सत्रहवें दशक में शिव शक्ति, अजपामंत्र, जगजीवन आदि नाना विषयों का वर्णन किया है। अठारहवें दशक में चौथी बार सर्वज्ञसंग और 'निस्पृह' के सिखापन का वर्णन किया है। इसके बाद अभागी पुरुष और उत्तम पुरुष के लक्षण तथा जन स्वभाव बतला कर निद्रा का हास्य-कारक वर्णन किया है। उन्नीसवें दशक के प्रारम्भ में लेखन-क्रिया, भाग्यवान् और अभागी के लक्षण, बुद्धि-वाद और यत्न का निरूपण किया है। अन्त में उपाधि के लक्षण बतला कर राज कारण का दुदारा निरूपण किया है। बीसवें दशक में आत्मा, देह-क्षेत्र, सूक्ष्मनाम, पूर्णापूर्ण आदि आध्यात्मिक विषयों की ही चर्चा की है। अन्त में विमल ब्रह्म का निरूपण करके अद्वैत सिद्धान्त स्थापित किया है। ग्रन्थ-समाप्ति के समय श्रीसमर्थ कहते हैं:—

"भक्तांचे साभिमानें। कृपाकेली दाशरथीनें।
समर्थ कृपेचीं वचनें। तो हा दासबोध॥"

अर्थात् भक्तों का अभिमान रख कर श्रीदाशरथी रामचन्द्रजी ने मुझ पर कृपा की; यह ग्रन्थ कुछ मैंने नहीं बनाया है; इसमें समर्थ श्रीरामचन्द्रजी की कृपा के वचन हैं—वही वचन एकत्र होकर इस दासबोध ग्रन्थ के रूप में देख पड़ते हैं।

यहाँ तक इस ग्रन्थ में वर्णित सब विषयों का संक्षेप में उल्लेख किया गया। अब इस ग्रन्थ के मुख्य मुख्य सिद्धान्तों की कुछ विस्तृत आलोचना की जायगी जिससे पाठकों को यह बात भली भाँति मालूम हो जायगी कि श्रीसमर्थ रामदासस्वामी ने लोकोद्धार के लिए किस प्रकार की शिक्षा दी है।

५—ज्ञान, विज्ञान और बहुधा ज्ञान।

मोक्ष के लिए ज्ञान चाहिए। अब यह देखना चाहिए कि ज्ञान क्या है। इस अखिल संसार में 'नित्य' और 'शाश्वत' वस्तु एक है। वह शुद्ध या विमल ज्ञान है। इस ग्रन्थ के दशक ५ समास ६ में इसी ज्ञान का विवरण किया गया है। शुद्ध, विमल ज्ञान को ही स्वरूप ज्ञान—अनुभव या विज्ञान—कहते हैं। यह ज्ञान 'पदार्थ-विज्ञान' से भिन्न है। पदार्थ-विज्ञान को समर्थ ने 'बहुधा ज्ञान' कहा है। उसका वर्णन द० ५ स० ६ में किया गया है, जिसे हम लोग आजकल शास्त्र या विज्ञान (Science) कहते हैं, उसका समावेश इसी बहुधा ज्ञान में होता है। पशुज्ञान, रोगज्ञान, ओषधिज्ञान, मंत्रज्ञान, धातुज्ञान, शास्त्रज्ञान, गतिज्ञान, तर्कज्ञान, शब्दज्ञान और अन्तर्ज्ञान आदि सब प्रकार के पदार्थ-ज्ञान का इसी बहुधा ज्ञान में समावेश होता है। यह सारा ज्ञान मायोत्पादित दृश्य (जड़ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशाश्वत) पदार्थों' का वर्गीकरण है। यह शुद्ध विमल ज्ञान नहीं है—यह तत्त्वज्ञान नहीं है। यह अविद्या है—माया है—अज्ञान है। समर्थ इसी बहुधा ज्ञान का वर्णन करते हुए कहते हैं :—

बहुत प्रकाराचीं ज्ञानें। सांगों जातां असाधारणें।
सायोज्य प्राप्ति होय जेणें। तें ज्ञान वेगळें ॥३७॥

ये बहुत प्रकार के ज्ञान कहाँ तक बतलाये जायँ, पर जिस ज्ञान से सायुज्य मुक्ति मिलती है—पूर्ण स्वतन्त्रता मिलती है—वह ज्ञान अलग है। इस अनित्य दृश्य के परे जो ज्ञान है, उसी को आत्म-ज्ञान कहते हैं। आत्मा—ब्रह्मांश—नित्य और एक है। उसके विषय का जो ज्ञान है, वही 'ज्ञान' है। दृश्य पदार्थ (माया का पसारा) अनित्य और अनेक है। उसके सम्बन्ध का जो ज्ञान है, वही "बहुधा ज्ञान" है। क्षेत्री और क्षेत्र, द्रष्टा और दृश्य, नित्य और अनित्य—इन सबके सम्बन्ध का जो विवेक है, वही सब ज्ञान का सार है।

६—आत्मा और देह।

क्षेत्री, द्रष्टा अथवा आत्मा, सत्, शाश्वत्, निरुपाधि और निर्विकार है। क्षेत्र दृश्य अथवा देह, असत्, अशाश्वत्, सोपाधि और सविकार है। आत्मा सूक्ष्म और देह स्थूल है। आत्मा स्वयम्भू और देह परभू है। आत्मा ब्रह्म का अंश है और देह माया का अंश है। जिस तरह माया का नाश होता है और ब्रह्म अविनाशी है, उसी तरह देह नश्वर और आत्मा अमर है। इस प्रकार आत्मा देह—ब्रह्म माया—नित्य और अनित्य का अखंड भेद है। सारांश, आत्मा या ब्रह्म स्वतन्त्र और स्वाधीन है; माया अथवा देह परतन्त्र और पराधीन है। यही एक मुख्य भेद है। जब इस स्वतन्त्र आत्मा का परतन्त्र माया से संयोग होता है—जब आत्मा पर माया का लेप चढ़ता है, अथवा जब आत्मा का इस देह से सम्बन्ध होता है तब वही 'देही' या 'जीव' भी कहलाने लगता है। 'जीव' होकर आत्मा सुख, दुःख, लाभ और हानि आदि द्वन्द्वों का भोक्ता बन जाता है। तात्पर्य स्वतन्त्र आत्मा देह या माया के संसर्ग से परतन्त्र या बद्ध हो जाता है। श्रीसमर्थ ने दशक १३ स० ९ में इसी का विवेचन किया है। वे कहते हैं :—

आत्मयास शरीर योगें। उद्वेग चिन्ता करणें लागे।
शरीरयोगें आत्मा जगे। हें तों प्रकटचि आहे ॥१॥
देहीं सुख दुख भोक्ता। तो येक आत्माचि पाहातां।
आत्म्याविण देहे वृथा। मड़ें होये ॥२६॥

अर्थात्, आत्मा को शरीर के योग से उद्वेग और चिन्ता आदि करनी पड़ती है। यह तो प्रकट ही है कि शरीर के योग से आत्मा है—शरीर न रहे, तो आत्मा भी चला जाय। देह में सुख दुख भोगनेवाला आत्मा ही है। आत्मा न रहे तो शरीर भी मुर्दा है। इस प्रकार दोनों एक दूसरे के सहारे हैं, दोनों एक दूसरे से बद्ध हैं।

७—नर-देही जीव या बद्ध-प्राणी।

आत्मा को माया का बन्धन होना ही नर-देह का जन्म है। ज्यों ही स्वतन्त्र आत्मा नर-देह को प्राप्त होता है, त्योंही उसके सांसारिक सुख-दुःख और तापत्रय का आरम्भ हो जाता है। तापत्रय का मूल कारण त्रिगुणात्मक माया ही है। स्वतन्त्र, आत्मा नर-देह में आ कर सत्त्व, रज, तम के न्यूनाधिक मिश्रण से भ्रान्त होकर अहङ्कार-वश हो जाता है। मैं ऐसा हूँ, मैं वैसा हूँ, मैंने यह किया, मैंने वह किया, मैं चतुर, पण्डित, कार्यकर्त्ता हूँ, मेरा घर, मेरा कुटुम्ब, मेरा धन—इस प्रकार की अहङ्कारी कल्पनाओं में फँस कर संसार के सुख-दुःख में प्राणी मग्न हो जाता है। माया के मोह में बँधा रहने के कारण उसकी ज्ञान-दृष्टि धुँधली हो जाती है। वह अपने आपको भूल जाता है। अज्ञान वश कहने लगता है कि मैं कौन हूँ? इस प्रकार नरजन्म पाकर जब स्वतन्त्र आत्मा अपने तईं आपही भूल जाता है—अपने निज स्वरूप को भूल जाता है—तब वह संसार में मूर्ख, पढ़त मूर्ख और कुलक्षणी बन जाता है। जब एक बार अज्ञान और मूर्खता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोम रोम में समा जाती है, तब उसके दुःखों की गिनती कौन कर सकता है? वह दूसरों को सताता है, तङ्ग करता है, दुःख देता है और आप भी उसी प्रकार पीड़ित होता है। दूसरों पर जुल्म करता है; दूसरों का धन छीन लेता है; लोगों की स्वतन्त्रता हरण कर लेता है और स्वयं भी दरिद्र तथा परतन्त्र होता है। इतना होते हुए भी उसकी समझ में यह नहीं आता कि ऐसा क्यों होता है—दुःख का कारण क्या है—दुःख-विमोचन क्यों नहीं होता—दुःख ही सुख क्यों मालूम होता है। माया के कठिन फन्दे में पड़ कर बेचारा प्राणी घबरा जाता है। इसके छक्के छूट जाते हैं। ऐसी दशा में कोई कोई तो इस नर-देह की ही निन्दा और तिरस्कार करने लगते हैं। कहते हैं कि नर-देह खोटी है—इसी के कारण हम को दुःखित होना पड़ा। वे यह भूल जाते हैं कि सत्त्व-रज-तम, तीनों गुणों में से केवल रज और तम के अतिशय संसर्ग से ही ऐसी दुर्दशा होती है। नरदेह एक विलक्षण शक्ति है। उसका उपयोग चाहे भला करो चाहे बुरा। दुरुपयोग करनेवाले की दुर्गति और सदुपयोग करनेवाले की सद्गति होती है। "नर करनी करे, तो नर का नारायण होय" जो कहावत है, वह बिलकुल सच है। पर वे इस सिद्धान्त को सर्वथा भूल जाते हैं और व्यर्थ नरदेह की निन्दा करते हैं। नाच न आवे आँगन टेढ़ा! ऐसे लोगों की उन्नति के बदले अवनति होती है।

८—मुमुक्षु और सद्गुरु।

ऐसे बद्ध प्राणी को जब सांसारिक ताप-त्रय से खेद और पश्चात्ताप होता है, तब उस दुःख से छूटने का प्रश्न उसके सम्मुख आता है, तब वह वृद्धावस्था से मुक्त होने का उपाय खोजता है। इसका निरूपण दासबोध में वैसा ही है, जैसा अन्यान्य ग्रन्थों में है; पर "दासबोध में इतनी विशेषता है कि महाराष्ट्र की तत्कालीन अवस्था में जो कुछ उचित था, वही इस ग्रन्थ में निरूपण किया गया है। अस्तु, पूर्व-पुण्य के कारण उस बद्ध-प्राणी की जब सद्गुरु से भेट होती है—जब वह सद्गुरु की शरण जाता है—तब गुरु के उपदेश से तामस-वृत्ति का वह त्याग करता है। इसके बाद उसे मालूम होता है कि मैं बद्ध नहीं हूँ—स्वतन्त्र हूँ। भ्रम के कारण मैं अपने को बद्ध समझता था:—

कोणासी च नाहीं बन्धन। भ्रान्तिस्तव भुलले जन।
दृढ़ घेतला देहाभिमान। ह्मणोनियाँ॥ ५७॥

द० ५ स० ६

वास्तव में बन्धन किसी को नहीं है—कोई भी बद्ध नहीं है—सारे प्राणी भ्रान्ति से भूले हुए हैं। क्योंकि वे देहाभिमान—अहन्ता के गर्व—को दृढ़ता से पकड़े हैं। इस भ्रम का निरसन होतेही मुमुक्षा—मोक्ष या स्वतन्त्रता की इच्छा का उदय होता है। जब यह इच्छा प्रबल होती है, तब प्राणी सात्त्विक वृत्ति का अभ्यास करने लगता है और जिसकी कृपा से यह इच्छा उत्पन्न हुई है उस सद्गुरु के चरणों की सेवा करने लगता है। सद्गुरु के उपदेश, सहवास और कृपा से बड़ा लाभ होता है। जो नरदेह पहले निन्द्य और तिरस्करणीय जान पड़ती थी; वही अब वन्दनीय और उपयोगी प्रतीत होने लगती है। गुरु के उपदेश से मनुष्य की विवेक दृष्टि शुद्ध और निर्मल हो जाती है। उसे इस बात का विश्वास हो जाता है कि इस संसार में मेरा कुछ कर्तव्य है—कोई उद्देश है—ध्येय है—साध्य है; उस साध्य को प्राप्त करने के लिए यह नरदेह अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी है। यदि नरदेह न मिलती, कोई अन्य देह (पशु, पक्षी, कीटादि) मिलती तो इस साध्य का प्राप्त कर लेना असम्भव था। श्रीसमर्थ कहते हैं:—

पशु देही नाहीं गती। ऐसें सर्वत्र बोलती।
ह्मणोन नरदेहीं च प्राप्ती। परलोका ची॥२१॥
नरदेह हा स्वाधीन। सहसा नव्हे पराधीन।
परन्तु हा परोकारीं झिजऊन। कीर्ति रूपें उरवावा२५

द० १ स० १०२

"सब लोग यही कहते हैं कि पशु देह में गति नहीं है। परलोक नरदेह में ही मिलता है। नरदेह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाधीन है; यह सहसा पराधीन नहीं होती। इसे परोपकार में लगाकर कीर्तिरूप से अमर कर देना चाहिए।" परन्तु स्मरण रहे कि यह शुद्ध और विमल विवेक-दृष्टि, गुरु कृपा का अञ्जन पाये बिना कदापि नहीं हो सकती। इस लाभ को क्षुद्र लाभ न समझना चाहिए। नरदेह की मिट्टी ख़राब करनेवाले गुरुओं के लिए समर्थ कहते हैं कि यदि ऐसे गुरु कौड़ी के तीन तीन मिलें, तो भी न पूछना चाहिए। जो अविद्या माया का मूल छेदन करें अन्तर्बाह्य इन्द्रियों के दमन और निग्रह की शिक्षा दें और भव-सागर के पार लगावें; वे ही सद्गुरु हैं। ऐसे गुरु विरले मिलते हैं। ऐसे गुरु द्रव्य से नहीं मिलते। पूर्व पुण्य से ही मिलते हैं। इस पूर्व पुण्य को सफल करने का काम गुरु का है। समर्थ कहते हैं कि समाज में जो असत् विद्या का प्रचार दीख पड़ता है, उसका दोष केवल शिष्यों को ही न देना चाहिए। यह दोष गुरु को भी लागू होता है। अर्थात् असत् गुरु के कारण समाज में अनीति, अधर्म और अनाचार का प्रचार होता है। शिष्य अर्थात् समाज के सर्वसाधारण लोग तो जान बूझकर अज्ञान और मूढ़ हैं ही। अब उनके माथे केवल दोष मढ़ देने से ही और क्या लाभ होगा? समाज को सुमार्ग पर चलाने की सब ज़िम्मेदारी और जवाबदही समर्थ के मतानुसार, सद्गुरु के ही ऊपर है। :—

येथें शब्द नाहीं शिष्यासीं।
हे अवधें सद्गुरुपासीं।
सद्गुरु पालटी अवगुणासीं।
नाना येत्नें करूनीं॥ १५॥

द० ५ स० ३

"उसमें शिष्य का कोई दोष नहीं, यह सब सद्गुरु का काम है। सद्गुरु अनेक प्रकार के यत्न कर समाज के अवगुणों को पलट सकता है।" जो सद्गुरु सर्वज्ञ हैं; आत्मज्ञानी हैं, अनुभवी हैं, विरक्त हैं, निस्पृह हैं, वे यदि समाज के नायक बनकर लोगों को उचित मार्ग की शिक्षा न दें, तो यह काम दूसरा और कौन करेगा? जब इस प्रकार के सद्गुरु हिमालय की कन्दराओं में बैठकर एकान्त स्वानुभव से प्राप्त होनेवाले ब्रह्मानन्द का क्षण भर त्याग करके समाज का हित करने के लिए, परोपकार करने के लिए (जिसके लिए उनकी विभूति है) समाज में आते हैं और समाज का नायकत्व स्वीकार करते हैं, तब उनके तेज प्रभाव और प्रतिभा के कारण उन्हें मुमुक्षु सत्शिष्य भी मिल जाते हैं। जहाँ सद्गुरु और मुमुक्ष का मिलाप हुआ वहाँ मानों मेघ और चातक का मिलाप हुआ, अथवा कृष्ण और अर्जुन की भेंट हुई या रामदास और शिवाजी की जोड़ी मिल गई! ऐसा होते ही मुमुक्ष शिष्य परमार्थ या जनोद्धार के साधन में लग जाते हैं।

६—परमार्थ मार्ग में साधक और सिद्ध।

परमार्थ-मार्ग के साधन में लगते ही वह परोपकार या जनोद्धार की इच्छा रखनेवाला निरहङ्कारी मुमुक्षु साधक की अवस्था को प्राप्त हो जाता है। उस अवस्था में वह देखता है कि परमार्थ क्या है। समर्थ कहते हैं कि :—

परमार्थ तपस्वियों और साधकों का आधार है। परमार्थ भवसागर से पार करता है। जब अनन्त जन्मों का फल इकट्ठा हो रहता है, तब परमार्थ हो सकता है। परमार्थ से मुख्य परमात्मा अनुभव में आ जाता है। और आत्मानुभव होना ही माया के बन्धन से छूटना है। इसी का नाम मोक्ष और स्वतन्त्रता है—और यही परमार्थ है। इसके प्राप्त करने का मार्ग या साधन क्या है? ज्ञानमार्ग, योगमार्ग, कर्ममार्ग या भक्तिमार्ग? इस प्रकार अनेक प्रश्नों का विवेचन समर्थ ने पाँचवें दशक के सातवें समास से लेकर बीसवें दशक तक किया है। अस्तु; इन्हीं अनेक मार्गों से साधक परमार्थ के लिए दृढ़तापूर्वक साधन करता है; सन्त-समागम करता है, अद्वैत निरूपण का श्रवण मनन करता है, सारासार विचार से सन्देहों, सांसारिक विकल्पों का नाश करके आत्मज्ञान का विवेक करता है। विवेक से देह बुद्धि—मैं तू पन—को रोकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ऐसे विकट समय में जब कि चारों ओर राज्य-क्रान्ति भारतवर्ष में फैल रही थी इसका दृढ़ होना बहुतही उचित था। गढ़ में बसी हुई १५।२० सहस्र लोगों की बस्ती के चारों ओर दृढ़ प्राचीर खिंची हुई थी। राजमहल एक पहाड़ी के सिरे पर सुदृढ़ और सुरक्षित दुर्ग में था। हाट बाट सादे, परन्तु स्वच्छ थे। घर साधारण किन्तु उजले थे। नर नारी गण सरल, स्पष्टस्वभाव, और कुछ निर्धन थे; परन्तु वीर, स्वाधीन-चेता, उदार-चरित्र और अतिथि-सत्कार करनेवाले थे। इनके राजा को युद्ध-सम्बन्धी खेल बहुत प्रिय थे। प्रजा भी वर्ष में कम से कम एक बार उत्साहवर्द्धक खेलों में भाग लिया करती थी।

इस वर्ष भी एक दङ्गल हुआ। इसकी सूचना पहलेही से आसपास के देशों में दे दी गई थी। बहुतेरे योद्धागण यश-प्राप्ति की आशा से नियत समय पर आ पहुँचे।

दङ्गल का मण्डप नगर के बीच एक मैदान में था। पहाड़ी के नीचे से महलों को आने वाला मार्ग नगर के बीचों बीच होता हुआ मण्डप को आया था। इसी मार्ग से गढ़ के ऊपर चढ़ते हुए दो मनुष्य ऊपर आरहे थे। एक भारी, गठीले, कुछ भद्दे चेहरे मोहरे वाला था, गाल की हड्डियाँ उठी हुई थीं। नाक लम्बी और आँखें घुसी हुई थीं। स्पष्ट जान पड़ता था कि यह कोई तातार है। दूसरा तातार की अपेक्षा अधिक लम्बा, दुबला पतला, और गौर वर्ण था। इसकी नाक सीधी, आँखें बड़ीं और नुकीलीं, भौंहे तनी हुईं, ललाट उन्नत, और होंठ के ऊपर मूँछों की पतली रेखा थी। देखने में दोनों सुन्दर जान पड़ते थे, पर एक में सौन्दर्य की विशालता थी, दूसरे में लावण्य की शालीनता।

ये दोनों भिन्न भिन्न भाव से चारों ओर देखते हुए गढ़ के भीतर घुसे। थोड़ी दूर जाकर महलों के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही तातार के साथी के नथुनें कुछ फूले। नेत्र स्थिर हुए। भौंहें कुछ टेढ़ी हुईं। उसने गर्व के साथ गर्दन टेढ़ी करली, और दूसरी ओर देखता हुआ महलों के आगे से निकल गया।

और तातार?

खिड़की में बैठी हुई एक कामिनी की ओर टक टकी लगाये खड़ा रह गया। तातार की छाती सवेग फूलने और गिरने लगी। वह इस बात को भूल गया कि मैं कहाँ हूँ। उधर वह कामिनी उस गर्व-मूर्ति के तत्कालीन विशाल सौन्दर्य को देखने में उलझी हुई थी। कुछ मुस्करा रही थी। कुछ ईर्ष्या-दृष्टि से उस ओर देख रही थी। पर तातार को अपनी ओर इस प्रकार निहारते देखकर वह तुरन्त भीतर हो गई। तातार कुछ पग पीछे रह गया था। साथी को यह बात मालूम न थी। वह फिर उसके साथ हो लिया।

हाट में पहुँचने पर वहाँ की प्रधान प्रधान वस्तुओं के ऊपर चर्चा होने लगी। तातार लगभग सभी वस्तुओं की निन्दा कर रहा था, और दूसरा प्रायः सभी का आवेश के साथ पक्ष लेता था। और तातार प्रायः सभी को क्रमशः टालता जाता था। परन्तु स्त्रियों के ऊपर चर्चा होतेही तातार कुछ जोश के साथ उनके सौन्दर्य का बखान करता था, और दूसरा सुन सुनकर कुछ लजा जाता था।

इतने में ये दोनों मण्डप में पहुँच गये। राजा नरसिंह पहले से एक ऊँचे आसन पर आबैठा था। स्थान स्थान पर भाँति भाँति के खेलों के लिए जोड़ चुने जारहे थे। तातार ने वहाँ पहुँचकर राजा को प्रणाम किया और ऊँचे स्वर से कहा, "किसी खेल में कोई भी मेरा सामना करले।" राजा का सङ्केत पाते ही कई युवक और प्रौढ़ उसके सामने आये। बारी बारी से मल्लयुद्ध नक़ली असियुद्ध और फरी-गदका के खेल हुए, पर उस तातार से कोई भी न जीत पाया। उसका शरीर विकट था। गठन गठीली थी। केवल दो राजपूत और एक ब्राह्मण उससे जीते,—सो वे धनुर्विद्या, भल्लुक—प्रक्षेप, और दौड़ में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका कुछ भी विचार न करके उस अभिमानी तातार ने कहा, "जिन बातों में इन लोगों ने हमें जीता है वे बहुत महत्त्व की नहीं हैं। यदि कोई किसी और गुण का गुणी हो तो आवे मैं कभी पीछे नहीं हटूँगा।" तातार का साथी मनही मन उसकी प्रशंसा कर रहा था। उसके शरीर की मोटी मोटी नसें और अङ्गों की स्फूर्ति को देखकर वह उसके स्तुति-स्रोत में डुबकी लगा रहा था।

थोड़ी देर तक किसी को न आते देखकर, तातार ने बड़े अहंभाव से—अज्ञान से—अपने साथी के कान में जाकर कहा, "देख लिया तुम्हारे राजपूतों को। सब नामर्द ही निकले!" यह सुनते ही वह कुछ काँप गया। बिजली की सनसनी उसके सम्पूर्ण शरीर में दौड़ गई। अधर पल्लव फड़कने लगे। आकृति रक्तवर्ण हो गई। उसने अपनी तलवार पर हाथ रख कर गम्भीर स्वर से तातार के प्रति कहा, "इस्माइलबेग, यद्यपि तू एक बड़ी सेना का सेनापति है, पर बड़ा नीच है। मैं अपने देश से किसी कारणवश तेरे देश गुजरात में नौकरी के लिए गया। तूने मुझे एक अच्छे पद पर नियुक्त किया। परन्तु क्या मैं थोड़े से साम्पत्तिक लाभ के लिए अपने देश, अपनी जाति की निन्दा सुन सकता हूँ? मैं भी राजपूत हूँ। बतलाता हूँ तुझे मेरी जाति कैसी होती है। सामने आ।" यह कर चट उस राजपूत ने तलवार निकाली। दोनों सच्चे असियुद्ध में भिड़ गये। देर तक लड़ाई हुई, पर राजपूत ने असाधारण स्फूर्ति के साथ एक ऐसा वार किया कि तातार की तलवार के दो टूक हो गये।

राजपूत ने सदर्प कहा, "तातार देश में ऐसी ही तलवारें बनती हैं?"

"नहीं, यह एक तातार की भूल थी। तलवारें तातार देश में लोहे की नहीं आग की बनती हैं। किसी समय बतलाऊँगा।"

यह कहकर वह गमनोद्यत हुआ। राजपूत ने अपनी तलवार तातार को देकर कहा, "तुम्हारी धमकी को मैं अच्छी तरह समझता हूँ। मैं तुम्हें अपनी यह तलवार देता हूँ, और तुमको चिनौती देता हूँ कि जब तुम इसमें एक चिट्ठी बाँधकर किसी के हाथों भेज दोगे, मैं तुरन्त नियत स्थान और समय पर युद्ध के लिए आजाऊँगा। आग की धमकी देना वीर को नहीं शोभा देता। यदि कापुरुष हो तो उसकी भी कुछ चिन्ता नहीं है।"

तातार ने प्रणाम करके तलवार लेकर कहा, "श्रीमान् जैसी आज्ञा करते हैं, उसके पालन का यह सेवक प्रयत्न करेगा, परन्तु सावधान! मुझे केवल तुम्हीं से बदला नहीं लेना है किन्तु जिसके नयनबाण से आज पहलीही वार मेरा हृदय बिद्ध हुआ, उससे भी पूरा पूरा बदला चुकाना है।" उसने जाते जाते कहा, "तुम्हारी तलवार पर लिखा है 'एक वीर की तलवार', पर मैं इसको भी अन्यथा प्रमाणित करूँगा।" तातार सवेग वहाँ से चला गया। राजपूत ने उसकी अन्तिम बात पर अधिक ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वह एक और बात की उलझन में पड़ा हुआ था।

एक बुड्ढा कुछ देर से इस छद्मवेशी राजपूत की ओर अपनी धुँधली आँखें पोंछ पोंछ कर देख रहा था। अन्त में उसने प्रफुल्लगात होकर कहा, "बेटा अवतारसिंह! प्यारे अवतारसिंह!" और आकर उसके गले से लग गया।

(३)

आज गौरीगढ़ में स्तब्धता का राज्य है। केवल प्राचीर पर चतुर्दिक सैनिक लोग धीरे धीरे टहल रहे हैं। विकट अन्धकार छा रहा है। पर गढ़-निवासियों के हृदयों में वह निस्तब्धता नहीं है। क्योंकि गुजरात से आई हुई आठ सहस्र मुसलमान सेना गढ़ को घेरे पड़ी हुई है।

मुहम्मद तुग़लक के गोलमाल स्वभाव और उससे उत्पन्न होनेवाले तत्कालीन अन्धेरों का लाभ उठाकर गुजरात भी राज्यक्रान्ति में मिल गया। तुग़लक विद्रोह का झण्डा खड़ाकर, गुजरात का सूबेदार स्वाधीन सुलतान बन बैठा। अपने एक सेनापति द्वारा उत्साहित होने पर गुजरात के इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले सुल्तान ने दिग्विजय के लिए आठ सहस्र मनुष्यों की एक सेना इस्माइलबेग नामक सेनापति के नायकत्व में भेजी। इस्माइल ने गौरीगढ़ही का जीतना पहले पहले निश्चित किया! गौरीगढ़ में आज इस स्तब्धता का कारण यही चढ़ाई है।

और इसी कारण आज इस समय महलों के एक कमरे में थोड़े से अनुभवी योद्धागण स्थिर दृष्टि से भ्रूभङ्ग किये हुए अपने राजा के साथ बैठे हैं, वहाँ अवतारसिंह भी है। क्योंकि नरसिंह ने इसी को अपना प्रधान सेनापति नियत किया है। निस्तब्धता सलिल कभी कभी आन्दोलित हो जाता है। भाँति भाँति की मन्त्रणायें दी जा रही हैं। अन्त में वृद्ध राजपूतों ने भयानक आकृति, दृढ़ अधरपल्लव, निश्चल नेत्र और स्वर-भङ्ग करके कहा, "केसरिया बाना पहिनने के सिवा और कोई उपाय नहीं।" "हाँ, यही युक्त है कई स्थिर कण्ठों ने एक साथ कहा। उन लोगों की आँखों से विद्युत्प्रभा झरने लगी। शक्ति ने निर्बलता का दमन किया। आवेश ने स्फूर्ति के साथ वरण किया।

इतनेही में द्वारपाल पट में लिपटा हुआ एक लम्बा सा पदार्थ लाया।

राजा का सङ्केत पाकर अवतारसिंह ने वह अपने हाथ में लिया। पट हटाकर देखा कि वही 'एक वीर की तलवार' है। मूठ पर एक चिट्ठी भी बँधी हुई थी। झटपट चिट्ठी खोलकर पढ़ी। उसमें यह लिखा था:—

"घमण्डी राजपूत!

आज तुमको दिखलाने आया हूँ कि तातार में कैसी तलवार बनती है। यदि वचन के पक्के हो, तो महल के पूर्वीय फाटक से ठीक सौ पग की दूरी पर इसी समय मिलो।

तुम्हारे अहङ्कार को कभी न भूलनेवाला
इस्माइल।"

चिट्ठी पढ़कर सुनाई गई। सब सन्नाटे में आ गये। यहाँ तक ऐसे कठिन पहरे में तलवार कैसे आई? कौन लाया? दरबान ने परिचय दिया कि एक हृष्ट पुष्ट राजपूत दे गया। वही तलवार हाथ में लेकर अवतार खड़ा हो गया। अधीर होकर राजा से बोला, "शत्रु लोग भीतर आगये। शत्रुओं का सेनापति महलों के कहीं आसपास ही है। महलों की रक्षा कीजिए, नहीं तो हम लोगों का सर्वनाश होगा। मैं चुने हुए ३० राजपूत लेकर महलों में जाता हूँ, आप शेष सेना को लेकर शत्रु-दमन कीजिए।" यह कह कर अवतार कमरे के बाहर हो गया। राजा को इस बर्ताव पर कुछ क्रोध आया, पर सँभलकर उसे वही करना पड़ा जो समयोचित था।

(४)

अवतारसिंह उसी स्थान पर गया जहाँ के लिए तलवारवाली चिट्ठी में सङ्केत था। अन्धेरी रात थी। शत्रु चारों ओर थे, सम्पूर्ण नगर विपद में था। पर अवतार किसी बात का भी विचार न करके नियत स्थान पर नियत समय ही में गया। यदि उसी समय वहाँ न आता तो कायर कहलाता। कायर? राजपूत कायर असम्भव! इतना बड़ा अपमान उस समय का भारतवासी राजपूत नहीं सह सकता था। पर उसने वहाँ जाते ही क्या पाया? क्या पाता? शून्य निस्तब्धता का अखण्ड राज्य। राजपूत को क्रोध आया। उसे सब चालाकी मालूम हो गई। कपट जाल! उसने समझ लिया कि राज-महल से सेनापति को दूर करने का शत्रु इससे अच्छा उपाय कदाचित् न सोच पाता; क्योंकि खञ्जर लिये हुए कुछ मनुष्य उसके पास आ पहुँचे, और कुछ भले प्रयोजन से भी नहीं—कभी नहीं! पर असि-विद्याविशारद राजपूत ने 'एक वीर की तलवार' से उस अन्धकार में अपना मार्ग स्वच्छ किया, और बढ़ा हुआ सीधा रनवास की ओर चला गया। बाहर से उसने भारी कोलाहल सुना। भीतर से 'बचाओ', 'बचाओ' की ध्वनि आ रही थी। किवाड़ों को फाड़ने वाला शब्द हो रहा था। राजपूत का लाल रक्त कुछ इस प्रकार उबला कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसका अनुभव उसने पहले कभी नहीं किया था। नसें फड़क उठीं, कलेजा भभक उठा। आँखों से मानों अङ्गार बरसने लगे। शरीर रोमांचित हुआ। रोम काँटे हो गये। जो कट्टर कलाई तलवार को पकड़े हुई थी वही मूठ के हाथ तन्मय हो गई—कलाई में और मूठ में सौहृद भाव संस्थापित हुआ। छाती में वज्रता आई। दाँतों की पंक्ति एक दूसरे से जाकर बार बार टकराने लगी। सम्पूर्ण शरीर से मानो अग्निवर्षा होने लगी। राजपूत के मन में यह विचार आते ही, कि अत्याचारी विवेक-हीन अरिसमुदाय—रनवास में जा घुसा है, उसकी ऐसी दशा हो गई। राजपूत को अनुभव होने लगा कि पवन मण्डल में बिना पंखों के उड़ सकता है, अपनी तलवार से पर्वतों के टुकड़े कर सकता है। उसे जान पड़ा कि उसके भुजदण्डों में प्रचण्ड बल आ गया है, अमोघ शक्ति समा गई है। ऐसा जान पड़ता था मानो पवन-तनय समुद्र उल्लंघन करना चाहते हैं। सो राजपूत अनिर्वचनीय वेग के साथ एक छोटी सी दीवार और अन्य रुकावटें पार करता हुआ एक दूसरे गुप्त मार्ग से धड़धड़ाता हुआ—जैसे किसी स्थान पर सनसनाता हुआ गोला पहुँचता है—रङ्गभूमि पर जा पहुँचा। देखा कि आँगन में सैनिक खचाखच भरे हैं; नये नये द्वार से आ रहे हैं; एक बहुत छोटी सी तिरछी गली में एक नवयुवक छोटी सी तलवार लिये आगन्तुकों का विकट स्वागत कर रहा है; मुग्ध होकर सब वहीं रह जाते हैं; ऊपर बहुतेरी स्त्रियाँ तीर कमान से शत्रु के स्वागत का दूसरा सामान कर रही हैं; भीतर कुछ रमणी गण चीत्कार कर रही हैं। लड़ाकू वीर ने पीछे से किसी को आता देख तलवार इस ढँग से घुमाई कि उसके वार ने राजपूत की जीवनलीला का वहीं संवरण कर दिया होता। पर राजपूत ने तुरन्त कहा, "अवतारसिंह, सेनापति अवतारसिंह।" लड़ाकू वीर का हाथ कुछ शिथिल हुआ, अङ्ग ढीला पड़ा, और ध्यान कहीं और फँस गया—इतने में एक शत्रु की तलवार ने उसकी कलाई पर वार किया। तलवार धराशायिनी हुई। पर अवतार ने बढ़ कर शत्रु का वहीं काम तमाम कर दिया। और फिर तो वह ऐसी फूर्ति के साथ कस कस कर वार करने लगा कि शत्रु-संख्या धीरे धीरे न्यून होने लगी।

उस गली के दोनों ओर दालानें थीं। वहाँ से और दूसरे कमरों को मार्ग गया था। भीतर से दीपक का टिमटिमाता हुआ प्रकाश आ रहा था। उसमें अवतार ने देखा कि युवक अतीव सुन्दर और रूपवान है। उसकी मन ही मन प्रशंसा कर, लड़ते लड़ते कहा, "आपके हाथ में चोट आ गई है?" युवक ने गर्दन कुछ मोड़ कर कहा, "नहीं, राजपूत ऐसे घावों की चिन्ता नहीं करता। पर आप बतलाइए कि ऐसे कठोर व्रत में अकेले ही क्यों दीक्षित हुए?"

युवक का कण्ठ स्वर्गीय माधुर्य का परिचय दे रहा था।

अवतार ने खिले हुए कण्ठ से कुछ त्वेष के साथ कहा, "स्त्रियों की रक्षा से बढ़ कर कौन सा विचार ऐसे व्रत में दीक्षित होने की उत्तेजना दे सकता है?"

अवतार बार बार युवक को प्यासी दृष्टि से देखने लगा।

युवक—"मातृभूमि की रक्षा का विचार भी नहीं?" अवतार बिचारा इस प्रश्न को अच्छी तरह न समझ सका। युवक ने तुरन्त कहा, "स्त्रियों का इतना आदर क्यों?"

इतने ही में शत्रु पीछे से भी आ पहुँचे। दूसरे युवक ने तुरन्त अपना मोर्चा जमा लिया, और नवागन्तुकों के रेल पेल का दमन करने लगा।

अवतार ने लड़ते लड़ते अचकचा कर पूछा, "फिर आप ही क्यों स्त्रियों के लिए इतना कष्ट उठा रहे हैं?"

"इसलिए कि यहाँ मेरी एक प्रेमिका है।" अवतार ठण्डी साँस भर कर चुप हो गया।

युवक ने फिर पूछा, "आप स्त्रियों की पुकार सुनते ही दौड़े आये?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ" अवतार ने बहुत दर्प के साथ कहा "हाँ, क्या स्त्रियों की पुकार सुन कर चुप रह जाता ?"

फिर और भी आवेश में आकर बोला, "मैं इस समय यहाँ मरनेही के लिए आया हूँ। स्त्रियों, भाई-बन्धुओं, और अपने राजा के लिए जो मरना नहीं जानता उस पामर के लिए नरक में भी स्थान नहीं। स्त्रियों के लिए प्राणविसर्जन करने में यश है। पवित्रता पर न्योछावर होने में कीर्ति है। उनके लिए मैं अपने तन के करोड़ करोड़ खण्ड करा सकता हूँ। स्त्रियों की रक्षा कर्तव्य है, धर्म है। स्त्रियाँ मनुष्यों की अपेक्षा बहुत पवित्र, बुद्धिमती, सच्ची और धर्मशीला होती हैं। वे स्वर्ग के बहुत निकट हैं। उनके लिए क्यों प्राण न दूँगा! मेरी माता मुझे बहुत प्रिय थीं। उसी तरह यहाँ पर भी मेरी अनेक मातायें होगीं।" फिर एक ठण्डी साँस लेकर धीरे से कहा, "परन्तु स्त्रियों में हठ बहुत होता है। किन्तु मनुष्यों में भी जड़ता और मूर्खता कुछ कम नहीं होती।"

इतने में अवतार के ऊपर एक शत्रु ने विकट वार किया। उसका टोप फट गया। पर सिर बच गया। अवतार ने शत्रु को पहिचान कर तुरन्त अत्यन्त आवेश के साथ कहा, "नीच पामर इस्माइल! झूठे! तुझे लज्जा नहीं आती।" इस्माइल ने स्वर भङ्ग कर कहा, "लज्जा! सलज्ज राजपूत, मैं तेरी प्रशंसा करूँगा, निसन्देह मैंने तेरे साथ छल किया। पर मेरा पतन एक रमणी ने किया है। अवतार, तू इस बात को नहीं जानता। अपनी वही 'एक वीर की तलवार' जो निस्संशय इस समय तेरे हाथ में है, मेरे सीने में घुसेड़ दे। फिर निकाल कर देखना। उस पर एक सुन्दरी की मूर्ति खचित होगी।" तातार का गला भर आया। अवतार ने झड़क कर कहा, "पापी! बलात्कार करने आया था? यह ले।" पर वार चूक गया। इस्माइल ने बिना वार किये, "बलात्कार! राजकुमारी के साथ बलात्कार! इस्माइल इतना पापी नहीं है। विधि-विहित विवाह करेगा।"

वहीं पर एक और सुन्दर राजपूत युवक उपस्थित था। उसने ज्वलित नेत्रों से तातार की ओर देखा। इतने में अवतार के भी शरीर में सनसनी दौड़ गई। उसने एक ही वार में उस तातार का काम तमाम कर दिया। सम्पूर्ण सेना में कोलाहल मच गया। पर युद्ध बन्द नहीं हुआ। दूसरे सुन्दर राजपूत युवक ने अवतार से पूछा, "यह कौन था।"

"यवन सेनापति"।

"हाँ, तो आप स्त्रियों को बहुत नीच नहीं समझते?" "नीच? वह स्वयं नीच होगा जो उन्हें नीच समझे।" फिर एक ठण्डी साँस लेकर उसने कहा, "एक बार मेरी.....मेरे.....एक मेरे परिचित ने मुझे यह बात समझाने की चेष्टा की थी, पर उस समय मूढ़तावश नहीं समझ सका। अब सब समझ रहा हूँ। अनुभव कर रहा हूँ।" फिर पुलकित होकर कहा, "समाज और देश स्त्रियों की उचित प्रतिष्ठा पर ही टिका रहता है। पर मैंने उस समय न समझा!"

अवतार असाधारण छातीवाला था। लड़ता जाता था और बात चीत भी करता जाता था। दूसरा राजपूत युवक भी क्या कुछ कम था?

इतने में मशालें लिये हुए राजपूत सेना आ पहुँची। शत्रु पहले ही सैकड़ों मारे जा चुके थे। सरदार निहत हो गया था। पर शेष मुसलमान सेना ने हथियार नहीं रक्खे। घोड़ों के सिवा सभी मरते दम तक लड़े।

लड़ाई बन्द होने पर दूसरे राजपूत युवक ने अपनी तलवार फेंक दी, जाकर अवतार के गले चिपट गया।

रुँधे हुए कण्ठ से उसने कहा, "तुमने आज मेरे ऊपर विजय पाई।"

अवतार ने अचकचा कर कहा, "क्या?"

"तुम ने आज क्षत्रियत्व में परीक्षोत्तीर्ण होकर सुकेशी पर विजय पाई।"

"क्या प्यारी सुकेशी?" कह कर अवतार भी उसके गले लग गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति पुरुष से मिली और पुरुष प्रकृति से।

राजा ने आकर इस संयोग को स्वीकार कर लिया; क्योंकि अकेले ही अवतार ने ऐसा भीम कर्म किया था जो अच्छे अच्छे भी न कर पाते। सब लोगों ने इस जोड़ी को आशीर्वाद दिया।

वृन्दावनलाल वर्म्मा।

सिद्धराज जयसिंह का एक अपूर्व न्याय।

अन्हलपुर पट्टन के महाराजाधिराज सिद्धराज जयसिंह बड़े धार्मिक और न्यायी राजा थे; परन्तु चारण भाटों ने अपनी ग्रन्थ-रचना की शैली के अनुसार उनकी ऐसी ऐसी कल्पित कथायें अपने ग्रन्थों में लिखी हैं जिनसे निन्दा और अवगुण के सिवा और कोई अच्छी बात पढ़नेवालों के ध्यान में नहीं आती। न्याय, नीति वा राज्य-प्रबन्ध की एक भी सही बात नहीं लिखी है।

परमेश्वर "जामेउलहिकायत" جامع الحكايات नाम तवारीख़ के कर्ता मोहम्मद औफ़ी محمد عوفی का भला करे कि उसने मुसलमान होकर भी सिद्धराज जयसिंह के न्याय का ऐसा सच्चा उदाहरण लिखा है जो न मुसलमानों के इतिहास में देखा गया है और न किसी के। इससे स्पष्ट जाना जाता है कि हिन्दू राजा कैसे न्यायी और निष्पक्षपाती होते थे, परन्तु अभाग्यवश उनको अच्छे इतिहास-लेखक नहीं मिले।

मोहम्मद औफ़ी लिखता है कि "मैंने इस बात से अच्छी और बात नहीं सुनी है; मैं एक बेर संभात गया था जहाँ बहुत से सुन्नी मुसलमान रहते थे। मैंने उनसे सुना की यह शहर नहरवाले और गुजरात के राजा जयसिंह के अधिकार में था। उस समय मुसलमानों और आग पूजनेवालों (पारसियों) की बड़ी बस्ती थी। मुसलमानों की एक मसजिद थी और उसके पास एक लाट भी थी जिस पर खड़ा होकर मुल्ला बाँग देता था। आग पूजने वालों ने विधर्मियों को बहकाया जिन्होंने वह मीनार तोड़ डाली और मसजिद भी जला दी। इस झगड़े में ८० मुसलमान मारे गये। मसजिद का ख़तीब (उपदेशक) क़ुतुबअली था वह बच कर नहरवाले में गया और वहाँ पुकारा; परन्तु राजा के दरबारियों में से किसी ने भी उसकी पुकार पर कान नहीं दिया और न कुछ सहायता की क्योंकि हर एक दरबारी अपने धर्मवालों के बचाव का पक्ष कर रहा था। क़ुतुबअली ने सुना कि राजा शिकार को जानेवाला है। वह जंगल में जाकर उसके रास्ते पर एक पेड़ के नीचे बैठ गया जब राजा उधर होकर निकला तो क़ुतुबअली ने खड़े होकर अरज़ की कि 'हज़र! हाथी को ठहरा कर जो मेरी पुकार है वह सुन लें'। राजा ने हाथी रोक दिया। क़ुतुबअली ने हिन्दी में एक कविता बनाई थी, उसमें वह सब हाल आ गया था, वही उसने राजा के हाथ में दे दी। राजा ने पढ़ कर अपने एक नौकर को हुक्म दिया कि इसको सावधानी से अपने पास रक्खो और जब मैं कहूँ दरबार में ले आओ। राजा यह कर लौट गया और मंत्री को बुलाकर कहने लगा कि तुम राज के सारे काम करते रहना मैं ३ दिन तक ज़नाने में रहूँगा; इस बीच में किसी राज-काज के लिए मुझे कष्ट न देना।

फिर राजा उसी रात को व्यापारियों के भेष में एक साँड़नी पर सवार होकर खंभात को चल दिया। एक दिन और रात में ४० फरसंग (१२० मील) चल कर वहाँ पहुँचा और एक एक गली कूँचे में फिर कर क़ुतुबअली की पुकार का हाल टटोलता रहा। जब ख़ूब निश्चय हो गया कि मुस-

---

* यह ग्रंथ संवत् १२६८ के लगभग सुलतान-शमुसुद्दीन एलतमश के राज्य में बना है। उस समय सिद्धराज जयसिंह को प्रायः ३०० वर्ष बीत चुके थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लमानों पर बड़ा अन्याय हुआ है और वे मारे गये हैं तो एक बरतन में समुद्र का पानी भर कर नहरवाले को लौटा और तीसरी रात को पहुँच गया। तड़के ही दरबार किया और कुतुबअली को बुला कर फ़रमाया कि तुम अपना सारा हाल कहो। उसने सांगोपांग कह सुनाया। जब विधर्मी दरबारियों ने चाहा कि उसे धमकायें और झूठा बनायें तब राजा ने अपने पानीवाले को हुक्म दिया कि वह पानी दरबारवालों को दे दे कि उसमें से थोड़ा थोड़ा पीयें। हरएक ने पीना चाहा, पर चख कर छोड़ दिया और जान लिया कि समुद्र का पानी है, पीने योग्य नहीं। राजा ने कहा कि इस मामले में न्यारे न्यारे धर्म के लोग एक दूसरे से गठे हुए थे इसलिए मैंने किसी का भरोसा नहीं किया और स्वयं खंभात में जाकर सब बातों की खोज की तो मालूम हुआ कि मुसलमानों पर वास्तव में ज़ुल्म हुआ है। फिर उसने कहा कि मेरा यह धर्म है कि अपनी सब प्रजा की देख भाल रक्खूँ और उनकी ऐसी रक्षा करूँ कि सब सुख से रह सकें। फिर उसने हुक्म दिया कि विधर्मियों अर्थात् ब्राह्मणों, आग पूजनेवालों, और दूसरी जातिवालों में से २।२ आदमियों को दण्ड दिया जावे।

फिर राजा ने ख़तीब को कुछ बालोतरे (रुपये) उस लाट और मसजिद के फिर बनाने के लिए दिये और ४ पारचे का ख़िलअत भी दिया जिसके कपड़े अब तक रक्खे हुए हैं और किसी बड़े त्योहार के दिन दिखाये जाते हैं।

देवीप्रसाद।

धृतराष्ट्र का द्रौपदी को वरदान।

(१)

खींचा खल दुःशासन ने जब अन्तरहित द्रौपदी-दुकूल,
हाली विदुरादिकने उस पर सभा मध्य धिक्करूपी धूल।
तब राजा धृतराष्ट्र शोक से मन में बहुत अधीर हुए,
यह दुर्दृश्य बिना देखे भी उनके नेत्र सनीर हुए॥

(२)

पुत्र-विवश होने पर भी वे इस अनीति को सह न सके,
उन नीचात्माओं की निन्दा किये बिना वे रह न सके।
स्वार्थीजन यद्यपि न चित्त में ध्यान धर्म्म का धरते हैं,
किन्तु लोक-निन्दा से वे भी एक बार तो डरते हैं॥

(३)

कहती हुई दीन वाणी त्यों सहती हुई व्यथा भारी,
बहती हुई शोक-सरिता में प्रिया पाण्डवों की प्यारी।
पाञ्चाली को निकट बुलाकर उसे उन्होंने धैर्य्य दिया,
और बहुत आश्वासन देकर किसीतरह कुछ शान्त किया॥

(४)

"मेरी सब बहुओं में कृष्णे! तू सर्वोपरि प्यारी है,
रूप शील गुण गुरुतादिक में तू सबसे ही न्यारी है।
सुनने पड़े मुझे सम्मुख ही कातर वचन हाय! तेरे,
क्यों न दृष्टि के साथ श्रवण भी नष्ट किये विधि ने मेरे!

(५)

"दुर्योधन-दुःशासनादि का महा अभागी पापी तात,
लज्जित होता हूँ मैं तुझसे कहते हुए आज कुछ बात।
किन्तु दया कर हेकल्याणी! निज आदर्श शील को सोच
मुझे शान्ति देने को कुछ भी माँग बहू! तू निस्सङ्कोच"॥

(६)

सुनकर उनके वचन द्रौपदी गद्गद हुई, न बोल सकी,
कहने की इच्छा रहते भी विवश न वह मुँह खोल सकी।
द्रवित हुए कुरुनाथ जानकर और अधिक उसको रोता
कोई हो वृद्धावस्था में कुछ फिर भी सहृदय होता॥

(७)

खड़ी हुई लज्जित सिमटी सी निश्चल नीचा वदन किये
बड़े बड़े आँसू टपकाती दीनों का सा भाव लिये।
हाथ जोड़कर बोली कृष्णा जब करुणा कुछ शान्त हुई,
उस कल्याणी की वह वाणी सविनय सरल नितान्त हुई॥

(८)

"तात! तुम्हारी अनुकम्पा ही बहुत मानती हूँ मन में,
होऊँगी मैं तुष्ट तुम्हारी आज्ञा ही के पालन में।
फिर भी जो वर ही देना है तो बस मुझे यही दीजे—
पराधीनता के बन्धन से मुक्त पाण्डवों को कीजे?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(९)

'एवमस्तु' कहकर तब नृपने फिरउससे इसभाँतिकहा,
"माँग और भी जो जी चाहे धीरज धर आँसू न बहा।
दासी-दास राज्य रत्नादिक सब कुछ लौटा दूँगा मैं,
जीती हुई शकुनि के द्वारा वस्तु न कोई लूँगा मैं॥"

(१०)

तब राज्यादिक को न माँगकर बोली यों उनसे कृष्णा—
"मुझे और कुछनहीं माँगना अच्छी नहीं अधिकतृष्णा।
जो पुरुषों में पौरुष होगा तो सब कुछ हो जावेगा,
तात! अन्यथा यह भिक्षा का वैभव फिर खो जावेगा!"

मैथिलीशरण गुप्त।

सतसई-संहार।

[गतांक से आगे]

२६—ले चुभकी चलिजात तित, जित जलकेलि अधीर।
कीजत केसरनीरसों, तित तित केसरनीर॥५५१॥

"प्रिया जल में गोता मार कर जिधर तिधर चली जाती है, और जलकेलि में अधी हो रही है, अपने शरीर में लगे केशर के नीर सों जिधर तिधर केशर का नीर करती है "धर्मलुप्तालंकार"

(पृ० १८०)

धर्मलुप्तालङ्कार (?) क्या इसे तो 'सर्वलुप्तालङ्कार' (?) या 'सर्वनाशालङ्कार' (?) कहें तो ठीक है।

".....जिधर तिधर चली जाती है और जलकेलि में अधी (अंधी?) हो रही है".....आपकी लेखनी भी अर्थ करने में अंधी हो रही है और अनर्थ के कीचड़ में लिपटी हुई जिधर तिधर चली जाती है, उधर उधर ही विहारी की काव्यवापी को गदला कर देती है! उसमें कीचड़ घोल कर अपेय बना देती है। रसमें विष घोलना इसेही कहते हैं! बनी को बिगाड़ना इसी का नाम है!

विद्यावारिधिजी! "धर्मलुप्तालङ्कार" कैसा होता है! यह आपने कौन से साहित्य में पढ़ा; या देखा है? मालूम होता है 'मतबअ इलाही'—नामक लेथो प्रेस की छपी अशुद्धप्राय 'लालचन्द्रिका' से ये अलङ्कार आपने उड़ाये हैं, उसमें जो शुद्ध अशुद्ध लिखा है, उसे आप आँख मीच कर नक़ल करते गये हैं, यह "धर्मलुप्तालङ्कार" भी उक्त पुस्तक के १४९ पृष्ठ पर है, वहीं से ज्यों का त्यों उठाकर आपने रख दिया है, इस नाम का कोई अलङ्कार होता भी है या नहीं, यह जानने की आपने ज़रूरत नहीं समझी, न मालूम वे अन्य कई सतसई, जो आपने टीका करते समय सन्मुख (?) रक्खी थीं, क्या करती रहीं! उन्हें आपने ज़रा भी तकलीफ़ नहीं दी। यदि सचमुच ही उन्हें आपने सामने रक्खा था तो चाहिए था कि कहीं तो उनसे काम लेते! बुद्धि पर ज़ोर डाल कर समझने की कोशिश करते, समझ में न आता किसी से पूछते, इतने पर भी यदि बुद्धि काम न देती, कुछ न समझ पड़ता, तो जाने देते, कोई मजबूर तो नहीं करता था कि आप सतसई पर ज़रूर ही टीका लिख कर पाँचों सवारों में नाम लिखावें! पाठकवृन्द! आठ प्रकार की 'लुप्तोपमा' होती है, उन्हीं में एक "धर्मलुप्तोपमा" है, जैसा कि 'कुवलयानन्द' में लिखा है। यथा:—

"वर्ण्योपमानधर्माणामुपमावाचकस्य च।
एकद्वित्र्यनुपादानैर्भिन्ना लुप्तोपमाऽष्टधा॥

इसी का अनुवाद यह "भाषा-भूषण" में दिया है:—

"वाचक धर्मरु वर्ननिय है चौथो उपमान।
एकबिन द्वैबिन तीनि बिन 'लुप्तोपमा' प्रमान॥"

इसी "धर्मलुप्तोपमा" को आपने "धर्मलुप्तालङ्कार" (?) लिखा है! इस शार्टहैंडराइटिंग या मुख़्तसिर-नवीसी का कुछ ठिकाना है! अलङ्कार से अधिक आपने अर्थ की दुर्दशा की है, 'मतबअ-इलाही' वाली लालचन्द्रिका से आपने 'धर्मलुप्तालङ्कार' तो उठा लिया, पर उसका अर्थ छोड़ दिया! यदि उसे भी लेलेते तो "..... .....जल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केलि में अंधी हो रही है, अपने शरीर में लगे केशर के नीरसों जिधर तिधर केशर का नीर करती है" यह महाविचित्रता तो न आती! जलकेलि में अधी (अंधी?) हो रही है तभी तो 'जिधर तिधर' चली जाती है, बेचारी को सूझता नहीं कि किधर जाना है! उसके (प्रिया के?) शरीर में 'केशर का नीर' वारिधिजी ने अपनी ओर से लगा दिया? जिससे वह 'जिधर तिधर केशर का नीर' कर रही है!!! वहाँ (४९० दो० की टीका में) तो श्रीमान् ने जमना के नीले जल पर नीले आँचल का तम्बू ताना था, यहाँ प्रिया के केशरकान्ति गौर शरीर पर, 'केशर का नीर' लपेट कर "जिधर तिधर केशर का नीर" करा दिया! इतने पर भी यदि 'रसीली' सतसई 'अति ललित मधुर मुग्ध' अलङ्कारों से "सर्वाङ्गभूषित" होकर घर घर न विराजे तो वारिधिजी का क्या अपराध! अस्तु।

उक्त दोहे की लालचन्द्रिका :—

"सखी का वचन सखी से। मार के गोता चली जाती है नायका तिधर, जिधर जलकेलि का अधीर नायक है। करती है केसर का पानीसा तिधर तालाव के पानी को। यमक और धर्मलुप्तोपमालङ्कार। केसर केसर, यमक। केसर-नीर, उपमान, सर-नीर उपमेय, से वाचक। रंग धर्म नहीं।" (ग्रियर्सन-सम्पादित लालचन्द्रिका)

हरिप्रकाश, विहारीविहार, तथा 'अनवरचन्द्रिका' इत्यादि पुस्तकों में उक्त दोहे का पाठ इस प्रकार है :—

"लै चुभकी चलि जाति जित जित जलकेलि अधीर।
कीजत केसर नीर से तित तित केसर नीर॥"

इस दशा में यह अर्थ होगा—

जलविहार में चञ्चल नायिका, चुभकी = डुबकी (गोता) मार कर, जहाँ जहाँ चली जाती है, वहीं वहीं के, सर = तालाब के जल को अपनी अङ्गकान्ति से केशर के नीर तुल्य बना देती है।

जलमग्न नायिका के शरीर की कान्ति से सर-नीर, केशरजल के तुल्य प्रतीत होने लगता है, कान्तिच्छटा को जल छिपा नहीं सकता, वह उससे रँगा जाकर केशर के पानी सरीखा दीखने लगता है! जल की स्वच्छता और उससे कहीं अधिक शरीर-कान्ति प्रशंसनीय है!!

विहारीलालजी के मत में तो नायिका के शरीर की कान्ति से तालाब का पानी केसररंग का प्रतीत होता है और श्रीमान् वारिधिजी उसे "शरीर में लिपटी हुई केसर" छुड़ा कर रँग रहे हैं!! दोनों में कितना सादृश्य है! कैसी अच्छी टीका है! क्या विचित्र भाव है! सहृदय काव्यज्ञ विचारें कि विद्यावारिधिजी के इस अर्थ की विद्यमानता में भी क्या यह दोहा, विहारी का दोहा कहला सकता है! और इसे काव्य कह सकते हैं!!!

२७—बैठि रही अति सघनवन, पैठि सदन मन माँहि।
निरखि दुपहरी जेठ की, छाहौं चाहत छाँहि। ५७०

"अतिघने वन में, अथवा मनरूपी घर में बैठ-रहीं जेठ की दुपहरी देखकर छांह भी छाँह चाहती है वृक्ष के नीचे छांह मानों दुपहरी देखकर आती है आशय यह कि, ज्येष्ठ में सघनवन या मनके भीतरही छांह मिल सकती है "हेतूत्प्रेक्षा" (पृ० १८६)

श्रीमान् विद्यावारिधिजी के यहाँ तन और मन में कोई भेद नहीं, वह इन दोनों को एकही समझते हैं। मन का तन, और तन का मन कर देना, आप के बायें हाथ का काम है। "चितवन भोरेभायकी" इत्यादि, ३१२ दोहे की टीका में "यह बात नित्य मेरे शरीर में आनकर खटकती है" लिखकर आपने 'चित' का अर्थ 'शरीर' बतलाया है, और यहाँ "पैठि सदन तनमाहिँ" को "……मन माहिँ" बनाकर "मनरूपी घर में बैठ रहीं" फ़र्मा दिया! न जाने ये कौन हैं, जो मनरूपी घर में बैठ रहीं? इन्हें क्या कहीं और बैठने को जगह नहीं मिली?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आशय तो आप ऐसा खोलते हैं कि 'बावन तोले पाव रत्ती'! देखिए न क्या अच्छा आशय है:—"आशय यह कि, ज्येष्ठ में सघन वन या मन के भीतरही छांह मिल सकती है"—

क्यों महाराज! ज्येष्ठ में और कहीं छाँह नहीं मिल सकती! तहख़ानों, पटेहुए मकानों और पहाड़ों की गुफाओं में भी नहीं मिल सकती! और तो ख़ैर जो है सो है ही, पर यह "मन के भीतरही छाँह मिल सकती है" किस सायंस या फ़िलासफ़ी में लिखा है! छाँह ने भी चलते चलते क्या जगह ढूँढी है! सब स्थानों को छोड़कर छाँह भी मन में ही रहने लगी!

हर्ष, शोक, चिन्ता इत्यादि तो मन में रहतेही थे, अब छाँह भी वहीं पहुँच गई, अच्छाही हुआ, श्रीमान् वारिधिजी के आशयानुसार, अब ज्येष्ठ के महीने में किसी के भी मन में सन्ताप न रहना चाहिए! छाया के नीचे सन्ताप का क्या काम? यदि आपकी टीका के प्रसाद से वर्ष भर में एक महीना भी शोक, चिन्तादि के सन्ताप से लोगों के मन बचे रहें तो इसे परमलाभही समझना चाहिए! उक्त दोहे का भाव यह है कि:—

ज्येष्ठ मास की जलती हुई दुपहरी (मध्याह्न) से घबराकर छाँह भी मानों छाँह चाहती है! इसीलिए वह अत्यन्त सघनवन में छिपती है, और मकानों के अन्दर घुसती है, शरीर के तले आश्रय ढूँढती है। मध्याह्न के समय शरीर की छाया पैरों पर आजाती है। जब घबराकर स्वयं छाया भी छाया को ढूँढने लगे तो उस गरमी का क्या ठिकाना है! कैसा अद्भुत वर्णन है! क्याही अच्छी अत्युक्ति है!!

"सदन तन माहिँ" का अर्थ श्रीलल्लूलालजी ने "शरीर रूपी घर में" किया है, और हरिकवि ने "सदन=घर में और तन=शरीर में" इस प्रकार पृथक् पृथक् किया है।

अनवरचन्द्रिका, हरिप्रकाश, विहारीविहार, कृष्णदत्तकवि की टीका, शृङ्गारसप्तशती, और लालचन्द्रिका, इन सब पुस्तकों में "सदन तन माहिँ" यही पाठ है, केवल "रसचन्द्रिका" में "सदन मन माह" ऐसा पाठ है, पर वहाँ भी मन का अर्थ (उत्प्रेक्षाव्यञ्जक) "मानो" करके "हेतूत्प्रेक्षालङ्कार" माना है। "मनरूपी घर में" यह महाविचित्र अर्थ तथा ".....ज्येष्ठ में.....मन के भीतरही छाँह मिल सकती है—" ऐसा अलौकिक आशय 'विद्वद्वृन्दशिरोमणि' विद्यावारिधिजी के सिवा और कौन बतला सकता है! पाठकों को याद होगा "मनुससिसेखर की अकस" दोहे की टीका में भी वारिधिजी ने "मनु" का अर्थ "शिवजी का मन" किया है, इस "मनु" शब्द ने तो मानों वारिधिजी को धोखा देने का ठेका ले लिया है!

विद्यावारिधिजी! आपने तो भूमिका में घोषणा की है कि "आज़मशाही संग्रह के अनुरूप लल्लूलालजी संगृहीत दोहों का अनुसरण करके इस टीके को निर्माण किया है"—

फिर आपके टीकास्थ मूलपाठ में यह कमबख़्त 'मन' आपको छलने के लिए कहाँ से आ कूदा? "लालचन्द्रिका" में तो "सदन तन माहिँ" यही पाठ है न? क्यों महाराज!

२८—हठ न हठीली कर सकै, इहि पावस ऋतु पाय।
आन गाँठि छुटि-जाय त्यों, मान गाँठि छुटिजाय॥५७४

"इस पावस ऋतु को प्राप्त करके हठीली हठ नहीं कर सकती। पावस (वर्षा) को पाकर जैसे और गाँठ छुट जाती है इसी प्रकार मान गाँठ भी छुट जाती है "विभावनालङ्कार" (पृ० १८७)

विद्यावारिधिजी के हक़ में यह अच्छा होता कि वह अलङ्कारनिर्देश की नक़ल न करते, उस दशा में उनकी बहुत सी पोल छिपी रहती, अब उन्हें दो फ़रियादियों से पिण्ड छुड़ाना कठिन हो रहा है, एक चुप रहता है, तो दूसरा बोल उठता है, और दूसरी ख़ामोश रहता है तो पहला चुग़ली कर देता है! "जो चुप रहेगी ज़ुबानेख़ञ्जर तो ख़ूं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुकारेगा आस्तीं का"—फ़ारसी में एक कहावत है—"गवैया कुछ और गाता है और सरंगी कुछ और बोलती है" इसी प्रकार हमारे वारिधिजी महाराज अर्थ कुछ करते हैं और अलङ्कार कुछ लिख देते हैं! जिस प्रकार यदि कोई मनुष्य, किसी के अलङ्कार = आभूषण बलात् छीन ले, या मालिक की अनुपस्थिति में चुरा ले, तो वह उन भूषणों का मूल्य या प्राप्तिस्थान नहीं बतला सकता, और यदि वह अपहर्ता नितान्त अनभिज्ञ हो तो किस अलङ्कार को कहाँ धारण करना चाहिए, अमुक अलङ्कार का क्या नाम है? यह भी नहीं जान सकता। इसी प्रकार बिना सोचे समझे नक़ल करनेवाले, लेभगू टीकाकार या ग्रन्थकार लोगों की भी दशा है। कहा तो करते हैं कि 'नक़ल करने में अक़्ल की ज़रूरत नहीं' पर वारिधिजी ने अपने दृष्टान्त से सिद्ध कर दिया है कि नक़ल करने के लिए बड़ी अक़्ल चाहिए, अन्यथा बिना सोचे समझे अंधाधुंध नक़ल करनेवालों की वही दशा होती है जो हमारे 'अतिललित मधुर मुग्ध टीकाकार' की यत्र तत्र हो रही है! पाठ बदल गया, अर्थ का अनर्थ हो गया, जिसके गले में वह अलङ्कार पड़ा था वह (कविता) जल भुन कर राख हो गई, पर अलङ्कार ज्यों का त्यों बना हुआ है! उसे ज़रा भी आँच नहीं आई! न वह टूटा फूटा, न गला न पिघला! लड़का मर गया, पर बावाजी का गंडा नहीं टूटा!! इस अच्छेद्य, अभेद्य, अविकार्य, अलौकिक अलङ्कार को शत वार धन्य है! और इसे कविता की चिता से निकाल कर पब्लिक में पेश करनेवाले टीकाकार साहब की हिम्मत को हज़ार वार धन्य है!!

हा! वज्रमयि विभावने! टीकाचितायामनर्थाग्निना भस्मीभूय नामशेषतामुपगतायां स्वाधारभूतायां कविताकामिन्यां, कथ त्वमपि तया सह तत्रैव न विलीना! तादृशप्रियजनविरहिता त्वं मुखमुपदर्शयन्ती किं न जिहेषि! एवं गतेपि जीवन्तीं त्वां करुणा लज्जा वा न विरुणद्धि! जडहृदये! क्वनु तादृशं कान्तिकमनीयं स्वाधारभूतं कण्ठमपरत्र प्राप्स्यसि! धिक् ते प्रियवियुक्ताया जिजीविषाम्!

अयि विद्यावारिधिमहाशय! तिष्ठत्वचेतना वराकी विभावना, भवान् हि 'विद्वद्वृन्दशिरोमणि' रपि भूत्वा कथं नाम नाशङ्कसे विलज्जसे वाऽसदृशं समाचरन्! एष हि क्षते क्षारनिक्षेपो यत्परलोकमुपगतस्य प्रियजनस्यालङ्करादिकं प्रदर्श्य शोकोद्दीपनं नाम!!

सहृदय गण! उक्त स्वर्गीय दोहे का पाठ और अर्थ इस प्रकार था :—

"हठ न हठीली करि सकै इहिं पावस ऋतु पाय।
आन गांठि घुटि जाय त्यौं मान गाँठि छुटि जाय॥"

"सखी का वचन मानवती नायका से, कै कवि की उक्ति। हे हठीली स्त्री, हठ नहीं कर सकती, कै हठीली नायका हठ नहीं कर सकती, यह पावस की ऋतु पाकर। ज्यौं और गाँठ घुट जाय है, त्यौं मान गाँठ छुट जाती है पावस में। विभावनालङ्कार। विरुद्ध से काज। घुटने के कारण से गाँठ छुटना काज हुआ॥" (लालचन्द्रिका)

"हठ न इति। मानिनी सौं सखीवचन—

हठीली जे है नायिका सेा हठ नहीं कर सकति है, नायक सौं, यह नवजोबन है और पावस वर्षा ऋतु है ताकों पाय कैं, वर्षा में ज्यों = जैसे आन गाँठि = सन की मूँज की, सेा घुटि जाति है = घुर जाति है, गाढ़ी होय जाति है, मान की जेा गांठि है दृढ़ता सेा छूटिजात है। हठीली हठ नहीं करति है, ताकौं पुष्ट कियेा, पावस ऋतु उद्दीपन सौं। काव्यलिंग।" (हरिप्रकाश)

अभिप्राय यह है कि कामोद्दीपन वर्षा-ऋतु में मानिनी नायिका की मान-ग्रन्थि क़ायम नहीं रह सकती, वर्षा में सन या मूँज की रस्सी की गाँठ जैसे कड़ी पड़ जाती है, वैसे ही हठीली की मान-गाँठ ढीली पड़ जाती हैं, खुल जाती है। गाँठ को कड़ा करनेवाले वर्षारूपी कारण से गाँठ का ढीला पड़नारूप विरुद्ध कार्य हुआ, इसलिए :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"विरुद्धात्कार्यसंपत्तिर्दृष्टा काचिद्विभावना।
शीतांशुकिरणास्तन्वीं हन्त सन्तापयन्ति ताम् ॥"
"काहू कारन तें जबैं कारज होहि विरुद्ध।
करत मोहि सन्ताप यह सखी! शीतकर शुद्ध ॥"

इन "कुवलयानन्द" और 'भाषाभूषण' के लक्ष्य-लक्षणानुसार यहाँ पाँचवीं 'विभावना, है।'

विद्यावारिधिजी का न जानें कौनसा निराला अलङ्कार-शास्त्र है, जो "……जैसे और गाँठ छुट जाती है इसी प्रकार मान गाँठ भी छुट जाती है" इस दशा में भी "विभावना" बतला रहे हैं! अस्यां पुनर्दशायां नापि विभावना, न चेदं काव्यं, उन्मत्तप्रलपितमेतत् !!!

२९—कियौ सबै जग कामवश, जीते सबै अजेय।
कुसुमशरहिं शर धनुषकर, अगहन गहन न देय ॥ ५८१

जिसने सब जगत् को काम के आधीन किया, सब अजेयों को जीतलिया अगहन का महीना उसी कामदेव को धनुषबाण हाथ में धारण करने नहीं देता अर्थात् जाडे से उसके हाथ पैर भी सुकडते हैं "अभिप्राय विशेष" (पृ० १८९)

न जाने किस मुहूर्त्त और किस अवस्था में बैठे हुए श्रीमान् 'विद्वद्वृन्दशिरोमणि' यह अपूर्व टीका लिख रहे हैं! टीका लिख रहे हैं या बेगार टाल रहे हैं! कोई भी स्वस्थ=प्रकृतिस्थ और समझदार आदमी, जिसमें ज़रा भी सहृदयता होगी, ऐसी असम्बद्ध और बेसिर पैर की बातें लिखकर उपहासपात्र बनने की चेष्टा न करेगा! फिर पद पद पर ऐसी ऐसी भारी भूलें करनेवाला मनुष्य "विद्यावारिधि" और "विद्वद्वृन्दशिरोमणि" कैसे हो सकता है, यह रहस्य वार वार सोचने पर भी हमारी समझ में नहीं आता! कोई सज्जन समझा दें तो बड़ी कृपा हो!

"जिसने सब जगत् को काम के आधीन किया, ……" अगहन का महीना उसी कामदेव को" …… यह क्या गोरखधन्धा है! 'जिसने' किसने? क्या कामदेव ने? बहुत अच्छा, "सब जगत् को काम के आधीन किया" जो किया खूब किया, हाँ, तो क्या यह 'अगहन का महीना' 'उसी कामदेव को' 'जिसने सब जगत् को काम के आधीन किया था' धनुषबाण धारण नहीं करने देता! क्यों नहीं धारण करने देता! आपने मालूम भी किया? यदि यह काम (जिसके आधीन सब जगत् को किया है) कामदेव से भिन्न कोई दूसरा व्यक्ति है, तब तो अगहन अच्छा नहीं करता कि ऐसे स्वार्थनिरपेक्ष, परोपकारी, विजयी, योद्धा के कार्य में विघ्न डालता है, उसके हथियार छीनता है, जिसने सब जगत् को जीत कर भी दूसरे व्यक्ति=काम के आधीन कर दिया है, अपने पास कुछ नहीं रक्खा! और यदि 'काम' और 'कामदेव' दोनों एकही व्यक्ति के नाम हैं, और वह नेपोलियन की तरह जातीय साम्राज्य स्थापित करने की आड़ में, सब कुछ अपनेही अधीन करके स्वार्थसिद्धि करना चाहता है तो अगहनरूपी नैलसन ने अच्छाही किया कि ऐसे स्वार्थपरायण शान्तिभङ्गकारक उपद्रवी को कुण्ठितशक्ति करके, हाथ पैर सुकोड़ कर बिठला दिया!

टीका के अन्त में अलङ्कार के स्थान पर वारिधिजी लिखते हैं "अभिप्राय विशेष" (?) यह "अभिप्राय विशेष" क्या है? इसे आपने अलङ्कार के स्थान पर लिखा है, पर साहित्य-ग्रन्थों में बहुत ढूँढने पर भी इस नाम का कोई अलङ्कार नहीं मिलता, किसी ग्रन्थ में हो तो वारिधिजी पता दें! क्या इस दोहे का जो अभिप्राय आपने टीका में लिखा है, उससे भी कोई और विशेष गूढ़ अभिप्राय है! जिसे आप "सर्वसाधारण की बुद्धि में प्रगट (?) करना" नहीं चाहते? कोई ऐसी ही ख़ास बात मालूम होती है, तभी तो आपने "अभिप्राय विशेष" लिखा है? यदि कोई विशेष रहस्य और गोपनीय बात न हो तो बतला दीजिए, क्योंकि किसी अवश्यज्ञातव्य विषय को अपने पाठकों से छिपाना, टीकाकार के धर्म के विरुद्ध है, और फिर आपने तो ख़ास तौर पर "कविवर का आशय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वसाधारण की बुद्धि में प्रगट कराने" की इच्छा से इस 'अतिललित मधुर मुग्ध' टीका को लिखा है। ऐसी दशा में आपको वह "अभिप्राय विशेष" कदापि नहीं छिपाना चाहिए! अस्तु, आपने तो इस "अभिप्राय विशेष" को सर्वसाधारण से, बड़ी हिकमत के साथ छिपायाही है पर "ताड़ जाते हैं ताड़नेवाले" हमने भी इस रहस्य को खोजही निकाला, इसकी तै तक पहुँच ही गये! लीजिए सुनिए और सच बतलाइए कि हम इस "अभिप्राय विशेष" के खोलने में समर्थ हो सके हैं या नहीं! विद्यावारिधिजी! आप तो 'अपने बछड़े के दांत' पहचानतेही हैं! पाठकवृन्द! लल्लूलालजी ने अपनी टीका में, सुरतिमिश्र की "अमरचन्द्रिका" से प्रश्नोत्तर के और अलङ्कार के दोहे यत्र तत्र उद्धृत किये हैं, विद्यावारिधिजी ने अलङ्कारों के नाम तो वहाँ से नक़ल कियेही हैं (यद्यपि आपने इस बात को कहीं स्वीकार नहीं किया) पर कहीं कहीं अपनी टीका में उन प्रश्नोत्तर और अलङ्कारों के दोहों का भाव लाने की भी आपने कोशिश की है, और जहाँ जहाँ ऐसा साहस किया है वहीं वहीं अजीब अजीब गुल खिलाये हैं! जिससे आपकी टीका "केसर की क्यारी" बन गई है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए हम उक्त दोहे की 'लाल-चन्द्रिका' का अवतरण देते हैं :—

"कियौ सबै जग कामबस जीते जिते अजेइ।
कुसुमसरहिं सर धनुष कर अगहन गहन न देइ॥"

"सखी का वचन मानवती से। किया सब जगत को काम के बस और जीते जितने अजीत थे उन्हें, कामदेव को तीर कमान अगहन का जाड़ा पकड़ने नहीं देता॥

प्रश्न—दोहा—

"कही सीत की प्रबलता गहि न सकै धनु काम।
सो हेमन्त में चाहिए, कामहीन जगधाम॥
जहाँ तो काम अधिक हि बढ़त, इक यह प्रश्न सुजान।
कियो जगत जो कामबस, तो अगहन प्रभुता न॥"

उत्तर—दोहा—

"जग करि दीनौ स्वामिबस, जीत अजित निजबास।
धनुषग्रहन श्रम दत नहि, कामहि अगहन दास॥"

परिकराङ्कुरालङ्कार। दोहा :—

"साभिप्राय विशेष जहँ परिकर-अंकुर गाय।
धनुष गहन वृत्तान्त में अगहन साभिप्राय॥"

सुरतिमिश्र के इन दोहों का भाव यह है :—

प्रश्न—यदि इस दोहे—(कियो सबै०) का यह अभिप्राय है कि शीत की प्रबलता से कामदेव, धनुष-बाण ग्रहण नहीं कर सकता, तब तो हेमन्त में (जब शीत की अत्यधिकता होती है) संसार सर्वथा कामहीन हो जाना चाहिए, कारण कि उस समय तो जाड़े से ठिठर कर कामदेव शस्त्र ग्रहण करने में बिलकुलही अशक्त हो जायगा, पर होता इसके उलटा है, क्योंकि हेमन्त में काम और भी बढ़ जाता है।

२ य, प्रश्न—और यह कि यदि 'जगत् को कामने वश में कर लिया' यह कहें तो अगहन की प्रभुता न रही, काम की प्रभुता हो गई, और यहाँ वर्णन अगहन की प्रभुता का है॥"

उत्तर—सम्पूर्ण अजितों को जीतकर, जग को अपने स्वामी=काम के अधीन कर दिया, अगहन-रूपी दास ने (अपने स्वामी) काम को धनुष बाण ग्रहण करने का कष्ट नहीं दिया! तात्पर्य यह कि शीताधिक्य से ठिठरकर काम कुण्ठित-शक्ति हो धनुषबाण छोड़ने को विवश नहीं हुआ, किन्तु उसके सद्भृत्य (कामोद्दीपक होने से) अगहन ने स्वयं ही सब संसार को जीतकर काम के अधीन कर दिया! शूर सद्भृत्य की उपस्थिति में स्वामी को स्वयं रण में प्रवृत्त होने की आवश्यकता नहीं होती, भृत्य ही सब कुछ कर देता है, यह भाव। इस प्रकार दूसरे प्रश्न का भी उत्तर हो गया, जग को जीतने से अगहन ही की प्रभुता रही।

विद्यावारिधिजी ने जो....."अर्थात् जाड़े से उसके हाथ पैर भी सुकड़ते हैं" कहकर कामदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के हाथ पैर सुकोड़े हैं, यह सुरतिमिश्र के अभिप्राय से नितान्त प्रतिकूल और प्रकृति-विरुद्ध है, क्योंकि अगहन में हाथ पैर सुकोड़नेवाला (प्रबल) जाड़ा नहीं पड़ता, शीत की प्रधानता के लिए हेमन्त प्रसिद्ध है, परन्तु काम के हाथ पैर उसमें भी नहीं सुकड़ते, प्रत्युत उस समय उनमें और सक्षमता और कर्मण्यता आजाती है, और वे उन दिनों अधिक बल से अपना काम करने लगते हैं, जैसा कि सुरतिमिश्र ऊपर कहते हैं।

अब रह गया, वारिधिजी का 'अभिप्राय विशेष' उसके लिए सुरतिमिश्र का 'परिकराङ्कुरालङ्कार' के लक्षणवाला दोहा, ऊपर देखिए, जिसका भाव यह है कि जहाँ विशेष्य साभिप्राय हो वहाँ "परिकराङ्कुर"* होता है। जैसे यहाँ धनुष ग्रहण न करने देने के वृत्तान्त में अगहन (विशेष्य शब्द) साभिप्राय है, अर्थात् अगहन शब्द "ग्रहण न करने देने की शक्ति रखनेवाला" यह अभिप्राय लिये हुए है।

बस इसी 'परिकराङ्कुरालङ्कार' के लक्षणवाले दोहे के पूर्वार्द्ध के प्रथम पाद—"साभिप्राय विशेष (ष्य) जहँ" को 'विद्वद्वृन्दशिरोमणि' 'विद्यावारिधि' जी ने अलङ्कार का नाम समझकर, अलङ्कार के स्थान पर "अभिप्राय विशेष" लिख दिया है !!!

यदि इसके अतिरिक्त अपने उपर्युक्त वाक्य का कोई और अर्थ वारिधिजी बतला दें, तो उनसे पूछ देखिए, हमारा दावा है कि इसके विरुद्ध वारिधिजी कुछ भी नहीं बतला सकेंगे, यदि वह बतला दें तो हम अपनी समालोचना वापिस लेने को तयार हैं!

हम नहीं समझते कि जो आदमी जिस बात को बिलकुल ही नहीं जानता, वह उसमें टाँग क्यों अड़ाता है! इतना तो वारिधिजी जानते ही होंगे कि वह अलङ्कारविषय में सर्वथा वैदेशिक और अपरिचित हैं, फिर इस गहनवन में भटकने की क्या ज़रूरत थी!

"अयथाबलमारम्भो निदानं क्षयसम्पदः"

(अपूर्ण)

पद्मसिंहशर्मा।

---

* "साभिप्राये विशेष्ये तु भवेत्परिकराङ्कुरः।
चतुर्णां पुरुषार्थानां दाता देवश्चतुर्भुजः॥" (कुवलयानन्दे)
"साभिप्राय विशेष्य जब परिकर-अङ्कुरनाम।
सुधेहू पिय के कहैं नेक न मानति वाम" (भाषाभूषण)

वसन्त-वियोग।

अध्याय ४

(गताङ्क से आगे)

(९२)

आहा सुखद प्रभात प्रभंजन!
ताप शमन तापस मन रंजन!
आहा मानस ताल सुभग का,
तीर अधीर-हृदय-धृति-कारी
आहा नीर तरङ्ग चपल ये
चित्त चपलता हरने हारी!

(९३)

असित मधुप गण सहित मनोहर
स्वर्ण सरोज समेत सरोवर,
देख तथा छबिधर नव दिनकर
कविवर को विचार है भाता
अक्ष लक्ष प्रत्यक्ष वरुण के
अरुण मित्र दर्शन सुखदाता!॥

(९४)

चन्द्र-मन्दता रवि-प्रकाश है,
ज्ञान प्रभा से मनोनाश है
जल कल्लोल निरत है देखो
उज्ज्वल राज हंसगण ऐसे
परम हंस संसार बिरत हो
मग्न प्रमोद सिंधु में जैसे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(९५)

पथि गण लै वे माली सज्जन
आये किया ताल में मज्जन
लगे सकल संध्या बन्दन में
तदुपरान्त बूढ़ा इक माली
वर्णन कर मानस की महिमा
फिर बोला यों प्रतिभाशाली ॥

(९६)

" ऐरावत जल क्रीड़ाकारी
देखो, शकुन हुआ ये भारी,
श्रीशिव दर्शन हेतु पुरन्दर
आये हैं कैलास धाम में,
यही समय शुभ है तुम सबको,
सफल यत्न है इसी जाम में ॥

(९७)

" इकतो संचित पुण्य तुम्हारा
फिर उपदेश विशेष हमारा
तिस पर यह सब पावन यात्रा
हुई अशेष अमङ्गल हारी,
दिव्य नयन पाओगे तुम सब
शिव स्वरूप दर्शन अधिकारी ॥

(९८)

" नमः शिवाय कहो सब भाई,
प्रणव समेत, आत्म सुखदाई
चलो जहाँ गिरिजापति राजैं
चन्द्रार्कानल लोचन स्वामी "
चले सकल शिव ध्यान लीन वे
मलविहीन सत्पथ-अनुगामी ॥

(९९)

शिवस्वरूप के दर्शन पाये
दुःसंकल्प विकल्प भुलाये
शिवमय सब संसार अभी तक
था संसार-दृष्टि से देखा,
पलटी दृष्टि अपार सृष्टि में
सार सदा शिव को अब लेखा ॥

(१००)

* एक विष्णु विभु विश्व विहारी
भव भव विभव पराभवकारी
गणपति महादेव अविनाशी
आदि शक्ति त्रिभुवन कल्याणी
सूर्य प्रकाश-स्वरूप प्रभाकर
भूप अनूप अरूप अमानी ॥

(१०१)

जब इस भाँति तत्त्व पहिचाना
स्तवन बिधान प्रेम से ठाना,
स्तुति का एक एक अक्षर वर
था अक्षर का परिचय-दाता
भावों से था प्रकट पुरातन
जीव ब्रह्म का अद्भुत नाता।

(१०२)

जय सच्चिदानन्द, जगदीश्वर,
पूर्ण, अखण्ड, अनन्त, अगोचर,
जय अनादि, अविकार, अमित, अज,
अलख, अपार, अपाप, अकाया,
अन्तर्यामी, अनुपम स्वामी,
मायाधर, भूतेश, अमाया, ॥

(१०३)

" जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था,
और सकल अनुमान व्यवस्था,
तद्गत सत्यासत्य सभी का
सत्ता से आधार तुही है,
जहाँ जहाँ " है " का प्रयोग है †
वहाँ " अस्ति " का सार तुही है ॥

(१०४)

" सकल जगत तू, जगत नहीं तू!
कहाँ नहीं तू, सभी कहीं तू,

---

* श्लेष से पंच देवैकता की सूचना; भारतवर्ष में मत-भेद ही तो फूट बढ़ा रहा है।

† छन्द १०३, १०४ में " सत् " का, १०५ में " चित् " का तदुपरांत " आनन्द " का निरूपण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं विविध आभूषण गण तू,
अपरित्याज्य सब कंचन तू है
रस है तू, कदापि सर सरिता
सिंधु हिमादि प्रपंच न तू है॥

(१०५)

"वस्तु प्रतीत यहाँ जो होती
है उसमें भासक तव ज्योती,
हैं जड़ चेतन सभी अचेतन
तुझ चेतन बिन विश्व विभासी!
अगणित भाँति शक्तियों में बस
है तूही 'चित्ता' सुख रासी॥

(१०६)

तू है तत्त्व मोद वृन्दों का,
तू है सागर आनन्दों का
है रोचक तेरे ही कारन
सुखद प्रपंच जगत का सारा
तूही "प्रियता" रूप रमा है
और नहीं कुछ 'प्यारी' 'प्यारा'॥

(१०७)

"पावस में प्यारी घनमाला
इन्द्र शरासन सहित रसाला
चपला-चमक मोर-चातक-ध्वनि
पवन झकोर नीर का झाला
हरियाली सरितादि सभी में
है प्यारापन तुही निराला!

(१०८)

"प्यारी ऋतु बसंत की शोभा
देख कौन सा चित्त न लोभा?
सुमन-विकास सुवास पवन की
कुंज-निवास सुशीतल-छाया
चन्द्र-विलास हास में प्यारे
तूही प्रियता-रूप समाया!

(१०९)

"शिशु की मधुर तोतली बानी,
पुत्र वदन-चुम्बन सुखदानी,
संतति का विहार मुदकारी,
पुत्र बधू आगम सुखवेला,
गृह प्रपंच में पृथक पंच से
है तूही प्रिय अंश अकेला!

(११०)

"अंगोज्ज्वलता, केश कालिमा,
वचन मधुरिमा, अधर लालिमा,
हाव भाव में, प्रिय स्वभाव में,
छवि प्रभाव में, प्रियता तू है,
अलंकार, शृंगार, भामिनी
के सजाव में, प्रियता तू है!

(१११)

"स्वाद सुपूरित रसना रंजन
बहु विध मधुर सलोने व्यंजन,
रोचक गान, मनोहर कविता,
सरस वचन, में तू है प्यारा,
षट रस नवरस में तू रस है,
तुझ बिन नीरस है रस सारा!

(११२)

"तापित जन को शीतलता में,
शीत भीत को सानलता में,
भूखे को जो अन्नाशन में
श्रममोचन में श्रान्त पथी को,
सुख है, वह सब तू है प्यारे
प्रतिदिन रुचने वाला जी को!

(११३)

"सुख जो इष्ट वस्तु आने में,
जो आनन्द भोग पाने में,
धन, वैभव, जस, मान, रूप, बल,
शांति, स्वर्ग, अपवर्ग, सभी में
है आनन्द स्वच्छ प्रिय तू ही
है जो कुछ इस सर्ग सभी में!

(११४)

"है तरंग सागर में जैसे
तुझ में जगत् प्रकृति से तैसे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं तरंग पृथक् सागर से,
त्वन्मय जगत् प्रपञ्च सभी है,
शुद्ध दृष्टि में, एक, सृष्टि में
है, कहने को पञ्च सभी है"

(११५)

स्तुति पथिकों ने यों जो ठानी,
लम्बी है सम्पूर्ण कहानी,
होकर शुद्ध प्रबुद्ध हुए तब
उद्यत सब उद्यान गमन को,
कर्मयोग की कुंजी पाकर
सदा स्वस्थ रखने को मन को॥

(११६)

मालाकार रहे गिरि ऊपर,
पथिगण गया बाग की भूपर,
बाग निवासी माली गण की
शिक्षा से रखकर सम्बन्ध,
ध्यान सहित उद्यान प्रथा के
रुचि से करने लगे प्रबन्ध॥

(शेष आगे)

"पूर्ण"

श्रीमद्भागवत और रामचरितमानस।

हमारे प्रिय पाठक गण श्रीगोस्वामि तुलसीदासजी की विद्वत्ता से पूर्णरीति से परिचित होंगे। इनके बनाये हुए रामायणादि ग्रन्थों के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने अनेक पुराण तथा शास्त्रों का अच्छे प्रकार से परिशीलन किया था। जब मैंने श्रीमद्भागवत का श्रीरामायण की अनेक चौपाइयों से मिलान किया तो ज्ञात हुआ कि रामायण में श्रीमद्भागवत का अनेक स्थलों में अनुवाद किया गया है। यद्यपि आप संस्कृत ही में रामायण की रचना कर सकते थे परन्तु उस समय में हिन्दी-भाषा की उन्नति के लिए ही आपका जन्म हुआ था। आपने श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्ध के बीसवें अध्याय के अनुसार किष्किन्धा काण्ड में वर्षा तथा शरद ऋतु का वर्णन किया है अर्थात् जैसे श्रीमद्भागवत में आधे श्लोक में ऋतु-वर्णन तथा आधे में लौकिक दृष्टान्त दिये हैं इसी प्रकार तुलसीदासजी ने एक चौपाई में ऋतु-वर्णन तथा अन्य में दृष्टान्तद्वारा स्पष्टीकरण किया है। उस स्थल को पाठकों के अवलोकनार्थ प्रदर्शित करता हूँ—

श्रीमद्भागवत—ततःप्रावर्तत प्रावृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा।
विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला॥ ३॥

रामायण—वरषा काल मेघ नभ छाये।
गरजत लागत परम सुहाये॥

भागवत—मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाच्युतजनागमे॥ २०॥

रा०—दो०—लक्ष्मणदेखहुमोरगण,नाचतवारिदपेखि।
गृही विरति रत हर्ष जस, विष्णु भक्त कह देखि॥

भा०—गिरयोवर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्षजचेतसः॥ १५॥

रा०—बुंद अघात सहै गिरि कैसे।
खल के वचन सन्त सह जैसे॥

भा०—आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योनुशुष्यतीः।
पुंसोयथाऽस्वतंत्रस्य देहद्रविणसम्पदः॥ १०॥

रा०—क्षुद्र नदी भरि चलि उतराईं।
जस थोरे धन खल बौराईं॥

भा०—मार्गा बभूवुः संदिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः।
नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव॥ १६॥

रा०—हरित भूमि तृण संकुल, समुझि परै नहिं पन्थ।
जिमि पाखण्ड विवाद तें, गुप्त भये सदग्रन्थ॥

भा०—श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः।
तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद्ब्राह्मणा नियमात्यये॥ ६॥

रा०—दादुर ध्वनि चहु ओर सुहाई।
वेद पढ़ै जनु बटु समुदाई॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति न ग्रहाः।
यथा पाषण्डेन पाखण्डा न हि वेदाः कलौ युगे ॥ ८ ॥

रा०—निशि तम घन खद्योत विराजा।
जनु दम्भिन करि मिला समाजा ॥

भा०—गाधवारिचरास्तापमविन्दन् शरदर्कजम्।
यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥ ३८ ॥

रा०—जल संकोच विकल भै मीना।
अबुध कुटुम्बी जिमि धन हीना ॥

भा०—खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम्।
सत्वयुक्तं यथाचित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥ ४३ ॥

रा०—बिनु घन निर्मल सोह अकाशा।
जिमि हरिजन परि हरि सब आशा ॥

भा०—वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान् प्रपेदिरे ॥

रा०—चले हर्षतजि नगर नृप, तापस वणिकभिखारि।

भा०—शरदर्कांशुजांस्तापान्भूतानामुडुपोहरत्।

रा०—शरदातप निशि शशि अपहरई।

श्रीकृष्णशास्त्री तैलंग।

भगवान् श्रीकृष्ण।

(१)

पाप से सद्धर्म छिप जाता जगत में जब कभी।
ईश सब सन्ताप हरने को प्रकट होता तभी ॥

(२)

धर्म-रक्षा हेतु करके दुर्जनों का सर्वनाश।
दूर कर संसार का तम सत्य का करता विकाश ॥

(३)

इस तरह अवतार लेता विश्व में विश्वेश है।
शेष रहता फिर कहाँ आपत्ति का लवलेश है ?

(४)

कंस ने उत्पात भारी जब मचाया थी यहाँ।
द्यूतकारी मद्यपी धन लूटता पाता जहाँ ॥

(५)

डर उसे था हर घड़ी श्रीकृष्ण के अवतार का।
देवकी को दुख मिला पतियुक्त कारागार का ॥

(६)

भाद्र की कृष्णाष्टमी सब ओर छाया अन्धकार।
चञ्चला घनघोरमाला में चमकती वार वार।

(७)

ज्योति निर्मल देवकी के गर्भ में हो भासमान।
विश्वपति शिशुरूप में लाया गया गोकुल निदान ॥

(८)

नन्द ने अपना समझ कर प्रेम से पाला उसे।
इसलिए संसार कहता नन्द का लाला उसे ॥

(९)

कृष्ण वंशी को बजा गायें चराता था कभी।
दूध माखन चोर कर मन को चुराता था कभी ॥

(१०)

पूतना केशी तथा कंसादि का संहार कर।
द्वारिका जाके बसाया देवद्विज का कष्ट हर ॥

(११)

बातही उलटी हुई हा ! अब मुरारी है नहीं।
अब हमारे बीच में व्रज का विहारी है नहीं ॥

(१२)

किन्तु उसका रूप सुन्दर है नहीं दिल सें हटा।
याद आती हाय ! अब भी साँवली सुन्दर छटा ॥

(१३)

है मुझे विश्वास, फिर भी श्याम आवेगा कभी।
मोहनेवाली मधुर बंशी बजावेगा कभी ॥

(१४)

पाप-तापों से हमें वह फिर छुड़ावेगा कभी।
सर्व दुःखों को दयामय फिर मिटावेगा कभी ॥

मन्नन द्विवेदी (गजपुरी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर फ़िरोज़शाह मेरवानजी मेहता, के० सी० आई० ई०

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरञ्जक श्लोक।

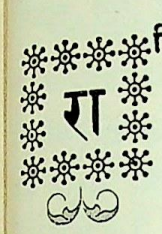

मिलक नाम का एक प्रख्यात कवि प्राचीन काल में भारत-भूमि को अलंकृत कर गया है। उसकी एक विचित्र उत्प्रेक्षा हम यहाँ पाठकों के मनोरञ्जनार्थ उद्धृत करते हैं। किसी आम्रतरु के पास कवि को एक मरा हुआ बटोही नज़र आया। उसकी मृत्यु का कारण ढूँढ़ते ढूँढ़ते कवि को यह विचित्र कारण सूझ पड़ा।

सव्याधेः कृशता क्षतस्य रुधिरं दष्टस्य लालास्रुतिः
किंचिन्नैतदिहास्ति तत्कथमसौ पान्थस्तपस्वी मृतः।
आज्ञातं मधुलम्पटैर्मधुकरैरारब्धकोलाहले
नूनं साहसिकेन चूतमुकुले दृष्टिः समारोपिता॥

अर्थात् जिसे बीमारी होती है वह दुबला हो जाता है, जो ज़ख़्मी होता है उसके शरीर से ख़ून आता है और जिसे कोई विषधर जन्तु काट खाता है उसके मुँह से लार गिरती है। परन्तु इनमें मैं यहाँ कोई बात नहीं देखता—तो फिर यह बेचारा बटोही मरा कैसे? हाँ, मालूम हुआ, जब मधुलोभी भ्रमरों ने कोलाहल मचाना शुरू किया होगा उसी समय इस साहसी ने आम्रमञ्जरी की ओर दृष्टि फेरी होगी।

भारतवासियों की शालीनता सारे जगत् में विख्यात है। अपने अभीष्ट को पूरा करने में भी यहाँ के जीव नम्रता-वश कुछ बोल नहीं सकते। इसी भाव का यह श्लोक देखिए। किसी नायिका का स्वामी परदेश जाने को तैयार है। पर नायिका को यह बात पसन्द नहीं और उक्त नम्रता वश वह साफ़ साफ़ अपना आशय प्रकट नहीं कर सकती। इस पर घबरा कर कह रही है—

मा याहीत्यपमङ्गलं व्रज सखे स्नेहेन शून्यं वचः
तिष्ठेति प्रभुता यथारुचि कुरुष्वैषाप्युदासीनता।
नो जीवामि विना त्वयेति वचनं संभाव्यते वा नवा
तन्मां शिक्षय नाथ! यत्समुचितं वक्तुं त्वयि प्रस्थिते॥

अर्थात् यदि कहें कि तुम मत जाओ तो ऐसा कहना (यात्रा के समय) अमङ्गल है—यदि कहें कि हे सखे! जाओ, तो यह बात स्नेह के विरुद्ध है। फिर यदि कहें कि ठहर जाओ तो इससे उन पर मेरी प्रभुता सूचित होगी; जैसा जी चाहे वैसाही करो, यदि यह कहें तो मेरी उदासीनता सूचित होगी, यदि कहें कि तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकती तो कदाचित् इस बात पर विश्वास करें या न करें; तब तो हे स्वामिन्! मुझे यह बतलाओ कि तुम जब जाने लगते हो तब हमें क्या कहना उचित है?

पाण्डेय भगवतीप्रसाद।

विविध-विषय।

१—सर फ़िरोज़शाह मेरवानजी मेहता, के० सी० आई० ई०।

मान् सर फ़िरोज़शाह मेरवानजी मेहता एक वृद्ध अनुभवी और असाधारण योग्यता के पुरुष हैं। सरकार के जैसे वे विश्वासपात्र हैं वैसे ही प्रजा के भी श्रद्धाभाजन हैं। मद्रास के सुप्रसिद्ध "इण्डियन रिव्यू" के सम्पादक इनके विषय में लिखते हैं कि "Next to Mr. Dadabhai Naoroji, he (Sir Mehta) is the oldest and by far the ablest and the most sagacious political leader and thinker living"; अर्थात् जीवित राजनैतिक नेताओं में मि० दादाभाई को छोड़ कर सर मेहता सबसे वृद्ध, सुयोग्य और चतुर हैं। आप १८९० में कलकत्ते में जो कांग्रेस हुई थी उसके सभापति हो चुके हैं। उस समय सभापति की हैसियत में दी हुई आपकी वक्तृता बहुत ही ज़ोरदार और बढ़ी चढ़ी हुई थी। सर फ़िरोज़शाह मेहता का जन्म अगस्त ४ सन्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८४५ ई० में बम्बई में हुआ था। इनके पिता साधारण श्रेणी के एक धनी मानी गृहस्थ थे। वह कामा कम्पनी के एक साझीदार थे और सौदागरी के लिए प्रसिद्ध थे। फ़िरोज़शाह अपने परम प्रेमी मित्र और सहायक श्रीयुत दिनशाई डलजी वाचा से उम्र में १० वर्ष छोटे हैं।

फ़िरोज़शाह के पिता स्वयं विद्वान् थे और शिक्षा के लाभ को अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने अपने होनहार पुत्र के शिक्षण में कोई बात उठा न रक्खी। तीक्ष्ण बुद्धि बालक मेहता अनेक परीक्षाओं में नामवरी के साथ उत्तीर्ण होकर सन् १८६४ में बी० ए० की उपाधि से भूषित हुआ और अपनी विलक्षण प्रतिभा और अध्यवसाय के बल से ६ ही महीने में बम्बई विश्वविद्यालय की एम० ए० परीक्षा पास की। इससे पहले किसी पारसी को एम० ए० की डिग्री प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। एम० ए० पास कर फ़िरोज़शाह अपने गुरु सर अलेक्ज़ण्डर ग्रण्ट की सलाह से बैरिस्टरी के लिए विलायत गये। वहाँ "लिंकन्स इन" में ३ वर्ष तक शिक्षा प्राप्त कर मेहता महोदय ने बैरिस्टरी की परीक्षा पास की। वहीं इनकी भेंट मि० दादाभाई नौरोजी और मि० उमाचरण बनर्जी (W. C. Bonnerji) से हुई। फिर तो इन तीनों विलायत-प्रवासी हिन्दुस्तानियों में दृढ़ मैत्री हो गई और तीनों ने दृढ़संकल्प हो अपने देश की सेवा करना प्रारम्भ की।

फ़िरोज़शाह ने लन्दन की सभा-समितियों में "भारतीय उच्च शिक्षा" पर कई एक निबन्ध पढ़े जिनसे इनकी दूरदर्शिता, असामान्य विद्वत्ता और अनुभव भली भाँति प्रकट होने लगा।

यथासमय फ़िरोज़शाह बम्बई लौटे और बैरिस्टरी का काम करने लगे। बम्बई म्युनिसिपलटी से श्रीयुत मेहता का घनिष्ठ सम्बन्ध है और इन्होंने बम्बई की म्युनिसिपलटी के सुधार में दिलोजान से परिश्रम किया है। यदि उसका वर्णन किया जाय तो एक बड़ा पोथा बन जाय। जितने राजनैतिक आन्दोलन भारत में हुए और होते हैं उन सबमें आप योग देते हैं।

लोगों की दृष्टि में आप इतने श्रद्धेय और आदरणीय हैं कि वे इन्हें "बम्बई का बिना मुकुट का राजा" "uncrowned king of Bombay" कहते हैं। भारत की सरकार ने आपके सार्वजनिक कामों पर प्रसन्न हो इन्हें के० सी० आई० ई० की पदवी से भूषित कर अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया है। मेहता महोदय ने इम्पीरियल और प्रोविन्शल लेजिसलेटिव कौंसिलों में मेम्बर रह कर जो जो लोकहित के काम किये हैं वे अमूल्य हैं।

इन्हीं मेहता महोदय का चित्र आज हम अपने पाठकों को सादर समर्पित करते हैं।

२—देवनागरी अक्षर और सरकारी सिक्के।

महाराज एडवर्ड सप्तम का स्वर्गवास होते ही हिन्दी और कुछ अँगरेज़ी समाचार पत्रों ने इस बात का आन्दोलन आरम्भ कर दिया था कि महाराज पञ्चम जार्ज के समय के सिक्कों पर नागरी अक्षर भी रहने चाहिए। सरकारी सिक्कों पर हिन्दी लिपि का होना कोई नई बात नहीं है। जोधपुर के मुन्सिफ़ मुन्शी देवीप्रसादजी ने और चार पाँच वर्ष पहले सरस्वती-सम्पादक ने अपने एक लेख में बड़े पुष्ट प्रमाणों से यह सिद्ध किया था कि बहुतेरे मुसलमान बादशाहों के समय में भी सरकारी सिक्कों पर हिन्दी अक्षर रहे हैं। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि इस प्रान्त के लोगों ने भी इस विषय में गवर्नमेंट से प्रार्थना की है। भारतवर्ष में रहनेवाली महाराज की अधिकांश प्रजा नागरी अक्षरों को समझती और उनका प्रयोग करती है। इसलिए नागरी अक्षरों का सरकारी सिक्कों पर होना अत्यन्त आवश्यक है। आशा है कि सरकार प्रजा की प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—उपदेशक-महाविद्यालय।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल के प्रधान कार्य्यालय के सहकारी अध्यक्षजी ने कृपाकर हमारे पास एक 'अनुष्ठान पत्र' भेजा है। इस पत्र द्वारा मालूम होता है कि काशीपुरी के गुरुधाम नामक स्थान में महामण्डल ने एक उपदेशक महाविद्यालय खोला है। इस विषय में अध्यक्षजी हमारा परामर्श चाहते हैं। इस कृपा के लिए हम आपके बड़ेही कृतज्ञ हैं। परन्तु परामर्श क्या दें, हमें तो यही बड़ा हर्ष है कि महामण्डल ने डेपुटेशन बाज़ी और लेक्चरबाज़ी से अब कुछ फ़ुर्सत निकाल कर भला किसी व्यावहारिक कार्य्य की ओर ध्यान तो दिया! उसके काग़ज़ी घोड़ों की दौड़ वर्षों से देखते देखते लोग ऊब उठे थे।

४—नये आविष्कार।

योरप और अमेरिकावालों को नये आविष्कार किये बिना चैन नहीं। बेथेल के मिस्टर जोज़ेफ़ बाधी ने कुछ ऐसी विचित्र नौकायें बनाई हैं जो लिपट कर गठरी बन जाती हैं और रात्रि में या दिन में ज़मीन पर तम्बू का भी काम देती हैं। एक और साहब ने लैम्पदार तमञ्चे तैय्यार किये हैं। इन तमञ्चों के नली के नीचे बिजली का लम्प लगा रहता है। ट्रिगर के दबातेही प्रकाश फैल जाता है और लक्ष्य पर निशाना बड़ी उत्तमता से लगता है।

५—पृथ्वी की आयु।

पृथ्वी की आयु के विषय में पदार्थ-वैज्ञानिकों और भूतत्त्वज्ञों में परस्पर बहुत दिनों से मतभेद चला आरहा था। भूतत्त्वज्ञों के मन में पृथ्वी ३००००००० वर्षों से है। परन्तु पदार्थ वैज्ञानिकों का विचार था कि पृथ्वी २०००००० या ४००००००० वर्षों से है। अब हीलियम के ज़रिये से पदार्थ-वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि पृथ्वी की आयु अब तक २४००००००० वर्षों की है। ऐसा जान पड़ता है कि इस विषय में भूतत्त्वज्ञों का ही मत ठीक समझा जायगा।

६—हिन्दी-प्रेमियों को उत्तेजना।

झालरापाटन के पण्डित गिरिधर शर्म्मा हिन्दी प्रेमियों को उत्तेजना दिलाते हुये लिखते हैं:—

आँखे खोल भली भाँति सावधान होके देखो,
अँगरेज़ों ने अँगरेज़ी कितनी सँवारी है!
फ़्रांस की मधुरभाषा कितनी बढ़ी है फ़्रेञ्च,
जर्मन का लिट्रेचर कैसा बड़ा भारी है!
इनमें से एक के भी ग्रन्थों की सूचियाँ ही
उठा तोलो देखूँ कैसी सूरत तुम्हारी है!
हिन्दियो! खड़े भी कैसे जहाँ में रहोगे तुम
तुमने भी अपनी कभी हिन्दी सुधारी है?

७—शर्म्माजी के चाकू।

हाथरस चाकुओं के लिए बहुत दिनों से प्रसिद्ध है। वहीं के आर० सी० शर्म्माजी ने चाकुओं का कारख़ाना खोला है। आप राजर्स की भाँति के पक्के चाकू तैयार करते हैं। चाकुओं में सींग, काष्ठ और चन्दन के बेंट हैं। आपके यहाँ चाकू कम से कम ।=) और अधिक से अधिक १॥) को मिलता है। स्वदेश-भक्तों को शर्म्माजी के चाकुओं का तजरिबा करना चाहिए।

८—पुस्तक-परीक्षा।

महाराणा प्रतापसिंह की वीरता—लेखक श्रीयुत हरिदास माणिक। चित्तौड़ के वीरवर शिशोदियाकुल शिरोमणि महाराणा प्रताप का नाम किस भारतवासी ने न सुना होगा? इस पुस्तक में उन्हीं वीरचूड़ामणि की उस वीरता का वर्णन है जो उन्होंने भारत-सम्राट प्रतापी अकबर का सामना करने में और वनवास और दारिद्र्य की असह्य यातनाओं को सहन करते हुए स्वराज्य स्थापित किये रखने में प्रकट की थी। पुस्तक रोचक और शिक्षाप्रद है। ३२ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य =) है। पुस्तक सिद्धेश्वर स्टीम प्रेस, बनारस में छपी है और शायद वहीं से मिल भी सकेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़रियाद बेज़बां—प्रथम भाग—रचयिता मौलवी मोहम्मद नईम साहब मुदर्रिस इँगलिश स्कूल-रियासत नागोद-बघेलखंड। पुस्तक उर्दू में है। लेखक ने जीव-हिंसा विषय पर यह उपन्यास लिखा है। इसके दूसरे व तीसरे भाग अभी प्रकाशित होने को हैं। इस प्रथम खंड में गोहत्या इत्यादि जीव-हिंसा को अच्छी युक्तियों के साथ अनुचित सिद्ध किया है। पुस्तक रोचक है। प्रथम खंड का मूल्य ॥) ज़्यादा है—पुस्तक लेखक के पास से मिल सकेगी।

धर्मशिक्षा—लेखक, रायबहादुर लाला बैजनाथ रिटायर्ड जज। इस पुस्तक में "श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण प्रतिपादित धर्म व वर्णाश्रम के मुख्य नियम और उनकी विद्वन्मतानुसार समयानुकूल संक्षिप्त व्याख्या है"। लाला साहब एक प्रसिद्ध अनुभवी और धर्मिष्ठ विद्वान् हैं। उनकी बनाई हुई अन्य पुस्तकों की भाँति यह पुस्तक भी बड़ी शिक्षाप्रद और उपयोगी है। स्कूल और कालेजों में पढ़ने वाले हिन्दू लड़कों के लिए तो बड़े ही काम की है क्योंकि इन बेचारों को प्रायः अपने धर्म के सिद्धान्तों के जानने का अवसर ही नहीं मिलता। इस पुस्तक में देशकाल अवस्था को देखकर धर्म की व्याख्या की गई है, इसलिए कहीं कहीं इसके सिद्धान्तों से कुछ विद्वानों को मतभेद हो सकता है। भाषा में कुछ अशुद्धियाँ हैं जिन्हें दूसरी आवृत्ति में लेखक महोदय को ठीक कर देना चाहिए। पुस्तक का मूल्य ॥) मिलने का पता दफ़्तर वैश्यहितकारी मेरठ अथवा बा० कृष्णलाल, ९६ सिविल लाइन, आगरा।

महिम्नस्तोत्र—अन्वयार्थ दोहा तथा पदार्थबोधिनी भाषाटीकासहित। इस पुस्तक को श्रीस्वामी कृष्णाश्रमजी की सम्मत्यनुकूल श्रीपण्डित रामाधार मिश्र ने बनाया। पुस्तक का आकार देखते हुए मूल्य ⁻)॥ कम है। पुस्तक के मिलने का पता पण्डित मन्नूलाल पांडे हेड मास्टर तहसीली स्कूल कानपुर अथवा पण्डित शिवानन्द त्रिवेदी, वकील फ़तहपुर।

हिन्दी शार्ट हैन्ड—रेखाक्षर अर्थात् हिन्दी की संक्षेप-लेख-प्रणाली। इस पुस्तक को श्रीशचन्द्र वसु सब जज इलाहाबाद और निक्का मिश्र ने बनाकर हिन्दी की एक बड़ी कमी पूरी की है। परन्तु न जानें क्या समझकर पुस्तक का मूल्य १) रक्खा गया है। एक तो पुस्तक छोटी है दूसरे यदि इसके कम दाम होते तो बहुतेरे हिन्दी-भाषाभाषी इसे ख़रीद कर हिन्दी शार्ट हैन्ड राइटिंग का अभ्यास करते। दाम अधिक होने से इस काम में रुकावट पड़ेगी।

ऋतुचर्य्या—इस पुस्तक के लेखक हैं भिषगाचार्य्य श्रीयुत केशवदेव शास्त्री, काशी—मूल्य १) लेखक ने पुस्तक को दो भागों में विभक्त किया है। प्रत्येक भाग में छः छः परिच्छेद हैं। पुस्तक के आदि में एक ऋतुचक्र दिया है जिसमें ऋतुओं के दोष दिखलाये गये हैं। दिन रात्रि में भी षट् ऋतुएँ हुआ करती हैं, और जैसे मासिक ऋतुओं में दोष-प्रकोप, उपशमन, संचय, हुआ करता है, वैसेही दैनिक ऋतुओं में भी। इसी आशय की पुष्टि सप्रमाण प्रथम भाग में की गई है। परन्तु लेखक ने प्रमाणों में कुछ शीघ्रता से काम लिया है। द्वितीय भाग में मनुष्य का स्वास्थ्य कैसे ठीक रह सकता है, कैसे सदाचार से रहना चाहिए। इन बातों का सप्रमाण विचार किया है। पुस्तक अच्छे काग़ज़ पर अच्छे टाइप में छपी है। पुस्तक में अशुद्धियों की कमी नहीं है, परन्तु इन अशुद्धियों से विशेष हानि नहीं। पुस्तक उपयोगी है। भाषा सरल होने से सबकी समझ में आजाती है। पुस्तक का आकार देखते हुए मूल्य १) बहुत है। यदि ऐसी पुस्तकें थोड़े मूल्य पर दी जायँ तो विशेष उपकार होना सम्भव है। पुस्तक प्रबन्धकर्ता नवजीवन, काशी से प्राप्त हो सकती है।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ११] १ नवंबर, १९१०। कार्त्तिक कृष्ण ३०, १९६७। [संख्या ११

वीररत्न बाजीप्रभु देशपाण्डे।

(१)

पन्हाल नामी गढ़ में सचेष्ट
विख्यातकर्मा जब थे शिवाजी।
लेने पिता का बदला उन्हीं से
आया वहाँ फ़ाज़ल ख़ाँ ससैन्य॥

(२)

वैरी चढ़े यद्यपि थे हज़ारों,
हुए न तो भी सफल प्रयत्न।
होता रहा युद्ध कई महीने
सुयुक्ति से शक्ति सदैव हारी॥

(३)

हुई कई वार विशेष हानि
हटे न वैरी फिर भी वहाँ से।
लगे शिवाजी तब सोचने यों—
कैसे चलेगा अब काम ऐसे॥

(४)

हो मुक्ति जैसे इस आपदा से
सोची उन्होंने तब ग्रौर युक्ति।
ले वीर बाँके कुछ एक रात—
निःशङ्क हो वे निकले वहाँ से॥

(५)

घिरे हुए थे नृप रक्षकों से
उत्साह से थे वह किन्तु आगे।
सुयोग्य सेनापति धीर वीर
थे साथ बाजीप्रभु देशपाण्डे॥

(६)

क्रोधान्ध हो के सहसा इन्होंने
धावा किया सत्वर शत्रुओं पै।
जैसे मृगों के गण में सरोष
क्षुधार्त पञ्चानन टूटते हैं॥

(७)

होके सुकर्तव्यविमूढ़-भीत
मारे गये शीघ्र अनेक वैरी।
विशाल सेनार्णव तैर मानों
लिया इन्होंने पथ राँगना का॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८)

जाता हुआ देख इन्हें सगर्व
पीछा किया तत्क्षण शत्रुओं ने।
निस्तब्धता भङ्ग हुई निशा की
'शिकार भागा पकड़ो, न छोड़ो,॥

(९)

विषाक्त बातें सुन वैरियों की
जौ लों खड़े हों फिर के शिवाजी।
तत्काल ही जान अनर्थ होता
विनीत बाजीप्रभु ने कहा यों—

(१०)

"हमें यहाँ रोक कटूक्तियों से
हैं चाहते शत्रु अभीष्ट सिद्धि।
करे शठों से शठता सदैव
न नीति भूलो अपनी नरेश!

(११)

"मैं रोकता हूँ सब शत्रुओं को
बढ़ो यहाँ से तुम शीघ्र आगे।
हे तात! मेरा कहना विचारो
रक्षा इसी में अब है हमारी॥

(१२)

बोले शिवाजी तब हो गम्भीर
"आओ, मरेंगे सब साथ आज।
तुम्हें यहाँ सङ्कट में गिरा के
क्या प्राण-रक्षा अपनी करूँ मैं!

(१३)

हो व्यग्र बाजीप्रभु शीघ्र बोले
"मेरे लिए सोच करो न आप।
उद्देश रूपी मख में हमारे
अनेक साथी बलिदान होंगे॥

(१४)

"अनेक बाजीप्रभु देश में हैं
है एक ही किन्तु यहाँ शिवाजी।
पूरा हुआ कार्य्य नहीं अभी है
क्या क्या न जाने करना तुम्हें है॥

(१५)

"मौक़ा नहीं वाद-विवाद का है
हैं आरहे शत्रु सवेग पीछे।
जाओ दुहाई तुमको शिवा की
हरे! महाराष्ट्र न हो अनाथ॥

(१६)

निदान ले के तब वीर आधे
बिदा हुए व्याकुल हो शिवाजी।
ससैन्य बाजीप्रभु वैरियों की
रहे प्रतीक्षा करते अदृश्य॥

(१७)

ज्यों ही विपक्षी निकले वहाँ से
वे क्रुद्ध हो टूट पड़े सवेग।
होने लगा युद्ध अतीव घोर
सींची गई शोणित से धरित्री॥

(१८)

दो याम बीते लड़ते परन्तु
सके न वैरी बढ़ एक पाद।
हुआ क्षतच्छिन्न शरीर सारा
हटे न बाजीप्रभु किन्तु पीछे॥

(१९)

जो आज प्राणों पर खेल के ये
न रोक लेते सब शत्रुओं को।
या तो शिवाजी बचते न जीते
या हाथ आते निज शत्रुओं के॥

(२०)

आये शिवाजी जब राँगना में
छोड़ी गई पीवर पाँच तोपें।
था क्षेम का सूचक भीमनाद
निश्चिन्त बाजीप्रभु हो गये यों॥

(२१)

फैली मुख-श्री उनकी अपूर्व
किया उन्होंने प्रभु-धन्यवाद।
निर्वाण के पूर्व यथा प्रदीप
वे तेज से पूर्ण हुए विशेष॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीररत्न बाजीप्रभु देशपाण्डे ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२२)

की स्वामि-रक्षा मर के जिन्होंने
हैं धन्य बाजीप्रभु देशपांडे ॥
अहो ! महाराष्ट्र लियोनिडास !
है सर्वथा दुर्लभ मृत्यु ऐसी ॥

(२३)

थे वीर ऐसे जिनके वरिष्ठ
होते शिवाजी न समर्थ कैसे ?
नवीन राष्ट्रस्थिति-योग्य कार्य्य
भला कहीं हो सकते अकेले ?

(२४)

न आज बाजीप्रभु लोक में हैं
तो भी बनी है उनकी सुकीर्ति।
भला कहीं वीर कभी मरे हैं
सोचो, न वार्ता यह बेतुकी है ॥

मैथिलीशरण गुप्त।

योरप के और हमारे विचार।

आज हम कुछ योरपीय विचारों को अपने यहाँ के विचारों से मुक़ाबला करना चाहते हैं।

१—योरप आगे को देखता है। उन सबका विश्वास है कि यह समय प्राचीनकाल से अच्छा है, मनुष्य-जाति की आनेवाले वर्षों में नित्य नित्य उन्नति होगी। वे पुराने काल के दर्शन से अब का दर्शन अच्छा मानते हैं, ऐतिहासिक रीति पर दार्शनिक विचारों का तारतम्य करके इसे सिद्ध करते हैं। हम यहाँ पीछे को देखते हैं। पुराने समय को अच्छा मानते हैं। पुराने दर्शनों को निर्दोष समझते हैं, समझते हैं कि उनमें प्रश्नों का अन्त प्राप्त कर लिया गया है। पुराने समय को आज वापस लाना चाहते हैं। पुरानी बातों का मान है। पश्चिम की दुनिया में "नये" शब्द का मान है। पुराना नये से मिलान और नये की उन्नति करने के लिए तथा नये की नींव मात्र है। विचारों में मूल अन्तर है। हमें विश्वास नहीं कि पुराने समय से, मनुष्य, आगे को, हर बात में अच्छा होता जायगा पर उन्हें इसका विश्वास है।

२—"परमार्थ" जिस अर्थ में हम बर्त्तते हैं योरोपीय ठीक उसके उलटे अर्थ में लेते हैं। दान इत्यादि अच्छे कर्म हर एक मनुष्य यहाँ परलोक में सुख उठाने के लिए करता है। उनका परमार्थ मनुष्य-जाति या उनके पृथक समाज के लाभ के लिए है। वे परलोक की चिन्ता नहीं करते, परलोक में उनका विश्वास नहीं। अपने बड़े कामों का बदला वे नहीं चाहते, न बदले के लोभ से वे उन कामों को करते हैं। हाइडलबर्ग के विद्यापीठ में लेखक ने एक युवक विद्वान् को बिजली से गर्मी दूर कर देने के प्रयत्न में लीन पाकर पूछा कि यह मेहनत किस लिए ? उत्तर था कि मनुष्य-जाति की सेवा के लिए। यह उदाहरण मात्र है।

३—समाज की नींव हमारे यहाँ व्यक्तिगत है, हम अपने कुल, अपने परिवार, अपने परलोक की सोचते हैं, अपनी मुक्ति की चिन्ता करते हैं। योरोपीय इस मामले में व्यक्त नहीं हैं। वह आदमियों के एक झुंड जिसे समाज कहते हैं या राष्ट्र कहते हैं, उसका टुकड़ा है, वह उसके लिए है, उसमें है, उसका है। उसका प्रयत्न उसके बाहर नहीं हो सकता। इस लिए छोटी या बड़ी बात जो वह करता है उसका सम्बन्ध समाज से हमेशा रहता है, समाज के साथ उसका उल्लेख बराबर रहता है। इसी लिए योरोपीय शिष्टाचार का मूल मंत्र यह है कि दूसरों को मुझसे तकलीफ़ न हो। सुतरां रेल गाड़ी में वह ज़ोर से बात नहीं करता कि जिसमें दूसरों के आराम में बाधा न हो। इसी लिए वह अपने मकान में भी शोर नहीं मचाता, स्नेही और कुटुम्बी के मर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने पर ज़ोर से रोता भी नहीं। सिपाही जो लड़ने जाता है अपनी तनख़्वाह के लिए नहीं वरन् समाज के लिए, राजनैतिक विद्वान् जो रात दिन पिलते रहते और अपना स्वास्थ्य बिगाड़ते हैं वे अपने लिए नहीं वरन् समाज के लिए।

हमारे यहाँ समाज की नींव व्यक्तिगत है। हम दानपुण्य, तपस्या करते, मंदिर बनवाते, तीर्थ करते हैं। ये सब व्यक्ति की उन्नति के लिए। रण में जाते हैं तो इसलिए कि हम क्षत्रिय हैं, यह हमारा धर्म है या नमक खाया है। विद्याध्ययन निज ज्ञान के लिए मुख्य है। जो कुछ करते हैं अकेले की उन्नति या मुक्ति अभीष्ट है, उससे दूसरे का भला चाहे भले ही हो जाय।

४—हमारा लक्ष्य इस जीवन के बाद है। उनका लक्ष्य इस जीवन में है। यह विचार ऊपर लिखे विचार से बहुत सम्बन्ध रखता है।

५—हम हिन्दू जाति, इस भूमि के निवासी, ईश्वर के अस्तित्त्व में विश्वास रखनेवाले हैं। हम मानते हैं कि पत्ता उसी के निर्देश से हिलता है। मनुष्य उसके हाथ में खिलौना है। योरोपीय ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते। हर एक प्रकृति के कार्यों का वे कारण बताते और ढूँढ़ते हैं। वे मानते हैं कि मनुष्य किसी के हाथ में खिलौना नहीं। वह अपने भाग्य का स्वयं कर्त्ता है। मनुष्य बड़ा है, स्वतंत्र है, उसपर कोई ईश्वर नहीं। वह धर्म किसी के डर से नहीं करता पर उसे कर्त्तव्य कर्म समझ कर करता है*।

६—योरपीय "राजनैतिक जन्तु"* है। राष्ट्रीयता उसका धर्म है। भारतीय पारिवारिक जीव है। वह कहता है "कोउ-नृप होउ हमैं का हानी"।

७—हम अदृष्टवादी हैं। "यद्विधिना निजभाल-पट्टलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः?" योरोपीय अदृष्ट मानताही नहीं।

ऊपर की बातें जो लिखी गई हैं वे केवल विज्ञप्ति के लिए। लेखक यह नहीं कहता कि हम सही या योरोपवाले सही हैं। पुनश्च उल्लिखित बातें सम्प्रति काल में जो वर्त्तमान हैं वही ली गई हैं; पहले वे विचार कैसे थे, उनकी जड़ क्या थी इसका विषय नहीं छेड़ा गया है। और जो बातें जनाधिक्य में यहाँ और वहाँ हैं वे मानी गई हैं। जिस योरोप में निरीश्वरता है वहीं से मिश्नरी भी ईसा और यहूदियों का मत फैलाने आते हैं अथवा यहाँ भी कुछ लोग ऐसे हैं जो समाज के लिए हैं। पर वे विचार देशमात्र के कहे गये हैं जिनका जनाधिक्य में प्रचार है और जिनका लोकगति पर पूरा प्रभाव है।

काशीप्रसाद जायसवाल।

दूध से बीमारियाँ।

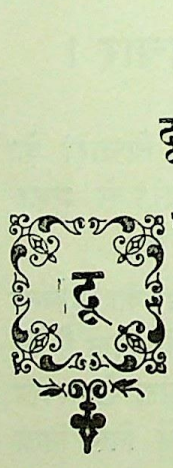

दूध आदमी के खाद्य पदार्थों में सबसे उत्तम वस्तु गिना गया है। तीन प्रकार के पदार्थ 'प्रोटीन, फ़ैट, और कार्बोहाइड्रेट' जो हरएक भोजन में होने चाहिएँ इसमें विद्यमान हैं। दूध दुनिया में सर्वगुण-युक्त भोजन समझा गया है।

इस लेख में हम दूध के गुणों का उल्लेख नहीं करना चाहते। किन्तु हम उन रोगों का ज़िक्र करना

---

* योरोप में यह स्वतंत्र विचार जिसे अनीश्वरता कहेंगे देख लेखक को पं० बालकृष्णजी भट्ट के लिखे हिन्दी-प्रदीप में एक निबन्ध का बार बार स्मरण होता था जिसमें उन्होंने लिखा है कि जीती जागती जाति में अनीश्वरता होती है, इसका प्रमाण उन्होंने अपने संस्कृत-ग्रन्थों से दिया है।

* अरिस्टाटल का यह कहना कि "मनुष्य राजनैतिक जन्तु है" योरप में चरितार्थ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहते हैं जो मनुष्यों में दूध के कारण फैलते हैं। साथ ही हम इन रोगों से बचने के उपाय भी लिखेंगे।

हमारे देश में कई कारणों से सर्वसाधारण को स्वच्छ तथा दोष-रहित दूध मिलने का प्रबन्ध नहीं है। जो लोग अपने घर में गाय, भैंस वा बकरी रख सकते हैं, और जिनकी संख्या हमारे बड़े शहरों में बहुत थोड़ी है उनको छोड़ कर मामूली लोगों को जो दूध आज कल प्राप्त होता है वह हमारे विचार में दूध नहीं सिर्फ़ दूध के नाम से पुकारा जाता है। उस दूध का प्रथम तो हमें यही पता नहीं मालूम होता है कि वह कैसी गाय या भैंस से निकाला गया है? वे पशु किस स्थान में रक्खे जाते हैं? कैसी जगह में चरते हैं? तथा उनका स्वास्थ्य कैसा है? द्वितीय हम यह नहीं जानते कि जिस ग्वाला ने वह दूध निकाला है उसके बरतन, तथा हाथों की सफ़ाई कैसी थी? वह जो जल उस दूध में मिलाता है वह स्वच्छ था या ऐसा ही वैसा। और उसने दूध को निकाल कर कितने समय कैसे स्थान में रख छोड़ा यह भी ईश्वर ही जानता है। तृतीय यह दूध जब बनिये या हलवाई की दूकान पर लाया जाता है तब न मालूम इसकी कितनी दुर्गति की जाती है। इतनी कठिनाइयों को झेल कर तब कहीं दूध बेचारे गृहस्थों के हाथ पड़ता है। इस दूध से किसी प्रकार के गुणों की आशा करना वृथा है। ऐसा दूध पीनेवाले यदि किसी प्रकार के रोग से नहीं पीड़ित होते तो यह उनका सौभाग्य ही समझना चाहिए। इस दूध से कहीं अधिक गुणकारी कुए का ताज़ा शीतल और निर्मल जल हो सकता है।

इस दूध से उत्पन्न होनेवाले रोगों की केवल नामावली देख कर पाठक चकित होंगे। यदि इसको पढ़ कर दूध की व्यवस्था ठीक करने के उपाय न सोचे जायँ तो हमें बड़ा आश्चर्य्य होगा।

दूध से उत्पन्न होनेवाले मुख्य रोग ये हैं—(प्रत्येक रोग के साथ हम इससे होनेवाली मृत्युओं की संख्या का भी उल्लेख करेंगे)

क्षयरोग—सबसे भयङ्कर रोग जो दूध के द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश करता है वह क्षयरोग है। पश्चिमाय विद्वानों का मत है कि न केवल आँतों में ही किन्तु फेफड़े, मस्तिष्क तथा अन्य स्थानों में होनेवाले क्षयरोग का प्रवेश भी मनुष्य के शरीर में दूध द्वारा ही होता है। कुछ वर्ष पहले डाक्टर काख ने जो कि क्षयरोग के कीड़े के आविष्कर्ता हैं यह प्रकट किया था कि गाय भैंसों में होनेवाला क्षयरोग मनुष्य पर कोई असर नहीं करता। इसलिए इस रोग से पीड़ित पशुओं का दूध पीने से कोई हानि नहीं है। काख जैसे विद्वान् के मुँह से यह बात सुन कर समस्त संसार के चिकित्सकों को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। इसलिए इस बात को पूर्णतया निश्चित करने के लिए योरोप के सब देशों ने मिल कर इस विषय पर परामर्श करने के लिए एक कमीशन नियत की। उस कमीशन ने अन्त में यह पूरी तरह से साबित कर दिया कि गाय भैंसों में होनेवाला क्षयरोग मनुष्य पर असर करता है—तथा अनेक प्रकार के क्षयरोग जो प्रायः मनुष्यों में देखे जाते हैं इनका मुख्य कारण दूध ही है :—

क्षयरोग कई प्रकार का होता है।

प्रथम फेफड़े में जिसके मुख्य लक्षण, खाँसी कफ़ के साथ ख़ून, बुख़ार, क्षीणता तथा अन्त में मृत्यु है।

द्वितीय—पेट में गाँठें पड़ जाना। तथा इसके साथ जलंधर और दस्त होजाना। यह बीमारी अधिकतर बच्चों में होती है। यह उन्हीं बच्चों में होती है जो अकसर गाय या भैंस के दूध से पाले जाते हैं। इस रोग के कारण हर साल हमारे देश के हज़ारों बच्चे काल के ग्रास हो जाते हैं। इस रोग का पेट में गाँठें पड़ जाना मुख्य लक्षण नहीं है किन्तु दस्त होना तथा प्रति दिन सूखते जाना ये लक्षण प्रायः सदैव देखे जाते हैं। हर एक शफ़ाख़ाने में नौ फ़ी सैकड़ा बालक केवल इसी रोग से पीड़ित दिखाई पड़ते हैं। यद्यपि प्लेग, मैलेरिया, हैज़ा इत्यादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोग एक से एक बढ़ कर नाशकारी हैं, किन्तु जिस प्रकार जीवनाश यह क्षयरोग करता है, उसको लिखते लेखनी काँपती है। जो मातायें अपने नन्हे नन्हे बच्चों को बड़े प्रेम के साथ माठा दूध पिलाती हैं उनको यह पता नहीं होता कि वे अपने ही हाथों अपने कलेजे की कोर को विष दे रही हैं। पता उस समय लगता है जब धीरे धीरे गुलाब के फूल जैसा सुकुमार और प्रफुल्लित बालक का मुँह सूख कर गूलर का फूल हो जाता है। उस समय डाक्टर हकीम तथा वैद्यों की शरण जाती हैं। संखिया, कुचला, अफ़ीम, भाला तेलिया इत्यादि कड़ुवे ज़हरों से बचने बचाने के लिए अनेक उपाय किये जाते हैं किन्तु इस मीठे ज़हर को लोग अपने हाथों पीते हैं तथा अपने चिरजीवियों को पिलाकर लघुजीवा बनाते हैं। या यों कहना चाहिए कि हम स्वयं मौत के मुँह में जाते हैं तथा औरों को ढकेलते हैं। जिस दूध की तुलना हमारे प्राचीन ग्रन्थों में सुधा से की गई है वह दूध समय के प्रभाव से इस प्रकार भ्रष्ट किया गया है कि अब जब तक उसका सुधार नहीं होगा उसको साक्षात् विष कहना अत्युक्ति नहीं होगी।

यहाँ हम कण्ठमाल, (Scrofula) या जोड़ों की बीमारी (Tubecular Arthritis) इत्यादि जो क्षय-रोग के अनेक रूप हैं, इनका वर्णन करके पाठकों का समय नष्ट नहीं करना चाहते। क्षयरोग के अलावा अल्प रोग जो दूध के कारण होते हैं उनके ये नाम हैं।

हैज़ा—हम पहले कह चुके हैं कि दूध स्वयं एक अत्युत्तम तथा निर्दोष पदार्थ है। किन्तु वर्तमान दशा में उसका स्वच्छ हालत में मिलना प्रायः असम्भव है। जब किसी शहर या गाँव में हैज़ा एक वार शुरू हो जाय तो फिर उस जगह के पानी तथा दूध के द्वारा यह दावानल की तरह फैलता है। विशेष कर उन स्थानों में जहाँ दूध की व्यवस्था बिल-कुल ठीक नहीं है।

पानीझरा—(Typhoid)

संग्रहणी—(Dysentery)

मालटा ज्वर—(Malta Fever)

दस्त, आमाशय, वायु, इत्यादि सब रोग दूध के ही कारण होते हैं। हम यहाँ केवल रोगों की ही सूची देकर पाठकों को डराना नहीं चाहते। किन्तु अब हम उन उपाये लेख करते हैं जिनके करने से हमारा प्यारा दूध इन दोषों से बच कर हमें स्वच्छ रूप में मिल सकता है। अथवा दोषयुक्त भी प्राप्त हो तो हम उसको दोषरहित बना सकते हैं। पश्चिमीय देशों में दूध की व्यवस्था प्रशंसनीय है। उसके संक्षेप वर्णन से विदित होगा कि स्वच्छ दूध प्राप्ति के लिए कैसे कैसे कठिन उपायों का प्रयोग करना पड़ता है।

विलायत में दूध बेचने का अधिकार हर एक पुरुष को प्राप्त नहीं है। तथा दूध बेचने के लिए हर एक मनुष्य अपने घर में गाय भैंस नहीं रख सकता। जो लोग दूध का व्यापार करना चाहते हैं उनको अपने पशुओं के रहने, चरने तथा उनकी स्वास्थ्य-रक्षा करने का उचित प्रबन्ध करने के लिए सरकार उन्हें बाध्य करती है। उसकी गायों का निरीक्षण समय समय पर होता रहता है। यदि इन जानवरों के रहन सहन के प्रबन्ध में कुछ भी त्रुटि पाई जाती है तो उसका दूध नहीं बिक सकता। यदि किसी गाय को क्षयरोग होता है तो उसको तुरन्त अन्य गायों के साथ से चरने तथा रहने से रोक दिया जाता है और उसका दूध बिकने नहीं पाता। न केवल गाय भैंसों ही का इतना कठिन निरीक्षण है किन्तु दूध दुहनेवाले ग्वालों के हाथ तथा दूध के बरतनों की भी सफ़ाई पर विशेष ध्यान दिया जाता है। यहाँ तक प्रबन्ध है कि गाय के स्तनों को दूध निकालने से पहले पूरी तरह धो लिया जाता है। जिन बरतनों में दूध इकट्ठा होकर शहर को बिक्री के लिए भेजा जाता है वे एक इन्स्पेक्टर के सामने ताले से बन्द किये जाते हैं ताकि रास्ते में दूध के ख़राब होने की कोई सम्भावना न रहे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब दुकानदारों के पास यह दूध आता है तब उनको इसे किसी हवादार जगह में रखना होता है।

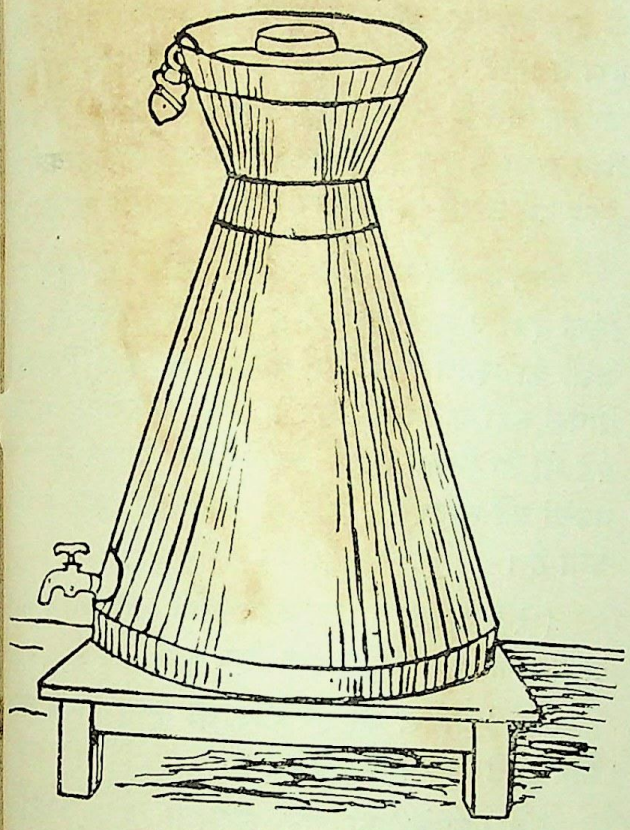

ताले से बद किया दूध का पात्र।

इन लोगों को बरतन के ढक्कन का ताला खोलने की आज्ञा नहीं है न इनके पास चाबी ही होती है कि जिससे यह खोल सकें। दूध निकालने के लिए इस बड़े बरतन के पेट में एक नल (जो पानी के नल की तरह खुलता है, लगा होता है। इसी का पेच खोल कर दूध निकाला जाता है।

इतना होने पर भी ग्राहकों को यह हक़ होता है कि वे दूध में अगर कोई ख़राबी पावें तो कमेटी को सूचना देकर दुकानदार को ठीक करवा दें।

अब हमें यह सोचना है कि अपने देश में भी हम इस रीति का प्रयोग कर सकते हैं या नहीं। भारतवासी गोभक्त हैं। हम लोग गो माता की सेवा तथा रक्षा के लिए तन, मन, धन से तैयार हैं। यदि विलायत जैसे देश में यह प्रबन्ध इतनी आसानी से हो गया तो हमारे यहाँ जहाँ गाय एक प्रातः-स्मरणीय तथा सर्वपूजनीय जीव है वहाँ इसका प्रबन्ध होते क्या देर लगती है। इसमें राजा प्रजा दोनों का भला है।

हमारी तुच्छ बुद्धि में सबसे आसान तरीक़ा यही है कि प्रत्येक शहर के धनवान् पुरुष चन्दे से कम्पनियाँ बना कर गोशालायें खोलें, जिनमें तन्दुरुस्त गायें रक्खी जायँ। उनके लिए चरागाह भी बनाये जायँ। उनका दूध निकाल कर इस प्रकार रक्खा जाय कि उसको बिक्री तक हाथ का स्पर्श न होने पावे।

धर्म्म के और तन्दुरुस्ती के विचार से हमारे देश में दूध का सुधार प्रति दिन अत्यावश्यक होता जाता है। जो लोग गाँवों में या छोटे शहरों में रहते हैं उनको इस कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। इसलिए यदि ये लोग इस विषय में उदासीन हों तो कोई आश्चर्य्य नहीं। यद्यपि हमें भविष्यवाणी करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है तथापि हम अनुमान से कह सकते हैं कि आज से दश वर्ष में दूध का बहुत कुछ सुधार हो जायगा। तथा उसमें सरकार को बहुत कुछ सहायता देनी पड़ेगी।

आज कल हमें जैसा दूध मिलता है उसी से काम निकालना पड़ता है। इस दशा में हम निम्नलिखित उपायों से दूध द्वारा फैलनेवाले रोगों से बच सकते हैं। उन उपायों के लिखने से पहले हम अच्छे दूध के पहचानने का तरीक़ा बता देना आवश्यक समझते हैं। स्वच्छ दूध की स्पेसिफिक ग्रविटी (Specific Gravity) १०२८ से १०३४ तक होती है। अगर दूध से मलाई निकाल ली जावे तो उसकी स्पेसिफ़िक ग्रेविटी १०३३ से १०३७ तक हो जाती है इसलिए बहुतेरे लोग दूध में से मलाई या मक्खन निकाल कर उसमें पानी मिलाकर उसकी "स्पेसिफिक ग्रेविटी" मामूली दूध के बराबर कर देते हैं—इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए। दूध की स्पेसिफ़िक ग्रेविटी मालूम करने का एक विशेष यंत्र होता है उसको "लेक्टोमीटर" (Lactometer) कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वच्छ दूध में किसी प्रकार की गन्ध नहीं आनी चाहिए इसके स्वाद में किसी प्रकार का खट्टापन या कड़आपन न होना चाहिए। जो दूध स्तनों से निकालने के पश्चात् बिना गरम किये तीन घंटे से अधिक पड़ा रहे उसको नहीं पीना चाहिए। जो दूध आज कल बड़े शहरों में मिलता है उसको हमेशा गरम करके पीना चाहिए। दूध को अधिक देर उबालने से उसके बहुत से गुण मारे जाते हैं। एक बार उफान आने पर दूध को आग से नीचे उतार देना चाहिए। यदि हो सके तो दूध के उबालने के लिए नीचे दिये हुए आकार का बरतन ख़रीदना चाहिए। यह बरतन दो तहों का बना होता है।

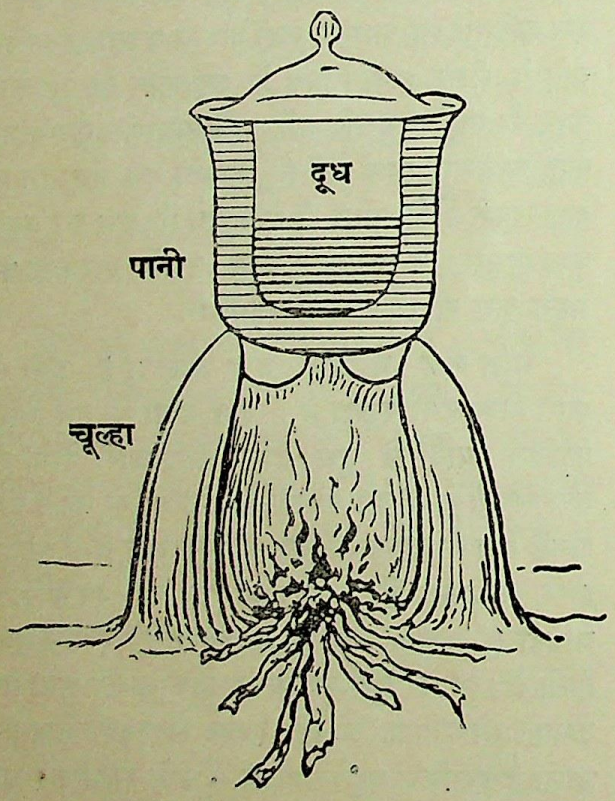

बाहर के ख़ाने में पानी भर दिया जाता है—उसी पानी की गरमी से अन्दर का दूध गरम होता है। दूध के बरतन को आग की आँच नहीं लगती। इसलिए दूध की बहुत सी गुणदायक वस्तुएँ नहीं जल जातीं।

बच्चों के लिए दूध हमेशा गरम करके काम में लाना चाहिए। उनके लिए गाय के दूध को माता के दूध का सा बनाने के लिए यह उपाय है। गाय के दूध में फ़ैट तथा प्रोटीन पदार्थ माता के दूध से अधिक होते हैं और शक्कर कुछ कम होती है। इसलिए गाय के दूध को माता के दूध की तरह बनाने के लिए हमें उसमें पानी और शक्कर मिलानी चाहिए।

अन्त में हम यह लेख समाप्त करने से पूर्व यह लिख देना उचित समझते हैं कि जहाँ तक हो सके बच्चों को कृत्रिमस्तन या बोतलों से दूध पिलाकर पोषण नहीं करना चाहिए। यदि अकस्मात् करना पड़े भी तो निम्नलिखित नियमों का पालन करने से बच्चों की तन्दुरुस्ती में फ़र्क़ पड़ने की कम सम्भावना है।

(१) बोतल में एक बार पीने लायक़ दूध से अधिक कभी नहीं होना चाहिए।

(२) बोतल को हर रोज़ दो दफ़ा गरम पानी और सोडे से धोना चाहिए।

(३) बच्चे को हर मरतबा दूध पिलाकर बोतल को गरम पानी में रख देना चाहिए।

(४) दूध बासी या बिना गरम किये कभी नहीं काम में लाना चाहिए।

(५) दूध का सत या विलायती टीनों में रक्खा हुआ दूध बच्चों को किसी दशा में नहीं देना चाहिए।

(६) जिस ग्वाला के यहाँ से दूध आता हो उसके यहाँ जाकर उसकी गायों को तथा उसके दूध निकालने के तरीक़ों को एकाध बार अवश्य देख लेना चाहिए।

(७) घर में दूध हमेशा स्वच्छ वस्तु से ढक कर हवादार मकान में जहाँ कोई सोता बैठता न हो रखना चाहिए।

रामनारायण शर्म्मा।
एल० एम० एस०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

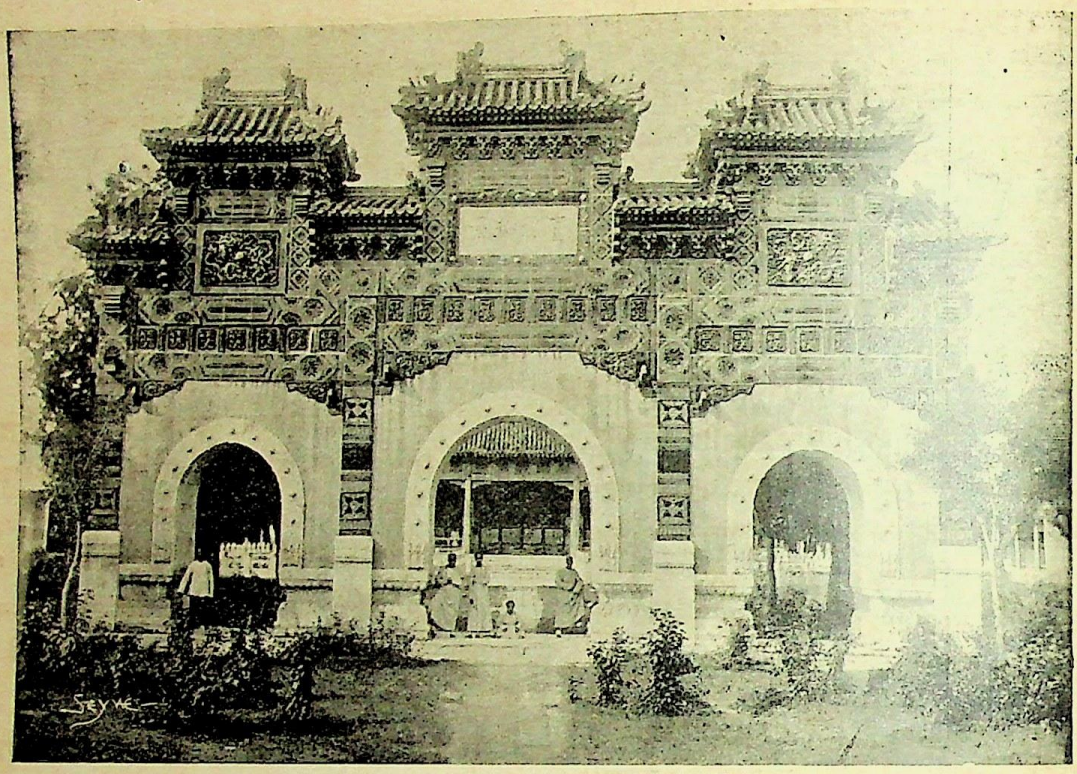

पेकिन का फाटक ।

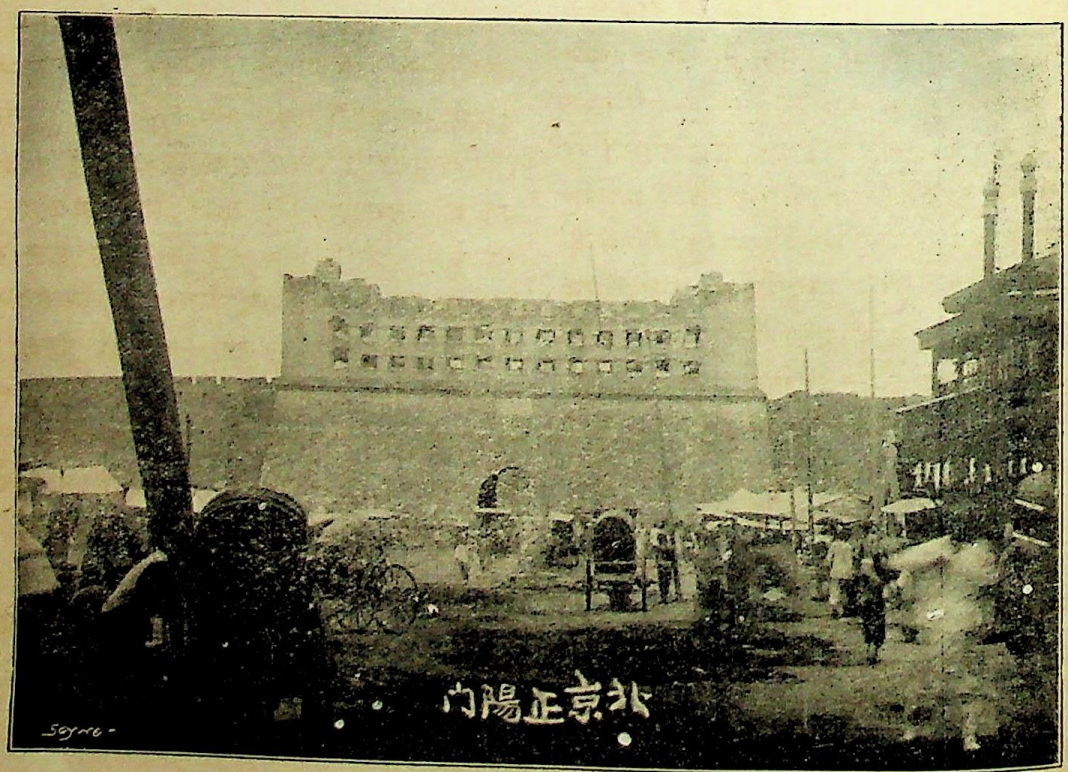

पेकिन का दूसरा फाटक ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीसमर्थ रामदासस्वामिकृत दासबोध।

[गताङ्क से आगे]

११—लोकोद्धार के तीन उपाय।

समर्थ ने अपने दासबोध में इस बात का विस्तृत विवेचन किया है कि सिद्ध और साधकों को मुमुक्षुजनों की सहायता से, बद्ध लोगों का उद्धार किस तरह करना चाहिए—परतन्त्र लोगों के मन में स्वतन्त्रता की इच्छा उत्पन्न करके, उनका बन्धन किस प्रकार तोड़ना चाहिए। यही इस ग्रन्थ की विशेषता है। इस विषय का निरूपण करते हुए समर्थ ने समाज के उद्धार के—लोकोद्धार के—तीन उपाय बताये हैं। (१) नीति-स्थापना; (२) धर्म्मस्थापना; और (३) राज्यस्थापना।

हरि कथा निरूपण। नेमस्तपणें राज कारण।
वर्तायाचें लक्षण। तेंही असावें। ४।
द० ११ स० ५॥

समर्थ ने अपनी भाषा में इनके ये नाम रक्खे हैं:—बर्ताव का लक्षण या सद्वर्तन; (२) हरिकथा निरूपण और (३) राजकारण। इन तीन उपायों से ही समाज स्वतन्त्र रहता है। अथवा परतन्त्र समाज का उद्धार करने के लिए—उसको स्वतन्त्र करने के लिए—सिद्धों को इन्हीं तीन उपायों का अवलम्बन करना चाहिए। यदि यह अभिलाषा और आवश्यकता है कि समाज मुक्त होवे, स्वतन्त्र होवे, परमार्थ का उपभोग करे, तो सिद्ध और साधकों को मुमुक्षु—ज्ञातंश्येच्छुक—लोगों की सहायता से इन्हीं तीन उपायों की योजना—स्थापना—करनी चाहिए। ऐसा न समझिए कि इस काम में सिद्ध और साधकों को कोई लाभ नहीं है। इस कार्य से समाज का हित तो होगा ही; पर सिद्ध और साधकों का भी हित है। समाज को दुःखित, पीड़ित, त्रस्त, विपन्न-बद्ध देखकर सिद्धों का अन्तःकरण भी दुःखित होता है। तात्पर्य, समाज के दुख से सिद्धों को भी खेद होता है। अतएव समाज के दुःख विमोचन करने से—समाज को बन्धनमुक्त करने से—सिद्ध पुरुषों को भी सुख होता है। इसलिए समाज का उद्धार करना सिद्धों का स्वतः सिद्ध कर्तव्य है। अब इन तीन उपायों का पृथक् पृथक् विवेचन करेंगे।

१—नीति-स्थापना। उपर्युक्त उपायों में से प्रथम नीति की स्थापना होनी चाहिए। बद्धजन-समुदाय में नीति का अत्यन्त लोप हो जाता है। स्वधर्म, भूतदया और आत्मज्ञान को तो वे भूले रहते ही हैं; परन्तु निन्दा, द्वेष, अनीति, अनाचार, आलस, कपट, कलह, क्रूरता, कातरता, पाखण्ड, पाप, दुराशा आदि दुर्गुणों का बड़ा विकट आवरण उन लोगों पर छाया रहता है। इस आवरण को निकालना—इन दुर्गुणों का दूर करना—नीति का काम है। नीति की स्थापना से मलिन वृत्तियाँ विमल हो जाती हैं और मनुष्य अपने सुधार के—अपने उद्धार के—मार्ग में लग जाता है। जब सिद्ध पुरुषों के उपदेश से—सद्गुरु के उपदेश से—यह मालूम हो जाता है कि माया के सत्व, रज, तम तीन गुणों में से कौन ग्राह्य और कौन त्याज्य है; तब ऐसा समझिए कि उद्धार का बहुत बड़ा काम हो चुका। मनुष्य को जिधर झुकाओ उधर झुक सकता है। उसे नीति की ओर लगाओ, तो उधर लग जायगा; अनीति की ओर लगाओ तो वह उसी में फँस जायगा। इस प्रकार, नर देह के विषय में प्रस्तावना करके समर्थ ने चतुर और मूर्ख, कुविद्या और सुविद्या, सत्वगुण और तमोगुण का निरूपण द० २, स० २ में किया है। जो अज्ञ हैं, वे नीति जानतेही नहीं; इसलिए यदि वे कुलक्षणी हों तो कोई आश्चर्य नहीं। ऐसे लोग उपदेश-द्वारा सुधर सकते हैं। परन्तु "ज्ञान-लवदुर्विदग्ध" अहम्मन्य पण्डितों का एक वर्ग होता है, जिसे समर्थ श्रीरामदास स्वामी 'पढ़त मूर्ख' कहते हैं, उनकी नीति कैसे सुधारी जाय? भर्तृहरि ने कहा है:—

ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तन्नरं न रञ्जयति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थः—अर्द्ध-दग्ध जड़ जीव कहँ विधिहुन रिझवन जोग।

प्रतापसिंह।

सचमुच इन पढ़त मूर्खों को सुधारना बड़ी टेढ़ी खीर है। ये लोग बहुश्रुत और व्युत्पन्न होते हैं; ब्रह्मज्ञान की बड़ी बड़ी बातें बतलाते हैं; परन्तु काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर, दम्भ, दुराशा और अहङ्कार के चक्कर में ऐसे पड़े रहते हैं कि वे अपने ही धर्म की निन्दा करते हैं; भक्तिमार्ग का उच्छेद करते हैं; भूत-दया को भूल जाते हैं। वे स्वयं ऐसा करते हैं और अज्ञ जनों से भी करवाते हैं। ऐसे पढ़त मूर्खों को भी नीति की शिक्षा देना, सब समाज के उद्धार की दृष्टि से, अत्यन्त आवश्यक है। समर्थ कहते हैं कि इस प्रकार मूर्ख और पढ़त मूर्ख दोनों को नीति की शिक्षा देना और उस शिक्षा के लिए संस्था स्थापित करना परमार्थ-प्राप्ति या समाज के उद्धार का पहला उपाय है।

२—धर्म्मस्थापना। धर्म्म से तात्पर्य, यहाँ परमेश्वर की उपासना या भक्ति से है। भक्ति नव प्रकार की है। इनमें नवीं भक्ति आत्म-निवेदन-श्रेष्ठ है; अर्थात् यही श्रेष्ठ धर्म्म है। अन्य आठ प्रकार की भक्तियों से, जीवात्मा और परमात्मा में भेद भाव रह जाने की सम्भावना है—अर्थात् भक्त और ईश्वर में द्वैत की कल्पना कदाचित् रह सकती है; पर आत्म-निवेदन के द्वारा भक्त के मन में विभक्ति का भाव नहीं रहता। इससे अभिन्नता, अनन्यता या ऐक्य वृत्ति होती है। यह उपासना प्रत्यक्ष आत्मज्ञान ही है। समर्थ के मतानुसार उपासना और ज्ञान भिन्न नहीं है। उपासना ज्ञान स्वरूप है—उपासना ही ज्ञान है। समर्थ ने अपने इस ग्रन्थ के अनेक स्थलों में उपासना का माहात्म्य गाया है। समर्थ अभिमान और विश्वासपूर्वक कहते हैं कि :—

"उपासना सर्वव्यापक है; आत्माराम कहाँ नहीं है? ठौर ठौर में राम भरा हुआ है! ऐसी मेरी उपासना है—वह कल्पनातीत है। वह निरञ्जन (परब्रह्म) के पास पहुँचा देती है"। अध्यात्म विद्या का श्रवण, देवपूजन, भजन, कीर्तन, सन्ध्यादि ब्रह्मकर्म, इन सबका समावेश उपासना में होता है। सारांश, कर्म और ज्ञान का समावेश उपासना मार्ग अर्थात् भक्ति मार्ग में हो सकता है। भक्ति मार्ग में प्रतिमापूजन—मूर्त्तिपूजा—कही है। परन्तु, स्मरण रहे कि प्रतिमा या मूर्त्ति, परमेश्वर का प्रतिनिधि-रूप है—स्वयं उस (प्रतिमा) का रूप या नाम परमेश्वर नहीं है। इस बात की चर्चा समर्थ ने ठौर ठौर में की है। जिस परमेश्वर की प्रतिमा हम पूजते हैं, उसको पहचानना चाहिए :—

"नाना देवों की नाना प्रतिमायें लोग प्रेमपूर्वक पूजते हैं; पर वास्तव में यह पहचानना चाहिए कि जिसकी प्रतिमा है वह परमात्मा कैसा है—पहचान कर भजन करना चाहिए। जैसे पहचान लेने पर साहब को बन्दगी या नमस्कार करते हैं, वैसे ही मूल परमात्मा को पहचान कर मूर्त्ति की पूजा करनी चाहिए।" अपनी कल्पना के अनुसार बनाई हुई परमेश्वर की प्रतिमा में परमेश्वर का ध्यान करनाही उपासना है। प्रतिमा का आकार—रूप—चाहे जैसा हो, और उसका नाम चाहे जो रक्खा गया हो; पर मुख्य बात यह है कि वह एक ही परब्रह्म (वस्तु) की भिन्न भिन्न प्रतिमायें और नाम है। खँडोबा, विठोबा, नारायण, राम, कृष्ण, लक्ष्मी, शिव, विष्णु, सरस्वती आदि अनेक प्रकार के नाम उसी एक अनिर्वाच्य वस्तु को दिये गये हैं। इस अनिर्वाच्य वस्तु—परब्रह्म—परमात्मा की एकता को, उपासना करते समय, कदापि भूल न जाना चाहिए। स्वधर्म, कुलधर्म, वर्णाश्रम-धर्म, सब एक उपासना-धर्म अर्थात् भक्तिमार्ग में आजाते हैं। लोगों को इस उपासना धर्म में—भक्तिमार्ग में—प्रवृत्त करनाही, उनको परमार्थमार्ग में लगाना है। अतएव भक्तिमार्ग की स्थापना, स्वधर्म की स्थापना, समाज के उद्धार का—मुक्ति या स्वतन्त्रता का—दूसरा बड़ा उपाय है। धर्मस्थापन करनेवाले सिद्ध पुरुष साक्षात् ईश्वर के अवतार हैं :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मस्थापने चे नर। ते ईश्वराचे अवतार।
जाले आहेत पुढे होणार। देणे ईश्वराचें। २०।
द० १० स० ६

"धर्मस्थापन करनेवाले नर ईश्वर के अवतार हैं—वे हो गये हैं और आगे होनेवाले हैं! देना ईश्वर के हाथ में है।"

३—राज्यस्थापना। नीति और धर्म की स्थापना से परमार्थ-मोक्ष, मुक्ति, स्वतन्त्रता—की अंशतः प्राप्ति होती है—समाज का अंशतः उद्धार होता है। परन्तु उसकी पूर्णता के लिए—उस लाभ को अप्रतिबद्ध और चिरस्थायी करने के लिए—राज्यस्थापन की आवश्यकता है। समाज में सभी लोग मुमुक्षु मोक्ष या स्वतन्त्रता की इच्छा करनेवाले—अर्थात् नीतिमान् और धार्मिक नहीं होते। अधिकांश जन बद्ध होते हैं—परतन्त्र और अनीतिमान् होते हैं—अतएव अधर्मी होते हैं। नीतिमानों और धार्मिकों की प्रवृत्ति, नीति और धर्म की ओर होती है; अनीतिमानों और अधार्मिकों की प्रवृत्ति, अनीति और अधर्म की ओर होती है। इसलिए जब सिद्ध या साधक, मुमुक्षु जनों की सहायता से, समाज के उद्धार के लिए, नीति और धर्म की स्थापना का यत्न करने लगते हैं, तब बद्ध जन अर्थात् अनीतिमान् और अधर्मी लोग विरोध करते हैं—विघ्न उपस्थित करते हैं। इस विरोध का फल यह होता है कि नीति और धर्म की स्थापना पूरी तरह नहीं हो पाती; और यदि हुई भी तो वह बहुत समय तक टिक नहीं सकती; और अन्त में सारा समाज परमार्थ से परावृत हो जाता है। यह स्थिति मुमुक्षु जनों के लिए अत्यन्त हानिकारक होती है। मुमुक्षु जनों की संख्या स्वभावतः कम होती है; इसलिए वे केवल नीति और धर्म के बल पर बद्धजनों (अनीतिमान् और अधर्मी लोगों) को अपने दबाव में रखकर अनीति और अधर्म का पराभव नहीं कर सकते। सारांश, नीति और धर्म की रक्षा करने तथा अनीति और अधर्म का उन्मूलन करने के लिए किसी एक शासकसंस्था की आवश्यकता होती है। उसी का नाम राजसंस्था है।

स्वधर्म का विरोध करनेवाले हज़ारों बद्धजन प्रत्येक समाज में होते हैं। नास्तिक और पाखण्डी लोग तो देव और धर्म के विरुद्ध झगड़ा मचाने का बीड़ा ही उठाये रहते हैं। सिद्ध और साधक जन तीव्र तप करके महाभाग्य से परमार्थ प्राप्त करते हैं, ज्ञान का अनुभव करते हैं; परन्तु तामस वृत्ति में डूबे हुए, वृद्धावस्था में रह कर मिथ्या पदार्थ—सुख में ही आनन्द माननेवाले, मूढ़ लोगों को पूर्वोक्त सज्जनों की पारमार्थिक संस्था का रहस्य समझ नहीं पड़ता—इस लिए वे द्वेष करते हैं, उनकी निन्दा करते हैं। इतना ही नहीं वे हमारी संस्था भङ्ग करने का प्रयत्न भी करते हैं। ऐसे दुष्ट और अधम लोगों से धर्म की रक्षा करने के लिए एक शासक संस्था अवश्य चाहिए। जहाँ न्याय और धर्म का प्रसार होता है—जहाँ मुमुक्षु वर्ग का उदय होता है—जहाँ स्वतन्त्रता की इच्छा रखनेवाले लोग बढ़ने लगते हैं—वहाँ समाज का नियमन, प्रबन्ध और शासन करने के लिए, राज्यसंस्था निर्माण करने की आवश्यकता प्रतीत होती ही है। सच पूछो तो परमार्थ-प्राप्ति के लिए यत्न करनेवाले समाज में, नीति और धर्म के बल पर स्थापित की हुई राज्यसंस्था आपही आप दीखने लगती हैं।

इस राज्यसंस्था का तत्व दासबोध में अति मार्मिकता से प्रतिपादित किया गया है। व्यक्तिभूत नर देह का आश्रय करके रहनेवाला आत्माही 'जाणीव' या ज्ञानरूप है। मायोत्पादित देह का आवरण होने के कारण उस आत्मा का ज्ञान अपूर्ण रहता है। पूर्ण ज्ञान का अखण्ड निधि जो परात्पर परमात्मा है, उसके साथ सायुज्यता प्राप्त होने के लिए, इस अपूर्ण ज्ञान रूप आत्मा को, अपने से अधिक ज्ञान के अधिष्ठान का आश्रय करना पड़ता है।

रायाचे सत्तेनें चालतें, परन्तु अवघीं पञ्चभूतें।
मुठीं अधिक आणीवेचे तें, अधिष्ठान आहे। ४।
द० १५ स० ४

राजा अथवा राजसंस्था अधिक ज्ञान का अधिष्ठान है—यह सिद्धान्त प्रतिपादन करने के लिए दृष्टान्तः—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुरस्ता दाटल्या फौजा, उंच सिँहासनीं राजा।
याचा विचार समजा, अन्तर्यामीं। २।
१५—३—

हज़ारों सैनिकों का समूह सामने खड़ा रहता है; पर राजा ऊँचे सिंहासन पर विराजमान होकर अपने विशेष अधिकार से सबको आज्ञा देता है—इसी तरह लाखों, करोड़ों लोगों के समाज पर, विशेष ज्ञान के कारण, परमेश्वररूपी राज्य-संस्था शासन करती है।

विवेकें बहुत पैसावले। ह्मणोंन अवतारीं बोलिले।
मनु चक्रवर्ती जाले। येणें चि न्यायें। ५।
१५—३—

आज तक जिन जिन अवतारी राजाओं ने राज्य स्थापित किया, वे सब 'विवेक', अर्थात् 'ज्ञान' के विशेष 'अधिष्ठान' थे। भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि "नराणां च नराधिपम्"—मनुष्य समाज में राजा मैं हूँ। इस प्रकार राजा परमेश्वर-रूप है और राज्यसंस्था परमेश्वर का अधिष्ठान है। इस राज्यसंस्था का मुख्य कार्य यही है कि वह धर्म और नीति की सहायता करे और स्वयं भी धर्म-नीति की सहायता से चले। यह पहले कह आये हैं कि धर्म और नीति का उद्देश परमार्थ-प्राप्ति है। इसलिए राज्यसंस्था का भी मुख्य हेतु परमार्थ-प्राप्ति ही होना चाहिए। यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि परमार्थ, मुक्ति, मोक्ष, या स्वतन्त्रता मनुष्य-जाति के उद्धार को कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जब मानवी समाज, परमार्थ-लाभ के लिए यत्न करने लगता है, जब वह परतन्त्रता के जाल से छूटने का उपाय करने लगता है—तब उसको नीति, धर्म और राज्य, इन तीन संस्थाओं का आश्रय लेना पड़ता है। इन्हीं संस्थाओं के आधार पर मनुष्य समाज नैतिक, धार्मिक और राजकीय स्वतन्त्रता—अतएव पूर्ण स्वातन्त्र्य या मोक्ष—प्राप्त करता है।

१२—उक्त संस्थायें कैसे स्थापित करना चाहिए।

समर्थ सिर्फ़ इतना ही बतला कर नहीं रह गये कि परमार्थप्राप्ति के लिए नीति धर्म और राज्य की संस्थायें आवश्यक हैं। किन्तु उन्होंने विस्तार-पूर्वक यह भी बतलाया है कि परोपकार बुद्धि से समाज का उद्धार करने के लिए इन संस्थाओं को किस तरह स्थापित करना चाहिए। (१) नीति-संस्था :—सिद्धों को एकान्तवासपूर्वक लोक-समुदाय इकट्ठा करके, उसके अनुभव से अपने समय की वास्तविक नैतिक दशा का विचार करना चाहिए। उत्तम गुणों का सम्पादन करके, लोगों को सिखाना चाहिए और अपना समुदाय उत्तरोत्तर बढ़ाना चाहिए। समुदाय के लोगों की योग्यता के अनुसार उन्हें काम सौंपना चाहिए और उनमें जो पुरुष पास रखने योग्य हों उन्हें पास रखना चाहिए जो दूर रखने योग्य हों उन्हें दूर काम पर भेजना चाहिए। लोगों की मण्डलियाँ—सभा समाज बना कर उनमें भूतदया का बीजारोपण करने से नीति की स्थापना होगी। कारण यह है कि ज्ञानरूप से सबके अन्तःकरण समान होते हैं।

यह ज्ञान सब भूतों में—जीवों में—एक रूप होने के कारण सब लोगों को आत्मतुल्य मानना मनुष्य का सहज धर्म है। यह नीति-स्थापना की अत्यन्त सूक्ष्म विधि यहाँ हमने बतलाई। दासबोध में अत्यन्त विस्तृत वर्णन, विशेषता के साथ किया गया है। सब बातें मूल ग्रन्थ पढ़ने से ही मालूम हो सकती हैं। (२) धर्म-भजन-संस्था :—भक्तिमार्ग के लिए ब्राह्मण-मण्डली, सन्त-मण्डली और भक्त-मण्डली स्थापित करना चाहिए।

ब्राह्मण मण्डल्या मेळवाव्या। भक्तमण्डल्या मानाव्या।
सन्त मण्डल्या शोधाव्या। भूमण्डळीं ॥ १४ ॥
१९—६

परमात्मा के ज्ञानपूर्वक भजन से दशों दिशायें गूँज उठनी चाहिएं। इस उपाय से कर्ममार्गी कर्मठ

Digitized by Arya Samaj Foundation

ब्राह्मण, ज्ञानमार्गी साधु सन्त और केवल भजन-प्रिय, सब जाति और वर्ण के भक्तजन, एक दिल से प्रेम-पूर्वक, एकत्र हो सकते हैं। धर्मस्थापना करना सिद्धों का—साधुओं का—मुख्य कर्तव्य है :—

ऐसा जो महानुभाव। तेणें करावा समुदाव।
भक्ति योगें देवाधिदेव। आपुला करावा ॥३२॥
१२—१०

शहाणे करावे जन। पतित करावे पावन।
सृष्टीमधें भगवद्भजन। वाढ़वावें ॥३३॥
१४—६

ऐसे महानुभावों को समुदाय एकत्र करना चाहिए और भक्तियोग से उस देवाधिदेव परमात्मा को अपनाना चाहिए। लोगों में नाना प्रकार की चतुराई फैलाना चाहिए। पतितों को पावन करना चाहिए और संसार भर में भगवद्भजन बढ़ाना चाहिए। सिद्धों को इस धर्मस्थापना का प्रबन्ध अपने ही जीवन भर के लिए न करना चाहिए, क्योंकि :—

आपण अवचितें मरोन जावें। मग भजन कोणें करावें।
या कारणें भजनास लावावे। बहुत लोक ॥३३॥
१२—१०

अचानक एक दिन मृत्यु हो जाने पर फिर भजन कौन करेगा? इसलिए बहुत लोगों का समुदाय एकत्र करके, उसे भजन में लगाना चाहिए। किसी मत का पूर्ण प्रसार करने के लिए अकेले मनुष्य की अपेक्षा वह जनघटित समाज, सभ्य, समुदाय या मण्डल अधिक उपयोगी है। आज कल के बहुतेरे लोग कहते हैं कि यह प्रथा नई है—यहाँ विदेशियों ने चलाई है; पर देखना चाहिए कि श्रीसमर्थ कितने दिन पहले अपने दासबोध में इसका वर्णन—एक जगह नहीं अनेक स्थलों पर—कर गये हैं। सभा, समाज और मण्डलियों का उपयोग वर्तमान समाज के लोग जानने लगे हैं; पर इस विषय में भी बहुत सी बातें अभी दासबोध से जान कर अमल में लाना बाक़ी है। अस्तु, दो चार व्यक्तियों का मन हाथ में कर लेने से कुछ अधिक लाभ नहीं। महत्कार्य की सिद्धि के हेतु बहुतेरों का मनोगत जानना चाहिए :—

जेणें बहुतांस घडे भक्ति। ते हे रोकड़ी प्रबोधशक्ति।
बहुतांचे मनोगत हातीं। घेतलें पाहिजे ॥३७॥
१२—१०

सिद्धों में प्रबोध-शक्ति—दूसरों को बोध करनेकी शक्ति—वक्तृत्व शक्ति का होना अत्यन्त आवश्यक है। जब तक यह शक्ति न होगी तब तक बहुत लोगों का मन, अपने हाथ आजाना कठिन है, नहीं नहीं असम्भव और यदि उनका मनोगत न जान पाया, तो समुदाय में मिला कर उन्हें भक्ति में कैसे लगा सकते हैं? इस काम में बहुत उतावली भी न करनी चाहिए। अन्यथा अनीतिमान्, अधार्मिक स्वार्थी बद्ध लोगों से विघ्न आ पड़ने की अधिक सम्भावना है। यह बात हम ऊपर भी कह चुके हैं। दासबोध में इस विषय का सबसे अधिक विवेचन किया गया है—धर्म ही इस ग्रन्थ का आलोच्य विषय है। हमने यहाँ संक्षेप में बतलाया है। अधिक जानने की उत्कण्ठा, रखनेवालों को मूल ग्रन्थ का ही मनन करना चाहिए।

(३) राज्यसंस्था—इस संस्था का स्थापित करना भी सिद्ध लोगों का—साधु और निस्पृह लोगों का—महन्त पुरुषों का उतना ही ज़िम्मेदारी का कर्तव्य है, जितना नीति और धर्म की संस्थाओं के विषय में है। इस काम के लिए साधुओं को बहुत बहुत बड़ा समुदाय करना पड़ता है, और उसको दृढ़तापूर्वक अपने अधीन रख कर सदा कर्तव्य में तत्पर रखना पड़ता है। श्रीसमर्थ इस विषय में कहते हैं :—

समुदाव पाहिजे मोठा। तरी तनावा असाव्या बळकटा।
मठ करून ताठा। धरूँ नये ॥२२॥

भारी समुदाय को दृढ़ता-पूर्वक अपने अधिकार में तो रखना ही चाहिए, पर बड़े दम दिलासे के साथ समुदाय से काम लेना चाहिए; क्योंकि समुदाय बना कर उसके साथ अकड़बाजी नहीं कर सकते। अकड़बाजी करने से फूट पैदा हो जाती है। अस्तु, जब ऐसा समुदाय हो जाता है, तब सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों में परमार्थ बुद्धि—मोक्ष की बुद्धि—धड़ाके के साथ जागृत होने लगती है:—

ठाईं ठाईं उदण्ड तावे। मनुष्य मात्र तितुके झोंबे।
चहुँकड़े उदण्ड लाँबे। परमार्थ बुद्धी ॥२७॥
१५—२

"आत्मवत्सर्वभूतेषु" के अनुसार सब लोगों को, सब समाज को, सब राष्ट्र को आत्मवत् मानना ही राजकीय दृष्टि से 'परमार्थ बुद्धि' है। जब यह बुद्धि समुदाय में—बद्ध जन समाज में—सम्पूर्ण राष्ट्र में—प्रकाशित होकर दृढ़ हो जाती है, तब नीति और धर्म की संस्थाओं की रक्षा होती है। इस प्रकार जो समुदाय व्याप्य—विस्तृत प्रयत्न—करता है और धक्का धक्की सहता है वह देखते देखते भाग्य-शिखर पर चढ़ जाता है—परमार्थ को पहुँच जाता है:—

व्याप आटोप करिती। धके चपेटे सोसिती।
तेणें प्राणी सदेव होती। देखत देखतां ॥७॥
१५—३

कहावत भी है कि "टाँकी सहै सो देवता होय"। टाँकी से गढ़ मढ़ कर मूर्ति तैयार की जाती है, तब तो उसमें देवपन आता है।

कष्ट बिना फल नहीं है; कुछ बिना किये कुछ नहीं है। राज्य-संस्था प्रस्थापित हुए बिना नीति और धर्म की रक्षा कैसे हो सकती है? सिद्ध और साधकों को, स्वातन्त्र्येच्छुक लोगों की सहयता से, राजकीय समुदाय बनाने का उपदेश करके समर्थ व्यक्तिमात्र को शिक्षा देते हैं कि देश में जो राजा होगा या राज्य का प्रतिनिधि होगा, उसके समुदाय में जाकर, उसके आश्रय से, रहना चाहिए। आश्रय-रहित या विलग रहने से अच्छी गति न होगी।

समर्थांची नाही पाठी। तपास भलताच कुटी ॥३०॥
१६—१०

जो समर्थ पुरुष के आश्रय से नहीं रहता, उसे मामूली आदमी कूट डालता है। इस प्रकार राज्य-संस्था प्रस्थापित करना नीतिमान् और धार्मिक नेताओं तथा अनुयायियों को हितदायक है। इस संस्था की सहायता से जीवात्मा को परमात्मा से सायुज्यता अर्थात् परमार्थ, मोक्ष, मुक्ति या स्वतन्त्रता मिलती है:—

परमार्थी तो राज्य धारी। परमार्थ नाहीं तो भिखारी।
या परमार्थाची सरी। कोणास द्यावी ॥२३॥
१—९

जो परमार्थी है, वही राजा है और जिसके पास परमार्थ नहीं वही भिखारी—इस परमार्थ की उपमा किससे दें?

१३—दासबोध की विशेषता।

पहले कह चुके हैं कि दासबोध में एक विशेषता है। इस ग्रन्थ में वेदान्त के सिद्धान्तों का निरूपण, समर्थ के समय के महाराष्ट्र की परिस्थिति के अनुकूल किया गया है। महाराष्ट्र की उस समय की अवस्था में जिस प्रकार का निरूपण उचित, आवश्यक और उपयोगी था वैसाही इस ग्रन्थ में समर्थ ने, स्वतन्त्र रीति से किया है। भगवद्गीता में वेदान्त विषय का जो निरूपण है, उसका तत्व यद्यपि सर्वदा एक समान लागू है, पर वह गीता-कालीन समाज-अवस्था के अनुकूल अधिक लगता है। वैसा निरूपण १७ वीं सदी में समर्थ को अनावश्यक जान पड़ा। इसलिए; यद्यपि उस ग्रन्थ में वेदान्त के उन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है जो उपनिषद, गीता और भागवत आदि ग्रन्थों में हैं; तथापि प्रबन्ध-रचना, निरूपण शैली और दृष्टान्त आदि बिलकुल नये ढँग के हैं—स्वतन्त्र हैं—ऐसे हैं जो तत्कालीन महाराष्ट्र को लागू थे। दासबोध किसी अन्य ग्रन्थ का अनुवाद, टीका या "आधार पर" लिखा हुआ ग्रन्थ नहीं है। अपने समय के समाज (देश) की नैतिक, धार्मिक और राजकीय दशा, पूरी तैयार से ध्यान में लाकर समर्थ ने यह ग्रन्थ स्वतन्त्र बुद्धि से बनाया है। उपनिषद्, गीता और भागवत आदि संस्कृत ग्रन्थों के वेदान्त-विषयक सिद्धान्तों को समर्थ ने प्रमाणभूत अवश्य माना है; परन्तु प्राचीन सिद्धान्तों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

जो विपरीत अर्थ समाज के मन में भर गया था, उसको इस ग्रन्थ में दूर किया है। दूसरी विशेषता इस ग्रन्थ में यह है कि—उसमें यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि—हमारा वेदान्त निराशावादी या आलस्य-वादी नहीं है। तिस पर भी ऐसे बहुतेरे लोग समाज में देख पड़ते हैं, जो संन्यासी, वैरागी और साधु का वेष बनाकर, सब लौकिक कार्यों का त्याग करके, दूसरों के भरोसे पेट भरते हैं। यद्यपि ये लोग लोकोद्धार का कोई महत्कार्य करते हुए देख नहीं पड़ते, तथापि बहु-जन-समाज में बड़े ज्ञानी, परमार्थी और सिद्ध पुरुष माने जाते हैं। हमारे वेदान्त ग्रन्थ ज़ोर से पुकार कर यही शिक्षा देते हैं कि अरे भाई, कर्म त्याग को संन्यास, विरक्ति या ज्ञान नहीं कहते; और लोगों की भाँति, किंबहुना अन्य जनों से अच्छी तरह संसार के सब काम करते हुए, उन कर्मों के फल की आशा-भोग में आसक्ति न रखना ही सच्चा ज्ञान है—सच्चा संन्यास है—सच्चा वैराग्य है।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः। १।
भ० गी० अ० ६।

जो कर्म-फल का आसरा न रखकर स्ववर्णाश्रमोचित कर्म करता है—वही संन्यासी है और वही योगी है। जिसने अग्निहोत्रादि सत्कर्मों का त्याग किया है, या जिसने कर्त्तव्य कर्मों का त्याग किया है, वह संन्यासी अथवा योगी नहीं है। परन्तु इस सिद्धान्त का त्याग करके लोग परोपजीवी, आलसी और स्थाणुवत्—जड़ या अचल की भाँति—हो गये। यह जीवितक्रम सिद्ध और संन्यासी के स्वभाव के विरुद्ध है—यह बात समर्थ ने भिक्षा-निरूपण नामक समास में कही है। परमार्थज्ञानी सिद्ध लोगों को चाहिए कि वे लोगों को परमार्थ का रास्ता दिखावें। यह सिद्धान्त दासबोध में जगह जगह पर प्रतिपादन किया गया है। 'महन्त-लक्षण', 'निस्पृह वर्तणुक', 'निस्पृह लक्षण', 'निस्पृह व्याप लक्षण' और 'निस्पृह शिकवण' आदि कई पूरे पूरे समासों में भी यही वर्णन है। दासबोध की यह विशेषता सदा ध्यान में रखने योग्य है। सिद्ध और ज्ञानी पुरुषों के लौकिक कर्तव्य जितनी स्पष्टता और विस्तारपूर्वक इस ग्रन्थ में बताये गये हैं, वैसे और कहीं देखने में नहीं आते। तीसरी विशेषता यह है कि दासबोध में समुदाय के द्वारा परमार्थ-प्राप्ति का मार्ग बतलाया है; परन्तु प्राचीन वेदान्त ग्रन्थों में सिर्फ़ यही बतलाया गया है कि व्यक्तिमात्र को नीति और धर्म-भक्ति-की प्राप्ति किस प्रकार कर लेनी चाहिए। उनमें इस बात का विचार नहीं किया गया कि समुदाय बनाकर समाज को नीति और धर्म के मार्ग में कैसे लगाना चाहिए। इस विषय का निरूपणही दासबोध का मुख्य रहस्य है।

१४—तत्कालीन परिस्थिति।

इस विशेषता का कारण महाराष्ट्र की उस समय की परिस्थिति है। यदि परमार्थ का और उसकी प्राप्ति के साधनों का इस प्रकार स्पष्ट और विस्तृत विवेचन न किया जाता, तो उस समय बद्ध या परतन्त्र समाज को कोई लाभ न होता। उस समय की सामाजिक दशा का वर्णन स्वयं समर्थ ने दासबोध में किया ही है। राज्यसंस्था परकीय और विधर्मी लोगों के अधीन थी। नीति और धर्म का उच्छेद हो रहा था। परकीय लोग हिन्दू प्रजा की हर तरह से दुर्दशा कर रहे थे। हिन्दू-समाज बिलकुल फूट गया था। दासबोध के कलि-धर्म-निरूपण में प्रायः इस परिस्थिति का वर्णन है—मुसलमानों का वैभव देखकर लोग अपने आचार, विचार, शास्त्र-सिद्धान्त, रीति-रवाज, देव-धर्म और परिपाटी आदि छोड़ने लगे। अपने देवस्थानों का त्याग करके दाउद-उल-मुल्क नाम के मुसलमान पीर को भजने लगे। कितने ही लोग तुर्क या मुसलमान हो गये। ब्राह्मणों की बुद्धि मारी गई। शूद्र ब्राह्मणों के गुरु बन बैठे। मानसिक दुर्बलता के कारण ब्राह्मण भी शूद्रों का उपदेश सुनने लगे। शूद्र ब्राह्मणों का आचार करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे और ब्राह्मण व्यभिचार में फँसकर आपस में कलह करने लगे। वर्णव्यवस्था भ्रष्ट हो गई। कोई किसी की सुनता समझता न था। इस प्रकार नीति और धर्म का दबाव जाता रहा। तीर्थक्षेत्र भ्रष्ट किये गये। मूर्तियाँ खण्डित की गईं। स्त्रियों-का सतीत्व हरण किया गया—ऐसी अवस्था देखकर ही समर्थ ने शके १५५४ में अर्थात् सन् १६३२ ईसवी में, लोकोद्धार का सङ्कल्प किया—नीति, धर्म और राज्य की स्थापना करके समाज को परमार्थ-मार्ग में लगाने का निश्चय किया। उसी निश्चय का मूर्तिमान् फल यह दासबोध ग्रन्थ है।

१५—साधारण तौर पर चार प्रकार की विवेचन-पद्धति।

यह मानवी समाज आज हज़ारों वर्षों से जो लगातार प्रयत्न कर रहा है, उसका विचार अनेक दृष्टियों से किया जा सकता है। (१) कितने ही शास्त्रज्ञ इस समाज का आदि से लेकर अब तक का इतिहास देख कर, उस यत्न के तात्पर्य का विचार करते हैं। वे इस विचार से इतना ही मालूम कर सकते हैं कि यह समाज अमुक अमुक चरित्र आज तक कर चुका है। यह बात उसके अगले चरित्र से जानी जा सकती है कि अब आगे यह समाज क्या क्या लीला करेगा। उसके सम्बन्ध में पहले ही कुछ कहना इतिहास का काम नहीं है। इस पद्धति को समाज के यत्न का विचार करने की "ऐतिहासिक पद्धति" कहते हैं। (२) बहुत से शास्त्रज्ञ इस बात का विचार करते हैं कि यत्न करते समय यह समाज कौन कौन रूप और शरीर धारण करता है। ये शास्त्रज्ञ बड़ी उत्सुकता के साथ इस बात का विचार करते हैं कि यत्न करते समय, समाज एक-सत्ताक रहता है या बहु-जनसत्ताक रहता है; चातुर्वर्ण्य नियमों के अनुसार चलता है या एक जाति में ही रहता है। इस पद्धति को, समाज के यत्न को विचार करने की "शारीरिक पद्धति" नाम दिया गया है। (३) कोई कोई तत्त्वज्ञ समाज के रूपों अथवा चरित्रों के लक्षणों का ही निश्चय करते हैं; फिर समाज चाहे कोई भी रूप ले या चाहे जो काम करे। इस प्रकार की पद्धति को "लाक्षणिक पद्धति" कह सकते हैं। (४) इन तीन पद्धतियों के सिवा एक और भी चौथी पद्धति है। इसमें समाज के चरित्र, शरीर अथवा लक्षणों की ओर पूरी तौर से ध्यान देने का नियम नहीं है, किन्तु इस पद्धति में यह विचार किया जाता है कि जिस समाज के ये चरित्र, शरीर अथवा लक्षण हैं उसके चालक की दृष्टि किस ओर है। इस पद्धति को "आत्मिक" अथवा "तात्त्विक" किंवा "वैवेकिक"—विवेक की—पद्धति कहते हैं। इस पद्धति में समाज के मुख्य चालक आत्मा के यत्न का विचार किया जाता है। इस पद्धति में पहले आत्मा का स्वभाव, रूप, कार्य और अन्तिम हेतु आदि प्रश्नों की चर्चा करके, फिर उससे, इस बात का विवेचन किया जाता है कि समाज किस ओर जा रहा है। इन चार पद्धतियों को योरप के विद्वान् क्रमशः (1) Historical (2) Morphological (3) Physiological (4) Psychological किंवा Philosophical अथवा Rational कहते हैं। अब हम इस बात का विचार करेंगे कि इन चारों पद्धतियों में से समर्थ ने किस पद्धति को स्वीकार किया है।

१६—दासबोध में स्वीकार की गई विवेचन-पद्धति।

इन पद्धतियों में से चौथी आत्मिक या तात्त्विक अथवा वैवेकिक, पद्धति का अवलम्बन श्रीसमर्थ ने अपने इस ग्रन्थ में किया है। योरप में भी इलेगल, हेगल आदि कई तत्त्ववेत्ताओं ने इसी पद्धति का अनुसरण किया है। यह बात प्रकट ही है कि जो जो पुरुष तत्त्वज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान के पीछे लगे हैं, वे इस पद्धति का अवलम्बन करेंगे ही। जब मनुष्य जाति सब प्रकार से आत्मा ही पर निर्भर है, तब फिर उसकी चाहे जिस हल चल पर विचार किया जाय; वह आत्मा की ही दृष्टि से करना उचित भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेकिन का स्वर्गीय मन्दिर।

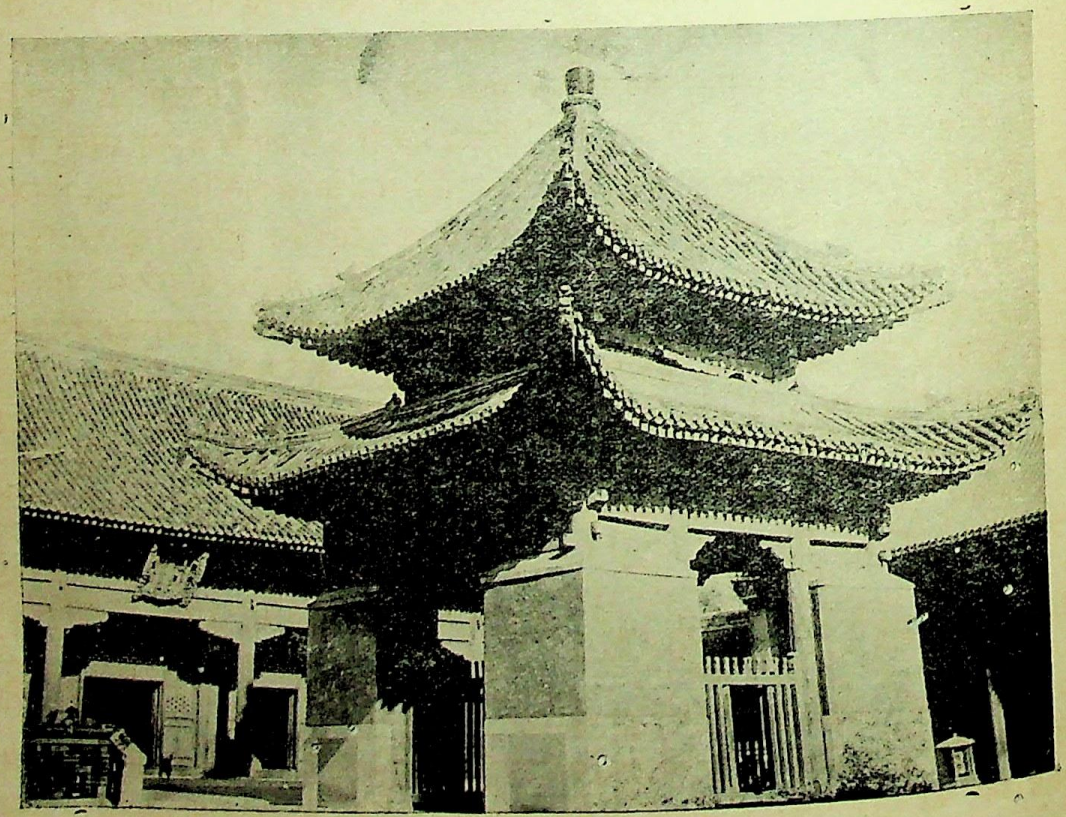

पेकिन का लामा मन्दिर।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यदि वह विचार किसी अन्य दृष्टि से किया जायगा, तो अवश्य एकदेशीय होगा। अन्य दृष्टि से विचार करना भी कई प्रकार से उपयोगी है; परन्तु यदि मानवी जाति के इस विस्तृत यत्न के अन्तिम हेतु का विचार करना है, तो उस आत्मिक अथवा तात्त्विक पद्धति का ही स्वीकार करना पड़ेगा। पहली तीन पद्धतियों का अवलम्बन करनेवाले शास्त्रज्ञों के मत से सुख-वृद्धि अर्थ-वृद्धि, शरीर-संरक्षण, विद्या-वृद्धि और राज-पुरुषों का सुख साधन आदि हेतु समाज अथवा राज्य के यत्न के अन्तिम हेतु हैं। इनके सिवा ब्लश्ली के समान इतिहासज्ञ और राजनीतिज्ञ यह भी प्रतिपादन करते हैं कि राष्ट्रीय गुणों की पूर्ण वृद्धि करना, समाज अथवा राज्य-स्थापन का अन्तिम और मुख्य उद्देश है। परन्तु इस प्रकार के शास्त्रज्ञ इस बात की परीक्षा नहीं कर सकते हैं कि इतना बड़ा और अव्याहत प्रयत्न करने में सम्पूर्ण मानवजाति का अन्तिम हेतु क्या है। इसका कारण यही है कि वे समाज की बाहरी और भीतरी उपाधियों की ही ओर ध्यान देते हैं—वे लोग इन उपाधियों को अलग करके शुद्ध, विमल और निरुपाधि आत्म-स्वरूप की ओर ध्यान नहीं देते। उसकी ओर ध्यान रख कर मानव समाज के यत्न का, जिन यूरोपीय तत्त्ववेत्ताओं ने विचार किया है, उनमें से हेगल के विचार श्रीसमर्थ के विचारों से बहुत कुछ मिलते हैं। यह तत्त्वज्ञ जर्मन था। इसने अपने Philosophy of History नामक ग्रन्थ में, अध्यात्म दृष्टि से, मानव समाज के अन्तिम हेतु का विवरण किया है। इसका सारांश नीचे दिया जाता है; जिससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि दासबोध का मत हेगल के मत से कितना मिलता है।

७—हेगल और समर्थ के मत में समानता।

यह जग आत्मा और माया, इन दो घटकों से बना हुआ दिखलाई देता है। जितना कुछ चित्स्वरूप है वह आत्मा है और जो कुछ पंचभूतात्मक है, वही माया है। मानव समाज के इतिहास में पंचभूत अर्थात् नदी, पहाड़, हवा, पानी आदि का बड़ा महत्त्व है। परन्तु इन मायावी पञ्चभूतों से हज़ार गुना अधिक महत्त्व, मानव जाति के इतिहास में आत्मा का है, इसलिए इस प्रधान घटक आत्मा की प्रगति और उसके मूर्त अवतार के ही इतिहास को, मानव जाति का इतिहास कहना चाहिए। माया का मुख्य लक्षण जड़ता, परतन्त्रता किंवा बद्धता है; और आत्मा का मुख्य लक्षण सूक्ष्मता, स्वतन्त्रता अथवा मोक्ष है। आत्मा स्वयम्भू स्वतन्त्र और स्वसंवेद्य है—अर्थात् उसे वही जान सकता है। आत्मा अपने मुख्य रूप को, अर्थात् मोक्ष, मुक्ति या स्वतन्त्रता को ढूँढ़ता रहता है। इसी ढूँढ़ने के प्रयत्न को मानव-इतिहास कहते हैं। इस इतिहास का सूक्ष्म रीति से विचार करने पर जान पड़ता है कि वर्तमान यूरोपियन या जर्मन समाज को यह मालूम हो गया है कि हम सब मनुष्य मुक्त हैं—अथवा मुक्त होने के योग्य हैं। ग्रीक और रोमन लोगों को केवल इतना ही मालूम हुआ था कि कुछ मनुष्य मुक्त होने योग्य हैं; और हिन्दू, चीनी आदि पूर्वी लोगों को इतनाही मालूम था और है कि मुक्त केवल एकही है। आत्मा के मुक्त स्वरूप के विषय में, इन तीन समाजों के ऐसे भिन्न भिन्न विचार होने के कारण ही यूरोपियन लोग पूर्ण स्वतन्त्र हैं; ग्रीक और रोमन लोग अंशतः स्वतन्त्र थे, और हिन्दू तथा चीनी लोग पूर्ण परतन्त्र अथवा बद्ध हैं। इस प्रकार बद्धता, मुमुक्षा और मुक्ति ही आत्मा के इतिहास का, अर्थात् जग के इतिहास का, क्रम है। अतएव मानव समाज के इस सारे प्रयत्न का अन्तिम उद्देश मुक्ति, मोक्ष या स्वतन्त्रता है। यही स्वतन्त्रता, यही मोक्ष, यही स्व-संवेद्यता आत्मा की तत्ता या तत्त्व है। इस तत्त्व में जा मिलने की इच्छा करनेवाला, अर्थात् मुमुक्षु आत्मा ही धर्म, नीति, और राज्य ये तीन रूप धारण करता है। इनमें से तीसरे रूप अर्थात् राज्य के चरित्र का नाम राजकीय इतिहास है। ज्यों ही आत्मा राज्य रूप से मूर्त होकर अवतीर्ण हुआ; त्योंही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ लेना चाहिए कि अब स्वतन्त्र स्थिति प्राप्त कर लेने का मार्ग खुल गया। इस मार्ग को खोलनेवाले सीज़र और नेपोलियन के समान वीर पुरुषों में राजस, तामस और सात्त्विक गुण होते हैं। उन्हीं के प्रभाव से जग का उद्धार और उसकी प्रगति होती है अर्थात् आत्मा अपनी तत्ता अथवा तत्त्व या पूर्ण स्वतन्त्रता की ओर जाता है। ऐसे ही लोगों को अवतारी या वीर पुरुष कहते हैं। राज्य यदि उस परमात्मा अथवा जीवात्मा की तत्ता का अधिष्ठान या मूर्त स्वरूप है, तो—वही उत्तम है जिसमें राज्य के हित की दृष्टि, उस राज्य के घटक सारे मनुष्यों के हित की दृष्टि से, सब तरह से, मिलती हो। इस प्रकार का मेल होने के लिए, प्रत्येक मनुष्य को आत्मा के तत्त्व की, या परमार्थ की, पहचान होनी चाहिए। यह पहचान करा देने का काम, राष्ट्र की शिक्षा-सम्बन्धी अथवा और इसी प्रकार की अनेक संस्थाओं का है। इन संस्थाओं से राज्य घटक व्यक्तियों में अध्यात्म ज्ञान की ओर ले जानेवाले सात्त्विक और राजस गुणों का प्रादुर्भाव होता है। ऐसी अनेक संस्थाओं का विचार हेगल ने अपने फ़िलासफ़ी आफ़ हिस्ट्री (Philosophy of History) में नहीं किया है; परन्तु श्रीसमर्थ ने अपने दासबोध में किया है।

१८—हेगल और समर्थ के तत्त्वज्ञान में मतभेद और हेगल का भ्रम।

ऊपर के अत्यन्त संक्षिप्त पृथक्करण से पाठकों को यह मालूम हो गया होगा कि दासबोध और हेगल के तत्त्वज्ञान में कितनी समता है। परन्तु हेगल और श्रीसमर्थ स्वामी रामदास के तत्त्वज्ञान में एक जगह ध्यान देने योग्य एक बड़ा मतभेद है। वह यह कि हेगल ने यह अपनी भ्रममूलक समझ कर ली कि हिन्दू लोगों के मत से एक ही मुक्त है और बाक़ी सब बद्ध है। हेगल ने अपने इतिहास-विषयक व्याख्यान सन् ई० १८२२ से १८३१ तक के दश वर्षों में रचे। उस समय महाराष्ट्र का इतिहास यूरपवालों को बिलकुल न मालूम था। सत्रहवें शतक में आत्मा की तत्ता का खोज करने के लिए मराठों ने जो प्रचण्ड क्रान्ति की, वह हेगल को न मालूम थी। उपनिषदों की तरह यदि समर्थ के ग्रन्थ हेगल के देखने में आये होते, तो उसे यह बात अच्छी तरह मालूम हो जाती कि हिन्दू लोगों ने जिस प्रकार आत्मा की तत्ता का खोज किया, उसी प्रकार उस तत्ता को मूर्त स्वरूप देने का प्रयत्न रामदास, और शिवाजी ने किया। सच तो यह है कि समर्थ रामदास ने स्पष्ट कहा है कि सब लोग मुक्त हैं :—

कोणासीच नाहीं बन्धन। भ्रान्तिस्तव भुलले जन।५७।
५—६

इसलिए कहने की आवश्यकता नहीं कि महाराष्ट्र-इतिहास और महाराष्ट्र-साहित्य के अज्ञान के कारण हेगल ने उपयुक्त असत्य विधान किया है। इसके सिवा हेगल ने जिस समय अपने व्याख्यान दिये, उस समय हिन्दुस्तान की राजकीय स्थिति बहुत ही विपरीत हो गई थी। इसी विपरीत स्थिति का विपरीत वर्णन, मिल आदि ग्रन्थकारों ने किया और हेगल ने भी अपने अनुमान उसी विपरीत वर्णन से स्थिर किये। इस आर्य भूमि में सात्त्विक गुणों का उन्नीसवें शतक के प्रारम्भ में जो ह्रास हुआ; उसके लिए यदि महाराष्ट्र के लोगों को दोष दिया जाय, तो यह एक बार सुन लिया जा सकता है; पर अठारहवें शतक के उत्तरार्ध के पहले सौ, सवा सौ वर्ष सद्गुणों का जो उदय महाराष्ट्र में हुआ था, उसकी ओर यदि ये लोग (यूरोपियन) देखी अनदेखी करें, तो यह केवल पक्षपात का लक्षण है। पक्षपात के ही कारण हेगल ने यह अवास्तव विधान किया है कि हिन्दू लोगों का मत one is free (एक स्वतन्त्र है) रहता है। जब वेदान्त, गीता और श्रीरामदास बारंबार यह कह रहे हैं कि सद्गुणों से सब लोग मुमुक्षु अर्थात् स्वतन्त्र होने योग्य हों और अब स्वयं हेगल ने मोक्ष का सिद्धान्त वेदान्त ग्रन्थों से लिया है; तब यही कहना पड़ता है कि निस्सन्देह उसका उक्त कथन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको बहुत ही विस्तारपूर्वक और याथातथ्य कहते थे। इस कारण उनकी कविता से तत्कालीन रहन सहन का अच्छा पता लगता है। यही गुण कुछ कुछ जायसी में भी वर्तमान है। सिवा स्वाभाविक कवियों के और किसी में यह गुण नहीं पाया जाता। इसके लिए यह आवश्यक है कि कवि अपने प्रत्येक विषय का पूर्ण ज्ञाता हो और उससे सहृदयता भी रखता हो। जायसी ने रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा आदि अच्छी कही हैं और अपने ग्रन्थ में उचित स्थान पर सदुपदेश भी दिये हैं। इनकी कविता में उद्दण्डता का भी अभाव नहीं है। इन्होंने स्तुति, नखशिख, रसोंई, युद्ध और प्रेमालाप का वर्णन उत्तम किया है।

अखरावट में ३६ पृष्ठों द्वारा परमेश्वर की स्तुति और संसार की असारता कही गई है और इसमें क से लेकर प्रायः सभी अक्षरों पर कविता की गई है। यह ग्रन्थ पद्मावत के पीछे बना होगा। इस बात का अनुमान इसके विषय से होता है। जान पड़ता है कि जिस समय इनकी पीर की भाँति पूजा होने लगी थी उसी समय यह बना होगा। इनकी कविता के उदाहरणार्थ दोनों ग्रन्थों से कुछ छन्द नीचे लिखे जाते हैं।

वन्दना।

कीन्हेसि मानुस दिहिसि बड़ाई।
कीन्हेसि अन्न भुगुति तहँ पाई॥
कीन्हेसि राजा भोजहिँ राजू।
कीन्हेसि हत्थि घोर तहँ साजू॥
कीन्हेसि तेहिँ कहँ बहुतु बिसासू।
कीन्हेसि कोइ ठाकुर कोइ दासू॥
कीन्हेसि दरबि गरबु जेहि होई।
कीन्हेसि लोभु अघाइन कोई॥
कीन्हेसि जियन सदा सबु चहा।
कीन्हेसि मीचु न कोई रहा।
कीन्हेसि सुख अरु कोटि अनंदू।
कीन्हेसि दुख चिंता और दंदू॥
कीन्हेसि कोइ भिखारि कोइ धनी।
कीन्हेसि सँपति बिपति पुनि धनी॥
कीन्हेसि राकस भूत परेता।
कीन्हेसि भूकस देव देएता॥
कीन्हेसि बन खँड और जड़ मूरी।
कीन्हेसि तरवर तार खजूरी॥
कीन्हेसि सात समुन्दर पारा।
कीन्हेसि मेरु खखंड पहारा॥
कीन्हेसि कोइ निमरोसी कीन्हेसि कोइ बरियार।
छारहिते सब कीन्हेसि पुनि कीन्हेसि सब छार॥

दिकशूल विचार।

आदित सुक पच्छिम दिसि राहू।
बीफै दखिन लंक दिसि दाहू॥
सोम सनीचर पुरुब न चालू।
मंगर बुद्ध उतर दिसि कालू॥

सेना गमन।

परी रेनु होइ रबिहिँ गरासा।
मानुख देखि लेइँ फिरि बासा॥
भुँइँ उड़ि अंतरिच्छ मृत मंडा।
ऊपर होइ छावा महि मंडा॥
डोलइ गगन इन्द्र डर काँपा।
बासुकि जाइ पतारहि चाँपा॥
मेरु धस मसइ समुद सुखाई।
बन खँड टूटि खेह मिलि जाई॥

अखरावट।

था-थापहु बहु ग्यान विचारू।
जेहि महँ सब समाय संसारू॥
जइसे अहइ पिरिथिमा सगरी।
तइसहि जानहु काया नगरी॥
तन महँ पिर अउ वेदन पूरी।
तन महँ बरदउ औखदि मूरी॥
तन महँ बिख और अमिरितु बसई।
जानइ सोइ जु कसौटी कसई॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भा पढ़े गुने अउ लीखे।
करनी साथ किये अउ सीखे॥
आपुइ खोइ उहइ जो पावा।
सो बीरउ मन लाइ जनावा॥
जो वहि हेरत जाय हिराई।
सो पावइ अमिरितु फल खाई॥

नखशिख।

कहउँ लिलार दुइज की जोती।
दुइजइ जोति कहाँ जग ओती॥
सहस किरनि जो सुरज दिपाये।
देखि लिलार वहउ छिपि जाये॥
का सिर बरनउँ दिपइ मयंकू।
चाँदु कलंकी वह निकलंकू॥
आब चाँदु पुनि राहु गरासा।
वह बिन राहु सदा परगासा॥
तिहि लिलार पर तिलकु बईठा।
दुइज पास मानहु धुव दीठा॥
कनक पाट जनु बइठेउ राजा।
सबइ सिँगार अस्त्रलइ साजा॥

युद्ध-वर्णन।

गोरइ दीख साथु सब जूझा।
अपन काल नेरे भा बूझा॥
कोपि सिंघ सामुह रनमेला।
लाखन सन ना मरइ अकेला॥
लियउ हाँकि हत्थिन कइ ठटा।
जइसइ सिंघु बिदारइ घटा॥
जेइँ सिर देइ कोपि तरवारू।
सइँ घोड़े टूटइँ असवारू॥
टूटि कंध सिर परइ निरारी।
माठ मँजीठ जानु रनढारी॥
सबइ कटक मिलि गोरइ छेका।
गूँजत सिंघ जाइ नहिँ टेका॥
जेइँ दिसि उठइ सोइ जनु खावा।
पलटि सिंह तेइ ठाउँ न आवा॥
तुरक बोलावइँ बोलइ नाहाँ।
गोरइँ मीचु धरी मन माहाँ॥
सिंघ जियत नहिँ आपु धरावा।
मुए पीछ कोऊ घिसिआवा॥
कहि कइ गरजि सिंघु अस धावा।
सुरजा सारदूल पहँ आवा॥

जायसी की भाषा ठेठ ग्रामीण पूर्वी भाषा है परन्तु इसमें इस कवि ने "उकुति विशेषो कब्बो भाषा जाहो साहो" की यथार्थता पूर्ण रूपेण सिद्ध करदी है। इससे यह विदित होता है कि स्वाभाविक कवि भाषा का मोहताज नहीं है और वह किसी भी भाषा में मनमोहिनी कविता कर सकता है। जायसी की भाषा गोस्वामी तुलसीदास की भाषा से बहुत कुछ मिलती है। इन्होंने दोहा चौपाइयों में काव्य रीति पर कथा कही है। इनकी काव्य ग्वाल कवि की श्रेणी की है और कथा प्रासंगिक कवियों में इनकी गणना द्वितीय श्रेणी में है। जायसी ने पद्मावत की वन्दना और समस्त अखरावट में मुसल्मानी धर्मानुसार वर्णन किया है और हिन्दुओं के किसी देवी देवता का नाम नहीं लिया है, परन्तु इन्होंने कट्टर मुसल्मानों की भाँति हिन्दू-धर्म या रस्म-रवाज पर कहीं भी अश्रद्धा नहीं प्रकट की और कथा वर्णन में उचित समयों पर बड़ी श्रद्धा के साथ हिन्दू-देवताओं का वर्णन किया है और मुसल्मानों और राजा के युद्ध तथा अन्य स्थानों पर उचित रीति पर राजा या बादशाह की स्तुति या निन्दा की है और इनकी सहानुभूति राना ही की ओर रही है क्योंकि न्याय राना ही की तरफ़ था। इस बात से इनकी सहानुभावता का पूरा परिचय मिलता है। इन्होंने अपनी समस्त कविता में ऐसा कोई भी फ़ारसी शब्द व्यवहृत नहीं किया है जो हिन्दी में प्रचलित न हो।

गणेशविहारी मिश्र,
श्यामविहारी मिश्र,
शुकदेवविहारी मिश्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आबू और मारवाड़ के परमार।

आबू का नाम प्राचीन शिलालेख तथा ग्रन्थों में अर्बुद लिखा मिलता है। इसके विषय में ऐसी कथा लिखी मिलती है कि नन्दिवर्द्धन नामक हिमालय का एक शिखर था। वसिष्ठ मुनि की गौ उत्तंक मुनि के खोदे हुए खड्डे में गिर गई। तब उस गढ़े को पूर्ण करने के लिए वसिष्ठ मुनि ने अर्बुद नामक सर्पद्वारा उक्त नन्दिवर्द्धन को लाकर उस गढ़े को पूर्ण किया, तबसे इस पर्वत का नाम जगत् में अर्बुद प्रसिद्ध हुआ। पाटनारायण * के विक्रमी प्रथम लेख के पूर्वार्द्ध में इस विषय का यह श्लोक है :—

"नन्दिवर्द्धनगिरिर्महात्मना प्रार्थ्य धेनुपरिरक्षणार्थिना।
श्रीवशिष्ठमुनिना भुवो बिले प्रार्थितोऽर्बुदभुजङ्गसंज्ञकः ॥३॥"

इसी विषय का पाटनारायण के विक्रमी संवत् ११८७ प्रथम लेख के उत्तरार्द्ध में यह श्लोक है :—

"उत्तङ्कसुषिरे† भीमे वशिष्ठो नन्दिवर्द्धनम्।
किलाद्रिं स्थापयामास भुजङ्गार्बुदसंज्ञया ॥४॥"

---

* यह लेख छपा नहीं है। मिस्टर देवदत्त रामकृष्ण भांडारकर ने कृपा करके मुझे दिया है।

† उत्तंक मुनि का निवासस्थान मरुधन्व देश था। महाभारत के आश्वमैधिक पर्व के ५३ वें अध्याय में लिखा है कि श्रीकृष्णचंद्र इंद्रप्रस्थ से द्वारका आते थे तब मार्ग में मरुधन्वदेश में उत्तंक मुनि से उनकी भेंट हुई थी। मारवाड़ के पश्चिम और उत्तर प्रांत का नाम मरुकांतार और मरु; और दक्षिण प्रांत का नाम मरुधन्व पाया जाता है, जिसमें आबू पहाड़ भी शामिल है कि जहाँ उत्तंक के खोदे हुए खड्डे में वसिष्ठ मुनि की गौ गिरी थी। उत्तंक मुनि गुरु का परम भक्त था। इसके गुरु का नाम गौतम था। गौतम के कई शिष्य थे; परंतु गुरु की प्रीति उत्तंक पर समग्र शिष्यों की अपेक्षा अधिक थी; इसी से उन्होंने उत्तंक को घर जाने की आज्ञा नहीं दी! उत्तंक जब वय में अधिक हो गया और घर की आज्ञा न देने से पछताने लगा, तब गुरु ने उसके अभिप्राय को समझकर उसे अपनी कन्या ब्याह दी। उत्तंक ने घर आते गुरु दक्षिणा के लिए प्रार्थना की तो गुरु ने कहा कि गुरु को प्रसन्न कर देना इससे बढ़कर कोई गुरु दक्षिणा नहीं है। तब उसने गुरु दक्षिणा के लिए गुरुपत्नी अहल्या से प्रार्थना की तो उसने भी वही कहा कि मैं तेरी भक्ति से प्रसन्न हूँ। तब उसने फिर हठ करके कहा; तब अहल्या ने उत्तंक से कहा कि सौदास राजा की रानी मदयंती के पहनने के कुंडल ला दे; तो उसने तथास्तु कह कर वहाँ से प्रस्थान किया। सीधा सौदास राजा के समीप आया। उसको देखकर शाप से राक्षस-दशा-प्राप्त सौदास प्रसन्न हुआ कि यह मेरे भक्ष्य समय पर ठीक आया। उस समय उत्तंक ने उसकी उस चेष्टा को देखकर कहा कि मैं तो गुरु के कार्य के लिए आपकी रानी के कुंडल लेने आया हूँ; यदि आप मुझे भक्षण करना चाहते हैं तो मैं गुरु-पत्नी को कुंडल देकर आपके पास वापस आ उपस्थित हो जाऊँगा। तब उसने उसके वचन पर विश्वास कर अपनी स्त्री के पास कुडल के लिए भेज दिया और वह उसे कुंडल देदेवें ऐसा संकेत भी बतला दिया। उसने रानी के पास जाकर कुंडल माँगे और संकेत बतलाया; तब उसने कुंडल देते समय कहा कि "ये कुंडल त्रिलोकी में अलभ्य हैं; राक्षस, नाग और देवता सब चाहते हैं सो यदि इनको उच्छिष्ट मुख धारण किया तो राक्षस ले जायँगे। यदि पृथ्वी पर रख दिया तो नाग ले जायँगे। नींद के वश हो गया तो देवता ले जायँगे।" ऐसा कहकर रानी ने उत्तंक को कुंडल दे दिये। उत्तंक उनको ले गुरु के आश्रम को चला। मार्ग चलने से क्षुधा अत्यंत व्याप्त हो गई, तब उन कुंडलों को मृगचर्म में बांध बिल्ववृक्ष की शाखा में लटका दिया और आप उस वृक्ष पर चढ़, फल तोड़ तोड़ कर नीचे गिराने लगा। गठरी का ध्यान न रहने से तोड़ा हुआ फल उसी गठरी पर पड़ा और गठरी ज़मीन पर जा गिरी। गिरतेही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन प्रभसूरिविरचित अर्बुदकल्प * में लिखा है कि इस पर्वत के ऊपर बड़े धनाढ्य बारह गाँव वसते हैं, गोग्गलिक तपस्वी और हज़ारों राष्ट्रिक रहते हैं, आज कल गोग्गलिक तो गूगुली ब्राह्मण के नाम से प्रसिद्ध हैं, जो गुजराती ब्राह्मणों में हैं; और राष्ट्रिक राठी कहलाते हैं, जो आबू के असली रहनेवाले हैं। फिर आगे जाकर लिखा है कि यहाँ श्रीमाता, अचलेश्वर, वशिष्ठ मुनि का आश्रम और मन्दाकिनी ये बड़े तीर्थ हैं। इस पर्वत के शासक परमार राजा हैं; और उनकी राजधानी चन्द्रावती नगरी है :—

"नन्दिवर्द्धन इत्यासीत्प्राक्शैलोऽयं हिमाद्रिजः।
कलिनार्बुदनागाधिष्ठानात्त्वर्बुद इत्यभूत् ॥ २५ ॥

वसन्ति द्वादश ग्रामा अस्योपरि धनोद्धुराः।
तपस्विनो गोग्गलिका राष्ट्रिकाश्च सहस्रशः ॥ २६ ॥

न स वृक्षो न सा वल्ली न तत्पुष्पं न तत्फलम्।
न स कन्दो न सा खानिर्या नैवात्र निरीक्ष्यते ॥ २७ ॥

श्रीमाताऽचलेश्वरश्च वशिष्ठाश्रम एव च।
अत्रामी लौकिकास्तीर्था* मन्दाकिन्यादयोऽपि च ॥ ३४ ॥
महाद्रेरस्य नेतारः परमारनरेश्वराः।
पुरी चन्द्रावती तेषां राजधानी निधिःश्रियाम् ॥ ३५ ॥"

परमार वंश की उत्पत्ति आबू पर्वत पर वशिष्ठ मुनिद्वारा अग्निकुंड से मानी जाती है; और परमारों के बहुत से शिलालेखों में यही बात लिखी मिलती है। पाटनारायण † के नंबर २ के वि० संवत् १३४४ के शिलालेख में लिखा है कि वशिष्ठ मुनि ने मन्त्रों के बल से आबू पर्वत पर अग्निकुंड से एक सुभट को उत्पन्न किया और जब वह सुभट शत्रुओं को जीत कर मुनि की गौ को ले आया तो मुनि ने प्रसन्न होकर अपने नाम से उसका गोत्र वशिष्ठ किया और पर (शत्रु) को मारने से परमार जाति की और उसका नाम धौमराज रक्खा :—

(नं० १) "जयतु निखिलतीर्थैः सेव्यमानः समन्ता-
न्मुनिसुरसुरपत्नी संयुतैरर्बुदाद्रिः।
बिलसदनलगर्भादद्भुतं श्रीवशिष्ठः
कमपि सुभटमेकं सृष्टवान्यत्र मन्त्रैः ॥ ३ ॥
आनीतधेन्वे परनिर्जयेन
मुनिः स्वगोत्रं परमारजातिम्।
तस्मै ददावुद्धतभूरिभाग्यं
तं धौमराजं च चकार नाम्ना ॥ ४ ॥

यही वार्ता किण्डू के वि० संवत् १२१८ के सोमेश्वर † के शिलालेख में लिखी है कि अर्बुद पर्वत पर गौ के निमित्त अग्निकुंड से उत्पन्न परमार वंश है :—

(नं० २) "..... .....अर्बुदभूधरे।
सुरभ्याः परमाराणां वंशोऽस्त्यनलकुण्डतः ॥ ३ ॥"

एक नाग उन कुंडलों को ले भागा; जो ऐरावत कुल का था। उसे ले जाते देखतेही उत्तंक वृक्ष से नीचे कूदा और उसके पीछे हुआ। वह नाग बिल में घुस पाताल में चला गया। तब उत्तंक उसी काठ के दंडे से उस बिल को खोदने लगा। उसे खोदते खोदते पैंतीस दिन हो गये, परंतु कुछ फल प्राप्ति न देखकर इंद्र उसकी सहायता करने को ब्राह्मण के वेष में आया और अपना वज्र अस्त्र दिया। उससे खोदने से नागलोक का मार्ग मिल गया। उत्तंक नागलोक में पहुँचा; वहाँ अपने तपोबल से सब नागों को धूम से व्याकुल कर कुंडल ले आया।

* यह पुस्तक हस्तलिखित है। यह ग्रंथ वि सं० १३७८ के पश्चात् रचा गया है; क्योंकि इसमें शक संवत् १२४३ में दो तीर्थों का जीर्णोद्धार होना लिखा है। "अस्योद्धारं द्वौ ? शकाब्दे वह्निवेदार्कसंमिते ॥"

* हिन्दू लोगों के गंगा, यमुना आदि तीर्थ और जगन्नाथ, बदरिकाश्रम आदि पवित्र क्षेत्रों को जैनी लोग लौकिक तीर्थ कहते हैं।

† यह लेख छपा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि० संवत् १२९३ की वस्तुपाल, तेजपाल की आबू की प्रशस्ति * में लिखा है कि वशिष्ठ मुनि के होम कुंड की अग्नि से एक पुरुष उत्पन्न हुआ; वह पर अर्थात् शत्रुओं को मारने का बड़ा रसिक था इसलिए उसको परमार कहने लगे और उसके वंश के परमार कहलाये; उस राजवंश में प्रथम धूमराज राजा हुआ :—

(नं० ३) " श्रेयः श्रेष्ठवशिष्ठहोमहुतभुक्कुण्डान्मृतण्डात्मज-
प्रद्योताधिकदेहदीधितिभरः कोप्याविरासीन्नरः।
तं मत्वा परमारणैकरसिकं स व्याजहार श्रुते-
राधारः परमार इत्यजनितन्नामाथ तस्यान्वयः ॥ ३२ ॥
श्रीधूमराजः प्रथमं बभूव
भूवासवस्तत्र नरेन्द्रवंशे ॥ "

वि० संवत् १२८७ के सोलंकी भीमदेव द्वितीय के आबू के शिलालेख † में लिखा है कि वशिष्ठ मुनि के यज्ञकुंड की अग्नि से उत्पन्न श्रीधूमराज देव के कुल में उत्पन्न श्रीसोमसिंह देव के राज्य में :—

(नं० ४) " श्रीवशिष्ठकुण्डयजनानलोद्भूत श्रीमद्धूम-
राजदेवकुलोत्पन्न महामण्डलेश्वरराजकुल श्रीसोमसिंह-
देवविजयराज्ये "

और आबू के वि० संवत् १३७८ के विमलशाह के मन्दिर के शिलालेख ‡ में लिखा है कि वशिष्ठ मुनि के अग्निकुंड से परमार नामक पुरुष उत्पन्न हुआ :—

(नं० ५) " यस्मिन्वशिष्ठानलकुण्डजन्मा
क्षितिक्षतित्राणपरः पुरासीत्।
प्रत्यर्थिसार्थोन्मथनात्कृतार्थः
क्षितावि ह श्रीपरमारनामा ॥ ३ ॥ "

तथा जालोर में जो परमार वीसल का वि० संवत् ११७४ का शिलालेख * मिला है उसमें लिखा है कि विश्वामित्र को जीतने के लिए वशिष्ठ मुनि ने कोप करके पर (शत्रु) को मारने के लिए अनल-कुंड से उत्पन्न किया इसलिए उसका नाम परमार हुआ :—

(नं० ६) " जेतुं विश्वामित्रं वशिष्ठमुनिनातिकोपपूर्णेन।
परमारणाय जनितः कुण्डे तेनैव परमारः ॥ १ ॥ "

इसी प्रकार से उदयादित्य के शिलालेख † में परमार की उत्पत्ति लिखी है :—

(नं० ७) "अस्त्युर्व्याश्रः प्रतीच्यां हिमगिरितनयः सिद्धदांपत्यसिद्धेः
स्थानं च ज्ञानभाजामभिमतफलदोऽखर्वितः सोऽर्बुदाख्यः।
विश्वामित्रो वशिष्ठादहरतबलतो यत्र गां तत्प्रभावा-
जज्ञे वीरोऽग्निकुण्डाद्रिपुबलनिधनं यश्चकारैक एव ॥ ५ ॥
मारयित्वा परान्धेनुमानिन्ये स ततो मुनिः।
उवाच परमाराख्यः पार्थिवेन्द्रो भविष्यसि ॥ ६ ॥ "

नरवर्मदेव के वि० संवत् ११६१ के शिलालेख ‡ में यह कथा लिखी है कि वशिष्ठ मुनि ने विश्वामित्र का आतिथ्य ** किया उसमें वशिष्ठ मुनि की नन्दिनी नामक गौ के प्रभाव से सबको मनवांछित वस्तु मिली उस अद्भुत रत्न को देख कर विश्वामित्र ने हरण करना चाहा तब वशिष्ठ ने अनलकुंड से एक वीर पुरुष को उत्पन्न किया उसका नाम परमार हुआ। उसका वंश सूर्य चन्द्र के वंश के समान बढ़ने लगा।

(नं० ८) "आयातस्य कदाचन क्षितिपतेराच्छिन्दतः कौशिक-
स्यातिथ्योचितवस्तुजातजननादानन्दिनीं नन्दिनीम्।
निर्जेता कुपितेन तेन हविषा संहर्षिताद्वर्हिषो-
वीरः श्रीपरमार इत्यनुपमः सत्याभिधानोऽभवत् ॥ १३ ॥

---

* एशियाटिक रिसर्चेज़ वोल्यूम १६ पृष्ठ ३२०। भावनगर इन्स्क्रिप्शन पृष्ठ १७४।

† देखो, भावनगर इन्स्क्रिप्शन पेज २१८।

‡ देखो, एपिग्राफिया इंडिका, वोल्यूम IX (९) पेज १४८।

* यह लेख छपा नहीं है।

† देखो, एपिग्राफिया इंडिका, वोल्यूम १. पेज २३३. कीलहार्न लिस्ट नं० ३४०।

‡ देखो, एपिग्राफिया इंडिका, वोल्यूम २, पेज १८२।

** यह कथा वाल्मीकीय रामायण में विस्तारपूर्वक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्यवर्द्धनविशालधर्मभृ-
त्सत्यकेतुपृथुकीर्तिपार्थिवः।
वर्धतेऽयमहिमांशुचन्द्रमः—
संततिप्रतिकृतिर्यदन्वयः ॥ १४ ॥"

इन पिछले (नं० ५-६-७-८) चार शिलालेखों में तो यह लिखा है कि जो पुरुष वशिष्ठ मुनि के अग्नि-कुंड से उत्पन्न हुआ उसका नाम परमार था, और पहले के (नं० १-२-३-४) चार शिलालेखों से यह पाया जाता है कि उसका नाम धूमराज था। नं० १ के लेख में यह स्पष्ट है कि वशिष्ठ के अग्निकुंड से उत्पन्न सुभट की जाति परमार हुई और उसका नाम धूमराज रक्खा गया। और नं० ४ के भीमदेव के लेख में भी अग्निकुंड से उत्पन्न सुभट का नाम धूमराज लिखा है। नं० ३ और नं० ४ के शिलालेखों में लिखा है कि अग्निकुंड से परमारवंश उत्पन्न हुआ; और उस राजवंश में प्रथम धूमराज हुआ। इससे यही सिद्ध होता है कि वशिष्ठ मुनि के अग्निकुंड से जो सुभट उत्पन्न हुआ, उसका नाम अग्नि के सम्बन्ध से धूमराज रक्खा गया; और पर (शत्रु) के मारने के सम्बन्ध से वही पुरुष परमार कहलाया। धूम-राज नाम रखने में यह युक्ति दीख पड़ती है कि, जैसे धूम अग्नि से बाहर ऊपर को निकलता है वैसे यह पुरुष भी अग्नि से बाहर ऊपर की ओर आया इसलिए उसका नाम धूमराज रक्खा गया कि यह संभव है।

परमारों के शिलालेखों में "परमार" और "प्रमार" दोनों शब्द लिखे मिलते हैं, जिनमें से प्रायः सर्वत्र परमार शब्द देखने में आता है; परन्तु कहीं कहीं प्रमार शब्द भी लिखा मिलता है।

आबू के वसन्तगढ़ के वि० संवत् १०९९ के पूर्णपाल* के शिलालेख में पङ्क्ति २ :—

"वशिष्ठकोपाज्जनितः कुमारः प्रमार.....॥"

और गाँव झाडोली के वि० संवत् १२५५ के धारावर्ष† के शिलालेख में पङ्क्ति १ :—

"श्रीमति धारावर्षे विक्रमवर्षे प्रमारकुलहर्षे ॥"

प्रमार शब्द का अर्थ यह होता है "प्रकर्षेण मारयतीति प्रमारः।" यहाँ शत्रु का अध्याहार है।

वसन्तगढ़ की प्रशस्ति में उत्पलराज से पूर्णपाल पर्यन्त सात पीढ़ी लिखी हैं; जिसका प्रारम्भ इस प्रकार से किया है "परमार-वंश में पृथ्वी पर महा-बली कई राजा हुए। इसके वंश में उत्पलराज हुआ, (यहाँ यह नहीं जाना जाता कि "इस" कहने से किसका निर्देश है; क्योंकि इससे पहले की, पङ्क्ति २ के अन्त के और पङ्क्ति ३ के आदि के अक्षर गये हुए हैं)। इस शिलालेख का वंशवृक्ष यह है:— १ उत्पल-राज २ आरण्यराज ३ कृष्णराज ४ धरणीवराह ५ महिपाल ६ धन्धुक ७ पूर्णपाल" पूर्णपाल से आगे की पीढ़ियाँ अब तक किसी शिलालेख में क्रमपूर्वक अविच्छिन्न नहीं मिली हैं, परन्तु इस लेख के अन्त में दिये हुए परमारों के वंशवृक्ष नं० १४ रामदेव से नं० २० प्रतापसिंह तक आनुपूर्वी से अविच्छिन्न मिलती है। नं० ९ कृष्णराज—पूर्णपाल का छोटा भाई था। नं० १० ध्रुवभट को वस्तुपाल तेजपाल की प्रशस्ति में धन्धुक के निकट ही कहा है :—

"धन्धुकध्रुवभटादयस्ततः।"

सो यदि धन्धुक का पुत्र हो तो संभव है; परन्तु निश्चय नहीं। और ध्रुवभट के आगे की दो तीन पीढ़ियाँ समुद्र खोज में डाल दी गई हैं :—

"धन्धुकध्रुवभटादयस्तत-
स्ते रिपुद्रयघटाजितोऽभवन्।
यत्कुलेऽजनि पुमान्मनोरमो-
रामदेव इति कामदेवजित् ॥ ३४ ॥"

मारवाड़ के मालानी परगना में इन्हीं परमारों का एक शिलालेख किराडू में मिला है, वह लेख बीच में से टूटा हुआ है, परन्तु इधर उधर के अक्षर पढ़े जाने से बहुत कुछ मतलब निकल आता है; उस लेख में उत्पलराज से पूर्व का एक नाम सिंधुराज लिखा मिलता है।

* देखो, एपिग्राफिया इंडिका, वोल्यूम २ पेज ११।
† यह लेख छपा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसन्तगढ़ वि० संवत् १०९९, भाडूंद ११०२, भीनमाल १११७, किराडू १२१८, झाडोली १२५५, आबू वस्तुपाल तेजपाल १२९३, पाटनारायण ११८७ व १३४४, नाणा १२९०, आबू भीमदेव द्वितीय १२८७, इन शिलालेखों से तथा उपयोगी अन्य शिलालेखों से जो परमारों की वंशावली उद्धृत हुई है वह यह है :—

१ सिन्धुराज—यह मरुमण्डल में महाराज * हुआ। यह सिन्धुराज भोज का पिता नहीं; क्योंकि इससे सातवाँ पुरुष धन्धु सोलंकी भीमदेव का निकाला हुआ चन्द्रावती को छोड़ कर विक्रमा संवत् १०८८ के आस पास भोज के शरण गया था। जालोर का सिन्धुराजेश्वर का मन्दिर, जिस पर वीसल की रानी ने वि० संवत् ११७४ में सुवर्ण का कलश चढ़ाया था इसी सिन्धुराज का कराया हो तो संभव है।

२ उत्पलराज (नं० १ का पुत्र)—मूता नैणसी की ख्यात में उत्पलराज को धोमरिष का पुत्र लिखा है, परन्तु यह पुत्र नहीं; किन्तु वंशज अवश्य है। यह धोमरिष, धूमराज अथवा धौमराज होना चाहिए। जिसका उल्लेख परमारों के बहुत से शिलालेखों में है। और उक्त ख्यात में यह भी लिखा है कि "ऊपलराई किराडू छोड़ ओसियाँ वसिये, सचियाय प्रसन्न हुई, माल बतायो, ओसियाँ में देहरो करायो।" इसके सिवा उत्पलराज को धोमरिष का पुत्र लिखा है, वैसे धरणीवराह को भी धोमरिष का पुत्र लिखा है, परन्तु यह लिखना यथार्थ नहीं, क्योंकि धरणीवराह उत्पलराज से चतुर्थ पुरुष है, जिसका निर्णय आगे हो जायगा।

किराडू के वि० संवत् १२१८ के सोमेश्वर के शिलालेख में सिन्धुराज से सोमेश्वर पर्यन्त वंशावली लिखी है, परन्तु वह लेख टूटा हुआ होने से वह वंशावली सर्वथा असन्दिग्ध नहीं है। उसमें चतुर्थ श्लोक में लिखा है कि परमार वंश में अनेक राजा हुए, जिसमें से मरुमण्डल में सिन्धुराज नाम महाराज हुआ। पंचम श्लोक बीच में से टूटा हुआ है, परन्तु अन्त में "प्रतापोज्वलदूसलः" इतने अक्षर विद्यमान हैं। जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि पंचम पङ्क्ति का अन्तिम अक्षर 'स' जो है वह 'त्प' होना चाहिए; क्योंकि 'स' और 'त्प' के आकार में बहुत अल्प अन्तर है, 'त्प' के पूर्व 'दू' दीर्घ है, जिससे 'ऊत्पल' ऐसा नाम निकलता है, और मूता नैणसी की ख्यात में भी 'ऊपलराई' ऐसा दीर्घ ऊकार लिखा है; और वसन्तगढ़ की प्रशस्ति में 'उत्पलराज' लिखा है, सो वसन्तगढ़ की प्रशस्ति का 'उत्पलराज' और किराडू की प्रशस्ति का 'ऊत्पल' एक होना चाहिए; क्योंकि वसन्तगढ़ और किराडू की प्रशस्ति की पीढ़ियाँ सब ठीक बराबर मिलती हैं, किराडू के लेख में कितने एक नाम गये हुए हैं, परन्तु दोनों लेखों का मिलान करने से ठीक बराबर मिल जाते हैं।

वसंतगढ़ की प्रशस्ति के नाम	किराडू की प्रशस्ति के नाम
...	सिन्धुराज
उत्पलराज	ऊत्पल
आरण्यराज	...
कृष्णराज	...
धरणीवराह	धरणीवराह
महिपाल *	देवराज
धन्धु	...
पूर्णपाल	...
कृष्णराज	कृष्णराज

* सिन्धुराजा महाराजाः समभून्मरुमण्डले ॥" किराडूका शिलालेख पंक्ति ४ ऊपर जो वसंतगढ़ की प्रशस्ति से वंशावली लिखी है, उसमें सिन्धुराज का नाम न होने से उत्पलराज का नं० १ रक्खा है, परंतु किराडू के लेख में ऊपर का एक नाम मिलजाने से यहाँ सिन्धुराज का नं० १ और उत्पलराज का नं० २ रक्खा है।

* वसंतगढ़ की प्रशस्ति में धंधुक के पिता का नाम महिपाल, और भीनमाल की कृष्णराज की वि० संवत् ११९७ की प्रशस्ति में धंधुक के पिता का नाम देवराज लिखा है, जिससे यह पाया जाता है कि महिपाल का दूसरा नाम देवराज था। एक राजा के दो नाम हो सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित गौरीशंकरजी हीराचन्दजी ओझा हमारे राजपूताना में एक अद्वितीय इतिहासवेत्ता हैं। इन्होंने टाडराजस्थान के अनुवाद की टिप्पणी में जो "खड्गविलास प्रेस" में छपी है किराडू के परमारों की वंशावली इस प्रकार दी है। "१ सिन्धुराज, इसके पीछे २ सुरराज ३ देवराज ४ दुर्लभराज ५ सोढराज ६ उदयराज" परन्तु यह वंशावली ठीक प्रतीत नहीं होती; क्योंकि किराडू के शिलालेख के चतुर्थ श्लोक में सिन्धुराज का नाम है। पाँचवें श्लोक में 'दूसलः' ऐसे अक्षर हैं, जो 'ऊत्पल' हो सकता है। इसको पहले लिख आये हैं। छठें श्लोक में एक नाम गया है। सातवें श्लोक में एक नाम गया है। आठवें श्लोक में धरणीवराह का नाम नहीं है, परन्तु "सिन्धुराज धराधारधरणीधरधामवान्।" इस विशेषण से यह नाम धरणीवराह ही होना चाहिए। इसको धरणीवराह के वृत्तान्त में आगे स्पष्ट करेंगे। नवम श्लोक में देवराज नाम है। उक्त पण्डितजी ने सिन्धुराज के अतिरिक्त पिछले तो एक भी नाम का सूचन नहीं किया है और यहाँ एक के स्थान में दो नाम लिख दिये हैं। "सुरराज और देवराज" जो पर्याय नाम हैं। मूल में ये अक्षर हैं:—

".....जोभवत्तस्मात्सुरराजो हराज्ञया।
देवराजेश्वर..... ॥"

इसका अर्थ यह है कि उस (धरणीवराह) से देवराज पुत्र हुआ। जो महादेव की आज्ञा से इन्द्र प्रकट हुआ था उसने महादेव का मन्दिर बनवाया और अपने नाम से महादेव का नाम देवराजेश्वर रक्खा। यहाँ पहले तीन अक्षर गये हुए हैं सो "देवरा" ये होने चाहिए। जिससे "देवराजोभवत्तस्मात्" ऐसा चरण बन सकता है। इस राजा का नाम सुरराज नहीं, किन्तु देवराज ही था; यह बात इस युक्ति से पुष्ट होती है कि इसने महादेव का नाम अपने नाम के पीछे देवराजेश्वर रक्खा था। यदि राजा का नाम सुरराज होता तो महादेव का नाम भी सुरराजेश्वर होता। अपने नाम से देव का नाम रखने की प्रथा पाई जाती है, जैसे जालोर में सिन्धुराज ने अपने नाम से सिन्धुराजेश्वर और नाडोल में अपने नाम से लक्ष्मणस्वामि रक्खा था। श्लोक १० और ११ वें में देवराज का वर्णन पाया जाता है। १० वें श्लोक में यह उत्प्रेक्षा है:—"मैं मानता हूँ कि कल्पवृक्ष (उसके दान को देख कर) इस पृथ्वी को छोड़ कर अदृश्य हो गया।"

".....मपहाय महीमिमाम्।
मन्ये कल्पद्रुमः प्रायाददृश्यत्व..... ॥"

११ वें श्लोक में यह वर्णन है:—"श्रीमान् राजेन्द्र दुर्लभराज को उसने रण से राज़ी किया।"

".....रणात्।
श्रीमदुर्लभराजोपि राजेन्द्रो रञ्जितो.....॥"

पण्डित गौरीशंकरजी दुर्लभराज को देवराज का पुत्र लिखते हैं, परन्तु दुर्लभराज देवराज का पुत्र नहीं; किन्तु सोलंकी दुर्लभराज है; क्योंकि उक्त श्लोक का आशय यह है कि "रण से राजेन्द्र श्रीमान् दुर्लभराज भी राज़ी हो गया।" यहाँ 'अपि' शब्द दुर्लभराज के साथ ऐसा लिखा हुआ है कि दुर्लभराज पुत्र तो नहीं हो सकता; किन्तु शत्रु हो सकता है। दुर्लभराज सोलंकी और उक्त देवराज परमार इन दोनों का समय एक था। दुर्लभराज सोलंकी का समय वि० संवत् १०५७ से १०७९ तक; और देवराज का ताम्रपत्र वि० संवत् १०५९ का अभी भीनमाल जोधपुर स्टेट में महामहोपाध्याय कविराज मुरारिदानजी द्वारा मुझे मिला है, जिससे दुर्लभराज और देवराज का समकालीन होना ठीक पाया जाता है। और देवराज के पुत्र धन्धुक का समय वि० संवत् १०८८ विमलशाह के मन्दिर सम्बन्धी आबू पर्वत के लेख से निश्चित है; वह इस बात को पुष्ट करता है। उस समय शाकंभरी का राजा दुर्लभराज चाहमान भी विद्यमान था, जिसका समय वि० संवत् १०५६ किणसरिया * के शिलालेख से सिद्ध है, परन्तु

* अभी यह लेख छपा नहीं है। एपिग्राफिया इंडिका में छपने के लिए मैंने भेजा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्लभराज चौहान सोलंकियों के जैसा चक्रवर्ती राजा नहीं था; और परमार उस समय सोलंकियों के माण्डलिक राजा थे इसलिए दुर्लभराज, जिसको देवराज परमार ने राज़ी किया था सोलंकी ही होना चाहिए। इसके आगे पण्डितजी 'सोढ़राज नाम पढ़ते हैं; परन्तु शिलालेख में सोढ़राज नहीं, सोछराज है। बारहवें श्लोक में धन्धुक का नाम गया हुआ है, जिस नाम को वसन्तगढ़ का शिलालेख बतलाता है :—

"पुत्रोऽपि तस्मान्महिपाल * नामा
तस्मादभूद्धन्धुक एव भूपः ॥ ५ ॥"

और भीनमाल का वि० संवत् ११९७ का कृष्णराज का शिलालेख † इसको पुष्ट करता है :—

"परमारवंशोद्भवो महाराजाधिराजः श्रीकृष्णराजः
श्रीधंधुकसुतः श्रीमद्देवराजपौत्रः ॥" (पंक्ति ३-४-५)।

तेरहवें श्लोक में कृष्णराज का नाम है। उसको पण्डितजी छोड़ गये हैं। यहाँ इतना तो अवश्य है कि 'कृ' नहीं है, "ष्णराज" ये अक्षर हैं। चौदहवें श्लोक में सोछराज नाम है। जिसको पण्डितजी सोढराज पढ़ते हैं; और उस पर टिप्पणी करते हैं "(शायद प्रसिद्ध सोढा राणा यही हो, जिसके विषय के गीत राजपूताना की स्त्रियाँ गाती हैं)" और मूता नैणसी अपनी ख्यात में यह लिखता है "सोढो, सांखलो। इणांरो दादो धरणीवराह, बाहड़मेर जूनो किराडू कहीजै तिणरो धणी हुतो; तिणरै बेकोठी मारवाड़रा हुता। तिणरै बेटो बाहड़ ‡ हुवो। तिणसूं आ धरती छूटी। बाहड़रो बेटो सोढो, सूमरां कनैं गयो, तिणनुं सूमरां रातोकोट दीयो, उमरकोट दीयो।" यह बात ठीक पाई जाती है; क्योंकि अब भी सोढा राजपूत ऊमरकोट की और विशेष कर हैं। उस सोछराज के उदयराज पुत्र हुआ। यह पण्डितजी ने भी ठीक लिखा है। परन्तु इसके आगे की एक पीढी पण्डितजी फिर छोड़ गये हैं। वह नाम सोमेश्वर है; प्रशस्ति के पचीसवें श्लोक में विद्यमान है। यह नाम ऊपर १७ वें श्लोक में भी होगा, परन्तु अक्षर टूट जाने से चला गया है। "तस्मादुदयरा" इतने अक्षर तो हैं, आगे "जाच पुत्रः सोमेश्वरोभवत्" ये अक्षर हो तो संभव है।

३ आरण्यराज (नं० २ का पुत्र)।

४ कृष्णराज (नं० ३ का पुत्र)—प्रोफ़ेसर कीलहार्न साहब ने वसन्तगढ़ का जो सिरोही इलाके में पिंड़वाडा के पास है, वि० संवत् १०९९ का पूर्णपाल का शिलालेख छापा है, उसमें अद्भुत कृष्णराज इतना लम्बा नाम लिखा है, परन्तु 'अद्भुत' यह विशेषण होने से 'कृष्णराज' इतना नाम होना चाहिए। इसकी पुष्टि आबू की वि० संवत् १३७८ की विमलवसही की प्रशस्ति से होती है :—

"यस्मिन्वशिष्ठानलकुण्डजन्मा
क्षितिक्षतित्राणपरः पुरासीत्।
प्रत्यर्थिसार्थोन्मथनात्कृतार्थः
क्षितावि[ह] श्रीपरमारनामा ॥ ३ ॥
तदन्वये काह्नडदेववीरः
पुराविरासीत्प्रबलप्रतापः ॥"

पण्डित गौरीशंकरजी ने भी टाड राजस्थान* की टिप्पणी में इसका नाम कृष्णराजही लिखा है; परन्तु यह नहीं लिखा कि इसका नाम कान्हडदेव भी था।

५ धरणीवराह (नं० ४ का पुत्र)—प्रोफ़ेसर कीलहार्न साहब ने इसका नाम वंशावली में नहीं दिया है। अद्भुत कृष्णराज का पुत्र महिपाल लिखा है और ब्रेकेट में ऐसा लिखा है "(Or, if a name should have been lost at the commencement of line 4, his son's son)"

* महिपाल देवराज का दूसरा नाम है।

† बोम्बे गेज़ेटियर, वोल्यूम १ भाग १ पृष्ठ ४९५।

‡ बाहड़मेर जो मालानी परगना में मुख्य नगर है, इसी के नाम से बसा हो ऐसा पाया जाता है।

* देखो, टाडराजस्थान का अनुवाद, नं० १० पृष्ठ ३८३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका भावार्थ यह है कि शायद चौथी पङ्क्ति के प्रारम्भ में एक नाम चला गया है। जो अद्भुत-कृष्णराज के पुत्र का नाम हो। कीलहार्न साहब को भी सन्देह तो हो गया था कि यहाँ कोई नाम गया है, परन्तु नाम लिखा नहीं, और पण्डित गौरीशंकरजी ने नाम रख तो दिया, परन्तु पूर्ण विचार नहीं किया। पण्डित गौरीशंकरजी ने टाड राजस्थान की टिप्पणी में वसन्तगढ़ के उक्त शिलालेख के पाँचवें श्लोक के

"श्रीमान्यर्थोर्वी धृतवान्वराहः।"

इस द्वितीय चरण में आये हुए 'वराह' शब्द से 'वराह' ऐसा राजा का नाम समझ कर कृष्णराज का पुत्र 'वराह' लिख दिया है; परन्तु कृष्णराज का पुत्र वराह नहीं है; क्योंकि यहाँ वराह शब्द उपमेय (वर्ण्य) नहीं है, किन्तु उपमान है। सो इसके साथ लगे हुए उपमा वाचक 'यथा' शब्द से स्पष्ट है। इसका उपमेय प्रथम चरण में होना चाहिए, जिसका पत्थर टूट जाने से कुछ पता नहीं। मैं इस बात का विचार कर रहा था कि प्रथम चरण में उपमेय क्या होना चाहिए, इतने में स्फूर्ति हुई कि उपमान 'उर्वी' अर्थात् धरणी को धारण करनेवाला वराह है, सो उपमेय का नाम 'धरणीवराह' के सिवा दूसरा नहीं हो सकता। इसकी पुष्टि दो प्रमाणों से होती है, एक तो धरणीवराह का नाम प्रस्तुत पद्य के चरण में ठीक बैठ जाता है। यथाः—

"बभूव तस्माद्धरणीवराहः"

और इस प्रशस्ति की लेख-प्रणाली भी इसी प्रकार की है। दूसरे—धरणीवराह का समय भी ठीक बैठता है। वि० संवत् १०५३ के मेरे छापे हुए हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूट धवल के बीजापूर के शिलालेख * में लिखा है कि धरणीवराह को गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज ने भगा दिया तब उसको राष्ट्रकूट ने शरण दिया :—

"यं मूलादुदमूलयद्गुरुबलः श्रीमूलराजो नृपो-
दर्पान्धो धरणीवराहनृपतिं यद्वद्द्विपः पादपम्।
आयातं भुवि कांदिशीकमभिको यस्तं शरण्यो दधौ
दंष्ट्रायामिव रूढमूढमहिमा कोलो महीमण्डलम्॥१२॥"

मूलराज के शिलालेख वि० संवत् १०३० से १०५१ तक के मिलते हैं। और धरणीवराह का पौत्र परमार धंधुक सोलंकी भीमदेव के भय से भागकर धार के परमार राजा भोज के पास चला गया था; जिस भोज का शिलालेख * वि० संवत् १०७८ का उज्जैन में मिला है जिससे, और सोलंकी भीमदेव ने धंधुक को आबू से भगाकर आबू का दंडपति विमलशाह को बना दिया था, उसने वि० संवत् १०८८ में आदि नाथ का मन्दिर बनाया था जिससे धंधुक का समय वि० संवत् १०७८–१०८८ के लगभग निश्चित होता है तो उसके पितामह धरणीवराह का समय वि० संवत् १०४० के आस पास होना चाहिए। और बीजापुर के शिलालेख से भी धरणीवराह का समय वही सिद्ध होता है; क्योंकि बीजापुर के शिलालेख में धरणीवराह को सोलंकी मूलराज का समकालीन लिखा है, सो दोनों का समय एक मिल जाने से बीजापुर के लेख का धरणीवराह धंधुक का पितामह ही होना चाहिए। इसके सिवा अभी एक ताम्रपत्र† वि० संवत् १०५९ का भीनमाल से देवराज का मिला है उसमें देवराज की जाति नहीं लिखी है, परन्तु—

"श्रीश्री मालावस्थितमहाराजाधिराजश्रीदेवराज"

ऐसा लिखा है, सो यह देवराज धंधुक का पिता और धरणीवराह का पुत्रही होना चाहिए; क्योंकि भीनमाल में ही एक दूसरा शिलालेख वि० संवत् १११७ का जो कृष्णराज का मिला है उसमें स्पष्ट रीति से लिखा है :—

"परमारवंशोद्भवो महाराजाधिराजा (जः) श्रीकृष्णराजः
श्रीधंधुकसुतः श्रीमद्देवराजपौत्रः।"

* देखो, एपिग्राफिया इंडिका, वोल्यूम १० पृष्ठ ११।

* देखो, इंडियन एंटिक्वेरी, वोल्यूम ६, पृष्ठ ५३।

† यह लेख छपा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस लेख में देवराज के पौत्र कृष्णराज को परमार लिखा है। यद्यपि देवराज के लेख में देवराज को परमार नहीं लिखा, परन्तु इस कृष्णराज के लेख से उसका परमार होना निश्चित है; क्योंकि कृष्णराज का लेख भी भीनमाल में कृष्णराज का राज्य बतलाता है, और देवराज का लेख भी भीनमाल में देवराज का राज्य बतलाता है, और दोनों लेखों में दोनों को "महाराजाधिराज" लिखा है, जिससे यह देवराज कृष्णराज का पितामह परमार ही हो सकता है। जब देवराज का समय वि० संवत् १०५९ है तो उसके पिता धरणीवराह का समय उससे पूर्व वि० संवत् १०३१ से १०५१ के बीच में होना यथार्थ है। और एक प्रमाण यह भी है कि सोलंकी मूलराज ने गुजरात से चढ़ाई करके धरणीवराह को आबू प्रांत से भगाया तो उसका गोड़वाड़ में वीरशिरोमणि राष्ट्रकूट धवल के पास हस्तिकुण्डी में जाना सर्वथा योग्य था।

बीजापुर के शिलालेख में धरणीवराह का वंश नहीं लिखा है, केवल नाम मात्र लिखा है, परन्तु शृंखलाबद्ध इस सर्व वृत्तांत से यह धरणीवराह परमार ही सिद्ध होता है। धरणीवराह * नाम का एक चापवंशी राजा भी हुआ था, परन्तु उसका समय शक संवत् ८३६ (वि० संवत् ९७१) होने से वह धरणीवराह हतूंडी के लेख का धरणीवराह नहीं हो सकता।

किराडू का शिलालेख टूटा हुआ है, जिसमें ऊत्पल के आगे के दो पुरुषों के नाम जाते रहे हैं। पाँचवें श्लोक में ऊत्पल का नाम है। छठें श्लोक में एक नाम गया है। और सातवें श्लोक में एक नाम गया है। जो नाम वसंतगढ़ की प्रशस्ति से जाने जा सकते हैं। ३ अर्णोराज और ४ कृष्णराज। आठवें श्लोक में धरणीवराह का नाम तो अक्षर टूट जाने से जाता रहा है, परन्तु उसके सूचक कुछ शब्द यहाँ विद्यमान हैं :—

"सिन्धुराजधराधारधरणीधरधामवान् ॥"

इसका अक्षरार्थ यह है—सिंधुराज अर्थात् समुद्र के भीतर गई हुई धरा अर्थात् धरणी को धारण करनेवाला धरणीधर* अर्थात् वराह उसके तुल्य तेजवाला। उधर सिंधुराज समुद्र, इधर सिंधुराज राजा। उधर धरा अर्थात् धरणी को धारण करनेवाला धरणीधर अर्थात् वराह, इधर धरणीवराह। यहाँ कवि ने श्लेषोज्जीवित परिकर अलंकार द्वारा धरणीवराह का नाम सूचित किया है। इस साभिप्राय विशेषण से स्पष्ट जाना जाता है कि उत्तरार्द्ध में धरणीवराह का ही नाम था, अन्य का नहीं। वसंतगढ़ की प्रशस्ति में भी अक्षर टूट जाने से धरणीवराह का नाम जाता रहा है और किराडू की प्रशस्ति में भी अक्षर टूट जाने से धरणीवराह का नाम जाता रहा है, परन्तु दोनों प्रशस्तियों में जो शेष अक्षर रहे हैं उनसे निश्चय हो जाता है कि यहाँ नाम धरणीवराह का ही है; अन्य का नहीं। धरणीवराह के विषय का राजपूताना में एक छप्पय छन्द प्रसिद्ध है :—

"मंडोवर १ सामंत हुवो अजमेर २ सिद्धसुव।
गढ़ पूगल ३ गजमहत्र हुवौ लोद्रवै ४ भांण भुव ॥
अल्ह पल्ह अरबद ५ भोज राजा जालंधर ६।
जोगराज धर धाट ७ हुवौ हांसू पारक्कर ८ ॥
नव कोट किराडू ९ संजुगन थिर पँवारहर थप्पिया।
धरणीवराह धर भाइयां कोट वांट जू जू किया ॥१॥"

यह छन्द धरणीवराह के समय का नहीं; किन्तु किसी ने पीछे बनाया है; क्योंकि इस छन्द में लिखा है कि "अजमेर का अधीश धरणीवराह का छोटा भाई 'सिद्ध' नामक था, और अजमेर धरणीवराह के समय में बसाही नहीं था, फिर धरणीवराह ने अपने छोटे भाई सिद्ध को अजमेर कैसे दे दिया?

‡ देखो, इंडियन एंटिक्वेरी, वो० १२ पृ० १९३।

* धरणीधर नाम विष्णु का है। "धरणीधरः विष्णौ" इति शब्दार्थचिन्तामणिकोषे ॥ यहाँ विष्णु से वराहही लेना उचित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजमेर का क़िला अजयराज ने जिसको अजयदेव भी कहते थे बनाया था। और अजयराज का समय वि० संवत् ११८० के आस पास होना चाहिए; क्योंकि इसी अजयराज के पुत्र अर्णोराज का शिला-लेख * वि० संवत् ११९६ का मिला है।

(असमाप्त)

रामकर्ण।

जीवधारियों की बनावट।

सारे जीव और अवाक् पौदे जो भूमंडल में हैं एक प्रकार की विशेषता न्यूनाधिक भाव में रखते हैं। सबसे तुच्छ कीड़े से लेकर मनुष्य तक और पौदों में भी जीवधारण करने के विषय में एक प्रकार की अपूर्व समता पाई जाती है। जीवधारियों के शरीर-निर्माण का ज्ञान बहुत ही उपयोगी है विशेषकर मनुष्य का सौभाग्य इस पर बहुत कुछ निर्भर है।

सबसे प्रथम बात इस विषय में यह है कि सब जीवधारियों और पौदों के भिन्न भिन्न अंश सहस्रों ऐसे छोटे छोटे टुकड़ों से बने हैं जो प्रत्येक जीवधारी में या पौदे में एक ही छोटे टुकड़े से उत्पन्न हुए हैं। प्रथमतः वह टुकड़ा दो भागों में विभक्त होता है और पुनः उन दो भागों में से प्रत्येक के दो भाग होते हैं। इस प्रकार विभाग होते होते दो से चार, चार से आठ और अंत में सहस्रों व लाखों टुकड़े एकत्र हो जाते हैं। अँगरेज़ी में इन टुकड़ों को सेल्स (Cells) कहते हैं। जो वस्तु सेल्स के अन्तर्गत होती है उसे प्रोटोप्लाज़म (Protoplasm) कहते हैं। इन सेल्स की चौड़ाई एक इंच के $\frac{1}{500}$ हिस्से से $\frac{1}{2500}$ हिस्से तक होती है। परन्तु लम्बाई इतनी कम नहीं होती। (Protoplasm) प्रोटोप्लाज़म एक गाढ़ी द्रव वस्तु होती है। स्वयं तो यह निर्मल (Transparent) होती है किन्तु छोटे छोटे दानों के मिले रहने से मैली (Clouded) होती है। कभी कभी इसमें तेल की बूँदें अलग मिलती हैं और कभी कभी छोटे छोटे दाने, परन्तु प्रत्येक सेल में एक विशेष कड़ी और ठोस वस्तु भी रहती है जिसको न्यूक्लिअस (Nucleus) या इसकी मींगी कहते हैं। और सेल्स का घटना बढ़ना और ठीक रहना इस मींगी पर बहुत कुछ निर्भर है। इसलिए सच यह है कि सब सेल्स में एक गाढ़ा द्रव पदार्थ रहता है जिसमें एक कड़ी ठोस मींगी रहती है।

लीज (जर्मनी) के प्रोफ़ेसर श्वान (Schwann) साहब को सब से आगे जीव और पौदों की इस बनावट का हाल मालूम हुआ और यह उन्हींने बतलाया कि सेल्स में मुख्य वस्तु वही द्रव पदार्थ और मींगी है। यह भी निश्चय हुआ कि सेल्स का बाहर का ढक्कन जिसमें वह द्रव पदार्थ रहता है वास्तव में उसी से बनता है। जीवधारियों और पौदों के रेशे इन्हीं मींगीदार सेल्स से बनते हैं क्योंकि ये ढक्कन बहुत कड़े नहीं होते किन्तु मुलायम झिल्लीदार और कभी कभी मोटे और कभी कभी पतले होते हैं। यही सेल्स उन रेशों के बनानेवाले होते हैं। एक बात और भी है कि प्रत्येक सेल अपने ही भीतर वाले पदार्थ से घिरा रहता है क्योंकि वे टूट कर बनते हैं। इनकी बनावट किसी एक प्रकार की नहीं होती या तो छतनेदार या जालीदार या रेशेदार और इनका आकार भी कभी गोल कभी लम्बा और कभी सिकुड़ा हुआ होता है।

प्रोफ़ेसर श्वान साहब ने इस विषय में एक बड़ा परिणाम निकाला है। उनकी राय है कि प्रत्येक जीवधारी में जो जो परिवर्तन जीवन से मरण तक

---

* यह लेख छपा नहीं है। यह लेख जयपुर रियासत के शेखावाटी प्रांत में जिणमाता के मन्दिर में एक स्तंभ पर खुदा हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं सब इन सेल्स के रासायनिक व प्राकृतिक परिवर्त्तन के कारण होते हैं और उसका जीवन मुख्यकर इन्हीं के ऊपर निर्भर है। इस कारण इन सेल्स का भाव और उनकी रासायनिक प्रकृति (Property) जानना एक मुख्य कर्त्तव्य हुआ। प्रोफ़ेसर श्वान साहब का यह एक प्रसिद्ध मत (Theory) है और जबसे यह बात ज्ञात हुई तबसे बराबर भिन्न भिन्न जीवधारियों के सेल्स की जाँच की गई है।

मोटे मोटे रेशों के सेल्स को परिवर्त्तित करके अच्छे अच्छे सूक्ष्म-दर्शन-यन्त्रों से लोगों ने भली भाँति उन रेशों के पतले और निर्मल (Transparent) टुकड़े काट कर जाँच की। वह रेशे शराब या क्रामिक एसिड (Chromic acid) (एक प्रकार की वस्तु) में डालने से कड़े हो गये। तब टुकड़े बहुत अच्छे निकल सके और जाँच अच्छी हुई। टुकड़ों को रंग देने से और भी अच्छी तरह उनकी जाँच की गई। परन्तु इधर काट कूट तो होती ही थी उधर लोगों ने किसी प्रकार इन सेल्स और उनके अंदर की ठोस वस्तु को सजीव ही देखने की युक्ति लगाई। यह कोई सामान्य व साधारण बात नहीं है। सूक्ष्मदर्शन यंत्र का आगे का शीशा बहुत ही निकट होना चाहिए तब अच्छी तरह अणु दिखाई देते हैं। परन्तु यह होते हुए भी बड़ी कठिनता इस बात में न पड़ी क्योंकि समुद्र के जल में बहुत प्रकार के ऐसे पौदों की जड़ें और कीड़े पाये जाते हैं जो केवल एक ही दो परमाणु से बने होते हैं, पानी की बूँदों की जाँच बहुत दिन तक की गई और उन जीवित सेल्स की प्रकृति, उनके आकार का परिवर्त्तन उनका बढ़ना और अन्त में उनका दो और चार भागों में बट जाने की शक्ति की बाबत सब बातें निश्चय हो गईं। यही नहीं किन्तु उनके ऊपर गर्मी, प्रकाश, बिजली और अन्य वस्तुओं के प्रभाव का पता भी लगा लिया गया। यह एक अद्भुत बात देखी गई कि जीवधारी या पौदे के मरने के साथ ही ये सेल्स जीवहीन नहीं हो जाते। जीवधारी के शरीर के साफ़ रेशे निकाले हुए उसके मरने के कुछ काल बाद तक यदि सूक्ष्म-दर्शन यंत्र से देखे जायँ तो वे जीवित मिलेंगे। एक मेंढक के मरने के बाद उसकी आँख का आगे का कड़ा हिस्सा जिसको अँगरेज़ी में कार्निया (Cornea) कहते हैं निकाल लिया गया और फिर उस के सेल्स को देखा तो वे जीवित मिले जैसा कि उनके हर्कत करने से ज्ञात हुआ। मनुष्य के शरीर के रुधिर के सेल्स उसकी मृत्यु के कुछ देर बाद तक जीवित रह सकते हैं और एक मेंढक के रुधिर में के सेल्स उसकी मृत्यु के १५ दिन बाद तक जीवित पाये गये हैं। तब तक मेंढक मिट्टी में गड़ के सड़ भी गया होगा।

अब यह देखना है कि जीवन और मरण से इन सेल्स का क्या सम्बन्ध है? यह तो ज्ञात ही है कि प्रत्येक सेल्स में जीव का अंश होता है और उसका सब कार्य मुख्य कर आक्सिजन से चलता है। अत्यन्त गर्मी पहुँचने से वे मर जाते हैं। यह परिणाम भी निकाला जा सकता है कि उनमें से प्रत्येक जीवधारी को सेल्स या पौदेवाले सेल्स पौदे और जीवों को प्रत्येक कार्य में सहायता देते हैं। इस मर्म ज्ञान के पूर्व यह विश्वास था कि सब वस्तुओं की उत्पत्ति इस गाढ़ी द्रव वस्तु (Protoplasm) के एकत्र होने से होती है परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। प्रत्येक सेल बढ़ने पर दो भागों में और पुनः चार, आठ, सोलह भागों में विभक्त हो जाता है। इस भाग का क्रम उसके अन्दर की मींगी से आरम्भ होता है। सेल्स के टुकड़े होते होते जब वे मिल कर दृढ़ और पुष्ट हो जाते हैं तब पौदा या जीवधारी बन जाता है। ये बातें सब जीववाले पदार्थों में पाई जाती हैं और सेल्स विभक्त होने के बाद अलग नहीं हो जाते किन्तु उस द्रव पदार्थ से एक दूसरे में मिले रहते हैं। यद्यपि वे बाहर से दृढ़ होते हैं परन्तु जालीदार होते हुए एक दूसरों से पूरा सम्बन्ध रखते हैं।

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE LENT OUT
सन्दर्भ ग्रन्थ
REFERENCE BOOK
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे किसी देश के लोग सब कामों में सम्बन्ध रखते हुए एकत्र होकर देश का काम चलाते हैं उसी प्रकार ये सेल्स मिल जुल कर सब कार्य शरीर की सफलता के लिए करते हैं। सब एक ही सेल्स से बट के बनते हैं और सब एक साथ उस द्रव पदार्थ के द्वारा मिले रहते हैं। वही द्रव पदार्थ जीवधारी में मुख्य वस्तु है। उसके रासायनिक परिवर्त्तन और उसके टूटने (Decomposition) से मृत्यु होती है। यह तो स्पष्ट ही है कि जब तक उनकी बनावट ठीक रहती है तब तक किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती। यह बात बहुत प्रकार के सेल्स में देखी गई है कि यदि उन पर शीत या उष्णता का प्रभाव डाला जाय या हवा रोक दी जाय तो उनको हानि तब तक न पहुँचेगी जब तक उनकी भीतरी बनावट (Internal composition) न बिगड़े। इनका काम सब प्रकार घड़ी की भाँति होता है। जब तक घड़ी के पुर्ज़े ठीक रहें और टूटें नहीं तब तक आप उसमें कूक न देकर या उसके पहिये को रोक कर उसको बन्द कर सकते हो। जिस समय उसमें कूक दी जायगी या रोक हटाली जायगी घड़ी फिर चलने लगेगी। यही हाल सेल्स के अन्दर की वस्तु का है। उन सेल्स के टूट जाने या उन पर किसी ऐसे प्रकार का आघात पड़ने से जिससे उन पर बहुत भार पड़े या किसी वस्तु के मिलने से वे बदल जाय तब वे मृत्यु का कारण होते हैं। एक दूसरे से मिला तो रहता ही है इस कारण एक में परिवर्त्तन होते ही दूसरे में भी परिवर्त्तन हो जाता है। बहुत शीघ्र नहीं तो भी थोड़ी देर में सब बिगड़ जाते हैं। जब मनुष्यों को मृत्यु आती है तो पहले तो शरीर के हाथ पाँव शिथिल हो जाते हैं उसके बाद साँस बन्द होती है (एक मृत मनुष्य के मुँह के सामने शीशा रखने से मालूम होता है कि उस पर भाफ किंचित् मात्र भी नहीं आती जैसी कि जीवित दशा में शीघ्र आती है) और तब हृदय की गति कम पड़ जाती है और उसके अनन्तर मुख और ओंठ पीले वर्ण के हो जाते हैं और सम्पूर्ण शरीर शीतल पड़ जाता है क्योंकि रुधिर की धारा का प्रवाह न होने से उष्णता नहीं पहुँचती। इन सब बातों के होने के बाद भी सेल्स के भीतर का द्रव पदार्थ कभी कभी अपना काम करता रहता है। मृत्यु हो जाने और पूर्वोक्त सब बातों के होजाने के बाद भी मृतक के दाढ़ी जमती है। अतः मृत्यु वास्तव में जीवधारी और पौदे के रेशों में सेल्स के टूट जाने से आती है। अब हम यह कह सकते हैं कि यह आवश्यक नहीं है कि हम यह कल्पना करें कि जीव एक ऐसा पदार्थ है जो जीवन के समय आकर मिल जाता है और मृत्यु होने पर निकल कर भाग जाता है। परन्तु तिस पर भी इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इन सेल्स के अन्दर की दशा को जान लेना और समझ लेना बड़ी सामान्य बात है। उसमें जो विशेष और विचित्र चमत्कार होताहै साधारण और सरलता से दृष्टिगोचर नहीं होता। यह कहना कि जीव और जीव ही क्या मनुष्य का हृदय और उसका मन ऐसे ऐसे सेल्स के ऊपर निर्भर है और उनकी बनावट केवल प्राकृतिक व्यवहार के Peculiar order of nature अनुसार होती है, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की अपूर्व और विचित्र शक्ति में विश्वास त्याग देने का कारण न होना चाहिए। प्राकृतिक व्यवहार हीको सब कुछ समझना ठीक नहीं है। सम्पूर्ण भूमण्डल की विचित्र और नवीन घटनायें देखने से मनुष्य को परमेश्वर का उतनाही सम्मान करना चाहिए और उसके उतने ही अधीन रहना चाहिए जितना कि प्राचीन विचार के लोग भौतिक और अन्यान्य आकस्मिक प्राकृतिक घटनाओं को देख कर करते और उससे डरते हैं।

काशीदत्त पांडे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धृतराष्ट्र ओ सञ्जय ।
धृतराष्ट्र और सञ्जय ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धृतराष्ट्र और सञ्जय।

(१)

सञ्जय ने जब सर्वनाश की कथा सुनाई
तत्क्षण ही धृतराष्ट्र भूप को मूर्च्छा आई।
जब वे हुए सचेत वही दुख सम्मुख आया,
हो मानों असहाय दृगों ने नीर बहाया॥

(२)

"सुनकर वचन यथार्थ हाय! संजय ये तेरे,
शोकानल से प्राण जले जाते हैं मेरे।
वृद्धकाल में सर्वनाश-दुख मैंने भोगा
क्या मुझ सा हतभाग्य विश्व में कोई होगा?

(३)

"पाण्डव परम सुशील, उन्हें कुछ दोष नहीं है,
होता उन पर मुझे तनिक भी रोष नहीं है।
है मेरा दुर्भाग्य, और क्या कहूँ हाय! मैं,
मृत्यु-बिना अब नहीं देखता कुछ उपाय मैं!

(४)

"दुर्योधन का द्वेष पाण्डवों पर जब देखा,
लगा सका जब मैं न दुराचारी का लेखा।
देखा चारों ओर उपस्थित जब भय मैंने,
जान लिया था तभी भरतकुल का क्षय मैंने॥

(५)

"लक्ष लक्ष-धन्वी-समक्ष झष-लक्ष्य भेद कर,
सिद्ध हुआ जब पार्थ द्रौपदी का प्रसिद्धवर,
लाक्षागृह गत हुए प्रकट पाण्डव जब ऐसे,
करता तब मैं पुत्र-विजय की आशा कैसे?

(६)

"जब खाण्डव जल गया गिरी यद्यपि जल-धारा,
भीमसेन ने जरासंन्ध को रण में मारा।
राजसूय जब हुआ विश्व का विजय-खम्भ जो
जाना था, है व्यर्थ, सुयोधन करै दम्भ जो

(७)

"हुआ जुए का खेल मेल की मिटी निशानी,
हुई द्रौपदी हाय! सभा में पानी पानी!
धर्मराज ने कहा न कुछ इतने पर भी जब,
यही बहुत है, गिरा सुतों पर जो न वज्र तब!

(८)

"पाण्डव जब अज्ञात बासकर चुके क्षेम से,
और सन्धि-प्रस्ताव उन्होंने किया प्रेम से।
दुर्योधन ने तदपि किसी का कहा न माना,
निश्चयपूर्वक तभी नाश था मैंने जाना॥

(९)

"भीष्म, विदुर, द्रोणादि सभी ने समझाया था,
पर न एक भी मन्त्र सुतों के मन भाया था।
हम ठहरे जड़ जीर्ण, हमारी क्या गिनती है!
अब तो पीछा छोड़ मोह! हा हा विनती है!!

(१०)

"वत्स सुयोधन! तनिक लौट कर इधर निहारो,
अब वे हित के वचन हमारे कहे विचारो।
मिलना तो अब कहाँ, जन्म जो फिर तुम धारो—
हो विनती है यही नीति-पथ नहीं विसारो॥

(११)

"देते थे तुम जो न सुई की नोंक बराबर,
ठौर रही अब तुम्हें न देखो, उसी धरा पर।
अन्त समय तक हाय! न तुमने हठ को छोड़ा,
हम से नाता तोड़ कहो! अब किससे जोड़ा?

(१२)

"कालचक्र की चाल अहो! रुकती न कहीं है,
आती कोई शक्ति यहाँ पर काम नहीं है।
पड़ा रहा सब विभव यहीं जैसा का तैसा
चला गया बस जीव मात्र आया था जैसा!

(१३)

"हम वृद्धों के कहाँ गये सौ आज सहारे,
हम अन्धों के कहाँ आज आँखों के तारे!
वह प्रताप, वह शक्ति और वह गिरा कहाँ है!
रोनाही अब हमें शेष रह गया यहाँ है!!!"

(१४)

रोरोकर यों भूप देखने लगे अँधेरा,
संजय ने तब धैर्य दिया उनको बहुतेरा।
पर क्या गहरा घाव सहज ही मिट जाता है?
घाव मिटे, पर, चिह्न जन्म भर दिखलाता है!

मैथिलीशरण गुप्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सतसई-संहार।*

[गतांक से आगे]

३०—आवत जात न जानियत तेजहि तजि सियरान।
घरहि जमाईलौं धस्यो, खस्यो पूष दिनमान ॥५८२॥

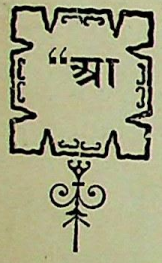

"आते और जाते जाना नहीं जाता तेज को त्याग कर शीतल हो गया है घर में जमाई की सम घुसा हुआ पूष का दिन खसकता है आशय यह ससुराल में जमाई भी सकुचवश शीतल हुआ रहता है "पूर्णोपमा"

(पृष्ठ १९०)

वाह महाराज! 'धस्यो खस्यो' की जुगलजोड़ी बनी रहे! खूब मिली है! यह आपने कहाँ से मँगाई है? आपकी आदर्श 'लालचन्द्रिका' में तो यह है नहीं, और न, हरिप्रकाश, विहारीविहार, अनवरचन्द्रिका, रसचन्द्रिका, शृङ्गारसप्तशती, और कृष्णदत्त की टीका में इस जोड़ी का पता है! न मालूम आपके हाथ कहाँ से लग गई! 'पूष के दिनमान' को खूब 'जमाई के सम (?) घर में घुसाकर' खसकाया है! क्या पूष का दिनमान, और जमाई, ये दोनों घर में ही घुसे रहते हैं! बाहर नहीं निकलते? सम्भव है कोई घरघुसना, मिहिला (स्त्रैण) जमाई घर में ही घुसा रहता हो, पर पूष का दिनमान तो खुले मैदान सबके सामने रहता है! इस वर्ष पौष के दिनों में किसी को साथ लेकर (यह इसलिए कि कदाचित् वह आपकी आँखों से ही ओझल रहता हो!) आप इसकी अच्छी तरह परीक्षा कर देखिए 'पूष का दिनमान' आपको बाज़ारों और जंगलों में भी स्वच्छन्दता से विचरता हुआ दिखलाई देगा, चाहे आप रामगङ्गा के पार पूर्व की ओर चले जाइए, या नार्मल-स्कूल से उधर पश्चिम की ओर, सूर्योदय से सूर्यास्त तक, जिस समय देखियेगा, 'पौष के दिनमान' को अवश्य उपस्थित पाइएगा! जितनी देर भी वह रहेगा सबके सामने, बराबर अपनी डयूटी पर रहेगा, कभी मुँह छिपाकर घर में न लुकेगा!

हाँ, ज़रा आशय तो सुनाइए, "आशय यह ससुराल में जमाई भी सकुचवश शीतल हुआ रहता है"—तो क्या यह दोहा ससुराल में गये हुए जमाई की 'सकुचवश शीतलता' (?) का वर्णन करने के आशय से ही विहारी ने लिखा है! अन्य टीकाकारों ने और स्वयं आपने भी इसे "हेमन्त-वर्णन" के प्रकरण में लिखा है, और इसमें से आशय आपने सिर्फ़ "घर में घुसा हुआ" 'जमाई' निकाला! क्या 'घर में घुसे हुए जमाई' में यह 'सकुचवश शीतलता' केवल हेमन्त में ही आती है?? अन्य ऋतुओं में वह खूब धृष्ट बना हुआ, सबके सामने इधर उधर घूमता रहता है?

और 'सकुचवश शीतलता' की भी आपने एक ही कही! एक कवि तो कहता है :—

"सदा वक्रः सदा क्रूरः सदा पूजामपेक्षते।
कन्याराशिस्थितो नित्यं जामाता दशमो ग्रहः॥"

सहृदयगण! दोहे का शुद्ध पाठ इस प्रकार है—

"आवत जात न जानिये तजि तेजहिं सियरान।
घरहि जमाई लौं घट्यौ खरौ पूस दिनमान॥"

इसका भावार्थ—

घरजमाई कहते हैं खाना दामाद को अर्थात् 'पुत्रिका' का पति। अभिप्राय यह कि जिस प्रकार घरजमाई का मान (प्रतिष्ठा) ससुराल में निरन्तर रहने से

"अतिपरिचयादवज्ञा सन्ततगमनादनादरो भवति"

---

* भ्रमशोधन—सरस्वती की गत संख्या में "सतसई-संहार" के ४६६ पृ० पं० ५ में ".....भवान्..... नाशङ्कसे विलजसे" भ्रम से छप गया है, "..... नाशङ्कते विलजते" चाहिए। स० सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घट जाता है, उसका तेज = रोबदाब मन्द पड़ जाता है, मामूली बात होने के कारण उसका आना जाना किसी को मालूम नहीं पड़ता, वह कब आया और कब गया, इस पर कोई विशेष ध्यान नहीं देता, इसी प्रकार पौष का दिनमान घट जाता है, पौष (हेमन्त) में दिन बहुत छोटा हो जाता है, उसमें तेज (उष्णता) नहीं रह जाती, ठंडा हो जाता है।

तथा मानिनीजनों का मान = रूठना भी उन दिनों चिरस्थायी नहीं रहता। यहाँ मान शब्द श्लिष्ट है, अतएव "पूर्णोपमा" के अतिरिक्त "श्लेषालङ्कार" भी है। हेमन्तवर्णन में एक संस्कृतकवि का यह श्लोक है, इसमें पौष के दिनमान की क्षीणता कैसी विलक्षण उपमाओं द्वारा द्योतित की है :—

"लज्जा प्रौढमृगीदृशामिव नवस्त्रीणां रतेच्छा इव,
स्वैरिण्या नियमा इव स्मितरुचः कुल्याङ्गनानामिव।
दम्पत्योः कलहा इव प्रणयिता वाराङ्गनानामिव,
प्रादुर्भूय तिरोभवन्ति सहसा हैमन्तिका वासराः॥"

३१—नाह गरज नाहर गरज, वचन सुनायो टेरि।
फँसी फौज बिच बन्दि में, हँसी सबनि मुख हेरि॥६५९

"रुक्मणीहरण का समय, मत्तसिंह की गरज से गरजे और सबको पुकार कर यह वचन सुनाया, विरोधियों की सेना की बंदि में फँसी, और सब राक्षसों का मुख देख हँसी" (पृ० २१४)

"रुक्मिणीहरण का समय" यह तो ठीक, पर इससे आगे "मत्तसिंह की गरज से" से लेकर "... मुख देख हँसी" तक की इबारत का क्या मतलब है! "और सबको पुकार कर यह वचन सुनाया" क्यों सुनाया! कुछ प्रयोजन भी है! सुनिए, वचन भी क्या अच्छा सुनाया, न सुना होगा किसी ने! "विरोधियों की सेना की बंदि (?) में फँसी, और सब राक्षसों का मुख देख हँसी" न जाने यह किसने सुनाया, किसे सुनाया, क्या सुनाया और क्यों सुनाया! यह कौन 'फँसी' और कौन हँसी, और क्यों हँसी, ? विद्यावारिधिजी ही जानते हों तो जानते हों! 'नीलदेवी' के 'वसन्त' की बातें तो समझ में आ जाती हैं, पर यह 'अति ललित, मुग्ध, मधुर' अर्थ नहीं समझा जाता?

कोई वीरवधू नायिका, शत्रुओं की फ़ौज में कैद हुई बैठी है, कि इतने में उसके पति ने दूर से सिंहध्वनि से गरज कर, शब्द सुनाया, अपने आने की सूचना दी। सुनते ही नायिका, सबकी ओर देख-कर अवज्ञापूर्वक हँसी, अर्थात् अब तुम्हारी बहादुरी देखी जायगी, अपने किये का फल पाने को तैयार हो जाओ, तुम सबको पछाड़ कर मेरा स्वामी अब मुझे छुड़ाये लिये जाता है।

यह इस दोहे का भाव है। जयद्रथद्वारा द्रौपदी-हरण या रुक्मिणीहरण पर इसे समझ लो।

श्रीसातवाहन की "गाथा-सप्तशती" में भी इस अर्थ की कई आर्या हैं, उनमें से एक इस दोहे से मिलती यह है :—

"वज्रपतनातिरिक्तं पत्युः श्रुत्वा शिञ्जिनीघोषम्।
प्रोञ्छितानि बन्ध्या सट्टशबन्दीनामपि नयनानि॥"

३२—यमकरि मुँह तरहर परयो, यह धरहर चितलाय।
विषयतृषा परिहरि अजौं, नरहरि के गुणगाय॥६६७

"यमरूपी हाथी नीचा मुख किये तले पड़ा है; यह मन में धारण कर हरि में चित्त लगा विषय-रूपी तृष्णा को अब भी छोड़ कर नृसिंहजी के गुणगान कर "परिसंख्या" (पृष्ठ २१६)

बस अब और क्या चाहिए! "यमरूपी हाथी नीचा मुख किये तले पड़ा ही है"! सवार हो लीजिए! बेड़ा पार है! इस खुशी में नरसिंहजी का जितना गुणगान किया जाय थोड़ा है! यमरूपी हाथी पर चढ़ कर भी यदि विषयरूपी तृष्णा शान्त न हो तो आश्चर्य है!

वाह विद्यावारिधिजी महाराज! धन्य है आपकी अद्भुत-शक्ति को! आपकी अनर्थ-ज्वाला से जल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर यमरूपी हाथी भी नीचा मुख करके तले आ पड़ा! आपके लेखनीरूपी अङ्कुश के एक ही वार ने यमरूपी हाथी का काम तमाम कर दिया! यम जैसे जगद्विजयी दुर्दम वीर को, जिसके प्रबल आतङ्क से सारा संसार काँपता है, इस फुर्ती से औंधे मुँह पटक देना, सिर्फ़ आपही का काम था! आपकी इस मल्ल-विद्या ने जापानी 'जुजुत्सु' को भी मात कर दिया! क्यों न हो, आप आपही हैं! जिस प्रकार किसी प्रबल शत्रु को पछाड़ कर विजय-विह्वल आदमी की ज़ुबान से हर्षजड़ता के कारण कुछ बेजोड़ वाक्य निकल जाते हैं, वही दशा यमविजयी-वारिधिजी की हो गई है, जो उनके इन असम्बद्ध वाक्यों से प्रकट होती है—"यह मन में धारण कर, हरि में चित्त लगा, विषय-रूपी तृष्णा को अब भी छोड़ कर नृसिंहजी के गुणगान कर "परिसंख्या"!

दोहे का अर्थ—

शान्तरस—निर्वेदस्थायी भाव का वर्णन, विषयासक्त संसारी को चेतावनी—"यमरूप हाथी के मुख के नीचे मैं पड़ा हूँ," यह बात मन में समझ कर, हरि में चित्त लगा, उसका ध्यान धर, अब भी विषय-तृष्णा को छोड़ कर नरहरि=नृसिंह के गुण गा, यमरूप प्रबल हाथी की डाढ़ से नरसिंहजी ही छुड़ा सकते हैं! यम-करी—रूपके। नरहरि—(साभिप्राय विशेष्य होने से) परिकराङ्कुर, और 'परिसंख्या-लङ्कार की संसृष्टि'।

सतसई में चिड़ियाघर !!

पाठकवृन्द! आपमें से बहुत से सज्जनों ने जयपुर और लाहौर आदि के चिड़ियाघर तो देखेही होंगे, पर हमारे अनुरोध से ज़रा वारिधिजी का 'चिड़ियाख़ाना' भी देख लीजिए, उसमें भाँति भाँति के जानवरों की बोली सुनकर आप बहुत प्रसन्न होंगे! आप देखेंगे कि वहाँ पशु-पक्षियों के साथ तरुवर (वृक्ष) भी बोल रहे हैं!

"काकूक्ति" को 'काकोक्ति' (?) लिखकर तो विद्यावारिधिजी ने जहाँ तहाँ बिहारी की कविता पर कव्वे बुलवायेही हैं, इसके लिए तो शायद उनकी ओर से यह कहा जाय कि आदर्शपुस्तक से नक़ल करते वक़्त जैसा वहाँ देखा, लिख दिया, हमारी जाने बला, कि 'काकोक्ति' ठीक है या 'काकूक्ति'! पुराने लेखकों के सम्प्रदाय का एक प्रसिद्ध श्लोक है, जो प्रायः पुरानी हस्तलिखित पोथियों की समाप्ति पर लिखा रहता है :—

"यादृशं पुस्तकं दृष्टं तादृशं लिखितं मया।
यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयताम्॥"

यद्यपि ऐसा कहकर विद्यावारिधिजी पीछा नहीं छुड़ा सकते, क्योंकि वह कोई साधारण समझ के, मक्खी की जगह मक्खी मारने वाले, और टूकापी करनेहारे पुस्तकलेखक नहीं हैं, किन्तु "अनेक सतसई सन्मुख रखकर, कविवर का आशय सर्वसाधारण की बुद्धि में प्रगट (?) कराने के लिए अतिललित मधुर मुग्ध टीका बनानेवाले श्रीमान् 'विद्वद्वृन्द-शिरोमणि' साक्षात् 'विद्यावारिधि" हैं। उनके लिए यह एक बड़ी ही लज्जाजनक बात है कि वह "काकोक्ति" और "काकूक्ति" में भेद न समझ सकें! परन्तु इससे भी अधिक चिड़ियाख़ाना खोल-कर तो आपने अविवेक और अज्ञानता की 'हद पर गन्टू (?)' रखदी है!

वाचकवृन्द! साहित्य में एक अतिप्रसिद्ध "अन्योक्ति" अलङ्कार है, जिसका अभिप्राय है, किसी पर डालकर बात कहना, इसी का दूसरा नाम "गूढोक्ति" भी है :—

"गूढोक्तिरन्योद्देश्यं चेद्यदन्यं प्रति कथ्यते।
वृषापेहि परक्षेत्रादायाति क्षेत्ररक्षकः" (कुवलयानन्दे)
"गूढ़ोकति मिसि और के कीजै पर उपदेश।
काल्हि सखी हौं जाउँगी पूजन देवमहेश॥"
(भाषाभूषण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"विहारी सतसई" में भी इस अलङ्कार के उदाहरणभूत कई दोहे हैं, जिन्हें लल्लूलालजी ने (आज़मशाहीक्रम के अनुसार) पृथक् "अन्योक्ति-वर्णन" प्रकरण में लिखा है। यह प्रकरण (लाल-चन्द्रिका में) ६१८ वें, दोहे से प्रारम्भ होकर ६४९ दोहे पर समाप्त हुआ है। उक्त प्रकरण बड़ा ही मनोहर और नीतिमय तथा उपदेश-पूर्ण है। उसेही वारिधिजी ने "चिड़ियाघर" बना दिया है!

इस स्थल में कई जगह पर वारिधिजी ने, न जाने किस तरङ्ग में आकर, अपने पाण्डित्य की लीला का वह विचित्र दृश्य दिखलाया है, जिसे देखकर अवाक रह जाना पड़ता है!

पाठकों को याद होगा कि "छुटी न सिसुता की झलक" इस दोहे में "ताफ़ता" जयपुर के बने एक वस्त्रविशेष का नाम आया है, सो उक्त दोहे का अर्थ करते हुए वारिधिजी ने लिखा है "जयपुरी दृश्य (?)। यद्यपि उक्त दोहा बालानायिका की वयःसन्धि-वर्णन-परक है। यदि जयपुर के बने कपड़े का नाम आजाने से ही वह दोहा "जयपुरी दृश्य" बन गया, तो "मिलि बिहरत बिछुरत" इत्यादि (५८०) दोहे में "जुराफा" आया है। जिसे आपने ईरान का पक्षिविशेष, लिखा है, चाहिए था कि यहाँ भी आप "ईरानी दृश्य (?)" लिखते! और सिर्फ़ एक यही क्यों 'सतसई' में जहाँ जहाँ, जिस जिस 'उपमान' पदार्थ का नाम ('ताफ़ता' की तरह) आया है वहाँ वहाँ वही दृश्य लिखना चाहिए, यथा—

"लाज लगाम न मानहीं नैना मो बस नाहिं।
यह मुखजोर तुरङ्ग लौं ऐंचत हू चलि जाहिं।" (२७०)

इसे घुड़दौड़ के मैदान का दृश्य (?) लिखना चाहिए था!! जहाँ नेत्रों को कमल से उपमा दी है, वहाँ कमल खिले सरोवर का दृश्य, जहाँ मुख को चन्द्रमा से उपमा दी है, वहाँ 'चान्दनी रात का दृश्य' (?) विद्यावारिधिजी को, 'जयपुरी दृश्य' के समान लिखना चाहिए था! अस्तु।

अब ज़रा 'चिड़ियाघर' की सैर कीजिए—

"दिन दस आदर पाय कै करले आप बखान।
जौ लगि काग सराधपख तौ लगि तो सनमान॥"

इस पर टीका करते हुए श्रीमान् लिखते हैं—

"जो थोड़े दिन की प्रभुता पर अभिमान में फूल उठते हैं उनपर "काकोक्ति" (?) हे काक!..... इत्यादि, (पृ० २०६)

चूंकि इसमें काग शब्द आया था, इसलिए यह "काकोक्ति" हो गई! अब यह 'विहारी की उक्ति' नहीं रही! अर्थात् इस दोहे पर विहारी का अधिकार नहीं रहा! किन्तु काक का क़ब्ज़ा हो गया! यहाँ तो स्पष्ट ही "काकस्य उक्तिः—काकोक्ति" है। 'काकूक्ति' का अपभ्रंश नहीं! क्योंकि इसी की टीका में आगे चलकर अन्त में वारिधिजी ने "अन्योक्ति" भी लिख दिया है!

इससे अगले दोहे—"स्वारथ सुकृत"—में "बाज" शब्द आया है, पर वहाँ आपने "बाजोक्ति" नहीं लिखी न जाने क्यों ?? शायद प्रेसवालों से छूट गया *!

और आगे चलिए :—

"मरत प्यास पिंजरा परयो, सुआ समय के फेर।
आदर दै दै बोलियत बायस बलि की बेर ६३६॥"

इसका अर्थ करके अन्त में लिखते हैं "शुकोक्ति" गुणी के सन्मुख निर्गुणी (?) के आदर में"!!!

और सुनिए—

"को छूट्यो इहिं जाल परि मत कुरङ्ग अकुलाय।
ज्यों ज्यों सुरझ भज्यो चहै, त्यों त्यों उरझ्यो जाय॥"
(६३७)

---

* "गोधन तू हरख्यो हिये घरि इक लेहु पुजाय" दो० ६२८ पर भी "पहाड़ोक्ति" (?) शायद प्रेसवालों की ही ग़लती से छूट गया है, वारिधिजी ने तो ज़रूर लिखा होगा!
प० सिं० श०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका अर्थ लिख कर अन्त में फ़रमाते हैं "अपनी तृष्णा पूर्ण कर विरक्त हो जायंगे उनसे "कुरङ्गोक्ति" है। इसमें जो रेखाङ्कित अलौकिक वाक्य है, उसका यहाँ क्या सम्बन्ध है कुछ समझ में नहीं आता!

इस सुप्रसिद्ध दोहे पर—

"नाहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास यह काल।
अली कली ही सों बँध्यो आगे कौन हवाल।"

आपको "भ्रमरोक्ति" का भ्रम हुआ है!

अब तक ख़ैर थी कि, आपने काक, शुक, और भ्रमर इत्यादि चेतन जीवों को ही बुलवाया था, अब ज़रा कान खोल कर सुनिए, "वृक्ष" बोल रहा है!:—

"नहिं पावस ऋतुराज यह तज तरुवर मति भूल।
अपत भये बिन पाय है क्यों नव दल फल फूल"

".....अर्थात् राजसेवक के दुःख पर "तरुवरोक्ति" (पृ० २०७)

वृक्षों से बातें कराना, आज तक किसी से नहीं बन पड़ा था, विद्यावारिधिजी की ही अलौकिक माया का प्रताप है कि जड़ वृक्ष भी कविता कर रहे हैं! सुना है हज़रत मोहम्मद साहब ने भी एक बार किसी वृक्षविशेष से अपनी नबूवत पर गवाही दिलवाई थी। विद्यावारिधिजी ने 'तरुवर' से कविता करा दी! उन्होंने 'शक्कुलक़मर' का करश्मा दिखलाया था, वारिधिजी ने 'सुधादीधिति' के टुकड़े किये हैं, वारिधिजी को चाहिए कि इन दो मोज़िज़ों की बिना पर वह भी नबूवत का दावा कर दें!

दोषज्ञ पाठकवृन्द! विद्यावारिधिजी की विद्या की बानगी के नमूने दिखलाते, दिखलाते, आज कई मास बीत गये, लिखना अभी बहुत कुछ था, क्योंकि ये तो "वारिधि" के कुछ बिन्दु हैं, बड़ी देग के दो चार चावल हैं, सारा समुद्र और पूरी देग प्रायः ऐसेही बिन्दुओं और ऐसेही चावलों से लबालब भरे हुए हैं! यद्यपि एक बिन्दु से जल का स्वाद और एक तण्डुल से देग की दशा विदित हो जाती है, तथापि यदि इस लेख को पृथक् पुस्तकाकार प्रकाशित कराने का प्रसङ्ग आया, (जैसा कि कुछ महानुभाव अनुरोध कर रहे हैं) और आवश्यकता समझी गई, इस इतनी समालोचना का समाधान कारक उत्तर मिल गया, तो देग को उलट कर, और पूरी तरह से परीक्षा कर दी जायगी, सब कसर कोर निकाल दी जायगी, इस समय इतना ही बहुत है।

*"सूक्ष्मं विभाव्य मयका समुदीरितानां
ज्वालाप्रसादकृतटिप्पनदूषणानाम्।
निर्मत्सरो यदि समुद्धरणं विदध्या—
त्तस्याहमुज्ज्वलमतेश्चरणौ वहामि"* ॥

विशेष वक्तव्य।

प्रिय पाठकवृन्द! इस समालोचना को प्रारम्भ करते समय, मुझे यह ध्यान नहीं था कि इतने दिनों तक इस काँटेदार फुलवाड़ी में उलझा रहना पड़ेगा! मैं समझा था कि बिहारी की कविता के साथ जो अन्याय हुआ है, वारिधिजी ने अपनी टीकाद्वारा उसका जिस प्रकार 'संहार' किया है, उसके दस बीस उदाहरण, समझदार और सहृदय पबलिक के सामने रख कर, छुटकारा पा जाऊँगा, परन्तु ज्यों ज्यों मैं समालोचना शीघ्र समाप्त करके पीछा छुड़ाने की कोशिश करता गया, त्यों त्यों यह पुस्तक चिमटती गई। जैसा कि मैं भूमिका में लिख चुका हूँ कि "यह टीका सब प्रकार के दोषों से सर्वाङ्गभूषित है" पुस्तक को जहाँ से देखिए, जो पृष्ठ लौटिए और जिस दोहे पर दृष्टि डालिए, वही वारिधिजी के ज़ुल्म का शाकी है! ऐसी दशा में यह कठिन है कि कोई सचेता, दयार्द्रहृदय पुरुष, इस भयानक दुर्दशा और प्राण-संकट में पड़ी हुई कविता के पास से जल्दी से निकल जाय, उसकी हालत पर आँसू बहाने और दुखड़ा रोने के लिए समय चाहिए।

*"सूक्ष्मं विभाव्य मयका समुदीरितानामप्यय्यदीक्षित-कृताविह दूषणानाम्। निर्मत्सरो यदि समुद्धरणं विदध्यात्तस्याह-मुज्ज्वलमतेश्चरणौ वहामि" (पण्डितेन्द्रो जगन्नाथः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यावारिधिजी की इस टीका को टीका न कह कर यदि विहारी की कविता का "सूनागृह" (Slaughter-house) अथवा "सतसई की श्मशान-भूमि, कहा जाय तो ठीक है! कोई कड़ा जी करके देखे तो मालूम हो कि वारिधिजी की क़लम के करारे ज़ख़्म खाकर कहीं विहारी की कविता पड़ी सिसक रही है, कहीं दम तोड़ रही है, और कहीं अनर्थ की ज्वाला से जल कर भस्म हो गई है!

मैं समझता हूँ प्रत्येक सहृदय, कविताप्रेमी और हिन्दीहितैषी सज्जन को, चाहे वह किसी विचार और मत का हो, एक 'अनधिकारी' पुरुष द्वारा सताई हुई कविता की इस शोचनीय दशा पर दुःख और शोक हुए बिना न रहेगा।

जगदन्तरात्मा, इस बात का साक्षी है कि मैंने यह समालोचना किसी व्यक्तिगत द्वेष या मतभेद से प्रेरित होकर नहीं लिखी, टीकाकार से मेरा किसी प्रकार का वैर नहीं। किन्तु दुःखिनी कविता की दुर्दशा पर मेरा हृदय पिघल गया, और बलात् यह सब कुछ लिखा लिया :—

"इस दिले बेताब की साहब ख़ता थी मैं न था"

श्रीमान् विद्यावारिधिजी, यदि इस लेख को शान्तचित्त होकर पढ़ेंगे और उन प्रार्थनाओं पर जो बार बार इस लेख में उनसे की गई हैं, ज़रा ठंडे दिल से विचार करेंगे तो आशा है कि वह अपने स्वरूप को पहचान कर आगे ऐसे साहस के काम में हाथ न डालेंगे, अपने थोड़े से स्वार्थ और मान के लिए इस प्रकार का अनर्थ करना एक 'विद्यावारिधि' धार्मिकोपदेष्टा, 'ब्राह्मण' के लिए कलङ्क की बात है। आपने सतसई की तरह और भी अनेक संस्कृत और हिन्दी ग्रन्थों का इसी प्रकार सर्वनाश किया है। यदि आवश्यकता हुई और समय मिला तो कभी फिर भी हम आपके पाण्डित्य का परिचय पबलिक को देंगे।

एक प्रार्थना वारिधिजी के क़दरदान और सतसई के प्रकाशक, श्रीमान् सकलगुणनिधान सेठ खेमराज-जी से है। यदि किसी व्यक्तिविशेष पर आपकी कृपादृष्टि है, आप उसे किसी प्रकार की सहायता देना चाहते हैं, तो बड़ी अच्छी बात है, शौक़ से ऐसा कीजिए, परन्तु 'सतसई' जैसी पुस्तक की दुर्दशा कराकर, ऐसे लोगों से इस प्रकार की टीका लिखा कर, उसके बदले में जुर्माने की जगह इनाम और पुरस्कार देना, और भ्रष्ट पुस्तकों का प्रचार करना, उपकार के रूप में महापकार है! आप जैसे दानी और परोपकारी धर्मात्मा से पबलिक ऐसी आशा नहीं कर सकती।

यदि श्रीमान् सेठ जी, सतसई की बची हुई पुस्तकें "समुद्रसात्" कराकर अपने औचित्यपालन की उदारता दिखला सकें तो विहारीलाल की आत्मा, सतसई के प्रेमियों और हिन्दी-साहित्य पर आपका असीम उपकार हो, बड़ी दया हो।

इस भ्रष्ट पुस्तक को नष्ट करने में आपके अनुग्रह-पात्र विद्यावारिधिजी को तो किसी प्रकार की हानि होही नहीं सकती, इसके लिए उन्हें जो कुछ मिलना था, मिलही चुका, और आपको, इस क्षुद्र पुस्तक के नाश से हानि पहुँचही क्या सकती है! जिस प्रकार समुद्र से एक बिन्दु जल ले लेने पर समुद्र सूख नहीं सकता, वैसेही आपके सुबृहत् पुस्तकभण्डार से उठाकर इस दूषित पुस्तक की कुछ बची खुची प्रतियाँ समुद्र में डाल देने से पुस्तकालय शून्य नहीं हो सकता! किन्तु आपके इस कृत्य से अशुद्ध पुस्तकप्रकाशन-रूप पाप का प्रायश्चित्त और कविताप्रेमिमात्र का हृदय सन्तुष्ट हो सकता है। ओं शमितिशान्तिः।

पद्मसिंहशर्मा।

मनोरञ्जक श्लोक।

ताम्रपत्रों और शिलालेखों में जो राजाओं की प्रशस्तियाँ लिखी मिलती हैं उनमें प्रशस्ति लिखनेवाले कवि अपनी अपनी बुद्धि से अपने आश्रयदाता के वंश को बहुत ही ऊँचा वर्णन करते हैं। यदि वंश में कुछ न्यूनता हो तो उसको तो छिपाते हैं ही, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसी समय के वंशों से उसको उत्कृष्ट दिखाने का भी यत्न करते हैं। अपने वंश के उत्कर्ष को दिखाने के लिए दूसरों के वंश की निन्दा भी किया करते हैं। परन्तु एक कवि की अनूठी वर्णना बिना रागद्वेष की, बिना निन्दा की और बहुतही मनोरम है।

राजा अन्नवेम का एक दानपत्र शक संवत् १३०० का वनपल्ली (गोदावरी ज़िला, मद्रास) में मिला है। ये राजा शूद्र जाति के रेड्डी थे। प्रशस्ति का निर्माता त्रिलोचनार्थ अपने आश्रयदाता के वर्ण का यों वर्णन करता है*।

तत्र चतुर्थो वर्णः शौरेः पदपद्मसम्भवो जयति।
यस्य सहजा स्रवन्ती त्रिभिः प्रवाहैः पुनाति भुवनानि॥

भगवान् विष्णु के चरण कमल से उत्पन्न चतुर्थ वर्ण की जय हो जिसकी सहोदर भगिनी गङ्गा अपने तीन प्रवाहों से तीन लोकों को पवित्र करती है।

चमत्कार यह है कि जो लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को भगवान् के मुख, बाहु, ऊरू और चरण से क्रमशः उत्पन्न हुआ मानते हैं और चतुर्थ वर्ण को नीच समझते हैं वे यह भी मानते हैं कि लोकपावनी गङ्गाजी भी उसी भगवान् के चरण के अंगुष्ठ से निकली है। कवि गङ्गा को शूद्र वर्ण की बहन बनाकर चुपचाप बिना दूसरों की निन्दा किये, दूसरों ही के शब्दों में अपने अन्नदाता के वंश का उत्कर्ष दिखा गया!

विविध-विषय।

१—वैदिक कोष।

हर्ष की बात है कि कुछ दिनों से स्वामी विश्वेश्वरानन्द और स्वामी नित्यानन्दजी एक वैदिक कोष बनाने के सदुद्योग में लगे हुए हैं। इस कोष में वेदों में आये हुए शब्दों की व्युत्पत्ति, सरल संस्कृत में उनके अर्थ और प्रयोग रहेंगे। वैदिक शब्दों के अर्थ केवल स्वामीजी के ही किये हुए न रहेंगे किन्तु स्वदेशीय और विदेशीय विद्वानों और अनेक सम्प्रदायों के आचार्य्यों के किये हुए भी रहेंगे। इस बड़े काम के लिए ४८०००) की आवश्यकता है। इसमें से महाराज बड़ोदा ने १५०००) देने का वचन दिया है। बाक़ी रुपया अन्यान्य राजा महाराजाओं और रईसों से एकत्र करने की सम्मति दी है। आशा है कि इस धन के एकत्र होने में देर न लगेगी। कार्य्य बड़ेही महत्त्व का है। यदि स्वामीजी कुछ और लोगों को अपने साथ सम्मिलित कर एक कमेटी बना लेते तो और भी अच्छा होता।

२—जर्मनी में अनिवार्य शिक्षा।

योरप के अनेक देशों में अनिवार्य शिक्षा के विषय में हम कई वार लिख चुके हैं। इन देशों में जर्मनी शिक्षा के विषय में अग्रसर हो रहा है। यहाँ का नियम है कि प्रत्येक बालक को ६ वर्ष की अवस्था से १४ वर्ष की अवस्था तक अवश्यमेव शिक्षा दी जाय। जर्मनी की बाज़ बाज़ रियासतों में तो ५ वर्ष की उम्र से १५ वर्ष की उम्र तक शिक्षा मिलने का समय है। शिक्षा केवल लड़कों ही को नहीं दी जाती किन्तु लड़कियों को भी। हाँ लड़कियों के लिए कहीं कहीं १३ और कहीं १६ वर्ष तक अनिवार्य शिक्षा मिलने का नियम है। यह अनिवार्य शिक्षा लड़कों और लड़कियों को मुफ़्त सर्कार की ओर से दी जाती है।

हर्ष की बात है कि पटियाला और जामखण्डी रियासतों ने भी बड़ोदा की भाँति प्रारम्भिक शिक्षा मुफ़्त देने का प्रयत्न किया है। यदि अन्यान्य हिन्दुस्तानी रियासतें भी इनका अनुकरण करें तो भारतवर्ष से अन्धकार शीघ्रही दूर होने लगे।

३—योरप में संस्कृत का प्रचार।

लाहौर के पण्डित प्रभुदत्त शास्त्री एम० ए० आजकल योरप में भ्रमण कर रहे हैं। भारतवर्ष की गवर्नमेन्ट ने आपको योरप में संस्कृत की पढ़ाई का

* एपिग्राफ़िया इण्डिका मार्च १८९४ पृष्ठ ५९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढँग सीखने के लिये छात्रवृत्ति दी है। शास्त्रीजी कील, बर्लिन, बोनजेना, हीडलबर्ग, हेल, म्यूनिच, लीपज़िग, प्रेग और कोपेनहेगन के विश्व-विद्यालयों की सैर कर चुके। अब आप आक्सफ़ोर्ड में हैं। आपकी राय में इँगलैंड की अपेक्षा जर्मनी में संस्कृत पढ़ने की चाल अधिक है। पूर्वोक्त प्रत्येक विश्व-विद्यालय में संस्कृत पढ़ाने का अच्छा प्रबन्ध है। जर्मनी के लोगों को इँगलैंड के निवासियों की अपेक्षा भारतवर्ष के धर्म्म और दर्शन जानने की अधिक उत्कण्ठा है। कील के प्रोफ़ेसर डयूसन भारतवर्ष के दर्शनों में भली भाँति कुशल हैं। प्रोफ़ेसर जेकोबी एक प्रसिद्ध नैय्यायिक है। प्रेग के प्रोफ़ेसर लडविग ने समस्त ऋग्वेद का अनुवाद जर्मन भाषा में कर डाला है और उस पर एक भाष्य भी लिखा है।

४—वृक्ष काटने की एक नई तरकीब।

बर्लिन में वृक्ष काटने की एक नई तर्कीब निकाली गई है। एक महीन लोहे का तार वृक्ष के चारों ओर लपेट दिया जाता है। बिजली की ताक़त से इस तार को खींचते हैं। वृक्ष बिना कठिनता के कट जाता है। इस युक्ति से ऐसा वृक्ष जिसका व्यास २० इञ्च है सिर्फ़ ६ मिनट में काटकर गिरा दिया जा सकता है।

५—नये चाल की रेलगाड़ियाँ।

अमेरिका में सोने के लिए रेलगाड़ियाँ प्रायः अलग होती हैं। इन गाड़ियों की बनावट में हाल में कुछ कम्पनियों ने बड़ा परिवर्तन किया है। सोने की गाड़ी में प्रवेश करते ही यात्री को आरामकुर्सी मिलती है। सोने का स्थान लिपटा हुआ दीवार में घुसा रहता है। सोने के समय यात्री उसे निकाल कर सुख-पूर्वक उस पर अच्छी तरह सो सकता है। बिस्तरे के ऊपर बिजली की लेम्प लगी रहती है जिसके प्रकाश में वह पढ़ने लिखने का काम कर सकता है। प्रातःकाल उठतेही सेवक चाय पानी मक्खन इत्यादि कुछ भोजन का सामान मुफ़्त पहुँचा देता है। ऊपर की बैठकें भी ऐसी बनाई हैं जिन पर रोशनी और हवा बहुत अच्छी तरह मिले। यह सोने की गाड़ी रात्रि में ऐसी जगह लगा दी जाती है जहाँ न तो धुआँ ही पहुँचता है और न वहाँ शब्द ही की विशेष गति होती है। इस ऐश व आराम के रहते हुए भी किराया बहुत मामूली रक्खा गया है। देखें भारतवर्ष में ऐसी गाड़ियाँ कब तक चलनी शुरू होंगी।

६—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा तथा अन्यान्य हिन्दी-प्रेमियों के उद्योग से गत दशहरे की छुट्टियों में काशीपुरी में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का प्रथम महोत्सव सानन्द समाप्त हो गया। कोई तीन चार सौ हिन्दी-प्रेमी बाहर से पधारे थे। हिन्दी-साहित्य की उन्नति के सम्बन्ध में अनेक लेख पढ़े गये, अनेक वक्तृतायें हुईं और अनेक प्रस्ताव पास हुए। यदि वे प्रस्ताव कार्य में परिणत हो जायँ तो सचमुच देवनागरी लिपि और हिन्दी-भाषा का बहुत कुछ उपकार हो। परन्तु जब हमको हिन्दी भाषा-भाषियों के आलस्य का स्मरण आता है तब हमारी समस्त आशायें दुराशा में परिणत हो जाती हैं!

७—चौबे गये छबे होने को दुबेही रह गये।

कहाँ तो हिन्दी-प्रेमी जन श्रीमान् पञ्चम जार्ज के नामाङ्कित नवीन सिक्कों को देवनागर अक्षरों से अलङ्कृत कराना चाहते थे और कहाँ एक और ऐसी घटना हो गई कि जिसको सुनकर समस्त हिन्दी-प्रेमियों को हार्दिक वेदना होगी। पाठकों को मालूम होगा कि अबतक जो सर्कारी नोट बनते थे उनपर चार पाँच ही भाषाओं के होते हुए हिन्दी भाषा को भी शुभासन मिलता था, परन्तु सन् १९१० के छपे हुए नये नोटों पर देखा तो बेचारी हिन्दी का आसन छिन गया! इस वार जो सर्कारी नये नोट छपे हैं उनपर, दो चार नहीं, भारतवर्ष की भिन्न भिन्न प्रान्तों की ९ भाषाओं को आसन मिलने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी न मालूम बेचारी हिन्दी ने क्या अपराध किया था जो उसको वहाँ से निकाल बाहर किया गया। जिस भाषा के बोलनेवालों की संख्या भारतवर्ष की समस्त भाषाओं के बोलनेवालों से अधिक है, जिस भाषा को भिन्न-भाषा-भाषी भी राष्ट्रीय भाषा बनाने के प्रयत्न में लग रहे हैं और जिसकी लिपि को देशी सज्जनों ने ही नहीं विदेशी विद्वानों ने भी सर्वोत्कृष्ट सिद्ध कर दिया उसी भाषा को—उसी प्यारी हिन्दी भाषा को—सर्कारी नोटों पर अङ्कित करने से न मालूम क्यों वञ्चित रक्खा गया! क्या कोई हिन्दी का सपूत अपनी न्यायशीला सर्कार से इसका कारण मालूम करने की चेष्टा करेगा?

८—चित्रदर्शन।

इस अङ्क में प्रकाशित 'धृतराष्ट्र और सञ्जय' तथा 'वीररत्न वाजीप्रभु देशपाण्डे' नामक चित्रों की चर्चा श्रीयुत बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कविताओं में कर दी है। चीन की प्रसिद्ध राजधानी पेकिन के नाम से हमारे पाठक परिचित ही हैं। यहाँ प्रायः विदेशियों की गति नहीं हुआ करती। इस सुप्रसिद्ध नगर के फाटकों के दृश्य आज हम अपने पाठकों को नज़र करते हैं। पेकिन के स्वर्गीय मन्दिर में वहाँ के राजा साल में एकवार अथवा किसी बड़ी दुर्घटना के समय प्रार्थना करने के लिए जाया करते हैं। इस मन्दिर की बनावट ऐसी कुछ विचित्र है कि इसके छिद्रों से हवा चलने के कारण मनोहर बाजा सा बजा करता है। लामामन्दिर में लामा पुरोहित रहा करते हैं। इसमें बहुतेरी मूर्तियाँ विराजमान हैं। चीफ़ू महल के बाग़ में गत चीन के महाराज का जन्म हुआ था। इसी के निकट सरकारी कचहरियाँ हैं। चीन में भी कहीं कहीं पर्दे की रस्म है। पर्दे-नशीन और बिना पर्दे में रहनेवाली स्त्रियों के भी चित्र प्रकाशित हैं। चीन की पुलिस जापानी पुलिस के ढाँचे पर ढाली जा रही है। उसी के नमूने पाठकों के विनोदार्थ दिये गये हैं।

९—पुस्तक-परीक्षा।

'भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा'—लेखक, पण्डित मनोहरलाल जुतशी एम० ए०, और पण्डित काशीनाथ एम० ए०। इंडियन प्रेस, प्रयाग द्वारा मुद्रित और प्रकाशित। गवर्नमेंट हाई-स्कूल कानपुर के हेड मास्टर पण्डित मनोहरलाल जुतशी एम० ए० अँगरेज़ी और उर्दू के एक सुप्रसिद्ध लेखक हैं। आपने 'Education in British India' नामक एक पुस्तक बड़ी खोज और परिश्रम से लिखी है। इसी पुस्तक का मर्म्मानुवाद आपने हिन्दी में छपाया है। पुस्तक शिक्षाप्रद है। अँगरेज़ी की पुस्तक के दाम २॥) हैं परन्तु हिन्दी की पुस्तक के ।=) हैं। मिलने का पता "इंडियन प्रेस, प्रयाग" है।

एकादशोपनिषद्:—इस पुस्तक को स्वामी "अचिन्त्यभगवान्" सदाशिव स्ट्रीट गिरगाँव, बम्बई ने प्रकाशित किया है। इसमें ईशादि आठ उपनिषदों पर श्रीअमरदासकृत मणिप्रभा टीका है। छान्दोग्य और बृहदारण्यक पर श्रीनित्यानन्दश्रमकृत मिताक्षरा टीका और कैवल्योपनिषद् पर श्रीशङ्करानन्दजी कृत दीपिका टीका है। यद्यपि ये टीकायें श्रीशङ्करस्वामिकृत टीकाओं के आधार पर ही लिखी गई हैं परन्तु इनकी संस्कृत सरल रक्खी गई है। छपाई बहुत सुन्दर और पुस्तक का मूल्य केवल ५॥) है।

प्रभुचरित्र—अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी का चरित्र। लेखक पं० शिवरत्न शुक्ल। इस पुस्तक में भगवान् रामचन्द्र का चरित्र हिन्दी गद्य में लिखा गया है। पुस्तक शिक्षाप्रद और रोचक है। बालकाण्ड में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जिनका प्रचार कम है। दो एक स्थलों में कृष्णावतार के उदाहरण दे दिये गये हैं। आशा है कि लेखक महोदय दूसरे संस्करण में उचित संशोधन कर लेंगे। १५४ बड़े पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ॥) बहुत ठीक है। मिलने का पता यह है—नीलकंठ द्वारकाप्रसाद बुकसेलर अमीनाबाद, लखनऊ।

Printed and published by Panch Kory Mittra at the Indian Press Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं०.. सर०.....
आगत सं०..११(१२)
तिथि०
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगडी.

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ११] १ दिसंबर, १९१०। मार्गशीर्ष कृष्ण ३०, १९६७। [संख्या १२

सम्बोधन।

(१)

अत्यन्त पुण्य-बल से नर-जन्म होता,
तो क्यों अरे नर! उसे फिर व्यर्थ खोता?
कर्तव्य तू जगत में अपना विचार,
आलस्य छोड़ कर आत्मदशा निहार॥

(२)

हो कार्य्य जो कुछ उसे कर ले तुरन्त,
आता चला निकट अन्तक है दुरन्त।
है नाशवान तनु क्या इसका ठिकाना!
सत्कार्य्य में उचित है न विलम्ब लाना॥

(३)

ये विश्व के विषय-भोग यहीं रहेंगे,
कोई न धाम, धरणी, धन साथ देंगे।
होगा सहाय बस एक सुकर्म्म तेरा,
तू सर्वदा समझ है यह धर्म्म मेरा॥

(४)

तू त्याज्य को जगत में भजता सदैव,
अग्राह्य का ग्रहण है करता तथैव।
हा हन्त! कार्य्य तज तू करता अकार्य्य,
यों आर्य्य होकर स्वयं बनता अनार्य्य।

(५)

है ईश जो जगत में तव जन्मदाता,
स्रष्टा वही विदित है सबका विधाता।
यों तू सदैव सब को निज बन्धु जान,
भ्राता-समान सबका सुख-दुःख मान॥

(६)

तू स्वार्थ को न तज किन्तु विचार सार्थ,
है एकमात्र परमार्थ यथार्थ स्वार्थ।
है जो अभीष्ट तुझको सुख शान्ति-सार,
है क्या निदान उसका न परोपकार?

(७)

भाई! सदैव रहती किसकी विभूति?
रक्खो सभी पर समान सहानुभूति।
संसार एक स्वर से यह कूकता है—
है मूढ़ जो विभव पाकर चूकता है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८)

अत्यन्त दीन अति कातर भाव धारे,
जो आज द्वार पर घूम रहा तुम्हारे।
राजा उसे कल बना सकता सुदैव,
दीनातिदीन तुम हो सकते तथैव॥

(९)

द्वेषादि दुर्गुण सभी विषवर्ग के हैं,
प्रेमादि सद्गुण सुधामय स्वर्ग के हैं।
हो जानते तुम परन्तु न मानते हो!
हो देखते पर नहीं पहचानते हो!!

(१०)

स्वच्छन्दता यदि सदा तुम चाहते हो,
स्वातन्त्र्य को सब प्रकार सराहते हो।
तो क्यों स्वयं सरुचि इन्द्रिय-दास होते?
क्यों आपही स्वहित से तुम हाथ धोते?

(११)

है विश्व वश्य करना तुम ने विचारा,
है क्या परन्तु मन भी वश में तुम्हारा!
हो संयमी वश करो मन को सचेष्ट,
होंगे स्वयं फिर सभी वश में यथेष्ट॥

(१२)

देते परार्थ फल पादप हैं रसाल,
देते परार्थ अपना जल मेघ-जाल।
हैं ये सभी जड़ तथा तुम ज्ञानधारी,
है क्या परन्तु इनसे तुलना तुम्हारी?

(१३)

देखो, अनेक विध देकर ज्ञान-दीक्षा,
संसार है कर रहा सबकी परीक्षा।
है क्लिष्टता पर नहीं गति और न्यारी,
उत्तीर्ण होकर बनो स्वपदाधिकारी॥

(१४)

जो लोक का हित अहो! तुमसे न होगा,
(नाना प्रकार जिसमें सुख-भोग भोगा)
तो यों कृतघ्न तुमको जब जान लेगा,
क्या ठौर भी फिर तुम्हें परलोक देगा?

(१५)

निष्काम कर्म्म करना बस कर्म्मयोग,
है कर्म्मयोग-फल मुक्ति-अभङ्ग भोग।
है पूर्ण मुक्ति भव-बन्धन-मुक्त होना,
है दुःख-हेतु भव-बन्धन-युक्त होना॥

मैथिलीशरण गुप्त।

लंडन के पैनी बाज़ार।

पैनी बाज़ार उसे कहते हैं जहाँ हर एक वस्तु पैनी अर्थात् एक आने को मिलती है। बाज़ार उर्दू शब्द है पर विलायत में सब लोग उसका मतलब समझते हैं। इस शब्द का इतना प्रचार कैसे हुआ सो कुछ पता नहीं। हमने बहुत कुछ पूँछ पाछ की पर किसी ने संतोषजनक उत्तर नहीं दिया। पैनी बाज़ार एक परमोपयोगी वस्तु है। बहुत सी काम की वस्तुएँ यहाँ एक आने को मिल सकती हैं जो दूसरी जगह दूनी क़ीमत देने पर नहीं मिलतीं। इसका कारण यह है कि पैनी बाज़ार की कुछ वस्तुएँ जर्मनी, फ़्राँस इत्यादि बाहरी देशों से आती हैं। परीक्षार्थ हमने एक दिन एक नीली-लाल पैंसिल एक दूकान से ख़रीदी। यह पैंसिल विलायती की बनी थी। दाम इसके देने पड़े तीन आने। थोड़ी देर बाद पैनी बाज़ार जाकर प्रायः उसी प्रकार की दो पैंसिलें एक पैनी में ख़रीदीं। बस भेद तुरन्त मालूम हो गया। विलायती स्वदेशी लोग Tariff reformers टैरिफ रिफ़ारमर्स चिल्लाते हैं कि विदेशी वस्तुओं पर कड़े टेक्स लगाओ ताकि हमारे देश की वस्तुओं की बिक्री हो। उनकी यह चिल्लाहट व्यर्थ है। जब तक वे अपनी बनाई चीज़ों को विदेशी चीज़ों के मुक़ाबले बराबर या कम दाम में न बेचेंगे तब तक उनका रोना जारी रहेगा। यही दशा दूसरे देशों की होगी। पैनी बाज़ार में तो सोलह आने सब चीज़ें विदेशी रहती हैं पर दूसरी दूकानों में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी भरमार कम नहीं है। तात्पर्य यह है कि विलायती दूकानों में विदेशी माल आधे से अधिक पाया जाता है। इसमें विदेशियों का दोष नहीं है। जो वस्तु सस्ती और टिकाऊ होगी वही अधिक बिकेगी। एक दूकान से हमने तसवीर का चौखटा मय काँच के पौने दो शिलिंग अर्थात् एक रुपये पाँच आने को ख़रीदा। इसमें कैबीनट आकार की तीन तसवीरों की जगह थी। लकड़ी पर बहुत सुन्दर नक़्श था। वज़न में बहुत हल्का और ख़ूब मज़बूत था। लेकर घर आये। मालिक मकान और लड़के-लड़कियों को दिखलाया। सबों ने उसकी क़ीमत पाँच और सात शिलिंग जाँची। जब हमने बिल आगे फेंका तो क़ीमत पढ़कर चकित हो गये। यों बहुत सी विदेशी चीज़ें अँगरेज़ी चीज़ों की अपेक्षा बहुत सस्ती, सुन्दर और मज़बूत मिलती हैं। विलायत एक छोटा सा द्वीप है। अतएव वहाँ हर प्रकार की सामग्री मिलनी कठिन है। उसे अपनी आवश्यकताओं के लिए दूसरे देशों पर अवश्यमेव निर्भर होना पड़ता है। इसके अतिरिक्त वहाँ के लोग दूसरे देशों के कारीगरों की अपेक्षा बहुत कम प्रवीण हैं। बस इन्हीं कारणों से विलायती वस्तुएँ विदेशी वस्तुओं से बहुत मँहगी मिलती हैं। विलायती कारीगरों की अयोग्यता का दूसरा उदाहरण आज कल के हवा में उड़नेवाले व्योमयानादि यंत्र हैं। आज जितने लोग हवा में उड़ते हैं सभी के पास फ़्राँस के बने हुए यंत्र Aeroplanes हैं। यहाँ तक कि उनके सिखाने, चलानेवाले भी फ़्रासीसी हैं। अँगरेज़ों ने अपने दिमाग़ से अभी तक एक भी ऐसी कल नहीं निकाली है। बहुत बातों में दूसरों की नक़ल करने में अँगरेज़ बड़े कुशल हैं। कुछ काल पश्चात् इन्हीं कलों में थोड़ी बहुत रद बदल कर चिल्लाने लगेंगे कि इस कल के निकालनेवाले हमीं हैं।

अस्तु, पैनीबाज़ार लंडन के प्रायः हर एक महल्ले में पाये जाते हैं। कई लोग इकट्ठे होकर एक कम्पनी बनाते हैं। यही कम्पनी पैनीबाज़ार की मालिक होती है। पैनीबाज़ार खुली जगह में नहीं लगता, न वहाँ हमारे बाज़ारों की भाँति कुंजड़पन होता है। सड़क पर किसी मौक़े पर एक मकान में बाज़ार लगता है। बाज़ार की लम्बाई अनुमान ३० से पचास फ़ुट और चौड़ाई २० से तीस फ़ुट होती है। कहीं इससे कम कहीं ज़्यादा। बाज़ार प्रति दिन आठ नौ बजे सबेरे से संध्या के आठ बजे तक लगता है। दोनों ओर दीवारों के निकट टेबलों पर सब चीज़ें ख़ूबसूरती से सजी हुई रक्खी रहती हैं। बीच में ख़रीदारों के आने जाने और खड़े रहने को चौड़ा रास्ता होता है। प्रत्येक बाज़ार में आठ दस सुन्दर तरुण लड़कियाँ सामान बेचने को खड़ी रहती हैं। बच्चों के हर तरह के खिलौने चाय पीने के कटोरे, कंघी, पेंसिल, काग़ज़, क़लम, दावात, नोटबुक, हथोड़ा, सुई, धागा, आलपीन, साबुन, चाकोलेट के छोटे छोटे पाकट, जूतों के फ़ीते, चाक़ू, कैंची, काग़ज़ के फूल, इत्यादि बहुत सी काम की वस्तुएँ एक पैनी को मिलती हैं। ख़रीदनेवालों की सदैव ख़ूब भीड़ रहती है। रोज़ रोज़ नई चीज़ें दिखाई देती हैं। हमारे देश में ऐसे बाज़ारों की बड़ी आवश्यकता है। ऐसे बाज़ारों से ग़रीबों का बड़ा निर्वाह होता है। न जाने ये बातें हमारे देश में कब होंगी। इस स्थिति को देख हमें अत्यन्त खेद होता है। अब अँगरेज़ों का बड़ा त्योहार क्रिसमस Xmas आ रहा है। पैनी बाज़ारों की ख़ूब सजावट होगी। माल बिकने की धूम होगी और कम्पनियाँ अच्छा लाभ उठावेंगी। पैनीबाज़ार तथा विलायती अन्य बाज़ारों का विस्तार-पूर्वक वर्णन हमारी पुस्तक में मिलेगा जो शीघ्रही प्रकाशित होनेवाली है।

प्यारेलाल मिश्र।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्याविवाद।

आश्चर्य्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्य्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्य्यवत् कश्चिदेनं शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के अर्जुन प्रति गीता में लिखे हुए उपदेश वास्तव में कितने यथार्थ हैं सो सब विचारशील मनुष्यों पर प्रकट ही हैं। सचमुच यह संसार बड़ाही आश्चर्य्य का स्थान है। मनुष्य का ज्ञान हर ओर से सीमाबद्ध है और ये सीमायें बहुतही संकुचित हैं। किसी पदार्थ को ले लीजिए और सोचने लगिए तो जान पड़ेगा कि मनुष्य उसके विषय में कुछ बातें जानता है परन्तु उन बातों के आगे वह उसी साधारण से साधारण पदार्थ के विषय में भी नितान्त अनभिज्ञ है। और बातों को जाने दीजिए वह स्वयं अपनेही को नहीं जानता कि वह कौन है? कहाँ से आया है? क्या करने को आया है? और कहाँ जायगा?—यदि वह यहाँ न आता तो क्या हानि होती? और आया है तो कितने दिन के लिए? और क्या क्या काम जाने के पहले उसे कर लेना चाहिए? यह विस्तृत संसार कहाँ तक फैला हुआ चला गया है? और किस समय से यह इसी भाँति से स्थित है और कब तक रहेगा? समय कबसे प्रारम्भ हुआ? और कब तक चलेगा। इन सब प्रश्नों पर विचार करने से मनुष्य की बुद्धि चक्कर में पड़ जाती है। उस कारीगर ने हम लोगों को एक ऐसे विचित्र स्थान पर छोड़ दिया है कि जहाँ पद पद पर विचित्रता है। हर मौक़े और हर समय में विचित्र बातें देखते देखते हम में कुछ ऐसी धृष्टतासी आ गई है कि हम साधारणतः किसी पदार्थ को भी विचित्र नहीं समझते और जो जितनाही अज्ञ है वह अपने को उतनाही बहुज्ञ समझता है।

ज्ञान का प्रादुर्भाव आश्चर्य्य से होता है। जब कोई मनुष्य किसी वस्तु को देख कर उसे नहीं समझ पाता तभी उसको आश्चर्य्य होता है और तभी वह उसे जानने का प्रयत्न करता और यथासाध्य जान भी लेता है। परन्तु जो मनुष्य जितनाही ज्ञान प्राप्त करता चला जाता है उतनाही यह भी जानता चला जाता है कि वह अमुकामुक पदार्थों को नहीं जानता। महाराज भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है:—

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विपइव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥

इस संसार के जानने योग्य पदार्थों के सामने मनुष्य के जाने हुए पदार्थों की वही समानता है जो हिमाचल की सरसों से। फिर भी मनुष्य अपने उत्कट आत्मस्नेह-जन्य घमण्ड में ऐसा चूर रहता है कि उसे अपनी अनुमति के समान दूसरे के विचार नितान्त रद्दी समझ पड़ते हैं। तभी तो कहा जाता है कि प्रत्येक मनुष्य दुनिया में केवल डेढ़ अक़्ल समझता है जिसमें से एक स्वयं उसके पास होती है और शेषार्द्ध समस्त पृथ्वी-मण्डल के मनुष्यों में विभक्त रहती है। इसी से जब कभी विद्या-सम्बन्धी विवाद में वह सम्मिलित होता है तब वह प्रायः अपने मत को इतना पुष्ट समझता है कि प्रतिवादी के प्रमाणों पर वह निष्पक्षपात होकर विचार ही नहीं कर सकता। इसी कारण प्रायः उसे यह भी भासने लगता है कि उसका प्रतिवादी उसकी बात न मानने में केवल धींगाधींगी कर रहा है नहीं तो वह अपनी बात को बिलकुल युक्तिहीन होने पर भी क्यों प्रतिपादित कियेही जाता। सुतरां, बहुत से लोग अपने प्रतिवादी पर इतने बिगड़ जाते हैं कि उसे गालियाँ दिये बिना उन्हें चैनही नहीं पड़ती। कुछ लोगों का यह भी मत होता है कि उन ऐसे बुद्धिमान् व्यक्ति के सामना करने को उनके प्रतिवादी ऐसे मूर्ख का कैसे साहस पड़ा। बस वह उसकी मूर्खता पर उसे सचेत करने को उसका गालियों से सत्कार करते हैं। इसी प्रकार वादीगण प्रतिवादी के प्रमाणों को अशुद्ध प्रमाणित करने के साथ ही साथ उसे मूर्ख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाने का पूरा प्रयत्न करते हैं। यदि साधारणतः विद्वान् लोगों के भी वादानुवाद को देखिए तो उसमें भी दलीलें कम मिलेंगी परन्तु प्रतिपक्षी की मूर्खता, दुर्जनता आदि प्रमाणित करने के प्रयत्न अधिक देख पड़ेंगे। प्रतिवादी की शत्रुवत् देखने की लेखकों में ऐसी कुछ बान सी पड़ गई है कि बहुतों को किसी से बहस करने की हिम्मत नहीं पड़ती कि कहीं गाली गलौज न होने लगे। यदि किसी के लेख का उत्तर देने का विचार उन्होंने किया तो मित्र लोग प्रायः यह कहने लगते हैं कि "क्यों कीचड़ में ईंट फेंक कर छींट लेते हो"—कहाँ तक कहा जाय—स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती और स्वामी दयानन्द सरस्वती ऐसे विरक्त महानुभावों के शास्त्रार्थ में भी धींगाधींगी की नौबत आई थी। आज कल के कितनेही लेखकों में भी इस कारण घोर शत्रुता है कि दैवात् उनमें किसी लेख के विषय में विवाद उठ खड़ा हुआ।

विद्या-सम्बन्धी विवादों में यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि दोनों वादियों का अभीष्ट एक ही है अर्थात् यथार्थ बात को जानना। फिर जब दो मनुष्य एक ही बात को चाहते हों और फिर भी वे मिल कर काम न करें वरन् आपस में झगड़ा द्वारा एक दूसरे का समय नष्ट करके मुख्य प्रयोजन के प्राप्ति में बाधक बन बैठें, तो उनको बुद्धिमान् कौन कहेगा?

विद्या-विवादों में प्रायः कृतविद्य मनुष्य ही लगते हैं। दोनों का सत्य बात जानने का प्रयोजन होता है और वह बात कुछ कठिन अवश्य होती है; नहीं तो उनमें मतभेद कैसे हो? तब कहिए कि किसी कठिन बात का निरूपण निष्पक्षपात होकर शान्ति-पूर्वक विचार करने से हो सकता है कि लड़ने और क्रोध करने से? फिर विद्वान् मनुष्यों को वृथाही क्रोध प्रकाश करने से कितना लज्जित होना चाहिए सो कहने का प्रयोजन नहीं। मनुष्य कितना अल्पज्ञ है और संसार को कितना कम जान सकता है, उसका दिग्दर्शन ऊपर कराया जा चुका है। ऐसी दशा में मनुष्य को अपने मत को ऐसा दृढ़ कभी न समझना चाहिए कि वह उसके प्रतिकूल कुछ सुननेही को तैयार न हो। मनुष्य जिस दशा में उत्पन्न होता और अधिकतर रहता है और उसकी जैसी संगति होती है उसके उसी के अनुसार विचार होते हैं। यहाँ तक कि अँगरेज़ी में एक मसल है कि "man is the creature of circumstances." अतः यह सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि यदि कोई द्वितीय मनुष्य बिलकुल विपरीत दशा में रहा हो तो उसके विचारों में आपके विचारों से प्रतिकूलता होना न केवल सम्भव वरन् स्वाभाविक है। सच तो यह है कि यदि प्रथम पूर्णतया द्वितीय मनुष्य की दशा में होता तो उसके भी विचार प्रायः उसी प्रकार के होते जैसे कि द्वितीय मनुष्य के। अब इन दोनों मनुष्यों के विचारों में पूर्ण प्रतिकूलता होने पर भी दोनों में कुछ बातें यथार्थ और कुछ अयथार्थ अवश्य हैं, हाँ उनकी यथार्थता की मात्रा में कुछ अन्तर होनाही चाहिए। अतः यदि दोनों मिल कर एक दूसरे की यथार्थ बात मान लें और अपनी अयथार्थ बातें छोड़ दें तो क्याही अच्छा हो। सबसे अधिक विवादपूर्ण मत-मतान्तरों ही के झगड़े होते हैं। अतः आइए इन्हीं पर यहाँ उदाहरणार्थ कुछ विचार करें। यदि भिन्न भिन्न मतों पर ध्यान दीजिए तो उनमें एक दूसरे से बड़ाही प्रचण्ड पार्थक्य पाया जायगा। यहाँ तक कि उनके अनुयायियों में रोज़ लट्ठ तक चला करता है और संसार की सबसे प्रचण्ड लड़ाइयाँ और शत्रुतायें इन्हीं मतों के कारण उत्पन्न हुई हैं तो क्या इनमें कोई समानता नहीं है? विचारपूर्वक देखने से प्रकट होगा कि प्रत्येक मत और प्रत्येक मत के संस्थापक का उद्देश्य एकही है। वे अपने अनुयायियों की उन्नति चाहते हैं। जिस दशा में हज़रत मुहम्मद उत्पन्न हुए थे उसी दशा में यदि गौतम बुद्ध उत्पन्न हुए होते तो उनके भी उपदेश क़ुरानशरीफ़ से मिलते जुलते होते। वास्तव में मनु, गौतमबुद्ध, शंकराचार्य्य, नानक, दयानन्द, ईसा और मुहम्मद आदि में कोई भी अन्तर न था। उनमें से प्रत्येक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महानुभाव पृथ्वी के वास्ते अपने जीवन को हवन कर देना तुच्छ समझता था, प्रत्येक के मस्तिष्क में परमेश्वर ने इतनी दूरदर्शिता भर दी थी कि वह अपने समकालीन मनुष्यों से बहुत आगे देख सकता था, और प्रत्येक की जिह्वा में इतना बल था कि उस पर उस काल के मनुष्य न्यौछावर थे।

ब्राह्मणों के यज्ञों की रीतियों में फँसकर जब संसार असली धर्म्म भूला जाता था तब बुद्ध महाराज ने उसे सचेत कर दिया। बौद्ध भिक्षुकों की आत्मा-शुद्धि और निर्वाण को छोड़कर जब संसार नास्तिकता के चंगुल में पड़ा तब शंकर स्वामी ने उसका निराकरण करके फिर सीधा सादा मत सिखलाया। यदि बुद्धदेव के समय उनके स्थान पर शंकर स्वामी उत्पन्न हुए होते तो यज्ञादि की रीतियों में उलझे हुए धर्म्म को उन्हीं की भाँति शंकर स्वामी भी सुलझाते और यदि बुद्धदेव शंकर स्वामी के स्थान पर होते तो वे भी परमेश्वर को भूले हुए संसार को उस महाप्रभु का ध्यान दिलाते। यद्यपि उन दोनों में घोर शत्रुता समझ पड़ती है तथापि यथार्थ में उनमें रत्ती भर का अन्तर नहीं। वे दोनों महानुभाव अपने अपने समय के लोगों की यथार्थ उन्नति में प्रवृत्त हुए थे और उन्होंने तत्कालीन दोषों को हटाया। उनमें बाह्य अन्तर इस कारण समझ पड़ता है कि वे अपने समय के लोगों को उन्नत बनानेवाले थे और उन दोनों के समकालीन लोगों में जो दोष थे उन्हीं के नाश करने के उपाय उन दोनों ने बतलाये। फिर उन दोषों में जितना और जैसा अन्तर था उतनाही और वैसाही अन्तर उन महानुभावों के उपदेशों में प्रतीत होता है। मानो एक श्वास की दवा करता था और द्वितीय ज्वर की। अब उन दोनों का अभिप्राय यही है कि शरीर नीरोग रहे परन्तु औषधियों में प्रचण्ड अन्तर है। यदि कोई स्वस्थ मनुष्य उन दोनों औषधियों को मिलान करके उनमें विभिन्नता पावे और फिर एक की निन्दा और द्वितीय की स्तुति करे तो यह उसकी ही भूल मानी जायगी। इसी प्रकार बाबा नानक ने हिन्दू-मुसल्मानों का अन्तर देखकर उन दोनों को मिलाना चाहा और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने प्रतिमा-पूजन और गंगा-स्नानादि में अनुचित व्यय होते देख हिन्दू-धर्म्म की उन त्रुटियों के हटाने का प्रयत्न किया। ईसा मसीह ने उस समय के यहूदियों के दोष छोड़कर सीधा सादा मत चलाया और हज़रत मुहम्मद ने तत्कालीन अरबवालों में तलाक़ की बाहुल्य, विरासत की त्रुटियाँ, बहु विवाहादि जो दोष देखे उनका यथा-शक्ति निराकरण किया। इस स्थान पर यह कहा जा सकता है कि यों तो आजकल अथवा एक समय के मनुष्यों में अन्तर होनाही चाहिए क्योंकि वे एक ही समय में वर्त्तमान थे। परन्तु प्रत्येक मनुष्य एकही दशा में नहीं होता वरन् एकही समय में पृथक् पृथक् मनुष्यों की पृथक् पृथक् संगति इत्यादि होती हैं। फिर हर मनुष्य शंकर स्वामी इत्यादि की भाँति बुद्धिमान् भी नहीं होता कि वह कोई ग़लती करेही नहीं।

अतः यह प्रकट होता है कि इन भिन्न भिन्न मतावलम्बियों में जो विभेद हैं वे इस कारण देख पड़ते हैं कि प्रत्येक मत किसी ख़ास समय में किसी प्रचण्ड दूषण विशेष के हटाने के निमित्त उत्पन्न हुआ था और उस समय उसी प्रकार समझाने से लोग समझ सकते थे, दूसरी प्रकार से नहीं। फिर इन सब मतों में मुख्य मुख्य सिद्धान्त एकही हैं। अमुख्य बातों में भेद इस कारण से भी कभी पाया जाता है कि जिस देश में जिस मत का प्रादुर्भाव हुआ था उस देश के निवासियों के लिए वही नियम अच्छा था जो उस मत में पाया जाता है, यथा—कई प्रकार के मांस-खादन का निषेध एवं प्रचार।

कहते हैं कि एक स्थान पर चार जन्मान्ध बैठे थे। उन्होंने सुना कि एक हाथी आ रहा है। उन्हें हाथी देखने की बड़ी लालसा थी। अतः वे चारों पारी पारी से हाथी को टटोल कर उसका आकार समझ आये। तब उनमें उसके विषय में वाद-विवाद होने लगा। एक ने हाथी के केवल पैर टटोले थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो उसने हाथी को खम्भा के समान बतलाया। दूसरे ने कहा नहीं वह तो पङ्खा के समान होता है। इसने उसका पार्श्व टटोला था। इतने में केवल कान टटोलनेवाले ने उसे सूप के समान बतलाया। तब चौथे ने, जिसने उसकी पूंछ मात्र टटोली थी, यह कहा कि तुम तीनों निरे मूर्ख हो। हाथी तो ऐसा होता है जैसा रस्सा। अब इन चारों का कथन कुछ अंशों में यथार्थ था परन्तु उनके कथनों में पृथ्वी और आकाश का अन्तर था। इसी प्रकार यह संसार हम लोगों के लिए ऐसाही है जैसा अन्धों को हाथी। इस कारण हम लोगों को एक दूसरों के मतों पर उपहास करके डेढ़ अक़्लवाली मसल को चरितार्थ न करना चाहिए। इसी भाँति दो सवार एक मूर्ति के पास से होकर निकले जो एक दोपर्ती ढाल लिये थी। इस ढाल का एक पर्त ताँबे का था और दूसरा पीतल का। वे दोनों सवार मूर्ति के एकही ओर न निकल कर आगे तथा पीछे होकर निकले और आगे चलकर उनमें ढाल के विषय में विवाद होने लगा। एक ने कहा वह ताम्र की है और दूसरे ने उसे पीतल की बताई। बड़े झगड़े के बाद फिर वहाँ जाकर जब उन्होंने ढाल को दोनों ओर से देखा तब भेद खुल गया। ऐसाही हाल अनेक विवादों में होता है क्योंकि वादी गण प्रश्न के दोनों रुख़ नहीं देख लेते और आधा अनुभव प्राप्त कर अपना अपना राग अलापने लगते हैं।

जब कोई मनुष्य हमारीही पुस्तकों पर तीव्र आलोचना कर बैठता है तब हम लोग अभिमान से ऐसे अन्धे हो जाते हैं कि हमें केवल यही नहीं जान पड़ता कि हममें और हमारे समालोचक में मत-भेद है वरन् हम यह सोचने लगते हैं कि अमुक कारण से हमारा समालोचक हमारे कथन में बेईमानी से दोषारोपण कर रहा है। यही हमारा प्रचण्ड अभिमान, जिसे ज्वलन्त मूर्खता भी कह सकते हैं, बहुत से बेकार विवादों का कारण होता है। हमको समझ पड़ने लगता है कि समालोचक हमारे गुणों पर जान बूझकर धूल डाल रहा है और दोषों को बढ़ाकर लिखता है। हमें अपने ग्रन्थों में दोष न देख पड़ने का एक यह भी कारण है कि हमारी समझ में जितने दोष होते हैं वे तो हम निकालही डालते हैं यदि फिर भी किसी ने दोष दिखलाया तो हमारा क्रोध तुरन्त प्रज्वलित हो उठता है। क्रोध प्रकट तो हम इस कारण करते हैं कि हमें सब लोग बुद्धिमान् मानें परन्तु फल बिलकुल विपरीत होता है, और लोग उस क्रोध के कारण हमें और भी निर्बुद्धि समझने लगते हैं।

फिर यदि समालोचक का कथन वास्तव में अशुद्ध हो तौभी हमें यह न समझना चाहिए कि उसने जानबूझकर हम में दोषारोपण किया है, क्योंकि अन्य मनुष्यों की भाँति वह भी तो ग़लती कर सकता है। इन कारणों से जब कभी विद्या-सम्बन्धी विवाद करना पड़े तो हमें उपर्युक्त एवं ऐसी ही ऐसी अन्य बातों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए। कहा भी है कि

विद्या विवादाय, धनं मदाय, शक्तिः परेषां परिपीड़नाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत्, ज्ञानाय, दानाय, च रक्षणाय॥

श्यामविहारी मिश्र,
शुकदेवविहारी मिश्र।

श्रीरामेश्वर धाम।

रामेश्वरम् हमारे चार सबसे बड़े तीर्थों में है—चार धामों में से है। चारों का स्थापन हमारे पुरखों की योग्यता और दूर-दर्शिता का चमकता प्रमाण है। श्रीजगन्नाथपुरी से श्रीद्वारका तक, श्रीरामेश्वर से श्रीबदरिकाश्रम पर्यन्त हिन्दूदेश भारतवर्ष है; इन तीर्थराजों के बीच रहनेवालों की एक सभ्यता अथवा धर्म और एक जाति है। इनके बीच हमारा, हिन्दूजाति का, धाम है। ये हमारे धाम की एकता सिद्ध करनेवाले हैं; हमारा हृदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पर जाते समय इतना हुलसता है कि हम इन्हीं को अपना मुख्य धाम मानते हैं।

हमारे पुरखों के चरणरज इनके मार्ग में पड़े हैं। वहाँ पहुँच कर, अपने धाम की परिक्रमा करके वे कृतकृत्य हुए—पवित्र हुए। वे मार्ग पवित्र हैं, नहीं पावन हैं। वहाँ पहुँच कर हम भी पवित्र हो जाते हैं। फिर वे हमारे पवित्र पूर्व इतिहास के धाम हैं। कुछ नाम ऐसे होते हैं जो एक जाति के जातित्व, धर्म, सर्वस्व के धाम होते हैं। राम, कृष्ण, युधिष्ठिर वैसे ही नाम हैं। इन नामों के ये धाम हैं; जैसे हमारी देह में हृदय इन नामों का धाम है वैसेही हमारे देश में ये स्थान इन नामकों के धाम हैं। तब ये, देश में, सबसे पुनीत, वरन् पावन, स्थल क्यों न हों; इनमें हो आनेवाला हिन्दू, अपने धाम की मर्यादा समझ जानेवाला हिन्दू, पूज्य और दर्शन के योग्य क्यों न माना जाय?

इन पावन धामों में श्रीरामेश्वर भारत-भूमि के दक्षिणतम स्थल में है। यहाँ पहुँच कर—

आर्यसभ्यता-मूर्त्तिमय, श्रीहिन्दूत्व स्वरूप।
विजयधाम 'श्रीराम' यह, पावन नाम अनूप॥

का स्मरण होता है। यह नाम आर्यता, हिन्दूत्व, की मूर्त्ति है, हिन्दूविजय का धाम है। इस नाम का रामेश्वर में बारंबार स्मरण होता है। वार वार अपने पूर्व इतिहास की सुध आती है। वार वार भूलता हुआ अपनपन आँखों के सामने आता है। यहाँ तक मर्यादापुरुषोत्तम ने भारत की मर्यादा फैलाई, धर्म का राज्य स्थापन किया। यहाँ तक भारतीय धर्म का प्रचार कर आर्यजाति और उसकी निवास-भूमि की अभिवृद्धि को भगवान् ने बाहुबल से, बुद्धिबल से, एकाकी दूसरों को साधन बना आर्यावर्त्त को समुद्र पर्यन्त पहुँचाया।

जातीय स्मृति के साधनीभूत इस तीर्थ श्रेष्ठ पर पहुँचने के लिए मथुरा से रेल द्वारा जाना होता है। मदुरा जाते समय कालिदास का रघुवंशान्तर्गत दिग्विजयवर्णन बहुत याद आता है। तालवृक्षों का यहाँ बाहुल्य है। दूसरे वृक्ष कम हैं। रामेश्वर से इधर कोई सात कोस पर समुद्र भूमि के बीच आ गया इससे नाव या एक रद्दी 'स्टीमलाँच' पर भर कर मनुष्य दूसरे पार ले जाये जाते हैं। फिर वहाँ से रेल पर रामेश्वर पहुँचाया जाता है। नाव पर से पंडों के नौकर जो प्रायः उत्तर भारत के हैं समुद्र से टूटी हुई भूमि को दिखा कर कहते हैं कि यह टूटा हुआ सेतु है। यद्यपि शैल नाम मात्र को भी वहाँ नहीं है और रामेश्वर अभी दूर है। इन्हीं भूमिखण्डों में से एक को एक असुर के पहरे का स्थान बताते हैं जो रात को, कहते हैं, बनता हुआ सेतु तोड़ डाला करता था। पण्डे के भृत्य ने कहा कि पाषाण हुआ यह राक्षस अब भी रामेश्वर में है। इस "अबुधजना" किंवदन्ती का और उल्लेख आगे आवेगा।

रामेश्वर समुद्र तट पर छोटासा ग्राम है। स्टेशन पर ३।४ कमरे रहने योग्य हैं और फिर पण्डों के मकान हैं। पण्डे सब महाराष्ट्र ब्राह्मण हैं। जान पड़ता है कि जब महाराष्ट्र साम्राज्य दक्षिण तक फैल गया था उसी समय महाराष्ट्र ब्राह्मणों का वहाँ प्रभुत्व हुआ। मन्दिर का पुजारी भी महाराष्ट्र है। कोई भी संस्कृत नहीं जानता। पर ये तीर्थ के रक्षक हैं अतः पोषणीय हैं। ग्राम में चारों ओर नारियल के वृक्ष हैं। छोटे छोटे झोपड़े और बालुकामयी भूमि है। कुछ दूकानें मिठाई बनानेवालों की हैं जिनमें पश्चिमी (उत्तरी कहना चाहिए) लोगों की भी दो चार हैं, शेष तैलंग।

मन्दिर के दोनों फाटकों के उच्च शिखर दूर से दीख पड़ते हैं। वे भुवनेश्वर, बुद्धगया आदि स्थानों के बौद्ध वस्तुओं का स्मरण कराते हैं। द्वार पर खड़े होकर ऊपर देखा तो बौद्धकाल की कारीगरी देख मन में बड़ा विस्मय हुआ। अन्दर जाने के लिए पत्थर के ऊँचे खम्भों पर पटा हुआ एक मार्ग है जिसमें द्वार के पास कुछ कौड़ी इत्यादि की दूकानें हैं। ऐसा मार्ग या गली मन्दिर के चारों ओर है। ये गलियाँ योरप में पुराने मठों के भीतर भिक्षुकों के टहलने और पढ़ने के स्थान के समान हैं। इनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्तृत विशाल स्तम्भ बड़े श्रीद्योतक हैं। मुख्य फाटक पर नन्दी नहीं बौद्धकाल का पवित्र जन्तु हाथी है। मन्दिर के केन्द्र में उसी असुर की मूर्त्ति बताते हैं जो कहते हैं बनता हुआ पुल रात को उधेड़ देता था। इस पर पण्डे सब यात्रियों से चपत लगवाते हैं। जब लेखक ने इसे समीप से देखा उसके रोंगटे खड़े हुए। यह मूर्त्ति हमारे श्रीविष्णु के अवतार ध्यानावस्थित भगवान् बुद्धदेव की है। इसका पत्थर कदाचित् संगमर्मर है। सिर का कुछ भाग चपत मारने के पापाचार से घिस गया है।

जहाँ पर लिंग स्थापित है वह केन्द्र से दूसरी ओर मुख्य मन्दिर से अलग सा दीखता हुआ एक छोटा सा "शिवालय" जैसा स्थान है। दर्शन समीप नहीं करने देते। कोई बीस हाथ की दूरी पर खड़ा होना होता है। दर्शन और गन्ध धूप आदि से मन बहुत दुखी होता है।

मन में तर्क उठता है कि यह विशाल पाषाणमय मन्दिर क्या था? मन्दिर की कला, बुद्ध की मूर्ति, द्वार पर हस्ती, ये सब बातें तो यही बताती हैं कि यह बौद्धकाल में बौद्ध-मन्दिर था। लिंग-देवल के पास यह बताया गया होगा या जब बौद्ध-धर्म हिन्दू धर्म में लुप्त हो गया पिण्ड अपनी जगह से लाया जाकर उस बड़े मन्दिर के भीतर स्थापित किया गया होगा।

जो कुछ हो, रामेश्वर उन चार स्थानों में है जहाँ नाना प्रान्त के भारतीय मिलते और अपने को एक अनुभव करते हैं। ये तीर्थ मक्का, पैलस्टाइन आदि के समान एकान्त धर्म के सिद्धान्त पर स्थापित नहीं हैं। एक जाति के जीवित रखने, एक बने रहने के लिए हैं। यही कारण है कि इनमें एक नास्तिक का भी हिन्दू हो प्रवेश हो सकता है पर आस्तिक क्या देवोपासक भी अ-हिन्दू, हिन्दू-भिन्न जातिवाले का प्रवेश नहीं हो सकता।

काशीप्रसाद जायसवाल।

देश का व्यवसाय। *

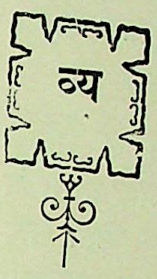

वसाय के लिए तीन बातें आवश्यक हैं। (Labor) मज़दूरी, धन और प्राकृतिक पदार्थ तथा प्राकृतिक शक्तियाँ। इनमें से मज़दूरी और प्राकृतिक पदार्थ अत्यावश्यक हैं। प्राकृतिक शक्तियाँ वायु, जल इत्यादि परिश्रम के सहायक हैं किन्तु आवश्यक नहीं। धन स्वयं व्यवसाय का एक परिणत फल है। वर्तमान कार्य में परिश्रम की जितनी आवश्यकता होती है निस्सन्देह उतनाही परिश्रम किसी कार्य के आरम्भ से पूर्व धन एकत्र करने के लिए आवश्यक है। धन केवल व्यवसाय के स्थायी होने का मुख्य कारण होता है किन्तु इसका चलना तथा कार्य करते रहना ख़ासकर प्राकृतिक शक्तियों और प्राकृतिक पदार्थों पर निर्भर है।

अब हमें यह सोचना है कि उक्त बातों के किन गुणों में व्यवसाय की श्रेष्ठता स्थित है। क्योंकि इन तीन चीज़ों में देशकाल के अनुसार बहुत भेद देखा जाता है। उसही धन, और उतनीही ज़मीन के होते हुए भी कुछ मुल्कों में ज़्यादा पैदावार होती है तथा अन्य देशों में कम; वा उसही मुल्क में कभी कम कभी ज़्यादा पैदावार होती है।

अगर हम आजकल के इँगलैंड का, आजकल के रूस की उतनीही ज़मीन के साथ मुक़ाबिला करें वा वर्तमान इँगलैंड का चार सौ वर्ष पहलेवाले इँगलैंड से मुक़ाबिला करें तो तुरंत उनका अन्तर प्रतीत हो जायगा।

इस अन्तर के कई कारण तो प्रकट हैं तथा कई इतने प्रकट नहीं हैं। हम उनका वर्णन नीचे देते हैं—

उत्तम पैदावार का सबसे बड़ा कारण "प्राकृतिक अनुकूलता" है। "प्राकृतिक अनु-

---

* जे० एस० मिल के एक लेख का भावानुवाद। लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूलता" कई प्रकार की होती है। उनमें ज़मान की उत्तमता मुख्य है। अरब के रेगिस्तानों की और गंगातट की पैदावार भूमि में कितना फ़र्क़ है, यह सब जानते हैं।

अच्छा मौसम पैदावार पर ज़मीन से अधिक प्रभाव रखता है। कई मुल्क ऐसे हैं जहाँ बस्ती हो सकती है किन्तु इतने ठंडे हैं कि वहाँ खेती नहीं हो सकती। ऐसे मुल्कों में शिकार मारकर मनुष्यों को उन्हीं पर गुज़ारा करना पड़ता है। कई ऐसे देश हैं जैसे उत्तरीय स्काटलैंड जहाँ चनों के सिवा अन्य धान्य नहीं पैदा हो सकता। तथा कई ऐसी जगह हैं जहाँ अधिक गीलापन तथा कम धूप होने के कारण गेहूँ की फ़सल उत्तम नहीं होती। ज्यों ज्यों हम दक्षिण में जाते हैं त्यों त्यों मौसम की अनुकूलता के कारण पैदावार की अधिकता दृष्टिगत होती है।

मौसम का असर केवल खेती परही नहीं देखा जाता किन्तु अन्य वस्तुओं पर भी इसका प्रभाव प्रतीत होता है, जैसे इमारतें, मन्दिर इत्यादि। अगर करनाल और लश्कर के मन्दिर मनुष्यों द्वारा नहीं तोड़ दिये जाते तो वे अपनी उसी नवीनता के साथ आजतक खड़े होते क्योंकि जो शिलालेख इन स्थानों में मिले हैं वे यद्यपि इतिहास-काल से भी पूर्व के हैं तथापि उत्तरीय देशों के पचास साल के पुराने लेखों से अधिक स्पष्ट और ताज़ा मालूम होते हैं।

इसी तरह जो रंग और चमक दक्षिणी योरप के बुने हुए कपड़ों में पाई जाती है वह इँगलैंड इत्यादि उत्तरीय देशों के कपड़ों में नहीं होती। इसका कारण मौसमही है। रसायन-शास्त्र-वेत्ता वा कारीगर कितनी ही कोशिश करें इँगलेण्ड के धुँधले और गीले मौसम में उतनी सुन्दरता कभी नहीं की जा सकती।

मौसम का असर पैदावार पर एक और तरह भी होता है। गरम मुल्कों में मज़दूरों और कारीगरों की शारीरिक आवश्यकतायें बहुत कम होती हैं। यहाँ मनुष्य कम ख़र्च घरों में तथा महीन कपड़ों में गुज़ारा कर सकते हैं। ठंडे मुल्कों में आग बग़ैर बिलकुल काम नहीं चल सकता। गरम मुल्कों में सिवा भोजन पकाने इत्यादि के आग बिलकुल आवश्यक नहीं है। यहाँ लोगों को इतना भोजन भी नहीं चाहिए क्योंकि योरप इत्यादि देशों में अधिकतर भोजन शरीर के गरम रखने तथा कार्य करने में समर्थ रखने के लिए खाया जाता है न केवल शरीर पोषण के लिए। हमारे यहाँ की हवा, और धूप हममें एक अद्भुत शक्ति का संचार करती है। इसलिए अगर गरम मुल्कों के निवासी ऐश पसन्द न हों तो उनको ठंडे मुल्कवालों से कहीं अधिक प्राकृतिक लाभ है।

ज़मीन की उत्तमता और मौसम की अनुकूलता के सिवा अन्य "प्राकृतिक लाभ" जो देश के व्यवसाय की उन्नति के कारण होते हैं वे ये हैं।

खनिज पदार्थों की अधिकता तथा खानों का उत्तम और सुगम स्थानों में होना।

इँगलेण्ड की "कोयले की खानें"—इसका सब से श्रेष्ठ उदाहरण है। मौसम की प्रतिकूलता का सारा बदला वहाँ की खानों ने निकाल दिया है।

कोयले के सिवा इँगलेण्ड में लोहे की भी खानें हैं जो अधिक गहराई में न होने तथा कोयले की खानों के समीप होने से बड़ी सुगमता से खोदी जाती हैं।

समुद्रतट पर स्थिति, अच्छे बन्दरों का होना और जहाज़ जाने योग्य नदियाँ। यह सब प्राकृतिक लाभ देश के व्यवसाय पर बहुत बड़ा असर रखते हैं।

अब हम "प्राकृतिक लाभों" को छोड़कर अन्य बातें जो इनसे भी अधिक देश के व्यवसाय पर प्रभाव डालती हैं उनका उल्लेख करेंगे।

प्राचीनकाल में, और आजकल भी, वे देश सब से अधिक व्यवसायी हैं जहाँ ज़मीन के बेभरपन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मौसम की प्रतिकूलता के कारण वहाँ के निवासियों को अधिक परिश्रम करना पड़ता है (और अपने समुद्र के निकटवर्ती होने का पूर्ण लाभ उठाना पड़ता है।)

"प्राकृतिक लाभ" मनुष्यों को उतनाही फ़ायदेमन्द है जितना कि किसी का उच्चवंश में उत्पन्न होना और धनवान् होना। किन्तु आगे काम चलाना और उन्नति करना अपनी बुद्धि, और विद्या का काम है।

न आजकल, न पुराने ज़माने में ही अच्छी ज़मीन और अच्छे मौसमवाले ही केवल सर्वश्रेष्ठ धनाढ्य वा सर्वशक्तिमान् हुए हैं। बल्कि यह देखा जाता है कि ठंडे मुल्कों के ग़रीब यद्यपि दरिद्री हैं किन्तु अधिक परिश्रमी और सुखी हैं। गरम मुल्कों में जीवन-निर्वाह इतनी सुगमता से हो जाता है कि यहाँ के ग़रीबों को विशेष चिन्ता नहीं होती, और इसी लिए इनका सारा सुख आराम लेने और सोने में होता है।

क्रोधवश इनमें शक्ति ख़ूब होती है किन्तु निरन्तर तत्परता तथा अटूट लक्षशक्ति का बड़ा अभाव है। और चूँकि इनको भविष्य में अच्छी राजनैतिक दशा स्थापित करने की कोई फ़िक्र नहीं होती और परिश्रम के फल की भविष्य में सुरक्षा होने में इनको शक होता है इसलिए इनका जोश बहुत कुछ मारा जाता है।

व्यवसाय की सफलता भी अन्य सफलताओं के सदृश मनुष्यों के गुणों पर अधिक निर्भर है न कि देश, काल पर। शारीरिक और मानसिक शक्तियों को कठिनाइयाँ पुष्ट करती हैं न कि सुगमतायें।

इसी लिए संसार में आजतक जिन जातियों ने आक्रमण किये हैं और विजय प्राप्त की है, अथवा पराजित लोगों से मज़दूरी कराई है वे प्रायः ऐसे मुल्कों के निवासी हैं जहाँ उनको बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं। या तो वे उत्तरीय मुल्कों के रहने वाले हैं जहाँ का मौसम ख़राब होता है वा उनके देश का क़ानून बहुत सख़्त था, जैसे ग्रीक और रोमन लोग। जबसे दक्षिण देशवासियों के समाज तथा राज्य के नियम ढीले पड़ गये तब से दक्षिण ने कभी उत्तर पर आक्रमण नहीं किया बल्कि हमला करना और लूटने पीटने का काम उत्तरीय देशों का ही रह गया। अस्तु।

"परिश्रम करने की अधिक शक्ति"—देश के व्यवसाय की वृद्धि का द्वितीय मुख्य कारण है। कभी कभी अनियमबद्ध परिश्रम शक्ति को हम अधिक शक्ति नहीं कह सकते। क्योंकि भारतवर्ष के कुली की सी सहनशक्ति और परिश्रम शक्ति बहुत कम देखने में आती है किन्तु उसका आराम और उसकी सुस्ती भी अकथनीय होती है। व्यवसाय की उन्नति के लिए निरन्तर तत्परता की आवश्यकता है। ग्रामीण और अशिक्षित मनुष्यों में यह शक्ति उत्पन्न करने का एक मात्र उपाय उनकी आवश्यकताएँ बढ़ाना है। जब उनकी आवश्यकतायें बढ़ेंगी तब उनको उनकी पूर्ति के लिए अवश्य परिश्रम करना पड़ेगा। यद्यपि किसी समाज की आवश्यकतायें बढ़ाना साधारण तौर पर उत्तम नहीं समझा जाता और कई स्थानों में आवश्यकताओं की वृद्धि समाज के दारिद्र्य और अवनति का कारण हुई हैं किन्तु अशिक्षित मज़दूरों को परिश्रमी बनाने के लिए यह उपाय अत्युत्तम है। इँगलैंड इत्यादि देशों में धन की इच्छा करना नहीं सिखाया जाता किन्तु धन का उपयोग तथा उन चीज़ों की क़दर जो धन से नहीं प्राप्त हो सकती, (अथवा जिनकी प्राप्ति के लिए धन की आवश्यकता नहीं होती) सिखाई जाती हैं। आवश्यक वस्तुओं की क़दर समझने से मनुष्य को धन-प्राप्ति की इतनी प्रबल इच्छा नहीं होती और न उनके रोज़ाना कामों की लगावट को ही कम करती हैं।

तीसरा तत्त्व जो देश के व्यवसाय की दशा पर प्रभाव डालता है वह लोगों की कारीगरी और शिक्षा है, चाहे मज़दूरों की कारीगरी और शिक्षा हो वा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके मालिकों की हो। इस बात का उदाहरण देने की कोई आवश्यकता नहीं कि मेहनत का फल कारीगर तथा अभ्यस्त लोगों के हाथों में बहुत उत्तम होता है। काम करनेवालों की बुद्धि, प्राकृतिक शक्तियों का ज्ञान, तथा पदार्थों के गुणों से वाक़फ़ियत ये सब बातें पैदावार पर बहुत असर रखती हैं। यह प्रत्यक्ष है कि लोगों की कारीगरी और शिक्षा परिश्रम पर बहुत उत्तम प्रभाव डालती हैं और उन्हीं पदार्थों से केवल विद्या का फ़र्क होने से उत्पादित वस्तुओं की संख्या और गुण में बहुत बड़ा अन्तर हो जाता है।

विद्या तथा कारीगरी के होने से नवीन औज़ारों तथा कलों का आविष्कार होना प्रथम फल है। औज़ारों और कलों से जो व्यवसाय में तरक़्क़ी होती है वह सब पर प्रकट है। इसका पूर्ण वर्णन पढ़ने की जिन पाठकों को अभिलाषा हो वे ("Economy of machinery and manufacture") एकानामी आफ़ मेशीनरी "एण्ड मैन्युफ़ेक्चर" नाम की पुस्तक जो मि० बैबेज ने लिखी है, देखें।

कलों के न होने से जो काम में न्यूनतायें होती हैं उनका उदाहरण ढूँढ़ने के लिए हमें दूर जाने की आवश्यकता नहीं। अगर पम्प न होते तो खानों को हम कदापि पानी से ख़ाली न कर सकते थे। तथा हमें प्रत्येक खान को किसी ख़ास गहराई तक खोद कर छोड़ देना पड़ता क्योंकि फिर खान में पानी भर जाने के कारण हम काम न कर सकते। बिना जहाज़ और नावों के हम समुद्र-यात्रा न कर सकते थे। न बिना औज़ारों के हम दरख़्त काट सकते, न ज़मीन खोद सकते, न अनाज ही पैदा कर सकते थे। यद्यपि आज तक जितने काम होते हैं इनमें बहुत मामूली औज़ारों से काम चल सकता है किन्तु नवीन आविष्कारों से यह लाभ हुआ है कि बहुत से काम अधिक पूर्णता के साथ तथा बहुत कम परिश्रम से सम्पादित हो जाते हैं तथा उस बचे हुए परिश्रम से हम और काम कर सकते हैं। यदि जहाज़ पर अधिक भारी चीज़ों के चढ़ाने के लिए "क्रेन" न होती तो हाथी जैसे मामूली जानवर के चढ़ाने के लिए भी सैकड़ों आदमियों की ज़रूरत होती किन्तु अब केवल पाँच या छः आदमी इस कल द्वारा हाथी से भी कहीं अधिक बोझवाली वस्तु को जहाज़ पर कुछ मिनटों में चढ़ा देते हैं।

विद्या से केवल कलोंही का आविष्कार करके हमने पैदावार और व्यवसाय की उन्नति नहीं की है। किन्तु कलों का आविष्कार तो अन्य अनेक लाभों में से एक लाभ है। खेती, तथा फुलवारी इत्यादि में केवल थोड़ेही काल से हल और अन्य छोटे-मोटे औज़ारों को छोड़ कर अन्य नवीन आविष्कृत कलें उपयोगी सिद्ध होने लगी हैं किन्तु अन्य बातें जो कलों से सम्बन्ध नहीं रखतीं और इनसे भी जो अधिक लाभकारी हैं वे भी विद्या का ही फल हैं। जैसे ज़मीन की ख़ासियत का ज्ञान, फ़सलों का उलट फेर (ताकि ज़मीन किसी समय बिना बोये न छोड़ी जाय) उत्तम खादों का आविष्कार—(जिनसे ज़मीन की पैदावार न बढ़ाई जाय) खेतों की सतह तथा गहराई दोनों को जोतना तथा उनमें से अधिक पानी के निकास के उपाय करने, दल-दलों को पैदावार भूमि में तबदीली करना, दरख़्तों पर पैबन्द चढ़ाना, बीजों को दूर दूर बोना, जिस ज़मीन में वे बोये जाते हैं उसको पूर्णतया महीन करना, इत्यादि इत्यादि।

विद्या से व्यापार और दस्तकारी के कामों में सबसे अधिक उन्नति समय बचाने में तथा धन और परिश्रम का फल शीघ्र प्राप्त करने में हुई है।

विद्या से समाज के धन की वृद्धि होना अशिक्षित से अशिक्षित मनुष्य भी मानते हैं क्योंकि रेल, जहाज़ इत्यादि वस्तुयें वे लोग नित्य देखते हैं और यह भी जानते हैं कि ये सब विद्या के फल हैं। किन्तु जो बात अभी सबके समझ में नहीं आती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

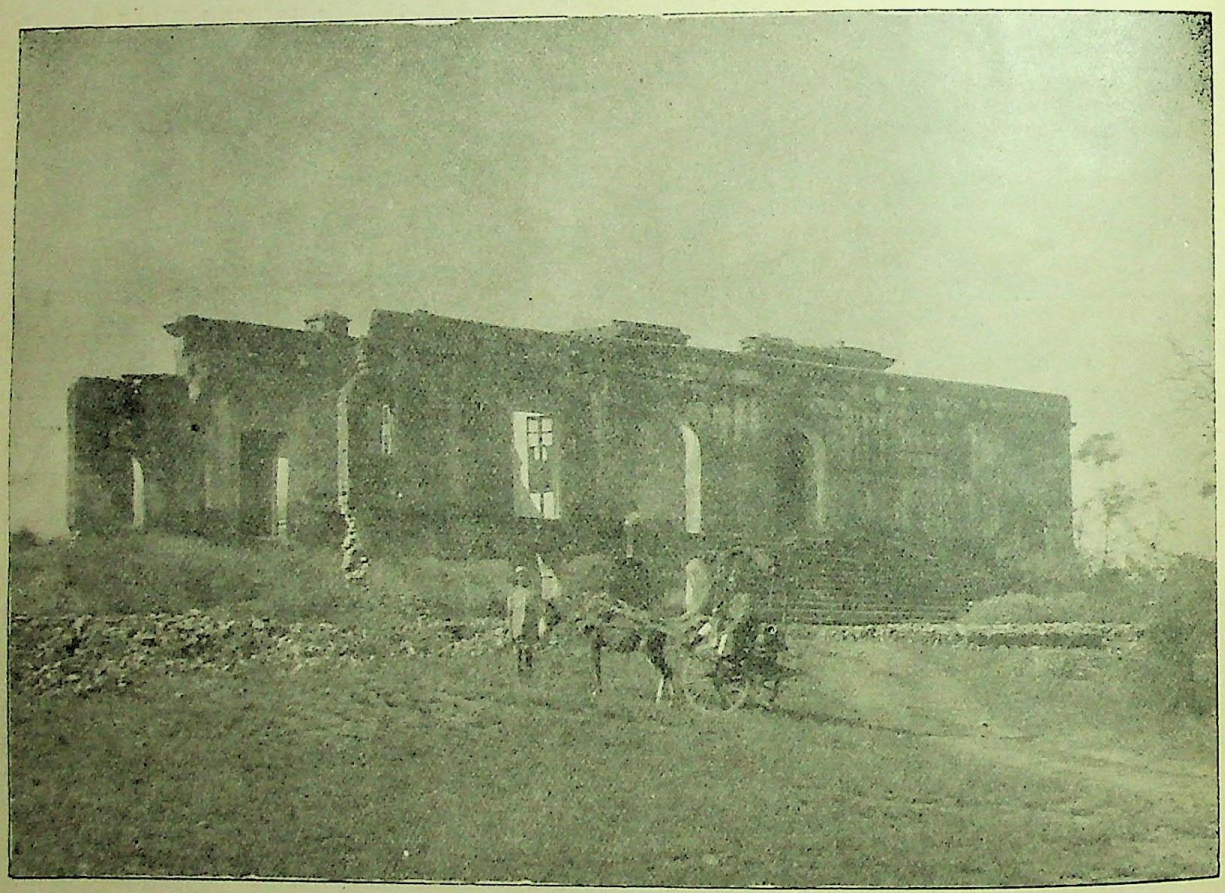

नाना साहब का मकान।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह यह है कि लोगों की बुद्धि तेज़ करने से समाज की आर्थिक दशा पर क्यों प्रभाव पड़ता है। देखा जाता है कि दस्तकारी के कारख़ानों तथा अन्य फ़ैक्टरी इत्यादि पर निरीक्षण करनेवालों की जितनी माँग है उतनी संख्या नहीं मिल सकती। इसलिए मामूली मज़दूरों और निरीक्षकों के वेतन में इतना फ़र्क़ देखा जाता है। आम मज़दूरों में बुद्धि की न्यूनता होने के कारण, उनका काम घर पर या कारख़ाने में जितना चाहिए उतना विश्वसनीय नहीं होता। इसी लिए वे लोग न अपनी मेहनत का पूर्ण लाभ उठा सकते हैं और न बहुत मामूली कामों को छोड़ कर अन्य काम ही करने योग्य होते हैं। राजनीतिज्ञ लोगों को प्रजा की शिक्षा पर विचार करते समय इन बातों पर ध्यान देना चाहिए।

भारतवर्ष के मामूली मज़दूरों तथा कारीगरी की बुद्धि और देशों के मज़दूरों से तीव्र होती है। ये लोग नई बात को बहुत जल्दी समझ जाते हैं। अपने मालिक की मंशा के मुताबिक़ बहुत जल्द काम करने लगते हैं; और हर तरह की कठिनाइयों का सामना करने में बहुत शीघ्र तैयार होते हैं।

अँगरेज़ी जर्मन, स्विस, और डच लोगों में समझने की शक्ति बहुत संकीर्ण है, किन्तु इनकी शिक्षा बहुत उच्च कक्षा की होती है। इसी लिए ये लोग अनभ्यस्त हिन्दुस्तानियों से बाज़ी ले जाते हैं। फिर भी एक हिन्दुस्तानी कारीगर और अँगरेज़ कारीगर में यह फ़र्क़ देखा गया है कि अँगरेज़ यदि एञ्जिन का काम जानता है तो उसी का हो रहता है, उसको अन्य किसी काम में कभी नहीं लगा सकते किन्तु हिन्दुस्तानी कारीगर में यह न्यूनता नहीं पाई जाती। वह एक काम को पूर्णतया जानता हुआ भी दूसरे काम को बड़ी जल्दी सीख जाता है।

विद्या का मज़दूरों के चाल चलन और इमानदारी पर भी बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। जितने पढ़े लिखे मज़दूर हैं वे प्रायः सब अच्छे चाल-चलन के होते हैं। वे लोग मद्यपान कम करते हैं। उनके खेल-तमाशे बुद्धि-युक्त होते हैं। उनकी सङ्गति अच्छी होती है। उनका बर्ताव शरीफ़ाना होता है। इसलिए बड़े बड़े लोग उनको अपने पास बैठने देते हैं। वे लोग गान-विद्या का भी अभ्यास करते हैं, पढ़ते हैं, जंगल और पहाड़ इत्यादि प्राकृतिक दृश्यों के देखने का इनको शौक़ होता है। इनको अपने रुपये की और मालिक के रुपये की क़दर मालूम होती है। इसलिए वे ईमान्दार और विश्वसनीय होते हैं।

बेपढ़े लिखे मज़दूर के साथ जब तक सख़्ती के साथ बर्त्ताव न किया जाय काम नहीं कर सकते और जहाँ उन पर कोई बन्धन नहीं रहता वहाँ पर इनका चालचलन, ईमान्दारी, बर्ताव सब हवा होजाते हैं।

मज़दूरों में बुद्धिमानी की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही अच्छे चाल-चलन की भी ज़रूरत है। क्योंकि ख़राब आदतों से न केवल उनका शरीर, और काम करने की शक्ति ही क्षीण होती है किन्तु उनका विश्वास जाता रहता है जो कि हरएक व्यवसाय का मुख्य सार है। जितनी मेहनत आजकल केवल मज़दूरों की देख भाल, हाज़िरी, ताकीद इत्यादि में ख़र्च होती है वह सब बरबाद समझना चाहिए। क्योंकि देखभाल की आवश्यकता मज़दूरों के अविश्वसनीय होने के कारण पड़ती है। इस पर भी यह देखा जाता है कि जहाँ ज़रा निगाह चूकी और कुछ न कुछ ग़लती हुई।

विश्वास के लाभ मनुष्य जीवन के कोने कोने में संचरित हैं। इसके आर्थिक लाभ जो कि सबसे कम लाभ हैं, वे भी अगणित हैं।

अगर हम लोगों की बेईमानी के कारण जो समाज में धन का नाश होता है उसे सोचने बैठें तो पता लगता है कि हरएक समाज में एक ख़ास गरोह मनुष्यों का होता है जो हमेशा दूसरों का हिस्सा उड़ा कर या उनके धन पर हाथ साफ़ करके ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इन लोगों के पालन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोषण का भार समाज के मज़दूरों पर होता है। फिर इनके लिए जो पुलिस अदालत, फ़ौजदारी और जेलख़ाने इत्यादि बने होते हैं वे भी ग़रीब लोगों के ख़र्च पर ही होते हैं। वकील जो इतना रुपया कमाते हैं और जिनका पेशा केवल क़ानून की त्रुटियाँ होने पर निर्भर है, इन्हीं बेईमान लोगों की करतूतों के कारण अपनी पेटपालना करते हैं। ज्यों ज्यों समाज का चाल-चलन उन्नत होता जायगा ये सब फ़िज़ूल ख़र्चियाँ कम होती जायँगी। किन्तु इस बचाव से भी कहीं अधिक लाभ पैदावार की वृद्धि से होगा जो कि मज़दूरों के विश्वसनीय होने का एक आवश्यक फल है। संयुक्त कार्य दूसरी हालत में हो सकता है जब कि मनुष्य एक दूसरे पर विश्वास कर सकते हैं। कई ऐसे देश हैं जहाँ केवल विश्वास-पात्र मनुष्यों (तथा ऐसे मनुष्यों का जिनके हाथ में धन देकर निश्चिन्त छोड़ दिया जाय) की न्यूनता के कारण बड़े व्यापार नहीं चलाये जा सकते। कई ऐसी जातियाँ हैं जिनकी बनाई हुई चीज़ों को छूते हुए बड़े सौदागर इसलिए हिचकते हैं कि वे लोग नमूने के मुताबिक़ चीज़ें नहीं बना कर देते। यही कारण है कि कितनेही व्यापार बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। इसके विरुद्ध जहाँ विश्वास है, वहाँ पर जो व्यापार से लाभ होते हैं उसके भी उदाहरण कम नहीं हैं। कई बड़े शहरों में लाखों रुपये के सौदे बिना किसी प्रकार की लिखा-पढ़ी के होते हैं। इससे जितना समय और रुपया बचता है वह सबको विदित ही है।

व्यवसाय की वृद्धि के गौण में से रक्षा (हिफ़ाज़त) सबसे मुख्य है। "रक्षा" से हमारा तात्पर्य्य वह हिफ़ाज़त है जो समाज अपने व्यक्तियों की करता है। यह रक्षा राज्य की ओर से तथा सुराज्य के विरोधियों से होती है। सुराज्य के विरोधियों से रक्षा अधिक आवश्यक है। जहाँ पर प्रजा को यह दिलजमई नहीं है कि उसका धन और माल राज्य में सुरक्षित है और जहाँ लोग उसे ज़बर्दस्ती से लूट लेने को उद्यत हैं वहाँ कदापि आवश्यक वस्तुओं से अधिक पैदावारी की कोशिश नहीं की जा सकती। एशियाखण्ड के कई पैदावार मुल्कों की अवनति का यही कारण है। फ़्रांस में रिवोल्यूशन से पहले ज़मान्दारों पर अधिक कर लगाया जाता था। तथा उनको लूट मार से बचाने की कोई फ़िक्र नहीं थी। इसी लिए उन दिनों वहाँ के किसान अपनी ग़रीबी दिखाने के लिए कभी सन्तोषजनक पैदावारी नहीं करते थे।

किसानों को सबसे बड़ा डर राज्य के अन्याय से होता है। और और प्रकार की लूट से बचने के लोग उपाय कर लेते हैं। प्राचीन काल में यूनान और यूनान के मातहत देश, फ़्लेण्डरस और इटली वग़ैरह में कभी धन और माल की सुरक्षा नहीं हुई उनको हज़ारों आपत्तियाँ भुगतनी पड़ती थीं। राज्य उनको बेभाव लूटता था इसी लिए जब तक वहाँ पर रोमन्स ने अपना राज्य रक्खा, लोगों ने कभी जी खोल कर परिश्रम नहीं किया क्योंकि उनको मालूम था कि वे जिस वस्तु को मेहनत से पैदा करेंगे उनके हाथों से छिन जायगी। आज कल अँगरेज़ी राज्य में लोगों की सुरक्षा होने तथा किसी प्रकार का डर न होने से भारतवर्ष में दिनोंदिन व्यवसाय के उन्नत होने की आशा है।

यहाँ अब केवल इतना लिखना रह गया है कि कारीगरों को जितने सुभीते होंगे और जितनी दिल-जमई उनके माल की सुरक्षा की होगी उतनाही देश का व्यवसाय बढ़ेगा और जिन समाज और जातियों में व्यक्तियों को उनके परिश्रम के अनुकूल पुरस्कार और इज़्ज़त मिलने का प्रबन्ध है वही समाज उन्नत है। जितने क़ानून या रिवाज एक जाति की अपेक्षा दूसरी जाति को सुभीता देने के लिए होंगे वे और विचारों को छोड़ कर, केवल आर्थिक नीति से भी निन्दनीय हैं और उनका देश के व्यवसाय पर बड़ा बुरा असर पड़ता है।

रामनारायण शर्म्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आबू और मारवाड़ के परमार।

(गताङ्क से आगे)

६—महिपाल (नं० ५ का पुत्र)—इसका दूसरा नाम देवराज था। धन्धुक के पुत्र पूर्णपाल नं० ८ के वि० संवत् १०९९ के वसंतगढ़ के शिलालेख में धन्धुक के पिता का नाम महिपाल, और धन्धुक के पुत्र कृष्णराज नं० ९ के वि० संवत् १११७ के भीनमाल के शिलालेख में धन्धुक के पिता का नाम देवराज मिलता है, जिससे जाना जाता है कि इसी का दूसरा नाम देवराज था। एक राजा के दो नाम हो सकते हैं।

७—धन्धुक (नं० ६ का पुत्र)—वसंतगढ़ के वि० संवत् १०९९ और भाडूंद जोधपुर स्टेट के वि० संवत् ११०२ के शिलालेखों में धन्धुक का पुत्र पूर्णपाल और भीनमाल के वि० संवत् १११७ के शिलालेख में धन्धुक का पुत्र कृष्णराज लिखा है, जिससे पाया जाता है कि इन तीनों लेखों में जिसका उल्लेख है वह धन्धुक एकही है। सिरोही राज्य के अंतर्गत बरमा के वि० संवत् १०९९ के शिलालेख में इसका नाम धन्धुअ लिखा है। विमलशाह के मन्दिर के वि० संवत् १३७८ की आबू की प्रशस्ति में धन्धुक को चन्द्रावती का अधीश लिखा है :—

" तत्कुलकमलमरालः कालः प्रत्यर्थिमण्डलीकानाम्।
चन्द्रावतीपुरीशः समजनि वीराग्रणीर्धन्धुः ॥ ५ ॥ "

उसी प्रशस्ति में धन्धुक के लिए लिखा है कि "धन्धुक गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव का आज्ञाकारी नहीं हुआ, जिससे भीमदेव उस पर क्रुद्ध हुआ। उस भीम के भय से धन्धुक चन्द्रावती को छोड़कर धार के परमार राजा भोज के पास चला गया; तब भीमदेव ने पोखाल बनिया विमलशाह को वहाँ का दंडनायक बनाया; जिसने विक्रमी संवत् १०८८ में देलवाड़ा में आदिनाथ का नामी मन्दिर बनवाया।

" श्रीभीमदेवस्य नृपस्य सेवा-
मलभ्यमानः किल धन्धुराजः।
नरेशरोषाच्च ततो मनस्वी
धाराधिपं भोजनृपं प्रपेदे ॥ ६ ॥
ततश्च भीमेन नराधिपेन
प्रतापभूमिर्विमलो महामतिः।
कृतोऽर्बुदे दण्डपतिः सतां प्रियः
प्रियंवदो नन्दतु जैनशासने ॥ ८ ॥
श्रीविक्रमादित्यनृपाद्व्यतीते-
ऽष्टाशीतियाते शरदां सहस्रे।
श्रीआदिनाथं शिखरेऽर्बुदस्य
निवेशितं श्रीविमलेन वन्दे ॥ ११ ॥ "

धन्धुक के पूर्णपाल और कृष्णराज दो पुत्र थे। इसकी स्त्री का नाम अमृतदेवी था, जो रूप, कुल और शील से युक्त थी। धन्धुक की पुत्री का नाम लाहिनी था। वह द्विजाति येाट के वंशज संगमराज के प्रपौत्र, दुर्लभराज के पौत्र और चच के पुत्र विग्रहराज से व्याही गई थी। विग्रहराज के मरने पर वह अपने बड़े भाई पूर्णपाल के पास चली आई, और वहाँ वटनगर में, जिसको अभी वसंतगढ़ कहते हैं, रहने लगी। यह लाहिनी बड़ी धर्मनिष्ठा थी, इसने वि० संवत् १०९९ में वसंतगढ़ में सूर्य के मन्दिर का जो वसिष्ठ के नगर के लोकों ने कराया था और सारस्वती नामक बावड़ी का जीर्णोद्धार कराया, जो लाणवाव के नाम से प्रसिद्ध है।

पण्डित गौरीशंकरजी ने टाडराजस्थान की टिप्पण में लिखा है :—"धन्धुक की पुत्री लाहिनी का विवाह वल्लभराज के पौत्र और वरराज के पुत्र विग्रहराज के साथ हुआ था" परन्तु शिलालेख से ऐसा नहीं पाया जाता। क्योंकि वसंतगढ़ के वि० संवत् १०९९ के पूर्णपाल के शिलालेख में इस प्रकार लिखा है :—

" आसीद् द्विजातिर्विदितो धरण्यां
ख्यातप्रतापो रिपुचक्रमर्दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योटः स्वशौर्यार्जितभूपशब्दः
क्ष्मोणीश्वरः सर्वनृपप्रधानः ॥ १२ ॥

तदन्वये ख्यातमतिर्नृपोऽभू-
त्कुलप्रदीपो भवगुप्तनामा।
उद्धृत्य वेशां वटवासिभानो-
र्व्वटेषु राज्यं कृतवान् स वीरः ॥ १३ ॥

अस्यान्वये संगमराजनामा
वंशाखे यो वदरीं शशास।
तस्मादभूर्दुर्लभराजभूप-
श्चचडोऽपि तस्माद्वररराजपुत्रः ॥ १४ ॥

बभूव तस्मादगुणिनां प्रधानो-
नृपोत्तमो विग्रहराजनामा ॥ "

इन श्लोकों का भावार्थ यह है कि शत्रुओं का नाश करनेवाला येाट नामक द्विज राजा हुआ था। उसके वंश में, कुल में दीपक तुल्य भवगुप्त नाम राजा हुआ। यह वट देश का राजा था। इसने वसंतगढ़ के सूर्य के मन्दिर का जीर्णोद्धार किया था। इसके वंश में संगमराज नामक राजा हुआ। उसके दुर्लभराज और उसके चच नामक पुत्र हुआ, जो श्रेष्ठ राजपूत था। चच के राजाओं में श्रेष्ठ विग्रहराज पुत्र हुआ। इस लेख में न तो कहीं वल्लभराज का नाम है और न वरराज का नाम है। जैसा कि पण्डितजी ने लिखा है। कदाचित् पण्डितजी ने "वरराजपुत्रः" इसका अर्थ वरराज का पुत्र ऐसा समझ लिया हो तो चच की क्या गति होगी? यहाँ 'तस्मात्' के योग से 'चच' नामही होना चाहिए। क्योंकि संस्कृत भाषा में 'चच' का अर्थ नाम के सिवा और कुछ भी नहीं हो सकता। और 'वरराजपुत्रः' इसका अर्थ श्रेष्ठ राजपूत ऐसा हो सकता है। यदि हठ से 'वरराजपुत्रः' इसका अर्थ 'वरराज का पुत्र' ऐसा कर लिया जाय तो आगे के "बभूव तस्माद् गुणिनां प्रधानः" इसमें के 'तस्मात्' शब्द का अन्वय किसके साथ होगा? उक्त पण्डितजी ने फिर यह भी लिखा है कि "अपने नाम से एक बावड़ी बनवाई" परन्तु लेख के देखने से बावड़ी का जीर्णोद्धार कराना पाया जाता है:—

"देवैः समस्तैर्ऋषिभिश्च जुष्टा
पापापहा व्याप्य जगत्स्थिता या।
जीर्णोद्धृता लाहिणि पुण्यहेतोः
सारस्वती शेषजनस्य वापी ॥ ३० ॥"

पहले इस बावड़ी का नाम सारस्वती वापी था, परन्तु लाहिनी ने जीर्णोद्धार किया तबसे इस बावड़ी का नाम लाहिनी के नाम से लाणवाव प्रसिद्ध हुआ। पूर्णपाल (नं० ८ का पुत्र)—यह राजा धार्मिक और बड़ा वीर था। इसका अर्बुदमंडल पर वटनगर में, जिसको अभी वसंतगढ़ कहते हैं राज्य था, वसंतगढ़ का शिलालेख कहता है कि जहाँ वशिष्ठ मुनि का वटसत्र नामक आश्रम है वहाँ अगस्त्य मुनि ने भी तप किया था। और वशिष्ठ मुनि ने उस स्थान में सूर्य और महादेव को स्थापित किया था। केवल इन दो देवताओं की ही स्थापना नहीं की थी, वशिष्ठ मुनि ने विश्वकर्मा के द्वारा इस वन में वटनगर भी बसाया था। उसके कोट और बुर्ज़ बनाई गईं थीं। उस नगर के भीतर बाग़, बगीचे, तालाब, महल बड़े बड़े धनाढ्य पुरुषों के अति ऊँचे घर शोभायमान थे। ब्राह्मणों की बड़ी बस्ती थी, जो वेद और वेदांग को जाननेवाले थे। वहाँ के लोग अपने धर्म-कर्म में निरत, नीति में चलनेवाले, एक दूसरे का हित चाहनेवाले, सुवर्ण, पृथ्वी, वस्त्र और रत्न आदि से ब्राह्मणों का सत्कार करनेवाले और सूर्य के परम भक्त थे। व्यापार के लिए दूर दूर के देशों से व्यापारी लोग आकर वहाँ जमा होते थे। उक्त लेख में लिखा है कि इस राजा ने शत्रुओं को कई वार विजय किया था:—

"हत्वा येन रणे रिपून् सुबहुशः.....के
विक्रान्ता मदशालिनो वरगजा नद्धाः स्वके मन्दिरे।
भूर्णापालकुलप्रदीपनृप [तौ शौ] र्यव्रते धार्मिके
अत्र श्रीपरमारवंशतिलके राज्यं स्थिरे शासति ॥ १० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराना उदयपुर का वर्त्तमान महल।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

.....णे....पि विजित्य शत्रून्
शशास भूमण्डलमर्बुदस्थ ॥ ८ ॥"

इससे पाया जाता है कि समय पाकर इसने अपने पिता का राज्य पुनः प्राप्त कर लिया था। पूर्णपाल के तीन शिलालेख मिले हैं, जिनमें से एक तो वि० संवत् १०९९ का वसंतगढ़ में, दूसरा वि० संवत् १०९९ का बरमा* सिरोही स्टेट में और तीसरा गाँव भाडूंद† परगना गोडबाड़ जोधपुर स्टेट में वि० संवत् ११०२ का मिला है; जो अभी मैंने बाम्बे एसियाटिक सोसाइटी के जरनल में छपाया है; जिनसे जाना जाता है कि इसका राज्य आबू से गोडवाड़ पर्यंत था। इसके समय में परिहार सारम के पुत्र गोधक ने ब्रह्माण स्वामिदेव के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। किराडू के शिलालेख में पूर्णपाल का नाम गया हुआ है, परन्तु उससे पहले के धरणीवराह और देवराज का, और उससे पीछे के उसके छोटे भाई कृष्णराज का नाम विद्यमान है; और मूता नैणसी की ख्यात में भी धरणीवराह को किराडू का स्वामी लिखा है, जिससे यह जाना जाता है कि धरणीवराह से लेकर कृष्णराज तक के परमार राजा आबू, भीनमाल और किराडू के मालिक थे। कृष्णराज के अनन्तर इनकी दो शाखाएं फटीं जिनमें से एक शाखा के तो आबू मंडल पर राज्य करते रहे; जिनकी राजधानी चन्द्रावती पुरी थी। इनमें अन्तिम राजा प्रतापसिंह हुआ, जिसका समय वि० संवत् १३४४ है। और दूसरी शाखा के किराडू में राज्य करते रहे; जिनमें से सोमेश्वर वि० संवत् १२१८ में किराडू का राजा था। पूर्णपाल के वि० संवत् १०९९ के बरमा के शिलालेख में पूर्णपाल का नाम पुनपाल लिखा है।

९—कृष्णराज (नं० ८ का छोटा भाई)—इसके दो शिलालेख भीनमाल में जिसको शिलालेखों में श्रीमाल * और भिल्लमाल † लिखा है मिले हैं। एक तो वि० संवत् ११९७ का और दूसरा वि० संवत् ११२३ का। इन दोनों में कृष्णराज को 'महाराजाधिराज' लिखा है; और सूंधापाता के चाहमान चाचिग देव के वि० संवत् १३१९ के शिलालेख‡ में भी इसको भूमिपति लिखा है :—

"जज्ञे भूभृत्तदनुतनयस्तस्य बालप्रसादो-
भीमक्ष्माभृच्चरणयुगलीमर्दनव्याजतो यः।
कुर्वन्पीडामतिबलतया मोचयामास कारा-
गाराद्भूमीपतिमपि तथा कृष्णदेवाभिधानम् ॥ १८ ॥"

इसका भावार्थ यह है कि नाडोल के चाहमान लक्ष्मण के वंशज अणहिल का पुत्र बालप्रसाद राजा हुआ; जिसने चौलुक्य भीमदेव प्रथम के चरण पकड़े। इससे जाना जाता है कि बालप्रसाद भीमदेव का आज्ञाकारी हो गया था; परन्तु यह अत्यन्त बलवान् था, सो चरण पकड़ने के मिस से चरणों को पकड़कर ऐसा दबाया कि भीमदेव को पीड़ित होकर यह कहना पड़ा कि पैर छोड़ो, पैर छोड़ो। उस समय बालप्रसाद ने भीमदेव से कहा कि आप कृष्णराज को छोड़ें तो मैं पैर छोड़ूँ। भीमदेव को परवश होकर अपने पैर छुड़ाने के बदले कृष्णराज को कारागार से छोड़ना पड़ा। कृष्णराज को महाराजा-

* यह लेख छपा नहीं है।

† देखो, बोम्बे एसियाटिक सोसाइटी का जनरेल। वोल्यूम पृष्ठ

* इस श्रीमाल नगर के नाम से मारवाड़ में दो जातियाँ प्रसिद्ध हैं। एकतो ब्राह्मणों में और दूसरी बनियों में। ब्राह्मणों में श्रीमाली कहलाते हैं; और बनियों में श्रीश्रीमाल कहलाते हैं।

† सिरोही राज्यान्तर्गत कायद्रा के जैनमन्दिर के वि० संवत् १०९१ के शिलालेख में भीनमाल को भिल्लमाल लिखा है :—

"श्रीभिल्लमालनिर्यातः प्राग्वाटो वणिजां वरः ॥"

भिल (भील) पर्वत में रहनेवाली एक जाति है। उस जाति के नाम से इसका नाम भिल्लमाल हुआ भिल्लमाल का अपभ्रंश भीनमाल है।

‡ देखो एपिग्राफिया इंडिका, वोल्यूम ९ पेज ७०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिराज और भूमिपति लिखने से जाना जाता है कि पूर्णपाल के अनन्तर वसंतगढ़ में उसका छोटा भाई कृष्णराज राजा हो गया था; और उसका राज्य वसंतगढ़, भीनमाल और किराडू में था। पण्डित गौरीशंकरजी ने टाडराजस्थान की टिप्पणी में पूर्णपाल और कृष्णराज के विषय में ऐसा लिखा है कि "धन्धुक के दो पुत्र; पूर्णपाल और कृष्णराज थे। जिनमें से बड़ा भीमदेव की अधीनता में आबू का राजा हुआ, और कृष्णराज को भीनमाल का इलाका जागीर में मिला हो ऐसा पाया जाता है"। यह उन्होंने किस आधार पर लिखा यह नहीं जाना जाता; किन्तु सूंधामाता के शिलालेख में कृष्णराज को भूमिपति और भीनमाल के शिलालेखों में महाराजाधिराज लिखा है, जिससे कृष्णराज जागीरदार नहीं हो सकता; किन्तु पूर्णपाल के पीछे उसका राजा होना सिद्ध होता है। पूर्णपाल के और कृष्णराज के समय में अन्तर बहुत है वह भी ऊपर की बात को पुष्ट करता है।

१०—ध्रुवभट—इसका कुछ पता नहीं चलता कि यह किसका पुत्र था। वस्तुपाल तेजपाल की वि० संवत् १२९३ की प्रशस्ति में इतना मात्र लिखा है कि धूमराज के वंश में धन्धुक ध्रुवभट आदि राजा हुए; और इनके वंश में रामदेव हुआ।

११—
१२—
१३— } ये दो तीन पीढ़ियाँ समुद्रखोज में हैं, जिसका विवरण पहले कर चुके हैं।

१४—रामदेव (ध्रुवभट का वंशज)—यह अत्यन्त रूपवान् था, वस्तुपाल तेजपाल की प्रशस्ति में लिखा है:—

"यत्कुलेऽजनि पुमान्मनोरमो-
रामदेव इति कामदेवजित् ॥ ३४ ॥"

१५—विक्रमसिंह—वस्तुपाल तेजपाल की प्रशस्ति में विक्रमसिंह का नाम नहीं है, परन्तु हेमचन्द्रविरचित 'द्व्याश्रय काव्य' में ऐसा लिखा है कि कुमारपाल ने अजमेर के चौहान राजा अर्णोराज पर चढ़ाई की उस समय चन्द्रावती (आबू) का राजा विक्रमसिंह कुमारपाल की सेना में था। और जिन मंडनोपाध्यायरचित 'कुमारपालप्रबन्ध' में लिखा है कि विक्रमसिंह कुमारपाल के साथ था, परन्तु आगे जाकर अर्णोराज से मिल गया, जिससे कुमारपाल ने उसको तो कारागार में डाल दिया और उसके भतीजे यशोधवल को चन्द्रावती का राजा बना दिया। पण्डित गौरीशंकरजी ने लिखा है कि "वि० संवत् १२०९ में विक्रमसिंह आबू का राजा था" परन्तु अभी यशोधवल का एक शिलालेख* वि० संवत् १२०२ का अजारी गाँव में उनको (उक्त पण्डितजी को) मिला है, जिसमें यह लिखा है:—

"प्रमारवंशोद्भव-महामण्डलेश्वर-श्रीयशोधवलराज्ये"

इससे जाना जाता है कि वि० संवत् १२०२ में तो यशोधवल आबू का राजा था।

१६—यशोधवल (नं० १४ का पुत्र)—इसको जसधवल भी कहते थे। इसकी पटरानी का नाम सौभाग्यदेवी था। वह जाति की चौलुक्य थी। इसने गुजरात के राजा सोलंकी कुमारपाल के शत्रु मालवा के राजा बल्लाल को मारा था। पण्डित गौरीशंकर बल्लाल को विजय करना लिखते हैं, परन्तु वस्तुपाल तेजपाल की प्रशस्ति में इसको मारना लिखा है:—

"यश्चौलुक्यकुमारपालनृपतिप्रत्यर्थितामागतं
मत्वा सत्वरमेव मालवपतिं बल्लालमालब्धवान् ॥ ३५ ॥"

१७—धारावर्ष (नं० १६ का पुत्र)—यह राजा बड़ा वीर और परदुखभंजन था। इसके लिए लोग विक्रम की तरह तरसते थे। अठारह सौ १८०० गाँव इसके अधीन थे। चन्द्रावती पुरी इसकी राजधानी थी। मंडलेश्वर कल्हण की कन्या शृंगारदेवी इसकी पटरानी थी। जिसने पार्श्वनाथ के मन्दिर में पूजा के लिए बावड़ी की भूमि दी थी। इसके शिलालेख वि० संवत् १२२० † से १२७४ ‡ तक के मिलते हैं।

* यह लेख छपा नहीं है।
† कायद्रा में यह लेख है अभी छपा नहीं है।
‡ पिंडवाड़ा में यह लेख है अभी छपा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसने कोंकण देश के अधीश शिलारवंश के राजा को अपने बाहुबल से विजय करके जगत् में बड़ी कीर्ति प्राप्त की थी। अब तक आबू के प्रांत में इस राजा का नाम धार परमार के नाम से प्रसिद्ध है। इसने एक बाण से तीन भैंसों को वेधकर मारा था, जिसका स्मारकचिह्न आज भी आबू पर पत्थर के पूरे क़द के तीन भैंसों सहित धनुष धारण किये उस धारावर्ष की पाषाण की मूर्ति विद्यमान है। पण्डित गौरीशंकरजी लिखते हैं कि "महाराणा कुम्भा ने आबू पर अचलेश्वर के मन्दिर के पास कुम्भस्वामि का मन्दिर तथा उसके पास एक कुंड बनवाया था, अतएव आश्चर्य नहीं कि जिस कुंड को टॉड साहब अग्निकुंड बतलाते हैं वह महाराणा कुम्भा का बनवाया हुआ हो, और पीछे से उसकी पाल पर देवड़ों ने वह मूर्ति तथा भैंसे बनवाये हों।" राणा कुम्भा का समय वि० संवत् १४९६ है और उसके बनवाये हुए कुंड की पाल पर देवड़ों ने पत्थर के भैंसे और मूर्ति बनवाई हो तो वि० संवत् १४९६ के अनन्तर उनका बनना हो सकता है, परन्तु पाट नारायण के वि० संवत् १३४४ के नं० २ के शिलालेख * में धारावर्ष के वर्णन में यह लिखा है कि धारावर्ष ने एक बाण से तीन भैंसों को मारा था :—

"यस्मिन्किलार्बुदधरावलये स धारा-
वर्षो बभूव नृपतिर्गुरुवीरत्नम्।
यस्य प्रभापरिकरोऽद्य दिनानि याव-
द्यस्मिन्न सत्यपि लसद्द्युतिरद्भुतं तत् ॥ १४ ॥
एकबाण निहतत्रिलुलायं
यं निरीक्ष्य कुरुयोधसहस्रम्"

यहाँ यह लिखा है कि आज वह धारावर्ष विद्यमान नहीं है, तथापि उसकी प्रभा का परिकर आज भी वैसा का वैसाही शोभायमान है। इसका तात्पर्य यह है कि उसका स्मारकचिह्न उसके विद्यमान न रहने पर भी उसको दिखा रहा है। सोही स्पष्ट किया है "एक बाण से जिसने तीन भैंसों को मारा है।" धारावर्ष का समय वि० संवत् १२२० से १२७४ तक है; और पाट नारायण का शिलालेख वि० संवत् १३४४ का है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उस समय में धारावर्ष की मूर्ति भैंसों-सहित पत्थर का स्मारक चिह्न विद्यमान था। कुम्भा राना के अनन्तर नहीं बना; जैसा कि पण्डितजी ने लिखा है। दूसरे—धारावर्ष परमार था, उसका ऐसा वीरताद्योतक स्मारक चिह्न देवड़ा राजा बनवावे यह कदापि नहीं हो सकता; क्योंकि देवड़ा परमारों के शत्रु थे। शायद देवड़े का नाम किसी ने पीछे से खोद दिया हो। देवड़ों ने परमारों से आबू का राज्य छीना था; वे शत्रु का ऐसा वीरताद्योतक अद्भुत स्मारक-चिह्न बनावें यह विचार से परे है। तीसरे—स्वयं पण्डितजी टिप्पण में लिखते हैं "जिस मूर्ति को टाड साहब आदि पाल की मूर्ति कहते हैं उसको वहाँ के लोग परमार धारावर्ष की मूर्ति बतलाते हैं।" सो वहाँ के लोगों का परंपरागत यह कथन सत्य होना चाहिए; क्योंकि उसकी असत्यता में कोई प्रमाण नहीं है; और सत्यता में पाटनारायण के शिलालेख में उसका उल्लेख प्रमाण है। वि० संवत् १२५४ में कुतुबुद्दीन ऐबक़ ने अणहलवाड़ा पर चढ़ाई की। उस समय यह राजा गुजरात की सेना के दो मुख्य सेनापतियों में से एक था। इसका छोटा भाई प्रल्हादन बड़ा वीर, दानी और कवि था। इसकी प्रशंसा सोमेश्वर कवि ने कीर्तिकौमुदी नामक पुस्तक में और वस्तुपाल तेजपाल की वि० संवत् १२९३ की आबू की प्रशस्ति में की है।

१८—सोमसिंह देव (नं० १७ का पुत्र)—इसने अपने पिता से शस्त्र-विद्या और चचा से शास्त्रविद्या प्राप्त की थी। यह राजा अणहिलपुर के पति गुजरात के राजा सोलंकी भीमदेव द्वितीय का मांडलिक था। इस राजा के राज्य समय वि० संवत् १२८७ में धोलका के पति चौलुक्य (वाघेला) वीरधवल के मंत्री तेजपाल ने अपने पुत्र लूणसिंह के नाम से लूणसिंह व सहिका नाम का नेमिनाथ का जैन-

* यह लेख छपा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्दिर बनवाया था; जो वस्तुपाल* तेजपाल के नाम से प्रसिद्ध है। उस मन्दिर में नेमिनाथ की पूजा के निमित्त इस राजा ने डबाणी नाम का गाँव

* वस्तुपाल तेजपाल का बड़ा भाई था। ये दोनों अणहिलपुर के निवासी थे और वीरधवल के मंत्री थे। देखो आबू की वस्तुपाल तेजपाल की प्रशस्ति में :—

"येन मन्त्रिद्वयेनायं जाने जातूपवर्तिना।
विभुर्भुजद्वयेनेव सुखमाश्लिष्यति श्रियम् ॥ २६ ॥"

वीरधवल सोलंकी भीमदेव द्वितीय का मांडलिक राजा था। देखो, वि० संवत् १२८७ की वस्तुपाल तेजपाल की आबू की प्रशस्ति में :—

"तस्यैव महाराजाधिराजश्रीभीमदेवस्य प्रसाद।
मण्डले श्री चौलुक्यकुलोत्पन्न महा-
मण्डलेश्वरराणक श्री वीरधवलदेवसत्क"—

इस लेख में वीरधवल को राणक भी लिखा है, और प्राचीनकाल में राणक पद स्वतन्त्र राजा के लिए नहीं; किन्तु राजा के छुटभैयों के लिए लिखा जाता था। इस बात की पुष्टि वि० संवत् १२९३ की प्रशस्ति में का वीरधवल की वंशावली के प्रारम्भ का लेख करता है कि चौलुक्यवीरों की यह एक शाखा विशेष है :—

"इतश्चौलुक्यवीराणां वंशे शाखाविशेषकः ॥ २५ ॥"

जिससे यह स्पष्ट है कि वीरधवल अणहिलपुर के चौलुक्यों के छुटभैयों में से था। वस्तुपाल तेजपाल उसके मन्त्री थे। इन्होंने कई स्थानों में नये मन्दिर और जीर्णोद्धार कराया था। भीमदेव द्वितीय का वि० संवत् १२८३ का एक शिलालेख नाणा, परगना गोडवाड़ जोधपुर स्टेट में का आर्कियालॉजिकल सर्वे वेस्टर्न सरकल के असिस्टेंट सुपरिंटेंट देवदत्त रामकृष्ण भांडारकर ने कृपा करके मुझे दिया है उसमें वीरधवल को महामाडलिक लिखा है; और अणहिलपुरपति भीमदेव को अजयपाल का पुत्र लिखा है इस भीमदेव ने वि० संवत् १२३५ से १२९८ तक राज्य किया था।

शासन करके दिया था। जो अभी डभोई नाम से प्रसिद्ध है। वि० संवत् १२९० का एक शिलालेख* नाणा, परगना गोडवाड़ जोधपुर स्टेट में का मिस्टर देवदत्त रामकृष्ण भांडारकर असिस्टेंट सुपिंटेंडेंट वेस्टर्न सरकल आर्कियालॉजिकल सर्वे ने कृपा करके मुझे दिया है। उससे यह स्पष्ट जाना जाता है कि उसने अपने जीते जी अपने पुत्र कृष्णराज (कान्हड़देव) को युवराज बना दिया था, और उसके हाथ खर्च में नाणा दे दिया था। युवराज कान्हड़देव ने पंच लोगों को इकट्ठा करके महादेव के नैवेद्य के लिए नाणा की मंडपिका में कुछ नियत कर दिया था, जो अक्षर टूट जाने से जाना नहीं जा सकता। इस लेख में महादेव का नाम लकुलदेव लिखा है, जो लकुलीश महादेव का वाचक है। लकुलीश की मूर्ति के एक हाथ में दंड और एक हाथ में बिजोरे का फल होता है। जिस मूर्ति को देखकर कितनेही प्राचीन शोधकर्ता तो उसको हाथ में लड्डूसा होने से गणपति की मूर्ति, और कितनेही बुद्ध की मूर्ति बतलाते थे; परन्तु अभी मिस्टर देवदत्त रामकृष्ण भांडारकर ने इसका पूरा पता लगा लिया है कि यह मूर्ति न तो गणपति की है और न बुद्धदेव की, किन्तु लकुलीश महादेव की मूर्ति है। जो महादेव का २८ वाँ अवतार है; जिसका ब्यौरा वायुपुराण में है। मिस्टर D. R. भाण्डारकर ने लकुलीश का पता लगाकर एंटिक्वेरियन लोगों का बड़ा उपकार किया है कि सबका भ्रम मिटा कर वास्तविक वस्तु को दिखा दिया है। अभी वह नाणा का मन्दिर लकुलदेव का मन्दिर नहीं कहलाता, नीलकण्ठ महादेव का मन्दिर कहलाता है। सोमसिंहदेव ने नेमिनाथ के मन्दिर में पूजा के निमित्त ग्राम दिया जिससे जाना जाता है कि वह जैनी हो; परन्तु सोमसिंहदेव के पुत्र कान्हड़देव ने महादेव के भोग के लिए अपनी जागीर के गाँव नाणा में लगा नियत की, जिससे पाया जाता है कि यह शिवभक्त था, जैनी नहीं था।

* यह लेख छपा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

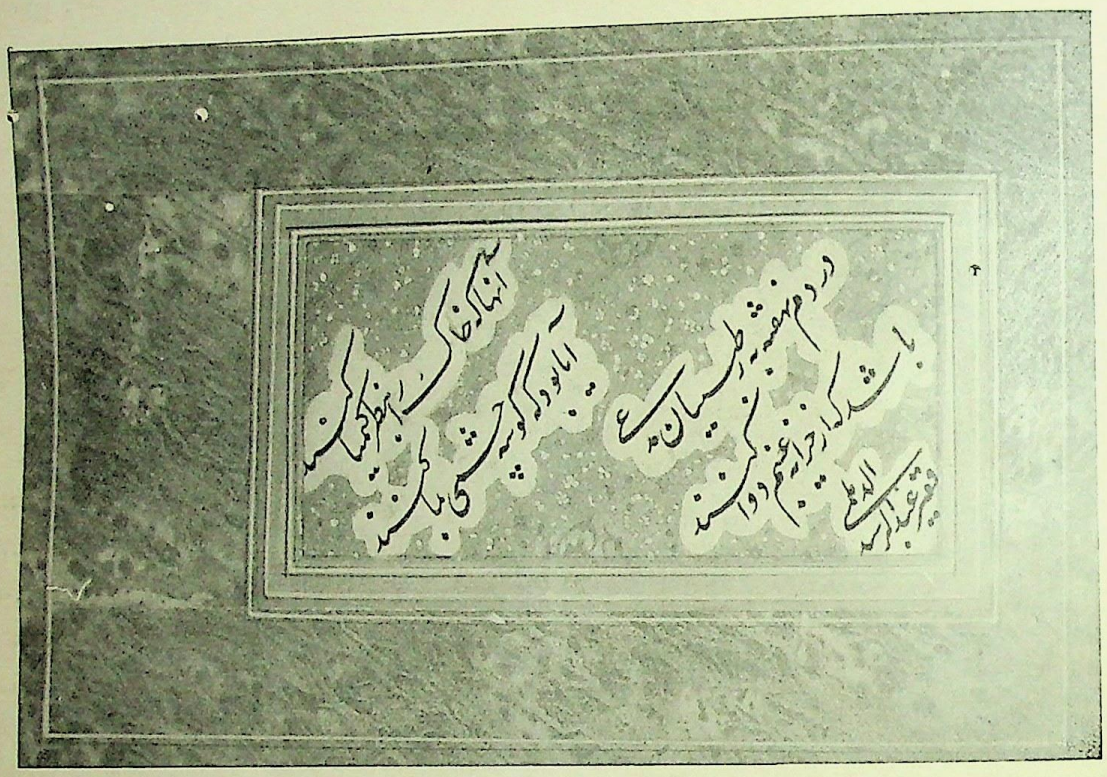

अब्दुलरशीद दालीमी, उर्फ़ आग़ारशीद की हस्तलिपि का नमूना।

औरंगज़ेब के उस्ताद-सय्यद अलीख़ाँ जवाहिर रक़म लिखित की हस्तलिपि का नमूना।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९—कृष्णराज (नं० १८ का पुत्र)—इसको कान्हड़देव भी कहते थे। यह बड़ा वीर और बुद्धिमान् राजा था।

२०—प्रतापसिंह (नं० १९ का पुत्र)—यह राजा बड़ा वीर था। इसने जैत्रसिंह को जीत कर अपनी चन्द्रावती नगरी का उद्धार किया था। जैत्रसिंह मेवाड़ का महाराणा गुहिल होना चाहिए; क्योंकि मेदपाट (मेवाड़) के अधीश गुहिल जैत्रसिंह का समय वि० संवत् १२७० से १३०९ तक मिलता है। वि० सं० १३०९ में जैत्रसिंह को युद्ध में हराकर इसने चन्द्रावती पीछे ली हो; क्योंकि पाटनारायण के नं० २ के लेख में इसका जैत्रसिंह को हराना लिखा है :—

" कामं प्रमथ्य समरे जगदेकवीर-
स्तं जैत्रकर्णमिह कर्णमिवेन्द्रसूनुः।
चन्द्रावती परकुलोदधि दूरमग्ना-
मुर्वी वराह इव यः सहसोद्धार ॥ १८ ॥ "

इसके राज्य में ब्राह्मण मंत्री देल्हण ने पाटनारायण के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया और वि० संवत् १३४४ के ज्येष्ठ शुदि पंचमी को प्रतिष्ठा की और ध्वजारोपण किया। इसके अनन्तर चाहमान शाखा के दवेड़ा राव लुंभा ने आबू का राज्य प्राप्त किया।

कृष्णराज नं० ९ तक का वृत्तान्त तो पहले लिखा जा चुका है। कृष्णराज के अनन्तर आबू और किराडू के परमारों की शाखा फटी हो ऐसा पाया जाता है। कृष्णराज के अनन्तर किराडू के लेख में तीन पीढ़ियों के नाम हैं। सोछराज, उदयराज, सोमेश्वर।

१० सोछराज (नं० ९ का पुत्र)—यह बड़ा दानी था।

११ उदयराज (नं० १० का पुत्र)—यह माण्डलिक राजा था। इसने चोड़, गौड़, कर्णाट, और मालवे का उत्तर पश्चिम प्रदेश विजय किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह सोलंकी जयसिंह सिद्धराज का सामन्त था। पण्डित गौरीशंकरजी ने लिखा है कि "उदयराज गुजरात के सोलंकी कुमारपाल का सामन्त"। परन्तु यह बन नहीं सकता, क्योंकि कुमारपाल से प्रथम गुजरात का राजा जयसिंह सिद्धराज था। उसका समय वि० संवत् ११५१ से १२०० तक था। उदयराज के पुत्र सोमेश्वर वि० संवत् ११९८ में सिद्धराज जयसिंह की कृपा सम्पादन करके सिन्धुराजपुर के राज्य का उद्धार किया था, तो उदयराज कुमारपाल का सामन्त कैसे हो सकता है?

१२ सोमेश्वर (नं० ११ का पुत्र)—इसने उखड़े हुए राज्य का अपने भुजबल से उद्धार किया था। फिर सोलंकी सिद्धराज जयसिंह की कृपा से वि० संवत् ११९८ में पूर्ण पराक्रम करके सिन्धुराजपुर * के राज्य का उद्धार किया। और वि० संवत् १२०५ में कुमारपाल राजा ने उसको दृढ़ कर दिया। इसने अपने किराटकूप (किराडू) और शिवकूप (सिव)† का क्षात्रधर्म से बहुत काल तक पालन किया था। वि० संवत् १२१८ में राजा जज्जक से सत्रह सौ १७०० घोड़े दण्ड में लिये थे; और उसके दो क़िले छीन लिये थे। एक तो तणुकोट्ट (तणोट)‡ और दूसरा नौसर §। आख़िर जज्जक को सोलंकी कुमारपाल राजा का सेवक बनाकर जज्जक को पीछे उसके देशों में जमा दिया।

---

* जोधपुर स्टेट में परगना मालानी में सिंदड़ी नाम का गाँव शायद सिंधुराजपुर हो।

† अभी जोधपुर राज्य में पश्चिम की ओर सिव हकूमत है।

‡ तणोट-जैसलमेर के राज्य में तणोट एक प्रसिद्ध ग्राम है।

§ नौसर-जोधपुर राज्य में मालानी परगना में सिंदड़ी के समीप है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जालोर के परमार।

मारवाड़ के जालोर नगर में जो परमारों का शिलालेख वि० संवत् ११७४ का मिला है उसमें वाक्पतिराज से सात पीढ़ी लिखी हैं। सातवें पुरुष का नाम वीसल है। उसकी रानी मलरदेवी ने सिन्धुराजेश्वर के मन्दिर पर सुवर्ण का कलश चढ़ाया जिस विषय का वह शिलालेख है। यह सिन्धुराजेश्वर का मन्दिर किराडू के सिन्धुराज ने बनवाया हो तो सम्भव है।

१ वाक्पतिराज—धार के राजा भोज के पितृव्य मुंज का नाम भी वाकपतिराज था और दोनों का समय भी एक मिलता है, परन्तु मुंज ने भोज पर प्रीति होने के कारण अपने पद पर भोज को स्थापित किया। ऐसा धनपाल रचित तिलकमंजरी में लिखा मिलता है जिससे जाना जाता है कि यह वाकपतिराज उस वाक्पतिराज से अन्य है; क्योंकि यदि चन्दन उसका पुत्र होता तो पुत्र को छोड़ कर मालवे का राज्य भाई के पुत्र भोज को कभी नहीं देता।

२ चन्दन (नं० १ का पुत्र)
३ देवराज (नं० २ का पुत्र)
४ अपराजित (नं० ३ का पुत्र)
५ विज्जल (नं० ४ का पुत्र)
६ धारावर्ष (नं० ५ का पुत्र)
७ वीसल (नं० ६ का पुत्र)

मारवाड़ में जालोर के सिवा अन्य प्रान्तों में भी परमारों का राज्य होना पाया जाता है, परन्तु बड़ा राज्य कोई नहीं था। मेड़ता * नगर से सात ७ कोस की दूरी पर नैर्ऋतकोण में एक रोल नाम गाँव है, उस गाँव के कुए पर पंबारों के शिलालेख मिले हैं, उनमें से एक वि० संवत् ११५२ का है; इसमें नीचे की ओर तो लेख है और ऊपर घोड़े पर सवार का खुदा हुआ चित्र है। यह चित्र अत्यन्त सुन्दर है, जो उस समय की शिल्पनिपुणता दिखा रहा है। अश्वारूढ़ वीर के पीठ में छत्र लिये एक मनुष्य खड़ा है, वह छत्र उस वीर के ठीक सिर पर शोभायमान है। घोड़े के पैर के नीचे सूअर है। सिर पर छत्र होने से पाया जाता है कि यह राजा है; क्योंकि उसी चित्र के समीप जो दूसरे पंबार और गुहिल के चित्र हैं उन पर छत्र नहीं है। सिर पर छत्र होने से यह भी जाना जाता है जिन पंबारों का वहाँ राज्य था वे छत्रधारी थे। यह शिलालेख पंबार इसी राव का है, जो पाल्हण का पुत्र था। वीकबपुर में मारा गया। इस शिलालेख के पासही इसी राव के पुत्र का जिसका नाम पत्थर टूट जाने से चला गया है वि० संवत् ११६३ का शिलालेख है; और उसके पासही इसी राव के पुत्र वाच्यपाल का वि० संवत् ११६६ का शिलालेख है। उसके पासही पंदार सहजा का वि० संवत् १२४५ का शिलालेख है। इससे पाया जाता है कि कम से कम सौ वर्ष के लग भग तो यहाँ पंबारों का राज्य अवश्य था; पीछे उनका राज्य कब चला गया इसका कुछ पता नहीं।

मारवाड़ में प्रमारों का नाम तो फिर भी शिलालेखों में मिलता है जो वि० संवत् ९४७ के आस पास के हैं; परन्तु उनसे प्रमारों का राज्य होना नहीं पाया जाता। जोधपुर से पश्चिम में सात कोस पर राजवा नाम गाँव है, वहाँ के कीर्तिस्तभ में प्रमार इतना मात्र लिखा मिलता है जिससे इतना सिद्ध होता है कि प्रमार मारवाड़ में वि० संवत् ९४७ के आस पास विद्यमान थे। उस समय इस प्रान्त में प्रतिहारों (पड़िहारों) का राज्य था और वे पूर्ण

---

* मेड़ता, जोधपुर से ३५ कोस पूर्व दिशा में है। इसका नाम प्राचीन शिलालेखों में मेडन्तक लिखा मिलता है। मेड़ते से दो कोस पांडुरवाँ नाम का ग्राम है; वहाँ एक अलाउद्दीन के समय का वि० सं० १३५८ का शिलालेख मिला है उसमें और उससे प्राचीन वि० संवत् ८९४ के प्रतीहार बाउक के जोधपुर के शिलालख में भी मेडन्तक लिखा है। "राजधानी स्थिरा यस्य महन्मेडन्तकं पुरम्" मेड़ता नगर में जो शिलालेख मिले हैं उनमें से भी किसी किसी में मेडन्तक लिखा मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतापशाली थे। उनका राज्य क़नौज से लेकर जोधपुर से पश्चिम में कितनी ही दूर तक चला गया था।

आबू और किराडू के परमारों का वंशवृक्ष।

१ सिन्धुराज
|
२ उत्पलराज (ऊत्पल)
|
३ आरण्यराज
|
४ कृष्णराज (कान्हड़देव)
|
५ धरणीवराह
| वि० सं० १०३१
६ महिपाल (देवराज)
| वि०सं० १०५९
७ धन्धुक
| १०८८
८ पूर्णपाल
१०९९–११०२
९ कृष्णराज (नं० ८ का छोटा भाई)
| १११७–११२३

१० ध्रुवभट	सोछराज
	|
११	उदयराज
	|
१२	सोमेश्वर वि० सं० ११२८–१२१९
१३	
१४ रामदेव	
१५ विक्रमसिंह	
१६ यशोधवल (नं० १४ का पुत्र)	
| १२९२	
१७ धारावष	
| १२२०–१२७४	
१८ सोमसिंहदेव	
| १२८७	
१९ कृष्णराज (कान्हड़देव)	
|	
२० प्रतापसिंह	
१३४४	

किराडू

*मृत्यु।

(१)

जो विश्व के बन्धन तोड़ सारे
देती महा मुक्ति बिना विचारे।
मिली जिसे अद्भुत ईश-शक्ति
प्रणाम है मृत्यु! तुझे सभक्ति!

(२)

हे मृत्यु तेरी महिमा निहार
होते सभी कम्पित बार बार।
न गेह ऐसा जग में कहीं है
प्रभाव तेरा जिसमें नहीं है!

(३)

उपाय से हो सकता सभी है
जीती न तू जा सकती कभी है।
समक्ष तेरे सब लोग हारे
हैं व्यर्थ होते बस यत्न सारे!

(४)

हो देर चाहे विधि को बनाते
न देर होती तुझको मिटाते।
उपेक्ष्य है सक्षमता न तेरी
बिगाड़ने में लगती न देरी!

(५)

सहस्र विद्युद्द्युति से विशेष
है देवि! तेरा दृगसह्य† वेश।
सर्वान्तकारी बल है त्वदीय
संसार लीलास्थल है त्वदीय॥

(६)

अनादि से ही कर क्रूर दृष्टि
तू खा रही है यह सर्व सृष्टि।
भरी नहीं दीर्घ-दरी अँधेरी
कैसी क्षुधा है यह हाय! तेरी?

---

* 'मृत्यु' शब्द हिन्दी में प्रायः स्त्रीलिङ्ग ही लिखा जाता है, अतएव हमने भी वैसाही लिखा है। लेखक।

† नेत्रों को असह्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७)

पैदा हुई नूतन सृष्टि ज्यों ही
तू हो गई साथ तुरन्त त्यों ही।
मिला जहाँ ऐञ्चक भी उपाय
किया उसे शीघ्र मुखस्थ हाय!

(८)

है कृत्य तेरा अति ही कराल
तू देखती वृद्ध युवा न बाल।
सर्वत्र तेरा बस भाव एक
नहीं ज़रा भी तुझको विवेक॥

(९)

किये बिना बान्धव दीन लाखों
किये पिता पुत्र-विहीन लाखों।
छोड़ा किसी का जग में न जोड़ा
सम्बन्ध तू ने किसका न तोड़ा!

(१०)

न देखने में वह व्यक्ति आया
तू ने जिसे हो न कभी रुलाया।
तुझे कभी भी करुणा न आती
देखी न ऐसी दृढ़ और छाती!

(११)

तेरा जहाँ व्यक्त हुआ प्रभाव
होते सभी हैं विपरीत भाव।
आनन्ददायी जितने पदार्थ
मानो खड़े वे सब भक्षणार्थ।

(१२)

प्रसून-शय्या पर भी विशेष
न बन्द होते जिनके निमेष।
अहो! उन्हें भी जब तू बुलाती
कृशानु-शय्या पर है सुलाती!

(१३)

शङ्का नहीं है जिनको किसी की
होती कहीं श्री जिनकी न फीकी।
तेरा उन्हें भी जब ध्यान आता
कड़ा कलेजा तक काँप जाता!

(१४)

क्या राव क्या रङ्क सभी मरेंगे
न कोष तेरे फिर भी भरेंगे।
तेरे पदों में सब सृष्टि सोई
जीता रहेगा जग में न कोई!

(१५)

स्वच्छन्दतापूर्वक, शोच-हीन,
जो थे अभी उत्सव में विलीन।
श्मशान में वे अब सो रहे हैं
सम्पूर्ण कौटुम्बिक रो रहे हैं!

(१६)

रहे न जो हा! विधि की सुदृष्टि
उत्पन्न हो जो न नवीन सृष्टि।
तो विश्व को तू करके श्मशान
भूखों मरे सत्वर ही निदान!

(१७)

पाताल, पृथ्वी, शशि, सूर्य्य, तारे,
ये विश्व के और पदार्थ सारे।
हो काल से प्रेरित दृष्टि फेरे
हैं जा रहे नित्य समीप तेरे!

(१८)

रक्षा सदा ही जिसकी सचेष्ट
मनुष्य सारे करते यथेष्ट।
हो अन्त में नष्ट वही शरीर
आकाश-भू-वह्नि-समीर-नीर॥

(१९)

होता मही में जिसका विकास
अवश्य होगा उसका विनाश।
है एक ऐसी बस कीर्ति प्यारी
जो मृत्यु से जा सकती न मारी॥

(२०)

हे विश्व! निद्रा-भ्रम-भाव त्याग
तू मोह-शय्या तज जाग जाग।
हो मृत्यु तेरे शिर पै सवार
है नाट्यलीला करती निहार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीन की दीवार।

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२१)

बलाभिमानी, धरणी-धनेश,
कहो कहाँ हैं अब वे जनेश ?
चले गये हैं सब आप आप
हुआ न दो ही दिन का प्रताप !

(२२)

हे मृत्यु ! तेरा अति ही विचित्र
विलोक के सम्मुख ही चरित्र ।
सचेत होते जन जो न हन्त !
वे कष्ट पाते फिर हैं अनन्त ॥

(२३)

लेती कभी भी न विराम तू है
शरीरियों का परिणाम तू है ।
सर्वत्र है विश्रुत नाम तेरा
है सर्वथा निष्ठुर काम तेरा ॥

(२४)

संसार का तू करती विनाश
क्या नाश तेरा न कभी प्रकाश ?
परन्तु हो तू न विनष्ट हाय !
है दुःखियों का फिर क्या उपाय !

(२५)

आधार कोई जिनको नहीं है
हा ! दुःख ही दुःख सभी कहीं है
तू ही उन्हें आकर गोद लेती
हे मृत्यु ! तू ही चिरशान्ति देती !

(२६)

कहें कहाँ लों तव शक्ति भारी
है प्रार्थना मृत्यु ! यही हमारी—
हैं जो हमारे प्रिय बन्धु लोग
होने न देना उनका वियोग ॥

मैथिलीशरण गुप्त ।

साबुन ।

आजकल हमारे भारतवर्ष में साबुन बड़े विस्तार से प्रचलित है। पहले यहाँ के लोग इससे ऐसी घृणा करते थे कि केवल इसके छूने से ही छूत लग जाया करती थी। परन्तु अब तो इससे ऐसी प्रीति हो गई है कि बिना साबुन के लोग स्नान ही नहीं करते; छूने की कौन कहे। यह वस्तु यहाँ तो अभी थोड़े ही दिनों से आई है परन्तु योरप में सैकड़ों वर्षों से चल रही है। प्राचीन काल में जब साबुन का नाम व निशान भी न था योरप के लोग अपने कपड़ों और बदन के धोने और साफ़ करने में कुछ वृक्षों के रस और एक तरह की मिट्टी जिसको अँगरेज़ी में फुलर्स अर्थ (Fuller's earth) कहते हैं इस्तेमाल किया करते थे जैसा कि अभी तक हमारे भारतवर्ष में होता है । फुलर्स अर्थ और वृक्षों के रसादि की जगह में मुलतानी मिट्टी, रेह, सज्जी, रीठा इत्यादि काम में लाते हैं।

योरप में सबसे पहले साबुन किसने और कहाँ बनाया इसका कुछ वृत्तान्त प्लीनी (Pliny) साहब ने अपने प्राचीन इतिहास में लिखा है। सबसे पहले गाल लोगों ने (Gauls) बकरे की चर्बी और एक क़िस्म के वृक्ष (Beech tree) की राख, इन दोनों को मिलाकर साबुन तैयार किया था। यह राख एक तरह का क्षार है । भारतवर्ष की पुरानी चरक, सुश्रुतादि पुस्तकों में क्षार का बड़ा विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। प्रायः २५ व ३० तरह के वृक्षों की राख से क्षार बनाना, उनकी क़िस्में और उनके गुण बड़ी बड़ी औषधियों के निमित्त लिखा है। चक्रपाणि ने तो कड़वे तेल और एक क्षार से साबुन भी बनाया था जो कि बाल सफ़ा करने के लिए इस्तेमाल होता था।

५० वर्ष ईसा के पहले (50 B.C.) जब रोमन लोगों ने गालों के ऊपर चढ़ाई कर उनको अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधीन किया तब वहाँ से इस विद्या को सीख इटली में लाये। इसकी प्राचीनता यों मालूम होती है कि पम्पिआई नगर ७९ इसवी में भूडोल और ज्वालामुखी पहाड़ के कारण उलट पलट और राख इत्यादि से जो ज्वालामुखी से निकलती हैं दब गया था। सन् १७४८ ईसवी में जब यह नगर खोदा गया तब वहाँ बहुत सी चीज़ों के अलावा एक साबुन बनानेवाले की दूकान भी निकली जो कि अभी तक क़ायम रक्खी गई है और यात्रियों को दिखलाई जाती है।

फ़्राँस में पहला कारख़ाना मारसिलीज़ शहर में खुला था। यह नगर समुद्र के तट पर बसा हुआ है और यहाँ जयतून के दरख़्त बहुत होते थे। इसलिए यहाँ साबुन जयतून के तेल और समुद्री पौदों की राख से बनता था। इस क्षार को बरीला या क्रड सोडा (Barilla or Crude Soda) कहते हैं। इँगलैंड में कब साबुन के कारख़ाने खुले ठीक मालूम नहीं परन्तु ऐसा विचार किया जाता है कि यहाँ चौदहवीं सदी में फ़्राँस और जर्मनी के तरीक़े से साबुन बनाना आरम्भ किया गया था।

बहुत काल तक इन्हीं दो चीज़ों से जो फ़्रांस में इस्तेमाल होती थीं साबुन बनता रहा। परन्तु जब साबुन का व्यवहार बढ़ा और ये चीज़ें काफ़ी मिक़दार में न मिलीं तब लोगों ने और वस्तुओं पर ध्यान देना आरम्भ किया और तजरिबा करने से जयतून के तेल की जगह में नारियल, खजूर और बहुत तरह के तेल इस्तेमाल करने लगे। परन्तु बरिला के स्थान में और कोई दूसरी वस्तु न मिली। अठारहवीं सदी के आरम्भ में लिबलांक (Leblanc) साहब ने बड़े पुरुषार्थ से नमक से एक बहुत अच्छा क्षार अथवा सोडा बनाया जिससे सारी पृथ्वी चकित हो गई और बरिला की जगह में इसका इस्तेमाल होने लगा।

इसके पश्चात् शिवरूल साहब (Chevreul) ने साबुन से ग्लिसरीन (Glycerine) अलग करने का एक तरीक़ा निकाला। यह ग्लिसरीन एक बड़े काम की चीज़ है जिसको अभी तक साबुन बनानेवाले पानी के साथ बहा दिया करते थे लेकिन अब उससे बहुत लाभ उठाते हैं। जैसे जैसे समय व्यतीत होता गया वैसेही साबुन के बनाने में बड़ी बड़ी उन्नति होती गई और अब तो हज़ारों क़िस्म के तेल रंग, सुगन्ध इत्यादि इस्तेमाल होने लगे ताकि साबुन सस्ता, सुन्दर और सुगन्धित बने।

हरनारायण।

धन और उसका उपयोग।

संसार में प्रायः सभी मनुष्यों का अधिकतर समय धन के उपार्जन और उसके चिन्तन में जाता है। जितना काम मनुष्य अपने जीवन में करता है, यदि हिसाब लगाकर देखा जाय तो यही पता लगेगा कि उसका अधिकांश किसी न किसी रूप में धन के उपार्जन से सम्बन्ध रखता है। बहुत से मनुष्य अपना कुछ समय परोपकार के कामों में लगाते हैं, बहुत से कुछ समय पूजा-पाठ, पठन, पाठन और अन्य प्रकार के मानसिक आनन्द की प्राप्ति में लगाते हैं, और बहुतेरे कुछ समय खेल-कूद और इन्द्रियों के सुख में व्यतीत करते हैं। परन्तु जितना समय अन्य कामों में व्यय किया जाता है, वह उस समय से बहुत थोड़ा होता है जो लक्ष्मी देवी की सुश्रूषा में लगता है। हमारे कहने का यह प्रयोजन नहीं कि धनोपार्जन के कार्यों और आनन्द देनेवाले कार्यों में कोई स्वाभाविक भेद है अथवा यह कि धनोपार्जन के कार्य आनन्द देनेवाले नहीं होते वा आनन्ददायी कार्य धनोपार्जन के मार्ग नहीं होते। भिन्न भिन्न मनुष्यों के लिए भिन्न भिन्न कार्य आनन्ददायक और धनोपार्जक होते हैं। जो कार्य एक मनुष्य केवल उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्द के कारण करता है उसी को दूसरा केवल धन के उपार्जन के लिए करता है और सम्भव है कि तीसरा उसी काम को धन और आनन्द दोनों के लिए करता हो। इस बात की माप कि किसी कार्य में किसी विशेष मनुष्य का कितना धनोपार्जन की इच्छा का अंश और कितना आनन्द की इच्छा का अंश है कठिन है। जैसे गाने, बजाने का कार्य इस प्रकार का है कि इसको बहुत लोग धन के लोभ से करते हैं और बहुत लोग उसके आनन्द के लिए धन व्यय करते हैं। पहले प्रकार के लोगों के लिए वह धनोपार्जन का कार्य है (यद्यपि उसमें आनन्द वे भी अवश्य पाते हैं) और दूसरे प्रकार के लोगों के लिए वह केवल आनन्द का कार्य है, उनके लिए धनोपार्जन के कार्य कुछ और ही हैं। इस भेद का ध्यान रख यदि विचार किया जाय तो अवश्य संसार के अधिकांश मनुष्यों का अधिक समय धन की खोज में लगता दिखलाई पड़ेगा।

अब विचार यह उठता है कि "धन है क्या वस्तु ?" किसी साधारण मनुष्य से पूँछिए तो वह यही उत्तर देगा कि "धन के अर्थ हैं रुपया, पैसा, मोहर, सोना, चाँदी, हीरा, मोती इत्यादि।" फिर उससे पूँछा जाय कि क्यों जी ! इन्हीं पदार्थों को धन क्यों कहते हो ? क्या तुम्हारे घर की और वस्तुएँ धन नहीं हैं ? तो कदाचित् वह यह कहेगा कि "हाँ ! एक प्रकार से वे भी धन हैं परन्तु विशेष कर धन इन्हीं पदार्थों को कहते हैं। क्योंकि साधारण रीति से इनके ही द्वारा हम अन्य वस्तुओं को ले सकते हैं।" यद्यपि सम्पत्ति-शास्त्र के अनुसार युक्तिपूर्वक धन की परिभाषा वह मनुष्य न दे सके तथापि वह यह जानता है कि धन उसी को कहते हैं जिसको देकर उसके बदले कोई पदार्थ मिल सके। वास्तव में धन वा सम्पत्ति के अर्थ बहुत बड़े हैं और इन शब्दों से उन समग्र पदार्थों का बोध होता है जिनसे मनुष्य की इच्छाओं का साधन होता है और जिनके बदले में मनुष्य अन्य पदार्थों को दूसरों से पा सकता है अर्थात् "धन" से उन सब पदार्थों का बोध होता है जिनके द्वारा मनुष्य औरों की शक्ति को वा उनकी शक्ति के फल को अपने काम में ला सके। परन्तु साधारण बोल चाल में "धन" और 'धन' की माप के पदार्थ वा सिक्कों में भी नहीं किया जाता। मनुष्य धन की इच्छा केवल इस प्रयोजन से करता है कि वह ऐसा मंत्र है जिसको सिद्ध कर अपने पास रखने से मनुष्य औरों की शक्ति अपने इच्छा के अनुसार वश कर सकता है और जिस प्रकार मंत्र की सिद्धि यदि उससे काम न लिया जाय तो व्यर्थ है उसी प्रकार धन का उपार्जन करना व्यर्थ है यदि उसके द्वारा काम न लिया जाय। वास्तव में सोना या चाँदी में स्वयं मनुष्य की इच्छाओं के पूरा करने की सामर्थ्य नहीं है; वे केवल अन्य पदार्थों के समान पाञ्चभौतिक पदार्थ हैं और उन पदार्थों में से भी उस श्रेणी के नहीं हैं जो मनुष्य के लिए सबसे अधिक आवश्यक और लाभदायक हैं। किन्तु जिस प्रकार से मेसमेरिज़िम करनेवाला (अर्थात् अपने चैतन्य से दूसरे के चैतन्य पर प्रभाव डालनेवाला) एक अज्ञान बालक में अपनी शक्ति के द्वारा वह शक्ति उत्पन्न कर देता है जो स्वयं उस मनुष्य में नहीं है और ऐसी अद्भुत बातें कहला देता है जो वह स्वयं नहीं कह सकता, इसी प्रकार बहुत काल से मनुष्य मात्र की एकत्रित शक्ति ने मिल कर इन धातुओं में वह शक्ति प्रदान कर दी है जो वास्तव में उन धातुओं में नहीं है और मनुष्य उनसे वह काम करा लेता है जो वह साधारण दशा में स्वयं नहीं कर सकता। जिस प्रकार से मेसमेरिज़म के लिए कोई बालक वा पुरुष औरों की अपेक्षा विशेष उपयुक्त होते हैं उसी प्रकार सोना, चाँदी, हीरा, मोती इत्यादि पदार्थों में विशेष कारणों से मनुष्य ने यह शक्ति दे दी है कि वे जहाँ जाते हैं उन्हें सब कोई चाहता है और उनके बदले में सब प्रकार के पदार्थ मिल सकते हैं और व्यावहारिक काम हो सकते हैं अर्थात् उन धातुओं में कुछ गुण ऐसे हैं जिनके कारण मनुष्य को यह सुबिधा पड़ती है कि उन्हें अपने व्यवहार का द्वार बनालें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत प्राचीन काल में इन धातुओं में वह शक्ति नहीं थी जो अब है। भिन्न भिन्न समय और देशों में भिन्न भिन्न पदार्थों को मनुष्य ने धन की माप का संकेत बनाया है। ऐसा जान पड़ता है कि बहुत प्राचीन काल में बहुत से देशों में जब कदाचित् मनुष्य ने सभ्यता की पहली शिक्षा कृषिविद्या भी नहीं सीखी थी और पशुओं को मार मार कर अपना निर्वाह करता था, तब पशुओं का सूखा चमड़ा उनका बहुमूल्य धन होता था और वही काम करता था जो आज कल सोना चाँदी करते हैं अर्थात् उनके बदले में अन्य पदार्थ मिल सकते थे। कहा जाता है कि रूस में सम्राट् पीटर के समय तक अर्थात् अट्ठारहवीं शताब्दि के आदि तक चमड़े का सिक्का चलता था और यह भी कहा जाता है कि योरप के प्राचीन सभ्य देश ग्रीस और रूस में पहले पहल चमड़े ही का सिक्का चला था। भारतवर्ष में भी, कुछ अधिक दिन नहीं हुए, मुहम्मद तुग़लक़ ने यह भूल कर कि भारतवर्ष की सभ्यता बहुत प्राचीन है और वहाँ अब वह सिक्के नहीं चल सकते जो असभ्य देशों में चल सकते थे, ऐसे समय चमड़े का सिक्का चलाने का यत्न किया था जब ऐसा होना असम्भव था। दूर जाने की आवश्यकता नहीं, उन्नीसवीं शताब्दि ही में अमेरिका की असभ्य जातियों से व्यवहार करने में योरप के बनिये एक प्रकार के बहुमूल्य चमड़े का जिसको फ़र (Fur) कहते हैं प्रयोग करते थे।

भारतवर्ष में जहाँ प्रकृति की उदारता सदा से इस प्रकार की रही है कि मनुष्य को साधारण रीति से भोजन की सामग्री के लिए बहुत कष्ट नहीं उठाना पड़ता। ऐसा समय कदाचित् कभी नहीं था जब मनुष्य केवल आखेट के सहारे जीवन-निर्वाह करता रहा हो। इस कारण हमारे देश में प्राचीन काल में भी चमड़ों का इतना महत्त्व नहीं था जितना योरप के ठंडे देशों में; परन्तु हमारे यहाँ कृषि की आवश्यकता के कारण गाय और बैल बहुमूल्य पशु थे। 'गोधन' इस समय भी प्रचलित शब्द है। हमारी प्राचीन पुस्तकों से यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष में प्राचीन काल में 'गोवंश' से वह काम लिया जाता था जो आज कल सोना और चाँदी कर रहे हैं अर्थात् मनुष्य के सम्पत्ति की माप 'गोवंश' के संकेत से की जाती थी। अब भी भारतवर्ष के उन कोनों और कन्दराओं में जहाँ उस सभ्यता का असर नहीं है जिसमें हम और आप रह रहे हैं, और कुछ अंश तक हमारे सबही ग्रामों में मनुष्य के धन की गणना उसके 'ढोर' (गाय, भैंस इत्यादि) से की जाती है; और अन्य पदार्थों का मूल्य गाय और भैंस की तुलना से किया जाता है। योरप के देशों में भी उस समय के पश्चात् जब मनुष्य केवल आखेट से निर्वाह करता था, जब लोगों ने कृषि-कार्य सीखा तब वहाँ भी गाय, बैल, बकरी इत्यादि पशुगण ही "धन" समझे जाते थे। यूनानी कवि होमर के काव्य से स्पष्ट जान पड़ता है कि उनके समय में अन्य पदार्थों का मूल्य "गोवंश" की तुलना से किया जाता था जैसे वीरों के शस्त्रों के मूल्य ९ बैल २० बैल १०० बैल इस प्रकार से बतलाये गये हैं; एक दासी का मूल्य ४ बैल कहा गया है इत्यादि। पारसियों के पवित्र ग्रन्थ "ज़ेन्द अवेस्त" से भी इसी परिपाटी का प्रमाण मिलता है।

कहीं कहीं जहाँ दासों का व्यापार होता है और उनके साथ पशुओं का सा व्यवहार किया जाता है उनकी संख्या से अन्य पदार्थों के मूल्य की गणना की जाती है। इसी प्रकार वे पदार्थ भी जिन्हें मनुष्य ने शोभा की वस्तु समझा है सदा से धन का काम देते आये हैं। हमारे यहाँ 'कौड़ी' की गणना अब भी प्रचलित है। फ़ीजी टापू के रहनेवालों में ह्वेल के दाँतों से यही काम लिया जाता था। तेल, तमाखू, नमक, अन्न और इसी प्रकार से बहुत से पदार्थों ने भिन्न भिन्न देशों में और भिन्न भिन्न समय में वही काम किया है जो आजकल हम चाँदी, सोने से ले रहे हैं। ऐसा भी सन्देह होता है कि कभी कहीं कहीं लकड़ी के सिक्के चले हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राणा कुम्भा का कीर्तिस्तम्भ।

चित्तौर के राणा लक्ष्मणसिंह का महल।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"किन पदार्थों से कहाँ कहाँ रुपये, पैसे का काम लिया गया है" इस विषय का संक्षेप में अच्छा वृत्तान्त जेवन्स साहब ने अपनी "मनी" ("money") नामक पुस्तक में दिया है। यहाँ इस विषय पर अधिक लिखने का मेरा प्रयोजन नहीं। तात्पर्य केवल यह है कि जिन पदार्थों को हम 'धन' कहते हैं वे सदा से बदलते चले आये हैं। जो पदार्थ आज 'धन' है, संभव है वह कुछ दिन बाद साधारण बोलचाल के अर्थ में 'धन' न रह जाय अथवा उसका मूल्य बहुत घट जाय। धन वह शक्ति है जिससे मनुष्य अपनी इच्छाओं को पूरी करता है अथवा जिसके द्वारा वह उन पदार्थों को पा सकता है जिनसे उसकी इच्छायें पूरी हों। परन्तु मनुष्य केवल वर्त्तमान इच्छाओं ही की ओर ध्यान नहीं रखता। वह यह भी सोचता है कि कल हमारी इच्छायें किस प्रकार पूरी होंगी और वर्ष भर पीछे कैसे पूरी होंगी और आजन्म किस प्रकार पूरी होंगी। इसी हेतु वह यत्न करता है कि हमारा धन हमारे पास बना रहे और बढ़ता जावे और ऐसे धन को जो अधिक दिन नहीं ठहरता ऐसी सूरत में परिवर्त्तित करता है जो अधिक दिन ठहर सके। जैसे, किसी मनुष्य के पास यदि इतना गेहूँ है कि उतने दिनों तक जितने दिनों वह अच्छी दशा में रह सकता है उसकी आवश्यकताओं को पूरी करके भी बच जायगा, तो ऐसी दशा में उस मनुष्य के लिए यही बुद्धिमानी है कि अपनी आवश्यकताओं के पूरी करने के योग्य गेहूँ रखकर शेष दूसरे को देकर बदले में अपनी अन्य आवश्यकताओं के पदार्थ ले अथवा यदि अन्य आवश्यकतायें नहीं हैं तो ऐसे पदार्थ ले जो अधिक दिन ठहर सकते हों और जिनकी लोगों को अवश्य आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार से कार्य कर वह अपने पास एक ऐसी शक्ति मानो अलाउद्दीन के लम्प के भीतर बन्द कर रखता है जिसे आवश्यकता पड़ने पर वह काम में ला सकता है।

परन्तु अब यहाँ विचार यह होता है कि इस शक्ति का किस प्रकार उपयोग किया जाय कि जिसमें उससे अधिक से अधिक लाभ होना संभव हो। मैं अपना प्रयोजन एक उदाहरण से स्पष्ट करता हूँ। मान लो एक ऐसा मनुष्य है जिसके पास चार पैसे हैं और वह भूखों मर रहा है। इसके साथही उसको कई दिनों तक कुछ मिलने की आशा नहीं है। यदि वह कुछ नहीं व्यय करता तो सम्भव है कि मर जावे, यदि पेट भर खाता है तो अगले दिनों खाने का ठिकाना न रह जायगा; ऐसे अवसर पर उसको यह देखना पड़ेगा कि कितना कम से कम खाकर मैं जी सकता हूँ—उसको उतनाही व्यय करना होगा जिसमें वह जी सके; और इस प्रकार चार पैसों से वह उतने दिन जितने दिन कुछ मिलने की आशा नहीं है निर्वाह करने का यत्न करेगा, (यदि वह सब ही पहले व्यय कर डालता और पेट भर खा लेता तो कदाचित् वह उतने दिनों तक जितने दिन उसको कुछ नहीं मिलनेवाला था जीवित न रहता) अर्थात् वह मनुष्य चार पैसे से अधिक से अधिक लाभ उठाने की चेष्टा करेगा। इसी प्रकार यद्यपि पूर्ण रीति से नहीं तो भी थोड़ा बहुत विचार प्रत्येक मनुष्य को इस बात का रहता है कि वह अपने धन से अधिक से अधिक लाभ किस प्रकार उठावे और जितनाही अधिक विचार इस विषय पर मनुष्य करता है उतनाही अधिक वह अपने धन से सुख उठाता है। तो विचार इस समय यही है कि मनुष्य-मात्र किस प्रकार से अपने धन का उपयोग करे जिससे अधिक से अधिक सुख होने की संभावना हो। इस विचार में भी दो शाखायें उपस्थित होती हैं—एक तो प्रत्येक मनुष्य के लिए अपने अधिक से अधिक सुख की संभावना, और दूसरे मनुष्य-जाति के अधिक से अधिक सुख की सम्भावना। दूसरा विचार बहुत सूक्ष्म है। एक मनुष्य के कर्मों का असर दूसरों पर किस प्रकार से पड़ता है, एक मनुष्य के थोड़े सुख में दूसरे मनुष्यों का कितना असीम सुख नाश होता है। एक मनुष्य के थोड़े से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख छोड़ने से संसार में उस थोड़े सुख की अपेक्षा कितना गुना सुख उत्पन्न होता है यह बहुत ही रोचक और विचार-योग्य विषय है परन्तु इतना सूक्ष्म है कि उसको यहाँ पर नहीं उठावेंगे। यहाँ केवल इस बात की ओर ध्यान आकर्षित किया चाहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को अपनेही अधिक से अधिक सुख के लिए वा उनके सुख के लिए जिनका सुख वह चाहता है किस प्रकार धन का उपयोग करना उचित है।

सबसे पहली आवश्यकता मनुष्य को भोजन की है। आदि-काल से लेकर आज तक सबसे पहला उद्योग मनुष्य को इसी के लिए करना पड़ता है। क्या उस काल में जब मनुष्य केवल आखेट के सहारे रहता था, क्या उस समय जब वह केवल खेती, फल और पशुओं के दूध के ऊपर निर्भर रहता था, क्या आजकल जब वह इन कामों के साथही सहस्रों प्रकार के काम करता है, सबसे पहला ध्यान उसका अपने शरीर के पालन की ओर रहता है? यह इच्छा छोटे बच्चे से बूढ़े तक में प्रकृति की ही प्रविष्ट की हुई है और सृष्टि की स्थिति इसी के ऊपर निर्भर है। इसी से सबसे पहला सुख जो मनुष्य मात्र अनुभव करता है इसी आवश्यकता के पूरी करने में होता है और इस कारण धन का पहला उपयोग प्रत्येक मनुष्य के लिए इसी कार्य के निमित्त उचित है। परन्तु यहाँ इतना स्मरण रखना चाहिए कि धन की उपयोगिता उसी भोजन के लिए व्यय होने में है जिससे शरीर का पालन और उसकी पुष्टि हो, क्योंकि शारीरिक सुख इसी में है कि शरीर हृष्ट, पुष्ट रहे। वह भोजन जो प्रायः केवल जिह्वा के स्वाद के लिए अथवा इन्द्रियों के प्रबल करने के लिए किया जाता है वास्तव में सुखदायी नहीं है; उसमें क्षण-मात्र का सुख हो परन्तु उससे यदि शरीर वा बुद्धि को हानि पहुँची तो प्रत्यक्ष है कि वह सुखदायी नहीं हो सकता। इससे भोजन के निमित्त धन की अधिक से अधिक उपयोगिता उसी में है जिससे शरीर का पालन हो, शारीरिक और मानसिक शक्ति बढ़े। इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक मनुष्य का भोजन उसके कर्म के अनुसार भिन्न भिन्न होता है। आध्यात्मिक शक्तियों को जगानेवाले योगियों का भोजन वही नहीं हो सकता जो अपने देश की रक्षा करनेवाले और संग्राम में लड़नेवाले सिपाही का। परन्तु यह सिद्धान्त अवश्य प्रत्येक मनुष्य के संबन्ध में कहा जा सकता है कि उसके भोजन की अधिक से अधिक उपयोगिता उस प्रकार के खाद्य पदार्थों में है जो उसके उस कर्म में सहायक हों जो उसका उद्देश है।

दूसरी आवश्यकता मनुष्य को व्यवहार के अनुसार कपड़े पहनने की होती है। वस्त्र के सम्बन्ध में इस बात का कोई नियम नहीं बाँधा जा सकता कि किस मनुष्य को किस वस्त्र में धन लगाने से अधिक सुख मिलता है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी दशा के अनुसार वस्त्र पहनने पड़ते हैं परन्तु धन से अधिक से अधिक सुख लेने के लिए कहाँ तक वस्त्रों में लग सकता है इसकी सीमा अवश्य होती है; और सीमा मेरे विचार में यह है कि वस्त्रों से शरीर स्वस्थ रहे और उन्हें देखकर चित्त में प्रसन्नता हो, उनके कारण चित्त में कभी ग्लानि न उत्पन्न हो और उस मण्डली के लोग जिसमें वह मनुष्य रहता है पहिननेवाले के वस्त्र पर आक्षेप कर उसके चित्त को मलिन न करें। इसमें सन्देह नहीं कि इस सीमा के परे होकर भी मनुष्य धन के द्वारा सुख उठा सकता है। परन्तु वह धन का सबसे अच्छा उपयोग नहीं होगा क्योंकि वही धन उसी मनुष्य के और कामों में लग कर अधिक सुख उत्पन्न कर सकता है।

तीसरी आवश्यकता मनुष्य की यह है कि वह कोई ऐसी कारीगरी, हुनर अथवा अन्य व्यवसाय सीखे और करे जिससे भोजन और वस्त्र की आवश्यकतायें और वे अन्य स्वाभाविक इच्छायें, जिनका आगे वर्णन है, पूरी हो सकें अर्थात् जिसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा आवश्यकतानुसार धनोपार्जन हो। इसलिए यह प्रत्यक्ष है कि उस व्यवसाय के सीखने और उसकी सामग्री इकट्ठा करने में धन का लगना बहुतही उपयोगी और सुख का बढ़ानेवाला है।

पूर्वोक्त शारीरिक इच्छाओं में और इन इच्छाओं के पूरा करने के लिए धन पैदा करने के यत्न में धन लगाने के पीछे मानसिक इच्छाओं के पूरा करने की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य और पशु में यही समानता और अन्तर है कि कुछ दूर तक तो दोनों के कर्म एकही हैं अर्थात् सबसे पहले दोनों की शारीरिक इच्छाओं के पूरा करने की आवश्यकता रहती है। इन इच्छाओं के पूरा करने में ही पशुओं की तृप्ति और उनका सुख है; परन्तु मनुष्य की (अर्थात् साधारण मनुष्य की और उनकी नहीं जिनमें और पशुओं में केवल सूरतही का भेद है) तृप्ति शारीरिक इच्छाओं को पूरा करके नहीं होती। मनुष्य प्रकृति की अद्भुत कारीगरी को देखता है और स्वभाव से उसके चित्त में प्रश्न उठते हैं "यह क्या है?" यह किस प्रकार होता है। ज्ञान की जिज्ञासा मनुष्य-मात्र का लक्षण है और इस जिज्ञासा के पूरी करने में जो आनन्द होता है वह शारीरिक सुख की अपेक्षा अधिक तीव्र और स्थायी होता है। इसलिए इस जिज्ञासा को पुस्तकों अथवा गुरु-शिक्षा अथवा अपनी विचार-शक्ति द्वारा पूरी करना मनुष्य का चौथा कर्म है और उसमें धन लगाना धन की चौथी उपयोगिता है।

शरीर का अच्छा स्वास्थ्य रखने के लिए भोजन और कपड़े के अतिरिक्त उसके प्रत्येक अंगों को काम में लाने की व्यायाम की आवश्यकता पड़ती है और इस कारण से कि शरीर और मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है और जब तक किसी व्यायाम से मन प्रसन्न न हो तब तक उसका शरीर के ऊपर भी अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता, ऐसे शारीरिक आमोद, प्रमोद में धन लगाना पड़ता है जिनसे शरीर को लाभ हो और मन को भी प्रसन्नता हो। जिस प्रकार से केवल भोजन और कपड़े से शारीरिक आवश्यकता समाप्त नहीं होती वरंच और आनन्द देनेवाले खेलों की खोज होती है इसी प्रकार ज्ञान प्राप्त करने के अतिरिक्त भी मानसिक खेलों की आवश्यकता पड़ती है अर्थात् जिनमें कुछ बुद्धि का काम हो परन्तु बुद्धि को अधिक कष्ट करने की आवश्यकता न पड़े। कभी कभी शारीरिक और मानसिक दोनों ही स्वास्थ्यों के लिए एकही कर्म उपयोगी होता है। जैसे, पहाड़ पर अथवा नदी किनारे पर्यटन करना; इसमें शरीर को लाभ होता है परन्तु उसके साथही मन में भी अनेक कल्पनायें उठती हैं और उनमें मग्न होकर मन को आनन्द मिलता है और कठिन मानसिक परिश्रम से जो मानसिक थकावट होती है वह दूर होती है। परन्तु बहुत से ऐसे मानसिक आनन्द की वस्तुयें होती हैं जिनका विशेष सम्बन्ध मन और बुद्धि से है जैसे संगीत, कविता, चित्रकारी इत्यादि। इन मानसिक स्वास्थ्य के पदार्थों में जो सुख मिलता है वह शारीरिक स्वास्थ्य के द्वारा जो सुख मिलता है उससे कहीं अधिक बढ़कर और स्थायी होता है; उसी प्रकार जैसे मानसिक भोजन अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने में (जिसको हमने चौथी आवश्यकता बतलाया है) जो आनन्द मिलता है वह उस आनन्द से बढ़कर और स्थायी होता है जो शरीर की रक्षा के निमित्त भोजन करने में होता है। मेरे पूर्वोक्त वाक्यों से यह कोई न समझे कि मेरा यह अर्थ है कि संगीत, कविता, चित्रकारी अथवा अन्य मानसिक आमोद-प्रमोद के कामों से ज्ञान नहीं प्राप्त होता और वह मानसिक भोजन का काम नहीं करते, केवल मानसिक खेल का काम करते हैं। मेरी दृष्टि केवल आन्तरिक भाव के भेद पर है, किसी विशेष काम के परिणाम पर नहीं। सम्भव है कि जो काम कुछ मनुष्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए करते हों वेही काम दूसरे केवल आनन्द के लिए करते हों और अपनी समझ में ज्ञान के लिए वे अन्य काम करते हों। जिसको कुछ मनुष्य अपना मानसिक भोजन (अथवा चौथी आवश्यकता पूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने का मार्ग) समझते हों, उसे दूसरे केवल मानसिक खेल (अर्थात् अपनी पाँचवीं आवश्यकता पूरी करने का रोग) समझते हों। इसी प्रकार जो कार्य कुछ लोग केवल खेल और स्वास्थ्य के लिए करते हैं वही कार्य अन्य जन अपनी जीविका (अर्थात् तीसरी आवश्यकता) के लिए करते हैं। मेरा प्रयोजन केवल उस भाव से है जिससे कोई मनुष्य किसी विशेष कर्म को करता है। सारांश यह कि शारीरिक और मानसिक आनन्द-प्रमोद मनुष्य की पाँचवीं आवश्यकता है और इसमें धन लगाना उपयोगी है।

उपर्युक्त धन के उपयोगों में सब ऐसे हैं जिनमें धन नष्ट (बुरे अर्थ में नहीं किन्तु केवल काम में आकर न रह जाने के अर्थ में) होता है और जैसा हम ऊपर दिखा आये हैं धन इसी लिए है और उसका सुख इसी में है कि वह 'नष्ट' यानी ख़र्च या व्यय किया जाय परन्तु धन ख़र्च होने के लिए धन की स्थिति चाहिए—अर्थात् धन का उपार्जन चाहिए। इसी कारण धन के उपार्जन में धन लगाने को हमने धन का तीसरा उपयोग बतलाया है। यदि मनुष्य अपनी इच्छानुसार अपना स्वास्थ्य और अपनी स्थिति रख सकता तो पूर्वोक्त तीसरी उपयोगिता में एक बार धन लगा कर कदाचित् यह निश्चिन्त हो जाता और आवश्यकता के अनुसार धन पैदा कर अपने काम किया करता परन्तु वास्तव में मनुष्य के स्वास्थ्य अथवा उसकी आयु के सम्बन्ध में स्थिरता नहीं है। आज मनुष्य का स्वास्थ्य अच्छा है और वह शक्तिवान् है तो धन उपार्जन के लिए परिश्रम कर सकता है। कल रोगग्रस्त है, बुढ़ापा आ गया, कठिन परिश्रम की शक्ति नहीं रह गई, परन्तु आवश्यकतायें वैसी ही हैं। अपने लिए और कुटुम्ब के लिए धन अवश्य ही चाहिए। इस कारण जिस समय मनुष्य परिश्रम कर धनोपार्जन कर सकता है उसके धन का छठवाँ उपयोग धन का इकट्ठा करना है। ऊपर कहे हुए पाँचों उपयोगों का सम्बन्ध न केवल अपने डील से है वरन् उनसे भी है जिनके सुख से मनुष्य सुखी होता है और जिनका पालन वह अपना धर्म समझता है। एक एक उपयोगिता वैसे वैसे सामने आती हैं जैसे जैसे पहली आवश्यकतायें न केवल अपनी वरन् अपने उन कुटुम्बियों की जिनको वह दुःखी नहीं देख सकता पूरी होती जाती हैं। जैसे, कपड़े की चिन्ता तब होती है जब न केवल आप—किन्तु अपने प्रिय कुटुम्बी भोजन पा जायँ। यदि बालक भूखा है तो अपने कपड़े की चिन्ता नहीं होगी किन्तु उसके क्षुधा दूर करने की। इसी प्रकार यदि बालक मूर्ख है तो पहले चिन्ता उसकी विद्या की होगी, बल्कि अपने आनन्द-प्रमोद की नहीं। इसलिए धन की छठवीं उपयोगिता न केवल अपने लिए है किन्तु उनके लिए भी है जिनका सुख मनुष्य को अभीष्ट है। जैसे किसी के पाँच पाँच वर्ष के बालक हैं और सिवा उसके उनका कोई रक्षक नहीं हैं। ऐसी अवस्था में उसे यह चिन्ता होगी कि कुछ धन इकट्ठा करता जाय जिसमें यदि वह शीघ्र मर जावे तो उन बालकों की साधारण आवश्यकताओं के लिए धन रहे। तात्पर्य यह कि अपनी आगामी आवश्यकताओं के लिए और उनकी आगामी आवश्यकताओं के लिए जिनका सुख मनुष्य को अभीष्ट है उसके लिए धन का छठवाँ उपयोग धन का इकट्ठा करना है अथवा इस प्रकार से लगाना है कि किसी विशेष समय पर अथवा आवश्यकता पड़ने पर धन मिल सके। इसी निमित्त लोग अपने जीवन का बीमा (Insurance) कराते हैं कि ऐसे समय धन मिले जब अधिक परिश्रम के योग्य न रह जायँ अथवा वे स्वयं संसार में न रह जायँ और उनके कुटुम्बियों को धन की आवश्यकता पड़े। सारांश यह कि धन का ऐसा उपयोग कि जिसमें आवश्यकता पड़ने पर उसकी अनुपस्थिति से दुःख न हो सुख का बढ़ानेवाला है और कुछ अंश तक आवश्यक है; परन्तु जिस प्रकार से अन्य आवश्यकताओं में धन की उपयोगिता की प्रत्येक पुरुष के लिए अवस्था-भेदानुसार सीमा है उसी प्रकार धन इकट्ठा करने में अथवा इस नीयत से उसको कहीं लगाने में जिसमें आवश्यकता के समय वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिल जाय धन की उपयोगिता की सीमा है) अर्थात् एक सीमा के परे धन का इकट्ठा करना उसका अच्छा उपयोग नहीं है क्योंकि वह तब अधिक से अधिक सुख का बढ़ानेवाला नहीं रह जाता। यह विचार कुछ लोगों को नया और विचित्र सा जान पड़ेगा क्योंकि साधारण लोक-क्रिया के विरुद्ध है। अन्य सब कामों में धन लगाने की सीमा है यह तो सबही मान लेंगे परन्तु धन इकट्ठा करने में सीमा! लक्ष्मीदेवी के प्रसन्न रखने में सीमा! यह बात तो रुपये के ढेर के दर्शन और पूजन करनेवालों को नास्तिकता सी जान पड़ेगी। यह तो सदा से सुनते आये हैं कि भोजन आवश्यकता से अधिक अथवा विपरीत करने में रोग उत्पन्न कर देता है। यह भी देख सकते हैं कि आवश्यकता से अधिक कपड़े लादने से कष्ट होता है। यह भी समझ में आता है कि यदि एक काम में उसकी सीमा से अधिक इतना धन लगा दिया जाय कि दूसरी आवश्यकताओं के पूरी होने में त्रुटि हो, तो दुःख (अर्थात् कुछ अंश में सुख का अभाव) होता है; परन्तु धन अधिक होने के कारण दुःख! यह बात तो गले के नीचे नहीं उतरती। परन्तु मैं इस बात को अपने छोटे विचार के अनुसार दृढ़ होकर कहता हूँ कि धन के इकट्ठा करने में धन की उपयोगिता का वही नियम है जो और कामों में धन लगाने में; अर्थात् प्रत्येक मनुष्य के लिए एक सीमा होती है जिसके बाद धन इकट्ठा करने से उसका अच्छे से अच्छा अर्थात् अपने सुख का अधिक से अधिक बढ़ानेवाला उपयोग नहीं होता। मान लो, किसी मनुष्य का अपनी और कुटुम्बियों की आवश्यकताओं के पूरी करने में साधारण व्यय उस व्यय को छोड़ कर जो वह अपने व्यवसाय के निमित्त करता है १००) मासिक वा १२००) रुपया वार्षिक है। अब यदि रुपये सैकड़े के लाभ के साथ साधारण रीति से बिना भय के उसका रुपया लग सकता है तो ३०,०००) में उसको १००) रुपया मासिक वा १२००) रुपये वार्षिक की प्राप्ति हो सकती है। मेरे विचार में उस मनुष्य के लिए उपयोग रीति से धन इकट्ठा करने की (जिसमें बीमा भी आ गया) यही सीमा है। इसकी अधिक सम्भावना है कि इस सीमा के पहुँचने के पहले ही उस मनुष्य के लिए धन इकट्ठा करने में, धन का अच्छा उपयोग न रह जाय। परन्तु अधिक से अधिक यही सीमा उसके इकट्ठा करने की होनी चाहिए। इस सीमा तक पहुँच कर उसको यह चिन्ता होही नहीं सकती कि जब शक्ति घट जायगी तब मैं कहाँ काम करूँगा और इस सीमा के परे धन इकट्ठा करना आवश्यकताओं के लिए नहीं रह जाता किन्तु केवल इकट्ठा करने की प्रीति से।

तो अब देखना है कि इस सीमा तक धन इकट्ठा कर मनुष्य किस प्रकार से अपनी आवश्यकताओं से बचनेवाले धन को लगावे जिसमें उसको सबसे अधिक सुख हो, जब कोई मनुष्य धन इकट्ठा करने की इस अवस्था तक पहुँच जाता है तब प्रायः यह देखा जायगा कि वह आगे अपने पास बचनेवाले धन के कुछ अंश को उपर्युक्त आवश्यकताओं में से ऐसों में लगावेगा जो बिना हानिकारक हुए और सुख पहुँचाते हुए बढ़ाई जा सकती हैं, जैसे विद्या के उपार्जन में, परन्तु बचनेवाले धन का बहुत थोड़ा अंश प्रायः इस प्रकार लग सकेगा। शेष की उपयोगिता इसी में होगी कि वह अन्य मनुष्य की आवश्यकताओं के पूरी करने में लगाया जाय। इस प्रकार धन लगाने में एक ऐसा अकथनीय आनन्द होता है जिसका स्वादु साधारण रीति से प्रायः सबही मनुष्य जानते हैं किन्तु अच्छे प्रकार से कुछ सहृदय पुरुष ही उसका सुख उठा सकते हैं। वास्तव में मनुष्य की सातवीं आवश्यकता यह है कि वह अन्य लोगों के सुख के लिए यत्न करे और धन की भी बहुत बड़ी उपयोगिता प्रत्येक मनुष्य के लिए इसी में है कि वह एक सीमा के परे, 'दूसरों' के लाभ और सुख के लिए अपना धन लगावे और इस प्रकार से स्वयं धन के द्वारा सुख प्राप्त करे। "दूसरों" शब्द की कुछ विवेचना की आवश्यकता है। यों तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा कोई पुरुष संसार में न होगा जो अपने से अन्य किसी प्राणी के लिए धन न व्यय करता हो। अपने बाल-बच्चों और परिवार की आवश्यकतायें प्रायः अपनी डील की आवश्यकताओं के अनुसार ही होती हैं परन्तु इस प्रकार से अन्य प्राणी की आवश्यकताओं को अपनी आवश्यकता बनाने की शक्ति सब मनुष्यों की एकसी नहीं होती। यह शक्ति भिन्न भिन्न मनुष्यों में भिन्न भिन्न रीति से रहती है और उसी के अनुसार "अपनी" और "दूसरों" की आवश्यकताओं की सीमा बँधती है, परन्तु यह अवश्य है कि कहीं न कहीं "अपने" की सीमा आ जाती है और दूसरापन या द्वैत भाव आरम्भ हो जाता है। तो मेरे कहने का प्रयोजन है कि मनुष्य की "सातवीं" आवश्यकता, यह है कि वह उन प्राणियों की आवश्यकताओं में धन लगावे जो "दूसरों" की सीमा में हैं। ऐसा न करने से धन का सबसे अच्छा उपयोग नहीं रह जाता।

यहाँ पर मैंने जो कुछ लिखा है वह केवल स्वार्थ अर्थात् अपने सुख के भाव से है—धर्म और पुण्य के विचार से उसका सम्बन्ध नहीं। और न महान् पुरुषों की शैली का मैंने व्याख्यान ही किया है क्योंकि ऐसे पुरुषों के हृदय में "अपने" सुख का हिसाब नहीं लगता। वह धन को अधिक से अधिक उपयोगी देश वा संसार के सुख के भाव से देखा जाता है। और मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि उस विषय पर मुझे यहाँ लिखना नहीं है। महान् पुरुषों के हृदय दूसरों के दुःख को देखही नहीं सकते। यदि उनके पास दूसरों के दुःख को दूर करने की कोई शक्ति है तो वे 'अपना' आगा पीछा नहीं देखते, वे 'अपनी' आवश्यकताओं को न्यारा नहीं फैलाते। उनको आनन्द इसी में आता है कि वे दूसरों को सहायता कर सकें और औरों को सुखी देखने ही में उनका सुख है। साधारण लोग भी थोड़ी बहुत इस सुख का कभी कभी अनुभव करते हैं। परन्तु मेरे लिखने का यहाँ पर केवल प्रयोजन यह दिखलाने का है कि एक सीमा के बाद धन "अपने" हेतु इकट्ठा करना मूर्खता है। प्रायः लोग यह कहते हैं कि मैं अपने लिए नहीं, अपने आगामी परिवार के लिए, धन इकट्ठा करता हूँ। इसकी भी, जैसा ऊपर मैं दिखा चुका हूँ, सीमा है अर्थात् किसी मनुष्य को अपने परिवार के लिए उससे अधिक धन नहीं छोड़ना चाहिए जिससे "लाभ" अथवा ब्याज से वे साधारण रीति से अपनी आवश्यकताओं को पूरी कर सकें। इस बड़े नियम के पालन न करने से ही संसार की बहुत बुराइयाँ जड़ पकड़ रही हैं। अनेक लड़कों के लिए इस सीमा के बाहर धन छोड़ना मेरे विचार में उनके साथ शत्रुता करना है। सबसे बड़ा धर्म माता-पिता का बच्चों के साथ यह है कि उनकी आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक शक्तियों के प्रस्तार में सहायक हों और शक्तियाँ जभी बढ़ती हैं जब उनको काम में लाने का अवसर हो। यदि माता-पिता ने बच्चों के पास असीम धन छोड़ दिया तो उसका परिणाम प्रायः यही होता है कि बच्चों को कार्यस्थल में संग्राम करने की उत्तेजना नहीं रह जाती और वे आलसी और मूर्ख हो जन्म बिताते हैं और सब प्रकार की बुराइयों में लग जाते हैं।

यह लेख जितना मैंने लिखने का विचार किया था उससे बढ़ गया। मैं अधिक नहीं लिखा चाहता। सारांश केवल यह है कि मुझे यह सिद्ध जान पड़ता है कि जिस प्रकार से अन्य आवश्यकताओं में धन लगाने की सीमा है उसी प्रकार से धन इकट्ठा करने की भी सीमा है और अपने स्वार्थ के भाव से भी प्रत्येक मनुष्य के लिए उस सीमा के बाद दूसरों की आवश्यकताओं में धन लगाना उसका अपने ही सुख के लिए सबसे अच्छा उपयोग करना है।

पुरुषोत्तमदास टंडन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसन्त-वियोग।

[भाग ११ संख्या १० पृष्ठ ४७ से आगे]

अध्याय ५

दिन के अनन्तर रात,
निशा के अनन्तर प्रात,
यह काल की है चाल,
कह गये बुध वाचाल ॥ १
दिन चाँदनी के चार,
फिर अंधकार प्रसार,
फिर शुक्ल पक्ष प्रवेश,
है यह प्रकृति निर्देश ॥ २
है जन्म पाकर वृद्धि
अरु शक्तियों की सिद्धि,
फिर जरा फिर अवसान,
फिर जन्म, चक्र महान! ॥ ३

उठकें सहस्र तरंग
हों सिंधु जल में भंग
पर एक क्षण हो लीन
उठतीं सहस्र नवीन ॥ ४

अरविन्द वृन्द विशाल,
मंजुल मिलिंद, मराल,
सर स्वच्छ में स्वच्छंद
जलचरों का आनन्द,
आकाश निर्मल नील,
सुठ पवन परिमल शील,
है शरद ये छवेसार
जबलों पड़ा न तुषार! ॥ ५, ६ ॥

नभ चण्डकर उद्दण्ड
उद्दाम घोर प्रचण्ड
भ्रम वात दाहक वात,
निर्जल जले जलजात,
शुभ चन्द्र मन्द मयूख
बन मध्य रूखे रूख
ये ग्रीष्म भीष्म-दिगन्त
पावस समय पर्यंत ॥ ७, ८ ॥

फूले फले द्रुमपंज,
मृदु मंजु वल्ली कुञ्ज,
अलि वृन्द की गुंजार,
सुन्दर विहंग पुकार,
मारुत सुगंधित मन्द,
प्रियभानु चन्द्र अमन्द,
गायन रसायन संग
रंजन प्रमोद प्रसंग,
माली समस्त प्रसन्न,
संसार सुख सम्पन्न,
है अल्प ये संयोग,
होगा वसंत वियोग! ॥ ९—११ ॥

वह परम महिमावान
सुखमा वलित उद्यान
बुध विबुध प्रेम सुपात्र
संसार शोभा मात्र,
था जहाँ बारामास
ऋतु-राज चारु विलास,
पहुँचा वहाँ भी रोग,
भारी वसंत वियोग! ॥ १२, १३ ॥

वे आदि मालाकार
हरि भक्त सौम्य उदार
उद्योग योग प्रवीन
शिष्य प्रशिष्य कुलीन
उद्यान सेवा कार्य्य
करते रहे सब आर्य्य,
इस भाँति बीते वर्ष
जब सैकड़ों उत्कर्ष,
विधि हो गया कुछ वाम,
माली हुए उद्दाम,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटने लगा निष्काम
उस वाटिका का काम;
तब दूरदर्शी लोग
समझे समझ कर योग,
भावी इसे है रोग
भारी वसंत वियोग! ॥ १४—१७ ॥

आलस्य द्वेष विषाद
अति वैमनस्य प्रमाद
हिंसा दुराग्रह द्रोह
दुर्बुद्धि मत्सर मोह
जड़ता अभक्ति अशांति
भय अदयता विभ्रांति
दुःसंग विषयासक्ति
दुष्कर्म में अनुरक्ति

तृष्णा असत्य कुरीति
कटुभाषिता दुर्नीति
पाखण्ड छल अविचार
अश्लील मिथ्याचार
सत्कर्म-श्रद्धाहानि
सद्धर्म-निष्ठा-ग्लानि
सुरसाधु-जन-अपमान
श्रुति-विस्मरण अज्ञान
इत्यादि अवगुणजाल
निंदित अशुभ विकराल
बढ़ने लगा क्रम संग
करने लगा सुखभंग ॥ १८—२२ ॥

इक हुई घटना घोर
विख्यात चारों ओर*
हो उग्र मालाकार
तजि संधि का आधार
दो दल हुए कर फूट
फिर किया युद्ध अटूट
कुल मालियों का क्षीण
होकर हुआ यों दीन ॥ २३—२४ ॥

कुछ बचे मालाकार
श्रीमत सुमत दो चार
उद्यान हित उद्योग
करते रहे वे लोग ॥ २५ ॥

उस बाग में पर हाय
रक्षकों का समुदाय
था अल्प अरु बलहीन
अरि संग संगर-दीन

तिसपर परस्पर द्रोह
दुःस्वार्थ-साधन-मोह
था अन्तरंग विकार
बहिरंग का आधार ॥ २६—२७ ॥

यह हुआ तत्परिणामः—
जो दूसरे आराम
थे निकट अथवा दूर
उन सबों में भरपूर

था युगों से विख्यात
सुस्थल, सुनीर, सुवात
यह लोक में उत्कर्ष
उद्यान "भारत-वर्ष;"

उनके निवासी लोग
उर ठान इसका भोग
करने लगे इस ओर
बहु आक्रमण अति घोर,

कुछ किया युद्ध प्रचण्ड
कुछ संधि का पाखण्ड
बल से लिया कुछ काम
छल से किया कुछ काम

बहु वार शत्रु निदान
आये किया प्रस्थान
उद्यान यह छवि खोने
सहता रहा अतिहानि ॥ २८—३२ ॥

*महाभारत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इक धीर मालाकार
विक्रमादित्य उदार
यहाँ हुआ वीर ललाम
जिसने किया निज नाम
करके समर विकराल
वैरी समूह निकाल
जब से हुआ वह अस्त
बिगड़े सुकार्य्य समस्त ॥ ३३—३४ ॥

अनुमान दशशत वर्ष
उद्यान यह उत्कर्ष
सहता रहा उत्पात
अरि क्रोध के आघात ॥ ३५

अंतिम-वसंत-विभास—
रक्षक सुशील-निवास
माली सुकुल सरताज
रण वीर पृथ्वीराज
अति प्रबल रिपु दल जीत
था सकल शंकातीत
पर एक उसका तात
विश्वास का कर घात
मिल शत्रुओं के साथ
दे बाग उनके हाथ
ले मरा घोर कलंक
यहां मिटा सुख का अंक ॥ ३६—३८ ॥

था जहाँ हंस-विलास
वहां हुआ गृद्ध-निवास
था जहाँ कोकिल-गान
वहां अंध खग भयदान
थे जहाँ निर्मल कुण्ड
वहां पड़े रासभ झुण्ड
था जहाँ पुष्प प्रबन्ध
छाई वहाँ दुर्गंध
थे जहाँ तरुवर पुंज
शुभ ललित लतिका कुंज
वहां जमे रूखे रूख
पौधे गये मृदु सूख
था जहाँ बारामास
सुन्दर वसंत विलास
वहां दैव का संयोग
लाया वसंत वियोग ! ॥ ३९—४२ ॥

अध्याय ६ ।

वह पूर्व सुभग उद्यान ध्यान में लाके
रह जाते थे असहाय हाय खा खाके ॥ १

किस भाँति उसे फिर उसी प्रकार सजावें
चिन्ता थी, इस हित शरण कौन की जावें ॥ २

थी फूली सरसों थे शरीर जो पीले
गोविन्दचरण उर थे अरविन्द छबीले,

कोमल करुणा के वचन बोल कोकिल के
अलि गुंजन जो प्रभुजस गायन था मिल के,

थी सुध सुधार की स्वच्छ सुगन्धि बयारी
आनन्द आस की चन्द्रप्रभा थी प्यारी,

इस प्रकार मालाकार उदार प्रतापी
दुख में वसन्त के थे वसन्त से आपी ! ॥ ६

इक दिन उदार-दल वह पुरारि का प्यारा
श्रीदेवध्वनि की धारा तीर सिधारा ॥ ७

कर मज्जन प्राणायाम याम भर जम के
शिव ध्यान किया जप जप के मंत्र निगम के ॥ ८ ॥

कर भेट अंजुली जल प्रसून दल फल की
की मानस-पूजा प्रभु के चरणकमल की ॥ ९ ॥

की विनती निर्मल हृदय दीन बानी से
दे अर्घ्य निमिष प्रति नेत्रों के पानी से ॥ १० ॥

श्रीआशुतोष का जन-वात्सल्य सराहा
उद्यान मध्य आगम वसन्त का चाहा ॥ ११ ॥

आकाश बीच तब अद्भुत छटा निहारी
गुणवती गिरा कमला गिरेजा सी नारी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शत शीतभानु सा तेज उदित था प्यारा
नव भानु ज्योति से जगमग था जग सारा,

अतिकष्ट-नाशिनी अष्टभुजा थी माता
श्रुति बीज चाप असि जलज, अभय की दाता,

श्रीसिद्धि क्षमा निधि सुखमा महिमा धीमा
विधि हरे पंचानन त्रिवेधिशक्ति की सीमा,

मुखमण्डल ऊपर थी प्रसन्नता छाई
थी मन्द-हास-हासिका सन्त मन भाई ! ॥१६॥

मणि-सिंहासन-आसीन चारु थी देवी
थे जिसे सँभाले हुए देवगण-सेवी ॥१७॥

था अरुण श्वेत नीलाम्बर तन की शोभा
जाता था द्युति पै हृदय त्रिगुण का लोभा ! ॥१८॥

थे अलङ्कार छविसार अलौकिक सारे
थी हारमंजु मन्दार सुमन के धारे ॥१९॥

उठती थी जल में लहर चरण धोने को
चलती थी उपवन-पवन व्यजन होने को ! ॥२०॥

जलधर दल सेवा शील छत्र बनता था
कर कर विमान का भाव गगन तनता था ! ॥२१॥

तत्पर थी मानो प्रकृति पूज्य पूजा को
कर लिया आरती हेतु दिया सविता को ! ॥२२॥

श्रीवनमाली भगवान मुण्डमाली के
सेवक गुणशाली माली छविवाली के,

दर्शन पाकर तल्लीन हो गये ऐसे
श्रुति-अर्थ-मनन से हो विदेह जन जैसे ! ॥२४॥

सुन पड़ी उन्हें आकाश-मध्य फिर बानी
मन हरे हुये ज्यों पा नीरस-वन पानी ॥२५॥

था उस बानी का श्रवण दुःख-अपहारी
है वह आनन्द अलभ्य बिना अधिकारी ॥२६॥

कवि को यहाँ केवल सार कथन का बल है
है अलम् वही जो नहीं रसिक में बल है ॥२७॥

(आकाशवाणी का सारांश)

त्रैलोक्य-पालिनी शक्ति-शालिनी मैं हूँ
संसार रूप उद्यान-मालिनी मैं हूँ ॥२८॥

मैं हूँ उपवन की हृदय-हरण हरियाली
फूलों की उज्ज्वल छटा पोतिमा लाली ॥२९॥

मैं ही हूँ पवन सुगन्ध, सलिल की धारा,
मैं ही रवि शशि घन गगन दामिनी तारा ! ॥३०॥

मैं ही विहंग हूँ चंचरीक मैं ही हूँ
मैं ही विराट भी हूँ प्रतीक मैं ही हूँ ॥३१॥

मैं ही हूँ मालाकार चातुरी महिमा
मैं ही हूँ सुखागार गुणों की गरिमा ॥३२॥

जब पालेंगे निज धर्म बाग के वासी
मेरे प्रसाद से होगी दूर उदासी ॥३३॥

हृदयस्थल में दे खोद भक्ति जो नीधा
श्रद्धा से सींचें धर्म-मर्म का पौधा,

संयम खुरपी से मद के कुश खन डालें
विस्मृति पाला से रक्षा करके पालें,

सज्जित होगी इस भाँति मोद-फुलवारी
श्रम करें धीरता संग सुजन अधिकारी ॥३६॥

पर-हित की शाखावली करेगी छाया
असहाय दीन सुख पावेंगे मन भाया ॥३७॥

सुख्याति सुगन्धित पवन चलेगी प्यारी
होंगे बहुमंगल वर विहंग रवकारी ॥३८॥

उद्योग योग के होंगे सरवर वापी
पीकर जल होंगे तृप्त सुशील प्रतापी ॥३९॥

आनन्द चन्द्रिका की होगी उजियाली
पूरन प्रबोध रवि चमकेगा द्युतिशाली ॥४०॥

इस भाँति निवासीवर्ग मोद पावेगा
तुम धैर्य्य धरो फिर भी वसन्त आवेगा ॥४१॥

हाँ इतना है उपदेश विशेष हमारा
जिससे होवें कल्याण अशेष तुम्हारा,

जब विक्रम विंशतितम शताब्दि आवेगी
तब पश्चिम से यह भूमि शक्ति पावेगी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस उपवन के हित हेतु पश्चिमी शासन
रहाँ होगा सम्यक् समझ रखो अनुशासन,

उसकी रक्षा में सब कक्षा के वासी
कर कर के उन्नति होवेंगे सुख रासी ॥४५॥

श्रीजगदीश्वर की भक्ति चाहिए पूरी
निज अवनीश्वर की भक्ति चाहिए पूरी,

इनही दोनों के साथ उचित है प्यारो
उद्यान-भूमि की भक्ति चित्त में धारो ॥४७॥

❋ ❋ ❋ ❋

उद्यान पुनः शोभा अनन्त पाता है
सुख का निधान पूरन वसन्त आता है ॥४८॥

एवमस्तु

पूर्ण।

राष्ट्रों का पारस्परिक व्यवहार।

जिस तरह समाज में हर एक व्यक्ति क़ानून का पाबन्द है उसी तरह सभ्य राष्ट्रों में हर एक राष्ट्र को पारस्परिक व्यवहार में नियमों का पाबन्द रहना पड़ता है। जैसे हर शख़्स को अपने बर्ताव में क़ानून फ़ौजदारी के फन्दों से बच कर पैर रखना पड़ता है और क़ानून दीवानी और क़ानून माल के इक़तेज़ा को पेश-नज़र रखना पड़ता है वैसेही हर एक राष्ट्र को भी राष्ट्रों के पारस्परिक व्यवहार के नियमों के अनुसार, जिनको इंटरनेशनल ला (International Law) कहते हैं, चलना पड़ता है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि यदि मैं किसी शख़्स की आँख फोड़ डालूँ तो सरकारी अदालतें दफ़ा ३२५ ताज़ीराते हिन्द की दण्ड नीति के अनुसार मुझको मुजरिम क़रार देकर सज़ा करावेंगी। अगर मैं किसी शख़्स से कोई चीज़ ख़रीद लाऊँ और उसकी क़ीमत न दूँ तो वह शख़्स अदालत में जाकर मुझ पर नालिश करके डिग्री हासिल करेगा, और अपना रुपया मेरी ज़ात और जायदाद से वसूल करलेगा। इसी तरह से राष्ट्रों को नियमों के अनुसार चलना आवश्यक है। यदि वे रास्ते से हट कर नियमों का उल्लंघन करें और आपस में झगड़ा पैदा हो जाय तो वह झगड़ा इन्हीं नियमों के अनुसार तै किया जाता है। जिस तरह समाज में बहुतसी व्यक्तियाँ हैं उसी तरह इस पृथ्वी-मण्डल में अनेक राष्ट्रों का समारोह है। जब कोई शख़्स सामाजिक नियमों का उल्लंघन करता है तब अदालतें उसके दोष के अनुसार उसे दण्ड देती हैं, वे उसे फाँसी देती हैं, जेल भेजती हैं, बेंत लगवाती हैं या जुरमाना कर देती हैं, और जो मामला दीवानी हुआ तो मावज़ा दिलवाती हैं। राष्ट्रीय नियमों के उल्लंघन की सज़ा में आप किसी रियासत को न तो फाँसी दे सकते हैं, न जेल भेज सकते हैं और न बेंत लगवा सकते हैं। इसलिए जब नियमों के विपरीत बर्ताव करनेवाली किसी सरकश रियासत को दण्ड देना होता है तो उसके मुल्क या उसका कुछ हिस्सा छीन लिया जाता है, उस पर जुरमाना किया जाता है। रियासतें दो तरह की हैं, प्रबल जैसे जापान, इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका और बलहीन जैसे ग्रीस, बलोरिया, पर्शिया वग़ैरः। जब किसी रियासत की हक़तलफ़ी होती है तब उसके लिए सिर्फ़ दो उपाय हैं। एक तो यह कि वह दोषी राष्ट्र की सम्मति से कुछ पंच नियुक्त कर दे और दोनों उस पंच के फ़ैसले को स्वीकार करने का इक़रार करें, दूसरा यह कि वे क़ानून को खुद हाथ में ले लें और दोषी राष्ट्र को अपने बाहुबल से जुरमाना देने या मुल्क देने पर मजबूर करें। जब किसी मुल्क की सरकार दूसरा तरीक़ा इख़्तियार करती है तब वह दोषी राष्ट्र की जायदाद जो अपने मुल्क में है ज़ब्त कर लेती है, या उस देश की जायदाद कहीं स्वतन्त्र समुद्र पर मिले तो ज़ब्त कर लेती है, या वह इन तरीक़ों को साथ ही साथ या इनके बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध करने पर कटिबद्ध होती है और लड़ाई करती है। तमाम झगड़ा लड़ाई के नतीजे पर फ़ैसला हो जाता है। विजयी राष्ट्र पराजित राष्ट्र को या तो जुर्माना ही लेकर छोड़ देता है या उसका कुल या कुछ मुल्क भी ले बैठता है। पुराने ज़माने में लोग अपने झगड़े अपने ही तै कर लेते थे मगर इस सभ्यता के समय में कुल मामले बज़रिए अदालत के तै होते हैं। राष्ट्रों में पारस्परिक व्यवहार के नियम थोड़े ही ज़माने से शुरू हुए हैं। इसलिए तमाम झगड़े पंचायत ही से फ़ैसल नहीं होते। बड़े मामलों में तलवार खींचने की आवश्यकता पड़ती है। मगर इसमें भी भेद है। बलवान् कमज़ोर पर अपनी सत्ता बैठा ही लेता है। यदि झगड़ा दो कमज़ोर और छोटी रियासतों में अमेरिका खंड में हो तो वहाँ यूनाइटेड-स्टेट्स आफ़ अमेरिका फ़ौरन दस्तन्दाज़ी करके फ़ैसला कर देती है और उसका फ़ैसला दोनों फरीक़ को माननीय होता है। इसी तरह से यदि दो कमज़ोर रियासतों में झगड़ा पैदा हो जाय और वे योरप या एशिया खंड में विराजिती हों तो फ़्रांस, इँगलैंड, जर्मनी, आस्ट्रिया, रशिया और इटली मिल कर दख़ल देती हैं और उनका फ़ैसला दोनों फरीक़ों पर लाज़िम होता है। यह हक़ यूनाइटेडस्टेट्स का अमेरिका खंड में और पूर्वोक्त छः रियासतों का योरप और एशियाखंड में पारस्परिक व्यवहार के नियमों के विरुद्ध है। यह केवल उनके बाहुबल का परिणाम है क्योंकि क़ानूनन कमज़ोर से कमज़ोर रियासत ज़ोरदार रियासत के बराबर है। मगर वास्तव में रोज़मर्रा की कारवाई में ऐसा नहीं है। यूनाइटेडस्टेट्स का यह हक़ अमेरिका में और छः बड़ी रियासतों का हक़ योरप और एशिया में (Right of Primacy) हक़ सरदारी या हक़ सरवरी कहलाता है। पाठकों को याद होगा कि प्रेसिडेंट कास्ट्रो जो एक छोटी सी दक्षिण की रियासत (Venezuela) ह्वेनी ज़ुएला (अमेरिका) में प्रेसीडेंट था। अक्सर योरप की बड़ी बड़ी रियासतों का रुपया चाट जाता था और जो माँगने जाता उसे ठेंगा बताया करता था। उस वक़्त मौक़ा आता था कि योरप की रियासतें नाराज़ होकर ह्वेनी ज़ुएला (Venezuela) की प्रजा का नशा उतारने के लिए अमली कारवाई करने की शुरूवात करें। मगर संयुक्त राष्ट्र बीच बचाव कर देते थे। संयुक्त राष्ट्रों ने मुश्तहर कर दिया है कि अमेरिका खंड में यदि कोई और दूसरा राष्ट्र किसी ज़मान पर क़ब्ज़ा करेगा या कोई ज़मान ख़रीदेगा तो संयुक्त राष्ट्रों का यह काम होगा कि वे उस राष्ट्र से लड़ाई शुरू करें। इसलिए उनका कहना यह है कि यद्यपि ह्वेनीज़ुएला संयुक्त राष्ट्रों में नहीं है और उसको कोई हुक्म संयुक्त राष्ट्रों का मजबूर नहीं कर सकता, फिर भी उस नियम के अनुसार जो वह प्रकाशित कर चुके हैं यह उनका कर्तव्य है कि वे दस्तन्दाज़ी करें वरना योरप की रियासतें मदाख़लत करके ज़मान वग़ैरा पर क़ब्ज़ा कर लेंगी और वह बाइस सरदर्दी संयुक्त राष्ट्रों के होगा। इस नियम का नाम मनरोडाडाक्ट्रिन (Monroe doctrine) दिया गया है। इसी तरह से चीन के झगड़े, जैसे (Boxer rebellion) बाक्सरों का बखेड़ा या ग्रीस और टर्की के झगड़े, बलगेरिया और टर्की के झगड़े योरप की छः रियासतें तै कर देती हैं। यह तो कमज़ोर रियासतों का मामला हुआ। मगर जब दो बड़ी रियासतों में झगड़ा पड़ता है उस वक़्त वे दोनों ही उसका फ़ैसला करती हैं। तीसरा दस्तन्दाज़ी नहीं करता। वे चाहें तो पंच मुक़र्रर करें और चाहें तो लड़ कर मामला पूरा करें। छोटे छोटे मामले तो पंचायत (Arbitration) से अक्सर तै कर दिये जाते हैं मगर बड़े बड़े मामलों का इलाज तो अब तक भी तलवार ही है। यह विषय बड़ा ही गम्भीर है। आज इतना ही कह कर अपने पाठकों को इसी विषय पर दो नवीन घटनाओं का स्मरण दिला इसे समाप्त करता हूँ। जापान से जब रूस की लड़ाई शुरू हुई तब रूस ने अपनी जहाज़ी फ़ौज लड़ाई को रवाना की। जब वे जहाज़ रशिया से चल कर बालटिक समुद्र में आये तब इँगलैंड के समीप हो कर गुज़रे। रूसी जहाज़ी अफ़सरों को अंदेशा था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

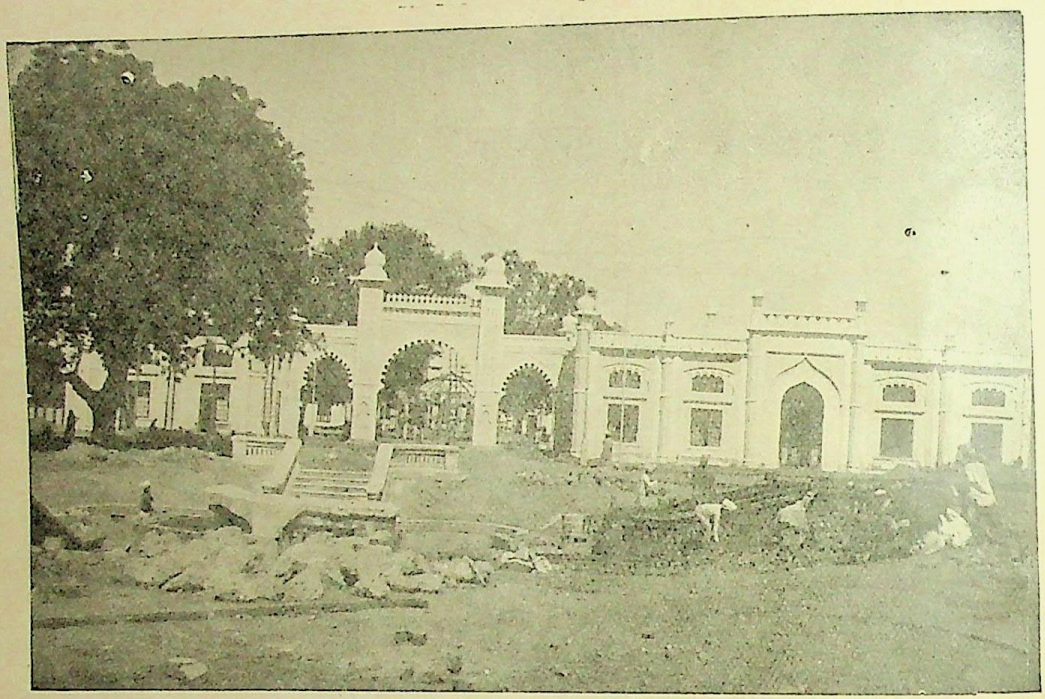

साधारण दृश्य-भवन।

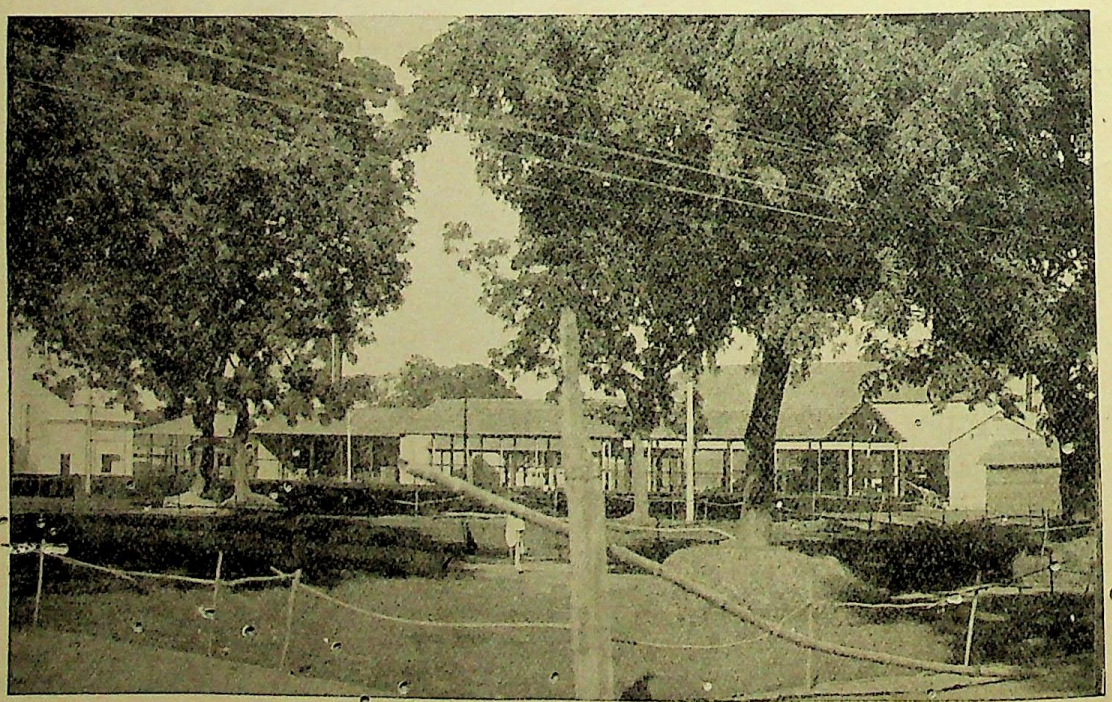

साधारण दृश्य-भवन।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि जापान के जहाज़ छिपे हैं और यह चाहते हैं कि रूसी जहाज़ों का रास्ते ही में काम तमाम कर दें। इत्तिफ़ाक से कुछ बड़ी बड़ी नावों का काफ़ला जिनमें से कुछ अंग्रेज़ मछली पकड़ते थे वहीं मौजूद थे। उसमें से जो अग्रगन्ता था उसने रात को दूसरी नावों को सिगनल दिया कि कूच किया जाय। यह सिगनल रात के वक्त अकसर आतिशबाज़ी के ऊपर उड़कर फूटनेवाले गोले से दिया जाता है। निदान जब यह गोला उड़ कर फूटा तब रूसी जहाज़ वाले घबराये और समझे कि जापानियों ने हमला किया। एक जहाज़ में गोले मारे और एक दो नावों को डुबो दिया और चलते हुए। सरकार इंगिलिशया बहुत ही नाराज़ हुई और उसने रूस को दबाया। रूस ने आनाकानी की तो उन्होंने यह घोषणा दी कि अगर दो घंटे के अन्दर उचित उत्तर न मिलेगा तो लड़ाई मुश्तहर कर दी जायगी। इसके साथ साथ लॉर्ड चार्ल्स बेरेंसफर्ड को हुक्म दिया गया कि अँगरेज़ी जहाज़ लेकर रूसी स्क्वाडरन के पीछे पीछे रहो, और जब हुक्म पाओ लड़ाई शुरू कर दो। रूस ने अपने कुछ अफ़सर स्पेन के किनारे उतार दिये, इस अमर की ज़मानत में कि मामला तै कर दिया जायगा, लड़ाई की कोई ज़रूरत नहीं। इसके बाद दोनों मुल्कों ने मिल कर फ़्राँस, जर्मनी, आस्ट्रिया, इँग्लिस्तान, रूस के पंच मुक़र्रर किये और उन्होंने कुछ फ़ैसला कर दिया।

आज कल भी इसी तरह का एक मामला पेश है जिसमें एक हिन्दुस्तानी मुब्तिला है। सावरकर नाम का एक विद्यार्थी लंडन में विद्याभ्यास करता था। उसे लंडन की पुलिस ने राजविद्रोह के अपराध में गिरफ़्तार किया और एक जहाज़ पर बिठा कर हिन्दुस्तान को ला रहे थे ताकि उस पर फ़ौजदारी मुक़दमा क़ायम किया जाय। जहाज़ विलायत से चल कर फ़्राँस के दक्षिण किनारे पर के मारसेल्स (Marseilles) नामक शहर में कुछ घंटों के लिए ठहरा। सावरकर ने अपने पहरे वालों से कहा कि मैं नहाया चाहता हूँ। ऐसा कह कर वह नहानेवाली कोठरी में गया और पुलिस का आदमी बाहर बैठा रहा। सावरकर ने अपने बदन पर खूब साबुन लगाया और पुलिसवाले से कहा मैं बदन पोंछने का कपड़ा अपनी केबिन में भूल आया हूँ ज़रा मुझको ला दो। पुलिस वाला कपड़ा लेने चला गया। इस अरसे में सावरकर हवा आने के सूराख़ में से निकल पड़ा और समुद्र तैर कर फ़्राँस के किनारे पर पहुँच गया और नंगा भागा। पुलिस वाले ने उसे जहाज़ में न पाकर शोर मचाया। किनारे के फ़्रेंच पुलिस वालों ने उसे पकड़ कर फिर अँग्रेज़ी पुलिस के हवाले कर दिया। फ़्रेंच गवर्नमेंट ने सरकार इंगलिशिया को लिखा कि सावरकर राजविद्रोह के जुर्म में पकड़ा गया था। दूसरे मुल्क का राजविद्रोह का अपराधी यदि किसी तीसरे स्वतंत्र देश में चला जाय तो उसको न तो उस देश के अधिकारी पकड़ेंगे जहाँ वह मौजूद है और न वह देश पकड़ सकता है जहाँ उसने जुर्म किया है। सावरकर हमारे मुल्क में भाग आया अब वह हमारी रक्षा में है इसलिए वह छोड़ दिया जाय और शरिस्ते की कारर्वाई से यदि वह पकड़ा जा सकता हो तो उसको पकड़ने की कोशिश की जाय। दोनों देशों ने राष्ट्रों में पारस्परिक व्यवहार के नियमों के पंडितों को मुक़र्रर करके उनके फ़ैसले को माननीय स्वीकार किया है। फ़ैसला फ़रवरी महीने में होगा।

आनन्दीप्रसाद दुबे।

प्रयाग की प्रदर्शिनी।

जिस प्रदर्शिनी के लिए महीनों से नहीं साल डेढ़ साल पहले से तैयारियाँ हो रही थीं, जिसकी बीसियें बड़ी बड़ी इमारतों के बनान क लिए ७-८ महीने पहले से हज़ारों कारीगर रात दिन लग रहे थे, जिसकी इमारतों के बनाने में कई लाख रुपये ख़र्च हो गये उस प्रदर्शिनी को, पहली दिसंबर सन १९१० ईसवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के दिन, प्रान्तीय लाट सर जान हिवेट साहब बहादुर ने बड़ी धूम-धाम के साथ सर्वसाधारण के देखने के लिए खोल दिया।

यह प्रदर्शिनी जिस धूम धाम से की गई है उसको देख कर स्पष्ट विदित होता है, और सब देखनेवालों की भी यही राय है, कि ऐसी प्रदर्शिनी भारतवर्ष में कभी नहीं हुई। इसी लिए हम इसे अद्वितीय प्रदर्शिनी कहते हैं।

प्रदर्शिनी ११ बजे दिन से रात के ११ बजे तक खुली रहती है। आठ आने का टिकट लेकर कोई भी दर्शक ११ बजे दिन से रात के ११ बजे तक प्रदर्शिनी देख सकता है।

यह प्रदर्शिनी किले के पास यमुना के तट पर है। इसका घेरा टीन की दीवारों से घिरा हुआ है। इस की गोलाई मीलों लंबी है। इसके भीतर जाने के लिए तीन द्वार हैं। एक बड़ा द्वार, जिसे अँगरेज़ी में मेनगेट कहते हैं, उत्तर की ओर है। द्वार बड़ा दर्शनीय और विशाल है। द्वार पर रात को हज़ारों विद्युद्दीप-मालाओं की ऐसी रोशनी होती है कि जिससे दिन सा खिल जाता है और द्वार की शोभा सौ गुनी बढ़ जाती है।

प्रदर्शिनी के भीतर जाने का मार्ग और है और आने का और। टिकट द्वार पर घुसते ही ले लिया जाता है। फिर भीतर जाकर दर्शक कहीं फिरे, कुछ रोक टोक नहीं।

प्रदर्शिनी की बीसियों इमारतों में इतनी अधिक वस्तुओं का संग्रह किया गया है कि जिनके देखने को एक दिन कुछ भी नहीं। कोई दर्शक एक दिन में, लगातार १२ घंटे देखने पर भी, पूरी प्रदर्शिनी की सैर नहीं कर सकता। यदि अच्छी तरह ध्यान से देखा जाय तो एक दिन भर में एक ही इमारत अच्छी तरह देखी जा सकती है। एक एक कमरे में सैकड़ों नहीं हज़ारों तरह की नाना स्थानों से आई हुई चीज़ें रक्खी हैं जिनके देखने के लिए बहुत समय चाहिए।

हम भी एक दिन प्रदर्शिनी देखने गये। प्रदर्शिनी के भीतर बड़ी स्वच्छता देखी।

जगह जगह पानी पिलाने का भी प्रबन्ध किया गया है। दर्शकों के आराम के लिए प्रदर्शिनी के हाते के भीतरही कुछ दुकानें भी लगी हुई हैं। पूरी मिठाई की कई दुकानें हैं। फलफलहरी की भी कई दुकानें हैं। दुकानों का प्रबन्ध अच्छा है। हिन्दुओं की दुकानें अलग हैं और मुसलमानों की अलग। यात्रियों के सुभीते के लिए टट्टियाँ और पेशाब घर भी बने हुए हैं।

भोजनशाला।

प्रकाशस्तम्भ के पासवाले बीच के द्वार के बिलकुल पास ही तीन भोजनशालायें बनी हुई हैं। एक ओर अँगरेज़ों के लिए और दूसरी ओर हिन्दू-मुसल्मानों के लिए। हिन्दुओं की अलग है और मुसल्मानों की अलग। हिन्दुओं की भोजनशाला में जाकर देखा तो खाद्य पदार्थों का भाव बहुत मँहगा पाया। अँगरेज़ों की भोजनशाला की भी, सुनते हैं, यही व्यवस्था है। एक चाय का प्याला और दो तीन बिसकुट लीजिए तो आप से ।=) के २४ पैसे ले लिये जायँगे। और यदि आपकी तबीयत मिठाई खाने के लिए मचल पड़े तो थोड़ी मिठाई के लिए ३२ पैसे देने होंगे। मिठाई तो मिठाई, वहाँ से नमकीन की तश्तरी लीजिए तो उसकी दक्षिणा भी कम नहीं। उसकी भी पूरी अठन्नी देनी होगी।

इस प्रकार वहाँ भोजन करने जानेवालों को डेढ़ रुपया लेकर जाना चाहिए। एक रुपया छः आने का तो हमने हिसाब बतला ही दिया। रहे दो आने। उन्हें पान, तम्बाकू और सिगरेट के लिए समझिए।

अस्तु, राजा महाराजा आदि धनाढ्य लोगों के लिए प्रदर्शिनी के भीतर इस भोजनशाला से बहुत आराम मिलता है।

प्रदर्शिनी के हाते में ही डाकघर है, तारघर है, और प्रदर्शिनी का कार्यालय है और प्रदर्शिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषि-भवन ।

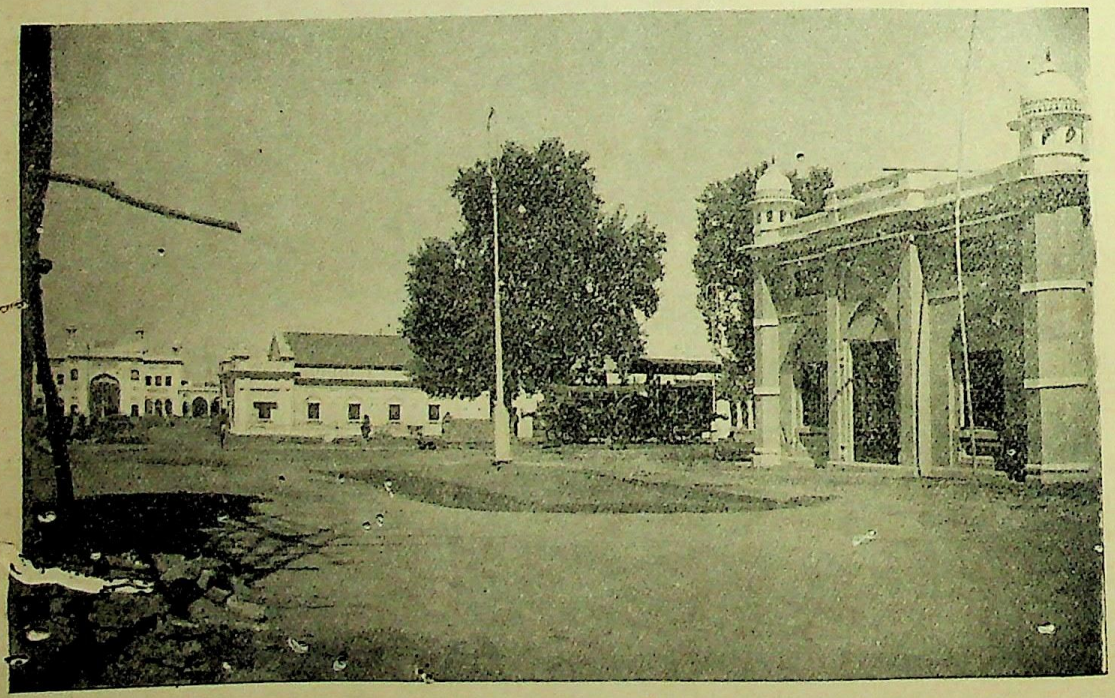

मणिरत्नादि-संग्रह-भवन ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धी जो बात किसी को पूछनी हो वह वहाँ जाकर पूँछ सकता है।

प्रदर्शिनी के उत्तरी बड़े द्वार से घुसकर और प्रदर्शिनी-कार्यालय से कुछ आगे चलकर जब बीच सड़क में पहुँचते हैं तब सड़क के किनारे थोड़ी सी रेलवे लाइन बिछी हुई दिखाई देती है। उस जगह प्रकाशस्तम्भ की ओर मुँह करके जब खड़े होते हैं तब बाएँ हाथ की ओर जो एक इंजिन और एक गाड़ी खड़ी दिखाई गई है वह विलायत से आया हुआ सबसे पहला इंजिन है और सबसे पहली गाड़ी है। यही पहला इंजिन है जिसने पहले पहल भारतभूमि पर अपना पदार्पण किया था। इस पर सन् १८५७—१८६० ईसवी खुदा हुआ है। जिससे मालूम होता है कि यह इंजिन १८५७ से १८६० तक—४—वर्ष चलाया गया था। दाहिने हाथ की ओर जो एक इंजिन और गाड़ी खड़ी है वे दोनों सन् १९१० ईसवी के बने हुए हैं।

प्रदर्शिनी के भीतर बाज़ार के पास ही बाईं ओर को बाराबंकी (अवध) का एक कारख़ाना है। उसमें देशी करघों से सूती कपड़ों की बुनाई का काम होता है। उसी हाल में एक कोने में पर्दे के भीतर स्त्रियाँ काम करती हैं। वहाँ की स्त्रियों की दस्तकारी भी दर्शनीय है। सूती कपड़ों पर बेलबूटे का काम बड़ी सुघड़ाई से किया गया है। सुई तागे से ही कपड़े पर नाना प्रकार के पक्षियों की मूर्तियाँ बहुत ही सुन्दर बनाई गई हैं। इन स्त्रियों के हाथों की सफ़ाई को देखकर लोग दंग रह जाते हैं।

प्रदर्शिनी भूमि के बीच में एक प्रकाशस्तम्भ है। वह बिजली के हज़ारों दीपकों से गुथा हुआ है। दिन छिपते ही बिजली देवी की कृपा से वह स्तम्भ उद्दीप्त हो उठता है। दूर से देखने में उस की कुछ और ही शोभा है। दूर से तो वह अग्निमय स्तम्भ सा दिखाई देने लगता है। सूर्य के छिप जाने पर प्रदर्शिनी का यही कृत्रिम सूर्यस्तम्भ जगमगाने लगता है। इसके प्रदीप्त होते ही रात का दिन हो जाता है। यह स्तम्भ प्रदर्शिनी की सभी इमारतों से बहुत ऊँचा है। इस लिए इसका प्रकाश दूर तक फैल जाता है। प्रदर्शिनी के हाते के बाहर दूर से खड़े होकर देखिए तो यह ऐसा मालूम होता है मानो, तपाये हुए सोने का खंभ हो। अपनी जगमगाती हुई ज्योति के सामने यह ऐसा मालूम होता है मानो, आकाश की तारागणों को हँस रहा हो। ऐसा मालूम होता है कि मानो प्रदर्शिनी का अद्भुत कौतुक देखने के लिए आकाश से तारागण आकर इस स्तम्भ पर बैठ गये हों।

प्रदर्शिनी के दक्षिण भाग में, बिलकुल यमुना के किनारे, एक बड़ी सुन्दर इमारत बनी हुई है। उसका नाम है स्वागतभवन (वैलकम क्लब)। इस भवन के भीतर दीवारों और छतों पर पच्चीकारी के साथ रंगीन बेलबूटे का बहुत ही अच्छा काम किया गया है। इसकी शोभा देखते ही बनती है। इसके भीतर बैठे ही बैठे यमुना और गंगा के संगम का अद्भुत दृश्य बड़ा ही मनोहर दिखाई देता है। इसके बीच के हाल में एक बहुत बड़ा झाड़ लटका हुआ है। इस स्वागतभवन के दर्शकों को इस के भीतर का झाड़ अवश्य देखना चाहिए। इस झाड़ में एक महत्त्व की बात यह है कि नीचे से ऊपर तक इसके बीच का भाग एक ही काँच का बना हुआ है; टुकड़ों से जोड़ कर नहीं बनाया गया। अँगरेज़ों के लिए चाय पानी का प्रबन्ध इसी भवन में किया गया है।

शिक्षा-भवन

के चित्र को देखिए। कैसा विशाल भवन है। इस भवन में शिक्षा-विभाग से सम्बन्ध रखनेवाली प्रायः सभी वस्तुओं का अच्छा संग्रह किया गया है। भारतवर्ष के बीसियों प्रसिद्ध यन्त्रालयों की प्रकाशित पुस्तकें, चित्र और अन्यान्य वस्तुएँ यहाँ दिखाई गई हैं। भारतवर्षीय स्कूलों और कालेजों के छात्रों के हाथ के बने हुए काम भी यहाँ बहुत अच्छे अच्छे दिखाये गये हैं। पीलीभीत से एक आदमी ने एक ऐसी चीज़ लिख कर दिखलाई है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो उसके बाईं ओर खड़े होकर पढ़ो तो उर्दू भाषा मालूम होती है; दाहिनी ओर खड़े होकर पढ़ो तो अँगरेज़ी दिखाई देती है। तारीफ़ की बात यह है कि बात दोनों भाषाओं में एक ही है। अँगरेज़ी में इस तरह है। Exhibition, Allahabad, 1910. और उर्दू में ۱۹۱۰ء سنہ نمایش گاہ الہ آباد इस तरह।

इसी शिक्षाविभाग में महाभारत की हस्तलिखित एक बहुत पुरानी पोथी रक्खी है। वह भोजपत्र पर लिखी हुई है। उसका मूल्य ५० हज़ार रुपये लिखा हुआ है। इसी प्रकार एक श्रीमद्भागवत की हस्तलिखित पुस्तक भोजपत्र पर लिखी हुई है। वह भी बहुत पुरानी है। उसका मूल्य भी कम नहीं है। पूरे पचीस हज़ार रुपये है।

साधारण दृश्य-भवन।

में जाकर देखिए तो वहाँ भी एक से एक अद्भुत चीज़ देखने को मिलेगी। इसी भवन में श्रीमती ब्रह्मकुमारी देवी के हाथ की बनी हुई ऊन की एक गद्दी बहुत सुन्दर रक्खी है। इसकी क़ीमत २५) है। उक्त देवीजी मुंशी कृष्णकुमार, सबजज, प्रतापगढ़ की पुत्री और लखनऊ के चौधरी ज्वालाप्रसाद ज़मींदार की पतोहू हैं। गद्दी बहुत सफ़ाई से बनी हुई है और सुन्दर है।

प्रदर्शिनी में एक भवन ऐसा है जिसमें इस सिरे से उस सिरे तक अधिकांश चीज़ें स्त्रियों और लड़कियों की बनाई हुई रक्खी गई हैं। इसके देखने से मालूम होता है कि भारतवर्ष में अभी तक स्त्रियों और लड़कियों की दस्तकारी के काम की भी कमी नहीं है। एक से एक बढ़िया चीज़ें यहाँ रक्खी हैं। सुई के काम की चीज़ें, लकड़ी पर खोदी हुई चीज़ें, चित्र, गुड़ियाँ, लकड़ी के घर इत्यादि अनेक चीज़ें लड़कियों के हाथ की बनी हुई यहाँ रक्खी हैं। देहरादून में एक कन्या पाठशाला है। उसकी दशा बहुत अच्छी है। उस पाठशाला के प्रबन्ध और शिक्षा का मुख्य भार बाबू ज्योतिःस्वरूप वकील की धर्मपत्नी के ऊपर है। आप बड़ी योग्य अध्यापिका और सुप्रबन्धकर्त्री हैं। आपकी ही पाठशाला की लड़कियों ने लकड़ी का एक मकान बनाया है। उसका नाम रक्खा है सूर्य-भवन। वह सूर्य-भवन भी इसी भवन की शोभा बढ़ा रहा है। यह भवन हिन्दुओं के घर का एक नमूना है। इसके एक आँगन में यज्ञवेदी की अच्छी रचना की है। उसके चारों ओर चार होता हवन कर रहे हैं। बहुत अच्छा दृश्य दिखाया गया है।

कृषि-भवन।

में खेती-सम्बन्धी अनेक चीज़ें दिखाई गई हैं। किस किस चीज़ के विषय में लिखा जाय। एक से एक बढ़िया, एक से एक दर्शनीय और एक से एक आश्चर्यमय है।

मणि-रत्नादि-संग्रह-भवन।

का क्या कहना है। वह तो रत्नों का घर ही ठहरा। इस भवन को रात्रि में देखना चाहिए। बिजली की रोशनी से इस भवन में रक्खी हुई रत्नमय चीज़ें ऐसी चमकने लगती हैं कि आँखों में चकाचौंध हो जाती है। यहाँ की एक एक चीज़ हज़ारों रुपये की है। इस भवन में करोड़ों की सम्पत्ति रक्खी हुई है।

इस प्रदर्शिनी में भारतवर्षीय प्रायः सभी प्रान्तों की प्रत्येक प्रकार की दर्शनीय चीज़ें संग्रह की गई हैं। कितने ही देशी रजवाड़ों से भी बहुत सी चीज़ें यहाँ मँगाकर रक्खी गई हैं। राजसी चीज़ों की सुन्दरता का क्या कहना है! एक पूरी कमरा तो नवाबी सामान से सजा हुआ है। मख़मल पर ज़री का बढ़िया काम भारतवर्ष के कारीगरों की उत्तमता का बखान कर रहा है।

काठ की, धातु की, पत्थर की और मिट्टी की बनी हुई असंख्यात चीज़ें कई भवनों में रक्खी हुई हैं। किसका वर्णन करें और किसको छोड़ें, सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

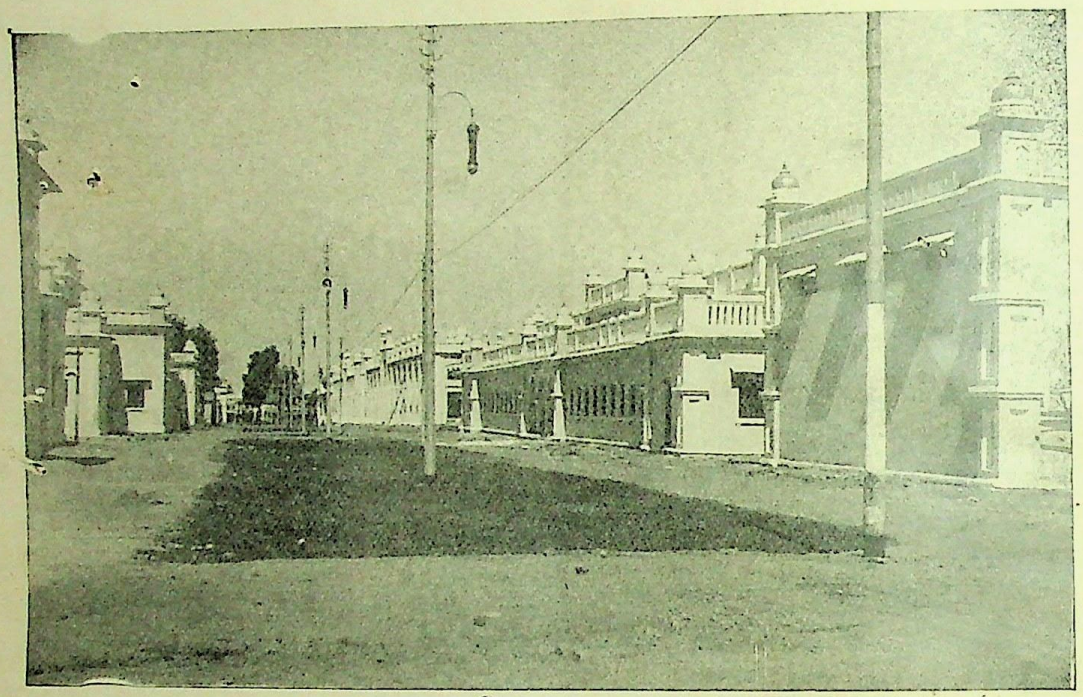

साधारण दृश्य-भवन ।

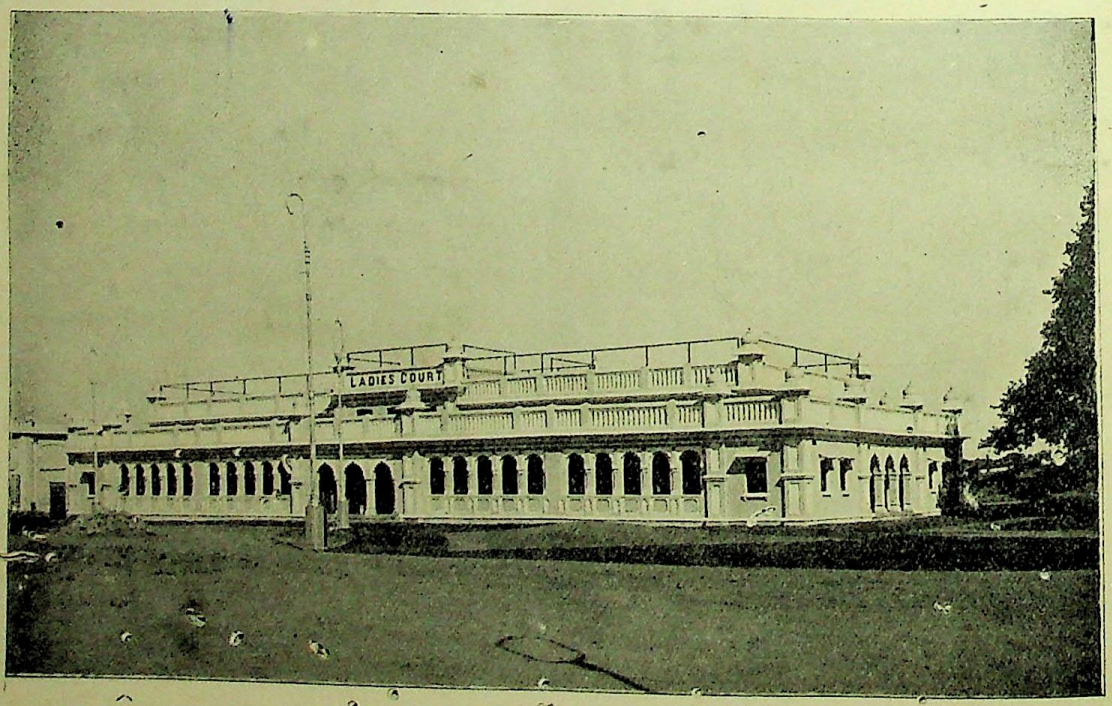

स्त्रीकौशल-भवन

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शनीय हैं। सभी के विषय में कुछ न कुछ लिखना चाहिए। पर ऐसा करें तो सरस्वती की पूरी एक संख्या इसीसे भर जाय। इसलिए हमने यहाँ थोड़ा सा वर्णन किया है।

प्रदर्शिनी-प्रबन्धकों ने बाहरी दर्शकों के ठहराने के लिए प्रदर्शिनी के अहाते से बाहर मैदान में सैकड़ों कैम्प लगवा दिये हैं। बाहरी दर्शक नियत किराया देकर उसमें ठहर सकते हैं।

ईस्ट इंडियन रेलवे और बी० एन० डबल्यु० रेलवे ने अपने अपने स्टेशन भी प्रदर्शिनी के समीप ही बनवा दिये हैं। प्रदर्शिनी देखने आने वालों को इन अस्थायी स्टेशनों से बहुत आराम मिलता है। इलाहाबाद स्टेशन से प्रदर्शिनी तक रेलगाड़ी प्रातः-काल से रात के ११ बजे तक एक एक घंटे में छूटती रहती है।

आगामी बड़े दिन की छुट्टियों के दिनों में प्रयाग में बड़ी धूमधाम होगी। हज़ारों क्या, लाखों दर्शक उन दिनों प्रयाग में आकर प्रदर्शिनी की सैर करेंगे।

उन्हीं दिनों अनेक सभा-सोसाइटियों के जलसे भी यहाँ बड़ी धूमधाम के साथ होंगे। कांग्रेस के मण्डप के बनने का काम जारी हो गया है। आर्यसमाज भी अपने आर्यकैंप के बनाने में व्यस्त है। युक्तप्रान्त की आर्यप्रतिनिधिसभा का वृहद् अधिवेशन भी उन दिनों यहीं होगा। किस किसके नाम गिनावें, मुस्लिम कान्फ्रेंस, भार्गव कान्फ्रेंस, कायस्थ कान्फ्रेंस, कान्यकुब्ज महासभा, आर्यसमाज की परोपकारिणी सभा, सार्वभौम सभा आदि कोड़ियों सभा-समितियों के जलसे यहाँ जलसे होंगे। बड़ी धूमधाम रहेगी।

सुनते हैं, बड़े दिन तक इस प्रदर्शिनी में विलायती विमान भी आकर दर्शकों को आकाश की हवा खिलाकर उनका मनोरञ्जन करेंगे।

अभी प्रदर्शिनी-सम्बन्धी कितनी ही इमारतों का नामोल्लेख भी हमने नहीं किया है। करते, कहाँ सरस्वती में उतना स्थान ही नहीं है। प्रदर्शिनी-सम्बन्धी अवशिष्ट अनेक बातें हम जनवरी की सरस्वती में प्रकाशित करेंगे।

रामजीलाल शर्मा।

विविध-विषय।

१—एक और हिन्दी-हितैषी का स्वर्गवास।

न जाने हिन्दी-हितैषियों के लिए यह वर्ष क्यों दुःखदायी हुआ है। महाराज कमलानन्दसिंह, पण्डित उमापति पाण्डेय, महाराज रमेश-सिंहजी के वियोग का दुःख अभी ताज़ा ही था कि कलकत्ते के सुप्रसिद्ध हिन्दी-लेखक पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र का भी स्वर्गवास होगया। मिश्रजी का जन्म जम्बू के निकट एक ग्राम में संवत् १९१६ में हुआ था परन्तु आपके जीवन का बहुत कुछ समय कल-कत्ते में ही व्यतीत हुआ था। आप संस्कृत, बङ्गला आदि भाषाओं के भी अच्छे पण्डित थे। "भारत-मित्र", "सारसुधानिधि", "उचितवक्ता", और "मारवाड़ी बन्धु" के आप जन्मदाता थे। इनके अतिरिक्त अनेक पुस्तकें लिखकर आपने हिन्दी की अच्छी सेवा की थी। परमात्मा आपके कुटम्बियों को धैर्य्य दे।

२—जान बचानेवाले को इनाम।

कानपुर के कलक्टर साहब ने हमारे पास एक नोटिस भेजने की कृपा की है जिसके द्वारा आप यह सूचना दिया चाहते हैं कि "वैकुण्ठवासी लाला गयाप्रसाद, एक नामी और धनाढ्य रईस (कानपूर) ने अपने मरने पर अपनी बनी जायदाद एक कमेटी के सिपुर्द कर दी थी और आज्ञा की है कि उसकी आमदनी ख़ैरात और देशोपकार के काम में लगाई जाय"। इस कमेटी ने यह निश्चय किया है कि संयुक्त

CC-0. In Public D

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1129

प्रदेश में जो कोई किसी आदमी की जान बचावे या बचाने की कोशिश करने में बहादुरी दिखावे उसे इनाम दिया जाय। इसलिए २०००) प्रामिसरी नोट इस कार्य्य के लिए पृथक् कर उसने सर्कार की अनुमति से एक ब्रेवरी कमेटी क़ायम कर दी है जिसके कलक्टर साहब बहादुर कानपुर सेक्रेटरी हैं। इस वक्त के नियम ये हैं (१) इनाम में सोने और चाँदी के तमगे और सनद दिये जायँ और (२) इनाम देने में कोई विचार जाति या मज़हब का न किया जाय।

जो सज्जन इस इनाम के अधिकारी हों वे अपनी अर्ज़ी साधे कलक्टर साहब कानपुर के पास भेजें या जिस ज़िले में वे रहते हों या जहाँ बहादुरी का काम किया गया हो वहाँ के कलक्टर या अफ़सर सर्कारी के मारफ़त कानपुर उनके पास भेजें।

३—पुस्तक-परीक्षा।

सच्ची माता—यह पुस्तक श्रीमती यशोदादेवी सम्पादिका स्त्रीधर्म्मशिक्षक और मुख्याध्यापिका कन्यापाठशाला कर्नलगञ्ज, प्रयाग, ने स्त्रियों के सुधार के लिए बनाई है। यह चार भागों में विभक्त है। पहले अध्याय में पुत्री को माता के उपदेश, विद्या के गुण और अध्यापिका के उपदेश और चिट्ठी लिखने की रीति बतलाई है। दूसरे में धर्म्मशास्त्रों से स्त्रियों के धर्म्म दिखलाये गये हैं। तीसरे में हिसाब-किताब और चौथे में स्वास्थ्यरक्षा और सीना-पिरोना और अन्यान्य बातें बतलाई गई हैं। पुस्तक लड़कियों के लिए विशेष उपयोगी है। मूल्य धनवती बहिनों से १) सर्वसाधारण बहिनों से ॥) और कन्याओं से ।=) लिया जायगा।

कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की प्राचीन तथा अर्वाचीन अवस्थाओं का वर्णन—यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-सेवियों के चिरपरिचित मित्र पण्डित गङ्गाप्रसादजी अग्निहोत्री की लिखी हुई है। पुस्तक का विषय उसके नाम ही से प्रकट है। अपनी जाति और कुटुम्ब के हितचिन्तक प्रत्येक कान्यकुब्ज ब्राह्मण को यह पुस्तक अवश्य ही एक बार पढ़ना चाहिए। इसे बम्बई के सुप्रसिद्ध सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास ने श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार प्रेस में मुद्रित कर प्रकाशित की है। मूल्य सेठजी या अग्निहोत्रीजी से पूँछिये, पुस्तक पर कुछ नहीं लिखा।

अँगरेज़ीशिक्षा—यह पुस्तक पण्डित हरिदास ने दो भागों में बनाई है। प्रत्येक भाग के दाम ॥) अँगरेज़ी शब्दादिकों के अर्थ हिन्दी में दिये गये हैं। छपाई सुन्दर है। यह पुस्तक उन लोगों के लिए विशेष उपयोगी है जो किसी स्कूल में अँगरेज़ी नहीं पढ़ सके किन्तु साधारण काम काज करने के लिए कुछ अँगरेज़ी सीखना चाहते हैं।

स्त्रीधर्म्मशिक्षक—इस मासिकपत्र की सम्पादिका श्रीमती यशोदादेवी हैं। यह पुत्रियों के लिए विशेष उपयोगी है। वार्षिक मूल्य १-)॥ है। मिलने का पता स्त्रीधर्म्मशिक्षक कार्य्यालय, कर्नलगञ्ज, प्रयाग।

सुधानिधि—इस मासिकपत्र के सम्पादक पण्डित जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल हैं। मूल्य २।) इसमें वैद्यक-सम्बन्धीय लेख अच्छे होते हैं। सम्पादक, दारागञ्ज, प्रयाग से मिल सकती है।

४—मनोरञ्जक श्लोक।

जयपुर के महाराज सवाई प्रतापसिंहजी भर्तृहरि के शतकों का हिन्दी-कविता में अनुवाद किया है। उसमें प्रसिद्ध श्लोक—

'आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला—
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्य्यद्रुमध्वंसिनी।
मोहावर्त सुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः॥'

का यह भाषान्तर दिया है—

नदी रूप यह आस, मनोरथ पूरि रह्यो जल।
तृष्णा तरल तरङ्ग राग है ग्राह महाबल

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

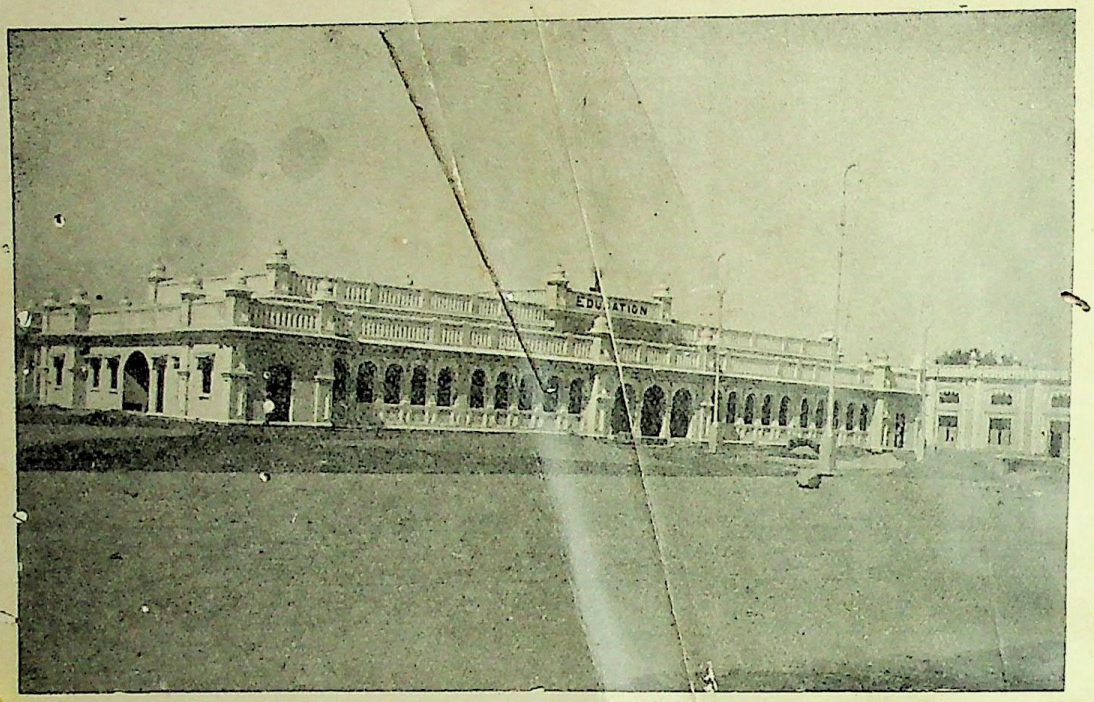

शिक्षाभवन ।

स्वागतभवन ।

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

सन्दर्भ पुस्तक
REFRENCE BOOK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri